श्रीमद्देवीभागवत

(हिन्दी टीका सहित)

भाग : १

॥ अथ देवीभागवतं सभाषाटीकं समाहात्म्यम् ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

संस्करण : जून २०१८, संवत् २०७५

मूल्य :
पत्राकार : १३०० रुपये मात्र।
साजिल्द : १५०० रुपये मात्र।

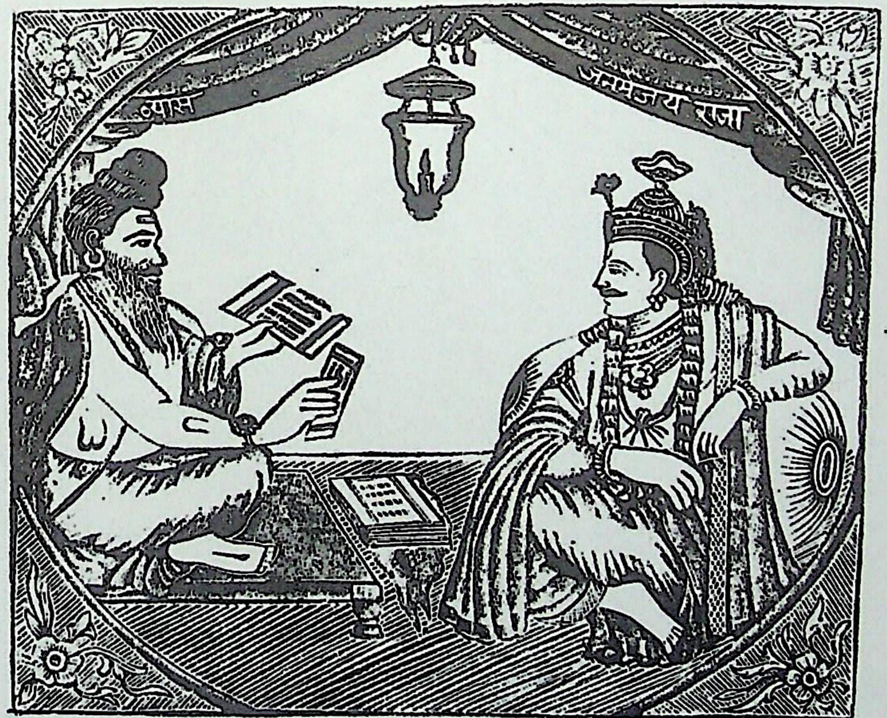
मुद्रक एवं प्रकाशक
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्री वेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop : Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg.
7 th Khetwadi, Mumbai. 400 004
Tel / Fax : 91 22 23857456

Web Site : http://www.khe_shri.com
E-Mail khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadas
Prop.: Shri Venkateshwar Press, Mumbai 400004
at their Shri Venkateshwar Press,
22, Chintamani Industrial Estate,Ramtekadi,Pune 411013


देवी
हिमाचल


व्यास
जनमेजय राजा

श्रीमद्देवीभागवतभाषाकी विषयानुक्रमणिका

चतुर्थस्कन्ध ४.

पंचमस्कन्ध ५.

षष्ठस्कन्ध ६.

सप्तमस्कन्ध ७.

अष्टमस्कन्ध ८.

अध्यायः	विषयः	पत्रम्

नवमस्कन्ध ९.

दशमस्कन्ध १०.

एकादशस्कन्ध ११.

द्वादशस्कन्ध १२.

श्रीमद्देवीभागवतभाषाटीका की विषयसूची समाप्त

अथ श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यं भाषाटीकासमेतं प्रारभ्यते

एकादशस्कन्ध ११.

द्वादशस्कन्ध १२.

श्रीमद्देवीभागवतभाषाटीका की विषयसूची समाप्त

अथ श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यं भाषाटीकासमेतं प्रारभ्यते

श्रीगणेशाय नमः ॥ दोहा–गौरी गिरा गणपति सुमिरि, विधि हरि हर शिर नाय। देविचरित माहात्म्यकी, भाषा लिखत बनाय ॥ १ ॥
सृष्टिमें जो उत्पत्तिरूप है, जगत्के कारण विधिमें जो पालन शक्तिरूप है, संहारमें रौद्रीशक्ति है वा रौद्ररूप होकर संहार करती है जिसका यह सब जगत् खेलमात्र है, जो परा ''पश्यन्ती मध्यमा'' और वैखरी वाणीरूप है वह ब्रह्मा विष्णु महेशसे आराधित प्रसन्नवदन भगवती हमारी वाणीको अलंकृत करो ॥ १ ॥ नारायण नर नरोत्तम देवी सरस्वतीको नमस्कार करके तथा व्यासजीको प्रणाम करके जयका उच्चारण करना चाहिये ॥२॥ ऋषि बोले हे सूतजी, तुम बहुत कालतक जियो जिस कारण कि हमको मनोहर पुण्यकथा सुनाते हो, हे महाबुद्धिमान् व्यासजीके शिष्य ! ॥३॥ सर्व पापके हरनेवाले विष्णुके अद्भुतचरित्र अवतारकथासे

श्रीगणेशो विजयते ॥ सृष्टौ या सर्गरूपा जगदवनविधौ पालनी या च रौद्री संहारे चापि यस्या जगदिदमखिलं क्रीडनं या पराख्या ॥ पश्यन्ती मध्यमाऽथो तदनु भगवती वैखरी वर्णरूपा साऽस्मद्वाचं प्रसन्ना विधिहरिगिरिशाराधिताऽलंकरोतु ॥ १ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत जीव समा बह्वीर्यस्त्वं श्रावयसीह नः ॥ कथा-मनोहराः पुण्या व्यासशिष्य महामते ॥ ३ ॥ सर्वपापहरं पुण्यं विष्णोश्चरितमद्भुतम् ॥ अवतारकथोपेतमस्माभिर्भक्तितः श्रुतम् ॥ ४ ॥ शिवस्य चरितं दिव्यं भस्मरुद्राक्षयोस्तथा ॥ सेतिहासं च माहात्म्यं श्रुतं तव मुखाम्बुजात् ॥ ५ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामः पावनात्पाव-नम्परम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणामनायासेन सर्वशः ॥ ६ ॥ तत्त्वं ब्रूहि महाभाग येन सिद्ध्यन्ति मानवाः ॥ कलावपि परं त्वत्तो न विद्मः संशयच्छिदम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभागा लोकानां हितकाम्यया ॥ सर्वशास्त्रस्य यत्सारं तद्वो वक्ष्याम्यशेषतः ॥ ८ ॥ तावद्गर्जन्ति तीर्थानि पुराणानि व्रतानि च ॥ यावन्न श्रूयते सम्यग्देवीभागवतं नरैः ॥ ९ ॥

युक्त मैंने भक्ति पूर्वक श्रवण किये ॥ ४ ॥ शिवजीके दिव्यचरित्र भस्म रुद्राक्षका माहात्म्य हास सहित तुम्हारे मुखकमलसे सुना ॥ ५ ॥ अब हम पवित्रसे भी पवित्र अनायासही भक्ति मुक्ति देनेवाली कथाके सुननेकी इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! उसको तत्वसे कहो जिसके जाननेसे मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होते हैं कलियुगमें संदेह छेदन करनेवाले तत्वको नहीं जानते ॥ ७ ॥ सूतजी बोले हे महाभाग ! लोकोंके हितकी कामनासे आपने उत्तमवार्त्ता पूछी, अब मैं सम्पूर्ण शास्त्रके सारको सब प्रकारसे कथन करता हूं ॥ ८ ॥ तभीतक तीर्थ व्रत और पुराण गर्जना करते हैं जबतक मनुष्य भली प्रकार देवीभागवत

नहीं सुनते हैं ॥९॥ तभीतक मनुष्यको यह पापरूपी अटवी क्लेश और निरंतर कंटक देनेवाली है जबतक देवीभागवतरूपी परशा प्राप्त नहीं होता है ॥ १० ॥ तभीतक मनुष्यको उपसर्गरूपी महाअन्धकार क्लेश देता है, जबतक देवीभागवतरूपी सूर्यका उदय नहीं होता ॥ ११ ॥ ऋषि बोले हे महाभाग सूतजी ! आप हमसे कथन कीजिये वह कैसा पुराण है और उसके श्रवणकी विधि क्या है ॥१२॥ यह कितने दिनोंमें सुना जाता है और इसका पूजन कितने प्रकारसे है किन मनुष्योंने इसे पहले सुना और वे किन किन कामनाओंको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ सूतजी बोले विष्णु भगवान्‌के अंशसे सत्यवतीमें पराशरके अंशसे मुनि प्रगट हुए जो वेदोंके चार भागकर शिष्योंको पढ़ाते हुए ॥ १४ ॥ व्रात्यपति और द्विजाधमका वेदमें अनधिकार देखकर तथा स्त्री और दुर्बुद्धि मनुष्योंको किस

तावत्पापाटवी नॄणां क्लेशदाऽदभ्रकण्टका ॥ यावन्न परशुः प्राप्तो देवीभागवताभिधः ॥ १० ॥ तावत्क्लेशावहं नॄणामुपसर्गमहातमः ॥ यावन्नैवोदयं प्राप्तो देवीभागवतोष्णगुः ॥११॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर ॥ कीदृशं तत्पुराणं हि विधिस्तच्छ्रवणे च कः ॥ १२ ॥ कतिभिर्वासरै रेतच्छ्रोतव्यं किं च पूजनम् ॥ कैर्मानवैः श्रुतं पूर्वं काँस्कान्कामानवाप्नुयुः ॥१३॥ सूत उवाच ॥ विष्णोरंशो मुनिर्जातस्सत्यवत्यां पराशरात् ॥ विभज्य वेदांश्चतुरश्शिष्यानध्यापयत्पुरा ॥ १४ ॥ व्रात्यानां द्विजबन्धूनां वेदेष्वनधिकारिणाम् ॥ स्त्रीणां दुर्मेधसां नॄणां धर्मज्ञानं कथं भवेत् ॥१५॥ विचार्यैतत्तु मनसा भगवान्बादरायणः ॥ पुराणसंहितां दध्यौ तेषां धर्मविधित्सया ॥ ॥ १६ ॥ अष्टादश पुराणानि स कृत्वा भगवान्मुनिः ॥ मामेवाध्यापयामास भारताख्यानमेव च ॥ १७ ॥ देवीभागवतं तत्र पुराणं भोगमोक्षदम् ॥ स्वयं तु श्रावयामास जनमेजयभूपतिम् ॥ १८ ॥ पूर्वमस्य पिता राजा परीक्षित्तक्षकाहिना ॥ संदष्टस्तस्य संशुद्ध्यै राज्ञा भागवतं श्रुतम् ॥ १९ ॥ नवभिर्दिवसैः श्रीमद्वेदव्यासमुखाम्बुजात् ॥ त्रैलोक्यमातरं देवीं पूजयित्वा विधानतः ॥ २० ॥

प्रकार ज्ञान प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ भगवान् व्यासजी यह वार्त्ता मनमें विचारकर उनके धर्म जाननेके निमित्त पुराणसंहिताका विचार करते हुए ॥ १६ ॥ वह भगवान् मुनि अठारह पुराणोंको निर्माण करके मुझे भारतका आख्यान पढाते हुए ॥ १७ ॥ उसमें देवीभागवत पुराण भोग और मोक्षका देनेवाला है इसको उन्होंने स्वयं जन्मेजय राजाको श्रवण कराया ॥ १८ ॥ पूर्वमें जब इनके पिता परीक्षित तक्षक सर्पके काटनेसे मृतक होगये थे उसकी शुद्धिके निमित्त ॥ १९ ॥ व्यासजीके मुखसे कथा श्रवणकर नौ दिनतक त्रिलोकको माता देवीका विधिसे पूजन करता हुआ ॥ २० ॥

इस नवाहयज्ञके पूर्ण होनेसे राजापरीक्षित दिव्यरूपधारी होकर उसी समय साकेतलोकको चले गये ॥ २१ ॥ इस प्रकार राजा जन्मेजय पिताकी दिव्यगति देखकर व्यासमुनिकी पूजाकर फिर भी कहने लगे ॥ २२ ॥ अठारह पुराणोंमें यह देवीभागवत पुराण सर्वश्रेष्ठ, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका देनेवाला है ॥ २३ ॥ जो सदा भक्तिसे देवीभागवतकी कथा श्रवण करते हैं उनको सिद्धि दूर नहीं है,इस कारण मनुष्योंको सदा श्रवण करना चाहिये ॥ २४ ॥ आधे दिन चौथाई दिन मुहूर्तभर वा क्षणमात्रको भी जो भक्तिसे कथा श्रवण करते हैं उनकी कभी दुर्गति नहीं होती है ॥ २५ ॥ सब यज्ञ तीर्थ और सब दानोंका जो फल है वह

नवाह यज्ञे सम्पूर्णे परीक्षिदपि भूपतिः॥दिव्यरूपधरो देव्यास्सालोक्यं तत्क्षणादगात् ॥२१॥ पितुर्दिव्यां गतिं राजा विलोक्य जनमेजयः ॥ व्यासं मुनिं समभ्यर्च्य परां मुदमवाप ह ॥ २२ ॥ अष्टादशपुराणानां मध्ये सर्वोत्तमं परम् ॥ देवीभागवतं नाम धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥ २३ ॥ ये शृण्वंति सदा भक्त्या देव्या भागवती कथाम् ॥ तेषां सिद्धिर्न दूरस्था तस्मात्सेव्या सदा नृभिः ॥ २४ ॥ दिनमर्द्धं तदर्द्धं वा मुहूर्तं क्षणमेव वा ॥ ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुर्गतिः क्वचित् ॥ २५ ॥ सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं लभते नरः ॥ २६॥ कृतादौ बहवो धर्माः कलौ धर्मस्तु केवलम् ॥ पुराणश्रवणादन्यो विद्यते नापरो नृणाम् ॥ २७ ॥ धर्माचारविहीनानां कलावल्पायुषां नृणाम् ॥ व्यासो हिताय विदधे पुराणाख्यं सुधारसम् ॥२८॥ सुधां पिबन्नेक एव नरः स्यादजरामरः ॥ देव्याः कथामृतं कुर्यात्कुलमेवाजरामरम् ॥ २९ ॥ मासानां नियमो नात्र दिनानां नियमोऽपि न ॥ सदा सेव्यं सदा सेव्यं देवीभागवतं नरैः ॥ ३० ॥ आश्विने मधुमासे वा तपोमासे शुचौ तथा ॥चतुर्षु नवरात्रेषु विशेषात्फलदायकम् ॥ ३१ ॥

एकही वार पुराणके श्रवण करनेसे मिलता है ॥ २६ ॥ सतयुगादिमें तो बहुत धर्म थे परन्तु कलियुगमें केवल पुराण श्रवण करनेके समान कोई धर्म नहीं है ॥ २७ ॥ धर्म आचारसे हीन कलियुगमें अल्पायु मनुष्योंके निमित्त व्यासजीने यह पुराणरूपी अमृतरस विधान किया है ॥ २८ ॥ एकही इस अमृतके पानसे मनुष्य अजर अमर हो जाता है. देवीके कथामृत पानसे कुलभी अजरामर हो जाता है ॥ २९ ॥ इसमें महीने और दिनका नियम नहीं है. देवीभागवतका मनुष्योंको सदा सेवन करना चाहिये ॥३०॥ वा आश्विन, चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ,वा चारों नवरात्रोंमें सुननेसे विशेष फलका देनेवाला है॥ ३१ ॥

इस कारण यह नवाहयज्ञ सम्पूर्ण पुण्यकार्योंमें अधिक फल देनेसे मनुष्योंको पुण्यदायक है ॥ ३२ ॥ जो खोटे हृदयवाले पापरत विमूढ हैं मित्रद्रोही और मित्रोंकी निन्दा करनेवाले हैं हिंसामें रत नास्तिकमार्गमें लगे हुये हैं वे भी कलियुगमें नवाहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ जो पराया धन और पराई स्त्रियोंके हरण करनेसे लुब्ध हो रहे हैं जो मनुष्य कलिके भारी पापके भागी हैं जो गोदेवताब्राह्मणोंकी भक्तिसे हीन हैं वेभी नवाहयज्ञसे शुद्ध होजाते हैं ॥ ३४ ॥ उग्रतप व्रत तीर्थोंके सेवन अनेकदान नियम यज्ञ अग्निहोत्रयज्ञसे जो फल मिलता है, मनुष्योंको वह फल नवाह यज्ञसे मिलता है ॥ ३५ ॥ गंगा, गया, काशी, नैमिषारण्य, पुष्कर, बद्रीवन इस प्रकार शीघ्र पवित्र नहीं कर सकते जिस प्रकार हे ब्राह्मणो ! यह देवीयज्ञ शीघ्र पवित्र करता है ॥ ३६ ॥ इस कारण यह देवी

अतो नवाहयज्ञोऽयं सर्वस्मात्पुण्यकर्मणः ॥ फलाधिकप्रदानेन प्रोक्तः पुण्यप्रदो नृणाम् ॥ ३२ ॥ ये दुर्हृदः पापरता विमूढा मित्रद्रुहो वेदविनिंदकाश्च ॥ हिंसारता नास्तिकमार्गसक्ता नवाहयज्ञेन पुनंति ते कलौ ॥ ३३ ॥ परस्वदाराहरणेऽतिलुब्धा ये वै नराः कल्मषभारभाजः ॥ गोदेवताब्राह्मणभक्तहीना नवाहयज्ञेन भवंति शुद्धाः ॥ ३४ ॥ तपोभिरुग्रैर्व्रततीर्थसेवनैर्दानैरनेकैर्नियमैर्मखैश्च ॥ हुतैर्जपैर्यच्च फलं न लभ्यते नवाहयज्ञेन तदाप्यते नृणाम् ॥ ३५ ॥ तथा न गंगा न गया न काशी न नैमिषं नो मथुरा न पुष्करम् ॥ पुनाति सद्यो बदरीवनं नो यथा हि देवीमख एष विप्राः ॥ ३६ ॥ अतो भागवतं देव्याः पुराणं परतः परम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणामुत्तमं साधनं मतम् ॥ ३७ ॥ आश्विनस्य सिते पक्षे कन्या राशिगते रवौ ॥ महाष्टम्यां समभ्यर्च्य हैमसिंहासनस्थितम् ॥३८॥ देवीप्रीतिप्रदं भक्त्या श्रीभागवतपुस्तकम् ॥ दद्याद्विप्राय योग्याय स देव्याः पदवीं लभेत् ॥ ३९ ॥ देवीभागवतस्यापि श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा ॥ भक्त्या यश्च पठेन्नित्यं स देव्याः प्रीतिभाग्भवेत् ॥ ४० ॥ उपसर्गभयं घोरं महामारीसमुद्भवम् ॥ उत्पातानखिलांश्चापि हंति श्रवण मात्रतः ॥ ४१ ॥

भागवत सब पुराणोंसे श्रेष्ठ है, और धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका उत्तम साधन है ॥ ३७ ॥ आश्विन शुक्लपक्षमें जब सूर्य कन्याराशिमें प्राप्त हो, महाअष्टमीमें पूजन करके सुवर्णके सिंहासन पर देवीकी प्रीतिके निमित्त "श्रीदेवीभागवत" पुण्य ग्रंथको योग्य ब्राह्मणके निमित्त देनेसे वह देवीकी पदवीको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ देवीभागवतका एक वा आधाश्लोक, भी जो भक्तिसे पाठ करता है वह देवीका प्रीतिपात्र होता है ॥ ४० ॥ महामारीके बड़े घोर आक्रमण और सम्पूर्ण उत्पात इसके श्रवणमात्रसे शान्त हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

जो बालग्रहकी पीडा और प्रेतका किया भय है,वह इस देवीभागवतके श्रवणमात्रसे दूर हो जाता है ॥ ४२ ॥ जो देवीभागवत भक्तिसे कहते वा सुनते हैं उनको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥४३॥ इसीके श्रवण करनेसे प्रसेनकी खोजको बहुत दिनके गये भगवान वासुदेवकी चिन्तासे व्याकुल वसुदेव जीको प्रियपुत्र कृष्णका शीघ्र दर्शन हुआ और वे प्रसन्न हुए ॥ ४४ ॥ जो भक्तिसे इस श्रीभागवतकी कथाको श्रवण करते हैं उन भक्तिसे पढनेवालोंको भी भक्ति मुक्ति प्राप्त होती है ॥४५॥ अपुत्रके पुत्र होता दरिद्री धनी होता और रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है, इस प्रकारका यह भागवतरूपी अमृत है ॥ ४६ ॥ वंध्या काकवन्ध्या और मृतवत्साभी जो स्त्री होती हैं देवी भागवतके श्रवणमात्रसे चिरायुष पुत्रको प्राप्त होती हैं ॥ ४७ ॥ जिसके घरमें नित्य श्रीभागवतकी

बालग्रहकृतं यच्च भूतप्रेतकृतं भयम् ॥ देवीभागवतस्यास्य श्रवणाद्याति दूरतः ॥४२॥ यस्तु भागवतं देव्याः पठेद्भक्त्या शृणोति वा ॥ धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च लभ्यते नरः ॥ ४३ ॥ श्रवणाद्वसुदेवोऽस्य प्रसेनान्वेषणे गतम् ॥ चिरायितं प्रियं पुत्रं कृष्णं लब्ध्वा मुमोद ह ॥ ४४ ॥ य एतां शृणुयाद्भक्त्या श्रीमद्भागवतीं कथाम्॥ भुक्तिं मुक्तिं स लभते भक्त्या यश्च पठेदिमाम् ॥४५॥ अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान्भवेत् ॥ रोगी रोगात्प्रमुच्येत श्रुत्वा भागवतामृतम् ॥ ४६ ॥ वंध्या वा काकवंध्या वा मृतवत्सा च यांगना ॥ देवीभागवतं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं चिरायुषम्॥४७॥पूजितं यद्गृहे नित्यं श्रीभागवतपुस्तकम्॥तद् गृहं तीर्थभूतं च वसतां पापनाशकम् ॥४८॥ अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां नवम्यां भक्तिसंयुतः ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि स सिद्धिं लभते पराम्॥४९॥पठन्द्विजो वेदविदग्रणीर्भवेद्बाहुप्रजातो धरणीपतिः स्यात् ॥ वैश्यः पठन्वित्तसमृद्धिमेति शूद्रोऽपि शृण्वन्स्वकुलोत्तमस्स्यात् ॥५० ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः॥१॥ऋषय ऊचुः॥वसुदेवो महाभागःकथं पुत्रमवाप्तवान्॥प्रसेनःकुत्र कृष्णेन भ्रमताऽन्वेषितःकथम्॥१॥

पुस्तक पूजित होती है वह घर तीर्थरूप है निवास करनेवालोंका पाप नाश करता है ॥ ४८ ॥ अष्टमी, चौदश नवमीको भक्तिपूर्वक जो पढता सुनता है वह परमसिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ ब्राह्मण पढकर वेदविदोंमें अग्रणी होता है क्षत्रिय धरणीपति, वैश्य धनसे समृद्धिमान् और शूद्र श्रवण करनेसे कुलमें उत्तम होता है ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे मिश्रसुखानन्दसूनु भारतधर्ममहामण्डल महोपदेशकसनातनधर्मोपदेष्टृसभाया मन्त्री, यजुर्वेद भाष्यकार वाल्मीक्यादि-ग्रन्थानामनुवादकपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां देवीभागवतमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ऋषि बोले महाभाग वसुदेवजीको कैसे पुत्रकी प्राप्ति हुई प्रसेन कौन था जिसकोश्रीकृष्णने ढूँढा ॥ १ ॥

और किस विधिसे किससे देवीभागवत सुनी गई, कैसे वसुदेवजीने सुनी हे बुद्धिमान् सूतजी ! आप यह सब कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले, एक भोजवंशोत्पन्न सत्राजित द्वारकापुरीमें निवास करता था, वह सूर्यकी आराधनाकरनेसे भास्करका भक्त और सखा था ॥ ३ ॥ कुछदिनोंके उपरान्त सूर्य प्रसन्न हुए उसकी भक्ति और नम्रतासे अपने लोकका दर्शन कराया ॥४॥ और उसको प्रसन्न होकर सूर्यदेवने स्यमंतकमणि दी. वह उसको कण्ठमें धारणकर द्वारकामें आया ॥५॥ उसको तेजसे पूर्ण देखकर द्वारकावासियोंने सूर्यही जाना और सुधर्मासभामें बैठे हुए श्रीकृष्णसे आकर उन्होंने कहा ॥ ६ ॥ आपके दर्शनको सूर्यदेव आते हैं यह वचन सुनकर श्रीकृष्ण हँसकर बोले ॥७॥ भो बालो ! यह सविता नहीं है, किन्तु सत्राजित मणिसे प्रज्वलित हो रहा है प्रकाशमान सूर्यकी दीहुई

विधिनाकेन कस्माच्च देवीभागवतं श्रुतम् ॥वसुदेवेन सुमते वद सूत कथामिमाम् ॥२॥ सूत उवाच ॥ सत्राजिद्भोजवंशीयो द्वारवत्यांसुखं वसन् ॥ सूर्यस्याराधने यत्तो भक्तश्च परमस्सखा ॥ ३ ॥ अथ कालेन कियता प्रसन्नस्सविताऽभवत् ॥ स्वलोकं दर्शयामास तद्भक्त्या प्रणयेन च ॥ ४ ॥ तस्मै प्रीतश्च भगवान्स्यमंतकमणिं ददौ ॥ स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे द्वारकामाजगामह ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तं तेजसा भ्रांता मत्वाऽऽदित्यं पुरौकसः ॥ कृष्णमूचुस्समभ्येत्य सुधर्मायामवस्थितम् ॥ ६ ॥ एष आयाति सविता दिदृक्षुस्त्वां जगत्पते ॥ श्रुत्वा कृष्णस्तु तद्वाचं प्रहस्योवाच संसदि ॥ ७ ॥ सविता नैष भो बालाः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ स्यमन्तकेन चायाति भास्वद्दत्तेन भास्वता ॥ ८ ॥ अथ विप्रान्समाहूय स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ प्रावेशयत्समभ्यर्च्य सत्राजित्स्वगृहे मणिम् ॥ ९ ॥ न तत्र मारी दुर्भिक्षं नोपसर्गभयं क्वचित् ॥ यत्रास्ते स मणिर्नित्यमष्टभारसुवर्णदः ॥ १० ॥ अथ सत्राजितो भ्राता प्रसेनो नाम कर्हिचित् ॥ कण्ठे बद्ध्वा मणिं सद्यो हयमारुह्य सैंधवम् ॥ ११ ॥ मृगयार्थं वनं यातस्तमद्राक्षीन्मृगाधिपः ॥ प्रसेनं सहयं हत्वा सिंहो जग्राह तं मणिम् ॥ १२ ॥

स्यमन्तकमणि लिये आता है ॥८॥ फिर ब्राह्मणोंको बुलाय स्वस्तिवाचनपूर्वक अपने घरमें उस मणिको सत्राजित प्रवेश कराता हुआ ॥ ९ ॥ वहां मारी दुर्भिक्ष और उपसर्गका भय नहीं होता जहां यह प्रतिदिन आठभार सुवर्णकी देनेवाली मणि रहती है ॥१० ॥ तब एक समय सत्राजित का भाई प्रसेन उस मणिको कण्ठमें बांध सिन्धदेशीय घोडेपर चढकर ॥ ११ ॥ मृगयाके निमित्त वनको गया उसे एक सिंहने देखा, घोडे सहित प्रसेनको मारकर सिंहने वह मणि ग्रहण की ॥ १२ ॥

वहां जाम्बवान ऋक्षराजने उस मणिधारी सिंहको देखकर बिलके द्वारपर उसे मारकर उस मणिको ग्रहण किया ॥ १३ ॥ उस मणिको अपने पुत्रकी क्रीडाके निमित्त उसने दिया उस तेजस्विनी मणिको प्राप्त होकर बालकभी खेल करने लगा ॥ १४ ॥ इधर प्रसेनके न आनेसे सत्राजित बडा दुःखी हुआ कहने लगा कि, मणिके लोभसे न जाने किसने भ्राताको मार डाला ॥१५॥ कुछ दिनोंसे लोगोंके मुखसे पुरमें यह किंवदन्ती सुनी जाने लगी कि मणिकी इच्छासे कृष्णनेही प्रसेनको मार डाला ॥ १६ ॥ इसको कृष्णने भी सुना और अपनेमें कलंक लगा जानकर इसे दूर करनेको लोकोंके सहित उसके खोजको गये ॥ १७ ॥ जाकर उन्होंने वनमें प्रसेनको मरा हुआ देखा फिर वह रुधिरकी बूदोंकी छींटोंकी पहँचानसे सिंहके निकटतक पहुँच गये ॥ १८ ॥ फिर बिलके द्वारे सिंहको मरा हुआ

जाम्बवानृक्षराजोऽथ दृष्ट्वा मणिधरं हरिम् ॥ हत्वा च तं बिलद्वारि मणिं जग्राह वीर्यवान् ॥ १३ ॥ स तं मणिं स्वपुत्राय क्रीडनार्थं मदात्प्रभुः ॥ अथ चिक्रीड बालोऽपि मणिं संप्राप्य भास्वरम् ॥ १४ ॥ प्रसेनेऽनागते चाथ सत्राजित्पर्यतप्यत ॥ न जाने केन निहतः प्रसेनो मणिमिच्छता ॥ १५ ॥ अथ लोकमुखोद्गीर्णा किंवदन्ती पुरेऽभवत् ॥ कृष्णेन निहतो नूनं प्रसेनो मणिलिप्सुना ॥ १६ ॥ स तं शुश्राव कृष्णोऽपि दुर्यशो लिप्तमात्मनि ॥ मार्ष्टुं तत्तस्य पदवीं पुरौकोभिस्सहागमत् ॥ १७ गत्वा स विपिनेऽपश्यत्प्रसेनं हरिणा हतम् ॥ ययौ मृगेन्द्रमन्विष्यन्नसृग्बिन्दुंकिताध्वना ॥ १८ ॥ अथ कृष्णो हतं सिंहं बिलद्वारि विलोक्य च ॥ उवाच भगवान्वाचं कृपया पुरवासिनः ॥ १९ ॥ तिष्ठध्वं यूयमत्रैव यावदागमनं मम ॥ प्रविशामि बिलं त्वेतन्मणिहारकलब्धये ॥ २० ॥ तथेत्युक्त्वा तु ते तस्थुस्तत्रैव द्वारकौकसः ॥ जगामांतर्बिलं कृष्णो यत्र जाम्बवतो गृहम् ॥ २१ ॥ ऋक्षराजसुतं दृष्ट्वा कृष्णो मणिधरं तदा ॥ हर्तुमैच्छन्मणिं तावद्धात्री चुक्रोश भीतवत् ॥ २२ ॥ श्रुत्वा धात्रीरवं सद्यः समागत्यर्क्षराट् तदा ॥ युयुधे स्वामिना साकमविश्रममहर्निशम् ॥ २३ ॥

देखकर कृपाकर भगवान् पुरवासियोंसे कहने लगे ॥ १९ ॥ जबतक मैं यहाँ न आऊं तबतक तुम यहीं स्थित रहो मैं उस मणिके प्राप्त करनेको बिलमें प्रवेश करता हूं ॥ २० ॥ ऐसा कहनेसे द्वारकावासी वहीं स्थित हो रहे, और श्रीकृष्ण बिलके भीतर प्रविष्ट हुए जहाँ जाम्बवान्का घर था ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णने मणि धारण किये जाम्बवन्तके पुत्रको देखा और ज्योंही मणि लेनेकी इच्छा की कि धाई डरकर चिल्लाई ॥ २२ ॥ धात्रीका यह शब्द श्रवण करतेही ऋक्षपति आकर श्रीकृष्णके साथ दिन रात विश्राम किये विना युद्ध करने लगा ॥ २३ ॥

इस प्रकार २७ दिनतक उन दोनोंका महायुद्ध हुआ और द्वारकावासी द्वारेपर खडे रहे ॥ २४ ॥ और द्वारकावासी बारह दिनके उपरान्त भयको प्राप्त होकर अपने स्थानको चले गये वहाँ उन्होंने सब वृत्तान्त आदिसे कथन किया ॥ २५ ॥ तब सब व्याकुल होकर सत्राजितको कोसने लगे और महाभाग वसुदेवजीने भी यह पुत्रकी वार्त्ता सुनकर ॥२६॥ परम शोकसे परिवारके सहित मोहित हो गये और अनेक प्रकारसे विचारने लगे कि हमारा मंगल किस प्रकारसे होगा ॥ २७ ॥ उस समय देवर्षि ब्रह्मलोकसे आये वसुदेवजीने उठकर प्रणाम कर इनका पूजन किया ॥ २८ ॥ उस समय नारदजी वसुदेवजीसे पूंछने लगे हे यदुश्रेष्ठ ! कहिये इस समय आप किस विचारमें हो ॥ २९ ॥ वसुदेव बोले हमारे प्रियपुत्र कृष्ण पुरवासियोंके साथ प्रसेनको ढूँढने गये और उसको

एवं त्रिनवरात्रं तु महद्युद्धमभूत्तयोः ॥ कृष्णागमं प्रतीक्षन्तस्तस्थुर्द्वारि पुरौकसः ॥ २४ ॥ द्वादशाहं ततो भीत्या प्रतिजग्मुर्निजालयम् ॥ तत्र ते कथयामासुर्वृत्तांतं सर्वमादितः ॥ २५ ॥ सत्राजितं शपंतस्ते सर्वे शोकाकुला भृशम् ॥ वसुदेवो महाभागः श्रुत्वा पुत्रस्य तां कथाम् ॥ २६ ॥ मुमोह सपरीवारस्तदा परमया शुचा ॥ चिन्तयामास बहुधा कथं श्रेयो भवेन्मम ॥ २७ ॥ अथाजगाम भगवान्देवर्षिर्ब्रह्मलोकतः ॥ उत्थाय तं प्रणम्यासौ वसुदेवोऽभ्यपूजयत् ॥ २८ ॥ नारदोऽनामयं पृष्ट्वा वसुदेवं महामतिम् ॥ प्रपच्छ च यदुश्रेष्ठ किं चिंतयसि तद्वद ॥२९॥ वसुदेव उवाच ॥ पुत्रो मे ऽतिप्रियः कृष्णः प्रसेनान्वेषणाय तु ॥ पौरैस्साकं वनं गत्वा निहतं तं तदैक्षत ॥ ३० ॥ प्रसेनघातकं दृष्ट्वा बिलद्वारे मृतं हरिम् ॥ द्वारि पौरानधिष्ठाप्य बिलांतर्गतवान्स्वयम् ॥३१॥ बहवो दिवसा याता नायात्यद्यापि मे सुतः ॥ अतश्शोचामि तद्ब्रूहि येन लप्स्ये सुतं मुने ॥३२॥ नारद उवाच ॥ पुत्रप्राप्त्यै यदुश्रेष्ठ देवीमाराधयांबिकाम् ॥ तस्या आराधनेनैव सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥३३॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवान्का हि सा देवी किंप्रभावा महेश्वरी ॥ कथमाराधनं तस्या देवर्षे कृपया वद ॥ ३४ ॥

मृतक देखा ॥ ३० ॥ बिलके द्वारे मरा हुआ सिंह देखा और पुरवासियोंको द्वारेपर बैठाकर बिलके भीतर स्वयं प्रविष्ट हुए ॥ ३१ ॥ बहुत दिन हो गये और आजतकभी हमारे पुत्र नहीं आये इससे मुझको बडा सोच है, जिससे मुझे प्राप्त हो वह उपाय आप कहिये ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले हे यदुश्रेष्ठ ! पुत्रप्राप्तिके निमित्त अम्बिका देवीकी आराधना करो उसकी अराधनासे शीघ्र कल्याण होगा ॥ ॥३३॥ वसुदेवजी बोले हे भगवन्! वह देवी कौनसी है और उसका क्या प्रभाव है हे देवर्षे! उसका किस प्रकार आराधना होता है, सो कृपाकर कहो ॥ ३४ ॥

नारदजी बोले हे महाभाग वसुदेवजी ! संक्षेपसे मुझसे सुनो विस्तारसे तो देवीका माहात्म्य कौन कह सकता है ॥ ३५ ॥ जो यह नित्या भगवती सच्चिदानंद रूपवाली है, परेसे परे जिसने यह सब जगत् व्याप्त कर रखा है ॥ ३६ ॥ जिसकी आराधनासे ब्रह्मा चराचरकी सृष्टि करते हैं, जिसकी स्तुतिसे मधु कैटभके भयसे ब्रह्माजी मुक्त हुए ॥३७॥ जिसकी कृपासे भगवान् विष्णु इस जगत्का पालन करते और जिस शक्तिकी कृपादृष्टिसे रुद्र संहार करते हैं ॥ ३८ ॥ वह संसारके बंधनका हेतु और मुक्ति देनेवालीहै वहीदेवीपरमाविद्या और सबकी ईश्वरी है ॥ ३९ ॥ नवरात्रिकेविधानसे जगदम्बिकाकापूजन करकेनौदिनपर्यंत

नारद उवाच ॥ वसुदेव महाभाग शृणु संक्षेपतो मम ॥ देव्या माहात्म्यमतुलं को वक्तुं विस्तरात्क्षमः ॥ ३५ ॥ या सा भगवती नित्या सच्चिदानन्द रूपिणी ॥ परात्परतरा देवी यया व्याप्तमिदं जगत् ॥३६॥ यदाराधनतो ब्रह्मा सृजतीदं चराचरम् ॥ यां च स्तुत्वा विनिर्मुक्तो मधुकैटभजाद्भयात् ॥३७॥ विष्णुर्यत्कृपया विश्वं बिभर्ति भगवानिदम् ॥ रुद्रस्संहरते यस्याः कृपापांगनिरीक्षणात् ॥३८॥ संसारबंधहेतुर्या सैव मुक्तिप्रदायिनी ॥ सा विद्या परमा देवी सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ ३९ ॥ नवरात्रविधानेन सम्पूज्य जगदंबिकाम् ॥ नवाहोभिः पुराणं च देव्या भागवतं शृणु ॥ ४० ॥ यस्य श्रवणमात्रेण सद्य पुत्रमवाप्स्यसि ॥ भुक्तिर्मुक्तिर्न दूरस्था पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥ ४१ ॥ इत्युक्तो नारदेनासौ वसुदेवः प्रणम्य तम् ॥ उवाच परया प्रीत्या नारदं मुनिसत्तमम् ॥ ४२ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवंस्तव वाक्येन संस्मृतं वृत्तमात्मनः॥श्रूयतां तच्च वक्ष्यामि देवीमाहात्म्यसंभवम् ॥४३॥ पुरा नभोगिरा कंसो देवक्यष्टमगर्भतः॥ ज्ञात्वाऽऽत्ममृत्युं पापो मां सभार्यां न्यरुणद्भिया ॥४४॥ कारागारेऽहमवसं देवक्या सह भार्यया ॥ जातं जातं समवधीत्पुत्रं कंसोऽपि पापकृत् ॥४५॥ षट् पुत्रा निहतास्तेन तदा शोकाकुला भृशम् ॥ अतप्यद्देवकी देवी नक्तंदिवमनिन्दिता ॥ ४६ ॥

देवीभागवत पुराण सुनो ॥ ४० ॥ जिसके श्रवणमात्रसे शीघ्रही पुत्रका दर्शन होगा इसके पढने सुननेवालोंको भक्ति मुक्ति दूर नहीं है ॥ ४१ ॥ नारदजीके ऐसा कहनेपर वसुदेवजी उनको प्रणामकर परमप्रीतिसे नारदमुनिसे बोले॥४२॥ वसुदेवजी बोले हे भगवन् ! आपके कहनेसे मुझे अपना वृत्तस्मरण हुआ सुनिये देवीके माहात्म्यकी बात आपसे कहता हूं ॥ ४३ ॥ पहले कंसने इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर कि, देवकीका आठवाँ गर्भ तेरी मृत्यु करेगा मुझे भार्यासहित भयसे रोक रक्खा ॥४४॥ तब देवकीभार्याके सहित मैं कारागारमें रहने लगा पापात्मा कंसने मेरे प्रत्येक उत्पन्न हुये पुत्रको तत्कालही वध किया॥४५॥ जब उसने छः

पुत्र मारे तब मैं अत्यन्त शोकाकुल हुआ और देवकी देवी भी रातदिन तप्यमान होने लगी ॥ ४६ ॥ तब मैंने गर्गमुनिको बुलाय प्रणाम कर पूजन किया और देवकीका दुःख कहकर पुत्रकी कामनासे वचन कहे ॥४७॥ हे भगवन् करुणासागर ! आप यादवोंके गुरु हैं आप वह साधन कहिये जिससे आयुष्मान् पुत्रकी प्राप्ति हो ॥४८॥ तब दयानिधिगर्गजी प्रसन्न होकर मुझसे कहने लगे हे महाभाग वसुदेवजी ! उस साधनको सुनिये ॥४९॥ जो दुर्गा भगवती भक्तोंकी दुर्गति दूर करती है उस कल्याणीकी आराधना करो शीघ्रही मनोरथकी प्राप्ति होगी ॥ ५० ॥ जिसकी आराधनासे सबने सब कामनाओंकी प्राप्ति की है. दुर्गापूजा करनेवालोंको लोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ ५१ ॥ यह वचन सुनकर मैं भार्यासहित प्रसन्न हो परम भक्तिसे हाथ जोड मुनिसे बोला

तदाऽहं गर्गमाहूय मुनिं नत्वाऽभिपूज्य च ॥ निवेद्य देवकीदुःखमवोचं पुत्रकाम्यया ॥४७॥ भगवन्करुणासिन्धो यादवानां गुरुर्भवान् ॥
आयुष्मत्पुत्रसंप्राप्तिसाधनं वद मे मुने ॥४८॥ ततो गर्गः प्रसन्नात्मा मामुवाच दयानिधिः ॥ गर्ग उवाच ॥ वसुदेव महाभाग शृणु तत्सा
धनम्परम् ॥४९॥ या सा भगवती दुर्गा भक्तदुर्गतिहारिणी ॥ तामाराधय कल्याणीं सद्य श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥ ५० ॥ यदा राधनतस्सर्वे
सर्वान्कामानवाप्नुयुः ॥ न किंचिद्दुर्लभं लोके दुर्गार्चनवतां नृणाम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्तोऽहं मुदा युक्तः सभार्यो मुनिपुंगवम् ॥ प्रणम्य परया
भक्त्या प्रावोचं विहितांजलिः ॥ ५२ ॥ वसुदेव उवाच ॥ यद्यस्ति भगवन्प्रीतिर्मयि ते करुणानिधे ॥ तदा गुरो मदर्थं त्वं समाराधय
चण्डिकाम् ॥ ५३ ॥ निरुद्धः कंसगेहेऽहं न किंचित्कर्तुमुत्सहे ॥ अतस्त्वमेव दुखाब्धेर्मामुद्धर महामते ॥ ५४ ॥ इत्युक्तस्तु मया प्रीतः
प्रोवाच मुनिपुंगवः ॥ वसुदेव तव प्रीत्या करिष्यामि हितं तव ॥ ५५ ॥ अथ गर्गमुनिः प्रीत्या मया संप्रार्थितोऽगमत् ॥ आरिराधयिषुर्दुर्गां
विंध्याद्रिं ब्राह्मणैस्सह ॥ ५६ ॥ तत्र गत्वा जगद्धात्रीं भक्ताभीष्टप्रदायिनीम् ॥ आराधयामास मुनिर्जपपाठपरायणः ॥५७॥

॥ ५२ ॥ वसुदेवजी बोले हे भगवन् करुणासागर ! यदि आपकी हमपर प्रीति है तो हे गुरु ! मेरे निमित्त आप भगवतीका आराधन कीजिये ॥ ५३ ॥ कंसके घरमें निरुद्ध हुआ मैं तो कुछ करही नहीं सकता हे महामते! इस कारण आपही दुःख सागरसे मेरा उद्धार करो ॥५४॥ यह सुन प्रसन्न हो मुनिराज बोले हे वसुदेवजी ! तुम्हारी प्रीतिके कारण मैं तुम्हारा हित करूंगा ॥५५॥ तब गर्गमुनि मेरी प्रार्थनासे प्रसन्न हो घर जाय विन्ध्याचलमें ब्राह्मणोंको साथले दुर्गाकी आराधना करनेको गये ॥५६॥ वहां जाय उन जगत्की माता भक्तोंके अभीष्ट देनेवाली भगवतीको जप और पाठसे आराधना करने लगे ॥५७॥

तब नियम समाप्त होनेपर अशरीरिणी वाणी हुई हे मुनि ! मैं प्रसन्न हूं तुम्हारे कार्यकी सिद्धि होगी ॥५८॥ भूमिके भार दूर करनेको मैंने भगवान्से प्रेरणाकी है वह वसुदेवसे देवकीमें अपने अंशसे अवतार लेंगे ॥ ५९ ॥ वसुदेवजी कंसके भयसे उस बालकको लेकर शीघ्र गोकुलमें नन्दरायके घर प्राप्त करेंगे ॥ ६० ॥ और वहांसे यशोदाकी कन्याको अपने घरमें लाकर कंसराजाको देंगे कंस उसे मारनेके निमित्त पृथ्वीमें पटकेगा ॥ ६१ ॥ वह उसके हाथसे छूटकर दिव्य शरीर धारण किये मेरे अंशसे युक्त विन्ध्याचलमें जगत्का हित करेगी ॥६२॥ वह उसके वचन सुन जगदम्बाको प्रणाम करके गर्गमुनि प्रसन्न हो मथुरामें आये॥६३॥

ततस्समाप्ते नियमे वागुवाचाशरीरिणी॥ प्रसन्नाऽहं मुने कार्यसिद्धिस्तवभविष्यति ॥५८॥ भूभारहरणार्थाय मया संप्रार्थितो हरिः ॥ वसुदेवस्य देवक्यां स्वांशेनावतरिष्यति ॥ ५९ ॥ कंसभीत्या तमादाय बालमानकदुंदुभिः ॥ प्रापयिष्यति सद्यस्तु गोकुले नन्दवेश्मनि ॥ ६० ॥ यशोदातनयां नीत्वा स्वगृहे कंसभूभुजे ॥ दास्यत्यथ च तां हंतुं कंस आक्षेप्स्यति क्षितौ ॥६१॥ सा तद्धस्ताद्विनिर्गत्य सद्यो दिव्यवपुर्द्धरा मदंशभूता विंध्याद्रौ करिष्यति जगद्धितम् ॥६२॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य जगदंबिकाम् ॥ गर्गो मुनिः प्रसन्नात्मा मथुरामागमत्पुरीम् ॥ ६३ ॥ वरदानं महादेव्या गर्गाचार्यमुखादहम् ॥ श्रुत्वा सभार्यस्संप्रीतः परां मुदमथागमम् ॥ ६४ ॥ तदारभ्य परं जाने देवीमाहात्म्य मुत्तमम् ॥ अधुनाऽपि हि देवर्षे श्रुतं तव मुखांबुजात् ॥६५॥ अतो भागवतं देव्यास्त्वमेव श्रावय प्रभो ॥ मद्भाग्यादेव देवर्षे संप्राप्तोऽसि दयानिधे ॥ ६६ ॥ वसुदेववचः श्रुत्वा नारदः प्रीतमानसः ॥ सुदिने शुभनक्षत्रे कथारंभमथा करोत् ॥ ६७ ॥ कथाविघ्नविघातार्थे द्विजा जेपुर्नवाक्षरम् ॥ मार्कण्डेयपुराणोक्तं पेठुर्देव्याः स्तवं तथा ॥ ६८ ॥ प्रथमस्कंधमारभ्य श्रीनारद मुखोद्गतम् ॥ शुश्राव वसुदेवश्च भक्त्या भागवतामृतम् ॥ ६९ ॥

गर्गाचार्यके मुखसे मैंने महादेवजीका वरदान सुनकर भार्यासहित परम आनंद पाया ॥ ६४ ॥ उस दिनसे मैं देवीका माहात्म्य विशेषरूपसे जानता हूं हे देवर्षे ! अब आपके मुखसे भी सुना है॥६५॥ इस कारण देवी भागवत आपही श्रवण कराइये हे देवर्षे ! आप हमारे भाग्यसे प्राप्त हुये हो ॥६६॥ वसुदेवके वचन सुन नारदजी प्रसन्नमन होकर अच्छे दिन और नक्षत्रमें कथाका आरंभ करते हुये ॥ ६७ ॥ और कथाके विघ्न निवारण के निमित्त पुरवासी ब्राह्मणोंसे नवाक्षर मंत्र और मार्कण्डेय पुराणोक्त देवीका स्तव पाठ कराते हुये॥६८॥ प्रथम स्कंधसे लेकर श्रीनारदके मुखसे निर्गत वसुदेवजी प्रेमसे श्रीमद्भागवत श्रवण करते हुए॥६९॥

नौवें दिनमें कथाकी पूर्त्तिमें ग्रन्थ और वाचकको प्रसन्नहो महामना वसुदेवजी पूजन करते हुए ॥७०॥ उधर कृष्ण और जामवन्तके युद्धमें कृष्णके मुष्टिपातसे जाम्बवन्तका अंग शिथिल हो गया ॥ ७१ ॥ तब वह भी स्मृतिको प्राप्त हो भगवान्को प्रणामकर अपने अपराध क्षमा कराता हुआ बोला ॥७२॥ हे भगवन् ! मैंने जाना कि आपने क्रोधसे सागरका क्षोभ किया और लंकामें प्राप्त होकर अनुचरों सहित रावणका वध किया ॥ ७३ ॥ हे कृष्ण ! आप वही हो सो अब मेरी दुरात्माको क्षमा करो कहिये मैं आपका क्या किय करूं आपके भृत्यपनमें स्थित हूं ॥ ७४ ॥ जाम्बवन्तके वचन श्रवणकर कृष्ण

नवमेऽह्नि कथापूर्तौ पुस्तकं वाचकं तथा ॥ प्रसन्नः पूजयामास वसुदेवो महामनाः ॥ ७० ॥ अथ तत्र बिलस्यांतः कृष्णजांबवतोर्मृधे ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातश्लथांगो जांबवानभूत् ॥ ७१ ॥ अथागतस्मृतिस्सोऽपि भागवतं प्रणम्य च ॥ उवाच परया भक्त्या स्वापराधं क्षमापयन् ॥ ७२ ॥ ज्ञातोऽसि रघुवर्यस्त्वं यत्क्रोधात्सरितां पतिः ॥ क्षोभं जगाम लंका च रावणः सानुगो हतः ॥७३॥ स एवासि भवान्कृष्ण मद्दौरात्म्यं क्षमस्व भोः ॥ ब्रूहि यत्करणीयं मे भृत्योऽहं तव सर्वथा ॥७४॥ श्रुत्वा जांबवतो वाचमब्रवीज्जगदीश्वरः ॥ मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ॥ ७५ ॥ ऋक्षराजस्ततः प्रीत्या कन्यां जाम्बवतीं निजाम् ॥ ददौ कृष्णाय संपूज्य स्यमंतकमणिं तथा ॥ ७६ ॥ स तां पत्नीं समादाय मणिं कंठे तथा दधत् ॥ अभिमंत्र्यर्क्ष राजं च प्रतस्थे द्वारकां प्रति ॥ ७७ ॥ कथासमाप्तिदिवसे वसुदेव उदारधीः ब्राह्मणान्भोजयामास दक्षिणाभिरतोषयत् ॥ ७८ ॥ आशीर्वाचं प्रयुंजाना द्विजा यत्समये हरिः ॥ आजगाम क्षणे तस्मिन्पत्न्या सह मणिं दधत् ॥ ७९ ॥ भार्यया सहितं कृष्णं वसुदेवपुरोगमाः ॥ दृष्ट्वा हर्षाश्रुपूर्णाक्षास्समवापुः परां मुदम् ॥ ८० ॥ देवर्षिर्नारदश्चाथ कृष्णागमनहर्षितः ॥ आमंत्र्य वसुदेवं च कृष्णं ब्रह्मसभां ययौ ॥ ८१ ॥

बोले हे ऋक्षराज ! मैं इस मणिके कारण बिलमें प्राप्त हुआ हूं ॥ ७५ ॥ तब ऋक्षराजने प्रसन्न होकर अपनी जाम्बवती कन्या और स्यमंतकमणि कृष्णका पूजनकर प्रदान की ॥७६॥ वह उस पत्नीको लेकर कंठमें मणि धारण किये ऋक्षराजसे पूँछकर द्वारकाको चले ॥ ७७ ॥ कथा समाप्तिके दिन उदारमना वसुदेवजी ब्राह्मणोंको भोजन कराय दक्षिणा बाँट रहे थे ॥ ७८ ॥ और ब्राह्मण आशीर्वाद दे रहे थे उसी समय भगवान् भार्या सहित मणि धारण किये प्राप्त हुए ॥ ७९ ॥ वसुदेव आदि भार्यासहित श्रीकृष्णको देखकर हर्षसे अश्रुपूर्ण नेत्र हो परमानंदको प्राप्त हुये ॥ ८० ॥ और देवर्षि नारदजी कृष्णके आगमनसे प्रसन्न

हो वासुदेव और कृष्णसे पूँछकर ब्रह्माकी सभाको गये ॥ ८१ ॥ यह भगवान् का चरित्र अपयशका दूर करने वाला है जो मनुष्य पवित्रमन और भक्तिसे इसको पढ़ते हैं सुनते हैं वह सुखसे पूर्ण सदा जगत्में सिद्ध कामना युक्त होते हैं और अंतमें मुक्ति मार्गको प्राप्त होते हैं ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे मानसखण्डे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ सूतजी कहने लगे हे ऋषियो ! दूसरे इतिहासको भी श्रवण करो जिसमें देवीभागवतका माहात्म्य कीर्त्तन किया गया है ॥ १ ॥ एक समय लोपामुद्राके पति अगस्त्यजी कुमारके पास जाकर पूजनकर अनेक कथा पूछते हुए ॥ २ ॥ भगवान्

हरिचरितमिदं यत्कीर्तितंदुर्यशोघ्नं पठति विमलभक्त्या शुद्धचित्तः शृणोति ॥ सभवति सुखपूर्णः सर्वदा सिद्धकामो जगति च वपुषोऽन्ते मुक्तिमार्गं लभेच्च ॥८२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीदेवीभागवतमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ अथेतिहासम न्यच्च शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥ देवीभागवतस्यास्य माहात्म्यं यत्र गीयते ॥ १ ॥ एकदा कुंभयोनिस्तु लोपामुद्रापतिर्मुनिः ॥ गत्वा कुमारम भ्यर्च्यपप्रच्छ विविधाः कथाः ॥२॥ स तस्मै भगवान्स्कन्दः कथयामास भूरिशः ॥ दान तीर्थव्रतादीनां माहात्म्योपचिताः कथा ॥ ३ ॥ वाराणस्याश्च माहात्म्यं मणिकर्णीभवं तथा ॥ गंगायाश्चापि तीर्थानां वर्णितं बहु विस्तरम् ॥ ४ ॥ श्रुत्वाऽथ स मुनिः प्रीतः कुमारं भूरिवर्चसम् ॥ पुनः पप्रच्छ लोकानां हितार्थं कुंभसंभवः ॥५॥ अगस्त्य उवाच ॥ भगवंस्तारकाराते देवीभागवतस्य तु ॥ माहात्म्यं श्रवणे तस्य विधिं चापि वद प्रभो ॥ ६ ॥ देवी भागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम् ॥ त्रैलोक्यजननी साक्षाद्गीयते यत्र शाश्वती ॥ ७ ॥ स्कद उवाच ॥ श्रीभागवतमाहात्म्यं को वक्तुं विस्तरात्क्षमः ॥ शृणु संक्षेपतो ब्रह्मन्कथयिष्यामि सांप्रतम् ॥ ८ ॥

स्कन्दजीने उनसे अनेक कथा कही दान और तीर्थोंके भी अनेक माहात्म्य कथन किये ॥ ३ ॥ वाराणसी मणिकर्णिकाका माहात्म्य गंगादि दूसरे तीर्थों का भी विस्तारसे कथन किया ॥ ४ ॥ यह सुनकर मुनि प्रसन्न हो महातेजस्वी कुमारसे लोकके हित करनेको अगस्त्यजी पूँछने लगे ॥ ५ ॥ अगस्त्यजी बोले हे भगवन् तारकके शत्रु ! देवी भागवतका माहात्म्य और उसके सुननेकी विधि कहिये ॥ ६ ॥ देवी भागवत नाम पुराण परम श्रेष्ठ है जिसमें त्रिलोककी माता निरन्तर गाई जाती है ॥ ७ ॥ स्कंदजी बोले श्रीमद्भागवतका माहात्म्य विस्तारसे कौन कह सकता है हे ब्रह्मन् ! संक्षेपसे सुनो मैं कहता हूं ॥८॥

जो नित्या सच्चिदानन्द रूपिणी जगदात्मिका है जिसमें भुक्ति मुक्ति देनेकी सामर्थ्य स्थित है ॥ ९ ॥ हे मुने ! देवीभागवत उसकी वाङ्मयी मूर्ति है जिसके पढने सुननेसे इस जगत्में कुछभी दुर्लभ नहीं है ॥ १० ॥विवस्वतके पुत्र श्राद्धदेव हुए हैं उनके पुत्र नहीं था वशिष्ठकी अनुमतिसे उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ किया ॥ ११ ॥ उस समय श्राद्धदेवकी स्त्रीने होतासे प्रार्थना करी कि हे भगवन् ! मेरी इच्छा है कि मेरे कन्या उत्पन्न हो ऐसाही करो ॥ १२ ॥ तब होताने मनमें विचारकर कन्याके ही निमित्त हविदान की, इस कारण उसके फलसे इलानाम कन्याही होती हुई ॥ १३ ॥ तब राजा कन्याको देख विमनहो गुरुसे बोले हे प्रभो ! तुम्हारा संकल्प विपरीत क्यों हुआ ॥ १४ ॥ यह सुन मुनिने ध्यान किया और उसका कारण जानकर इलाके पुरुष होनेके निमित्त ईश्वरसे

या नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बिका ॥ साक्षात्समाश्रिता यत्र भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ ९ ॥ अतस्तद्वाङ्मयी मूर्तिर्देवीभागवतं मुने ॥ पठनाच्छ्रवणाद्यस्य न किंचिदिह दुर्लभम् ॥ १० ॥ आसीद्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः॥सोऽनपत्योऽकरोदिष्टिं वसिष्ठानुमतो नृपः ॥ ११ ॥ होतारं प्रार्थयामास श्रद्धाऽथ दयिता मनोः ॥ कन्या भवतु मे ब्रह्मंस्तथोपायो विधीयताम् ॥ १२ ॥ मनसा चिंतयन्होता कन्यामेवाजुहोद्धविः ॥ ततस्तद्व्यभिचारेणकन्येला नाम चाभवत् ॥ १३ ॥ अथ राजा सुतां दृष्ट्वा प्रोवाच विमना गुरुम् ॥ कथं संकल्पवैषम्यमिह जातं प्रभो तव ॥ १४ ॥ तच्छ्रुत्वा स मुनिर्दध्यौ ज्ञात्वा होतुर्व्यतिक्रमम् ॥ ईश्वरं शरणं यात ईलायाः पुंस्त्वकाम्यया॥ ॥ १५ ॥ मुनेस्तपःप्रभावाच्च परेशानुग्रहात्तथा ॥ पश्यतां सर्वलोकानामिला पुरुषतामगात् ॥१६॥ गुरुणा कृतसंस्कारः सुद्युम्नोऽथः मनोः सुतः ॥ निधिर्बभूव विद्यानां सरितामिव सागरः ॥ १७ ॥ अथ कालेन सुद्युम्नस्तारुण्यं समवाप्य च ॥ मृगयार्थं वनं यातो हयमारुह्य सैन्धवम् ॥ १८॥ वनाद्वनांतरं गच्छन्बहु बभ्राम सानुगः ॥ दैवादधस्ताद्धेमाद्रेस्स कुमारो वनं ययौ ॥ १९ ॥

प्रार्थना की ॥ १५ ॥ तब मुनिके तपके प्रभावसे और परमात्माके अनुग्रहसे सबके देखते २ इला पुरुष होगई ॥ १६ ॥ गुरुने संस्कार करके उसका नाम सुद्युम्न रक्खा और सब विद्याका सागर हुआ जैसे नदियां सब सागरमें प्राप्त होजाती हैं ॥ १७ ॥ कुछ समयमें सुद्युम्न तरुण हुआ और सिंधुदेशीय घोडेपर चढकर वनमें मृगया खेलनेको गया ॥ १८ ॥ एकवनसे दूसरे वनमें जाता हुआ अनुचरोंसहित भ्रमण करने लगा प्रारब्धसे हिमालयकी तराईमें चला गया ॥ १९ ॥

वहाँ एक समय शिवासहित शिवजी आनंदपूर्वक रमण करने लगे थे ॥ २० ॥ उस समय मुनिजन शिवदर्शनकी लालसासे आये उनको देखकर पार्वतीको बड़ी लाज आई ॥ २१ ॥ और उन दोनोंको विहार करते देखकर मुनिभी निवृत होकर वैकुण्ठको चले गये ॥२२॥ तब प्रियाके हितकी इच्छासे शिवजीने उस वनको इस प्रकार शापित किया कि आजसे जो पुरुष यहाँ प्रवेश करेगा वह स्त्री हो जायगा ॥ २३ ॥ उस दिनसे कोई पुरुष भी उस स्थानमें नहीं जाता था वह सुद्युम्न प्रविष्ट होतेही स्त्री होगया ॥ २४ ॥ अपने अनुचर और अश्वकोभी स्त्री देखकर बड़ा विस्मित हुआ तब वह सुन्दरीरूपसे वनमें विचरने लगा ॥ २५ ॥ विचरण

कस्मिंश्चित्समये यत्र भार्यया ऽपर्णया सह ॥ अरमद्देवदेवस्तु शंकरो भगवान्मुदा ॥ २० ॥ तदा तु मुनयस्तत्र शिवदर्शनलालसाः ॥ आजग्मुरथ तान्दृष्ट्वा गिरिजा व्रीडिताऽभवत् ॥ २१ ॥ रममाणौ तु तौ दृष्ट्वा गिरिशो संशितव्रताः ॥ निवृत्ता मुनयोजग्मुर्वैकुण्ठनिलयं तदा ॥ २२ ॥ प्रियायाः प्रियमन्विच्छञ्छिवोऽरण्यं शशाप ह॥अद्यारभ्य विशेद्योऽत्र पुमान्योषिद्भवेदिति ॥ २३ ॥ तत आरभ्य तं देशं पुरुषा वर्जयंति हि ॥ तत्र प्रविष्टः सुद्युम्नो बभूव प्रमदोत्तमा ॥ २४ ॥ स्त्रीभूताननुगानश्वं वडवां वीक्ष्य विस्मितः ॥ अथ सा सुन्दरी योषा विचचार वने वने ॥२५॥ एकदा सा जगामाथ बुधस्याश्रमसन्निधौ॥दृष्ट्वा तां चारुसर्वांगीं पीनोन्नतपयोधराम् ॥२६॥ बिंबोष्ठीं कुन्ददशनां सुमुखीमुत्पलेक्षणाम् ॥ अनंगशरविद्धांगश्चकमे भगवान्बुधः ॥ २७ ॥ सापि तं चकमे सुभ्रूः कुमारं सोमनंदनम् ॥ ततस्तस्याश्रमेऽवा सीद्रममाणा बुधेन सा ॥ २८ ॥ अथ कालेन कियता पुरूरवस मात्मजम् ॥ स तस्यां जनयामास मित्रावरुण संभव ॥ २९ ॥ अथ वर्षेषु यातेषु कदाचित्सा बुधाश्रमे ॥ स्मृत्वा स्वं पूर्ववृत्तांतं दुःखिता निर्जगाम ह ॥ ३० ॥

करते एक समय वह बुधके आश्रमके समीप आई उसको सुन्दर शरीर उन्नत पयोधरवाली देखकर ॥ २६ ॥ कि बिम्बके समान ओष्ठ चमेलीकी कलीके समान दाँत सुन्दर मुख कमललोचनी देख अनंगशरसे विद्ध होकर बुध इच्छा करते हुए ॥ २७ ॥ और उसने भी सोमनन्दन कुमारकी इच्छा की और बुधके साथ रमण करते वहाँ निवास करने लगी ॥ २८ ॥ हे अगस्त्यजी ! फिर कुछ समयके उपरान्त उससे पुरूरवा नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥ तब कितने ही वर्ष बीतजानेपर बुधके आश्रममें एक दिन अपना पूर्व वृत्तान्त स्मरण होने पर उसको बड़ा दुःख हुआ ॥ ३० ॥

और गुरु वशिष्ठके आश्रममें जाय उनको प्रणाम कर पुरुष होनेकी इच्छासे अपना वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ३१ ॥ वशिष्ठजी वृत्तान्त जानकर कैलास पर्वतपर जाय परम भक्तिसे पूजनकर शिवकी स्तुति करने लगे ॥ ३२ ॥ वशिष्ठजी बोले शिवशंकर कपर्दी पार्वतीको अर्द्धदेहमें धारण करनेवाले चन्द्रमौलिके निमित्त नमस्कार है ॥ ३३ ॥ मृड सुखदायक कैलासवासीके निमित्त नमस्कार है, नीलकण्ठ तथा भक्तोंको भुक्ति मुक्ति देनेवालेके निमित्त प्रणाम है ॥ ३४ ॥ शिव शिवरूप शरणागतोंके भयहारी वृषभपर चढनेवाले शरणागतवत्सल परमात्माके निमित्त प्रणाम है ॥ ३५ ॥ सर्ग स्थिति और लयमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र रूपवाले देवाधिदेव वरदायी पुरारीके निमित्त प्रणाम है ॥ ३६ ॥ यज्ञ रूपसे यजन करनेवालोंको फल देनेवालेके निमित्त प्रणाम है, गंगाधर सूर्य इन्दु

गुरोरथाश्रमं गत्वा वसिष्ठस्य प्रणम्य तम् ॥ निवेद्य वृत्तं शरणं ययौ पुंस्त्वमभीप्सती ॥ ३१ ॥ वसिष्ठो ज्ञातवृत्तांतो गत्वा कैलासपर्वतम् ॥ संपूज्य शंभुं तुष्टाव भक्त्या परमया युतः ॥ ३२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ नमो नमः शिवायास्तु शंकराय कपर्दिने ॥ गिरिजार्द्धांगदेहाय नमस्ते चंद्रमौलये ॥ ३३ ॥ मृडाय सुखदात्रे ते नमः कैलासवासिने ॥ नीलकण्ठाय भक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने ॥ ३४ ॥ शिवाय शिवरूपाय प्रपन्नभयहारिणे ॥ नमो वृषभ वाहाय शरण्याय परात्मने ॥ ३५ ॥ ब्रह्मविष्णवीशरूपाय सर्गस्थितिलयेषु च ॥ नमो देवाधिदेवाय वरदाय पुरारये ॥ ३६ ॥ यज्ञरूपाय यजतां फलदात्रे नमो नमः ॥ गंगाधराय सूर्येन्दुशिखिनेत्राय ते नमः ॥ ३७ ॥ एवं स्तुतस्स भगवान्प्रादु-रासीज्जगतपतिः ॥ वृषारूढोऽम्बिकोपेतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ ३८ ॥ रजताचलसंकाशस्त्रिनेत्रश्चंद्रशेखरः ॥ प्रणतं परितुष्टात्मा प्रोवाच मुनिसत्तमम् ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वरय विप्रर्षे यत्ते मनसि वर्तते ॥ इत्युक्तस्तं प्रणम्येलापुंस्त्वमभ्यार्थयन्मुनिः ॥ ४० ॥ अथ प्रसन्नो भगवानुवाच मुनिसत्तमम् ॥ मासं पुमान्स भविता मासं नारी भविष्यति ॥ ४१ ॥

शिखि नेत्रवालेके निमित्त नमस्कार है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार स्तुति करनेसे जगत् पति भगवान् शंकर प्रकट हुये वृषपर चढे पार्वतीके साथ कोटि सूर्यके समान कांतिवाले ॥ ३८ ॥ रजत पर्वतके समान तीन नेत्र चंद्रशेखर प्रणाम करते देखकर प्रसन्न हो वशिष्ठजीसे बोले ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान् बोले हे विप्रर्षे ! जो तेरे मनमें इच्छा हो सो वर मांग यह सुनकर प्रणाम कर मुनि इलाके पुंस्त्वप्राप्तकी प्रार्थना करते हुए ॥ ४० ॥ तब प्रसन्न हो भगवान् शिवजी मुनिसे बोले कि यह एक महीने पुरुष और एक महीने स्त्री रहेगा ॥ ४१ ॥

इस प्रकार शिवसे वर प्राप्तकर महर्षि वरदानमें उन्मुखी जगदम्बा देवी को प्रणाम करते हुए ॥४२॥ करोडों चन्द्रमाके समान कला कान्तियुक्त स्मितमुखी देवीकी भक्ति पूर्वक इलाकी पुंस्त्वकामनासे पूजन करते हुए ॥ ४३ ॥ हे महादेवी भक्तोंको अनुग्रह करनेवाली तुम्हारी जय हो, सब देवताओंसे पूजित अनन्त गुणोंकी खान तुम्हारी जय हो ॥४४ ॥ हे शरणागतवत्सले देवि ! आपको प्रणाम है, हे दुःखनाशिनि दुष्ट दैत्य निषूदिनी तुम्हारी जय हो ॥४५॥ भक्तिसे जानने योग्य महामाया जगदम्बिकाके निमित्त प्रणाम है, संसार सागरसे पार उतारनेको तुम्हारे चरणारविन्द जहाज हैं ॥ ४६ ॥ ब्रह्मादिक देवताभी तुम्हारे

इति प्राप्य वरं शंभोर्महर्षिर्जगदम्बिकाम् ॥ वरदानोन्मुखीं देवीं प्रणनाम महेश्वरीम् ॥ ४२ ॥ कोटिचंद्रकलाकान्तिं सुस्मितां परिपूज्यच॥ तुष्टाव भक्त्या सततमिलायाः पुँस्त्वकाम्यया ॥४३॥ जय देवि महादेवी भक्तानुग्रहकारिणि ॥ जय सर्वसुराराध्ये जयानन्तगुणालये ॥४४॥ नमो नमस्ते देवेशि शरणागतवत्सले ॥ जय दुर्गे दुःखहंत्रि दुष्टदैत्यनिषूदिनि ॥ ४५ ॥ भक्ति गम्ये महामाये नमस्ते जगदम्बिके ॥ संसारसागरोत्तारपोतीभूतपदाम्बुजे ॥ ४६ ॥ ब्रह्मादयोऽपि विबुधास्त्वत्पादांबुजसेवया ॥विश्वसर्गस्थितिलयप्रभुत्वं समवाप्नुयुः ॥ ४७ ॥ प्रसन्ना भव देवेशि चतुर्वर्गप्रदायिनि ॥ कस्त्वां स्तोस्तु क्षमो देवि केवलं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥ ४८ ॥ एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा ॥ भक्त्या वसिष्ठमुनिना प्रसन्ना तत्क्षणादभूत् ॥ ४९ ॥ तदोवाच महादेवी प्रणतार्तिहरी मुनिम् ॥ सुद्युम्नभवनं गत्वा कुरु भक्त्या मदर्चनम् ॥ ५० ॥ सुद्युम्नं श्रावय प्रीत्या पुराणं मत्प्रियकरम् ॥ देवीभागवतं नाम नवाहोभिर्द्विजोत्तम ॥ ५१ ॥ श्रवणादेव सततं पुँस्त्वमस्य भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा च तिरोधानं गच्छतः स्म शिवेश्वरौ ॥ ५२ ॥ वसिष्ठस्तां दिशं नत्वा समागत्याश्रमं निजम् ॥ समाहूय च सुद्युम्नं देव्याराधनमादिशत् ॥ ५३ ॥

चरणारविंदकी सेवासे संसारके उत्पत्ति प्रलय पालनमें समर्थवान हुए हैं ॥ ४७ ॥ हे चतुर्वर्ग देनेवाली देवी प्रसन्न हो हे देवि ! तुम्हारी स्तुति कौन कर सकता है केवल मैं प्रणाम ही करता हूं ॥ ४८ ॥ इस प्रकार नारायणी भगवती स्तुतिको प्राप्त होकर वशिष्ठकी स्तुतिसे तत्काल प्रसन्न होगई ॥४९ तब दीनोंके दुःख दूर करनेवाली देवी मुनिसे बोली सुद्युम्न घर जाकर भक्तिसे मेरा अर्चन करे ॥ ५० ॥ और तुम सुद्युम्नको हमारी कथा सुनाओ जो देवी भागवत नामवाली है वह मेरी प्रियकर है उसे नौ दिनमें सुन ॥५१॥ उसके श्रवण करनसे इसको पुंस्त्वकी प्राप्ति होगी, ऐसा कहकर शिवा शिव अन्तर्द्धान हो गये॥५२॥ वसिष्ठजी उनको

प्रणाम कर अपने आश्रममें आय सुद्युम्नको बुलाय देवीका आराधन कहते हुए ॥५३॥ आश्विनके शुक्लपक्षमें जगन्माताको पूजनकर नवरात्रके विधानसे राजाको कथा सुनाई ॥ ५४ ॥ सुद्युम्न भक्तिसे श्रीमद्भागवत श्रवण कर गुरुको प्रणाम और पूजनकर निरन्तर पुंस्त्वको प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥ तब महर्षि वशिष्ठने उनको राज्यासनपर अभिषेक किया तब वह प्रजाको प्रसन्न करते धर्मसे पृथ्वी पालन करने लगे ॥५६॥ और बडी दक्षिणावाले अनेक यज्ञोंसे भजन किया; फिर पुत्रको राज्य देकर देवीके लोककी प्राप्ति की ॥५७॥ हे ब्राह्मणो ! यह आपसे सम्पूर्ण इतिहास कहा जो मनुष्य इसे भक्तिसे कहते सुनते हैं वह यहां सब कामनाओंको प्राप्त होकर देवीके प्रसादसे परम अमृतको प्राप्त हो देवीके लोकको गमन करते हैं ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये पण्डितज्वाला

आश्विनस्य सिते पक्षेसंपूज्य जगदंबिकाम् ॥ नवरात्र विधानेन श्रावयामास भूपतिम् ॥ ५४ ॥ श्रुत्वा भक्त्याऽपि सुद्युम्नः श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ प्रणम्याभ्यर्च्य च गुरुंलेभे पुंस्त्वं निरंतरम् ॥ ५५ ॥ राज्यासनेऽभिषिक्तस्तु वसिष्ठेन महर्षिणा ॥ भवं शशास धर्मेण प्रजाश्चैवानुरंजयन् ॥ ५६ ॥ ईजे च विविधै र्यज्ञैः संपूर्णवरदक्षिणैः ॥ पुत्रेषु राज्यं संदिश्य प्राप देव्या सलोकताम् ॥ ५७ ॥ इति कथितमशेषं सेतिहासं च विप्रा यदि पठति सुभक्त्या मानवो वा शृणोति ॥ स इह सकलकामान्प्राप्य देव्याः प्रसादात्परममृतमथान्ते याति देव्यास्स लोकम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कंदपु० मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा कथां दिव्यां विचित्रां कुंभसंभवः ॥ शुश्रूषुः पुनराहेदं विशाखं विनयान्वितः ॥ १ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ देव सेनापते देव विचित्रेयं श्रुता कथा ॥ पुनरन्यच्च माहात्म्यं वद भागवतस्य मे ॥२॥ स्कंद उवाच ॥ मित्रावरुणसंभूत मुने शृणु कथामिमाम् ॥ यत्रैकदेशमहिमा प्रोक्तो भागवतस्य तु ॥ ३ ॥ वर्ण्यते धर्मविस्तारो गायत्रीमधिकृत्य च ॥ गायत्र्या महिमा यत्र तद्भागवतमिष्यते ॥ ४ ॥ भगवत्याइदं यस्मात्तस्माद्भागवतं विदुः ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाराध्या परा भगवती हि सा ॥ ५ ॥

प्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूतजी बोले अगस्त्यजी इस दिव्य कथाको श्रवणकर फिर सुननेकी इच्छासे स्कन्दजीसे बोले ॥१॥ अगस्त्यजी बोले हे सेनापते देव ! यह बडी विचित्र कथा है और भी देवी भागवतका माहात्म्य कहिये ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले हे मुने ! इस कथाको सुनिये जिसमें भागवतके एक देशकी महिमा कही है ॥ ३ ॥ जिसमें गायत्रीको अधिकारकर धर्मका विस्तार कहा जाय जिसमें गायत्रीकी महिमा है वही भागवत है ॥ ४ ॥ यह भगवतीके सम्बन्ध वाली है इससे भागवत कहाती है विष्णु, ब्रह्मा, शिवभी प्रेमसे इसका आराधन करते हैं ॥ ५ ॥

एक महाबुद्धिमान ऋतवाक् मुनि थे उसका पुत्र गण्डान्त और रेवती नक्षत्रमें हुआ ॥६॥ उसने विधिपूर्वक उसके जातकर्मादि किये चूडा उपनयन नांदीश्राद्धादि संस्कार किये ॥७॥ जबसे यह पुत्र उस महात्माके हुआ तबसे वह मुनि शोक रोगसे व्याकुल हुआ ॥ ८ ॥ रोष लोभसे युक्त माता पिताके कारण नित्यरोगसे व्याकुल शोचसे दुःखी था ॥९॥ उसके कारण ऋतवाक् चिन्तासे दुःखी हुआ यह क्या कारण है जो मेरा पुत्र दुर्मति है ॥ १० ॥ और किसी मुनिकी पत्नीको उसने बलसे हरण किया और उसने माता पिताकी शिक्षा मूढताके कारण नमानी ॥११॥ तब चित्तसे व्याकुल होकर ऋतवाक्ने ऐसा कहा मनुष्योंको अपुत्रता

ऋतवागितिविख्यातो मुनिरासीन्महामतिः ॥ तस्य पुत्रोऽभवत्काले गण्डान्ते पौष्णभान्तिमे ॥ ६ ॥ स तस्य जात कर्मादिक्रियाश्चक्रे यथाविधि ॥ चूडोपनयनादींश्च संस्करानपि सोऽकरोत् ॥ ७ ॥ यत आरभ्य जातोऽसौ पुत्रस्तस्य महात्मनः ॥ तत एवाथ स मुनिश्शोकरोगाकुलोऽभवत् ॥ ८ ॥ रोषलोभपरीतात्मा तथा माताऽपि तस्य च ॥ बहु रोगार्दिता नित्यं शुचा दुःखीकृता भृशम् ॥९॥ ऋतवाक्स मुनिश्चिन्तामवाप भृशदुःखितः ॥ किमेतत्कारणं जातं पुत्रो मेऽस्त्यंतदुर्मतिः ॥ १० ॥ कस्यचिन्मुनिपुत्रस्य बलात्पत्नीं जहार च ॥ मेने शिक्षां पितुर्नासौ न च मातुर्विमूढधीः ॥ ११ ॥ ततो विषण्णचित्तस्तु ऋतवागब्रवीदिदम् ॥ अपुत्रता वरं नृणां न कदाचित्कुपुत्रता ॥१२॥ पितॄन्कुपुत्रः स्वर्यातान्निरये पातयत्यपि॥यावज्जीवनन्तसदा पित्रोःकेवलं दुःखदायकः ॥१३॥ पित्रोर्दुःखाय धिग्जन्म कुपुत्रस्य च पापिनः ॥ सुहृदां नोपकाराय नापकाराय वैरिणाम् ॥ १४ ॥ धन्यास्ते मानवा लोके सुपुत्रो यद्गृहे स्थितः॥परोपकारशीलश्च पितुर्मातुः सुखावहः ॥ १५ ॥ कुपुत्रेण कुलं नष्टं कुपुत्रेण हतं यशः ॥ कुपुत्रेणेह चामुत्र दुःखं निरयया तनाः ॥१६॥ कपुत्रेणान्वयो नष्टो जन्म नष्टं कुभार्यया ॥ कुभोजनेन दिवसः कुमित्रेण सुखं कुतः ॥ १७ ॥

होनी उत्तम है कुपुत्रता भली नहीं है ॥ १२ ॥ कुपुत्र स्वर्गमें प्राप्त पितरोंको नरकमें पतन करता है; जीवन पर्यन्त माता पिताको केवल दुःख देनेवाला होता है ॥ १३ ॥ कुपुत्र पापीका पिताके दुःखके निमित्तही जन्महै इससे उसको धिक्कार है न वह सुहृदोंका उपकार करे न वैरियोंका अपकार करे ॥१४॥ लोकमें वे मनुष्य धन्य हैं जिनके घरमें सुपुत्र हैं परोपकारमें शील होनेसे पिता माताको सुख देता है ॥१५॥ कुपुत्रसे कुल और यश नष्ट होजाता है कुपुत्रसे इसलोक और परलोकमें नरक यातना भोगनी होती है ॥१६॥ कुपुत्रसे वंश और कुभार्यासे जन्मही नष्ट हो जाता है कुभोजनसे दिन नष्ट है और कुमित्रसे सुख कहां है ॥१७॥

स्कन्दजी बोले इस प्रकार पुत्रके दुष्टाचारसे वह मुनि बहुत दिन बिताकर एक दिन गर्गजीसे पूछने लगे ॥१८॥ ऋतुवाक् बोले हे भगवन् ! मैं आपसे कुछ पूछता हूं कृपाकर कहिये आप ज्योतिषशास्त्रके आचार्य हो मेरा पुत्र दुःशील क्यों है ॥ १९ ॥ मैंने विधिपूर्वक गुरुकी शुश्रूषासे वेद पढा है, ब्रह्मचारीके व्रतसे उत्तीर्ण हो विधि पूर्वक विवाह किया ॥ २० ॥ भार्याके साथ गृहस्थ धर्म भली प्रकार अनुष्ठान किया, पंचयज्ञभी यथा योग्य किये ॥ २१ ॥ हे विप्र ! नरकके भयसे पुत्र उत्पन्न किया काम सुखकी इच्छासे नहीं पुत्र प्राप्तिकी इच्छासे विधिपूर्वक मैंने गर्भाधान किया ॥२२॥ हे मुने ! यह पुत्र मेरे वा माताके दोषसे दुःखदायी माता

स्कन्द उवाच ॥ एवं दुष्टस्य पुत्रस्य दुष्टैराचरणैर्मुनिः ॥ तप्यमानोऽनिशं काले गत्वा गर्गमपृच्छत ॥ १८ ॥ ऋतवागुवाच ॥ भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छामि वद तत्प्रभो ॥ ज्योतिश्शास्त्रस्य चाचार्य पुत्रदौःशील्यकारणम् ॥ १९ ॥ गुरुशुश्रूषया वेदा अधीता विधिवन्मया ॥ ब्रह्मचारिव्रतं तीर्त्वा विवाहो विधिवत्कृतः ॥ २० ॥ भार्यया सह गार्हस्थ्यधर्मश्चानुष्ठितोऽनिशम् ॥ पंचयज्ञविधानं च मयाऽकारि यथाविधि ॥ २१ ॥ नरकाद्बिभ्यता विप्र न तु कामसुखेच्छया ॥ गर्भाधानं च विधिवत्पुत्र प्राप्त्यै मया कृतम् ॥ २२ ॥ पुत्रोऽयं मम दोषेण मातुर्दोषेण वा मुने ॥ जातो दुःखावहः पित्रोर्दुःशीलो बंधुशोकदः ॥ २३ ॥ एतन्निशम्य वचनं गर्गाचार्यो मुनेस्तदा ॥ विचार्य सर्वं तद्धेतु ज्योतिर्विद्वाचमब्रवीत् ॥ २४ ॥ गर्ग उवाच ॥ मुने नैवापराधस्ते न मातुर्न कुलस्य च ॥ रेवत्यंतं तु गण्डान्तं पुत्रदौःशील्यकारणम् ॥ ॥ २५ ॥ दुष्टे काले यतो जन्म पुत्रस्य तव भो मुने ॥ तेनैव तव दुःखाय नान्यो हेतुर्मनागपि ॥ २६ ॥ तद्दुःखशांतये ब्रह्मञ्जगतां मातरं शिवाम् ॥ समाराधय यत्नेन दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥२७॥

पिताको कष्ट कारक और बंधुओंको शोकदायक हुआहै ॥ २३ ॥ तब गर्गाचार्यजी मुनिके यह वचन सुनकर उसका हेतु ज्योतिष विद्यासे विचार कर बोले ॥२४॥ गर्गजी बोले हे मुने ! इसमें तुम्हारा माताका और कुलका अपराध नहीं है रेवतीके अन्त गण्डान्तमें जन्म लेनेके कारणसे पुत्र दुःशील हुआ है ॥ २५ ॥ हे मुने! जिस कारण तुम्हारे पुत्रकाजन्म दुष्टकालमें हुआ है इसीसे तुम्हारे दुःखके निमित्त हुआ और हेतु कुछ नहीं है ॥ २६ ॥ हे मुने ! उस दुःखशान्तिके

१ पूर्णिमा पंचमा और दशमाके अन्तका एक २ तथा पडवा छठ और एकादशीके आदिकी एक एक घडी गण्डान्त है यह यात्रा विवाहमें वर्जित हैं। कर्क सिंह इन दोनों लग्नोंकी घडीकी आधी और इसीक्रमसे वृश्चिक धन मीन मेष इनकी आदिघडी गण्डान्तमें शुभकर्म न करे। नक्षत्र गंडान्त। रेवती अश्विनी इनकी संधिकी २ घडी इसी क्रमसे आश्लेषा मघा ज्येष्ठा मूल, इनकी संधिको ४ घडी वर्जनीय हैं यह तान प्रकारकागंडान्त यात्रा जन्मकालमें वर्जित हैं, गण्डान्तका बालक पिताको छःमास तक देखना उचित नहीं रेवतीके गण्डान्तमें पिताको दुःख देता है।

निमित्त जगन्माता शिवा दुर्गतिनाशिनी दुर्गाकी आराधना यत्नपूर्वक करो ॥२७॥ मुनिके वचन सुन ऋतवाक्‌ने क्रोधसे मूर्च्छित होकर रेवतीको शाप दिया कि यह आकाशसे पतित होजाय ॥ २८ ॥ हे मुने! शाप देतेही वह तारा अंशसे आकाशसे पतित हुआ अर्थात् तेजपतित हुआ और वह प्रकाशमान सब लोकके देखते कुमुदाद्रिपर पतित हुआ ॥ २९ ॥ उसके पातसे वह पर्वत रैवतनाम कहाया, और उस दिनसे वह बडा रमणीय होगया ॥३०॥ इस प्रकार रेवतीको शाप देकर मुनि गर्गके कथनानुसार विधिपूर्वक दुर्गाकी आराधना करने लगे और सुख सौभाग्यके भागी हुए ॥३१॥ स्कन्दजी बोले रेवती नक्षत्रके उस तेजसे एक कन्या हुई जो रूपमें बडी विख्यात दूसरी लक्ष्मीके समान थी ॥३२॥ उसपर सूचित हुई कन्याको परम मनोहर देखकर मुनिने उसका रेवती नाम किया ॥ ३३ ॥ और

गर्गस्य वचनं श्रुत्वा ऋतवाक् क्रोधमूर्च्छितः ॥ रेवतीं तु शशापासौ व्योम्नः पततु रेवती ॥२८॥ दत्ते शापे तु तेनाथ पूष्णोभं च पपात खात् ॥ कुमुदाद्रौ भासमानं सर्वलोकस्य पश्यत ॥ २९ ॥ ख्यातो रैवतकश्चाभूत्तत्पातात्कुमुदाचलः ॥ अतीव रमणीयश्च ततः प्रभृति सोऽ प्यभूत् ॥ ३० ॥ दत्त्वा शापं च रेवत्यै गर्गोक्तविधिना मुनिः ॥ समाराध्यांबिकां देवीं सुखसौभाग्यभागभूत् ॥ ३१ ॥ स्कंद उवाच ॥ रेवत्यृक्षस्य यत्तेजस्तस्माज्जाता तु कन्यका ॥ रूपेणा प्रतिमा लोके द्वितीया श्रीरिवाभवत् ॥ ३२ ॥ अथ तां प्रमुचः कन्यां रेवतीकांति संभवाम् ॥ दृष्ट्वा नाम चकारास्यारेवतीति मुदा मुनिः ॥३३॥ निन्येऽथ स्वाश्रमे चैनां पोषयामास धर्मतः ॥ ब्रह्मर्षिः प्रमुचो नाम कुमुदाद्रौ सुतामिव ॥ ३४ ॥ अथ कालेन च प्रौढां दृष्ट्वा तां रूपशालिनीम् ॥ स मुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या योग्यो वरो भवेत् ॥ ३५ ॥ बहुधाऽन्वेषयंस्तस्या नाससादोचितं पतिम्॥ततोऽग्निशालां संविश्यमुनिस्तुष्टाव पावकम्॥३६॥ कन्यावरं तदाऽशंसत्प्रीतस्तमपि हव्यवाट् ॥ धर्मिष्ठो बलवान्वीरः प्रियवागपराजितः ॥३७॥ दुर्दमो भविताभर्ता मुनेऽस्याः पृथिवीपतिः ॥ इति श्रुत्वा वचो वह्नेः प्रसन्नोऽभून्मुनिस्तदा ॥३८॥

उसे प्रमुच मुनि अपने आश्रममें लाय धर्मसे पालन करने लगे वह प्रमुच महर्षि कुमुदाचलमें उसको पुत्रीवत् पालते रहे ॥३४॥ कुछ समयमें उसको प्रौढा और रूपशालिनी देखकर मुनि विचारने लगे इसके योग्य कौन वर होगा ॥ ३५ ॥ बहुत खोजनेपर भी उसके योग्य वर न पाया तब अग्निशालामें प्रवेशकर अग्निको सन्तुष्ट करने लगे ॥ ३६ ॥ तब प्रसन्न हो अग्निने कन्याके निमित्त वर बताया कि हे मुने ! धर्मिष्ठ बलवान् वीर प्रियवाक् किसीसे पराजित न होनेवाला ॥३७॥ दुर्दमनाम राजा इसका पति होगा यह अग्निके वचन सुन मुनि प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥

देवकी प्रेरणासे आखेटके निमित्त उस समय वह राजा वहाँ आये, यह दुर्दम बडे बुद्धिमान् थे ॥ ३९ ॥ विक्रमशीलके पुत्र बलवान् वीर्यवान् थे यह कालिन्दीके जठरसे उत्पन्न प्रियव्रतके वंशमें थे ॥ ४० ॥ मुनिके आश्रममें प्रवेश करके और मुनिको न देखकर रेवतीके पास जाय राजा पूछने लगे ॥ ४१ ॥ राजा बोले हे प्रिये ! महर्षि इस आश्रमसे कहां गये मैं उनके चरण देखनेकी इच्छा करताहूं हे कल्याणी ! तत्त्वसे कहो ॥ ४२ ॥ कन्या बोली हे महाराज ! महा मुनि अग्निशालामें गये हैं राजा यह वचन सुनकर शीघ्रही आश्रमसे चले ॥ ४३ ॥ तब अग्निशालाके द्वारमें स्थित दुर्दम राजाको मुनिने राजलक्षण तथा नम्रतासे युक्त देखा ॥ ४४ ॥ राजाने उनको प्रणाम किया तत्काल मुनिने अपने शिष्यसे कहा हे गौतम ! शीघ्र अर्घ्य लाओ यह राजा अर्घ्यके योग्य है

दैवादाखेटकन्याजात्तत्क्षणादागतो नृपः ॥ दुर्दमो नाम मेधावी तस्याश्रमपदं मुनेः ॥३९॥ पुत्रो विक्रमशीलस्य बलवान्वीर्यवत्तरः ॥ कालिंदीजठरे जातः प्रियव्रतकुलोद्भवः ॥४०॥ मुनेराश्रममाविश्य तमदृष्ट्वा महामुनिम् ॥ आमंत्र्य तां प्रिये चेति रेवतीं पृष्टवान्नृपः ॥४१॥ राजोवाच ॥ महर्षिर्भगवानस्मादाश्रमात्क्व गतः प्रिये ॥ तत्पादौ द्रष्टुमिच्छामि वद कल्याणि तत्त्वतः ॥४२॥ कन्योवाच ॥ अग्निशालामुपगतो महाराज महामुनिः ॥ निश्चक्रामाश्रमात्तूर्णं राजाऽप्याकर्ण्य तद्वचः ॥ ४३ ॥ अथाग्निशालाद्वारस्थं राजानं दुर्दमं मुनिः ॥ राजलक्षणसंयुक्तम पश्यत्प्रश्रयान्वितम् ॥४४॥ प्रणनाम च तं राजा मुनिःशिष्यमुवाच ह ॥ गौतमानीयतामर्घ्यमर्घ्ययोग्योऽस्ति भूपतिः ॥ ४५ ॥ आगतश्चिरकालेन जामातेति विशेषतः ॥ इत्युक्त्वाऽर्घ्यं ददौ तस्मै सोऽपि जग्राह चिन्तयन् ॥४६॥ मुनिरासनमासीनं गृहीतार्घ्यं च भूपतिम् ॥ आशीर्भिरभिनंद्याथ कुशलं चाप्यपृच्छत ॥ ४७ ॥ अपि तेऽनामयं राजन्बले कोशे सुहृत्सु च ॥ भृत्येऽमात्ये पुरे देशे तथाऽऽत्मनि जनाधिप ॥४८॥ भार्याऽस्ति तेकुशलिनी यतः साऽत्रैव तिष्ठति ॥ अतो न पृच्छाम्यस्यास्ते चान्यासां कुशलं वद ॥ ४९ ॥ राजोवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वत्रानामयं मम ॥ एतत्कुतूहलं ब्रह्मन्मद्भार्या काऽत्र विद्यते ॥ ५० ॥

॥ ४५ ॥ यह चिरकालमें आये हैं, विशेषकर हमारे जामाता हैं यह कह राजाको अर्घ्य दिया और उन्होंने भी विचार करते ग्रहण किया ॥ ४६ ॥ आसन पर स्थित अर्घ्य ग्रहण किये राजाको आशीर्वादसे अभिनंदन कर मुनिने कुशल पूछी ॥४७॥ हे राजन् ! आपके बल, कोश, सुहृद्वर्ग, भृत्य, अमात्य पुर, देश और आपके शरीरमें अनामय है ॥ ४८ ॥ और तुम्हारी भार्या तो कुशलयुक्त है कारण वह यहीं हैं इस कारण इसकी कुशल नहीं पूछता आप औरोंकी कुशल कहिये ॥४९॥ राजा बोले हे भगवन् ! तुम्हारे प्रसादसे मेरे सब कुशल हैं परंतु यह मुझे बडा कौतूहल है कि मेरी भार्या यहां कहां है ॥५०॥

ऋषि बोले रेवती नाम तुम्हारी भार्या रूपमें अद्वितीय है वह यहांही स्थित है तुम उस अपनी पत्नीको क्यों नहीं जानते ॥ ५१ ॥ राजा बोले हे प्रभो ! सुभद्रादि भार्या तो हमारे घरमें हैं हे भगवन् ! उनको तो जानताहूं परंतु रेवतीको नहीं जानता ॥ ५२ ॥ ऋषि बोले हे राजन् ! जिसको तुमने अभी प्रिया कहा है उस श्लाघ्यतम प्रियाको आपने क्षणमात्रमें ही भुलादिया ॥ ५३ ॥ राजा बोले जो आपने कहा वह अन्यथा नहीं होता परंतु मैंने साधारण बात कही थी मेरा भाव अन्यथा नहीं, आप क्रोध न कीजिये ॥ ५४ ॥ ऋषि बोले हे राजन् ! तुम सत्य कहते हो तुम्हारा भाव दूषित नहीं है अग्निकी प्रेरणासेही आपने ऐसा वचन कहा था ॥ ५५ ॥ आज मैंने अग्निदेवतासे पूंछा था कि, इसका स्वामी कौन होगा ? उसने कहा निश्चयही दुर्दमराजा इसका पति होगा

ऋषिरुवाच ॥ रेवती नाम ते भार्या रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ विद्यतेऽत्र कथं पत्नीं तां न वेत्सि महीपते ॥ ५१ ॥ राजोवाच ॥ सुभद्राद्यास्तुया भार्या मम सन्ति गृहे विभो ॥ जानामि तास्तु भगवन्नैव जानामि रेवतीम् ॥५२॥ ऋषिरुवाच ॥ प्रियेति सांप्रतं राजंस्त्वयोक्ता या महामते ॥ सा विस्मृता क्षणादेव या ते श्लाघ्यतमा प्रिया ॥५३॥ राजोवाच ॥त्वयोक्तं यन्मृषा तन्नो तथैवामंत्रिता मया ॥ मुने दुष्टो नमे भावःकोपं मा कर्तुमर्हसि ॥ ५४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ राजन्नुक्तं त्वया सत्यं न भावो दूषितस्तव ॥ वह्निना प्रेरितेनेत्थं भवता व्याहृतं वचः ॥ ५५ ॥ अद्य पृष्टो मया वह्निः कोऽस्या भर्ता भविष्यति ॥ तेनोक्तं दुर्दमो राजा भविताऽस्याः पतिर्ध्रुवम् ॥ ५६ ॥ तदादत्स्व मया दत्तामिमां कन्यां महीपते ॥ प्रिये त्यामंत्रिता पूर्व मा विचारं कुरुष्व भोः ॥ ५७ ॥ श्रुत्वैतत्सोऽभवत्तूष्णीं चिंतयन्मुनिभाषितम् ॥ वैवाहिकं विधिं तस्य मुनिः कर्तुं समुद्यतः ॥ ५८ ॥ अथोद्यतं विवाहाय दृष्ट्वा कन्याऽब्रवीन्मुनिम् ॥ रेवत्यृक्षे विवाहो मे तात कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ५९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ वत्से विवाह योग्यानि संत्यन्यर्क्षाणि भूरिशः॥ रेवत्यां कथमुद्वाहः पौष्णभं न दिवि स्थितम् ॥ ६० ॥ कन्योवाच ॥ रेवत्यृक्षं विना कालो ममोद्वाहोचितो न हि ॥ अतः संप्रार्थयाम्येतद्विवाहं पौष्णभे कुरु ॥ ६१ ॥

॥ ५६ ॥ सो हे राजन्!इस मेरी दीहुई कन्याको आप ग्रहण कीजिये प्रिया कहके तुमने आमंत्रण पहले किया है. अब विचार मत करो ॥ ५७ ॥ यह सुन राजा मुनिके वचनको विचारते मौन हुए और मुनि उसकी विवाहविधि करनेको उद्यत हुए ॥ ५८ ॥ तब विवाहके निमित्त उद्यत हुए मुनिसे कन्या कहने लगी हे तात ! मेरा विवाह आप रेवती नक्षत्रमें कीजिये ॥ ५९ ॥ ऋषि बोले हे वत्से ! विवाहके योग्यतो और भी बहुतसे नक्षत्र हैं फिर रेवतीमें क्यों विवाह कियाजाय ? विशेषकर वह दिव्य लोकमें भी स्थित नहीं है ॥ ६० ॥ कन्या बोली रेवतीनक्षत्र बिना मेरा विवाहकाल उचित्त नहीं है इस कारण प्रार्थना

करती हूँ मेरा विवाह रेवतीनक्षत्रमें करो ॥ ६१ ॥ ऋषि बोले ऋतवाक् मुनिने पूर्व रेवतीनक्षत्रको पातित कर दिया है और नक्षत्रमें यदि तेरी प्रीति नहीं है तो तेरा विवाह कैसे होगा ॥६२॥ कन्या बोली क्या एक ऋतवाक्काही ऐसा तप है क्या आपका मन वचन कर्मसे उपार्जन किया ऐसा तप नहीं है ॥६३॥ मैं तुम्हारा तपोबल जानती हूं आप जगत्के सृजन करनेमें समर्थ हो हे पिता ! रेवती नक्षत्रको दिव्य लोकमें स्थापन कर मेरा विवाह करो ॥ ६४ ॥ ऋषि बोले तेरा कल्याण हो जैसा तू कहती है ऐसाही होगा. तेरे निमित्त चन्द्रमार्गमें मैं रेवतीको स्थापन करूंगा ॥६५॥ स्कन्दजी बोले इस प्रकार कहकर मुनिने अपने तपोबलसे यथापूर्व सोममार्गमें रेवतीको स्थापन किया ॥६६॥ और रेवती नाम नक्षत्रमें विधिपूर्वक मुनिने दुर्दम महात्माके निमित्त अपनी कन्या देदी

ऋषिरुवाच ॥ ऋतवाङ्मुनिना पूर्वं रेवतीभं निपातितम् ॥ भान्तरे चेन्न ते प्रीतिर्विवाहः स्यात्कथं तव ॥ ६२॥ कन्योवाच ॥ तपः किं तप्तवानेक ऋतवागेव केवलम् ॥ भवता किं तपो नेदृक्तं वाक्कायमानसैः ॥ ६३ ॥ जगत्स्रष्टुं समर्थस्त्वं वेद्म्यहं ते तपोबलम् ॥ रेवत्यृक्षं दिवि स्थाप्य ममोद्वाहं पितः कुरु ॥ ६४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं भवतु भद्रं ते तथैव त्वं ब्रवीषि माम् ॥ त्वत्कृते सोममार्गेऽहं स्थापयाम्यद्य पौष्णभम् ॥६५॥ स्कंद उवाच ॥ एवमुक्त्वा मुनिस्तूर्णं पौष्णभं स्वतपोबलात् ॥ ॥ यथापूर्वं तथा चक्रे सोममार्गे घटोद्भव ॥६६॥ रेवतीनाम्नि नक्षत्रे विवाहविधिना मुनिः ॥ रेवतीं प्रददौ राज्ञे दुर्दमाय महात्मने ॥ ६७ ॥ कृत्वा विवाहं कन्याया मुनी राजानमब्रवीत् ॥ किं तेऽभिलषितं वीर वद तत्पूरयाम्यहम् ॥६८॥ राजोवाच ॥ मनोः स्वायंभुवस्याहं वंशजातोऽस्मि हे मुने ॥ मन्वंतराधिपं पुत्रं त्वत्प्रसादाच्च कामये ॥ ६९॥ मुनिरुवाच ॥ यद्येषा कामना तेऽस्ति देव्या आराधनं कुरु ॥ भविष्यत्येव ते पुत्रो मनुर्मन्वंतराधिपः ॥ ७० ॥ देवीभागवतं नाम पुराणं यत्तु पंचमम् ॥ पंचकृत्वस्तु तच्छ्रुत्वा लप्स्यसेऽभिमतं सुतम् ॥७१॥ रेवत्यां रैवतो नाम पंचमो भविता मनुः ॥ वेदविच्छास्त्रतत्त्वज्ञो धर्मवानपराजितः ॥ ७२ ॥ इत्युक्तो मुनिना राजा प्रणम्य मुदितो मुनिम् ॥ भार्यया सह मेधावी जगाम नगरं निजम् ॥ ७३ ॥

। ६७ ॥ कन्याका विवाह करके मुनिने राजासे कहा हे वीर ! तुम्हारी अभिलाषा क्या है उसे कहो मैं पूर्ण करूंगा ॥ ६८ ॥ राजा बोले मैंने स्वायंभुवके वंशमें जन्म लिया है आपके प्रसादसे मन्वन्तरके अधिपति पुत्रकी मैं इच्छा करता हूं ॥ ६९ ॥ मुनि बोले जो आपकी यह कामना है तो देवीका आराधन करो, तुम्हारा पुत्र मनुमन्वन्तरका अधिपति होगा ॥७०॥ देवीभागवत नाम जो पाँचवाँ पुराण है उसको पांचबार श्रवण करनेसे यथेच्छ पुत्रको प्राप्त होगे ॥ ७१ ॥ रेवतीमें रेवतनाम पांचवाँ मनु होगा वह वेदवित् शास्त्रके तत्त्वका जाननेवाला धर्मात्मा अपराजित होगा ॥ ७२ ॥ ऐसा कहनेपर राजा प्रसन्न हो मुनिको प्रणाम

करके वह बुद्धिमान् भार्याकेसहितअपने नगरको गये ॥ ७३ ॥ और पितापितामहका राज्य वह महामति करता हुआ और प्रजाको स्वपुत्रके समान पालता हुआ ॥७४॥ एक समय लोमश नाम महात्मा मुनि आगये उनको प्रणाम और पूजाकर राजा बोले ॥७५॥ राजा बोले भो मुने ! आपके प्रसादसे देवीभागवत नाम पुराणको पुत्रकी इच्छासे सुनना चाहता हूं ॥७६॥ राजाके यह वचन सुन प्रसन्न हो लोमशजी बोले हे राजन्!तुम धन्य हो जो तुम्हारी भक्ति त्रिलोक जननीमें हुई है ॥७७॥ जो परमजगदम्बिका सुरअसुरों से परम आराधनीय है जो उसमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्न हुई है तो अवश्य कार्य सिद्ध होगा ॥ ७८ ॥ इस कारण हे राजा ! मैं तुमको श्रीमद्भागवत श्रवण कराता हूं जिसके श्रवण मात्रसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥७९॥ ऐसा कहकर वह सुदिनमें कथा आरम्भ करते

पितृपैतामहं राज्यं चकार स महापतिः ॥ पालयामास धर्मात्मा प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥७४॥ एकदा लोमशो नाम महात्मा मुनिरागतः प्रणिपत्य तमभ्यर्च्य प्रांजलिश्चाब्रवीन्नृपः ॥ ७५ ॥ राजोवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रोतुमिच्छामि भो मुने ॥ देवीभागवतं नाम पुराणं पुत्रलिप्सया ॥७६॥ श्रुत्वा वाचं प्रजाभर्तुः प्रीतः प्रोवाच लोमशः ॥ धन्योऽसि राजंस्ते भक्तिर्जाता त्रैलोक्यमातरि ॥ ७७ ॥ सुरासुरनराराध्या या परा जगदम्बिका॥तस्यां चेद्भक्तिरुत्पन्ना कार्यसिद्धिर्भविष्यति॥७८॥अतस्त्वां श्रावयिष्यामिश्रीमद्भागवतं नृप॥यस्य श्रवणमात्रेण न किंचिदपि दुर्लभम् ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वा सुदिने ब्रह्मन्कथारंभमथाकरोत् ॥ पंचकृत्वस्स शुश्राव विधिवद्भार्यया सह ॥ ८० ॥ समाप्ति दिवसे राजा पुराणं च मुनिं तथा ॥ पूजयामास धर्मात्मा मुदा परमया युतः ॥ ८१ ॥ हुत्वा नवार्णमंत्रेण भोजयित्वा कुमारिकाः ॥ वाडवांश्च सपत्नीकान्दक्षिणाभिरतोषयत् ॥ ८२ ॥ अथ कालेन कियता भगवत्याः प्रसादतः ॥ गर्भन्दधार सा राज्ञी लोककल्याणकारकम् ॥ ८३ ॥ पुण्येऽथ समये प्राप्ते ग्रहैः सुस्थानसंगतै ॥ सर्वमंगलसंपन्ने रेवती सुषुवे सुतम् ॥ ८४ ॥ श्रुत्वा पुत्रस्य जननं स्नात्वा राजा मुदाऽन्वितः ॥ ससुवर्णाभसा चक्रे जातकर्म्मादिकाः क्रियाः ॥ ८५ ॥

हुए और विधिपूर्वक भार्य्याके सहित पांच बार श्रवण किया ॥८०॥ समाप्तिके दिन राजाने पुराण और मुनिका परम प्रसन्नतासे धर्मपूर्वक पूजन किया ॥८१॥ नवार्ण मंत्रसे हवन करके कुमारियोंको भोजन कराकर और सपत्नीक ब्राह्मणोंको दक्षिणासे सन्तुष्ट करते हुए ॥८२॥ फिर कुछ दिनोंके उपरान्त रेवती भगवतीके प्रसादसे लोकके कल्याणकर गर्भको धारण करती हुई ॥ ८३ ॥ फिर अच्छे पवित्र समय अच्छे स्थानमें प्राप्त हुए ग्रहोंसे युक्त सर्वमंगलकी सम्पन्नतामें रेवतीने पुत्रको प्रसव किया ॥८४॥ पुत्रकी उत्पत्ति सुन राजा बडा प्रसन्न हो स्नानकर सुवर्णके द्वारा जातकर्म आदि क्रिया करते हुए ॥ ८५ ॥

विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको दानदेकरराजाने संतुष्ट किया, बडे होनेपर उपनयन कराय राजाने सांग वेदोंको पढ़ाया ॥ ८६ ॥ तब वह धार्मिष्ठ सब अस्त्रोंका ज्ञाता सम्पूर्ण धर्मोंका कर्ता धर्ता रेवतनाम वीर्यवान् हुआ ॥ ८७ ॥ तब ब्रह्माजीने रेवतको मानवपदमें नियुक्ति किया और वह मन्वन्तरका अधिपति धर्मसे पृथ्वीका शासन करने लगा ॥ ८८ ॥ यह इस प्रकार मैंने देवीका प्रभाव संक्षेपसे वर्णन किया, विस्तारसे पुराणका माहात्म्य कौन वर्णनकर सकता है ॥८९॥ सूतजी बोले इस प्रकार अगस्त्यजी भागवतका माहात्म्य विधिपूर्वक श्रवण करके कुमारका पूजन कर अपने आश्रमको गये ॥ ९० ॥ हे ब्राह्मणो ! यह मैंने तुमसे भागवतका माहात्म्य वर्णन किया जो इसको श्रवण करते हैं वह अनेक भोग भोगकर अन्तमें मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ९१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे

यथाविधि च दानानि दत्त्वा विप्रानतोषयत् ॥ कृतोपनयनं राजा सांगान्वेदानपाठयत् ॥८६॥ सर्वविद्यानिधिर्जातो धर्मिष्ठोऽस्त्रविदां वरः ॥ धर्मस्य वक्ता कर्त्ता च रैवतो नाम वीर्यवान् ॥ ८७ ॥ नियुक्त वानथ ब्रह्मा रैवतं मानवे पदे ॥ मन्वंतराधिपः श्रीमान्गां शशास स धर्मतः ॥ ८८ ॥ इत्थं देव्या प्रभावोऽयं संक्षेपेणोपवर्णितः ॥ पुराणस्य च माहात्म्यं को वक्तुं विस्तरात्क्षमः ॥ ८९ ॥ सूत उवाच ॥ कुंभयोनिस्तु माहात्म्यं विधिं भागवतस्य च ॥ श्रुत्वा कुमारं चाभ्यर्च्य स्वाश्रमं पुनराययौ ॥ ९० ॥ इदं मया भागवतस्य विप्रा माहात्म्यमुक्तं भवतां समक्षम् ॥ शृणोति भक्त्या पठतीहभोगान्भुक्त्वाऽखिलान्मुक्तिमुपैति चांते ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे मानसखण्डे श्रीदेवीभागवतमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभाग श्रुतं माहात्म्यमुत्तमम् ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामः पुराणश्रवणे विधिम् ॥१॥ सूत उवाच ॥ श्रूयतां मुनयस्सर्वे पुराणेश्रवणे विधिः ॥ नराणां शृण्वतां येन सिद्धिः स्यात्सार्वकामिकी ॥ २ ॥ आदौ देवज्ञमाहूय मुहूर्त्तं कल्पयेत्सुधीः ॥ आरभ्य शुचिमासं तु मासषट्कं शुभावहम् ॥ ३ ॥ हस्ताश्विमूलपुष्यर्क्षे ब्रह्ममैत्रेन्दुवैष्णवे ॥ सत्तिथौ शुभवारे च पुराणश्रवणं शुभम् ॥ ४ ॥

श्रीदेवीभागवतमाहात्म्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ऋषि बोले हे महाभाग सूतजी ! हमने भागवतका माहात्म्य श्रवण किया अब आपके मुखसे पुराणश्रवणकी विधि सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥ सूतजी बोले हे ऋषियो ! तुम सब पुराण श्रवणकी विधि सुनो जिसके सुनतेही सब कामना सिद्ध होती हैं ॥२॥ पहले बुद्धिमान् ज्योतिषीको बुलाकर मुहूतको पूँछे और अच्छे महीने नक्षत्रमें आरंभ करके ॥ ३ ॥ हस्त, अश्विनी, मूल, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा, मृगशिरश्रवणनक्षत्र, अच्छी तिथि और अच्छे वारमें पुराण श्रवण करे ॥ ४ ॥

गुरुके नक्षत्रसे चौथे और पहले ५ ६ ४ ३ होनेसे क्रमसेधर्मकी प्राप्ति, लक्ष्मीकी प्राप्ति, कथा सिद्धि परमसुख ॥ ५॥ पीडा, राजभय ज्ञानप्राप्ति यह क्रमसे फल होता है,इससे पुराण श्रवणमें चक्र शोधन करै ऐसाशिवजीनेकहा है ॥ ६ ॥ अथवा देवीकी प्रीतिके निमित्त चारों नवरात्रमें दूसरे महीने तथा दूसरे नक्षत्र तिथिवारशोधनकरसुने ॥ ७ ॥ विवाहादिके समान सामग्री सजानी चाहिये यह नवाहयज्ञ यत्नसे करना चाहिये ॥ ८ ॥ दंभ लोभसे रहित अनेक इसमें सहाय कारी करने चाहिये, जो चतुर और वदान्य देवीकी भक्तिमें तत्पर हों ॥९॥ यह वार्त्ता देश देशमें प्रत्येक भक्तको सुनवा देनी कि देवीकथा होगी उसमें अवश्य आना चाहिये ॥ १० ॥ और गाणपत्य, शैव, शाक्त वैष्णव यह सबकोही सेवन करनी चाहिये कारण कि देवता शक्तिसहित हैं ॥ ११ ॥ श्रीदेवीभागवतके

गुरुभाद्वेद ४ वेदा ४ ब्ज १ शरां ५ गा ६ ब्धि ४ गुणः ३ क्रमात् ॥ धर्माप्तिरिंदिराप्राप्तिः कथासिद्धिः परं सुखम् ॥ ५ ॥ पीडाऽथ भूप तिभयं ज्ञानप्राप्तिः क्रमात्फलम् ॥ पुराणश्रवणे चक्रं शोधयेच्छिवभाषितम् ॥ ६ ॥ अथवा प्रीतये देव्या नवरात्रचतुष्टये ॥ शृणुयादन्य मासेऽपि तिथिवारर्क्षशोधिते ॥ ७ ॥ संभारं यादृशं कार्यं विवाहादौ च तादृशम् ॥ नवाहयज्ञे चाप्यस्मिन्विधेयं यत्नतो बुधैः ॥ ८ ॥ सहाया बहवः कार्या दंभलोभविवर्जिता ॥ चतुराश्च वदान्याश्च देवीभक्तिपरा नराः ॥९॥ प्रेष्या यत्नेन वार्तेयं देशेदेशे जनेजने ॥ आग न्तव्यमिहावश्यं कथा देव्या भविष्यति ॥१०॥ सौराश्च गाणपत्याश्च शैवाः शाक्ताश्च वैष्णवाः ॥ सर्वेषामपि सेव्येयं यतो देवास्सशक्तयः ॥११॥ श्रीमद्देवीभागवतपीयूषरसलोलुपैः ॥ आगंतव्यं विशेषेण कथार्थं प्रेमतत्परैः ॥१२॥ ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णाः स्त्रियश्चाश्रमिणस्तथा ॥ सकामाश्चापि निष्कामाः पातव्यं तैः कथामृतम् ॥ १३ ॥ नावकाशः कदाचित्स्यान्नवाहश्रवणेऽपि तैः ॥ आगंतव्यं यथा कालं यज्ञे पुण्या क्षणस्थितिः ॥ १४ ॥ विनयेनैव कर्तव्यमेवमाकारणं नृणाम् ॥ आगतानां च कर्तव्यं वासस्थानं यथोचितम् ॥ १५ ॥ कथास्थानं प्रकर्तव्यं भूमौ माजर्नपूर्वकम् ॥ लेपनं गोमयेनाथ विशालायां मनोरमम् ॥ १६ ॥

अमृतरूपी रसके लोलुप प्रेममें तत्पर मनुष्योंको कथाके निमित्त आना चाहिये ॥ १२ ॥ ब्राह्मणादि चारों वर्ण स्त्रियें संन्यासी सकाम निष्काम सबकोही कथा रूपी अमृत पान करना चाहिये ॥१३॥ यदि नवाह श्रवणमें भी उनको अवकाश न हो तो जिस समय अवकाश मिले थोडे कालको आना चाहिये। कारण कि यज्ञमें किंचित्काल स्थिति करना भी पुण्यदायक है ॥१४॥ बुलावा भी विनयके साथ करना चाहिये और आये हुओंको श्रेष्ठ निवासस्थान देना चाहिये ॥१५॥ भूमिकेमार्जन पूर्वक कथाका स्थान लीपना चाहिये और गोबरसे बडा स्थान लीपना चाहिये ॥ १६ ॥

और केलेके स्तंभसे शोभित मनोहर मण्डप करना चाहिये वितानके ऊपर ध्वजा पताका लगानी चाहिये ॥ १७ ॥ वक्ताका आसन दिव्य सुखसे बैठने योग्य उत्तर वा पूर्वमुख भली प्रकार रचना चाहिये ॥ १८ ॥ और सुननेवालोंके आसनभी यथोचित करे जो मनुष्य और स्त्री यथायोग्य कथा श्रवण कर सकें ॥ १९ ॥ अच्छा बोलनेवाला चतुर शास्त्र ज्ञाता देवीके आराधनमें तत्पर दयालु स्पृहारहित दक्ष और धैर्यवान् वक्ता परम श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ ब्राह्मणवत्सल, देवताका भक्त, कथाके रसमें परायण, उदार, लोभरहित, नम्र, हिंसारहित श्रोता होना चाहिये ॥२१॥ पाखण्डमें निरत लोभी स्त्री लम्पट धर्मध्वजी निठुर क्रोधी इस प्रकारका वक्ता देवी यज्ञमें नहीं लिया है ॥ २२ ॥ संदेहका छेदन करना यह पंडितका मुख्य गुण है श्रोतृबोधका करनेवाला व्यग्रता रहित पंडितक

कार्यस्तु मण्डपो रम्यो रंभास्तम्भोपशोभितः ॥ वितानमुपरिष्टात्तु पताकाध्वजराजितः ॥१७॥ वक्तुश्चैवासनं दिव्यं सुखास्तरणसंयुतम् ॥ रचितव्यं प्रयत्नेन प्राङ्मुखं वाप्युदङ्मुखम् ॥ १८ ॥ यथोचितानि कुर्वीत श्रोतॄणामासनानि च ॥ नृणां चैवाथ नारीणां कथाश्रवणहेतवे ॥ १९ ॥ वाग्ग्मी दांतश्च शास्त्रज्ञो देव्याराधनतत्परः ॥ दयालुर्निस्स्पृहो दक्षो धीरो वक्तोत्तमो मतः ॥ २० ॥ ब्रह्मण्यो देवताभक्तः कथारस परायणः ॥ उदारोऽलोलुपो नम्रः श्रोता हिंसादिवर्जितः ॥ २१ ॥ पाखण्डनिरतो लुब्धः स्त्रैणो धर्मध्वजस्तथा ॥ निष्ठुरः क्रोधनो वक्ता देवीयज्ञे न शस्यते ॥ २२ ॥ संशयच्छेदनायैकः पण्डितश्च तथागुणः॥श्रोतृबोधकृदव्यग्रः कार्य्यो वक्तुस्सहायकृत् ॥ २३ ॥ मुहूर्त्तदिवसा दर्वाग्वक्तृश्रोत्रादिभिर्जनैः ॥ कर्त्तव्यं क्षौरकर्मादि ततो नियमकल्पनम् ॥ २४ ॥ अरुणोदयवेलायां स्नायाच्छौचं विधाय च ॥ संध्यातर्प णकार्यं च नित्यं संक्षेपतश्चरेत् ॥ २५ ॥ कथाश्रवणयोग्यत्वसिद्धये गाश्च दापयेत् ॥ समस्तविघ्नहर्तारमादौ गणपतिं यजेत् ॥ २६॥ कलशांश्चापि संस्थाप्यपूजयेत्तत्र दिग्धवान् ॥ बटुकं क्षेत्रपालं च योगिनीर्मातृकास्तथा ॥ २७॥ तुलसीं चापि संपूज्य ग्रहान्विष्णुं च शंकरम् ॥ नवाक्षरेण मनुना पूजयेज्जगदम्बिकाम् ॥ २८ ॥

वक्ताका सहायक होना चाहिये ॥ २३ ॥ मुहूर्तसे एक दिन पहिले वक्ता श्रोतादिको नियम कल्पना क्षौरादि बनवाकर करनी चाहिये ॥ २४ ॥ अरुणोदय वेलामें स्नान शौचसे निवृत्त होकर सन्ध्या तर्पणके उपरान्त जपादि संक्षेपसे करना चाहिये ॥२५॥ कथा श्रवणके योग्य सिद्ध योग विचारले, समस्त विघ्नोंके दूर करनेको गणपतिका पूजन करे ॥ २६ ॥ कलश स्थापन करके दिग्देवता बटुक क्षेत्रपाल योगिनी मातृका ॥ २७ ॥ तुलसीगृह विष्णु शंकरका पूजन करे और नवाक्षर मन्त्रसे देवीको पूजे ॥ २८ ॥

श्रीभागवतकी पुस्तकको सम्पूर्ण उपचारसे पूजन करें कारण कि श्रीदेवीकी यह वाङ्मयी मूर्ति यथावत् सुन्दराक्षरोंसे युक्त है ॥ २९ ॥ कथाविघ्न शांतिके निमित्त पांच ब्रह्मचारियोंका वरण करें वे नवार्ण मन्त्र जपे और सप्तशतीका स्तोत्र पाठ करें ॥ ३० ॥ प्रदक्षिणा नमस्कारके अन्तमें स्तुतिकरे हे कात्यायनि, महामाया, भवानि, भुवनेश्वरि ॥ ३१ ॥ हे कृपामयी ! संसार सागरमें मग्न हुए मेरा उद्धार करो ब्रह्मा विष्णु शिवसे आराधन योग्य हे जगदम्बा तुम प्रसन्न हो ॥ ३२ ॥ हे देवी ! हमको मनकी अभिलाषा युक्त वर दो आपको प्रणाम है, इस प्रकार प्रार्थना कर नियमसे कथा सुने ॥ ३३ ॥ वक्ताकीभी व्यास बुद्धिसे नियमपूर्वक पूजा करे माला अलंकार भूषणादिसे भूषितकर पूजन करे ॥३४॥ हे सर्वशास्त्र और इतिहासके ज्ञाता ! व्यासरूप आपको प्रणाम है. आप कथारूप

सर्वोपचारैस्संपूज्य श्रीभागवतपुस्तकम् ॥ श्रीदेव्या वाङ्मयीं मूर्तिं यथावच्छोभनाक्षरम् ॥ २९ ॥ कथाविघ्नोपशांत्यर्थं वृणुयात्पंचवा डवान् ॥ जाप्यो नवार्णं मंत्रस्तैः पाठचस्सप्तसतीस्तवः ॥ ३० ॥ प्रदक्षिणनमस्कारान्कृत्वांते स्तुतिमाचरेत् ॥ कात्यायनि महामाये भवानि भुवनेश्वरि ॥ ३१ ॥ संसारसागरे मग्नं मामुद्धर कृपामये ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाराध्ये प्रसीद जगदंबिके ॥ ३२ ॥ मनोभिलषितं देवि वरं देहि नमोऽस्तु ते ॥ इति संप्रार्थ्य शृणुयात्कथां नियतमानसः ॥३३॥ वक्तारं चापि संपूज्य व्यासबुद्ध्या यतात्मवान् ॥ माल्यालंकारवस्त्राद्यैस्सं भूष्य प्रार्थयेच्च तम् ॥३४॥ सर्वशास्त्रेतिहासज्ञ व्यासरूप नमोऽतु ते ॥ कथाचंद्रोदयेनांतस्तमस्तोमं निराकुरु ॥ ३५ ॥ तदग्रे तु नवाहान्तं कर्त्तव्या नियमास्तदा ॥ विप्रादीनुपवेश्यादौ संपूज्योपविशेत्स्वयम् ॥ ३६ ॥ श्रोतव्यं सावधानेन चतुर्वर्गफलाप्तये ॥ गृहपुत्रकलत्राप्तधन चिंतामपास्य च ॥ ३७ ॥ सूर्योदयं समारभ्य किंचित्सूर्येऽवशेषिते ॥ मुहूर्तमात्रे विश्रम्य मध्याह्ने वाचयेत्सुधीः ॥३८॥ मलमूत्रजयायैषां लघु भोजनमिष्यते ॥ हविष्यान्नं वरं भोज्यं सकृदेव कथार्थिना ॥३९॥ अथवा स्यात्फलाहारी पयोभुग्वा घृताशनः ॥ यथा स्यान्न कथाविघ्नस्तथा कार्यं विचक्षणैः ॥ ४० ॥

चन्द्रोदयसे मनका अंधकार दूर करो ॥ ३५ ॥ उसीके आगे नवाहान्त नियम करने चाहिये ब्राह्मणादिको पूजनकर बैठाय पीछे आपभी बैठे ॥ ३६ ॥ चार पदार्थकी प्राप्तिके निमित्त सावधानीसे कथा श्रवण करनी चाहिये. गृह, पुत्र, कलत्र, धनकी चिन्ता त्याग देनी ॥ ३७ ॥ सूर्योदयसे प्रारंभ कर जब कुछ सूर्य शेष रह जाय और दो मुहूर्त मध्याह्नमें विश्राम कर शेष दिनमें कथा होती रहे ॥ ३८ ॥ मल मूत्रके जयके निमित्त थोडा भोजन करना चाहिये, कथावालेको एक समय हविष्य भोजन करना चाहिये ॥ ३९ ॥ अथवा फलहारी दुग्धाहारी वा घृतसेवी होना चाहिये, बहुत क्या जिससे कथामें विघ्न नहीं चतुर पुरुषोंको

वही वार्ता करनी चाहिये, ॥४०॥ हे ब्राह्मणो ! मैं कथा श्रवणमें निष्ठावालोंके नियम कहता हूं ब्रह्मा विष्णु महेशोंमें जो भेद करते हैं ॥ ४१ ॥ जो देवीकी भक्तिसे हीन पाखण्डी हिंसक खल हैं ब्राह्मण द्रोही नास्तिक हैं वे कथा श्रवणके योग्य नहीं हैं ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण धनके लोभी पराई स्त्री और परधनके लेनेकी इच्छावाले तथा देवधन हरण करनेवाले कथा श्रवणके योग्य नहीं हैं ॥ ४३ ॥ ब्रह्मचारी भूमिपर शयन करनेवाले सत्यवक्ता जितेन्द्रिय होकर कथा समाप्तिमें पत्तलपर भोजन करे ॥ ४४ ॥ बैंगन कलिन्द (कुरैयाका फल) तेल, दो दलके शाक, मधु, भुनाया अन्न, भावदुष्ट और अन्न व्रतीको त्यागना चाहिये ॥४५॥ मांस मसरान्न उर्दकी (अन्न, विशेष) लहसन मूली हींग प्याज गाजर ॥४६॥ पेठा नालिका शाक कथा व्रतीको भोजन करना न चाहिये. काम,

कथाश्रवणनिष्ठानां वक्ष्यामि नियमं द्विजाः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां मध्ये ये भेददर्शिनः ॥ ४१ ॥ देवीभक्तिविहीना ये पाखण्डा हिंसकाः खलाः ॥ विप्रद्रुहो नास्तिका ये न ते योग्याः कथाश्रवे ॥ ४२ ॥ ब्रह्मस्वहरणेलुब्धाः परदारधनेषु च ॥ देवस्वहरणे तेषां नाधिकारः कथाश्रवे ॥ ४३ ॥ ब्रह्मचारी च भूशायी सत्यवक्ता जितेंद्रियः ॥ कथासमाप्तौ भुंजीत पत्रावल्यां यतात्मवान् ॥ ४४ ॥ वृंताकं च कलिन्दं च तैलं च द्विदलं मधु ॥ दग्धमन्नं पर्युषितं भावदुष्टं त्यजेद्व्रती ॥ ४५ ॥ आमिषं च मसूरान्नमुदक्याद्दष्टमेव च ॥ रसोनं मूलकं हिंगु पलांडुं गृंजनं तथा ॥ ४६ ॥ कूष्मांडं नलिकाशाकं न भुंजीत कथाव्रती ॥ कामं क्रोधं मदं लोभं दंभं मानं च वर्जयेत् ॥ ४७ ॥ विप्रध्रुक्पतितव्रात्यश्वपाकयवनांत्यजैः ॥ उदक्यया वेदबाह्यैर्न वदेद्यः कथाव्रती ॥४८॥ वेदगोगुरुविप्राणां स्त्रीराज्ञां महतां तथा ॥ देवानां देवभक्तानां न निंदां शृणुयादपि ॥ ४९ ॥ विनयं चार्जवं शौचं दयां च मितभाषणम् ॥ उदारं मानसं चैव कुर्याद्यस्तु कथाव्रती ॥ ५० ॥ श्वित्री कुष्ठी क्षयी रुग्णो भाग्यहीनश्च पापकृत् ॥ दरिद्रश्चानपत्यश्च भक्त्येमां शृणुयात्कथाम् ॥ ५१ ॥ वंध्या वा काकवन्ध्यावादुर्भगा वा मृतार्भका ॥ पतद्गर्भांगना या च ताभिः श्राव्या तथा कथा ॥ ५२ ॥

क्रोध, मद, लोभ, दंभ, मानको त्यागना चाहिये ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण द्रोही पंडित व्रात्य चाण्डाल यवन अन्त्यज रजस्वला और वेदबाह्योंसे कथा व्रतीको आलाप करना न चाहिये ॥ ४८ ॥ वेद गौ गुरु विप्र स्त्री राजा बडे पुरुष देवता और देवभक्त इनकी निन्दा कभी न सुने ॥ ४९ ॥ विनय सीधापन करना पवित्रता दया थोड़ा बोलना उदारता युक्त मन यह कथा व्रतीको करना चाहिये ॥ ५० ॥ श्वेत दागवाला कुष्ठी क्षयी रोगी भाग्यहीन पापात्मा दरिद्र और अनपत्य वेभी भक्तिसे अपने रोग दूर होनेको कथा श्रवण करे कुष्ठीजन समाजसे पृथक् बैठे ॥ ५१ ॥ वंध्या काकवंध्या दुर्भगा मृतभर्तृका वा जिसका गर्भ गिरजाता

हो उसको यह कथा श्रवण करनी चाहिये ॥५२॥ जो विना श्रम धर्म, अर्थ काम मोक्षकी इच्छा करता है उसको यत्नसे देवीभागवत सुननी चाहिये॥ ५३ ॥ यह कथाके नौ दिन नौ यज्ञके समान हैं इनमें दान हवन जप अनन्त फल देनेवाला होता है॥ ५४ ॥ इस प्रकार नवाहव्रत करके फिर उद्यापन करे, महाष्टमी व्रतके समान फलकी इच्छा वालोंको कर्तव्य है ॥५५॥ निष्काम श्रवण करनेसे श्रोता पवित्र हो मुक्तिको प्राप्त होते हैं, कारण कि, यह भगवती मनुष्योंको भोग और मोक्षकी देनेवाली है ॥ ५६ ॥ पुस्तक और वक्ताकी नित्य पूजा करनी चाहिये और वक्ताके दिये हुए प्रसादको भक्तिपूर्वक ग्रहण करना चाहिये ॥ ५७ ॥ कुमारीका पूजन नित्यकर भोजन कराय प्रार्थना करनी चाहिये सौभाग्यवती और ब्राह्मणोंकी पूजा होगी इसमें सिद्धि होगी कोई संदेह नहीं ॥५८॥ समाप्तिमें

धर्मार्थकाममोक्षांश्च यो वांछति विनाश्रमम् ॥ भगवत्या भागवतं श्रोतव्यं तेन यत्नतः॥५३॥ कथादिनानि चैतानि नवयज्ञैः समानि हि ॥ तेषु दत्तं हुतं जप्तमनन्तफलदं भवेत् ॥ ५४ ॥ एवं नवाहं तु कृत्वोद्यापनमाचरेत् ॥ महाष्टमीव्रतं यद्वत्तथा कार्यं फलेप्सुभिः ॥ ५५ ॥ निष्कामाः श्रवणे नैव पूता मुक्तिं व्रजन्ति हि ॥ भोगमोक्षप्रदा नृणां यतो भगवती परा ॥ ५६ ॥ पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्या तु नित्यशः ॥ वक्त्रा दत्तं प्रसादं तु गृह्णीयाद्भक्तिपूर्वकम् ॥ ५७ ॥ कुमारीपूजयेन्नित्यं भोजयेत्प्रार्थयेच्च यः ॥ सुवासिनीश्च विप्रांश्च तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ ५८ ॥ गायत्र्या नामसाहस्रं समाप्तावथवा पठेत् ॥ विष्णोर्नामसहस्रं च सर्वदोषोपशान्तये ॥ ५९ ॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ॥ न्यूनं संपूर्णतां याति तस्माद्विष्णुं च कीर्तयेत् ॥ ६० ॥ देव्याः सप्तशतीमंत्रैः समाप्तौ होममाचरेत् ॥ देवीमाहात्म्यमूलेन नवार्णमनुनाऽथवा ॥ ६१ ॥ गायत्र्या त्वथवा होमः पायसेन ससर्पिषा ॥ यतो भागवतं त्वेतद्गायत्रीमयमीरितम् ॥ ६२ ॥ वाचकं तोषयेत्सम्यग्वस्त्रभूषाधनादिभिः ॥ प्रसन्ने वाचके सर्वाः प्रसन्नास्तस्यदेवताः ॥६३॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥ पृथिव्यां देवरूपास्ते तुष्टेष्वेष्वीप्सितं फलम् ॥ ६४ ॥

गायत्री सहस्र नामका पाठ करे वा सर्वदोषकी शांतिके निमित्त विष्णु सहस्र नामका पाठ करे ॥५९॥ जिसके स्मरण और नामोच्चारणसे तप यज्ञ और क्रियामें न्यूनताभी सम्पूर्णताको प्राप्त होती है इस कारण विष्णुका कीर्तन करे ॥ ६० ॥ समाप्तिमें देवीसप्तशतीके मंत्रोंसे हवन करे अथवा देवीमाहात्म्यके मूलमंत्र अथवा श्लोकों ॥६१॥ अथवा गायत्री मंत्रसे दूध और घृतसे हवन करे. कारण कि यह भागवत गायत्री मंत्रमय है ॥ ६२ ॥ वस्त्र भूषणादिसे वाचकको भली प्रकार संतुष्ट करना चाहिये वाचकके प्रसन्न होनेमें उनपर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥६३॥ फिर भक्तिसे ब्राह्मणोंको भोजन कराय भक्तिसे उनको सन्तुष्ट करे.

कारण कि यह पृथ्वीमें देवरूप हैं इनके सन्तुष्ट होनेसे अभीष्टफल मिलता है ॥ ६४ ॥ श्रेष्ठवस्त्र धारण किये कुमारियोंका देवीकी प्रीतिके निमित्त पूजन करे. उनको दक्षिणा देकर अपनी सिद्धिकी प्रार्थना करे ॥ ६५ ॥ और भी अनेक प्रकारके दान और सुवर्ण दुधारी गाय देनी चाहिये घोडा पृथ्वी देनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है ॥ ६६ ॥ और यह देवी भागवत सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई सुवर्णके सिंहासनमें स्थापनकर पट्टवस्त्रसे वेष्टितकर ॥६७॥ अष्टमी वा नवमीको वाचकको अर्चन करके पुस्तकके दान करनेसे अनेक भोग यहाँ भोगकर दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ दरिद्र दुर्बल बालक तरुण बुड्ढा पुराणका ज्ञाता सदा वंदनीय औरं पूजनीय है ॥ ६९ ॥ यद्यपि लोकमें गुरुजन्मा बहुत गुरु हैं परन्तु उन सबमें पुराण ज्ञाता परमगुरु है ॥ ७० ॥

सुवासिनीः कुमारीश्च देवीभक्त्या च भोजयेत् ॥ ताभ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा प्रार्थयेत्सिद्धिमात्मनः ॥६५॥ दद्याद्दानानि चान्यानि सुवर्णं गाः पयस्विनीः ॥ हयानिभान्मेदिनीं च तस्य स्यादक्षयं फलम् ॥ ६६ ॥ देवीभागवतं चैतल्लिखितं शोभनाक्षरम् ॥ हेमसिंहासने स्थाप्य पट्टवस्त्रेण वेष्टितम् ॥ ६७ ॥ अष्टम्यां वा नवम्यां च वाचकायार्चिताय च ॥ दद्यात्स भोगान्भुक्त्वेह दुर्लभं मोक्षमाप्नुयात् ॥ ६८ ॥ दरिद्रो दुर्बलो बालस्तरुणो जरठोऽपि वा ॥ पुराणवेत्ता वंद्यः स्यात्पूज्यो मान्यश्च सर्वदा ॥ ६९ ॥ सन्ति लोकस्य बहवो गुरवो गुणजन्मतः ॥ सर्वेषामपि तेषां च पुराणज्ञः परो गुरुः ॥ ७० ॥पौराणिको ब्राह्मणस्तु व्यासासनसमाश्रितः ॥ असमाप्ते प्रसंगे तु नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ ७१ ॥ पौराणकीं कथां दिव्यां येऽपि शृण्वंत्यभक्तितः ॥ तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखदारिद्र्यभागिनाम् ॥ ७२ ॥ असंपूज्य पुराणं तु ताम्बूलकुसुमादिभिः ॥ ये शृण्वंति कथा देव्यास्ते दरिद्रा भवंति हि ॥७३॥ कीर्त्यमानां कथां त्यक्त्वा ये व्रजंत्यन्यतो नराः ॥ भोगान्तरे प्रणश्यंति तेषां दाराश्च सम्पदः ॥ ७४ ॥ ये च तुंगासनारूढाः कथां शृण्वंति दांभिकाः ॥ ते वायसा भवंत्यत्र भुक्त्वा निरययातनाः ॥ ७५ ॥

पुराण ज्ञाता ब्राह्मण व्यास आसनपर बैठा हुआ प्रसङ्गकी समाप्ति न होनेपर किसीको प्रणाम न करे ॥ ७१ ॥ और जो पुराणकी दिव्यकथाको अभक्तिसे सुनते हैं उनको पुण्य फल नहीं मिलता वह दुःख दरिद्रके भागी हैं ॥ ७२ ॥ जो पुराणके विना पूजे ताम्बूल कुसुमादिको सेवन कर कथा सुनते हैं वे दरिद्री होते हैं ॥७३॥ जो मनुष्य होती हुई कथाको छोडकर अन्य स्थानमें चले जाते हैं भोगके उपरांत उनकी दारा और सम्पदा नष्ट हो जाती है ॥ ७४ ॥ जो दांभिक वक्तासे ऊंचे स्थानपर बैठकर कथा सुनते हैं वे नरक यातना भोगकर वायस होते हैं ॥ ७५ ॥

जो बडे मोलके आसन और वीरासनपर बैठकर कथा सुनते हैं वे अर्जुन के वृक्ष होते हैं ॥ ७६ ॥ जो कथा होनेमें दुरुक्ति करते हैं कटुशब्द कहते हैं वे पहले गर्दभ होकर फिर गिरगट होते हैं ॥ ७७ ॥ जो पुराणज्ञ और पापहारी कथाकी निंदा करते हैं वह सौ जन्मतक कुत्ते होते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ७८ ॥ और जो कथा कहनेवाले के बराबर आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं वे नरकमें गुरु स्त्री गमनके पातकको प्राप्त होते हैं ॥७९॥ और जो विना प्रणाम किये सुनते हैं वे विषके वृक्ष होते हैं और जो लेटकर सुनते हैं वे अजगर होते हैं ॥ ८० ॥ और जो मनुष्य कभी भी पुराणकी कथाको श्रवण नहीं करते वे घोर नरक भोग

ये चाढ्यासनसंस्थाश्च ये वीरासनसंस्थिताः ॥ शृण्वंति च कथां दिव्यां ते स्युरर्जुनशाखिनः ॥ ७६ ॥ कथायां कीर्त्यमानायां ये वदंति दुरुत्तरम् ॥ रासभास्तेभवंतीह कृकलासास्ततः परम् ॥ ७७ ॥ निंदंति ये पुराणज्ञान् कथां वा पापहारिणीम् ॥ ते तु जन्मशतं दुष्टाः शुनकाः स्युर्न संशयः ॥ ७८ ॥ ये शृण्वंति कथां वक्तुः समानासनसंस्थिताः ॥ गुरुतल्पसमं पापं लभंते नरकालयाः ॥ ७९ ॥ ये चाप्रणम्य शृण्वंति ते भवंति विषद्रुमाः ॥ शयाना येऽपि शृण्वंति भवंत्यजगरादयः ॥ ८० ॥ ये कदाचन पौराणीं न शृण्वंति कथां नराः ॥ ते घोरं नरकं भुक्त्वा भवन्ति वनसूकराः ॥ ८१ ॥ ये कथां नानुमोदन्ते विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः ॥ कोटयब्दं निरयं भुक्त्वा भवंति ग्रामसूकराः ॥ ८२ ॥ आसनं भाजनं द्रव्यं फलं वस्त्राणि कम्बलम् ॥ पुराणज्ञाय यच्छन्ति ते व्रजन्ति हरेः पदम् ॥ ८३ ॥ पुराणपुस्तकस्यापि ये पटं वसनं नवम् ॥ प्रयच्छन्ति शुभं सूत्रं ते नरास्सुख भागिनः ॥ ८४ ॥ पुराणानां तु सर्वेषां श्रवणाद्यत्फलं लभेत् ॥ तस्माच्छतगुणं पुण्यं देवीभागवताल्लभेत् ॥ ८५ ॥ यथा सरित्सु प्रवरा गंगा देवेषु शंकरः ॥ काव्ये रामायणं यद्वज्ज्योतिष्मत्सु यथा रविः ॥ ८६ ॥

कर अन्तमें वनसूकर होते हैं ॥ ८१ ॥ औरै जो कथासे प्रसन्न न होकर विघ्न करते हैं वे मूर्ख करोडों वर्ष नरक भोगकर अन्तमें ग्रामसूकर होते हैं॥ ८२ ॥ आसन पात्र द्रव्य फल वस्त्र कम्बल वस्त्र जो कथा कहनेवालोंको देते हैं वे नारायणके स्थानको जाते हैं ॥ ८३ ॥ और पुराण पुस्तकके निमित्त जो पट्टा नया वस्त्र सुंदर डोरी देते हैं वे मनुष्य सुखभागी होते हैं ॥ ८४ ॥ सब पुराणोंके सुननेका जो फल है उससे सौ गुणा पुण्य देवी भागवतके सुननेसे मिलता है ॥ ८५ ॥ जैसे नदियोंमें गंगा देवताओंमें शिव, काव्योंमें रामायण, ज्योतिष पदार्थोंमें सूर्य ॥ ८६ ॥

प्रसन्न करनेवालोंमें चन्द्रमा धनोंमें यश, क्षमावालोंमें जैसे भूमि, गंभीरतामें जैसे सागर ॥ ८७ ॥ पापनाश करने वालोंमें जैसे गायत्री, पापनाशमें जैसे नारायण, वैसेही अठारह पुराणोंमें देवीभागवत है ॥ ८८ ॥ जिस किसी उपायसे भी जो नौवार करके इसे सुनते हैं उसका फल नहीं कहा जा सकता वह पुरुष सदा जीवन्मुक्त है ॥ ८९ ॥ राज शत्रुभयकी प्राप्तिमें तथा महामारीके भयमें दुर्भिक्ष राज्य भंगादिकी शांतिके निमित्त इसको सुनना चहिये ॥ ९० ॥ भूत प्रेतके नाश करनेको शत्रुसे राज्य लेनेको पुत्रलाभके निमित्त हे ब्राह्मणो! देवीभागवत सुनना चाहिये ॥ ९१ ॥ यह श्रीमद्भागवत जो पढ़ते और सुनते हैं श्लोक आधा श्लोक वा चरण पढ़ते हैं वे परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ९२ ॥ भगवती देवीने स्वयं इसको आधे श्लोकमें प्रकाशित किया था, शिष्योंकी परंपरासे

आह्लादकानां चन्द्रश्च धनानां च यथा यशः ॥ क्षमावतां यथा भूमिर्गांभीर्ये सागरो यथा॥८७॥ मंत्राणां चैव सावित्री पापनाशे हरिस्मृतिः॥ अष्टादशपुराणानां देवीभागवतं तथा ॥८८॥ येनकेनाप्युपायेन नवकृत्वः शृणोति चेत् ॥ न शक्यं तत्फलं वक्तुं जीवन्मुक्तस्स एव हि॥८९॥ राजशत्रुभये प्राप्ते महामारीभये तथा ॥ दुर्भिक्षे राष्ट्रभंगे च तच्छांत्यै शृणुयादिदम् ॥ ९० ॥ भूतप्रेतविनाशाय राज्यलाभाय शत्रुतः ॥ पुत्रलाभाय शृणुयाद्देवीभागवतं द्विजाः ॥ ९१ ॥ श्रीमद्भागवतं यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि ॥ श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा स याति परमां गतिम् ॥ ९२ ॥ भगवत्या स्वयं देव्या श्लोकार्द्धेन प्रकाशितम् ॥ शिष्य प्रशिष्यद्वारेण तदेव विपुलीकृतम् ॥ ९३ ॥ न गायत्र्याः परो धर्मो न गायत्र्याः परन्तपः ॥ न गायत्र्याः समो देवो न गायत्र्याः परो मनुः ॥ ९४ ॥ गातारं त्रायते यस्माद्गायत्री तेन सोच्यते ॥ साऽत्र भागवते देवी सरहस्या प्रतिष्ठिता ॥ ९५ ॥ अतो भागवतस्यास्य देव्याः प्रीतिकरस्य च ॥ महांत्यपि पुराणानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ९६ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्ब्राह्मणानां धनं धर्मो धर्मसुतेन यत्र गदितो नारायणेनामलः ॥ गायत्र्याश्च रहस्यमत्र च मणिद्वीपश्च संवर्णितः श्रीदेव्या हिमभूभृते भगवती गीता च गीतास्वयम् ॥९७॥

इसी का विस्तार होगया है ॥ ९३ ॥ गायत्रीके समान परम धर्मऔर गायत्रीके समान परम तप नहीं है गायत्री समान देवता और गायत्रीके बराबर कोई मंत्र नहीं है ॥ ९४ ॥ गाने अर्थात् जपनेवालेकी रक्षा करती है इससे इसको गायत्री कहते हैं यह देवी इस भागवतमें रहस्य सहित प्रतिष्ठित है ॥ ९५ ॥ इस कारण इस देवीकी प्रीति करनेवाली भागवतके और दूसरे महापुराण सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है ॥ ९६ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराण निर्मल ब्राह्मणोंका धन है जिसमें नारायण और धर्म पुत्रने भी निर्मल धर्म कहा है और गायत्रीका रहस्य मणिद्वीपमें वर्णन किया है और हिमालय पर्वतपर भगवतीने स्वयं

गीता कही है ॥ ९७ ॥ इस कारण लोकमें इसके बराबर दूसरा पुराण नहीं है इस कारण हे ब्राह्मणो ! सदा इसको सेवन करना चाहिये ॥ ९८ ॥ जिसके सम्पूर्ण प्रभावको विधाता हरि गिरीश अनन्त (शेष) भी नहीं जानते अंशांशक और दूसरे देवता तो क्या हैं ऐसी जगदम्बिकाके निमित्त नित्य नमस्कार है ॥ ९९ ॥ जिसके चरणारविन्दकी रजको प्राप्त होकर ब्रह्मा निरन्तर जगत्को सृजन करते हैं और विष्णु पालन करते हैं रुद्र संहार करते हैं उस जगदम्बिकाके निमित्त नित्य नमस्कार है ॥ १०० ॥ सुधाका कूप और उसके निकट देववृक्षोंकी पंक्तिसे शोभित मणिद्वीप जो चिन्तामणिमय गृहोंसे चित्र

तस्मान्नास्य पुराणस्य लोकेऽन्यत्सदृशम्परम् ॥ अतस्स दैव संसेव्यं देवीभागवतं द्विजाः ॥ ९८ ॥ यस्याः प्रभावमखिलं न हि वेद धाता नो वा हरिर्न गिरिशो न हि चाप्यनन्तः ॥ अंशका अपि च ते किमुतान्यदेवास्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै ॥ ९९ ॥ यत्पादपंकजरजः समवाप्य शिश्वं ब्रह्मा सृजत्यनुदिनं च बिभर्ति विष्णुः ॥ रुद्रश्च संहरति नेतरथा समर्थास्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै ॥ १०० ॥ सुधाकूपारांतस्त्रिदशतरुवाटीविलसिते मणिद्वीपे चिन्तामणिमयगृहे चित्ररुचिरे ॥ विराजन्ती यम्बां परशिवहृदि स्मेरवदनां नरो ध्यात्वा भोगं भजति खलु मोक्षं च लभते ॥ १०१ ॥ ब्रह्मेशाच्युतशक्राद्यैर्महर्षिभिरुपासिता ॥ जगतां श्रेयसे साऽस्तु मणिद्वीपाधिदेवता ॥ १०२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ समाप्तमिदं स्कान्दीयं माहात्म्यम् ॥ वेदांगाग्निकुशैलशैलशिखिनां मूले तु संवत्सरे राधे मासि च मेचके हरितिथौ सप्तार्चिषो वासरे ॥ माहात्म्यं जगदम्बिकांघ्रियुगलं नत्वाऽम्बिकाप्रीतये पूर्तिं रामपदेन नीतममलं स्कान्दीयमेतच्छुभम् ॥ १ ॥ श्रीभगवती मणिद्वीपाधिदेवता जगदम्बिका विजयते ॥ शुभमस्तु ॥

विचित्र और रुचिर है वहाँ कल्याण हृदयवाली स्मितमुखी भगवती विराजमान है उनको ध्यान करके मनुष्य भोग मोक्षको अवश्य प्राप्त होता है ॥ १०१ ॥ ब्रह्मा शिव विष्णु इन्द्रादिसे उपास्यमान वह मणिद्वीपकी अधिष्ठात्री देवी जगत्के कल्याणके निमित्त हो ॥ १०२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये पण्डितवरश्री सुखानन्दमिश्रसूनुपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां श्रवणविधिवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यं भाषाटीकासमेतं समाप्तम्

अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते प्रथमस्कन्धः प्रारभ्यते ।

दोहा–गौरी शंभु गिरा गुरु, गोविंद गणपति गंग ॥ सुमिरि व्यास भाषा करत, देवी कथा प्रसंग ॥ १ ॥
जासु देह मति मति विषय, स्थित जो जगमात ॥ मति न लखत जेहि रूपको, मति प्रेरक सुखदात ॥ २ ॥
सकल निगम उत्तंसमणि, हृल्लेखा जगवन्द ॥ मातु भवानीके चरण, नमो नमः सुख कन्द ॥ ३ ॥
तरुण चन्द्र शिर दयामय, कर अंकुश अरु पाश ॥ मन्दहास्ययुत भक्तके, काटत सब दुख त्रास ॥ ४ ॥
श्रीशंकर आचार्य अरु, मात पिता शिर नाय ॥ देवीभागवत ग्रंथकी, भाषा लिखत बनाय ॥ ५ ॥

सबकी चैतन्य अर्थात् आत्मारूप उस अनादिभूत ब्रह्मविषयक शुद्ध सत्त्व अन्तर्मुख प्रतिबिम्ब विशिष्ट वृत्तिरूप विद्याको अर्थात् आत्मरूप उस प्रसिद्ध विद्याको ध्यान करते हैं इस प्रकार ध्यान की हुई माया विशिष्ट ब्रह्मरूपिणी भगवती हमारी बुद्धिको ध्यान करनेमें प्रेरणा करे, जिससे हमारे चित्तकी वृत्ति निरन्तर उसके चारित्रमें गायत्रीमें अन्तर्यामी ब्रह्मप्रतिपादन होनेसे सब वेदसे सम्मत गायत्रीके पद और उसी छन्दसे घटित मंगला चरणसेही वह भागवतमें प्रतिपाद्यभी वस्तु

ॐ सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि ॥ बुद्धिं या नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ शौनक उवाच ॥ सूत सूत महाभाग धन्योऽसि पुरुषर्षभ ॥ यदधीतास्त्वया सम्यक्पुराणसंहिताः शुभाः ॥ २ ॥ अष्टादश पुराणानि कृष्णेन मुनिनाऽनघ ॥ कथितानि सुदिव्यानि पठितानि त्वयाऽनघ ॥ ३ ॥ पंच लक्षणयुक्तानि सरहस्यानि मानद ॥ त्वया ज्ञातानि सर्वाणि व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ ४ ॥ अस्माकं पुण्ययोगेन प्राप्तस्त्वं क्षेत्रमुत्तमम् ॥ दिव्यं विश्वसनं पुण्यं कलिदोषविवर्जितम् ॥ ५ ॥

माया विशिष्टअन्तर्यामी ब्रह्मरूपही है ऐसा जानना चाहिये ॥ १ ॥ शौनक बोले, हे महाभाग सूतजी! तुमधन्य हो जो तुमने सम्पूर्ण पुराण संहिता भली प्रकार अध्ययन की है ॥२॥हे पाप रहित!जो दिव्य अठारह पुराण भगवान् वेदव्यासजीने रचना किये हैं सो तुमने भली प्रकार अध्ययन किये हैं ॥३॥ वह सर्ग प्रति सर्ग वंश मन्वन्तर वंशानुचारितके सहित पांच लक्षणवाले हैं वह गुप्त अर्थ सहित आपने सत्यवती पुत्री व्यासजीसे पढे हैं॥४॥ हमारे पुण्य योगसे आप यहाँ उत्तम क्षेत्रमें प्राप्त हुए हो दिव्य सो मुनियोंका विश्राम देनेवाला कलिके दोषसे रहित ॥ ५ ॥

यह मुनियोंका समाज है अब हम सावधान चित्तसे पवित्र संहिता सुननेकी इच्छा करते हैं आप हमसे कथन कीजिये ॥ ६ ॥ हे सर्वज्ञ ! तीन ताप रहित आप दीर्घायु हूजिये हे महाभाग ! इस समय आप ब्रह्मसम्मत पुराण वर्णन कीजिये ॥७॥ हे सूत ! श्रोत्रादि इन्द्रिययुक्त मनुष्य स्वादमेंविचक्षण हैं वो विधिसे वंचित हुए पुराणोंको नहीं सुनते हैं ॥८॥ जैसे छःरसोंसे जिह्वा और इन्द्रियोंका सुख प्राप्त होता है इसी प्रकार वचनोंद्वारा बुद्धिमानोंनेश्रोत्रेन्द्रियको आह्लाद देनेवाले महात्माओंके वचन कहे हैं ॥ ९ ॥श्रोत्ररहित होनेसे भी, शब्दसे सर्प मोहित होजाते हैं और जो कर्णयुक्त होकरभी कथा नहीं सुनते उनको कर्ण ही नहीं जानो ॥१०॥ इस कारण हे सौम्य ! सम्पूर्ण ब्राह्मण सावधान होकर सुननेकीइच्छा वाले कलिभयसे नैमिषारण्य क्षेत्रमें निवास करते हैं ॥ ११ ॥ जैसे हों वैसे

समाजोऽयं मुनीनां हि श्रोतुका मोऽस्ति पुण्यदाम् ॥ पुराणसंहितां सूत ब्रूहि त्वं नः समाहितः ॥ ६ ॥ दीर्घायुर्भव सर्वज्ञ तापत्रयविवर्जितः ॥ कथयाद्य महाभाग पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ ७ ॥ श्रोत्रेन्द्रिययुताः सूत नराः स्वादविचक्षणाः ॥ न शृण्वंति पुराणानि वंचिता विधिना हि ते ॥८॥ यथाजिह्वेन्द्रियाह्लादः षड्रसैः प्रतिपद्यते ॥ तथा श्रोत्रेंद्रियाह्लादो वचोभिः सुधियां स्मृतः ॥९॥ अश्रोत्राः फणिनः कामं मुह्यंति हि नभोगुणैः ॥ सकर्णा ये न शृण्वंति तेऽप्यकर्णाः कथं नच ॥ १० ॥ अतः सर्वे द्विजाः सौम्य श्रोतुकामाः समाहिताः ॥ वर्तंते नैमिषारण्ये क्षेत्रे कलिभयार्दिताः ॥११॥ येनकेनाप्युपायेन कालातिवाहनं स्मृतम् ॥ व्यसनैरिह मूर्खाणां बुधानां शास्त्रचिंतनैः॥१२॥ शास्त्राण्यपि विचित्राणि जल्पवादयुतानि च ॥(त्रिविधानि पुराणानि शास्त्राणिविविधानिच॥वितंडाच्छलयुक्तानि गर्वामर्षकराणि च ॥१॥) नानार्थवादयुक्तानि हेतुमंति बृहंति च ॥ १३ ॥ सात्त्विकं तत्र वेदांतं मीमांसा राजसं मतम् ॥ तामसं च न्यायशास्त्रं हेतुवादाभियंत्रितम् ॥१४॥ तथैव च पुराणानि त्रिगुणानिकथानकैः ॥ कथितानि त्वया सौम्य पंचलक्षणवंति च ॥ १५ ॥ तत्र भागवतं पुण्यं पंचमं वेदसंमितम् ॥ कथितं यत्त्वया पूर्वं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ १६ ॥

समय व्यतीत करनाही चाहिये; मूर्खोंका समय व्यसनमें और पण्डितोंका पुराण शास्त्रके विचारमें व्यतीत होता है ॥१२॥ और शास्त्र भी विचित्र हैं जिनमें न्याय आदिके अनेक जल्पवाद हैं "और पुराण भी अनेक सात्विकादि भेदसे तीन प्रकारके हैं इसी प्रकार शास्त्र भी अनेक हैं जो वितण्डवादसे युक्त गर्व और अमर्ष करनेवाले हैं यह क्षेपक श्लोक है॥१॥"जिनमें अनेक अर्थवाद हेतु वादादिके वचन हैं ॥१३॥ उन शास्त्रोंमें वेदान्त सात्विक, मीमांसा राजसिक; और हेतुवादसेयुक्तन्याय तामसी हैं ॥ १४ ॥ इसो प्रकार पुराण भी कथानकसे तीन प्रकारके हैं सो आपने पांच लक्षण युक्त कहे हैं ॥१५॥ उनमें यह पांचवां

पुराण श्रीमद्भागवत वेदसम्मत तुमने संपूर्ण लक्षणसे कहा है ॥ १६ ॥ वह आपने उद्देश मात्रसे कथन किया जो मुमुक्षुओंको मुक्तिका देनेवाला और धर्मात्माओंको धर्म और कामना देनेवाला ॥ १७ ॥ वह उत्तम पुराण आदरसे विस्तार पूर्वक कहिये हम सब ब्राह्मण दिव्य भागवतके सुननेकी इच्छा करते हैं ॥ १८ ॥ हे धर्मज्ञ ! आप तो पुराण संहिताओंको हैजानते हैं वह गुरु भक्ति रखनेके कारण व्यासजीने तुमसे सम्यक् प्रकारसे कहा है ॥१९॥ सर्वज्ञ ! आपके मुखसे निकले हुए और पुराण सुने भी परन्तु सुधापानसे देवतोंके समान हमारी तृप्ति नहीं होती है ॥ २०॥ हे सूत ! यदिमुक्ति न हो तो अमृत पानको धिक् है भागवतामृतपानसे मनुष्य शीघ्र संटकसे छूट जाता है ॥ २१ ॥ सुधा पानके निमित्त जो सहस्रों यज्ञ किये हैं हे सूत ! उससे हम सब प्रकारसे

उद्देशमात्रेण तदा कीर्तितं परमाद्भुतम् ॥ मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामदं धर्मदं तथा ॥ १७ ॥ विस्तरेणतदाख्या हि पुराणोत्तममादरात् ॥ श्रोतुकामा द्विजाः सर्वे दिव्यं भागवतं शुभम् ॥ १८ ॥ त्वं तु जानासि धर्मज्ञ पौराणीं संहितां किल ॥ कृष्णोक्तां गुरुभक्तत्वात्सम्यक्सत्त्वगुणाश्रयः ॥ १९ ॥ श्रुत्वान्यन्यानि सर्वज्ञ त्वन्मुखान्निःसृतानि च ॥ नैव तृप्तिं व्रजामोऽद्य सुधापानेऽमरा यथा ॥ २० ॥ धिक् सुधां पिबतां सूत मुक्तिर्नैव कदाचन ॥ पिबन्भागवतं सद्यो नरो मुच्येत संकटात् ॥ २१ ॥ सुधापाननिमित्तं यत्कृता यज्ञाः सहस्रशः ॥ नशांतिमधिगच्छामः सूत सर्वात्मना वयम् ॥ २२ ॥ मखानां हि फलं स्वर्गःस्वर्गात्प्रच्यवनं पुनः ॥ एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमणं च निरंतरम् ॥ २३ ॥ विना ज्ञानेन सर्वज्ञ नैव मुक्तिः कदाचन ॥ भ्रमतां कालचक्रेऽत्र नराणां त्रिगुणात्मके ॥ २४ ॥ अतः सर्वरसोपेतं पुण्यं भागवतं वद ॥ पावनं मुक्तिदं गुह्यं मुमुक्षूणां सदा प्रियम् ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शौनकप्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ धन्योऽहमतिभाग्योऽहं पावितोऽहं महात्मभिः॥यत्पृष्टं सुमहत्पुण्यं पुराणं वेदविश्रुतम् ॥ १ ॥

शान्तिको प्राप्त नहीं हुए हैं ॥ २२ ॥ कारण कि यज्ञोंका फल स्वर्ग है और स्वर्गसे फिर आवृत्ति होती है इस प्रकार संसार चक्रमें निरन्तर भ्रमण करना होता है ॥ २३ ॥ हे सर्वज्ञ, विना ज्ञानसे तो मुक्ति नहीं होती यह मनुष्य इस त्रिगुणात्मक कालचक्रमें भ्रमणही करते रहते हैं ॥ २४ ॥ इस कारण सब रसोंसे युक्त पवित्र भागवत कहिये जो मुमुक्षुओंको पवित्र करनेवाली मुक्ति दायिनी होनेसे सदा प्रियहै ॥२५॥ गायत्री सम्मित होनेसे प्रश्नमें २४ श्लोक कहे हैं॥ इति श्रीसकलशास्त्रविशारदमिश्रसुखानंदसुतपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृते देवीभागवतस्याभिनवव्याख्याने प्रथमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीसूतजी बोले मैं धन्य

और अति भाग्यवान हूं महात्माओंने मुझे पवित्रकर दिया जो आपने वेदविख्यात महापुण्यदायक पुराण सुननेकी इच्छा की ॥ १ ॥ सो मैं सम्पूर्ण श्रुतिके अर्थसे युक्त पुराण सुननेकी इच्छा करता हूं जो सब शास्त्रोंका रहस्य पुराणोंमें श्रेष्ठ है ॥ २ ॥ उसके श्रेष्ठ पदकमल मुनियोंको मुक्ति देनेवाले प्रणाम करके जिनकी ब्रह्मादि सेवा करते और स्तुति में तत्पर मुनीन्द्र जिनका ध्यान करते हैं उनको प्रणाम कर यह परमोत्तम पुराण रसयुक्त विस्तारके साथ आपसे कहता हूं हे द्विजो ! परम भक्तिसे यह देवीपुराण आपके प्रति कहता हूं ॥ ३ ॥ जो वेदमार्गमें सदा आद्या परा विद्या कही जाती है जो सर्वज्ञ सब बंधन छेदनमें निपुण सबके आशयमें स्थित जिसको दुरात्मा नहीं जान सकते जिसको मुनि अपने ध्यानमें प्रत्यक्ष करते हैं वह भगवती हमारे ऊपर सदा प्रसन्न होकर सिद्धिकी देनेवाली हो ॥ ४ ॥

तदहं संप्रवक्ष्यामि सर्वश्रुत्यर्थसंमतम् ॥ रहस्यं सर्वशास्त्राणामागमानामनुत्तमम् ॥ २ ॥ नत्वा तत्पदपंकजं सुललितं मुक्तिप्रदं योगिनां ब्रह्माद्यैरपिसेवितं स्तुतिपरैर्ध्येयं मुनीन्द्रैः सदा ॥ वक्ष्याम्यद्य सविस्तरं बहुरसं श्रीमत्पुराणोत्तमं भक्त्या सर्वरसालयं भगवतीनाम्ना प्रसिद्धं द्विजाः ॥ ३ ॥ या विद्येत्यभिधीयते श्रुतिपथे शक्तिः सदाऽऽद्या परा सर्वज्ञा भवबंधछित्तिनिपुणा सर्वाशये संस्थिता॥दुर्ज्ञेया सुदुरात्मभिश्च मुनिभिर्ध्यानास्पदं प्रापिता प्रत्यक्षा भगवतीह सा भगवती सिद्धिप्रदा स्यात्सदा ॥ ४ ॥ सृष्ट्वाऽखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम् ॥ संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका तां सर्वविश्व जननी मनसा स्मरामि ॥५॥ ब्रह्मा सृजत्यखिलमेतदिति प्रसिद्धं पौराणिकैश्च कथितं खलु वेदविद्भिः ॥ विष्णोस्तु नाभि कमले किल तस्य जन्म तैरुक्तमेव सृजते नहि स स्वतंत्रः ॥६॥ विष्णुस्तु शेषशयने स्वपितीतिकाले तन्नाभिपद्ममुकुले खलु तस्य जन्म ॥ आधारतां किल गतोऽत्र सहस्रमौलिः सबोध्यतां स भगवान् हि कथं मुरारिः ॥ ७ ॥

इस सत् असत् रूप जगत्को निर्माण करके जो अपनी त्रिगुणात्मक शक्तिसे इस जगत्की रक्षा करती है और कल्पान्तमें संहारकर उसी प्रकार रमण करती है उस सब विश्वकी माताको मनसे प्रणाम करता हूं ॥५॥ यह वार्ता प्रसिद्ध है कि ब्रह्माजी इस सम्पूर्ण जगत्की रचना करते हैं और वेदवादी पुराणज्ञाता भी इसी वार्ताको स्वीकार करते हैं परन्तु ब्रह्माजीका जन्म विष्णुकी नाभि कमलसे हुआ है और उन्हींकी प्रेरणासे ब्रह्माजी जगत्की रचना करते हैं वह स्वतंत्र नहीं है ॥ ६ ॥ और प्रलय कालमें विष्णु भी शेषकी शय्यामें शयन करते हैं और उनके नाभिकमलसे ब्रह्माका जन्म है जो भगवान् प्रलय कालमें शेषजीकी

आधारताको प्राप्त होते हैं वह मुरारि किस प्रकार जगत् रचनामें स्वयं संबोधन किये जा सके हैं ॥ ७ ॥ जो एकार्णव जलसागर है वह रसरूप है और बिना पात्रके उसकी स्थिति नहीं हो सकती इनके धारण करनेको जो शक्तिरूप है उस सब संसारकी जननीको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ८ ॥ योगनिद्रासे नेत्र मीचे भगवान् विष्णुको कमलमें स्थित ब्रह्माजीने जिस देवीको स्तुतिकर प्रसन्न किया उसकी मैं शरण होता हूं ॥ ९ ॥ उस सगुण निर्गुण मुक्तिदायनी मायाको ध्यान करके सम्पूर्ण पुराण कथन करता हूं हे मुनियो ! तुम सुनो ॥ १० ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराण परमोत्तम है इसमें १८००० श्लोक हैं ११॥ ॥ और बारह

एकार्णवस्य सलिलं रसरूपमेव पात्रं विना नहि रसस्थितिरस्ति कश्चित् ॥ या सर्वभूतविष ये किल शक्तिरूपा तां सर्वभूतजननीं शरणं गतोऽस्मि ॥८॥ योगनिद्रामीलिताक्षं विष्णुं हृद्वांबुजे स्थितः ॥ अजस्तुष्टाव यांदेवीं तामहं शरणं व्रजे ॥९॥ तां ध्यात्वा सगुणां मायां मुक्तिदां निर्गुणां तथा ॥ वक्ष्ये पुराणमखिलं शृण्वंतु मुनयस्त्विह ॥ १० ॥ पुराणमुत्तमं पुण्यं श्रीमद्भागवताभिधम् ॥ अष्टादश सहस्राणि श्लोकास्तत्र तु संस्कृताः ॥ ११ ॥ स्कंधा द्वादश चैवात्र कृष्णेन विहिताः शुभाः ॥ त्रिशतं पूर्णमध्याया अष्टादशयुताः स्मृताः ॥ १२ ॥ विंशतिः प्रथमे तत्र द्वितीये द्वादशैव तु ॥ त्रिंशच्चैव तृतीये तु चतुर्थे पंचविंशतिः ॥ १३ ॥ पंचत्रिंशत्तथाऽध्यायाः पंचमे परिकीर्तिताः ॥ एकत्रिंशत्तथा षष्ठे चत्वारिंशच्च सप्तमे ॥ १४ ॥ अष्टमे तत्त्वसंख्याश्च पंचाशन्नवमे तथा त्रयोदश ॥ तु संप्रोक्ता दशमे मुनिना किल ॥ १५ ॥ तथा चैकादशस्कंधे चतुर्विंशति रीरिताः ॥ चतुर्दशैव चाध्याया द्वादशे मुनिसत्तमाः ॥ १६ ॥ एव संख्या समाख्याता पुराणेऽस्मिन्महात्मना ॥ अष्टादश सहस्रीया संख्या च परिकीर्तिता ॥ १७ ॥ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च ॥ वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥ १८ ॥ निर्गुणा या सदा नित्या व्यापिकाऽविकृता शिवा ॥ योगगम्याऽखिलाधारा तुरीया या च संस्थिता ॥ १९ ॥

स्कंध हैं और सब ३०० तीन सौ अध्याय व्यासजीने कहे हैं ॥ १२ ॥ उसमें पहले स्कन्धमें बीस, दूसरेमें बारह, तीसरेमें तीस, चौथेमें पचीस॥ १३ ॥ पांचवेमें ३५, छठेमें इकतीस, सातवेंमें चालीस, ॥१४॥ आठवेंमें चौबीस, नौवेंमें पचास, दशवेंमें १३ तेरह हैं, ॥ १५ ॥ ग्यारहवे स्कन्धमें चौबीस, बारहवेंमें चौदह ॥ १६ ॥ इस पुराणकी इसप्रकार महात्माने संख्या कही है इसकी अठारह सहस्र संख्या कही है ॥ १७ ॥ सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर वंशानुचरित यह पुराणके लक्षण हैं ॥ १८ ॥ जो निर्गुण सत्य नित्य व्यापक विकृत शिवा है योगसे जानने योग्य सबका आधार जो तुरीयामें स्थित है ॥ १९ ॥

उसीकी सात्त्विकी राजसी तामसी शक्ति महालक्ष्मी महासरस्वती महाकाली स्त्री है ॥२०॥ इन्हीं तीन शक्तियोंके देह अंगीकार लक्षणवाला तत्त्व जो सृष्टिके निमित्त है तत्त्व विशारद उसीको सर्ग कहते हैं ॥२१॥ उन शक्तियोंको परिणामरूप हरि ब्रह्मा और शिव इन प्रादुर्भाव पालन उत्पत्ति और संहाररूप होनेको प्रतिसर्ग कहते हैं ॥ २२ ॥ सोम सूर्यवंशी राजाओंका चरित्र कीर्तन करना और हिरण्यकश्यपादिका चरित्र कथन वंश है ॥ २३ ॥ स्वायंभुव आदि मनुओंका वंश वर्णन करना और उनकी कालसंख्या कथन मन्वन्तर वर्णन है ॥ २४ ॥ उनके वंशका अनुकथन ही वंशानुचरित है इस प्रकार पुराण पांच लक्षण युक्त होता है ॥ २५ ॥ व्यासजीने सवालक्ष भारत कथन किया है वह पांचवां वेदसम्मत इतिहास कहता है ॥ २६ ॥ शौनकजी बोले हे सूतजी ! वे कितने सब पुराण

तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा ॥ महालक्ष्मीः सरस्वतीमहाकालीति ताः स्त्रियः ॥ २० ॥ तासां तिसृणां शक्तीनां देहांगीकारलक्षणः ॥ सृष्टयर्थं च समाख्यातः सर्गः शास्त्रविशारदैः ॥२१॥ हरिद्रुहिणरुद्राणां समुत्पत्तिस्ततः स्मृता ॥ पालनोत्पत्तिनाशार्थं प्रतिसर्गः स्मृतो हि सः ॥ २२ ॥ सोमसूर्योद्भवानां च राज्ञां वंशप्रकीर्तनम् ॥ हिरण्यकशिप्वादीनां वंशास्ते परिकीर्तिताः ॥ २३ ॥ स्वायंभुव मुखानां च मनूनां परिवर्णनम् ॥ काल संख्या तथा तेषां तत्तन्मन्वंतराणि च ॥ २४ ॥ तेषां वंशानुकथनं वंशानुचरितं स्मृतम् ॥ पंचलक्षणयुक्तानि भवंति मुनिसत्तमाः ॥ २५ ॥ सपादलक्षं च तथा भारतं मुनिना कृतम् ॥ इतिहास इति प्रोक्तं पंचमं वेदसंमितम् ॥ २६ ॥ शौनक उवाच ॥ कानि तानि पुराणानि ब्रूहि सूत सविस्तरम् ॥ कतिसंख्यानि सर्वज्ञ श्रोतुकामा वयं त्विह ॥२७॥ कलिकालविभीताः स्मो नैमिषारण्यवासिनः ॥ ब्रह्मणाऽत्र समादिष्टाश्चक्रं दत्त्वा मनोमयम् ॥ २८ ॥ कथितं तेन नः सर्वान्गच्छंत्वेतस्य पृष्ठतः ॥ नेमिः संशीर्यते यत्र स देशः पावनः स्मृतः ॥ २९ ॥ कलेस्तत्र प्रवेशो न कदाचित्संभविष्यति ॥ तावत्तिष्ठंतु तत्रैव यावत्सत्ययुगं पुनः ॥३०॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गृहीत्वा तत्कथानकम् ॥ चालयन्निर्गतस्तूर्णं सर्वदेशदिदृक्षया ॥ ३१ ॥

और कितनी उनकी संख्या है सब आप विस्तारसे कहिये ॥ २७ ॥ कलिकालसे डरे हुए हम नैमिषारण्यवासी हैं ब्रह्माजी ने मनोमय चक्र देकर हमको यहां स्थापित किया है ॥२८॥ और यह कहा कि तुम इस चक्रके पीछे २ चले जाओ जहां इस चक्रकी धार शीर्ण हो जाय वही स्थान पवित्र जानना ॥ २९ ॥ वहां किसी प्रकार भी कलिका प्रवेश न होगा तबतक तुम वहां रहो जबतक फिर सतयुग आवे ॥ ३० ॥ यह उनके वचनको सुनकर और उस चक्रको ग्रहणकर चले और वह चक्र भी सबदेशके देखनेकी इच्छासे चला ॥ ३१ ॥

चलते हुए यहां उस चक्रकी नेमि शीर्ण हो गई इसी कारण यह परमदेश नैमिषारण्य नामसे विख्यात हुआ ॥ ३२ ॥ यहां कलिका प्रवेश नहीं होता इस कारण यहां हमने स्थान किया है और सिद्ध महात्मा मुनि कलिसे भीत होकर यहां रहते हैं ॥ ३३ ॥ यहां हमने पशुहीन केवल पुरोडाशादिसे यज्ञ किये हैं और सतयुगके आनेतक यहां समय बिताते हैं ॥ ३४ ॥ हे सूतजी ! आप हमारे भाग्यसे यहां आये हैं आप परमपवित्र ब्रह्मसंमित पुराण कहिये ॥३५॥ हे सूतजी ! हम सब सुननेकी इच्छा करते हैं आप बडे बुद्धिमान् वक्ता हैं हम इस समय व्यापाररहित एकचित्त हैं ॥ ३६ ॥ हे सूतजी ! तीन तापरहित आप दीर्घायु हूजिये आप पवित्र कल्याणदायक ब्रह्मसम्मत भागवत पुराण कहिये ॥३७॥ जिसमें धर्म अर्थ काम मोक्ष विद्याकी प्राप्तिका विस्तारसे वर्णन है ॥ ३८ ॥

प्रेत्यात्र चालयंश्चक्रं नेमिः शीर्णोऽत्र पश्यतः ॥ तेनेदं नैमिषं प्रोक्तं क्षेत्रं परमपावनम् ॥३२॥कलिप्रवेशो नैवात्र तस्मात्स्थानं कृतं मया ॥ मुनिभिः सिद्धसंघैश्च कलिभीतैर्महात्मभिः ॥३३॥ पशुहीनाः कृता यज्ञाः पुरोडाशादिभिः किल ॥ कालातिवाहनं कार्यं यावत्सत्ययुगागमः ॥३४॥ भाग्ययोगेन संप्राप्तः सूत त्वं चात्र सर्वथा॥कथयाद्य पुराणं हि पावनं ब्रह्मसंमितम् ॥३५॥सूत शुश्रूषवः सर्वे वक्ता त्वंमतिमानथ॥ निर्व्यापारा वयं नूनमेकचित्तास्तथैव च ॥३६॥ त्वं सूत भव दीर्घायुस्तापत्रयविवर्जितः ॥ कथयाद्य पुराणं हि पुण्यं भागवतं शिवम् ॥ ३७॥ यत्र धर्मार्थकामानां वर्णनं विधिपूर्वकम् ॥ विद्यां प्राप्य तथा मोक्षः कथितो मुनिना किल ॥३८॥ द्वैपायनेन मुनिना कथितंयच्च पावनम् ॥ न तृप्यामो वयं सूत कथां श्रुत्वा मनोरमाम् ॥३९॥ सकलगुणगणानामेकपात्रं पवित्रमखिलभुवनमातुर्नाट्यवद्यद्विचित्रम् ॥ निखिलमलगणानां नाशकृत्कामकंदं प्रकटय भगवत्या नाम युक्तं पुराणम् ॥ ४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ शृण्वंतु संप्रवक्ष्यामि पुराणानि मुनीश्वराः ॥ यथा श्रुतानि तत्त्वेन व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ १ ॥

जो पवित्र कथा व्यासजीने कही है हे सूत ! उस मनोरम कथाके सुनते हुये हम तृप्त नही होते हैं ॥ ३९ ॥ सम्पूर्ण गुण समूहका एकही पवित्र पत्र जो सब जगत्की माताकी लीलासे चरित्र करती है उससे विचित्र अनेक पापसमूहोंका नाशक कामनापूरक यह भगवतीके नामसे युक्त प्रगट करो ॥ ४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा--यहि तृतीय अध्यायमें, प्रतियुग व्यास पुराण ॥ संख्यायुत वर्णन करहिं, सुमिरि राम सुखदान ॥ १ ॥

सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! सुनो पुराणोंका वर्णन करता हूं जैसे मैंने तत्त्वसे सत्यवतीपुत्र व्यासजीसे श्रवण किया है ॥ १ ॥

दे. भा.
॥ ६ ॥

दो मकारके दो भकारके तीन ब्र आदि अक्षर चार वकारादि अक्षरके अ, ना, लिंग, कू, स्क, यह पृथक् २ पुराण हैं ॥ २ ॥ उसमें आद्यमत्स्यपुराण १४००० सहस्र श्लोकोंमें है मार्कण्डेय अद्भुत पुराणके नौ सहस्र श्लोक हैं ॥ ३ चौदा सहस्र पांच सौ श्लोकोंमें तत्व दर्शी मुनियोंने भविष्यपुराणकी संख्या कही है ॥ ४ ॥ अठारहसहस्र श्लोक श्री मद्भागवतमें हैं, ब्राह्मपुराणमें दशसहस्र श्लोक हैं ॥ ५ ॥ द्वादश सहस्र एक सौ ब्रह्माण्ड पुराण है ब्रह्मवैवर्त १८००० है ॥ ६ ॥ वामनपुराण १०००० वायुपुराणके २४६०० श्लोक हैं ॥ ७ ॥ विष्णुपुराण परम अद्भुत है इसके २३००० श्लोक हैं ॥ ८ ॥ वाराह पुराणके

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ॥ अनापलिं गकूस्कानि पुराणानि पृथक्पृथक् ॥ २ ॥ चतुर्दशसहस्रं च मात्स्यमाद्यं प्रकीर्तितम् ॥ तथा ग्रहसहस्रं तु मार्कंडेयं महाद्भुतम् ॥ ३ ॥ चतुर्दशसहस्राणि तथा पंचशतानि च ॥ भविष्यं परिसंख्यातं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥४॥ अष्टादशसहस्रं वै पुण्यंभागवतं किल॥तथा चायुतसंख्याकं पुराणं ब्राह्मसंज्ञकम् ॥ ५ ॥ द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्मांडं च शताधिकम् ॥ तथाऽष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमेव च ॥६॥ अयुतं वामनाख्यं च वायव्यं षट्शतानि च ॥ चतुर्विंशतिसंख्यातः सहस्राणि तु शौनक ॥७॥ त्रयो विंशति साहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम् ॥ चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परमाद्भुतम् ॥ ॥ ८ ॥ षोडशैव सहस्राणि पुराणं चाग्निसंज्ञितम् ॥ पंचविंशतिसाहस्रं नारदं परमं मतम् ॥ ९ ॥ पञ्चपञ्चाशत्सहस्रं पाद्माख्यं विपुलं मतम् ॥ एकादश सहस्राणि लिंगाख्यं चातिविस्तृतम् ॥ १० ॥ एकोनविं शत्साहस्रं गारुडं हरिभाषितम् ॥ सप्तदशसहस्रं च पुराणं कूर्म भाषितम् ॥११॥ एकाशीतिसहस्राणिस्कंदाख्यं परमाद्भुतम् ॥ पुराणाख्या च संख्या च विस्तारेण मयाऽनघाः ॥ १२ ॥ तथैवोपपुराणि शृण्वंतु ऋषिसत्तमाः ॥ सनत्कुमारं प्रथमं नारसिंहं ततः परम् ॥१३॥ नारदीयं शिवं चैव दौर्वाससमनुत्तमम् ॥ कापिलं मानवं चैव तथा चौशनसं स्मृतम् ॥ १४ ॥

चौबीस सहस्र श्लोक हैं अग्निपुराणके सोलह सहस्र श्लोक हैं ॥ ९ ॥ नारदपुराणके पचीस सहस्र श्लोक हैं पद्मपुराणके ५५००० पचपनसहस्र और लिंग पुराणके ग्यारह सहस्र श्लोक हैं ॥ १० ॥ गरुड़पुराणके १९००० उन्नीससहस्र श्लोक भगवान्‌के कहे हैं कूर्म पुराणके सत्रहसहस्र श्लोक हैं ॥ ११ ॥ स्कन्द नाम परम अद्भुत पुराण ८१००० इक्यासी सहस्र श्लोकोंमें कहा है ॥ १२ ॥ यह मैंने आपसे पुराणोंकीसंख्या कही ॥ १३ ॥ अब आप उपपुराणोंको श्रवण कीजिये । सनत्कुमार, नारसिंह, नारद, शैव, दुर्वासाः कपिल, मानव औशन ॥ १४ ॥

भा. टी.प्र.
अ. ३

वरुण, कालिका, साम्ब, नन्दी और पाराशरप्रोक्त आदित्यपुराण बडे विस्तार सहित ॥ १५ ॥ माहेश्वर, भागवत और विस्तारपूर्वक वशिष्ठ पुराण यह महात्माओंने उपपुराण कहे हैं ॥ १६ ॥ सत्यवती पुत्र भगवान् व्यासजी अठारह पुराण निर्माणकर पश्चात् उनके सारके सहित भारत रचते हुये ॥१७॥ प्रत्येक मन्वन्तरमें जब द्वापरयुग आता है तब तब धर्मकी इच्छा करके पुराण करते हैं ॥ १८ ॥ प्रत्येक द्वापरमें जब विष्णुही व्यासका रूप धारणकर हितकी इच्छासे एक वेदके कई भाग करते हैं ॥ १९ ॥ फिर कलिमें ब्राह्मणोंको अल्प आयु और अल्पबुद्धि देखकर पवित्र पुराण संहिताको युग युगमें करते हैं ॥ २० ॥ स्त्री शूद्र और द्विजबंधुओंको वेद सुननेका अधिकार नहीं है उन्हींके हितके निमित्त यह पुराण किये हैं ॥ २१ ॥ इस श्रेष्ठ सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें अट्ठाईसवें द्वापरमें मुनि

वारुणं कालिकाख्यं च सांबं नंदिकृतं शुभम् ॥ सौरं पाराशरं प्रोक्तमादित्यं चातिविस्तरम् ॥ १५ ॥ माहेश्वरं भागवतं वासिष्ठं च सविस्तरम् ॥ एतान्युपपुराणानि कथितानि महात्मभिः ॥१६॥ अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ॥ भारताख्यानमतुलं चक्रे तदुपबृंहितम् ॥१७॥ मन्वंतरेषु सर्वेषु द्वापरे द्वापरेयुगे॥प्रादुष्करोति धर्मार्थी पुराणानि यथाविधि॥१८॥ द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपेण सर्वदा॥ वेदमेकं स बहुधा कुरुते हितकाम्यया ॥१९॥ अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश्च विप्राञ्ज्ञात्वाकलावथ ॥ पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगेयुगे ॥२०॥ स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनां न वेदश्रवणं मतम् ॥ तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च ॥ २१ ॥ मन्वंतर सप्तमेऽत्र शुभे वैवस्वताभिधे ॥ अष्टाविंशतिमे प्राप्ते द्वापरे मुनिसत्तमाः ॥ २२ । व्यासः सत्यवतीसूनुर्गुरुर्मे धर्मवित्तमः ॥ एकोनत्रिंशत्संप्राप्ते द्रौणिर्व्यासो भविष्यति ॥ २३ ॥ अतीतास्तु तथा व्यासाः सप्तविंशतिरेवच ॥ पुराणसंहितास्तैस्तु कथितास्तु युगेयुगे ॥ २४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ब्रूहि सूत महाभाग व्यासाः पूर्वयुगोद्भवाः ॥ वक्तारस्तु पुराणानां द्वापरे द्वापरे युगे॥२५॥सूत उवाच ॥ द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयंभुवा ॥ प्रजापतिर्द्वितीये तु द्वापरे व्यासकार्यकृत् ॥२६॥ तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः ॥ पंचमे सविता व्यासः षष्ठे मृत्युस्तदाऽपरे ॥२७॥

श्रेष्ठ ॥ २२ ॥ सत्यवतीपुत्र व्यास मेरे गुरु धर्मात्मा व्यासजी हुये हैं उन्तीसवें द्वापरमें अश्वत्थामा व्यास होंगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार सत्ताईस व्यास बीतगये हैं उन्होंने युग २ में पुराणसंहिता रची है ॥ २४ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! उन व्यासोंका वर्णन कीजिये जिन्होंने युग २ में पुराणसंहिता कही है ॥ २५ ॥ सूतजी बोले पहले द्वापरमें ब्रह्माजी स्वयं व्यास हुये थे और उन्होंने वेदोंका विभाग किया; दूसरे द्वापरमें प्रजापतिने व्यासका कार्य किया २६ तीसरे में शुक्र और चौथे द्वापरमें बृहस्पति व्यास हुए पांचवेंमें सविता छठे में मृत्यु ॥ २७ ॥

सातवेंमें मघवा आठवेंमें वशिष्ठ, नववेंमें सारस्वत, दशवेंमें त्रिधामा ॥ २८ ॥ ग्यारहवेंमें त्रिवृष, बारहवेंमें भरद्वाज, तेरहवेंमें अन्तरिक्ष, चौदहवेंमें धर्म ॥२९॥ पन्द्रहवेंमें त्र्य्यारुणि सोलहवेंमें धनंजय, सत्तरहवेंमें मेधातिथि, अठारहवेंमें व्रती ॥ ३० ॥ उन्नीसवेंमें अत्रि, बीसवेंमें गौतम, इक्कीसवेंमें हर्यात्मा उत्तम ॥ ३१ ॥ बाईसवेंमें वेन वाजश्रवा, तेईसवेंमें सोम आमुष्यायण चौवीसवेंमें तृणबिन्दु पचीसवेंमें भार्गव ॥ ३२ ॥ छठवीसवेंमें शक्ति, सत्ताईसवेंमें जातुकर्ण और अट्ठाईसवेंमें कृष्णद्वैपायन हुए हैं यह मैंने आपसे अट्ठावीस व्यासोंकी संख्या कही है जहां कहीं व्यासोंका नामान्तर हो वहां कल्पभेद जानना चाहिये ॥ ३३ ॥ कृष्णद्वैपायनका कहा हुआ यह श्रीमद्भागवत पुराण सब दुःखों पापोंका दूर करनेवाला मैंने सुना है ॥३४॥ यह कामना और मुक्तिका देनेवाला वेदार्थ संयुक्त सम्पूर्ण

मघवा सप्तमे प्राप्ते वसिष्ठस्त्वष्टमे स्मृतः ॥ सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे तथा ॥ २८ ॥ एकादशेऽथ त्रिवृषो भरद्वाजस्ततः परम् ॥ त्रयोदशे चांतरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे ॥ २९ ॥ त्र्य्यारुणिः पंचदशे षोडशे तु धनंजयः॥मेधातिथिः सप्तदशे व्रती ह्यष्टादशे तथा ॥३०॥ अत्रिरेकोनविंशेऽथ गौतमस्तु ततः परम् ॥ उत्तमश्चैकविंशेऽथ हर्यात्मापरिकीर्तितः ॥३१॥ वेनो वाजश्रवाश्चैव सोमोऽमुष्यायणस्तथा ॥ तृणबिंदुस्तथाव्यासो भार्गवस्तु ततः परम् ॥ ३२ ॥ ततः शक्तिर्जातुकर्ण्यः कृष्णद्वैपायनस्ततः ॥ अष्टाविंशतिसंख्येयं कथिता या मया श्रुता ॥३३॥ कृष्णद्वैपायनात्प्रोक्तं पुराणं च मया श्रुतम् ॥ श्रीमद्भागवतं पुण्यं सर्वदुःखाघनाशनम् ॥ ३४ ॥ कामदं मोक्षदं चैव वेदार्थं परिबृंहितम् ॥ सर्वागमरसारामं मुमुक्षूणां सदा प्रियम् ॥ ३५ ॥ व्यासेन कृत्वाऽतिशुभं पुराणं शुकाय पुत्राय महात्मने यत् ॥ वैराग्ययुक्ताय च पाठितं वै विज्ञाय चैवारणिसंभवाय ॥ ३६ ॥ श्रुतं मया तत्र तथा गृहीतं यथार्थवद्व्यासमुखान्मुनींद्राः ॥ पुराणगुह्यं सकलं समेतं गुरोः प्रसादात्करुणानिधेश्च ॥ ३७ ॥ सुतेन पृष्टः सकलं जगाद द्वैपायनस्तत्र पुराणगुह्यम् ॥ अयोनिजेनाद्भुतबुद्धिना वै श्रुतं मया तत्र महाप्रभावम् ॥ ३८ ॥

आगम और रससे मनोहर मुमुक्षुओंको सदा प्रिय है ॥ ३५ ॥ व्यासजीने सुन्दर पुराण रचना कर जो आपने शुकदेव पुत्रको जो बडे वैराग्ययुक्त अरणीसे उत्पन्न हुए थे उसे पढाया ॥ ३६ ॥ हे मुनीन्द्रो ! उस समय मैंने वहां व्यासके मुखसे यथार्थ रूपसे वह पुराण सुना है करुणानिधि गुरुकी कृपासे वह सब गुह्य पुराण मैंने श्रवण किया है ॥ ३७ ॥ पुत्रके पूछनेसे व्यासजीने सम्पूर्ण पुराणको कथन किया, उन अयोनिजन्मा अद्भुतबुद्धिमानके श्रवण करतेमें मैंने भी यह महाप्रभाव युक्त पुराण सुना है ॥ ३८ ॥

यह श्रीमद्भागवत वेदरूपी कल्पवृक्षका फल है हे मुनियो ! इस दुरवगाह संसारके तरनेकी इच्छासे शुकदेवजीने अनेक आख्यानरूपी रसोंको कर्णरूपी दोने द्वारा प्रेमपूर्वक पान किया, फिर इस अद्भुत कथाको कलिके भयसे श्रवणकर मुक्त न हो ऐसा भूमिमें कौन है ॥ ३९ ॥ जो अतिपापी वेदधर्मसे रहित स्वाचारसे हीन आशयवाला, किसी बहानेसे भी जो इस परम उत्तम पुराणको श्रवण करता है वह यहां ही अनेक भोग भोगकर अन्तमें योगियोंको प्राप्त अव्ययस्थानमें भगवतीकी कृपासे प्राप्त हो जाता है ॥४०॥ जो निर्गुण है और हरिहरादिकोंको भी अलभ्य है जो विद्यारूप सत्पुरुषोंको अतिप्रिय समाधिसे जानने योग्य है जो इस पुराणमें प्रीति करते हैं और सुनते हैं उनके हृदयमें वह भगवती प्रगट होती है ॥ ४१ ॥ सब अंगसे मनुष्य देहको प्राप्त कर जो कि संसारसागरसे तर

श्रीमद्भागवतामरांघ्रिपफलास्वादादरः सत्तमाः संसारार्णवदुर्विगाह्यसलिलं संतर्तुकामः शुकः ॥ नानाख्यानरसालयंश्रुतिपुटैः प्रेम्णाऽशृणोदद्भुतं तच्छ्रुत्वा न विमुच्यते कलिभयादेवंविधः कः क्षितौ ॥ ३९ ॥ पापीयानपि वेदधर्मरहितः स्वाचारहीनाशयो व्याजेनापि शृणोति यः परमिदं श्रीमत्पुराणोत्तमम् ॥ भुक्त्वा भोगकलापमत्र विपुलं देहावसानेऽचलं योगिप्राप्यमवाप्नुयाद्भगवतीनामांकितं सुंदरम् ॥ ४० ॥ या निर्गुणा हरिहरादिभिरप्यलभ्या विद्या सतां प्रियतमाऽथ समाधिगम्या ॥ सा तस्य चित्तकुहरे प्रकरोति भावं यः संशृणोति सततं तु सतीपुराणम् ॥ ४१ ॥ संप्राप्य मानुषभवं सकलाङ्गयुक्तं पोतं भावर्णवजलोत्तरणाय कामम् ॥ संप्राप्य वाचकमहो न शृणोति मूढोऽसौ वंचितोऽत्र विधिना सुखदं पुराणम् ॥ ४२ ॥ यः प्राप्य कर्णयुगलं पटु मानुषत्वे रागी शृणोति सततं च परापवादान्॥सर्वार्थदं रसनिधिं विमलं पुराणं नष्टः कुतो न शृणुते भुवि मंदबुद्धिः ॥ ४३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे तृतीयोध्यायः॥ ३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सौम्य व्यासस्य भार्यायां कस्यां जातः सुतः शुकः ॥ कथं वा कीदृशो येन पठितेयं सुसंहिता ॥ १ ॥ अयोनिजस्त्वया प्रोक्तस्तथा चारणिजः शुकः ॥ संदेहोऽस्ति महांस्तत्र कथयाद्य महामते ॥ २ ॥

नेको जहाज रूप है सो वाचकको प्राप्त होकर भी जो मूढ सुख और मोक्षकी देनेवाली कथाको नहीं श्रवण करता है वह विधिसे वंचित हुआ हतभाग्यही है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य जन्ममें दो कानोंको प्राप्त होकर रागी होकर दूसरोंकी निन्दाही सुनते हैं और चारों पुरुषार्थके देनेवाले रसभरे पुराणको नहीं सुनते हैं वह नष्ट हैं अथवा वे परापवादनिरत नष्ट मन्द बुद्धि आत्मज्ञान करनेवाले इस पुराणको क्यों नहीं सुनते हैं ॥४३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां तृतीयोध्यायः ॥३॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! व्यासजीकी किस भार्यामें शुकदेवजी प्रगट हुए और कैसे हुए कैसे गुणी थे जिन्होंने यह संहिता पढी ॥१॥ आप शुकदेवजीको

अरणीसे प्रगट अयोनिज कहते हो इसमें हमको संदेह है हे महाबुद्धिमान् ! इसको आप हमसे कहिये ॥ २ ॥ हमने महातपस्वी शुकदेवजीको पूर्वमें गर्भ योगी सुना है, उन्होंने यह बड़े विस्तारका पुराण किस प्रकार पढा ॥ ३ ॥ सूतजी बोले एक समय व्यासजी सरस्वती नदीके किनारे अपने आश्रममें दो चटक पक्षियोंको देखकर परम विस्मित हुए ॥ ४ ॥ कि उत्पन्न होते ही अपने शिशुको जो अण्डसे प्रगट मनोहर ताम्रमुख सब अंगसे मनोहर पुच्छ और रोमसे हीन था, घोसलेमें छोड़कर ॥ ५ ॥ रतिके श्रमसे परायण हुवे वेदोनों भक्ष्य लाकर अपनी चोंचसे उसकी चोंचमें वारंवार अन्न देते थे ॥ ६ ॥ वह परमप्रसन्न हो अपने अंगसे बालककी अंगघर्षण करते वे कलविंक प्रेमसे अपने बालकका मुख चूमते थे ॥ ७ ॥ उन दोनों चटकोंका बालकमें अत्यन्त प्रेम देख

गर्भयोगी श्रुतः पूर्वं शुको नाम महातपाः ॥ कथं च पठितं तेन पुराणं बहुविस्तरम् ॥ ३ ॥सूत उवाच ॥ पुरा सरस्वतीतीरे व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ आश्रमे कलविंकौ तु दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥ ४ ॥ जातमात्रं शिशुं नीडे मुक्तमंडान्मनोहरम् ॥ ताम्रास्यं शुभसर्वांगं पिच्छांकुरविवर्जितम् ॥ ५ ॥ तौ तु भक्ष्यार्थमत्यंतं रतौ श्रमपरायणौ ॥ शिशोश्चंचूपुटे भक्ष्यं क्षिपंतौ च पुनः पुनः ॥ ६ ॥ अंगेनांगानि बालस्य घर्षयंतौ मुदाऽन्वितौ ॥ चुंबंतौ च मुखं प्रेम्णा कलविंकौ शिशोः शुभम् ॥ ७ ॥ वीक्ष्य प्रेमाद्भुतं तत्र बाले चटकयोस्तदा ॥ व्यासश्चिंतातुरः कामं मनसा समचिंतयत् ॥ ८ ॥ तिरश्चामपि यत्प्रेम पुत्र समभिलक्ष्यते ॥ किं चित्रं यन्मनुष्याणां सेवाफलमभीप्सताम् ॥९॥ किमेतौ चटकौ चास्य विवाहं सुखसाधनम् ॥ विरच्य सुखिनौ स्यातां दृष्ट्वा वध्वा मुखं शुभम् ॥१०॥ अथवा वार्धके प्राप्ते परिचर्यां करिष्यति ॥ पुत्रः परमधर्मिष्ठः पुण्यार्थं कलविंकयोः॥११॥अर्जयित्वाऽथवा द्रव्यं पितरौ तर्पयिष्यति ॥ अथवा प्रेतकार्याणि करिष्यति यथाविधि ॥ १२ ॥ अथवा किं गयाश्राद्धं गत्वा संवितरिष्यति ॥ नीलोत्सर्गं चविधिवत्प्रकरिष्यति बालकः ॥ १३ ॥ संसारेऽत्र समाख्यातं सुखानामुत्तमं सुखम् ॥ पुत्रगात्रपरिष्वंगो लालनं च विशेषतः ॥ १४ ॥

कर चिन्तातुर हो व्यासजीने अपने मनमें यथेष्ट विचार किया ॥ ८ ॥ जब कि पक्षी आदिके प्रेम भी पुत्रोंमें देखा जाता है फिर सेवाफलकीइच्छावाले मनुष्योंमें हो तो क्या विचित्र है ॥ ९ ॥ क्या यह दोनों चटक इसके विवाह सुखसाधनकी रचना करेगा बधूका मुख देख प्रसन्न होंगे ॥ १० ॥ अथवा यह इनकी बुढापेमें सेवा करेगा, यह कलविंककी प्रसन्नताके निमित्त परमधर्म करेगा ॥ ११ ॥ क्या यह धन उत्पन्नकर माता पिताको तृप्त करेगा अथवा विधिपूर्वक कार्य करेगा ॥ १२ ॥ अथवा क्या जाकर गयामें श्राद्ध करेगा, क्या यह बालक विधिपूर्वक नील वृषभ उत्सर्ग करेगा ॥ १३ ॥ इस संसारमें सुखोंमें

उत्तम सुख यही कहा है कि पुत्रके शरीरको स्पर्शकर प्रेमसे आलिंगन करना ॥ १४ ॥ अपुत्रकी गति नहीं और स्वर्ग भी नहीं है परलोकके निमित्त पुत्रसे अधिक कोई साधन नहीं है ॥ १५ ॥ मनु आदि मुनियोंने धर्मशास्त्रमें लिखा है पुत्रसेही स्वर्ग होता है विनापुत्रके स्वर्ग नहीं है ॥ १६ ॥ यह प्रत्यक्ष ही है कुछ अनुमान साधनकी आवश्यकता नहीं है पुत्रवान्‌ही पापसे छूट जाता है यह आप्तोंने कहा है ॥ १७ ॥ आतुर और मृत्युकालमें भी भूमि शय्यापर पड़ा हुआ मनुष्य पुत्रके विना मनमें व्याकुल हो चिन्ता करता है ॥ १८ ॥ मेरे घरमें अनेक प्रकारका धन है अनेक पात्र हैं सुन्दर मंदिर हैं इनका स्वामी कौन होगा ॥ १९ ॥ मृत्युकालमें उसका मन दुःखसे भ्रमण करता है इस कारण भ्रान्त चित्तकी सर्वथा दुर्गति होती है ॥ २० ॥ इस प्रकार व्यासजी अनेक

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च॥ पुत्रादन्यतरन्नास्ति परलोकस्य साधनम् ॥१५॥ मन्वादिभिश्च मुनिभिर्धर्मशास्त्रेषु भाषितम् ॥ पुत्रवान्स्वर्गमाप्नोति नापुत्रस्तु कथंचन ॥ १६ ॥ दृश्यतेऽत्र समक्षं तन्नानुमानेन साध्यते ॥ पुत्रवान्मुच्यते पापादाप्तवाक्यं च शाश्वतम् ॥ ॥ १७॥ आतुरो मृत्युकालेऽपि भूमिसय्यागतो नरः॥ करोति मनसा चिंतां दुःखितः पुत्रवर्जितः ॥ १८ ॥ धनं मे विपुलं गेहे पात्राणि विविधानि च ॥ मंदिरं सुंदरं चैतत्कोऽस्य स्वामी भविष्यति ॥ १९ ॥ मृत्युकाले मनस्तस्य दुःखेन भ्रमते यतः॥ अतोऽस्य दुर्गतिर्नूनं भ्रांतचित्तस्य सर्वथा ॥ २० ॥ एवं बहुविधां चिंतां कृत्वा सत्यवतीसुतः॥निश्वस्य बहुधा चोष्णं विमनः संबभूव ह ॥२१॥ विचार्य मनसाऽत्यर्थं कृत्वा मनसि निश्चयम् ॥ जगाम च तपस्तप्तुं मेरुपर्वतसंनिधौ ॥ २२ ॥ मनसा चिंतयामास कं देवं समुपास्महे ॥ वरप्रदाननिपुणं वांछितार्थप्रदं तथा ॥२३॥विष्णुं रुद्रं सुरेन्द्रं वा ब्रह्माणंवा दिवाकरम् ॥ गणेशं कार्तिकेयं च पावकं वरुणं तथा ॥ २४ ॥ एवं चिंतयतस्तस्य नारदो मुनिसत्तमः ॥ यदृच्छया समायातो वीणापाणिः समाहितः ॥२५॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतो व्यासः सत्यवतीसुतः॥कृत्वाऽर्घ्यमासनं दत्त्वा प्रपच्छ कुशलं मुनिम् ॥२६॥श्रुत्वाऽथ कुशलप्रश्नं पप्रच्छ मुनिसत्तमः ॥ चिंतातुरोऽसि कस्मात्त्वं द्वैपायन वदस्व मे ॥२७॥

चिन्ता करके बहुत श्वास लेकर विमन होते हुए ॥ २१ ॥ ऐसा मनमें विचारकर निश्चयकर तप करनेको सुमेरु पर्वतपर चले गये ॥ २२ ॥ अपने मनमें विचार करने लगे मैं किस देवताकी उपासना करूँ जो शीघ्रही वर देकर मनोवांछित पूरा करे ॥२३ ॥ विष्णु, रुद्र, सुरेंद्र, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश कार्तिकेय, अग्नि, वरुण मेंसे किसे आराधन करूँ ॥२४॥ इनके ऐसा विचार करनेपर मुनिश्रेष्ठ नारदजी वीणा हाथमें लिये अपनी इच्छासे ही वहां प्राप्त हुए ॥ २५ सत्यवती पुत्र व्यासजी उनको देख परम प्रसन्न हुए अर्घ्य और आसन देकर मुनिसे कुशल पूंछने लगे ॥२६॥ कुशल प्रश्न सुनकर मुनिश्रेष्ठ पूछने लगे हे व्यासजी ! आप

किस निमित्त चिन्तासे व्याकुल दीखते हो हमसे कारण कहो ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले न तो अपुत्रकी गति होती है न मनमें सुख होता है इसी कारण मैं दुःखी होकर बारंबार चिन्ता करता हूं ॥२८॥ अब मैं मनोरथ पूर्ण करनेवाले किस देवको तपसे सन्तुष्ट करूं इस चिन्तासे व्याकुल हुआ अब मैं आपकी शरण हूं ॥ २९ ॥ हे कृपानिधे महर्षे ! तुम सर्वज्ञ हो कहिये मैं किस देवताकी शरणमें जाऊं जो मुझको पुत्र प्रदान करे ॥ ३० सूतजी बोले इस प्रकार व्यासजीके पूछनेपर नारदजी ऋषि परम प्रसन्न हो व्यासजीसे बोले ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले हे महाभाग पराशर पुत्र ! जो आप हमसे पूछते हो यही वार्ता भगवानसे हमारे पिताने पूंछी थी ॥ ३२ ॥ एक समय हमारे पिता हरिके ध्यानमें स्थित देखकर परम विस्मयको प्राप्त हो जगत्पतिसे पूछने लगे कि

व्यास उवाच ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति न सुखं मानसे ततः ॥ तदर्थं दुःखितश्चाहं चिंतयामि पुनःपुनः ॥ २८ ॥ तपसा तोषयाम्यद्य कं देवं वांछितार्थदम् ॥ इति चिंतातुरोऽस्म्यद्य त्वामहं शरण गतः ॥ २९ ॥ सर्वज्ञोऽसि महर्षे त्वं कथयाऽऽशु कृपानिधे ॥ कं देवं शरणं यामि यो मे पुत्रं प्रदास्यति ॥३०॥ सूत उवाच ॥ इति व्यासेन पृष्टस्तु नारदो वेदविन्मुनिः ॥ उवाच परया प्रीत्या कृष्णं प्रति महामनाः॥३१॥ नारद उवाच ॥ पाराशर्य महाभाग यत्त्वं पृच्छसि मामिह ॥ तमेवार्थं पुरा पृष्टः पित्रा मे मधुसूदनः ॥ ३२ ॥ ध्यानस्थं च हरिं दृष्ट्वा पिता मे विस्मयं गतः ॥ पर्यपृच्छत देवेशं श्रीनाथं जगतः पतिम् ॥३३॥ कौस्तुभोद्भासितं दिव्यं शंखचक्रगदाधरम् ॥ पीतांबरं चतुर्बाहुं श्रीवत्सांकितवक्षसम् ॥ ३४ ॥ शरणं सर्वलोकानां देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ वासुदेवं जगन्नाथं तप्यमानं महत्तपः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ भूतभव्यभवत्प्रभो ॥ तपश्चरसि कस्मात्त्वं किं ध्यायसि जनार्दन ॥ ३६ ॥ विस्मयोऽयं ममात्यर्थं त्वं सर्वजगतां प्रभुः ॥ ध्यानयुक्तोऽसि देवेश किं च चित्रमतः परम् ॥ ३७ ॥ त्वन्नाभिकमलाज्जातः कर्ताऽहमखिलस्य ह ॥ त्वत्तः कोऽप्यधिकोऽस्त्यत्र तं देव ब्रूहि मापते ॥ ३८ ॥ जानाम्यहं जगन्नाथ त्वमादिः सर्वकारणम् ॥ कर्ता पालयिता हर्ता समर्थः सर्वकार्यकृत् ॥ ३९ ॥

॥ ३३ ॥ जो कौस्तुभमणिसे उद्भासित दिव्य शंख चक्र गदा पद्म धारण किये पीताम्बर चतुर्बाहुश्रीवत्ससे अंकित वक्षस्थल ॥ ३४ ॥ सब लोकके कारण देवदेव जगत् प्रभु वासुदेवको महातप करता देखकर ॥३५॥ ब्रह्माजी बोले हे देवदेव जगन्नाथ भूत भविष्य वर्तमानके ज्ञाता हे जनार्दन ! आप क्यों तप करते हो, और किसका ध्यान करते हो ॥३६॥इसमें मुझको बडा विस्मय है आप सब जगत्के प्रभु हैं और जब आप भी ध्यान करते हो तो इससे चित्र और क्या होगा ॥३७॥ आपके नाभि कमलसे उत्पन्न हुआ मैं जगत्का करनेवाला हूं क्या कोई आपसे भी अधिक है हे देव सो आप कहिये ॥३८॥हे जगन्नाथ !

मैं जानता हूं तुमही सब जगत्के आदि कारण हो, कर्ता, पालक, हरणकर्ता और सब कार्यमें समर्थ हो ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! आपकी इच्छासे मैं जगत्को सृजन करता हूँ और शिव प्रलयमें हरण करते हैं, सो भी आपकी इच्छासे ऐसा करते हैं ॥४०॥ आपकीही आज्ञासे सूर्य आकाशमें भ्रमण और वायु वहन करता है, अग्नि तपती और मेघ वर्षा करता है ॥ ४१ ॥ आप किस देवका ध्यान करते हैं,यह मुझे बडा सन्देह है त्रिलोकीमें आपसे अधिक कोई देवता नहीं देखता हूं ॥ ४२ ॥ कृपाकर आप कहिये मैं आपका परम भक्त हूं महत् पुरुषोंको कुछ भी गोपनीय नहीं है यह स्मृति है ॥ ४३ ॥ यह उनके वचन सुनकर हरि प्रजापतिसे बोले हे ब्रह्माजी ! एक मन होकर सुनो मैं आपसे वर्णन करता हूं ॥ ४४ ॥ यद्यपि तुम अपनेको मुझको और शिवको सृष्टिकी उत्पत्ति पालन प्रलय करने

इच्छया ते महाराज सृजाम्यहमिदं जगत् ॥ हरः संहरते काले सोऽपि ते वचने सदा ॥४०॥ सूर्यो भ्रमति चाकाशे वायुर्वाति शुभाशुभः ॥ अग्निस्तपति पर्जन्यो वर्षतीश त्वदाज्ञया ॥ ४१ ॥ त्वं तु ध्यायसि कं देवं संशयोऽयं महान्मम ॥ त्वत्तः परं न पश्यामि देवं वै भुवन त्रये ॥ ४२ ॥ कृपां कृत्वा वदस्वाद्य भक्तोऽस्मि तव सुव्रत ॥ महतां नैव गोप्यं हि प्रायः किंचिति स्मृतिः ॥ ४३ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिराहप्रजापतिम् ॥ शृणुष्वैकमना ब्रह्मंस्त्वां ब्रवीमि मनोगतम् ॥४४॥ यद्यपि त्वां शिवं मां च स्थितिसृष्ट्यंतकारणम् ॥ ते जानंति जनाः सर्वे सदेवासुरमानुषा ॥ ४५ ॥ स्रष्टा त्वं पालकश्चाहं हरः संहार कारकः ॥ कृताः शक्त्येति संतर्कः क्रियते वेदपारगैः ॥ ४६ ॥ जगत्संजनने शक्तिस्त्वयि तिष्ठति राजसी ॥ सात्त्विकी मयि रुद्रे च तापसी परिकीर्तिता ॥ ४७ ॥ तया विरहितस्त्वं न तत्कर्मकरणे प्रभुः ॥ नाहं पालयितुं शक्तः संहर्तुं नापि शंकरः ॥ ४८ ॥ तदधीना वयं सर्वे वर्तामः सततं विभो ॥ प्रयत्क्षे च परोक्षे च दृष्टांत शृणु सुव्रत ॥ ४९ ॥ शेषे स्वपिमि पर्यंके परतंत्रो न संशयः ॥ तदधीनः सदोत्तिष्ठे काले कालवशं गतः ॥ ५० ॥

वाला मानते हो तथा सब देवता असुर मनुष्य भी जानते हैं ॥ ४५ ॥ तुम स्रष्टा मैं पालक और हर संहार करनेवाले हैं,तो भी यह सब प्रच्छन्न कार्यरूप शक्तिके किये हैं ऐसा वेदवादी महात्मा अनुमान करते हैं ॥ ४६ ॥ जगत्की रचना करनेकी तुममें राजसी शक्ति हैं मुझमें पालन रूप सात्त्विकी और शंकरमें तामसी शक्ति विद्यमान है ॥ ४७ ॥ उसके विना तुम किसी कर्मके करनेमें समर्थ नहीं हो न मैं पालन करने और शिव संहार करनेमें समर्थ है ॥४८॥ हे ब्रह्मन् ! हम सब उसीके अधीन होकर वर्तते हैं हे सुव्रत ! प्रत्यक्ष और परोक्षमें दृष्टांत सुनो ॥ ४९ ॥ प्रलयकालमें परतंत्र होकर हमको शेषशय्यापर शयन

करना होता है, और समयपर उसीके अधीन होकर उठना होता है ॥५०॥ और उसीके अधीन होकर निरंतर तपस्या करता हूं, कभी लक्ष्मीके साथ यथा सुख विहाग करता हूं ॥ ५१ ॥ कभी दानवोंके सहित संग्राम करता हूं जो सब लोकको भयदायी दारुण देहका क्लेशकारक होता है ॥ ५२ ॥ हे धर्मज्ञ ! तुम्हारे देखते ही एकार्णव सागरमें पांच सहस्र वर्षतक मैंने बाहुयुद्ध किया ॥ ५३ ॥ और कर्णके मलसे उत्पन्न हुए वे मदसे गर्वित दानव देवीके प्रसादसे ही मारे गये ॥ ५४ ॥ तब तुमने उस परात्परके कारणको क्या नहीं जाना हे महाभाग ! वही शक्तिका रूप था फिर बारंबार क्या पूछते हो ॥ ५५ ॥ जिसकी इच्छासे पुरुष होकर महा अर्णवमें विचरण करता हूं युगयुगमें कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, अवतार धारण करता हूं ॥ ५६ ॥ तिर्यग्योनिमें जन्म लेनेकी कोई भी इच्छा

तपश्चरामि सततं तदधीनोऽस्म्यहं सदा ॥ कदाचित्सह लक्ष्म्या च विहरामि यथासुखम् ॥५१॥ कदाचिद्दानवैः सार्द्धं संग्रामं प्रकरोम्यहम् ॥ दारुणं देहदमनं सर्वलोक भयंकरम् ॥५२॥ प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तस्मिन्नेकार्णवे पुरा ॥ पंचवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धं मया कृतम् ॥ ५३ ॥ तौ कर्ण मलजौ दुष्टौ दानवौ मदगर्वितौ ॥ देवदेव्याः प्रसादेन निहतौ मधुकैटभौ ॥ ५४ ॥ तदा त्वया न किं ज्ञातं कारणं तु परात्परम् ॥ शक्तिरूपं महाभाग किं पृच्छसि पुनः पुनः ॥ ५५ ॥ यदिच्छापुरुषौ भूत्वा विचरामि महार्णवे ॥ कच्छपः कोलसिंहौच वामनश्च युगे युगे ॥ ५६ ॥ न कस्यापि प्रियो लोके तिर्यग्योनिषु संभवः ॥ नाऽभवं स्वेच्छया वामवराहादिषु योनिषु ॥ ५७ ॥ विहाय लक्ष्म्या सह संविहारं को याति मत्स्यादिषु हीनयोनिषु ॥ शय्यां च मुक्त्वा गरुडासनस्थः करोति युद्धं विपुलं स्वतंत्रः ५८ ॥ पुरा पुरस्तेऽज शिरो मदीयं गतं धनुर्ज्यास्खलनात्क्वचापि ॥ त्वया तदा वाजिशिरो गृहीत्वा संयोजितं शिल्पिवरेण भूयः ॥ ५९ ॥ हयाननोऽहं परिकीर्तितश्च प्रत्यमेक्षतत्तव लोककर्तः ॥ बिडंबनेयं किल लोकमध्ये कथं भवेदात्मपरो यदि स्याम् ॥ ६० ॥

नहीं करता, इससे मैं स्वेच्छासे वाराह आदियोनियोंमें जन्म नहीं लेता हूं ॥ ५७ ॥ लक्ष्मीके संग विहार छोडकर हीन योनि मत्स्यादिका कौन शरीर धारण करेगा और शय्याको छोडकर कौन स्वतंत्र गरुडके ऊपर चढकर संग्राम करेगा ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मा ! एकवार तुम्हारे सन्मुख ही धनुषकी ज्यासे हमारा शिर स्खलित हुआ था और उस समय त्वष्टाने अश्वका शिर हमारे शरीरपर लगा दिया ॥ ५९ ॥ तब उस दिनसे हमको हयग्रीव भी कहते हैं यह आप प्रत्यक्षरूपसे

१ यह कथा वैदिक है शतपथ आदि ग्रन्थोंमें लिखा है जब विष्णुका तेज अधिक बढा तब यह धनुषकी कोटीपर मुख धरे खड़े थे उपजिह्विकाओंके धनुपज्या काटनेसे उनका शिर पतित होकर यह आदित्व हुआ है। गूढ अभिप्राय यह है कि यज्ञादि सामग्रः हैं सबमें वैष्णव तेज व्याप्त है, वह एकत्र कर यज्ञ करते हैं।

देखिये यह लोकमें विडम्बना है यदि स्वतंत्रता होती तो ऐसा क्यों होता ॥ ६० ॥ इससे मैं स्वतंत्र नहीं हूं सर्वथा शक्तिहीन हूं उसी शक्तिका मैं निरन्तर ध्यान करता हूं ॥ ६१ ॥ हे कमलभव ! इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जानताहूं नारदजी बोले यह वार्ता विष्णुजीने ब्रह्माजीसे कही ॥ ६२ ॥ हेमुनिश्रेष्ठ ! और उन्होंने हमको सुनाई हे महाभाग ! इससे तुमभी अपने कल्याणपुरुषार्थकी प्राप्तिके निमित्त ॥ ६३ ॥ सन्देहरहित होकर देवीके चरणारविन्दका भजन करो जो तुम्हारा इष्टहोगा वह देवी सब कुछ प्रदान करेगी ॥ ६४ ॥ सूतजी बोले नारदजीके यह कहनेपर सत्यवतीपुत्र नारदजी देवीके चरणोंकी भक्ति करनेको तपके निमित्त पर्वतपर गये ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! हमारा मन

तस्मान्नाहं स्वतंत्रोऽस्मि शक्त्यधीनोऽस्मि सर्वथा ॥ तामेव शक्तिं सततं ध्यायामि च निरंतरम् ॥ ६१ ॥ नातः परतरं किंचिज्जानामि कमलोद्भव ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तं विष्णुना तेन पद्मयोनेस्तु सन्निधौ॥६२॥तेन चाप्यहमुक्तोऽस्मि तथैव मुनिपुंगव ॥ तस्मात्त्वमपि कल्याण पुरुषार्थाप्तिहेतवे ॥६३॥ असंशय हृदंभोजे भज देवीपदाम्बुजम् ॥ सर्वं दास्यति सा देवी यद्यदिष्टं भवेत्तव ॥६४॥ सूत उवाच ॥ नारदे नैवमुक्तस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ देवीपादाब्जनिष्णातस्तपसे प्रययौ गिरौ ॥६५॥ इति श्रीदेवीभा० म० प्रथमस्कंधे चतुर्थोऽध्याय ॥४॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतास्माकं मनः कामं मग्नं संशयसागरे ॥ यथोक्तं महदाश्चर्यं जगद्विस्मयकारकम् ॥१॥ यन्मूर्द्धा माधवस्यापि गतो देहात्पुनः परम् ॥ हयग्रीवस्ततो जातः सर्वकर्ता जनार्दनः ॥ २ ॥ देवोऽपि स्तौति यं देवं देवाः सर्वे यदाश्रयाः ॥ आदिदेवो जगन्नाथः सर्वकारणकारणः ॥ ३ ॥ तस्यापि वदनं छिन्नं दैवयोगात्कथं तदा ॥ तत्सर्वं कथयाऽऽशु त्वं विस्तरेण महामते ॥ ४ ॥ सूत उवाच शृण्वंतु मनुयः सर्वे सावधानाः समंततः ॥ चरितं देवदेवस्य विष्णोः परमतेजसः ॥ ५ ॥ कदाचिद्दारुणं युद्धं कृत्वा देवः सनातनः ॥ दशवर्षसहस्राणि परिश्रांतो जनार्दनः ॥ ६ ॥

महासन्देहसागरमें मग्न होरहा है यह आपने जगत्का विस्मयकारक बड़ा आश्चर्यरूप कथानक कहा ॥ १ ॥ कि माधव भगवानका भी शिर इसदेहसे उत्पतित हुआ और सबके कर्त्ता जनार्दनभी हयग्रीव रूपको प्राप्त हुये २ जिस देवकी देवता स्तुति करते हैं सब देवता जिनके आश्रय हैं जो आदिदेव जगन्नाथ सब कारणोंके भी कारण हैं ॥ ३ ॥ दैवयोगसे उनका भी शिर छिन्न हुआ यह कब और क्यों हुआ, हे महामते ! यह सब वार्त्ता आप विस्तारसे कहिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले सम्पूर्ण मुनियो ! तुम सावधान होकर सुनो परमतेजस्वी देवदेव विष्णुके चरित्र श्रवण करो ॥ ५ ॥ वह सनातनदेव किसी समय दारुण युद्ध कर दशसहस्र

वर्षमें श्रान्तहुये ॥ ६ ॥ तब समान अच्छे स्थानमें पद्मासन करके कण्ठदेशमें धनुषका अवलम्बन कर स्थितहुये ॥ ७ ॥ इस धनुषकी कोटिपर भार देकर भगवान्शयनकरगये, और श्रान्तहोनेके कारण दैवयोगसे उनको निद्रा आगई ॥ ८ ॥ तबकुछ समय उपरान्त इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता ब्रह्माके सहित यज्ञ करनेको उद्यतहुये ॥ ९ ॥ जनार्दन देवके देखनेको सब बैकुण्ठको गये कारण कि देवकार्यके सिद्ध करनेको यज्ञके अधिपति वही हैं ॥ १० ॥ उनको वहाँ न देख ज्ञानदृष्टिसे विचारकर जहाँ भगवान् थे वहीं सब देवता गये ॥११॥ वहाँ उन्होंने योगनिद्रामें प्राप्त हुए नरायणको देखा, कि वह व्यापक विष्णुको विचेतन देखकर ॥ १२ ॥ सब देवताओंकेस्थिरहोनेसे और भगवान्के निद्रितहोनेमें ब्रह्मा रुद्रादिसम्पूर्ण देवता विचारनेलगे ॥ १३ ॥ तब उनसे इन्द्रने कहा अब क्या

समे देशे शुभे स्थाने कृत्वा पद्मासनं विभुः ॥ अवलंब्य धनुः सज्यं कंठदेशे धरास्थितम् ॥ ७ ॥ दत्त्वा भारं धनुष्कोटयां निद्रामाप रमापतिः ॥ श्रांतत्वाद्दैव योगाच्च जातस्तत्रातिनिद्रितः ॥ ८ ॥ तदा कालेन कियता देवाः सर्वे सवासवाः ॥ ब्रह्मेशसहिताः सर्वे यज्ञं कर्तु समुद्यताः ॥ ९ ॥ गताः सर्वेऽथ वैकुण्ठं द्रष्टुं देवं जनार्दनम् ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं मखानामधिपं प्रभुम् ॥ १० ॥ अदृष्ट्वा तं तदा तत्र ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य ते ॥ यत्रास्ते भगवान्विष्णुर्जग्मुस्तत्र तदा सुराः॥११॥ ददृशुस्ते तदेशानं योग निद्रावशंगतम्॥ विचेतनं विभुं विष्णुं तत्राऽऽसांचक्रिरे सुराः ॥ १२ ॥ स्थितेषु सर्वदेवेषु निद्रासुप्ते जगत्पतौ ॥ चिंतामापुः सुराः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ॥ १३ ॥ तानुवाच ततः शक्रः किं कर्तव्यं सुरोत्तमाः ॥ निद्राभंगः कथं कार्यश्चिंतयंतु सुरोत्तमाः ॥१४॥ तमुवाच तदा शंभुर्निद्राभंगेऽस्ति दूषणम् ॥ कार्यं चैव प्रकर्तव्यं यज्ञस्य सुरसत्तमाः ॥ १५ ॥ उत्पादिता तदा वम्री ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ तया भक्षयितुं तत्र धनुषोऽग्रं धरास्थितम् ॥ १६ ॥ भक्षितेऽग्रे तदाऽनिम्नं गमिष्यति शरासनम् ॥ तदा निद्राविमुक्तो ऽसौ देवदेवो भविष्यति ॥ १७ ॥ देवकार्यं तदा सर्वं भविष्यति न संशयः ॥ स वम्रीं संदिदेशाऽथ देवदेवः सनातनः ॥ १८ ॥

करें हे देवताओ ! विचारो तो इनकी निद्रा भंग किस प्रकारसे करनी चाहिये ॥ १४ ॥ तब उनसे शिवजीने कहा निद्रा भंगकरनेका बड़ादोष है और हे देवताओ ! यज्ञका कार्यकरो ॥ १५ ॥ तब परमेष्ठी ब्रह्माने उपजिह्वका प्रगट करके उनके द्वारा धनुषकी कोटि भणक्ष कराने को कहा ॥ १६ ॥ कि जिस समय यह धनुषकी कोटिको भक्षण करेंगी तब शरासन खुलेगा तब इनदेवकी निद्रा खुलेगी [ऐसा करनेसे देवताओंने अपनीनिर्दोषता और अपने पर विष्णुकी अक्रोधता प्रतिपादनकी] ॥ १७ ॥ तो सम्पूर्ण देवताओंका कार्य सिद्धहोगा इसमें सन्देह नहीं सनातन देवने वम्रीको आज्ञादी ॥ १८ ॥

तब वम्री कहने लगी देवदेव जगत्पतिकी निद्रा भंग कैसे करें वह तो जगत्के गुरु हैं ॥ १९ ॥ किसीकी निद्रा भंगकरना कथाका छेदन करना दोनों स्त्री पुरुषोंका प्रीति भेदन करना, बालकसे माताका भेद करादेना यह पाप ब्रह्महत्याके समान है ॥ २० ॥ सो हम देवदेवका सुख किस प्रकार विनाश करें इसके भक्षणसे हमको क्या फल होगा जो हम इस प्रकारका पाप करें ॥ २१ ॥ लोक प्रायः सबही स्वार्थके वश होकर पातक करते हैं इस कारणसे हमभी कुछ स्वार्थ सेही भक्षण करेंगे ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले सुनो हम यज्ञमें तुम्हारे भागकीभी कल्पना करेंगे इसकारण तुम हमारा कार्य कर विष्णुको शीघ्र जगाओ ॥ २३ ॥

तमुवाच तदा वम्री देवदेवस्य मापतेः ॥ निद्राभंगः कथं कार्यो देवस्य जगतां गुरोः ॥ १९ ॥ निद्राभंगः कथाच्छेदो दंपत्योः प्रीतिभेदनम् शिशुमातृविभेदश्च ब्रह्महत्यासमं स्मृतम् ॥ २० ॥ तत्कथं देवदेवस्य करोमि सुखनाशनम् ॥ किं फलं भक्षणाद्देव येन पापं करोम्यहम् ॥ २१ ॥ सर्वः स्वार्थवसो लोकः कुरुते पातकं किल ॥ तस्मादहं करिष्यामि स्वार्थमेव प्रभक्षणम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तव भागं करिष्यामो मखमध्ये यथा शृणु ॥ तेन त्वं कुरु कार्यं नो विष्णुंबोधय मा चिरम् ॥ २३ ॥ होमकर्मणि पार्श्वे च हविर्दानात्पतिष्यति ॥ तं ते भागं विजानीह कुरु कार्यं त्वरान्विता ॥ २४ ॥ सूत उवाच इत्युक्ता ब्रह्मणा वम्री धनुषोऽग्रं त्वरान्विता ॥ चखाद संस्थितं भूमौ विमुक्ता ज्या तदाऽभवत् ॥२५॥ प्रत्यंचायां विमुक्तायां मुक्ता कोटिस्तथोत्तरा ॥ शब्दः समभवद्घोरस्तेन त्रस्ताः सुरास्तदा ॥२६॥ ब्रह्मांडं क्षुभितं सर्वं वसुधा कंपिता तदा॥समुद्राश्च समुद्विग्नास्त्रेसुश्च जलजंतवः ॥ २७ ॥ ववुर्वातास्तथाचोग्राः पर्वताश्च चकंपिरे ॥ उल्कापाता महोत्पाता बभूवुर्दुःखशंसिनः ॥ २८ ॥ दिशो घोरतराश्चासन्सूर्योऽप्यस्तं गतोऽभवत् ॥ चिंतामापुः सुराः सर्वे किं भविष्यति दुर्दिने ॥ २९ ॥

हवनके करनेमें हविदानसे जो भाग पार्श्वमें गिरेगा वह तुम्हारा भाग होगा इसकारण शीघ्र कार्य करो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वम्रीयोंने शीघ्रताके सहित उस धनुषकी कोटिमें लग्नज्याका भक्षणकिया ॥ २५ ॥ प्रत्यंचाके मुक्तहोनेमें कोटि पतितहुई उसके टूटनेसे घोरशब्द हुआ जिससे सब देवता व्याकुल होगये ॥ २६ ॥ सब ब्रह्माण्ड क्षुभित और वसुधा कम्पित हुई समुद्र उद्विग्नहुए जलजन्तु घबडा उठे ॥२७॥ उग्रपवन चलनेलगी पर्वत कम्पित होगये उल्कापात महोत्पातहुए जो दुःखके कथन करनेवाले हैं ॥ २८ ॥ दिशा अत्यन्त घोर होगई सूर्य अस्तमयहुये देवता चिन्तित हुए कि इस दुर्दिनमें क्या

---

१ दीमक ।

होगा ॥ २९ ॥ उनके ऐसा चिन्ता करनेपर विष्णुका कुंडल मुकुट सहित मस्तक अदृश्य हुआ ॥ ३० ॥ जब वह घोर अंधकार शान्त हुआ तब ब्रह्मा और शिवजीने विष्णुका शरीर शिरहीन देखा ॥ ३१ ॥ इसप्रकार विष्णुका कबन्धदेख.वे देवता विस्मितहुए और चिन्तासागरमें मग्न हो शोकसे व्याकुल हुए रोने लगे ॥३२॥ हे नाथ ! हे प्रभो ! यह क्या अमानुषी लीला हुई हे देवदेव सनातन ! यह क्या दुःख उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ यह किसदेवकी माया है जिससे तुम्हारा शिर हरण हुआ तुम अच्छेद्य अभेद्य और अप्रदाह्य हो ॥ ३४ ॥ हे विभो ! आपके ऐसा होनपर सब देवता मृतक हो जायँगे हमारा तुममें क्या स्नेह है अपने स्वार्थके निमित्त रोते हैं ॥३५॥ यह विघ्न दैत्य यक्ष राक्षसोंका किया नहीं है हे रमापते ! किसको दूषण दें यह देवताओंकाही किया विघ्न है ॥३६॥ हम सब

एवं चिंतयतां तेषां मूर्धा विष्णोःसकुंडलः॥ गतःसमुकुटःक्वापि देवदेवस्य तापसाः॥३०॥अंधकारे तदा घोरे शांते ब्रह्महरौ तदा ॥ शिरोहीनं शरीरं तु ददृशाते विलक्षणम् ॥३१॥ दृष्ट्वा कबंधं विष्णोस्ते विस्मिताः सुरसत्तमाः ॥ चिंतासागरमग्नाश्च रुरुदुः शोककर्शिताः ॥३२॥ हा नाथ किं प्रभो जातमत्यद्भुतममानुषम्॥ वैशसं सर्वदेवानां देवदेव सनातन ॥ ३३ ॥ मायेयं कस्य देवस्ययया तेऽद्य शिरो हृतम् ॥अच्छेद्यस्त्वमभेद्योऽसि अप्रदाह्योऽसि सर्वदा ॥ ३४ ॥ एवं गते त्वयि विभो मरिष्यंति च देवताः ॥ कीदृशस्त्वयि नः स्नेहः स्वार्थेनैव रुदामहे ॥३५॥ नायं विघ्नः कृतो दैत्यैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः ॥ देवैरेव कृतः कस्य दूषणं च रमापते ॥३६॥ पराधीनः सुराः सर्वे किं कुर्मः क्व व्रजाम च ॥ शरणं नैव देवेश सुराणां मूढचेतसाम् ॥ ३७ ॥ न चैषा सात्त्विकी माया राजसी न च तामसी ॥ यया छिन्नं शिरस्तेऽद्य मायेशस्य जगद्गुरोः ॥३८॥ क्रंदमानांस्तदा दृष्ट्वा देवाञ्छिवपुरोगमान् ॥ बृहस्पति स्तदोवाच शमयन्वेदवित्तमः ॥३९॥ रुदितेन महाभागाः क्रंदितेन तथाऽपि किम् ॥ उपायश्चात्र कर्तव्यः सर्वथा बुद्धिगोचरः ॥ ४० ॥ दैवं पुरुषकारश्च देवेश सदृशावुभौ ॥ उपायश्च विधातव्यो दैवात्फलति सर्वथा ॥ ४१ ॥ इंद्र उवाच ॥ दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ विष्णोरपि शिरश्छिन्नं सुराणां चैव पश्यताम् ॥ ४२ ॥

पराधीन देवता क्या करें कहाँ जाँय । हे देव ! मूढचित्त देवताओंको कहींभी शरण नहीं है ॥ ३७ ॥ यह माया सात्विकी राजसी तामसी नहीं है जो मायापति जगत्का उसके द्वारा शिर छेदन हुआ हो ॥३८॥ जब इस प्रकार देवता शिवादिको रुदन करते देखा तब वेदज्ञाता बृहस्पति उनका शोक शान्त करते बोले ॥ ३९ ॥ हे महाभागो ! अब रोने और क्रन्दन करनेसे क्या है, इस समय बुद्धिपूर्वक उपाय करना चाहिये ॥ ४० ॥ दैव और पुरुषकार यह दोनों हे देवेश ! समान हैं, इनका उपाय करो दैवसे फलित होता है ॥ ४१ ॥ इन्द्र बोले दैवही बलवान् है, अनर्थकारी पुरुषार्थसे कुछ नहीं है देवताओंके देखते

विष्णुका शिर छेदन किया गया ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा बोले समयसे जो प्राप्त होता है वह फल अवश्य भोगना पडता है शुभ वा अशुभ दैवको कौन अतिक्रम कर सकता है ॥४३॥ देहवाला सुख दुःखोंका भोक्ता है इसमें संदेह नहीं जैसे कालवशसे हमारा शिर शंभुने छेदन किया था ॥४४॥ और इसी प्रकार महादेवका शापसे लिंगपात हुआ, इसी प्रकार आज विष्णुका शिर लवण सागरमें पतित हुआ है ॥४५॥ इन्द्रकोभी सहस्रभग प्राप्तिका दुःख है और इन्द्रको स्वर्ग से भ्रष्ट होकर मानस सरोवरमें निवास करना पडा ॥४६॥ जब ऐसे भी दुःखके भोक्ता हैं फिर किसको दुःखका भोग नहीं है हे महाभाग ! जब यह संसारकी दशा है तो शोक त्यागन करो ॥४७॥ महामाया सनातनी विद्या देवीका विचार करो वह स्वच्छन्द दुःख रहित है वह निर्गुण पराप्रकृति हमारे कार्योंको विधान करेंगी॥४८॥

ब्रह्मोवाच ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कालेनापादितं च यत् ॥ शुभं वाऽप्यशुभं वाऽपि दैवं कोऽतिक्रमेत्पुनः ॥ ४३ ॥ देहवान्सुखदुःखानां भोक्ता नैवात्र संशयः ॥ यथा कालवशाकृत्तं शिरो मे शंभुना पुरा ॥ ४४ ॥ तथैव लिंगपातश्च महादेवस्य शापतः ॥ तथैवाद्य हरेर्मूर्धा पतितो लवणांभसि ॥ ४५ ॥ सहस्रभगसंप्राप्तिदुःखं चैव शचीपतेः ॥ स्वर्गाद्भ्रंशस्तथा वासः कमले मानसे सरे ॥ ४६ ॥ एते दुःखस्य भोक्तारः केन दुःखं न भुज्यते ॥ संसारेऽस्मिन्महाभागस्तमाच्छोकं त्यजंतुवै ॥ ४७ ॥ चिंतयंतु महामायां विद्यां देवीं सनातनीम् ॥ सा विधास्यतिः न कार्यं निर्गुणा प्रकृतिः परा ॥ ४८ ॥ ब्रह्मविद्यां जगद्धात्रीं सर्वेषां जननीं तथा ॥ यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वै सुरान्वेधा निगमानादिदेश ह ॥ देहयुक्तान्स्थितानग्रे सुरकार्यार्थं सिद्धये ॥ ५० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स्तुवंतु परमां देवीं ब्रह्मविद्यां सनातनीम् ॥ गूढांगीं च महामायां सर्वकार्यार्थसाधनीम् ॥ ५१ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वेदाः सर्वांग सुंदराः ॥ तुष्टुवुर्ज्ञानगम्यां तां महामायां जगस्थिताम् ॥ ५२ ॥ वेदा ऊचुः ॥ नमो देवि महामाये विश्वोत्पत्तिकरे शिवे ॥ निर्गुणे सर्वभूतेशि मातः शंकरकामदे ॥ ५३ ॥

ब्रह्म विद्या जगत्की माता सबकी जननी है उसने यह सब चराचर जगत् व्याप्त कर रक्खा है ॥ ४९ ॥ सूतजी बोले ब्रह्माजीने इस प्रकार कहकर वेदोंको आज्ञादी और वे देव कार्य सिद्धिके निमित्त देह धारण कर आगे स्थितहुए ॥ ५० ॥ ब्रह्माजी बोले तुम परमदेवी ब्रह्मविद्या सनातनी गूढअङ्गवाली सब कार्यकी साधन करनेवालीकी स्तुति करो "जैसे गज शरीर प्रविष्ट चेतनकी गज संज्ञा होती है इसी प्रकार प्रथममाया शक्तिमें प्रविष्ट चैत्यन्यकी माया शक्ति प्रथमा संज्ञा है विद्याशरीरमें प्रविष्ट होनेसे विद्यासंज्ञा है" ॥५१॥ यह ब्रह्माजीके वचन सुन सर्वांग सुन्दर वेदज्ञानसे जानने योग्य उस महामायाकी स्तुति करने लगे ॥५२॥ वेद बोले

हे देवि महामाये संसारकी उत्पादक कल्याणि आपको प्रणाम है हे निर्गुण सब भूतकी अधीश्वरी मात कल्याण कारिणी कामनादायक तुमको प्रणाम है ॥ ५३ ॥ " यहांसे आगे सर्वत्रः देवीस्तोत्रपुराण तंत्रोंमें देवीमायासे विशिष्ट ब्रह्मरूप होनेके कारण कहीं ब्रह्मत्वसे कहीं मायात्वसे वर्णन कियाहै ऐसा जानना " तुमही सब प्राणियोंकी आधार हो प्राणधारियोंके प्राण हो धीः, श्रीः, कान्ति, क्षमा, शान्ति, श्रद्धा मेधा, स्मृति, धृति, तुम हो ॥५४॥ तुम ॐकारमें अर्धमात्रा अर्धचन्द्ररूपिणी हो तुम गायत्री, सातव्याहृति, जया विजया, धात्री, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा, दया हो ॥५५॥ हे मातः तीनों भुवनके उत्पादन करनेमें कुशल हो दया रससे युक्त जनोंकी जननी विद्या कल्याणी सब लोककी हितकारिणी श्रेष्ठ निरन्तर वाग्बीज मंत्रोंके उपासकोंको प्राप्त होनेवाली निपुण भयनाशकारिणी

त्वं भूमिः सर्वभूतानां प्रणः प्राणवतां तथा ॥ धीः श्रीः कांतिः क्षमा शांति श्रद्धा मेधा धृतिः स्मृतिः ॥ ५४ ॥ त्वमुद्गीथेऽर्धमात्राऽसि गायत्री व्याहृतिस्तथा ॥ जया च विजया धात्री लज्जा कीर्तिः स्पृहा दया ॥ ५५ ॥ त्वां संस्तुमोऽम्ब भुवनत्रयसंविधानदक्षां दयारस युतां जननीं जनानाम् ॥ विद्यां शिवां सकल लोकहितां वरेण्यां वाग्बीजवासनिपुणां भवनाशकर्त्रीम् ॥ ५६ ॥ ब्रह्मा हरः शौरिसहस्रनेत्र वाग्वह्निसूर्या भुवनाधिनाथाः ॥ ते त्वत्कृताः संति ततो न मुख्या माता यतस्त्वं स्थिरजं गमानाम् ॥ ५७ ॥ सकलभुवनमेतत्कर्तुकामा यदा त्वं सृजसि जननि देवान्विष्णुरुद्राजमुख्यान्॥स्थितिलयजननं तैः कारयस्येकरूपा न खलु तव कथंचिद्देवि संसारलेशः ॥ ५८ ॥ न ते रूपं वेत्तुं सकलभुवने कोऽपि निपुणो न नाम्नां संख्या, ते कथितुमिह योग्योऽस्ति पुरुषः ॥ यदल्पं कीलालं कलयितुमशक्तः स तु नरः कथं पारावाराकलनचतुरः स्याद्धतमतिः ॥ ५९ ॥

तुम्हारी हम स्तुति करते हैं ॥ ५६ ॥ ब्रह्मा, हर, विष्णु, इन्द्र वाणी सरस्वती, अग्नि, सूर्य भुवनोंके अधिपति यह सब आपके किये हुए हैं इससे मुख्य नहीं और आप स्थावर जङ्गमोंकी माता हो ॥५७॥ जब तुम इस सम्पूर्ण भुवनके करनेकी इच्छासे हे देवी माता विष्णु ब्रह्मा रुद्रादि देवताओंकी रचनेकी इच्छा करती हो इनसे सृष्टिकी उत्पत्ति पालन और प्रलय कराती हो तुम एकरूप हो तुममें विकार नहीं न कुछ संसारका लेश है ॥ ५८ ॥ हे भगवती ! इस सम्पूर्ण भुवनमेंभी कोई निपुण तत्त्वसे तुम्हारे रूपको नहीं जानता, न कोई पुरुष तुम्हारे नामकी संख्या जाननेको समर्थ है "यतोवाचो निवर्तन्ते"। को श्रद्धा वेद इत्यादि श्रुति सिद्ध हैं जो मनुष्य थोडेसे सरोवरके जलकोभी उल्लंघन नहीं कर सकता वह कैसे सत्यप्रतिज्ञ होकर सागरको उल्लंघन कर सकता है ॥ ५९ ॥

हे देवि ! देवताओंके मध्यमें भी कोई तुम्हारे अनन्त ऐश्वर्यको नहीं जान सकता तुम इस संसारमें भुवनेश्वरी नाम किसीकी सहायता न लेनेवाली जननी हो एक मात्र तुम इस मिथ्या जगत्को किस प्रकार रचना करती हो इस मिथ्या जगत्में [त्रयमेतत्स्वप्नंसुषुप्तंमाया मात्रमिति] यह निगम वचन प्रमाण है ॥६०॥ तुम सब जगत्की कारणरूप निरीह हो हे भगवती ! आपके विचित्र चरित्र देख हमारा मन मोहित करते हैं यही कि तुम अविकृत रूप होकर विकारी जगत्की कैसे रचना करती हो, नासदासीन्नोसदासीत्तदानीम्' और 'कामस्तदग्रेसमवर्तत' इत्यादि श्रुतिप्रतिपाद्य विरुद्धगुण तुममें हैं यह अनिर्वचनीय सम्पूर्ण निगमके जानने योग्य तुम्हारा प्रभाव हम कैसे कह सकते हैं कारण कि उस अनिर्वचनीय प्रभावको अनन्त अनिर्वचनीय होनेसे तुम भी नहीं जानती हो [यो अस्याध्यक्षः

न देवानां मध्ये भगवति तवानंतविभवं विजानात्येकोऽपि त्वमिह भुवनैकाऽसि जननी ॥ कथं मिथ्या विश्वं सकलमपि चैका रचयसि प्रमाणं त्वेतस्मिन्निगमवचनं देवि विहितम् ॥ ६० ॥ निरीहैवासि त्वं निखिलजगतां कारणमहो चरित्रं ते चित्रं भगवति मनो नो व्यथयति ॥ कथंकारं वाच्यः सकलनिगमागोचरगुणप्रभावः स्वं यस्मात्स्वयमपि न जानासि परमम् ॥ ६१ ॥ न किं जानासि त्वं जननि मधुजिन्मौलिपतनं शिवे किं वा ज्ञात्वा विविदिषसि शक्तिं मधुजितः ॥ हरे किं वा मातर्दुरिततितिरेषा बलवती भवत्याः पादाब्जे भजननिपुणे क्वास्ति दुरितम् ॥ ६२ ॥ उपेक्षा किं चेयं तव सुरसमूहेऽतिविषमा हरेर्मूर्ध्नो नाशो मतमिह महाश्चर्यजन कम् ॥ महद्दुःखं मातस्त्वमसि जननच्छेदकुशला न जानीमो मौलेर्विघनविलंबः कथमभूत् ॥ ६३ ॥ ज्ञात्वादोषं सकलसुरतापादितं देवि चित्ते किं वा विष्णावमरजनितं दुष्कृतं पातितं ते ॥ विष्णोर्वा किं समरजनितः कोऽपि गर्वोऽतिवेगाच्छेत्तुं मातस्तव विलसितं नैव विद्मोऽत्र भावम् ॥ ६४ ॥

परमे व्योमन् सौ अङ्गवेदयदिवानवेदेतिश्रुतेः] ॥ ६१ ॥ हे मातः ! तुम क्या नहीं जानती हो कि भगवान्का शिर तिरोधान हुआ है हे शिव ! इसको जान कर भी क्या फिर इसके जाननेकी इच्छा करती हो वा मधुरिपुकी शक्ति जाननेकी इच्छा है सो यह भी नहीं कारण कि तुम्हारे ही प्रसादसे मधुकैटभको जीता था यदि कहा जाय विष्णुमें कोई दुरितका बलवान् फल है सोभी नहीं हो सकता तुम्हारे चरणकमलका भजन करनेवालोंमें पापका लेश नहीं है ॥ ६२ ॥ यह देवताओंमें अधिक हैं इनके विषय उपेक्षा करनी उचित नहीं है हरिका मस्तक उत्पतन हुआ है यह बडे आश्चर्यकी घटना है हे मातः ! यह दुःखकी बात है तुमही जन्म मरणके दुःखछेदनमें कुशल हो हम नहीं जानते भगवान् विष्णुके शिर जुडनेमें क्यों विलम्ब हो रहा है॥६३॥हे देवि ! क्या सम्पूर्ण

देवताओंके अनेक दोष देख कर उन देवताओंके दोषसे यह विष्णुका शिर छेदन हुआ है अथवा प्रजाके किये पापराजनीतिन्याय द्वारा देवताओंके दुष्टकृत्यसे देवराज होनेसे विष्णुका शिर पातित हुआ कारण कि प्रजाका पाप राजामें लगता है अथवा विष्णुके समरजनित कोपका गर्व जानकर उसको दूर करनेको शिर छेदन करती हो हे मातः ! इसमें हम कारण नहीं जानते॥६४॥अथवा क्या समरमें हारकर दैत्योंने रम्यतीर्थमें घोर तपस्याकर तुमसे वर पाया है जिससे हे भवानी ! यह विष्णुका शिर इस समय अन्तर्द्धान हुआ है अथवा विना शिरके वासुदेवको देखकर तुमको कोई विनोद होता है ॥ ६५ ॥ अथवा हे माता ! क्या तुमको लक्ष्मीने रुठा दिया है नाथहीन इनको कैसे देखती हो अपने अंशसे उत्पन्न हुएका अपराध तुमको क्षमा करना चाहिये अब इनको उठाकर हम

किं वा दैत्यैः समरविजितैस्तीर्थदेशे सुरम्ये घोरं तप्त्वा भगवति वरं लब्धवद्भिर्भवत्याः ॥ अन्तर्धानं गमित मधुना विष्णुशीर्षं भवानि द्रष्टुं किं वा विगतशिरसं वासुदेवं विनोदः ॥ ६५ ॥ सिंधोः पुत्र्यां रोषिता किं त्वमाद्ये कस्मादेनां प्रेक्षसे नाथहीनाम् ॥ क्षंतव्यस्ते स्वांशजातापराधो व्युत्थाप्यैनं मोदितां मां कुरुष्व ॥६६॥ एते सुरास्त्वां सततं नमंति कार्येषु मुख्याः प्रथितप्रभावाः ॥ शोकार्णवात्तारय देवि देवानुत्थाप्य देवं सकलाधिनाथम् ॥ ६७ ॥ मूर्धा गतः क्वांबहरेर्न विद्मो नान्योऽस्त्युपायः खलु जीवनेऽद्य ॥ यथा सुधा जीवन कर्मदक्षा तथा जगज्जीवितदाऽसि देवि ॥ ६८ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी गुणातीता महेश्वरी ॥ प्रसन्ना परमा माया वेदैः सांगैश्च सामगैः ॥ ६९ ॥ तानुवाच तदा वाणीचाकाशस्थाऽशरीरिणी ॥ देवान्प्रति सुखैः शब्दैर्जनानंदकरी शुभा ॥ ७० ॥ मा कुरुध्वं सुराश्चिंतां स्वस्थास्तिष्ठंतु चामरा ॥ स्तुताऽहं निगमैः कामं संतुष्टाऽस्मि न संशयः ॥ ७१ ॥

सबको प्रसन्न करो॥ ६६ ॥ कार्यमें मुख्य बडे प्रभावशील यह देवता तुमको नित्य प्रणाम हैं हे देवी ! इन संपूर्णके अधिपति जीवित करके हमको शोक साग रसे पार करो ॥६७॥ हे माता ! हरिका शिर कहां गया सो हम नहीं जानते अब कोई जीवनका उपाय नहीं देखते हैं जिस प्रकारसे तुम देवताओंके जीवन कर्ममें दक्षहो इसी प्रकार जगत्कोभी जीवन देनेवाली हो ॥६८॥ सूतजी बोले जब इस प्रकार गुणातीत महेश्वरीकी स्तुति करी तब साङ्ग सामगानयुक्त वेदोंसे माता प्रसन्न हुई ॥६९॥ तब आकाशमेंसे अशरीरिणी वाणी हुई जो देवता भक्तोंको आनन्दकारी शब्दोंसे पूर्ण थी ॥७०॥ हे देवताओ ! चिन्ता मत करो स्वस्थ होकर स्थित हो मैं वेदोंकी स्तुतिसे अत्यन्त प्रसन्न हुई हूं ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य लोकमें इस मेरे स्तोत्रसे स्तुति करेंगे और भक्तिसे सदा पढेंगे वे सब कामनाओंको प्राप्त होंगे ॥ ७२ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे तीन कालतक इस मेरे स्तोत्रको पढेंगे वह दुःखसें रहित होकर सुखी होंगे यह वेदोक्त स्तोत्र वेदकेही समान है ॥ ७३ ॥ यह कारण सुनो जिससे हरिका शिर उत्पतन हुआ इस संसारमें विना कारणके कोई कार्य कैसे हो सकता है ॥ ७४ ॥ विष्णुकी लक्ष्मीजीके समीपमें स्थित थे उनका मनोहर मुख देखकर धन्य है इनका मुख ऐसा कहकर हँसे ॥ ७५ ॥ लक्ष्मी यह जानकर कहने लगीं स्वामी मुझे देखकर हँसते हैं किस कारणसे हरिने मेरा रूप विरूप देखा ॥ ७६ ॥ विना कारण हास्यका कैसे संभव हो सकता है, विदित होता है कि इन्होंने कोई दूसरी स्त्री की है ॥७७॥ उस समय तमोगुणसे महालक्ष्मीको क्रोध हुआ कारण

यः पुमान्मानुषे लोके स्तौत्येतां मामकीं स्तुतिम् ॥ पठिष्यति सदा भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ७२ ॥ शृणोति वास्तोत्रमिदं मदीयं भक्त्या त्रिकालं सततं नरो यः ॥ विमुक्तदुःखः स भवेत्सुखी च वेदोक्तमेतन्ननु वेदतुल्यम् ॥ ७३ ॥शृण्वंतु कारणं चाद्य यद्भूतं वदनं हरेः ॥ अकारणं कथं कार्यं संसारेऽत्र भविष्यति ७४ ॥ उदधेस्तनयां विष्णुः संस्थितामंतिके प्रियाम् ॥ जहास वदनं वीक्ष्य तस्यास्तत्र मनोरमम् ॥ ७५ ॥ तया ज्ञातं हरिर्नूनं कथं मां हसति प्रभु ॥ विरूपं हरिणा दृष्टं मुखं मे केन हेतुना ॥७६॥ विनाऽपि कारणेनाद्य कथं हास्यस्य संभवः ॥ सपत्नीव कृता तेन मन्येऽन्या वरवर्णिनी ॥७७॥ ततः कोपयुता जाता महालक्ष्मी तमोगुणा ॥ तामसी तु तदा शक्तिस्तस्या देहे समाविशत् ॥७८॥ केनचित्कालयोगेन देवकार्यार्थसिद्धये ॥ प्रविष्टा तामसी शक्तिस्तस्या देहेऽतिदारुणा ॥ ७९ ॥ तामस्याऽऽविष्टदेहा सा चुकोपातिशयं तदा॥सनकैः समुवाचेदमिदं पततु ते शिरः ॥ ८० ॥ स्त्रीस्वभावाच्च भावित्वात्कालयोगाद्विनिर्गतः॥ अविचार्य तदा दत्तः शापःस्वसुखनाशनः ॥ ८१ ॥ सपत्नीसंभवं दुःखं वैधव्यादधिकं त्विति ॥ विचिंत्य मनसेत्युक्तं तामसीशक्तियोगतः ॥ ८२ ॥

कि उसके शरीरमें तामसी शक्तिने प्रवेश किया ॥ ७८ ॥ फिर किसी समयके योगमें देवकार्यकी सिद्धिके निमित्त उनके देहमें बड़ी दारुण तामसी शक्तिने प्रवेश किया ॥७९॥ देहमें तमोगुण प्रविष्ट होनेसे महा क्रोधित हुई और शनैः२बोली यह तुम्हाराशिर पतित होगा ॥ ८० ॥ स्त्री स्वभाव होनहार और कालके योगसे ऐसा मुखसे निर्गत हुआ बिना विचारे अपने सुखका नाशक शाप दिया ॥ ८१ ॥ सपत्नीका दुःखतो वैधव्यसेभी अधिक होता है ऐसा मनमें विचार तामसी शक्तिके योगसे उसके मुखसे यह निकल गया ॥ ८२ ॥

अनृत साहस माया मूर्खता अति लोभता अशौच और निर्दयता यह स्त्री जनोंके स्वाभाविक दोष हैं ॥८३॥ सो इस समयमें वासुदेवको पूर्वके समान शिर
युक्त करती हूं शाप योगसे इनका शिर क्षारसमुद्रमें मग्न हो गया ॥ ८४ ॥ हे देवताओ ! कुछ और भी कारण है तुम्हारा एक बड़ा कार्य होगा इसमें संदेह
नहीं ॥ ८५ ॥ महाबाहु हयग्रीव नामक महादैत्य सरस्वतीके किनारे दारुण तप कर चुका है ॥८६॥ माया बीजात्मक मेरा मंत्र जपता हुआ, आहार हीन
आत्मजित् सब भोग छोड़ तप करने लगा ॥८७॥ मेरी सब भूषणोंसे भूषित तामसी शक्तिका ध्यान करते इस प्रकार सहस्र वर्षतक दारुण तप किया॥८८॥
तब मैं तामसी रूप करके उस स्थानपर आई जैसा उसने ध्यान किया था उसी प्रकारसे उसके सन्मुख उपस्थित हुई ॥ ८९ ॥ सिंहके ऊपर स्थित हो

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ॥ अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥ ८३ ॥ सशीर्षं वासुदेवं तं करोम्यद्य यथा
पुरा ॥ शिरोऽस्य शापयोगेन निमग्नं लवणांबुधौ ॥ ८४ ॥ अन्यच्च कारणं किंचिद्वर्ततेऽत्र सुरसत्तमाः ॥ भवतां च महत्कार्यं भविष्यति
न संशयः ॥ ८५ ॥ पुरा दैत्यो महाबाहुर्हयग्रीवोऽति विश्रुतः ॥ तपश्चक्रे सरस्वत्यास्तीरे परमदारुणम् ॥ ८६ ॥ जपन्नेकाक्षरं मंत्रं माया
बीजात्मकं मम ॥ निराहारो जितात्मा च सर्वभोगविवर्जितः ॥ ८७ ॥ ध्यायन्मां तामसीं शक्तिं सर्वभूषणभूषिताम् ॥ एवं वर्षसहस्रं च तप
श्चक्रेऽतिदारुणम् ॥८८॥ तदाऽहं तामसं रूपं कृत्वा तत्र समागता ॥ दर्शने पुरतस्तस्य ध्यातं तत्तेन यादृशम् ॥८९॥ सिंहोपरिस्थिता
तत्र तमवोचं दयान्विता ॥ वरं ब्रूहि महाभाग ददामि तव सुव्रत ॥ ९० ॥ इति श्रुत्वा वचो देव्या दानवः प्रेमपूरितः ॥ प्रदक्षिणां प्रणामं
च चकार त्वरितस्तदा॥९१॥दृष्ट्वा रूपं मदीयं स प्रेमोत्फुल्लविलोचनः ॥ हर्षाश्रुपूर्णनयनस्तुष्टाव स च मां तदा ॥९२॥ हयग्रीव उवाच ॥
नमो देव्यै महामाये सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ॥ भक्तानुग्रहचतुरे कामदे मोक्षदे शिवे॥९३॥धरांबुतेजः पवनखपञ्चानां च कारणम् ॥ त्वं गंध
रसरूपाणां कारणं स्पर्शशब्दयोः ॥९४॥ घ्राणं च रसना चक्षुस्त्वक्छ्रोत्रमिंद्रियाणि ॥कर्मेन्द्रियाणिच चान्यानि त्वत्तः सर्वं महेश्वरि ॥९५॥

दयापूर्वक मैंने उससे कहा हे महाभाग ! वर मांग मैं तुमको प्रदान करूंगी ॥ ९० ॥ इस प्रकार देवीके वचन सुन प्रेमसे पूरित हो दानव शीघ्रतासे प्रदक्षिणा
और प्रणाम कर ॥ ९१ ॥ मेरा रूप देखकर उत्फुल्ललोचन हो हर्षसे नेत्रोंमें आंसू भरकर मुझको प्रसन्न करने लगा ॥ ९२ ॥ हयग्रीव बोला सृष्टिके स्थिति
और अन्त करनेवाली महादेवीके निमित्त प्रणाम है हे, भक्तके अनुग्रह करनेमें चतुर काम मोक्ष देनेवाली शिवे ! ॥ ९३ ॥ धरा, जल, तेज, पवन, आकाश
इन पाँचोंके कारण गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्दको कारण तुम हो॥९४॥हे महेश्वरी ! घ्राण, रसना, चक्षु,त्वक्, श्रोत्र, कर्मेन्द्रिय जो कुछ है सो सब तुमसे प्रगट

हैं ॥ ९५ ॥ श्रीदेवी बोली तू वर मांग क्या तुझको अभीष्ट है वह मैं वांछित वर दूंगी, मैं तेरी भक्ति और तपसे संतुष्ट हूं जो अद्भुत हैं ॥ ९६ ॥ हयग्रीव बोले हे माता ! जिस प्रकार मेरी मृत्यु न हो सो करो मैं अमर योगी सुरासुरोंसे अजेय हो जाऊं ॥ ९७ ॥ देवी बोली जो उत्पन्न है उसकी मृत्यु अवश्य होती है और मृतका जन्म अवश्य होता है यह लोककी मर्यादा अन्यथा कैसे हो सकती है ॥९८॥ हे राक्षसोत्तम ! इस प्रकार तुम मरणमें निश्चय करके मनमें विचार कर बोलो ॥ ९९ ॥ हयग्रीव बोला हे जगदम्बिके ! मेरी मृत्यु हयग्रीवसे ही हो दूसरेसे न हो यह तुम मेरा मनोरथ पूर्ण करो ॥ १०० ॥ देवी बोली हे महाभाग !

श्रीदेव्युवाच ॥ किंतेऽभीष्टं वरं ब्रूहि वांछितं यद्ददामि तत् ॥ परितुष्टाऽस्मि भक्त्या ते तपसा चाद्भुतेन च ॥ ९६ ॥ हयग्रीव उवाच ॥ यथा मे मरणं मातर्न भवेत्तत्तथाकुरु ॥ भवेयममरो योगी तथाऽजेयः सुरासुरैः॥९७॥ देव्युवाच ॥ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्य च ॥ मर्यादा चेदृशी लोके भवेच्च कथमन्यथा ॥९८॥ एवं त्वं निश्चयं कृत्वा मरणे राक्षसोत्तम॥वरं वरय चेष्टं ते विचार्य मनसा किल ॥९९॥ हयग्रीव उवाच ॥ हयग्रीवाच्च मे मृत्युर्नान्यस्माज्जगदंबिके ॥ इति मे वांछितं कामं पूरयस्व मनोगतम् ॥ १०० ॥ देव्युवाच ॥ गृहं गच्छ महाभाग कुरु राज्यंयथा सुखम् ॥ हयग्रीवादृते मृत्युर्न ते नूनं भविष्यति ॥ १ ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मै अंतर्धानं गता तथा ॥ मुदं परमिकां प्राप्य सोऽपि स्वभवनं गतः ॥२॥ स पीडयति दुष्टात्मा मुनीन्वेदांश्च सर्वशः ॥ न कोऽपि विद्यते तस्य हंताऽद्य भुवनत्रये ॥३॥ तस्माच्छीर्षं हयस्यास्य समुद्धृत्य मनोहरम् ॥ देहेऽत्र विशिरोविष्णोस्त्वष्टा संयोजयिष्यति ॥ ४ ॥ हयग्रीवोऽथ भगवान्हनिष्यति तमासुरम् ॥ पापिष्ठं दानवं क्रूरं देवानां हितकाम्यया ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं सुरांस्तदाऽऽभाष्य शर्वाणी विरराम ह ॥ देवास्तदाऽतिसंतुष्टास्तमूचुर्देवशिल्पिनम् ॥ ६ ॥

तुम घर जाकर यथा सुख राज्य करो हयग्रीवसे विना तेरी मृत्यु न होगी ॥ १ ॥ यह उसको वर दे देवी अन्तरर्धान हुई और वह भी परम प्रसन्न हो अपने घरको गया ॥२॥ वह दुष्टात्मा जाकर वेद और महर्षियों को पीडा देने लगा, और अब त्रिलोकीमें उसको कोई मारनेवाला नहीं है ॥३॥ इस कारण तुम मनोहर अश्वका शिर लाकर धरो त्वष्टा इनके देह पर वह शिर जोड देगा ॥ ४ ॥ और हयग्रीव भगवान् हयग्रीव दैत्यका वध करेंगे उस पापिष्ठी क्रूर दानवका देवताओंके हितकी कामनासे वध करेंगे ॥ ५ ॥ सूतजी बोले ऐसा कहकर देवी मौन हुई और देवता प्रसन्न होकर त्वष्टासे कहने लगे ॥ ६ ॥

देवता बोले आप विष्णुके शिरोः संयोजनरूप विष्णुका कार्य करो उस प्रबल दानवका हयग्रीवजी वध करेंगे ॥७॥ सूतजी बोले उनके यह वचन सुन त्वष्टाने
बहुत प्रसन्न होकर शीघ्रतासे एक घोड़ेका शिर खड्गसे कर्तन करके देवताओंके समक्षही ॥८॥ उस शरीरको विष्णुके शरीरपर युक्त किया, महा मायाके प्रसादसे
भगवान् हयग्रीव हुए ॥ ९ ॥ कुछ दिनोंपर उन्होंने मदसे दर्पित हुए उस दानवको युद्धमें नष्ट कर दिया ॥ १० ॥ जो मनुष्य भूमिमें इस सुन्दर आख्यानको
श्रवण करते हैं इसमें सन्देह नहीं उनके सब दुखः नष्ट हो जायँगे ॥ ११ ॥ यह महामायाके चरित्र पापके नाश करें पढने सुननेवाले सब सम्पत्ति पाते
हैं ॥ १२ ॥ इति श्रीदेवी भागवते म० प्र० भा० हयग्रीवावतार कथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५॥ ऋषि बोले हे सौम्य ! जो आपने कहा कि मधु कैटभके साथ

देवा ऊचुः ॥ कुरु कार्यं सुराणां वै विष्णोः शीर्षाभियोजनम् ॥ दानवप्रवरं दैत्यं हयग्रीवो हनिष्यति ॥७॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वच
स्तेषां त्वष्टा चातित्वरान्वितः ॥ वाजिशीर्षं चकर्त्ताशु खड्गेन सुरसन्निधौ ॥८॥ विष्णोः शरीरे तेनाशु योजितं वाजिमस्तकम् ॥ हयग्रीवो
हरिर्जातो महामायाप्रसादतः ॥ ९ ॥ कियता तेन कालेन दानवो मददर्पितः ॥ निहतस्तरसा संख्ये देवानां,रिपुरोजसा ॥ ११० ॥ य इदं
शुभमाख्यानं शृण्वंति भुवि मानवा ॥ सर्वदुःखविनिर्मुक्तास्ते भवंति न संशय ॥ ११ ॥ महामायाचरित्रं च पवित्रं पापनाशनम् ॥ पठतां
शृण्वतां चैव सर्वं संपत्तिकारकम् ॥११२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे हयग्रीवावतारकथनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
ऋषय ऊचुः ॥ सौम्य यच्च त्वया प्रोक्तं शौरेर्युद्धं महार्णवे ॥ मधुकैटभयोः सार्द्धं पंचवर्षसहस्रकम् ॥ १ ॥ कस्मात्तौ दानवौ जातौ तस्मिन्ने
कार्णवे जले ॥ महावीर्यौ दुराधर्षौ देवैरपि सुदुर्जयौ ॥ २ ॥ कथं तावसुरौ जातौ कथं च हरिणा हतौ ॥ तदाचक्ष्व महाप्राज्ञ चरितं परमा
द्भुतम् ॥३॥ श्रोतुकामा वयं सर्वे त्वं वक्ता च बहुश्रुतः॥ दैवाच्चैवात्र संजातः संयोगश्च तथाऽऽवयोः ॥४॥ मूर्खेण सह संयोगो विषादपि
सुदुर्जरः ॥विज्ञेन सह संयोगः सुधारससमः स्मृतः ॥५॥ जीवंति पशवः सर्वे खादंति मेहयंतिच ॥ जानंति विषयाकारं व्यवायसुखमद्भुतम्॥६॥

भगवानका महार्णवमें पांच सहस्र वर्ष तक युद्ध हुआ ॥ १ ॥ उस एकार्णव जलमें किससे वह दोनों दानव उत्पन्न हुए जो महावीर दुराधर्ष और देवताओंको भी
दुर्जय थे ॥२॥ कैसे वे उत्पन्न हुए कैसे भगवानने उनको मारा हे महाप्राज्ञ ! इस परम अद्भुत चरित्रको हमसे कहिये ॥ ३ ॥ हम सब सुननेकी इच्छावाले
हैं और आप श्रेष्ठ वक्ता हैं प्रारब्धसेही हमार आपका संयोग हआ है ॥ ४ ॥ मूर्खके साथ संयोग होना विषसे भी अधिक दुर्जर है और पण्डितके साथ संयोग
अमृतके समान है ॥ ५ ॥ जीते तो पशु भी हैं वे खाते और मेहनत करते हैं और विषयाकार अनेक अद्भुत सुखको जानते हैं ॥ ६ ॥

उनको सत् असत्का ज्ञान तथा मुक्ति दायक ज्ञान नहीं है तथा जिनका हरिचरित्र सुननेमें आदर नहीं है उनकोभी पशुही जानना॥७॥ कोई मृगादि पशु सुननेके ज्ञानको जानते हैं श्रोत्र रहित सर्पभी मधुर नादसे मोहित हो जाते हैं॥८॥पाँच इन्द्रियोंमें दर्शन और श्रवणही शुभ है श्रवणसे वस्तुका विज्ञान और दर्शनसे चित्त रंजन होता है ॥९॥ सात्विक राजस तामसके भेदसे श्रवण तीन प्रकारका होता है हे महाभागो ! विद्वानोंने यह बात निश्चय कर कही है॥१०॥वेदशास्त्रादिक श्रवण सात्त्विक, साहित्यका श्रवण राजस और युद्ध वार्त्ता तथा परदोषक श्रवण तामसी श्रवण है ॥ ११ ॥ और पंडितोंने सात्त्विक श्रवण भी तीन प्रकारका कहा है उत्तम, मध्यम और अधम ॥१२॥ मोक्ष फल दायक उत्तम स्वर्ग दायक मध्यम और भोग दायक अधम है ऐसा पंडितोंने निर्णय किया है॥१३॥ और

न तेषां सदसज्ज्ञानं विवेको न च मोक्षदः ॥ पशुभिस्ते समा ज्ञेया येषां न श्रवणादरः ॥७॥ मृगाद्याः पशव केचिज्जानंति श्रावणं सुखम् ॥
अश्रोत्रः फणिनश्चैव मुमुहुर्नादपानतः ॥ ८ ॥ पंचानामिंद्रियाणां वै शुभे श्रवणदर्शने ॥ श्रवणाद्वस्तुविज्ञानं दर्शनाच्चित्तरंजनम् ॥९॥श्रवणं
त्रिविधं प्रोक्तं सात्त्विकं राजसं तथा ॥ तामसं च महाभाग सुज्ञोक्तं निश्चयान्वितम् ॥१०॥ सात्त्विकं वेदशास्त्रादि साहित्यं चैव राजसम् ॥
तामसं युद्धवार्ता च पर दोषप्रकाशनम् ॥११॥ सात्त्विकं त्रिविधं प्रोक्तं प्रज्ञावद्भिश्च पंडितैः ॥ उत्तमं मध्यमं चैव तथैवाधममित्युत॥१२॥
उत्तमं मोक्षफलदं स्वर्गदं मध्यमं तथा ॥ अधमं भोगदं प्रोक्तं निर्णीय विदितं बुधैः ॥१३॥साहित्यं चैव त्रिविधं स्वीयायां चोत्तमं स्मृतम् ॥
मध्यमं वारयोषायां परोढायां तथाऽधमम् ॥१४॥ तामसं त्रिविधं ज्ञेयं विद्वद्भिः शास्त्रदर्शिभिः ॥ आततायिनि युद्धं यत्तदुत्तममुदाहृतम्
॥१५॥ मध्यमं चापि विद्वेषात्पांडवानां यथाऽरिभिः ॥ अधमं निर्निमित्तं तु विवादे कलहे तथा ॥१६॥ तदत्र श्रवणं मुख्यं पुराणस्य महा
मते ॥ बुद्धिप्रवर्धनं पुण्यं ततः पापप्रणाशनम् ॥१७॥ तदाख्याहि महाबुद्धे कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ श्रुतां द्वैपायनात्पूर्वं सर्वार्थस्य प्रसा
धिनीम् ॥ १८ ॥ सूत उवाच ॥ यूयं धन्या महाभागा धन्योऽहं पृथिवीतले ॥ येषां श्रवणबुद्धिश्च ममापि कथने किल ॥ १९ ॥

साहित्य भी नवरसात्मक तीन प्रकारका है अपनीमें रति उत्तम, वारयोषिताकी रति मध्यम और दूसरेकी स्त्रीमें गमनकी कथा अधम है ॥१४॥ शास्त्र ज्ञात पंडितोंने तामस भी तीन प्रकारका कहा है आततायियोंसे (वधार्ह) युद्ध उत्तम,॥१५॥ विद्वेषियोंसे युद्ध करना मध्यम है, जैसे पाण्डवोंका अपने शत्रुओंसे तथा विना कारण विवाद कलह में युद्ध करना अधम कही है ॥१६॥ हे महामते ! सो इस पुराणका श्रवण मुख्य है यह बुद्धिका बढानेवाला और पाप दूर करनेसे सात्त्विक उत्तम श्रवणहै ॥१७॥ हे महाबुद्धे ! सो आप पुराणकी श्रेष्ठ कथा कहिये जो आपने सब अर्थकी साधक व्यासजीके मुखसे सुनी है।१८॥सूतजी बोले हे महाभागो ! तुम

धन्य हो और इसपृथ्वीतलमें मैं भी धन्य हूं, जिनको श्रवण और मुझको कथनकी बुद्धि है ॥ १९ ॥ जब एकार्णव होनेसे तीनों भुवन लीन होगये थेऔर देवदेव जनार्दन शेषशय्यापर शयन कर गये थे ॥ २० ॥ तब विष्णुके कर्णमलसे उत्पन्न हुए मधु कैटभ दानव महाबली सागरके जलमें वृद्धिको प्राप्त होने लगे ॥२१॥ क्रीडा करते हुए इधर उधर विचरण करने लगे एक समय वह महाकायवाले दैत्य महार्णवमें क्रीडा परवश होकर ॥२२॥ दोनों भ्राता मनमें चिन्ता करने लगे कि यह परंपरा सर्वत्र एकसी है, कारणके विना कार्य नहीं होता ॥ २३ ॥ विना आधारके कभी आधेय स्थित नहीं रहता, आधाराधेयका भाव हमारे चित्तमें भासमान होता है ॥ २४ ॥ हे सुखरूप! यह विस्तृत जल किस प्रकारसे स्थित है किसने इसे उत्पन्न किया कैसे हुआ हम जलमें स्थित मग्न क्यों हैं

पुरा चैकार्णवे जाते विलीने भुवनत्रये ॥ शेषपर्यंकसुप्ते च देवदेवे जनार्दने ॥ २० ॥ विष्णुकर्णमलोद्भूतौ दानवौ मधुकैटभौ ॥ महाबलौ च तौ दैत्यौ विवृद्धौ सागरे जले ॥ २१ ॥ क्रीडमानौ स्थितौ तत्र विचरंतावितस्ततः ॥ तावेकदा महाकायौ क्रीडासक्तौ महार्णवे ॥ २२ ॥ चिंतामवापतुश्चित्ते भ्रातराविव संस्थितौ ॥ नाकारणं भवेत्कार्यं सर्वत्रैषा परंपरा ॥ २३ ॥ आधेयं तु विनाऽऽधारं न तिष्ठति कथंचन ॥ आधारधेयभावस्तु भाति नो चित्त गोचरः ॥२४॥ क्व तिष्ठति जलं चेदं सुखरूपं सुविस्तरम् ॥ केन सृष्टं कथं जातं मग्नावावाञ्जले स्थितौ ॥ २५ ॥ आवां वा कथमुत्पन्नौ केन वोत्पादिताबुभौ ॥ पितरौ क्वेति विज्ञानं नास्ति कामं तथाऽऽवयोः ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं कामयमानौ तो जग्मतुर्न विनिश्चयम् ॥ उवाच कैटभस्तत्र मधुं पार्श्वे स्थितं जले ॥ २७ ॥ कैटभ उवाच ॥ मधो नावत्र सलिले स्थातुं शक्तिर्महाबला ॥ वर्तते भ्रातरचला कारणं सा हि मे मता ॥२८॥ तया ततमिदं तोयं गदाधारं च तिष्ठति ॥ सा एव परमा देवी कारणं च तथाऽऽवयोः ॥ २९ ॥ एवं विबुध्यमानौ तौ चिन्ताविष्टौ यदाऽसुरौ ॥ तदाऽऽकाशे श्रुतं ताभ्यां वाग्बीजं सुमनोहरम् ॥ ३० ॥

॥ २५ ॥ हम दोनों कैसे उत्पन्न हुए किसने हमको प्रकट किया हमको अपने माता पिताका ज्ञान नहीं है ॥ २६ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार इच्छा करते हुए उनको निश्चय न हुआ, तब उस समय जलमें समीप स्थित मधुसे कैटभ कहने लगा ॥२७॥कैटभ बोले हे मधु ! हम दोनोंकी इस जलमें स्थित रहनेकी शक्ति जो है सोई हे महाबुद्धिमान् ! वह अचला महाशक्तिही हमारी स्थितिका कारण है ॥ २८ ॥ उसीसे विस्तृत हुआ यह जल उसीके आधारमें स्थित है वही परम देवी हम दोनोंका कारण है ॥ २९ जब इस प्रकारसे चैतन्य हो वे दोनों महासुर चिंता करने लगे तब उन दोनोंने आकाशसे वाग्बीज रूप महाशब्द सुना ॥३०॥

उन दोनोंने उसको ग्रहण करके उसका अभ्यास दृढ किया तब उन्होंने आकाशसे प्रकट होती एक दामिनीका दर्शन किया ॥ ३१ ॥ तब उन्होंने विचार किया उसमें संदेह नहीं यह मंत्र है और यह आकाशमें सगुण ध्यान दृष्टिगोचर हुआ है ॥ ३२ ॥ तब यह निराहार आत्मजित् उसीमें मन लगाये सावधान हो यह विचार कर जप ध्यानमें परायण हुए ॥ ३३ ॥ इस प्रकारसे उन्होंने सहस्र वर्षतक बड़ा तप किया तब उनके ऊपर वह परमाशक्ति प्रसन्न हुई ॥ ३४ ॥ तपमें निश्चय किये उन दानवोंको खिन्न देखकर उनपर अनुग्रह करनेको अशरीरिणी वाणी हुई ॥ ३५ ॥ हे दैत्यो ! मनवांछित वर मांगो मैं दूंगी तुम्हारे तपसे प्रसन्न हूं ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले उस वाणीको सुनकर दानव कहने लगे हे देवि ! हमारी मृत्यु हमारी इच्छा से ही हो ॥ ३७ ॥ वाणीने कहा हे

गृहीतं च ततस्ताभ्यां तस्याभ्यासो दृढः कृतः ॥ तदा सौदामनी दृष्टा ताभ्यां खे चोत्थिता शुभा ॥ ३१ ॥ ताभ्यां विचारितं तत्र मंत्रोऽयं नात्र संशयः ॥ तथा ध्यानमिदं दृष्टं गगने सगुणं किल ॥ ३२ ॥ निराहारौ जितात्मानौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥ बभूवतुर्विचिंत्यैवं जपध्यानपरायणौ ॥ ३३ ॥ एवं वर्षसहस्रं तु ताभ्यां तप्तं महत्तपः ॥ प्रसन्ना परमा शक्तिर्जाता सा परमा तयोः ॥ ३४ ॥ खिन्नौ तौ दानवौ दृष्ट्वा तपसे कृतनिश्चयौ ॥ तयोरनुग्रहार्थाय वागुवाचशरीरिणी ॥ ३५ ॥ वरं वां वांछितं दैत्यौ ब्रूतं परमसंमतम् ॥ ददामि परितुष्टाऽस्मि युवयोस्तपसा किल ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा तु तां वाणीं दानवावूचतुस्तदा ॥ स्वेच्छया मरणं देवि वरं नो देहि सुव्रते ॥ ३७ ॥ वागुवाच ॥ वांछितं मरणं दैत्यौ भवेद्वां मत्प्रसादतः ॥ अजेयौ देवदैत्यैश्च भ्रातरौ नात्र संशयः ॥ ३८ ॥ सूत उवाच ॥ इति दत्तवरौ देव्या दानवौ मददर्पितौ ॥ चक्रतुः सागरे क्रीडां यादोगणसमन्वितौ ॥ ३९ ॥ कालेन कियता विप्रा दानवाभ्यां यदृच्छया ॥ दृष्टः प्रजापतिर्ब्रह्मा पद्मासनगतः प्रभुः ४० ॥ दृष्ट्वा तु मुदितावास्तां युद्धकामौ महाबलौ ॥ तमूचतुस्तदा तत्र युद्धं नौ देहि सुव्रत ॥ ४१ ॥ नोचेत्पद्मं परित्यज्य यथेष्टं गच्छ मा चिरम् ॥ यदि त्वं निर्बलश्चासि क्व योग्यं शुभमासनम् ॥ ४२ ॥

दैत्यो ! मेरे प्रसादसे तुमको इच्छानुसार मरण होगा तुम दोनों देवता और दैत्योंसे अजेय होगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार देवीसे वरदानको प्राप्त हो वे दोनों दैत्य मदसे दर्पित होकर समुद्रमें जलचरोंके साथ क्रीडा करने लगे ॥ ३९ ॥ हे ब्राह्मणो ! कुछ समय यदृच्छासे उन दावोंने पद्मासनपर बैठे प्रजापति ब्रह्माको देखा ॥ ४० ॥ उनको देखकर वे दोनों प्रसन्न हो और दोनों महाबली युद्धकी कामनासे कहने लगे हे सुव्रत ! हमसे युद्ध करो ॥ ४१ ॥ और नहीं तो इस पद्मको छोड़कर अन्यत्र चले जाओ कारण कि यदि तुम निर्बल हो तो तुम्हारे योग्य यह आसन नहीं है ॥ ४२ ॥

यह स्थान वीरोंके भोगने योग्य है यदि तुम कातरहो तो शीघ्र इसको छोड़ जाओ, यह वचन सुनकर प्रजापतिको चिंता हुई ॥ ४३ ॥ उनबलियोंको देखकर विचारने लगे कि मैं तपस्वी क्या कर सकता हूं और इसप्रकार मनमें चिंता करते स्थित हुए ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सूतजी बोले उन दोनों बलियोंको देखकर ब्रह्माजी उपायका विचार करने लगे सब तंत्रके ज्ञाता होनेसे साम दानका भेद विचारने लगे ॥ १ ॥ कि मैं इन दोनोंका यथायोग्य बल नहीं जानताहूं विनाबल जाने युद्ध करना अच्छा नहीं है ॥ २ ॥ और जो इन दुष्ट दसे मत्तोंकी स्तुति करूं तो मेरी निर्बलता स्वयंप्रकाशित हो जायगी ॥ ३ ॥ निर्बलताके प्रकाश होनेमें कोई एकही वध करेगा, दानके योग्य न होनेसे

वीरभोग्यमिदं स्थानं कातरोऽसि त्यजाऽऽशु वै ॥ तयोरिति वचः श्रुत्वा चिंतामाप प्रजापतिः ॥ ४३ ॥ दृष्ट्वा च वलिनौ वीरौ किं करोमीति तापसः ॥ चिंताविष्टस्तदा तस्थौ चिंतयन्मनसा तदा ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ तौ वीक्ष्य बलिनो ब्रह्मा तदोपायानचिंतयत् ॥ सामदानभिदादींश्च युद्धांतान्सर्वतंत्रवित् ॥१॥ न जानेऽहं बलं नूनमेयोर्वा यथातथम् ॥ अज्ञाते तु बले कामं नैव युद्धं प्रशस्यते ॥ २ ॥ स्तुतिं करोमि चेदद्य दुष्टयोर्मदमत्तयोः ॥ प्रकाशितं भवेन्नूनं निर्बलत्वं मया स्वयम् ॥ ३ ॥ वधिष्यति तदैकोऽपि निर्बलत्वे प्रकाशित्ते ॥ दानं नैवाद्य योग्यं वा भेदः कार्यो मया कथम् ॥ ४ ॥ विष्णुं प्रबोधयाम्यद्य शेषे सुप्तं जनार्दनम् ॥ चतुर्भुजं महावीर्यं दुःखहा स भविष्यति ॥५॥ इति संचिंत्य मनसा पद्मनालगतोऽब्जजः ॥ जगाम शरणं विष्णुं मनसा दुःखनाशनम् ॥६॥ तुष्टाव बोधनार्थं तं शुभैः संबोधनैर्हरिम् ॥ नारायणं जगन्नाथं निस्पंदं योगनिद्रया ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दीननाथ हरे विष्णो वामनोत्तिष्ठ माधव ॥ भक्तार्तिहृद्धृषीकेश सर्वावास जगत्पते ॥८॥ अंतर्यामिन्नमेयात्मन्वासुदेव जगत्पते ॥ दुष्टारिनाशनैकाग्रचित्त चक्रगदाधर ॥ ९ ॥ सर्वज्ञ सर्व लोकेश सर्वशक्तिसमन्वित ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश दुःखनाशन पाहि माम् ॥ १० ॥

भेद भी इनका किस प्रकार होसकता है ॥४॥ अब शेषशय्यापर शयन करते भगवान् विष्णुको जगाऊं वह चतुर्भुज महाबली अवश्य हमारे दुःखहा होंगे ॥ ५ ॥ ऐसा विचारकर पद्मासनपर स्थित हुए ब्रह्माजी मनसेही दुःखनाशक विष्णुकी शरण हुए ॥ ६ ॥ और उनके जगानेको सुन्दरस्तोत्रोंसे स्तुति की उस समय जगत्पति नारायण योगनिद्रामें शयन किये हुए थे ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे दीनानाथ हरे, विष्णो, वामन,माधव, उठिये हे भक्तोंके दुःखनाशक हृषीकेश सर्वावास हे जगत्पते! ॥८॥ हे अंतर्यामी, अमेयात्मा, हे वासुदेव जगत्पति, हे चक्रधारी दुष्टोंके मारनेमें एकाग्रचित्त करनेवाले ॥ ९ ॥ हे सब कुछ जाननेवाले सब शक्तिसे

युक्त हे देवेश दुःखनाशन मेरी रक्षा करो ॥ १० ॥ हे विश्वंभर हे विशाललोचन, पवित्र श्रवण कीर्त्तनवाले जगत्के उत्पादक निराकार सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाले ॥ ११ ॥ हे महाराज ! यह दैत्य दोनों मुझे मारनेको उद्यत हुए हैं हे अखिल आधार मेरे ऊपर संकट आपडा है क्या इस बातको आप नहीं जानते हैं ॥ १२ ॥ जो मुझ शरणमें आये दुःखीकी आप उपेक्षा करते हैं तो हे महाविष्णु आपका पालकत्वनिराधार हो जायगा ॥ १३ ॥ जब इस प्रकारकी स्तुतिसेभी भगवान् न जागे, योगनिद्रामें ही स्थित रहे तब फिर ब्रह्माजी विचारने लगे ॥ १४ ॥ अवश्यही योगनिद्राके वशीभूत हो विष्णुजी-शक्तिसे आक्रान्त हुए हैं यह धर्मात्मा जागे नहीं अब मैं क्या करूं ॥ १५ ॥ यह मदगर्वित दानव हमको मानेको प्राप्त हुए हैं, मैं क्या करूं कहां जाऊं मुझेतो कहींकभी शरण नहीं

विश्वंभर विशालाक्ष पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ जगद्योने निराकार सर्गस्थित्यंतकारक ॥ ११ ॥ इमौ दैत्यौ महाराज हंतुकामौ मदोद्धतौ ॥ न जानास्यखिलाधार कथं मां संकटे गतम् ॥ १२ ॥ उपेक्षसेऽतिदुःखार्तं यदि मां शरणं गतम् ॥ पालकत्वं महाविष्णो निराधारं भवेत्ततः ॥ १३ ॥ एवं स्तुतोऽपि भगवान्न बुबोध यदा हरिः ॥ योगनिद्रासमाक्रांतस्तदा ब्रह्मा ह्यचिंतयत् ॥ १४ ॥ नूनं शक्तिसमाक्रांतो विष्णुर्निद्रावशं गतः ॥ जजागार न धर्मात्मा किं करोम्यद्य दुःखितः ॥ १५ ॥ हंतुकामावुभौ प्राप्तौ दानवौ मदगर्वितौ॥ किं करोमि क्व गच्छामि नास्ति मे शरणं क्वचित् ॥१६॥ इति संचित्य मनसा निश्चयं प्रतिपद्य च॥तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ॥१७॥ विचार्य मनसाऽप्येवं शक्तिर्मे रक्षणे क्षमा ॥ यया ह्यचेतनो विष्णुःकृतोऽस्तिस्पंद वर्जित ॥१८॥ व्यसुर्यथा न जानाति गुणाञ्छब्दादिकानिह ॥ तथा हरिर्न जानाति निद्रामीलितलोचनः ॥ १९ ॥ न जहाति यतो निद्रां बहुधा संस्तुतोऽप्यसौ ॥ मन्ये नास्यवशे निद्रा निद्रयाऽयं वशीकृतः ॥ २० ॥ यो यस्य वशमापन्नः स तस्य किंकरः किल ॥ तस्माच्च योगनिद्रेयं स्वामिनी मापतेर्हरेः ॥ २१ ॥

है ॥ १६ ॥ ऐसा मनमें विचारकर निश्चयको प्राप्त/हो एकाग्र मनसे उस योगनिद्राको संतुष्ट करने लगे ॥ १७ ॥ और यह विचार कर मनमें कहा जो शक्ति मेरी रक्षा करनेमें समर्थ है, और जिसने विष्णुको निष्पंद अचेतन कर दिया है॥ १८ ॥ जैसे प्राण रहित शब्दादि गुणोंको नहीं जानता है ऐसाही निद्रासे निमीलित नेत्र हरिभी इस समय कुछ नहीं जानते हैं ॥ १९ ॥ अनेक प्रकार स्तुति करनेपर भी जो यह निद्राको नहीं त्यागते हम जानते हैं निद्रा इनके वशीभूत नहीं, यह निद्राके वशीभूत हैं॥ २० ॥ जो जिसके वशमें है वह उसका किंकर है, इस कारण यह हमारे पतिकी स्वामिनी है ॥ २१ ॥

वशीभूत कर दिया है अवश्य ही यह सब जगत् भगवतीके वशीभूत है॥२२॥विष्णु शंभु सावित्री रमा उमा हम सब ही उसके वशमें हैं,इसमें कुछभी संदेह जिसने स्वामीको लक्ष्मीके नहीं॥२३॥जिसके कारण साधारण जनके समान उसके वशमें हुये हरि शयन करते हैं,फिर और महात्माओंकी तो क्या कथा है॥२४॥ सो इस समय उस योगनिद्राकी स्तुति करूँ जिससे मुक्त होकर सनातन भगवान् युद्ध करें॥२५॥पद्मनालमें स्थित ब्रह्माजी मनमें ऐसा विचारकर विष्णुके अंगमें स्थित भगवती योगनिद्राकी स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देवि ! तुमही इस जगत्का निश्चय कारण हो हे माता ! यह मैंने वेदवचनोंसे भली प्रकार जान लिया है जो कि सब लोकके विवेकके करनेवाले विष्णु भी पुरुषोत्तम तुम्हारे प्रभावसे निद्राको प्राप्त हुए हैं [अजामेकांलोहितशुक्लकृष्णाबह्वीं प्रजांजनयन्तींसरूपा

सिंधुजाया अपि वशे ययास्वामी वशीकृतः ॥ नूनं जगदिदं सर्वं भगवत्या वशीकृतम् ॥ २२ ॥ अहं विष्णुस्तथा शम्भुः सावित्री च रमाऽप्युमा ॥ सर्वे वयं वशेऽप्यस्या नात्र किंचिद्विचारणा ॥ २३ ॥ हरिरप्यवशः शेते यथाऽन्यः प्राकृतो जनः ॥ ययाऽभिभूतः का वार्ता किलान्येषां महात्मनाम् ॥ २४ ॥ स्तौम्यद्य योगनिद्रां वै यया मुक्तो जनार्दनः ॥ घटयिष्यति युद्धे च वासुदेवः सनातनः ॥२५॥ इति कृत्वा मतिं ब्रह्मा पद्मनालस्थित स्तदा ॥ तुष्टाव योगनिद्रां तां विष्णोरंगेषु संस्थिताम् ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवि त्वमस्य जगतः किल कारणं हि ज्ञातं मया सकलवेद वचोभिरंब ॥ यद्विष्णुरप्यखिललोकविवेककर्ता निद्रावशं च गमितः पुरुषोत्तमोऽद्य ॥२७॥ को वेद ते जननि मोहविलासलीलां मूढोऽस्म्यहं हरिरयं विवशश्च शेते॥ईदृक्तया सकलभूतमनोनिवासे विद्वत्तमो विबुध कोटिषु निर्गुणायाः ॥२८॥ सांख्या वदन्ति पुरुषं प्रकृतिं च यां तां चैतन्यभावरहितां जगतश्च कर्त्रीम् ॥ किं तादृशाऽसि कथमत्र जगन्निवासश्चैतन्यताविरहितो विहितस्त्वयाऽद्य ॥ २९ ॥ नाटयं तनोषिसगुणा विविधप्रकारं नो वेत्ति कोऽपि तव कृत्यविधानयोगम् ॥ ध्यायंति यां मुनिगणा नियतं त्रिकालं संध्येति नामपरिकल्प्य गुणान्भवानि ॥ ३० ॥

मितिश्रुतेः]॥ २७ ॥ हे माता ! तुम्हारी मोहविलासकी लीलाको कौन जान सकता है मैं मूढ़ हूं और हरिविवश होकर शयन करते हैं इस प्रकारसे तुम सब प्राणियोंके मनमें निवास करती हुई देवताओंकी कोटिमें भी अति विद्वान् निर्गुणात्मक तुम्हारी महिमाको कोई नहीं जानता ॥२८॥ सांख्यवादी पुरुष प्रकृतिको जणात्मक कहते हैं कि यह चैतन्य भावरहित होकर जगत्की कर्त्री कहाती है सो क्या तुम ऐसी हो कभी नहीं जो ऐसी होती तो सब विष्णवादि चैतन्यतासे विरहित किस प्रकार विहित होते ॥ २९. ॥ आप सगुण होकर अनेक प्रकारकी नाटक लीला करती हो तुम्हारे कृत्यविधान योग्यको कौन जानता

है तीनकालमें आपको मुनिगण ध्यान करते हैं और तुम्हारा संध्यानाम कल्पना करके ध्यान करते हैं सो हे भवानी ! तुम्हारी अनेक प्रकारकी लीला है॥ ३० ॥ सदाही तुम जगत्की बुद्धि और बोध करनेवाली हो, और हे देवि ! देवताओंके सदा सुख देनेवाली श्री हो तथा कीर्तिधृति कान्ति श्रद्धा और मातः सब जनोंमें रतिरूप हो ॥ ३१ ॥ इससे अधिक स्त्री वितर्कादिसे परे क्या है जो मेरे दुःखमार्गके प्राप्त होनेपर भगवान्को शयन करते हुए मायाबलरूप सब जगत्की जननी तुमको मैंने प्रत्यक्ष देखा फिर अनुमानादिकी क्या कथा है ॥ ३२ ॥ हे देवि ! तुम वेदवादियोंके भी जाननेको अशक्य हो अखिलार्थता होनेपर भी वेद तुमको नहीं जानता है कारण कि वेद तुमसे प्रगट होता है, यह तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य प्रत्यक्ष है ॥ ३३ ॥ हे देवि ! कौन तुम्हारे सम्पूर्ण चारित्रको जान सकता

बुद्धिर्हि बोधकरणा जगतां सदा त्वं श्रीश्चासि देवि सततं सुखदा सुराणाम् ॥ कीर्तिस्तथा मतिधृती किल कांतिरेव श्रद्धा रतिश्च सकलेषु जनेषु मातः ॥३१॥ नातः परं किल वितर्कशतैः प्रमाणं प्राप्तं मया यदिह दुःखगतिं गतेन ॥ त्वं चात्र सर्वजगतां जननीति सत्यं निद्रालुतां वितरता हरिणाऽत्र दृष्टम् ॥३२॥ त्वं देवि वेदविदुषामपि दुर्विभाव्या वेदोऽपि नूनमखिलार्थतया न वेद ॥ यस्मात्वदुद्भवमसौ श्रुतिराप्नुवाना प्रत्यक्षमेव सकलं तव कार्यमेतत् ॥ ३३ ॥ कस्ते चरित्रमखिलं भुवि वेद धीमान्नाहं हरिर्न च भुवो न सुरास्तथाऽन्ये ॥ ज्ञातुं क्षमाश्च मुनयो न ममात्मजाश्च दुर्वाच्य एव महिमा तव सर्वलोके ॥ ३४ ॥ यज्ञेषु देवि यदि नाम न ते वदन्ति स्वाहेति वेदविदुषो हवने कृतेऽपि ॥ न प्राप्नुवंति सततं मखभागधेयं देवास्त्वमेव विबुधेष्वपि वृत्तिदाऽसि ॥ ३५ ॥ त्राता वयं भगवति प्रथमं त्वया वै देवारिसंभवभयादधुना तथैव ॥ भीतोऽस्मि देवि वरदे शरणं गतोऽस्मि घोरं निरीक्ष्य मधुना सह कैटभं च ॥३६॥ नो वेत्ति विष्णुरधुना मम दुःखमेतज्जाने त्वयाऽऽत्मविवशीकृतदेहयष्टिः ॥ मुंचादिदेवमथवा जहि दानवेंद्रौ यद्रोचते तव कुरुष्व महानुभावे ॥ ३७ ॥

हे बुद्धिमान् हरि शिवमें तथा दूसरे देवता मेरे पुत्र तथा दूसरे मुनि यह कोई तुमको नहीं जान सकते लोकमें तुम्हारी महिमा दुर्वाच्य है ॥ ३४ ॥ हे देवि ! यदि यज्ञमें तुम्हारा नाम स्वाहा न ग्रहण किया जाय तो देवताओं को यज्ञके भागकी प्राप्ति नहीं होती इससे तुम देवताओंको भी वृत्ति देनेवाली हो ॥ ३५ ॥ हे देवि ! प्रथम कल्पमें तुमने हमारी रक्षाकी है और अब भी हमको दैत्योंसे भय हुआ है हे वरदायक देवि ! मैं भीत होकर तुम्हारी शरण हूं अब मधु कैटभके साथका भय घोर है इससे रक्षा करो ॥ ३६ ॥ इस समय विष्णुजी मेरे दुःखको नहीं जानते हैं कारण कि तुम्हारे अधीन उनका शरीर हो रहा है; या तो भगवान को निद्रासे मुक्त करो अथवा इन दोनों दानवेन्द्रोंको मारो हे महानुभावे ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥ ३७ ॥ हे देवि ! जो तुम्हारे परंप्रभावको नहीं जानते वे थोडी बुद्धि

वाले हरि हरका ध्यान करते हैं हे जननि ! मैंने तुम्हारा प्रगट प्रमाण जाना है जो विष्णु भी विवश हुए शयन करते हैं ॥ ३८ ॥ लक्ष्मी भी नारायणको जगानेको समर्थ नहीं कारण कि यह भी तुम्हारे अधीन हैं हे जननि ! विदित होता है कि तुमने बलात्कारसे उनको अपने वशमें किया है जिस कारण वह तुम्हारी वशीकृता होनेसे इनको नहीं जगाती हैं ॥ ३९॥ जो भूमिमें तुम्हारी भक्ति परायण होकर और देवताओंका भजन छोड़कर तुममें लीन हुए हैं हे देवि ! सब निष्काम तुम्हारा भजन करते हैं कारण कि वे तुमको सबकी जननी और कामधेनु मानते हैं ॥ ४० ॥ धी कान्ति कीर्ति शुभवृत्ति आदि तुम्हारे गुण हैं और विष्णुके गुण जाने कहां गये सो तो विदित नहीं होते इस समय भगवान् निद्रासे परवश हुए हैं हे भगवती ! वह मानवती तुम्हारी ही शक्ति है ॥ ४१ ॥ तुम

जानंति ये न तव देवि परं प्रभावं ध्यायंति ते हरिहरावपि मंदचित्ता ॥ ज्ञातं मयाऽद्य जननि प्रकटं प्रमाणं यद्विष्णु रप्यतितरां विवशोऽथ शेते ॥ ३८ ॥ सिंधूद्भवाऽपि न हरिं प्रतिबोधितुं वै शक्ता पतिं तव वशानुगमाऽऽद्यशक्त्या ॥ मन्ये त्वया भगवति प्रसभं रमाऽपि प्रस्वापिता न बुबुधे विवशीकृतेव ॥ २९ ॥ धन्यास्त एव भुवि भक्तिपरास्तवांघ्रौ त्यत्वा ऽन्यदेवभजनं त्वयि लीनभावाः ॥ कुर्वंति देवि भजनं सकलं निकामं ज्ञात्वा समस्तजननीं किल कामधेनुम् ॥ ४० ॥ धीकांतिकीर्तिशुभवृत्ति गुणादयस्ते विष्णोर्गुणास्तु परिहृत्य गताः क्व चाद्य ॥ बंदीकृतो हरिरसौ ननु निद्रयाऽत्र शक्त्या तवैव भगवत्यतिमानवत्याः ॥ ४१ ॥ त्वं शक्तिरेव जगतामखिल प्रभावा त्वन्निर्मितं च सकलं खलु भावमात्रम् ॥ त्वं क्रीडसे निजविनिर्मितमोहजाले नाट्ये यथा विहरते स्वकृते नटो वै ॥ ४२ ॥ विष्णुस्त्वया प्रकटितः प्रथमं युगादौ दत्ता च शक्तिरमला खलु पालनाय ॥ त्रातं च सर्वमखिलं विवशीकृतोऽद्य यद्रोचते तव तथाऽम्ब करोषि नूनम् ॥ ४३ ॥ सृष्ट्वाऽत्र मां भगवति प्रविनाशितुं चेन्नेच्छाऽस्ति ते कुरु दयां परिहृत्य मौनम्॥कस्मादिमौ प्रकटितौ किल काल रूपौ यद्वा भवानि हसितुं नु किमिच्छसे माम् ॥ ४४ ॥

ही सब जगत्की शक्ति महाप्रभा वाली हो, यह सब तुम्हारा निर्माण किया भावमात्र है तुम अपने निर्माण किये मोहजालमें क्रीडा करती हो जिस प्रकार नट अपने नाटकमें बिहार करता है ॥ ४२ ॥ प्रथम युगादिमें आपने विष्णुको प्रगट किया है और पालन करनेकी उनको अमल शक्ति दी है, और विवश किये इस सब जगत्को रक्षा करती हो हे देवि ! जो तुमको अच्छा लगे सो करो ॥ ४३ ॥ हे देवि ! यदि मेरी रचना करके अब मेरे मारनेकी इच्छा न हो तो मौन त्यागकर मेरे ऊपर दया करो, इन कालरूप दैत्योंको क्यों प्रगट किया है, अथवा हे भवानि ! क्या मेरा हास्य करनेको ऐसा किया है ॥ ४४ ॥

मैंने आपकी अद्भुत चेष्टाको जाना है कि इस सब जगत्‌को उत्पन्न करके स्वतंत्रतासे रमण करती हो और फिर लीन कर लेती हो हे भवानि! क्या अब इसी प्रकार मेरे मारनेकी इच्छा करती हो इसमें क्या विचित्र है ॥ ४५ ॥ अच्छा है हे मातः! भलेही आप मेरा वध कीजिये हे जगदम्बिके! मुझको इस समय मरणका दुःख नहीं है, परन्तु, तुमने जिनको प्रथमही जगत्‌का कर्ता कहकर प्रगट किया, वह दैत्योंसे हत हो मृत्युको प्राप्त हुआ, यह बडा अपयश लगेगा ॥ ४६ ॥ हे देवि बाललीला वा कोमल लीलावाली तुम उठो इस समय भयंकर रूप करो जो तुम्हारी इच्छा हो तो इन दैत्योंको मारो वा मुझे वध करो और नहीं तो हरिको जगाओ, वा दैत्योंको मारो कारण कि सब कार्य समूह आपसे सिद्ध होते हैं ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार ब्रह्मा जीने तामसी देवीकी

ज्ञातं मया तव विचेष्टितमद्भुतं वै कृत्वाऽखिलं जगदिदं रमसे स्वतंत्रा ॥ लीनं करोषि सकलं किल मां तथैव हंतुं त्वमिच्छसि भवानि किमत्र चित्रम् ॥ ॥ ४५ ॥ कामं कुरुष्व वधमद्य ममैव मातर्दुःखं न मे मरणजं जगदंबिकेऽत्र ॥ कर्ता त्वयैव विहितः प्रथमं स चायं दैत्याहतोऽथ मृत इत्ययशो गरिष्ठम् ॥ ४६ ॥ उत्तिष्ठ देवि कुरु रूपमिहाद्भुतं त्वं मां वा त्विमौ जहि यथेच्छसि बाललीले ॥ नो चेत्प्रबोधय हरिं निहनेदिमौ यस्त्वत्साध्यमेतदखिलं किल कार्यजातम् ॥४७॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुता तदादेवी तामसी तत्र वेधसा ॥ निःसृत्य हरिदेहात्तु संस्थिता पार्श्वतस्तदा ॥ ४८ ॥ त्यक्त्वांऽगानि च सर्वाणि विष्णोरतुलतेजसः ॥ निर्गतां योगनिद्रा सा नाशाय च तयोस्तदा ॥ ४९ ॥ विस्पंदितशरीरोऽसौ यदा जातो जनार्दनः ॥ धाता परमिकां प्राप्तो मुदं दृष्ट्वा हरिं ततः ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे विष्णुप्रबोधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ ऋषय ऊचुः ॥ संदेहोऽत्र महाभाग कथायां तु महाद्भुतः ॥ वेदशास्त्रपुराणैश्च निश्चितं तु सदा बुधैः ॥ १ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवाः सनातनाः ॥ नातः परतरं किंचिद्ब्रह्मांडेऽस्मिन्महामते ॥२॥ ब्रह्मा सृजति लोकान्वै विष्णुः पात्यखिलं जगत् ॥ रुद्रः संहरते काले त्रय एतेऽत्र कारणम् ॥ ३ ॥

स्तुति की तब वह नारायणकी देहसे निकलकर उनके पार्श्वमें स्थित हुई ॥ ४८ ॥ अतुल तेजस्वी विष्णुके सब अङ्गोंको त्याग करके उन दोनोंके नाश करनेको निर्गत हुई ॥ ४९ ॥ जिस समय जनार्दन कम्पित शरीर हुए तब ब्रह्माजी यह देख बडे प्रसन्न हुए ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भा. विष्णु प्रबोधोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ऋषि बोले हे महाभाग इस कथामें हमको महा सन्देह है वेद शास्त्र पुराणोंमें हमको निश्चय हुआ है ॥ १ ॥ कि ब्रह्मा विष्णु महेश यह तीन सनातन देव हैं, हे महामते इस ब्रह्माण्डमें इनसे परे कुछ नहीं है ॥ २ ॥ ब्रह्मा लोकोंको सृजन करते विष्णु पालते और रुद्र संहार

दे. भा. करते हैं यह तीन इसमें कारण हैं ॥ ३ ॥ यह तीनों देवता एकही मूर्तिके तीन हुए हैं और रज, सत, तम यह तीन गुणकी ब्रह्मा विष्णु महेशकी तीन मूर्तिहैं
॥२१॥ ॥४॥इनमेंभी भगवान् विष्णु सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तम हैं, यह आदि देव जगन्नाथ सब कार्य करनेमें समर्थ हैं ॥ ५ ॥ अतुल तेजस्वी विष्णुके सन्मुख कोई भी कुछ करनेको समर्थ नहीं है, उन विष्णुको योगमायाने कैसे विवश होकर शयन कराया ॥ ६ ॥ उनका विज्ञान और जीवनकी चेष्टा क्या हुई हे महाभाग! इसमें मुझको सन्देह है आप यथायोग्य कहिये ॥ ७ ॥ वह शक्ति क्या है जिसने भगवान् विष्णुकोभी जीत लिया है वह कैसे प्रगट हुई और कैसे समर्थ है हे सुव्रत कैसे वह शक्ति कहाती है ॥ ८ ॥ जोसर्वेश्वर वासुदेव विष्णु हैं परमात्मा परानंद सच्चिदानंद विग्रहवाले हैं ॥ ९ ॥ सबके करने वाले, विरज, सर्वव्यापक पवित्र

एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ रजसत्त्वतमोभिश्च संयुताः कार्यकारकाः ॥ ४ ॥ तेषां मध्ये हरिः श्रेष्ठो माधवः पुरुषोत्तमः ॥ आदिदेवो जगन्नाथः समर्थः सर्व कर्मसु ॥ ५ ॥ नान्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति विष्णोरतुलतेजसः ॥ स कथं स्वापितः स्वामी विवशो योगमायया ॥६॥ क्व गतं तस्य विज्ञानं जीवतश्चेष्टितं कुतः ॥ संदेहोऽयं महाभाग कथयस्व यथा शुभम् ॥७॥ का सा शक्तिः पुरा प्रोक्ता यया विष्णुर्जितः प्रभुः ॥ कुतो जाता कथं शक्ता का शक्तिर्वद सुव्रत ॥८॥ यस्तु सर्वेश्वरो विष्णुर्वासुदेवो जगद्गुरुः ॥ परमात्मा परानंदः सच्चिदानंदविग्रहः ॥९॥सर्वकृतसर्वभृत्स्रष्टा विरजः सर्वगः शुचिः ॥ स कथं निद्रया नीतः परंतत्रः परात्परः ॥१०॥ एतदाश्चर्यभूतो हि संदेहो नः परंतप ॥ छिंधि ज्ञानासिना सूत व्यासशिष्य महामते ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ कः संदेहं छिनत्त्येनं त्रैलोक्ये चराचरे ॥ मुह्यंति मुनयः कामं ब्रह्मपुत्राः सनातनाः ॥ १२ ॥ नारदः कपिलश्चैव प्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः ॥ किं ब्रवीमि महाभागा दुर्घटेऽस्मिन्विमर्शने ॥ १३ ॥ वेदेषु विष्णुः कथितः सर्वगस्सर्वपालकः ॥ यतो विराडिदं सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् ॥ १४ ॥ ते सर्वे समुपासंते नत्वा देवं परात्परम् ॥ नारायणं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम् ॥ १५ ॥

होकर वह कैसे निद्राके वशीभूत हुए ॥ १० ॥ यह हमको बडा आश्चर्य और सन्देह है, हे व्यासशिष्य सूतजी ! यह हमारा सन्देह दूर करो ॥ ११ ॥ सूतजी
भा. टी. प्र. बोले,इस सन्देहको चराचर त्रिलोकीमें कौन दूर कर सकता है और ब्रह्मपुत्रादि सनातन मुनिभी इसमें मोहित होते हैं ॥ १२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रश्नमें नारद
अ. ८ और कपिलभी इसमें अशक्य हैं, फिर मैं इसमें क्या कह सकता हूं ॥ १३ ॥ देवताओंमें विष्णु सर्वगामी सबके पालक हैं, जिनसे विराट्रूप यह सब चराचर जगत् प्रगट हुआ है ॥ १४ ॥ वे परात्पर देवको प्रणाम कर उनकी सब उपासना करते हैं वे नारायण हृषीकेश वासुदेव जनार्दन कहाते हैं ॥१५॥

और कोई महादेव शंकर शशिशेखर त्रिनेत्र पांचमुख शूलपाणि वृषभध्वज ॥ १६ ॥ सब वेदोंमें गीयमान त्र्यम्बक कपर्दि पंचमुख गौरीको अर्धदेहमें धारण किये ॥ १७ ॥ कैलासवासमें निरत सब शक्तिसे युक्त भूतसमूहसे युक्त देव दक्ष यज्ञके विघातकको भजन करते हैं ॥ १८ ॥ तथा वेदवादी दिन दिन प्रभात और संध्यामें और मध्याह्नमें अनेक स्तोत्रोंसे सूर्यकी स्तुति करते हैं ॥ १९ ॥ सब वेदोंमें सूर्यकी उपासना उत्तम कही है उन महात्माका नाम परमात्मा कहा है ॥ २० ॥ तथा देवश्रेष्ठ सर्वत्र अग्नि देवताकी स्तुति करते हैं त्रिलोकपति इन्द्र और वरुण हैं ॥ २१ ॥ जैसे गङ्गा अनेक प्रवाहोंसे वर्त्तती है इसी प्रकार महर्षियोंने सब देवताओंमें विष्णुको कहा है ॥ २२ ॥ पंडित तीनही प्रमाण पढ़ते हैं प्रत्यक्ष अनुमान और तीसरा शब्द प्रमाण ॥ २३ ॥ कोई उपमान

तथा केचिन्महादेवं शंकरं शशिशेखरम् ॥ त्रिनेत्रं पंचवक्त्रं च शूलपाणिं वृषध्वजम् ॥१६॥ तथा वेदेषु सर्वेषु गीतं नाम्ना त्रियंबकम् ॥ कपर्दिनं पंचवक्त्रं गौरीदेहार्धधारिणम् ॥१७॥ कैलासवासनिरतं सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ भूतवृंदयुतं देवं दक्षयज्ञविघातकम् ॥१८॥ तथा सूर्यं वेदविदः सायंप्रातर्दिने दिने ॥ मध्याह्ने तु महाभागः स्तुवंति विविधैः स्तवैः ॥१९॥ तथा वेदेषु सर्वेषु सूर्योपासनमुत्तमम् ॥ परमात्मेति विख्यातं नाम तस्य महात्मनः ॥२०॥ अग्निः सर्वत्र वेदेषु संस्तुतो वेदवित्तमैः ॥ इंद्रश्चापित्रिलोकेशो वरुणश्च तथाऽपरः ॥२१॥ यथा गंगा प्रवाहैश्च बहुभिः परिवर्तते ॥ तथैव सर्वदेवेषु विष्णुः प्रोक्तो महर्षिभिः॥२२॥त्रीण्येव हि प्रमाणानि पठितानि सुपंडितैः ॥ प्रत्यक्षं चानुमानं च शाब्दं चैव तृतीयकम् ॥२३॥ चत्वार्येवेतरे प्राहुरुपमानयुतानि च ॥ अर्थापत्तियुतान्यन्ये पंच प्राहुर्महाधियः ॥२४॥ सप्त पौराणिकाश्चैव प्रवदंति मनीषिणः ॥ एतैः प्रमाणैर्दुर्ज्ञेयं यद्ब्रह्म परमं च तत् ॥२५॥ वितर्कश्चात्र कर्तव्यो बुद्ध्या चैवागमेन च ॥ निश्चयात्मिकया युक्त्या विचार्यं च पुनः पुनः ॥२६॥ प्रत्यक्षतस्तु विज्ञानं चिंत्यं मतिमता सदा ॥ दृष्टांतेनापि सततं शिष्टमार्गानुसारिणा॥२७॥विद्वांसोऽपि वदंत्येवं पुराणैःपरिगीयते॥ द्रुहिणे सृष्टिशक्तिश्च हरौ पालनशक्तिता॥२८॥हरे संहारशक्तिश्च सूर्ये शक्तिः प्रकाशिका॥धराधरणशक्तिश्चशेषे कूर्मे तथैव च॥२९॥

और मिलाकर चार प्रमाण पढ़ते हैं कोई अर्थापत्ति मिलाकर पांच पढते हैं ॥ २४ ॥ और साक्षि ऐतिह्यरूप मनीषिगण पौराणिक रूप सात प्रमाण पढते हैं इस प्रकारसे इन प्रमाणोंसे ब्रह्म दुर्ज्ञेय है ॥२५॥ इसमें बुद्धि और आगमसे वितर्क करना चाहिये, निश्चयात्मिका बुद्धिसे बारंबार विचारकरके ॥२६॥ बुद्धिमान्को प्रत्यक्ष वस्तुका विज्ञान बारम्बार विचारना चाहिये तथा दृष्टान्त और शिष्टोंका मार्ग अनुसरण करना चाहिये ॥ २७ ॥ विद्वान ऐसा कहते हैं और पुराणोंमेंभी ऐसा लिखा है ब्रह्माको सृष्टि करनेकी शक्ति हरिमें पालन की ॥ २८ ॥ हरमें संहारकी सूर्यमें प्रकाशकी शेष और कूर्ममें भूमि धारणकी

शक्ति है ॥ २९ ॥ वही आद्याशक्ति सबमें पारिणत होकर स्थित है अग्निमें दाह पवनमें प्रेरणात्मक शक्तिमें है ॥ ३० ॥ कुण्डालिनीसे विवर्जित होकर शिवभी शिवताको प्राप्त होते हैं जो शक्ति हीन हैं पंडितोंने उसको असमर्थ कहा है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सर्वत्र स्थावर जङ्गम भूतोंमें हे महातपस्वियो ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त इस जगत्में ब्रह्माण्डमें ॥ ३२ ॥ शक्तिके विना चराचर वस्तुमात्र निंदनीय है, हीन शक्ति शत्रुके विजय करने और भोजनमें अशक्त होता है ॥ ३३ ॥ इस प्रकार सर्वगामिनी शक्ति ब्रह्म कहाती है बुद्धिमानोंकोविचार पूर्वक भलीभांति उसका सेवन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ विष्णुमें वह सात्विक शक्ति है उसके विना वह कुछ भी कर्म नहीं कर सकते ब्रह्मामें राजसी शक्ति है उसके विना वह कुछ नहीं कर सकते ॥३५॥ शिवमें तामसी शक्ति है इसीसे वह

साऽऽद्या शक्तिः परिणता सर्वस्मिन्या प्रतिष्ठिता ॥ दाहशक्तिस्तथा वह्नौ समीरे प्रेरणात्मिका ॥ ३० ॥ शिवोऽपि शवतां याति कुंडलिन्या विवार्जितः ॥ शक्तिहीनस्तु यः कश्चिदसमर्थः स्मृतो बुधैः ॥ ३१ ॥एवं सर्वत्र भूतेषु स्थावरेषु चरेषुच ॥ब्रह्मादि स्तंबपर्यंतं ब्रह्मांडेऽस्मिन्महातपाः ॥ ३२ ॥ शक्तिहीनं तु निंद्यं स्याद्वस्तुमात्रं चराचरम् ॥ अशक्तः शत्रुविजये गमने भोजने तथा ॥ ३३ ॥ एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते ॥ योपास्या विविधैः सम्यग्विचार्या सुधिया सदा ॥ ३४ ॥ विष्णौ च सात्त्विकी शक्ति स्तया हीनोऽप्यकर्मकृत् ॥ द्रुहिणे राजसी शक्तिर्यया हीनो ह्यसृष्टिकृत् ॥ ३५ ॥ शिवे च तामसी शक्तिस्तया संहारकारकः ॥ इत्यूह्य मनसा सर्वं विचार्य च पुनः पुनः ॥३६॥ शक्तिः करोति ब्रह्मांडं सा वै पालयतेऽखिलम् ॥ इच्छयासंहरत्येषा जगदेतच्चराचरम् ॥ ३७ ॥ न विष्णुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः ॥ न सूर्यो वरुणः शक्तः स्वे स्वे कार्ये कथंचन ॥३८॥ तया युक्ता हि कुर्वंति स्वानि कार्याणि ते सुराः ॥ सैव कारण कार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते ॥ ३९ ॥ सगुणा निर्गुणासा तु द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां स्वामिनी सा निराकुला ॥ ददाति वांछितान्कामान्पूजिता विधिपूर्वकम् ॥ ४१ ॥

संहार कर सकते हैं, इस प्रकार मनसे सम्पूर्णतया विचार करके ॥ ३६ ॥ यह शक्ति ब्रह्माण्डकी रचना करके पालना करती है, इच्छासे ही चराचर जगत्का संहार करती है ॥ ३७ ॥ विष्णु हर ब्रह्मा अग्नि सूर्य वरुण विना शक्तिके कोई भी अपना कार्य नहीं कर सकते हैं ॥ ३८ ॥ वे सर्व देवता उससे युक्त होकर ही अपना कार्य करते हैं वही कार्य कारणमें प्रत्यक्ष विदित होती है ॥ ३९ ॥ वह सगुण निर्गुणके भेदसे महर्षियोंने दो प्रकारकी कही रागी सगुणका और वैरागी निर्गुण शक्तिका सेवन करते हैं ॥ ४० ॥ वह अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदार्थोंकी स्वामिनी है विधिपूर्वक पूजा की हुए मनोवांछित अर्थोंको देती

है ॥ ४१ ॥ और मायासे आवृत हुए मूढ उसको जान नहीं सकते हैं और जानकर भी कोई मनुष्य दूसरोंको नहीं बताकर मोहित करते हैं॥ ४२ ॥ पण्डित जन अपने उदर पूर्त्तिके निमित्त कलिके प्रेरित हुए अनेक पाखण्ड प्रवर्त्तित करते हैं ॥ ४३ ॥ इस कलियुगमें हे महाभागो अनेक भेद हो गये हैं वेद बाह्य धर्म दूसरे युगोंमें कभी नहीं होते हैं ॥ ४४ ॥ विष्णु भी अनेक वर्षोंतक उग्रतप करते हैं और ब्रह्मा हरादि देवता भी उस परमात्मिका शक्तिका ध्यान करते हैं ॥ ४५ ॥ वे तीनों देवता सदा इच्छा करते हुए ब्रह्मा विष्णु महेश्वर अनेक यज्ञ करते हैं ॥ ४६ ॥ वह ब्रह्मरूप नाम्नी परात्मिकाकी शक्तिका ध्यान करते हुए उनको सनातनी नित्य मानकर सदा ध्यान करते हैं ॥ ४७ ॥ इस कारण निश्चय करनेवाले ब्राह्मणोंको सदा शक्तिका ध्यान करना चाहिये हे मुनिश्रेष्ठ ! सब

न जानंति जना मूढास्तां सदा मायया वृताः ॥ जानंतोऽपि नराः केचिन्मोहयंति परानपि ॥४२॥ पंडिताः स्वोदरार्थं वै पाखंडानि पृथक्पृथक् ॥ प्रवर्तयंति कलिना प्रेरिता मंदचेतसः ॥४३॥ कलावस्मिन्महाभागा नानाभेदसमुत्थिताः ॥ नान्ये युगे तथा धर्मा वेद बाह्याः कथंचन ॥४४॥ विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः ॥ ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायंतः कर्मापि ध्रुवम् ॥४५॥ कामयानाः सदा कामं ते त्रयः सर्व देव हि ॥ यजंति यज्ञान्विविधान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ४६ ॥ ते वै शक्तिं परां देवीं ब्रह्माख्यां परमात्मिकाम् ॥ ध्यायंति मनसा नित्यं नित्यां मत्वा सनातनीम् ॥४७॥ तस्माच्छक्तिः सदा सेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः ॥ निश्चयः सर्वशास्त्राणां ज्ञातव्यो मुनिसत्तमाः ॥४८॥ कृष्णाच्छ्रुतं मया चैतत्तेन ज्ञातं तु नारदात् ॥ पितुः सकाशात्तनापि ब्रह्मणा विष्णुवाक्यतः ॥ ४९ ॥ न श्रोतव्यं न मंतव्यमन्येषां वचनं बुधैः ॥ शक्तिरेव सदा सेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः ॥५०॥ प्रत्यक्षमपि द्रष्टव्यमशक्तस्य विचेष्टितम ॥ अतः सर्वेषु भूतेषु ज्ञातव्या शक्तिरेव हि ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥ सूत उवाच ॥ यदा विनिर्गता निद्रा देहात्तस्य जगद्गुरोः ॥ नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥१॥ निसृत्य गगने तस्थौ तामसी शक्तिरुत्तमा ॥ उदतिष्ठज्जगन्नाथो जृंभमाणःपुनः पुनः ॥ २ ॥

शास्त्रोंका निश्चय जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ मैंने यह सब श्रीकृष्णसे सुना और उन्होंने नारदजीसे सुना नारदजीने ब्रह्मासे और प्रजापतिने विष्णुसे सुना ॥ ४९ ॥ दूसरोंके वचन बुद्धिमानों को न मानने सुनने चाहिये कृत निश्चयवाले विद्वानोंको भगवतीका सदा सेवन करना चाहिये ॥ ५० ॥ अशक्तकी चेष्टा प्रत्यक्ष भी तो देखनी चाहिये इससे सब प्राणियोंमें शक्ति ही देखनी चाहिये ॥ ५१ ॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥सूतजी बोले जिस समय उस जगद्गुरुके शरीरसे निद्रा निर्गत हुई तथा नेत्र हृदय और नासिकामे तेज निर्गत हुआ ॥ १ ॥ तब वह उत्तम तामसी शक्ति निर्गत होकर आका

शमें स्थित हुई और बार बार जँभाई लेते हुए जगन्नाथ जागे ॥ २ ॥ तब उन्होंने भयसे व्याकुल प्रजापतिको देखा, और वह महातेजस्वी मेघके समान गंभीर वाणीसे बोले ॥ ३ ॥ विष्णु बोले हे ब्रह्मा ! तप छोड़कर तुम यहां कैसे आये और तुम भयसे व्याकुल क्यों हो ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देव ! आपके कर्णमलसे उत्पन्न हुए मधु कैटभ दैत्य घोररूप महाबली हैं ॥ ५॥ हे जगत्पते ! उन दोनोंके भयसे मैं तुम्हारे समीप आया हूं हे वासुदेव भयसे व्याकुल हुए विचेतन मेरी रक्षा करो ॥ ६ ॥ विष्णु बोले तुम स्थित रहो मैं उन दोनोंका वध करूंगा, वे मूढ गतायुष होकर ही मेरे समीप युद्ध करनेको आये हैं ॥ ७ ॥ सूतजी बोले

तदाऽपश्यत्स्थितं तत्र भयत्रस्तं प्रजापतिम् ॥ उवाच च महातेजा मेघगम्भीरया गिरा ॥ ३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ किमागतोऽसि भगवंस्तप स्त्यक्त्वाऽत्र पद्मज ॥ कस्माच्चितातुरोऽसि त्वं भयाकुलितमानसः ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वत्कर्णमलजौ देव दैत्यौ च मधुकैटभौ ॥ हंतुं मां समुपायातो घोररूपौ महाबलौ ॥ ५ ॥ भयात्तयोः समायातस्त्वत्समीपं जगत्पते ॥ त्राहि मां वासुदेवाद्य भयत्रस्तं विचेतनम् ॥ ६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तिष्ठाद्य निर्भयो ज़ातस्तौ हनिस्याम्यहं किल ॥ युद्धायाजग्मतुर्मूढौ मत्समीपं गतायुषौ ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वदति देवेशे दानवौ तौ महाबलौ ॥ विचिन्वानावजं चोभौ संप्राप्तौ मगदेर्वितौ ॥ ८ ॥ निराधारौ जले तत्र संस्थितौ विगतज्वरौ ॥ तावूचतुर्म दोन्मत्तौ ब्रह्माणं मुनिसत्तमाः ॥ ९ ॥ पलायित्वा समायातः सन्निधावस्य किं ततः ॥ युद्धं कुरु हनिष्यावः पश्यतोऽस्यैव सन्निधौ ॥१०॥ पश्चादेनं हनिष्यावः सर्पयोगोपरिस्थितम् ॥ त्वमद्य कुरु संग्रामं दासोऽस्मीति च वा वद ॥ ११ ॥ सूत ऊवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णु स्तावुवाच जनार्दनः ॥ कुरुतं समरं कामं मया दानवपुंगवौ ॥ १२ ॥ हरिष्यामि मदं चाहं युवयोर्मत्तयोः किल ॥ आगच्छतं महाभागौ श्रद्धा चेद्वां महाबलौ ॥ १३ ॥

देवेशके ऐसा कहनेपर वे अतिबली दानव ब्रह्माजीको ढूंढते मदसे गर्वित हुए वहां प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ निराधार विगतज्वर होकर मदोन्मत्त हुए ब्रह्माजीसे कहने लगे ॥ ९ ॥ वहांसे भागकर इनके समीपमें क्यों आये हो और युद्ध करो इस पुरुषके देखते ही हम तुझको मार डालेंगे ॥ १० ॥ और पीछे सर्प शय्यापर स्थित हुए इसको भी मारडालेंगे सो तुम अब संग्राम करो वा मैं तुम्हारा दास हूं ऐसा कहो ॥ ११ ॥ सूतजी बोले यह वचन सुनकर जनार्दन उनसे बोले हे दानवो ! तुम मेरे साथ संग्राम करो ॥ १२ ॥ मैं तुम दोनों मतवालोंका मद हरण करूंगा हे महाबली महाभागियो ! यदि इच्छा हो तो मेरे साथ युद्ध करो ॥ १३ ॥

यह वचन सुनकर क्रोधसे व्याकुल मन होकर वे निराधार जलमें स्थित होकर युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ तब मधु क्रोधित होकर हरिके साथमें युद्ध करनेको स्थित हुआ और कैटभ भी चला ॥ १५ ॥ उनका मत्त दो मल्लोंके समान युद्ध होने लगा मधुके श्रान्त होनेमें कैटभ संग्राम करने लगा ॥ १६ ॥ फिर मधु फिर कैटभ इस प्रकार बार बार युद्ध करने और रागसे अंधे हो प्रभु विष्णुसे संग्राम करने लगे ॥ १७ ॥ उसको ब्रह्मा और अन्तारिक्षमें स्थित हुई देवी अवलोकन करती थी और वे युद्ध करते हुए न थके विष्णुको श्रम होने लगा ॥१८॥ जब युद्ध करते हुए पाँच सहस्र वर्ष बीत गये तब भगवान् ने उनके मरणका कारण विचार किया ॥१९॥ कि मैंने पांच सहस्र वर्ष तक बराबर युद्ध किया, यह दानव शांत न हुए और मुझको परिश्रम विदित होता है ॥ २० ॥ मेरा बल और

सूत उवाच ॥ श्रुत्वा तद्वचनं चोभौ क्रोधव्याकुललोचनौ ॥ निराधारौ जलस्थौ च युद्धोद्युक्तौ बभूवतुः ॥ १४ ॥ मधुश्च कुपितस्तत्र हरिणा सह संयुगम् ॥ कर्तुं प्रचलितस्तूर्णं कैटभस्तु तथा स्थितः ॥१५॥ बाहुयुद्धं तयोरासीन्मल्लयोरिव मत्तयोः ॥ श्रांते मधौ कैटभस्तु संग्राममकरोत्तदा ॥ १६ ॥ पुनर्मधुः कैटभश्च युयुधाते पुनः पुनः ॥ बाहुयुद्धेन रागांधौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १७ ॥ प्रेक्षकस्तु तदा ब्रह्मा देवी चैवांतरिक्षगा ॥ न मम्लतुस्तदा तौ तु विष्णुस्तु म्लानिमाप्तवान् ॥ १८ ॥ पंचवर्षसहस्राणि यदा जातानि युद्ध्यता ॥ हरिणा चिंतितं यत्र कारणं मरणे तयोः ॥ १९ ॥ पंचवर्षसहस्राणि मया युद्धं कृतं किल ॥ न श्रांतौ दानवौ घोरौ श्रांतोऽहं चैतदद्भुतम् ॥ २० ॥ क्व गतं मे बलं शौर्यं कस्माच्चेमावनामयौ ॥ किमत्र कारणं चिंत्यं विचार्य मनसा त्विह ॥ २१ ॥ इति चिंतापरं दृष्ट्वा हरिं हर्षपरावुभौ ॥ ऊचतुस्तौ मदोन्मत्तौ मेघगंभीरनिःस्वनौ ॥ २२ ॥ तव नोचेद्बलं विष्णो यदि श्रांतोऽसि युद्धतः ॥ब्रूहि दासोऽस्मि वां नूनं कृत्वा शिरसि चांजलिम् ॥ २३ ॥ न चेद्युद्धं कुरुष्वाद्य समर्थोऽसि महामते ॥ हत्वा त्वां निहनिष्यावः पुरुषं च चतुर्मुखम् ॥२४॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा तद्भाषितं विष्णुस्तयोस्तस्मिन्महोदधौ ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं सामपूर्वं महामनाः ॥ २५ ॥

शूरता कहां गई क्यों यह दोनों कुशल पूर्वक हैं यहां क्या कारण होगा यह बात मनसे विचार कर शोचने लगे ॥२१॥ इस प्रकार वे दोनों मदोन्मत्त हरिको चिन्ता करते देखकर मनमें बडे प्रसन्न होकर मेघ गंभीरवाणीसे भगवान्से कहने लगे ॥२२॥ हे विष्णु ! यदि तुममें बल नहीं है और युद्धसे शान्त हो गये हो तो कहो कि हम तुम्हारे दास हैं इस प्रकार शिर पर अंजली करो ॥ २३ ॥ हे महामते ! यदि समर्थ होतो हमारे साथ युद्ध करो तुमको मारकर हम चतुर्मुख पुरुषका वध करेंगे ॥२४॥ सूतजी बोले भगवान् विष्णु यह उनके वचन सुनकर सामपूर्वक मनोहरतासे वचन बोले ॥ २५ ॥

भगवान् बोले श्रांत भीत पतित शस्त्रत्यागी और बालकपर वीर शस्त्रत्याग नहीं करते यह सनातनधर्म है ॥ २६ ॥ मैंने तुमसे पांचसहस्रवर्षतक युद्ध किया मैं इकला हूं और तुम दोनों महाबलिष्ठ क्रमसे युद्ध करते रहे हो ॥ २७ ॥ तुम दोनोंने मध्यमें बारंबार विश्राम किया है मैं भी विश्राम कर तुमसे युद्ध करूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २८ ॥ तबतक तुम बलवान् मदोन्मत्त स्थित रहो मैं बिश्राम करके फिर न्यायमार्गसे युद्ध करूंगा ॥ २९ ॥ सूतजी बोले यह उनके वचन सुन दोनों दानव विश्वासको प्राप्तहो संग्राममेंनिश्चयकर दूर स्थित हुये ॥ ३० ॥ वासुदेव चतुर्मुख उनको अति दूर स्थित देख उनके मारनेका कारण मनमें ध्यान करने लगे ॥ ३१ ॥ चिन्तन करतेही यह वार्त्ता जानली कि देवीने दोनोंको वर दिया है और संग्राममें इच्छापर मरण है और शान्त न

हरिरुवाच ॥ श्रांते भीते त्यक्तशस्त्रे पतिते बालके तथा ॥ प्रहरंति न वीरास्ते धर्म एष सनातनः ॥ २६ ॥ पंचवर्षसहस्राणि कृतं युद्धं मया त्विह ॥ एकोऽहं भ्रातरौ वां च बलिनौ सदृशौ तथा ॥२७॥ कृतं विश्रमणं मध्ये युवाभ्यां च पुनः पुनः ॥ तथा विश्रमणं कृत्वा युध्येऽहं नात्र संशयः ॥ २८ ॥ तिष्ठतं हि युवां तावद्बलवंतौ मदोत्कटौ ॥ विश्रम्याहं करिष्यामि युद्धं वा न्याय मार्गतः ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य विश्रब्धौ दानवोत्तमौ ॥ संस्थितौ दूरतस्तत्र संग्रामे कृतनिश्चयौ ॥३०॥ अतिदूरे च तौ दृष्ट्वा वासुदेवश्चतुर्भुजः ॥ दध्यौ च मनसा तत्र कारणं मरणे तयोः ॥३१॥ चिंतनाज्ज्ञानमुत्पन्नं देवीदत्तवराबुभो ॥ कामं वांछितमरणौ न मम्लतुरतस्त्विमौ ॥३२॥ वृथा मया कृतं युद्धं श्रमोऽयं मे वृथा गतः ॥ करोमि च कथं युद्धमेवं ज्ञात्वा विनिश्चयम् ॥ ३३ ॥ अकृते च तथा युद्धे कथमेतौ गमिष्यतः ॥ विनाशं दुःखदौ नित्यं दानवौ वरदर्पितौ ॥ ३४ ॥ भगवत्या वरोदत्तस्तया सोऽपि च दुर्घटः॥मरणं चेच्छया कामं दुःखितोऽपि न वांछति॥३५॥रोगग्रस्तोऽपि दीनोऽपि न मुमूर्षति कश्चन॥कथं चेमौ मदोन्मत्तौ मर्तुकामौ भविष्यतः॥३६॥ नन्वद्य शरणं यामि विद्यां शक्तिं सुकामदाम् ॥ विना तया न सिध्यंति कामाः सम्यक्प्रसन्नया ॥ ३७ ॥

होंगे ॥३२॥ मैंने इनसे वृथा युद्ध किया और मेरा श्रमभी वृथागया, यह निश्चय जानकर मैं अब इनसे कैसे युद्ध करूंगा ॥ ३३ ॥ विना युद्ध किये यह यहांसे किस प्रकार जायंगे यह मददर्पित दानव विनामरे बड़े दुःखदायी होंगे ॥ ३४ ॥ भगवतीने जो इनको वरदिया है सो भी बड़ा दुर्घट है; कोई दुःखी भी अपनी इच्छासे मरणकी इच्छा नहीं करता है ॥३५ रोगग्रस्त दीन मरता हुआ भी मृत्यु नहीं चाहता फिर यह दोनों मदोन्मत्त क्यों मृत्युकी इच्छा करेंगे ॥ ३६ ॥ सो इस समय कामनादायक विद्याशक्तिकी शरण हूं विना उसके प्रसन्न हुए कामना सिद्ध नहीं होती ॥ ३७ ॥

इस प्रकार विचार कर आकाशमें स्थित योगनिद्रारूप मनोहर शिवाको देखते हुए ॥ ३८ ॥ और वह अमेयात्मा हाथ जोड़कर सन्तुष्ट करते हुए उन दोनोंके नाशके निमित्त वरदायक भुवनेश्वरीकी प्रार्थना करनेलगे ॥ ३९ ॥ विष्णु बोले हे महामाये ! सृष्टि और संहारकारिणीदेवि अनादि निधन चण्डि भुक्ति मुक्तिके देनेवाली शिवे तुमको प्रणाम है ॥ ४० ॥ तुम्हारे सगुण निर्गुणरूपको मैं नहीं जानताहूं और तुम्हारे असंख्य चरित्र हैं उनकी तो कौन कहे ॥ ४१ ॥ मैं तुम्हारा दुर्घट प्रभाव जान चुकाहूं जो मैं निद्रित होकर विचेतन हो गया था ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजीने यत्नपूर्वक मुझे बारंबार बोधित भी किया परन्तु सर्वथा संकोचित षडिन्द्रिय होनेके कारण मैं प्रबुद्ध न हुआ ॥४३॥ हे अम्बिके ! तुम्हारे प्रभावसे मैं अचेतनत्वको प्राप्त हुआ और तुम्हारे छोड़नेसे मैं प्रबुद्ध हुआ

एवं संचिंत्यमानस्तु गगने संस्थितां शिवाम् ॥ अपश्यद्भगवान्विष्णुर्योगनिद्रां मनोहराम् ॥ ३८ ॥ कृतांजलिरमेयात्मा तां च तुष्टाव योगवित् ॥ विनाशार्थं तयोस्तत्र वरदां भुवनेश्वरीम् ॥३९॥ विष्णुरुवाच ॥ नमो देवी महामाये सृष्टिसंहारकारिणि ॥ अनादिनिधने चंडि भुक्तिमुक्तिप्रदे शिवे ॥ ४० ॥ न ते रूपं विजानामि सगुणं निर्गुणं तथा ॥ चरित्राणि कुतो देवि संख्यातीतानि यानि ते ॥४१॥ अनुभूतो मया तेऽद्य प्रभावश्चातिदुर्घटः ॥ यदहं निद्रया लीनः संजातोऽस्मि विचेतनः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणा चातियत्नेन बोधितोऽपि पुनः पुनः ॥ न प्रबुद्धः सर्वथाऽहं संकोचितषडिंद्रियः ॥ ४३ ॥ अचेतनत्वं संप्राप्तः प्रभावात्तव चांबिके ॥ त्वया मुक्तः प्रबुद्धोऽहं युद्धं च बहुधा कृतम् ॥४४॥ श्रांतोऽहं न च तौ श्रांतौ त्वया दत्तवरौ वरौ ॥ ब्रह्माणं हंतुमायातौ दानवौ मदगर्वितौ ॥४५॥ आहूतौ च मया कामं द्वंद्वयुद्धाय मानदे ॥ कृतं युद्धं महाघोरं मया ताभ्यां महार्णवे ॥४६॥ मरणे वरदानं ते ततो ज्ञातं महाद्भुतम् ॥ ज्ञात्वाऽहं शरणं प्राप्तस्त्वाद्यम शरणप्रदाम् ॥ ४७ ॥ सहाय्यं कुरु मे मातः खिन्नोऽहं युद्धकर्मणा ॥ दृप्तौ तौ वरदानेन तव देवार्तिनाशने ॥ ४८ ॥ हंतुं मामुद्यतौ पापौ किं करोमि क्व यामि च ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी स्मितपूर्वमुवाच ह ॥ ४९ ॥

और बहुत युद्धकिया ॥४४॥ मैं तो श्रान्त हुआ और वह दोनों वरदान पानेके कारण शान्त न हुए और वे दोनों बली ब्रह्माजीके मारनेको सन्नद्ध हुए ॥ ४५ ॥ हे मानदे ! तब मैंने द्वंद्वयुद्धके निमित्त उनके संग्राममें बुलाया, और उनको साथ मैंने महार्णवमें घोरयुद्ध किया ॥ ४६ ॥ परन्तु उनके मरणमें मैंने महाअद्भुत वरदानको जाना, यह जानकर मैं तुझ शरण देनेवाली कीशरणमें प्राप्त हुआ हूं ॥ ४७ ॥ हे मातः ! अब मेरी सहायता करो मैं युद्धकर्मसे खिन्नहोरहाहूं हे दुःखनाशिनी ! वह तुम्हारे वरदानसे दर्पित हैं ॥ ४८ ॥ वे पापी मुझको मारनेको उद्यत हैं अब मैं क्याकरूं कहां जाऊं ऐसा कहनेसे तब देवी हास्य

करके बोली ॥ ४९ ॥ वासुदेव जगन्नाथको प्रणाम करता हुआ देखकर बोली हे देवदेव विष्णु ! फिरभी युद्ध करो ॥ ५० ॥ तब इन शूरोंको वंचना करके मारो मैं दोनों दानवोंको अपनी बुद्धिसे मोहित करूंगी ॥५१॥ हे नारायण ! मेरी मायासे मोहित हुए दोनोंका वध करो सूतजी बोले प्रीतिभरे उनके वचनोंको विष्णुजी सुनकर ॥ ५२ ॥ फिर उस महार्णवमें संग्रामस्थलमें आकर स्थित हुए और वे भी महाबली वीर युद्ध करनेको आये ॥ ५३ ॥ विष्णुको वहाँ स्थित देखकर दोनों प्रसन्नहुए और बोले चाहे तुम स्थितहो चाहे चतुर्भुज युद्ध करो ॥५४ ॥ कारण कि जय पराजय अवश्यही दैवाधीन है सबलकी जय होती है कभी दैववश दुर्बलभी जय पाता है ॥५५॥ इसप्रकार सर्वथा महात्माको हर्ष शोक न करना चाहिये पहलेभी दानव वैरीने बहुतसे दैत्य जीते हैं ॥ ५६ ॥

प्रणमंतं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम् ॥ देवदेव हरे विष्णो कुरु युद्धं पुनः स्वयम् ॥५०॥ वंचयित्वा त्विमौ शूरौ हंतव्यौच विमोहितौ ॥ मोहयिष्याम्यहं नूनं दानवो वक्रया दृशा ॥ ५१ ॥ जहि नारायणाशु त्वं मम मायाविमोहितौ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुस्तस्याः प्रीतिरसान्वितम् ॥५२॥ संग्रामस्थलमासाद्य तस्थौ तत्र महार्णवे ॥ तदाऽऽयातौ चतौ धीरौ युद्धकामौ महाबलौ ॥५३॥ वीक्ष्य विष्णुं स्थितं तत्र हर्षयुक्तौ बभूवतुः ॥ तिष्ठ तिष्ठ महाकाम कुरुयुद्धं चतुर्भुज ॥५४॥ दैवाधीनौ विदित्वाऽद्य नूनं जयपराजयौ ॥ सबलो जयमाप्नोति दैवाज्जयति दुर्बलः ॥५५॥ सर्वथैव न कर्तव्यौ हर्षशोकौ महात्मना ॥ पुरावै बहवो दैत्या जिता दानववैरिणा ॥ ५६॥अधुना चानयोः सार्धं युध्यमानः पराजितः ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ता तौ महाबाहू युद्धाय समुपस्थितौ ॥५७॥ वीक्ष्य विष्णुर्जघानाशु मुष्टिनाऽद्भुतकर्मणा ॥ तावप्यतिबलोन्मत्तौ जघ्नतुर्मुष्टिनाहरिम् ॥ ५८ ॥ एवं परस्परं जातं युद्धं परमदारुणम् ॥ युद्धमानौ महावीर्यौ दृष्ट्वा नारायणस्तदा ॥ ५९ ॥ अपश्यत्संमुखं देव्याः कृत्वा दीनां दृशं हरिः ॥ सूत उवाच ॥ तं वीक्ष्य तादृशं विष्णुं करुणारससंयुतम् ॥ ६० ॥ जहासातीव ताम्राक्षी वीक्षमाणा तदाऽसुरौ ॥ तौ जघान कटाक्षैश्च कामबाणैरिवापरैः ॥ ६१ ॥

अब इनके साथ युद्ध करते पराजित हुए, सूतजी बोले ऐसा कह वे महाबाहु युद्ध करनेको स्थित हुए ॥ ५७ ॥ और देखकर अद्भुतकर्मा विष्णुने उसको मुष्टिसे ताडन किया और वहभी बली मुष्टिसेहरिको ताडन करते हुए ॥५८॥ इस प्रकार परस्पर बड़ा दारुण युद्ध हुआ, तब उन महावीर्यमानोंको युद्धकरता हुवा देखकर नारायण ॥ ५९ ॥ नम्रदृष्टिसे भगवतीकी ओर देखने लगे सूतजी बोले उस समय विष्णुको करुणारससे संयुक्त देखकर ॥ ६० ॥ वह ताम्रलोचनी प्रसन्न हुई और उन दोनों असुरोंको देखकर कटाक्षयुक्ता कामबाणोंसे उनको ताडन करने लगी ॥ ६१ ॥

अत्यन्त मन्दहास्य और प्रेमभावसे युक्त होकर भगवतीको देख वह दोनों पापात्मा देवीके वक्त्र विलोकनसे मोहित हो गये ॥ ६२ ॥ और उनको विशेष देख काम बाणसे पीडित हुए और देवीकी कांति देखकर वहा स्थित हुए ॥ ६३ ॥ भगवान्नेभी वह देवीकी चेष्टा देखी, और कार्य कुशल भगवान् उनको मोहित हुआ जानकर ॥ ६४ ॥ हँसते हुए मेघ गंभीर वाणीसे बोले तुम दोनों वीर यथेच्छ वर मांगो ॥ ६५ ॥ मैं तुम्हारे युद्धसे प्रसन्न होकर वर दूंगा मैंने अपने साथ पहलेभी युद्ध करते बहुतसे दानव देखे हैं ॥ ६६ ॥ परन्तु तुमसा न कोई देखा न सुना इस कारण मैं तुम्हारे अतुलबलसे प्रसन्न हूं ॥ ६७ ॥ मैं तुम दोनों महाबली भ्राताओंको यथेच्छ वर दूंगा सूतजी बोले ! यह विष्णुके वचन सुनकर वे दोनों असुर कामसे पीडित हुए अभिमान पूर्वक ॥ ६८ ॥

मंदस्मितयुतैः कामप्रेमभावयुतैरनु ॥ दृष्ट्वा मुमुदतुः पापौ देव्या वक्त्रविलोकनम् ॥ ६२ ॥ विशेषमिति मन्वानौ कामबाणातिपीडितौ ॥ वीक्षमाणौ स्थितौ तत्र तां देवीं विशदप्रभाम् ॥६३॥ हरिणाऽपि च तद् दृष्टं देव्यास्तत्र चिकीर्षितम् ॥ मोहितौ तौ परिज्ञाय भगवान्कार्यवित्तमः ॥ ६४ ॥ उवाच तौ हसञ्श्लक्ष्णं मेघगंभीरया गिरा ॥ वरं वरयतं वीरौ युवयोर्योऽभिवांछितः ॥ ६५ ॥ ददामि परमप्रीतोयुद्धेन युवयोः किल ॥ दानवा बहवो दृष्टा युध्यमाना मया पुरा ॥६६॥ युवयोः सदृशः कोऽपि न दृष्टो न च वै श्रुतः ॥ तस्मात्तुष्टोऽस्मि कामं वै निस्तुलेन बलेन च ॥६७॥ भ्रात्रोश्च वांछितं कामं प्रयच्छामि महाबलौ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोः साभिमानौ स्मरातुरौ ॥ ६८ ॥ वीक्षमाणौ महामायां जगदानंदकारिणीम् ॥ तमूचतुश्च कामार्तौ विष्णुं कमललोचनौ ॥६९॥ हरे न याचकावावां त्वं किं दातुमिहेच्छसि ॥ ददाव तुभ्यं देवेश दातारौ नौ न याचकौ ॥ ७० ॥ प्रार्थय त्वं हृषीकेश मनोभिलषितं वरम् ॥ तुष्टौ स्वस्तव युद्धेन वासुदेवाद्भुतेन च ॥ ७१ ॥ तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्दनः ॥ भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥ ७२ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोर्दानवौ चातिविस्मितौ ॥ वंचिताविति मन्वानौ तस्थतुः शोकसंयुतौ ॥ ७३ ॥

जगत्की आनंद करनेवाली उस महामायाको देखते हुए कामसे आर्त्त होकर कमल लोचन विष्णुसे बोले हे हरि ! हम याचक नहीं हैं तुम क्या देनेकी इच्छा करते हो हम दाता हैं हे देवेश ! तुमको वर दे सकते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥ हे हृषीकेश ! तुम अपने मनके अभिलषित वर की इच्छा करो हे वासुदेव ! हम तुम्हारे अद्भुत युद्धसे प्रसन्न हैं ॥७१॥ उनके यह वचन सुनकर भगवान् बोले जो तुम हमारे ऊपर प्रसन्न हो तो दोनों हमारे वध्य हो ॥ ७२ ॥ सूतजी बोले दोनों दानव विष्णुके यह वचन सुनकर बडे विस्मित हुए हम वंचित हुए यह विचारकर शोकसे व्याकुल हुए ॥ ७३ ॥

मनसे विचारकर वे दानव विष्णुसे बोले और स्थलरहित जलमय भूमिको देखकर कहा ॥ ७४ ॥ हे हरि ! जो तुमने पहले वर देनेको कहा तो आपभी सीत्यवाक् होकर हमको वर दीजिये ॥७५॥ हे मधुसूदन ! आप निर्जल देशमें हमारा वध कीजिये, इस प्रकारसे आप सत्य वचन हूजिये ॥ ७६ ॥ तब भगवान् चक्रका स्मरण कर हंसते हुए उनसे बोले हे महाभागो ! निर्जल स्थानमें मैं तुम्हारा वध करूंगा ॥ ७७ ॥ यह कह भगवान्‌ने अपना ऊरूदेश विस्तार करके उनको निर्जल स्थान दिखाया और कहा ॥ ७८ ॥ हे दानवो यहां जल नहीं है अपना शरीर यहां त्यागो मैं और तुम अभी सत्यवाक् होंगे ॥७९॥ यह सुनकर वे दोनों मनमें विचारकर अपना देह सहस्रों योजनका करते हुए ॥ ८० ॥ तब विस्मित होकर भगवान्‌ने अपनी जंघा दूनी कर दी तब वह

विचार्य मनसा तौ तु दानवौ विष्णुमूचतुः ॥ प्रेक्ष्य सर्वं जलमयं भूमिं स्थलविवर्जिताम् ॥ ७४ ॥ हरे योऽयंवरो दत्तस्त्वया पूर्वं जनार्दन ॥ सत्यवागसि देवेश देहि तं वांछितं वरम् ॥ ७५ ॥ निर्जले विपुले देशे हनस्व मधुसूदन ॥ वध्यावावां तु भवतः सत्यवाग्भव माधव ॥ ७६ ॥ स्मृत्वा चक्रं तदा विष्णुस्तावुवाच हसन्हरिः ॥ हन्म्यद्य वां महाभागौ निर्जले विपुले स्थले ॥७७॥ इत्युक्त्वा देवदेवेश ऊरू कृत्वाऽतिविस्तरौ ॥ दर्शयामास तौ तत्र निर्जलं च जलोपरि ॥७८॥ नास्त्यत्र दानवौ वारि शिरसी मुंचतामिह ॥ सत्यवागहमद्यैव भविष्यामि च वां तथा ॥ ७९ ॥ तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं विचिंत्य मनसा च तौ ॥ वर्धयामासतुर्देहं योजनानां सहस्रकम् ॥ ८० ॥ भगवान्द्विगुणं चक्रे जघनं विस्मितौ तदा ॥ शीर्षे संदधतां तत्र जघने परमाद्भुते ॥ ८१ ॥ रथांगेन तदा भिन्ने विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ जघनोपरि वेगेन प्रकृष्टे शिरसि तयोः ॥८२॥ गतप्राणौ तदा जातौ दानवौ मधुकैटभौ ॥ सागरः सकलो व्याप्तस्तदा वै मेदसा तयोः ॥ ८३ ॥ मेदिनीति ततो जातं नाम पृथ्व्याः समंततः ॥ अभक्ष्या मृत्तिका तेन कारणेन मुनीश्वराः ॥ ८४ ॥ इति वः कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽस्मि सुनिश्चितम् ॥ महाविद्या महामाया सेवनीया सदा बुधैः ॥ ८५ ॥

उस परम अद्भुत जंघामें शिर धरते हुए ॥ ८१ ॥ तब विष्णुने चक्रसे उनका शिर छेदन कर दिया, जिस समय वेगसे जंघाके ऊपर उनका शिर छेदन किया ॥ ८२ ॥ उसी समय मधु और कैटभ प्राण रहित हुए उनके मेदसे सम्पूर्ण सागर व्याप्त होगया ॥८३॥ तबसे सब ओरसे उस पृथ्वीका नाम मेदनी हुआ हे मुनीश्वरो ! इसी कारणसे मृत्तिका अभक्ष्य है ॥ ८४ ॥ जो कुछ आपने पूछा सो हमने वर्णन किया; महाविद्या महामायाका पंडितोंको सदा सेवन करना चाहिये ॥ ८५ ॥

सब सुरासुरोंको उस परम शक्तिका आराधन करना चाहिये इससे अधिक तीनों भुवनमें और कुछ नहीं है ॥ ८६ ॥ यह वेद शास्त्रका निर्णय सत्य है सत्य है, निर्गुण वा सगुणरूप पराशक्तिका पूजन करना चाहिये ॥ ८७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० प्र० भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! आपने कहा कि महातेजस्वी व्यासजीने यह सब पुराण बनाकर शुकदेवजीको पढाया ॥१॥ व्यासजीने तप करके शुकदेवजीको कैसे उत्पन्न किया जो आपने व्यासजीसे सुना वह सब वर्णन कीजिये ॥२॥ सूतजी बोले सत्यवतीसुत व्यासजीसे शुकदेवजी जैसे हुए वह कहता हूं जिस प्रकार योगियोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी उत्पन्न हुए ॥३॥ एक समय सत्यवती पुत्र व्यासजी मनोहर सुमेरूके शृंगमें पुत्रके निमित्त बड़ा तप करने लगे ॥४॥ और नारदजीसे सुनकर वाग्बीज एकाक्षर

आराध्या परमा शक्तिः सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ नातः परतरं किंचिदधिकं भुवनत्रये ॥ ८६ ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वेदशास्त्रार्थनिर्णयः ॥ पूजनीया परा शक्तिर्निर्गुणा सगुणाऽथवा ॥ ८७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत पूर्वं त्वया प्रोक्तं व्यासेनामिततेजसा ॥ कृत्वा पुराणमखिलं शुकायाध्यापितं शुभम् ॥ १ ॥ व्यासेन तु तपस्तप्त्वा कथमुत्पादितः शुकः विस्तरं ब्रूहि सकलं यच्छ्रुतं कृष्णतस्त्वया ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ प्रवक्ष्यामि शुकोत्पत्तिं व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ यथोत्पन्नः शुकः साक्षाद्योगिनां प्रवरो मुनिः ॥ ३ ॥ मेरुशृंगे महारम्ये व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ तपश्चचार सोऽत्युग्रं पुत्रार्थं कृतनिश्चयः ॥ ४ ॥ जपन्नेकाक्षरं मंत्र वाग्वीजं नारदाच्छ्रुतम् ॥ ध्यायन्परां महामायां पुत्रकामस्तपोनिधिः ॥ ५ ॥ अग्नेर्भूमेस्तथा वायोरंतरिक्षस्य चाप्ययम् ॥ वीर्येण संमितः पुत्रो मम भूयादिति स्मह ॥ ६ ॥ अतिष्ठत्स गताहारः शतसंवत्सरं प्रभुः ॥ आराधयन्महादेवं तथैव च सदा शिवाम् ॥ ७ ॥ शक्तिः सर्वत्र पूज्येति विचार्य च पुनः पुनः ॥ अशक्तो निंद्यते लोके शक्तस्तु परिपूज्यते ॥ ८ ॥ यत्र पर्वत शृङ्गे वै कर्णिकारवनाद्भुते ॥ क्रीडंति देवताः सर्वे मुनयश्च तपोधिकाः ॥ ९ ॥

मंत्रका जप करने लगे इस प्रकार पुत्रकी इच्छासे तपोनिधि महामायाका ध्यान करने लगे ॥५॥ अग्नि भूमि वायु अन्तरिक्ष जल इनकी शक्तियोंसे संपन्न मेरा पुत्र हो यही निश्चय किये थे ॥६॥ और १०० वर्षतक व्यासजीने कुछभी आहार न किया, शिवा और शिवको आराधन करते रहे ॥ ७ ॥ शक्ति सर्वत्र पूजनीय है ऐसा बारंबार मनमें निश्चय करके कि अशक्त निंदित होता और शक्तिमान पूजित होता है देवीकी पूजा करते ॥ ८ ॥ जहां पर्वत शृंगपर कर्णिकारका अद्भुत वन था जहां देवता क्रीडा करते और मुनिजन अधिक तप करते थे ॥ ९ ॥

आदित्य वसु रुद्र मरुत अश्विकुमार मुनि तथा दूसरे ब्रह्मवादी जहां निवास करते थे ॥ १० ॥ उस गीत ध्वनिसे शब्दायमान सुवर्णगिरिके शृंगमें धर्मात्मा सत्यवती पुत्र व्यासजी तप करते थे ॥११॥ तब इनके तेजसे चराचर विश्व व्याप्त हो गये, और बुद्धिमान् व्यासजीकी जटा अग्निवर्णकी हो गई ॥ १२ ॥ तब इनके तेजसे इन्द्रको भय हुआ तब इन्द्रको भयसे व्याकुल देखकर॥१३॥इन्द्रसे भगवान् रुद्र बोले हे इन्द्र!तुम क्यों भीत हो अपने दुःखका कारण कहो ॥ १४ ॥ तपस्वियोंसे कभी अमर्ष नहीं करना चाहिये मुझे शक्तिसंयुक्त जानकर महर्षि तप करते हैं ॥१५॥ यह तपस्वी कभी किसीका अहित नहीं चाहते यह वचन सुन इन्द्र शिवजीसे बोले

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनौ तथा ॥ वसंति मुनयो यत्र ये चान्ये ब्रह्मवित्तमाः ॥१०॥ तत्र हेमगिरेः शृंगे संगीतध्वनिनादिते ॥ तपश्चचार धर्मात्मा व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ ११ ततोऽस्य तेजसा व्याप्तं विश्वं सर्वं चराचरम् ॥ अग्निवर्णा जटा जाताः पाराशर्यस्य धीमतः ॥ १२ ॥ ततोऽस्य तेज आलक्ष्य भयमाप शचीपतिः ॥ तुरासाहं तदा दृष्ट्वा भयत्रस्तं श्रमातुरम् ॥ १३ ॥ उवाच भगवान्रुद्रो मघवंतं तथा स्थितम् ॥ शंकर उवाच ॥ कथमिंद्राद्य भीतोऽसि किं दुःखं ते सुरेश्वर ॥ १४ ॥ अमर्षो नैव कर्तव्यस्तापसेषु कदाचन ॥ तपश्चरंति मुनयो ज्ञात्वा मां शक्तिसंयुतम् ॥ १५ ॥ न त्वेतेऽहितमिच्छंति तापसाः सर्वथैव हि ॥ इत्युक्तवचनः शक्रस्तमुवाच वृषध्वजम् ॥ १६ ॥ कस्मात्तपस्यति व्यासः कोऽर्थस्तस्य मनोगतः ॥ शिव उवाच ॥ पाराशर्यस्तु पुत्रार्थी तपश्चरति दुश्चरम् ॥ १७॥ पूर्णं वर्षशतं जातं ददाम्यद्य सुतं शुभम् ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वासवं रुद्रो दयया मुदिताननः ॥१८॥ गत्वा ऋषिसमीपं तु तमुवाच जगद्गुरुः ॥ उत्तिष्ठ वासवीपुत्र पुत्रस्ते भविता शुभः ॥१९॥ सर्वतेजोमयो ज्ञानी कीर्तिकर्ता तवानघ ॥ अखिलस्य जनस्यात्र वल्लभस्ते सुतः सदा॥२०॥ भविष्यति गुणैः पूर्णः सात्त्विकैः सत्यविक्रमः ॥ सूत उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचः श्लक्ष्णं कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ २१ ॥

॥ १६ ॥ व्यासजी क्यों तप करतेहैंउनकेमनमें क्या अभिलाषाहै शिवजी बोले पुत्रके निमित्त व्यासजी कठिन तपस्या करते हैं ॥ १७॥ सौ वर्ष हो गये अब मैं उनके निमित्त पुत्र दूंगा सूतजी बोले यह कहकर दयासे युक्त प्रसन्न मन ॥ १८ ॥ भगवान् जगद्गुरु शिवजी व्यासजीके निकट जाय बोले हे व्यासजी उठो ! तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥ १९ ॥ सब तेजसे युक्त ज्ञानी और तुम्हारी कीर्त्तिका करनेवाला होगा तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका प्यारा तुम्हारा पुत्र होगा ॥ २० ॥ और सात्विक गुणोंसे पूर्ण सत्य पराक्रमी होगा सूतजी बोले व्यासजी यह मनोहर वचन सुनकर ॥ २१ ॥

शिवजीको प्रणाम कर अपने आश्रममें गये और बहुत वर्षोंके श्रमसे आतुर हुए आश्रममें जाकर ॥२२॥ अरणीके सहित गुप्त हुई अग्निको मथने लगे उन चिन्ता करते हुए और अग्नि मथन करते महात्माके सन्मुख सहसा पुत्रकी उत्पत्ति विषे चिन्ता हुई मंथन दण्ड और अरणिके संयोगसे उत्पन्न ॥ २३ ॥ २४ ॥ अग्निके समान यह मेरे पुत्र कैसे हुआ पुत्रकी प्रगट करनेवाली स्त्री तो हमारी है ही नहीं ॥२५॥ रूप सम्पन्न अच्छे कुलमें उत्पन्न पतिव्रता स्त्री जो. चरणोंको शृंखलाके समान है किस प्रकार स्वीकार करूं ॥ २६ ॥ पुत्रके उत्पन्न करनेमें दक्ष पति के व्रतमें सदा स्थित पतिव्रता दक्ष और रूपवती कामिनी भी ॥ २७ ॥ स्वेच्छासे सुख देनेवाली स्त्री भी सदा बंधन रूप है शिवभी कामिनी रूप पाशसे संयुक्त ही हैं ॥ २८ ॥ मैं किस प्रकार दुर्घट गृहाश्रम कर सकता

शूलपाणिं नमस्कृत्य जगामाश्रममात्मनः ॥ स गत्वाऽऽश्रममेवाशु बहुवर्षश्रमातुरः ॥ २२ ॥ अरणीसहितं गुह्यं ममंथाग्निं चिकीर्षया ॥ मंथनं कुर्वतस्तस्य चित्ते चिंताभरस्तदा ॥ २३ ॥ प्रादुर्बभूव सहसा सुतोत्पत्तौ महात्मनः ॥ मंथानारणिसंयोगान्मंथनाच्च समुद्भवः ॥२४॥ पावकस्य यथा तद्वत्कथं मे स्यात्सुतोद्भवः ॥ पुत्रारणिस्तु या ख्याता सा ममद्य न विद्यते ॥ २५ ॥ तरुणी रूपसंपन्ना कुलोत्पन्ना पतिव्रता ॥ कथं करोमि कांतां च पादयोः शृंखलासमाम् ॥ २६ ॥ पुत्रोत्पादनदक्षां च पातिव्रत्ये सदास्थिताम् ॥ पतिव्रताऽपि दक्षाऽपि रूपवत्यपि कामिनी ॥ २७ ॥ सदा बंधनरूपा च स्वेच्छासुखविधायिनी ॥ शिवोऽपि वर्तते नित्यं कामिनीपाशसंयुतः ॥ २८ ॥ कथं करोम्यहं चात्र दुर्घटं च गृहाश्रमम् ॥ एवं चिंतयतस्तस्य घृताची दिव्यरूपिणी ॥ २९ ॥ प्राप्ता दृष्टिपथं तत्र समीपे गगने स्थिता ॥ तां दृष्ट्वा चपलापांगीं समीपस्थां वराप्सराम् ॥ ३० ॥ पंचबाणपरीतांगस्तूर्णमासीद्धृतव्रतः ॥ चिंतयामास च तदा किं करोम्यद्य संकटे ॥३१॥ धर्मस्य पुरतः प्राप्ते कामभावे दुरासदे ॥ अंगीकरोमि यद्येनां वंचनार्थमिहागताम् ॥ ३२ ॥ हसिष्यंति महात्मानस्तापसा मां तु विह्वलम् ॥ तपस्तत्प्वा महाघोरं पूर्णं वर्षशतं त्विह ॥ ३३ ॥

हूं यह उनके विचार करने पर दिव्य रूपवती घृताची ॥ २९ ॥ समीप ही आकाशमें स्थित हुई दर्शन पथमें प्राप्त हुई उस चंचल अंगवाली श्रेष्ठ अप्सराको समीपमें स्थित देखकर ॥ ३० ॥ तुरंत ही धृतव्रत व्यासजी कामसे पीडित हुए और विचारने लगे अब इस संकटमें क्या करूं ॥ ३१ ॥ धर्मके आगे प्राप्त कामभावसे दुरासद जो इसको अंगीकार करूं जो कि मुझे वंचन करनेको आई है ॥ ३२ ॥ तो मुझे विह्वलकी तपस्वी हँसी करेंगे कि यह सौ वर्षतक महाघोर तप करके भी॥ ३३ ॥

महातपस्वी अप्सराको देखकर कैसे व्याकुल हो गये अच्छा यदि अतुल सुख मिले तो चाहे निन्दा भी हो ॥ ३४ ॥ जो गृहस्थाश्रमसे पुत्ररूपी सुखकी प्राप्ति हो सो गृहाश्रम सुखज्ञान और मुक्तिका देनेवाला कहा है ॥ ३५ ॥ वह इस देवकन्यासे तो हो ही नहीं सकता मैंने नारदजीसे पहले एक कथानक सुना था ॥३६॥ कि पुरूरवा राजा उर्वशीके वशीभूत होकर पराभूत हुए थे ॥३६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
ऋषि बोले राजा पुरूरवा और देव कन्या उर्वशी कौन थी, और उस महात्मा राजाने किस प्रकार कष्ट पाया था ॥ १ ॥ हे सूतजी ! हमसे यह कथानक

दृष्ट्वाऽप्सरां च विवशः कथं जातो महातपाः ॥ कामनिंदाऽपि भवतु यदि स्यादतुलं सुखम् ॥३४॥ गृहस्थाश्रमसंभूतं सुखदं पुत्रकामदम् ॥ स्वर्गदं च तथा प्रोक्तं ज्ञानिनां मोक्षदं तथा ॥ ३५ ॥ न भविष्यति तन्नूनमनया देवकन्यया ॥ नारदाच्च मया पूर्वं श्रुतमस्ति कथानकम् ॥ यथोर्वशीवशो राजा पराभूतः पुरूरवाः ॥ ३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
ऋषय ऊचुः ॥ कोऽसौ पुरूरवा राजा कोर्वशी देवकन्यका ॥ कथं कष्टं च संप्राप्तं तेन राज्ञा महात्मना ॥ १ ॥ सर्वं कथानकं ब्रूहि लोमहर्षणजाऽधुना ॥ श्रोतुकामा वयं सर्वे त्वन्मुखाब्जच्युतं रसम् ॥ २ ॥ अमृतादपिमिष्टा ते वाणी सूत रसात्मिका ॥ न तृप्यामो वयं सर्वे सुधया च यथाऽमराः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे कथां दिव्यां मनोरमाम् ॥ वक्ष्याम्यहं यथाबुद्ध्या श्रुतां व्यासवरोत्तमात् ॥ ४ ॥ गुरोस्तु दयिता भार्या तारा नामेति विश्रुता ॥ रूपयौवनयुक्ता सा चार्वंगी मदविह्वला ॥ ५ ॥

कहिये आपके मुखसे च्युत रसको हम सब सुननेकी इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ हे सूत ! तुम्हारी रसात्मिका वाणी अमृतसे भी श्रेष्ठ है और हम अमृतसे देवताओंकेसमान तृप्त नहीं होते हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोले हे मुनियो ! आप दिव्य मनोहर कथाको श्रवण कीजिये मैं यथाबुद्धि व्यासजीके मुखसे सुनी कथाको कहता हूं ॥४॥ बृहस्पति गुरुकी प्यारी भार्या तारा नामवाली थी, जो रूप यौवनसे संयुक्त सर्वांगमें मदसे विह्वल थी ॥ ५ ॥

१ यह कथा अध्यात्मपर भी है बृहस्पति ब्रह्म है तारा तारक विद्या है जब चन्द्रमारूप मन उसको ग्रहण करता है और आत्मज्ञानका विचार न करके सिद्धि कामना करता है तब वह तारक विद्या जगत् पर होती है और ब्रह्म उसको ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं तब इस मनकी ओर काम क्रोध रूपी दैत्य होते हैं और आत्मज्ञानी देवताओंसे विरोध होता है तारक विद्या नहीं रहती उससे जगत्में प्रवृत्त वाला बुधरूप पुत्र होता है दूसरे इस कथाका यह भी आशय है कि मुमुक्षुओंकी इंद्रादि लोकसे वृत्ति हटकर ब्रह्ममें ही प्राप्ति हो इन्द्रादि लोकके सुख भी तुच्छ और अशान्तिकर तथा क्षयोन्मुख हैं तीसरा यह भी उपदेश है कि महात्माओंको स्त्रीका सङ्ग क्लेशकर होता है चौथा यह भी है कि युवास्त्रियोंको एकाकी किसीके स्थानपर कभी जाने देना उचित नहीं है जैसा कि एकमात्र ब्राह्मणोंकी भार्यायें कभी यजमानोंके गृहमें निवास करती हैं, इसमें बहुधा भय है इस कथासे श्री व्यासजीने भावियुगकी गति विचारकर पूर्ण उदेश दिया है कि किसी वर्णमें भी युवा स्त्री कहीं इकले जानेके योग्य नहीं है। कारण कि पुरातन महर्षियोंकी यह भी परिपाटी है कि जब किसी बातका निषेध करना चाहते हैं तब उसमें बड़े पुरुषोंका उल्लेख करते हैं कि जब उनसे ऐसा हुआ तो साधारण पुरुष कैसे स्वध्य और विश्वासके योग्य होगा।

एक समय वह अपने यजमान चंद्रमाके घरगई, और चद्रमाने उसको अति यौवनवती देखकर ॥ ६ ॥ उस चन्द्रमुखीपर कामातुर हो गये और वह भी चन्द्रमाको देख कामसे पीडित हुई ॥ ७ ॥ तब वे दोनों परस्पर प्रेमयुक्त कामसे व्याकुल हुये इस प्रकार तारा और चन्द्र मदोन्मत्त होकर काम बाणसे पीडित हुए ॥ ८ ॥ और परस्पर स्पृहायुक्त हो मदमत्त हो रमण करने लगे इस प्रकार रमण करते उनको कितने एक दिन हो गये ॥ ९ ॥ उधर बृहस्पतिजीने चिन्ता करके ताराके बुलानेको शिष्यको भेजा परन्तु वह चन्द्रमाके वशीभूत होनेसे न आई ॥ १० ॥ जब चन्द्रमाने वारंवार शिष्यको लौटाया तब क्रोध कर बृहस्पति स्वयंही गये तब बडी बुद्धिवाले बृहस्पति चन्द्रमाके घर जाय मदसे हंसते हुए चन्द्रमासे क्रोधकर बोले ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥

गतैकदा विधोर्धाम यजमानस्य भामिनी ॥ दृष्टा च शशिनाऽत्यर्थं रूपयौवनशालिनी ॥ ६ ॥ कामातुरस्तदा जातः शशी शशिमुखीं प्रति ॥ साऽपि वीक्ष्य विधुं कामं जाता मदनपीडिता ॥ ७ ॥ तावन्योन्यं प्रेमयुक्तौ स्मरार्तौ च बभूवतुः ॥ तारा शशी मदोन्मत्तौ कामबाणप्रपीडितौ ॥ ८ ॥ रेमाते मदमत्तौ तौ परस्परस्पृहान्वितौ ॥ दिनानि कति चित्तत्र जातानि रममाणयोः ॥ ९ ॥ बृहस्पतिस्तु दुःखार्तस्तारामानयितुं गृहम् ॥ प्रेषयामास शिष्यं तु नायाता सा वशीकृता ॥ १० ॥ पुनःपुनर्यदा शिष्यं परावतत चंद्रमाः ॥ बृहस्पतिस्तदा क्रुद्धो जगाम स्वयमेव हि ॥ ११ ॥ गत्वा सोमगृहं तत्र वाचस्पतिरुदारधीः ॥ उवाच शशिनं क्रुद्धः स्मयमानं मदान्वितम् ॥ १२ ॥ किं कृतं किल शीतांशो कर्म धर्मविगर्हितम् ॥ रक्षिता मम भार्येयं सुन्दरी केनहेतुना ॥ १३ ॥ तव देवगुरुश्चाहं यजमानोऽसि सर्वथा ॥ गुरुभार्या कथं मूढ भुक्ता किं रक्षिताऽथवा ॥ १४ ॥ ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ॥ महापातकिनि ह्येते तत्संसर्गी च पंचमः ॥१५॥ महापातकयुक्तस्त्वं दुरचारोऽतिगर्हितः ॥ न देवसदनार्होऽसि यदि भुक्तेयमंगना ॥ १६ ॥ मुंचेमामसितापांगीं नयामि सदनं मम॥नोचेद्ब क्ष्यामि दुष्टात्मन्गुरुदारापहारिणम् ॥ १७ ॥

हे चन्द्र ! यह कर्म धर्मसे गर्हितकर्म तुमने क्या किया मेरी यह सुन्दरी भार्या तुमने क्यो रोक रक्खी है ॥ १३ ॥ मैं तुम्हारा देवगुरु हूं और तुम सर्वथा मेरे यजमानहो हे मूढ ! तुमने गुरुभार्याको क्यों भोगा अथवा रखछोड़ा है ॥ १४ ॥ ब्रह्महत्यारा सुवर्ण चुरानेवाला सुरापाई गुरुभार्यामें गमन करनेवाला और इनका संसर्गी यह पांचो महापातकी हैं ॥ १५ ॥ तू महापातकसे युक्त दुराचारी बड़ा गर्वित है तुमने यह अंगना भोगी हो तो देवताओंके सहन योग्य नहीं है ॥ १६ ॥ इस सर्वाङ्गसुंदरीको छोड़ मैं अपने घर लेजाऊंगा नहीं तो हे दुष्टात्मन ! मैं तुमको गुरुदाराका हरनेवाला कहूंगा ॥ १७ ॥

ऐसा कहते हुए बृहस्पतिजीसे चंद्रमा बोले जो बृहस्पतिजी क्रोधसे युक्त और ताराके विरहसे दुःखी हो रहे थे ॥ १८ ॥ चंद्र बोले ब्राह्मण क्रोधसेही अपूज्य होते हैं ब्राह्मण क्रोधरहित होने चाहिये क्रोधरहित शास्त्रज्ञाताही पूजनीय हैं इसके विपरीत नहीं ॥ १९ ॥ वह वरवार्णिनी तारा अवश्य तुम्हारे घरमें आवेगी और यहां उसके स्थित रहनेसे तुम्हारी क्या हानि है ॥ २० ॥ वह सुखकी कामकी इच्छावाली अपने इच्छासेही यहां रही है कुछ दिन यहां रहकर फिर अपनी इच्छासे चली आवेगी ॥ २१ ॥ आपनेही पहले धर्मशास्त्रका मत कहा है कि पातक करनेपर भी रज संचार होने उपरांत फिर स्त्री दूषित नहीं रहती है वेद कर्मसे ब्राह्मण दूषित नहीं होता है ॥ २२ ॥ चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर गुरु बडे दुःखी हुए और कामसे व्याकुल ही चिन्ता करते शीघ्रतासे घरचले गये ॥२३॥

इत्येवं भाषमाणं तमुवाच रोहिणी पतिः ॥ गुरुं क्रोधसमायुक्तं कांताविरहदुःखितम् ॥ १८ ॥इंदुरुवाच ॥ क्रोधात्ते तु दुराराध्या ब्राह्मणाः क्रोधवर्जिताः ॥ पूजार्हा धर्मशास्त्रज्ञा वर्जनीयास्ततोऽन्यथा ॥ १९ ॥ आगमिष्यति सा कामं गृहं तेवरवर्णिनी ॥ अत्रैव संस्थिता बाला का ते हानिरिहाघन ॥ २० ॥ इच्छया संस्थिता चात्र सुखकामार्थिनी हि सा॥दिनानि कतिचित्स्थित्वा स्वेच्छया चागमिष्यति॥२१॥ त्वयैवोदाहृतं पूर्वं धर्मशास्त्रमतं तथा॥न स्त्री दुष्यति चारेण न विप्रो वेदकर्मणा ॥२२॥ इत्युक्तः शशिना तत्र गुरुरत्यतदुःखितः॥जगाम स्वगृहं तूर्णं चिंताविष्टः स्मरातुरः॥२३॥ दिनानि कति कतिचित्तत्र स्थित्वा चिंतातुरो गुरुः ॥ ययावथ गृहं तस्य त्वरितश्चौषधीपतेः ॥२४॥ स्थितः क्षत्रा निषिद्धोऽसौ द्वारदेशे रुषाऽन्वितः ॥ नाजगाम शशी तत्र चुकोपाति बृहस्पतिः ॥ २५ ॥ अयं मे शिष्यतां यातो गुरुपत्नी तु मातरम् ॥ जग्राह बलतोऽधर्मी शिक्षणीयो मयाऽधुना ॥ २६ ॥ उवाच वाचं कोपात्तु द्वारदेशे स्थितो बहिः ॥ किं शेषे भवने मंद पापाचार सुराधम ॥ २७ ॥ देहि मे कामिनीं शीघ्रं नोचेच्छापं ददाम्यहम् ॥ करोमि भस्मसान्नूनं न ददासि प्रियां मम ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ क्रूराणि चैवमादीनि भाषणानि बृहस्पतेः ॥ श्रुत्वा द्विजपतिः शीघ्रं निर्गतः सदनाद्बहिः ॥ २९ ॥

और चिन्तासे व्याकुल हो कितने एकदिन गुरु वहां रहकर चन्द्रमाके स्थानपर गये ॥ २४ ॥ और द्वारपालके निषेध करनेपर घरके बाहरही स्थित हो रहे जब चन्द्रमा नहीं आये तब बृहस्पतिजीको बड़ा क्रोध हुआ ॥ २५ ॥ यह मेरा शिष्य है इस कारण हमारी भार्या इसकी माताके समान है इस अधर्मीने इसको बलसे ग्रहण किया है इससे मैं इसको शिक्षा दूंगा, ॥२६॥ तब द्वारेखड़े होकर ही क्रोधसे बोले हे मंद! पापाचार देवताओंमें नीच क्या अपने घरमें सोता है ॥२७॥ मुझे बहुत शीघ्र मेरी भार्या दे नहीं तो मैं शाप दूंगा, जो मेरी प्रिया न दोगे तो अवश्य भस्म करूंगा ॥२८॥ सूतजी बोले इसप्रकार बृह

स्पतिके क्रूरभाषणको सुनकर चन्द्रमा शीघ्रही घरसे बाहर निकले ॥२९॥ और हंसते हुए चन्द्रमाने कहा क्यों बहुत बोलतेहो वह सब लक्षणयुक्त स्त्री तुम्हारे योग्य नहीं है॥ ३० ॥ हे द्विज!अपने समान कोई और कुरूप स्त्री ग्रहण करो भिक्षुकके घर इसप्रका सर्वांगसुंदरी स्त्री रहने योग्य नहीं ॥३१॥ नारियोंकी प्रीति अपने अपने सदृश पतियोंमें ही होती है हे मंदात्मन्! आपका मशास्त्रका निर्णय नहीं जानतेहैं ॥ ३२ ॥ हे दुर्बुद्धे ! आप यथेष्ट चले जाइये मैं तुम्हारी कामिनीको नहीं दूंगा, जो तुमसे होसके सोकरो भार्या न मिलेगी ॥ ३३ ॥ और कामार्त्त हुए तुम्हारा शाप मुझे बाधा नहीं दे सकता है हे गुरो ! आपकी कान्ता मैं न दूंगा, जो इच्छा हो सो करो ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले चंद्रके ऐसा कहनेपर क्रुद्ध होकर गुरुने विचार किया, और शीघ्रही क्रोधकर इन्द्रके भवनमें गये ॥ ३५ ॥ इन्द्रने

तमुवाच हसन्सोमः किमिदं बहु भाषसे ॥ न ते योग्याऽसितापांगीं सर्व लक्षणसंयुता ॥ ३० ॥ कुरूपां च स्वसदृशीं गृहाणान्यां स्त्रियं द्विज ॥ भिक्षुकस्य गृहे योग्या नेदृशी वरवर्णिनी ॥ ३१ ॥ रतिः स्वदृशे कांते नार्याःकिल निगद्यते ॥ त्वं न जानासि मंदात्मन्कामशास्त्रविनिर्णयम् ॥ ३२ ॥ यथेष्टं गच्छ दुर्बुद्धे नाहं दास्यामि कामनीम् ॥ यच्छक्यं कुरु तत्कामं न देया वरवर्णिनी ॥ ३३ ॥ कामार्तस्य च ते शापो न मां बाधितुमर्हति ॥ नाहं ददे गुरो कांतां यथेच्छसि तथां कुरु ॥ ३४ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तः शशिना चेज्यश्चिंतामाप रुषाऽन्वितः ॥ जगाम तरसा सद्म क्रोधयुक्तः शचीपतेः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा शतक्रतुस्तत्र गुरुं दुःखातुरं स्थितम् ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः पूजयित्वा सुसंस्थितः ॥ ३६ ॥ प्रपच्छ परमोदारस्तं तथाऽवस्थितं गुरुम् ॥ का चिंता ते महाभाग शोकार्तोऽसि महामुने ॥ ३७ ॥ केनापमानितोऽसि त्वं मम राज्ये गुरुश्च ये ॥ त्वदधीनमिदं सर्वं सैन्यं लोकाधिपैः सह ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा शंभुर्ये चान्ये देवसत्तमाः ॥ करिष्यंति च साहाय्यं का चिंता वद सांप्रतम् ॥३९॥ गुरुरुवाच ॥ शशिनाऽपहृता भार्या तारा मम सुलोचना ॥ न ददाति स दुष्टात्मा प्रार्थितोऽपि पुनः पुनः ॥ ४० ॥ किं करोमि सुरेशान त्वमेव शरणं मम ॥ साहाय्यं कुरु देवेश दुःखितोऽस्मि शतक्रतो ॥ ४१ ॥

गुरुको दुःखसे कातर अवलोकन कर पाद्य अर्घ्य आचमनीयादिसे भली प्रकार पूजाकी ॥ ३६ ॥ और परमोदार इन्द्र गुरुकी इस दशाका कारण पूछने लगे हे महाभाग ! आपको क्या चिन्ता है जो आप शोकसे व्याकुल हो रहे हो ॥ ३७ ॥ हे गुरुदेव ! मेरे राज्यमें किसने तुम्हारा तिरस्कार किया है, यह लोकाधिपोंके सहित सब सेना तुम्हारे अधीन है॥ ३८ ॥ ब्रह्मा विष्णु शिव औरभी सब देवता तुम्हारी सहाय करेंगे कहो तो तुमको क्या चिंता है शीघ्र कहो ॥ ३९ ॥ गुरु बोले मेरी सुलोचनाभार्या चन्द्रमाने हरणकी है, बारबार मांगने परभी वह दुष्टात्मा नहीं देता है ॥ ४० ॥ हे इन्द्र!मैं क्या करूं अब तुमही हमारी शरण हो

हे देवेश इन्द्र ! मेरी सहायता करो मैं बडा दुःखी हूं ॥ ४१ ॥ इन्द्र बोले हे धर्मज्ञ! किसी प्रकारका शोच मतकरो मैं तुम्हारा दास हूं हे महामते ! अवश्य मैं तुम्हारी भार्याको लाऊंगा॥४२॥मेरे दूत भेजनेपर वह मदाकुल यदि तुम्हारी भार्याको न देगा तो मैं देवताकी सेनालेकरयुद्ध करूंगा ॥ ४३ ॥ ऐसा कहकर इंद्रने एक विचक्षण दूतको सब ऊंच नीच समझाकर चन्द्रमाके पास भेजा ॥ ४४ ॥ वह विचक्षण शीघ्रही चन्द्रलोकमें जाकर इस प्रकारके वचनसे रोहिणी पतिसे कहने लगा ॥ ४५ ॥ हे महाभाग ! इंद्रने मुझे आपके पास कुछ कहनेको भेजा है हे महामते ! प्रभुके कहे वचन मैं कहताहूं ॥४६॥ हे सुव्रत महाभाग! तुम धर्मज्ञ और नीतिके जाननेवालेहो तुम्हारे पिता अत्री धर्मा मा हैं तुम निंद्यकाम करनेके योग्य नहीं हो ॥ ४७ ॥ यथाशक्ति सबहीको अपनी भार्याकी रक्षा करनी

इंद्र उवाच ॥ मा शोकं कुरु धर्मज्ञ दासोऽस्मि तव सुव्रत ॥ आनयिष्याम्यहं नूनं भार्यां तव महामते ॥ ४२ ॥ प्रेषिते चेन्मया दूते न दास्यति मदाकुलः ॥ ततो युद्धं करिष्यामि देवसैन्यैः समावृतः ॥ ४३ ॥ इत्याश्वास्य गुरुं शक्रो दूतं वक्तु विचक्षणम् ॥ प्रेषयामास सोमाय वार्ताशंसिनमद्भुतम् ॥ ४४ ॥ स गत्वा शशिलोकं तु त्वरितः सुविचक्षणः ॥ उवाच वचनेनैव वचनं रोहिणीपतिम् ॥ ४५ ॥ प्रेषितोऽहं महाभाग शक्रेण त्वां विवक्षया ॥ कथितं प्रभुणा यच्च तद्ब्रवीमि महामते ॥४६॥ धर्मज्ञोऽसि महाभाग नीतिं जानासि सुव्रत ॥ अत्रिः पिता ते धर्मात्मा न निंद्यं कर्तुमर्हसि ॥ ४७ ॥ भार्या रक्ष्या सर्वभूतैर्यथाशक्ति ह्यतंद्रितैः ॥ तदर्थे कलहः कामं भविता नात्र संशयः ॥ ४८ ॥ यथा तव तथा तस्य यत्नः स्याद्दाररक्षणे ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि चिंतय त्वं सुधानिधे ॥ ४९ ॥ अष्टाविंशतिसंख्यास्ते कामिन्यो दक्षजाः शुभाः ॥ गुरुपत्नीं कथं भोक्तुं त्वमिच्छसि सुधानिधे ॥ ५० ॥ स्वर्गे सदा वसंत्येता मेनकाद्या मनोरमाः ॥ भुंक्ष्व ताः स्वेच्छया कामं मुंच पत्नीं गुरोरपि ॥ ५१ ॥ ईश्वरा यदि कुर्वंति जुगुप्सितमहंतया ॥ अज्ञास्तदनुवर्तंते तदा धर्मक्षयो भवेत् ॥५२॥ तस्मान्मुंच महाभाग गुरोः पत्नीं मनोरमाम् ॥ कलहस्त्वन्निमित्तोऽद्य सुराणां न भवेद्यथा ॥ ५३ ॥

चाहिये उसके निमित्त क्लेश करना नहीं चाहिये ॥४८॥ जैसे तुमको वैसेही उनको दारा रक्षणमें यत्न करना चाहिये हे सुधानिधे!आपको आत्मवत् सब प्राणियोंकी रक्षाकरनी चाहिये ॥ ४९ ॥ तुम्हारी तो अट्ठाईस स्त्री दक्षकी कन्या सुलोचना हैं, हे चन्द्र ! तुम गुरु पत्नीको कैसे भोगनेकी इच्छा करते हो ॥ ५० ॥ और स्वर्गमें तो मेनकादि अप्सरा बड़ी मनोरम हैं उनको यथेच्छ भोगकरो परंतु गुरुकी भार्याको त्याग करो॥ ५१ ॥ जो बड़े पुरुषभी निंदित कर्म करने लगें तो अज्ञभी उसीके अनुसार वर्तें फिर धर्मक्षय होजाय ॥ ५२ ॥ हे महाभाग ! इस कारण मनोरम गुरुपत्नीको त्याग करो तुम्हारे निमित्त देवताओंको

क्लेश न हो ॥ ५३ ॥ सूतजी बोले चंद्रमा इंद्रके वचन सुनकर कुछ क्रोधित हुए और निन्दित फलकाधिकार्य वादरूप वचन दूतसे कहने लगे ॥ ५४ ॥ चन्द्र बोले हे महावाहो ! तुम धर्मज्ञ और देवताके अधिपति स्वयं हो और वैसे हो तुम्हारे पुरोहित हैं तुम दोनोंकी मति समान है ॥ ५५ ॥ परोपदेशमें तो अनेक जन कुशल होते हैं और जब वह कर्म स्वयं प्राप्त हो तो उसमें स्वयं समझना दुर्लभ है ॥ ५६ ॥ बार्हस्पत्य प्रणीत शास्त्रको सब प्राणी ग्रहण करते हैं हे देवेश इसमें क्या विरोध है उसमें कामना करती हुई स्त्रीको भजता हुआ दूषित नहीं होता ॥५७॥ बलियोंको सब ही अपना है निर्बलीको नहीं, स्वकीया और परकीया मन्द चित्तवालोंका भ्रम है ॥५८॥ तारा जैसी मुझमें अनुरक्त है वैसी गुरुमें नहीं, अनुरक्त स्त्रीको धर्म और न्याय से कैसे त्याग सकता हूं ॥५९॥ गृहारम्भ रक्तामें होता

सूतउवाच ॥ सोमः शक्रवचः श्रुत्वा किंचित्क्रोधसमाकुलः ॥ भंग्या प्रतिवचः प्राह शक्रदूतं तदा शशी ॥५४ ॥ इंदुरुवाच ॥ धर्मज्ञोऽसि महाबाहो देवानामधिपः स्वयम् ॥ पुरोधाऽपि च ते तादृग्युवयोः सदृशी मतिः ॥ ५५ ॥ परोपदेशे कुशला भवंति बहवो जनाः ॥ दुर्लभस्तु स्वयं कर्ता प्राप्ते कर्मणि सर्वदा ॥५६॥ बार्हस्पत्यप्रणीतं च शास्त्रं गृह्णन्ति मानवाः ॥ को विरोधोऽत्र देवेश कामयानां भजन्स्त्रियम् ॥ ५७ ॥ स्वकीयं बलिनां सर्वं दुर्बलानां न किंचन ॥ स्वीया च परकीया च भ्रमोऽयं मंदचेतसाम् ॥ ५८ ॥ तारा मय्यनुरक्ता च यथा न तु तथा गुरौ ॥ अनुरक्ता कथं त्याज्या धर्मतो न्यायतस्तथा ॥ ५९ ॥ गृहारंभस्तु रक्तायां विरक्तायां कथं भवेत् ॥ विरक्तेयं तदा जाता चकमेऽनुजकामिनीम् ॥ ६० ॥ न दास्येऽहं वरारोहां गच्छ दूत वद स्वयम् ॥ ईश्वरोऽसि सहस्राक्ष यदिच्छसि कुरुष्व तत् ॥ ६१ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तः शशिना दूतः प्रययौ शक्रसन्निधिम् ॥ इंद्रायाऽऽचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं शीतरश्मिना ॥ ६२ ॥ तुराषाडपि तच्छ्रुत्वा क्रोधयुक्तो बभूव ह ॥ सेनोद्योगं तथा चक्रे साहाय्यार्थं गुरोर्विभुः ॥६३॥ शुक्रस्तु विग्रहं श्रुत्वा गुरुद्वेषात्ततो ययो ॥ मा ददस्वेति तं वाक्यमुवाच शशिनं प्रति ॥६४॥ साहाय्यं ते करिष्यामि मंत्रशक्त्या महामते ॥ भविता यदि संग्रामस्तव चेंद्रेण मारिष ॥६५॥

है विरक्तामें कैसे हो सकता है जबसे गुरुने संवर्त भार्याकी इच्छाकी तबसे यह विरक्त रहती है ॥६०॥ मैं इस वरारोहाको न दूंगा जाकर तुम यह वार्ता स्वयं कह दो हे सहस्राक्ष ! तुम ईश्वर हो जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥६१॥ सूतजी बोले चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर दूत इन्द्रके समीप गया और चन्द्रमाकी कही सब बात इन्द्रसे कही ॥६२॥ यह सुनकर इन्द्र बड़ा क्रोधित हुआ और गुरुकी सहायताके निमित्त सेनाका उद्योग किया ॥ ६३ ॥ शुक्राचार्य यह विग्रह सुनकर गुरुके द्वेषके कारण चंद्रमाके पास गये और चन्द्रमासे कहा भार्या मत देना ॥ ६४ ॥ हे महामते ! मंत्रकी शक्तिसे मैं तेरी सहाय करूँगा हे मारिष !

यदि इन्द्रके साथ तुम्हारा संग्राम होगा तो सहायक हूं ॥ ६५ ॥ इधर शिव भी चंद्रमाको गुरु दाराभिमर्षी सुनकर गुरुका शत्रु भृगुको मानकर सहाय करते हुये ॥ ६६ ॥ उस समय देवता और दानवोंका बड़ा संग्राम हुआ और तारकासुरके संग्रामके समान बहुत दिन बीत गये ॥ ६७ ॥ तब ब्रह्माजी उस देवासुर युद्धको देखकर क्लेश शान्त करनेको हंसपर चढ़कर आये ॥ ६८ ॥ और चंद्रमासे कहा गुरुकी भार्याको मुक्तकरो नहीं तो विष्णुको बुलाकर तुम्हारा नाश किया जायगा ॥ ६९ ॥ यह कह लोकपितामह ब्रह्माने भृगुको निवारण किया, हे महामते ! क्या दैत्योंके संग दोषसे तुम्हारी अन्यायमें मति हो गई है ॥७०॥ तब भृगुने ओषधीपतिको निषेध किया, कि गुरुकी भार्याको छोडो मुझे तुम्हारे पिताने प्रेषण किया है ॥ ७१ ॥ सूतजी बोले यह भृगुके वचन सुनकर चन्द्र

शंकरस्तु तदाकर्ण्य गुरुदाराभिमर्शनम् ॥ गुरुशत्रुं भृगुं मत्वा साहाय्यमकरोत्तदा ॥६६॥ संग्रामस्तु तदा वृत्तो देवदानवयोर्द्भुतम् ॥ बहूनि तत्र वर्षाणि तारकासुरवत्किल ॥६७॥ देवासुरकृतं युद्धं दृष्ट्वा तत्र पितामहः ॥ हंसा रूढो जगामाशु तं देशं क्लेशशान्तये ॥६८॥ राकापतिं तदा प्राह मुंच भार्यां गुरोरिति ।। नोचेद्विष्णुं समाहूय करिष्यामि तु संक्षयम् ॥६९॥ भृगुं निवारयामास ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ किमन्यायमतिर्जाता संगदोषान्महामते ॥७०॥ निषेधयामास ततो भृगुस्तं चौषधीपतिम् ॥ मुंच भार्यां गुरोरद्य पित्राऽहं प्रेषितस्तव॥ ७१ ॥ सूत उवाच ॥ द्विजराजस्तु तच्छ्रुत्वा भृगोर्वचनमद्भुतम् ॥ ददौ च तत्प्रियां भार्यां गुरोर्गर्भवतीं शुभाम् ॥ ७२ ॥ प्राप्य कांतां गुरुर्हृष्टः स्वगृहं मुदितो ययौ ॥ ततो देवास्ततो दैत्या ययुः स्वान्स्वान्गृहान्प्रति ॥७३॥ ब्रह्मा स्वसदनं प्राप्तः कैलासं चापि शंकरः ॥ बृहस्पतिस्तु संतुष्टः प्राप्य भार्यां मनोरमाम् ॥ ७४ ॥ ततः कालेन कियता ताराऽसूत सुतं शुभम् ॥ सुदिने शुभनक्षत्रे तारापतिसमं गुणैः ॥ ७५ ॥ दृष्ट्वा पुत्रं गुरुर्जातं चकार विधिपूर्वकम् ॥ जातकर्मादिकं सर्वं प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ ७६ ॥ श्रुतं चंद्रमसा जन्म पुत्रस्य मुनिसत्तमाः ॥ दूतं च प्रेक्षयामास गुरुं प्रति महामतिः ॥ ७७ ॥ न चायं तव पुत्रोऽस्ति मम वीर्यसमुद्भवः ॥ कथं त्वं कृतवान्कामं जातकर्मादिकं विधिम् ॥ ७८ ॥

माने गुरुकी प्रिय भार्याको प्रदान किया ॥७२॥ भार्याको प्राप्त हो प्रसन्न हो गुरु अपने स्थानको गये और देवता दैत्य भी अपने २ स्थानको गये ॥७३॥ ब्रह्माजी अपने घर और शिवजी कैलासमें गये और मनोहर भार्याको प्राप्त हो बृहस्पति प्रसन्न हुए ॥७४॥ फिर कुछ समयके उपरांत ताराके एक सुन्दर पुत्र शुभदिन शुभ नक्षत्रमें हुआ जो गुणोंमें चन्द्रमाके समान था ॥ ७५ ॥ पुत्र देकर गुरुने विधिपूर्वक जातकर्म किया और मनमें बड़े प्रसन्न हुए ॥ ७६ ॥ हे मुनियो ! चन्द्रमा पुत्रका जन्म सुनकर गुरुके पास दूत भेजते हुए ॥ ७७ ॥ कि यह तुम्हारा पुत्र नहीं मेरा पुत्र है तुमने इसकी जातकर्मादिक विधि क्यों की ॥ ७८ ॥

बृहस्पति यह दूतके वचन सुनकर बोले यह मेरे सदृश होनेसे मेरा पुत्र है इसमें संदेह नहीं ॥ ७९ ॥ फिर देव दानव मिलकर विवाद करने लगे और फिर युद्ध करनेवालोंका समाज एकत्र हुआ ॥ ८० ॥ फिर शांतिकी इच्छासे प्रजापति ब्रह्माजी आये और युद्धके निमित्त स्थित हुओंका निवारण करते हुए ॥ ८१ ॥ और वह धर्मात्मा तारासे पूछने लगे हे शुभे ! यह किसका पुत्र है हे वरारोहे ! सत्य २ कह जिससे यह क्लेश शान्त हो जाय ॥ ८२ ॥ तब लज्जाको प्राप्त होकर वह शुभांगी चन्द्रमाका है ऐसा शनैःशनैः कहकर मंदिरमें प्रविष्ट हुई और प्रसन्न होकर चन्द्रमाने उस पुत्रको ग्रहण किया और बुध नाम करण करके अपने स्थानको गये ॥८३॥ ॥८४॥ ब्रह्मा और इन्द्रसहित सब देवता अपने स्थानको गये और सब प्राणी अपने २ स्थानको चले गये ॥ ८५॥ यह मैंने

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दूतस्य च बृहस्पतिः ॥ उवाच मम पुत्रो मे सदृशो नात्र संशय ॥७९॥ पुनर्विवादः संजातो मिलिता देवदानवाः ॥ युद्धार्थमागतास्तेषां समाजः समजायत ॥८०॥ तत्राऽऽगतः स्वयं ब्रह्मा शांतिकामः प्रजापतिः ॥ निवारयामास मुखे संस्थितान्युद्धदुर्मदान् ॥ ८१ ॥ तारां पप्रच्छ धर्मात्मा कस्यायं तनयः शुभे ॥ सत्यं वद वरारोहे यथा क्लेशः प्रशाम्यति ॥ ८२ ॥ तमुवाचाऽसितापांगी लज्जमानाऽप्यधोमुखी ॥ चंद्रस्येति शनैरंतर्जगाम वरवर्णिनी ॥ ८३ ॥ जग्राह तं सुतं सोमः प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ नाम चक्रे बुध इति जगाम स्वगृहं पुनः ॥ ८४ ॥ ययौ ब्रह्मा स्वकं धाम सर्वे देवाः सवासवाः ॥ यथागतं गतं सर्वैः सर्वशः प्रेक्षकैर्जनैः ॥ ८५ ॥ कथितेयं बुधोत्पत्तिर्गुरुक्षेत्रे च सोमतः ॥ यथा श्रुता मयापूर्वं व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ ८६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे बुधोत्पत्तिनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ ततः पुरूरवाजज्ञे इलायां कथयामिवः ॥ बुधपुत्रोऽतिधर्मात्मायज्ञकृद्दानतत्परः ॥ १ ॥ सुद्युम्नो नाम भूपालः सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ सैंधवं हयमारुह्य चचार मृगयां वने ॥२॥ युतः कतिपयामात्यैर्दंशितश्चारुकुंडलः ॥ धनुराजगवं बद्ध्वा बाणसंघं तथाऽद्भुतम् ॥३॥ स भ्रमंस्तद्वनोद्देशे हन्यमानो रुरून्मृगान् ॥ शशांश्च सूकरांश्चैव खड्गांश्च गवयांस्तथा ॥४॥

गुरुके क्षेत्रमें चन्द्रमासे बुधकी उत्पति कही जैसी मैंने पहिले सत्यवती पुत्र व्यासजीसे सुनी ॥ ८६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां बुधोत्पत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ फिर इलामें जैसे पुरूरवा उत्पन्न हुआ सो मैं तुमसे कहता हूं जो धर्मात्मा बुधका पुत्र यज्ञ और दानका करनेवाला है ॥ १ ॥ सुद्युम्न नाम राजा सत्यवादी जितेन्द्रिय सैंधव अश्वपर चढकर वनमें विचरने लगा ॥ २ ॥ कितने एक अमात्योंसे युक्त सुंदर कुण्डल पहरे आजगव धनु और अद्भुत बाण धारण किये ॥ ३ ॥ रुरुमृगोंको मारता उस वनके उद्देशमें विचरण करने लगा, शश, शूकर, गवय खड्ग ॥ ४ ॥

शरभ महिष सामर वनकुक्कुट इन मेध्य वन पशुओंको वध करता कुमार वनमें प्रविष्ट हुआ ॥५॥ वह मेरुपर्वतके नीचे मंदार वृक्षोंसे शोभायमान अशोककी लताओंसे युक्त बकुलोंसे विराजित ॥ ६ ॥ साल, ताल, तमाल, चम्पक, पनस, आम, नीम, मधूक (महुआ) माधवी लताओंके मण्डलसे युक्त ॥ ७ ॥ दाडिम, नारिकेल, कदली खण्डसे मंडित, चमेली, मालती कुंद पुष्प वल्लरीसे व्याप्त ॥ ८ ॥ हंस कारण्डव पक्षियोंसे युक्त, कीचककी ध्वनिसे युक्त भ्रमर समूहोंसे शब्दायमान सब सुख दायक वनको ॥९॥ देखकर सेवकों सहित राजा सुद्युम्न प्रसन्नहो विचरनेलगा वृक्षोंको फूला हुआ देख कोकिलाके शब्दोंसे पूर्ण ॥१०॥ उस वनमें प्रवेश करतेही वह राजर्षि स्त्री होगया और घोडाभी घोडी होगई राजायह देख चिन्तित हुआ ॥ ११ ॥ यह क्या हुआ इस प्रकार वह बारबार

शरभान्महिषांश्चैव सामरान्वनकुक्कुटान् ॥ निघ्नन्मेध्यान्पशून्राजा कुमारवनमाविशत्॥ ५ ॥ मेरोरधस्तले दिव्यं मंदारद्रुमराजितम् ॥
अशोकलतिकाकीर्णं बकुलैरधिवासितम् ॥ ६ ॥सालैस्तालैस्तमालैश्च चंपकैः पनसैस्तथा ॥ आम्रैर्नीपैर्मधूकैश्च माधवीमंडपावृतम् ॥७॥
दाडिमैर्नारिकेलैश्च कदलीखंडमंडितम् ॥ यूथिकामालतीकुंदपुष्पवल्लीसमावृतम् ॥८॥ हंसकारंडवाकीर्णं कीचकध्वनिनादितम् ॥ भ्रमरालि
रुतारामं वनं सर्वसुखावहम् ॥९॥ दृष्ट्वा प्रमुदितोराजा सुद्युम्नः सेवकैर्वृतः ॥ वृक्षान्सुपुष्पितान्वीक्ष्य कोकिलारावमंडितान् ॥१०॥ प्रविष्टस्तत्र
राजर्षिः स्त्रीत्वमाप क्षणात्ततः ॥ अश्वोऽपि वडवा जातश्चिंताविष्टः स भूपतिः ॥ ११ ॥ किमेतदिति चिंतार्तश्चित्यमानः पुनः पुनः ॥
दुःखं बहुतरं प्राप्तः सुद्युम्नो लज्जयाऽन्वितः॥ १२॥ किं करोमि कथं यामि गृहं स्त्रीभावसंयुतः ॥ कथं राज्यं करिष्यामि केन वा वंचितो
ह्यहम् ॥ १३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूताश्चर्यमिदं प्रोक्तं त्वया यल्लोमहर्षण ॥ सुद्युम्नः स्त्रीत्वमापन्नो भूपतिर्देवसन्निभः ॥ १४ ॥ किं तत्कार
णमाचक्ष्व वने तत्र मनोहरे ॥ किं कृतं तेन राज्ञा च विस्तरं वद सुव्रत ॥१५॥ सूत उवाच ॥ एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयः सनकादयः ॥दिशो
वितिमिराभासाः कुर्वंतः समुपागमन्॥१६॥तस्मिंश्च समये तत्र शंकरः प्रमदायुतः ॥ क्रीडासक्तो महादेवो विवस्त्रा कामिनी शिवा ॥१७॥

चिंता करने लगा, और लज्जित हो सुद्युम्नको बडा दुःखहुआ॥ १२ ॥ क्या करूं स्त्रीभावसंयुक्त घरको कैसे जाऊं मैं कैसे राज्य करूंगा मुझको किसने वंचित किया ॥ १३ ॥ ऋषि बोले हे लोमहर्षणसूत यह जो आपने आश्चर्यकी बात कही कि देवरूपराजा सुद्युम्न स्त्री होगया ॥ १४ ॥ उस मनोहर वनमें फिरनेसे यह वार्त्ता हुई इसमें कारण कहो फिर उस राजाने क्या किया सो विस्तारसे कहो ॥१५॥ सूतजी बोले एक समय सनकादि ऋषि शिवजीके दर्शनको अपने प्रकाशसे दिशाओंको निर्मल करते आये ॥ १६ ॥ उस समय शिवजी पार्वतीके सहित क्रीडामें आसक्त थे कामिनी शिवा वस्त्रहीन थी ॥ १७ ॥

वह भर्त्ताकी गोदीमें स्थित हुई रमण करती थीं उन महर्षियोंको देखकर देवी बडी लज्जित हुई ॥ १८ ॥ और स्वामीकी गोदीसे उठकर वस्त्र धारण करती हुई और लज्जासे कम्पित होकर कामिनी स्थित हुई ॥ १९ ॥ और ऋषि भी उन रमण करनेवालोंका प्रसंग देखकर शीघ्रतासे नारायणाश्रमको चले गये॥ २०॥ तब पार्वतीको लज्जित देखकर शिवजी बोले तुम लज्जित क्यों हो मैं तुम्हारे निमित्त सुख करूंगा ॥२१॥ आजसे यदि कोईभी पुरुष मोहसेभी इस वनमें आवेगा वह स्त्रीरूप होजायगा ॥२२॥ इस प्रकार वनको शापदिया जो कोई इसको जानते हैं वे इस दोषसे समृद्धितवनको नहीं आते हैं ॥ २३ ॥ सुद्युम्न अज्ञानसे मंत्रियोंके

उत्संगे संस्थिता भर्तू रममाणा मनोरमा॥ तान्विलोक्यांबिका देवी विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ॥ १८ ॥ भर्तुरंकात्समुत्थाय वस्त्रमादाय पर्यधात् ॥ लज्जाविष्टा स्थिता तत्र वेपमानाऽतिमानिनी ॥ १९॥ ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयोः ॥ परिवृत्य ययुस्तूर्णं नरनारायणाश्रमम् ॥ २० ॥ ह्रीयुक्तां कामिनीं वीक्ष्य प्रोवाच भगवान्हरः ॥ कथं लज्जातुराऽसि त्वं सुखं ते प्रकरोम्यहम् ॥ २१ ॥ अद्यप्रभृति यो मोहात्पुमान्कोऽपि वरानने ॥ वनं च प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भविष्यति ॥२२॥ इति शप्तं वनं तेन ये जानंति जनाः क्वचित् ॥ वर्जयंतीह ते कामं वनं दोषसमृद्धिमत् ॥२३॥ सुद्युम्नस्तुतदज्ञानात्प्रविष्टः सचिवैः सह ॥ तथैव स्त्रीत्वमापन्नस्तैः सहेति न संशयः ॥२४॥ चिंताविष्टः स राजर्षिर्न जगाम गृहं ह्रिया ॥ विचचार बहिस्तस्माद्वनदेशादितस्ततः ॥ २५ ॥ इलेति नाम संप्राप्तं स्त्रीत्वे तेन महात्मना ॥ विचरंस्तत्र संप्राप्तो बुधः सोमसुतो युवा ॥२६॥ स्त्रीभिः परिवृतां तां तु दृष्ट्वा कांतां मनोरमाम्॥हावभावकला युक्तां चकमे भगवान्बुधः ॥२७॥ साऽपि तं चकमे कांतं बुधं सोमसुतं पतिम् ॥ संयोगस्तत्र संजातस्तयोः प्रेम्णा परस्परम् ॥२८॥ स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥२९॥ सा प्रासूत सुतं बाला चिंताविष्टा वने स्थिता ॥ सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठं मुनिसत्तमम् ॥ ३० ॥

सहित वहीं प्रविष्ट हुआ, और सब साथियोंके सहित वह स्त्रीरूप होगया ॥ २४ ॥ और चिन्तासे संयुक्त हुए राजर्षि लज्जासे घरको न गये और वनमें इधर उधर विचरण करनेलगे और स्त्रीत्वसे उस महात्माका इलानाम हुआ वहां विचरण करते हुए सोमपुत्र बुध आये ॥२५॥२६॥ स्त्रियोंसहित उस मनोहर कान्ताको देखकर उसके हावभावसे बुध उसकी इच्छा करतेहुए ॥ २७ ॥ अर उसने भी सोमसुत बुधकी इच्छा की प्रेमसे दोनोंका परस्पर संयोग हुआ ॥ २८ ॥ उसमें पुरूरवा पुत्रकी उत्पत्ति हुई ॥ २९ ॥ वह बाला वनमें पुत्रको उत्पन्न करके विचार करनेलगी और अपने कुलाचार्य वशिष्ठजीका स्मरण किया ॥ ३० ॥

वह कृपायुक्त सुद्युम्नकी दशा देखकर लोकके कर्त्ता शंकरकी प्रार्थना करनेलगे ॥ ३१ ॥ भगवान् शिवजीने प्रसन्न होकर उनको वांछित वरदिया, तब वशिष्ठ जीने राजाके पुरुष होनेकी प्रार्थना की ॥ ३२ ॥ शिवजी अपनी वाणी सत्य करनेके लिये बोले यह एक महीने स्त्री और एकमहीने पुरुष रहेगा ॥ ३३ ॥ राजा यह वरदान पाय अपने घरगये वह धर्मात्मावशिष्ठकी आज्ञासे राज्य करनेलगे ॥ ३४ ॥ स्त्री होनेपर महलोंमें रहते और पुरुष होनेपर राज्यकाज करते प्रजा इसमें उद्विग्न होकर प्रसन्न न हुई ॥ ३५ ॥ समयपर पुरूरवा पुत्र युवा हुआ और राजा उसको प्रतिष्ठानपुरका राज्य देकर वनको गया ॥ ३६ ॥

स तदाऽस्य दशां दृष्ट्वा सुद्युम्नस्य कृपान्वितः ॥ अतोषयन्महादेवं शंकर लोकशंकरम् ॥ ३१ ॥ तस्मै स भगवांस्तुष्टः प्रददौ वांछितं वरम् ॥ वसिष्ठः प्रार्थयामासपुंस्त्वं राज्ञः प्रियस्य च॥ ३२ ॥ शंकरस्तु निजां वाचमृतां कुर्वन्नुवाच ह ॥ मासं पुमांस्तु भविता मासं स्त्री भूपतिः किलः ॥ ३३ ॥ इत्थं प्राप्य वरं राजा जगाम स्वगृहं पुनः ॥ चक्रे राज्यं स धर्मात्मा वसिष्ठस्याप्यनुग्रहात् ॥ ३४ ॥ स्त्रीत्वे तिष्ठति हर्म्येषु पुंस्त्वे राज्यंप्रशास्ति च ॥प्रजास्तस्मिन्समुद्विग्ना नाभ्यनंदन्महीपतिम् ॥३५॥ काले तु यौवनं प्राप्तः पुत्रः पुरूरवास्तदा ॥ प्रतिष्ठा नृपतिस्तस्मैदत्त्वाराज्यं वनं ययौ ॥ ३६ ॥ गत्वा तस्मिन्वने रम्ये नानाद्रुमसमाकुले ॥ नारदान्मंत्रमासाद्य नवाक्षरमनुत्तमम् ॥ ३७ ॥ जजापमंत्र मत्यर्थं प्रेमपूरितमानसः ॥ परितुष्टा तदा देवी सगुणा तारिणी शिवा ॥३८॥ सिंहारूढा स्थिता चाग्रे दिव्यरूपा मनोरमा ॥ वारुणीपानसंमत्ता मदाघूर्णितलोचना ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा तां दिव्यरूपां च प्रेमाकुलितलोचनः ॥ प्रणम्य शिरसा प्रीत्या तुष्टाव जगदंबिकाम् ॥ ४०॥इलोवाच ॥ दिव्यं च ते भगवति प्रथितं स्वरूपं दृष्टं मया सकललोकहितानुरूपम् ॥ वंदे त्वदंघ्रिकमलं सुरसंघसेव्यं कामप्रदं जननि चापिविमुक्तिदं च ॥ ४१ ॥

अनेक वृक्षोंसेयुक्त उस मनोहर वनमें जाकर नारदसे देवीके नवाक्षर मंत्रको प्राप्तकर॥ ३७॥अत्यन्त प्रेमसे मंत्र जपनेलगा तब सगुणा तारणी शिवा देवी उसपर प्रसन्न हुई ॥ ३८ ॥ और दिव्यरूप धारण किये सिंहपर चढकर प्राप्त हुई रसपान किये मदसे घूर्णित नेत्र ॥ ३९ ॥ उन दिव्यरूपिणीको देखकर प्रेमसे विह्वल हो प्रीतिपूर्वक शिर नवाय अम्बिकाको प्रसन्न करनेलगे ॥४०॥ इला बोले! हे भगवती ! तुम्हारा दिव्य रूपविख्यात हैं, वह सब लोकका हितकारीरूप मैंने देखा देवसमूहसे सेवित तुम्हारे चरण कमलको मैं प्रणाम करताहूं हे जननि! तुम्हारे चरण कामना और मुक्तिदेते हैं॥ ४१ ॥

हे माता भूमिलोकमें तुम्हारे शरीर-धारणकी महिमाको कौन जानता है जिसमें मुनि और देवता मोहित हो जाते हैं यह ऐसा अखण्ड ऐश्वर्य और मुझ ब्रह्मापर दया यह सब कुछ देखकर मुझे बड़ा विस्मय होता है ॥ ४२ ॥ शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, कुबेर, अग्नि, वरुण, पवन, सोम, वसु, इनमें कोईभी तुम्हारे प्रभावको नहीं जानते फिर अगुणमनुष्य तुम्हारे गुणोंको कैसे जान सकता है ॥ ४३ ॥ हे माता! महाकान्तिमान् विष्णु तुमको सत्वगुणी सबकामनादायक सागरसम्भूत लक्ष्मीरूप जानतेहैं ब्रह्मा राजसी शक्ति और हर उमारूप तामसी शक्तिरूप तुमको जानते हैं हे अम्बिके! निर्गुणरूप तुम्हारा वे भी नहीं जानते हैं ॥ ४४ ॥ हे माता! फिर मैं मन्दमति लघु प्रभावी कहां और कहां यह तुम्हारी मुझपर अतिशयकृपा. हे भवानी! हम आपके चरित्रको करुणासहित जानते हैं जो तुममें

को वेत्ति तेंऽब भुवि मर्त्यतनुर्निकामं मुह्यंति यत्र मुनयश्च सुराश्च सर्वे॥ऐश्वर्यमेतदखिलं कृपणे दयां च दृष्ट्वैव देवि सकलं किल विस्मयो मे ॥ ४२ ॥ शंभुहरिः कमलजो मघवा रविश्च वित्तेशवह्निवरुणाः पवनश्च सोमः ॥ जानंति नैव वसवोऽपिहि ते प्रभावं बुध्येत्कथं तव गुणानगुणो मनुष्यः ॥ ४३ ॥ जानाति विष्णुरमितद्युतिरंब साक्षात्त्वां सात्त्विकीमुदधिजां सकलार्थदां च ॥ को राजसीं हर उमां किल तामसीं त्वां वेदांबिके न तु पुनः खलु निर्गुणां त्वाम् ॥ ४४ ॥ क्वाहं सुमंदमतिरप्रतिमप्रभावः क्वायं तवातिनिपुणो मयि सुप्रसादः ॥ जाने भवानि चरितं करुणासमेतं यत्सेवकांश्च दयसे वयि भावयुक्तान्॥४५॥ वृत्तस्त्वया हरिरसौ वनजेशयाऽपि नैवाचरत्यपि मुदं मधुसूदनश्च ॥ पादौ तवादिपुरुषः किल पावकेन कृत्वा करोति च करेण शुभौ पवित्रौ॥४६॥ वांछत्यहो हरिरशोक इवातिकामं पादाहतिं प्रमुदितः पुरुषः पुराणः॥तां त्वंकरोषि रुषिता प्रण तं च पादे दृष्ट्वा पतिंसकलदेवनुतं स्मरार्तम् ॥४७॥वक्षःस्थले वसासि देविसदैव तस्य पर्यंकवत्सुचरिते विपुलेऽतिशांते॥ सौदामनीव सुघने सुविभूषिते च किं ते नवाहनमसौ जगदीश्वरोऽपि ॥ ४८ ॥

प्रेम करते हैं उन सेवकोंपर दया करती हो ॥ ४५ ॥ कमलवासिनी होकर तुमने विष्णुको वरण किया है तथापि मैं इनके योग्यनहीं ऐसा विचारकर मधुसूदन प्रसन्न नहीं होते हैं और वह आदिपुरुष तुमसे चरण नहीं दबवाते किन्तु लोकोद्धारके निमित्त तुम्हारे शुद्धि करनेवाले हाथसे अपने चरण पवित्र करते हैं ॥ ४६ ॥ अहो पुराणपुरुष हरिभी कल्पवृक्षके समान अतिकामनासे तुम्हारी कृपापूर्वक चरण ताडनाकी इच्छा करते हैं और सम्पूर्ण देवताओंके अधिपति स्मरसे आर्त पतिको चरणपर प्रणत देखकर रुषित हुई तुम उस पादताडनाको करती हो ॥४७॥ हे देवि! जैसे कृष्णमेघमें बिजली शोभायमान होती है इस प्रकारसे तुम उन विष्णुके विभूषित हृदय पर्यंकके समान सदैव निवास करती हो सो क्या विष्णुभी तुम्हारे बाहनरूप हो रहे हैं अवश्य है यह तो एक देश शक्तिकी महिमा है

मूल प्रकृतिकी कौन कहे ॥ ४८ ॥ हे देवी ! यदि कोपसे तुम मधुसूदनको त्याग दो तो शक्तिहीन होनेसे पूजित होकर भी वह कुछ नहीं कर सकते कारण
कि यह प्रत्यक्ष है कि शांति श्रीगुणोंसे वियुक्त पुरुषको प्रत्यक्ष ही प्राणी छोड देते हैं ॥४९॥ ब्रह्मादिक देवता जो दिनरात तुम्हारे चरणका आश्रय करते
हैं क्या वे मणिद्वीपमें जाकर स्त्रीरूप न हुए अवश्य हो और फिर तुम्हारी कृपा दृष्टिसेही वे पुरुष हुए; हे अनन्तवीर्ये ! तुम्हारी शक्तिको मैं कहांतक वर्णन
करूं; फिर यदि मुझे पुरुष करो तो क्या मैं न हो सकूं अवश्य हो सकताहूं ॥ ५० ॥ मेरे विचारमें तुम स्त्री पुरुषादि कोई चिह्न युक्त नहीं हो हे देवि ! सगुण
वा निर्गुण जो कुछ भी तुम हो मैं तुमको भावयुक्त हो निरन्तर प्रणाम करताहू हे माता ! मेरी तुममें अचल भक्तिहो यही वांछा है ॥ ५१ ॥ सूतजी बोले जब

त्वं चेज्जहासि मधुसूदनमंब कोपान्नैवार्चितोऽपि स भवेत्किल शक्तिहीनः॥प्रत्यक्षमेव पुरुषं स्वजनास्त्यजंति शांतं श्रियोज्झितमतीव गुणैर्वि
युक्तम् ॥ ४९ ॥ ब्रह्मादयः सुरगणा न तु किं युवत्यो ये त्वत्पदांबुजमहर्निशमाश्रयंति ॥ मन्ये त्वयैव विहता खलु ते पुमांसः किं वर्णयामि
तव शक्तिमनंतवीर्ये ॥ ५० ॥ त्वं नपुमान्न चापुंमानिति मे विकल्पो या काऽसि देविसगुणा ननु निर्गुणा वा ॥ तां त्वां नमामि सततं
किल भावयुक्तो वांच्छामि भक्तिमचलां त्वयि मातरंते ॥५१॥ सूत उवाच ॥ इति स्तुत्वामहीपालो जगाम शरणं तदा ॥ परितुष्टा ददौ देवी
तत्र सायुज्य मात्मनि ॥ ५२ ॥ सुद्युम्नस्तु ततः प्राप पदं परमकंस्थिरम् ॥ तस्या देव्याप्रसादेन मुनीनामपि दुर्लभम् ॥ ५३ ॥ इतिश्री
देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंदे सुद्युम्नस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ सुद्युम्न तु दिवं याते राज्यं चक्रे पुरूरवाः ॥
सगुणश्च सुरूपश्च प्रजारंजनतत्परः ॥ १ ॥ प्रतिष्ठाने पुरे रम्ये राज्यं सर्वनमस्कृतम् ॥ चकार सर्वधर्मज्ञः प्रजारक्षणतत्परः ॥ २ ॥
मंत्रः सुगुप्तस्तस्यासीत्परत्राभिज्ञता तथा ॥ सदैवोत्साहशक्तिश्च प्रभुशक्तिस्तथोत्तमा ॥ ३ ॥

राजा इसप्रकारस्तुतिको प्राप्त हो शरणमें हुए तब देवीने प्रसन्न हो अपना सायुज्य दिया ॥५२॥ सुद्युम्नने उस समय स्थिर परमपद पाया यह मुनियोंको दुर्लभपद
देवीके प्रसादसे मिला ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषायां सुद्युम्नस्तुतिर्नाम द्वादशो ध्यायः ॥ १२ ॥ सूतजी बोले सुद्युम्नके स्वर्ग
जानेमें पुरूरवा राज्य करने लगा जो गुणी रूपवान् और प्रजा पालनमें तत्पर था ॥१॥ वह प्रतिष्ठान पुरमें सबसे पूजित हो राज्य करनेलगा वह धर्मज्ञ प्रजा
रक्षणमें तत्पर था ॥ २ ॥ दूसरा कोई न जाने इस प्रकार उसका गुप्त मंत्र था,उत्साह शक्ति और प्रभुशक्ति उत्तम थी ॥ ३ ॥

उसराजाके सामदानादि सब वशीभूत थे वर्णोंको धर्ममें स्थापित करते राज्य करता था ॥ ४ ॥ उस राजा ने बहुत दक्षिणाके अनेक यज्ञ किये और बडे २ विचित्र दान दिये ॥ ५ ॥ उसके रूप शील गुण उदारता द्रव्य विक्रमको सुनकर उर्वशी राजाकी कामना करती हुई ॥ ६ ॥ ब्रह्मशापसे अभितप्त होकर वह मनुष्य लोकमें आई और उस राजाको गुणी देखकर मानिनीने वरण किया ॥ ७ ॥ और ऐसी प्रतिज्ञा करके वह राजाके निकट बसी कि यह मैं दो मेढे तुम्हारे समीप रखती हूं की रक्षा करना और मेरा भोजन घृतही होगा और कुछ नहीं और मैथुनसे अन्यत्र मैं तुमको नग्न न देखूँ ॥८॥९॥ हे राजन् ! जब तुम इस प्रतिज्ञा को भंग करोगे तब मैं तुमको छोडकर चली जाऊंगी यह सत्यही कहती हूं ॥ १० ॥ कामिनी की यह बात राजाने स्वीकार की और उर्वशी

सामदानादयः सर्वे वशगास्तस्य भूपतेः ॥ वर्णाश्रमान्स्वधर्मस्थान्कुर्वन्राज्यं शशास ह ॥ ४ ॥ यज्ञांश्च विविधांश्चक्रे स राजा बहुदक्षिणान् ॥ दानानिच विचित्राणि ददावथ नराधिपः ॥ ५ ॥तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ श्रुत्वोर्वशी वशीभूता चकमे तं नराधिपम् ॥६॥ ब्रह्मशापाभितप्ता सा मानुषं लोकमास्थिता ॥गुणिनं तं नृपं मत्वा वरयामास मानिनी ॥७॥ समयं चेदृशं कृत्वा स्थिता तत्र वरांगना ॥ एतावुरणकौ राजन्न्यस्तौ रक्षस्व मानद ॥८॥घृतं मे भक्षणं नित्यं नान्यत्किंचिन्नृपाशनम् ॥ नेक्षे त्वां च महाराज नग्नमन्यत्र मैथुनात् ॥९॥ भाषाबंधस्त्वयं राजन्यदि भग्नो भविष्यति ॥ तदा त्यक्त्वा गमिष्यामिसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥१०॥ अंगीकृतंच तद्राज्ञा कामिन्या भाषितं तु यत् ॥ स्थिता भाषेण बंधेन शापानुग्रहकाम्यया ॥११॥ रेमे तदा स भूपालो लीनो वर्षगणान्बहून् ॥ धर्मकर्मादिकं त्यक्त्वा चोर्वश्या मदमोहितः ॥१२॥ एकचित्तस्तुसंजातस्तन्मनस्को महीपतिः॥ न शशाक तया हीनः क्षणमप्यतिमोहितः ॥१३॥ एवं वर्षगणांते तु स्वर्गस्थः पाकशासनः ॥ उर्वशीं नागतां दृष्ट्वा गंधर्वानाह देवराट् ॥१४॥ उर्वशी मानयध्वं भो गंधर्वाः सर्व एव हि ॥हृत्वोरणौ गृहात्तस्य भूपतेः समये किल ॥१५॥ उर्वशीरहितंस्थानं मदीयं नातिशोभते ॥ येनकेनाप्युपायेन तामानयत कामिनीम् ॥ १६ ॥

शापानुग्रह पर्यंत वहां स्थित रही ॥ ११ ॥ राजा उसमे लीन होकर घरके भीतर बहुत वर्षोंतक रमण करता रहा और धर्म कर्मको छोडकर मदसे मोहित हो उर्वशीके साथ रमण करने लगा ॥१२॥ राजा एकचित्त होकर उसमें लवलीन रहा उसके विना क्षणमात्रको भी न रह सकता था ॥१३॥ इस प्रकार बहुत वर्ष बीतनेपर इन्द्र उर्वशीको न आया देखकर गंधर्वोंसे बोले ॥१४॥ हे गन्धर्वो ! अब तुम उर्वशीको लाओ उसके दोनों मेढे जो राजाके यहां हैं हरण करो ॥१५॥ उर्वशीके विना यह हमारा स्थान शोभित नहीं होता है जिस प्रकार हो सके उस कामिनीको यहां लाओ ॥ १६ ॥

यह कहनेपर वे विश्वावसु आदि गन्धर्व महा अंधकार उपस्थित होने पर वहां गये ॥१७॥ और उन दोनोंको रमण करता देखकर उन मेढोंको हरण करते हुए तब वे आकाशमें हरण होते चिल्लाने लगे ॥१८॥ उर्वशी पुत्रोंके समान उनका रोना सुनकर क्रोधकर राजासे बोली जो मैंने तुमसे प्रतिज्ञा की थी ॥१९॥ सो मैं तुम्हारे विश्वाससे नष्ट हुई देखो यह मेरे दोनों मेढे चोर हरण करते हैं हे राजन्! यह मेरे पुत्रोंके समान हैं तुम स्त्रियोंके समान सोते हो ॥ २० ॥ वीरमानी पुरुष कुनाथके कारण मैं हत हुई यह मेरे सदा प्राणोंके समान प्यारे मेढे गये ॥२१॥ इस प्रकार उसे विलाप करता देख मोहित हुआ राजा उनके पीछे नंगाही उठ गया ॥ २२ ॥ तब गन्धर्वोंने राजाके मंदिरमें बिजलीका प्रकाश किया तब उर्वशीने राजाको नंगा जाता देखा ॥ २३ ॥ तब गंधर्व मेढोंको छोडकर मार्गमें

इत्युक्तास्तेऽथ गंधर्वा विश्वावसुपुरोगमाः ॥ततो गत्वा महागाढतमसि प्रत्युपस्थिते ॥१७॥ जह्रुस्तावुरणौ देवा रममाणं विलोक्य तम् ॥ चक्रंदतुस्तदा तौ तु ह्रियमाणौ विहायसा ॥ १८ ॥ उर्वशी तदुपाकर्ण्य क्रंदितं सुतयोरिव ॥ कुपितोवाच राजानं समयोऽयं कृतो मया ॥१९॥ नष्टाऽहं तव विश्वासाद्धृतौ चोरैर्ममोरणौ ॥ राजन्पुत्रसमावेतो त्वं किं शेषे स्त्रियाः समः ॥ २० ॥ हताऽस्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥ उरणौ मे गतो चाद्य सदा प्राणप्रियौ मम ॥२१॥ एवं विलप्यमानां तां दृष्ट्वा राजा विमोहितः ॥ नग्न एव ययौ तूर्णं पृष्ठतः पृथिवीपतिः ॥ २२ ॥ विद्युत्प्रकाशिता तत्र गंधर्वैर्नृपवेश्मनि ॥ नग्नभूतस्तया दृष्टो भूपतिर्गंतुकामया ॥ २३ ॥ त्यक्त्वोरणौ गताः सर्वे गंधर्वाः पथि पार्थिवः ॥ नग्नो जग्राह तौ श्रांतो जगाम स्वगृहं प्रति ॥२४॥ तदोर्वशीं गतां दृष्ट्वा विललापातिदुःखितः ॥ नग्नं वीक्ष्य पतिं नारी गता सा वरवर्णिनी ॥२५॥ क्रंदन्स देशदेशेषु बभ्राम नृपतिः स्वयम् ॥ तच्चितो विह्वलः शोचन्विवशः काममोहितः ॥२६॥ भ्रमन्वै सकलां पृथ्वीं कुरुक्षेत्रे ददर्श ताम् ॥ दृष्ट्वा संहृष्टवदनः प्राह सूक्तं नृपोत्तमः ॥२७॥ अये जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ॥ मां त्वं त्वन्मनसं कांतं वशगं चाप्यनागसम् ॥२८॥ स देहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ॥ खादंत्येनं वृकाः काकास्त्वया त्यक्तं वरोरु यत्॥२९॥

चलेगये और नग्न राजा मेढोंको लेकर आया ॥ २४ ॥ वहां उर्वशीको गया देखकर दुःखसे विलाप करने लगा, पतिको नग्न देखकर वह नारी चली गई ॥२५॥ देश देशांतरमें क्रंदन करता हुआ राजा भ्रमण करने लगा और उसीमें मन लगाये विह्वल हो सोच करने लगा ॥ २६ ॥ सब पृथ्वी पर भ्रमण करते कुरुक्षेत्रमें उर्वशीको देखा उसे देख प्रसन्नहो राजाने सूक्त उच्चारण किया ॥२७॥ हे घोरेजाये स्थित हो क्यों जातीहो मुझे मत छोड़ो तुममें मनमें लगाये वशवर्ती पापरहित मुझे छोडकर मत जाओ ॥ २८ ॥ हे देवि ! यह तुम्हारा त्यागा हुआ देह यहीं पतित होगा और 'इसको वृक कौए खाजायँगे कारण कि तुम्हारा

त्याग हुआ है ॥ २९ ॥ राजाको ऐसा विलाप करता देख उर्वशी बोली दुःखी कृपण श्रांत और कामार्त होनेसे राजा विवश था ॥ ३० ॥ उर्वशी बोली हे राजसिंह! तुम मूर्ख हो गये तुम्हारा ज्ञान कहां गया वृकोंके समान स्त्रियोंकी किसीसे मित्रता नहीं है ॥ ३१ ॥राजोंको स्त्रियों और चोरोंका कभी विश्वास न करनी चाहिये घर जाओ सुख भोगो मनमें विषाद मत करो ॥ ३२ ॥ इस प्रकार समझानेसे मोहित हुए राजाने कुछ न समझा और उस स्वच्छन्द चारिणीके स्नेहसे यंत्रित होनेके कारण परमदुःखको प्राप्त हुआ ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार तुमसे सब उर्वशीका चरित्र कीर्तन किया बह्वृच 'ऋक्' में यह विस्तारसे लिखा है मैंने संक्षेप से वर्णन किया है ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥सूतजी बोले इस प्रकार उस

एवं विलपमानं तं राजानं प्राह चोर्वशी ॥ दुःखितं कृपणं श्रांतं कामार्तं विवशं भृशम् ॥ ३० ॥ उर्वश्युवाच ॥ मूर्खोऽसि नृपशार्दूल ज्ञानं कुत्र गतं तव ॥ क्वापि सख्यं न च स्त्रीणां वृकाणामिव पार्थिव ॥ ३१ ॥ न विश्वासो हि कर्तव्यः स्त्रीषु चौरेषु पार्थिवैः ॥ गृहं गच्छ सुखं भुंक्ष्व माविषादे मनः कृथाः ॥ ३२ ॥ इत्येवं बोधितो राजा न विवेदातिमोहितः ॥ दुखं च परमं प्राप्तः स्वैरिणी स्नेह यंत्रितः ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ इति सर्वं समाख्यातमुर्वशीचरितंमहत् ॥ वेदे विस्तरितं चैतत्संक्षेपात्कथितं मया ॥ ३४ ॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ दृष्ट्वा तामसितापांगी व्यासश्चिंतापरोऽभवत् ॥ किं करोमि न मे योग्या देवकन्येयमप्सराः ॥ १ ॥ एवं चिंतयमानं तु दृष्ट्वा व्यासं तदाऽप्सराः ॥ भयभीता हि संजाता शापं मां विसृजेदयम् ॥२॥ सा कृत्वाऽथ शुकीरूपं निर्गता भयविह्वला ॥ कृष्णस्तुविस्मयं प्राप्तो विहंगीं ता विलोकयन् ॥ ३ ॥ कामस्तु देहे व्यासस्य दर्शनादेव संगतः ॥ मनोऽतिविस्मितं जातं सर्वगात्रेषु विस्मितः ॥ ४ ॥ स तु धैर्येण महता निगृह्णन्मानसं मुनिः ॥ न शशाक नियंतुं च स व्यासः प्रसृतं मनः ॥ ५ ॥

अप्सराको देखकर व्यासजी चिन्ता करनें लगे क्या करूं यह देवकन्या अप्सरा मेरे योग्य नहीं है ॥ १ ॥ इस प्रकार अप्सरा व्यासजीको चिन्ताकुलित देखकर भयभीत हुई कि यह मुझको शाप न देदे ॥२॥ तब वह शुकी का रूप धारणकर भयसे व्याकुल हो वहां से चली, और व्यासजी उसको विहंगी देख बड़े विस्मित हुए ॥ ३ ॥ उसके दर्शनसे ही व्यासजीके देहमें काम जागरूक हुआ था, मन बडा विस्मित था सब शरीर शिथिल था ॥ ४ ॥ फिर बडे धैर्यसे मुनि मनको ग्रहण करके भी मन ग्रहण न कर सके ॥ ५ ॥

बहुत ग्रहण करनेपर भी घृताचीमें मन मोहित हो गया और होनहारके वश महातेजस्वी वेग धारण न कर सके, उस समय अग्निके निमित्त अरणीमथन करते हुए सहसा मुनिका वीर्य अरणीमें पतित हुआ ॥ ६ ॥ ७ ॥ वह उस वीर्यपात को न जानकर अरणीको मथन करते ही रहे उससे व्यासजी की आकृतिके समान अति मनोहर शुक प्रकट हुआ ॥ ८ ॥ वह बालक विस्मय उत्पन्न करता अरणी से प्रकट हुआ जैसे यज्ञ हविसे प्रदीप होती है ॥ ९ ॥ व्यास इस प्रकार पुत्रको देखकर बडे विस्मित हुए यह क्या है ऐसा विचार कर फिर शिवजीका बरदान मानते हुए ॥१०॥ यह अरणी गर्भसे तेजोरूप शुक प्रकट हुए हैं जो अपने तेजसे दूसरी अग्निके समान दीप्तिमान हैं ॥ ११ ॥ तब व्यासजी अपने पुत्रकोप्रसन्न देखकर जो दिव्य तेजसे युक्त दूसरी गार्हपत्य अग्निके समान प्रकाशित है

बहुशो गृह्यमाणं च घृताच्या मोहितं मनः ॥ भावित्वान्नैव विधृतं व्यासस्यामिततेजसः ॥ ६ ॥ मंथनं कुर्वतस्तस्यमुनेरग्निचिकीर्षया ॥ अरण्यामेव सहसा तस्य शुक्रमथापतत् ॥७॥ सोऽविचिंत्य तथा पात मंमंथारणिमेव च ॥ तस्मा च्छुकः समुद्भूतो व्यासाकृतिमनोहरः ॥ ८ ॥ विस्मयं जनयन्बालः संजातस्तदरण्यजः ॥ यथाऽध्वरे समिद्धोऽग्निर्भाति हव्येन दीप्तिमान् ॥ ९ ॥ व्यासस्तु सुतमालोक्य विस्मयं परमं गतः ॥ किमेतदिति संचिंत्य वरदानाच्छिवस्य वै ॥१०॥ तेजोरूपी शुको जातोऽप्यरणीगर्भसंभवः ॥ द्वितीयोऽग्निरिवात्यर्थं दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११ ॥ विलोकयामास तदा व्यासस्तु मुदितं सुतम् ॥ दिव्येन तेजसा युक्तं गार्हपत्यमिवापरम् ॥१२॥ गंगातः स्नाप यामास समागत्य गिरेस्तदा ॥ पुष्पवृष्टिस्तु खाज्जाता शिशोरुपरि तापसाः ॥ १३ ॥ जातकर्मादिकं चक्रे व्यासस्तस्य महात्मनः ॥ देवदुंदु भयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१४॥ जगुर्गंधर्वपतयो मुदितास्ते दिदृक्षवः ॥ विश्वावसुर्नारदश्च तुंबुरुः शुकसंभवे ॥१५॥ तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे देवा विद्याधरास्तथा ॥ दृष्ट्वा व्याससुतं दिव्यमरणीगर्भसंभवम् ॥१६॥ अंतरिक्षात्पपातोर्व्यां दंडः कृष्णाजिनं शुभम् ॥ कमंडलु स्तथा दिव्यः शुकस्यार्थे द्विजोत्तमाः ॥ १७ ॥

॥१२॥ और पर्वतसे उतरकर गंगामें स्नान कराते हुए हे तपस्वियो ! उस समय उस बालकके ऊपर फूलोंकी वर्षा होती हुई ॥ १३ ॥ तब व्यासजीने उस महा त्माका जातकर्म किया, देवताओंने दुंदुभी बजाई और अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ १४ ॥ और देखकर गन्धर्वपति प्रसन्न हो गान करनेलगे विश्वावसु नारद और शुकदेव तथा तुम्बरु शुकदेवके प्रकट होनेमें ॥ १५ ॥ सर्व विद्याधरादिक प्रसन्न होते हुए अरणी गर्भसम्भूत दिव्य व्यास पुत्रको देखकर ॥ १६ ॥ अन्तारिक्षसे दिव्य कृष्णाजिन और दण्ड पतित हुआ हे ब्राह्मणो ! शुकदेवजीके निमित्त दिव्य ही कमण्डलु आकर प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥

उत्पन्न होते ही वह दीप्तिमान बालक वृद्धिको प्राप्त होने लगा विद्या विधान के ज्ञाता व्यासजीने उसका उपनयन किया॥ १८॥उत्पन्न होते ही रहस्य सहित सम्पूर्ण वेद इनके पिताके समान उनको भी उपस्थित होते हुए ॥१९॥जो कि घृताची के शुकीरूप होनेके उपरान्त इनको कामकी उत्पत्ति हुई थी इस कारण व्यासने पुत्रका नाम भी शुक ही रक्खा ॥२०॥ फिर व्यासजीने बृहस्पतिको उपाध्याय करके ब्रह्मचर्यके व्रत विधिपूर्वक किये ॥ २१ ॥ और शीघ्र ही आवृत्तिके समान रहस्य और संग्रह सहित सम्पूर्ण वेदोंको पढकर तथा संपूर्ण धर्म शास्त्रोंका अध्ययन करके गुरुकुलमें निवासकर ॥ २२ ॥ गुरु दक्षिणा देकर फिर समावर्तनके निमित्त अपने पिता कृष्ण द्वैपायनके समीप आये ॥२३॥ व्यासजी पुत्रको आया देख प्रेमसे उठकर उसे आलिंगनकर उनका शिर सूंघते हुए ॥ २४ ॥ व्यासजीने

सद्यः स ववृधे बालो जातमात्रोऽतिदीप्तिमान् ॥ तस्योपनयनं चक्रे व्यासो विद्या विधानवित् ॥ १८ ॥ उत्पन्नमात्रं तं वेदाः सरहस्याः ससंग्रहाः ॥ उपतस्थुर्महात्मानं यथाऽस्य पितरं तथा ॥१९॥ यतो दृष्टं शुकीरूपं घृताच्याः संभवे तदा ॥ शुकेति नाम पुत्रस्य चकार मुनिसत्तमाः ॥२०॥ बृहस्पतिमुपाध्यायं कृत्वा व्याससुतस्तदा ॥ व्रतानि ब्रह्मचर्यस्य चकार विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥ सोऽधीत्य निखिलान्वेदान्सरहस्यान्सन्मसंग्रहान् ॥ धर्मशास्त्राणि सर्वाणिकृत्वा गुरुकुले शुकः ॥ २२ ॥ गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावृत्तो मुनिस्तदा ॥ आजगाम पितुः पार्श्वं कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा व्यासः शुकं प्राप्तं प्रेम्णोत्थाय ससंभ्रमः ॥ आलिलिंग मुहुर्घ्राणं मूर्ध्नि तस्य चकार ह ॥ २४ ॥ पप्रच्छ कुशलं व्यासस्तथा चाध्ययनं शुचिः ॥ आश्वास्य स्थापयामास शुकं तत्राऽऽश्रमे शुभे ॥ २५ ॥ दारकर्म ततो व्यासः शुकस्य पर्यचिंतयत् ॥ कन्यां मुनिसुतां कांतामपृच्छदतिवेगवान् ॥ २६ ॥ शुकं प्राह सुतं व्यासो वेदोऽधीतस्त्वयाऽनघ ॥ धर्मशास्त्राणि सर्वाणि कुरु भार्यां महामते ॥ २७ ॥ गार्हस्थ्यं च समासाद्य यजदेवान्पितॄनथ ॥ ऋणान्मोचय मां पुत्र प्राप्य दारान्मनोरमान् ॥ २८ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥ तस्मात्पुत्र महाभाग कुरुष्वाद्य गृहाश्रमम् ॥ २९ ॥

कुशल और अध्ययनकी बात पूछी, और आश्वासन कर अपने आश्रममें शुकदेवजीको स्थित किया॥ २५ ॥ फिर व्यासजीने शुकदेवके विवाहके निमित्त विचार किया औंर किसी मुनिसुता कन्याके निमित्त पूछा ॥ २६ ॥ व्यासजी पुत्रसे बोले हे पापरहित ! तुमने सब वेद पाठ किया तथा सब धर्म शास्त्र पढे हे महामते ! अब भार्या ग्रहण करो ॥ २७ ॥ गृहस्थको करके देवता पितरोंका यजन करो हे पुत्र ! मनोहर भार्याको प्राप्त होकर मुझको ऋणसे मुक्त करो ॥ २८ ॥ स्वर्गमें अपुत्रकी कभी भी गति नहीं है हे महाभाग! इस कारण तुम गृहस्थाश्रम करो ॥२९॥

हे पुत्र ! मुझे गृहस्थाश्रम करके सुखी करो हे महापति पुत्र ! यह हमारी बडी आशा पूर्ण करो॥ ३०॥ महाघोर तप करके तुम अयोनिज पुत्र प्राप्त हुए हो हे देवरूप
महाबुद्धिमान् ! मुझ पिताकी रक्षाकरो ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार निकटवर्ती पिताके कहनेपर अत्यन्त विरक्त शुकदेवजी अतिरागी साक्षात् अपने
पितासे बोले ॥ ३२ ॥ शुकदेवजी बोले हे वेदव्यास महाबुद्धिमान् यह आप क्या कहते हैं आप मुझको शिष्य जानकर तत्वज्ञान समझाइये आपकी आज्ञा
पालन करूंगा ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले हे पुत्र ! तुम्हारे निमित्त तो मैंने सौ वर्षतक तप किया शिवकी आराधनासे बडे दुःखसे तुम प्राप्त हुए हो॥ ३४॥ किसी राजासे
कहकर मैं तुमको बडा धन दूंगा, हे महाप्राज्ञ ! यौवनको प्राप्त हो अनेकसुख भोगो ॥ ३५॥ शुकदेवजी बोले हे तात ! मानुषलोकमें निरामय सुख क्या है जो दुःख

कृत्वा गृहाश्रमं पुत्र सुखिनं कुरु मां शुक ॥ आशा मे महती पुत्र पूरयस्व महामते ॥३०॥ तपस्तप्त्वा महाघोरं प्राप्तोऽसि त्वमयोनिजः ॥
देवरूपी महाप्राज्ञ पाहि मां पितरं शुक ॥३१॥ सूत उवाच ॥ इति वादिनमभ्याशो प्राप्तः प्राह शुकस्तदा ॥ विरक्तः सोऽतिरक्तं तं साक्षा
त्पितरमात्मनः ॥३२॥ शुक उवाच ॥ किं त्वं वदसि धर्मज्ञ वेदव्यास महामते ॥ तत्त्वेनाशाधि शिष्यं मां त्वदाज्ञां करवाण्यलम् ॥३३॥
व्यास उवाच ॥ त्वदर्थं यत्तपस्तप्तं मया पुत्र शतं समाः ॥ प्राप्तस्त्वं चातिदुखेन शिवस्याराधनेन च ॥ ३४ ॥ ददामि तव वित्तं तु प्रार्थ
यित्वाऽथ भूपतिम् ॥ सुखं भुंक्ष्व महाप्राज्ञ प्राप्य यौवनमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ शुक उवाच ॥ किं सुखं मानुषे लोके ब्रूहि तात निरामयम् ॥
दुःखविद्धं सुखं प्राज्ञा न वदंति सुखं किल ॥ ३६ ॥ स्त्रियं कृत्वा महाभाग भवामि तद्वशानुगः ॥ सुखं किं परतंत्रस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ ३७॥
कदाचिदपि मुच्येत लोहकाष्ठादियंत्रितः पुत्रदारैर्निबद्धस्तु न विमुच्येत कर्हिचित् ॥ ३८ ॥ विण्मूत्रसंभवो देहो नारीणां तन्मयस्तथा ॥
कः प्रीतिं तत्र विप्रेंद्र विबुधः कर्तुमिच्छति ॥ ३९ ॥ अयोनिजोऽहं विप्रर्षे योनौ मे कीदृशी मतिः ॥ न वांछाम्यहमग्रेऽपि योनावेव
समुद्भवम् ॥ ४० ॥ विट्सुखं किमु वांछामि त्यक्तात्मसुखमद्भुतम् ॥ आत्मारामश्च भूयोऽपि न भवत्यतिलोलुपः ॥ ४१ ॥

मिला हुआ सुख है महाबुद्धिमान् उसकोसुख नहीं कह सकते॥ ३६॥ हे महाभाग ! स्त्रीको करके मैं उसके वशीभूत होजाऊं तो परतंत्र औरस्त्री जातिको क्या
सुख होताहै॥ ३७॥चाहे लोह काष्ठादियंत्रसे कभी छूट जाय परंतु पुत्र दारमें बँधा हुआ कभी मुक्त नहीं होता है॥ ३८॥यह देह विष्ठा मूत्रसे सम्बद्ध है इसी प्रकार
स्त्रीसे निबद्ध है, विप्रेन्द्र! उसमें विद्वान्‌को क्या प्रीति हो सकती है॥ ३९॥ हे विप्रर्षे ! जबकि मैं अयोनिज हूं तो मेरी योनिमें कैसे प्रीति हो सकती है ! मैं आगे अब
योनिसे उत्पन्न होना नहीं चाहता॥ ४०॥अद्भुत आत्माका सुख छोडकर क्या मैं विष्ठाके सुखकी इच्छा करूं!आत्माराम होकर फिर मैं लोभी नहीं होना चाहता॥ ४१॥

मैंने प्रथम विस्तारपूर्वक वेद पढे परंतु वह कर्म मार्गके प्रवर्तक होनेमें हिंसामय हैं ॥४२॥ बृहस्पति गुरु प्राप्त हुए थे वह भी गृहस्थरुपी सागरमें मग्न रहते हैं; अविद्यासे ग्रस्तहृदय होनेसे कैसे तार सकते हैं ॥४३॥ जैसे रोगग्रस्त वैद्य दूसरेके रोगकी चिकित्सा नहीं कर सकता इसी प्रकार मुमुक्षुको गुरु स्वयं मग्न ने होसे कैसे तारैगा; यह गृहस्थ विडम्बना मात्र है ॥४४॥ गुरुको प्रणाम करके मैं आपके समीप आया हूं संसार सर्पसे डरे हुए मेरी आप रक्षा कीजिये और तत्त्वज्ञान दीजिये ॥ ४५ ॥ इस महा घोर संसारमें आकाश चक्रके समान भ्रमण करते सूर्यके समान दिनरात कहीं विश्राम नहीं मिलता है ॥४६॥ निज तत्त्वके विचारसे विना हे तात! संसारमें क्या सुख है मूढोंको सुखबुद्धि इस प्रकार है जैसे मलमें कीट सुख मानते हैं ॥४७॥ वेद शास्त्र पढकरभी जो संसारमें रागी हैं उनके बराबर कोई

प्रथमं पठिता वेदा मया विस्तारिताश्च ते ॥ हिंसामयास्ते पठिताः कर्ममार्गप्रवर्तकाः ॥४२॥ बृहस्पतिगुरुः प्राप्तः सोऽपि मग्नोगृहार्णवे ॥ अविद्याग्रस्तहृदयः कथं कारयितुं क्षमः ॥४३॥ रोगग्रस्तो यथा वैद्यः पररोगचिकित्सकः ॥ तथा गुरुर्मुमुक्षोर्मे गृहस्थोऽयं विडंबना॥४४॥ कृत्वा प्रणामं गुरवे त्वत्समीपमुपागतः ॥ त्राहि मां तत्त्वबोधेन भीतं संसारसर्पतः ॥४५॥ संसारेऽस्मिन्महाघोरे भ्रमणं नभचक्रवत् ॥ न च विश्रमणं क्वापि सूर्यस्येव दिवानिशि ॥ ४६ ॥ किं सुखं तात संसारे निजतत्त्वविचारणात् ॥ मूढानां सुखबुद्धिस्तु विट्सु कीटसुखं यथा ॥ ४७ ॥ अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये ॥ तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाश्वसूकरैः ॥ ४८ ॥ मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य वेदशास्त्राण्यधीत्य च ॥ बध्यते यदि संसारे को विमुच्येत मानवः ॥ ४९ ॥ नातः परतरं लोके क्वचिदाश्चर्यमद्भुतम् ॥ पुत्रदारगृहासक्तः पंडितः परिगीयते ॥५०॥ न बाध्यते यः संसारे नारीमायागुणैस्त्रिभिः ॥ स विद्वान्स च मेधावी शास्त्रपारंगतो हि सः ॥ ५१ ॥ किं वृथाऽध्ययनेनात्र दृढबंधकरेण च ॥ पठितव्यं तदेवाशु मोचयेद्भवबंधनात् ॥ ५२ ॥ गृह्णाति पुरुषं यस्माद् गृहं तेन प्रकीर्तितम् ॥ क्व सुखं बन्धनागारे तेन भीतोऽस्म्यहं पितः ॥ ५३ ॥ ये बुधा मंदमतयो विधिना मुषिताश्च ये ॥ ते प्राप्य मानुषं जन्म पुनर्बंधं विशंत्युत ॥ ५४ ॥

मूर्ख नहीं है वह कुत्ते अश्व सूकरके समान धर्मवाले है ॥४८॥ दुर्लभ वेदशास्त्रका अध्ययन करके यदि संसारमें बंधनको प्राप्त हो तो फिर किसकी मुक्ति हो सकती है ॥४९॥ इससे अधिक लोकमें और आश्चर्य नहीं है जो पुत्र दाराओंसे आसक्त होकर पंडित गाया जाय॥५०॥जो मनुष्य संसारमें मायाके तीन गुणोंसे बाधित नहीं होता वही विद्वान् मेधावी शास्त्रका पारगामी जानो॥५१॥वृथा अध्ययन और दृढ बंधन करनेसे क्या है; वही शीघ्र पढना चाहिये जो भवबन्धनसे मुक्त कर दे ॥५२॥ पुरुषको ग्रहण करता है इसीसे इसको गृह करते हैं हे पिता! बंधनागारमें क्या सुख है इसीसे मैं भीत रहा हूं ॥५३॥ जो अबुध मन्दमति

प्रारब्धसे वंचित हैं वे मनुष्य जन्मको प्राप्त होकर फिर बन्धनमें प्रवेश करते हैं ॥५४॥ व्यासजी बोले घर बंधनागार नहीं है न बंधनमें कारण है जो मनसे निर्मुक्त हैं वे गृहस्थसे भी निर्मुक्त हैं ॥ ५५ ॥ न्यायसे प्राप्त धनको लेनेवाले विधिपूर्वक वेद अध्ययन करनेवाले श्राद्धकारी सत्यवाक् पवित्र गृहस्थभी मुक्त होजाते हैं ॥५६॥ ब्रह्मचारी यति वानप्रस्थ व्रतमें स्थित मध्याह्न अतिक्रमण होनेसे सदा गृहस्थकी इच्छा करते हैं ॥५७॥ श्रद्धासे अन्नदान सत्य निन्दारहित वाणीसे धर्मिष्ठ गृहस्थ आश्रमवासियोंका उपकार करते हैं ॥५८॥ गृहाश्रमसे अधिक धर्म न हमने देखा न सुना, जिसको वसिष्ठादि आचार्य और ज्ञानियोंने आचरण किया है ॥५९॥ हे महाभाग! वह वेदोक्त कर्म करते गृहस्थको क्या असाध्य है स्वर्ग मोक्षादि जो जो वांछित हो उसकी प्राप्ति होती है ॥ ६० ॥ धर्म ज्ञाता

व्यास उवाच॥ न गृहं बंधनागारं बंधने न च कारणम् ॥ मनसा यो विनिर्मुक्तो गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥५५॥ न्यायागतधनः कुर्वन्वेदोक्तं विधिवत्क्रमात् ॥ गृहस्थोऽपि विमुच्येत श्राद्धकृत्सत्यवाक्छुचिः ॥५६॥ ब्रह्मचारी यतिश्चैव वानप्रस्थो व्रतस्थितः॥ गृहस्थं समुपासंते मध्याह्नातिक्रमे सदा ॥ ५७ ॥ श्रद्धया चान्नदानेन वाचा सूनृतया तथा ॥ उपकुर्वंति धर्मस्था गृहाश्रमनिवासिनः ॥ ५८ ॥ गृहाश्रमात्परो धर्मो न च वै श्रुतः ॥ वसिष्ठादिभिराचार्यैर्ज्ञानिभिः समुपाश्रितः ॥५९॥ किमसाध्यं महाभाग वेदोक्तानि च कुर्वतः ॥ स्वर्ग मोक्षं च सज्जन्म यद्यद्वांछति तद्भवेत् ॥६०॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति धर्मविदो विदुः ॥ तस्मादग्निं समाधाय कुरु कर्माण्यतंद्रितः ॥६१॥ देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च संतर्प्य विधिवत्सुत ॥ पुत्रमुत्पाद्य धर्मज्ञ संयोज्य च गृहाश्रमे ॥६२॥ त्यक्त्वा गृहं वनं गत्वा कर्तासि व्रतमुत्तमम् ॥ वानप्रस्थाश्रमं कृत्वा संन्यासं च ततः परम् ॥ ६३ ॥ इंद्रियाणि महाभाग मादकानि सुनिश्चितम् ॥ अदारस्य दुरंतानि पंचैव मनसा सह ॥ ६४ ॥ तस्माद्दारान्प्रकुर्वीत तज्जयाय महामते ॥ वार्धके तप आतिष्ठेदिति शास्त्रोदितं वचः ॥ ६५ ॥ विश्वामित्रो महाभाग तपः कृत्वाऽतिदुश्चरम् ॥ त्राणि वर्षसहस्राणि निराहारो जितेंद्रियः ॥६६॥ मोहितश्च महातेजा वनेमेनकया स्थितः ॥ शकुंतला समुत्पन्ना पुत्री तद्वीर्यजा शुभा ॥६७॥

कहते हैं आश्रमसेही आश्रममें जाय इस कारण अग्न्याधान करके यथोक्त कर्म करो ॥६१॥ हे पुत्र! विधिपूर्वक देवता पितर मनुष्योंको तृप्त करके गृहस्थाश्रममें पुत्र उत्पन्न कर उसे गृहाश्रममें संयुक्त करके ॥६२॥ फिर घर छोड़ वनमें जाकर व्रत करना पहले वानप्रस्थ और फिर यथाक्रमसे संन्यासाश्रम करना ॥ ६३ ॥ हे महाभाग! वह इंद्रियें अवश्यही मादक हैं यह पांचों मनके सहित विना स्त्रीके दुरन्त हैं ॥६४॥ हे महामते! इस कारण उनके जयके निमित्त दारसंग्रह करो, वार्धक्य होनेमें तप करै यह शास्त्रमें कहाहै ॥ ६५ ॥ हे महाभाग! विश्वामित्र भी दुश्चर तप करके तीन सहस्र वर्ष तक निराहार जितेन्द्रिय रहे ॥६६॥ और तिसपर भी वह

महातेजश्वी वनमें मेनकाके सहित मोहित हो गये उन्हीं के वीर्यसे शकुंतला उत्पन्न हुई थी ॥६७॥ और हमारे पिता पराशर दासकन्या कालीको देखकर कामबाणसे अर्दित हो नौकामें स्थित उसे ग्रहण करते हुए ॥ ६८ ॥ ब्रह्मा भी सरस्वतीको देखकर काम बाणसे पीडित हुए थे और उनके वेगको शिवजीनेनिवारण किया था ॥६९॥ हे कल्याण ! इससे तुमहमारे कल्याण वचनको मानो, किसी सत्कुलोत्पन्न कन्याको वरणकर वेदमार्गका आश्रय करो ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ श्रीशुक देवजी बोले हे पिता ! सब प्रकार से दुःख देनेवाला गृहस्थाश्रम मैं नहीं करूंगा यह मृगबंधिनी रज्जुके समान सब देहधारियोंको बन्धन रूप है ॥१॥ हे तात! धनकी चिन्तासे व्याकुल हुओंको क्या सुख होता है निर्धन लोलुप अपने कुटुंबियोंसे पीडित होता है ॥२॥

दृष्ट्वा दाशसुतां कालीं पिता मम पराशरः ॥ कामबाणार्दितः कन्यां तां जग्राहोडुपे स्थितः ।.६८॥ ब्रह्माऽपि स्वसुतां दृष्ट्वा पंचबाणप्रपीडितः ॥ धावमानश्च रुद्रेण मूर्छितश्च निवारितः ॥६९॥ तस्मात्त्वमपि कल्याण कुरु मे वचनं हितम् ॥ कुलजां कन्यकां वृत्वा वेदमार्गं समाश्रय ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० प्रथमस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नाहं गृहं करिष्यामि दुःखदं सर्वदा पितः ॥ वागुरासदृशं नित्यं बंधनं सर्वदेहिनाम् ॥१॥ धनचिंतातुराणां हि क्व सुखं तात दृश्यते ॥ स्वजनैः खलु पीडचंते निर्धना लोलुपा जनाः ॥ २ ॥ इंद्रोऽपि न सुखी तादृग्यादृशो भिक्षुनिःस्पृहः ॥ कोऽन्यः स्यादिह संसारे त्रिलोकीविभवे सति ॥ ३ ॥ तपंतं तापसं दृष्ट्वा मघवा दुःखितोऽभवत् ॥ विघ्नान्बहुविधानस्य करोति च दिवस्पतिः ॥४॥ ब्रह्माऽपि न सुखी विष्णुर्लक्ष्मीं प्राप्य मनोरमाम् ॥ खेदं प्राप्नोति सततं संग्रामैरसुरैः सह ॥ ५ ॥ करोति विपुलान्यत्नांस्तपश्चरति दुश्चरम् ॥ रमापतिरपि श्रीमान् कस्यास्ति विपुलं सुखम् ॥६॥ शंकरोऽपि सदा दुःखी भवत्येव च वेद्म्यहम् ॥ तपश्चर्यां प्रकुर्वाणो दैत्ययुद्धकरः सदा ॥ ७ ॥ कदाचिन्न सुखी शेते धनवानपिलोलुपः ॥ निर्धनस्तु कथं तात सुखं प्राप्नोति मानवः ॥८॥ जानन्नपि महाभाग पुत्र वा वीर्यसंभवम् ॥ नियोक्ष्यसि महाघोरे संसारे दुःखदे सदा ॥९॥

ऐसा तो इन्द्र भी सुखी नहीं है जैसा निस्पृह भिक्षुक सुखी होता है त्रिलोकीका विभव होनेसे इन्द्र भी सुखी नहीं है फिर औरकी कौन कहे ॥३॥ तपस्वीको तप करता देखकर इन्द्र दुःखी हुए उसपर अनेक विघ्न करते हैं॥४॥ब्रह्मा भी सुखी नहीं और विष्णु भी लक्ष्मीको प्राप्त होकर निरन्तर असुरोंसे संग्राम करते हैं ॥५॥ अनेक यत्न करके दुश्चर तप करते हैं रमापति लक्ष्मी होनेपर भी ऐसे हैं तब महासुख किसको है ? ॥६॥ शंकरभी सदा दुखी हैं यह मैं जानता हूं जो तपश्चर्या करते सदा दैत्योंसे युद्ध करते हैं ॥७॥ धनी पुरुष कभी भी सुखसे नहीं सोते. हे तात! फिर निर्धन कैसे सुखी हो सकते हैं ॥८॥ हे महाभाग ! जानकर भी

यह कि, मेरा यह औरस पुत्र है फिर किस प्रकार महाघोर दुःखदाई संसारमें मुझको नियुक्त करते हो ॥९॥ जन्मसे दुःख जरासे दुःख मरणसे दुःख फिर हे पितः ! विष्ठामय गर्भवासमें दुःख है ॥१०॥ इससे तृष्णा लोभसे उत्पन्न हुआ अतिशय दुःख है हे ! मानद ! जोकि यह मरणसे भी अतिशय दुःख है ॥११॥ कि ब्राह्मणोंका प्रतिग्रह ही दुःख है यह बुद्धि बलसे जीवन नहीं करते हैं दूसरेकी आशा करना ही परम दुःख और दिन दिन मरण है ॥१२॥सब वेद और शास्त्र पढकर पण्डित होकर सब प्रकारसे धनियोंकी स्तुति करते हैं ॥१३॥ एक उदरके निमित्त क्या चिन्ता है दो फल मूलसे भी पूर्ण हो जाता है अर्थात् जिस किसी प्रकारसे इसकी तुष्टी हो जाती है ॥ १४ ॥ भार्या पुत्र पौत्र कुटुंबके विपुल होनेपर उनके भरण पोषणमें बडा दुःख होता है हे पिता ! अद्भुत सुख कहां है ? ॥१५॥

जन्मदुःखं जरादुःखं दुखं च मरणे तथा ॥ गर्भवासं पुनर्दुःखं विष्ठामूत्रमये पितः ॥ १० ॥ तस्मादतिशयं दुखं तृष्णालोभसमुद्भवम् ॥ याश्चायां परमं दुःखं मरणादपि मानद ॥११॥ प्रतिग्रहधना विप्रा न बुद्धिबलजीवनाः ॥ पराशा परमं दुखं मरणं च दिने दिने ॥ १२ ॥ पठित्वा सकलान्वेदांञ्छास्त्राणि च समंततः ॥ गत्वा च धनिनां कार्या स्तुतिः सर्वात्मना बुधैः ॥ १३ ॥ एकोदरस्य का चिंता पत्रमूल फलादिभिः ॥ येन केनाप्युपायेन संतुष्ट्या च प्रपूर्यते ॥१४॥ भार्या पुत्रास्तथा पौत्राः कुटुंबे विपुले सति ॥ पूरणार्थं महद्दुःखं क्व सुखं पितरद्भुतम् ॥ १५ ॥ योगशास्त्रं वद मम ज्ञानशास्त्रं सुखाकरम् ॥ कर्मकांडेऽखिले तात न रमेऽहं कदाचन ॥ १६ ॥ वद कर्मक्षयोपायं प्रारब्धं संचितं तथा ॥ वर्तमानं यथा नश्येत्त्रिविधं कर्ममूलजम् ॥ १७ ॥ जलूकेव सदा नारी रुधिरं पिबतीति वै ॥ मूर्खस्तु न विजानाति मोहितो भावचेष्टितैः ॥ १८ ॥ भोगैर्वीर्यं धनं पूर्णं मनः कुटिल भाषणैः ॥ कांता हरति सर्वस्वं कः स्तेनस्ता दृशोऽपरः ॥ १९ ॥ निद्रासुखविनाशार्थं मूर्खस्तु दारसंग्रहम् ॥ करोति वंचितो धात्रा दुःखाय न सुखाय च ॥ २० ॥

आप मुझसे योग शास्त्र और ज्ञान शास्त्र सुखकी मूल वर्णन कीजिये हे तात ! कर्म काण्डमें तो मेरा मन किसी प्रकार नहीं रमताहै ॥ १६ ॥ आप प्रारब्ध संचित आदि कर्म क्षयके उपायको कहिये जैसे वर्तमान कर्म भी नाशको प्राप्त हो वह तीन प्रकारका कर्मका नाश होनेका उपाय कहो ॥१७॥ जोंकके समान स्त्री मनुष्यका सदा रुधिर पीती है मूर्ख उसको नहीं जानता है और भाव चेष्टासे मोहितरहता है॥१८॥ भोगसे वीर्यको हरण करती है कुटिल भाषणसे मन और सब धन हरण करती हैं बहुत क्या यह कान्ता सर्वस्व हरण कर लेती है इसके समान औरचोर कौन है ॥१९॥ यह मूर्ख प्राणी निद्रा सुख नाशके निमित्त विधातासे वंचित

हुआ दुःख निमित्त ही दार संग्रह करता है सुख नहीं होता ॥२०॥ सूतजी बोले व्यासजी इस प्रकार शुकदेवजीके वाक्य श्रवणकर बडी चिन्ताको प्राप्त हुए कि, मैं अब क्या करूं ॥२१॥ दुःखसे उनके नेत्रोंमेंसे आँसू निकलने लगे शरीरमें कंप और ग्लानि प्राप्त हुई ॥२२॥ इस प्रकार दीनशोकसे व्याकुल पिताको शोच करता हुआ देखकर उत्फुल्ल नेत्र हो शुकदेवजी पिता व्यासजीसे बोले ॥२३॥ अहो मायाका बडा बल है जो पंडितको भी मोहित करती है जो कि वेदान्तके कर्ता सर्वज्ञ और वेद सम्मत हैं ॥२४॥ नहीं जानते वह क्या माया है और कैसे अतिशय दुस्तर है जो सत्यवती पुत्र व्याससे विद्वान्को भी मोहित करती है ॥२५॥ जो पुराणोंके वक्ता भारतके निर्माता वेदोंके विभाग कर्ता हैं वह भी मोहको प्राप्त होते हैं ॥२६॥ उसी देवीकी शरण हूं जो इस सब जगत्को मोहित करती है ब्रह्मा विष्णु

सूत उवाच ॥ एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा व्यासः शुकस्य च ॥ संप्राप महतीं चिंतां किं करोमीत्यसंशयम् ॥२१॥ तस्य सुस्रुवुरश्रूणि लोचनाद्दुःखजानि च ॥ वेपथुश्च शरीरेऽभूद् ग्लानिं प्राप मनस्तथा ॥२२॥ शोचंतं पितरं दृष्ट्वा दीनं शोकपरिप्लुतम् ॥ उवाच पितरं व्यास विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥२३॥ अहो मायाबल चोग्रं यन्मोहयति पंडितम् ॥ वेदांतस्य च कर्तारं सर्वज्ञं वेद संमितम् ॥२४॥ न जाने का च सा माया किंस्वित्साऽतीव दुष्करा ॥ या मोहयति विद्वांसं व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥२५॥ पुराणानां च वक्ता च निर्माता भारतस्य च ॥ विभागकर्ता वेदानां सोऽपि मोहमुपागतः ॥२६॥ तां यामि शरणं देवीं या मोहयति वै जगत् ॥ ब्रह्मविष्णुहरादींश्च कथाऽन्येषां च कीदृशी ॥२७॥ कोऽप्यस्ति त्रिषु लोकेषु यो न मुह्यति मायया ॥ यन्मोहं गमिताः पूर्वं ब्रह्म विष्णुहरादयः ॥२८॥ अहो बलमहो वीर्यं देव्या खलु विनिर्मितम् ॥ माययैव वशं नीतः सर्वज्ञ ईश्वरः प्रभुः ॥२९॥ विष्णवंशसंभवो व्यास इति पौराणिका जगुः ॥ सोऽपि मोहार्णवे मग्नो भग्नपोतो वणिग्यथा ॥३०॥ अश्रुपातं करोत्यद्य विवशः प्राकृतो यथा ॥ अहो मायाबलं चैतद् दुस्त्यजं पंडितैरपि ॥३१॥ कोऽयं कोऽहं कथं चेह कीदृशोऽयं भ्रमः किल ॥ पंचभूतात्मके देहे पिता पुत्रेति वासना ॥३२॥ बलिष्ठा खलु मायेयं मायिनामपि मोहिनी ॥ ययाऽभिभूतः कृष्णोऽपि करोति रोदनं द्विजः ॥३३॥

हरादिकोंको भी मोहित करती है औरोंकी तो कथा ही क्या है ॥२७॥ ऐसा त्रिलोकीमें कौन है जो मायासे मोहित न हुआ हो जिसने पूर्वमें ब्रह्मा विष्णु हरादिकोंको भी मोहित किया है ॥२८॥ अहो देवीका बल वीर्य बडा अद्भुत है जिसने सर्वज्ञ ईश्वरको भी अपने वशीभूत किया है ॥२९॥ पौराणिक कहते हैं व्यासजी विष्णुके अंश हैं वह भी जहाज भंग होनेसे वाणी करके समान मोहार्णवमें मग्न हैं ॥३०॥ इस समय यह विवश हुए दोकृतके समान अश्रुपात करते हैं अहो यह मायाका बल पंडितोंसे भी नहीं छोडा जाता है ॥३१॥ यह कौन मैं कौन यह क्या यह भ्रम कैसा है पंचभूतात्मक हमें पिता पुत्रकी वासना है ॥३२॥ यह माया बडी बलिष्ठ है मायावियोंको भी प्रमोहित करती है जिससे युक्त होकर महात्मा व्यास भी रुदन करते हैं ॥३३॥

सूतजी बोले इस प्रकार सब कारणकी कारण उस देवीको प्रणाम करके जो सब देवताओंकी जननी और ब्रह्मादिकी भी ईश्वरी है ॥ ३४ ॥ शोकार्णवमें व्याप्त दीन हुए पिताजीसे शुकाचार्य बोले यह अरणीसे उत्पन्न शुकदेवजी हेतु युक्त वचन व्यासजीसे बोले ॥ ३५ ॥ हे पाराशर्य महाभाग व्यासजी ! तुम स्वयं सबके ज्ञान देनेवाले हो हे स्वामिन् ऐसा प्राकृत मनुष्यके समान क्या शोक करते हो ॥३६॥ हे महाभाग अब तो मैं तुम्हारा पुत्रहूं पूर्व जन्ममें न जाने मैं कौन और आप कौन थे यह पिता पुत्रका आत्मामें भ्रम है ॥ ३७ ॥ आप धैर्यसे सावधान हो विषाद मनमें मतकरो हे महामते यह सब मोहजाल मानकर शोक त्यागन करो ॥ ३८ ॥ भक्षण करनेसे ही क्षुधाकी निवृत्ति होती है पुत्र दर्शनसे नहीं जलपानसे ही पिपासा निवृत्त होती है पुत्र दर्शनसे नहीं

सूत उवाच ॥ तां नत्वां मनसा देवीं सर्वकारणकारणम् ॥ जननीं सर्वदेवानां ब्रह्मादीनां तथेश्वरीम् ॥ ३४ ॥ पितरं प्राह दीनं तं शोकवार्णव परिप्लुतम् ॥ अरणीसंभवो व्यासं हेतुमद्वचनं शुभम् ॥ ३५ ॥ पाराशर्य महाभाग सर्वेषां बोधदः स्वयम् ॥ किं शोकं कुरुषे स्वामिन्य थाऽज्ञः प्राकृतो नरः ॥ ३६ ॥ अद्याहं तव पुत्रोऽस्मि न जाने पूर्वजन्मनि ॥ कोऽहं कस्त्वं महाभाग विभ्रमोऽयं महात्मनि ॥ ३७ ॥ कुरु धैर्यं प्रबुध्यस्व मा विषादे मनः कृथाः ॥ मोहजालमिमं मत्वा मुंच शोकं महामते ॥ ३८ ॥ क्षुधानिवृत्तिर्भक्ष्येण न पुत्रदर्शनेन च ॥ पिपासा जलपानेन याति नैवात्मजे क्षणात् ॥ ३९ ॥ घ्राणं सुखं सुगंधेन कर्णजं श्रवणेन च ॥ स्त्रीसुखं तु स्त्रिया नूनं पुत्रोऽहं किं करोमि ते ॥ ४० ॥ अजीगर्तेन पुत्रोऽपि हरिश्चंद्राय भूभुजे ॥ पशुकामाय यज्ञार्थे दत्तो मौल्येन सर्वथा ॥ ४१ ॥ सुखानां साधनं द्रव्यं धनात्सुखस मुच्चयः ॥ धनमर्जय लोभश्चेत्पुत्रोऽहं किं करोम्यहम् ॥ ४२ ॥ मां प्रबोधय बुद्ध्या त्वं दैवज्ञोऽसि महामते ॥ यथा मुच्ये यमत्यंतं गर्भवास भयान्मुने ॥ ४३ ॥ दुलभं मानुषं जन्म कर्मभूमाविहानघ ॥ तत्रापि ब्राह्मणत्वं वै दुर्लभं चोत्तमे कुले ॥ ४४ ॥ बद्धोऽहमिति मे बुद्धिर्ना पसर्पति चित्ततः ॥ संसारवासनाजाले निविष्टा वृद्धगामिनी ॥ ४५ ॥

॥ ३९ ॥ सुगंधद्वारा घ्राणसुख श्रवणद्वारा कर्ण सुख स्त्रीका सुख स्त्रीसे होता है मैं तुम्हारा पुत्र क्या करूं ॥ ४० ॥ अजीगर्तने अपना पुत्र राजा हरिश्चन्द्रके निमित्त मूल्यद्वारा यज्ञार्थ प्रदान किया है ॥ ४१ ॥ सुखोंका साधन द्रव्य है धनसे सुख होता है लोभ हो तो धनका अर्जन करो मुझे पुत्रसे क्या सम्बन्ध है ॥ ४२ ॥ हे महामते आप दैवज्ञ हो बुद्धिपूर्वक मुझे प्रबोध करो हे मुने जिस प्रकार मैं इस महागर्भवाससे मुक्त हो जाऊं ॥ ४३ ॥ हे पाप रहित इस कर्म भूमिमें मनुष्य जन्म बडा दुर्लभ है उसमें भी उत्तम कुलमें जन्म ब्राह्मणत्व होना बड़ा दुर्लभ है ॥ ४४ ॥ मैं वृद्ध हूं यह बुद्धि मेरे चित्तसे नहीं जाती है संसार वास

नाके जालमें वृद्धोंके आश्रय होकर भी रमण करती है॥४५॥ जब महाबुद्धिमान् व्यासपुत्रने ऐसा कहा तब चतुर्थाश्रममें मनलगाय शांतरूप शुकाचार्यसे व्यासजी बोले ॥४६॥ व्यासजी बोले हे महाभाग पुत्र जो ऐसा है तो हमारा निर्मित भागवत पढो जो पुराण शुभ वेद सम्मत है और बड़े विस्तारमें नहीं है ॥४७॥ बारह स्कंध और पांच लक्षणसे युक्त और सब पुराणोंका भूषण हमारा सम्मत है ॥४८॥ जिसके सुनने मात्रसे सदसत्का ज्ञान और विज्ञान हो जाता है हे महामते! इसकारण उस भागवतको आप पढिये॥४९॥वटके पत्रमें शयन करते बालरूप विष्णुके निमित्त जब कि वह चिदात्मा बालभावसे स्थित हुए विचार करते थे कि, यह किसने बालभावसे हमको प्रगट किया है ॥५०॥ किस निमित्त किस द्रव्यसे प्रगट है और किस प्रकारसे मैं इस सबको जानूँ इस प्रकार विचार करते भगवान्

सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तु तदा व्यास पुत्रेणामित बुद्धिना ॥ प्रत्युवाच शुकं शांतं चतुर्थाश्रममानसम्॥४६॥ व्यास उवाच ॥ पठ पुत्र महाभाग मयाभागवतं कृतम् ॥ शुभं न चातिविस्तीर्णं पुराण ब्रह्मसंमितम् ॥४७॥ स्कंध द्वादश तत्रैव पंचलक्षणसंयुतम् ॥ सर्वेषां च पुराणानां भूषणं मम संमतम्॥४८॥ सदसज्ज्ञानविज्ञानं श्रुतमात्रेण जायते ॥ येन भागवतेनेह तत्पठ त्वं महामते॥४९॥वटपत्रे शयानाय विष्णवे बालरूपिणे ॥ केनास्मि बालभावेन निर्मितोऽहं चिदात्मना ॥५०॥ किमर्थं केन द्रव्येण कथं जानामि चाखिलम् ॥ इत्येवं चिंत्यमानाय मुकुंदाय महात्मने ॥५१॥ श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं भगवत्याऽखिलार्थदम् ॥ सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम् ॥५२॥ तद्वचो विष्णुना पूर्वं संविज्ञातं मनस्यपि ॥ केनोक्ता वागियं सत्या चिंतयामासचेतसा॥५३॥ कथं वेद्मि प्रवक्तारं स्त्रीपुंसौ वा नपुंसकम् ॥ इति चिंतां प्रपन्नेन धृतं भाग वतं हृदि ॥५४॥पुनः पुनः कृतोच्चारस्तस्मिन्नेवास्त चेतसा॥वटपत्रे शयानः सन्नभूच्चिंतासमन्वितः॥५५॥ तदा शांता भगवती प्रादुरास चतु र्भुजा ॥ शंखचक्रगदापद्मवरायुधधरा शिवा॥५६॥दिव्यांबरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता॥ संयुता सदृशीभिश्च सखीभिः स्वविभूतिभिः॥५७॥

मुकुन्दके निमित्त ॥ ५१ ॥ इस सब शंकाकी निवृत्तिके अर्थ भगवतीने आधा श्लोक उच्चारण किया था: इस सम्पूर्ण जगत्में मैं हीं हूं और कुछ सनातन नही है सच्चिदानंदरूपिणी मैं ही सनातनी हूं, जगत् मिथ्या है ॥५२॥ प्रथम यही वचन विष्णुने अपने हृदयमें धारण किया था और मनमें विचारने लगे यह सत्यवाणी किसने उच्चारण की॥५३॥इस कहनेवालेको मैं कैसे जानूं यह स्त्री पुरुष वा नपुंसक है इस चिंताको करते हुए इस आधे श्लोकरूप भागवतको मनमें धारण किया॥५४॥ और उन्हींमें चित्त स्थापन किये बारंबार चित्तसे उच्चारण किया और वटपत्रमें शयन करते मनमें बड़ी चिंता हुई ॥ ५५ ॥ तब चतुर्भुज शांतदेवी प्रगट हुई शंख चक्र गदा पद्म वरायुध धारण किये हुए ॥५६॥ वह देवी दिव्य अम्बर धारण किये दिव्यभूषणसे भूषित अपनी विभूतिरूप सखियोंसे युक्त ॥ ५७ ॥

अमित तेजस्वी विष्णुके आगे प्रगट हुई और वह महालक्ष्मी मन्दहास्य करती हुई सुमुखी प्रगट हुई ॥५८॥ सूतजी बोले कमललोचन भगवान् निराधार उस मनोरमा भगवतीको हृदयमें दर्शन कर विस्मयसे उत्फुल्लनेत्र हो गये ॥५९॥ रति, भूति, बुद्धि मति कीर्ति, स्मृति धृति, श्रद्धा, मेधा, स्वधा, स्वाहा, क्षुधा, निद्रा, दया, गति ॥ ६० ॥ तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, जृंभा तन्द्रा, शक्ति, यह सब पृथक् पृथक् महादेवीके पार्श्वमें स्थित थीं ॥ ६१ ॥ ये सब श्रेष्ठ आयुधधारे अनेक आभरणोंसे युक्त मंदारमालाओंसे आकुलित मोतियोंके हारोंसे विराजमान ॥ ३२ ॥ उस प्रकारसे उनको एकार्णव जलमें देखकर जनार्दन बड़े विस्मित हुए ॥ ६३ ॥ यह सब स्त्रियें कहांसे आई और मैं कहांसे वटवृक्षके निकट आया हूं ॥ ६४ ॥ इस घोर एकार्णवमें यह न्यग्रोधका वृक्ष कहांसे आया है और

प्रादुर्बभूव तस्याग्रे विष्णोरमिततेजसः ॥ मंदहास्यं प्रयुजाना महालक्ष्मीः शुभानना ॥५८॥ सूत उवाच ॥ तां तथा संस्थितां दृष्ट्वा हृदये कमले क्षणः ॥ विस्मितः सलिले तस्मिन्निराधारां मनोरमाम् ॥ ५९ ॥ रतिर्भूतिस्तथा बुद्धिर्मतिः कीर्तिः स्मृतिर्धृतिः ॥ श्रद्धा मेधा स्वधा स्वाहा क्षुधा निद्रा दया गतिः ॥ ६० ॥ तुष्टिः पुष्टिः क्षमाः लज्जा जृंभा तंद्रा च शक्तयः ॥ संस्थिताः सर्वतः पार्श्वे महादेव्या पृथक्पृथक् ॥ ६१ ॥ वरायुधधराः सर्वा नानाभूषणभूषिताः ॥ मंदारमालाकुलिता मुक्ताहारविराजिताः ॥ ६२ ॥ तां दृष्ट्वा ताश्च संवीक्ष्य तस्मिन्नेकार्णवे जले ॥ विस्मयाविष्टहृदयः संबभूवजनार्दनः ॥ ६३ ॥ चिंतयामास सर्वात्मा दृष्टमायोऽतिविस्मितः ॥ कुतो भूताः स्त्रियः सर्वाः कुतोऽहं वटतल्पगः ॥ ६४ ॥ अस्मिन्नेकार्णवे घोरे न्यग्रोधः कथमुत्थितः ॥ केनाहं स्थापितोऽस्म्यत्र शिशुं कृत्वा शुभाकृतिः ॥ ६५ ॥ ममेयं जननी नो वा माया वा काऽपि दुर्घटा ॥ दर्शनं केनचित्त्वद्य दत्तं वा केन हेतुना ॥ ६६ ॥ किं मया चात्र वक्तव्यं गंतव्यं वा न वा क्वचित् ॥ मौनमास्थाय तिष्ठेयं बाल भावादतंद्रितः ॥६७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

व्यास उवाच ॥ दृष्ट्वा तं विस्मितं देवं शयानं वटपत्रके ॥ उवाच सस्मितं वाक्यं विष्णो किं विस्मितो ह्यसि ॥ १ ॥

शिशुकरके किसने मुझे स्थापित किया है ॥ ६५ ॥ यहांमेरे प्रगट करनेवाले क्या कोई माया है जिसका भेद नही मिलता है इस किसी अनिर्वचनीय देवता विशेषने मुझे किसी कारणसे दर्शन दिया है ॥ ६६ ॥ मैं अब क्या करूं वा यहांसे कहीं चला जाऊँ अथवा बालभावसे अतंद्रित होकर मौन हो रहूं ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पं ज्वालाप्रसादमिश्र कृत भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले वटपत्रमें शयन करते उनको विस्मित देखकर कुछ हँसती हुई देवी बोली कि तुम विस्मित हो रहे हो ॥ १ ॥

महाशक्तिके प्रभावसे तुम पहले विस्मित थे प्रलय होनेमें बारंबार तुम प्रगट होते हो ॥ २ ॥ वह पराशक्ति निर्गुण है और तुम और मैं सगुण हूं और जो सात्विकी शक्ति है उसको मेरी शक्ति अर्थात् मुझे दो ॥ ३ ॥ प्रजापति ब्रह्मा तुम्हारी नाभिकमलसे होंगे वह सब लोकके कर्ता रजोगुणसे युक्त हैं ॥ ४ ॥ तब वह तपस्या करके अनुत्तमशक्तिको प्राप्त होकर रजसे सब जगत्को रक्तवर्ण करेंगे ॥ ५ ॥ वह महामति सगुण पांचभूतोंको उत्पन्नकरके इंद्रिय और इंद्रियोंके अधिष्ठात्री देवता और मनका ॥ ६ ॥ सर्ग प्रगट करेंगे, इस कारण वह कर्त्ता कहे जाते हैं हे महाभाग तुम विश्वके उत्पादक और पालक हो ॥ ७ ॥ तुम्हारे भ्रूमध्यसे क्रोध करनेके कारण रुद्र उत्पन्न होंगे, वे महाघोर तपकरके तामसी शक्तिको प्राप्त होकर ॥ ८ ॥ कल्पांतमें वह भी संहार करनेवाले होंगे, इस कारण मैं

महाशक्त्याः प्रभावेण त्वं मां विस्मृतवान्पुरा ॥ प्रभवे प्रलये जाते भूत्वाभूत्वा पुनः पुनः ॥ २ ॥ निर्गुणा सा परा शक्तिः सगुणस्त्वं तथाऽप्यहम् ॥ सात्विकी किल या शक्तिस्तां शक्तिं विद्धि मामिकाम् ॥३॥ त्वन्नाभिकमलाद्ब्रह्मा भविष्यति प्रजापतिः ॥ स कर्ता सर्वलोकस्य रजोगुणसमन्वितः ॥ ४ ॥ स तदा तप आस्थाय प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम् ॥ रजसा रक्तवर्णं च करिष्यति जगत्त्रयम् ॥ ५ ॥ सगुणान्पंच भूतांश्च समुत्पाद्य महामतिः ॥ इंद्रियाणींद्रियेशांश्च मनःपूर्वान्समंततः ॥ ६ ॥ करिष्यति ततः सर्गं तेन कर्ता स उच्यते ॥ विश्वस्यास्य महाभाग त्वं वै पालयिता तथा ॥७॥ तद्भ्रुवोर्मध्यदेशाच्च क्रोधाद्रौद्र भविष्यति ॥ तपः कृत्वा महाघोरं प्राप्य शक्तिं तु तामसीम् ॥८॥ कल्पांते सोऽपि संहर्ता भविष्यति महामते ॥ तेनाहं त्वामुपायाता सात्विकीं त्वमवेहि माम् ॥ ९ ॥ स्थास्येऽहं त्वत्समीपस्था सदाऽहं मधुसूदन ॥ हृदये ते कृतावासा भवामि सततं किल ॥१०॥ विष्णुरुवाच ॥ श्लोकस्यार्धं मया पूर्वं श्रुतं देवि स्फुटाक्षरम् ॥ तत्केनोक्तं वरारोहे रहस्यं परमं शिवम् ॥११॥ तन्मे ब्रूहि वरारोहे संशयोऽयं वरानने ॥ निर्धनो हि यथा द्रव्यं तत्स्मरामि पुनः पुनः ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा महालक्ष्मीः स्मितानना ॥ उवाच परया प्रीत्या वचनं चारुहासिनी ॥ १३ ॥

तुम्हारे पास प्राप्त हुई हूं तुम मुझको सात्विकी शक्ति जानो ॥ ९ ॥ हे मधुसूदन मैं सदैव तुम्हारे समीपमें स्थित हूंगी, और मैं तुम्हारे हृदयमें निवास करती हुई निरन्तर स्थित रहूंगी ॥ १० ॥ विष्णु बोले हे देवी मैंने पूर्वमें स्फुट अक्षरसे आधा श्लोक सुना है हे वरारोहे वह किसने यह परमशिवदायक रहस्य कहा है॥११॥ हे वरारोहे सो कहो, मुझको इस बातमें संदेह है, जैसे दरिद्र धनको इस प्रकार उस श्लोकको मैं वारंवार स्मरण करता हूं ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले विष्णुके यह वचन सुनकर महालक्ष्मी हास्यरूप होकर वह चारुहासिनी सुन्दर वचन बोली ॥ १३ ॥

महालक्ष्मी बोली हे विष्णु मेरा वचन सुनो हे चतुर्भुज मैं सगुणा हूं मैं सगुणा निर्गुणा हूं ऐसी मुझको नहीं जानते ? ॥ १४ ॥ हे महाभाग उसको तुम जानो उसनेही सब प्रगट किया है, उसको वेदसार पवित्र भागवत जानो ॥ १५ ॥ हे शत्रुनिषूदन मैं देवीकी अपने ऊपर बडी कृपा मानतीहूं हे सुव्रत जिसने तुम्हारे हितके निमित्त यह परम गुह्य कहा है ॥ १६ ॥ मनमें इसकी सदा रक्षा करनी चाहिये इसको भूलना न चाहिये महाविद्याने सब शास्त्रोंका सार प्रकाशित किया है ॥ १७ ॥ इससे अधिक त्रिलोकीमें और कुछ जानने योग्य नहीं है तुम देवीके प्यारे हो इससे देवीने तुम्हारे प्रति ऐसा वचन कहा है ॥१८॥ व्यासजी बोले इस प्रकार महालक्ष्मी देवीके वचन सुनकर भगवान्ने उसको मंत्र मानकर हृदयमें धारण किया ॥ १९ ॥ कुछ समय उपरान्त उनकी नाभि कमलसे

महालक्ष्मीरुवाच ॥ शृणु शौरे वचो मह्यं सगुणाऽहं चतुर्भुजा ॥ मां जानासि न जानासि निर्गुणां सगुणालयाम् ॥ १४ ॥ त्वं जानीहि महाभाग तया तत्प्रकटीकृतम् ॥ पुण्यं भागवतं विद्धि वेदसारं शुभावहम् ॥ १५ ॥ कृपां च महतीं मन्ये देव्याः शत्रुनिषूदन ॥ यया प्रोक्तं परं गुह्यं हिताय तव सुव्रत ॥१६॥ रक्षणीयं सदा चित्ते न विस्मार्यं कदाचन ॥ सारं हि सर्वशास्त्राणां महाविद्याप्रकाशितम् ॥ १७ ॥ नातः परं वेदितव्यं वर्तते भुवनत्रये ॥ प्रियोऽसि खलु देव्यास्त्वं तेन ते व्याहृतं वचः ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो देव्या महालक्ष्म्याश्चतुर्भुजः ॥ दधार हृदये नित्यं मत्वा मंत्र मनुत्तमम् ॥ १९ ॥ कालेन कियता तत्र तन्नाभिकमलोद्भवः ॥ ब्रह्मा दैत्य भयात्रस्तो जगाम शरणं हरेः ॥२०॥ ततः कृत्वा महायुद्धं हत्वा तौ मधुकैटभौ ॥ जजाप भगवान्विष्णुः श्लोकार्धं विशदाक्षरम् ॥ २१ ॥ जपतं वासुदेवं च दृष्ट्वा देवः प्रजापतिः ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः कंजजः कमलापतिम् ॥ २२ ॥ किं त्वं जपसि देवेश त्वत्तः कोऽप्यधिकोऽस्ति वै ॥ यत्स्स्मृत्वा पुंडरीकाक्ष प्रीतोऽसि जगदीश्वर ॥ २३ ॥ हरिरुवाच ॥ मयित्वयि च या शक्तिः क्रियाकारणलक्षणा ॥ विचारय महाभाग या सा भगवती शिवा ॥ २४ ॥ यस्याधारे जगत्सर्गं तिष्ठत्यत्र महार्णवे ॥ साकारा या महाशक्तिरमेया च सनातनी ॥ २५ ॥

उत्पन्न हुए ब्रह्माजी दैत्योंके भयसे व्याकुल हो भगवानकी शरण हुए ॥२०॥ तब भगवान् महायुद्धकर मधु कैटभको मारकर उसी आधे श्लोकका जप करने लगे ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी वासुदेवको जप करते देखकर परम प्रसन्न हो कमलापतिसे पूंछने लगे ॥२२॥ हे देवेश ! तुम क्या जपते हो, क्या कोई तुमसे भी अधिक है हे पुण्डरीकाक्ष जगदीश्वर जिसको स्मरण कर तुम प्रसन्न होते हो ॥ २३ ॥ हरि भगवान् बोले मुझमें और तुममें जो क्रिया कारण लक्षणवाली शक्ति है हे महाभाग उसका विचार करो वही भगवती शिवा है ॥ २४ ॥ जिसके अधिकारमें उस महार्णवमें सब जगत् स्थित है वह साकार महाशक्ति

अमेया और सनातनी है ॥ २५ ॥ जिसके द्वारा यह चराचर जगत् विसृजन किया जाता है वही प्रसन्न होकर मनुष्योंकी मुक्तिके निमित्त वरदायिनी होती है ॥ २६ ॥ वही परमा विद्या मुक्तिकी हेतुभूत सनातनी है संसारके बध हेतु सर्वेश्वरी भी वही है ॥ २७ ॥ और मैं भी यह सब विश्व उसकी चित् शक्तिसे उत्पन्न है हे ब्रह्मन् हे पापरहित यह इस प्रकारसे जानो इसमें सन्देह करना न चाहिये ॥२८॥ उसीने जो आधे श्लोकमें मुझसे भागवत कही है द्वापरादि युगमें उसका व्यास द्वार विस्तार होगा ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले नारायणकी नाभि कमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्मासे विष्णुजीने उस भागवतको कहा उन्होंने महाबुद्धिमान् पुत्र नारदजीसे कहा ॥ ३० ॥ हे पुत्र शुकदेव नारद महर्षिने वह मुझे सुनाया मैंने इसको द्वादशस्कन्धमें पूर्ण की है ॥ ३१ ॥ हे महाभाग

यया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥ २६ ॥ सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥ संसारबंधहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ २७ ॥ अहंत्वमखिलं विश्वं तस्याश्चिच्छक्तिसंभवम् ॥ विद्धि ब्रह्मन्न संदेहः कर्तव्यः सर्वदाऽनघ ॥ २८ ॥ श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं तद्वै भागवतं किल ॥ विस्तरो भविता तस्य द्वापरादौ युगे तथा ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मणा संगृहीतं च विष्णोस्तु नाभिपंकजे ॥ नारदाय च तेनोक्तं पुत्रायामितबुद्धये ॥ ३० ॥ नारदेन तथा मह्यं दत्तं हि मुनिना पुरा ॥ मयाकृत मिदं पूर्णं द्वादशस्कंधविस्तरम् ॥ ३१ ॥ तत्पठस्व महाभाग पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ पंचलक्षण युक्तं च देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ ३२ ॥ तत्त्वज्ञानरसोपेतं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥ धर्मशास्त्रसमं पुण्यं वेदार्थैनोपबृंहितम् ॥ ३३ ॥ वृत्रासुरवधोपेतं नानाख्यानकथायुतम् ॥ ब्रह्मविद्यानिधानं तु संसारार्णवतारकम् ॥३४॥ गृहाण त्वं महाभाग योग्योऽसि मतिमत्तरः ॥ पुण्यं भागवतं नाम पुराण पुरुषर्षभ ॥३५॥ अष्टादशसहस्राणां श्लोकानां कुरु संग्रहम् ॥ अज्ञाननाशनं दिव्यं ज्ञानभास्करबोधकम् ॥ ३६ ॥ सुखदं शांतिदं धन्यं दीर्घायुष्यकरं शिवम् शृण्वतां पठतां चेदं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥ ३७ ॥

आप इस ब्रह्म सम्मित पुराणका पाठ करो यह पांच लक्षण युक्त देवीके उत्तम चरित्रवाला है ॥ ३२ ॥ यह तत्व ज्ञानके रससे युक्त सबके निमित्त उत्तमोत्तम धर्मशास्त्रके समान पुण्य वेदार्थसे संयुक्त ॥ ३३ ॥ वृत्रासुरके बधसे युक्त अनेक व्याख्यान कथाओंसे व्याप्त ब्रह्म विद्याका निधान संसार सागरकी तारनेवाली है ॥ ३४ ॥ हे महाभाग ! मतिमान् आप इसको ग्रहण कीजिये कारण कि तुम इसके योग्य हो हे पुरुष श्रेष्ठ यह पवित्र पुण्य भागवत नाम पुराण है ॥ ३५ ॥ अठारह सहस्र श्लोकोंसे पूर्ण अज्ञान नाशक दिव्य ज्ञानरूपी सूर्यकी बोधन करनेवाली कथा है ॥३६॥ सुख और शांतिदायक दिव्य दीर्घायुष्य करनेवाली दिव्य

दे. भा. सुनने पढ़नेवालोंको पुत्र पौत्रकी बढानेवाली है ३७ ॥ और लोम हर्षणका पुत्र यह धर्मात्मा मेरा शिष्य तुम्हारे साथ उस पौराणिक शुभ संहिताका पाठ
॥४३॥ करेगा ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले जब व्यासजीने मुझसे और शुकदेवसे ऐसा कहा तब मैंने विस्तारके सहित उस सम्पूर्ण पुराणको ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ शुक
भी इस पुराणको ग्रहण कर व्यासके आश्रममें रहे और देवीभागवतमें प्रतिपादित अर्थ संन्यासाश्रमके विना स्वीकार किये चित्त विक्षेपादि द्वारा अनुभव
होनेको समर्थ नहीं है सो किस प्रकारसे संन्यासाश्रम पूर्वक वह तत्त्व मुझको प्राप्त हो ऐसी चिन्ता करते हुए शर्म शांतिको न प्राप्त हुये जिस प्रकारसे ब्रह्म पुत्र
॥४०॥ और वह एकान्तसे भी विकल शून्यसे लक्षित होते थे न अति भोजन और न उपवासमें प्रीति करते थे ॥ ४१ ॥ इस प्रकार पुत्रको चिन्तित देख

शिष्योऽयं मम धर्मात्मा लोमहर्षणसंभवः ॥ पठिष्यति त्वया सार्धं पुराणं संहितां शुभाम् ॥ ३८ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तं तेन पुत्राय
मह्यं च कथितं किल ॥ मया गृहीतं तत्सर्वं पुराणं चातिविस्तरम् ॥ ३९ ॥ शुकोऽधीत्य पुराणं तु स्थितो व्यासाश्रमे शुभे ॥ न लेभे
शर्म कर्मात्मा ब्रह्मात्मजः इवापरः ॥ ४० ॥ एकांतसेवी विकलः स शून्य इव लक्ष्यते ॥ नात्यंतभोजनासक्तो नोपवासरतस्तथा ॥४१॥
चिंताविष्टं शुकं दृष्ट्वा व्यासः प्राहसुतं प्रति ॥ किं पुत्र चिंत्यते नित्यं कस्माद् व्यग्रोऽसि मानद ॥ ४२ ॥ आस्से ध्यानपरो नित्यमृ
णग्रस्त इवाधनः ॥ का चिंता वर्तते पुत्र मयि ताते तु तिष्ठति ॥ ४३ ॥ सुखं भुंक्ष्व यथाकामं मुंच शोकं मनोगतम् ॥ ज्ञानं चिंतय
शास्त्रोक्तं विज्ञाने च मतिं कुरु ॥ ४४ ॥ न चेन्मनसि ते शांतिर्वचसा मम सुव्रत ॥ गच्छ त्वं मिथिलां पुत्र पालितां जनकेन ह ॥४५॥
स ते मोहं महाभाग नाशयिष्यति भूपतिः ॥ जनको नाम धर्मात्मा विदेह सत्यसागरः ॥४६॥ तं गत्वा नृपतिं पुत्र संदेहं स्वं निवर्तय ॥
वर्णाश्रमाणां धर्मास्त्वं पृच्छ पुत्र यथातथम् ॥ ४७ ॥

कर व्यासजी बोले मानद पुत्र तुम नित्य क्या शोचते रहते हो और क्यों व्यग्र हो ॥४२॥ अधन जैसे ऋणग्रस्त होनेसे चिन्ता करता है इस प्रकारसे नित्य
ध्यानमें तत्पर रहते हो हे पुत्र मेरे रहते तुम क्या चिन्ता करते हो ॥ ४३ ॥ यथाकाम सुख भोगो शोकको त्याग करो शास्त्रोक्त ज्ञानका विचारकर विज्ञा
भा. टी. प्र. नमें मति करो ॥ ४४ ॥ हे सुव्रत जो मेरे वचनसे तुमको शांति नहीं होती तो हे पुत्र तुम जनक पालित मिथिला नगरीको गमन करो ॥ ४५ ॥ हे महाभाग
अ. १८ वह राजा तुम्हारे मोहका नाश करेगा, वह जनक नाम विदेह सत्यसागर बडे महात्मा हैं ॥ ४६ ॥ हे पुत्र उस राजाके पास जाकर अपना सन्देह निवृत्त
पूकरो हे पुत्र उनसे यथायोग्य वर्णाश्रमके धर्म छौ ॥ ४७ ॥

वह राजर्षि जीवन्मुक्त ब्रह्म ज्ञानमें मतिवाला शुचि यथार्थवक्ता शान्तयोगी सदा योग प्रिय है ॥४८॥ सूतजी बोले यह महातेजस्वी व्यासजीके वचन सुन कर अरणी संभव महातेजस्वी शुकदेवजी बोले ॥ ४९ ॥ हे महात्मन् ! मेरे चित्तमें यह वार्ता दम्भरूप विदित होती हैं कि विदेह कैसे जीवनन्मुक्त राज्य करते हुए शान्त हैं ॥ ५० ॥ हे पिता यह जनक राजा वंध्या पुत्रके समान विदित होता है ब्रह्मज्ञानी होकर विदेह कैसे राज्य करता है यह मुझको बड़ा सन्देह है ॥५१॥ राजश्रेष्ठ विदेह राजके देखनेकी मेरी इच्छा है, जलमें पद्म पत्रके समान वह इस संसारमें कैसे स्थित हैं॥ ५२ ॥ हे तात विदेहपर मेरा यह बडा सन्देह है, हे तात क्या वह सौगत नास्तिकोंके समान देहपातको जैसे वे मोक्ष मानते हैं चार्वाकादि तद्वत् वह राज्यभोगमें सुखी हुए यावज्जीव सुखानुभव

जीवन्मुक्तः स राजर्षिर्ब्रह्मज्ञानमतिः शुचिः ॥ तथ्यवक्ताऽतिशांतश्च योगी योगप्रियः सदा ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तत्य व्यासस्यामित तेजसः ॥ प्रत्युवाच महातेजाः शुकस्चारणिसंभवः ॥ ४९ ॥ दंभोऽयं किल धर्मात्मन्भाति चित्ते ममाधुना ॥ जीवन्मुक्तो विदेहश्च राज्यं शास्तिमुदाऽन्वितः ॥५०॥ वंध्यापुत्र इवाभाति राजासौ जनकःपितः ॥ कुर्वन्राज्यं विदेहः किं संदेहोऽयं ममाद्भुतः ॥५१॥ द्रष्टुमिच्छाम्यहं भूप विदेहं नृपसत्तमम् ॥ कथंतिष्ठति संसारे पद्मपत्रमिवांभसि ॥ ५२ ॥ संदेहोऽयं महास्तात विदेहे परिवर्तते । मोक्षः किं वदतां श्रेष्ठः सौगतानामिवापरः ॥ ५३ ॥ कथं भुक्तममुक्तं स्यादकृतं च कृतं कथम् ॥ व्यवहारः कथं त्याज्य इन्द्रियाणां महामते ॥५४॥ माता पुत्रस्तथा भार्या भगिनी कुटला तथा ॥ भेदाभेदः कथं नस्याद्ध्येतन्मुक्तता कथम् ॥ ५५ ॥ कटु क्षारं तथा तीक्ष्णं कषायं मिष्टमेव च ॥ रसना यदि जानाति भुंक्ते भोगाननुत्तमान् ॥ ५६ ॥ शीतोष्णसुखदःखादिपरिज्ञानं यदा भवेत् ॥ मुक्तता कीदृशी तात सन्देहोऽयं ममाद्भुतः ॥ ५७ ॥

करते हुए जीवन्मुक्त हैं ॥५३॥ मुक्त अमुक्त कैसे हो सकता है कृत अकृत कैसे हो सकता है हे महामते ! इन्द्रियोंका व्यवहार कैसे त्याग हो सकता है ॥ ५४ ॥ माता पुत्र भार्या भगिनी व्यभिचारिणी इनमें भेदाभेद किस प्रकारसे नहीं हो सकता और जो इनमें भेदाभेद हो वो मुक्ति कैसे हो सकती है ॥ ५५ ॥ कडुवा खारा तीखा कसैला मीठा यह जिह्वा जानती है और श्रेष्ठ भोगोंको भोगती है ॥ ५६ ॥ शीत उष्ण सुख दुःखादिका जब विज्ञान होता है वो हे पिताजी ! फिर मुक्तता कैसी ! यह तो मुझे बड़ा संदेह है ॥ ५७ ॥

दे. भा.
॥४४॥

शत्रु मित्रका परिज्ञान सदा वैर और प्रीतिका करनेवाला है फिर क्या राजा इनके व्यवहारमें स्थित नहीं होते ॥ ५८ ॥ चोर और तपस्वीको वह किस प्रकार समान मानते हैं और जो असमान बुद्धिहो तो हे तात ! फिर मुक्तता कैसी हो सकती है ॥ ५९ ॥ मैंने तो कोई प्रथम जीवन्मुक्त राजा नहीं देखा हे तात यह मुझको बड़ी शंका है कि राजा घरमें स्थित हुआ कैसे मुक्त है ॥ ६० ॥ उस राजाके गुण श्रवण कर मेरी बहुत देखनेकी इच्छा हुई है सन्देह निवृत्तिके निमित्त मिथिलाको जाताहूं ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां प्रथमस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार कहकर शुकदेवजी पिताके चरणोंमें पतितहुए और हाथ जोड़कर वह महामना जानेकी इच्छासे बोले ॥ १ ॥ हे महाभाग ! आपसे जानेको पूँछता हूं और जनकसे पालित विदेहोंके

शत्रुमित्रपरिज्ञानं वैरप्रीतिकरं सदा ॥ व्यवहारे परे तिष्ठन्कथं न कुरुते नृपः ॥ ५८ ॥ चौरं वा तापसं वाऽपि समानं मन्यते कथम् ॥ असमा यदि बुद्धिः स्यान्मुक्तता तर्हि कीदृशी ॥ ५९ ॥ दृष्टपूर्वो न मे कश्चिज्जीवन्मुक्तश्च भूपतिः ॥ शंकेयं महती तात गृहे मुक्तः कथं नृपः ॥ ६० ॥ दिदृक्षा महती जाता श्रुत्वा तं भूपतिं तथा ॥ संदेहविनिवृत्त्यर्थं गच्छामि मिथिलां प्रति ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा पितरं पुत्रः पादयोः पतितः शुकः ॥ बद्धांजलिरुवाचेदं गंतुकामो महामनाः ॥ १ ॥ आपृच्छे त्वां महाभाग ग्राह्यं ते वचनं मया ॥ विदेहान्द्रष्टुमिच्छामि पालिताञ्जनकेन तु ॥ २ ॥ विना दंडं कथं राज्यं करोति जनकः किल ॥ धर्मे न वर्तते लोको दंडश्चेन्न भवद्यदि ॥ ३ ॥ धर्मस्य कारणं दंडो मन्वादिप्रहितः सदा ॥ स कथं वर्तते तात संशयोऽयं महान्मम ॥ ४ ॥ मम माता त्वियं वंध्या तद्वद्भाति विचेष्टितम् ॥ पृच्छामि त्वां महाभाग गच्छामि च परंतप ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ तं दृष्ट्वा गंतुकामं च शुकं सत्यवतीसुतः ॥ आलिंग्योवाच पुत्रं तं ज्ञानिनं निस्पृहं दृढम् ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ स्वस्त्यस्तु शुक दीर्घायुर्भव पुत्र महामते ॥ सत्यां वाचं प्रदत्त्वा मे गच्छ तात यथासुखम् ॥ ७ ॥

जानेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ कि, जनकजी किस प्रकारसे बिना दंडके राज्यकरते हैं जो दंड न हो तो लोक धर्ममें नहीं वर्त सकते ॥ ३ ॥ धर्मका कारण दंड है ऐसा मन्वादिने पहले कह रक्खा है.हे तात ! वह कैसे वर्तता है यह मुझे बड़ा सन्देह है ॥४॥ यह मेरी माता वन्ध्या है यह चेष्टा तो ऐसी विदित होती है हे महाभाग ! आपसे पूँछकर मैं जाता हूं ॥ ५ ॥ सूतजी बोले व्यासजी शुकदेवको जानेमें तत्पर देखकर आलिंगन करके ज्ञानी निःस्पृह दृढसे बोले ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले हे शुक ! तुम्हारा मंगल हो तुम दीर्घायु हो हे तात ! मेरी सत्यवाणी सुनकर फिर आऊंगा ऐसी प्रतिज्ञा देकर सुखपूर्वक जाओ ॥ ७ ॥

और जाकर वहांसे हमारे आश्रममें आओ हे पुत्र! तुम और कहीं मतजाना ॥ ८ ॥ हे पुत्र मैं तुम्हारे मुखकमलको देखकर सुखसे जीनेकी इच्छा करता हूं हे पुत्र! तुम्हारे देखे विना मेरे प्राण दुःखी होते हैं ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! जनकको देखकर और सन्देहको निवृत्त करके यहां आकर वेदाध्ययन करते हुए सुखसे स्थित रहो ॥ १० ॥ सूतजी बोले ऐसा कहनेपर प्रणाम करके और प्रदक्षिणा करके धनुषसे छूटे बाणके समान शुकदेवजी वेगसे गमन करने लगे ॥ ११ ॥ अनेक देश और दिशावर्ति लोकोंको देखते वनवृक्ष फलते हुए क्षेत्रोंको देखते ॥ १२ ॥ तप करते हुए तपस्वी और दीक्षासे युक्त याजकोंको योगाभ्यासमें रत योगी और वनवासी वानप्रस्थोंको देखते हुए ॥ १३ ॥ शैव पाशुपत और शाक्त वैष्णव इन अनेक धर्मवालोंको देखते मुनि गमन करने लगे ॥ १४ ॥

आगंतव्यं पुनर्गत्वा ममाश्रममनुत्तमम् ॥ न कुत्रापि च गंतव्यं त्वया पुत्र कथंचन ॥८॥ सुखं जीवामि पुत्राहं दृष्ट्वा ते मुखपंकजम् ॥ अपश्यन्दुःखमाप्नोमि प्राणस्त्वमसि मे सुत ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा त्वं जनकं पुत्र संदेहं विनिवर्त्य च ॥ अत्रागत्य सुखं तिष्ठ वेदाध्ययनतत्परः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तः सोऽभिवाद्यार्यं कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ॥ चलितस्तरसाऽतीव धनुर्मुक्तः शरो यथा ॥११॥ संपश्यन्विविधान्देशाँल्लोकांश्च वित्तधर्मिणः ॥ वनानि पादपांश्चैव क्षेत्राणि फलितानि च ॥ १२ ॥ तापसांस्तप्यमानांश्च याजकान्दीक्षयाऽन्वितान् ॥ योगाभ्यासरतान्योगिवानप्रस्थान्वनौकसः ॥१३॥ शैवान्पाशुपतांश्चैव सौरान्छाक्तांश्च वैष्णवान् ॥ वीक्ष्य नानाविधान्धर्माञ्जगामाति स्मयन्मुनिः ॥ १४ ॥ वर्षद्वयेन मेरुं चे समुल्लंघ्य महामतिः ॥ हिमाचलं च वर्षेण जगाम मिथिलां प्रति ॥ १५ ॥ प्रविष्टो मिथिलां मध्ये पश्यन्सर्वर्द्धिमुत्तमाम् ॥ प्रजाश्च सुखिनः सर्वाः सदाचाराः सुसंस्थिताः ॥ १६॥ क्षत्रा निवारितस्तत्र कस्त्वमत्र समागतः ॥ किं ते कार्यं वदस्वेति पृष्टतेन न चाब्रवीत ॥१७॥ निःसृत्य नगरद्वारात्स्थितः स्थाणुरिवाचलः ॥ विस्मितोऽतिहसंस्तस्थौ वचो नोवाच किंचन ॥१८॥ प्रतीहार उवाच ॥ ब्रूहि मूकोऽसि किं ब्रह्मन्किमर्थं त्वमिहागतः ॥ चलनं न विना कार्यं न भवेदिति मे मतिः ॥ १९ ॥

वह महामति दो वर्षमें मेरुका उल्लंघन करके और एक वर्षमें हिमाचलका उल्लंगन करके मिथिलाके प्रति प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ मिथिलामें प्रवेश करके उत्तम ऋद्धिको देखते हुए. जहाँकी प्रजा सब सुखी सदाचारसे सम्पन्न थी ॥ १६ ॥ वहाँ द्वारपालने इनको निवारण किया कि; तुम कौन ! कहाँसे आये हो ! क्या तुम्हारा कार्य है ऐसा पूंछनेपर इन्होंने कुछ उत्तर न दिया ॥ १७ ॥ और नगरके द्वारदेशमें गमनागमनके मार्गको छोड़ स्थाणुके समान अचल विस्मित हँसते हुए स्थित रहे और कुछ न बोले ॥ १८ ॥ प्रतिहारीने कहा हे ब्रह्मन्! कहिये क्या आप मूक हैं ! क्यों इस स्थानपर आये हैं ! विना कार्य कोई चलता नहीं, ऐसा मेरे

विचारमें है ॥ १९ ॥ हे ब्राह्मण ! इस नगरमें राजाकी आज्ञासेही प्रवेश करना होता है, विना कुल शील जाने यहां प्रवेश नहीं होता ॥२०॥ तुम अवश्य कोई वेद ज्ञाता तेजस्वी ब्राह्मण विदित होते हो, मुझसे कुल और कार्य कहकर अवश्य चलेजाओ ॥ २१ ॥ शुकदेवजी बोले मैं जिसनिमित्त यहां आया था सो तुम्हारे वचनसेही प्राप्त होगया "अर्थात् राजा ज्ञानी नहीं है" कि हम सरीखोंका भी विदेहनगरमें प्रवेश दुर्लभ है ॥ २२ ॥ यह मेरी दुर्बुद्धिकामोह था जो दो पर्वतोंका अतिक्रमण करके राजाके देखनेकी इच्छासे पर्यटन करता यहाँ आया हूं ॥ २३ ॥ हमारे पिताने राजाको ज्ञानी कहकर मुझे वंचित किया इसमें किसको दोष दे, हे महाभाग कर्मसेही हम पृथ्वीमें भ्रमण करते हैं ॥ २४ ॥ पुरुषको धनको आशा ही भ्रमण कराती है सो मुझको नहीं है तोभी मैं

राजाज्ञया प्रवेष्टव्यं नगरेऽस्मिन्सदा द्विज ॥ अज्ञातकुलशीलस्य प्रवेशो नात्र सर्वथा ॥२०॥ तेजस्वी भासि नूनं त्वं ब्रह्मणो वेदवित्तमः ॥ कुलं कार्यं च मे ब्रूहि यथेष्टं गच्छ मानद ॥ २१ ॥ शुक उवाच ॥ यदर्थमागतोऽस्म्यत्र तत्प्राप्तं वचनात्तव ॥ विदेहनगरं द्रष्टुं प्रवेशो यत्र दुर्लभः ॥ २२ ॥ मोहोऽयं मम दुर्बुद्धेः समुल्लंघ्य गिरिद्वयम् ॥ राजानं द्रष्टुकामोऽहं पर्यटन्समुपागतः ॥ २३ ॥ वंचितो ऽहं स्वयं पित्रा दूषणं कस्य दीयते ॥ भ्रामितोऽहं महाभाग कर्मणा वा महीतले ॥ २४ ॥ धनाशा पुरुषस्येह परिभ्रमणकारणम् ॥ सा मे नास्ति तथाऽप्यत्र संप्राप्तोऽस्मि भ्रमात्किल ॥२५॥ निराशस्य सुखं नित्यं यदि मोहे न सज्जति ॥ निराशोऽहं महाभाग मग्नोऽस्मिन्मोहसागरे ॥ २६ ॥ क्व मेरुर्मिथिला क्वेयं पद्भ्यां च समुपागतः ॥ परिभ्रमफलं किं मे वंचितो विधिना किल ॥२७॥ प्रारब्धं किल भोक्तव्य शुभं वाऽप्यथवाऽशुभम् ॥ उद्यमस्तद्वशे नित्यं कारयत्येव सर्वथा ॥ २८ ॥ न तीर्थं न च वेदोऽत्र यदर्थमिह मे श्रमः ॥ अप्रवेशः पुरे जातो विदेहो नाम भूपतिः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा विररामाशु मौनीभूत इव स्थितः ॥ ज्ञातो हि प्रतिहारेण ज्ञानी कश्चिद् द्विजोत्तमः ॥ ३० ॥

भ्रमसे यहां प्राप्त हो गया था ॥ २५ ॥ यदि मोहमें मज्जित न हो तो निराशावालेको नित्य सुख है हे महाभाग ! मैं निराश होकर भी मोहसागरमें मग्न होता हूं ॥ २६ ॥ कहाँ मेरु ! कहां मिथिला ! और पैरोंसे आना, मेरे भ्रमणका क्या फल है ! विधाताने मुझे वंचित किया ॥२७॥ शुभ वा अशुभप्रारब्ध भोगना ही पडता है ! यह प्रारब्धका भोग है, उद्यम उसीके वशमें हैं जो अपने अधीन करता है ॥ २८ ॥ यहां तीर्थ और वेद भी नहीं है जिसके निमित्त मेरा श्रम होता विदेह राजाके तो पुरमें प्रवेश ही नहीं होता, अर्थात् जहां राजा रहता है वहां प्रवेशही नहीं है ॥ २९ ॥ ऐसा कहकर शुकदेव मौन हो विरामको प्राप्त हुए प्रतिहारने जाना कि यह कोई ब्राह्मण श्रेष्ठ ज्ञानी है ॥ ३० ॥

तब द्वारपाल मुनिसे सामपूर्वक कहने लगा, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! जहां तुम्हारा कार्य हो वहां यथेष्ट गमन करो ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मण ! यह मेरा अपराध है जो मैंने आपको निवारण किया हे महाभाग ! वह क्षमा कीजिये ! विमुक्तोंको क्षमा ही बल है ॥ ३२ ॥ शुकदेवजी बोले हे द्वारपाल ! इसमें तुम्हारा दोष नहीं, तुम सदा परतंत्रहो, सेवकको यथोचित प्रभुका कार्य करना चाहिये ॥ ३३ ॥ जो तुमने मुझे रोका इसमें राजाका भी दोष नहीं है कारण कि पंडितको चोर शत्रुका ज्ञान सर्वथा करना चाहिये ॥ ३४ ॥ मेराही सर्वथा दोष है जो मैं यहां आया हूं, दूसरेके घरमें गमनही लघुताका कारण है ॥ ३५ ॥ प्रतिहारी बोला हे द्विज ! क्या दुःख ? और क्या ? सुख है शुभकी इच्छावालेको क्या है ? कौन शत्रु और हितका कर्ता है ? यह सब हमसे कहिये ॥ ३६ ॥ शुकदेवजी बोले सब

सामपूर्वमुवाचासौ तं क्षत्ता स्थितं मुनिम् ॥ गच्छ भो ते यत्र कार्यं यथेष्टं द्विजसत्तम ॥ ३१ ॥ अपराधो मम ब्रह्मन्यन्निवारितवानहम् ॥ तत्क्षंतव्यं महाभाग विमुक्तानां क्षमा बलम् ॥ ३२ ॥ शुक उवाच ॥ किं तेऽत्र दूषणं क्षत्तः परतन्त्रोऽसि सर्वदा ॥ प्रभुकार्यं प्रकर्तव्यं सेवकेन यथोचितम् ॥ ३३ ॥ न भूपदूषणं चात्र यदहं रक्षितस्त्वया ॥ चोरशत्रुपरिज्ञानं कर्तव्यं सर्वथा बुधैः ॥ ३४ ॥ ममैव सर्वथा दोषो यदहं समुपागतः ॥ गमनं परगेहे यल्लघुतायाश्च कारणम् ॥ ३५ ॥ प्रतीहार उवाच ॥ किं सुखं द्विज किं दुःखं किं कार्यं शुभमिच्छता ॥ कः शत्रुर्हितकर्ता को ब्रूहि सर्वं ममाद्य वै ॥ ३६ ॥ शुक उवाच ॥ द्वैविध्यं सर्वलोकेषु सर्वत्र द्विविधो जनः ॥ रागी चैव विरागी च तयोश्चित्तं द्विधा पुनः ॥ ३७ ॥ विरागी त्रिविधः कामं ज्ञातोऽज्ञातश्च मध्यमः ॥ रागी च द्विविधः प्रोक्तो मूर्खश्च चतुरस्तथा ॥ ३८ ॥ चातुर्यं द्विविधं प्रोक्तं शास्त्रजमतिजं तथा ॥ मतिस्तु द्विविधा लोकेयुक्ताऽयुक्तेति सर्वथा ॥ ३९ ॥ प्रतीहार उवाच ॥ यदुक्तं भवता विद्वन्नार्थज्ञोऽहं द्विजोत्तम ॥ तत्सर्वं विस्तरेणाद्य यथार्थं वद सत्तम ॥ ४० ॥ शुक उवाच ॥ रागो यस्यास्ति संसारे स रागीत्युच्यते ध्रुवम् ॥ दुखं बहुविधं तस्य सुखं च विविधं पुनः ॥ ४१ ॥

लोकोंमें दो ही प्रकारके मनुष्य होते हैं रागी और विरागी उनका चित्त भी दो प्रकारका होता है ॥ ३७ ॥ विरागी भी तीन प्रकारका होता है तीव्र वैरागी, मन्द वैरागी और मध्यम और मूर्ख और चतुरके भेदसे रागी दो प्रकारका है ॥ ३८ ॥ शास्त्र और मतिसे उत्पन्न दो प्रकारकी चतुरता होती है, युक्त अयुक्तके भेदसे दो प्रकारकी मति होती है ॥ ३९ ॥ प्रतिहारने कहा भगवन् ! जो कुछ आपने कहा मैंने उसको नहीं समझा, आप वह सब विस्तार पूर्वक कथन कीजिये ॥ ४० ॥ शुकदेवजी बोले जिसको संसारमें प्रेम है वह रागी कहाता है उसको अनेक प्रकारका सुख दुःख होता है ॥ ४१ ॥

धन सुत दारा मान विजयको प्राप्त होकर सुख और इसके अभावमें अनेक दुःख होते हैं ॥ ४२ ॥ जिससे प्राणीको यथार्थ सुख मिले वही उपाय करना चाहिये और जो सुखमें विघ्न करे वही उसका शत्रु जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ रागयुक्तको भी मित्र सुखदाता है इसमें शास्त्रके अवलोकनसे ज्ञानको प्राप्त हुआ चतुर मोहको प्राप्त नहीं होता, और मूर्ख सर्वत्र मोहको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ विरक्त और आत्मामें रक्तको एकान्त सेवन ही सुख है, आत्मा और वेदान्तका चिन्तन करना ही उनको सुखदायक है ॥ ४५ ॥ और यह संसारका कथनादि सम्पूर्ण दुःखरूप है और शुभकी इच्छा करनेवाले विद्वानीके बहुत शत्रु होते हैं ॥४६॥ काम क्रोध प्रमाद ये अनेक प्रकारके शत्रु हैं इसमें सन्तोषरूपी बन्धुके समान कोई त्रिलोकीमें नहीं हैं ॥४७॥ सूतजी बोले ये उनके

धनं प्राप्य सुतान्दारान्मानं च विजयं तथा ॥ तदाप्राप्य महद्दुःखं भवत्येव क्षणेक्षणे ॥ ४२ ॥ कार्यं तस्य सुखोपायः कर्तव्यं सुखसाधनम् ॥ तस्यारातिः स विज्ञेयः सुखविघ्नं करोति यः ॥४३॥ सुखोत्पादयिता मित्रं रागयुक्तस्य सर्वदा ॥ चतुरो नैव मुह्येत मूर्खः सर्वत्र मुह्यति ॥४४॥ विरक्तस्यात्मरक्तस्य सुखमेकांतसेवनम् ॥ आत्मानुचिंतनं चैव वेदांतस्य च चिंतनम् ॥ ४५ ॥ दुःखं तदेतत्सर्वं हि संसारकथनादिकम् ॥ शत्रवो बहवस्तस्य विज्ञस्य शुभमिच्छतः ॥४६॥ कामः क्रोधः प्रमादश्च शत्रवो विविधाः स्मृताः ॥ बन्धुः संतोष एवास्य नान्योऽस्ति भुवनत्रये ॥ ४७॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मत्वा तं ज्ञानिनं द्विजम् ॥ क्षत्ता प्रवेशयामास कक्षां चातिमनोरमाम् ४८॥ नगरं वीक्षमाणः संस्त्रैविध्यजनसंकुलम् ॥ नानाविपणिद्रव्याढ्यं क्रयविक्रयकारकम् ॥४९॥ रागद्वेषयुतं कामलोभमोहाकुलं तथा ॥ विवदत्सु जनाकीर्णं वसुपूर्णं महत्तरम् ॥५०॥ पश्यन्स त्रिविधाँल्लोकान्प्रासरद्राजमंदिरम् ॥ प्राप्तः परमतेजस्वी द्वितीय इव भास्करः ॥५१॥ निवारितश्च तत्रैव प्रतीहारेण काष्ठवत् ॥ तत्रैव च स्थितो द्वारि मोक्षमेवानुचिंतयन् ॥ ५२ ॥

वचन सुन और उनको ब्राह्मण ज्ञानी मानकर द्वारपालने मनोरम कक्षा (मार्ग) से उनका प्रवेश कराया ॥४८॥ वे त्रिविध जनोंसे संकुल नगरको देखते हुए कि जहांपर अनेक द्रव्य व्यापारसे भरे बाजार क्रय विक्रयसे संयुक्त ॥४९॥ तथा राग द्वेषसे युक्त काम लोभ मोहसे व्याकुल विवाद करते जनोंसे आकीर्ण, धनसे अतिशयपूर्ण॥५०॥इस प्रकार त्रिविध प्रजाको देखते राजमंदिरकी ओर चले और वे परम तेजस्वी दूसरे सूर्यके समान यहां प्राप्त हुए ॥५१॥ वहांपर द्वार पालने निवारण किया तब काष्ठके समान द्वारपर मार्गकी चिन्ता करते स्थित रहे ॥ ५२ ॥

छायामें और धूपमें समदर्शी महातपस्वी एकान्तमें ध्यान किये स्थाणुके समान अचल स्थित रहे ॥ ५३ ॥ तब एक मुहूर्तमें राजाका अमात्य (मंत्री) आकर हाथ जोड़कर राजमंदिरकी दूसरी कक्षामें प्रवेश करता हुआ ॥ ५४ ॥ वहां दिव्य मनोरम फूले वृक्षोंका बाग था, उस वनको दिखाकर और अतिथि सत्क्रिया करके ॥ ५५ ॥ वहां वारमुखी स्त्रियें जो राजाकी सेवामें परायण थीं, जो गीतवादित्रमें कुशल और कामशास्त्रमें विशारद थीं ॥ ५६ ॥ मंत्रिश्रेष्ठने उनको शुकदेवजीकी सेवाके निमित्त आज्ञा दी, और आप मंत्री वहांसे चला आया, शुकदेवजी वहां स्थित रहे ॥५७॥ उन स्त्रियोंने परमभक्तिसे यथाविधि शुकदेवकी पूजा की और देशके अनुसार उत्पन्न अन्नसे भी सत्कार किया ॥५८॥ फिर वे अन्तःपुरकी रहनेवालीं उनको अन्तःपुरका कानन जो बड़ा

छायायामातपे चैव समदर्शी महातपाः ॥ ध्यानं कृत्वा तथैकांते स्थितां स्थाणुरिवाचलः ॥५३॥ तं मुहूर्तादुपागत्य राज्ञोऽमात्यः कृतांजलिः ॥ प्रावेशयत्ततः कक्षां द्वितीयां राजवेश्मनः ॥ ५४ ॥ तत्र दिव्यं मनोरम्यं पुष्पितं दिव्यपादपम् ॥ तद्वनं दर्शयित्वा तु कृत्वा चातिथिसत्क्रियाम् ॥ ५५ ॥ वारमुख्याः स्त्रियस्तत्र राजसेवापरायणाः ॥ गीतवादित्रकुशलाः कामशास्त्रविशारदाः ॥५६॥ ता आदिश्य च सेवार्थं शुकस्य मंत्रिसत्तमः ॥ निर्गतः सदनात्तस्माद्व्यासपुत्रः स्थितस्तदा ॥ ५७ ॥ पूजितः परया भक्त्या ताभिः स्त्रीभिर्यथाविधि ॥ देशकालोपपन्नेन नानान्नेनातितोषितः ॥ ५८ ॥ ततोऽतःपुरवासिन्यस्तस्यांतः पुरकाननम् ॥ रम्यं संदर्शयामासुरंगनाः काममोहिताः ॥ ॥५९॥ स युवा रूपवान्कांतो मृदुभाषी मनोरमः ॥ दृष्ट्वा ता मुमुहुः सर्वास्तं च काममिवापरम् ॥ ६० ॥ जितेंद्रियं मुनिं मत्वा सर्वाः पर्यचरंस्तदा ॥ आरणेयस्तु शुद्धात्मा मातृभावमकल्पयत् ॥ ६१ ॥ आत्मारामो जितक्रोधो न हृष्यति न तप्यति ॥ पश्यंस्तासां विकारांश्च स्वस्थ एव स तस्थिवान् ॥ ६२ ॥ तस्मै शय्यां सुरम्यां च ददुर्नार्यः सुसंस्कृताम् ॥ परार्ध्यास्तरणोपेतां नानोपस्करसंवृताम् ॥ ६३ ॥ स कृत्वा पादशौचं च कुश पाणिरतंद्रितः ॥ उपास्य पश्चिमां सध्यां ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ ६४ ॥

मनोहर था वह काममोहित होकर दिखाती हुई ॥५९॥ वे युवा रूपवान् मनोहर मृदुभाषी मनोरम थे, उनको कामके समान देखकर सब मोहित होगईं ॥ ६० ॥ मुनिको जितेन्द्रिय मानकर सब सेवा करने लगीं, और शुद्धात्मा व्यास पुत्र उनको माता जानते हुए ॥ ६१ ॥ वे आत्माराम क्रोधजित् न प्रसन्न होते और न दुःखी होते थे, और उनके विकार देखकर स्थित रहे ॥ ६२ ॥ स्त्रियोंने उनके निमित्त बड़ी मनोहर शय्या प्रदान की, जो बहुमूल्य वस्त्रोंसे युक्त अनेक सामग्री सहित थी ॥ ६३ ॥ वे आलस्य रहित शुकदेव चरण धोकर कुश हाथमें लिये पश्चिमसंध्याकी उपासना करके ध्यान करने लगे ॥६४॥

एक पहर ध्यान करनेके उपरान्त शयन करने गये और दो पहर शयन करके फिर उठ बैठे ॥ ६५ ॥ और फिर पिछली रातमें भी ध्यान करने लगे, स्नान उपरान्त प्रभात क्रिया करके फिर सावधान हो स्थित हुए ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ शुकदेवजीका आना सुन राजा मंत्रियों सहित स्नान किये आगे पुरोहितको करके गुरुपुत्रके समीप गया ॥ १ ॥ भली प्रकार राजा उनकी पूजाकर उत्तम आसन देकर दुधारी गौको निवेदन करके कुशल पूछता हुआ ॥ २ ॥ शुकदेवजीने राजाकी पूजाको विधिपूर्वक ग्रहण करके निरामय पूंछी ॥ ३ ॥ और कुशल प्रश्न

याममेकं स्थितो ध्याने सुष्वाप तदनंतरम् ॥ सुप्त्वा याम द्वयं तत्र चोदतिष्ठत्ततः शुकः ॥ ६५ ॥ पाश्चात्त्यं यामिनीयामं ध्यानमे वान्वपद्यत ॥ स्नात्वा प्रातःक्रियाः कृत्वा पुनरास्ते समाहितः ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा तमागतं राजा मंत्रिभिः सहितः शुचिः ॥ पुरः पुरोहितं कृत्वा गुरुपुत्रं समभ्ययात् ॥ १ ॥ कृत्वाऽर्हणां नृपः सम्यग्दत्तासनमनुत्तमम् ॥ प्रपच्छ कुशलं गां च विनिवेद्य पयस्विनीम् ॥ २ ॥ स च तां नृपपूजां वै प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ॥ पप्रच्छ कुशलं राज्ञे स्वं निवेद्य निरामयम् ॥३॥ स कृत्वाकुशलप्रश्नमुपविष्टः सुखासने ॥ शुकं व्याससुतं शांतं पर्यपृच्छत पार्थिवः ॥४॥ किंनिमित्तं महाभाग निःस्पृहस्य च मां प्रति ॥ जातं ह्यागमनं ब्रूहि कार्यं तन्मुनिसत्तम ॥ ५ ॥ शुक उवाच ॥ व्यासेनोक्तो महाराज कुरु दारपरिग्रहम् ॥ सर्वेषामाश्रमाणां च गृहस्थाश्रम उत्तमः ॥ ६ ॥ मया नांगीकृतं वाक्यं मत्वा बंधं गुरोरपि ॥ न बंधोऽस्तीति तेनोक्तो नाहं तत्कृतवान्पुनः ॥ ७ ॥ इति संदिग्धमनसं मत्वा मां मुनिसत्तमः ॥ उवाच वचनं तथ्यं मिथिलां गच्छ मा शुचः ॥ ८ ॥ याज्योऽस्ति जनकस्तत्र जीवन्मुक्तो नराधिपः ॥ विदेहो लोकविदितः पाति राज्यमकंटकम् ॥ ९ ॥

पूंछकर सुखसे आसनमें बैठे और शान्त शुकदेवजीसे राजा पूछने लगा ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! किस प्रकारसे आपसे निस्पृहोंका मेरे घरपर आगम हुआ है ! हे मुनिश्रेष्ठ ! सो आप कहिये ॥ ५ ॥ शुकदेवजी बोले व्यासजीने मुझसे दारपरिग्रह करनेको कहा कि सब आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम उत्तम है ॥ ६ ॥ मैंने उसे अंगीकार नहीं किया, वे बोले इसमें बन्धन नहीं होगा, मैंने वह भी न माना ॥ ७ ॥ और मेरा मन सन्दिग्ध हुआ तब वे उस प्रकार मुझे देख बोले मिथिलाको जाओ, शोककी बात नहीं है ॥ ८ ॥ वहां यज्ञीय जनक राजा जीवन्मुक्त हो निवास करतेहैं वे लोक विदित विदेहहो अकंटक राज्य करते हैं॥ ९ ॥

वह राजा राज्य करता हुआ भी मायापाससे बद्ध नहीं होता है. हे पुत्र ! तुम क्यों डरते हो वनवृत्तिही परम तपस्या है ॥ १० ॥ हे राजसिंह मुझसे वे बोले कि तुम जाकर उस राजाका दर्शन करो और मनके मोहका त्याग करो. हे महाभाग ! दारसंग्रह करो अथवा उस राजासे पूंछो ॥ ११ ॥ वह राजा तुम्हारे मनके संदेहको दूर करेगा. हे पुत्र ! तुम शीघ्र जाओ ऐसे उनके वचन सुनकर ॥ १२ ॥ हे महाराज ! उनकी आज्ञासे मैं तुम्हारे नगरमें आया हूं हे राजेन्द्र हे पापरहित मुझे मोक्षकी इच्छा है, आप कृत्यवर्णन कीजिये ॥ १३ ॥ तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय, तीर्थसेवन, वा ज्ञान जो मोक्षके प्रति कारण हो हे राजेन्द्र! सो आप कथन कीजिये ॥ १४ ॥ जनकजी बोले हे विप्रेन्द्र! जो मोक्ष मार्गाश्रितको करना चाहिये सो तुम सुनो' प्रथम उपनीत होकर वेदाभ्यासके निमित्त गुरुकुलमें निवास करे ॥ १५ ॥

कुर्वन्राज्यं तथा राजा माया पाशैर्न बध्यते ॥ त्वं बिभेषि कथं पुत्र वनवृत्तिः परंतप ॥ १० ॥ पश्य तं नृपशार्दूलं त्यज मोहं मनोगतम् ॥ कुरु दारान्महाभाग पृच्छ वा वा भूपतिं च तम् ॥ ११ ॥ संदेहं ते मनो जातं कथयिष्यति पार्थिवः ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मामेहि तरसा सुता ॥ १२ ॥ संप्राप्तोऽहं महाराज त्वत्पुरे च तदाज्ञया ॥ मोक्षकामोऽस्मि राजेंद्र ब्रूहि कृत्यं ममानघ ॥ १३ ॥ तपस्तीर्थं व्रतेज्याश्च स्वाध्यायस्तीर्थसेवनम् ॥ ज्ञानं वा वद राजेंद्र मोक्षं प्रति च कारणम् ॥ १४ ॥ जनक उवाच ॥ शृणु विप्रेण कर्तव्यं मोक्षमार्गाश्रितेन यत् ॥ उपनीतो वसेदादौ वेदाभ्यासाय वै गुरौ ॥ १५ ॥ आधीत्य वेदवेदांतान्दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् ॥ समावृत्तास्तु गार्हस्थ्ये सदारो निवसेन्मुनिः ॥ १६ ॥ नान्यवृत्ति स्तु संतोषी निराशी गतकल्मषः ॥ अग्निहोत्रादिकर्माणि कुर्वाणः सत्यवाक्छुचिः ॥ १७ ॥ पुत्र पौत्रं समासाद्य वानप्रस्थाश्रमे वसेत् ॥ तापसा षड्रिपूञ्जित्वा भार्यां पुत्रे निवेश्य च ॥ १८ ॥ सर्वाग्नीन्यथान्यायमात्मन्य, रोप्य धर्मवित् ॥ वसेत्तुर्याश्रमे शांतः शुद्धे वैराग्यसंभवे ॥ १९ ॥ विरक्तस्याधिकारोऽस्ति संन्यासे नान्यथा क्वचित् ॥ वेदवाक्यमिदं तथ्यं नान्यथेति मतिर्मम ॥ २० ॥

वहां वेद वेदांतोंका अध्ययन करके गुरु दक्षिणा देकर समावर्तन संस्कार पूर्वक गृहस्थाश्रममें स्त्रीसहित निवास करे ॥ १६ ॥ यजन याजनादिसे भिन्न और वृत्तियों करके संतोषी आशाहीन कल्मषरहित अग्निहोत्रादि कर्म करते हुए सत्यवाक् पवित्र ॥ १७ ॥ पुत्र पौत्रको प्राप्त होकर वानप्रस्थ आश्रममें निवास करे. तपसे काम क्रोधादि छः शत्रुओंको जीतकर भार्या पुत्रको सौंपकर ॥ १८ ॥ यथान्याय धर्मात्मा सब अग्नियोंका आत्मामें आरोपण करके शुद्ध वैराग्य होनेपर चौथे आश्रममें शान्त हो निवास करे ॥ १९ ॥ संन्यासमें विरक्तके विना और किसीका अधिकार नहीं है, यह वेदवाक्य सत्य है अन्यथा नहीं. यह मेरी मति है ॥ २० ॥

हे शुकदेवजी ! जन्मसे श्मशान पर्यन्त "४८" संस्कार वेदने कहे हैं उनमें महात्माओंने गृहस्थको "४०" संस्कार कहे हैं ॥ २१ ॥ और शम दमादि आठ संस्कार मुक्तिकी कामना वालोंको कहे हैं शिष्टोंकी यह आज्ञाहै कि आश्रमसे आश्रममें प्रवेश करे ॥ २२ ॥ शुकदेवजी बोले जब बुद्धिमें वैराग्य उत्पन्न होनेसे ज्ञान वैराग्य प्राप्ति हो तब क्या गृहस्थादि आश्रममें निवास करे?वा वनमें निवास करे ? ॥ २३ ॥ जनकजी बोले हे मानद ! इन्द्रिय बड़ी बलिष्ठ हैं, नियुक्त नहीं हैं,वे अपक्क पुरुषको अनेक विकार करती हैं ॥ २४ ॥ भोजन,सुख,सेज, पुत्रकी इच्छा जब विकारकी प्राप्ति यति अवस्थामें हों तो यह कैसे हो सकती है ॥२५॥ वासना जाल बड़ा दुर्जर है,किसी प्रकार शान्तिको प्राप्त नहीं होता,इससे वासनाकी शान्तिके निमित्त क्रमसेही उसको त्याग करना चाहिये ॥ ६॥

शुकाष्टचत्वारिंशद्वै संस्कारावेदबोधिताः ॥ चत्वारिंशद् गृहस्थस्य प्रोक्तास्तत्र महात्मभिः ॥ २१ ॥ अष्टौ च मुक्तिकामस्य प्रोक्ताः शम दमादयः ॥ आश्रमा दाश्रमं गच्छेदिति शिष्टानुशासनम् ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उत्पन्ने हृदि वैराग्ये ज्ञानविज्ञानसंभवे ॥ अवश्यमेव वस्तव्यमाश्रमेषु वनेषु वा ॥ २३ ॥ जनक उवाच ॥ इंद्रियाणि बलिष्ठानि न नियुक्तानि मानद ॥ अपक्वस्य प्रकुर्वंति विकारांस्ताननेकशः ॥ २४ ॥ भोजनेच्छां सुखेच्छां च शय्येच्छामात्मजस्य च ॥ यती भूत्वा कथं कुर्याद्विकारे समुपस्थिते ॥ २५ ॥ दुर्जरं वासनाजालं न शांतिमुपयाति वै ॥ अतस्तच्छमनार्थाय क्रमेण च परित्यजेत् ॥ २६ ॥ ऊर्ध्वं सुप्तः पतत्येव न शयानः पतत्यधः ॥ परिव्रज्य परिभ्रष्टो न मार्गं लभते पुनः ॥ २७ ॥ यथा पिपीलिका मूलाच्छाखायामधिरोहति ॥ शनैः शनैः फलं याति सुखेन पदगामिनी ॥२८॥ विहंगस्तरसा याति विघ्नशंकासुदस्य वै ॥ श्रांतो भवति विश्रम्य सुखं याति पिपीलिका ॥२९ मनस्तु प्रबलं काममजेयमकृतात्मभिः ॥ अतः क्रमेण जेतव्यमाश्रमानक्रमेण च ॥ ३० ॥ गृहस्थाश्रमसंस्थोऽपि शांतः सुमतिरात्मवान् ॥ न चहृष्येन्न च तपेल्लाभालाभे समो भवेत् ॥ ३१ ॥

ऊपरहीका सोया हुआ नीचे गिरता है, नीचेवाला नहीं इससे संन्यासमें भ्रष्ट होनेका प्रायश्चित्त नहीं है और फिर उसको मार्ग नहीं मिलता है ॥२७॥जैसे चींटी मूलसे शाखापर क्रमसे चढ़ती है और वह पदगामिनी क्रमसे सहज सहज फलपर पहुँचती है ॥२८॥ और विघ्नकी शंकाको छोड़कर शीघ्रतासे चलता हुआ विहंग श्रान्त हो जाता है, शीघ्र थक जाता है. परन्तु विश्राम लेती हुई पिपीलिका सुखपूर्वक गमन करती है ॥२९॥ मनकी कामना बड़ी प्रबल है, वह अकृतात्माओंको अजेय हे, इससे आश्रमके अनुक्रमसे इसको शनैः ३ जीतना चाहिये ॥ ३० ॥ गृहस्थाश्रममें स्थित होकर भी शान्त, सुमति, आत्म ज्ञानी

प्रसन्नता और दुःख न माने लाभालाभमें समान हो ॥३१॥ विहित कर्म करते हुए चिंताको त्यागना चाहिये और आत्मलाभमें संतुष्ट होकर चिंता त्याग देनी चाहिये, वह मुक्त होगा इसमें संदेह नहीं॥३२॥ हे पापरहित ! देखो मैं राज्यमें स्थित होकर भी जीवन्मुक्त हूं, और यथेच्छ विचरता हूं' मुझे कुछ भी नहीं होता है ॥३३॥ अनेक प्रकारके भोगोंको भोगते और अनेक प्रकारके कर्म करते भी जैसे मैं जीवन्मुक्त हूं'हे पापरहित ! इसी प्रकार तुम होओ ॥ ३४ ॥ यह जो जगत् दीखता है वह मायाका विकार होनेसे दीखता है परमार्थसे नहीं है, फिर आत्मतत्त्व कैसे बंधनमें हो सकता है, सूर्यसे प्रकाशित घटादि सूर्यको नहीं बांध सकते, पंच भूत और उनके गण लक्षित होते हैं ॥ ३५ ॥ आत्मा तो अनुमानसे ही जाना जाता है प्रत्यक्षसे नहीं जाना जाता.हे ब्रह्मन् ! वह

विहितं कर्म कुर्वाणस्त्यजंश्चिंतान्वितं च यत् ॥ आत्मलाभेन संतुष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३२ ॥ पश्याहं राज्यसंस्थोऽपि जीवन्मुक्तो यथाऽनघ ॥ विचरामि यथाकामं न मे किंचित्प्रजायते ॥३३॥ भुंजानो विविधान्भोगान्कुर्वन्कार्याण्यनेकशः ॥ भविष्यामि यथाऽहं त्वं तथा मुक्तो भवानघ ॥ ३४ ॥ कथ्यते खलु यद् दृश्यमदृश्यं बध्यते कुतः ॥ दृश्यानि पंचभूतानि गुणास्तेषां तथाः पुनः ॥ ३५ ॥ आत्मागम्योऽनुमानेन प्रत्यक्षो न कदाचन ॥ स कथं बध्यते ब्रह्मन्निर्विकारो निरंजनः ॥३६॥ मनस्तु सुखःदुःखानां महतां कारणं द्विज ॥ जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्सर्वं भवति निर्मलम् ॥३७॥ भ्रमन्सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः॥निर्मलं न मनो यावत्तावत्सर्वं निरर्थकम् ॥३८॥ न देहो न च जीवात्मा नेंद्रियाणि परंतप ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ॥ ३९ ॥ शुद्धो मुक्तः सदैवात्मा न वै बध्येत कर्हिचित् ॥ बंधमोक्षौ मनःसंस्थौ तस्मिञ्छांते प्रशाम्यति ॥ ४० ॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाः सर्वे मनोगताः ॥ एकात्मत्वे कथं भेदः संभवेद्द्वैतदर्शनात् ॥ ४१ ॥

निर्विकार निरंजन किस प्रकार बंधनको प्राप्त हो सकता है ॥३६॥ हे द्विज ! केवल मन सुख दुःख और महत्कारण है, मनके निर्मल होनेमें सब निर्मल होता है अविद्याजन्य अन्तः करणावच्छिन्न जीव मनकी वृत्ति और अविद्यासे कर्ता भोक्तासा लक्षित होता है ॥ ३७ ॥ सब तीर्थोंमें भ्रमण करने और वारंवार स्नान करनेसे जबतक मन निर्मल नहीं तबतक सबही निरर्थक है ॥ ३८ ॥ हे परंतप ! देह, जीवात्मा मन इन्द्रिय इनमें एक भी नहीं. परन्तु मनुष्योंके बंध मोक्षका मन ही कारण है ॥ ३९ ॥ आत्मा सदा शुद्ध मुक्त है वह कभी बंधनमें नहीं आता मनमें ही बंध मोक्ष रहता है मनके शान्त होनेपर शान्त हो जाता है ॥ ४० ॥ शत्रु मित्र उदासीन यह सब मनके भेद हैं, एकात्मक होने में भेद नहीं है. यह द्वैत दर्शनसे भेद है ॥ ४१ ॥

मैं जीव संज्ञक ब्रह्म ही सदा हूं इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है संसार वर्तनेसे भेद बुद्धि प्रवृत्त होती है ॥ ४२ ॥ हे महाभाग ! यह सब अविद्या है विद्यासे ही इसकी निवृत्ति होती है, विचक्षणोंको विद्या अविद्याका ज्ञान सदा करना चाहिये ॥४३॥ विना धूपके छाया का सुख किस प्रकार जाना जा सकता है ? इसी प्रकार अविद्याके विना विद्याका ज्ञान नहीं होता है ॥४४॥ गुण गुणोंमें और पंचभूत पंचभूतोंमें वर्तते हैं, इन्द्रिय इन्द्रियोंमें वर्तती हैं इसमें आत्माका क्या दोष है ? ॥ ४५ ॥ लोककी रक्षा करनेके निमित्त वेदोंमें मर्यादा स्थापित की है, हे पापरहित ! अन्यथा सौगत बुद्धोंके समान धर्मनाश होता है ॥ ४६ ॥ धर्मके नाश होनेसे वर्णाचार नष्ट होता है, इस कारण वेद निर्दिष्ट मार्गपर चलनेसे ही कल्याण होता है ॥ ४७ ॥ शुकदेवजी बोले हे राजन् !

जीवो ब्रह्म सदैवाहं नात्र कार्या विचारणा ॥ भेदबुद्धिस्तु संसारे वर्तमाना प्रवर्तते ॥ ४२ ॥ अविद्येयं महाभाग विद्या च तन्निवर्तनम् ॥ विद्याविद्ये विज्ञेये सर्वदैव विचक्षणैः ॥ ४३ ॥ विनाऽऽतपं हि च्छायाया ज्ञायते च कथं सुखम् ॥ अविद्यया विना तद्वत्कथं विद्यां च वेत्ति वै ॥ ४४ ॥ गुणा गुणेषु वर्तंते भूतानि च तथैव च ॥ इंद्रियाणींद्रियार्थेषु को दोषस्तत्र चात्मनः ॥ ४५ ॥ मर्यादा सर्वरक्षार्थं कृता वेदेषु सर्वशः ॥ अन्यथा धर्मनाशः स्यात्सौगतानामिवानघ ॥ ४६ ॥ धर्मनाशे विनष्टः स्याद्वर्णाचारोऽतिवर्तितः ॥ अतो वेदप्रदिष्टेन मार्गेण गच्छतां शुभम् ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संदेहो वर्तते राजन्न निवर्तति मे क्वचित् ॥ भवता कथितं यत्तच्छृण्वतो मे नराधिप ॥ ४८ ॥ वेदधर्मेषु हिंसा स्यादधर्मबहुला हि सा ॥ कथं मुक्तिप्रदो धर्मो वेदोक्तो बत भूपते ॥ ४९ ॥ प्रत्यक्षेण त्वनाचारः सोमपानं नराधिप ॥ पशूनां हिंसनं तद्वद्भक्षणं चामिषस्य च ॥ ५० ॥ सौत्रामणौ तथा प्रोक्तः प्रत्यक्षेण सुराग्रहः ॥ द्यूतक्रीडा तथा प्रोक्ता व्रतानि विविधानि च ॥ ५१ ॥ श्रूयते स्म पुरा ह्यासीच्छशबिंदुर्नृपोत्तमः ॥ यज्वा धर्मपरो नित्यं वदान्यः सत्यसागरः ॥ ५२ ॥

हे नराधिप ! जो कुछ आपका कहा मैंने सुना है इसमें मुझे सन्देह है, वह निवृत्त नहीं होता है ॥ ४८ ॥ वेद धर्ममें हिंसा भी होती है और हिंसा अधिक अधर्मवाली है इससे हे राजन् ! वेद धर्म कैसे मुक्ति देसकताहै ? ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! सोमपान करना यह प्रत्यक्षमें ही अनाचार है तथा पशुका वध और मांसका भक्षण ॥ ५० ॥ और सौत्रामणियज्ञमें प्रत्यक्ष ही सुराका ग्रहण है, द्यूतक्रीडा और अनेक प्रकारके व्रत वर्णन किये हैं ॥ ५१ ॥ हमने सुना है कि पहले एक शशबिन्दु राजा थे वह यज्ञशील धर्ममें तत्पर वदान्य और सत्य सागर थे ॥ ५२ ॥

धर्म सेतुओंके रक्षक, उत्पथगामियोंके शासनकर्ता और उन्होंने बडी बडी दक्षिणाओंके बहुतसे यज्ञ किये हैं ॥ ५३ ॥ उनके यज्ञीय पशुओंके चर्मका शैलके समान ढेर हो गया था, मेघोंका जल उसपर पडनेसे चर्मण्वती नदी बह चली है ॥ ५४ ॥ वे राजा स्वर्गको गये कि जिनकी भूमण्डलमें बडी कीर्ति है, वेदके ऐसे धर्मोंमें मेरीबुद्धि प्रवृत्त नहीं होती, कारण कि स्वर्गकी प्राप्ति अनित्य है ॥ ५५ ॥ और आपके भी जीवन्मुक्त होनेमें मुझे सन्देह है, जो मनुष्य स्त्रीसंगमें भोगसे सदा सुख पाता है उसके विना दुःख मानता है फिर वह जीवन्मुक्त कैसे हो सकता है ? ॥ ५६ ॥ जनकजी बोले यज्ञोंके बीचमें जो हिंसा है वह अहिंसा ही है "अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः" इति श्रुतेः ॥ यदि वह हिंसा, रागरूप उपाधिसे की जाय तो हिंसा ही होगी, अर्थात् मांसभक्षणके निमित्त याग करना हिंसा है ॥ ५७ ॥ जैसे गीले ईंधनके संयोगसे अग्निमें धूम प्रवृत्त होता है और उसके विना धूम नहीं होता है; इसी प्रकार रागादि उपाधि के

गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता चोत्पथगमिनाम् ॥ यज्ञाश्च विहितास्तेन बहवो भूरिदक्षिणाः ॥ ५३ ॥ चर्मणां पर्वतो जातो विंध्याचलसमः पुनः ॥ मेघांबुप्लावनाज्जाता नदी चर्मण्वती शुभा ॥ ५४ ॥ सोऽपि राजा दिवं यातः कीर्तिरस्याचला भुवि ॥ एवंधर्मेषु वेदेषु न मे बुद्धिः प्रवर्तते ॥ ५५ ॥ स्त्रीसंगेन सदा भोगे सुखमाप्नोति मानवः ॥ अलाभे दुःखमत्यंतं जीवन्मुक्ताः कथं भवेत् ॥५६॥ जनक उवाच ॥ हिंसायज्ञेषु प्रत्यक्षा साऽहिंसां परिकीर्तिता ॥ उपधियोगतो हिंसा नान्यथेति विनिर्णयः ॥ ५७ ॥ यथाचेंधनसंयोगादग्नौ धूमः प्रवर्तते ॥ तद्वियोगात्तथा तस्मिन्निर्धूमत्वं विभाति वै ॥ ५८ ॥ अहिंसां च तथा विद्धि वेदोक्तां मुनिसत्तम ॥ रागिणां साऽपि हिंसैव निः स्पृहाणां न सा मता ॥ ५९ ॥ अरागेण च यत्कर्म तथाऽ हंकारवार्जितम् ॥ अकृतं वेदविद्वांसः प्रवदंति मनीषिणः ॥ ६० ॥ गृहस्थानां तु हिंसैव या यज्ञे द्विजसत्तम ॥ अरागेण च यत्कर्म तथाऽहंकारवर्जितम् ॥ ६१ ॥ साऽहिंसैव महाभाग मुमुक्षूणां जितात्मनाम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे प्रथमस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

रहित होनेसे हिंसा नहीं है ॥ ५८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ? इस प्रकारसे तुम वेदोक्त हिंसाको जानो, रागियोंके निमित्त हिंसा ही है. विरागियोंको नहीं है ॥५९॥ जो कर्म अहंकार रहित रागद्वेषके विना किया है, अर्थात् ईश्वरकी प्रसन्नताके निमित्त भगवान्‌में कर्म फल समर्पण रूप जो कर्म किया जाता है उसको विद्वान् मनीषी अकृत ही मानते हैं ॥ ६० ॥ रागी गृहस्थियोंको तो वह हिंसा ही होगी. औरजो राग रहित अहंकार वर्जित कर्म किया है ॥६१॥ वह जितात्मा मुमुक्षुओंको अहिंसा ही है, अथवा जिनकी मांसादिमें रुचि अधिकतर बढ गई है, उसको यज्ञ से अन्यत्र पशुवध (हिंसा) कहकर यज्ञमें नियमपूर्वक कर्मद्वारा चित्तशुद्धि करा छुड़ानेसे तात्पर्य है कि जिससे शनैः २ छोड़े ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते प्रथमस्कंधे भाषायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

शुकदेवजी बोले हे महाराज ! यह मेरे हृदयमें और भी सन्देह है कि मायामें वर्तमान यह मनुष्य निःस्पृह कैसे हो सकता है ? ॥ १ ॥ शास्त्रज्ञानको प्राप्त हो नित्यानित्यके विचारको करके भी योगादिके विना मोह मनसे नहीं जाता, फिर मुक्त कैसे हो ॥ २ ॥ अविद्यासे जो मनमें अंधकार छा रहा है वह शास्त्रजन्य परोक्ष ज्ञानसे नष्ट नहीं होता, जैसे दीपककी वार्ता करननेसे अंधकार दूर नहीं होता. ॥ ३ ॥ पण्डितोंको सदा सब प्राणियोंसे द्रोह त्यागना चाहिये, हे राज शार्दूल ! यह वार्ता गृहस्थको साध्य नहीं है ॥४॥ वित्तेषणा, राजसुखेषणा और संग्राममें जयकी इच्छा आपकी शान्त नहीं हुई फिर मुक्ति कैसे हो सकती है ? ॥ ५ ॥ आपकी चोरोंमें यह चोर है ऐसी बुद्धि है, तपस्वियोंमें तपस्वी है ऐसी बुद्धि है. अपना पराया तुममें लगा हुआ है हे राजन् ! फिर आप

श्रीशुक उवाच ॥ संदेहोऽयं महाराज वर्तते हृदये मम ॥ मायामध्ये वर्तमानः स कथं निःस्पृहो भवेत् ॥ १ ॥ शास्त्रज्ञानं च संप्राप्य नित्यानित्यविचारणम् ॥ त्यज्यते न मनो मोहं स कथं मुच्यते नरः ॥२॥ अंतर्गतं तमश्छेत्तुं शास्त्राद्बोधो हि न क्षमः ॥ यथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया ॥३॥ अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्तव्यः सर्वदा बुधैः ॥ स कथं राजशार्दूल गृहस्थस्य भवेत्तथा ॥ ॥ ४ ॥ वित्तैषणा न ते शांता तथा राज्यसुखैषणा ॥ जयैषणा च संग्रामे जीवन्मुक्तः कथं भवेत्॥ ५ ॥ चौरेषु चौरबुद्धिस्ते साधुबुद्धिस्तु तापसे ॥ स्वपरत्वं तवाप्यस्ति विदेहस्त्वं कथं नृप ॥ ६ ॥ कटुतीक्ष्णकषायाम्लरसान्वेत्सि शुभाशुभान् ॥ शुभेषु रमते चित्तं नाशुभेषु तथा नृप ॥ ७ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तव राजन्भवंति हि ॥ अवस्थास्तु यथाकालं तुरीया तु कथं नृप ॥ ८ ॥ पदात्यश्वरथेभाश्च सर्वे वै वशगा मम ॥ स्वाम्यहं चैव सर्वेषां मन्यसे त्वं न मन्यसे ॥ ९ ॥ मिष्टमत्सि सदा राजन्मुदितो विमनास्तथा ॥ मालायां च तथा सर्पे समदृक् क्व नृपोत्तम ॥ १० ॥ विमुक्तस्तु भवेद्राजन्समलोष्टाश्मकांचनः ॥ एकात्मबुद्धिः सर्वत्र हितकृत्सर्वजंतुषु ॥ ११ ॥

विदेह किस प्रकार हैं ? ॥ ६ ॥ कटु, तीक्ष्ण, कसैला अम्ल आदि अच्छे बुरे रसोंको तुम जानते हो, अच्छेमें तुम्हारा चित्त रमता है और अशुभोंकी इच्छा नहीं है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! आपमें समय २ पर जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था वर्तती हैं फिर तुरीया कहांसे होगी ? ॥ ८ ॥ पैदल घोडे हाथी रथ ये सब मेरे वशीभूत हैं इन. सबका मैं स्वामी हूं. कहिये यह बात आप मानते हैं वा नहीं ! ॥ ९ ॥ हे राजन् ! सदा मीठा खाते हो, मुदित और विमन रहतेहो, माला और सर्पमें भेद माननेसे समानदृष्टि कब हो सकते हो ? ॥ १० ॥ हे राजन् ! मिट्टी और सुवर्णमें समानदृष्टि करनेसेही यह प्राणी मुक्त होता है, सबमें एकात्मबुद्धि और सब जंतुओंका हित करना चाहिये ॥ ११ ॥

मेरा तो अब गृह दारादि कहींभी चित्त नहीं रमता है. इकला निस्पृह होकर विचरण करूं यही मेरी मति है ॥ १२ ॥ निस्संग निर्मम शान्त पत्र मूल फलके भोजन करता हुआ निष्परिग्रह व निर्द्वंद्व हुआ मृगवत् विचरण करूंगा ॥ १३ ॥ हे राजन्! मुझको घर धन और रूपवती भार्यासे क्या प्रयोजन है? इस गुणातीन मनमें पूर्ण विराग है ॥ १४ ॥ आप अनेक प्रकारके रागसे व्याप्त विविध आकार प्रपंचका विचार करते हो अतएव अपने लिये विमुक्त कहना आपका दंभ विदित होता है ॥ १५ ॥ तुमको कभी शत्रु और कभी धनसे चिंता रहती है कभी सेनाकी चिन्ता रहती है कहिये तो हे राजन्! आप निश्चिन्त कब रहते हो! ॥१६॥ जो मुनि वैखानस मिताहारी जितव्रत हैं वे असत्य जानकर भी इस संसारमें मोहित होते हैं ॥ १७ ॥ आपकेवंशमें हुओंका

न मेऽद्य रमते चित्तं गृहद्वारादिषु क्वचित् ॥ एकाकी निःस्पृहोऽत्यर्थं चरेयमिति मे मतिः ॥ १२ ॥ निःसंगो निर्ममः शांतः पत्रमूल फलाशनः ॥ मृगवद्विचरिष्यामिनिर्द्वंद्वो निष्परिग्रहः ॥ १३ ॥ किं मे गृहेण वित्तेन भार्यया च सुरूपया ॥ विरागमनसः कामं गुणातीतस्य पार्थिव ॥ १४ ॥ चिंतसे विविधाकारं नाना रागसमाकुलम् ॥ दंभोऽयं किल ते भाति विमुक्तोऽस्मीति भाषसे ॥ १५ ॥ कदाचिच्छत्रुजा चिंता धनजा च कदाचन ॥ कदाचित्सैन्यजा चिंता निश्चिंतोऽसि कदा नृप ॥ १६ ॥ वैखानसा ये मुनयो मिताहाराचितव्रताः ॥ तेऽपि मुह्यंति संसारे जानं तोऽपि ह्यसत्यताम् ॥ १७ ॥ तव वंशसमुत्थानां विदेहा इति भूपते ॥ कुटिलं नाम जानीहि नान्यथेति कदाचन ॥ १८ ॥ विद्याधरो यथा मूर्खो जन्मांधस्तु दिवाकरः ॥ लक्ष्मीधरो दरिद्रश्च नाम तेषां निरर्थकम् ॥१९॥ तव वंशोद्भवा ये ये श्रुताः पूर्वं मया नृपाः ॥ विदेहा इति विख्याता नामतः कर्मतो न ते ॥ २० ॥ निमिनामाऽभवद्राजा पूर्वंतव कुलेनृप ॥ यज्ञार्थं स तु राजर्षिर्वसिष्ठं स्वगुरुं मुनिम् ॥ २१ ॥ निमंत्रयामास तदा तमुवाच नृपं मुनिः ॥ निमंत्रितोऽस्मि यज्ञार्थं देवेंद्रेणाधुना किल ॥२२॥ कृत्वा तस्या मखं पूर्णं करिष्यामि तवापि वै ॥ तावत्कुरुष्व राजेंद्र संभारं तु शनैः शनैः ॥ २३ ॥

जो विदेह नाम है यह कुटिल नाम है. इसमें अन्यथा नहींहै ॥ १८ ॥ जैसे मूर्खका नाम विद्याधर; जन्मांधका नाम दिवाकर हो दरिद्रका नाम लक्ष्मीधर हो इनका यह नाम निरर्थक ही है ॥१९॥ आपके वंशोत्पन्न जो राजा मैंने पूर्वमें सुने हैं वे नामसे ही विदेह थे कर्मसे नहीं ॥२०॥ हे राजन्! तम्हारे पहले कुलमें निमि राजा हुए उन्होंने यज्ञके निमित्त मुनिराज अपने उनसे वसिष्ठ गुरुको ॥ २१ ॥ निमंत्रित किया तब मुनिने उनसे कहा इस समय तो मुझे इन्द्रने यज्ञकेनिमित्त निमंत्रित किया है ॥२२॥ उनका यज्ञ पूर्ण करके तुम्हारा भी यज्ञ पूर्ण करूंगा हे राजन्! तबतक तुम शनैः २ सामग्री एकत्र करो ॥ २३ ॥

यह कह मुनिराज महेन्द्रके भवनमें चले गये. निमिने दूसरेको गुरु करके यज्ञ आरंभ किया ॥ २४ ॥ यह सुनकर वशिष्ठजी राजापर बहुत क्रुद्ध हुए और बोले हे गुरुके लोपकरनेवाले ! तुम्हारा देह पतित हो जाय ॥ २५ ॥ राजाने भी शाप दिया कि तुम्हारा देह भी पतित हो जाय वे दोनों परस्पर शापसे पतित हुए ऐसा मैंने सुना है ॥ २६ ॥ हे राजेन्द्र ! विदेहने स्वयं अपने गुरुको कैसे शाप दिया ? मेरे चित्तमें यहविनोद विदित होता है फिर वशिष्ठजी मित्रावरुणके वीर्यसे उत्पन्न हुए और निमिपलकोंपर स्थित हुए ॥ २७ ॥ जनकजी बोलेः—हे शुकदेवजी ! यह तुमने सत्य कहा कुछ भी मिथ्या नहीं है तोभी हे विप्रेन्द्र ! सुनो जो हमारे गुरु व्यासजीने कहा है ॥ २८ ॥ पिताके संगका त्याग करके तुम वनमें जानेकी इच्छा करते हो तो वहां तुम्हारा

इत्युक्त्वा निर्ययौ सोऽथ महेंद्रयजने मुनिः ॥ निमिरन्यं गुरुं कृत्वा चकार मखमुत्तमम् ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितोऽत्यर्थं वसिष्ठो नृपतिं पुनः ॥ शशाप च पतत्वद्य देहस्ते गुरुलोपक ॥ २५ ॥ राजाऽपि तं शशापाथ तवापि च पतत्पवयम्॥ अन्योन्यशापात्पतितौ तावेव च मया श्रुतम् ॥ २६ ॥ विदेहेन च राजेन्द्र कथं शप्तो गुरुः स्वयम् ॥ विनोद इव मे चित्ते विभाति नृपसत्तम ॥ २७ ॥ जनक उवाच ॥ सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्याकिंचिदिदं मतम् ॥ तथाऽपि शृणु विप्रेन्द्र गुरुर्मम सुपूजितः ॥ २८ ॥ पितुःसंग परित्यज्य त्वं वनं गन्तु मिच्छसि ॥ मृगैः सह सुसंबंधो भविता ते न संशयः ॥ २९ ॥ महाभूतानि सर्वत्र निःसंग क्व भविष्यसि ॥ आहारार्थं सदा चिंता निश्चिंतः स्याः कथं मुने ॥ ३० ॥ दंडाजिनकृता चिंता यथा तव वनेऽपि च ॥ तथैव राज्यचिंता मे चिन्तयानस्य वा नवा ॥ ३१ ॥ विकल्पोपहतस्त्वं वै दूरदेशमुपागतः ॥ नमे विकल्प संदेहो निर्विकल्पोऽस्मि सर्वथा ॥ ३२ ॥ सुखं स्वपिमि विप्राहं सुखं भुंजामि सर्वदा ॥ न बद्धोऽस्मीतिबुद्ध्याऽहं सर्वदैव सुखी मुने ॥ ३३ ॥ त्वं तु दुःखी सदैवासि बद्धोऽहमिति शंकया ॥ इति शंकां परित्यज्य सुखी भव समाहित ॥ ३४ ॥

मृगोंके साथ सम्बन्ध होगा इसमें सन्देह नहीं ॥२९॥ महाभूत ही जब सर्वत्र हैं तो निःसंग कैसे हो सकते हैं ? जब आहारके वास्ते चिन्ता है तो निश्चिन्त किस प्रकार हो सकते हैं ? ॥३०॥ दण्डाजिनकी चिन्ता जैसी तुमको वनमें भी रहती है इसी प्रकार मुझको राज्यकी चिन्ता रहती है ॥ ३१ ॥ दूर देशसे आये हुए तुमको विकल्प प्राप्त है, विकल्प और सन्देह न होनेसे मैं सर्वथा निर्विकल्प हूं ॥३२॥ हे विप्र ! मैं सदा सुखसे सोता और खाता हूं और मैं बद्ध नहीं हूं, इस बुद्धिसे मैं सदा सुखी हूं ॥ ३३ ॥ मैं बद्ध हूं इसशंकासे तुम सदा ही दुःखी हो इस शंकाकोत्याग करके सावधानीसे सुखी होओ ॥३४॥

यह देह मेरा है मैं बद्ध हूं इस विचारसे मुक्तता नहीं होती धन घर राज्य भी मेरा नहीं यह मुझको निश्चय है जब देह ही मेरा नहीं तो राज्य कैसा ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले यह राजाके वचन सुनकर शुकदेवजी प्रसन्न हुए और राजाकी आज्ञा लेकर पिताकेश्रेष्ठ आश्रममें गये ॥ ३६ ॥ पुत्रको आया देखकर व्यासजी प्रसन्न हुए, आलिंगन कर शिर सूंघ कुशल पूँछते हुए ॥ ३७ ॥ और उस रमणीक आश्रममें पिताके समीप स्थित हुए. वेदाध्ययनमें सम्पन्न सब शास्त्रमें पण्डित हुए ॥ ३८ ॥ राज्यमें स्थित जनककी दशाको देखकर परा निवृत्तिको प्राप्त होकर पिताके आश्रममें स्थित हुए ॥ ३९ ॥ पितरोंकी पीवरी नाम कन्या परम सुन्दरी थी, योगमार्गमें स्थित होकर भी शुकदेवने उसे पत्नी बनाया ॥ ४० ॥ उसमें उन्होंने चार पुत्र उत्पन्न किये ॥ कृष्ण, गौरप्रभा, भूरि,

देहोऽयं मम बन्धोऽयं न ममेति च मुक्तता ॥ तथा धनं गृहं राज्यं न ममेति च निश्चयः ॥ ३५ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शुकः प्रीतमनाभवत् ॥ आपृच्छ्य तं जगामाशु व्यासस्याश्रममुत्तमम् ॥ ३६ ॥ आगच्छंतं सुतं दृष्ट्वा व्यासोऽपि सुखमाप्तवान् ॥ आलिंग्याघ्राय मूर्धानं पप्रच्छ कुशलं पुनः ॥ ३७ ॥ स्थितस्तत्राश्रमे रम्ये पितुः पार्श्वे समाहितः ॥ वेदाध्ययनसंपन्नः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ३८ ॥ जनकस्य दशां दृष्ट्वा राज्यस्थस्य महात्मनः ॥ स निर्वृतिं परां प्राप्य पितुराश्रमसंस्थितः ॥ ३९ ॥ पितॄणां सुभगा कन्या पीवरी नाम सुंदरी ॥ शुकश्चकार पत्नीं तां योगमार्गस्थितोऽपि हि ॥४०॥ स तस्यां जनयामास पुत्रांश्चतुर एव हि॥कृष्णं गौरप्रभं चैव भूरिं देवश्रुतं तथा ॥४१॥ कन्यां कीर्तिं समुत्पाद्य व्यासपुत्रः प्रतापवान् ॥ ददौ विभ्राजपुत्राय त्वणुहाय महात्मने ॥४२॥ अणुहस्य सुतः श्रीमान्ब्रह्म दत्तः प्रतापवान् ॥ ब्रह्मज्ञः पृथिवीपालः शुककन्यासमुद्भवः ॥ ४३ ॥ कालेन कियता तत्र नारदस्योपदेशतः ज्ञानं परमकं प्राप्य योगमार्गमनुत्तमम् ॥४४॥ पुत्रे राज्यं निधायाथ गतो बदरिकाश्रमम् ॥ मायाबीजोपदेशेन तस्य ज्ञानं निरर्गलम्॥४५॥

देवश्रुत ॥४१॥ और प्रतापवान् व्यासपुत्रने एककीर्तिनाम कन्या उत्पन्न की और उसको विभ्राजके पुत्र अणुह महात्माको विवाह दी ॥ ४२ ॥ अणुहका पुत्र श्रीमान् ब्रह्मदत्त हुआ, यह राजा शुककन्यामें उत्पन्न होने करण ब्रह्मज्ञानी हुआ ॥ ४३ ॥ फिर कुछ समयके उपरान्त नारदजीके उपदेशसे परमज्ञान और उत्तम योगसे मार्गको प्राप्त होकर ॥ ४४ ॥ पुत्रको राज्यमें स्थापन करके बदरिकाश्रमको गया, मायाबीज भुवनेश्वरीके मंत्रोपदशसे उसको पूर्णज्ञान हुआ ॥ ४५ ॥

और नारदजीके उपदेशसे जो कि मुक्तिका देनेवाला है, शुकदेवजी भी पिताके संगका त्याग कर कैलासपर्वतके मनोहर शिखरमें ॥ ४६ ॥ सब संग छोडकर ध्यानमें स्थित हो परम अणिमादि सिद्धिको प्राप्त हो पर्वतशृंगसे ऊपरको उछल गये ॥ ४७ ॥ उस समय शुकदेवके उछलनेके वियोगसे पर्वतशृंग विदीर्ण होगया और वह महातेजा आकाशमें प्राप्त हुए सूर्यके समान शोभित हुए ॥४८॥ जिस समय शुक आकाशको गये तब बडे उत्पात हुए जिसप्रकार अन्तरिक्षमें वायु हो इस प्रकार महर्षियोंसे व्याकुल हो ॥ ४९ ॥दूसरे भास्करके समान तेजसे विराजित हुए और विरहसे व्याकुल हो व्यासजी पुत्र २ ऐसा वारंवार कहने लगे ॥५०॥ और जहां शुकदेवजी थे उस पर्वतशृंगपर गये, उस समय दीन श्रमसे व्याकुल व्यासजीको क्रन्दन करता देखकर ॥ ५१ ॥ सर्वभूतोंमें

नारदस्य प्रसादेन जातं सद्यो विमुक्तिदम् ॥ कैलासशिखरे रम्ये त्यक्त्वा संगं पितुः शुकः ॥ ४६ ॥ ध्यानमास्थाय विपुलं स्थितः संगपराङ्मुखः ॥ उत्पपात गिरेः शृंगात्सिद्धिं च परमां गतः ॥ ४७ ॥ आकाशगो महातेजा विरराज यथा रविः ॥ गिरेः शृङ्गं द्विधा जातं शुकस्योत्पतने तदा ॥ ४८ ॥ उत्पाता बहवो जाताः शुकश्चाकाशगोऽभवत् ॥ अंतरिक्षे यथा वायुः स्तूयमान सुरर्षिभिः ॥ ४९ ॥ तेजसाऽतिविराजन्वै द्वितीय इवभास्करः ॥ व्यासस्तु विरहाक्रांतः क्रंदन्पुत्रेति चासकृत् ॥ ५० ॥ गिरेः शृंगे गतस्तत्र शुको यत्र स्थितोऽभवत् ॥ क्रन्दमानं तदा दीनं व्यासं मत्वा श्रमाकुलम् ॥ ५१ ॥ सर्वभूतगतः साक्षी प्रतिशब्दमदात्तदा ॥ तत्राद्यापि गिरे शृंगे प्रतिशब्दः स्फुटोऽभवत् ॥ ५२ ॥ रुदंतं तं समालक्ष्य व्यासं शोकसमन्वितम् ॥ पुत्र पुत्रेति भाषंतं विरहेण परिप्लुतम् ॥५३॥ शिवस्तत्र समागत्य पाराशर्यमबोधयत् ॥ व्यास शोकं मा कुरु त्वं पुत्रस्ते योगवित्तमः ॥५४॥ परमां गतिमापन्नो दुर्लभां चाकृतात्मभिः ॥ तस्य शोको न कर्तव्यस्त्वयाऽशोकं विजानता ॥ ५५ ॥

प्राप्त साक्षीरूपसे तुम्हारी मेरी "आत्मा" एक है शोक मत करो इस वाक्यसे उनको प्रतिशब्द अर्थात् उत्तर देते हुए शुक आकाशके प्रति गये व्यष्टि देहको समष्टिमें लीन करके व्यापकरूपसे स्थित हुए ऐसा जाना जाता है वह शब्द अबभी उस पर्वतशृंगपर स्फुटतया सुननेमें आता है॥५२॥ शोकयुक्त व्यासजीको रोता देखकर जो कि वियोगसे पुत्र २ कह रहे थे॥५३॥ तब शिवजीने आकर व्यासजीको समझाया कि, हे व्यास ! शोक मत करो तुम्हारा तो पुत्र योगियोंमें श्रेष्ठ है ॥ ५४ ॥ वह अकृतात्माओंको दुर्लभ परम गतिको प्राप्त हुआ और ब्रह्मके जाननेवाले तुमको उसका शोक न करना चाहिये ॥५५॥

हे पापरहित ! इस पुत्रसे तुम्हारी अचल कीर्ति हुई व्यासजी बोले हे देवेश ! क्या करूं ? मेरा शोक नहीं जाता ॥५६॥ पुत्रदर्शनकी लालसासे अबतक मेरे नेत्र तृप्त नहीं हुए हैं, शिवजी बोले अच्छा तुम अपने निकट पुत्रकी छाया उसी मनोहर आकृतियुक्त देखोगे ॥५७॥ हे मुनिशार्दूल ! हे परंतप ! उसको देखकर तुम शोकका त्याग करो, सूतजी बोले. तब व्यासजी पुत्रकी सुप्रभावाली छाया देखने लगे ॥५८॥ इस प्रकार वर देकर शिवजी अन्तर्धान हुए. महादेवके अन्तर्धान होनेपर व्यासजी अपने आश्रममें आये ॥५९॥ और शुकके वियोगमें परम तप्त हुए, "देवीभागवतके श्रवणसे शुकदेवकी यह गति हुई" यह इसके माहात्म्यवर्णन करनेका तात्पर्य है ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंन्धेभाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ऋषि बोले, देवसत्तम

कीर्तिस्ते विपुला जाता तेन पुत्रेण चानघ ॥ व्यास उवाच ॥ न शोको याति देवेश किं करोमि जगत्पते ॥ ५६ ॥ अतृप्ते लोचने मेऽद्यपु त्रदर्शनलालसे ॥ महादेव उवाच ॥ छायां द्रक्ष्यसि पुत्रस्य पार्श्वस्थां सुमनोहराम् ॥ ५७ ॥ तां वीक्ष्य मुनिशार्दूल शोकं जहि परंतप ॥ सूत उवाच ॥ तदा ददर्श व्यासस्तु च्छायां पुत्रस्य सुप्रभाम् ॥ ५८ ॥ दत्त्वा वरं हरस्तस्मै तत्रैवांतरधीयत ॥ अंतर्हिते महादेवे व्यासः स्वाश्रममभ्यगात् ५९ ॥ शुकस्य विरहेणापि तप्तः परमदुःखितः ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ शुकस्तु परमां सिद्धिमाप्तवान्देवसत्तमः ॥ किं चकार ततो व्यास स्तन्नो ब्रूहि सविस्तरम् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ शिष्या व्यासस्य ऽप्यासन्वेदाभ्यासपरायणाः ॥ आज्ञामादाय ते सर्वे गताः पूर्वं महीतले ॥ २ ॥ असितो देवलश्चैव वैशंपायन एव च ॥ जैमिनीश्च सुमंतुश्च गताः सर्वे तपोधनाः ॥ ३ ॥ तानेतान्यवीक्ष्य पुत्रं च लोकांतरितमप्युत ॥ व्यासः शोकसमाक्रांतो गमनायाक रोन्मतिम् ॥ ४ ॥ सस्मार मनसा व्यासस्तां निषादसुतां शुभाम् ॥ मातरं जाह्नवीतीरे मुक्तां शोकसमन्विताम् ॥५ ॥

शुकदेवजी तो परमगतिको प्राप्त हुए फिर व्यासजी क्या करते हुए सो विस्तारसे कहो ? ॥१॥ सूतजी बोले व्यासजीके जो वेदाभ्यासपरायण शिष्य थे आज्ञा लेकर वे सबही पहले धर्मप्रचारार्थ महीतलमें विचरने गये ॥ २ ॥ असित, देवल, वैशंपायन, जैमिनि, सुमन्त यह सब तपोधन गये ॥ ३ ॥ इस प्रकार उनको गये देख और शुकदेवकी परमगति विचार व्यासजीने महात्माओंके विरहसे व्याकुल हो जानेकी इच्छा की ॥४॥ मनमें व्यासजीने उस श्रेष्ठ निषाद कन्याका स्मरण किया, जिसको गंगाके तटपर शोकसे युक्त देखा था यद्यपि वह पराशरके स्पर्शसे मुक्तरूप थी ॥ ५ ॥

दे. भा.
॥५३॥

इस प्रकार व्यासजी सत्यवतीका स्मरण कर इस पर्वत श्रेष्ठको छोड़कर वे महातेजस्वी मुनि अपने जन्मस्थानमें आये ॥ ६ ॥ और द्वीपमें आकर निषादसे पूँछा कि, वह श्रेष्ठ कन्या कहां गई ? तब निषादोंने कहा वह तो राजा शन्तनुको प्रदान कर दी गई ॥ ७ ॥ फिर दाशराजाने व्यासजीकी बड़ी प्रीतिसे पूजाकी स्वागतसे सत्कार कर हाथ जोड़ बोला ॥८॥ दाशराज बोले, आज मेरा जन्म और कुल पवित्र हुआ जो देवताओंकोभी अगम्य तुम्हारा दर्शन मुझे हुआ ॥९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस निमित्त आप आये हो सो हमसे कहिये ? दारा धन पुत्र ये सब तुम्हारे अधीन हैं ॥१०॥ तब व्यासजीने सरस्वतीके किनारे अपना आश्रम बनाया और तप करनेको वहांही स्थित हुए ॥११॥ बड़े कान्तिवाले शन्तनु राजासे सत्यवतीके दो पुत्र हुए हैं यह सुनकर व्यासजीने मनमें सुख माना और

स्मृत्वा सत्यवतीं व्यासस्त्यक्त्वा तं पर्वतोत्तमम् ॥ आजगाम महातेजा जन्मस्थानं स्वकं मुनिः ॥ ६ ॥ द्वीपं प्राप्याथ पप्रच्छ क्व गता स वरानना ॥ निषादास्ते समाचख्युर्दत्ता राज्ञे तु कन्यका ॥ ७ ॥ दाशराजोऽपि संपूज्य व्यासं प्रीति पुरःसरम् ॥ स्वागतेनाभिसत्कृत्य प्रोवाच विहितांजलिः ॥ ८ ॥ दाशराज उवाच ॥ अद्य मे सफलं जन्म पावितं नः कुलं मुने ॥ देवानामपि दुर्दर्श यज्जातं तव दर्शनम् ॥ ९ ॥ यदर्थमागतोऽसि त्वं तद् ब्रूहि द्विजसत्तम ॥ अपि दारा धनं पुत्रास्त्वदायत्तमिदंविभो ॥ १० ॥ सरस्वत्यास्तटे रम्ये चकाराश्रममंडलम् ॥ व्यासस्तपः समायुक्तस्तत्रैवास समाहितः ॥ ११ ॥ सत्यवत्याः सुतौजातौ शंतनोरमितद्युतेः ॥ मत्वा तौ भ्रातरौ व्यासः सुखमाप वने स्थितः ॥ १२ ॥ चित्रांगदः प्रथमजो रूपवाञ्छत्रुतापनः ॥ बभूव नृपतेः पुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ १३ ॥ विचित्रवीर्यनामाऽसौ द्वितीयः समजायत ॥ सोऽपि सर्वगुणोपेतः शंतनोः सुखवर्धनः ॥ १४ ॥ गांगेयः प्रथमस्तस्य महावीरो बलाधिकः ॥ तत्रैव तौ सुतौ जातौ सत्यवत्यां महाबलौ ॥ १५ ॥ शंतनुस्तान्सुतान्वीक्ष्य सर्वलक्षणसंयुतान् ॥ अमंस्ताजय्यमात्मानं देवादीनां महामनाः ॥१६॥ अथ कालेन कियता शंतनुः कालपर्ययात् ॥ तत्याज देहं धर्मात्मा देही जीर्णमिवांबरम् ॥ १७ ॥

तप करने लगे ॥ १२ ॥ उन पुत्रोंमें पहला रूपयौवनसंपन्न चित्राङ्गद सब लक्षणसे संपन्न था ॥ १३ ॥ और दूसरा राजाका पुत्र विचित्रवीर्य था यह सब गुणोंसे युक्त शंतनुका आनन्द बढ़ानेवाला था ॥ १४ ॥ और गंगासे राजाके बड़े पुत्र महाबली भीष्मजी उत्पन्न हुए थे और इसी प्रकार सत्यवतीसे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १५ ॥ शंतनु उन सब लक्षणोंसे युक्त पुत्रोंको देखकर अपनेको देवताओंसे भी अजय मानते हुए ॥ १६ ॥ फिर कुछ समय उपरान्त शंतनु कालकवलित हुए उन महात्माजीने जीर्ण वस्त्रके समान अपने देहको त्याग दिया ॥ १७ ॥

राजाके कालधर्मको प्राप्त होनेपर भीष्मने राजाके सब प्रेतकार्य करके अनेक दान दिये ॥ १८ ॥ और उन महाबलीने चित्रांगदको राज्यमें स्थापन किया और स्वयं राज्य न किया "कारण कि सत्यवतीको पिताके साथ विवाहनेके विषयमें दाशराजसे प्रतिज्ञा करली थी कि, में विवाह नहीं करूंगा" इस देवव्रतका पालन करनेसे वहदेवव्रत कहाये ॥ १९ ॥ सत्यवतीका पुत्र बड़ा बली वीरशुचि चित्रांगद वीर्यसे मत्तहो दूसरे शत्रुओंको दुःख देता हुआ ॥ २० ॥ एक समय वह महाबाहु बडी सेना साथ ले मृग आदि वध्य जीवों और वनस्थानोंको देखते विचरने लगा ॥ २१ ॥ चित्रांगद गंधर्वने उसराजाको जाता देख भूमिके निकट अपना विमान उतारा ॥ २२ ॥ और वहां उन दोनों समान बलियोंका बड़ा युद्ध हुआ. वह युद्ध तीन वर्षतक कुरुक्षेत्रके वनोंमें हुआ ॥ २३ ॥

कालधर्मं गते राज्ञि भीष्मश्चक्रे विधानतः ॥ प्रेतकार्याणि सर्वाणि दानानि विविधानि च ॥ १८ ॥ चित्रांगदं ततो राज्ये स्थापयामास वीर्यवान् ॥ स्वयं न कृतवान्राज्यं तस्माद्देवव्रतोऽभवत् ॥ १९ ॥ चित्रांगदस्तु वीर्येण प्रमत्तः परदुःखदः ॥ बभूव बलवान्वीरः सत्यवत्यात्मजः शुचिः ॥ २० ॥ अथैकदा महाबाहुः सैन्येन महता वृतः ॥ प्रचचार वनोद्देशान्पश्यन्वध्यान्मृगान्बहून् ॥ २१ ॥ चित्रां गदस्तु गंधर्वो दृष्ट्वा तं मार्गगं नृपम् ॥ उत्ततारांतिकं भूमेर्विमानवरमास्थितः ॥ २२ ॥ तत्राभूच्च महद्युद्धं तयोः सदृशवीर्ययोः ॥ कुरुक्षेत्रे महास्थानेत्रीणि वर्षाणि तापसाः ॥ २३ ॥ इंद्रलोकमवापाशु गंधर्वेण हतो रणे ॥ भीष्मः श्रुत्वा चकाराशु तस्यौर्ध्वदैहिकं तदा ॥ २४ ॥ गांगेयः कृतशोकस्तु मंत्रिभिः परिवारितः ॥ विचित्रवीर्यनामानं राज्येशं च चकार ह ॥ २५ ॥ मंत्रिभिर्बोधिता पश्चाद्गुरुभिश्च महात्मभिः ॥ स्वपुत्रं राज्यगं दृष्ट्वा पुत्रशोकहताऽपि च ॥ २६ ॥ सत्यवत्यतिसंतुष्टा बभूव वरवर्णिनी ॥ व्यासोऽपि भ्रातरं श्रुत्वा राजानं मुदितोऽभवत् ॥ २७ ॥ यौवनं परमं प्राप्तः सत्यवत्याः सुतः शुभः ॥ चकार चिंतां भीष्मोऽपि विवाहार्थं कनीयसः ॥ २८ ॥

हे ऋषियो ! तब गंधर्वसे मृत्युको प्राप्त हो राजा इन्द्रलोकको गया. भीष्मने यह वृत्तान्त सुन उसका और्ध्वदेहिकर्म किया ॥ २४ ॥ और भीष्मके शोकका मंत्रियोंने निवारण किया और फिर विचित्रवीर्यको राज्यसिंहासन दिया ॥ २५ ॥ मंत्री और गुरुओंसे बोधित होकर और पुत्रको राज्यपर स्थित देखकर पुत्रशोकसे हत होकर भी ॥ २६ ॥ सुमुखी सत्यवती सन्तुष्ट हुई और व्यासभी अपने भ्राताको राजा सुनकर प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥ वे सत्यवतीके सुन्दर पुत्र पर यौवनको प्राप्त हुए, उस समय भीष्मने उसके विवाहकी चिन्ता की ॥ २८ ॥

काशिराजकी तीन कन्या जो सब लक्षणोंसे सम्पन्न थीं उस राजाने उनका विवाहके निमित्त स्वयंवर किया था ॥ २९ ॥ यहां सहस्रों राजा और राजपुत्र एकत्र हुए थे, स्वयंवरकी इच्छासे सत्कृत होकर आयेथे॥ ३० ॥ वहां जाकर महातेजस्वी महाबली भीष्मने एक रथसे सब राजोंका मथन कर उनको बलपूर्वक हरण किया ॥ ३१ ॥ सब राजाओंको जीतकर भुजाओंके बलसे उनको लेकर हस्तिनापुरमें आये ॥ ३२ ॥ माता बहन और पुत्रीके समान उनकी विचारते हुए, उन तीनों सुलोचनी कन्याओंको हरणकर लाये ॥ ३३ ॥ और सत्यवतीको निवेदनकर ब्राह्मणोंको बुलाय ज्योतिषियों विद्वानोंसे विवाहका सुन्दर दिन पूँछते हुए ॥ ३४॥ जब विवाहका संभार कर अपने भ्राता धर्मिष्ठ विचित्रवीर्यका विवाह करने लगे ॥ ३५ ॥ तब कृष्ण अपांगवाली सुन्दर

काशिराजसुतास्तिस्रः सर्वलक्षणसंयुताः ॥ तेन राज्ञा विवाहार्थं स्थापिताश्च स्वयंवरे ॥ २९ ॥ राजानो राजपुत्राश्च समाहूताः सहस्रशः ॥ इच्छा स्वयंवरार्थं वै पूज्यमानाः समागताः ॥३०॥ तत्र भीष्मो महातेजास्ता जहार बलेन वै ॥ निर्मथ्य राजकं सर्वं रथेनैकेन वीर्यवान् ॥ ३१ ॥ स जित्वा पार्थिवान्सर्वास्ताश्चादाय महारथः ॥ बाहुवीर्येण तेजस्वी ह्याससाद गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥ मातृवद्भगिनीवच्च पुत्रीव चिंतयन्किल ॥ तिस्रः समानयामास कन्यका वामलोचनाः ॥ ३३ ॥ सत्यवत्यै निवेद्याशु द्विजानाहूय सत्वरः ॥ दैवज्ञान्वेदविदुषः पर्यपृच्छच्छुभं दिनम् ॥ ३४ ॥ कृत्वा विवाहसंभारं यदा वै भ्रातरं निजम् ॥ विचित्रवीर्यं धर्मिष्ठं विवाहयति ता यदा ॥ ३५ ॥ तदा ज्येष्ठाऽप्युवाचेदं कन्यका जाह्नवीसुतम् ॥ लज्जमानाऽसितापांगी तिसृणां चारुलोचना ॥ ३६ ॥ गंगापुत्र कुरुश्रेष्ठ धर्मज्ञ कुलदीपक ॥ मयास्वयंवरे शाल्वो वृतोऽस्ति मनसा नृपः ॥ ३७ ॥ वृताऽहं तेन राज्ञा वै चित्ते प्रेमसमाकुले ॥ यथायोग्यं कुरुष्वाद्य कुलस्यास्य परंतप ॥ ३८ ॥ तेनाहं वृतपूर्वाऽस्मि त्वं च धर्मभृतां वरः ॥ बलवानसि गांगेय यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ एव मुक्तस्तया तत्र कन्यया कुरुनंदनः ॥ अपृच्छद्ब्राह्मणान्वृद्धान्मातरं सचिवांस्तथा ॥ ४० ॥

नेत्रोंवाली लजाती हुई उन तीनोंमें बड़ी कन्या भीष्मसे कहने लगी ॥ ३६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! धर्मज्ञ ? कुलदीपक गंगापुत्र ? मैंने स्वयंवरमें मनमें राजा शाल्वका वरण किया था ॥ ३७ ॥ और प्रेमसे व्याकुलचित्त उस राजाने भी मुझको वरण किया था, सो हे परंतप ! अब आप इस अपने कुलके यथायोग्य कीजिये ॥ ३८ ॥ पहले उसने मुझे वरण किया है और मैंने उसे तुम धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हो, हे गंगापुत्र ! तुम बलवान् हो जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले, जब उस कन्याने ऐसा कहा तब कुरुनन्दन भीष्मजी वृद्धब्राह्मण मंत्री और माता सत्यवतीसे पूंछने लगे ॥ ४० ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्मजीने सबका मत जानकर उस कन्यासे कहा हे वरानने ! जहां तुम्हारी रुचिहो वहां जाओ ॥ ४१ ॥ तब भीष्मसे बिदा की हुई वह वरारोहा शाल्वके स्थानपर गई; और उस सुमुखीने मनईप्सित उस राजासे कहा ॥ ४२ ॥ तुममें मन लगानेके कारण धर्मसे भीष्मने मुझे छोड़ दिया, हे महराज ! अब मैं आकर प्राप्त हुई हूं, मेरा हाथ ग्रहण करो॥ ४३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! मैं आपकी अत्यंत धर्मपत्नी हूंगी और पहिले मैंने तुम्हें और तुमने मुझे चिन्तन किया है ॥ ४४ ॥ शाल्व बोले, हे वरोरु ! भीष्मने मेरे देखतेही तुमको ग्रहण किया और रथमें स्थापित किया है इससे मैं तुम्हारा हाथ ग्रहण न करूंगा ॥ ४५ ॥ कौन बुद्धिमान् परोच्छिष्ट कन्याको ग्रहण करेगा ? इससे भीष्मसेत्यागी हुईको माताके समान मैं ग्रहण न करूंगा ॥ ४६ ॥ इस प्रकार उस रोती

सर्वेषां मतमाज्ञाय गांगेयो धर्मवित्तमः ॥ गच्छेति कन्यकां प्राह यथारुचि वरानने ॥ ४१ ॥ विसर्जिताऽथ सा तेनगता शाल्वनिकेतनम् ॥ उवाच तं वरारोहा राजानं मनसेप्सितम् ॥ ४२ ॥ विनिर्मुक्ताऽस्मि भीष्मेण त्वन्मनस्केति धर्मतः ॥ आगताऽस्मि महाराज गृहाणाद्य करं मम ॥ ४३ ॥ धर्मपत्नी तवात्यंतं भवामि नृपसत्तम ॥ चिंतितोऽसिमया पूर्वं त्वयाऽहं नात्र संशयः ॥ ४४ ॥ शाल्व उवाच ॥ गृहीता त्वं वरारोहे भीष्मेण पश्यतो मम ॥ रथे संस्थापिता तेन न ग्रहीष्ये करं तव ॥ ४५ ॥ परोच्छिष्टां च कः कन्यां गृह्णाति मतिमान्नरः ॥ अतोऽहं न ग्रहीष्यामि त्यक्तां भीष्मेण मातृवत् ॥ ४६ ॥ रुदती विलपंती सा त्यक्ता तेन महात्मना ॥ पुनर्भीष्मं समागत्य रुदती चेदमब्रवीत् ॥४७॥ शाल्वो मुक्तां त्वया वीर न गृह्णाति गृहाण माम् ॥ धर्मज्ञोऽसि महाभाग मरिष्याम्यन्यथा ह्यहम् ॥ ४८ ॥ भीष्म उवाच ॥ अन्यचित्तां कथं त्वां वै गृह्णामि वरवर्णिनि ॥ पितरं स्वं वरारोहे व्रज शीघ्रं निराकुला ॥ ४९ ॥ तथोक्ता सा तु भीष्मेण जगाम वनमेव हि ॥ तपश्चकार विजने तीर्थे परमपावने ॥ ५० ॥ द्वे भार्ये चातिरूपाढ्ये तस्य राज्ञो बभूवतुः ॥ अंबालिकांबिका च काशिराजसुते शुभे ॥ ५१ ॥ राजा विचित्रवीर्योऽसौ ताभ्यां सह महाबलः ॥ रेमे नानाविहारैश्च गृहे चोपवने तथा ॥ ५२ ॥

और विलाप करती हुईको उस महात्माने त्याग दिया और वह फिर भीष्मके पास आकर रोतीहुई कहने लगी ॥ ४७ ॥ हे वीर ! तुम्हारी त्यागी हुई जान कर शाल्व मुझको ग्रहण नहीं करता,इससे तुम मुझे ग्रहण करो, हे महाभाग ! तुम धर्मज्ञ हो नहीं तो मैं क्या करूंगी ? ॥ ४८ ॥ भीष्म बोले हे वरवर्णिनि ? दूसरेमें चित्तलगाने वाली तुमको कैसे ग्रहण किया जासकता है?हे वरारोहे ! अब तुम स्वच्छन्दतासे अपने पिताके पास जाओ ॥ ४९ ॥ भीष्मके ऐसा कहनेपर वह वनको चली गई ॥ ५० ॥ और वे दोनों काशिराजकी कन्या अम्बा और अम्बालिका रूपवती उस विचित्रवीर्य राजाकी भार्या हुईं ॥ ५१ ॥ यह महाबली

राजा विचित्र वीर्य उन दोनोंके साथ घर और उपवनोंमें अनेक विहारोंसे रमण करनेलगा ॥५२॥ वह राजा नौवर्षतक उनके साथ मनोहर क्रीडा करता हुआ
राजयक्ष्मा रोग होनेसे मरणको प्राप्त हुआ॥५३॥ तब पुत्रके मरनेसे सत्यवती बहुत व्याकुल हुई और मंत्रियों द्वारा पुत्रके प्रेतकार्य करतीहुई ॥५४॥ और बड़ी दुःखी
होकर एकान्तमें भीष्मसे वचन कहने लगी, हे महाभाग शंतनुपुत्र ! तुम अपने पिता शंतनुका राज्य करो ॥५५॥ इन भ्राताओंकी भार्याओंको लेकर इस वंशकी
पालना करो । जैसे यह ययातिका वंश नाश न हो सो करो ॥५६॥ भीष्मजी बोले, हे माता ! पिताके निमित्त जो मैंने प्रतिज्ञा की है. क्या वह आपने नहीं सुनी ?
"न मैं राज्य करूंगा और न मैं दारसंग्रह करूंगा" ॥५७॥ तब सत्यवती विचार करने लगी कि, यह वंश किस प्रकार चलेगा ?अराजकता होनेमें आलस्यसे सुख

वर्षाणि नव राजेंद्रः कुर्वन्क्रीडां मनोरमाम् ॥ प्रापासौ मरणं भूयो गृहतो राजयक्ष्मणा ॥ ५३ ॥ मृते पुत्रेऽतिदुःखार्ता जाता सत्यवती तदा
॥ कारयामास पुत्रस्य प्रेतकार्याणि मंत्रिभिः ॥ ५४॥ भीष्ममाह तदैकांते वचनं च.,तिदुःखिता ॥ राज्यं कुरु महाभाग पितुस्ते शंतनोः सुतः
॥ ५५ ॥ भ्रातुर्भार्यां गृहाण त्वं वंशं च परिरक्षय॥यथा न नाशमायाति ययातेर्वंश इत्युत ॥ ५६ ॥ भीष्म उवाच ॥ प्रतिज्ञा मे श्रुता मातः
पित्रर्थे या मया कृता ॥ नाहं राज्यं करिष्यामि न चाहं दारसंग्रहम् ॥ ५७ ॥ सूत उवाच ॥ तदा चिंतातुरा जाता कथं वंशो भवेदिति ॥
नालसाद्धि सुखं मह्यं समुत्पन्ने ह्यराजके ॥ ५८ ॥ गांगेयस्तामुवाचेदं मां चिंतां कुरु भामिनि ॥ पुत्रं विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रजं चोपपादय ॥५९॥
कुलीनं द्विजमाहूय वध्वा सह नियोजय ॥ नात्र दोषोऽस्ति वेदेऽपि कुलरक्षाविधौ किल ॥ ६० ॥ पौत्रं चैवं समुत्पाद्य राज्यं देहि शुचि
स्मिते ॥ अहं च पालयिष्यामि तस्य शासनमेव हि ॥६१॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कानीनं स्वसुतं मुनिम् ॥ जगाम मनसा व्यासं द्वैपाय
नमकल्मषम् ॥ ६२ ॥ स्मृतमात्रस्ततो व्यास आजगाम स तापसः ॥ कृत्वा प्रणामं मात्रेऽथ संस्थितो दीप्तिमान्मुनिः ॥ ६३ ॥ भीष्मेण
पूजितः कामं सत्यवत्या च मानितः ॥ तस्थौ तत्र महातेजा विधूमोऽग्निरिवापरः ॥ ६४ ॥

नहीं मिलता॥५८॥तब भीष्म कहने लगे हे भामिनि ? चिन्ता मत करो,विचित्रवीर्यके क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराओ॥५९॥किसी कुलीन ब्राह्मणको बुलाकर वधूके संग
नियोजन करो. कुल रक्षामें और आपत्तिमें निगममें इसका दोष क्षत्रियको नहीं है ॥६०॥ हे शुचिस्मिते ! इस प्रकार पौत्रको उत्पन्न करके राज्य दो और उसके शास
नसे मैं राज्यपालन करता रहूंगा ॥६१॥ तब भीष्मके यह वचन सुन सत्यवतीने अपनेसे कन्यावस्थामें उत्पन्न हुए व्यास मुनिका 'जो पाप रहित हैं' मनसे ध्यान किया
॥६२॥ स्मरण करते ही तपस्वी व्यासजी !आकर प्राप्त हुए और माताको प्रणाम करके वह दीव्यमान मुनि सन्मुख स्थित हुए ॥६३॥ भीष्मने उनकी अतिशय पूजा
की और सत्यवतीने मान किया. वहां वह महातेजस्वी निर्धूम अग्निके समान स्थित हुए ॥६४॥

तब माताने वृत्तान्त सुनाय उन मुनिसे पुत्र उत्पन्न करनेको कहा कि "विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें तुम अपने वीर्यसे सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो"॥६५॥व्यासजी माताके कहनेके कारण उसको आप्तवाक्य मानते हुए कारण कि, शास्त्रमें लिखा है कि माता पिता जो कहें सो करना इससे व्यासजीने स्वीकार किया. और ऋतुकालकी चिन्ता करते इस बातको स्वीकार कर वहां स्थित हुए॥६६॥ जिस समय अम्बिकाने ऋतुस्नान किया तो मुनिके समीप जाकर नेत्र मूंद लिये, तेज न सहसकी, इससे उसके अन्ध पुत्र हुआ॥६७॥जन्मांध देखकर सत्यवतीने अत्यन्त दुःखी होकर दूसरी वधूसे शीघ्र पुत्र उत्पन्न करनेको कहा॥६८॥इसके अनन्तर वह ऋतुकाल प्राप्त होनेपर व्यासके संग संगत हुई और मुनिके तेजकेकारण उसने अपने शरीरमें चन्दन लगा लिया था, इस प्रकार अम्बालिकाने रात्रिमें गर्भ धारण किया॥६९॥ इस कारण उसके पुत्र पाण्डु वर्णका हुआ. वह भी राज्यके योग्य न हुआ. फिर एक वर्षके उपरांत सत्यवतीने पुत्रके निमित्त वधूकी प्रेरणा की॥७०॥फिर मुनिश्रेष्ठ व्यासजीको बुलाय और उनकी

तमुवाच मुनिं माता पुत्रमुत्पादयाधुना ॥ क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य सुंदरं तव वीर्यजम्॥६५॥व्यासः श्रुत्वा वचोमातुराप्तवाक्यममन्यत ॥ ओमित्युक्त्वा स्थितस्तत्र ऋतुकालमचिंतयत्॥६६॥अंबिका च यदा स्नाता नारी ऋतुमतीतदा ॥ संगं प्राप्य मुनेः पुत्रमसूतांधं महाबलम्॥६७॥जन्मांधं च सुतं वीक्ष्य दुःखिता सत्यवत्यपि ॥ द्वितीयां च वधूमाह पुत्रमुत्पादयाशु वै॥६८॥ ऋतुकालेऽथ संप्राप्ते व्यासेन सह संगता॥तथा चांबालिका रात्रौ गर्भं नारी दधार सा॥६९॥सोऽपि पांडुः सुतो जातो राज्ययोग्यो न संमतः॥ पुत्रार्थे प्रेरयामास वर्षांते च पुनर्वधूम्॥७०॥ आहूय च ततो व्यासं संप्रार्थ्य मुनिसत्तमम् ॥ प्रेषयामास रात्रौ सा शयनागारमुत्तमम्॥७१॥न गता च वधूस्तत्र प्रेष्या संप्रेषिता तया ॥ तस्यां च विदुरो जातो दास्यां धर्मांशतः शुभः॥७२॥ एवं व्यासेन ते पुत्राधृतराष्ट्रादयस्त्रयः॥ उत्पादिता महावीरा वंश रक्षणहेतवे ॥७३॥ एतद्वः सर्वमाख्यातं तस्य वंशसमुद्भवम् ॥ व्यासेन रक्षितो वंशो भ्रातृधर्मविदाऽनघाः॥७४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां विंशोऽध्यायः॥२०॥ ॥ ❋ ॥ ॥वेदाष्टेंदुक्षितिमितैः सार्धैः (॥ ११८४ ॥) श्लोकैः सविस्तरम् ॥ देवीभागवतस्यास्य प्रथमस्कंध ईरितः॥१॥

प्रार्थना करकें रात्रिको उसके शयनागारमें प्रेषण करती हुई॥७१॥ उसके तेजके कारण वधू वहां न गई उसने दासीको भेज दिया, उस दासीमें धर्मके अंशसे शुभ विदुरजी हुए॥७२॥इस प्रकार व्यासजीने धृतराष्ट्रादि तीन पुत्र बड़े बली वंशकी रक्षा करनेको उत्पन्न किये॥७३॥हे पापरहितो! आप लोगोंसे यह सब उनके वंशका समुद्भव मैंने वर्णन किया कि, इस प्रकार इस कुरुवंशको भ्रातृधर्म ज्ञाता व्यासने रक्षित किया॥७४॥ इस ग्रंथसन्दर्भसे यह दिखाया है कि, इस संसारमें बड़े वंशोंकी भी यह दशा है, इसकारण इस संसारमें संसक्त न होकर देवीकी उपासना करके संसारसे निर्मुक्त होना चाहिये (११८४) श्लोकोंमें देवी भागवतका प्रथमस्कंध पूर्ण हुआ॥ इति श्रीमच्छैवकुलोत्पन्न सुखानन्दात्मज गंगागर्भज ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत देवी भागवत--भाषाव्याख्याने प्रथमस्कंधे विंशोऽध्यायः॥२०॥

दोहा—शिवासहित श्रीशिवचरण, कमल अमल मन लाय ॥ प्रथमस्कन्ध सुभागवत, भाषा लिखी बनाय ॥ १ ॥
पढहिं सुनहिं कर प्रेमजो, सिद्ध होहिं सब काम ॥ बुधज्वालाप्रसाद नित, भजहु शिवा शिवनाम ॥ २ ॥

विचार इन पाण्डु धृतराष्ट्रादिकी कथाको देखकर यह विचार नहीं करना चाहिये कि ऐसे सबको करना उचितहै, अर्थात् चाहे जिससे वंशकी उत्पत्ति करा लें; किंतु यह इतिहासमात्रहै, कुछ शास्त्रकी आज्ञा नहीं है. मनुजी कहतेहैंः--नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्याद्विजातिभिः।अन्यस्मिन् हिनियुञ्जानाधर्महन्तिसनातनम् इससे स्पष्ट है कि, द्विजातिस्त्री किसीमें नियुक्त न करना. शास्त्रमें कथित है कि जब युगपरिवर्तन होताहै तब चित्रसृष्टि होती है, इस वंशकी सृष्टि भारतवर्षके संहारके ही निमित्त मिश्र प्रकारसे हुई; भगवान् व्यास देवजीने यह दिखाया है कि,मुझसे तपस्वी के वीर्यसे भी इन दोनोंने उत्पन्न होकर जो वंश रक्षाको किये गये थे परस्पर द्वेष करके कुलका अठारह अक्षौणियोंसहित संहार किया, और किसीकी बात न मानी फिर साधारण नियोग करनेवालोंका कुल कैसे चलकर सुखी हो सकता है भारत संग्रामका आरंभ ऐसी ही सृष्टिसे हुआ है, और यह भी दिखाया है कि, जो प्रथम ही संस्कार और वीर्यमें दोष आता है वह बहुत कालतक बिगाड़ करता है, इस कारणसे इस कथासे नियोग न चलाना;किन्तु निषेध मानना चाहिये। इति शम् ॥ ❀ ॥ इति श्रीदेवी भागवत भाषा प्रथम स्कन्ध समाप्त. ॥ ❀ ॥

इदं पुस्तकं क्षेमराज-श्रीकृष्णदास श्रेष्ठिना मुम्बय्यां (खेतवाडी ७ वीं गल्ली खम्बाटा लैन) स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम) मुद्रणागारेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् ।

मुद्रक और प्रकाशक–खेमराज श्रीकृष्णदास, अध्यक्ष–"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बम्बई.

इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते प्रथमस्कन्धः समाप्तः

अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते द्वितीयस्कन्धः प्रारभ्यते

दोहा--अंशभूत जेहि जीव सब, वेद चार निश्वास ॥ चिद्रूपा माया परा शक्ति नमो सुखरास ॥ १ ॥

ऋषि बोले, हे सूतजी ! ये अव्यक्त--कारणवाले आपके वचन बड़े आश्चर्यके करनेवाले हैं सब हम तपस्वियोंको सन्देह उत्पन्न हुआ है ॥ १ ॥ हे मेधाविन् व्यासजीकी माता सत्यवती जिसको पहले राजा शंतनुने विवाहा ॥ २ ॥ उसके व्यासजी कैसे पुत्र हुए ? वह सती अपने भवनमें स्थित थी और व्यासजीका जन्म होनेपर फिर शंतनुने उसके साथ क्यों विवाह किया ? ॥ ३ ॥ हे सुव्रत ! हे महाभाग ! जिस प्रकार उसके दो पुत्र हुए. वह विस्तार पूर्वक परमपावनीकथा कहिये ॥ ४ ॥ वेदव्यासकी और सत्यवतीकी उत्पत्ति कहो. क्योंकि हम सब ऋषि उसके सुननेकी इच्छा किये हुए हैं ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि,

ऋषय ऊचुः ॥ ॥ आश्चर्यकरमेतत्ते वचनं गर्भहेतुकम् ॥ संदेहोऽत्र समुत्पन्नः सर्वेषां नस्तपस्विनाम् ॥ १ ॥ माता व्यासस्य मेधाविन्नाम्ना सत्यवतीति च ॥ विवाहिता पुरा ज्ञाता राज्ञा शंतनुना यथा ॥ २ ॥ तस्याः पुत्रः कथं व्यासः सती स्वभवनेस्थिता ॥ ईदृशी सा कथं राज्ञा पुनः शंतनुना वृता ॥ ३ ॥ तस्यां पुत्रावुभौ जातौ तत्त्वं कथय सुव्रत ॥ विस्तरेण महाभाग कथां परमपावनीम् ॥ ४ ॥ उत्पतिं वेदव्यासस्य सत्यवत्यास्तथा पुनः ॥ श्रोतुकामाः पुनः सर्वे ऋषयः संशितव्रताः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ प्रणम्य परमां शक्तिं चतुर्वर्गप्रदायिनीम् ॥ आदिशक्तिं वदिष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ६ ॥ यस्योच्चारणमात्रेण सिद्धिर्भवति शाश्वती ॥ व्याजेनापि हि बीजस्य वाग्भवस्य विशेषतः ७ ॥ सम्यक्सर्वात्मना सर्वैः सर्वकामार्थ सिद्धये ॥ स्मर्तव्या सर्वथा देवी वांछितार्थप्रदायिनी ॥ ८ ॥ राजोपरिचरो नाम धार्मिकः सत्यसंगरः ॥ चेदिदेशपतिः श्रीमान्बभूव द्विजपूजकः ॥ ९ ॥ तपसा तस्य तुष्टेन विमानं स्फाटिकं शुभम् ॥ दत्तमिंद्रेण तत्तस्मै सुन्दरं प्रियकाम्यया ॥१०॥तेन रूढस्तु सर्वत्र याति दिव्येन भूपतिः ॥ न भूमावुपरिस्थोऽसौ तेनोपरिचरो वसुः ॥११॥

चतुर्वर्गकी देनेवाली उस परम शक्तिको प्रणाम करके आदिशक्तिका स्मरण कर पुराणकी सुन्दर कथा कहताहूं ॥ ६ ॥ जिसके उच्चारण मात्रसे निरन्तर सिद्धि होती है और जो वाणी बीजके बहानेसे ही उच्चारण करनेपर मोक्ष देती है ॥७॥ उस भली प्रकार सबकी सब कामना सिद्धिके निमित्त मनोवांछित देनेवाली देवीको स्मरण करना चाहिये॥८॥विमानपर चढकर ऊपर फिरनेसे उपरिचर नाम धारण करनेवाला धार्मिक सत्य संगर चेदि देशका राजा श्रीमान् ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाला था ॥९॥ उसके तपसे प्रसन्न होकर इन्द्रने एक बहुत उत्तम विमान स्फटिकके समान शुभ्र उसको दिया ॥१०॥ राजा उस दिव्य

विमानपर आरूढहोकर सर्वत्र गमन करता था भूमिपर न आने और ऊपर फिरनेसे यह वसु उपरिचरनामवाला था ॥ ११ ॥ वह नित्य धर्म करनेवाला राजा सब लोकोंमें विख्यात था उसकी श्रेष्ठ स्त्रीका नाम गिरिका ॥ १२ ॥ और उसके बली अमित पराक्रमी पांच पुत्र थे उनको राजाने पृथक् २ स्थानोंमें राज्य देकर स्थापनकर दिया था ॥१३॥ एक समय उस गिरिकाने अपने स्वामीको कामना प्रगट की जब कि, वह ऋतुकालमें स्नान कर चुकी थी ॥ १४ ॥ जिस दिन उसने यह कहा था उसी दिन पितरोंने श्राद्धके निमित्त इससे मृग लानेको कहा था यह सुन और भार्याको ऋतुमती विचार और यह सोचेने लगा ॥ १५ ॥ फिर पितरोंके वाक्यको गुरु मानक उसका करना विचार और गिरिकाका मनमें स्मरण कर राजा मृगयाको विचरने लगा ॥ १६ ॥ वनमें स्थित

विख्यातः सर्वलोकेषु धर्मनित्यः स भूपति ॥ तस्य भार्या वरारोहा गिरिका नाम सुन्दरी ॥१२॥पुत्राश्चास्य महावीर्याः पंचासन्नमितौजसः ॥ पृथग्देशेषु राजानः स्थापितास्तेन भूभुजा ॥ १३ ॥ वसोस्तु पत्नी गिरिका कामान्काले न्यवेदयत् ॥ ऋतुकालमनु प्राप्ता स्नाता पुंसवने शुचिः ॥ १४ ॥ तदहः पितरश्चैनमूचुर्जहि मृगानिति ॥ तच्छ्रुत्वा चिंतयामास भार्यामृतुमतीं तथा ॥ १५ ॥ पितृवाक्यं गुरुं मत्वा कर्तव्यमिति निश्चितम् ॥ चचार मृगयां राजा गिरिकां मनसा स्मरन् ॥ १६ ॥ वने स्थितः स राजर्षिश्चित्तेसस्मार भामिनीम् ॥ अतीव रूपसंपन्नां साक्षाच्छ्रियमिवापराम्॥१७॥तस्य रेतः प्रचस्कंद स्मरतस्तां च कामिनीम् ॥ वटपत्रे तु तद्राजा स्कन्नमात्रं समाक्षिपत्॥१८॥ इदं वृथा परिस्कन्नं रेतो वै न भवेत्कथम् ॥ ऋतुकालं च विज्ञाय मतिं चक्र नृपस्तदा ॥ १९ ॥ अमोघं सर्वथा वीर्यं मम चैतन्न संशयः ॥ प्रियायै प्रेषयाम्येतदिति बुद्धिमकल्पयत् ॥ २० ॥ शुक्रप्रस्थापने कालं महिष्याः प्रसमीक्ष्य सः ॥ अभिमंत्र्याथ तद्वीर्यं वटपर्णपुटे कृतम् ॥ २१ ॥ पार्श्वस्थं श्येनमाभाष्य राजोवाच द्विजं प्रति ॥ गृहाणेदं महाभाग गच्छ शीघ्रं गृहं मम ॥ २२ ॥

हुआ वह राजर्षि मनमें भामिनीका स्मरण करने लगा, जो रूपसे साक्षात् लक्ष्मीके समान थी ॥ १७ ॥ कामिनीका स्मरण करनेसे उसका वीर्य स्खलित हुआ, स्खलित उस वीर्यको राजाने बड़के पत्तेमें रखकर विचारा ॥ १८ ॥ कि, यह मेरा वीर्य वृथा न जाय ऐसा किस प्रकारसे हो ? ऋतुकाल जानकर राजाने यह इच्छा की ॥ १९ ॥ सर्वथा यह मेरा अमोघ वीर्य है इसमें सन्देह नहीं. इसे प्रियाके पास भेजूं यह मनमें विचारा ॥२०॥ महिषीके निकट वीर्य प्रस्थापन करनेका समय विचार कर उसने वीर्यको अभिमंत्रित कर बटपत्रमें स्थापन किया ॥ २१ ॥ अपने निकटवर्ती श्येनको स्थित देखकर उससे बोला--हे महाभाग ! शीघ्र इसको लेकर हमारे घरको जाओ ॥ २२ ॥

और हे सौम्य ! मेरी प्रियाके निमित्त इसको घर ले जाओ और अभी गिरिकाके निमित्त तुम इसको प्रदान करो क्योंकि इस समय उसका ऋतुकाल है ॥ २३ ॥ सूतजी बोले यह कहकर राजाने श्येनके निमित्त वह पर्ण दिया और गगनगति वेत्ताओंमें श्रेष्ठ वह उसको ग्रहणकर आकाशमें उड गया ॥ २४ ॥ आकाशमें चोंचमें दोना लिये आते हुए उसको देखकर एक दूसरे श्येनने उसे आते हुए देखा ॥ २५ ॥ और मांस जानकर शीघ्रही उसकी ओर दौडा फिर आकाशमें दोनों तुण्डयुद्ध करने लगे ॥ २६ ॥ उन दोनोंके युद्ध करते में वह वीर्य यमुनाजलमें गिर पड़ा और वीर्यपुट गिर जानेपर वे दोनों खग यथा स्थानमें चले गये ॥ २७ ॥ इसी अवसरमें कोई आद्रिका नामक अप्सरा सन्ध्या वंदनमें तत्परब्राह्मणके निकट आई थी ॥ २८ ॥ और जलकेलि करती हुई

मत्प्रियार्थमिदं सौम्य गृहीत्वा त्वं गृहं नय ॥ गिरिकायै प्रयच्छाशु तस्यास्त्वार्तवमद्य वै ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रददौ पर्णं श्येनाय नृपसत्तमः ॥ स गृहीत्वोत्पपाताशु गगनं गतिवित्तमः ॥ २४ ॥ गच्छंतं गगनं श्येनं धृत्वा चंचुपुटे पुटम् ॥ तमपश्यदथायांतं खगं श्येनस्तथाऽपरः ॥ २५ ॥ आमिषं स तु विज्ञाय शीघ्रमभ्यद्रवत्खगम् ॥ तुंडयुद्धमथाकाशे तावुभौ संप्रचक्रतुः ॥ २६ ॥ युद्ध्यतोरपतद्रेतस्तच्चापि यमुनांभसि ॥ खगौ तौ निर्गतौ कामं पुटके पतिते तदा ॥ २७ ॥ एतस्मिन्समये काचिदद्रिका नाम चाप्सराः ॥ ब्राह्मणं समनुप्राप्तं संध्यावंदनतत्परम् ॥ २८ ॥ कुर्वंती जलकेलिं सा जले मग्ना चचार सा ॥ जग्राह चरणं नारी द्विजस्य वरवर्णिनी ॥ २९ ॥ प्राणायामपरः सोऽथ दृष्ट्वा तां कामचारिणीम् ॥ शशाप भव मत्सी त्वं ध्यानविघ्नकरी यतः ॥ ३० ॥ सा शप्ता विप्रमुख्येन बभूव यमुनाचरी ॥ शफरी रूपसंपन्ना ह्यद्रिका च वराप्सराः ॥ ३१ ॥ श्येनपादपरिभ्रष्टं तच्छुक्रमथ वासवी ॥ जग्राह तरसाऽभ्येत्य साऽद्रिका मत्स्यरूपिणी ॥ ३२ ॥ अथ कालेन कियता मत्सीं ता मत्स्यजीवनः ॥ संप्राप्ते दशमे मासि बबंध तां मनोरमाम् ॥ ३३ ॥

जलमें मज्जित हो विचारने लगी और उस वरवर्णिनीने ब्राह्मणके चरणोंको ग्रहण किया ॥ २९ ॥ वे प्राणायाममें तत्पर उस अप्सराको देखते हुए और उन्होंने शाप दिया कि तू हमारे ध्यानमें विघ्न करती है इससे मछली हो जा ॥ ३० ॥ वह ब्राह्मणसे शापित होकर यमुनामें विचरती थी. वह अद्रिक नामक श्रेष्ठ अप्सरा शफरीरूपको प्राप्त थी ॥ ३१ ॥ श्येनके पदसे भ्रष्ट उस वीर्यको मत्स्यरूपी वह अद्रिकग्रहण करती हुई ॥ ३२ ॥ फिर कुछ समयके उपरांत उस मत्सीको दशवें महीनेमें मत्स्यजीवी दाशराजने जालमें बंधालिया ॥ ३३ ॥

उस मत्स्यजीवीने उसका उदर विदीर्ण किया, उससे मनुष्याकारका एक युग्म जोडा निर्गत हुआ ॥ ३४ ॥ एक कन्या शोभायमान और एक सुन्दर बालक उससे प्रगट हुआ ,इस आश्चर्यको देखकर वह बडे विस्मयको प्राप्त हुआ ॥३५॥ इन दोनों बालकोंको राजाको निवेदन किया, राजानेभी विस्मयको प्राप्त हो बालकको पुत्ररूपसे ग्रहण किया ॥ ३६ ॥ वह धर्मात्मा सत्यसागर मत्स्य राजा हुआ, वह वसुका पुत्र महातेजस्वी पिताके तुल्य पराक्रमी हुआ ॥ ३७ ॥ और उस कन्याको उस राजाने जलजीवीके निमित्त दिया; उसका नाम काली और मत्स्योदरी हुआ ॥ ३८ ॥ मछलीकी गन्धि आनेसे उसका नाम मत्स्यगंधा हुआ, इस प्रकार वह वसुवीर्यजा कन्या दासके घरमें वृद्धिको प्राप्त होने लगी ॥३९॥ ऋषि बोले, अद्रिकाको मुनिने शाप दिया, और वह

उदरं विद दाराशु स तस्या मत्स्यजीवनः ॥ युग्मं विनिःसृतं तस्मादुदरान्मानुषाकृति ॥ ३४ ॥ बालः कुमारः सुभगस्तथा कन्या शुभानना ॥ दृष्ट्वाऽऽश्चर्यमिदं सोऽथ विस्मयं परमं गतः ॥ ३५ ॥ राज्ञे निवेदयामास पुत्रौ द्वौ तु झषोद्भवौ ॥ राजाऽपि विस्मयाविष्टः सुतं जग्राह तं शुभम् ॥ ३६ ॥ स मत्स्यो नाम राजाऽसौ धार्मिकः सत्यसंगर ॥ वसुपुत्रो महातेजाः पित्रा तुल्यपराक्रमः ॥ ३७ ॥ कालिका वसुना दत्ता तरसा जलजीविने ॥ नाम्ना कालीति विख्याता तथा मत्स्योदरीति च ॥ ३८ ॥ मत्स्यगंधेति नाम्ना वै गुणेन समजायत ॥ विवर्धमाना दाशस्य गृहे सा वासवी शुभा ॥३९॥ ऋषय ऊचुः ॥ अद्रिका मुनिना शप्ता मत्सी जाता वराप्सराः॥ विदारिता च दाशेन मृता च भक्षिता पुनः ॥ ४० ॥ किं बभूव पुनस्तस्या अप्सराया वदस्व तत् ॥ शापस्यांतं कथं सूत कथं स्वर्गमवाप सा ॥ ४१ ॥सूत उवाच ॥ शप्ता यदा सा मुनिना विस्मिता संबभूव ह ॥ स्तुतिं चकार विप्रस्य दीनेव रुदती तदा ॥४२॥ दयावान्ब्राह्मण प्राह तां तदा रुदतीं स्त्रियम् ॥ मां शोकं कुरु कल्याणि शापांतं ते वदाम्यहम् ॥ ४३ ॥ मत्क्रोधशापभोगेन मत्स्ययोनिं गता शुभे ॥ मानुषौ जनयित्वा त्वं शापमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ४४ ॥

मत्सीहुई और दास उसको विदीर्ण कर खा गये ॥ ४० ॥ परंतु यह कहिये उस अप्सराका क्या हुआ ? हे सूतजी ! उसके शापका अन्त कैसे हुआ ? और किस प्रकार स्वर्गको गई ? ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले , जब मुनिने उसको शाप दिया तब वह विस्मित हुई और दीन होकर रोती हुई स्तुति करने लगी ॥ ४२ ॥ तब वह दयावान् ब्राह्मण उस रोती हुईसे कहने लगे हे कल्याणी ? शोक मत करो, तुम्हारे शापका अन्त मैं कहता हूं ॥ ४३ ॥ हे शुभे ! मेरे शापसे तू मत्सी होगी और दो मनुष्योंको जन्माकर शापसे मुक्त हो जायगी ॥ ४४ ॥

ऐसा कहते ही उसने नदीके जलमें मत्स्यदेह पाई और बालकोंको उत्पन्न कर शापसे मुक्त होगई ॥ ४५ ॥ मत्स्यरूपको त्यागकर और दिव्यदेहको प्राप्त हो शापके अंतमें वह वरवर्णिनी देवमार्गको प्राप्त हुई ॥४६॥ इस प्रकार वह वरानना मत्स्यगंधवाली हुई और वह पालित हुई दासके घरमें बढ़नेलगी ॥ ४७ ॥ जिस समय सुन्दरकांतिवाली मत्स्यगंधा किशोरी हुई तब अपने पिताके सब कार्य करने लगी ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषायां मत्स्यगंधोत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूतजी बोले, एक समय पराशर मुनि तीर्थयात्राको जातेहुए वे महातपस्वी कालिंदीके तटपर आते हुए ॥ १ ॥ उस समय वे महात्मा भोजन करते हुए निषादसे बोले, हमको नावके द्वारा कालिंदीके पार पहुँचाओ ॥२॥ दास मुनिके वचन सुन नदीतटपर भोजन करते

इत्युक्त्वा तेन सा प्राप मत्स्य देहं नदीजले ॥ बालकौ जनयित्वा सा मृता मुक्ता च शापतः ॥ ४५ ॥ संत्यज्य रूपं मत्स्यस्य दिव्यं रूपमवाप्य च ॥ जगामामरमार्गं च शापांते वरवर्णिनी ॥ ४६ ॥ एवं जाता वरा पुत्री मत्स्यगंधा वरानना ॥ पुत्रीव पाल्यमाना सा दाशगेहे व्यवर्धत ॥ ४७ ॥ मत्स्यगंधा तदा जाता किशोरी चातिसुप्रभा ॥ तस्य कार्याणि कुर्वाणा वासवी चातिसुप्रभा ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे मत्स्यगंधोत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ सूत उवाच ॥ एकदा तीर्थयात्रायां व्रजन्पाराशरो मुनिः ॥ आजगाम महातेजाः कालिंद्यास्तटमुत्तमम् ॥ १ ॥ निषादमाह धर्मात्मा कुर्वतं भोजनं तदा ॥ प्रापयस्व परं पारं कालिंद्या उडुपेन माम् ॥ २ ॥ दाशः श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं कुर्वाणो भोजनं तटे ॥ उवाच तां सुतां बालांमत्स्यगंधां मनोरमाम् ॥३॥ उडुपेन मुनिं बाले परं पारं नयस्व ह ॥ गंतुकामोऽस्ति धर्मात्मा तापसोऽयं शुचिस्मिते ॥४॥ इत्युक्ता सा तदा पित्रा मत्स्यगंधाऽथ वासवी ॥ उडुपे मुनिमासीनं संवाहयति भामिनी ॥ ५ ॥ व्रजन्सूर्यसुतातोये भावित्वाद्दैवयोगतः ॥ कामार्तस्तु मुनिर्जातो दृष्ट्वा तां चारुलोचनाम् ॥ ६ ॥ ग्रहीतुकामः स मुनिर्दृष्ट्वा व्यंजितयौवनाम् ॥ दक्षिणेन करेणैनामस्पृशद्दक्षिणे करे ॥ ७ ॥

हुए उस मनोहर मत्स्यगंधा अपनी कन्यासे बोले ॥३॥ हे बाले ! छोटी नौकासे मुनिको पार ले जाय. हे शुचिस्मिते ! ये धर्मात्मा बड़े तपस्वी अभी जाना चाहते हैं ॥ ४ ॥ पिताके यह वचन सुनकर वह वासवी मत्स्यगंधा उडुपपर मुनिको बैठाय पार लेजाने लगी ॥ ५ ॥ इस प्रकार यमुनामें गमन करते २ दैवयोगसे उस सुलोचनीको देखकर मुनि कामार्त हुए ॥ ६ ॥ यौवनके चिह्न देखकर मुनि उसको ग्रहण करनेकी इच्छासे अपने दहिने हाथसे उसका दक्षिण हाथ छूते हुए ॥ ७ ॥

तब वह असितापांगी हँसती हुई ऋषिसे बोली, क्या यह बात तुम्हारे कुल शास्त्र और तपके सदृश हैं ? अर्थात् काम बढानेको मत्स्यगंधासे हास्य किया ॥ ८ ॥ तुम वसिष्ठकुलोत्पन्न कुलशील सम्पन्न होकर हे धर्मज्ञ ! कामसे पीडित होकर क्या करना चाहते हो ? ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! पृथ्वीमें मनुष्यका जन्म बड़ा दुर्लभ है और उसमें भी ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होनी बड़ी दुर्लभ है ॥१०॥ कुल, शील, शास्त्रसे तुम धर्मज्ञाता ब्राह्मणोंमें उत्तम हो, हे विप्रेंद्र ! मुझ मत्स्य गंधाको देखकर तुम अनार्ष भावको कैसे प्राप्त हुए हो ? ॥ ११ ॥ हे अमोघबुद्धिवाले ब्राह्मण ! तुम मेरे शरीरमें क्या देखकर पाणिग्रहण करनेको समीप आते हो ? तुम कामातुर होकर अपने धर्मको कैसे नहीं जानते ? ॥ १२ ॥ फिरमनमें विचारने लगी--आश्चर्य है कि, ये ब्राह्मण शृंगाररसमें मग्न होकर

तमुवाचासि तापांगी स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ कुलस्य सदृशं वः किं श्रुतस्य तपसश्च किम् ॥८॥ त्वं वै वसिष्ठदायादः कुलशीलसमन्वितः॥ किं चिकीर्षसि धर्मज्ञ मन्मथेन प्रपीडितः ॥९॥ दुर्लभं मानुषं जन्म भुवि ब्राह्मण सत्तम ॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये ब्राह्मणत्वं विशेषतः ॥१०॥ कुलेन शीलेन तथा श्रुतेन द्विजोत्तमस्त्वं किल धर्मविच्च ॥ अनार्यभाव कथमागतोऽसि विप्रेंद्र मां वीक्ष्य च मीनगन्धाम् ॥ ११ ॥मदीये शरीरे द्विजामोघबुद्धे शुभं किं समालोक्य पाणिं ग्रहीतुम् ॥ समीपं समायासि कामातुरस्त्वं कथं नाभिजानासि धर्मं स्वकीयम् ॥ १२ ॥ अहो मंदबुद्धिर्द्विजोऽयं ग्रहीष्यञ्जले मग्न एवाद्य मां वै गृहीत्वा ॥ मनो व्याकुलं पंचबाणातिविद्धं न कोऽपीह शक्तः प्रतीपं हि कर्तुम् ॥१३॥ इति संचिन्त्य सा बाला तमुवाच महामुनिम् ॥ धैर्यं कुरु महाभाग परं पारं नयामि वै ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ पराशरस्तु तच्छ्रुत्वा वचनं हितपूर्वकम् ॥ करं त्यक्त्वा स्थितस्तत्र सिंधोःपारं गतः पुनः ॥१५॥ मत्स्यगंधां प्रजग्राह मुनिः कामातुरस्तदा ॥ वेपमाना तु सा कन्या तमुवाच पुरःस्थितम् ॥ १६ ॥

स्तब्धबुद्धि होकर मेरा ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं, पंचबाण (काम) से इनका मन व्याकुल हुआ है इनको इस समय कौन निवारण कर सकता है ? यह शापभयसे विचार किया ॥ १३ ॥ ऐसा विचार कर वह बाला मुनिसे बोली हे महाभाग ! धैर्य करो मैं आपको पारतो पहुँचा दूं तब जो इच्छा हो सो करना ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, तब पराशर वह हितपूर्वक वचन सुनकर हाथ जोडकर बैठ गये और नदीके पार गये ॥१५॥ और पार जाकर कामसे व्याकुल होकर उन्होंने मत्स्यगंधाको ग्रहण किया तब कांपती हुई उस कन्याने आगे स्थित मुनिसे कहा ॥ १६ ॥

हे मुनि श्रेष्ठ! मुझमें मछलीकी दुर्गन्ध आती है, इससे तुमको शंका क्यों नहीं होती? क्योंकि समान रूपवालोंकाही संयोगसुख करनेवाला होता है ॥ १७ ॥ उसके यह कहते ही मुनिने उसको क्षणमात्रमें योजनगंधा कर दिया और फिर उसका रूप और सुन्दर मुख और भी दूना दमक उठा ॥ १८ ॥ इस प्रकार उस मनोहर कान्ताको कस्तूरीके समान गंधवाली करके कामपीडित मुनिने दक्षिण हाथसे उसको ग्रहण किया ॥१९॥ तब सत्यवती मुनिको कर धारण करता देखकर बोली हे मुने? यह आते जाते लोग देखेंगे और तटपर स्थित पिता भी देखते हैं ॥२०॥ यह पशुधर्म तो मुझे अच्छा नहीं लगता कारण कि, दारुण है. हे मुनि? रात्रि होने तक कालकी प्रतिक्षा करो ॥ २१ ॥ मनुष्योंको इस कर्ममें रात्रि ही कही है दिन नहीं. दिनमें संग करनेसे महादोष है और यह सब प्राणी

दुर्गंधाऽहं मुनिश्रेष्ठ कथं त्वं नोपशंकसे ॥ समानरूपयोः कामसंयोगस्तु सुखावहः ॥ १७ ॥ इत्युक्तेन तु सा कन्या क्षणमात्रेण भामिनी ॥ कृता योजनगधां तु सुरूपा च वरानना ॥ १८ ॥ मृगनाभिसुगंधां तां कृत्वा कांतां मनोहराम् ॥ जग्राह दक्षिणे पाणौ मुनिर्मन्मथपीडितः ॥ १९ ॥ ग्रहीतुकामं तं प्राह नाम्ना सत्यवती शुभा ॥ मुने पश्यति लोकोऽयं पिता चैव तटस्थितः ॥ २० ॥ पशुधर्मो न मे प्रीतिं जनयत्यतिदारुणः ॥ प्रतीक्षस्व मुनिश्रेष्ठ यावद्भवति यामिनी ॥ २१ ॥ रात्रौ व्यवाय उद्दिष्टोदिवा न मनुजस्य हि ॥ दिवा संगे महान्दोषः पश्यंति किल मानवाः ॥ २२ ॥ कामं यच्छ महाबुद्धे लोकनिंदा दुरा सदा ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या युक्तमुक्तमुदारधीः ॥ २३ ॥ नीहारं कल्पयामास शीघ्रं पुण्यबलेन वै ॥ नीहारे च समुत्पन्ने तटेऽतितमसा युते ॥ २४ ॥ कामिनी तं मुनिं प्राह मृदुपूर्वमिदं वचः ॥ कन्याऽहं द्विजशार्दूल भुक्त्वा गंतासि कामतः ॥ २५ ॥ अमोघवीर्यस्त्वं ब्रह्मन्का गतिर्मे भवेदिति ॥ पितरं किं ब्रवीम्यद्य सगर्भा चेद्भवाम्यहम् ॥ २६ ॥

भी देखते हैं ॥२२॥ हे महाबुद्धे देखो? यह लोकनिन्दा दुरासद है, तब यह उसका युक्तिसंगत वचन श्रवण कर उदार बुद्धिवाले मुनिने ॥ २३ ॥ अपने पुण्यके बलसे नीहार (कुहरे) की कल्पना की जब नीहार हो गया तो तट अत्यन्त अंधकारसे आच्छन्न हो गया ॥ २४ ॥ तब वह कामिनी मुनिसे मृदुतापूर्वक वचन बोलने लगी--हे द्विजश्रेष्ठ? मैं कन्या हूं आप तो मुझे भोगकर यथेच्छ चले जायंगे ॥ २५ ॥ परन्तु हे ब्रह्मन्? आप अमोघवीर्य हैं, मेरी क्या गति होगी? जो इस समय में गर्भवती हो गई तो पितासे क्या कहूंगी? ॥ २६ ॥

आप तो मुझे भोगकर चले जायंगे, परन्तु कहो तो मैं क्या करूंगी ? पराशर बोले हे कान्ते ? इस समय मेरा प्रिय कर तू कन्या ही हो जायगी ॥ २७ ॥ हे भामिनी ! जो तेरी इच्छा हो वह वर मांग . सत्यवती बोली हे मानद ! जिस प्रकार मेरे माता पिता और कोई लोग मुझको न जानें ॥ २८ ॥ और मेरा कन्याव्रत नष्ट न हो हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ? तुम वही करो, चाहे पुत्र आपके ही समान वीर्यवान् उत्पन्न हो ॥२९॥ सदा मेरे शरीरमें यह गंध रहे और नवा यौवन बढता रहे. पराशर बोले, हे सुंदरि ? सुनो तुम्हारा पुत्र विष्णुके अंशसे संभूत पवित्र ॥ ३० ॥ त्रिलोकीमें विख्यात होगा. हे वरवर्णिनि ? किसी एक कारणसे मैं तेरे विषय कामार्त हुआ हूं ॥ ३१ ॥ हे वरानने ! इससे पहले कभी भी मुझको सम्मोह नहीं हुआ था मैंने अप्सराओंके रूपको देखकर

त्वं गमिष्यसि भुक्त्वा मां किं करोमि वदस्व तत् ॥ पराशर उवाच ॥ कांतेऽद्य मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥ २७ ॥ वृष्णीष्व च वरं भीरु यं त्वमिच्छसि भामिनि ॥ सत्यवत्युवाच ॥ यथा मे पितरौ लोके न जानीतो हि मानद ॥२८॥ कन्याव्रतं न मे हन्यात्तथा कुरु द्विजोत्तम ॥ पुत्रश्च त्वत्समः कामं भवेदद्भुतवीर्यवान् ॥ २९ ॥ गंधोऽयं सर्वदा मे स्याद्यौवनं च नवं नवम् ॥ पराशर उवाच ॥ शृणु सुंदरी पुत्रस्ते विष्णवंशसंभवः शुचिः ॥ ३० ॥ भविष्यति च विख्यातस्त्रैलोक्ये वरवर्णिनि ॥ केनचित्कारणेनाहं जातः कामातुरस्त्वयि ॥ ३१ ॥ कदाऽपि च न संमोहो भूत पूर्वो वरानने ॥ दृष्ट्वा चाप्सरसां रूपं सदाऽहं धैर्यमावहम् ॥ ३२ ॥ दैव योगेन वीक्ष्य त्वां कामस्य वशगोऽभवम् ॥ तत्किंचित्कारणं विद्धि दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥३३॥ दृष्ट्वाऽहं चातिदुर्गंधां त्वां कथं मोहमाप्नुयाम् ॥ पुराण कर्ता पुत्रस्ते भविष्यति वरानने ॥३४॥ वेदविभागकर्ता च ख्यातश्च भुवनत्रये ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तां वशं यातां भुक्त्वा स मुनिसत्तमः ॥ ३५ ॥ जगाम तरसा स्नात्वा कालिंदीसलिले मुनिः ॥ साऽपि सत्यवती जाता सद्यो गर्भवती सती ॥ ३६ ॥

भी सदा धैर्य धारण किया है ॥ ३२ ॥ दैवयोगसे ही तुझको देखकर मैं कामके वशीभूत हुआ हूं, सो कोई कारण ही जानना. कारण कि दैव बडा दुरतिक्रम है ॥३३॥ कि, मैं दुर्गन्धवाली भी तुझको देख कर कैसे मोहित हो गया ? हे वरानने ? तेरा पुत्र पुराणकर्ता होगा ॥ ३४ ॥ और वेदज्ञाता श्रेष्ठ वेदविभागकर्ता तीनों भुवनोंमें विख्यात होगा. सूतजी बोले, ऐसा कह कर वह मुनि उस वशीभूत हुई को भोगकर ॥ ३५ ॥ शीघ्रतासे फिर कालिन्दीके जलमें स्नानकर चले गये और वह सत्यवती भी शीघ्र गर्भवती हुई ॥ ३६ ॥

और उसी काल यमुना द्वीपमें कामके समान सुन्दर पुत्रको उत्पन्न करती हुई. और उत्पन्न होते ही वे मुनि अपनी मातासे बोले ॥ ३७ ॥ तपमें ही मन करके वह वीर्यवान् बोले, हे मातः ! तुम भी जाओ और मैं भी जाता हूं ॥ ३८ ॥ हे महाभागे मैं तपको जाता हूं, जब तुम स्मरण करोगी तभी आकर प्राप्त हूंगा हे मातः ! जब तुम्हारा कभी कुछ भी कार्य हो ॥ ३९ ॥ तब मुझे स्मरण करना हे भामिनी ? मैं शीघ्र आऊंगा, तेरा कल्याण हो मैं जाता हूं. चिन्ता त्यागकर सुखसे रहो ॥ ४० ॥ यह कहकर व्यासजी भी चले गये और वह भी अपने पिताके पास गई. द्वीपमें बालकके रखनेसे वे द्वैपायन कहलाये ॥ ४१ ॥ वे विष्णु अंशके योगसे जातमात्र ही वृद्धिको प्राप्त हो गये, और तीर्थ २ में स्नान करते तप करने लगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार सत्यवतीमें पराशरसे द्वैपायनका जन्म हुआ,

सुषुवे यमुनाद्वीपे पुत्रं काममिवापरम् ॥ जातमात्रस्तु तेजस्वी तामुवाच स्वमातरम् ॥३७॥ तपस्येव मनः कृत्वा विविशे चातिवीर्यवान् ॥ गच्छ मातर्यथाकामं गच्छाम्यहमतः परम् ॥३८॥ तपः कर्तुं महाभागे दर्शयिष्यामि वै स्मृतः ॥ मातर्यदा भवेत्कार्यं तव किंचिदनुत्तमम् ॥ ३९ ॥ स्मर्तव्योऽहं तदा शीघ्रमागमिष्यामि भामिनि ॥ स्वस्ति तेस्तु गमिष्यामि त्यक्त्वा चिंतां सुखं वस ॥४०॥ इत्युक्त्वा निर्ययौ व्यासः साऽपि पित्रंतिकं गता ॥ द्वीपे न्यस्त स्तया बालस्तस्माद् द्वैपायनोऽभवत् ॥४१॥ जातमात्रो जगामाशु वृद्धिं विष्णवंशयोगतः ॥ तीर्थे तीर्थे कृतस्नानश्चचार तप उत्तमम् ॥ ४२ ॥ एवं द्वैपायनो यज्ञे सत्यवत्यां पराशरात् ॥ चकार वेदशाखाश्च प्राप्तं ज्ञात्वा कलेर्युगम् ॥ ४३ ॥ वेदविस्तारकरणाद्व्यासनामाऽभवन्मुनिः ॥ पुराण संहिताश्चक्रे महाभारतमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ शिष्यानध्यापयामास वेदान्कृत्वा विभागशः ॥ सुमंतुं जैमिनिं पैलं वैशंपायनमेव च ॥ ४५ ॥ असितं देवलं चैव शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥ सूत उवाच ॥ एतच्च कथितं सर्वं कारणं मुनिसत्तमाः ॥ ४६ ॥ सत्यवत्याः सुतस्यापि समुत्पत्तिस्तथा शुभा ॥ संशयोऽत्र न कर्तव्यः संभवे मुनि सत्तमाः ॥ ४७ ॥

उन्होंने कलियुग आया जानकर वेदशाखाओंको किया ॥ ४३ ॥ वेदविस्तारके कारणसे वे मुनि वेदव्यास हुए. उन्होंने महाभारत और पुराण संहिताओंकी रचना की ॥४४॥ वेदविभाग करके शिष्योंको पढाया सुमन्तु, जैमिनी, पैल, वैशंपायन ॥ ४५ ॥ असित, देवल और अपने पुत्र शुकको पढायासूतजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ? यह सब कारण आपसे मैंने कहा ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार सत्यवती पुत्रकी उत्पत्ति हुई,हे मुनिश्रेष्ठ ! योगियोंकी उत्पत्तिमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ४७ ॥

दे. भा. ॥ ६ ॥

बडोंके चरित्र न देखने गुण ग्रहण करने. कारणसे ही सत्यवतीकी मछलीके पेटमें उत्पत्ती हुई ॥ ४८ ॥ पराशरसे संयोग होकर फिर शंतनुसे हुआ नही तो मुनिका चित्त कामाकुल क्यों होता ? ॥ ४९ ॥ धर्मज्ञ होकर मुनिने अनार्यजुष्ट कर्म क्यों किया ? यह आश्चर्यरूप उत्पत्ति कारणपूर्वक हुई हैं ॥ ५० ॥ इसको सुनकर मनुष्य पापरहित होता है, जो बुद्धिमान् मनुष्य इस श्रेष्ठ आख्यानको सुनता है ॥ ५१ ॥ उसकी दुर्गति नहीं होती और वह सदा सुखी होता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ऋषि बोले, हे सूत ! आपने बडे तेजस्वी व्यासजीकी उत्पत्ति

महतां चरिते चैव गुणा ग्राह्या मुनेरिति ॥ कारणाच्च समुत्पत्तिः सत्यवत्या झषोदरे ॥ ४८ ॥ पराशरेण संयोगः पुनः शंतनुना तथा ॥ अन्यथा तु मुनेश्चित्त कथं कामाकुलं भवेत् ॥ ४९ ॥ अनार्यजुष्टं धर्मज्ञः कृतवान्स कथं मुनिः ॥ सकारणेयमुत्पत्तिः कथिताऽऽश्चर्यकारिणी ॥५०॥ श्रुत्वा पापाच्च निर्मुक्तो नरो भवति सर्वथा ॥ य एतच्छुभमाख्यानं शृणोति श्रुतिमान्नरः ॥ ५१ ॥ न दुर्गतिमवाप्नोति सुखी भवति सर्वदा ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ उत्पत्तिस्तु त्वया प्रोक्ता व्यासस्यामिततेजसः ॥ सत्यवत्या स्तथा सूत विस्तरेण त्वयाऽनघ ॥ १ ॥ तथाऽप्येकस्तु संदेहश्चित्तेऽस्माकं सुसंस्थितः ॥ न निवर्तति धर्मज्ञ कथितेन त्वयाऽनघ ॥ २ ॥ माता व्यासस्य या प्रोक्ता नाम्ना सत्यवती शुभा ॥ सा कथं नृपतिं प्राप्ता शंतनुं धर्मवित्तमम् ॥३॥ निषादपुत्रीं स कथं वृतवान्नृपतिः स्वयम् ॥ धर्मिष्ठः पौरवो राजा कुलहीनामसंवृत्ताम् ॥ ४ ॥ शंतनोः प्रथमा पत्नी का ह्यभूत्कथयाधुना ॥ भीष्मः पुत्रोऽथ मेधावी वसोरंशः कथं पुनः ॥ ५ ॥ त्वया प्रोक्तं पुरा सूत राजा चित्रांगदः कृतः ॥ सत्यवत्याः सुतो वीरो भीष्मेणामित तेजसा ॥ ६ ॥

कही, हे अनघ ? सत्य वतीका विस्तारपूर्वक चरित्र कहा ॥ १ ॥ तोभी हे पापरहित ! एक हमारे चित्तमें सन्देह है ही, वह निवृत्त नहीं होता. हे धर्मज्ञ ! आपने कहाभी है ॥ २ ॥ कि व्यासजीकी माता सत्यवती है वह राजा शंतनुको किस प्रकार प्राप्त हुई ? जो बडे धर्मात्मा थे ॥ ३ ॥ निषादपुत्रीको स्वयं राजाने कैसे वरण किया ? जो राजा कुरुवंशमें धर्मिष्ठ थे उन्होंने कुलहीनको कैसे स्वीकार किया ? ॥ ४ ॥ और शंतनुकीपहली पत्नी कौन थी और महात्मा भीष्मजी वसुका अंश किस प्रकार थे ? ॥ ५ ॥ हे सूत ! यह जो आपने कहा कि भीष्मजीने चित्रांगदको राजा बनाया जो सत्यवतीका पुत्र बडा वीर था ॥ ६ ॥

भा. टी. द्वि. अ. ३

और चित्रांगद वीरकेमरनेपर फिर उसके भ्राताको राजा किया यह विचित्रवीर्यनाम सत्यवतीका पुत्र था ॥ ७। जब कि; धर्मिष्ठ रूपवान् ज्येष्ठ भीष्मजी विद्यमान थे तब वे राज्यके ऊपर क्यों स्थापित किये गये ॥ ८ ॥ विचित्रवीर्यके मरनेपर सत्यवती बड़ी दुःखी हुई और इसने अपनी बहुओंके द्वारा गोलकपुत्र किस प्रकार उत्पन्न किये ! ॥ ९ ॥ उस वरवर्णिनीने भीष्मकोक्यों न राज्य दिया ? और वीर भीष्मने दार संग्रह क्यों न किया ! ॥ १० ॥ और महातेजस्वी व्यासने यह अधर्म क्यों किया ? जो ज्येष्ठ होकर छोटे भ्राताओंकी भार्याओंमें पुत्र उत्पन्न किये ॥ ११ ॥ उन धर्मात्मा पुराणकर्ता मुनिने परदारा और विशेषकर भ्राताओंकी भार्याओंका कैसे सेवन किया ? ॥ १२ ॥ मुनिने यह जुगुप्सित कर्म क्यों किया? हे सूत! वेदकी अनुमति करनेवालेका क्या यह

चित्रांगदे हते वीरे कृतस्तदनुजस्तथा ॥ विचित्रवीर्यनामाऽसौ सत्यवत्याः सुतो नृपः ॥ ७ ॥ ज्येष्ठे भीष्मे स्थिते पूर्वं धर्मिष्ठे रूपवत्यपि ॥ कृतवान्स कथं राज्यं स्थापितस्तेन जानता ॥ ८ ॥ मृते विचित्रवीर्ये तु सत्यवत्यतिदुः खिता ॥ वधूभ्यां गोलकौ पुत्रौ जनयामास सा कथम् ॥ ९ ॥ कथं राज्यं न भीष्माय ददौ सा वरवर्णिनी ॥ न कृतस्तु कथं तेन वीरेण दारसंग्रहः ॥ १० ॥ अधर्मस्तु कृतः कस्माद्व्यासेनामिततेजसा ॥ ज्येष्ठेन भ्रातृभार्यायां पुत्रावुत्पादिताविति ॥ ११ ॥ पुराणकर्ता धर्मात्मा स कथं कृतवान्मुनिः ॥ सेवनं परदाराणां भ्रातुश्चैव विशेषतः ॥ १२ ॥ जुगुप्सितमिदं कर्म स कथं कृतवान्मुनिः ॥ शिष्टाचारः कथं सूत वेदानुमितिकारकः ॥ १३ ॥ व्यासशिष्योऽसि मेधाविन्संदेहं छेत्तुमर्हसि ॥ श्रोतुकामा वयं सर्वे धर्मक्षेत्रे कृतक्षणाः ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ इक्ष्वाकुवंशप्रभवो महाभिष इति स्मृतः ॥ सत्यवान्धर्मशीलश्च चक्रवर्ती नृपोत्तमः ॥ १५ ॥ अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतेन च ॥ तोषयामास देवेंद्रं स्वर्गं प्राप महामतिः ॥ १६ ॥ एकदा ब्रह्मसदनं गतो राजा महाभिषः ॥ सुराः सर्वे समाजग्मुः सेवनार्थं प्रजापतिम् ॥ १७ ॥ गंगा महानदी तत्र संस्थिता सेवितुं विभुम् ॥ तस्या वासः समुद्धूतं मारुतेन तरस्विना ॥ १८ ॥

शिष्टाचार होता है ? ॥ १३ ॥ हे बुद्धिमान् ! आप व्यासके शिष्य हो ; यह हमारा सन्देह दूर करो; हम धर्मक्षेत्रमें सुननेको अवकाशमें स्थित हैं ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, एक राजा इक्ष्वाकुवंशमें महाभिष था वह सत्यवान् धर्मशील चक्रवर्ती और राजाओंमें उत्तम था ॥ १५ ॥ सहस्र अश्वमेध सौ वाजपेयसे उसने इन्द्रको सन्तुष्ट किया और उस महापतिने स्वर्ग पाया ॥ १६ ॥ एक समय महाभिष राजा ब्रह्मलोकको गया सब देवता प्रजापतिके सेवनको आये ॥ १७ ॥ महानदी गंगाभी उन विभुकासेवन करनेको आई उस समय पवनके वेगसे उनका वस्त्र उडा ॥ १८ ॥

सब देवताओंने यह न देखकर ही मुख नीचाकर लिया था, परन्तु महाभिष राजा गंगाको निश्शंक देखने लगा ॥ १९ ॥ नदीकी देवता गंगाने राजाको प्रेमसंयुक्त जानकर स्वयंभी मोहित होकर देखा इस प्रकार वे दोनों कामसे मोहित हो निर्लज्ज होगये ॥ २० ॥ ब्रह्माने क्रोध कर उनदोनोंको त्वरित शाप दिया कि हे राजन् तुम अब फिर जाकर मर्त्यलोकमें जन्म लो ॥ २१ ॥ फिर वहां पुण्य अर्जन करके स्वर्गलोकको आओगे फिर गंगाकी राजामें प्रेम चेष्टा जानकर ब्रह्माजीने गंगासे कहा कि तुमभी मर्त्यलोकमें गमन करो ॥२२॥ तब यह दोनोंभी विमनस्क होकर शीघ्र, ब्रह्माके स्थानसे चले और वे दोनों भूलोंकके राजाओंको विचारने लगे कि, कहां जन्मलें ? ॥२३॥ तब पुरुवंशमें उत्पन्न प्रतीपको पिताबनानेकी इच्छा की उसी समय आठों वसु अपनी स्त्रियों सहित ॥२४॥ यदृच्छासे

अधोमुखाः सुराः सर्वे न विलोक्यैव तां स्थिताः ॥ राजा महाभिषस्तां तु निःशंकः समपश्यत ॥ १९ ॥ साऽपि तं प्रेमसंयुक्तं नृपं ज्ञातवती नदी ॥ दृष्ट्वा तौ प्रेमसंयुक्तौ निर्लज्जौ काममोहितौ ॥२०॥ ब्रह्मा चुकोप तौ तूर्णं शशाप च रुषाऽन्वितः ॥ मर्त्यलोकेषु भूपाल जन्म प्राप्य पुनर्दिवम् ॥ २१ ॥ पुण्येन महताऽऽविष्टस्त्वमवाप्स्यसि सर्वथा ॥ गंगां तथोक्त्वान्ब्रह्मा वीक्ष्य प्रेमवतीं नृपे ॥ २२ ॥ विमनस्कौ तु तौ तूर्णं निःसृतौ ब्रह्मणोऽतिकात् ॥ स नृपश्चिंतयित्वाऽथ भूलोके धर्मतत्परान् ॥ २३ ॥ प्रतीपं चिंतयामास पितरं पुरुवंशजम् ॥ एतस्मिन्समये चाष्टौ वसवः स्त्रीसमन्विताः ॥ २४ ॥ वसिष्ठस्याऽऽश्रमं प्राप्ता रममाणा यदृच्छया ॥ पृथ्वादीनां वसूनां च मध्ये कोऽपि वसूत्तमः ॥ २५ ॥ द्यौर्नामा तस्य भार्याऽथ नंदिनीं गां ददर्श ह ॥ दृष्ट्वा पतिं सा पप्रच्छ कस्येयं धेनुरुत्तमा ॥ २६ ॥ द्यौस्तामाह वसिष्ठस्य गौरियं शृणु सुंदरि ॥ दुग्धमस्याः पिबेद्यस्तु नारी वा पुरुषोऽथ वा ॥ २७ ॥ अयुतायुर्भवेन्नूनं सदैवाऽगतयौवनः ॥ तच्छ्रुत्वा सुंदरी प्राह मृत्युलोकेऽस्ति मे सखी ॥ २८ ॥ उशीनरस्य राजर्षेः पुत्री परमशोभना ॥ तस्या हेतोर्महाभाग सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥ २९ ॥

रमण करनेको वसिष्ठके आश्रममें प्राप्त हुए उन पृथुआदि वसुओंमें कोई उत्तम वसु था ॥ २५ ॥ द्यौर्नामा उसकी भार्याने नन्दिनी गायको देखा, उसको देखकर उसने पतिसे पूँछा कि यह उत्तम धेनु किसकी है ! ॥ २६ ॥ द्यौने कहा हे सुन्दरी सुनो, यह वसिष्ठकी धेनु है कोई स्त्री वा पुरुष जो इसका दूध पिये ॥ २७ ॥ वह नित्य नवीन यौवन सम्पन्न दश सहस्र वर्ष जीता है, यह सुनकर सुन्दरी बोली मनुष्यलोकमें मेरी सखी ॥२८॥ राजर्षि उशीनरकी पुत्री परम शोभायमान है हे महाभाग ! उसके निमित्त इस दुधारी गाय बछड़े सहित ॥ २९ ॥

कामदा नन्दिनीको प्राप्त कर दीजिये जो इसका दूध पानकर मेरी सखी सदा ही ॥३०॥ मनुष्योंमें एकही जरा रोगरहित हो जाय. ये उसके वचन सुन द्यौने नंदिनीको हरण किया; ॥३१॥ उस अनघने दाता इन्द्रियनिग्रही मुनिका तिरस्कार कर पृथुआदिके सहित नंदिनीको ग्रहण किया नंदिनीके हर जानेपर महातेजस्वी वसिष्ठजी ॥ ३२ ॥ फल फूल लेकर शीघ्र आश्रममें आये, जब मुनिने अपने आश्रममें वत्स और धेनुको न देखा ॥ ३३ ॥ तब वे तेजस्वी उसको गह्वर वनोंमें ढूँढने लगे जब धेनु न मिली तब महर्षिको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ३४ ॥ और ध्यानसे उसको वरुणपुत्र वसिष्ठने वसुओं द्वारा हरी जानकर क्रोध किया कि, मुझे तिरस्कार कर जिससे गौ हर ली है ॥ ३५॥ इस कारण ये आठों वसु मर्त्यलोकमें निस्संशय जन्म लेंगे, इस प्रकार धर्मात्मा वसिष्ठने स्वयं उनको

आनयस्वाऽऽश्रमश्रेष्ठं नंदिनीं कामदां शुभाम् ॥ यावदस्याः पयः पीत्वा सखी मम सदैव हि ॥ ३० ॥ मानुषेषु भवेदेका जरारोगविव र्जिता ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या द्यौर्जहार च नंदिनीम् ॥ ३१ ॥ अवमन्य मुनिं दांतं पृथ्वाद्यैः सहितोऽनघः ॥ हृतायामथ नंदिन्यां वसिष्ठस्तु महातपाः ॥ ३२ ॥ आजगामाऽऽश्रमपदं फलान्यादाय सत्वरः ॥ नापश्यत यदा धेनुं सवत्सां स्वाश्रमे मुनिः ॥ ३३ ॥ मृगयामास तेजस्वी गह्वरेषु वनेष्वपि ॥ नासादिता यदा धेनुश्चुकोपातिशयं मुनिः ॥ ३४ ॥ वारुणिश्चापि विज्ञाय ध्यानेन वसुभिर्हृ ताम् ॥ वसुभिर्मे हृता धेनुर्यस्मान्मामवमन्य वै ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वे जनिष्यंति मानुषेषु न संशयः ॥ एवं शशाप धर्मात्मा वसूंस्ता न्वारुणिः स्वयम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा विमनसः सर्वे प्रययुर्दुःखिताश्च ते ॥ शप्ताः स्म इति जानंत ऋषिं तमुपचक्रमुः ॥ ३७ ॥ प्रसादयं तस्तमृषिं वसव शरणं गताः ॥ मुनिस्तानाह धर्मात्मा वसून्दीनाम्पुरः स्थितान् ॥ ३८ ॥ अनुसंवत्सरं सर्वे शापमोक्षमवाप्स्यथ ॥ येनेयं विहृता धेनुर्नंदिनी मम वत्सला ॥ ३९ ॥ तस्माद्द्यौर्मानुषे देहे दीर्घकालं वसिष्यति ॥ ते शप्ताः पथि गच्छंतीं गंगां दृष्ट्वा सरिद्वराम्॥४०॥

शाप दिया ॥३६॥ यह वार्ता सुनतेही वे सब अपनेको शापित जान बड़े दुःखसे ऋषिके आश्रममें आये ॥ ३७ ॥ उनको प्रसन्न करते हुए सब वसु शरण हुए तब उन दीन वसुओंको आगे खड़ा देखकर धर्मातमा मुनि बोले ॥३८॥ कि अनुक्रमसे एक ही वर्षमें तुम जन्म लोगे और उसी वर्षमें प्राण त्यागकर देंगे और जिसने मेरी प्यारी नंदिनी गौका हरण किया है ॥३९॥ इस कारण यह द्यौः मनुष्य लोकमें बहुतकालतक निवास करेगा, उन्होंने उस समय शापित होकर मार्गमें जाती हुई गंगाको देखा ॥ ४० ॥

तब शापित और हाथ जोडे वे चिन्तातुर उस नदीको देखकर बोले हे देवि ! हम अमृतप्राशी देवता मनुष्यके जठरमें कैसे प्राप्त होंगे ॥ यह हमको बडी चिन्ता है, इससे हे सरिद्वरे ! तुम मातुश्री होकर हमको प्रगट करो ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे अनघे ! शंतनु नाम राजर्षिकी भार्या हो हे गंगे ! उत्पन्न होतेही हमको जलमें डाल दो ॥ ४३ ॥ इस प्रकार निःसन्देह हम शापसे निर्मुक्त होंगे "ऐसाही होगा" यह सुनकर वे अपने लोकमें गये ॥ ४४ ॥ और वारंवारचिन्ता करती हुई गंगादेवीभी वहांसे चली प्रतीपका पुत्र महाभिष नाम राजा हुआ ॥ ४५ ॥ वे शंतनु नाम राजर्षि धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ हुए, प्रतीपने अमिततेजस्वी सूर्यकीस्तुति की ॥ ४६ ॥ तब उस जलसे सुरूपवती शुभानना गंगा निर्गत होकर शालके समान राजाकी दहिनी ऊरूपर स्थित हुई ॥ ४७ ॥ अंकमें बैठी

ऊचुस्तां प्रणताः सर्वे शप्तां चिंतातुरां नदीम् ॥ भविष्यामो वयं देवि कथं देवाः सुधाशनाः ॥ ४१ ॥ मानुषाणां च जठरे चिंतेयं महती हि नः ॥ तस्मात्त्वं मानुषीभूत्वा जनयास्मान्सरिद्वरे ॥ ४२ ॥ शंतनुर्नाम राजर्षिस्तस्य भार्या भवानघे ॥ जाताञ्जाताञ्जले चास्मान्निक्षिपस्व सुरापगे ॥ ४३ ॥ एवं शापविनिर्मोक्षो भविता नात्र संशयः ॥ तथेत्युक्ताश्च ते सर्वे जग्मुर्लोकं स्वकं पुनः ॥ ४४ ॥ गंगाऽपि निर्गता देवी चिंत्यमाना पुनः पुनः ॥ महाभिषो नृपो जातः प्रतीपस्य सुतस्तदा ॥ ४५ ॥ शंतनुर्नाम राजर्षिर्धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥ प्रतीपस्तु स्तुतिं चक्रे सूर्यस्यामिततेजसः ॥ ४६ ॥ तदा च सलिलात्तस्मान्निःसृता वरवर्णिनी ॥ दक्षिणं शालसंकाशमूरुं भेजे शुभानना ॥ ४७ ॥ अंके स्थितां स्त्रियं चाह मापृष्ट्वा किं वरानने ॥ ममोरावास्थिताऽसि त्वं किमर्थं दक्षिणे शुभे ॥ ४८ ॥ सा तमाह वरारोहा यदर्थं राजसत्तम ॥ स्थिताऽस्म्यंके कुरुश्रेष्ठ कामयानां भजस्व माम् ॥ ४९ ॥ तामवोचदथो राजा रूपयौवनशालिनीम् ॥ नाहं परस्त्रियं कामाद्गच्छेयं वरवर्णिनीम् ॥ ५० ॥ स्थिता दक्षिणमूरुं मे त्वमाश्लिष्य च भामिनि ॥ अपत्यानां स्नुषाणां च स्थानं विद्धि शुचिस्मिते ॥ ५१ ॥ स्नुषा मे भव कल्याणि जाते पुत्रेऽतिवाञ्छिते ॥ भविष्यति च मे पुत्रस्तव पुण्यान्न संशयः ॥ ५२ ॥

हुई उस स्त्रीसे राजाने कहा हे वामोरु ! तुम कौन और क्यों मेरी दक्षिण जंघापर विना पूंछे आ बैठी हो ॥ ४८ ॥ वह वरोरु बोली हे राजसत्तम ! मैं कामके निमित्त आपके पास आई हूं हेकुरुश्रेष्ठ ! तुम मेरा भजन करो ॥ ४९ ॥ तब राजाने उस रूपयौवनवतीसे कहा मैं कभी इच्छासे परस्त्रीके निकट गमन नही करताहूं ॥ ५० ॥ हे भामिनी ! शुचिस्मिते ! तुम मेरी दक्षिण ऊरुपर आलिंगन करके स्थित हुई यह स्थान तो सन्तान और पुत्रवधूओंका होता है ॥ ५१ ॥ हे कल्याणि ! तुम हमारी पुत्रवधू हो तेरे पुण्यसे हमारे निःसन्देह पुत्र होगा ॥ ५२ ॥

अच्छा यह कहकर वह दिव्य दर्शन कामिनी जलमें प्रविष्ट हुई और राजाभी उस स्त्रीकी चिन्ता करते घरमें प्राप्त हुए ॥५३॥ तब कुछ दिनों उपरान्त राजाको पुत्र हुआ उसके युवा होनेपर वन जानेके समय राजा बोले ॥५४॥ और उस स्त्रीका सब वृत्तान्त कहकर कहा यदि वह चारुहासिनी स्त्री वनमें तुमको प्राप्त हो ॥५५। तब उसकी इच्छासे उसे स्वीकार करना, और तू "कौन है ?" यह मेरी आज्ञासे उससे मत पूंछना ॥ ५६ ॥ उसे धर्मपत्नी बनाकर अवश्यही तुम सुखी होंगे सूतजी बोले प्रसन्नमन राजा इस प्रकार पुत्रसे कहकर ॥५७॥ सब राज्यलक्ष्मी उसे सौंपकर वनको चला गया; वहां भी तप कर और अम्बिका का आराधन करके ॥ ५८ ॥ देहत्याग कर अपने तेजसे यह राजा स्वर्गको गया और महातेजस्वी शंतनु राजा सार्वभौम राज्यको प्राप्त होकर धर्मपूर्वक दण्ड देते

तथेत्युक्त्वा गता सा वै कामिनी दिव्य दर्शना ॥ राजा चापि गृहं प्राप्तश्चिंतयंस्तां स्त्रियं पुनः ॥ ५३ ॥ ततः कालेन कियता जाते पुत्रे वयस्विनि ॥ वनं जिगमिषू राजा पुत्रं वृत्तांतमूचिवान् ॥ ५४ ॥ वृत्तांतं कथयित्वा तु पुनरूचे निजं सुतम् ॥ यदि प्रयाति सा बाला त्वां वने चारुहासिनी ॥५५॥ कामयाना वरा रोहा ता भजेथा मनोरमाम् ॥ न प्रष्टव्या त्वया काऽसि मन्नियोगान्नराधिप ॥ ५६ ॥ धर्मपत्नीं च तां कृत्वा भवितां त्वं सुखी किल ॥ सूत उवाच ॥ एवं संदिश्य तं पुत्रं भूपतिः प्रीतमानसः ॥ ५७ ॥ दत्त्वा राज्यश्रियं सर्वां वनं राजा विवेश ह ॥ तत्रापि च तपस्तप्त्वा समाराध्य परांबिकाम् ॥ ५८ ॥ जगाम स्वर्गं राजाऽसौ देहं त्यक्त्वा स्वतेजसा ॥ राज्यं प्राप महातेजाः शंतनुः सार्वभौमिकम् ॥ ५९ ॥ प्रजां वै पालयामासधर्मदंडो महीपतिः ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ सूत उवाच ॥ प्रतीपेऽथ दिवं याते शंतनुः सत्यविक्रमः ॥ बभूव मृगयाशीलो निघ्नन्व्याघ्रान्मृगान्नृपः ॥ १ ॥ स कदाचिद्वने घोरे गंगातीरे चरन्नृपः ॥ ददर्श मृगशा वाक्षीं सुंदरीं चारुभूषणाम् ॥ २ ॥ दृष्ट्वा तां नृपतिर्मग्नः पित्रोक्तेयं वरानना ॥ रूपयौवनसंपन्ना साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ॥ ३ ॥

हुए देते हुये प्रजापालन करने लगे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेद्वितीयस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, प्रतीपके स्वर्ग जानेपर धर्मात्मा सत्यपराक्रमी शंतनु मृगयाशील हुए और वनमें व्याघ्र मृगोंको मारते विचरते थे ॥१॥ एक समय वह राजा गंगाके किनारे घोरवनमें विचरता हुआ एक मृगनयनी सुन्दरी भूषण धारण किये स्त्रीको देखता हुआ ॥२॥ देखतेही राजाने विचार किया कि, यह अङ्गना नहीं है जिसको पिताने बताया था; जो रूपयौवन सम्पन्न साक्षात् लक्ष्मीके समान है ॥ ३ ॥

उसका मुख- कमल पान करते हुए राजा तृप्त न हुए उसमें चित्त लगनेके कारण हृष्टरोम होगये ॥४॥ वहभी उसको महाभिष मानकर अत्यन्त प्रेमयुक्त होगई और कुछेक मन्दहास्य करके राजाके आगे स्थित हुई ॥ ५ ॥ उस असितापांगीको देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और मनोहर वाणीसे सान्त्वन करते हुए उससे बोले ॥ ६ ॥ हे वामोरु ! तुम देवी वा मानुषी कौन हो ? गन्धर्वी यक्षी नागकन्या वा अप्सरा हो ॥ ७ ॥ हे वरारोहे ! जो कुछ भी तुम हो हे सुन्दरी ! हमारी भार्या हो प्रेम स्मितसे युक्त तुम इस समय हमारी भार्या बनो ॥ ८ ॥ सूतजी बोले राजाने तो उसको नहीं जाना कि, यह गंगा है और गंगा जानती थी कि यह महाभिष राजा उत्पन्न हुआ है ॥९॥ पहले प्रेमके योगसे राजाकी वह वाणी सुनकर वह नारी हँसती हुई राजासे यह वचन बोली

पिबन्मुखांबुजं तस्या न तृप्तिमगमन्नृपः ॥ हृष्टरोमाऽभवत्तत्र व्याप्तचित्त इवानघ ॥ ४ ॥ महाभिषं साऽपि मत्वा प्रेमयुक्ता बभूव ह ॥ किंचिन्मंदस्मितं कृत्वा तस्थावग्रे नृपस्य च ॥५॥ वीक्ष्य तामसितापांगीं राजाप्रीतमना भृशम् ॥ उवाच मधुरं वाक्यं सांत्वयन्श्लक्ष्णया गिरा ॥ ६ ॥ देवी वा त्वं च वामेरु मानुषी वा वरानने ॥ गंधर्वी वाऽथ यक्षी वा नागकन्याऽप्सराऽपि वा ॥ ७ ॥ याऽसि काऽसि वरारोहे भार्या ये भव सुंदरि ॥ प्रेमयुक्तस्मितैव त्वं धर्मपत्नी भवाद्य मे ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ राजा तां नाभिजानाति गंगेयमिति निश्चितम् ॥ महाभिषं समुत्पन्नं नृपं जानाति जाह्नवी ॥ ९ ॥ पूर्वप्रेमसमायोगाच्छ्रुत्वा वाचं नृपस्य ताम् ॥ उवाच नारी राजानं स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ १० ॥ स्त्र्युवाच ॥ जानामि त्वां नृपश्रेष्ठ प्रतीपतनयं शुभम् ॥ का न वांछति चार्वंगी भावित्वात्सदृशं पतिम् ॥ ११ ॥ वाग्बंधेन नृपश्रेष्ठ चरिष्यामि पतिं किल ॥ शृणु मे समयं राजन्वृणोमि त्वां नृपोत्तम ॥ १२ ॥ यच्च कुर्यामहं कार्यं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ न निषेध्या त्वया राजन्न वक्तव्यं तथाऽप्रियम् ॥१३॥ यदा च त्वं नृपश्रेष्ठ न करिष्यसि मे वचः ॥ तदा मुक्त्वा गमिष्यामि यथेष्टं देश मारिष ॥१४॥ स्मृत्वा जन्म वसूनां सा प्रार्थनापूर्वकं हृदि ॥ महाभिषस्य प्रेमार्थं विचिन्त्यैव च जाह्नवी ॥ १५ ॥

॥ १० ॥ स्त्री बोली हे राजन् ! मैं तुमको जानती हूं तुम श्रेष्ठ प्रतीपके पुत्र हो तुमसे पतिको कौन सुलक्षण स्त्री इच्छा न करेगी ? ॥ ११ ॥ हे राजन् ! मैं वाचा बंधसे तुमको पति कर सकती हूं हे राजन् ! मेरी प्रतिज्ञा सुनो तब मैं तुमको वरूंगी ॥१२॥ कि जो कुछ भी मैं शुभ वा अशुभ कोई काम करूं उसमें कभी निषेध न करना, न कभी मुझसे अप्रियवचन कहना ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जिस समय तुम मेरा वचन न मानोगे हे राजन् ! उसी समय मैं तुमको छोडकर यथेष्ट स्थानको चली जाऊंगी ॥१४॥ तब यह प्रार्थना पूर्वक हृदयमें वसुओंका जन्म विचार कर और महाभिषका प्रेम हृदयमें विचार कर ॥१५॥

राजाके स्वीकार करने पर उनको अपना पति करती हुई इस प्रकार मानुषधारिणी गंगा राजासे वरणको प्राप्त हो ॥१६॥ वह सुन्दरी वरवर्णिनी राजाके मन्दिरमें प्राप्त हुई, राजा उसको प्राप्त हो उपवनोंमें क्रीडा करने लगा ॥ १७ ॥ और भावकी जाननेवाली वह वरांगना राजाको रमाने लगी, क्रीडा करते बहुत वर्ष बीत गये और कुछ न जाना ॥ १८॥ इस प्रकार वह उस मृगलोचनीके संग इन्द्र इन्द्राणीके समान रमण करने लगा । वहभी सब गुणोंसे सम्पन्न और वह भी काममें विचरण ॥ १९ ॥ लक्ष्मीनारायणके समान दिव्य मंदिरमें रमण करने लगे गंगा फिर कुछ समयके उपरांत उसने राजासे गर्भ धारण किया, और उस चारुलोचनीने ॥ २० ॥ वसुरूप पुत्रको उत्पन्न किया, उसको प्रकट होतेही गंगामें डाल दिया ॥ २१ ॥ इसी प्रकार दूसरे तीसरे चौथे

तथेत्युक्ताऽथ सा देवी चकार नृपतिं पतिम् ॥ एवं वृता नृपेणाथ गंगा मानुषरूपिणी ॥ १६ ॥ नृपस्य मंदिरं प्राप्ता सुभगा वरवर्णिनी ॥ नृपतिस्तां समासाद्य चिक्रीडोपवने शुभे ॥ १७ ॥ साऽपि तं रमयामास भावज्ञा वै वरांगना ॥ न बुबोध नृपः क्रीडन्गतान्वर्षगणानथ ॥ १८ ॥ स तया मृग शावाक्ष्या शच्या शतक्रतुर्यथा ॥ सा सर्वगुणसंपन्न सोऽपि कामविचक्षणः ॥ १९ ॥ रेमाते मंदिरे दिव्ये रमाना रायणाविव ॥ एवं गच्छति काले सा दधार नृपतेस्तदा ॥ २० ॥ गर्भं गंगा वसुं पुत्रं सुषुवे चारुलोचना ॥ जातमात्रं सुतं वारि चिक्षेपैवं द्वितीयके ॥ २१ ॥ तृतीयेऽथ चतुर्थेऽथ पंचमे षष्ठ एव च ॥ सप्तमे वा हते पुत्रे राजा चिंतापरोऽभवत् ॥ २२ ॥ किं करोम्यद्य वंशो मे कथं स्यात्सुस्थिरो भुवि ॥ सप्त पुत्रा हता नूनमनया पापरूपया ॥२३॥ निवारयामि यदि मां त्यक्त्वा यास्यति सर्वथा ॥ अष्टमोऽयं सुसंप्राप्तो गर्भो मे मनसीप्सितः ॥२४॥ न वारयामि चेदद्य सर्वथैयं जले क्षिपेत् ॥ भविता वा न वा चाग्रे संशयोऽयं ममाद्भुतः ॥२५॥ संभवेऽपि च दुष्टेयं रक्षयेद्वा न रक्षयेत् ॥ एवं संशयिते कार्ये किं कर्तव्यं मयाऽधुना ॥ २६ ॥

पाचवें छठे पुत्रको जलमें डाल दिया, इस प्रकार सातवें पुत्रके मरनेपर राजा सोच करने लगे ॥२२॥ अब मैं क्या करूं भूमिमें मेरा वंश कैसे स्थिर होगा, इस पापरूपिणीने सात पुत्र तो जलमें बहा दिये ॥२३॥ यदिमैं इसको निवारण करूं तो यह सर्वथा मुझे छोडकर चली जायगी और यह अष्टम गर्भ मेरे तनको ईप्सित प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ और जो मैं इसको निवारण न करूंगा तो यह जलमें निक्षेप करेगी और जानें आगे होंगे या न होंगे यह मुझे सन्देह है ॥ २५ ॥ और होनेपर भी फिर यह दुष्टा जाने रक्षा करे वा न करे, इस प्रकार सन्देहमें अब मैं क्या करूं ॥ २६ ॥

दे. भा. और वंशके रक्षा करनेमें मुझे उत्कृष्ट यत्न करना चाहिये तब फिर समय पर जब यह आठवां वसु हुआ ॥२७॥ कि, जिस स्त्री जीतने मुनिकी नन्दिनी गौ
॥१०॥ हरण की थी इस पुत्रको देखकर राजा उसके चरणोंमें गिरकर बोला ॥२८॥ हे तन्वंगि, हे शुचिस्मिते मैं तेरा दास हूं मेरी प्रार्थना सुनो एकपुत्रके पोषणकी इच्छा करता हूं इसका जीवदान मुझे दे ॥ २९ ॥ हे करभोरू तुमने मेरेसात पुत्र शुभ नष्ट किये हे सुश्रोणी ! अब आठवें कीरक्षा कर मैं तेरे चरणोंपर गिरताहूँ ॥ ३० ॥ और जो कुछ तेरी इच्छा हो वह मैं दुर्लभ भी वर तुझको दे सकता हूं हे परम सुन्दरी ! इस समय मेरे वंशकी रक्षा कर ॥३१॥ वेदवादी कहते हैं स्वर्गमें अपुत्रकी गति नहीं है, इस कारण हे वरारोहे ! मैं अष्टम पुत्रकी इच्छा करता हूं ॥३२॥ इस प्रकार कहनेसे भी जब वह कुमारके लेजाने

वंशस्य रक्षणार्थं हि यत्नः कार्यः परो मया ॥ ततःकाले यदा जातः पुत्रोऽयमष्टमो वसुः ॥ २७ ॥ मुनेर्येन हृता धेनुर्दिनंनी स्त्रीजितेन हि ॥ तं दृष्ट्वा नृपतिः पुत्रं तामुवाच पतन्पदे ॥२८॥ दासोऽस्मि तवतन्वंगि प्रार्थयामि शुचिस्मिते ॥ पुत्रमेकं पुषाम्यद्य देहि जीवंतमद्य मे ॥ २९ ॥ हिंसिताः सप्त पुत्रा मे करभोरु त्वया शुभाः ॥ अष्टमं रक्ष सुश्रोणि पतामि तव पादयोः अन्यद्वै प्रार्थितं तेऽद्य ददाम्यथ च दुर्लभम् ॥ वंशो मे रक्षणीयोऽद्य त्वया परमशोभने ॥ ३१ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे वेदविदो विदुः ॥ तस्मादद्य वरारोहे प्रार्थ याम्यष्टमं सुतम् ॥ ३२ ॥ इत्युक्ताऽपि गृहीत्वा तं यदा गंतुं समुत्सुका ॥ तदाऽपि कुपितो राजा तामुवा चातिदुःखितः ॥३३॥ पापिष्ठे किं करोम्यद्य निरयान्न बिभेषि किम् ॥ काऽसि पापकराणां त्वं पुत्री पापरता सदा ॥ ३४ ॥ यथेच्छं गच्छ वा तिष्ठ पुत्रो मे स्थीयता मिह ॥ किं करोमि त्वया पापे वंशांतकरयाऽनया ॥ ३५ ॥ एवं वदति भूपाले सा गृहीत्वा सुतं शिशुम् ॥ गच्छंती वचनं कोपसंयुक्ता तमुवाच ह ॥ ३६ ॥ पुत्रकामा सुतं त्वेनं पालयामि वने गता ॥ समयो मे गमिष्यामि वचनं ह्यन्यथा कृतम् ॥ ३७ ॥

हीकी इच्छा करने लगी, तब राजा कुपित और दुःखी हो उससे बोला ॥ ३३ ॥ हे पापिष्ठे ! मैं इस समय क्या करूं तू नरकसे क्या नहीं डरती पाप
भा. टी. द्वि. करनेवाली की पुत्री तू कौन है ॥ ३४ ॥ यथेच्छ रह, चाहे जा पुत्र तो यहीं रहेगा, हे पापे ! वंश नष्ट करनेवाली तुझको लेकर मैं क्या करूं ॥ ३५ ॥
अ. ४ राजाके ऐसा कहनेपर वह बालकको ग्रहणकरजाती हुई कोपपूर्वक यह वचन बोली ॥३६॥ हे राजन् ! पुत्रकामनावाली मैं इस बालकको लेकर मैं वनमें पालन करूंगी अब तुमने अन्यथा प्रतिज्ञाकी इसकारण मेरा समय (पण) नष्ट होगया अब मैं जाती हूं ॥ ३७ ॥

तुम मुझे गंगा जानो मैं देव कार्यकेनिमित्त यहां आई थी; महात्मा वसिष्ठजीके पहले आठ वसुओंको शाप दिया ॥ ३८ ॥ कि तुम मनुष्य योनिमें प्राप्त होवो तब वे चिन्ता युक्तहो मुझसे बोले हे पापरहित तुम हमारी माता हो ॥ ३९ ॥ हे राजन्! उनको वार्ता देकर मैं तुम्हारी पत्नी हुई देवकार्य सिद्धि करनेकोही तुम मेरा प्रकट होना जानो ॥ ४० ॥ वे तुम्हारे पुत्र सात वसु तो ऋषिके शापसे मुक्त हुए अब कुछ कालतक यह एक स्थित रहेगा ॥ ४१ ॥ हे शन्तनु इस गंगाके दिये पुत्रको तुम ग्रहण करो उसको वसु देवता जानकर पुत्रका सुख भोगो ॥ ४२ ॥ हे महाभाग! यह महाबली गांगेय होगा; अब इसको वहां लिये जाती हूं जहां मैंने तुमको वरण किया था ॥ ४३ ॥ हे राजन् इसको पालन कर युवा होनेपर मैं तुमको देदूंगी; माताके विना पुत्र न जी सकताहै और न सुखी होसकता

गंगां मां वै विजानीहि देवकार्यार्थमागताम् ॥ वसवस्तु पुरा शप्ता वसिष्ठेन महात्मना ॥ ३८ ॥ व्रजंतु मानुषीं योनिं स्थितां चिंतातुरास्तु माम् ॥ दृष्ट्वेदं प्रार्थयामासुर्जननी नो भवानघे ॥ ३९ ॥ तेभ्यो दत्त्वा वरं जाता पत्नी ते नृपसत्तम ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं जानीहि संभवो मम ॥ ४० ॥ सप्त ते वसवः पुत्रा मुक्ताः शापाद्दषेस्तु ते ॥ कियंत कालमेकोऽयं तव पुत्रो भविष्यति ॥ ४१ ॥ गंगादत्तमिमं पुत्रं गृहाण शंतनो स्वयम् ॥ वसु देवं विदित्वैनं सुखं भुंक्ष्व सुतोद्भवम् ॥ ४२ ॥ गांगेयोऽयं महाभाग भविष्यति बलाधिकः ॥ अद्य तत्र नयाम्येनं यत्र त्वं वै मया वृतः ॥ ४३ ॥ दास्यामि यौवनप्राप्तं पालयित्वा महीपते ॥ न मातृरहितः पुत्रो जीवेन्न च सुखी भवेत् ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे गंगा तं गृहीत्वा च बालकम् ॥ राजा चातीव दुःखार्तः संस्थितो निजमंदिरे ॥ ४५ ॥ भार्याविरहजं दुःखं तथा पुत्रस्य चाद्भुतम् ॥ सर्वदा चिंतयन्नास्ते राज्यं कुर्वन्महीपतिः ॥ ४६ ॥ एवं गच्छति कालेऽथ नृपतिर्मृगयां गतः ॥ निघ्नन्मृगगणान्बाणैर्महिषान्सूकरानपि ॥ ४७ ॥ गंगातीरमनुप्राप्तः स राजा शंतनुस्तदा ॥ नदीं स्तोकजलां दृष्ट्वा विस्मितः स महीपतिः ॥ ॥ ४८ ॥ तत्रापश्यत्कुमारं तं मुंचंतं विशिखान्बहून् ॥ आकृष्य च महाचापं क्रीडंतं सरितस्तटे ॥ ४९ ॥

है ॥ ४४ ॥ ऐसा कहकर गंगा उस बालकको लेकर अन्तर्धान हो गई, राजा बड़ा दुःखीहोकर अपने मंन्दिरमें स्थित हुआ ॥ ४५ ॥ एक भार्याका विरह दूसरे पुत्रका अदर्शन इससे राजा नित्य चिन्तित हुए राज्य करने लगा ॥ ४६ ॥ कुछ दिनोंमें राजा एक दिन मृगया खेलने गये और महिष शूकर मृगादिको मारता हुआ ॥ ४७ ॥ उससमय राजा शंतनु गंगाके किनारे गये और गंगाको थोडे जलवाली देखकर राजाको चिन्ता हुई ॥ ४८ ॥ वहां बहुतसे बाणोंका प्रहार करते एक कुमारको देखा जो बड़ा धनुष चढाये गंगातट पर क्रीडा करता था ॥ ४९ ॥

उसको देख राजाको बडा आश्चर्य हुआ यह भेद कुछ भी न जाना और यह मेरा पुत्र है वा नहीं, यह ध्यान नहीं हुआ ॥ ५० ॥ यह इसकी बाण त्यागमें लघुहस्तता देख अमानुष कर्मवाला जाना यह उसकी अनुपम विद्या और कामके समान रूप देखकर ॥५१॥ राजा विस्मित होकर पूंछने लगा हे सौम्य ! तुम किसके पुत्र हो ? यह वीर बाण छोडतेही रहा और कुछ न बोला ॥५२॥ और अन्तर्धान हो गया तब राजाको बडी चिन्ता हुई, क्या यह बालक मेरा पुत्र था ? अब मैं क्यां करूं कहां जाऊं ? ॥ ५३ ॥ तब राजा सावधान मनसे गंगाको प्रसन्न करने लगा तब गंगाने उसी प्रकार सुन्दर रूपसे दर्शन दिया ॥५४॥ उस सुन्दर अंगवालीको देखकर राजा बोले हे गंगे ! यह बालक कौन था? कहां गया ? इसका दर्शन मुझे कराओ ॥ ५५॥ गंगा बोलीहे राजन् यह आठवां

तं वीक्ष्य विस्मितो राजा न स्म जानाति किंचन ॥ नोपलेभे स्मृतिं भूपः पुत्रोऽयं मम वा न वा ॥ ५० ॥ दृष्ट्वाऽप्यमानुषं कर्म बाणेषु लघुहस्तताम् ॥ विद्यां वाऽप्रतिमां रूपं तस्यवै स्मरसन्निभम् ॥ ५१ ॥ पप्रच्छ विस्मितो राजा कस्य पुत्रोऽसि चानघ ॥ नोवाच किंचिद्वीरोऽसौ मुंचञ्छिलीमुखानथ ॥ ५२ ॥ अंतर्धानं गतः सोऽथ राजा चिंतातुरोऽभवत् ॥ कोऽयं मम सुतो बालः किं करोमि व्रजामि कम् ॥ ५३ ॥ गंगां तुष्टाव भूपालः स्थितस्तत्र समाहितः ॥ दर्शनं सा ददौ चाथ चारुरूपा यथा पुरा ॥ ५४ ॥ दृष्ट्वा तां चारुसर्वांगी बभाषे नृपतिः स्वयम् ॥ कोऽयं गंगे गतो बालो मम त्वं दर्शयाधुना ॥ ५५ ॥ गंगोवाच ॥ पुत्रोऽयं तव राजेंद्र रक्षितश्चाष्टमो वसुः ॥ ददामि तव हस्ते तु गांगेयोऽयं महातपाः ॥ ५६ ॥ कीर्तिकर्ता कुलस्यास्य भविता तव सुव्रतः ॥ पाठितस्त्वखिलान्वेदान्धनुर्वेदं च शाश्वतम् ॥ ५७ ॥ वसिष्ठस्याश्रमे दिव्ये संस्थितोऽयं सुतस्तव॥सर्वविद्याविधानज्ञः सर्वार्थकुशलः शुचिः ॥ ५८ ॥ यद्वेद जामदग्न्योऽसौ तद्वेदायं सुतस्तव ॥ गृहाण गच्छ राजेंद्र सुखी भव नराधिप ॥ ५९ ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधे गंगा दत्त्वा पुत्रं नृपाय वै ॥ नृपतिस्तु मुदा युक्तो बभूवातिसुखान्वितः ॥ ६० ॥

वसु तुम्हारा पुत्र है, यह मैं तुमको देती हूं, यह गांगेय महातपस्वी है ॥ ५६ ॥ हे राजन् यह सुव्रत तुम्हारे कुलकी कीर्ति करनेवाला होगा इसमें सन्देह नहीं. इसको सब वेद और सनातन धनुर्वेद पढा दिया है ॥५७॥ यह तुम्हारा पुत्र वसिष्ठके आश्रम में स्थित रहा है; यह सब विद्याके विधानका जाननेवाला सब बातमें कुशल और पवित्र है ॥५८॥ जो कुछ परशुराम जानते हैं वह यह तुम्हारा पुत्र जानता है हे राजन् ! इसको ग्रहणकर जावो और हे राजन् ! आप सुखी होओ ॥ ५९ ॥ यह कह गंगा राजाको पुत्र देकर अन्तर्धान होगई और राजा उसको लेकर बडे सुखीहुए ॥ ६० ॥

राजा उसको आलिंगनकर और मस्तक पूछकर और रथमें आरोपणकर अपने नगरमें आये ॥ ६१ ॥ और हस्तिनापुरमें आकर राजाने उत्सव किया, ज्योतिषीको बुलाकर अच्छा दिन पूँछा ॥६२॥ सब प्रजा और मंत्रियोंको बुलाकर यौवराज्यमें गांगेयको स्थापित किया ॥ ६३ ॥ उस सर्वगुणयुक्त पुत्र को युवराज करके वह धर्मात्मा सुखी हुए और गंगाका स्मरण न किया ॥ ६४ ॥ सूतजी बोले यह आपसे वसुओंके शापका कारण गांगेयकी उत्पत्ति और गंगाका संभव कहा ॥६५॥ गंगाको पवित्र अवतरण और वसुओंके संभवको जो मनुष्य सुनता है वह निस्सन्देह पापसे मुक्त होजाता है ॥६६॥ हे मुनिसत्तमो ?

समालिंग्य सुतं राजा समाघ्राय च मस्तकम् ॥ समारोप्य रथे पुत्रं स्वपुरं स प्रचक्रमे ॥६१॥ गत्वा गजाह्वयं राजा चकारोत्सवमुत्तमम् ॥ दैवज्ञं च समाहूय पप्रच्छ च शुभं दिनम् ॥ ६२ ॥ समाहृत्य प्रजाः सर्वाः सचिवान्सर्वशः शुभान् ॥ यौवराज्येऽथ गांगेयं स्थापयामास पार्थिवः ॥ ६३ ॥ कृत्वा तं युवराजानं पुत्रं सर्वगुणान्वितम् ॥ सुखमास स धर्मात्मा न सस्मार च जाह्नवीम् ॥ ६४ ॥ सूत उवाच ॥ एतद्वः कथितं सर्वं कारणं वसुशापजम् ॥ गांगेयस्य तथोत्पत्तिं जाह्नव्याः संभवं तथा ॥ ६५ ॥ गंगावतरणं पुण्यं वसूनां संभवं तथा ॥ यः शृणोति नरः पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६६ ॥ पुण्यं पवित्रमाख्यानं कथितं मुनिसत्तमः ॥ यथाश्रुतं व्यासात्पुराणं वेदसंमितम् ॥ ६७ ॥ श्रीमद्भागवतं पुण्यं नानाख्यानकथान्वितम् ॥ द्वैपायनमुखोद्भूतं पंच लक्षणसयुतम् ॥ ६८ ॥ शृण्वतां सर्वपापघ्नं शुभदं सुखदं तथा ॥ इतिहासमिमं पुण्यं कीर्तितं मुनिसत्तमः ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वसूनां संभवः सूत कथितः शापकारणात् ॥ गांगेयस्य तथोत्पत्तिः कथिता लोमहर्षणे ॥ १ ॥माता व्यासस्य धर्मज्ञ नाम्ना सत्य वती सती ॥ कथं शंतनुना प्राप्ता भार्या गंधवती शुभा ॥ २ ॥

यह पुण्य और पवित्र आख्यान कहा है जैसा वेदसंमित पुराण व्यासजीसे मैंने सुना है सो कहा ॥६७॥ यह श्रीमद्भागवत परम पवित्र अनेक कथाओंसे युक्त द्वैपायनके मुखसे उद्धृत पांच लक्षणोंसे युक्त है ॥६८॥ यह पुराण सुननेवालोंके सब पाप नाश करता शुभ और सुख देनेवाला है हे मुनिश्रेष्ठो यह पवित्र इतिहास आपने कीर्तन किया ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ऋषि बोले हे रोमहर्षणके पुत्र सूतजी ! आपने वसुओंका संभव और गांगेयकीउत्पत्ति वर्णन की ॥१॥ हे धर्मज्ञ ! व्यासकी माता सत्यवती वह शंतनुको किस प्रकारसे प्राप्त हुई जो सुन्दर गन्धसे युक्त थी॥२॥

सो यह आप हमसे विस्तारसे कहो कि, धर्मात्मा राजाने दाशपुत्री किस प्रकारसे वरण की ॥ ३ ॥ सूतजी बोले–शंतनु राजर्षि मृगयाशील तो थे ही बहुधा मृग, महिष, रुरुओंको वनमें मारते विचरतेथे ॥४॥ इस प्रकार पुत्रके साथ राजा चारवर्षतक आनंदमें रहे जिसप्रकार कार्तिकेयके साथमें शंकरजी ॥ ५ ॥ एक समय बाण छोडते हुए खड्ग सूकरोंको कालिन्दीके वनमें प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ उस समय राजाको अलौकिक गंध आनेलगी, यह कहांसे आती है यह विचारते वनमें विचरने लगे ॥७॥ न तो यह मनोहर गन्ध मन्दार और न कस्तूरी की है तथा चंपक मालती और केतकीमें भी ऐसी गंध नहीं है ॥८॥ पूर्वमें ऐसा वायुमें भी कभी गंध नहीं सूंघा यह हमारी नासिकाको मोहित करता वायु कहांसे आता है ॥ ९ ॥ यह विचारते राजा वनमें विचरने लगे और गंधके

तन्ममाचक्ष्व विस्तारं दाशपुत्री कथं वृता ॥ राज्ञा धर्मवरिष्ठेन संशयं छिंधि सुव्रत ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ शंतनुर्नाम राजर्षिर्मृगयानिरतः सदा ॥ वनं जगाम निघ्नन्वै मृगांश्च महिषान्रुरून् ॥४॥ चत्वार्येव तु वर्षाणि पुत्रेण सह भूपतिः ॥ रममाणःसुखं प्राप कुमारेण यथा हर ॥५॥ एकदा विक्षिपन्बाणान्विनिघ्नन्खङ्गसूकरान् ॥ सकदाचिद्वनं प्राप्तः कालिंदीं सरितां वराम् ॥ ६ ॥ महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद्गंधमुत्तमम् ॥ तस्य प्रसभमन्विच्छन्संचचार वनं तदा ॥ ७ ॥ न मंदारस्य गंधोऽयं मृगनाभिमदस्य न ॥ चंपकस्य न मालत्या न केतक्या मनोहरः॥८॥ कुतोऽयमेति वायुर्वै मम घ्राणविमोहनः॥९॥ इति संचिंत्यमानोऽसौ बभ्राम वनमंडलम् ॥ मोहितो गंधलोभेन शंतनुः पवनानुगः ॥ १० ॥ स ददर्श नदीतीरे संस्थितां चारुदर्शनाम् ॥ शृंगारसहितां कांतां सुस्थितां मलिनांबराम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा तामसितापांगीं विस्मितः स महीपतिः ॥ अस्या देहस्या गंधोऽयमिति संजातनिश्चय ॥ १२ ॥ तदद्भुतं रूपमतीव सुन्दरं तथैव गंधोऽखिललोकसंमतः वयश्च तादृङ्नवयौवनं शुभं दृष्ट्वैव राजा किल विस्मितोऽभवत् ॥ १३ ॥ केयं कुतो वा समुपागताऽधुना देवांगना वा किमु मानुषी वा ॥ गंधर्वपुत्री किल नागकन्या जाने कथं गंधवतीं नु कामिनीम् ॥ १४ ॥

लोभसे मोहित हुए शंतनु पवनके अनुगामी हुए ॥ १० ॥ तब राजाने नदीके किनारे स्थित हुई उस चारुदर्शनाको देखा जो शृङ्गार किये अतिमनोहर, मलीन वस्त्रधारण किये थी ॥११॥ उस असितापांगीको देख राजा बड़ा विस्मित हुआ और यह निश्चय हो गया कि, यह इसीके शरीरकी गंध है ॥१२॥ इस प्रकारसे उसका अद्भुत रूप देखकर और उसकी अलौकिक गंध देख तथा अवस्थाभी वैसी ही नवीन यौवन सुंदर देखकर राजा विस्मित हुआ ॥१३॥ फिर राजा मनमें निश्चय करके कहने लगा यह कौन है और यहां क्यों आई है ? यह देवांगना मानुषी गन्धर्वपुत्री नागकन्या जाने कौन है, जिसके शरीरसे गंध चली आती है ॥ १४ ॥

इस प्रकार मनमें विचार कर जबकुछ विशेष निर्णय न हुआ तब यह विचारा कि,यह गङ्गा तो न हो इस प्रकार विचार कामवश हो तटपर स्थित उससे पूँछने लगा ॥ १५॥ हे प्रिये !तुम कौन किसकी कन्या हो, हे वरोरु ! तुम इस विजन स्थानमें क्यों स्थित हो हे चारुनेत्री ! तुम इकली हो कहो तो तुम्हारा अभी विवाह हुआ है वा नहीं ॥ १६ ॥ हे अराल (कुटिल) नेत्रवाली, तुमको देखकर मैं कामके वशीभूत हुआ हूँ तुममनोरम कांता हो ॥ हे प्रिये ! तुम्हारी क्या इच्छा है जो मैंने पूँछा है इसका उत्तर विस्तारसे हो ॥ १७॥ यह सुदती राजाके इस प्रकार कहनेसे हँसती हुई कमललोचनी बोलीहे राजन् ! पिताकी आज्ञामें वर्तमान तुम मुझको दाशकी पुत्री जानो ॥ १८ ॥ हे राजन् ! मैं कालिन्दीके जलमें धर्मार्थ नौका बहन करती हूँ, हे राजन् ! इस समयहमारे पिता घर गये

संचित्य चैवं मनसा नृपोऽसौ न निश्चयं प्राप यदा ततः स्वयम् ॥ गंगां स्मरन्कामवशं गतोऽथ पप्रच्छ कांतां तटसंस्थितां च ॥ १५ ॥
काऽसि प्रिये कस्य सुताऽसि कस्मादिह स्थिता त्वं विजने वरोरु ॥ एकाकिनी किं वद चारुनेत्रे विवाहिता वा न विवाहिताऽसि ॥१६॥
संजातकामोऽहमरालनेत्रे त्वां वीक्ष्य कांतां च मनोरमां च॥ ब्रूहि प्रिये याऽसि चिकीर्षसि त्वं किं चेति सर्वं मम विस्तरेण ॥ १७ ॥
इत्येवमुक्ता सुदती नृपेण प्रोवाच तं सस्मितमंबुजेक्षणा॥ दाशस्य पुत्रीं त्वमवेहि राजन्कन्यां पितुः शासनसंस्थितां च ॥ १८ ॥
तरीमिमां धर्मनिमित्तमेव संवाहयामीह जले नृपेंद्र ॥ पिता गृहे मेऽद्य गतोऽस्ति कामं सत्यं ब्रवीम्यर्थपते तवाग्रे ॥१९॥ इत्येव मुक्त्वा
विरराम बाला कामातुरस्तां नृपतिर्बभाषे ॥ कुरुप्रवीरं कुरु मां पतिं त्वं वृथा न गच्छेन्ननु यौवनं ते ॥ २० ॥ न चास्ति पत्नी मम वै
द्वितीया त्वं धर्मपत्नी भव मे मृगाक्षि ॥ दासोऽस्मि तेऽहं वशगः सदैव मनोभवस्तापयति प्रिये माम् ॥ २१ ॥ गता प्रिया मां परिहृत्य
कांता नान्यां वृताऽहं विधुरोऽस्मि कांते ॥ त्वां वीक्ष्य सर्वावयवातिरम्यां मनो हि जातं विविशं मदीयम् ॥ २२ ॥

हैं यह मैं तुमसे सत्य कहती हूँ ॥ १९ ॥ वह बाला यह कहकर मौन हुई और कामार्त होकर राजाने उससे कहा कुरुवंशोत्पन्न मुझ राजाको तूअपना पति बना जिससे तेरा यौवन वृथा न जाय ॥ २० ॥ हे मृगाक्षि! मेरे और कोईपत्नी नहीहै तुम मेरी धर्मपत्नीहो मैं तेरा दास होकर सदा वशीभूत रहूँगा हे प्रिये मुझको काम ताप देता है ॥ २१ ॥ हमारी प्रिया हमको छोड़कर चली गई और फिर मैंने वरण नहीं किया इससे मैं व्याकुल हूँ तुमको सब अवयवसे मनोहर देखकर मेरा मनतुम्हारे वशीभूत हुआ है ॥ २२ ॥

राजाके यह अमृतके समान वचन सुनकर वहा दासकन्या सुगंधा सात्विकभावमें युक्त धीरतासे राजासे मनोहर वचन कहती हुई ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जो कुछ मुझसे कहते हो यह वैसे ही मैं तुम्हारे वचन मानती हूं परन्तु मैं स्वतंत्र नहीं हूं आप इस विषयमें मेरे पितासे प्रर्थना करो ॥ २४ ॥ मैं स्वैरिणी नहीं हूं किन्तु कुलीन दासकी पुत्री हूँ मैं निरन्तर पिताके अधीन हूं यदि वह तुमको प्रदान करे तो मेरा पाणिग्रहण करना मैं तुम्हारे वशीभूत हूंगी ॥ २५ ॥ हे राजन् ! आपको ही कामदेव क्यों दुःख देता है मैं तो नवयौवना हूं क्या मुझे दुःखी नहीं करता, करता ही है परन्तु धैर्यसे कुलके अचार परंपराकी रक्षा करनी ही चाहिये ॥२६॥ सूतजी बोले काममोहित राजा इस प्रकार उसके वचन सुन उसकी याचनाको दासपतिके घरमें गया ॥ २७ ॥ राजाको आता देखकर दास

श्रुत्वाऽमृतास्वादरसं नृपस्य वचोऽतिरम्यं खलु दाशकन्या ॥ उवाच तं सात्विकभावयुक्ता कृत्वाऽतिधैर्यं नृपतिं सुगंधा ॥२३॥ यदात्थ राजन्मयि तत्तथैव मन्येऽहमेतत्तु यथा वचस्ते ॥ नास्मि स्वतंत्रा त्वमेवहि कामं दाता पिता मेऽर्थय तं त्वमाशु ॥ २४ ॥ न स्वैरिणीहा स्म्यपि दाशपुत्री पितुर्वशेऽहं सततं चरामि ॥ स चेद्ददाति प्रथितः पिता मे गृहाण पाणिं वशगाऽस्मि तेऽहम् ॥२५॥ मनोभवस्त्वां नृप किं दुनोति यथापुनर्मां नवयौवनां च ॥ दुनोति तत्रापि हि रक्षणीया धृतिः कुलाचारपरंपरासु ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वच स्तस्या नृपतिःकाममोहितः ॥ गतो दाशपतेर्गेहं तस्या याचनहेतवे ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा नृपतिमायांतं दाशोऽतिविस्मयं गतः ॥ प्रणामं नृपतेः कृत्वा कृतांजलिरभाषत ॥ २८ ॥ दाश उवाच ॥ दासोऽस्मि तव भूपाल कृतार्थोऽहं तवाऽऽगमे ॥ आज्ञां देहि महाराज यद र्थमिह चागमः ॥ २९ ॥ राजोवाच ॥ धर्मपत्नीं करिष्यामि सुतामेतां तवानघ ॥ त्वया चेद्दीयते मह्यं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥ दाश उवाच ॥ कन्या रत्नं मदीयं चेद्यत्त्वं पार्थयसे नृप ॥ दातव्यं तु प्रदास्यामि न त्वदेयं कदाचन ॥ ३१ ॥

बड़ा विस्मित हुआ राजा को प्रणाम कर हाथ जोड़कर बोला ॥ २८ ॥ दासने कहा हे राजन् ! मैं आपक दास हूं आपके आनेसे मैं कृतार्थ होगया हे महाराज ! आज्ञा दीजिये किस निमित्त आपका आगमन हुआ है ॥२९॥ राजाने कहा हे अनघ ! मैं तुम्हारी कन्याको धर्मपत्नी करनेकी इच्छा करता हूं यदि तुम हमको दो तो यह सत्य ही कहता हूं ॥३०॥ दासने कहा राजन् ! यदि आप मेरी कन्यारत्न ग्रहणकी इच्छा करते हो तो देने योग्यको ही दूंगा अदेयको नहीं दूंगा ॥ ३१ ॥

हे महराज यदि आप कन्या मांगते हो तो आपके पीछे इसीका पुत्र राज्याभिषेकको प्राप्त हो और आपका पुत्र नहीं ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले दासके वचन सुन राजाको बडी चिन्ता हुई गांगेयको मनमें विचार कर राजाने कुछ न कहा ॥ ३३ ॥ और कामातुर होकर भी घरको चला आया बड़ी चिन्ता हुई घर जाकर स्नान भोजन भी न किया, न चिन्ताके कारण निद्रा ही आई ॥ ३४ ॥ उस समय भीष्मजी राजाको चिन्तित देखकर पिताके निकट जाय उनके असन्तोषका कारण पूँछने लगे ॥३५॥ हे पितः ! कौन आपका दुर्जय शत्रु है मैं उसे आपके वशीभूत करूँ हे नृपशार्दूल ! आपको क्या चिन्ता है सो कहिये ॥३६॥ हे राजन् ! जो पिताको दुःखी देखकर उसका दुःख नाश न करे उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या है और ऐसा पुत्र पूर्वजन्मका ऋण

तस्या पुत्रोमहाराज त्वदंते पृथिवीपतिः ॥ सर्वथा चाभिषेक्तव्यो नान्यः पुत्रस्तवेति वै ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा वाक्यं तु दाशस्य राजा चिंतातुरोऽभवत् ॥ गांगेयं मनसा कृत्वा नोवाच नृपतिस्तदा ॥ ३३ ॥ कामातुरो गृहं प्राप्तश्चिंताविष्टो महीपतिः ॥ न सस्नौ बुभुजे नाथ न सुष्वाप गृहं गतः ॥ ३४ ॥ चिंतातुरं तु तं दृष्ट्वा पुत्रो देवव्रतस्तदा ॥ गत्वाऽपृच्छन्महीपालं तदसंतोषकारणम् ॥ ३५ ॥ दुर्जयः कोऽस्ति शत्रुस्तेकरोमि वशगं तव ॥ का चिंता नृपशार्दूल सत्यं वद नृपोत्तम ॥ ३६ ॥ किं तेन जातेन सुतेन राजन्दुःखं न जानाति न नाशयेद्यः ॥ ऋणं ग्रहीतुं समुपागतोऽसौ प्राग्जन्मजं नात्र विचारणाऽस्ति ॥ ३७ ॥ विमुच्य राज्यं रघुनन्दनोऽपि ताताज्ञया दाशरथिस्तु रामः ॥ वनं गतो लक्ष्मणजानकीभ्यां सहैव शैलं किल चित्रकूटम् ॥ ३८ ॥ सुतो हरिश्चंद्रनृपस्य राजन्यो रोहितश्चेति प्रसिद्धनामा ॥ क्रीतोऽथ पित्रा विपणोद्यतश्च दासार्पितो विप्रगृहे तु नूनम् ॥ ३९ ॥ तथाऽजिगर्तस्य सुतो वरिष्ठो नाम्ना शुनःशेप इति प्रसिद्धः ॥ क्रीतस्तु पित्राऽप्यथ यूपबद्धः संमोचितो गाधिसुतेन पश्चात् ॥४०॥ पित्राज्ञया जामदग्न्येन पूर्वं छिन्नं शिरो मातुरिति प्रसिद्धम् ॥ अकार्यमप्याचरितं च तेन गुरोरनुज्ञा च गरीयसी कृता ॥ ४१ ॥

ही ग्रहण करनेको आया है, इसमें सन्देह नहीं ॥३७॥ दशरथ पिताकी आज्ञासे रामचंद्र राज्य त्याग करके वनको लक्ष्मण जानकीके सहित गये और चित्रकूटपर निवास किया ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! हरिश्चंद्रका पुत्र रोहित पिताके निमित्त अपने शरीरको बेचता हुआ और ब्राह्मणके घर दास होकर रह ॥३९॥ इसी प्रकार अजीगर्तका पुत्र शुनःशेप पिताके बेंचनेसे बिक गया और पीछे विश्वामित्रने उसको मुक्त किया ॥ ४० ॥ पिताकी आज्ञासे परशुरामने माताका शिरा छेदन किया, और गुरुकी आज्ञा बड़ी है इस बातके करनेके निमित्त उसने अकार्य भी किया ॥ ४१ ॥

हे राजन् ! यह शरीर आपका ही है यद्यपि मैं कुछ करनेमें समर्थ नहीं हूं तथापि कहो तुम्हारा क्या प्रिय करूं मेरे होते आपको शोच करना न चाहिये मैं असाध्य अर्थको भी सिद्ध कर सकता हूं ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! कहिये आपको क्या चिन्ता है ? मैं धनुष लेकर उसको अभी निवारण करूं यदि मेरे देहसे आपका कार्य सफल होता हो तो यह भी आपकी इच्छा सफल हो सकती है ॥४३॥ उस पुत्रको धिक्कार है जो पिताकी इच्छा सम्पादन करनेमें समर्थ होकर भी उसको प्रतिपादन नहीं करता उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या है जो चिंतासे पिताका उद्धार नहीं करता है ॥ ४४ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार राजा शंतनु पुत्रके वचन सुनकर मनमें लज्जित होते हुए पुत्रसे बोले ॥ ४५ ॥ हे पुत्र ! मुझको यह बडी चिंता है कि तुम एक ही मेरे पुत्र हो शूर बलवान् मानी और

इदं शरीरं तव भूपते न क्षमोऽस्मि नूनं वद किं करोम्यहम् ॥ न शोचनीयं मयि वर्तमानेऽप्यसाध्यमर्थं प्रतिपादयाम्यदः ॥ ४२ ॥ प्रब्रूहि राजंस्तव काऽस्ति चिंता निवारयाम्यद्य धनुर्गृहीत्वा ॥ देहेन मे चेच्चरितार्थता वा भवत्वमोघा भवतश्चिकीर्षा ॥ ४३ ॥ धिक्तं सुतं यः पितुरीप्सितार्थं क्षमोऽपि सन्न प्रतिपादयेद्यः ॥ जातेन किं तेन सुतेन कामं पितुर्न चिंतां हि समुद्धरेद्यः ॥ ४४ ॥ सूत उवाच ॥निशम्येति वचस्तस्य पुत्रस्य शंतनुर्नृपः ॥ लज्जमानस्तु मनसा तमाह त्वरितं सुतम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ चिंता मे महती पुत्र यस्त्वमेकोऽसि मे सुतः ॥ शूरोऽतिबलवान्मानी संग्रामेष्वपराङ्मुखः ॥ ४६ ॥ एकापत्यस्य मे तात वृथेदं जीवितं किल ॥ मृते त्वयि मृधे क्वापि किं करोमि निराश्रयः ॥ ४७ ॥ एषा मे महती चिंता तेनाद्य दुःखितोऽस्म्यहम् ॥ नान्या चिंताऽस्ति मे पुत्र यां तवाग्रे वदाम्यहम् ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ तदाकर्ण्याथ गांगेयो मंत्रिवृद्धानपृच्छत ॥ न मां वदति भूपालो लज्जयाऽद्य परिप्लुतः ॥ ४९ ॥ वित्त वार्तां नृपस्याद्य पृष्ट्वा यूयं विनिश्चयात् ॥ सत्यं ब्रुवंतु मां सर्वं तत्करोमि निराकुलः ॥ ५० ॥

संग्राममें अपराङ्मुख हो ॥४६॥ हे पुत्र ! एक सन्तान होनेसे मेरा जीवन वृथा ही है. यदि संग्राममें तुम्हारा शरीर पात हो तो मैं क्या करूंगा ॥ ४७ ॥ यह मुझे बड़ी चिंता है इससे मैं दुःखी हूं हे पुत्र ! और कोई चिंता नहीं जिसको मैं तुमसे वर्णन करूं ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले यह वचन सुन भीष्मजीने मंत्रिवृद्धोंसे पूछा कि लज्जाके कारण पिताजी हमसे तो नहीं कहते ॥ ४९ ॥ तुम महराजसे पूँछकर उनके मनकी बात जानो, यथार्थ मुझसे आकर कहो मैं तत्काल उसको सम्पादन करूंगा ॥ ५० ॥

यह सुनकर वे राजाके पास जाय और कारणको जानकर उस वार्ताको भीष्मसे कहते हुए भीष्मने सुनकर विचार किया ॥ ५१ ॥ और उन मंत्रियोंको साथ लेकर दासके घरको गये और जाह्नवीपुत्र भीष्मने नम्र हो प्रेमपूर्वक उससे कहा ॥ ५२ ॥ भीष्म बोले हे दास ! मेरे पिताके निमित्त अपनी सुमध्यमा कन्याको दीजिये यह तुम्हारी कन्या मेरी मातारूप होंगी हे परंतप ! मैं इसका दास हूं ॥ ५३ ॥ दासराज बोले हे महाभाग तुम इसको ग्रहण कर अपनी पत्नी बनाओ कारण कि पिताको देनेसे तुम्हारे होते इसका पुत्र राजा नहीं हो सकता ॥५४॥ गांगेय बोले यह दाशेयी मेरी माता हो मैं राज्य नहीं करूंगा, इसमें सन्देह नहीं सर्वथा इसीका पुत्र राज्य करेगा ॥ ५५ ॥ दाशराजने कहा यह सत्य है पर तुमसे उत्पन्न हुआ बलवान पुत्र अवश्यही बलसे राज्य ग्रहण करेगा

तच्छुत्वा ते नृपं गत्वासंविज्ञाय च कारणम् ॥ शशंसुर्विदितार्थस्तु गांगेयस्तदचिंतयत् ॥ ५१ सहितस्तैर्जगामाशु दाशस्य सदनं तदा ॥ प्रेमपूर्वमुवाचेदं विनम्रो जाह्नवीसुतः ॥ ५२ ॥ गांगेय उवाच ॥ पित्रे देहिसुतां तेऽद्य प्रार्थयामि सुमध्यमाम् ॥ माता मेऽस्तु सुतेयं ते दासोऽस्म्यस्याः परंतप ॥ ५३ ॥ दाश उवाच ॥ त्वं गृहाण महाभाग पत्नीं कुरु नृपात्मज ॥ पुत्रोऽस्या न भवेद्राजा वर्तमाने त्वयीति वै ॥ ५४ ॥ गांगेय उवाच ॥ मातेयं मम दाशेयी राज्यं नैव करोम्यहम् ॥ पुत्रोऽस्याः सर्वथा राज्यं करिष्यति न संशयः ॥ ५५ ॥ दाश उवाच ॥ सत्यं वाक्यं मया ज्ञातं पुत्रस्ते बलवान्भवेत् ॥ सोऽपि राज्यं बलान्नूनं गृह्णीयादिति निश्चयः ॥५६॥ गांगेय उवाच ॥ न दारसंग्रहं नूनं करिष्यामि हि सर्वथा ॥ सत्यं मे वचनं तात मया भीष्मं व्रतं कृतम् ॥५७॥ सूत उवाच ॥ एवं कृतां प्रतिज्ञां तु निशम्य झषजीवकः ॥ ददौ सत्यवतीं तस्मै राज्ञे सर्वांगशोभनाम् ॥५८॥ अनेन विधिना तेन वृता सत्यवती प्रिया ॥ न जानाति परं जन्म व्यासस्य नृपसत्तमः ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥५६॥ गांगेय बोले यदि ऐसा है तो मैं दारसंग्रह ही न करूंगा, यह मेरा सत्यवचन है, आजसे मैंने यह बडा भीष्म 'भयंकर' व्रत अवलम्बन किया ॥ ५७ ॥ सूतजी बोले दाशराजने इस प्रकार उनकी प्रतिज्ञाका स्मरण कर सर्वांगशोभना सत्यवती उस राजाको प्रदान की ॥ ५८ ॥ इस विधानसे उसराजाने सत्य वतीको ग्रहण किया और यह राजाको विदित नहीं था कि, इसके उदरसे व्यासजीकी उत्पत्ति हो चुकी है, इससे राजामें दोष नहीं है ॥५९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दे. भा.
॥१५॥

सूतजी बोले इस प्रकारसे शंतनुने सत्यवतीका वरण किया, चित्रांगद और विचित्र वीर्य दो पुत्र हुए जो कालवश मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ व्यासजीसे अंधे धृतराष्ट्र हुए कारण कि मुनिको जटिल देखकर स्त्रीने नेत्र मूंद लिये ॥ २ ॥ दूसरी राजकन्या व्यासजीको देखकर श्वेतरूपा होगई इस कारण व्यासके कोपसे पाण्डु पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ और विविध वार्ता ज्ञानमें कुशल दासीने व्यासजीको सन्तुष्ट किया इस कारण धर्मके अंशसे सत्यवाक् विदुर उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ इससे वंश क्षयमें एकवार गमनसे पुत्र होनेमें निर्दोषता कलियुगातिरिक्त युगोंमें जाननी छोटा होनेपर भी पाण्डुको ही मंत्रियोंने राज्य दिया. अन्धताके कारण धृतराष्ट्र को राज्यमें नियुक्त न किया ॥ ५ ॥ भीष्मकी अनुमतिसे महाबली पाण्डुने राज्य किया और बुद्धिमान् विदुरको मंत्रिकार्यमें

सूत उवाच ॥ एवं सत्यवती तेन वृता शंतनुना किल ॥ द्वौ पुत्रौ च तया जातौ मृतौ कालवशादपि ॥ १ ॥ व्यासवीर्यात्तु संजातो धृतराष्ट्रोऽन्ध एव च ॥ मुनिं दृष्ट्वाऽथ कामिन्या नेत्रसंमीलने कृते ॥ २ ॥ श्वेतरूपा यतो जाता दृष्ट्वा व्यासं नृपात्मजा ॥ व्यासकोपात्समुत्पन्नः पांडुस्तेन न संशयः॥ ३ ॥ संतोषितस्तयाव्यासो दास्या कामकलाविदा ॥ विदुरस्तु समुत्पन्नो धर्मांशः सत्यवाक्छुचिः ॥ ४ ॥ राज्ये संस्थापितः पांडुः कनीयानपि मंत्रिभिः ॥ अंधत्वादधृतराष्ट्रोऽसौ नाधिकारे नियोजितः ॥ ५ ॥ भीष्मस्यानुमते राज्यं प्राप्तः पांडुर्महाबलः ॥ विदुरोऽप्यथ मेधावी मंत्रकार्ये नियोजितः ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रस्य द्वे भार्ये गांधारी सौबली स्मृता ॥ द्वितीया च तथा वैश्या गार्हस्थ्येषु प्रतिष्ठिता ॥ ७ ॥ पांडोरपि तथा पत्न्यौद्वे प्रोक्ते वेदवादिभिः ॥ शौरसेनी तथा कुंती माद्री च मद्रदेशजा ॥ ८ ॥ गांधारी सुषुवे पुत्रशतं परमशोभनम् ॥ वैश्याऽप्येकं सुतं कांतं युयुत्सुं सुषुवे प्रियम् ॥ ९ ॥ कुंती तु प्रथमं कन्या सूर्यात्कर्णं मनोहरम् ॥ सुषुवे पितृगेहस्था पश्चात्पांडुपरिग्रहः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ किमेतत्सूत चित्रं त्वं भाषसे मुनिसत्तम ॥ जनितश्च सुतः पूर्वं पांडुना सा विवाहिता ॥ ११ ॥

नियुक्त किया ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्र की दो भार्या थीं गांधारी और सौबली दूसरी वैश्य गृहस्थकर्ममें प्रतिष्ठित थी ॥ ७ ॥ और पाण्डुकोभी दो ही भार्या थीं शूरसेनकी कन्या कुन्ती और मद्र देशकी माद्री ॥ ८ ॥ गांधारीके सौ पुत्र हुए और वैश्यासे एक पुत्र युयुत्सु हुआ ॥ ९ ॥ कुन्ती जब प्रथम कन्या थी तब उसके सूर्यसे एक परम मनोहर पुत्र पिताके घरही उत्पन्न हुआ पीछे पाण्डुने उसको विवाहा ॥ १० ॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! आप यह क्या विचित्र बात कहते हो ? कि पहले पुत्र हुआ और पीछे पाण्डुने उससे विवाह किया ॥ ११ ॥

कन्यावस्थामें सूर्यसे कर्ण कैसे उत्पन्न हुआ ? सो विस्तारमे कहो, और फिर वह कन्या कैसे हुई और पाण्डुने कैसे विवाही ? ॥ १२ ॥ सूतजी बोले हे ऋषियो ! जिस समय शूरसेनकी पुत्री बालक थी, उस समय राजा कुन्तिभोजने उसको मांग लिया था ॥१३॥ और कुन्तिभोजने इसको अपनी पुत्री रूपमें कल्पना किया और अग्निहोत्रकी सेवामें उस चारु हासिनीको नियुक्त किया ॥ १४ ॥ वहां दुर्वासा मुनि आकर चारमहीनेतक स्थित रहे, मुनिकी कुन्तीने इतनी सेवा की कि, वे प्रसन्न होगये ॥ १५ ॥ और जिसके द्वारा देवता आजायँ इस प्रकारका मुनिने उनको मंत्र दिया, कि देवता आकर शीघ्रही मनोरथ पूर्ण कर सकें ॥ १६ ॥ जब मुनिराज चले गये तब कुन्तीने मंत्रके निश्चयके निमित्त घरमें विचार किया कि, किस

सूर्यात्कर्णः कथं जातः कन्यायां वद विस्तरात् ॥ कन्या कथं पुनर्जाता पांडुना सा विवाहिता ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ शूरसेनसुता कुंती बालभावे यदा द्विजाः ॥ कुंतीभोजेन राजा तु प्रार्थिता कन्यका शुभा ॥ १३ ॥ कुंतिभोजेन सा बाला पुत्री तु परिकल्पिता ॥ सेवनार्थं तु दीप्तस्य विहिता चारुहासिनी ॥ १४ ॥ दुर्वासास्तु मुनिः प्राप्तश्चतुर्मास्ये स्थितो द्विजः ॥ परिचर्या कृता कुंत्या मुनिस्तोषं जगाम ह ॥ १५ ॥ ददौ मंत्रं शुभं तस्यै येनाहूतः सुरः स्वयम् ॥ समायाति तथा कामं पूरयिष्यति वांछितम् ॥ १६ ॥ गते मुनौ ततः कुंती निश्चयार्थं गृहे स्थिता ॥ चिंतयामास मनसा कं सुरं समर्चितये ॥ १७ ॥ उदितश्च तदा भानुस्तया दृष्टो दिवाकरः ॥ मंत्रोच्चारं तथा कृत्वा चाहूतस्तिग्मगुस्तदा ॥ १८ ॥ मंडलान्मानुषं रूपं कृत्वा सर्वातिपेशलम् ॥ अवातरत्तदाऽऽकाशात्समीपे तत्र मंदिरे ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा देवं समायांतं कुंती भानुं सुविस्मिता ॥ वेपमाना रजोदोषं प्राप्ता सद्यस्तु भामिनी ॥ २० ॥ कृतांजलिः स्थिता सूर्यं बभाषे चारुलोचना ॥ सुप्रीता दर्शनेनाद्य गच्छ त्वं निजमंडलम् ॥ २१ ॥ सूर्य उवाच ॥ आहूतोऽस्मि कथं कुंति त्वया मंत्रबलेन वै ॥ न मां भजसि कस्मात्त्वं समाहूय पुरो गतम् ॥ २२ ॥

देवताका चिन्तन करूं ॥ १७ ॥ उसी समय उसने सूर्यको उदय होते हुए देखा और मंत्रोच्चारण करके सूर्यको बुलाया ॥ १८ ॥ तब सूर्य देव उस अपने मण्डलसे मनोहर मनुष्यका रूप धारण करके उसके समीप मन्दिरमें प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ उस समय सूर्य देवको आता देखकर कुन्ती बड़ी विस्मित हुई और कंपित होकर तत्काल ही रजो दोषको प्राप्त हुई ॥ २० ॥ और हाथ जोडकर वह सुलोचना सूर्यसे कहने लगी मैं आपके दर्शनसे ही कृतार्थ होगई. अब आप अपने मण्डलको जाइये॥२१॥ सूर्य बोले हे कुन्ति ! तूने मंत्र बलसे हमको क्यों बुलाया ? और बुलाकर आगे स्थित हुए मुझको तू क्यों नहीं भजती है ?॥२२॥

हे वामोरु ! भाव संयुक्त होकर तुम मुझे भजो मैं सकाम हूं इस मंत्रसे मैं तुम्हारे अधीन हूं मुझसे क्रीडा करो ॥ २३ ॥ कुन्ती बोली हे धर्मज्ञ ! हे सबके साक्षी मैं कन्या हूं इस कारण मेरे ऊपर कृपा करो मैं आपको प्रणाम करती हूं कुलकन्या होनेके कारण आपको मुझे दुर्वाच्य करना उचित नहीं है ॥ २४ ॥ सूर्य बोले यदि हम वृथा चले गये तो बड़ी लज्जा होगी और सब देवताओंमें मोघ दर्शन होनेके कारण मैं वाच्यताको प्राप्त हूंगा ॥ २५ ॥ और उस ब्राह्मणको शाप दूंगा जिसने तुझको मंत्र दिया और वृथा बुलाया इस कारण तुझको भी शाप दूंगा जो न भजेगी ॥ २६ ॥ और मेरे संयोगसे तेरा कन्या धर्म स्थिर रहेगा कोई भी जान न सकेगा और हे वरानने ! तेरा मेरे समान पुत्र होगा ॥२७॥ यहकर सूर्यने अपनेमें अनुरक्त और लज्जित कुन्तीको भोगकर मनवांछित वर दे

कामार्तोऽस्म्यसितापांगि भज मां भावसंयुतम् ॥ मन्त्रेणाधीनतां प्राप्तं क्रीडितुं नय मामिति ॥ २३ ॥ कुन्त्युवाच ॥ कन्याऽस्म्यहं तु धर्मज्ञ सर्वसाक्षिन्नमाम्यहम् ॥ तवाप्यहं न दुर्वाच्या कुलकन्याऽस्मि सुव्रत ॥ २४ ॥ सूर्य उवाच ॥ लज्जा मे महती चाद्य यदि गच्छाम्यहं वृथा ॥ वाच्यतां सर्वदेवानां यास्याम्यत्र न संशय ॥ २५ ॥ शप्स्यामि तं द्विजं चाद्ययेन मंत्रः समर्पितः ॥ त्वां चापि सुभृशं कुन्ति नोचेन्मां त्वं भजिष्यसि ॥ २६ ॥ कन्याधर्मः स्थिरस्ते स्यान्न ज्ञास्यंति जनाः किल ॥ मत्समस्तु तथा पुत्रो भविता ते वरानने ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा तरणिः कुंतीं तन्मनस्कां सुलज्जिताम् ॥ भुक्त्वा जगाम देवेशो वरं दत्त्वाऽतिवांछितम् ॥२८॥ गर्भं दधार सुश्रोणी सुगुप्ते मंदिरे स्थिता ॥ धात्री वेद प्रियाचैका न माता न जनस्तथा ॥ २९ ॥ गुप्तः सद्मनि पुत्रस्तु जातश्चातिमनोहरः ॥ कवचेनातिरम्येण कुंडलाभ्यां समन्वितः ॥ ३० ॥ द्वितीय इव सूर्यस्तु कुमार इव चापरः ॥ करे कृत्वाऽथ धात्रेयी तामुवाच सुलज्जिताम् ॥ ३१ ॥ कां चिंतां करभोरु त्वमाधत्सेऽद्य स्थिताऽस्म्यहम् ॥ मंजूषायां सुतं कुन्ती मुंचंती वाक्यमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

गमन किया ॥२८॥ तब कुन्तीने गर्भ धारण किया और गुप्त मंदिरमें स्थित हुई केवल इस बातको एक धात्रीने जाना और माता आदि किसीने न जाना ॥२९॥ उस गुप्त मंदिरमें इसके बड़ा मनोहर पुत्र हुआ, जो कवच और दिव्य कुण्डल धारण किये था ॥ ३० ॥ दूसरे सूर्य अथवा दूसरे कुमारहीके समान था और धात्री उसको हाथमें लेकर उस लज्जित हुईसे बोली ॥ ३१ ॥हे करभोरु ! इस समय तुम क्या चिंता करती हो ! मैं तुम्हारी आज्ञा करने को स्थित हूं तब कुंती उस पुत्रको मंजूषामें रखनेकी इच्छा कर तीहुई बोली ॥ ३२ ॥

क्या करूं ? दुःखी हूं इस कारण प्राणवल्लभ पुत्रको त्याग करती हूं, मैं मन्दभागिनी हूं जो सर्वलक्षण सम्पन्न तुमको त्याग करती हूं ॥ ३३ ॥ तेरी सगुणा निर्गुणा सर्वेश्वरी अंबिका रक्षा करे और कामदा कात्यायनी तुझको अपना दुग्धदान करे, तुझ प्राणप्रियके मुखकमलका मैं कब दर्शन करूंगी ? तुझ सूर्यपुत्रको विजन वनमें दुष्ट स्वैरिणीके समान त्याग करती हूं ॥ ३४ ॥ मैंने पूर्वजन्ममें त्रिलोक जननीका आराधन नहीं किया, न शिवादेवीके सुखकारी चरण कमलोंका कभी ध्यान किया, इससे मैं दुर्भागिनीके समान निर्जन वनमें तुझको त्याग करती हूं और इस अपनी बुद्धिसे किये पातकको स्मरण करती हुई तापित हूंगी ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले ऐसा कहकर कुंतीने उस पुत्रको मंजूषामें धर दिया, और मनुष्योंके देखनेके भयसे उसको धायके हाथमें

किं करोमि सुतार्ताऽहं त्यजे त्वां प्राणवल्लभम् ॥ मन्दभाग्या त्यजामि त्वां सर्व लक्षणसंयुतम् ॥ ३३ ॥ पातु त्वां सगुणाऽगुणा भगवतीं सर्वेश्वरी चांबिका स्तन्यं सैव ददातु विश्वजननी कात्यायनी कामदा ॥ द्रक्ष्येऽहं मुखपंकजं सुललितं प्राणप्रियाहं कदा त्यक्त्वा त्वां विजने वने रविसुतं दुष्टा यथा स्वैरिणी ॥ ३४ ॥ पूर्वस्मिन्नपि जन्मनि त्रिजगतां माता न चाराधिता न ध्यातं पद्पंकजं सुखकरं देव्याः शिवायाश्चिरम् ॥ तेनाहं सुत दुर्भगास्मिसततं त्यक्त्वा पुनस्त्वा वने तप्स्यामि प्रिय पातकं स्मृतवती बुद्ध्या कृतं यत्स्वयम् ॥ ३५ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं सुतं कुन्ती मंजूषायां धृतं किल ॥ धात्री हस्ते ददौ भीता जनदर्शनतस्तथा ॥ ३६ ॥ स्नात्वा त्रस्ता तदा कुन्तीपितृवेश्मन्युवास सा ॥ मंजूषा वहमाना च प्राप्ता ह्यधिरथेन वै ॥ ३७ ॥ राधा सूतस्य भार्या वै तयाऽसौ प्रार्थिता सुतः ॥ कर्णोऽभू द्बलवान्वीरः पालितः सूतसद्मनि ॥ ३८ ॥ कुंती विवाहिता कन्या पांडुना सा स्वयंवरे ॥ माद्री चैवापरा भार्या मद्रराजसुता शुभा ॥ ३९ ॥ मृगयारसमाणस्तु वने पांडुर्महाबलः ॥ जघान मृगबुद्ध्या तु रममाणं मुनिं वने ॥ ४० ॥ शप्तस्तेन तदा पांडुर्मुनिना कुपितेन च ॥ स्त्रीसंगं यदि कर्तासि तदा ते मरणं ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

दिया ॥ ३६ ॥ और आप स्नान करके पिताके घरमें रही और गंगामेंबहती हुई वह मंजूषा अधिरथीको मिली ॥ ३७ ॥ उसकी भार्या राधाने इस पुत्रको पालन किया, उससे बलवान बली कर्ण हुआ, सूतजीके स्थानमें पालित हुआ ॥ ३८ ॥ स्वयंवरमें कुंतीको राजा पाण्डुने विवाहा और मद्रराजकी कन्या माद्री दूसरी भार्या हुई ॥ ३९ ॥ एक समय महाबली पाण्डु वनमें मृगया करते हुए मृगरूपमें रमण करते एक मुनिको मारते हुए ॥ ४० ॥ तब क्रोधकर उन मुनिने पाण्डुको शाप दिया कि, तुम भी जब स्त्रीसे रमण करोगे तब अवश्य तुम्हारा मरण होगा ॥ ४१ ॥

जब मुनिने इस प्रकार शाप दिया तब पाण्डुको बडा शोक हुआ और राज्य छोड़कर दुःखी हो वनमें निवास करने लगे ॥४२॥ कुंती और माद्री दोनों भार्या उनके संग गई, हे मुनिश्रेष्ठो ! वे सती धर्म सेवन करने लगीं ॥ ॥ ४३ ॥ पाण्डु गंगा किनारे स्थित हुए मुनियोंके आश्रमोंमें धर्मशास्त्रको श्रवण करते दुश्चर तप करने लगे ॥४४॥ एक समय धर्म सम्बन्धिनी कथा श्रवण करते मुनियोंके कहे इस पुष्टवचनको सुनते हुए॥ ४५॥ हे परंतप ! जो पुत्रवान् नहीं है उसको स्वर्गमेंगति नहीं है। जैसे बने वैसे पुत्र प्रगट करे ॥ ४६ ॥ अपने वीर्यसे उत्पन्न कन्याका पुत्र,क्षेत्रज, गोलक,कुण्ड,सहोढ जो गार्भिणी ब्याहीगई उससे उत्पन्न कन्यावस्थामें हुआ कानीन क्रीत तथा वनमें प्राप्त हुआ ॥ ४७ ॥ पुत्र पालनामें अशक्तताकेकारण किसीने बेचदिया वह धनग्राही पुत्र है, ये पुत्र उत्तरोत्तर निकृष्ट हैं यह

इति शप्तस्तु मुनिना पांडुः शोकसमन्वितः ॥ त्यक्त्वा राज्यं वने वासं चकार भृशदुःखितः ॥ ४२ ॥ कुंती माद्री च भार्ये द्वे जग्मतुः सह संगते ॥ सेवनार्थं सती धर्मं संश्रिते मुनिसत्तमाः ॥ ४३ ॥ गंगातीरे स्थितः पांडुर्मुनीनामाश्रमेषु च ॥ शृणवानो धर्मशास्त्राणि चकार दुश्चरं तपः ॥ ४४ ॥ कथायां वर्तमानायां कदाचिद्धर्मसंश्रितम् ॥ अशृणोद्वचनं राजा सुपुष्टंमुनिभाषितम् ॥ ४५ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे गंतुं परंतप ॥ येनकेनाप्युपायेन पुत्रस्य जननं चरेत् ॥ ४६ ॥ अंशजः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गोलकस्तथा ॥ कुंडः सहोढः कानीनः क्रीतः प्राप्तस्तथा वने ॥ ४७ ॥ दत्तः केनापि चाशक्तौ धनग्राहिसुताःस्मृताः ॥ उत्तरोत्तरतः पुत्रा निकृष्टा इति निश्चयः ॥ ४८ ॥ इत्याकर्ण्य तदा प्राह कुंती कमललोचनाम् ॥ सुतमुत्पादयाशु त्वं मुनिं गत्वा तपोन्वितम् ॥ ४८ ॥ ममाऽऽज्ञया न दोषस्ते पुरा राज्ञा महात्मना ॥ वसिष्ठाज्जनितः पुत्रः मे सौदासेनेति मे श्रुतम् ॥ ५० ॥ तं कुन्ती वचनं प्राह मम मंत्रोऽस्ति कामदः ॥ दत्तो दुर्वाससा पूर्वं सिद्धिदः सर्वथा प्रभो ॥ ५१ ॥

निश्चय है ॥ ४८ ॥ यह सुनकर राजाने कमल लोचनी कुन्तीसे कहा कि, तुम किसी तपस्वी मुनिके निकट गमन करके पुत्र उत्पन्न करो ॥ ४९ ॥ और मेरी आज्ञासे तुझको दोष न लगेगा कारण कि, पहले महात्माओंकी भी आज्ञा इसी प्रकार है. सौदासने वशिष्ठसे पुत्र उत्पन्न कराया था ऐसा हमने सुना है ॥ ५० ॥ कुंतीने कहा मनुष्योंसे क्यों पुत्र प्रगट किया जाय मेरे पास एक कामदायक मंत्र है हे प्रभो ! जो पहले दुर्वासाने दिया था और सब सिद्धिका देनेवाला है ॥ ५१ ॥

हे राजन् ! इस मंत्रसे मैं जिस देवताका निमंत्रण करूं सो अवश्य मेरे समीप आवेगा इसमें संदेह नहीं ॥५२॥ तब अपने स्वामीके वचनसे वह धर्मराजका स्मरण करके संगम करके युधिष्ठिरको उत्पन्न करती हुई ॥ ५३ ॥ वायुसे भीम इन्द्रसे अर्जुनको प्रगट किया, इस प्रकार वर्ष वर्षमें एक २ पुत्र प्रगट किया, यह तीन वर्षमें कुंतीके महाबली पुत्र हुए॥ ५४ ॥ तब माद्रीने पाण्डुसे कहा हे सत्तम ! हमको भी पुत्र दो. हे महाभाग ! मैं क्या करूं!मेरा दुःख नाश करो ॥ ५५ ॥ तब पतिकी प्रार्थनासे दयाकरके कुंतीने माद्रीको भी वह मंत्र दिया और पतिकी अनुमतिसे एक ही पुत्रका प्रबंध हुआ ॥ ५६ ॥ परन्तु अश्विनीकुमार देवताओंके स्मरण करनेसे नकुल और सहदेव यह दो पुत्र उसके हुए॥ ५७ ॥ इस प्रकार पाण्डु क्षेत्रमें पांच पाण्डव उत्पन्न हुए.हे द्विजोत्तमो, यह उस वनमें प्रतिवर्षमें

निमंत्रयेऽहं यं देवं मंत्रेणानेन पार्थिव ॥ आगच्छेत्सर्वथा सो वै मम पार्श्वे नियंत्रितः ॥ ५२ ॥ भर्तुर्वाक्येनः सा तत्र स्मृत्वा धर्मं सुरोत्तमम् ॥ संगम्य सुषुवे पुत्रं प्रथमं च युधिष्ठिरम् ॥ ५३ ॥ वायोर्वृकोदरं पुत्रं जिष्णुं चैव शतक्रतोः ॥ वर्षे वर्षे त्रयाः पुत्राःकुंत्यां जाता महाबलाः ॥ ५४ ॥ माद्री प्राह पतिं पांडुं पुत्रं मे कुरुसत्तम ॥ किं करोमि महाराज दुःखं नाशय मे प्रभो ॥ ५५ ॥ प्रार्थिता पतिना कुन्ती ददौ मन्त्रं दयान्विता ॥ एकपुत्र प्रबंधेन माद्री पतिमते स्थिता ॥ ५६ ॥ स्मृत्वा तदाऽश्विनौ देवौ मद्रराजसुता सुतौ ॥ नकुलः सहदेवश्च सुषुवे वरवर्णिनी ॥ ५७ ॥ एवं ते पांडवाः पंच क्षेत्रोत्पन्नाः सुरात्मजा ॥ वर्षवर्षांतरे जाता वने तस्मिन्द्विजोत्तमाः ॥ ५८ ॥ एकस्मिन्समये पांडुर्माद्रीं दृष्ट्वाऽथ निर्जने ॥ आश्रमेचातिकामार्तो जग्राहागतवैशसः ॥ ५९ ॥ मा मा मा मेति बहुधा निषिद्धोऽपि तया भृशम्॥आलिलिंग प्रियां दैवात्पपात धरणीतले ॥ ६० ॥ यथा वृक्षगता वल्ली छिन्ने पतति वै द्रुमे ॥ तथा सा पतिता बाला कुर्वंती रोदनं बहु ॥ ६१ ॥ प्रत्यागता तदा कुंती रुदती बालकास्तथा ॥ मुनयश्च महाभागाः श्रुत्वाकोलाहलं तदा ॥ ६२ ॥

एक एक हुए ॥ ५८ ॥ एक समय पाण्डुने निर्जनमें माद्रीको देखकर प्राप्त मृत्यु होनेसे कामार्त होकर ग्रहण किया ॥५९॥ ऐसा नहीं ऐसा नहीं करो' उसने बहुत निषेध भी किया परन्तु उन्होंने ज्यों ही प्रियाको आलिंगन किया कि, भूमिपर गिर गये ॥ ६० ॥ जैसे वृक्षके गिरनेसे उसकी बेल भी पतित हो जाती है इसी प्रकार वह बाला पतित होकर रोदन करने लगी ॥६१॥ उस बातको श्रवणकर कुंती रोती हुई आई और बालकभी तथा महाभाग मुनि भी इस कोलाहलको श्रवण करके ॥ ६२ ॥

कि, पाण्डु मृतक हुए हैं हे आर्य तब विधिपूर्वक अग्निकी विधिकरके गंगा किनारे दाह करते हुए ॥ ६३ ॥ माद्री दोनों पुत्र कुंतीको समर्पण करके संगही सती हुई और धर्मको आगे करके सत्य कामसे सतीहुई ॥ ६४ ॥ वहांके रहनेवाले मुनि जल दानादि करके पांच पुत्र युक्त कुंतीको हस्तिनापुरको लाये ॥ ६५ ॥ उसको आया हुआ देख भीष्म और विदुर और धृतराष्ट्रके स्थानमें सब नगर निवासी आये ॥ ६६ ॥ वे सब पूंछने लगे हे वरानने ! यह किसके पुत्र हैं ! कारण कि, यह शापको जानते थे तब कुंती बडी दुःखी हुई ॥ ६७ ॥ और कहा कि, यह पुत्र कुरुकुलमें देवताओंसे प्रगट हुए हैं और विश्वासके निमित्त कुन्तीने फिर सब देवताओंको बुलाया ॥ ६८ ॥ उन्होंने आकाशमें आकर कहा कि यह हमारे ही पुत्र हैं. तब भीष्मने

मृतः पांडुस्तदा सर्वे मुनय संशितव्रताः ॥ सहाग्निभिर्विधिं कृत्वा गंगातीरे तदाऽदहन् ॥ ६३ ॥ चक्रे सहैव गमनं माद्री दत्त्वा सुतौ शिशू ॥ कुंत्यै धर्मं पुरस्कृत्य सतीनां सत्यकामतः ॥ ६४ ॥ जलदानादिकं कृत्वा मुनय स्तत्रवासिनः ॥ पंचपुत्रयुतां कुंतीमनयन्हस्तिनापुरम् ॥ ६५ ॥ तां प्राप्तां च समाज्ञाय गांगेयो विदुरस्तथा ॥ नागरा धृतराष्ट्रस्य सर्वे तत्र सामाययुः ॥ ६६ ॥ पप्रच्छुश्च जनाः सर्वे कस्य पुत्रा वरानने ॥ पांडोः शापं समाज्ञाय कुंती दुःखान्विता तदा ॥ ६७ ॥ तानुवाच सुराणां वै पुत्राः कुरुकुलोद्भवाः ॥ विश्वासार्थं समाहूताः कुंत्या सर्वे सुरास्तदा ॥ ६८ ॥ आगत्य खे तदा तैस्तु कथितं नः सुताः किलः ॥ भीष्मेण सत्कृतं वाक्यं देवानां सत्कृताः सुताः ॥ ६९ ॥ गता नागपुरं सर्वे तानादाय सुतान्वधूम् ॥ भीष्मादयः प्रीतचित्ताः पालयामासुरर्थतः ॥ ७० ॥ एवं पार्थाः समुत्पन्ना गांगेयेनाथ पालिताः ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ पंचानां द्रौपदी भार्या सामान्या सा पतिव्रता ॥ पंच पुत्रास्तु तस्या स्युर्भर्तृभ्योऽतीव सुंदराः ॥ १ ॥ अर्जुनस्य तथा भार्या कृष्णस्य भगिनी शुभाः ॥ सुभद्रा या हृताः पूर्वं जिष्णुना हरिसंमते ॥ २ ॥

देवताओंके वाक्यसे देवपुत्रोंका सत्कार किया ॥ ६९ ॥ और पुत्र तथा कुन्तीको लेकर सब हस्ति नापुरको गये और भीष्म आदि प्रसन्नचित्त हो यथायोग्य धनादिसे उनका पालन करते हुए ॥७०॥ इस प्रकार यह कुन्तीसुत भीष्म द्वारा पालितहुए ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सूतजी बोले इन पांचोंकी भार्या द्रौपदी सामान्यतासे हुई. पांचपुत्र उसके पांचोंपतियोंसे बड़े सुन्दर हुए ॥ १ ॥ कृष्णकी भगिनी सुभद्रा अर्जुनकी भार्या हुई. जिसको कृष्णकी सम्मतिसेही अर्जुनने हरण किया था ॥ २ ॥

उससे महाबली अभिमन्यु उत्पन्न हुआ और द्रौपदीके पांच पुत्र तथा अभिमन्यु भारतके युद्धमें निहत हुए ॥३॥ विराटकी पुत्री अतिसुन्दरी अभिमन्युकी स्त्री थी, वह गर्भवती थी उससे अश्वत्थामाकी बाणाग्निसे दग्ध होनेके कारण मृतक पुत्र उत्पन्न किया ॥४॥ तब उस भागिनेयके पुत्रको श्रीकृष्णने जी वितकिया द्रोणपुत्रकी बाणाग्निसे जिवाना कृष्णका अद्भुत प्रताप था ॥ ५ ॥ वंशके क्षीण होनेपर पुत्रने जन्म लिया इस कारण पृथ्वीमें उसका परीक्षित नाम हुआ ॥ ६ ॥ अपने सौ पुत्र नष्ट होनेसे धृतराष्ट्र बडे दुःखी हुए और भीमके वाग् बाणोंसे पीडित होकर भी पांडवोंके राज्यमें निवास करते रहे ॥ ७ ॥ और पुत्रशोकसे व्याकुल हुई गांधारीभी स्थित रही और युधिष्ठिर दिनरात उनकी सेवा करने लगे ॥८॥ और धर्मात्मा विदुरभी उनको समझाते थे और युधिष्ठिरकी आज्ञासे

तस्यां जातो महावीरो निहतोऽसौ रणाजिरे ॥ अभिमन्युर्हतास्तत्र द्रौपद्याश्च सुताः किल ॥ ३ ॥ अभिमन्योर्वरा भार्या वैराटी चातिसुंदरी ॥ कुलांते सुषुवे पुत्रं मृतो बाणाग्निना शिशुः ॥ ४ ॥ जीवितः स तु कृष्णेन भागिनेयसुतः स्वयम् ॥ द्रौणिबाणाग्निनिर्दग्धः प्रतापेनाद्भुतेन च ॥ ५ ॥ परिक्षीणेषु वंशेषु ज़ातो यस्माद्वरः सुतः ॥ तस्मात्परीक्षितो नाम विख्यातः पृथिवीतले ॥ ६ ॥ निहतेषु च पुत्रेषु धृतराष्ट्रोऽतिदुखितः ॥ तस्थौ पांडवराज्ये च भीमवाग्बाणपीडितः ॥ ७ ॥ गांधारी च तथाऽतिष्ठत्पुत्रशोकातुरा भृशम् ॥ सेवां तयोर्दिवारात्रं चकारार्तो युधिष्ठिरः ॥ ८ ॥ विदुरोऽप्यतिधर्मात्मा प्रज्ञानेत्रमबोधयत् ॥ युधिष्ठिरस्यानुमते भ्रातृपार्श्वे व्यतिष्ठत ॥ ९ ॥ धर्मपुत्रोऽपि धर्मात्मा चकार सेवनं पितुः ॥ पुत्रशोकोद्भवं दुखं तस्य विस्मारयन्निव ॥ १० ॥ यथा शृणोति वृद्धोऽसौ तथा भीमोऽतिरोषितः ॥ वाग्बाणेनाहनत्तं तु श्रावयन्संस्थिताञ्जनान् ॥ ११ ॥ मया पुत्रा हताः सर्वे दुष्टस्यांधस्य ते रणे ॥ दुःशासनस्य रुधिरं पीतं हृद्यं तथा भृशम् ॥ १२ ॥ भुनक्ति पिंडमंधोऽयं मया दत्तं गतत्रपः ॥ ध्वांक्षवद्वा श्ववच्चापि वृथा जीवत्यसौ जनः ॥ १३ ॥ एवंविधानि रूक्षाणि श्रावयत्यनुवासरम् ॥ अश्वासयति धर्मात्मा मूर्खोऽयमिति च ब्रुवन् ॥ १४ ॥

निरन्तर उनके समीप रहते ॥ ९ ॥ और धर्मात्मा धर्मपुत्र भी पिताकी सेवा करते थे मानो उनके पुत्रका शोक विस्मरण कराते थे ॥ १० ॥ जिस प्रकारसे धृतराष्ट्र सुन लें इस प्रकारसे बड़े क्रोधित होकर भीमसेन मनुष्योंको सुनाते उनको वाग्बाणसे विद्ध करते थे ॥ ११ ॥ मैंने दुष्ट अन्ध तेरे सब पुत्र युद्धमें मारे और दुश्शासनका रुधिर हृदयवेधकर पिया ॥१२॥ अब यह निर्लज ! मेरे दिये अन्नको खाता है, ध्वांक्ष और श्वानके समान यहवृथा जीता है ॥१३॥ इस प्रकार प्रतिदिन रूखे वचन कहता और धर्मराज उनको समझाते कि यह मूर्ख है ॥ १४ ॥

इस प्रकार दुःखसे अठारह वर्ष वहां व्यतीत किये तब धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे वन जानेको पूँछा ॥ १५ ॥ जब धृतराष्ट्रने धर्मपुत्रसे वन जानेकी प्रार्थनाकरी कि अब मैं पुत्रोंके निमित्त निर्वाप अञ्जली देनेकी इच्छा करता हूं ॥ १६ ॥ कारण कि, यहां तो भीमसेनने सबका और्ध्वदैहिक किया, परंतु पूर्ववैरके स्मरणके कारण मेरे पुत्रोंका नहीं किया है ॥१७॥ जो आप मुझे धन दें तो मैं और्ध्वदेहिक कर्म करके वनमें स्वर्गप्राप्तिके निमित्त तप करनेको जाऊं ॥१८॥ तब एकान्तमें धर्मराजको विदुरने कहा तब उन्होंने धृतराष्ट्रको धन देनेकी इच्छा की ॥ १९ ॥ और सब अपने कुटुम्बियोंको बुलाकर राजाने कहा हे महाभागो ! पिंडदानकी इच्छावाले पिताको धन देते हैं ॥२०॥ महापराक्रमी अपने बडे भ्राताके यह वचन श्रवण कर क्रोधित हो भीमसेन कहनेलगे ॥२१॥ हे महाभाग ! दुर्योधनके

अष्टादशैव वर्षाणि स्थित्वा तत्रैव दुःखितः ॥ धृतराष्ट्रो वने याने यानं प्रार्थयामास धर्मजम् ॥ १५ ॥ अयाचत धर्म पुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ पुत्रेभ्योऽहं ददाम्यद्य निर्वापं विधिपूर्वकम् ॥ १६ ॥ वृकोदरेण सर्वेषां कृतमत्रौर्ध्वदैहिकम् ॥ कृतं मम पुत्राणां पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ १७ ॥ ददासि चेद्धनं मह्यं कृत्वा चैवौर्ध्वदेहिकम् ॥ गमिष्येऽहं वनं तप्तुं तपः स्वर्गफलप्रदम् ॥ १८ ॥ एकांते विदुरेणोक्तो राजा धर्मसुतः शुचिः ॥ धनं दातुं मनश्चक्रे धृतराष्ट्राय चार्थिने ॥ १९ ॥ समाहूय निजान्सर्वानुवाच पृथिवीपतिः ॥ धनं दास्ये महाभागः पित्रे निर्वापकामिने ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं भ्रातुर्ज्येष्ठस्यामिततेजसः ॥ संग्रहेऽस्य महाबाहुर्मारुतिः कुपितोऽब्रवीत् ॥ २१ ॥ धनं देयं महाभाग दुर्योधनहिताय किम् ॥ अंधोऽपि सुखमाप्नोति मूर्खत्वं किमतः परम् ॥ २२ ॥ तव दुर्मंत्रितेनाथ दुःखं प्राप्ता वने वयम् ॥ द्रौपदी च महाभागा समानीता दुरात्मना ॥ २३ ॥ विराटभवने वासः प्रसादात्तव सुव्रत ॥ दासत्वं च कृतं सर्वैर्मत्स्यस्यामितविक्रमैः ॥ २४ ॥ देविता त्वं न चेज्ज्येष्ठः प्रभवेत्संक्षयः कथम् ॥ सूपकारो विराटस्य हत्वाऽभूवं तु मागधम् ॥ २५ ॥ बृहन्नला कथं जिष्णुर्भवेद्धालस्य नर्तकः ॥ कृत्वा वेषं महाबाहुर्योषाया वासवात्मजः ॥ २६ ॥

निमित्त आप क्यों धन देते हो इससे तो यह अंधे भी सुखी होंगे. यह आपकी बुद्धिमानीकी बात नहीं है॥ २२ ॥ हे नाथ ! आपकी दुर्मंत्रणासेही हमने वनमें दुःख पाया और हे महाभाग ! आपके सामने उस दुरात्माने द्रौपदीको बुलाया॥ २३ ॥ हे सुव्रत ! आपहीके प्रसादसे हमको विराट्नगरमें निवास करना पडा ! और हम सब अमितपराक्रमी होकर मत्स्यके यहां दासवत् रहे ॥२४॥ यदि आप द्यूत न खेलते तब यह संक्षय किस प्रकार होता और आपहीके कारण जरासंधका वध करनेवाला होकर भी मुझे रसोइया बनना पडा ॥ २५ ॥ नहीं तो अर्जुनसे पराक्रमीको स्त्रियोंमें बृहन्नला क्यों बनना पडता ? हे महाबाहो !

इन्द्रपुत्र होकर भी आपहीके कारण यह स्त्रीरूपधारी बने ॥ २६ ॥ जिस हाथमें गांडीवकी शोभा थी उसमें कंकण पहरना पडा, मनुष्य शरीरको प्राप्त होकर इससे अधिक दुखः और क्या होगा ॥ २७ ॥ शिरपर वेणीनेत्रोंमें काजल, अर्जुनके देखकर जो क्रोध हुआ है, वह क्या तरवारसे धृतराष्ट्रका मस्तक छेदन करनेसे ही सुख होसकता है ? ॥२८॥ जिसने भीष्मादिकी सम्मतिके विनाही लाक्षागृहमें अग्नि दी, जिस पापात्माने हमारे जलानेकी इच्छा की थी, फिर आग लगाई ॥ २९ ॥ हे महाराज ! जिस प्रकार आपके विना पूँछे मैंने कीचकोंका वध किया, इस प्रकार भार्या सहित धृतराष्ट्रपुत्रोंको नष्ट न कर सका ॥ ३० ॥ हे राजन् ! आपने यह बुद्धिमानीका काम न किया जो इतने परभी गंधर्वोंसे दुर्योधनको छुडाया. कारण कि; उसने तो दुर्योधनादि शत्रुओं को बांध दियाथा

गांडीवशोभितौ हस्तौ कृतौ कंकण शोभितौ मानुषं च वपुः प्राप्य किं दुःखं स्यादतः परम् ॥ २७॥ दृष्ट्वा वेणीं कृतां मूर्ध्नि कज्जलं लोचने तथा ॥ असिं गृहीत्वा तरसा च्छेद्म्यहं नान्यथा सुखम् ॥ २८ ॥ अपृष्ट्वा च महीपालं निक्षिप्तोऽग्निर्मयागृहे ॥ दग्धुकामश्च पापात्मा निर्दग्धोऽसौ पुरोजनः ॥ २९ ॥ कीचका निहताः सर्वे त्वामपृष्ट्वा जनाधिप ॥ न तथा निहताः सर्वे सभार्या धृतराष्ट्रजाः ॥ ३० ॥ मूर्खत्वं तव राजेंद्र गंधर्वेभ्यश्च मोचिताः ॥ दुर्योधनादयः कामं शत्रवो निगडीकृताः ॥ ३१ ॥ दुर्योधनहितायाद्य धनं दातुं त्वमिच्छसि ॥ नाहं ददे महीपाल सर्वथा प्रेरितस्त्वया ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा निर्गते भीमे त्रिभिः परिवृतो नृपः ॥ ददौ वित्तं सुबहुलं धृतराष्ट्राय धर्मजः ॥ ३३ ॥ कारयामास विधिवत्पुत्राणां चौर्ध्वदैहिकम् ॥ ददौ दानानि विप्रेभ्यो धृतराष्ट्रोंऽबिकासुतः ॥ ३४ ॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकं सर्वं गांधारी सहितो नृपः ॥ प्रविवेश वनं तूर्णं कुंत्या च विदुरेण च ॥ ३५ ॥ संजयेन परिज्ञातो निर्गतोऽसौ महामतिः ॥ पुत्रैर्निवार्यमाणाऽपि शूरसेन सुता गता ॥ ३६ ॥ विलपन्भीमसेनोऽपि तथाऽन्ये चापि कौरवाः ॥ गंगातीरात्परावृत्य ययुः सर्वे गजाह्वयम् ॥ ३७ ॥

ऐसोंपर दया करनी उचित नहीं थी ॥३१॥ दुर्योधनके हितके निमित्त तुम धन देनेकी इच्छा करते हो सो मैं तुमसे प्रेरित होकर भी धन न दूंगा ॥ ३२ ॥ ऐसा कहकर भीमसेन चलेगये और राजाने अर्जुन नकुल सहदेवसे परिवृत होकर धृतराष्ट्रके निमित्त बहुतसा धन दिया ॥३३॥ और धृतराष्ट्रने ब्राह्मणोंके निमित्त बहुतसा धनदेकर पुत्रोंका और्ध्वदैहिक कर्म कराया ॥३४॥ गांधारीसहित राजाने सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक कर्म करके कुन्ती और विदुरको साथ लेकर वनमें प्रवेश किया ॥३५॥ महामति धृतराष्ट्र संजयके साथ मार्गमें जाते पुरसे बाहर हुए और पुत्रोंके निवारण करनेपर भी कुन्ती गई ॥ ३६ ॥ भीमसेन तथा अन्य

पाण्डव विलाप करते हुए गङ्गातीरसे लौटकर हस्तिनापुरमें आये ॥ ३७ ॥ वे गङ्गाके किनारे शतयूपा श्रममें जाकर तृणकी कुटी बनायतप करने लगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार वहां छः वर्ष बीतगये तब उनके विरहसे युधिष्ठिरने अपने अनुजोंसे कहा ॥ ३९ ॥ मैंने स्वप्नमें देखा है कि, कुन्ती वनमें स्थित बड़ी दुर्बल हो रही है इस कारण मेरा मन माता पिताके दर्शनोंकी इच्छा करता है ॥ ४० ॥ महात्मा विदुर और महामति संजयको देखनेकी इच्छा है जो तुमको यह अच्छा लगे तो हम उनके दर्शनको जायँ ऐसी हमारी इच्छा है ॥ ४१ ॥ तब वे सब भाई सुभद्रा और द्रौपदी महाभाग उत्तरा और सब नगरवासी ॥ ४२ ॥ सब जनोंके सहित पाण्डव वहां दर्शनोंकी इच्छासे गये और शतयूपके आश्रममें प्राप्त होकर वे सब देखने लगे ॥ ४३ ॥ जब विदुरको न

ते गत्वा जाह्नवी तीरे शतयूपाश्रमं शुभम्॥कृत्वा तृणैः कुटीं तत्र तपस्तेपुः समाहिताः ॥३८॥ गतान्यब्दानि षट् तेषां यदा याता हि ताप साः ॥ युधिष्ठिरस्तु विरहादनुजानिदमब्रवीत् ॥३९॥ स्वप्ने दृष्टा मया कुंती दुर्बला वनसंस्थिता ॥मनो मे जायते द्रष्टुं मातरं पितरौ तथा ॥४०॥ विदुरं च महात्मानं संजयं च महामतिम् ॥ रोचते यदि वः सर्वान्व्रजाम इति मे मतिः ॥४१॥ ततस्ते भ्रातरः सर्वे सुभद्रा द्रौपदी तथा ॥ वैराटी च महाभाग तथा नागरिको जनः ॥ ४२ ॥ प्राप्ताः सर्वजनैः सार्धं पांडवा दर्शनोत्सुकाः ॥ शतयूपाश्रमं प्राप्य ददृशुः सर्व एव ते ॥४३॥ विदुरो न यदा दृष्टो धर्मस्तं पृष्टवांस्तदा ॥ क्वास्ते स विदुरो धीमांस्तमुवाचांबिकासुतः ॥४४॥ विरक्तश्चरते क्षत्ता निरीहो निष्परिग्रहः ॥ कुत्राप्येकांतसंवासी ध्यायतेऽतः सनातनम्॥४५॥ गंगां गच्छन्द्वितीयेऽह्नि वने राजा युधिष्ठिरः ॥ ददर्श विदुरं क्षाम तपसा संशितव्रतम् ॥४६॥ दृष्ट्वोवाच महीपालो वंदेऽहं त्वां युधिष्ठिरः ॥ तस्थौ श्रुत्वा च विदुरः स्थाणुभूत इवानघः ॥ ४७ ॥ क्षणेन विदुर स्यस्यान्निःसृतं तेज अद्भुतम् ॥ लीनं युधिष्ठिरस्यास्ये धर्मांशत्वात्परस्परम् ॥४८॥ क्षत्ता जहौ तदा प्राणाञ्छुशोचाति युधिष्ठिरः ॥ दाहार्थं तस्य देहस्य कृतवानुद्यमं नृपः ॥ ४९ ॥

देखा तब राजाने पूँछा कि,बुद्धिमान् विदुर कहां हैं ? तब धृतराष्ट्र बोले ॥४४॥ कि विदुर विरक्त होकर निष्परिग्रह हो विचरते हैं, कभी कहीं एकांतमें बैठे सनातन देवका ध्यान करते हैं॥ ४५ ॥ दूसरे दिन युधिष्ठिरने वनमें गंगाके किनारे तपसे कृश हुए विदुरका दर्शन किया ॥ ४६ ॥ देखकर महीपालने कहा मैं युधिष्ठिर आपकी वंदना करता हूँ, विदुर यह सुनकर भी स्थाणुके समान अचल रहे ॥ ४७ ॥ और उसीक्षण विदुरके शरीरसे एक तेज निकला और धर्मांश होनेसे युधिष्ठिरके मुखमें लीन हो गया ॥ ४८ ॥ इस प्रकार युधिष्ठिरने विदुरके प्राण त्यागनेपर बडा शोच किया और उस देहके दाहके निमित्त उद्योग

किया ॥ ४९ ॥ तब उस समय अशरीरिणी वाणी हुई हे राजन् ! यह विरक्त होनेसे दाहके योग्य नहीं है, इस कारण तुम यथेष्ट गमनकरो ॥ ५० ॥ यह सुन युधिष्ठिर गये और सब भाइयोंने सुनकर गंगामें स्नान किया और जाकर विस्तारके सहित धृतराष्ट्रको यह निवेदन किया ॥ ५१ ॥ तब पाण्डव नगरवासियों सहित उस आश्रममें स्थिर रहे. वहां सत्यवती पुत्र व्यासजी ऋषि आये ॥ ५२ ॥ और भी उस समय महात्मा धर्मपुत्रके पास दूसरे मुनि आये तब कुन्ती शुभ दर्शन बैठे हुए व्यासजीसे बोली ॥ ५३ ॥ हे तपोधन व्यासजी ! मेरा पुत्र कर्ण उत्पन्न होते ही मुझसे पृथक् हुआ मेरा मन तप्त होता है, अब आप सब मृतक हुओंको दिखाइये ॥ ५४ ॥ हे महाभाग ! आप समर्थ हो मेरा मनोवांछित करो. गांधारी बोली हे महामुने ! दुर्योधनको युद्धमें आते मैंने नहीं देखा

शृण्वतस्तु तदा राज्ञो वागुवाचाशरीरिणी ॥ विरक्तोऽयं न दाहार्हो यथेष्टं गच्छ भूपते ॥५०॥ श्रुत्वा ते भ्रातरः सर्वे सस्नुर्गंगाजलेऽमले ॥ गत्वा निवेदयामासुधृतराष्ट्राय विस्तरात् ॥५१॥ स्थितास्तत्राश्रमे सर्वे पांडवा नागरैः सह ॥ तत्र सत्यवतीसूनुर्नारदश्च समागतः ॥५२॥ मुनयोऽन्ये महात्मानश्चागताधर्मनंदनम् ॥ कुंती प्राह तदा व्यासं संस्थितं शुभदर्शनम् ॥ ५३ ॥ कृष्ण कर्णस्तु पुत्रो मे जातमात्रस्तु वीक्षितः ॥ मनो मे तप्यते सर्व दर्शयस्व तपोधन ॥ ५४ ॥ समर्थोऽसि महाभाग कुरु मे वांछितं प्रभो ॥ गांधार्युवाच ॥ दुर्योधन रणे ऽगच्छद्वीक्षितो न मया मुने ॥५५॥ तं दर्शय मुनि श्रेष्ठ पुत्रं मे त्वं सहानुजम् ॥ सुभद्रोवाच ॥ अभिमन्युं महावीर प्राणादप्यधिकं प्रियम् ॥ ५६ ॥ द्रष्टुकाऽस्मि सर्वज्ञ दर्शयाद्य तपोधन ॥ सूत उवाच ॥ एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा सत्यवतीसुतः ॥ ५७ ॥ प्राणायामं ततः कृत्वा दध्यौ देवीं सनातनीम् ॥ संध्याकालेऽथ संप्राप्ते गंगायां मुनिसत्तमः ॥ ५८ ॥ सर्वास्तांश्च समाहूय युधिष्ठिरपुरोगमान् ॥ तुष्टाव विश्वजननीं स्नात्वा पुण्यसरिज्जले ॥५९॥ प्रकृतिं पुरुषारामां सगुणांनिर्गुणां तथा॥देवदेवीं ब्रह्मरूपां मणिद्वीपाधिवासिनीम् ॥ ६० ॥ यदा न वेधा न च विष्णुरीश्वरो न वासवो नैव जलाधिपस्तथा ॥ न वित्तपो नैव यमश्च पावकस्तदाऽसि देवि त्वमहं नमामि ताम् ॥ ६१ ॥

॥ ५५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ उस मेरे पुत्रको आप दर्शन कराइये. सुभद्रा बोलीकि, प्राणोंसे भी अतिशय प्यारे अभिमन्युको ॥ ५६ ॥ हे तपोधन मैं देखनेकी इच्छा करती हूँ, सूतजी बोले व्यासजी इस प्रकारके वचन श्रवण करके ॥ ५७ ॥ प्राणायाम करके सनातनी देवीका ध्यान करते हुए संध्याकाल प्राप्त होनेपर गंगामें मुनिश्रेष्ठ ॥ ५८ ॥ युधिष्ठिरादि सबको बुलाते हुए और पवित्र जलमें स्नानकर विश्वजननीको सन्तुष्ट करने लगे ॥ ५९ ॥ जो प्रकृति पुरुष आश्रय चैतन्यसे अभिन्न सगुण निर्गुण देवदेवी ब्रह्मरूपा मणिद्वीपनिवासिनी है ॥ ६० ॥ जब कि ब्रह्मा विष्णु शिव कुबेर वरुण यम पावक कोई भी नहीं थे हे देवि ! उस

समय भी तुमही स्थित थी ॥ ६१ ॥ जल वायु भूमि आकाश, न उनके गुण, इंद्रिय अहंकार मन बुद्धि सूर्य चन्द्र कोई नहीं थे उस समय देवि ! तुम थीं इस कारण मैं तुमको नमस्कार करता हूँ ॥ ६२ ॥ इस जीवलोकको चित्त अर्थात् हिरण्यगर्भात्मक समष्टिमें स्थापन करके और हिरण्यकोश अर्थात् समष्टि लिंग शरीरात्मक हिरण्यगर्भको पृथक भिन्न गुणतत्वादिके सहित साम्यावस्थारूप सुषुप्तिमें प्राप्त करके कल्पके परिणामकाल पर्यंत स्वतंत्र होकर विचरती हो उस समय ज्ञानसे भी तुमको कोई नहीं जानता उस समय तुम प्रपञ्चसे परे हो जाती हो ॥ ६३ ॥ हे माता ! यह सब कोई मुझको मृतक दर्शनोंके निमित्त प्रार्थना करते हैं सो हे मातः ! मैं तो समर्थ नहीं हूँ तुम उन मृतकोंको दर्शन कराओ ॥ ६४ ॥ सूतजी बोले जब इस प्रकारसे भुवनेश्वरीकी

जलं न वायुर्न धरा न चांबरं गुणा न तेषां च न चेंद्रियाण्यहम् ॥ मनो न बुद्धिर्न च तिग्मगुः शशी तदाऽसि देवि त्वमहं नमामि ताम् ॥ ६२ ॥ इमं जीवलोकं सामाधाय चित्ते गुणैर्लिंगकोशं च नीत्वा समाधौ ॥ स्थिता कल्पकालं नयस्यात्मतत्रा न कोऽप्यस्ति वेत्ता विवेकं गतोऽपि ॥ ६३ ॥ प्रार्थयत्येष मां लोको मृतानां दर्शनं पुनः ॥ नाहं क्षमोऽस्मि मातस्त्वं दर्शयाशु जनान्मृतान् ॥ ६४ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी माया श्रीभुवनेश्वरी ॥ स्वर्गादाहूय सर्वान्वै दर्शयामास पार्थिवान् ॥६५॥ दृष्ट्वा कुंती च गांधारी सुभद्रा च विराटजा ॥ पांडवा मुमुहुः सर्वे वीक्ष्य प्रत्यागतान्स्वकान् ॥ ६६ ॥ पुनर्विसर्जितास्तेन व्यासेनामिततेजसा ॥ स्मृत्वा देवीं महामायामिंद्रजालमिवोद्यतम् ॥ ६७ ॥ तदापृष्ट्वा ययुः सर्वे पांडवा मुनयस्तथा ॥ राजा नागपुरं प्राप्तः कुर्वन्व्यासकथां पथि ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ ततो दिने तृतीये च धृतराष्ट्रः स भूपतिः ॥ दावाग्निना वने दग्धः सभार्यः कुंतिसंयुतः ॥ १ ॥ संजयस्तीर्थयात्रायां गतस्त्यक्त्वा महीपतीम् ॥ श्रुत्वा युधिष्ठिरो राजा नारदाद्दुःखमाप्तवान् ॥ २ ॥

स्तुतिकी तब स्वर्गसे सब राजाओंको बुलाकर दर्शन कराया गया ॥६५॥ और अमित तेजस्वी व्यासजीने फिर उन सबका विसर्जन कर दिया और महामाया देवीका स्मरणकर इन्द्रजालके समान इस उद्यत हुए कौतुकको देख वे सब ॥ ६६ ॥ पाण्डव और मुनि पूँछकर फिर वहांसे चले युधिष्ठिर हस्तिनापुरको व्यासजीका चरित्र कहते आये ॥६७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ सूतजी बोले, तब राजा धृतराष्ट्र तीसरे दिन वनकी दावाग्निसे गांधारी कुन्तीसहित दग्ध होगये ॥ १ ॥ और संजय तो प्रथमही धृतराष्ट्रसे बिदा हो तीर्थयात्राको चले गये थे. युधिष्ठिरने यह बात नारद

जीसे सुनकर बड़ा दुःख पाया ॥ २ ॥ और कौरवोंके क्षयसे छत्तीस वर्ष बीतनेपर प्रभासमें सब यादव विप्रशापसे क्षयको प्राप्तहुए ॥३॥ वे मद्यपान करके मत्तहो परस्पर महात्मा रामकृष्णके देखते २ क्षयको प्राप्त हुए ॥४॥ बलरामजीने भी योगसे देहसे त्यागकिया और भगवान् हरि भी शापका पालन कर व्याधके बाणप्रहारको चाहते हुए स्वर्गको गये ॥ ५ ॥ वसुदेवजीने भगवानकी परमधाम यत्रा सुनकर मनमें भगवतीको धारणकर शरीर त्याग किया ॥ ६ ॥ तब प्रभासमें जाकर अर्जुन बड़े दुःखी हुए और उन्होंने यथायोग्य सबके संस्कार किये ॥ ७ ॥ और हरिके देहकी छायाको देख काष्ठसंचयकर आठ पत्नियोंसहित उनका संस्कार किया. अर्थात् आठ पटरानी सती हुई ॥ ८ ॥ रामकी छायाके साथ रेवती सती होगई. और अर्जुनने द्वारकामें आकर क्रमसे नागरिक जनोंको

षट्त्रिंशेऽथ गते वर्षे कौरवाणां क्षयात्पुनः ॥ प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः ॥ ३ ॥ ते पीत्वा मदिरां मत्ताः कृत्वा युद्धं परस्परम् ॥ क्षयं प्राप्ता महात्मानः पश्यतो रामकृष्णयोः ॥ ४ ॥ देहं तत्याज रामस्तु कृष्णः कमललोचनः ॥ व्याधबाणहतः शापं पालयन्भगवान्हरिः ॥५॥ वसुदेवस्तु तच्छ्रुत्वा देहत्यागं हरेरथ ॥ जहौ प्राणाञ्छुचीन्कृत्वा चित्ते श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ ६ ॥ अर्जुनस्तु ततो गत्वा प्रभासे चातिदुःखितः ॥ संस्कारं तत्र सर्वेषां यथायोग्यं चकार ह ॥ ७ ॥ समीक्ष्याथ हरेर्देहं कृत्वा काष्ठस्य संचयम् ॥ अष्टाभिः सह पत्नीभिर्दाहयामास पार्थिवः ॥ ८ ॥ देहं रामस्य रेवत्या सह दग्ध्वा विभावसौ ॥ अर्जुनो द्वारकामेत्य पुरानिष्क्रामयज्जनम् ॥ ९ ॥ पुरी सा वासुदेवस्य प्लावितोदधिना ततः ॥ अर्जुनः सर्वलोकान्वै गृहीत्वा निर्गतस्तदा ॥ १० ॥ अनिरुद्धसुतो नाम्ना पार्थेनामिततेजसा ॥ व्यासाय कथितं दुःखं तेनोक्तोऽसौ महारथः ॥११॥ पुनर्यदा हरिस्त्वं च भवितासि महामते ॥ कृष्णपत्न्यस्तदा मार्गे चौराभीरैश्च लुंठिताः ॥ १२ ॥ धनं सर्वं गृहीतं च निस्तेजाश्चार्जुनोऽभवत् ॥ इंद्रप्रस्थे समागम्य वज्रो राजा कृतस्ततः ॥ १३ ॥ तदा तेजस्तवात्युग्रं भविष्यति पुनर्युगे ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं पार्थो गत्वा नागपुरेऽर्जुनः ॥ १४ ॥

निकाला ॥ ९ ॥ तब वह वासुदेवकी पुरी सागरने डुबादी, उस समय अर्जुन सब लोगोंको लेकर बाहर निकले ॥ १० ॥ उस समय मार्गमें वे द्वारिकाकी स्त्रियें चोरभीलोंसे लूटी गई और सब धन लुट जानेसे अर्जुन निस्तेज होगया ॥ ११ ॥ और इन्द्रप्रस्थमें आकर उसने वज्रको राजा किया, यह अनिरुद्धका पुत्र था अमित तेजस्वी अर्जुनने उसे राज्यपर स्थापित किया ॥ १२ ॥ और व्याससे सब अपना दुःख कहा. तब व्यासजी बोले हे महामते ! जब फिर भगवान् होंगे तब फिर तुम होगे ॥१३॥ फिर दूसरे युगमें तुम्हरा पूर्ण तेज हो जायगा यह सुनकर अर्जुन हस्तिनापुरको गया ॥ १४ ॥

दे. भा. ॥२२॥

और दुःखी हो उसने धर्मराजसे सब वृत्तान्त कहा. हरिका देहत्याग और यादवोंका क्षय सुनकर ॥ १५ ॥ राजाने हिमालय जानेकी इच्छा की ३६ वर्षके उत्तरापुत्र परीक्षित्को राज्यमें स्थापन करके ॥१६॥ द्रौपदी और भ्राताओंको साथ लेकर राजा वनको गये (३६) वर्ष हस्तिनापुरमें राज्य करके ॥१७॥ वे छहों हिमालयमें प्राण त्याग करते हुए. राजर्षि परीक्षित् भी परम धर्मसे ॥ १८ ॥ साठ वर्षतक आलस्य रहित राज्य करते रहे फिर मृगयाशील होकर वनमें गये ॥ १९ ॥ विद्धमृगको राजाको मध्याह्नमें खोजते भूखे प्यासे और थकित हो गये ॥ २० ॥ गरमीसे व्याकुल हो राजाने समीपमें स्थित ध्यान करते मुनिसे जलके निमित्त कहा ॥ २१ ॥ वे मौनताके कारण कुछ न बोले तब राजाको कोप हुआ प्यासे होनेसे धनुष्यकी कोटिसे मृतसर्पको उठाकर

दुःखितो धर्मराजानां वृत्तांतं सर्वमब्रवीत् ॥ देहत्यागं हरेः श्रुत्वा यादवानां क्षयं तथा ॥ १५ ॥ गमनाय मतिं चक्रे राजा हैमाचलं प्रति॥ षट्त्रिंशद्वार्षिकं राज्ये स्थापयित्वोत्तरासुतम् ॥ १६ ॥ निर्जगाम वनं राजा द्रौपद्या भ्रातृभिः सह ॥ षट्त्रिंशच्चैव वर्षाणि कृत्वा राज्यं गजाह्वये ॥ १७ ॥ गत्वा हिमाचले षट् ते जहुः प्राणान्पृथासुताः ॥ परीक्षिदपि राजर्षिः प्रजाः सर्वा सुधार्मिकः ॥ १८ ॥ अपालयच्च राजेंद्रः षष्टिवर्षाण्य तंद्रितः ॥ बभूव मृगयाशीलो जगाम च वनं महत् ॥ १९ ॥ विद्धं मृगं विचिन्वानो मध्याह्ने भूपतिः स्वयम् ॥ तृषितश्च परिश्रांतः क्षुधितश्चोत्तरासुतः ॥२०॥ राजाघर्मेण संतप्तो ददर्श मुनिमंतिके ॥ ध्याने स्थितं मुनिं राजा जलं पप्रच्छचातुरः॥२१॥ नोवाच किंचिन्मौनस्थश्चुकोप नृपतिस्तदा ॥ मृतं सर्पं तदाऽऽदाय धनुष्कोट्या तृषातुरः ॥ २२ ॥ कलिनाऽऽविष्टचित्तस्तु कंठे तस्य न्यवेशयत् ॥ आरोपिते तथा सर्पे नोवाच मुनि सत्तमः ॥ २३ ॥ न चचाल समाधिस्थो राजाऽपि स्वगृहं गतः ॥ तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी गविजातो महातपाः ॥ २४ ॥ महाशक्तोऽथ शुश्राव क्रीडमानो वनांतिके ॥ मित्राण्याहुश्च तत्पुत्रं पितुः कंठे तवाधुना ॥ २५ ॥ लंबितोऽस्ति मृतः सर्पः केनापीति मुनीश्वर ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपातिशयं तदा ॥२६॥ शशाप नृपतिं क्रुद्धो गृहीत्वाऽऽशु करे जलम् ॥ पितुः कंठेऽद्य मे येनःविनिक्षिप्तो मृतोरगः ॥ २७ ॥

॥ २२ ॥ कलिसे आविष्ट चित्त होनेसे उनको गलेमें डाल दिया, सर्प डालनेपर मुनिने कुछ न कहा ॥२३॥ अपने घरमें राजा चले आये और वे ऋषि समाधिसे चलायमान न हुए उनका पुत्र महातेजस्वी महातपस्वी गविजात नामक था ॥ २४ ॥ वह बड़ा शक्त था. उसने बालकोंके साथ क्रीडा करते हुए सुना कि तुम्हारे पिताके गलेमें ॥ २५ ॥ कोई मरा सांप डालगया है उनके वचन सुन वह महाक्रोधित हुआ॥ २६ ॥ और क्रोधकर जल हाथमें लेकर उसने राजाको शाप दिया, जिसने मेरे पिताके गलेमें मरा सर्प डाल दिया है ॥ २७ ॥

उस पापिष्ठको सातवें दिन तक्षक डसेगा. तब मुनिके शिष्यने घर स्थित हुए राजासे ॥२८॥ मुनिपुत्रके शाप देनेका वृत्तान्त कहा, परीक्षितने ब्राह्मणके दिये शापकी कथासुनकर ॥२९॥ उसको अनिवार्य जानकर मंत्रिवृद्धोंसे पूँछा कि, मेरे द्वेषसे द्विजपुत्रने मुझको शाप दिया है ॥३०॥ हे अमात्यो ! अब क्या करें इसका उपाय विचारो ? वेदवादी कहते हैं कि, अवश्य यह मृत्यु ! अनिवार्य है ॥ ३१ ॥ तोभी शास्त्रोक्त यत्न पंडितों को सदा करना चाहिये. ऐसा उपाय ज्ञाता विद्वान् कहते हैं ॥ ३२ ॥ कि बड़े विज्ञके उपायसे कार्य सिद्ध होजातेहैं, अन्यथा नहीं. मणि मंत्र और औषधियोंके प्रभावभी बड़े दुरवगाह हैं ॥ ३३ ॥ क्या यह सिद्ध मणिवानोंसे न होगा ? एक मुनिकी सर्पकी काटीहुई भार्या मृतक होकर फिर जीवित हुई थी ॥ ३४ ॥ और मुनिने उसके निमित्त

तक्षकः सप्तरात्रेण तं दशेत्पापपूरुषम् ॥ मुनेः शिष्योऽथ राजानं समुपेत्य गृहे स्थितम् ॥ २८ ॥ शापं निवेदयामास मुनिपुत्रेण चार्पितम् ॥ अभिमन्युसुतः श्रुत्वा शाप दत्तं द्विजेन वै ॥ २९ ॥ अनिवार्यं च विज्ञाय मंत्रिवृद्धानुवाच ह ॥ शप्तोऽहं द्विजरूपेण मम द्वेषादसंशयम् ॥ ३० ॥ किं विधेयं मयाऽमात्या उपायश्चिंत्यतामिह ॥ मृत्युः किलानिवार्योऽसौ वदंति वेदवादिनः ॥ ३१ ॥ यत्नस्तथाऽपि शास्त्रोक्तः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः ॥ उपायवादिनः केचित्प्रवदंति मनीषिणः ॥ ३२ ॥ विज्ञोपायेन सिध्यंति कार्याणि नेतरस्य च ॥ मणिमंत्रौषधीनां वै प्रभावाः खलु दुर्विदः ॥ ३३ ॥ न भवेदिति किं तैस्तु मणिमद्भिः सुसाधितैः ॥ सर्पदष्टा पुरा भार्या मुनेः संजीविता मृता ॥ ३४ ॥ दत्त्वाऽर्धमायुषस्तेन मुनिना सा वराप्सराः ॥ भवितव्ये न विश्वासः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः ॥ ३५ ॥ प्रत्यक्षं तत्र दृष्टांतं पश्यंतु सचिवाः किल । दिवि कोऽपि पृथिव्यां वा दृश्यते पुरुषः क्वचित् ॥३६॥ दैवे मतिं समाधाय यस्तिष्ठेत्तु निरुद्यमः ॥ विरक्तस्तु यतिर्भूत्वा भिक्षार्थं याति सर्वथा ॥ ३७ ॥ गृहस्थानां गृहे काममाहूतोऽप्यथवाऽन्यथा ॥ यदृच्छयोपपन्नं च क्षिप्तं केनापि वा मुखे ॥ ३८ ॥ उद्यमेन विना चास्यादुदरे संविशेत्कथम् ॥ प्रयत्नश्चोद्यमे कार्यो यदा सिद्धिं न याति तत् ॥ ३९ ॥

अपनी आधी आयु प्रदान करदी थी. भवितव्यके ऊपर पंडितोंको विश्वास करना चाहिये ॥ ३५ ॥ हे मंत्रियो ! इसमें प्रत्यक्ष दृष्टान्त देखो, कोई भूमि स्वर्गमें क्या ऐसा पुरुष दीखताहै ? ॥ ३६ ॥ जो दैवमें मतिको रखकर निरुद्योग बैठा रहे विरक्तभी यति होकर सदाभिक्षाको जाता है ॥ ३७ ॥ गृहस्थोंके घरमें बुलाये या विना बुलाये जाता है और, यदृच्छासे प्राप्त हुआ भोजन स्वयं किसके मुखमें प्राप्त हो सकता है॥ ३८ ॥ उद्योग विना किया मुखसेभी उदरमें नहीं जाता. उद्यममें प्रयत्न करना चाहिये. चाहे वह सिद्ध न हो ॥ ३९ ॥

जब सिद्ध न हो तब दैवका नाम लेना चाहिये मंत्री, बोले, वे मुनि कौन थे ? जिन्होंने अपनी स्त्रीको आधी आयु देखकर जीवित किया ॥ ४० ॥ हे महाराज ! यह कैसे मरीसो विस्तारसे कहिये. राजाने कहा भृगुकी भार्या श्रेष्ठ मुखीपुलोमानाम सुन्दरी थी ॥ ४१ ॥ उसमें च्यवननाम मुनि तस्पवी प्रगट हुए. शर्यातिकी कन्या नामकसुन्दर कन्या इनकी भार्या थी ॥ ४२ ॥ उसमें श्रीमान् प्रमति पुत्र हुआ, इन प्रमतिकी भार्याका नाम प्रतापी था ॥ ४३ ॥ उसके रुरुनामक तपस्वी उत्पन्न हुआ. उस समय कोई स्थूलकेश नामवाला ॥ ४४ ॥ बड़ा तपस्वी धर्मात्मा सत्यसंध था. उसी समय माननीया मेनका श्रेष्ठ अप्सरा ॥ ४५ ॥ सर्वलोकमें अति सुन्दरी नदीके किनारे क्रीडा करती थी यह विश्वावसुके गर्भको प्राप्त होकर निर्गत हुई थी ॥ ४६ ॥ स्थूलकेशा ऋषिके

तदा देवं स्थितं चेति चित्तमालंबयेद् बुधः ॥ मंत्रिण ऊचुः ॥ को मुनिर्येन दत्त्वाऽर्धमायुषो जीविता प्रिया ॥ ४० ॥ कथं मृता महाराज तन्नो ब्रूहि सविस्तरम् ॥ राजोवाच ॥ भृगोर्भार्या वरारोहा पुलोमा नाम सुंदरी ॥ ४१ ॥ तस्यां तु च्यवनो नाम मुनिर्जातोऽतिविश्रुतः ॥ च्यवनस्य च शर्यातेः सुकन्या नाम सुंदरी ॥ ४२ ॥ तस्यां जज्ञे सुतः श्रीमान्प्रमतिर्नाम विश्रुतः ॥ प्रमतेस्तु प्रिया भार्या प्रतापी नाम विश्रुता ॥ ४३ ॥ रुरुर्नाम सुतो जात स्तथा परमतापसः ॥ तस्मिंश्च समये कश्चित्स्थूलकेशश्च विश्रुतः ॥ ४४ ॥ बभूव तपसा युक्तो धर्मात्मा सत्यसंमतः ॥ एतस्मिन्नंतरे मान्या मेनका च वराप्सराः ॥ ४५ ॥ क्रीडां चक्रे नदीतीरे त्रिषु लोकेषु सुंदरी ॥ गर्भं विश्वावसोः प्राप्य निर्गता वरवर्णिनी ॥ ४६ ॥ स्थूलकेशाश्रमे गत्वा विससर्ज वराप्सराः ॥ कन्यकां च नदीतीरे त्रिषु लोकेषु सुंदरीम् ॥ ४७ ॥ दृष्ट्वाऽनाथां तदा कन्यां जग्राह मुनिसत्तमः ॥ पुपोष स्थूलकेशस्तु नाम्ना चक्रे प्रमद्वराम् ॥४८॥ सा काले यौवनं प्राप्ता सर्व लक्षणसंयुता ॥ रुरुर्दृष्ट्वाऽथ तां बालां कामबाणार्दितो ह्यभूत् ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीय स्कंधेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥ परीक्षिदुवाच ॥ कामार्तः स मुनिर्गत्वा रुरुस्सुप्तो निजाश्रमे ॥ पिता पप्रच्छ दीनं तं किं रुरो विमना असि ॥ १ ॥

आश्रममें आकर इसने उसका त्याग किया, वह त्रिलोक सुन्दरी कन्या नदीके किनारे त्यागी हुई ॥ ४७ ॥ मुनिने उस अनाथ कन्याको देखकर ग्रहण किया और उसकी स्थूलकेशने पालना की उसका प्रमद्वरा नाम रक्खा ॥ ४८ ॥ समयपर वह सब लक्षणोंसे सम्पन्न युवा हुई रुरु उसको देखकर कामबाणसे पीडित हुए ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां द्वितीयस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ परीक्षित् बोले, कामार्त होकर वे मुनि अपने आश्रममें पड रहे; तब पिता पूछने लगे, हे रुरो ! तुम किस कारणसे विमन हो रहे हो ? ॥ १ ॥

तब वे अति कामसे व्याकुल हो बोले—स्थूलकेशके आश्रममें एक प्रमद्वरा कन्या है वह मेरी भार्या होयह बात है ॥ २ ॥ तब प्रमतिने स्थूलकेश मुनिके निकट जाकर भाषणसे मोहित करप्रसन्न होनेपर कन्याकी याचना की ॥ ३ ॥ स्थूलकेशने बचन दिया कि, अच्छे मुहूर्तमें प्रदान करेंगे और वनमें विवाहके निमित्त संभार रचना की ॥ ४ ॥ प्रमति और स्थूलकेश दोनों विवाहको उद्यत हुए और तपोवनमें वे महात्मा कार्यको उद्यत हुए ॥ ५ ॥ इस समय उस सुबोधिनी कन्याको आँगनमें सो जानेपर सर्पने चरणमें डसलिया ॥ ६ ॥ सर्पके काटते ही वह वरांगना मृतक हुई, प्रमद्वराको मरी देखकर बड़ा कोलाहल हुआ ॥ ७ ॥ सब मुनि मिलकर शोकाकुल होने लगे और उस भूमिपर पड़ी देख उसका पिता बड़ा दुःखी हुआ ॥ ८ ॥ और वह तेजसे दीप्यमान होकर भी रोने लगा,

स तमाहातिकामार्तः स्थूलकेशस्य चाऽऽश्रमे ॥ कन्या प्रमद्वरा नाम सा मे भार्या भवेदिति ॥ २ ॥ स गत्वा प्रमतिस्तूर्णं स्थूलकेशं महामुनिम् ॥ प्रमुह्य सुमुखं कृत्वा ययाचे तां वराननाम् ॥३॥ ददौ वाचं स्थूलकेशः प्रदास्यामि शुभे ऽहनि ॥ विवाहार्थं च संभारं रचयामासतुर्वने ॥४॥ प्रमतिः स्थूलकेशश्च विवाहार्थं समुद्यतौ ॥ बभूवतुर्महात्ममानौ समीपस्थौ तपोवने ॥५॥ तस्मिन्नवसरे कन्या रममाणा गृहांगणे ॥ प्रसुप्तं पन्नगं पादेनास्पृशच्चारुलोचना ॥ ६ ॥ दष्टा तु पन्नगे नाथ साममार वरांगना ॥ कोलाहलस्तदा जातो मृतां दृष्ट्वा प्रमद्वराम् ॥ ७ ॥ मिलिता मुनयः सर्वे चुक्रुशुः शोकसंयुताः ॥ भूमौ तां पतितां दृष्ट्वा पिता तस्याऽतिदुःखित ॥ ८ ॥ रुरोद विगतप्राणां दीप्यमानां सुतेजसा ॥ रुरुः श्रुत्वा तदाऽऽक्रंदन्दर्शनार्थं समागतः ॥ ९ ॥ ददर्श पतितां तत्र सजीवामिव कामिनीम् ॥ रुदंतं स्थूलकेशं च दृष्ट्वाऽन्यानृषिसत्तमान् ॥१०॥ रुरुः स्थानाद्बहिर्गत्वा रुरोद विरहाकुलः ॥ अहो दैवेन सर्पोऽयं प्रेषितः परमाद्भुतः॥११॥मम शर्मविघाताय दुःखहेतुरयं किल ॥किंरोमि क्व गच्छामि मृता मे प्राणवल्लभा ॥ १२ ॥ न वै जीवितुमिच्छामि वियुक्तः प्रिययाऽनया ॥ नालिंगिता वरारोहा न मया चुंबिता मुखे ॥ १३ ॥ न पाणिग्रहणं प्राप्तं मंदभाग्येन सर्वथा ॥ लाजहोमस्तथा चाग्नौ न कृतस्त्वनया सह ॥ १४ ॥

रुरु भी यह रोना सुनकर देखनेको आये ॥ ९ ॥ उस कामिनीको मरी होनेपर भी तेजसे सजीववत् देखने लगे और स्थूलकेश तथा दूसरे ऋषियोंको रोता देखकर ॥ १० ॥ रुरु उस स्थानसे बाहर जाकर रोने लगे. अहो ! मेरे निमित्त दैवने यह सर्प भेज दिया ॥ ११ ॥ यह मेरा कल्याण विनाश करनेको दुःखका कारण ही है मेरी प्रिया नष्ट हुई अब मैं क्या करूं कहां जाऊं ? ॥ १२ ॥ इस प्रियाके विना मैं जीनेकी इच्छा नहीं करता हूं न मैंने इसे आलिंगन किया, और न चुम्बन किया ॥ १३ ॥ मुझ मंदभाग्यने न इसका पाणिग्रहण किया, न इसके साथ अग्निमें लाजाहोम किया ॥ १४ ॥

इस मनुष्यताको धिक्कार है इस समय मेरे प्राण भी निर्गत होजायँ तो अच्छा परन्तु दुःखीको माँगनेपर मृत्यु प्राप्त नहीं होती ॥ १५ ॥ तब पृथ्वीमें दिव्य सुख किस प्रकार प्राप्त हो सकता है अब मैं घोर ह्रद वा अग्निमें पतित होकर अपने प्राण दूंगा ॥ १६ ॥ विष खाऊंगा वा गलेमें पाश डालकर प्राण दूंगा इस प्रकार रुरुविचार करके और विलाप करके ॥ १७ ॥ उस नदीके निकट स्थित हुआ विचारने लगा. इस कठिन आत्महत्या कर मरनेसे क्या फल होगा ॥ १८ ॥ मेरे पिता और माता बड़े दुःखी होंगे और त्यक्तजीवित मुझको देखकर दैव तो अवश्य तुष्ट होगा ॥ १९ ॥ और दूसरे शत्रु भी मेरे मरणसे सब प्रसन्न होंगे प्रियाका परलोकमें क्या उपकार होगा ॥ २० ॥ विरहसे पीडित होकर आत्मघात कर मरनेसे भी मुझ आत्मघातीको परलोकमें प्रिया

मानुष्यं धिगिदं कामं गच्छंत्वद्य ममासवः ॥ दुःखितस्य न वा मृत्युर्वांछितः समुपैति हि ॥ १५ ॥ सुखं तर्हि कथं दिव्यमाप्यते भुवि वांछितम् ॥ प्रपतामि ह्रदे घोरे पावके प्रपताम्यहम् ॥१६॥ विषमद्मि गले पाशं कृत्वा प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ विलप्यैवं रुरुस्तत्र विचार्य मनसा पुनः ॥ १७ ॥ उपायं चिंतयामास स्थितस्तस्मिन्नदीतटे ॥ मरणात्किं फलं मे स्यादात्महत्या दुरत्यया ॥ १८ ॥ दुःखितश्च पिता मे स्याज्जननी चाति दुःखिता ॥ दैवस्तुष्टो भवेत्कामं दृष्ट्वा मां त्यक्तजीवितम् ॥ १९ ॥ सर्वः प्रमुदितश्च स्यान्मत्क्षये नात्र संशयः ॥ उपकारः प्रियायाः कः परलोके भवेदपि ॥२०॥ मृते मय्यात्मघातेन विरहात्पीडितेऽपि च॥परलोके प्रिया साऽपि न मे स्यादात्मघातिनः ॥२१॥एतदर्थं मृते दोषा मयि नैवामृते पुनः॥विमृश्यैवं रुरुस्तत्र स्नात्वाऽऽचम्य शुचिः स्थितः॥२२॥ अब्रवीद्वचनं कृत्वा जलं पाणावसौ मुनिः ॥ यन्मया सुकृतं किंचित्कृतं देवार्चनादिकम् ॥ २३ ॥ गुरवः पूजिता भक्त्या हुतं जप्तं तपः कृतम् ॥ अधीतास्त्वखिला वेदा गायत्री संस्कृता यदि ॥ २४ ॥ रविराराधितस्तेन संजीवतु मम प्रिया ॥ यदि जीवेन्न मे कांता त्यजे प्राणानहं ततः ॥ २५ ॥

नहीं मिल सकती ॥ २१ ॥ इस कारण मरणमें दोष है और अमरणमें उसके परलोक निमित्त कार्य करनेसे दोष नहीं है इस प्रकार रुरु विचारकरस्नान कर आचमन करने उपरान्त ॥ २२ ॥ जलको हाथमें लेकर यह मुनि वचन बोला, जो कुछ मैंने सुकृत और देवार्चन किया है ॥ २३ ॥ भक्तिसे गुरुओंको पूजा आहुति देकर जप तप किया है वेद पढ़े और यदि गायत्रीका स्मरण किया है ॥ २४ ॥ और सूर्य देवकी आराधना की है तो मेरी प्रिया जीवित होजाय. जो मेरी प्रिया न जियेगी तो अभी मैं प्राणत्याग करूंगा ॥ २५ ॥

इस प्रकार देवाराधन कर भूमिपर वह जल डाल दिया. राजा बोले इस प्रकार उस भार्याके निमित्त रोकर विलाप करते हुएको ॥ २६ ॥ देवदूत आकर बोला, देवदूतने कहा--हे ब्रह्मन् ! साहस मत करो मृत हुई अब तुम्हारी प्रिया नहीं जीसकती ॥ २७ ॥ यह गंधर्व अप्सराकी सुता अब गतायु होगई, अब और शुभांगीकी इच्छा करो यह तो अविवाहित ही मृतक हुई है ॥२८॥ आप हीन बुद्धिसे क्या करते हो तुम्हारी इससे क्या प्रीति है ? रुरुने कहा हे देवदूत ? मैं दूसरी अंगनाको वरण नहीं करूंगा ॥ २९ ॥ जो यह न जियेगी तो मैं प्राणत्याग करूंगा राजाने कहा यह उसकी हठ देखकर देवदूत प्रसन्न हो ॥ ३० ॥ तथ्य और सत्य अतिमनोहर वचन कहने लगा. हे विप्रेन्द्र, जो पहले देवताओंने विधान कर रक्खा है वह उपाय सुनो ॥ ३१ ॥ अपनी आधी

इत्युक्त्वा तज्जलं भूमौ चिक्षेपाराध्य देवताः ॥ राजोवाच ॥ एवं विलपतस्तस्य भार्यया दुःखितस्य च ॥ २६ ॥ देवदूतस्तदाऽभ्येत्य वाक्यमाह रुरु तत ॥ देवदूत उवाच ॥ मा कार्षीः साहसं ब्रह्मन्कथं जीवेन्मृता प्रिया ॥२७॥ गतायुरेषा सुश्रोणी गंधर्वाप्सरसोः सुताः ॥ अन्यां कामय चार्वंगी मृतेयं चाविवाहिता ॥ २८ ॥ किं रोदिषि सुदुर्बुद्धे का प्रीतिस्तेऽनया सह ॥ रुरुरुवाच ॥ देवदूत न चान्यां वै वरिष्याम्यहमंगनाम् ॥ २९ ॥ यदि जीवेन्न जीवेद्वा मर्तव्यं चाधुना मया ॥ राजोवाच ॥ विदित्वेति हठं तस्य देवदूतो मुदाऽन्वितः॥३०॥ उवाच वचनं तथ्यं सत्यं चातिमनोहरम् ॥ उपायं शृणु विप्रेंद्र विहितं यत्सुरैः पुरा ॥ ३१ ॥ आयुषोऽर्धप्रदानेन जीवयाशु प्रमद्वराम् ॥ रुरुरुवाच ॥ आयुषोऽर्धं प्रयच्छामि कन्यायै नात्र संशयः ॥ ३२ ॥ अद्य प्रत्यावृत प्राणा प्रोत्तिष्ठतु मम प्रिया ॥ विश्वावसुस्तदा तत्र विमानेन समागतः ॥३३॥ ज्ञात्वा पुत्रीं मृतां चाशु स्वर्गलोकात्प्रमद्वराम् ॥ ततो गंधर्वराजश्च देवदूतश्च सत्तमः ॥ ३४ ॥ धर्मराजमुपेत्येदं वचनं प्रत्यभाषताम् ॥ धर्मराज रुरोः पत्नी सुता विश्वावसोस्तथा ॥ ३५ ॥ मृता प्रमद्वरा कन्या दष्टा सर्पेण चाधुना ॥ सा रुरोरा युषोऽर्धेन मर्तुकामस्य सूर्यज ॥ ३६ ॥

अवस्था देकर इस प्रियाको जिवाओ, रुरुने कहा इसमें सन्देह नहीं इसके निमित्त मैं अपनी आयु देता हूं ॥ ३२ ॥ अभी मेरी प्रिया प्राणयुक्त हो उठे तब उस समय विमानमें बैठकर विश्वावसु आये ॥ ३३ ॥ अर्थात् प्रमद्वराको मरी जानकर स्वर्गलोकसे आये, तब गन्धर्वराज और देवदूत ॥ ३४ ॥ धर्मराजके पास जाकर यह वचन बोले, हे धर्मराज ! रुरुकी पत्नी विश्वावसुकी सुता ॥ ३५ ॥ प्रमद्वरानामक सर्पके काटनेसे मृतक हुई है, हे धर्मराज ! वह प्राणत्यागकी इच्छावाले रुरुकी आधी आयुसे ॥ ३६ ॥

उसके व्रताचरणके प्रभावसे जीवित होजाय, धर्मराजने कहा, हे देवदूत ! वे विश्वावसुकी सुता कन्याकी यदि इच्छा करते हैं ॥ ३७ ॥ तो तुम जाकर रुरुकी आधी आयुसे उसको जीवित करो, राजा बोले, धर्मराज ऐसा कहनेपर दूतने जाकर प्रमद्वराको जिवाया ॥ ३८ ॥ और शीघ्रतासे रुरुको समर्पण किया, फिर अच्छे दिनमें रुरुने उसके साथ विवाह किया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार उपायके योगसे उस मरी हुई को फिर उज्जीवित किया इससे मंत्र सर्वथा शास्त्रसम्मत उपाय करना चाहिये ॥ ४० ॥ प्राणरक्षामें विधिपूर्वक मणि मंत्र औषधी करनी. मंत्रियोंसे ऐसा कहकर राजाने विधिपूर्वक रक्षकोंकी कल्पना करके ॥ ४१ ॥ सतखण्डे महलको कराकर राजा परीक्षित् मंत्रियोंसहित वहां स्थित हुए ॥ ४२ ॥ वहां रक्षा करनेको मणिमंत्रधारी शूरोंको नियुक्त किया और फिर

समुत्तिष्ठतु तन्वंगी व्रतचर्याप्रभावतः ॥ धर्म उवाच ॥ विश्वावसुसुतां कन्यां देवदूत यदीच्छसि ॥ ३७ ॥ ऊत्तिष्ठत्वायुषोऽर्धेन रुरुं गत्वा त्वमर्पय ॥ राजोवाच ॥ एवमुक्तस्ततो गत्वा जीवयित्वा प्रमद्वराम् ॥ ३८ ॥ रुरोः समर्पयामास देवदूतस्त्वरान्वितः ॥ ततः शुभेऽह्नि विधिना रुरुणाऽपि विवाहिता ॥ ३९ ॥ इत्थं चोपाययोगेन मृताऽप्युज्जीविता तदा ॥ उपायस्तु प्रकर्तव्यः सर्वथा शास्त्रसंमतः ॥ ४० ॥ मणिमंत्रोषधीभिश्च विधिवत्प्राणरक्षणे ॥ इत्युक्त्वा सचिवान्राजा कल्पयित्वा सुरक्षकान् ॥ ४१ ॥ कारयित्वाऽथ प्रासादं सप्तभूमि कमुकमुत्तमम् ॥ आरुरोहोत्तरासूनुः सचिवैः सह तत्क्षणम् ॥ ४२ ॥ मणिमंत्रधराः शूराः स्थापितास्तत्ररक्षणे ॥ प्रेषयामास भूपालो मुनिं गौरमुखं ततः ॥४३॥ प्रसादार्थं सेवकस्य क्षमस्वेति पुनः पुनः ॥ ब्राह्मणान्सिद्धमंत्रज्ञान्रक्षणार्थमितस्ततः ॥४४॥ मंत्रिपुत्र स्थितस्तत्र स्थापयामास दंतिनः ॥ न कश्चिदारुहेत्तत्र प्रासादे चाति रक्षिते ॥ ४५ ॥ वातोऽपि न चरेत्तत्र प्रवेशे विनिवार्यते ॥ भक्ष्यभोज्यादिकं राजा तत्रस्थश्च चकार सः ॥ ४६ ॥ स्नानसंध्यादिकं कर्म तत्रैव विनिवर्त्य च ॥ राजकार्याणि सर्वाणि तत्रस्थश्चाकरोन्नृपः ॥ ४७ ॥

राजाने गौरमुख मुनिको ऋषिके आश्रममें प्रेषण किया कि, मुझ सेवकका अपराध क्षमा करो. और मंत्रसिद्धिवाले ब्राह्मणोंको रक्षामें नियुक्त किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ मंत्रिपुत्रने वहां स्थित होकर दन्तियोंको स्थापन किया कि, इस रक्षित महलपर कोई भी न आने पावे ॥ ४५ ॥ बहुत क्या पवनका भी प्रवेश कठिनतासे था ! राजाने वहीं स्थित होकर भक्ष्य भोज्यादि किया ॥ ४६ ॥ स्नान संध्यादि कर्म भी वहीं निवृत्त करके वहीं स्थित हुआ. राजा सब राजकाज करता था ॥ ४७ ॥

और मन्त्रियोंसे सम्मति करता दिन गिनता था. उसी समय मंत्रका ज्ञाता कोई कश्यपनाम ब्राह्मण ॥ ४८ ॥ राजाके शापका वृत्तान्त श्रवण करता हुआ. वह धनकी इच्छासे विचार करने लगा ॥ ४९ ॥ वहांको चलना उचित है, जहां वह शापित राजा विद्यमान है ऐसी मति करके वह ब्राह्मण अपने घरसे निकलकर मार्गमें आया ॥ ५० ॥ यह कश्यपजी मंत्रके ज्ञाता विद्वान् धनकी इच्छा किये थे ॥ ५१ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सूतजी बोले; जिस दिन कश्यपजी घरसे चले उसी दिन उस नृपश्रेष्ठको शापित जानकर राजाके पासको पुरुषोत्तम तक्षक चले ॥ १ ॥ वृद्ध ब्राह्मणके रूपसे मार्गमें प्राप्त हुए और राजाके पास जाते कश्यपको मार्गमें देखा ॥ २ ॥ उस मंत्रवादी ब्राह्मणसे तक्षकने पूँछा कि आप कौन हो !

मंत्रिभिः सह संमंत्र्य गणयन्दिवसानपि ॥ कश्चिच्चकश्यपो नाम ब्राह्मणो मंत्रिसत्तमः ॥ ४८ ॥ शुश्राव च तथा शापं प्राप्तं राज्ञा महात्मना ॥ स धनार्थी द्विजश्रेष्ठः कश्यपः समचिंतयत् ॥ ४९ ॥ व्रजामि तत्र यत्रास्ते शप्तो राजा द्विजेन ह ॥ इति कृत्वा मतिंविप्रः स्वगृहान्निःसृतः पथि ॥ ५० ॥ कश्यपो मंत्रविद्विद्वान्धनार्थी मुनिसत्तमः ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ तस्मिन्नेव दिने नाम्ना तक्षकस्तं नृपोत्तमम् ॥ शप्तं ज्ञात्वा गृहात्तूर्णं निःसृतः पुरुषोत्तमः ॥ १ ॥ वृद्धब्राह्मणवेषेण तक्षकः पथि निर्गतः ॥ अपश्यत्कश्यपं मार्गे व्रजंतं नृपतिं प्रति ॥ २ ॥ तमपृच्छत्पन्नगोऽसौ ब्राह्मणं मंत्रवादिनम् ॥ क्व भवांस्त्वरितो याति किं च कार्यं चिकीर्षति ॥ ३ ॥ कश्यप उवाच ॥ परीक्षितं नृपश्रेष्ठं तक्षकश्च प्रधक्ष्यति ॥ तत्राहंत्वरितो यामि नृपं कर्तुमपज्वरम् ॥ ४ ॥ मंत्रोऽस्ति मम विप्रेंद्र विषनाशकरः किल ॥ जीवयिष्याम्यहं तं वै जीवितव्येऽधुना किल ॥ ५ ॥ तक्षक उवाच ॥ अहं स पन्नगो ब्रह्मंस्तं धक्ष्यामि महीपतिम् ॥ निर्वतस्व न शक्तस्त्वं मया दष्टं चिकित्सितुम् ॥ ६ ॥ कश्यप उवाच ॥ अहं दष्टं त्वया सर्प नृपं शप्तं द्विजेन वै ॥ जीवयिष्याम्यसंदेहं कामं मंत्रबलेन वै ॥ ७ ॥

शीघ्रतासे कहां जाते हो ! क्या करनेकी इच्छा है ॥ ३ ॥ ब्राह्मण बोला, नृपश्रेष्ठ परीक्षित्को तक्षक काटेगा, सो मैं राजाको अच्छा करनेको शीघ्र जाता हूं ॥ ४ ॥ हे विप्रेन्द्र ! मेरे पास विषनाश करनेवाला मंत्र है सो आयुष्य होनेपर मैं अवश्य उसको जीवित करूंगा ॥ ५ ॥ तक्षकने कहा, हे ब्राह्मण ! तक्षक मैं ही हूँ उस राजाको काटूंगा मेरे काटेकी तुम चिकित्सा नहीं कर सकते ॥ ६ ॥ कश्यपने कहा, हे ब्राह्मण ! मैं ब्राह्मणसे शापित उस राजाको मंत्रके बलसे अवश्य जिवाऊंगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥

तक्षकने कहा, यदि तुम हमारे काटे हुएराजाको जिवानेको जाते हो तो हे विप्र ! मुझे अपनी मंत्रशक्तिका बल दिखलाइये ॥ ८ ॥ मैं अभी इस न्यग्रोधके वृक्षको काटता हूं.कश्यपने कहा काट नेकी कौन कहे तुम्हारे भस्म कियेको भी सजीव कर सकता हूं ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, तब पन्नगराजने उस वृक्षको काटकर भस्मकर दिया और कहा कि, हे कश्यप ! अब इसको जिवाओ ॥ १० ॥ उस वृक्षको पन्नगके विषाग्निसे भस्म देखकर सब भस्म लेकर कश्यपजी कहने लगे ॥ ११ ॥ हे सर्पश्रेष्ठ ! मेरे मंत्रका बल देखो कि मैं इस न्यग्रोध वृक्षको तुम्हारे देखते २ सजीव करता हूं ॥ १२ ॥ ऐसा कह मंत्रज्ञाता कश्यपने जल लेकर वह मंत्र पढा जल उस भस्मराशिपर त्याग किया ॥ १३ ॥ उसके सेचन करते ही वह न्यग्रोध ज्योंका त्यों होगया उस वृक्षको सजीव देख

तक्षक उवाच ॥ यदि त्वं जीवितुं यासि मया दष्टं नृपोत्तमम् ॥ मंत्रशक्तिबलं विप्र दर्शय त्वं ममानघ ॥ ८ ॥ धक्ष्याम्येनं च न्यग्रोधं विषदंष्ट्राभिरद्य वै ॥ कश्यप उवाच ॥ जीवयिष्ये त्वया दष्टं दग्धं वा पन्नगोत्तम ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ अदशत्पन्नगो वृक्षं भस्मसाच्च चकार तम् ॥ उवाच कश्यपं भूयो जीवयैनं द्विजोत्तम ॥ १० ॥ दृष्ट्वा भस्मीकृतं वृक्षं पन्नगेन विषाग्निना ॥ सर्वं भस्म समाहृत्यकश्यपो वाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥ पश्यमंत्रबलं मेऽद्य न्यग्रोधं पन्नगोत्तम ॥ जीवयाम्याद्य वृक्षं वै पश्यतस्ते महाविष ॥१२॥ इत्युक्त्वा जलमादाय कश्यपो मंत्रवित्तमः ॥ सिषेच भस्मराशिं तं मंत्रितेनैव वारिणा ॥ १३ ॥ तद्वारिसेचनाज्जातो न्यग्रोधः पूर्ववच्छुभः ॥ विस्मयं तक्षकः प्राप्तो दृष्ट्वा तं जीवितं नगम् ॥ १४ ॥ तमाह कश्यपं नागः किमर्थं ते परिश्रमः ॥ संपादयामि तं काम ब्रूहि वाडव वांछितम् ॥ १५ ॥ कश्यप उवाच ॥ वित्तार्थी नृपतिं मत्वा शप्तं पन्नग निःसृतः ॥ गृहादहं चोपकर्तुं विद्यया नृपसत्तमम् ॥१६॥ तक्षक उवाच ॥ वित्तं गृहाण विप्रेंद्र यावदिच्छसि पार्थिवात् ॥ ददामि स्वगृहं याहि सकामोऽहं भवाम्यतः॥ १७ ॥ सूत उवाच॥तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कश्यपः परमार्थवित् ॥ चिंतयामास मनसा किं करोमि पुनः पुनः ॥ १८ ॥

तक्षक बड़े विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ तब उस ब्राह्मणसे तक्षकने कहा यह तुम्हारा परिश्रम किस निमित्त है ! सो मैं उसको सम्पादन करूं; आप अपना मनोवांछित कहिये ॥ १५ ॥ कश्यपने कहा कि, हे सर्प ! राजाको शापित सुनकर इस अपनी विद्यासे उपकार करने और धन प्राप्त करनेके निमित्त आयाहूं ॥ १६ ॥ तक्षकने कहा, हे ब्रह्मन् ! जितना धन चाहिये यह आप ले जाइये और मैं भी अपना कार्य कर पूर्णमनोरथ हूंगा ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, परमार्थ ज्ञाता कश्यप यह उसके वचन सुनकर मनमें वारंवार विचारने लगा कि, मैं क्या करूं ! ॥ १८ ॥

यदि धन लेकर मैं घरको चला जाऊं तो इस लोभके आश्रयसे मेरी कीर्ति न होगी॥ १९ ॥ और राजाके जीवित होनेसे अचल कीर्ति होगी और अनेक प्रकारसे धनकी प्राप्ति और पुण्य भी होगा ॥ २० ॥ यशकी ही रक्षा करनी चाहिये यशके विना जीवनको धिक्कार है, कीर्तिके निमित्त रघुने ब्राह्मणको सर्वस्व दे दिया था ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्र और कर्णने बड़ी विस्तार युक्त कीर्ति पाई है इस कारण विषाग्निसे दग्ध होते राजाकी कैसे उपेक्षा करूँ ? ॥ २२ ॥ मेरे राजाको जिवा देनेमें सबको सुख होगा इसमें संदेह नहीं, अराजकतामें प्रजाका नाश होता है ॥ २३ ॥ प्रजा नाश का पाप राजाके मृतक होनेपर मुझे मिलेगा और धनके लोभसे जगत्में अपकीर्ति होगी ॥२४॥ यह मनमें विचारकर कश्यपने ध्यान किया तो जाना कि, राजाकी आयु ही समाप्त हो गई है ॥ २५ ॥ ध्यानसे

धनं गृहीत्वा स्वगृहं प्रयामि यद्यहं पुनः॥भविष्यति न मे कीर्तीर्लोके लोभ समाश्रयात् ॥ १९ ॥ जीवितेऽथ नृपश्रेष्ठे कीर्तिः स्यादचला मम ॥ धनप्राप्तिश्च बहुधा भवेत्पुण्यं च जीवनात् ॥ २० ॥ रक्षणीयं यशः कामं धिग्धनं यशसाविना ॥ सर्वस्वं रघुणा पूर्वं दत्तं विप्राय कीर्त्तये ॥ २१ ॥ हरिश्चंद्रेण कर्णेन कीर्त्यर्थं बहुविस्तरम् ॥ उपेक्षेयं कथं भूपं दह्यमानं विषाग्निना ॥ २२ ॥ जीवितेऽद्य मया राज्ञि सुखं सर्वजनस्य च ॥ अराजके प्रजानाशो भविता नात्र संशयः ॥ २३ ॥ प्रजानाशस्य पापं मे भविष्यति मृते नृपे ॥ अपकीर्तिश्च लोकेषु धनलोभाद्भविष्यति ॥ २४ ॥ इति संचिंत्य मनसा ध्यानं कृत्वा स कश्यपः ॥ गतायुषं च नृपतिं ज्ञातवान्बुद्धिमत्तरः ॥ २५ ॥ आपन्नमृत्युं राजानं ज्ञात्वा ध्यानेन कश्यपः ॥ गृहं ययौ स धर्मात्मा धनमादाय तक्षकात् ॥ २७ ॥ निवर्त्य कश्यपं सर्पः सप्तमे दिवसे नृपम् ॥ हंतुकामो जगामाशु नगरं नागसाह्वयम् ॥२७॥ शुश्राव नगरस्यांते प्रासादस्थं परीक्षितम् ॥ मणिमंत्रौषधैः कामं रक्ष्यमाणमतंद्रितम् ॥ २८ ॥ चिंताविष्टस्तदा नागो विप्रशापभयाकुलः ॥ चिंतयामास योगेन प्रविशेयं गृहं कथम् ॥ २९ ॥ वंचयामि कथं चैनं राजानं पापकारिणम् ॥ विप्रशापाद्धतं मूढं विप्रपीडाकरं शठम् ॥ ३० ॥

राजाको मृत्यु मुखमें पतित देखकर वह महात्मा तक्षकसे धन लेकर घरको चला गया ॥ २६ ॥ इस प्रकार कश्यपको लौटा कर सातवें दिन तक्षक राजाके मारनेकी इच्छासे हस्तिनापुरमें आया ॥२७॥ नगरके निकट ही सुना कि, राजा प्रसादके ऊपर स्थित हैं, मणि मंत्र और औषधियोंसेभली प्रकार रक्षित हैं ॥ २८ ॥ तब वह नाग विप्रशापके भयसे व्याकुल हो चिन्ताविष्ट हुआ कि, योगसे भी किस प्रकार इस घरमें प्रवेश करूं॥ २९ ॥ और पापकारी राजाको किस प्रकार वंचना करूँ ? जो विप्रशापसे हत और ब्राह्मणोंको पीडा करने वाला है ॥ ३० ॥

पाण्डव कुलके बीचमें ऐसा कोई भी न हुआ, जिसने तपस्वीके गलेमें मरा सर्प डाला हो ॥ ३१ ॥ विगर्हित कर्म करके कालके गतिको जानता हुआ भी वह राजा भवनमें रक्षकोंको नियत करके महलपर चढकर ॥ ३२ ॥ मृत्युको जीतनेके निमित्त निराकुल बैठा है, सो विप्रवाक्यसे प्रेरित मैं उसको किस प्रकारसे धर्षण कर सकता हूँ ? ॥ ३३ ॥ वह मंदात्मा दुर्निवार मृत्युको नहीं जानता है. इससे वह रक्षकोंको स्थापनकर मंदिरपर आनंद करता है ॥३४॥ यदि दैवने इसकी मृत्यु विधान की है तो क्या फिर कोटियत्नोंसे भी निवारण हो सकती है ? ॥ ३५ ॥ वह पाण्डववंशमें उत्पन्न होकर मृत्युको जानता हुआ भी जीवनमें मति करके निराकुल स्थित है ॥ ३६ ॥ इस समय तो इसको सर्वथा दान पुण्य करना चाहिये धर्मसे ही व्याधी दूर होती और आयु स्थित होती है ॥ ३७ ॥

पांडवानां कुले जातः कोऽपि नैतादृशो भवेत् ॥ तापसस्य गले येन मृतः सर्पो निवेशितः ॥ ३१ ॥ कृत्वा विगर्हितं कर्म जानन्कालगतिं नृपः ॥ रक्षकान्भवने कृत्वा प्रासादमभिगम्य च ॥ ३२ ॥ मृत्युं वंचयते राजा वर्ततेऽद्य निराकुलः ॥ तं कथं धक्षयिष्यामि विप्रवाक्येन चोदितः ॥३३॥ न जानाति च मंदात्मा मरणे ह्यनिवर्तनम् ॥ तेनासौ रक्षकान्स्थाप्य सौधारूढोऽद्य मोदिते ॥ ३४ ॥ यदि वै विहितो मृत्युर्दैवेनामिततेजसा ॥ स कथं परिवर्तेत कृतैर्यत्नैस्तु कोटिभिः ॥ ३५ ॥ पांडवस्य च दायादो जानन्मृत्युं गतं नृपः ॥ जीवने मतिमास्थाय स्थितः स्थाने निराकुलः ॥ ३६ ॥ दानपुण्यादिकं राजा कर्तुमर्हति सर्वथा ॥ धर्मेण हन्यते व्याधिर्येनाऽऽयुः शाश्वतं भवेत् ॥ ३७ ॥ नोचेन्मृत्युविधिं कृत्वा स्नानदानादिका क्रियाः ॥ मरणं स्वर्गलोकाय नरकायान्यथा भवेत् ॥ ३८ ॥ द्विजपीडाकृतं पापं पृथग्वाऽस्य च भूपतेः ॥ विप्रशापस्तथा घोर आसन्ने मरणे किल ॥ ३९ ॥ न कोऽपि ब्राह्मणः पार्श्वे य एवं प्रतिबोधयेत् ॥ वेधसा विहितो मृत्युरनिवार्यस्तु सर्वथा ॥ ४० ॥ इति संचिंत्य सर्पोऽसो स्वान्नागान्निकटे स्थितान् ॥ कृत्वा तापस वेषांस्तान्प्राहिणोत्सुभुजंगमान् ॥ ४१ ॥ फलमूलादिकं गृह्य राज्ञे नागोऽथ तक्षकः ॥ स्वयं च कीटरूपेण फलमध्ये ससार ह ॥ ४२ ॥

नहीं तो मृत्युकी विधिकरके स्नान दानादि क्रिया करके स्वर्ग लोकके निमित्त शरीर त्यागे, अन्यथा नरक होता है ॥ ३८ ॥ और द्विजपीडाका किया पाप और शाप यह दो इसको लगे हैं तथा घोर विप्रशाप लगनेसे अब यह आसन्न मरण ही है ॥ ३९ ॥ ऐसा कोई ब्राह्मण इसके समीप नहीं जो इसको समझावे, इसकी विधातासेविधान की हुई मृत्यु सर्वथा अनिवार्य है ॥४०॥ यह विचार उस सर्पने निकटमें स्थित अपने नागोंको तपस्वीका भेष बनाकर भेजा ॥४१॥ फलमूलादि राजाके निमित्त लेकर वे चले और तक्षक स्वयं कीटरूप धारण कर फलके मध्यमें प्रविष्ट हुआ ॥ ४२ ॥

तब वे नाग फल लेकर शीघ्रतामे चले और राजभवनमें प्राप्त हो महलके समीप स्थित हुए ॥ ४३ ॥ रक्षकोंने तपस्वियोंको देखकर उनकी चेष्टा जाननेकी इच्छा की ! उन्होंने कहा हम तपस्वी राजाको देखने आये हैं ॥ ४४ ॥ जो अभिमन्युका पुत्र वीरकुल दिवाकर है, उसके सुंदर दर्शनको अथर्वमन्त्रोंसे वृद्धि करनेको प्राप्त हुए हैं ॥४५॥ दर्शनके निमित्त मुनि आये हैं यह तुम राजासे निवेदन करो ! अभिषेक करने उपरान्त मिष्टफलादि देकर हम चले जायेंगे ॥४६॥ हमने कभी ब्राह्मणोंके निमित्त भरतकुलमें द्वाररक्षक नहीं देखे और तपस्वियोंको राजाका दर्शन प्राप्त न होना भी कहीं न सुना ॥ ४७ ॥ हम वहां जायँगे जहां राजा परी क्षित् है, हम उसको आशीर्वाद दे आज्ञा देकर चले जायँगे ॥४८॥ सूतजी बोले रक्षक तपस्वियोंके इस प्रकार वचन सुनकर उन ब्राह्मणोंसे

निर्गतास्ते तदा नागाः फलान्यादाय सत्वराः ॥ ते राजभवनं प्राप्य स्थिताः प्रासादसन्निधौ ॥ ४३ ॥ रक्षकास्तापसान्दृष्ट्वा पप्रच्छुस्तच्चिकीर्षितम् ॥ ऊचुस्ते भूपतिं द्रष्टुं प्राप्ताः स्मोऽद्य तपोवनात् ॥ ४४ ॥ अभिमन्युसुतं वीरं कुलार्कं चारुदर्शनम् ॥ परिवर्धयितुं प्राप्ता मंत्रैराथर्वणैस्तथा ॥ ४५ ॥ निवेदयध्वं राजानं दर्शनार्थागतान्मुनीन् ॥ कृत्वाऽभिषेकान्यास्यामो दत्त्वा मिष्टफलानि च ॥ ४६ ॥ भारतानां कुले क्वाऽपि न दृष्टा द्वाररक्षकाः॥ न श्रुतंतापसानां तु राज्ञोऽसंदर्शनं किल ॥ ४७ ॥ आरोहामो वयं तत्र यत्र राजा परीक्षितः ॥ आशीर्भिर्वर्धयित्वैनं दत्ताज्ञाः प्रव्रजामहे ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां तापसानां तु रक्षकाः ॥ प्रत्यूचुस्तान्द्विजान्मत्वा निदेशं भूपतेर्यथा ॥ ४९ ॥ नाद्य वो दर्शनं विप्र राज्ञः स्यादिति नो मतिः ॥ श्वः सर्वतापसैरत्र त्वागंतव्यं नृपालये ॥ ५० ॥ अनारोहस्तु प्रासादो विप्राणां मुनिसत्तमाः ॥ विप्रशापभयाद्राज्ञां विहितोऽस्ति न संशयः ॥ ५१ ॥ तदोचुस्तानथो विप्राः फलमूलजलानि च ॥ विप्राशिषश्च राज्ञेऽथ ग्राहयंतु सुरक्षकाः ॥ ५२ ॥ ते गत्वा नृपतिं प्रोचुस्तापसानागताञ्जनाः ॥ राजोवाचऽनयध्वं वै फलमूलादिकं च यत् ॥ ५३ ॥ पृच्छध्वं तापसान्कार्यं प्रातरागमनं पुनः ॥ प्रणामं कथयध्वं मे नाद्य संदर्शनं मम ॥ ५४ ॥

राजाकी आज्ञा सुनाते हुए बोले ॥ ४९ ॥ हे ब्राह्मणो ! हम जानते हैं आज तो राजाका दर्शन नहीं होगा, प्रभात काल आप सब कोई आना॥ ५० ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! इस समय महलपर जाना उचित नहीं है; राजा विप्रशापसे रक्षित हो रहा है ॥५१॥ तब उन्होंने कहा हे रक्षको ! यह फल मूल और आशीर्वचन राजासे सुना दो ॥५२॥ तब वे द्वारपाल राजासे सब बात कहते हुए. राजाने कहा उनके फल मूल ले आओ॥५३॥ और उनसे कार्य पूंछना और कहना कल प्रभात समय फिर आना, और मेरा, प्रणाम कर कहना आज दर्शन नहीं होगा ॥ ५४ ॥

वे जाकर फलमूलादि ले आये और सादर राजाको समर्पण कर दिये ॥ ५५ ॥ उन विप्रवेषधारी नागोंके चले जानेपर राजा वे फल लेकर मंत्रियोंसे बोले ॥ ५६ ॥ हे सुहृदो ! इन फलोंको भक्षण करो और इनमेंसे एक फल मैं भी भक्षण करता हूँ ॥ ५७ ॥ यह कहकर उत्तराकुमार वे फल देकर और एक फल हाथमें लेकर उस पके फलको स्वयं तोड़ने लगे ॥ ५८ ॥ उस विदारित फलमें एक बडा छोटा कृमि पाया उस कृष्णनयन ताम्रवर्णको राजाने स्वयं देखा ॥ ५९ ॥ उसको देखकर राजाने विस्मित हो मंत्रियोंसे कहा कि, अब सूर्य अस्त होता है, अब मुझे तक्षकके विषसे भय नहीं है ॥ ६० ॥ अब मैं उस शापको अंगीकार करता हूं. ब्राह्मणका वचन मिथ्या न हो इस कारण इसी कीटसे कटवाये लेता हूं ऐसा कहकर राजाने उसे ग्रीवामें

ते गत्वाऽथ समादाय फलमूलादिकं च यत् ॥ राज्ञे समर्पयामासुर्बहुमानपुरः सरम् ॥ ५५ ॥ गतेषु तेषु नागेषु विप्रवेषावृतेषु च ॥ फलान्यादाय राजाऽसौ सचिवानिदमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ सुहृदो भक्षयंत्वद्य फलान्येतानि सर्वशः ॥ अद्म्यहं चैकमेतद्धि फलं विप्रार्पितं महत् ॥ ५७ ॥ इत्युक्त्वा तत्फलं दत्त्वा सुहृद्भ्यश्चोत्तरासुतः ॥ करे कृत्वा फलं पक्वं ददार नृपतिः स्वयम् ॥ ५८ ॥ विदारितं फलं राज्ञा तत्र क्रिमिरभूदणुः ॥ स कृष्णनयनस्ताम्रो दृष्टो भूपतिना स्वयम् ॥ ५९ ॥ तं दृष्ट्वा नृपतिः प्राह सचिवान्विस्मितानथ ॥ अस्तमभ्येति सविता विषादद्य न मे भयम् ॥ ६० ॥ अंगीकरोमि तं शापं कृमिको मां दशत्वयम् ॥ एवमुक्त्वा स राजेंद्रो ग्रीवायां संन्यवेशयत् ॥ ६१ ॥ अस्तं याते दिवानाथे धृतः कंठेऽथ कीटकः ॥ तक्षकस्तु तदा जातः कालरूपो भयानकः ॥ ६२ ॥ राजा संवेष्टितस्तेन दष्टश्चापि महीपतिः ॥ मंत्रिणो विस्मयंप्राप्ता रुरुदुर्भृशदुःखिता ॥ ६३ ॥ घोररूपमहिं वीक्ष्य दुद्रुवुस्ते भयार्दिताः ॥ चुक्रुशुः रक्षकाः सर्वे हाहाकारो महानभूत् ॥ ६४ ॥ वेष्टितो भोगिभोगेन विनष्टबहुपौरुषः ॥ नोवाच नृपतिः किंचिन्न चचालोत्तरासुतः ॥ ६५ ॥

बैठाया ॥ ६१ ॥ सूर्यके अस्त होनेपर राजाने उस कीटको ग्रीवा पर रक्खा. उसी समय वह कालरूप भयानक तक्षक होगया ॥ ६२ ॥ उसने राजाको संवेष्टनकर काटलिया और मंत्री विस्मयको प्राप्त हो दुःखसे रुदन करने लगे ॥ ६३ ॥ घोररूप सर्पको देखकर वे भयसे भागे और सब रक्षक पुकारे, महा हाहाकार होने लगा ॥ ६४ ॥ सर्पके शरीरसे वेष्टित होनेके कारण राजाका बहुत पुरुषार्थ न रहा, राजा उस समय कुछ न बोला और न धैर्यसे चलायमान हुआ ॥ ६५ ॥

तब तक्षकके मुखसे विषैली घोर अग्नि प्रगट हुई राजा तत्काल प्रज्वलित हो प्राण रहित हुआ ॥ ६६ ॥ इस प्रकार राजाका जीवन समाप्त कर तक्षक आकाशको गया, मनुष्योंने उस समय उसको ऐसे देखा मानो जगत्को दग्ध कर देगा ॥ ६७ ॥ जले वृक्षके समान प्राणरहित हो राजा पतित हुआ, राजाको मृत देख वहांके सब मनुष्य रुदन करने लगे ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ सूतजी बोले, राजाको गतप्राण और पुत्रको बालक देखकर परलोक क्रियाके निमित्त मंत्री रुदन करने लगे ॥ १ ॥ उस राजाके दग्धीभूतप्राय भस्म हुऐ देहको गंगाके किनारे अगर चंदनकी चितामें रखते हुए ॥ २ ॥ दुर्मरणके कारण प्रथम पुरोहितोंने मंत्रोंसे उसकी और्ध्वदैहिक क्रिया की ॥ ३ ॥ ब्राह्मणोंको दान और

उत्थिताऽग्निशिखा घोरा विषजा तक्षका ननात् ॥ प्रजज्वाल नृपं त्वाशु गतप्राणं चकार ह ॥ ६६ ॥ हत्वाऽऽशु जीवितं राज्ञस्तक्षको गगने गतः ॥ जगद्दग्धं तु कुर्वाणं ददृशुस्तं जना इह ॥ ६७ ॥ स पपात गतप्राण राजा दग्ध इव द्रुमः ॥ चुक्रुशुश्च जनाः सर्वे मृतं दृष्ट्वा नराधिपम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे परीक्षिन्मरणं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ गतप्राणं तु राजानं बालं पुत्रं समीक्ष्य च ॥ चक्रुश्च मंत्रिणः सर्वे परलोकस्य सत्क्रियाः ॥ १ ॥ गंगातीरे दग्धदेहं भस्मप्रायं महीपतिम् ॥ अगुरुभि श्चाभियुक्तायां चितायामध्यरोपयन् ॥ २ ॥ दुर्मरेण मृतस्यास्य चक्रुश्चैवोर्ध्वदैहिकीम् ॥ क्रियां पुरोहितास्तस्य वेदमंत्रैर्विधानतः ॥ ३ ॥ ददुर्दानानि विप्रेभ्यो गाः सुवर्णं यथोचितम् ॥ अन्नं बहुविधं तत्र वस्त्राणि विविधानि च ॥ ४ ॥ सुमुहूर्ते सुतं बालं प्रजानां प्रीति वर्धनम् ॥ सिंहासने शुभे तत्र मंत्रिणः संन्यवेशयन् ॥ ५ ॥ पौरजानपदा लोकाश्चक्रुस्तं नृपतिं शिशुम् ॥ जनमेजयनामानं राजलक्षणम् संयुत ॥ ६ ॥ धात्रेयी शिक्षयामास राजचिह्नानि सर्वशः ॥ दिने दिने वर्धमानः स बभूव महामतिः ॥ ७ ॥ प्राप्ते चैकादशे वर्षे तस्मै कुलपुरोहितः ॥ यथोचितां ददौ विद्यां जग्राह स यथोचिताम् ॥ ८ ॥

सुवर्णकी गाय देते हुए बहुत प्रकारके अन्न और वस्त्र दिये ॥ ४ ॥ और अच्छे मुहूर्तमें प्रजाके प्रसन्न करने वाले बालक राजकुमारको सिंहासनपर बैठाया ॥ ५ ॥ और पुर देशकी प्रजाने उस बालकको राजामाना, इसका जनमेजय नाम इसी कारण हुआ कि, यह राजा लक्षणसे युक्त था ॥ ६ ॥ धायने इसको सब राज चिन्होंकी शिक्षा दी थी दिन २ वह राजा वृद्धिको प्राप्त होने लगा; और बुद्धिमान् हुआ ॥ ७ ॥ ग्यारहवें वर्षमें पुरोहितने उसको सब विद्या सिखाई और उसने सीख ली ॥ ८ ॥

कृपाचार्यने इसको पूर्ण धनुर्वेद सिखाया जैसे अर्जुनको द्रोणने कर्णको परशुरामने सिखाया था ॥ ९ ॥ तब यह विद्याको प्राप्त होकर बलवान् दुरतिक्रमणीय हुआ धनुर्वेद और वेदका पारगामी हुआ ॥ १० ॥ धर्मशास्त्रके अर्थमें कुशल सत्यवादी जितेन्द्रिय धर्म पुत्रके समान राज्य करने लगा ॥ ११ ॥ उस समय सुवर्णवर्माक्ष काशीका राजा अपनी वपुष्टमा कन्या इसके निमित्त देता हुआ ॥ १२ ॥ उसको प्राप्त होकर जनमेजय प्रसन्न हुआ जैसे काशीराजकीमनोहर कन्याको प्राप्त होकर राजा ॥ १३ ॥ विचित्रवीय प्रसन्न हुआ था, सुभद्राको प्राप्त हो अर्जुन प्रसन्न हुआ था, इसी प्रकार राजा वन उपवनोंमें विहार करने लगा

धनुर्वेदं कृपः पूर्णं ददावस्मै सुसंस्कृतम् ॥ अर्जुनाय यथा द्रोणः कर्णाय भार्गवो यथा ॥ ९ ॥ सम्प्राप्तविद्यो बलवान्बभूव दुरतिक्रमः ॥ धनुर्वेदे तथावेदे पारगः परमार्थवित् ॥ १० ॥ धर्मशास्त्रार्थकुशलः सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ चकार राज्यं धर्मात्मा पुरा धर्मसुतो यथा ॥ ११ ॥ ततः सुवर्णवर्माक्षो राजाकाशिपतिः किल ॥ वपुष्टमां शुभां कन्यां ददौ परीक्षिताय च ॥ १२ ॥ स तां प्राप्यसितापांगी मुमुदे जनमेजयः ॥ काशिराजसुतां कांतां प्राप्य राजा यथा पुरा ॥ १३ ॥ विचित्रवीर्यो मुमुदे सुभद्रां च यथाऽर्जुनः ॥ विजहार महीपालो वनेषूपवनेषु च॥ १४ ॥ तया कमलपत्राक्ष्या शच्या शतक्रतुर्यथा ॥ प्रजास्तस्य सुसंतुष्टा बभूवुः सुखलालिता ॥ १५ ॥ मंत्रिणः कर्म कुशलाश्चक्रुः कार्याणि सर्वशः ॥ एतस्मिन्नेवकाले तु मुनिरुत्तंकनामकः ॥ १६ ॥ तक्षकेण परिक्लिष्टो हस्तिनापुरमभ्यगात् ॥ वैरस्यापचितिं कोऽस्य प्रकुर्यादिति चिंतयन् ॥ १७ ॥ परीक्षितसुतं मत्वा तं नृपं समुपागतः ॥ कार्याकार्यं न जानासि समये नृपसत्तम ॥ १८ ॥

॥१४॥ इस प्रकार उस कमल लोचनीसे प्रसन्न हुआ जैसे शचीसे इन्द्र प्रसन्न होता है उस राजाके न्यायसे प्रजा संतुष्ट हुई ॥१५॥ कार्य कुशल मंत्री सब कार्य करने लगे उसी समय एक उतंकनामक मुनि ॥ १६ ॥ तक्षकसे दुःखी होकर हस्तिनापुरमें आया कि तक्षकने जो मुझे दुःख दिया इसके वैरका निराकरण कौन करे ? यह विचारता हुआ हस्तिनापुरमें आया ॥ १७ ॥ वह परीक्षित सुतको राजा मानकर उनके समीप आया, और कहा हे राजन् ! समय उपस्थित होनेपर तुम इसके कार्य अकार्यको नहीं जानते ॥ १८ ॥

१ जिस समय यह गुरुके यहां पढते थे तब गुरुकी स्त्रीने कहा मुझे अमुक रानीके कुण्डल ला दो यह उस रानीसे कुण्डल लाये मार्गमें तक्षक वह कुण्डल हरण कर लेगया तब इनको पाताल जानेसे बड़ी कठिनतासे कुण्डल प्राप्त हुए उस दिनसे सर्पोंसे वैर मानने लगे।

अकर्तव्यको करते और कर्तव्यको क्यों नहीं करते हो ? अमर्ष रहित निरुद्यम तुमसे मैं क्या कहूं ? ॥ १९ ॥ वैरसे शून्य शास्त्रज्ञान रहित बाल चेष्टासे युक्तहो जनमेजयने कहा, कैसा वैर ? यह बात मेरे जाननेमें न आई और मैंने किस बातका प्रतीकार नहीं किया ! ॥ २० ॥ हे महाभाग ! सो कहिये जिसको मैं सम्पादन करूं. उत्तंक बोले, हे राजन् ! आपके पिताको दुरात्मा तक्षकने नष्ट किया ॥ २१ ॥ आप मंत्रियोंको बुलाकर अपने पिताके मरण वृतांतको जानो, सूतजी बोले, यह वचन सुन राजाने मंत्रिश्रेष्ठोंसे पूँछा ॥ २२॥ वे बोले, विप्रशापसे तक्षकके काटनेसे मृत हुए, जनमेजयने कहा मुनिका शाप ही पिताके मरणमें कारण है ॥ २३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! कहिये इसमें तक्षकका क्या दोष है ? उत्तंकने कहा जो राजाको आरोग्य करने आया था उस कश्यपको धन देकर तक्षकने लौटा

अकर्तव्यं करोष्यद्य अकर्तव्यं न करोषि च ॥ किंत्वां संप्रार्थयाम्यद्य गतामर्षं निरुद्यमम् ॥ १९ ॥ अवैरज्ञमतंत्रज्ञं बालचेष्टासमन्वितम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ किं वैरं न मया ज्ञातं न किं प्रतिकृतं मया ॥ २० ॥ तद्वद त्वं महाभाग करोमि यदनंतरम् ॥ उतंक उवाच ॥ पिताते निहतो भूप तक्षकेण दुरात्मना ॥ २१ ॥ मंत्रिणस्त्वं समाहूय पृच्छस्व पितृनाशनम् ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा पप्रच्छ मंत्रिसत्तमान् ॥ २२ ॥ ऊचुस्ते द्विजशापेन दष्टः सर्पेणवै मृतः ॥ जनमेजय उवाच ॥ शापोऽत्र कारणं राज्ञः शप्तस्य मुनिना किल ॥ २३ ॥ तक्षकस्य तु को दोषो ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥ उत्तंक उवाच ॥ तक्षकेण धनं दत्त्वा कश्यपः किन्निवारितः ॥ २४ ॥ न स किं तक्षको वैरी पितृहा तव भूपते ॥ भार्या रुरोः पुरा भूप दष्टा सर्पेण सा मृता ॥ २५ ॥ अविवाहिता तु मुनिना जीविता च पुनः प्रिया ॥ रुरुणापि कृता तत्र प्रतिज्ञा चातिदारुणा ॥ २६ ॥ यं यं सर्पं प्रपश्यामि तं तं हन्म्यायुधेन वै ॥ एवं कृत्वा प्रतिज्ञां स शस्त्रपाणी रुरुस्तदा ॥ २७ ॥ व्यचरत्पृथिवीं राजन्निघ्नन्सर्पान्यतस्ततः ॥ एकदा स वने घोरं डुंडुभं जरसाऽन्वितम् ॥ २८ ॥

दिया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! फिर वह आपके पिताके मारनेसे शत्रु क्यों नहीं ? वह तो शापसे काट ही लेता ब्राह्मणको निवृत्त क्यों किया ? हे राजन् ! पहले रुरुकी भार्या सर्पके काटनेसे मृतक हुई ॥ २५ ॥ और उस अविवाहिताको मुनिने अपनी आधी आयु देकर जीवित किया, और रुरुनेभी यह दारुण प्रतिज्ञा की कि ॥२६॥ जिस २ सर्पको देखूंगा आजसे उसी २ को मारूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करके यह शस्त्रपाणि रुरु ॥२७॥ सर्पोंको मारते पृथ्वीमें विचरने लगे, एक समय वह वनमें घोर जरायुक्त डुडुंभ अजगर सर्पको देखकर ॥ २८ ॥

दंड उठाय उसके सन्मुख हुए, और क्रोधसे उसपर प्रहार किया फिर तब सर्प बोला हे विप्र ! मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया फिर तुम मुझे क्यों मारते हो ? रुरु बोले, मेरीप्राण प्रिया सर्पके काटनेसे मरगई ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे सर्प ! तब मैंने दुःखित हो सर्पके मारनेकी प्रतिज्ञाकी अजगरने, कहा मैं तो नहीं काटता हूं काटनेवाले सर्प और होते हैं ॥ ३१ ॥ केवल शरीरके योगसे आप मुझे मारनेको योग्य नहीं हो सूतजी बोले उस सर्पकी मनोहर मानुषी वाणी सुनकर ॥ ३२ ॥ रुरुने पूछा तुम कौन हो ? कैसे अजगर हुए ? सर्पने कहा हे ब्राह्मण ! मैं भी पहले ब्राह्मण था और खेचर मेरे मित्र थे ॥ ३३ ॥ वह ब्राह्मण धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ सत्यवादी जितेन्द्रिय थे मैंने मूर्खतासे तृणका सर्प बनाय उनकी वंचना की ॥ ३४ ॥ वह अग्निहोत्रके स्थानमें स्थित हुए बड़े

अपश्यद्दंडमुद्यम्य हंतुं तं समुपाययौ ॥ अभ्यहन्तुषितोविप्रस्तमुवाचाथ डुंडुभः ॥ २९ ॥ नापराध्नोमि ते विप्र कस्मान्मामभिहंसि वै ॥ रुरुरुवाच ॥ प्राणप्रिया मे दयिता दष्टा सर्पेण सा मृता ॥ ३० ॥ प्रतिज्ञेयं तदा सर्प दुःखितेन मया कृता ॥ डुंडुभ उवाच ॥ नाहं दशामि तेऽन्ये वै ये दशंति भुजंगमाः ॥ ३१ ॥ शरीरसमयोगेन न मां हिंसितुमर्हसि ॥ उत्तंक उवाच ॥ श्रुत्वा तां मानुषीं वाणी सर्पेणोक्तां मनोहराम् ॥ ३२ ॥ रुरुः पप्रच्छ कोऽसि त्वं कस्माड्डुंडुभतां गतः ॥ सर्प उवाच ॥ ब्राह्मणोऽहं पुरा विप्र सखा मे खगमाभिधः ॥ ३३ ॥ विप्रो धर्मभृतां श्रेष्ठः सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ स मया वंचितो मौर्ख्यात्सर्पं कृत्वा च तार्णकम् ॥३४॥ भयं च प्रापितोऽत्यर्थमग्निहोत्रगृहे स्थितः ॥ तेन भीतेन शप्तोऽहं विह्वलेनातिवेपिना ॥ ३५ ॥ भव सर्पो मंदबुद्धे येनाहं धर्षितस्त्वया ॥ मया प्रसादितोऽत्यर्थं सर्पेणासौ द्विजोत्तमः ॥ ३६ ॥ मामुवाचाथ तत्क्रोधात्किंचिच्छांतिमवाप्य च ॥ रुरुस्ते मोचिता शापस्यास्य सर्प भविष्यति ॥ ३७ ॥ प्रमतेस्तु सुतो नूनमिति मां सोऽब्रवीद्वचः ॥ सोऽहं सर्पो रुरुस्त्वं च शृणु मे परमं वचः ॥ ३८ ॥ अहिंसां परमो धर्मो विप्राणां नात्र संशयः ॥ दया सर्वत्र कर्तव्या ब्राह्मणेन विजानता ॥ ३९ ॥

भयभीत हुए और उस विह्वल कंपायमान होते हुएने पीछे मुझे शाप दिया ॥ ३५ ॥ हे मंदबुद्धि ! तुमने हमारी वंचना की इससे तुम सर्प होजाओ, तब मैंने उनकी बड़ी प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ फिर कुछ शान्त होकर उन्होंने मुझसे कहा कि रुरु तुमको इस शापसे मुक्त करेगा ॥ ३७ ॥ वह प्रमतिका पुत्र रुरु होगा यह वचन मुझसे कहा सो मैं सर्प हूं तुम रुरु हो तो मेरा परम वचन सुनो ॥ ३८ ॥ इसमें सन्देह नहीं विप्रोंका अहिंसाही परम धर्म है ब्राह्मणोंको यथायोग्य सर्वत्र दयाही करनी चाहिये ॥ ३९ ॥

हे विप्रेन्द्र ! यज्ञसे अन्यत्र हिंसाकी सराहना नहीं है, उत्तंकने कहा तब यह ब्राह्मण सर्प योनिसे निर्मुक्त हुआ, और रुरुने ॥ ४० ॥ उसके शापका अन्तर करके हिंसाको त्यागकर उस मृतक होकर जीवित हुई बालासे विवाह कर ॥ ४१ ॥ सर्पोंके वैरके कारण उनका हिंसन किया, और हे राजन् ! तुम तो सर्पोंसे वैर त्याग किये हो ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! पिताके घातियोंसे भी वैर नहीं लेते, स्नान दानरहित होकर तुम्हारे पिताका शरीर अन्तरिक्षमें छूटा है ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! सर्पोंको मारकर उनका उद्धार करो जो पिताके वैरको नहीं जानता वह जीताही मृतक है ॥ ४४ ॥ जबतक तुम उनको न मारोगे तुम्हारे पिताकी दुर्गति रहेगी, हे राजन् ! भगवती यज्ञके बहानेसे आप ॥ ४५ ॥ पिताका वैर स्मरणकर सर्पसत्र करो. सूतजी बोले, राजा जनमेजय इस प्रकार

यज्ञादन्यत्र विप्रेन्द्र न हिंसा याज्ञिकी मता ॥ उत्तंक उवाच ॥ सर्पयोनेर्विनिर्मुक्तो ब्राह्मणोऽसौ रुरुस्ततः ॥ ४० ॥ कृत्वा तस्य च शापांतं परित्यक्तं च हिंसनम् ॥ विविहिता तेन बाला मृता संजीविता पुनः ॥ ४१ ॥ कदनं सर्वसर्पाणां कृतं वैरमनुस्मरन् ॥ त्वं तु वैरं समुत्सृज्य वर्तसे पन्नगेष्वथ ॥ ४२ ॥ विमन्युर्भरतश्रेष्ठ पितृघातनरेषु वै ॥ अंतरिक्षे मृतस्तातः स्नानदानविवर्जितः ॥ ४३ ॥ तस्योद्धारं च राजेन्द्र कुरु हत्वाऽथ पन्नगान् ॥ पितुर्वैरं न जानाति जीवन्नेव मृतो हि सः ॥ ४४ ॥ दुर्गतिस्ते पितुस्तावद्यावत्तान्न हनिष्यसि ॥ अंबामखमिषं कृत्वा कुरु यत्नं नृपोत्तम ॥ ४५ ॥ सर्पसत्रं महाराज पितुर्वैरमनुस्मरम् ॥ सूत उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा जन्मेजयस्तदा ॥ ४६ ॥नेत्राभ्यश्रुपातं च चकारातीव दुःखितः ॥ धिङ् मामस्तु सुदुर्बुद्धेर्वृथा मानकरस्य वै ॥ ४७ ॥ पिता यस्य गतिं घोरां प्राप्तः पन्नगपीडितः ॥ अद्याहं मखामारभ्य करोम्यपचितिं पितुः ॥ ४८ ॥ हत्वा सर्पानसंदिग्धो दीप्यमाने विभावसौ ॥ आहूय मंत्रिणः सर्वान्राजा वचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ कुर्वंतु यज्ञसंभारं यथाऽर्हं मंत्रिसत्तमाः ॥ गंगातीरे शुभां भूमिं मापयित्वा द्विजोत्तमैः ॥ ५० ॥ कुर्वंतु मंडपं स्वस्थाः शतस्तंभं मनोहरम् ॥ वेदी यज्ञस्य कर्तव्या ममाद्य सचिवाः खलु ॥ ५१ ॥

उसके वचन सुन ॥ ४६ ॥ बड़े दुःखी हो रुदन करने लगे कि, मुझ दुर्बुद्धि वृथा मान करनेवालेको धिक्कार है ॥ ४७ ॥ जिसका पिता सर्पसे पीडित हो घोर गतिको प्राप्त हुआ, अब मैं यज्ञको करके पिताका उद्धार करूंगा ॥ ४८ ॥ अवश्य दीप्तमान् अग्निमें सर्पोंको दग्ध करके वैर निकालूंगा. तब सब मंत्रियोंको बुलाकर राजाने कहा ॥ ४९ ॥ हे मंत्रिश्रेष्ठो ! विधिपूर्वक यज्ञका संभार सजाओ, गंगाके किनारे ब्राह्मणोंसे सुन्दर भूमि दिखवाकर माप करो ॥ ५० ॥ और सौ स्तंभका मनोहर यज्ञ मंडप करो और हे मन्त्रियो ! यज्ञकी उत्तम वेदी होनी चाहिये ॥ ५१ ॥

उसी यज्ञके अंगमें सर्प सत्रका भी विधान करना चाहिये, उसमें तक्षक पशु किया जाय और होता उत्तंक किये जांय ॥ ५२ ॥ शीघ्रही सर्वज्ञ वेदपारगामी ब्राह्मणोंको बुलाओ सूतजी बोले, मंत्रियोंने राजाज्ञासे सब कार्य यथायोग्य किया ॥ ५३ ॥ यज्ञका सब संभार और यज्ञवेदीका विस्तार किया. जिस समय सर्पोंका हवन मंत्रोंसे होनेलगा तब तक्षक ॥ ५४ ॥ भय भीत हो इन्द्रके पास जाकर कहनेलगा मेरी रक्षाकरो तब इन्द्रने भय भीत उसको आश्वासन देखकर आसनमें बैठाया ॥ ५५ ॥ और अभयदान देकर कहा हे सर्प ! अभय हो मुनिने उसको इन्द्रकी शरणमें गया जान अभय पाया जाना ॥ ५६ ॥ तब उत्तंकने उद्विग्नमन हो इन्द्रसहित तक्षकको आहत किया स्मरण करते ही तक्षकके सहित वह स्मरणमात्रसे प्राप्त होता हुआ ॥ ५७ ॥ उसी समय

तदंगत्वे विधेयो वै सर्पसत्रः सुविस्तरः ॥ तक्षकस्तु पशुस्तत्र होतोत्तंको महामुनिः ॥ ५२ ॥ शीघ्रमाहूयतां विप्राः सर्वज्ञा वेदपारगाः ॥ सूत उवाच ॥ मंत्रिणस्तु तदा चक्रुर्भूपवाक्यैर्विचक्षणाः ॥ ५३ ॥ यज्ञस्य सर्वसंभारं वेदिं यज्ञस्य विस्तृताम् ॥ हवने वर्तमाने तु सर्पाणां तक्षको गतः ॥ ५४ ॥ इंद्रं प्रति भयार्तोऽहंत्राहि मामिति चाब्रवीत् ॥ भयभीतं समाश्वास्य स्वासने संनिवेश्य च ॥ ५५ ॥ ददावभय मत्यर्थं निर्भयो भव पन्नग ॥ तमिंद्रशरणं ज्ञात्वामुनिर्दत्ताभयं तथा ॥ ५६ ॥ उत्तंकोऽह्वयदुद्विग्नः सेन्द्रं कृत्वा निमंत्रणम् ॥ स्मृतस्तदा तक्षकेण यायावरकुलोद्भवः ॥ ५७ ॥ आस्तीको नामधर्मात्मा जरत्कारुसुतो मुनिः ॥ तत्रागत्य मुनेर्बालस्तुष्टाव जनमेजयम् ॥ ५८ ॥ राजा तमर्चयामास दृष्ट्वा बालं सुपंडितम् ॥ अर्चयित्वानृपस्तं तु छंदयामास वांछितैः ॥ ५९ ॥ स तु वव्रे महाभाग यज्ञोऽयं विरम त्विति ॥ सत्यबद्धो नृपस्तेन प्रार्थितश्च पुनस्तथा ॥ ६० ॥ होमं निवर्तयामास सर्पाणां मुनिवाक्यतः ॥ भारतं श्रावयामास वैशंपायन विस्तरात् ॥ ६१ ॥ श्रुत्वाऽपि नृपतिः कामं न शांतिमभिजग्मिवान् ॥ व्यासं पप्रच्छभूपालो मम शांतिः कथं भवेत् ॥ ६२ ॥

जरत्कारुके पुत्र धर्मात्मा आस्तीकजी आकर जनमेजयको प्रसन्न करने लगे ॥ ५८ ॥ राजाने उस बालकको पंडित देकर सत्कार किया और उस और उससे वांछित फल देनेको कहा ॥ ५९ ॥ उसने यह कहा हे महाभाग ! अब यह यज्ञ बंद करो, सत्यबद्ध होनेसे फिरभी राजासे प्रार्थना करी ॥ ६० ॥ औरमुनि वाक्यसे राजाने हवन निवृत्त किया और उस अवसरमें वैशंपायनने विस्तारसे महाभारत सुनाया ॥ ६१ ॥ यह सुनकर भी राजाको शांति न हुई और व्याससे राजाने पूछा कैसे मेरी शान्ति होगी ! ॥ ६२ ॥

मेरा मन बहु दग्ध होता है कहो मैं क्या करूं ? मेरे पिता दुर्भाग्यरूप होनेसे सर्पसे मृत हुए ॥ ६३ ॥ हे महाभाग ! संग्राममें मरणही क्षत्रियोंको श्रेष्ठ है हे व्यासजीसे ! या तो युद्धमें मरण हो या घरमें मरण हो तो विधिपूर्वक मरण हो ॥ ६४ ॥ सो इस प्रकार पिताका मरण न होकर अन्तरिक्षमें मरण हुआ, हे सत्यवतीपुत्र ! आप शान्तिका उपाय कहो ॥ ६५ ॥ जिससे हमारे पिता दुर्गतिसे तरकर स्वर्गको चलेजाएँ ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सूतजी बोले, यह उनके वचन श्रवण करके सत्यवती पुत्र व्यासजी उस सभामें राजासे इस प्रकारके वचन कहने लगे ॥ १ ॥ व्यासजी बोले, सुनो हे राजन् ! वह बड़ा गुह्य उत्तम पुराण कथन करता हूं जो पवित्र भागवत नामक अनेक आख्यानोंसे युक्त है

मनोऽतिदह्यते कामं किं करोमि वदस्व मे ॥ पिता मे दुर्भगस्यैव मृतः पार्थसुतात्मजः ॥ ६३ ॥ क्षत्रियाणां महाभाग संग्रामे मरणं वरम् ॥ रणे वा मरणं व्यास गृहे वा विधिपूर्वकम् ॥ ६४ ॥ मरणं न पितुर्मेऽभू दंतरिक्षे मृतोऽवशः ॥ शांत्युपायं वदस्वात्र त्वं च सत्य वतीसुत ॥ ६५ ॥ यथा स्वर्गं व्रजेदाशु पिता मे दुर्गतिंगतः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सूतउवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ उवाच वचनं तत्र सभायां नृपति च तम् ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि पुराणं गुह्यमद्भुतम् ॥ पुण्यं भागवतं नामनानाख्यानयुतं शिवम् ॥ २ ॥ अध्यापितं मया पूर्वं शुकायात्मसुताय वै ॥ श्रावयामि नृप त्वां हि रहस्यं परमं मम ॥ ३ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं श्रवणात्किल ॥ शुभदं सुखदं नित्यं सर्वागमसमुद्धृतम् ॥ ४ ॥ जनमेजय उवाच ॥ आस्तीकोऽयं सुतः कस्य विघ्नार्थं कथमागतः ॥ प्रयोजनं किमत्रास्य सर्पाणां रक्षणे प्रभो ॥ ५ ॥ कथयै तन्महाभाग विस्तरेण कथानकम् ॥ पुराणं च तथा सर्वं विस्तराद्वद सुव्रत ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ जरत्कारुर्मुनिः शांतो न चकार गृहाश्रमम् ॥ तेन दृष्टावने गर्ते लंबमानाःस्वपूर्वजाः ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ जो मैंने प्रथम अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाई थी, हे राजन् ! वह परम रहस्य मैं आपसे कहता हूं ॥ ३ ॥ इसका श्रवण धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थोंका कारण है, जो नित्य शुभ और सुख देनेवाला सब शास्त्रोंका सार है ॥ ४ ॥ जनमेजय बोले, यह आस्तीक कौन थे ? जो यहां विघ्न करनेको आये. हे प्रभो सर्पोंकी रक्षा करनेमें इसका क्या प्रयोजन था ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! विस्तारसे यह कथानक कहो और विस्तारपूर्वक सब पुराण वर्णन करो ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले, शान्त जरत्कारु मुनिने गृहस्थाश्रम नहीं किया था उसने अपने पूर्वजोंको एक गर्तमें लम्बमान देखा ॥ ७ ॥

तब उन्होंने पूछनेपर कहा हे पुत्र! दार संग्रह करो जिससे हमारी तृप्ति हो! और दुःख रहित होकर स्वर्गको गमन करें, हे पुत्र! तुम सदाचारी हो तुमसे ऐसा होना उचित है ॥ ८ ॥ यह सुनकर मुनिने कहा जब कन्याका और मेरा नाम एक होगा तथा समान वर्ण मेरी वश गामिनी होगी तो मैं विवाह करूँगा यह आपसे सत्य कहता हूँ ॥ ९ ॥ यह कहकर जरत्कारु तीर्थोंको चले गये उसी समय माता द्वारा सर्पोंको शाप हुआ था कि तुम अग्निमें पतित हो ॥ १० ॥ कश्यप मुनिकी पत्नी कद्रू और विनता दो थी, वे आदित्यके रथके घोड़ेको देखकर बोली ॥ ११ ॥ उसको देखकर कद्रूने विनतासे कहा, हे भद्रे! यह घोड़े किस वर्णके हैं कहो ॥ १२ ॥ विनताने कहा यह घोड़े किस वर्णके हैं. मैं तो श्वेत मानती हूं तुम भी वर्ण बताओ तब हम दाव लगायें ॥ १३ ॥ कद्रू बोली;

ततस्तमाहुः कुरु पुत्र दारान्यथा च नः नस्यात्परमा हि तृप्तिः ॥ स्वर्गे व्रजामःखलुः दुःखमुक्ता वयं सदाचारयुते सुते वै ॥ ८ ॥ स तानुवाचाथ लभे समानामयाचितां चातिवशानुगां च ॥ तदा गृहारंभमहं करोमि ब्रवीमि तथ्यं मम पूर्वजा वै ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा ताञ्जर त्कारुर्गतस्तीर्थान्प्रति द्विजः ॥ तदैव पन्नगाः शप्ता मात्राऽग्नौ निपतंत्विति ॥ १० ॥ कश्यपस्य मुनेः पत्न्यौ कद्रूश्चविनता तथा ॥ दृष्ट्वाऽऽदित्यरथे चाश्वमूचतुश्च परस्परम् ॥ ११ ॥ तं दृष्ट्वा च तदा कद्रूर्विनतामिदमब्रवीत् ॥ किंवर्णोऽयं हयो भद्रेसत्यं प्रब्रूहि मा चिरम् ॥ १२ ॥ विनतोवाच ॥ श्वेत एवाश्वराजोऽयं किं वा त्वं मन्यसे शुभे ॥ ब्रूहि वर्णं त्वमप्यस्य ततस्तु विपणावहे ॥ १३ ॥ कद्रूरुवाच ॥कृष्णवर्णमहं मन्ये हयमेनं शुचिस्मिते ॥ एहि सार्धं मया दिव्यं दासीभावाय भामिनि ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ कद्रूश्च स्वसुतानाह सर्वान्सर्पान्वशे स्थितान् ॥ वालाञ्छ्यामान्प्रकुर्वंतु यावंतोऽश्वशरीरके ॥ १५ ॥ नेति केचन तत्राहुस्तानथाऽसौ शशाप ह ॥ जनमेजयस्य यज्ञे वै गमिष्यथ हुताशनम् ॥ १६ ॥ अन्ये चक्रुर्हयं सर्पाः कर्बुरवर्णभोगकैः ॥ वेष्टयित्वाऽस्य पुच्छन्तु मातुः प्रिय चिकीर्षया ॥ १७ ॥ भगिन्यौ च सुसंयुक्ते गत्वा ददृशतुर्हयम् ॥ कर्बुरं तं हयं दृष्ट्वा विनता चातिदुःखिता ॥ १८ ॥

हे शुचिस्मिते मैं तो इनको कृष्णवर्ण मानती हूं, जो हममें अशुद्ध कहे वही उसकी दासी होकर रहे ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, कद्रूने अपने वशीभूत सर्पोंसे कहा हे पुत्रो! तुम अश्वोंके शरीरमें लिपटकर उनको कृष्णवर्ण कर दो ॥ १५ ॥ जिन्होंने यह बात न मानी उनको शाप दिया कि जनमेजयके यज्ञमें तुम अग्निमें भस्म होगे ॥ १६ ॥ दूसरे सर्पोंने लिपटकर उनको कबरे वर्णका कर दिया और माताके प्रियकी इच्छासे घोडोंकी पूँछमें लिपट गये ॥ १७ ॥ और उन दोनों भगिनियोंने जाकर घोड़ोंको देखा घोड़ोंको कर्बुरवर्ण देखकर विनता बड़ी दुःखी हुई ॥ १८ ॥

तब उनके महाबली पुत्र गरुडजी आये, और माताको दीन देखकर पूछने लगे ॥ १९ ॥ हे मातः ! तुम क्यों दीन हो मुझको रोतीसी दीखती हो, मेरे और रविसारथि अरुणके होते तुम क्यों दुःखी हो ! ॥ २० ॥ हे मातः ! यदि हमारे होते तुम दुःखी हो तो हमारे जीवनको धिक्कार है, जो माता दुःखी हो तो उस पुत्रके जीनेसे क्या है ? ॥ २१ ॥ हे मातः ! मुझसे वह कारण कहो मैं तुमको दुःख रहित करूंगा, विनताने कहा, पुत्र मैं सपत्नीकी दासी हुई. और वृथा खंडित हूँ मैं क्या करूं ! ॥२२॥ वह कहती है जहां मेरे जानेकी इच्छा हो वहां कंधेपर चढाय ले चल, इससे मैं बड़ी दुःखी हूं गरुडजी बोले जहां वह जानेकी इच्छा करेगी वहां मैं उसे ले जाऊंगा ॥ २३ ॥ हे कल्याणी ! शोक मत करो मैं तुमको निश्चिन्त कर दूंगा, व्यासजी बोले ऐसा कहकर विनता

तदाऽऽजगाम गरुडः सुतस्तस्या महाबलः ॥ स दृष्ट्वा मातरं दीनामपृच्छत्पन्नगाशनः ॥ १९ ॥ मातःकथं सुदीनाऽसिरुदितेदेव विभासि मे ॥ जीव माने मयि सुते तथाऽन्ये रविसारथौ ॥ २० ॥ दुःखिताऽसि ततो वां धिग्जीवितं चारुलोचने ॥ किं जातेन सुतेनाथ यदि माता सदुःखिता ॥ २१ ॥ शंस मे कारणं मातःकरोमि विगतज्वराम् ॥ विनतोवाच ॥ सपत्न्या दास्यहं पुत्र किं ब्रवीमि वृथा क्षता ॥ २२ ॥ वह मां सा ब्रवीत्यद्य तेनाऽस्मि दुःखिता सुता ॥ गरुड उवाच ॥ वहिष्येऽहं तत्र किल यत्र सा गंतुमुत्सुका ॥ २३ ॥ मा शोकं कुरु कल्याणिं निश्चितां त्वां करोम्यहम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा गतापार्श्वं कद्रोश्च विनता तदा ॥ २४ ॥ दासीभावसपाकर्तुं गरुडोऽपि महाबलः ॥ उवाह तां सपुत्रां वै सिंधोः पारं जगाम ह ॥ २५ ॥ गत्वा तां गरुडः प्राहः ब्रूहि मातर्नमोऽस्तुते ॥ कथं मुच्येत मे माता दासीभावादसंशयम् ॥ २६ ॥ कद्रूरुवाच ॥ अमृतं देवलोकात्त्वं बलदानीय मे सुतान् ॥ समर्पय सुताद्याशु मातरं मोचयाबलाम् ॥ २७ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः प्रययौ शीघ्रमिंद्रलोकं महाबलः ॥ कृत्वा युद्धं जहाराऽऽशु सुधाकुंभं खगोत्तमः ॥ २८ ॥

कद्रूके पास गई ॥ २४ ॥ और महाबली गरुड भी दासी भाव निवारणके निमित्त पुत्रों सहित उसको लिए समुद्रके पार गये ॥ २५ ॥ जाकर गरुडजी बोले हे मातः ! कहो मैं तुमको प्रणाम करता हूं. मेरी माताका दासी भावसे कैसे छुटकारा होगा ! ॥ २६ ॥ कद्रूने कहा यदि तू देवलोकसे बलपूर्वक अमृत लाकर मेरे पुत्रोंको दे तो मैं तेरी माताको मुक्तकर दूँ ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले यह श्रवण करते ही गरुडजी बहुत शीघ्र इन्द्रलोकको गये और युद्ध करके उस सुधाके कुंभको खगोत्तमने ग्रहण किया ॥ २८ ॥

और अमृत लाकर सर्पोंको अर्पण किया इसपर उसने विनताको दासी भावसे मुक्त कर दिया ॥२९॥ जिस समय सर्प स्नान करनेको गये इन्द्रने इसी अवसरमें
अमृतको हरण किया और गरुड द्वारा विनता दासी भावसे मुक्त होकर विपत्हीन हुई ॥ ३० ॥ घटके नीचे जो कुश धरे थे वे सर्पोंने चाटे तब कुशाग्रके
स्पर्श मात्रसे उनकी जिह्वाके दो दो खण्ड हो गये ॥ ३१ ॥ तब वे वासुकी आदि सर्प मातासे शापित होकर ब्रह्माजीकी शरण में प्राप्त हो शापके भयकी
बात बोले ॥ ३२ ॥ तब ब्रह्माजीने कहा, जरत्कारु नामक मुनि है उसको तुम अपनी समाना नामिका कन्याको प्रदान करो ॥ ३३ ॥ उससे जो पुत्र
होगा वह तुम्हारी रक्षा करेगा इसमें सन्देह नहीं, उसका नाम आस्तीक होगा ॥ ३४ ॥ वासुकी यह ब्रह्माजीके कल्याणकर वचन श्रवणकर वनमें जाकर

समानीयामृतं मात्रे वैनतेयः समर्पयत् ॥ मोचिता विनता तेन दासी भावादसंशयम् ॥ २९ ॥ अमृतंसंजहारेंद्रः स्नातुं सर्पा यदा गताः
दासीभावाद्विनिर्मुक्ता विनता विपतेर्बलात् ॥ ३० ॥ तत्राऽऽस्तीर्णः कुशास्तैस्तु लीढाः पन्नगनायकैः ॥ द्विजिह्वास्ते सुसंपन्नाः कुशाग्रस्प
र्शमात्रतः ॥ ३१ ॥ मात्रा शप्ताश्च ये नागा वासुकिप्रमुखाः शुचाः ॥ ब्रह्माणं शरणं गत्वा ते होचुः शापजंभयम् ॥ ३२ ॥ तानाह भग
वान्ब्रह्मा जरत्कारुर्महामुनिः ॥ वासुकेर्भगिनीं तस्मै अर्पयध्वं सनामिकाम् ॥ ३३ ॥ तस्यां यो जायतेपुत्रः स वस्त्राता भविष्यति ॥
आस्तीक इति नामाऽसौ भविता नात्र संशयः ॥ ३४ ॥ वासुकिस्तु तदाकर्ण्य वचनं ब्रह्मणः शिवम् ॥ वनं गत्वा सुतां तस्मै ददौ विनय
पूर्वकम् ॥३५॥ समानां तां मुनिर्ज्ञात्वा जरत्कारुरुवाच तम् ॥ अप्रियं मे यदा कुर्यात्तदा तां संत्यजाम्यहम् ॥ ३६ ॥ वाग्बंधं तादृशं
कृत्वा मुनिर्जग्राह तां स्वयम् ॥ दत्त्वा चवासुकिः कामं भवनं स्वं जगामह ॥ ३७ ॥ कृत्वा पर्णकुटीं शुभ्रां जरत्कारुर्महावने ॥ तया
सह सुखं प्राप रममाणः परंतप ॥ ३८ ॥ एकदा भोजनं कृत्वा सुप्तोऽसौ मुनिसत्तमः ॥ भगिनी वासुकेस्तत्र संस्थिता वरवर्णिनी ॥ ३९ ॥

विनयपूर्वक मुनिको कन्या देते हुए ॥ ३५ ॥ जरत्कारुने उसको समाना नाम जानकर उससे कहा जिस समय यह मेरा अप्रिय कार्य करेगी तब मैं इसे
छोड़ दूंगा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार वाग्बंध करके मुनिने उसको ग्रहण किया और वासुकी उसको देकर घरको चला गया ॥ ३७ ॥ तब जरत्कारु उस महावनमें
पर्णकुटी करके उसके साथ सुखपाय वह परमतपस्वी रमण करने लगे ॥ ३८ ॥ एक समय वे मुनि भोजन कर सो गये और वासुकीकी भगिनी
वहां स्थित रही ॥ ३९ ॥

मुनिने कहा, हे बाले ! तुम मुझे किसी समय मत जगाना. इस प्रकार उस सुदतीसे कहकर मुनि सो गये ॥ ४० ॥ सन्ध्याकाल उपस्थित हुआ सूर्य अस्त हो गये उस बालाने कहा, क्या करूं ! न जगाऊं तो कर्मलोप होगा और जगाऊं तो मुझे त्याग देंगे ॥ ४१ ॥ और न जगाऊं तो इनका धर्मलोप हो जायगा सन्ध्याकाल वृथा होजायगा ॥ ४२ ॥ धर्मनाश न हो त्याग होनेमें हानि नहीं और त्यागसे मरण ही उत्तम है मनुष्योंको धर्महानि नरकके निमित्त होती है ॥ ४३ ॥ यह विचार कर उस बालाने मुनिको जगादिया हे सुव्रत, उठो२और सन्ध्याकाल आकर प्राप्त हुआ है ॥ ४४ ॥ मुनिने उठतेही कोपसे कहा तैंने मेरी निद्राका विच्छेद किया है मैं जाता हूं तू भाईके घरको जा ॥ ४५ ॥ मुनिके यह कहते ही वह कंपित होकर बोली, हे महाप्रभाव ! जिस निमित्त

न संबोधयितव्योऽहं त्वया कांते कथंचन ॥ इत्युक्त्वा तु गतो निद्रां मुनिस्तां सुदतीं तदा ॥ ४० ॥ रविरस्तगिरिं प्राप्तः संध्याकाल उपस्थिते ॥ किं करोमि न मे शांतिस्त्यजेन्मां बोधितः पुनः ॥ ४१ ॥ धर्मलोपभयाद्भीता जरत्कारुरचिंतयत् ॥ नोचेत्प्रबोधयाम्येनं संध्याकालो वृथाव्रजेत् ॥ ४२ ॥ धर्मनाशाद्वरं त्यागस्तथाऽपि मरणध्रुवम् ॥ धर्महानिर्नराणां हि नरकाय भवेत्पुनः ॥ ४३ ॥ इति संचिंत्य सा बाला तं मुनिंप्रत्यबोधयत् ॥ संध्याकालोऽपि संजात उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुव्रत ॥ ४४ ॥ उत्थितोऽसौ मुनिः कोपात्तामुवाच व्रजाम्यहम् ॥ त्वं तु भ्रातृगृहं याहि निद्राविच्छेदकारिणि ॥ ४५ ॥ वेपमानाऽब्रवीद्वाक्यमित्युक्ता मुनिना तदा ॥ भ्रात्रा दत्ता यदर्थं तत्कथं स्यादमितप्रभ ॥ ४६ ॥ मुनिःप्राह जरत्कारुं तदस्तीति निराकुलः ॥ गता सा मुनिना त्यक्ता वासुकेः सदनं तदा ॥ ४७ ॥ पृष्टा भ्रात्राऽब्रवीद्वाक्यं यथोक्तं पतिना तदा ॥ अस्तीत्युक्त्वा च हित्वा मां गतोऽसौ मुनिसत्तमः ॥ ४८ ॥ वासुकिस्तु तदाकर्ण्य सत्यवाग्मुनिरित्युत ॥ विश्वासं च परं कृत्वा भगिनीं तां समाश्रयत् ॥ ४९ ॥ ततः कालेन कियता जातोऽसौ मुनिबालकः ॥ आस्तीक इतिनामाऽसौ विख्यातः कुरुसत्तम ॥ ५० ॥

भ्राताने मुझे दिया था वह बात कैसे होगी ? ॥ ४६ ॥ मुनि कहने लगे जिसकी तुझको इच्छा है यह है [अर्थात् तेरे भ्राताका इष्ट पुत्र तेरे गर्भमें है] तब मुनिसे त्यक्त होकर वह भ्राताके स्थानको चली गई ॥ ४७ ॥ भ्राताके पूँछनेपर उसने पतिके कहे वचन कहे कि 'अस्ति' (है) ऐसा कहकर वह मुनि चले गये ॥ ४८ ॥ तब वासुकीने यह वचन श्रवण करके कि, मुनि सत्य वचन है परम विश्वाससे उस भगनीको रक्खा ॥ ४९ ॥ फिर कुछ समयके उपरान्त मुनिपुत्र उत्पन्न हुआ तब वह आस्तीक नामसे विख्यात हुआ ॥ ५० ॥

हे राजन् ! उन्नने इस तुम्हारे यज्ञकी रक्षा की है. इस विज्ञानी मुनिने मातृपक्षकी रक्षा की है ॥ ५१ ॥ हे महाराज ! आपने इन मुनिका मान किया यह अच्छा किया. यह वासुकीकी भगिनीके पुत्रका कार्य सिद्ध हुआ ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! आपका मंगल हो आपने सब भारत श्रवण किया बहुत दान दिये और मुनियोंका पूजन किया ॥ ५३ ॥ ऐसे सुकृतसे भी तुमको शान्ति पिताकी स्वर्गगति और कुलको पवित्रता न प्राप्त हुई ॥५४॥ तो हे राजन् ! आप देवीके उत्तम मन्दिरका निर्माण कीजिये. हे जनमेजय ! इससे आपकी सब सिद्धि हो जायगी ॥ ५५ ॥ परम भक्तिसे पूजित होकर भगवती सब कार्य करती है कुलकी वृद्धि और राज्यको स्थिर करती है ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! विधिपूर्वक देवीयज्ञ करकेश्रीमद्भागवतनाम पुराण श्रवण कीजिये ॥ ५७ ॥

तेनाऽयं रक्षितो यज्ञस्तव पार्थिवसत्तम ॥ मातृपक्षस्य रक्षार्थं मुनिना भावितात्मना ॥ ५१ ॥ भव्यं कृतं महाराज मानितोऽयं त्वया मुनिः ॥ यायावरकुलोत्पन्नो वासुकेर्भगिनीसुतः ॥ ५२ ॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाबाहो भारतं सकलं श्रुतम् ॥ दानानि बहु दत्तानि पूजिता मुनय स्तथा ॥ ५३ ॥ कृतेन सुकृतेनापि न पिता स्वर्गतिं गतः ॥ पावितं न कुलं कृत्स्नं त्वया भूपतिसत्तम ॥ ५४ ॥ देव्याश्चाऽऽयतनं भूपविस्तीर्णं कुरु भक्तितः ॥ येन वै सकला सिद्धिस्तव स्याज्जनमेजय ॥ ५५ ॥ पूजिता परया भक्त्या शिवा सकलदा सदा ॥ कुलवृद्धिं करोत्येव राज्यं च सुस्थिरं सदा ॥ ५६ ॥ देवीमखं विधानेन कृत्वा पार्थिवसत्तम ॥ श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं परमं शृणु ॥ ५७ ॥ त्वामहं श्रावयिष्यामि कथांः परमपावनीम् ॥ संसारतारिणीं दिव्यां नानारस समाहृताम् ॥ ५८ ॥ न श्रोतव्यं परं चास्मात्पुराणाद्विद्यते भुवि ॥ नाराध्यं विद्यते राजन्देवीपादांबुजादृते ॥ ५९ ॥ ते सभाग्याः कृतप्रज्ञा धन्यास्ते नृपसत्तम ॥ येषां चित्ते सदा देवी वसति प्रेम संकुले ॥ ६० ॥ सुदुःखितास्ते दृश्यंते भुवि भारत भारते ॥ नाराधिता महामाया यैर्जनैश्च सदांबिका ॥ ६१ ॥ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे यदाराधनतत्पराः ॥ वर्तंते सर्वदा राजंस्तां न सेवेत को जनः ॥ ६२ ॥

यह परमपावनी कथा मैं तुमको सुनाता हूं जो संसारकी तारनेवाली दिव्य अनेक रसोंसे युक्त है ॥ ५८ ॥ इससे अधिक और कोई श्रवणयोग्य पुराण नहीं है, हे राजन् देवीकेचरणारविन्दसे अधिक और कुछ नहीं है ॥ ५९ ॥ वे सभागी बुद्धिमान् और धन्य हैं जिनके हृदयमें प्रेमयुक्त देवी निवास करती है ॥ ६० ॥ हे राजन् ! भारतवर्षमें वेही प्राणी दुःखी हैं, जिन्होंने महामाया अंबिकाका आराधन नहीं किया ॥ ६१ ॥ ब्रह्मादिक देवता जिसके आराधनमें तत्पर रहते हैं और वर्तते हैं उसका कौन सेवनन करे ! ॥ ६२ ॥

"इस पुराणमें साम्यावस्थामें स्थित मायोपाधिक ब्रह्म प्रतिपादन होनेसे मायोपाधिक ब्रह्मरूपिणी भगवती एक सत्त्वादिक गुण विशिष्ट होनेसे उसकी सर्वसे श्रेष्ठता है" जो इसको नित्य सुनतेहैं उनकी सब कामना पूरी होती हैं, यह भगवतीने स्वयं विष्णुको उपदेश की है ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! इसके श्रवणसे

य इदं शृणुयान्नित्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ भगवत्या समाख्यातं विष्णवे यदनुत्तमम् ॥ ६३ ॥ तेन श्रुतेन ते राजंश्चित्तशांतिर्भविष्यति ॥ पितॄणां चाक्षयः स्वर्गः पुराणश्रवणाद्भवेत् ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणे द्वितीयस्कंधे श्रोतृप्रवक्तृप्रसंगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ स्कंधश्चायं समाप्तः ॥२॥ द्वाविंशत्यधिकसंख्यैः पद्यैः सप्तशतैः शुभैः ॥ श्रीमद्व्यासमुखोद्गीतैर्द्वितीयस्कंध ईरितः ॥ १ ॥

तुम्हारे चित्तमें शान्ति होगी. इस पुराणके श्रवणसे पितरोंको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रकृतभाषायां श्रोतृवक्तृप्रसंगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ७२२ श्लोकोंमें देवीभागवतका दूसरा स्कंध पूर्ण हुआ. शुभमस्तु.

इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते द्वितीयस्कन्धः समाप्तः

अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते तृतीयस्कन्धः प्रारभ्यते

दोहा--पाशांकुशवराभीतिधर, मन्दहासिनी माय । मणिद्वीपे वसती सदा, देवी करहि सहाय ॥ १ ॥

जनमेजय बोले, हे भगवन् ! आपने देवीयज्ञका बडा वर्णन किया वह किस प्रकार उत्पन्न है ! कौन वह अंबा ? क्या उसका स्वरूप है ? किस देश कालमें प्रगट हुई ! क्यों हुई ! और उसमें क्या गुण हैं ? ॥ १ ॥ उनका यज्ञ कैसा होता है ? इसका स्वरूप क्या है ? हे दयानिधे ! आप सर्वज्ञ हो इसका विधान कहिये ॥२॥ ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति विस्तारसे कहिये जैसी मैंने पूछी है. हे मुनीश्वर वह तुम सब जानते हो ॥ ३ ॥ ब्रह्मा विष्णु महादेव मैंने तीन देवता सुने हैं जो सृष्टि पालन और संहारके गुण वाले हैं ॥ ४ ॥ हे व्यासजी ! कहिये वे महात्मा स्वतंत्र हैं अथवा परतंत्र हैं ? यह मेरे सुननेकी इच्छा है ॥ ५ ॥ वे

श्रीगणेशायनमः ॥ जनमेजय उवाच ॥ भगवन्भवता प्रोक्तं यज्ञमंबाभिधं महत् ॥ सा का कथं समुत्पन्ना कुरु कस्माच्च किंगुणा ॥ १ ॥ कीदृशश्च मखतस्याः स्वरूपं कीदृशं तथा ॥ विधानं विधिवद् ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ॥ २ ॥ ब्रह्माण्डस्य तथोतपत्ति वद विस्तरतस्तथा ॥ यथोक्तं यादृशं ब्रह्मन्नखिलं वेत्सि भूसुर ॥ ३ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवा मया श्रुताः ॥ सृष्टि पालनसंहारकारकाः सगुणास्त्वमी ॥ ४ ॥ स्वतंत्रास्ते महात्मानः पाराशर्य वदस्व मे ॥ अहोस्वित्परतंत्रास्ते श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम् ॥ ५ ॥ मृत्युधर्मांश्च ते नो वा सच्चिदानंदरूपिणः ॥ अधिभूतादिभिर्युक्ता न वा दुःखैस्त्रिधात्मकैः ॥ ६ ॥ कालस्य वशगा नो वा ते सुरेंद्रा महाबलाः ॥ कथं ते वै समुत्पन्नाः कस्मादिति च संशयः ॥ ७ ॥ हर्षशोकयुतास्ते वै निद्रालस्यसमन्विताः ॥ सप्त धातुमयास्तेषां देहाः किं वाऽन्यथा मुने ॥ ८ ॥ कैर्द्रव्यै र्निर्मितास्ते वै कैर्गुणैरिंद्रियैस्तथा ॥ भोगश्च कीदृशस्तेषां प्रमाणमायुषस्तथा ॥ ९ ॥ निवासस्थानमप्येषां विभूतिं च वदस्व मे ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहं ब्रह्मन्विस्तरेण कथामिमाम् ॥ १० ॥

मृत्यु धर्मवाले हैं वा सच्चिदानंद रूपवाले हैं ? आधिदैविक आधिभौतिक आध्यात्मिक तीन दुःखोंसे पृथक् हैं वा संयुक्त हैं ॥ ६ ॥ वे महाबली सुरेन्द्रादि कालके वशीभूत हैं वा नहीं ? वे कैसे और किससे प्रगट हुए हैं ? सो कहिये ॥ ७ ॥ वे हर्ष शोक निद्रा आलस्यसे युक्त हैं या नहीं, हे मुने ! उनके शरीर सात धातुके हैं वा नहीं ? ॥ ८ ॥ किस द्रव्य इन्द्रिय और गुणोंसे वे प्रकट हुए हैं ? उनकाभोग और आयुका प्रमाण क्या है ? ॥ ९ ॥ उनका निवासस्थान और विभूति हमसे कहिये, हे ब्रह्मन् ! विस्तारसे इस कथाके सुननेकी हमारी इच्छा है, ॥ १० ॥

व्यासजी बोले, आपने यह गहन प्रश्न किया है, कि ब्रह्मादिकी उत्पत्ति किससे है? ॥ ११ ॥ यही बात मैंने पहलें नारदजीसे पूछी थी, हे राजन् ! उन्होंने जो प्रश्नोंका उत्तर पहले दिया था सो आप सुनिये ॥१२॥ किसी समय मैं गंगाकें किनारे स्थित था, उस समय वेदके ज्ञाता शांत सर्वज्ञ नारदजीको मैंने देखा ॥ १३ ॥ देखकर मैं प्रसन्न हुआ और मैंने मुनिके चरणोंको प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे उनके समीप श्रेष्ठ आसनपर बैठा ॥ १४ ॥ कुशल वार्ता सुनकर मैंने नारदजीसे पूंछा जो कि सूक्ष्म वालुकावाले गंगाके तटपर निर्जनमें बैठे हुये थे ॥ १५ ॥ हे मुने ! इस अतिविस्तारवाले ब्रह्माण्डका कौन परम कर्ता है ? यह आप विधिपूर्वक हमसे कहिये ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह ब्रह्माण्ड किससे उत्पन्न हुआहै ! यह अनित्य वा नित्य है ? सो आप

व्यास उवाच ॥ दुर्गमः प्रश्नभारोऽयं कृतो राजंस्त्वयाऽधुना ॥ ब्रह्मादीनां समुत्पत्तिः कस्मादिति महामते ॥ ११ ॥ एतदेव मयापूर्वं पृष्टोऽसौ नारदो मुनिः ॥ विस्मितः प्रत्युवाचेदमुत्थितः शृणु भूपते ॥ १२ ॥ कस्मिंश्च समये चाहं गंगातीरे स्थितं मुनिम् ॥ अपश्यं नारदं शांतं सर्वज्ञं वेदवित्तमम् ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाऽहं मुदितो गत्वा पादयोरपतं मुनेः ॥ तेनाज्ञप्तः समीपेऽस्य संविष्टश्च वरासने ॥ १४ ॥ श्रुत्वा कुशलवार्तां वै तमपृच्छं विधेः सुतम् ॥ निविष्टं जाह्नवीतीरे निर्जने सूक्ष्मवालुके ॥ १५ ॥ मुनेऽतिविततस्यास्य ब्रह्मांडस्य महामते ॥ कः कर्ता परमःप्रोक्तस्तन्मे ब्रूहि विधानतः ॥ १६ ॥ कस्मादेतत्समुत्पन्नं ब्रह्मांडं मुनिसत्तम ॥ अनित्यं वा तथा नित्यं तदाचक्ष्व द्विजोत्तम ॥ १७ ॥ एककर्तृकमेतद्वा बहुकर्तृकमन्यथा ॥ अकर्तृकं न कार्यंस्याद्विरोधोऽयं विभाति मे ॥ १८ ॥ इति संदेहसंदोहे मग्नं मां तारयाधुना ॥ विकल्पकोटीः कुर्वाणं संसारेऽस्मिन्प्रविस्तरे ॥ १९ ॥ ब्रुवंति शंकरं केचिन्मत्वा कारणकारणम् ॥ सदाशिवं महादेवं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम् ॥ २० ॥ आत्मारामं सुरेशं च त्रिगुणं निर्मलं हरम् ॥ संसारतारकं नित्यं सृष्टिस्थित्यंतकारणम् ॥ २१ ॥

कहिये ॥ १७ ॥ यह एकका निर्माण किया है वा अनेकका ? विना कर्ताके कार्य नहीं होता यह मुझे विरोध विदित होता है ॥ १८ ॥ हे नारदजी इस प्रकार संदेहके मध्यमें मग्न हुए इस विस्तारवाले संसारमें अनेक विकल्प करते हुए मुझे आप अब तारो ॥ १९ ॥ कोई भगवान् शंकरको कारणका कारण कहते हैं. कि सदाशिव महादेव प्रलय उत्पत्तिसे वर्जित हैं ॥ २० ॥ यह आत्माराम सुरेश त्रिगुणात्मक निर्मल हर हैं नित्य संसारके तारक सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाले हैं ॥ २१ ॥

कोई सबके ईश्वर प्रभु विष्णुको ही कथन करते हैं,कि परमात्मा अव्यक्त सम्पूर्ण शक्तिसे युक्त हैं ॥ २२ ॥ भुक्ति मुक्ति देनेवाले शांत सबके आदि सब और सर्वतोमुख व्यापक विश्वके शरण अनादि निधन हरिहैं ॥ २३ ॥ कोई सृष्टिका कारण ब्रह्माजीको कथन करते हैं, वही सबके ज्ञाता और सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रवर्तक हैं ॥ २४ ॥ चतुर्मुख सुरोंके अधिपति नाभि कमलसे होनेवाले अविनाशी विभु सब लोकके उत्पन्न करनेवाले सत्यलोकके निवासी हैं ॥ २५ ॥ कोई वेद वादी सूर्यदेवको ही सृष्टिका कर्ता कहते हैं, सायं प्रभात सावधान होकर उन्हींकी स्तुति गान करते हैं ॥ २६ ॥ कोई यज्ञमें शतक्रतु इन्द्रका यजन करते हैं कि सहस्राक्ष देवदेव सबके महान् स्वामी हैं ॥ २७ ॥ जो यज्ञाधीश सुराधीश त्रिलोकपति शचीके भर्ता यज्ञोंके भोक्ता सोमपान करनेवाले

अन्ये विष्णुं स्तुवंत्येनं सर्वेषां प्रभुमीश्वरम् ॥ परमात्मानमव्यक्तं सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ २२ ॥ भुक्तिदं मुक्तिदं शांतं सर्वादिं सर्वतोमुखम् ॥ व्यापकं विश्वशरणमनादिनिधनं हरिम् ॥ २३ ॥ धातारं च तथा चान्ये ब्रुवंति सृष्टिकारणम् ॥ तमेव सर्ववेत्तारं सर्वभूतप्रवर्तकम् ॥ २४ ॥ चतुर्मुखं सुरेशानं नाभिपद्मभवं विभुम् ॥ स्रष्टारं सर्वलोकानां सत्यलोकनिवासिनम् ॥ २५ ॥ दिनेशं प्रवदंत्यन्ये सर्वेशं वेदवादिनः ॥ स्तुवंति चैव गायंति सायंप्रातरतंद्रिताः ॥ २६ ॥ यजंति च तथा यज्ञे वासवं च शतक्रतुम् ॥ सहस्राक्षं देवदेवं सर्वेषां प्रभुमुल्बणम् ॥ २७ ॥ यज्ञाधीशं सुराधीशं त्रिलोकेशं शचीपतिम् ॥ यज्ञानां चैव भोक्तारं सोमपं सोमपप्रियम् ॥ २८ ॥ वरुणं च तथा सोमं पावकं पवनं तथा ॥ यमं कुबेरं धनदं गणाधीशं तथापरे ॥ २९ ॥ हेरंबं गजवक्त्रं च सर्वकार्यप्रसाधकम् ॥ स्मरणात्सिद्धिदं कार्यकामदं कामगं परम् ॥ ३० ॥ भवानीं केचनाचार्याः प्रवदंत्यखिलार्थदाम् ॥ आदिमायां महाशक्तिं प्रकृतिं पुरुषानुगाम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मैकतासमापन्नां सृष्टिस्थित्यंतकारिणीम् ॥ मातरं सर्वभूतानां देवतानां तथैव च ॥ ३२ ॥ अनादिनिधनां पूर्णां व्यापिकां सर्वजंतुषु ॥ ईश्वरीं सर्वलोकानां निर्गुणां सगुणां शिवाम् ॥ ३३ ॥

सोमपान करनेवालोंके प्रिय ही बडे हैं ॥ २८ ॥ कोई वरुण, सोम, पावक, पावन, यम, कुबेर, धनदाता, गणेश ॥ २९ ॥ हे रम्ब, गजवदन, सर्वकार्यके सिद्ध करनेवाले, स्मरणसे ही सिद्धि देनेवाले कामदायक गणेशको ही कामग कहते हैं ॥ ३० ॥ कोई आचार्य भवानीको ही सब अर्थोंका दाता समझते हैं, कि यही आदिमाया महाशक्ति प्रकृति पुरुषगामिनी, ॥ ३१ ॥ ब्रह्मके साथ एकताको प्राप्त हुई सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाली सब भूत और देवताओंकी माता ॥ ३२ ॥ अनादिनिधन परिपूर्ण, सब जन्तुओंमें व्याप्त,सब लोकोंकी ईश्वरी निर्गुण सगुण कल्याणरूपिणी ॥ ३३ ॥

दे. भा.
॥ ३ ॥

वैष्णवी शांकरी ब्राह्मी वासवी वारुणी वाराही नारसिंही महालक्ष्मी ॥ ३४ ॥ वेदमाता एक ही संसार सागरसे तारनेको दृढ़ है, सब दुःखहारिणी और स्मरणसे ही सब कामना देनेवाली है ॥ ३५ ॥ मुमुक्षुओंको मुक्ति देनेवाली फलार्थियोंको कामना देनेवाली त्रिगुणसे परे रूप वाली गुणोंके विस्तार करनेवाली ॥३६॥ उस निर्गुणा सगुणाको फलकी इच्छावाले ध्यान करते हैं. कोई निरंजन निराकार निर्लेप निर्गुण ॥३७॥ अरूप व्यापक ब्रह्मको ही सबका कर्ता कहते हैं, कि वेद उपनिषद्में कहा हुआ कोई तेजरूप है ॥३८॥ यही सहस्रशीर्ष पुरुष सहस्रनेत्र है, यही सहस्र मुख सहस्र नेत्र है ॥ ३९ ॥ यह परमाकाश विष्णुका एक पादमात्र है जिसको विद्वान् निर्मल शान्त विराट्रूप कहते हैं ॥ ४० ॥ कोई पुराविद पुरुषोत्तमको ही सर्वश्रेष्ठ कहते हैं और कोई

वैष्णवीं शांकरीं ब्राह्मीं वासवीं वारुणीं तथा ॥ वाराहीं नारसिंहीं च महालक्ष्मीं तथाऽऽद्भुतम् ॥ ३४ ॥ वेदमातरमेकां च विद्यां भवतरोः स्थिराम् ॥ सर्वदुःखनिहंत्रीं च स्मरणात्सर्वकामदाम् ॥ ३५ ॥ मोक्षदां च मुमुक्षूणां कामदां च फलार्थिनाम् ॥ त्रिगुणातीतरूपां च गुण विस्तारकारकाम् ॥ ३६ ॥ निर्गुणां सगुणां तस्मात्तां ध्यायंति फलार्थिनः ॥ निरंजनं निराकारं निर्लेपं निर्गुणं किल ॥ ३७ ॥ अरूपं व्यापकं ब्रह्म प्रवदंति मुनीश्वराः ॥ वेदोपनिषदि प्रोक्तस्तेजोमय इति क्वचित् ॥ ३८ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्रनयनस्तथा ॥ सहस्रकर कर्णश्च सहस्रास्यः सहस्रपात् ॥ ३९ ॥ विष्णोःपादमथाकाशं परमं समुदाहृतम् ॥ विराजं विरजं शांतं प्रवदंति मनीषिणः ॥ ४० ॥ पुरुषोत्तमं यथा चान्ये प्रवदंति पुराविदः ॥ नैकोऽपीति वदंत्यन्ये प्रभुरीशः कदाचनः ॥ ४१ ॥अनीश्वरमिदं सर्वं ब्रह्मांडमिति केचन ॥ न कदाऽपीशजन्यं यज्जगदेतचिंतितम् ॥ ४२ ॥ सदैवेदमनीशं च स्वभावोत्थं सदेदृशम् ॥ अकर्ताऽसौ पुमान्प्रोक्तः प्रकृतिस्तु तथा च सा ॥ ४३ ॥ एवं वदंति सांख्याश्च मुनयः कपिलादयः ॥ एते संदेहसंदोहा प्रभवंति तथाऽपरे ॥ ४४ ॥ विकल्पोपहतं चेतः किं करोमि मुनीश्वर ॥ धर्माधर्मविवक्षायां न मनो मे स्थिरं भवेत् ॥ ४५ ॥

यह कहते हैं कि कोई एक ईश्वर नहीं है ॥ ४१ ॥ कोई कहते हैं यह सब ब्रह्माण्ड अनीश्वर है. कोई इसका ईश्वर नहीं है, क्योंकि यह अचिन्तित जगत् ईश्वरजन्य नहीं होसका है ॥ ४२ ॥ कोई कहते हैं कि यह सत्रूप है अनीश है स्वभावसे ही यह ऐसा हो रहा है, यह पुरुष अकर्ता है प्रकृति ही ऐसा करती है ॥ ४३ ॥ इस प्रकारसे सांख्य और कपिलके मतवादी मुनि कहते हैं इस प्रकारके और भी बहुतसे सन्देह हैं ॥ ४४ ॥ हे मुनीश्वर ! तब चित्त विकल्पसे व्याकुलहो जाता है मैं क्या करूं ! धर्म अधर्मकी विविक्षामें मन स्थिर नहीं होता है ॥ ४५ ॥

भा. टी तृ-
अ. १

क्या धर्म ? क्या अधर्म है ! इसका चिह्न विदित नहीं होता' देवता सत्त्वगुणमें उत्पन्न और सत्य धर्ममें स्थित हैं ॥ ४६ ॥ परन्तु पापिष्ठ दैत्योंसे पीड़ित होते हैं फिर धर्मकी स्थित कहां है ? धर्ममें स्थित सदाचारवाले हमारे वंशिय पाण्डव पुरुष ॥ ४७ ॥ अनेक प्रकारके दुःख पाते हुए, तो फिर धर्मकी स्थिति क्या है ? हे तात ! इस कारण मेरा हृदय संदेहसे कम्पित होता है ॥ ४८ ॥ हे महामुनि ! आप समर्थ हो इस कारण मेरे मनको संदेह रहित कीजिये, हे मुने ! ज्ञानरूपी जहाजसे आप मुझे संसार सागरके पार कीजिये ॥ ४९ ॥ मैं मोहरूपी सागरमें वारंवार उछलता डूबता हूं ॥ ५० ॥ इति श्री देवी भा० म० पु० तृतीयस्कन्धे भाषायां प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥ व्यासजी बोले, हे कुरुश्रेष्ठ ! जो आपने मुझसे पूछा है मेरे पूछनेपर नारदजीने इन प्रश्नोंको कहा था ॥ १ ॥

को धर्मः कीदृशोऽधर्मश्चिह्नं नैवोपलभ्यते ॥ देवाः सत्त्वगुणोत्पन्नाः सत्यधर्मव्यवस्थिता ॥ ४६ ॥ पीड्यंते दानवैः पापैः कुत्र धर्मव्यव स्थितिः ॥ धर्मस्थिताः सदाचाराः पांडवा मम वंशजा ॥ ४७ ॥ दुखं बहुविधं प्राप्तास्तत्र धर्मस्य का स्थितिः ॥ अतो मे हृदयं तात वेपतेऽतीव संशये ॥ ४८ ॥ कुरु मेऽसंशयं चेतः समर्थोऽसि महामुने ॥ त्राहि संसारवार्धेस्त्वं ज्ञानपोतेन मां मुने ॥ ४९ ॥ मज्जंतं चोत्पतंतं च मग्नं मोहजलाविले ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कंधे जनमेजयप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ यत्त्वया च महाबाहो पृष्टोऽहं कुरुसत्तम ॥ तान्प्रश्नान्नारदः प्राह मया पृष्टो मुनीश्वरः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ व्यास किं ते ब्रवीम्यद्य पुराऽयंसंशयो मम ॥ उत्पन्नो हृदयेऽत्यर्थं संदेहासारपीडितः ॥ २ ॥ गत्वाऽहं पितरं स्थानेब्रह्माण ममितौजसम् ॥ अपृच्छं यत्त्वया पृष्टं व्यासाद्य प्रश्नमुत्तमम् ॥ ३ ॥ पितः कुतः समुत्पन्नं ब्रह्मांडमखिलं विभो ॥ भवत्कृतेन वा सम्यकिं वा विष्णु कृतं त्विदम् ॥ ४ ॥ रुद्रकृतं वा विश्वात्मन्ब्रूहि सत्यं जगत्पते ॥ आराधनीयः कः कामं सर्वोत्कृष्टश्च कः प्रभुः ॥ ५ ॥ तत्सर्वं वद मे ब्रह्मन्संदेहांश्छिधिचानघ ॥ निमग्नो ह्यस्मिसंसारे दुःखरूपेऽनृतोपमे ॥ ६ ॥

नारदजी बोले, हे व्यासजी ! आपसे मैं क्या कहूं ! पहले मेरे हृदयमें बड़ा सन्देह हुआ था ॥ २ ॥ तब मैं महातेजस्वी पिता ब्रह्माजीके निकट गया, हे व्यासजी ! जो तुमने पूँछा यही बात मैंने पिताजीसे पूँछी ॥ ३ ॥ हे पितः ! यह ब्रह्माण्ड किससे उत्पन्न हुआ है? यह आपका किया है वा विष्णुका ! ॥ ४ ॥ हेजगत्पते ! अथवा यह रुद्रका किया है ? सो यह सत्य कहिये. कौन सबसे उत्कृष्ट प्रभु आराधन करनेके योग्य है ? ॥ ५ ॥ सो यह सब आप कहकर सन्देह छेदन कीजिये मैं इस असत्य संसारमें निमग्न हो रहा हूं ॥ ६ ॥

संदेहसे चित्त दोलायमान होकर कभी शान्त नहीं हो सकता, तीर्थ देवता तथा दूसरे साधनोंमें ॥ ७ ॥ परतत्त्वको विना जाने कहां शान्ति हो सकती है, हे परतंप ! बहुत स्थलोंमें लगा हुआ चित्त शांतिको प्राप्त नहीं होता ॥ ८ ॥ किसका स्मरण करूं ? किसका भजन करूं ! कहां जाऊं ? किसका अर्चन करूं ? किसकी स्तुति करूं ? मैं सर्वेश्वरको नहीं जानता हूं ॥ ९ ॥ तब लोक पितामह ब्रह्माजी कहने लगे, हे व्यासजी ! जब मैंने यह प्रश्न किया तब ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले, हे पुत्र ! क्या कहूं यह प्रश्न बड़ा दुर्बोध है, हे महाभाग ! आपको इस प्रश्नमें विष्णु भी पूर्ण निश्चयसे नहीं कह सकते ॥ ११ ॥ हे महामते ! इस संसारसे रागी कोई भी इस बातको नहीं जानता है; जो विरक्त निरीह और अभिमान रहित है वह इस बातको जान सकता है ॥ १२ ॥ जब पूर्व

संदेहांदोलितं चेतो न प्रशाम्यति कुत्र चित् ॥ न तीर्थेषु नदेवेषु साधनेष्वितरेषु च ॥ ७ ॥ अविज्ञाय परं तत्त्वं कुतः शांति परंतपः ॥ विकीर्णं बहुधा चित्तं नकुत्र स्थिरतां व्रजेत् ॥ ८ ॥ कं स्मरामि यजे कं वा कं व्रजाम्यर्चयामि कम् ॥ स्तौमि कं नाभिजानामि देवं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ ९ ॥ ततो मां प्रत्युवाचेदं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ मया सत्यवतीसूनो कृते प्रश्ने सुदुस्तरे ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किं ब्रवीमि सुताद्याहं दुर्बोधं प्रश्नमुत्तमम् ॥ त्वया शक्यं महाभाग विष्णोरपि सुनिश्चयात् ॥ ११ ॥ रागी कोऽपि न जानाति संसारेऽस्मिन्महामते ॥ विरक्तश्च विजानाति निरीहो यो विमत्सरः ॥ १२ ॥ एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावरजं गमे ॥ भूतमात्रे समुत्पन्ने संजज्ञे कमलादहम् ॥ १३ ॥ नापश्यं तरणिं सोमं न वृक्षान्न च पर्वतान् ॥ कर्णिकायां समाविष्टश्चिंतामकरवं तदा ॥ १४ ॥ कस्मादहं समुद्भूतः सलिलेऽस्मिन्महार्णवे ॥ को मे त्राता प्रभुः कर्ता संहर्ता वा युगात्यये ॥ १५ ॥ नच भूर्विद्यते स्पष्टा यदाधारं जलं त्विदम् ॥ पंकजं कथमुत्पन्नं प्रसिद्धं रूढियोगयोः ॥ १६ ॥ पश्याम्यद्यास्य पंकं तं मूलं वै पंकजस्य च ॥ भविष्यति धरा तत्र मूलं नास्त्यत्र संशयः ॥ १७ ॥

कालमें यह जगत् स्थावर जंगमके नष्ट होनेसे एकार्णव था, तब पंच महाभूत मात्रके उत्पन्न होनेसे कमलसे मैंने जन्म लिया ॥ १३ ॥ उस समय चन्द्र सूर्य वृक्ष पर्वत आदि किसीका भी मैंने दर्शन नहीं किया, कर्णिकामें स्थित होकर मैं चिन्ता करने लगा ॥ १४ ॥ इस महासागरमें मैं कहांसे उत्पन्न हुआ हूं ! मेरा उत्पादक पालक वा संहर्ता युगात्ययमें कौन है ! ॥ १५ ॥ पृथ्वी भी स्पष्ट नहीं दीखती जिसके आधारमें यह जल है, परन्तु यह कमल प्रसिद्धरूप जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है ॥ १६ ॥ अब मैं इस कमलकी मूलको अवलोकन करूं अवश्य इसकी मूलमें धरा होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ १७ ॥

तब उस कमलसे उतरकर सहस्र वर्ष तक ढूंढ़ता रहा और धरणीको न पाया ॥१८॥ तप करो तप करो जब इस प्रकार आकाशसे वाणी हुई तब मैंने उस कमलमें सहस्र वर्ष तक तप किया ॥ १९ ॥ 'सृजन करो' फिर ऐसी वाणी सुनी गई यह सुनकर मैं विमूढ होगया और विचारने लगा क्या सृजन करूं ? और क्या करूं ? ॥ २० ॥ तब उस समय बडे दारुण मधुकैटभ दैत्य आकर प्राप्त हुए, उनको सागरमें युद्ध निमित्त आया देखकर मैं डरा ॥ २१ ॥ तब मैं नालका आश्रयकर जलके मध्यमें अवतरित हुआ वहां मैंने परम अद्भुत पुरुषका दर्शन किया ॥ २२ ॥ जो मेघके समान श्याम शरीर पीले वस्त्र पहरे चतुर्भुज शेषपर शयन किये हुए जगन्नाथ वनमालासे विभूषित ॥ २३ ॥ शंख चक्र गदा पद्मादि आयुधोंसे विराजमान थे इस प्रकार शेषशय्यापर

उत्तरं सलिले तत्र यावद्वर्षसहस्रकम् ॥ अन्वेषमाणो धरणीं नावापं तां यदा तदा ॥ १८ ॥ तपस्तपेति चाकाशे वागभूदशरीरिणी ॥ ततो मया तपस्तप्तं पद्मे वर्षसहस्रकम् ॥ १९ ॥ सृजंति पुनरुद्भूता वाणी तत्र श्रुता मया ॥ विमूढोऽहं तदाकर्ण्य कं सृजामि करोमि किम् ॥ २० ॥ तदा दैत्यावतिप्राप्तौ दारुणौ मधुकैटभौ ॥ ताभ्यां विभीषितश्चाहं युद्धाय मकरालये ॥ २१ ॥ ततोऽहं नालमालंब्य वारि मध्य मवातरम्॥तदा तत्र मया दृष्टः पुरुषः परमाद्भुतः ॥ २२ ॥ मेघश्यामशरीरस्तु पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ शेष शायी जगन्नाथो वन मालावि भूषितः ॥ २३ ॥ शंखचक्रगदा पद्माद्यायुधैः सुविराजितः॥तमद्राक्षं महाविष्णुं शेषपर्यंकशायिनम् ॥ २४ ॥ योगनिद्रा समाक्रांतमविस्पं दिनमच्युतम् ॥ शयानं तं समालोक्य भोगिभोगोपरिस्थितम् ॥ २५ ॥ चिंता ममाद्भुताजाता किं करोमीति नारद ॥ मया स्मृता तदा देवी स्तुता निद्रास्वरूपिणी ॥ २६ ॥ देहान्निर्गत्य सा देवी गगने संस्थिता शिवा ॥ अवितर्क्यशरीरा सा दिव्याभरणमंडिता ॥ २७ ॥ विष्णोर्देहं विहायाशु विरराज नभःस्थिता ॥ उदतिष्ठदमेयात्मा तया मुक्तो जनार्दनः ॥ २८ ॥

शयन करते महाविष्णुको मैंने देखा ॥ २४ ॥ जो योग निद्राके वशीभूत होनेसे कुछभी चलायमान नहीं थे उस प्रकार सर्पशय्यापर शयन करते देखकर ॥ २५ ॥ हे नारद ! मुझे बडी चिन्ता हुई कि मैं क्या करूं ? तब मैंने निद्रा स्वरूपिणी देवीका स्मरण किया. ॥ २६ ॥ तब वह देवी उनकी देहसे निर्गत होकर आकाशमें स्थित हुई, जो अवितर्क शरीर होनेसे दिव्य आभूषण धारण किये थी ॥ २७ ॥ इस प्रकार शीघ्रही विष्णुके देहको त्याग कर वह आकाशमें स्थित हुई, और उससे मुक्त होकर भगवान जनार्दन उठे ॥ २८ ॥

पांच सहस्र वर्षतक उन्होंने बडा युद्ध किया तब उन दैत्योंको नारायणने मारा ॥ २९ ॥ और विमल गोदी करके उसीपर उनका वध किया, और
जहां हम दोनों स्थित थे वहीं रुद्र देवता आकर प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ हम तीनोंने आकाशमें स्थित देवीका दर्शन किया, और स्तुतिको प्राप्त हो भगवती
हमसे बोली ॥ ३१ ॥ हमको कृपादृष्टिसे पवित्र कर देवी कहने लगी. हे ब्रह्मा विष्णु महेश ! तुम सावधान होकर अपने कार्योंको करो ॥ ३२ ॥ अब
सृष्टिस्थिति संहारके कार्यकरो यह दोनों दैत्य तो मृत्युको प्राप्त हुए हैं, और अपने २ स्थान बनाय आनंदपूर्वक निवास करो ॥ ३३ ॥ और अपने ऐश्वर्यसे
चार प्रकारकी प्रजाकी रचना करो. ब्रह्माजी बोले, यह भगवतीका सुन्दर और मृदु वचन श्रवणकरके ॥ ३४ ॥ हम सबने कहा हम शक्तिहीन होनेसे यह

पंचवर्षसहस्राणि कृतवान्युद्धमुत्तमम् ॥ तदा विलोकितौ दैत्यौ हरिणा विनिपातितौ ॥ २९ ॥ उत्संगं विपुलं कृत्वा तत्रैव निहतौ च तौ ॥
रुद्रस्तत्रैव संप्राप्तो यत्राऽऽवां संस्थितावुभौ ॥ ३० ॥ त्रिभिः संवीक्षिताऽस्माभिः ॥ स्वस्था देवी मनोहरा ॥ संतुस्ता परमा शक्तिरुवा
चास्मानवस्थितान् ॥ ३१ ॥ कृपावलोकनैः कृत्वा पावनैर्मुदितानथ ॥ देव्युवाच ॥ काजेशाः स्वानि कार्याणि कुरुध्वं समतंद्रिताः ॥ ३२ ॥
सृष्टिस्थितिविशिष्टानिहतावेतौ महासुरौ ॥ कृत्वा स्वानि निकेतानि वसध्वं विगतज्वराः ॥ ३३ ॥ प्रजाश्चतुर्विधाः सर्वाः सृजध्वं स्वा
विभूतिभिः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छुत्वा वचनं तस्याः पेशलं सुखदं मृदु ॥ ३४ ॥ अब्रूम तामशक्ताः स्मः कथं कुर्मस्त्विमाः प्रजाः ॥ न मही
वितता मातः सर्वत्र विततं जलम् ॥ ३५ ॥ न भूतानि गुणाश्चापि तन्मात्राणींद्रियाणि च ॥ तदाकर्ण्य वचोस्माकं शिवा जाता
स्मितानना ॥ ३६ ॥ झटित्येवागतं तत्र विमानं गगनाच्छुभम् ॥ सोवाचास्मिन्सुराः कामं विशध्वं गतसाध्वसाः ॥ ३७ ॥ विमाने ब्रह्म
विष्ण्वीशा दर्शयाम्यद्य चाद्भुतम् ॥ तन्निसम्य वचस्तस्या ओमित्युक्त्वा पुनर्वयम् ॥ ३८ ॥ समारुह्योपविष्टाः स्मो विमाने रत्नमंडिते ॥
मुक्तादामसुसंवीते किंकिणीजालशब्दिते ॥ ३९ ॥

प्रजा किस प्रकार करें ? हे मातः ! पृथ्वीभी तो नहीं सर्वत्र जल भर रहा है ॥ ३५ ॥ न भूतोंके गुण तन्मात्रा और इन्द्रिय हैं, हमारे यह वचन सुनकर
शिवा हंसने लगी ॥ ३६ ॥ और उस समय वहां आकाशसे एक विमान उतरा और कहा हे देवताओ ! प्रसन्नतासे आप इस विमानमें आरूढ हो ॥ ३७ ॥
हे ब्रह्मा विष्णु महेश ! विमानमें बैठो मैं अद्भुत वार्ता तुमको दिखाऊंगी यह वचन सुन हम तीनों इस बातको स्वीकार करके ॥ ३८ ॥ रत्नजटित विमानमें
प्रसन्न होकर बैठे जिसमें मोती जड़े और घूंघरुओंका शब्द हो रहा था, ॥ ३९ ॥

वह मनोहर देवस्थानके समान था. हम तीनों शंकारहित हो वहां बैठे तब हम विजितेन्द्रियोंको उसपर स्थित देख देवीने ॥ ४० ॥ अपनी शक्तिसे आकाशमें विमान चलाया ॥ ४१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां तृतीयस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले, मनके वेगसे वह विमान स्थानान्तरमें चलागया, वहां प्रलयका जल न देखकर हम शंकित हुए ॥ १ ॥ सब वृक्ष फलोंसे मनोहर कोकिलके शब्दोंसे शब्दायमान थे, भूमि पर्वत वन उपवन सब मनोहर थे ॥ २ ॥ नारी पुरुष पशु नदी बावडी कुंए सरोवर छोटे सरोवर और झरनोंसे शोभित ॥ ३ ॥ चारों ओरसे पुर बड़ा रमणीय दिव्य परिखाओंसे युक्त यज्ञशाला और अनेक महलोंसे युक्त ॥ ४ ॥ उस नगरको देखते ही यह ज्ञान हुआ कि यह स्वर्ग है और किसने इसका निर्माण

सुरसद्मनिभे रम्ये त्रयस्तत्राविशंकिताः ॥ सोपविष्टांस्ततो दृष्ट्वा देव्यस्मान्विजितेंद्रियान् ॥ ४० ॥ स्वशक्त्या तद्विमानं वै नोदयामास चांबरे ॥ ४१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विमानं तन्मनोवेगं यत्र स्थानांतरे गतम् ॥ न जलं तत्र पश्यामो विस्मिताः स्मो वयं तदा ॥ १ ॥ वृक्षाः सर्वफला रम्याः कोकिलारावमंडिताः ॥ मही महीधराः कामं वनान्युपवनानि च ॥ २ ॥ नार्यश्च पुरुषाश्चैव पशवश्च सरिद्वराः ॥ वाप्यः कूपास्तडागाश्च पल्वलानि च निर्झराः ॥ ३ ॥ पुरतो नगरं रम्यं दिव्यप्राकारमंडितम् ॥ यज्ञशालासमायुक्तं नानाहर्म्यविराजितम् ॥ ४ ॥ प्रत्यभिज्ञा तदा जाताऽप्यस्माकं प्रेक्ष्य तत्पुरम् ॥ स्वर्गोऽयमिति केनासौ निर्मितोऽस्ति तदाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥ राजानं देवसंकाशं व्रजंतं मृगयां वने ॥ अस्माभिः संस्थिता दृष्टा विमानोपरि चांबिका ॥ ६ ॥ क्षणाच्चचाल गगने विमानं पवनेरितम् ॥ मुहूर्ताद्वा ततः प्राप्तं देशे चान्ये मनोहरे ॥ ७ ॥ नंदनं च वनं तत्र दृष्टमस्माभिरुत्तमम् ॥ पारिजाततरुच्छायासंश्रिता सुरभिः स्थिता ॥ ८ ॥ चतुर्दंतो गजस्तस्याः समीपे समवस्थितः ॥ तत्राप्सरसां वृन्दानि मेनकाप्रभृतीनि च ॥ ९ ॥ क्रीडंति विविधैर्भावैर्गाननृत्य समन्वितैः ॥ गंधर्वाः शतशस्तत्र यक्षा विद्याधरास्तथा ॥ १० ॥

किया है ? ॥ ५ ॥ वहां हमने देवराजको मृगया करते वनमें विचरते हुए देखा, विमान पर भगवतीका दर्शन किया ॥ ६ ॥ फिर पवनसे प्रेरित हुआ विमान क्षणमात्रमें दूसरे मनोहर देशमें प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ वहां हमने सुन्दर नन्दनवन देखा पारिजात वृक्षकी छायामें सुरभी स्थित थी ॥ ८ ॥ उसके समीपही चार दांतवाला हाथी स्थित देखा और वहां मेनका आदि अप्सराओंके समूह देखे ॥ ९ ॥ जो अनेक प्रकारके भाव और नृत्य गीतादिसे क्रीड़ा करती थीं, वहां सैकडों गन्धर्व यक्ष विद्याधर देखे ॥ १० ॥

मंदार वाटिकाके मध्यमें गाते और रमण करते हैं वहां शचीसहित इन्द्रका दर्शन किया ॥ ११ ॥ इस प्रकार त्रिविष्टपको देखकर हम तो विस्मित हो गये. वरुण, कुबेर, यम, सूर्य, अग्नि ॥ १२ ॥ इनको देखकर हम बड़े विस्मित हुए; तब उस पुरसे वही देवराज निर्गत हुए॥ १३ ॥ जो देवराज स्वभावसे अक्षोभ्य नरवाहन शिबिकापर स्थित थे, फिर हम वडे वेगसे विमानपर चले ॥ १४ ॥ तब सब लोकोंसे नमस्कृत ब्रह्मलोकमें पहुँचे. वहां ब्रह्मांजीको स्थित देखकर नारायण बडे विस्मित हुए ॥ १५ ॥ वहां उनकी सभामें अंगों सहित सब वेद उपस्थित थे, यह स्वरूप धारण किये थे, सागर नदी पर्वत

मंदारवाटिकामध्ये गायंति च रमंति च ॥ दृष्टः शतक्रतुस्तत्र पौलोम्या सहितः प्रभुः ॥ ११ ॥ वयं तु विस्मिताश्चास्म दृष्ट्वा त्रैविष्टपं तदा ॥ यादःपतिं कुबेरं च यमं सूर्यं विभावसुम् ॥ १२ ॥ विलोक्य विस्मिताश्चास्म वयं तत्र सुरान्स्थितान् ॥ तदा विनिर्गतो राजा पुरात्तस्मात्सुमंडितात् ॥ १३ ॥ देवराज इवाक्षोभ्यो नरवाह्यावनौ स्थितः॥ विमानस्था वयं तच्च चचाल तरसा गतम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मलोकं तदा दिव्यं सर्वदेव नमस्कृतम् ॥ तत्र ब्रह्माणमालोक्य विस्मितौ हरकेशवौ ॥ १५ ॥ सभायां तत्र वेदाश्च सर्वे सांगाः स्वरूपिणः ॥ सागरासरितश्चैव पर्वताः पन्नगोरगाः ॥ १६ ॥ मामूचतुश्चतुर्वक्त्रः कोऽयं ब्रह्मा सनातनः ॥ ताववोचमहं नैव जाने सृष्टपतिं पतिम् ॥ १७ ॥ कोऽहं कोऽयं किमर्थं वा भ्रमोऽयं मम चेश्वरौ ॥ क्षणादथ विमानं तच्चचालाशु मनोजवम् ॥ १८॥ कैलासशिखरे प्राप्तं रम्ये यक्षगणान्विते ॥ मंदारवाटिकारम्ये कीरकोकिलकूजिते ॥ १९ ॥ वीणामुरजवाद्यैश्चनादिते सुखदे शिवे ॥ यदा प्राप्तं विमानं तत्तदैव सदनाच्छुभात् ॥ २० ॥

पन्नग उरग थे ॥ १६ ॥ तब केशव और शिवने हमसे पूँछा यह सनातन ब्रह्मा कौन हैं ? तब हमने हर केशवसे कहा मैं इनको नहीं जानता हूं ! ॥ १७ ॥ हे ईश्वरो ! मैं कौन हूं ? यह कौन हैं ? यह हमको भ्रम हुआ है, इसमें हम कुछ नहीं जानते यह कहते ही क्षणमात्रमें वायुवेगसे वह विमान चला ॥ १८ ॥ और यक्षगणोंसे सेवित मनोहर कैलास पर्वतमें प्राप्त हुआ, जहां मनोहर मंदार वाटिका थी और कीर कोकिल कूज रहे थे ॥ १९ ॥ वीणा मुरजके बाजोंसे नादित सुखदायक शिव स्वरूप था. जब वहां विमान प्राप्त हुआ तभी उस स्थानसे ॥ २० ॥

१—यह ब्रह्मादिक दूसरे ब्रह्माण्डोंके देखे ।

वृषपर स्थित भगवान् त्रिलोचन देव निर्गत हुए जो पंचमुख दशभुजा अर्धचन्द्रसे मस्तकमें शोभायमान थे ॥ २१ ॥ व्याघ्रधारण किये गजचर्मका उत्तरीय धारे पार्ष्णिभागमें स्थित महावीर गणेश और कार्तिकेय ॥२२॥ शिवके सहित दोनों पुत्र बिराजमान थे और नन्दीको आदि लेकर सब गण थे ॥ २३ ॥ जय शब्द कहते हुए शिवके पीछे गमन करते हैं. हे नारद ! वहां दूसरे शंकरको देखकर हम बड़े विस्मित हुए ॥ २४ ॥ मातृकाओंके सहित शंकरको देख हम बड़े विस्मित हुए फिर क्षणमात्रमें पर्वतशृंगसे वह विमान चला ॥ २५ ॥ और वैकुण्ठमें रमारमणके मंदिरमें प्राप्त हुआ, हे नारद ! वहां मैंने अलौकिक समृद्धि देखी ॥ २६ ॥ और विष्णु भी वैकुण्ठको देखकर बडे बिस्मित हुए, जब तक मंदिरके आगे होकर चले कि तब कमल लोचन हरि

निर्गतो भगवाञ्छंभुर्वृषारूढस्त्रिलोचनः ॥ पंचाननो दशभुजः कृतसोमार्धशेखरः ॥ २१ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः ॥ पार्ष्णि रक्षौ महावीरौ गजाननषडाननौ ॥२२॥ शिवेन सह पुत्रौ द्वौ व्रजमानौ विरेजतुः ॥ नंदिप्रभृतयःसर्वे गणपाश्ववराश्च ते ॥ २३ ॥ जय शब्दं प्रयुंजाना व्रजंति शिवपृष्ठगाः ॥ तं वीक्ष्य शंकरं चान्यं विस्मितास्तत्र नारद ॥ २४ ॥ मातृभिः संशयाविष्टस्तत्राहं न्यवसं मुने ॥ क्षणात्तस्माद्गिरेः शृंगाद्विमानं वातरंहसा ॥ २५ ॥ वैकुंठसदनं प्राप्तं रमारमणमंदिरम् ॥ असंभाव्या विभूतिश्च तत्र दृष्टा मया सुत ॥ २६ ॥ विसिष्मिये तदा विष्णुर्दृष्ट्वा तत्पुरमुत्तमम् ॥ सदनाग्रे ययौ तावद्धरि कमललोचनः ॥ २७ ॥ अतसीकुसुमाभासः पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ द्विजराजाधिरूढश्च दिव्याभरणभूषितः ॥ २८ ॥ वीज्यमानस्तदा लक्ष्म्या कामिन्या चामरैः शुभैः ॥ तं वीक्ष्य विस्मिताः सर्वे वयं विष्णुं सनातनम् ॥ २९ ॥ परस्परं निरीक्षंतः स्थितास्तस्मिन्वरासने ॥ ततश्चचाल तरसा विमानंवातरंहसा ॥ ३० ॥ सुधासमुद्रः संप्राप्तो मिष्टवारिमहोर्मिमान् ॥ यादोगणसमाकीर्णश्चलद्वीचिविराजितः ॥ ३१ ॥ मंदारपारिजाताद्यैः पादपैरतिशोभितः ॥ नानास्तरण संयुक्तो नानाचित्रविचित्रितः ॥ ३२ ॥

भगवान् ॥ २७ ॥ अलसीके फूलके समान कांतिमान् पीतवसन चतुर्भुज गरुडपर चढ़े दिव्य आभरणसे भूषित ॥ २८ ॥ लक्ष्मीसे सुन्दर चामरों द्वारा बीज्यमान उन सना तन विष्णुको देखकर हम सब परस्पर आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ और परस्पर एक दूसरेको देखकर विमानमें स्थित रहे, क्षणमात्रमें वायुवेगसे वहांसे विमान चला ॥ ३० ॥ और मीठी तरंगवाले सुधा समुद्रमें प्राप्त हुआ जो जल चरोंसे युक्त और चलायमान तरंगोंसे व्याप्त था ॥ ३१ ॥ मंदार और पारिजातके वृक्षोंवाले द्वीपसे शोभायमान अनेक आस्तरणोंसे शोभित और चित्र विचित्र पदार्थोंसे युक्त ॥ ३२ ॥

मोतीमाला तथा अनेक वस्तुओंसे विराजमान अशोक बकुल वृक्ष कुरुबकोंसे सम्पन्न ॥ ३३ ॥ चारों ओर मनोहर केतकी और चम्पाके वृक्षोंसे युक्त कोकिलाके शब्द और दिव्य गन्धसे युक्त ॥ ३४ ॥ भौंरों की झनकारसे युक्त परम अद्भुत था. उस द्वीपमें शिवाकार एक परम मनोहर पलँग था ॥ ३५ ॥ जो रत्नोंसे खचित और अनेक रत्नोंसे विराजित था, इस प्रकार विमानमें स्थित हुए ही हमने वह दूरसे देखा ॥ ३६ ॥ जो अनेक प्रकारके बिछावनोंसे सम्पन्न इन्द्र चापसे युक्त था उस पलँगपर कोई बड़ी श्रेष्ठ स्त्री स्थित थी ॥ ३७ ॥ रक्तमाला और वस्त्र धारण किये लाल गंध और अनुलेपन लगाये लाल मनोहर नेत्र कोटि बिजलीके समान कान्तिमान् ॥ ३८ ॥ सुन्दर मुख लाल दांतोंसे विराजमान करोड़ों लक्ष्मीसे भी सुन्दर सूर्य

मुक्तादामपरिक्लिष्टो नानादामविराजितः ॥ अशोकबकुलाख्यैश्च वृक्षैः कुरुबकादिभिः ॥ ३३ ॥ संवृतः सर्वतः सौम्यैः केतकी चंपकैर्वृतः ॥
कोकिलारावसंघुष्टो दिव्य गंधसमन्वितः ॥ ३४ ॥ द्विरेफातिरणत्कारै रंजितः परमाद्भुतः ॥ तस्मिन्द्वीपे शिवाकारः पर्यंकः सुमनोहरः
॥ ३५ ॥ रत्नालि खचितोऽत्यर्थं नानारत्नविराजितः ॥ दृष्टोऽस्माभिर्विमानस्थैर्दूरतः परिमंडित ॥ ३६ ॥ नानास्तरणसंछन्न इंद्रचापस
मन्वितः ॥ पर्यंकप्रवरे तस्मिन्नुपविष्टा वरांगना ॥ ३७ ॥ रक्तमाल्यांबरधरा रक्तगंधानुलेपना ॥ सुरक्तनयनाकांता विद्युत्कोटिसमप्रभा
॥ ३८ ॥ सुचारुवदना रक्तदंतच्छदविराजिता ॥ रमाकोटयधिका कांत्या सूर्यबिंबनिभाखिला ॥ ३९ ॥ वरपाशांकुशाभीष्टधरा श्रीभुवने
श्वरी ॥ अदृष्टपूर्वा सा दृष्टा सुंदरी स्मितभूषणा ॥ ४० ॥ ह्रींकारजपनिष्ठस्तु पक्षिवृंदैर्निषेविता ॥ अरुणा करुणामूर्तिः कुमारी नवयौवना
॥ ४१ ॥ सर्वशृङ्गारवेषाढया मंदस्मितमुखांबुजा ॥ उद्यत्पीनकुचद्वंद्वनिर्जितांभोजकुड्मला ॥४२॥ नानामणिगणाकीर्णभूषणैरुपशोभिता ॥
कनकांगदकेयूरकिरीटपरिशोभिता ॥ ४३ ॥ कनच्छ्रीचक्रताटंकविटंकमदनांबुजा ॥ हृल्लेखा भुवनेशीति नामजापपरायणैः ॥ ४४ ॥

विश्वके समान मनोहर ॥ ३९ ॥ वर पाश अंकुश अभीष्टको धारण किए ऐसी मन्दहास्य युक्त अपूर्व सुन्दरीका दर्शन किया ॥ ४० ॥ ह्रींकार जपमें निष्ठावाले पक्षिगणोंसे युक्त अरुणा और करुणाकी मूर्ति नवयौवना कुमारी ॥ ४१ ॥ सम्पूर्ण शृङ्गार किये मन्दस्मित मुख कमलसे युक्त, उद्यत पीन कुचोंके द्वन्द्वसे कमल कुड्मलको जय करनेवाली ॥४२॥ अनेक प्रकारके मणिगण और भूषणोंसे शोभायमान कनक बाजू केयूर और किरीटसे शोभायमान ॥ ४३ ॥ दीप्यमान जो श्रीचक्राकार ताटकरत्न कुंडल उनसे शोभित मुखकमलवाली, हृदयमें लेखाके समान जागती हुई प्राणशक्ति अर्थात् हृदयागारमें निवास करनेवाली और भुवनेशी ब्रह्माण्डकी अधीश्वरी इन नामोंके जपनेमें परायण ॥ ४४ ॥

नित्यप्रति सखी समूहोंसे स्तुत्य, भुवनेश्वरी महेश्वरी हृल्लेखा को आदि लेकर अमर कन्याओंसे वेष्टित ॥ ४५ ॥ और अनंग कुसुमादि देवियोंसे परिवेष्टित, और षट्कोणोंके मध्यमें यंत्रराजके ऊपर स्थित हुई देवीको ॥ ४६ ॥ देख हम सब विस्मित होकर वहां स्थित हुए. यह कौन कन्या? और क्या नाम है ! यहां क्यों स्थित है ? किस प्रकार हम इसको जानें ? ॥ ४७ ॥ जो यह सहस्रनेत्र सहस्रकर सहस्रमुखी दूरसे दीखती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥ यह स्त्री अप्सरा गंधर्वी और देवांगना नहीं है. हे नारद ! इस प्रकार सन्देहको प्राप्त होकर हम वहां स्थित हुए ॥ ४९ ॥ तब भगवान् विष्णु उस चारुहासिनीको देखकर अपने मनमें निश्चय कर उनको अम्बा जानकर बोले ॥ ५० ॥ यही भगवती देवी हम सबका कारण है, यही महाविद्या महामाया पूर्ण अविनाशिनी

सखीवृंदैः स्तुता नित्यं भुवनेशी महेश्वरी ॥ हृल्लेखाद्याभिरमरकन्याभिः परिवेष्टिता ॥ ४५ ॥ अनंगकुसुमाद्याभिर्देवीभिः परिवेष्टिता ॥ देवी षट्कोणमध्यस्थयंत्रराजोपरिस्थिता ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा तां विस्मिताः सर्वे वयं तत्र स्थिताभवन् ॥ केयं कांता च किं नाम न जानीमोऽत्र संस्थिता ॥ ४७ ॥ सहस्रनयनारामा सहस्रकरसंयुता ॥ सहस्रवदना रम्या भाति दूरादसंशयम् ॥ ४८ ॥ नाप्सरा नापि गंधर्वी नेयं देवांगना किल ॥ इति संशयमापन्नास्तत्र नारद सस्थिताः ॥ ४९ ॥ तदाऽसौ भगवान्विष्णुर्दृष्ट्वा तां चारुहासिनीम् ॥ उवाचांबां स्वविज्ञानात्कृत्वा मनसि निश्चयम् ॥ ५० ॥ एषा भगवती देवी सर्वेषां कारणं हि नः ॥ महाविद्या महामाया पूर्णा प्रकृतिरव्यया ॥ ५१ ॥ दुर्ज्ञेयाऽल्पधियां देवी योगगम्या दुराशया ॥ इच्छा परात्मनः कामं नित्यानित्यस्वरूपिणी ॥ ५२ ॥ दुराराध्याऽल्पभाग्यैश्चदेवी विश्वेश्वरी शिवा ॥ वेदगर्भा विशालाक्षी सर्वेषामादिरीश्वरी ॥ ५३ ॥ एषा संहृत्य सकलं विश्वं क्रीडति संक्षये ॥ लिंगानि सर्वजीवानां स्वशरीरे निवेश्य च ॥ ५४ ॥ सर्वबीजमयी ह्येषा राजते सांप्रत सुरौ ॥ विभूतयः स्थिताः पार्श्वे पश्यतां कोटिशः क्रमात् ॥ ५५ ॥

प्रकृति है ॥ ५१ ॥ यह देवी अल्पबुद्धिवालोंको दुर्ज्ञेय योगगम्य दुराशय है, यह परमात्माकी इच्छारूप है; नित्य अनित्य स्वरूपवाली है ॥ ५२ ॥ यह विश्वेश्वरी शिवा अल्प भागवाले पुरुषोंसे आराधनके योग्य नहीं है यह वेदगर्भा विशालाक्षी सबकी आदि और ईश्वरी है ॥ ५३ ॥ यह सब विश्वकी क्रीडा करके युगक्षयमें क्रीडा करती है और सबके बीज लिंग अपनेमें लय कर लेती है ॥ ५४ ॥ हे दोनों देवताओ ! यह सब जीवमयी विराज मान है देखो अनन्त विभूति इसके समीप स्थित हैं ॥ ५५ ॥

यह दिव्य आभरणसे भूषित दिव्यगंध लगाये इनकी परिचर्या करती हैं, हे ब्रह्मा, शंकर सो तुम देखो ॥ ५६॥ इससे हम सब धन्य महाभाग और कृतकृत्य हैं जो इस समय हम भगवतीके दर्शनपथमें प्राप्त हैं ॥ ५७ ॥ जो पहले तप किया था यह उसीका फल है, अन्यथा इस प्रकारका दर्श कैसेन हो सकता है ॥५८॥ जो पुण्यशील तपस्यामें कुशल हैं वे ही इसका दर्शन कर सकते हैं, रोगी पुरुष भगवती शिवाका दर्शन नहीं कर सकते ॥५९॥ यही मूलप्रकृति सदा पुरुषसे संगत है, यही परमात्माके निमित्त ब्रह्माण्ड रचना कर दिखाती है ॥ ६० ॥ हे देवताओ ! यही अखिल ब्रह्माण्डकी द्रष्ट्री है ! यही सबकी कारण माया सर्वेश्वरी शिवा है ॥ ६१ ॥ कहां हम कहां दूसरे देवता रमाको आदि लेकर स्त्रियें इनके लक्ष अंशपरभी कभी कोई नहीं हो सकतीं

दिव्याभरणभूषाढ्या दिव्यगंधानुलेपनाः ॥ परिचर्यापराः सर्वाः पश्यतं ब्रह्मशंकरौ ॥ ५६ ॥ धन्या वयं महाभागाः कृतकृत्याः स्म सांप्रतम् ॥ यदत्र दर्शनंप्राप्ता भगवत्याः स्वयं त्विदम् ॥ ५७ ॥ तपस्तप्तं पुरा यत्नात्तस्येदं फलमुत्तमम् ॥ अन्यथा दर्शनं कुत्र भवेदस्माकमादरात् ॥ ५८ ॥ पश्यंति पुण्यपुंजा ये ये वदान्या स्तपस्विनः ॥ रागिणो नैव पश्यंति देवीं भगवतीं शिवाम् ॥ ५९ ॥ मूलप्रकृतिरेवैषा सदा पुरुष संगता ॥ ब्रह्मांडं दर्शयत्येषा कृत्वा वै परमात्मने ॥ ६० ॥ द्रष्टाऽसौ दृश्यमखिलं ब्रह्मांडं देवतास्सुरौ ॥ तस्यैषा कारणं सर्वा माया सर्वेश्वरी शिवा ॥ ६१ ॥ क्वाहं वा क्व सुराः सर्वे रमाद्याः सुरयोषितः ॥ लक्षांशेन तुलामस्या न भवामः कथंचन ॥ ६२ ॥ सैषा वरांगना नाम या दृष्टा वै महार्णवे ॥ बालभावे महादेवी दोलयंतीव मां मुदा ॥ ६३ ॥ शयानं वटपत्रे च पर्यंके सुस्थिरे दृढे ॥ पादांगुष्ठं करे कृत्वानिवेश्य मुखपंकजे ॥ ६४ ॥ लेलिहंतं च क्रीडंतमनेकैर्बालचेष्टितैः ॥ रममाणं कोमलांगं वटपत्रपुटे स्थितम् ॥ ६५ ॥ गायंती दोलयंती च बालभावान्मयि स्थिते ॥ सेयं सुनिश्चितं ज्ञानं जातं मे दर्शनादिव ॥ ६६ ॥

॥ ६२ ॥ यह वही है जो हमने सागरमें देखी थी जो बालभावमें हमको खिला रही थी ॥ ६३ ॥ जिस समय हम वट पत्रपर जो दृढ पर्यंकके समान था शयन करते थे और पदांगुष्ठ मुख कमलमें कर उसका रस लेते थे ॥ ६४ ॥ अनेक बाल चेष्टाओंसे ओठ चाटते तथा क्रीडा करते हुए रमण करते हुए कोमल शरीर वट पत्रके दोनेमें स्थित ॥ ६५ ॥ मेरे बालभावमें स्थित होनेसे यह गाती और खिलाती थी सो मेरे दर्शनसे यह निश्चय ज्ञान प्राप्त हुआ है ॥ ६६ ॥

यह अवश्यही हम सबकी माता है सुनों मैं कहता हूं मैंने पहले अनुभव किया है वही यह ज्ञान मुझको प्रादुर्भूत हुआ है ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले भगवान् विष्णु जनार्दन यह कहकर फिर बोले हम प्रणामकरते २ इनके समीप चले ॥ १ ॥ यह श्रेष्ठ महामाया हमको वर देगी हम निर्भय होकर इनके चरणोंमें भक्ति करें ॥ २ ॥ जो हमको द्वारमें स्थित परिचारिका निवारणा करेंगी, तो वहीं स्थित होकर देवीकी स्तुति करेंगे ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले, ऐसा भगवान् विष्णुके कहनेपर हम प्रसन्न हो वहां स्थित हुए और निकट जानेके निमित्त प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ और हम स्वीकार कर तीनों विमानसे उतरकर शंका करते हुए द्वारपर स्थित हुए ॥ ५ ॥ भगवती देवीने उन सबको द्वारपर स्थित

कामं नो जननी सैषाशृणु तं प्रवदाम्यहम् ॥ अनुभूते मया पूर्वं प्रत्यभिज्ञा समुत्थिता ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशाहस्र्यां संहितायां तृतीस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनराह जनार्दनः ॥ वयं गच्छेमपार्श्वेऽस्याः प्रणमंतः पुनः पुनः ॥ १ ॥ सेयंवरा महामाया दास्यत्येषा वरान्हि नः ॥ स्तुवामः संनिधिं प्राप्य निर्भयाश्चरणांतिके ॥ २ ॥ यदि नो वारयिष्यंति द्वारस्थाः परिचारकाः ॥ पठिष्यामश्च तत्रस्थाः स्तुतिं देव्याः समाहिताः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ते हरिणा वाक्ये सुप्रहृष्टौ सुसंस्थितौ ॥ जातौ प्रमुदितौ कामं निकटे गमनाय च ॥ ४ ॥ ओमित्युक्त्वा हरिं सर्वे विमानात्त्वरितास्त्रयः ॥ उत्तीर्य निर्गताद्वारि शंकमाना मनस्यलम् ॥ ५ ॥ द्वारस्थान्वीक्ष्य तान्सर्वान्देवी भगवती तदा ॥ स्मितं कृत्वा चकाराशु तांस्त्रीन्स्त्रीरूपधारिणः ॥ ६ ॥ वयं युवतयो जाताः सुरूपाश्चारुभूषणाः ॥ विस्मयं परमं प्राप्ता गतास्तत्संनिधिं पुनः ॥ ७ ॥ सा दृष्ट्वा नः स्थितांस्तत्र स्त्रीरूपाश्चरणांतिके ॥ व्यलोकयत चार्वंगी प्रेमसंपूर्णया दृशा ॥ ८ ॥ प्रणम्य तां महादेवीं पुरतः संस्थिता वयम् ॥ परस्परं लोकयंतः स्त्रीरूपाश्चारुभूषणाः ॥ ९ ॥ पादपीठं प्रेक्षमाणा नानामणि विभूषितम् ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं स्थितास्तत्र वयं त्रयः ॥ १० ॥

देखकर मंद मुसक्यायकर तीनोंको स्त्रीरूप कर दिया ॥ ६ ॥ हम सुन्दर भूषण रूपादि धारे स्त्रीरूप होगये और परम विस्मयको प्राप्त हो भगवतीके समीप गये ॥ ७ ॥ उन्होंने हमें स्त्रीरूपमें चरणके समीप स्थित देखा तब कृपा दृष्टिसे भगवती हमको देखने लगी ॥ ८ ॥ हम उनको प्रणामकर आगे स्थित हुए और स्त्रीरूपमें सुन्दर भूषण पहरे परस्पर देखने लगे ॥ ९ ॥ अनेक मणियोंसे भूषित उनके पादपीठको देखने लगे जो अनेक महारत्नोंसे भूषित था वह कोटि सूर्यके समान प्रकाशमान था वहां हम तीनों स्थित हुए ॥ १० ॥

यह दिव्य आभरणसे भूषित दिव्यगंध लगाये इनकी परिचर्या करती हैं, हे ब्रह्मा, शंकर सो तुम देखो ॥ ५६॥ इससे हम सब धन्य महाभाग और कृतकृत्य हैं जो इस समय हम भगवतीके दर्शनपथमें प्राप्त हैं ॥ ५७ ॥ जो पहले तप किया था यह उसीका फल है, अन्यथा इस प्रकारका दर्श कैसेन हो सकता है ॥५८॥ जो पुण्यशील तपस्यामें कुशल हैं वे ही इसका दर्शन कर सकते हैं, रोगी पुरुष भगवती शिवाका दर्शन नहीं कर सकते ॥५९॥ यही मूलप्रकृति सदा पुरुषसे संगत है, यही परमात्माके निमित्त ब्रह्माण्ड रचना कर दिखाती है ॥ ६० ॥ हे देवताओ ! यही अखिल ब्रह्माण्डकी द्रष्ट्री है ! यही सबकी कारण माया सर्वेश्वरी शिवा है ॥ ६१ ॥ कहां हम कहां दूसरे देवता रमाको आदि लेकर स्त्रियें इनके लक्ष अंशपरभी कभी कोई नहीं हो सकतीं

दिव्याभरणभूषाढ्या दिव्यगंधानुलेपनाः ॥ परिचर्यापराः सर्वाः पश्यतं ब्रह्मशंकरौ ॥ ५६ ॥ धन्या वयं महाभागाः कृतकृत्याः स्म सांप्रतम् ॥ यदत्र दर्शनंप्राप्ता भगवत्याः स्वयं त्विदम् ॥ ५७ ॥ तपस्तप्तं पुरा यत्नात्तस्येदं फलमुत्तमम् ॥ अन्यथा दर्शनं कुत्र भवेदस्माकमादरात् ॥ ५८ ॥ पश्यंति पुण्यपुंजा ये ये वदान्या स्तपस्विनः ॥ रागिणो नैव पश्यंति देवीं भगवतीं शिवाम् ॥ ५९ ॥ मूलप्रकृतिरेवैषा सदा पुरुष संगता ॥ ब्रह्मांडं दर्शयत्येषा कृत्वा वै परमात्मने ॥ ६० ॥ द्रष्टाऽसौ दृश्यमखिलं ब्रह्मांडं देवतास्सुरौ ॥ तस्यैषा कारणं सर्वा माया सर्वेश्वरी शिवा ॥ ६१ ॥ क्वाहं वा क्व सुराः सर्वे रमाद्याः सुरयोषितः ॥ लक्षांशेन तुलामस्या न भवामः कथंचन ॥ ६२ ॥ सैषा वरांगना नाम या दृष्टा वै महार्णवे ॥ बालभावे महादेवी दोलयंतीव मां मुदा ॥ ६३ ॥ शयानं वटपत्रे च पर्यंके सुस्थिरे दृढे ॥ पादांगुष्ठं करे कृत्वानिवेश्य मुखपंकजे ॥ ६४ ॥ लेलिहंतं च क्रीडंतमनेकैर्बालचेष्टितैः ॥ रममाणं कोमलांगं वटपत्रपुटे स्थितम् ॥ ६५ ॥ गायंती दोलयंती च बालभावान्मयि स्थिते ॥ सेयं सुनिश्चितं ज्ञानं जातं मे दर्शनादिव ॥ ६६ ॥

॥ ६२ ॥ यह वही है जो हमने सागरमें देखी थी जो बालभावमें हमको खिला रही थी ॥ ६३ ॥ जिस समय हम वट पत्रपर जो दृढ पर्यंकके समान था शयन करते थे और पदांगुष्ठ मुख कमलमें कर उसका रस लेते थे ॥ ६४ ॥ अनेक बाल चेष्टाओंसे ओठ चाटते तथा क्रीडा करते हुए रमण करते हुए कोमल शरीर वट पत्रके दोनेमें स्थित ॥ ६५ ॥ मेरे बालभावमें स्थित होनेसे यह गाती और खिलाती थी सो मेरे दर्शनसे यह निश्चय ज्ञान प्राप्त हुआ है ॥ ६६ ॥

यह अवश्यही हम सबकी माता है सुनों मैं कहता हूं मैंने पहले अनुभव किया है वही यह ज्ञान मुझको प्रादुर्भूत हुआ है ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले भगवान् विष्णु जनार्दन यह कहकर फिर बोले हम प्रणामकरते २ इनके समीप चले ॥ १ ॥ यह श्रेष्ठ महामाया हमको वर देगी हम निर्भय होकर इनके चरणोंमें भक्ति करें ॥ २ ॥ जो हमको द्वारमें स्थित परिचारिका निवारणा करेंगी, तो वहीं स्थित होकर देवीकी स्तुति करेंगे ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले, ऐसा भगवान् विष्णुके कहनेपर हम प्रसन्न हो वहां स्थित हुए और निकट जानेके निमित्त प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ और हम स्वीकार कर तीनों विमानसे उतरकर शंका करते हुए द्वारपर स्थित हुए ॥ ५ ॥ भगवती देवीने उन सबको द्वारपर स्थित

कामं नो जननी सैषाशृणु तं प्रवदाम्यहम् ॥ अनुभूते मया पूर्वं प्रत्यभिज्ञा समुत्थिता ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशाहस्र्यां संहितायां तृतीस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनराह जनार्दनः ॥ वयं गच्छेमपार्श्वेऽस्याः प्रणमंतः पुनः पुनः ॥ १ ॥ सेयंवरा महामाया दास्यत्येषा वरान्हि नः ॥ स्तुवामः संनिधिं प्राप्य निर्भयाश्चरणांतिके ॥ २ ॥ यदि नो वारयिष्यंति द्वारस्थाः परिचारकाः ॥ पठिष्यामश्च तत्रस्थाः स्तुतिं देव्याः समाहिताः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ते हरिणा वाक्ये सुप्रहृष्टौ सुसंस्थितौ ॥ जातौ प्रमुदितौ कामं निकटे गमनाय च ॥ ४ ॥ ओमित्युक्त्वा हरिं सर्वे विमानात्त्वरितास्त्रयः ॥ उत्तीर्य निर्गताद्द्वारि शंकमाना मनस्यलम् ॥ ५ ॥ द्वारस्थान्वीक्ष्य तान्सर्वान्देवी भगवती तदा ॥ स्मितं कृत्वा चकाराशु तांस्त्रीन्स्त्रीरूपधारिणः ॥ ६ ॥ वयं युवतयो जाताः सुरूपाश्चारुभूषणाः ॥ विस्मयं परमं प्राप्ता गतास्तत्संनिधिं पुनः ॥ ७ ॥ सा दृष्ट्वा नः स्थितांस्तत्र स्त्रीरूपाश्चरणांतिके ॥ व्यलोकयत चार्वंगी प्रेमसंपूर्णया दृशा ॥ ८ ॥ प्रणम्य तां महादेवीं पुरतः संस्थिता वयम् ॥ परस्परं लोकयंतः स्त्रीरूपाश्चारुभूषणाः ॥ ९ ॥ पादपीठं प्रेक्षमाणा नानामणि विभूषितम् ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाश स्थितास्तत्र वयं त्रयः ॥ १० ॥

देखकर मंद मुसक्यायकर तीनोंको स्त्रीरूप कर दिया ॥ ६ ॥ हम सुन्दर भूषण रूपादि धारे स्त्रीरूप होगये और परम विस्मयको प्राप्त हो भगवतीके समीप गये ॥ ७ ॥ उन्होंने हमें स्त्रीरूपमें चरणके समीप स्थित देखा तब कृपा दृष्टिसे भगवती हमको देखने लगी ॥ ८ ॥ हम उनको प्रणामकर आगे स्थित हुए और स्त्रीरूपमें सुन्दर भूषण पहरे परस्पर देखने लगे ॥ ९ ॥ अनेक मणियोंसे भूषित उनके पादपीठको देखने लगे जो अनेक महारत्नोंसे भूषित था वह कोटि सूर्यके समान प्रकाशमान था वहां हम तीनों स्थित हुए ॥ १० ॥

वहां सहस्रों दासीं थीं कोई रक्ताम्बर नीलाम्बर और पीताम्बर धारण किये थीं ॥ ११ ॥ वे सब देवी मनोहर विचित्र वस्त्र धारण किये थीं,
और समीपमें स्थित हुई भगवतीकी परिचर्या ग्रहण करती थीं ॥ १२ ॥ कोई स्त्री नाचती गाती और कोई उपासना करती थीं कोई प्रसन्न हो वीणा
तथा वेणु आदिक बाजे बजाती थीं ॥ १३ ॥ हे नारद ! जो वहां मैंने देखा सो सुनो देवीके चरण कमलके नखके मध्यमें ॥ १४ ॥ सब स्थावर जंगम
ब्रह्माण्डमें विष्णु रुद्र, वायु, सूर्य, अग्नि, यम ॥ १५ ॥ वरुण, चन्द्रमा, त्वष्टा, कुबेर, इन्द्र, पर्वत सागर, नदी, गन्धर्व, अप्सरा ॥ १६ ॥ विश्वावसु, चित्रकेतु
श्वेत, चित्रांगद, तुम्बरु हाहा, हूहू ॥ १७ ॥ अश्विनीकुमार, वसु, साध्य, सिद्ध, पितर, शेषादिक नाग, किन्नर, उरग, राक्षस ॥ १८ ॥ वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक,

काश्चिद्रक्तांबरास्तत्र सहचर्यः सहस्रशः ॥ काश्चिन्नीलांबरा नार्यस्तथा पीतांबराः शुभाः ॥ ११ ॥ देव्यः सर्वाः शुभाकारा विचित्रांबर
भूषणाः ॥ विरेजुः पार्श्वतस्तस्याः परिचर्यापराः किल ॥ १२ ॥ जगुश्च ननृतुश्चान्याः पर्युपासत ताः स्त्रियः ॥ वीणामारुतवाद्यानिवाद
यंत्यो मुदाऽन्विताः ॥ १३ ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि यद्दृष्टं तत्र चाद्भुतम् ॥ नखदर्पणमध्ये वै देव्याश्चरणपंकजे ॥ १४ ॥ ब्रह्मांडमखिलं
सर्वं तत्र स्थावरजंगमम् ॥ अहं विष्णुश्च रुद्रश्च वायुरग्निर्यमो रविः ॥ १५ ॥ वरुणः शीतगुस्त्वष्टा कुबेरः पाकशासनः ॥ पर्वताः सागराः
नद्यो गंधर्वाप्सरसस्तथा ॥ १६ ॥ विश्वावसुश्चित्रकेतुः श्वेतश्चित्रांगदस्तथा ॥ नारदतुंबुरश्चैव हाहा हूहूस्तथैव च ॥ १७ ॥ अश्विनौ वसवः
साध्याः सिद्धाश्च पितरस्तथा ॥ नागाः शेषादयः सर्वे किन्नरोगराक्षसाः ॥ १८ ॥ वैकुंठो ब्रह्मलोकश्च कैलासः पर्वतोत्तमः ॥ सर्वं तदखिलं
दृष्टं नखमध्यस्थितं च न ॥ १९ ॥ मज्जन्मपंकजं तत्र स्थितोऽहं चतुराननः ॥ शेषशायी जगन्नाथस्तथा च मधुकैटभौ ॥ २० ॥ श्रीभग
वानुवाच ॥ एवं दृष्टं मया तत्र पादपद्मनखे स्थितम् ॥ विस्मितोऽहं ततो वीक्ष्य किमेतदिति शंकितः ॥ २१ ॥ विष्णुश्च विस्मयाविष्टः
शंकरश्च तथा स्थितः ॥ तां तदा मेनिरे देवीं वयं विश्वस्य मातरम् ॥ २२ ॥ ततो वर्षशतं पूर्णं व्यतिक्रांतंप्रपश्यतः ॥ सुधामये शिवे
द्वीपे विहारं विविधं तदा ॥ २३ ॥

पर्वतोंमें उत्तम कैलास, यह सब वस्तु हमने नखके मध्यमें ही स्थित देखी ॥ १९ ॥ और कमलके मध्यसे अपना जन्म तथा कमलपर अपनेको स्थित
देखा, शेषशायी जगन्नाथ और मधुकैटभको देखा ॥ २० ॥ भगवान् बोले, इस प्रकार हमने भगवतीके चरण नखमें सब कुछ देखा और देखकर मैं बड़ा
विस्मित हुआ कि यह क्या है ? ॥ २१ ॥ विष्णु और शंकर भी आश्चर्यमें मग्न हुए तब हम सबने विश्वकी माताको पहचाना ॥ २२ ॥ इस प्रकार उनका
ऐश्वर्य देखते सौ वर्ष बीत गये, और उस सुधामय द्वीपमें विहार करने लगे ॥ २३ ॥

वहां अनेक प्रकारकी देवी अनेक आभरण धारण किये हम सबको सखीके समान मानने लगी ॥ २४ ॥ और हम भी उसकी मनोहरता देख मोहित होगये, और प्रसन्न मन होकर अनेक मनोहर भावोंको देखने लगे॥ २५ ॥ एक समय उस भुवनेश्वरी देवीको युवतीभावमें स्थित हुए ही भगवान् विष्णु संतुष्ट करने लगे ॥२६ ॥ श्रीभगवान् बोले, प्रकृति, विधात्री, कल्याणी, कामदात्री, वृद्धि सिद्धि रूप देवीके निमित्त नमस्कार है ॥ २७ ॥ सच्चिदानंदरूपिणी, संसारके दूर करनेको अरणीरूप; पंचविधकृत्य सृष्टि स्थिति संहार तिरोभाव अनुग्रह करणरूप भुवनेशीके निमित्त नमस्कार है ॥ २८ ॥ सबकी अधिष्ठान रूप अर्थात् विवृतरूप मिथ्या जगत् आविष्कृत ब्रह्मरूपिणी, दोनों देहसे अधिष्ठान होनेसे सब कूटवत् निर्विकार चैतन्य कूटस्थरूप, अर्धमात्र

सख्य इव तदा तत्र मेनिरेऽस्मानवस्थितान् ॥ देव्यः प्रमुदिताकारा नानाभरणमंडिताः ॥ २४ ॥ वयमप्यतिरम्यत्वाद्बभूविम विमोहिताः ॥ प्रहृष्टमनसः सर्वेऽपश्यन्भावान्मनोरमान् ॥ २५ ॥ एकदा तां महादेवीं देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ तुष्टाव भगवान्विष्णुर्युवतीभावसंस्थितः ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नमो देव्यै प्रकृत्यै च विधात्र्यै सततं नमः ॥ कल्याण्यै कामदायै च वृद्ध्यै सिद्ध्यै नमो नमः ॥ २७ ॥ सच्चिदानंदरूपिण्यै संसारारणये नमः ॥ पंच कृत्यविधात्र्यै ते भुवनेश्यै नमो नमः ॥ २८ ॥ सर्वाधिष्ठानरूपायै कूटस्थायै नमो नमः ॥ अर्धमात्रार्थभूतायै हृल्लेखायै नमो नमः ॥ २९ ॥ ज्ञातं मयाऽखिलमिदं त्वयि सन्निविष्टं त्वत्तोऽस्य सम्भवलयावपि मातरद्य ॥ शक्तिश्च तेऽस्य करणे विततप्रभावा ज्ञाताऽधुना सकललोकमयीति नूनम् ॥ ३० ॥ विस्तार्य सर्वमखिलं सदसद्विकारं संदर्शयस्यविकलं पुरुषाय काले ॥ तत्त्वैश्च षोडशभिरेव च सप्तभिश्च भासींद्रजालमिव नः किल रंजनाय ॥ ३१ ॥

परब्रह्मरूपिणी, प्रत्यगात्मरूपके निमित्त प्रणाम है ॥ २९ ॥ हे देवि ! मैंने यह जाना कि यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारेमें स्थित है, हे मातः ! तुमसेही इसका संभव और लय होता है, तुम्हारी ही इसके करनेमें सामर्थ्य है, तुम्हारा प्रभाव महान् है मैंने अब जाना यह निश्चय है कि तुमही सकल लोकमयी हो ॥ ३० ॥ यह सम्पूर्ण सत् आकाश वायुरूप अमूर्तभूत असत् तेज जल भूमिरूप मूर्तिमान् तीन भूत इनके विकारसे परिणामरूप जगत्को उत्पन्न करके भोक्ता रूपी चेतनको दिखाती हो, जिससे वह अनेक प्रकारके भोगोंको प्राप्त होता सांख्यके सम्मत सोलह तत्त्व, सात महदादि तत्त्वोंसे परिणत हुई तुम हमको इन्द्रजालके समान विलक्षण अनिर्वचनीय दीखती हो ॥ ३१ ॥

तुम्हारे विना कोई भी वस्तु प्रकाशित नहीं होती, सबको व्याप्त करके तुम स्थित हो. शक्तिके विना पुरुष भी व्यवहार नहीं कर सकता, हे देवि ! यह बुद्धिमान् मनुष्य तुम्हारे भक्त कहते हैं जो वस्तु भासती है वह नामरूप विशिष्ट भासती है, वह नामरूप तुम्हारा रूपही है, इससे तुम्हारी गति अव्याहत है ॥ ३२ ॥ हे मातः ! तुम अपने प्रभावसे सम्पूर्ण विश्वको प्रसन्न करती हो और अपने तेजसे सबको प्रकट करती हो. और कल्पकालमें सबको संहार करती हो हे देवि तुम्हारे वैभवका चरित्र कौन जानता है ॥ ३३ ॥ हे जननि ! आपने मधुकैटभसे हमारी रक्षा की आपनेही लोकविस्तार कर दिखाया है फिर हमको परम सुखके भवनमें प्राप्त किया है. हे भवानि ! तुम्हारा दर्शन बड़े प्रभाववाला है ॥ ३४ ॥ हे मातः ! मैं शिव ब्रह्मा तथा और भी कोई तुहारे

न त्वामृते किमपि वस्तु गत विभाति व्याप्यैव सर्वमखिलं त्वमवस्थितासि ॥ शक्तिं विना व्यवहृतौ पुरुषोऽप्यशक्तो बंभण्यते जननि बुद्धिमता जनेन ॥ ३२ ॥ प्रीणासि विश्वमखिलंसततं प्रभावैः स्वैस्तेजसा च सकलं प्रकटीकरोषि ॥ अत्स्येव देवि तरसा किल कल्पकाले को वेद देवि चरितं तव वैभवस्य ॥ ३३ ॥ त्राता वयं जननि ते मधुकैटभाभ्यां लोकाश्च ते सुवितताः खलुदर्शिता वै ॥ नीताः सुखस्य भवने परमां च कोटिं यद्दर्शनं तव भवानि महाप्रभावम् ॥ ३४ ॥ नाहं भवो न च विरिंचि विवेद मातः कोऽन्यो हि वेत्ति चरितं तव दुर्विभाव्यम् ॥ कानीह संति भुवनानि महाप्रभावे ह्यस्मिन्भवानि चरिते रचनाकलापे ॥ ३५ ॥ अस्माभिरत्र भुवने हरिरन्य एव दृष्टः शिवः कमलजः प्रथितप्रभावः ॥ अन्येषु देवि भुवनेषु न संति किं ते किं विद्म देवि विततं तव सुप्रभावम् ॥ ३६ ॥ याचेऽबतेऽङ्घ्रिकमलं प्रणिपत्य कामं चित्ते सदा वसतु रूपमिदं तवैतत् ॥ नामापि वक्त्रकुहरे सततं तवैव संदर्शनं तव पदांबुजयोः सदैव ॥३७॥ भृत्योऽयमस्ति सततं मयि भावनीयं त्वां स्वामिनीति मनसा ननु चिंतयामि ॥ एषाऽऽवयोरविरता किल देवि भूयाद्व्याप्तिः सदैव जननीसुतयोरिवार्ये॥३८॥

दुर्विभाव्य चरित्रको नहीं जानता है, हे महादेवि ! आपके रचना कलापमें जितने भुवन हैं उनको कौन जान सकता है ? ॥ ३५ ॥ हमने इस भुवनमें दूसरे विष्णु शिव ब्रह्माका दर्शन किया है हे देवि क्या दूसरे भुवनोंमें वे न होंगे हे देवि ! तुम्हारे विस्तृत प्रभावको हम क्या जानें ॥ ३६ ॥ हे मातः ! आपके चरणकमलमें निपतित होकर हम यही याचना करते हैं कि आपका यह रूप सदा हमारे हृदयमें निवास करता रहे, मुखमें निरन्तर तुम्हारा नाम और तुम्हारे चरणकमलका दर्शन सदा हमको होता रहे, ॥ ३७ ॥ यह हमारे दास हैं सदैव इस प्रकारसे भावना करनी हम तुमको मनसे सदा स्वामिनी जानते हैं. हे भगवति ! यह हम दीनोंकी वृत्ति सदा रहे. हे मातः ! तुम सदैव पुत्रके समान हमपर कृपा करती रहो ॥ ३८ ॥

तुम इस सम्पूर्ण प्रपंचको जानती हो कारण कि सर्वज्ञता तुमपर समाप्त है हे जगन्मातः! हम पामर जन क्या निवेदन करें ? हे भवानि! जो युक्त हो सो करो जो तुम्हारा इंगित होगा सो युक्त होगा ॥ ३९ ॥ ब्रह्मा सृजन करते विष्णु रक्षा करते उमापति संहार करते हैं, यह लोकमें प्रसिद्ध है, सो हे देवि! क्या यह सत्य है? हम तो तुम्हारी इच्छासे और सामर्थ्यसे ही सब कुछ करनेमें समर्थ हैं ॥ ४० ॥ हे धात्रि! तुम ही धराधर पुत्रद्वारा जगत् धारण करती हो संपूर्ण आधार शक्तिही यह जगत् धारण करती है , हे वरदे! तुम्हारी कांतिही यह सूर्य प्रकाशमान होता है तुमही यह सब निर्मलरूपसे प्रकाश कर रही हो॥ ४१ ॥ हे मातः! ब्रह्मा मैं शिव यह तुम्हारेही प्रभावसे जन्मवान् हैं, नित्य नहीं हैं, फिर इन्द्रादि दूसरे देवता नित्य किस प्रकार हो सकते हैं हे मातः!

त्वं वेत्सि सर्वमखिलं भुवनप्रपंचं सर्वज्ञतापरिसमाप्ति नितांतभूमिः॥ किं पामरेण जगदंब निवेदनीयं यद्युक्तमाचर भवानि तवेंगितं स्यात् ॥ ३९ ॥ ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरुमापतिश्च संहार कारक इयं तु जने प्रसिद्धिः॥ किं सत्यमेतदपि देवि तवेच्छया वै कर्तुं क्षमा वयमजे तव शक्तियुक्ताः ॥ ४० ॥ धात्री धराधरसुते न जगद्बिभर्ति आधार शक्तिरखिलं तव वै विभर्ति॥सूर्योऽपि भाति वरदे प्रभया युतस्ते त्वं सर्वमेतदखिलं विरजा विभासि ॥ ४१ ॥ ब्रह्माऽहमीश्वरवरः किल ते प्रभावात्सर्वे वयं जनि युता न यदा तु नित्याः ॥ केऽन्ये सुराः शतमखप्रमुखाश्च नित्या नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणा ॥ ४२ ॥ त्वं चेद्भवानिदयसे पुरुषं पुराणं जानेऽहमद्य तव संनिधिगः सदैव ॥ नोचेदहं विभुरनादिरनीह ईशो विश्वात्मधीरिति तमः प्रकृतिः सदैव ॥ ४३ ॥ विद्या त्वमेव ननु बुद्धिमतां नराणां शक्तिस्त्वमेव किल शक्तिमतां सदैव ॥ त्वं कीर्तिकांति कमलामल तुष्टिरूपा मुक्तिप्रदा विरतिरेव मनुष्यलोके ॥ ४४ ॥ गायत्र्यसि प्रथमवेदकला त्वमेव स्वाहा स्वधा भगवती सगुणाऽर्धमात्रा ॥ आम्नाय एव विहतो निगमो भवत्या संजीवनाय सततं सुरपूर्वजानाम् ॥ ४५ ॥

तुमही पुराण प्रकृतिरूप नित्य हो ॥ ४२ ॥ हे भवानि! आपही पुराण पुरुषपर दया करती हो यह भय तुम्हारे सन्निधानसे निश्चय जानता हूं, यदि ऐसा न होता तो अनेक अहंकारादि धर्मवान् अहंकार प्रकृति मूढ हो जाय, अर्थात् मैं विभु, मैं अनादि, मैं ईश हूं इत्यादि अहंकार धर्मवालापुरुष हो जाय॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् मनुष्योंकी विद्या तुमही हो शक्तिमानोंमें शक्ति तुमही हो तुमही कीर्ति, कान्ति, कमला,तुष्टिरूप युक्ति और ज्ञानकी दाता मनुष्य लोकमें तुमही हो ॥ ४४ ॥ पहले वेदकला गायत्री तुमही हो, हे भगवति! स्वाहा स्वधा सगुणा अर्धमात्रा तुमही हो यह आपने जो शास्त्रका विधान कियाहै यह देवादिकोंके भी जीवन अर्थात् रक्षणके निमित्त किया है ॥ ४५ ॥

मुक्तिके निमित्त ही यह सब प्रपंच रचा गयाहै, जिससे ज्ञान होकर यह जीव मुक्त होता है, यह जीव उस अनादिनिधन जीवके अंशरूप है जैसे सागरकी तरंगें होती हैं इन्हींके उद्धारके निमित्त शास्त्र रचना तुम्हारी दया है ॥ ४६ ॥ जिस समय यह जीव तुम्हारे कृत्यको जानता है, अर्थात् तुम्हारी महिमाको जानता है, कि इस अखिल जगत्‌का तुमही संहार करती हो जैसे मिथ्यारूप अन्तरंग अर्थात् अतिगुप्त चमत्काररूप कार्यके करनेमें नटका नाटक चरित्र शांत हो जाता है ऐसेही तुम्हारे ज्ञानसे विश्व शांत हो जाता है ॥ ४७ ॥ इस मोह सागरसे तुमही हमारी रक्षक हो, हे अम्बिके ! मैं तुम्हारी नित्यशरण होता हूं रागादिसे विरचित अन्तमें मिथ्यारूप इस दुःखरूप कालसे तुम मेरी रक्षा करो ॥ ४८ ॥ हे महाविद्ये ! देवि ! मैं तुम्हारे चरणोंको

मोक्षार्थमेव रचयस्यखिलं प्रपंचं तेषां गताः खलु यतो ननु जीवभावम् ॥ अंशा अनादीनिधनस्य किलानघस्य पूर्णार्णवस्य वितता हि यथा तरंगाः ॥ ४६ ॥ जीवो यदा तु परिवेत्ति तवैव कृत्यं त्वं संहरस्यखिलमेतदिति प्रसिद्धम् ॥ नाट्यं नटेन रचितं वितथेऽतरंगे कार्ये कृते विरमसे प्रथितप्रभावा ॥ ४७ ॥ त्राता त्वमेव मम मोहमयाद्भवाब्धेस्त्वामंबिके सततमेमि महार्तिदे च ॥ रागादिभिर्विरचिते वितथे किलांते मामेव पाहि बहुदुःखकरे च काले ॥ ४८ ॥ नमो देवि महाविद्ये नमामि चरणौ तव ॥ सदा ज्ञानप्रकाशं मे देहि सर्वार्थदे शिवे ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा विरते विष्णौ देवदेवे जनार्दने ॥ उवाच शंकरः शर्वः प्रणतः पुरतः स्थितः ॥ १ ॥ शिव उवाच ॥ यदि हरिस्तव देवि विभावजस्तदनु पद्मज एव तवोद्भवः । किमहमत्र तवापि न सद्गुणः सकललोकविधौ चतुरा शिवे ॥ २ ॥ त्वमसि भूः सलिलं पवनस्तथा खमपि वह्निगुणश्च तथा पुनः ॥ जननि तानि पुनः करणानि च त्वमसि बुद्धिमनोऽप्यथहंकृतिः ॥ ३ ॥

नमस्कार करताहूं हे सब अर्थदायक भगवति ! मुझको सदा ज्ञान दीजिये ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंडितज्वाला प्रसादकृतभाषायां तृतीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले, जब देवदेव जनार्दन यह कहकर मौन हुए तब उस समय प्रणाम करके शिवजी कहनेलगे ॥१॥ हे देवि ! यदि हरि तुम्हारे पराक्रमसे प्रकट हुए हैं. और उसी प्रकार ब्रह्माजी तुमसे प्रगट हैं तो फिर मैं सगुण क्या तुमसे प्रगट नहीं हूं ? किन्तु तुमसेही प्रगट हूं. हे शिवे ! तुम सब लोकके विधानं करनेमें चतुर हो ॥ २ ॥ भूमि जल पवन आकाश अग्नि गुण तुमही हो और हे मातः ! तुमही ज्ञानेन्द्रिय कर्मेंद्रियरूप हो तुमही मन बुद्धि अहंकार हो ॥ ३ ॥

वह यथार्थ नहीं जानते, जो कहते हैं कि यह जगत् हरि हर ब्रह्माका किया हुआ है. यह अन्यथा कहते हैं यहतीनों देवता आपकेही किये हैं, और चराचर जगत् निर्माण करते हैं ॥४॥ भूमि, वायु, आकाश, अग्नि, जलादिके गुणोंसे यह जगत् होता है; यदि यह हो तो विना तुम्हारी चित्कलाके यह जगत् स्फुट कैसे होता ? ॥ ५ ॥ यह विष्णु अज शिवके द्वारा कल्पना किया हुआ होता है, हे मातः ! इसमें आप अनेक वेष और कुतूहलसे यथारुचि विलास करती हुई ॥ ६ ॥ सब लोकके सृजनकरनेकी इच्छा करनेवाले हरि ब्रह्मा और शिव यह सब तुम्हारे चरणारविंदकी भक्ति और प्रीतिको प्राप्त होकर कर सकते हैं ॥ ७ ॥ हे मातः ! यदि हमारे ऊपर सदा आप दयायुक्त हो तो हमको तमोगुणमें किस प्रकार प्रधान किया है, ब्रह्मा रजोगुण और हरि सत्त्वगुण

न च विदंति वदंति च येऽन्यथा हरिहराजकृतं निखिलं जगत् ॥ तव कृताश्त्रय एव सदैव ते विरचयंति जगत्सचराचरम् ॥ ४ ॥ अव निवायुखवह्निजलादिभिः सविषयैः सगुणैश्च जगद्भवेत् ॥ यदि तदा कथमद्य च तत्स्फुटंप्रभवतीति तवांब कलामृते ॥ ५ ॥ भवसि सर्वमिदं सचराचरं त्वमजविष्णुशिवाकृतिकल्पितम् ॥ विविधवेषविलासकुतूहलैर्विरमसे रमसेऽब यथारुचि ॥ ६ ॥ सकललोकसिसृक्षुरहं हरिः कम लभूश्च भवाम यदांबिके ॥ तव पदांबुजपांसु परिग्रहं समधिगम्य तदा ननु चक्रिम ॥ ७ ॥ यदि दयार्द्रमना न सदांऽबिके कथमहं विहितश्च तमोगुणः ॥ कमलजश्च रजोगुणसंभवः सुविहितः किमु सत्त्वगुणो हरिः ॥ ८ ॥ यदि न ते विषमा मतिरंबिके कथमिदं बहुधा विहितं जगत् ॥ सचिवभूपतिभृत्यजनावृतं बहुधनैरधनैश्च समाकुलम् ॥ ९ ॥ तव गुणास्त्रय एव सदा क्षमाः प्रकटनावनसंहरणेषु वै ॥ हरिहरद्रु हिणाश्च क्रमात्त्वया विरचितास्त्रिजगतां किल कारणम् ॥ १० ॥ परिचितानि मया हरिणा तथा कमलजेन विमानगतेन वै ॥ पथि गतैर्भु वनानि कृतानि वा कथय केन भवानि नवानि च ॥ ११ ॥

युक्त किये ॥ ८ ॥ हे मातः ! यदि आपकी विषममति नहीं है तो यह जगत् अनेकप्रकारका क्यों किया है? राजा मंत्री भूपति दासजन तथा धनी निर्धनीसे युक्त क्यों किया है ? ॥९॥ तुम्हारे तीनों गुण सृजन पालन संहारमें स्थित हैं उन्हींसे आपने हरि हर और ब्रह्माजीको जगत्के कारणरूप निर्माण किया है ॥ १० ॥ मैंने विष्णु और ब्रह्माजीने विमानमें स्थित हुए तुमको जाना मार्गमें स्थित हुए हमने अनेक लोक देखे कहो वह किसके किये हैं ? क्या नवीन हैं ? ॥ ११ ॥

हे जगदम्बिके ! तुम अपनी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति और पालन करती हो और अपनी कलासेही इच्छापूर्वक नाश कर सकती हो, अपने पति पुरुषसे सदा रमण करती हो, हे शिवे ! हम तुम्हारी गति नही जानते ॥ १२ ॥ हे जननि ! युवतिभावमें भी प्राप्त हुए हमको चरणकमलकी सेवा दीजिये, आपके चरणकमलकी भक्तिके विना सुख कहां है ?॥ १३ ॥ हे मातः ! तुम्हारे चरणोंको छोडकर मेरी इच्छा कहींभी नहीं होती है. नरदेह प्राप्त होकर त्रिभुवनकी अधीश्वरी तुमको प्राप्त होकर अन्यस्थानकी इच्छा नहीं है॥ १४ ॥ हे सुदति ! भावको प्राप्त होकरभी तुम्हारे चरणकमलमें कुछभी अप्रीति मुझे नहीं है यदि आपके चरणकमलमें कुछभी अप्रीति मुझे नहीं है, यदि आपके चरणकमलका दर्शन न हो तो उस पुरुषतासे हम क्या करेंगे ? ॥ १५ ॥

सृजसि पासि जगज्जगदंबिके स्वकलथा कियदिच्छसि नाशितुम् ॥ रमयसे स्वपतिं पुरुषं सदा तव गतिं न हि विद्म वयं शिवे ॥ १२ ॥ जननि देहि पदांबुजसेवनं युवतिभावगतानपि नः सदा ॥ पुरुषतामधिगम्य पदांबुजाद्विरहिताः क्व लभेम सुखं स्फुटम् ॥ १३ ॥ न रुचिरस्तिममांब पदांबुजं तव विहाय शिवे भुवनेष्वलम् ॥ निवसितुं नरदेहमवाप्य च त्रिभुवनस्य पतित्वमवाप्य वै ॥ १४ ॥ सुदति नास्तिमनागपि मे रतिर्युवति भावमवाप्य तवांतिके ॥ पुरुषता क्व सुखाय भवत्यलं तव पदं न यदीक्षणगोचरः ॥ १५ ॥ त्रिभुवनेषु भवत्वियमंबिके मम सदैव हि कीर्तिरनाविला ॥ युवतिभावमवाप्य पदांबुजं परिचितं तव संसृतिनाशनम् ॥ १६ ॥ भुवि विहाय तवांतिक सेवनं क इह वांछति राज्यमकंटकम् ॥ त्रुटिरसौ किल याति युगात्मतां न निकटं यदि तेंऽघ्रिसरोरुहम् ॥ १७ ॥ तपसि ये निरता मुनयोऽमलास्तव विहाय पदांबुजपूजनम् ॥ जननिते विधिना किल वंचिताः परिभवो विभवे परिकल्पितः ॥ १८ ॥

हे अम्बिके ! त्रिलोकीमें यह मेरी निर्मल कीर्ति होगी, जो युवतीभावको प्राप्त होकर जन्ममरणके नाश करने वाले तुम्हारे चरणकमलका दर्शन किया ॥१६॥ तुम्हारे चरणकमलके निकटकी सेवाको त्यागकर ऐसा कौन है ? जो भूमिमें जाकर अकंटक राज्य पानेकी वासनाकरे तुम्हारे चरणकमल जिसके निकट नहीं होते वह इस दुर्भाग्यतासे वारंवार जन्म लेकर एक युगतक उसका फल भोगता है ॥ १७ ॥ हे मातः ! जो निर्मलबुद्धि मुनिजन तुम्हारे चरणोंकी पूजा त्यागकर तपमें लगते हैं, वे अवश्य विधातासे वंचित हुए अपने तपरूप वैभवके विद्यमान होतेभी मोक्ष न पाकर अपने तीनों गुणोंसे पराजित रहते हैं ॥ १८ ॥

तप जितेंद्रियता समाधि क्रतु (यज्ञ) इनके अनुष्ठान करनेसेभी विना तुम्हारे चरणकमल सेवन किये मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ हे देवि ! हमारे ऊपर कृपा करो यदि कृपा है तो अपना उत्तम मंत्र हमसे वर्णन करो जो मैं सुखपूर्वक जप करता हूं आप प्रसन्न हो वह उत्तम नवार्णमंत्र कहो ॥ २० ॥ प्रथम प्रादुर्भावमें हमको प्राप्त था इस समय हमको स्मरण नहीं हुआ, हे जननि ! वह भवार्णवसे तारनेको हमसे वर्णन करो ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले, जब अद्भुत तेजस्वी शिवजीने इस प्रकारसे कहा तब भगवतीने स्फुट नवाक्षर मंत्रका उच्चारण किया ॥ २२ ॥ विधान नवमस्कंधमें कहेंगे उसको ग्रहणकर महादेव बहुत प्रसन्न हुए और देवीके चरणोंको प्रणाम कर वहीं स्थित हुए ॥ २३ ॥ उस काम और मोक्षदायक नवार्ण मंत्रका जप करने लगे. वाणी बीजके

न तपसा न दमेन समाधिना न च तथा विहितैः क्रतुभिर्यथा ॥ तव पदाब्जपरागनिषेवणाद्भवति मुक्तिरजे भवसागरात् ॥ १९ ॥ कुरु दयां दयसे यदि देवि मां कथय मंत्रमनाविलमद्भुतम् ॥ समभवं प्रजपन्सुखितो ह्यहं सुविशदं च नवार्णमनुत्तमम् ॥ २० ॥ प्रथमजन्मनि चाधिगतो मया तदधुना न विभाति नवाक्षरः ॥ कथय मां मनुमद्य भवार्णवाज्जननि तारय तारय तारके ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी शिवेनाद्भुततेजसा ॥ उच्चचारांबिका मंत्रं प्रस्फुटं च नवाक्षरम् ॥ २२ ॥ त गृहीत्वा महादेवः परां मुदमवाप ह ॥ प्रणम्य चरणौ देव्यास्तत्रैवावस्थितः शिवः ॥ २३ ॥ जपन्नवाक्षरं मंत्रं कामदं मोक्षदं तथा ॥ बीजयुक्तं शुभोच्चारं शंकरस्तस्थिवांस्तदा ॥ २४ ॥ तं तथाऽवस्थितं दृष्ट्वा शंकरं लोकशंकरम् ॥ अवोचं तां महामायां संस्थितोऽहं पदांतिके ॥ २५ ॥ न वेदास्त्वामेवं कलयितुमिहासन्न पटवो यतस्ते नोचुस्त्वां सकलजनधात्रीमविकलाम् ॥ स्वाहाभूता देवी सकलमखहोमेषु विहिता तदा त्वं सर्वज्ञा जननि खलु जाता त्रिभुवने ॥ २६ ॥ कर्ताऽहं प्रकरोमि समखिलं ब्रह्मांडमत्यद्भुतं कोऽन्योऽस्तीह चराचरे त्रिभुवने मत्तः समर्थः पुमान् ॥ धन्योऽस्म्यत्र न संशयः किल यदा ब्रह्माऽस्मि लोकातिगो मग्नोऽहं भवसागरे प्रवितते गर्वाभिवेशादिति ॥ २७ ॥

शुभ उच्चारणकर सहित जपते हुए स्थित हुये ॥ २४ ॥ लोकके आनंद करनेवाले शंकरको इस प्रकार स्थित देखकर महामायाकेचरणोंके समीपस्थित होकर मैं कहनेलगा ॥ २५ ॥ हे मातः ! वेदभी तुमको यथार्थ जाननेको पटु नहीं हैं कारण उन्होंनेभी यज्ञादि क्षुद्रकर्मोंमें तुमको नहीं वर्णन किया, परन्तु सर्वथा तुम्हारा ज्ञान नहीं ऐसा नहीं है, तुम सम्पूर्ण यज्ञोंमें स्वाहानामसे विख्यात हो हे मातः ! तुम त्रिभुवनमें सर्वज्ञ रूपसे विख्यात हो ॥ २६ ॥ मैं कर्ता हूं और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको रचता हूं मुझसे अधिक चराचरमें और कौन पुरुष है ? मैं धन्य हूं जो सब लोकमें श्रेष्ठ ब्रह्मा हूं इस गर्वसे संसार सागरमें मग्न होता विचरता हूं ॥ २७ ॥

परन्तु आज मैं तुम्हारे चरण कमलके पराग ग्रहण करनेके गर्वसे अवश्यही धन्य हुआ हूं, अर्थात् तुम्हारे प्रसादसे यथार्थ ही मैं धन्य हुआ, संसारभय दूर करनेमें चतुर मैं आपसे याचना करताहूं आप मुक्तिदायक ईश्वरी हो भयदायक संसारके निगडरूप बंधन दूर कर भक्तियुक्त करो ॥२८॥ हे शिवे ! आपके चरण कमलके प्रभावसे प्रसन्न होकर यही इच्छा करता हूं कि इससे पृथक् न हूं मैं तुम्हारा आज्ञाकारी किंकर हूं, हे शिवे ! संसार सागरमें मग्न हुए मेरी रक्षा करो ॥ २९ ॥ जो मनुष्य तुम्हारे पवित्र चरित्रको नहीं जानते हैं, वे मुझे जगत्का कर्ता प्रभु कहते हैं, जो याजक स्वर्गकी कामनासे यजन करते हैं वे तुम्हारे प्रभावको नहीं जानते ॥ ३० ॥ आपने चार प्रकारसे प्रजा रचनेमें मुझे ब्रह्मत्वमें निर्माण किया है. हे आदि ! मुझसे अधिक और कौन अधिक है ?

अद्याहं तव पादपंकजपरागादानगर्वेण वै धन्योऽस्मीति यथार्थवादनिपुणो जातः प्रसादाच्च ते ॥ याचे त्वां भवभीतिनाशचतुरां मुक्तिप्रदां चेश्वरीं हित्वा मोहकृतं महातिनिगडंत्वद्भक्तियुक्तं कुरु ॥ २८ ॥ अतोऽहं च जातो विमुक्तः कथं स्यां सरोजादमेया त्वदाविष्कृताद्धै ॥ तवाज्ञाकरः किंकरोऽस्मीति नूनं शिवेपाहि मां मोहमग्नं भवाब्धौ ॥ २९ ॥ न जानंति ये मानवास्ते वदन्ति प्रभुं मां तवाद्ये चरित्रं पवित्रम् ॥ यजंतीह ये याजकाः स्वर्गकामा न ते ते प्रभावं विदंत्येव कामम् ॥ ३० ॥ त्वया निर्मितोऽहं विधित्वे विहारं विकर्तुं चतुर्धा विधायादिसर्गम् ॥ अहं वेद्मिकोऽन्यो विवेदादिमाये क्षमस्वापराधं त्वहंकारजं मे ॥ ३१ ॥ श्रमं येऽष्टधा योगमार्गे प्रवृत्ताः प्रकुर्वंति मूढाः समाधौ स्थिता वै ॥ नजानंति ते नाम मोक्षप्रदं वा समुच्चारितं जातु मातर्मिषेण ॥ ३२ ॥ विचारे परे तत्त्वसंख्याविधाने पदे मोहितानाम ते संविहाय ॥ न किं ते विमूढा भवाब्धौ भवानि त्वमेवासि संसार मुक्तिप्रदा वै ॥ ३३ ॥ परं तत्त्वविज्ञानमाद्यैजनैयैरजे चानुभूतं त्यजंत्येव ते किम् ॥ निमेषार्धमात्रं पवित्रं चरित्रं शिवा चांबिकाशक्तिरीशेति नाम ॥ ३४ ॥

इस मेरे अहंकार वाले अपराधको क्षमा करो ॥ ३१ ॥ जो आठ प्रकारका श्रम करके योग मार्गमें प्रवृत्त हुए हैं. वे समाधिमें स्थित होते हैं, वे आपका मोक्षदायक नाम नहीं जानते हैं. बहानेसे भी आपका उच्चारण किया नाम मुक्तिका देनेवाला होता है ॥ ३२ ॥ आपका नाम छोड़कर तत्त्वसंख्याके विचारनेवाले विचार करते हैं, सो हे भवानि ! क्या वे संसारमें न पडेंगे. अवश्य पडेंगे. हे मातः ! आपही संसारसे मुक्ति देनेवाली हो ॥ ३३ ॥ हरि हर आदिके भजन करनेमें जिन्होंने परतत्त्व जाना है और यदि वे आधे निमेषको भी अम्बिकाका परम नाम जपते हैं वे कभी फिर इस नामको नहीं त्यागते हैं ॥ ३४ ॥

क्या तुम जगत्के विधान करनेमें समर्थ नहीं हो ? समर्थ हो. अपनी दृष्टिसेही जगत्को चार प्रकारका विभक्त करती हो, अपने विनोदके निमित्त मुझ ब्रह्माको विधान करके आदिसर्गमें यह सब कुछ करती हो ॥ ३५ ॥ हरिभी आपकीही कृपासे पालक हैं, कारण की तुमने सागरमें मधु कैटभसे उनकी रक्षाकी है, और हर संहार करनेवाले हैं वह भी तुम्हारे किये हैं, यदि ऐसा न होता तो प्रलयके उपरान्त मेरी भौंसे किस प्रकार प्रगट होते ? ॥ ३६ ॥ हे भवानि ! आपका जन्म अवश्य कहीं देखा सुना नहीं तुम्हारा संभव कहांसे है इसे कोई नहीं जानता, हे भवानि ! तुम एक आदि शक्ति हो सबसे स्वतंत्र होनेके कारण तुमको ही बोधन करते हैं ॥ ३७ ॥ तुमसे ही युक्त होकर मैं जगत् करनेको और हरि तुमसे ही युक्त होकर पालन करनेको और तुम्हारी शक्तिसे हर संहार

न किं त्वं समर्थाऽसि विश्वं विधातुं दृशैवाशु सर्वं चतुर्धाविभक्तम् ॥ विनोदार्थमेवं विधिं मां विधायादिसर्गे किलेदं करोषीति कामम् ॥ ३५ ॥ हरिः पालकः किं त्वयाऽसौ मधोर्वा तथा कैटभाद्रक्षितः सिंधुमध्ये ॥ हरः संहृतः किं त्वयाऽसौ न काले कथं मे भ्रुवोर्मध्यदेशात्स जातः ॥ ३६ ॥ न ते जन्म कुत्रापि दृष्टं श्रुतं वा कुतः संभवस्ते न कोऽपीह वेद ॥ किलाद्याऽसि शक्तिस्त्वमेका भवानि स्वतंत्रैः समस्तैरतो बोधिताऽसि ॥ ३७ ॥ त्वया संयुतोऽहं विकर्तुं यमर्थो हरिस्त्रातुमंब त्वया संयुतश्च ॥ हरः संप्रहर्तुं त्वयैवेह युक्तः क्षमा नाद्य सर्वे त्वया विप्रयुक्ताः ॥ ॥ ३८ ॥ यथाऽहं हरिः शंकरः किं तथाऽन्ये न जाता न संतीह नो वाऽभविष्यन् ॥ न मुह्यंति केऽस्मिंस्तवात्यंतचित्रे विनोदे विवादास्पदेऽल्पाशयानाम् ॥ ३९ ॥ अकर्ता गुणस्पष्ट एवाद्यदेवो निरीहोऽनुपाधिः सदैवाकलश्च ॥ तथाऽपीश्वरस्ते वितीर्णं विनोदं सुसंपश्यतीत्याहुरेवंविधिज्ञाः ॥ ४० ॥ दृष्टादृष्टविभेदेऽस्मिन्प्राक्त्वत्तो वै पुमान्परः ॥ नान्यः कोऽपि तृतीयोऽस्ति प्रमेये सुविचारिते ॥ ४१ ॥ न मिथ्या वेदवाक्यं वै कल्पनीयं कदाचन ॥ विरोधोऽयं मयाऽत्यंतं हृदये तु विशंकितः ॥ ४२ ॥

करनेको समर्थ हैं. तुम्हारे विना कोई भी कुछ नहीं कर सकते ॥ ३८ ॥ जैसे हम शंकर विष्णु आदि हैं वैसे क्या और न हुए हैं वा न होंगे; कौन इस विचित्र विवादमें मोहको प्राप्त नहीं होते ? परन्तु सत् है वा असत् यह अल्पबुद्धि वालोंका विवाद है ॥ ३९ ॥ निर्गुण ईश्वर तुम्हारे विनोदको देखता है इसपर कहते हैं. वह आदिदेव अकर्ता गुणोंमें स्पष्ट निरीह उपाधिरहित सत् और कलारहित है तो भी वह तुम्हारे इस विनोदको देखते हैं इस प्रकार विधिके ज्ञाता कहते हैं ॥ ४० ॥ मूर्तामूर्तके भेदवाले इस संसारमें तुमसे अधिक इस जगत्में और कोई नहीं है. ॥ ४१ ॥ हे देवि ! मिथ्या वाक्यकी कल्पना करनी न चाहिये, अर्थात् अनुभवसे दो पदार्थ भासते हैं.श्रुति अद्वैतके कहती है, इससे श्रुति और अनुभवका महाविरोध हृदयमें शंका करता है ॥ ४२ ॥

जो कि वेद ब्रह्मको एक अद्वितीय कहते हैं. सो क्या तुम आत्मरूपा हो वा यह ब्रह्म है इस संदेहको दूर करो ॥ ४३ ॥ मेरा चित्त शंकारहित नहीं होता है, यह क्षुद्रमन हित और एकत्वके विचारमें मग्न होता है ॥ ४४ ॥ अपने मुखसे तुम मेरा सन्देह दूर करो, बड़े पुण्यके योगसे आपके चरणोंकी प्रीति मुझे प्राप्त हुई है ॥ ४५ ॥ तुम स्त्री वा पुरुष क्या हो ? विस्तारसे मुझसे कहो मैं तुम परम शक्तिको जानकर भवसागरसे मुक्त हूंगा ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले, जब इस प्रकारसे विनय और नम्रतासे भगवतीसे पूँछा तो वह आद्या भगवती मनोहर वचन बोली ॥ १ ॥ देवी बोली, वास्तवमें एक सत् अर्थात् ब्रह्मही है, ब्रह्मसे मैं भिन्न नहीं. शक्ति और शक्तिमान्‌का अभेद है. जो

एकमेवाद्वितीयं यद्ब्रह्म वेदा वदंति वै॥सा किं त्वं वाऽप्यसौ वा किं संदेहं विनिवर्तय ॥ ४३ ॥ निःसंशयं न मे चेतः प्रभवत्यविशंकितम् ॥ द्वित्वैकत्वविचारेऽस्मिन्निमग्नं क्षुल्लकं मनः ॥ ४४ ॥ स्वमुखेनापि संदेहं छेत्तुमर्हसि मामकम् ॥ पुण्ययोगाच्च मे प्राप्ता संगतिस्तव पादयोः ॥ ४५ ॥ पुमानसि त्वं स्त्री वाऽसि वद विस्तरतो मम ॥ ज्ञात्वाऽहं परमां शक्तिं मुक्तः स्यां भवसागरात् ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति पृष्टा महादेवी विनयावनतेन च ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णमाद्या भगवती हि सा ॥ १ ॥ देव्युवाच ॥ सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च ॥ योऽसौ साऽहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात ॥ २ ॥ आवयोरंतरं सूक्ष्मं यो वेद मतिमान्हि सः ॥ विमुक्तः स तु संसारान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३ ॥ एकमेवाद्वितीयं वै ब्रह्म नित्यं सनातनम् ॥ द्वैतभावं पुनर्याति काल उत्पित्सुसंज्ञके ॥ ४ ॥ यथा दीपस्तथोपाधेर्योगात्संजायते द्विधा ॥ छायेवादर्शमध्ये प्रतिबिंबं वा तथाऽऽवयोः ॥ ५ ॥

यह है सो मैं हूं जो मैं हूं सो यह है. मतिके विभ्रम होनेसे भेद भासता है ॥ २ ॥ हम दोनोंका जो सूक्ष्म अन्तर है इसको जो जानता है वही मतिमान् है, वह संसारसे पृथक् होकर मुक्त होता है. इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ॥ सनातन नित्य ब्रह्म एक ही नित्य अद्वितीय है उत्पादन इच्छावाले समयमें वह द्वैतरूपको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ जैसे एक ही दीपक उपाधिभेदसे दो प्रकारका होता है, अथवा जैसे एकही मुख उपाधिदर्पण भेदसे प्रतिबिम्ब रूपसे अनेकरूप होता है जैसे छाया उपाधि भेदसे पुरुष अनेक प्रकारका होता है इसी प्रकार हमारा तुम्हारा प्रतिबिम्ब कार्य कारण रूपसे अनेक प्रकारका है ॥ ५ ॥

जब मायामें लय होकर सम्पूर्ण प्रपंच ब्रह्ममें लीन होकर फिर सृष्टि होती है तब सृष्टिके निमित्त भेद प्रगट होता है, यह भेद दृश्य अदृश्य रूपसे दो प्रकारका है ॥ ६ ॥ सर्गक्षयमें मैं स्त्री पुरुष वा क्लीब नहीं हूं. सर्ग होनेपर भेद होता है. जो यह बुद्धिसे कल्पना किया गया है ॥७॥ बुद्धि, श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा क्षमा मैं ही हूं ॥ ८ ॥ कांति, शांति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, बुढापा, अजरता, विद्या, अविद्या, स्पृहा, वांछा, शक्ति, अशक्ति मैं हूं ॥ ९ ॥ वसा, मज्जा, त्वचा, दृष्टि, वाणी, ऋत अनृत, परा, मध्या, पश्यन्ती विविध नाडीरूप भी मैं ही हूं ॥ १० ॥ऐसा संसारमें कुछ नहीं जो मेरे विना हो सब मैं ही हूं. हे ब्रह्मा ! यह तुम निश्चय जानो ॥ ११ ॥ यह सब मेरे निश्चित रूप हैं इनसे विहीन कुछ नहीं, सो आप मुझसे

भेदउत्पत्तिकाले वै सर्गार्थं प्रभवत्यज ॥ दृश्यादृश्यविभेदोऽयं द्वैविध्ये सति सर्वथा ॥ ६ ॥ नाहं स्त्री न पुमांश्चाहं न क्लीबं सर्ग संक्षये ॥ सर्गे सति विभेदः स्यात्कल्पितोऽयं धिया पुनः ॥ ७ ॥ अहं बुद्धिरहं श्रीश्च धृतिः कीर्तिः स्मृतिस्तथा ॥ श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा ॥ ८ ॥ कांतिः शांतिः पिपासा च निद्रा तंद्रा जराऽजरा ॥ विद्याऽविद्या स्पृहा वांछा शक्तिश्चाशक्तिरेव च ॥ ९ ॥ वसा मज्जा च त्वक्चाहं दृष्टिर्वागनृता नृता ॥ परा मध्या च पश्यंती नाड्योऽहं विविधाश्च याः ॥ १० ॥ किं नाहं पश्य संसारे मद्वियुक्तं किमस्ति हि ॥ सर्वमेवाहमित्येवं निश्चयं विद्धि पद्मज ॥ ११ ॥ एतैर्मे निश्चितै रूपैर्विहीनं किं वदस्व मे ॥ तस्मादहं विधे चास्मिन्सर्गे वै वितताऽभवम् ॥१२॥ नूनं सर्वेषु देवेषु नानानामधरा ह्यहम् ॥ भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम् ॥ १३ ॥ गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा ॥ वारुणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वासवी ॥ १४ ॥ उत्पन्नेषु समस्तेषु कार्येषु प्रविशामि तान् ॥ करोमि सर्वकार्याणि निमित्तं तं विधाय वै ॥ १५ ॥ जले शीतं तथा वह्नावौष्ण्यं ज्योतिर्दिवाकरे ॥ निशानाथे हिमा कामं प्रभवामि यथातथा ॥ १६ ॥ मया त्यक्तं विधे नूनं स्पंदितुं न क्षमं भवेत् ॥ जीविजातं च संसारे निश्चयोऽयं ब्रुवे त्वयि ॥ १७ ॥

कहिये, हे ब्रह्मा ! इससे मैं सब सृष्टि में विस्तृत हूं ॥ १२ ॥ अवश्य ही सब देवताओंमें मैं अनेक नामवाली हूं, मैं शक्ति रूपसे अनेक पराक्रम करती हूं ॥१३॥ गौरी, ब्राह्मी, रौद्री, वाराही, वैष्णवी शिवा, वारुणी, कौबेरी, नारसिंही वासवी, मैं हूं ॥ १४ ॥ सब कार्योंके प्रगट होते ही मैं उनमें प्रवेश किये हूं उसी निमित्तको विधानकर सब कार्य करती हूं ॥ १५ ॥ जलमें शीतलता, अग्निमें उष्णता, सूर्यमें ज्योति, चन्द्रमामें शीतलता रूपसे मैं ही हूं ॥ १६ ॥ मुझसे त्यागे हुए विधाता भी स्पन्दन नहीं कर सकते, यह संसारके सब जीवका निश्चय तुमसे कहती हूं ॥ १७ ॥

मेरे विना शंकर दैत्योंका संहार नहीं कर सकते, शक्तिहीन मनुष्यको लोक दुर्बल कहकर बोलते हैं ॥ १८ ॥ रुद्रहीन है वा विष्णुहीन है ऐसा कभी कोई मनुष्य नहीं कहते हैं; पर निर्बलको शक्तिहीन सब कोई कहते हैं ॥ १९ ॥ पतित स्खलित भीत शांत शत्रुके वशीभूत हुआ प्राणी लोकमें अशक्त कहाता हैं, यह अरुद्र है ऐसा कोई नहीं कहता ॥ २० ॥ जिससे तुम रचना करते हो उसे कारण शक्ति जानो जब शक्तिसे युक्त होते हो तब सबके कर्ता होते हो ॥ २१ ॥ इसी प्रकार हरि, शिव, इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, त्वष्टा, वरुण, पवन, शक्तिसम्पन्न हैं ॥ २२ ॥ शक्तियुक्त होकर ही धरा धारण करनेकों समर्थ हुआ जाता है, अन्यथा परमाणुका भी धारण नहीं हो सकता ॥ २३ ॥ इसी प्रकार शेष कूर्म और सब दिग्गज मुझसे संयुक्त होते ही कार्यसाधन

अशक्तः शंकरो हंतुं दैत्यान्किल मयोज्झितः ॥ शक्तिहीनं नरं ब्रूते लोकश्चैवाति दुर्बलम् ॥ १८ ॥ रुद्रहीनं विष्णुहीनं न वदंति जनाः किल ॥ शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदंति नराधमम् ॥ १९ ॥ पतितः स्खलितो भीतः शांतः शत्रुवशं गतः ॥ अशक्तः प्रोच्यते लोके नारुद्रः कोऽपि कथ्यते ॥ २० ॥ तद्विद्धि कारणं शक्तिर्यया त्वं च सिसृक्षसि ॥ भविता च यदा युक्तः शक्त्या कर्ता तदाऽखिलम् ॥ २१ ॥ तथा हरिस्तथा शंभुस्तथेंद्रोऽथ विभावसुः ॥ शशी सूर्यो यमस्त्वष्टा वरुणः पवनस्तथा ॥ २२ ॥ धरा स्थिरा तदा धर्तुं शक्तियुक्ता यदा भवेत् ॥ अन्यथा चेदशक्ता स्यात्परमाणोश्च धारणे ॥ २३ ॥ तथा शेषस्तथा कूर्मो येऽन्ये सर्वे च दिग्गजाः ॥ मद्युक्ता वै समर्थाश्च स्वानि कार्याणि साधितुम् ॥ २४ ॥ जलं पिबामि सकलं संहरामि विभावसुम् ॥ पवनं स्तंभयाम्यद्य यदिच्छामि तथाऽचरम् ॥ २५ ॥ तत्त्वानां चैव सर्वेषां कदाऽपि कमलोद्भव ॥ असतां भावसंदेहः कर्तव्यो न कदाचन ॥ २६ ॥ कदाचित्प्रागभावः स्यात्प्रध्वंसाभाव एव वा ॥ मृत्पिंडेषु कपालेषु घटाभावो यथातथा ॥ २७ ॥ अद्यात्र पृथिवी नास्ति क्व गतेति विचारणे ॥ संजाता इति विज्ञेया अस्यास्तु परमाणवः ॥ २८ ॥ शाश्वतं क्षणिकं शून्यं नित्यानित्यं सकर्तृकम् ॥ अहंकाराग्रिमं चैव सप्तभेदैर्विवक्षितम् ॥ २९ ॥

कर चलते हैं ॥ २४ ॥ मैं ही सब जलपान करके अग्निका संहार कर सकती हूँ, यदि इच्छा करूं तो सब पवनका संहार कर सकती हूं ॥ २५ ॥ हे ब्रह्माजी ! कभी भी किसी तत्वका असत् भावका संदेह न करना ॥ २६ ॥ कभी किसीका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव होता है, जैसे मृत्पिण्ड सत् पदार्थ रूप कपालोंमें घटका प्रागभाव होता है ॥२७॥ अब यह पृथ्वी नहीं है कहां गई ? ऐसे विचारमें इसके परमाणु स्थित हैं ऐसा विचारना चाहिये ॥ २८ ॥ यह जगत् शाश्वत क्षणिक शून्य नित्य अनित्य सकर्तृक और अहंकार ऐसे सात भेदोंसे विवक्षित है ॥ २९ ॥

हे ब्रह्मा ! महत्तत्त्वको ग्रहण करो जिससे अहंकार उत्पन्न है फिर पूर्वके समान सब भूतोंकी रचना करो ॥ ३० ॥ अपने २ स्थानोंमें जाओ और लोक रचकर निवास करो और यथायोग्य अपने २ कार्य करो ॥ ३१ ॥ और इस सुरूपवान् सुहासिनी रजोगुण युक्त महासरस्वती नामकी शक्तिको ग्रहण करो ॥ ३२ ॥ जो श्वेत वस्त्र धारण किये दिव्य भूपणसे युक्त वरासनपर स्थित है यह सहचारिणी तुम्हारी क्रीडाके निमित्त है ॥ ३३ ॥ यह वरांगना तुम्हारी नित्य सहचारिणी होगी. इसे पूज्यतम और प्रिय मेरी विभूति जानकर इसका कभी तिरस्कार न करना ॥ ३४ ॥ इसके साथ तुम सत्यलोकको गमन करो और बीजसे चार प्रकारकी प्रजा प्रगट करो ॥ ३५ ॥ वे सब जीव अपने कर्मोंके सहित लिंगकोशसे वर्तमान हैं, अब उनको यथाकालमें प्रगट

गृहाणाज महत्तत्त्वमहंकारस्तदुद्भवः ॥ ततः सर्वाणि भूतानि रचयस्व यथापुरा ॥ ३० ॥ व्रजंतु स्वानि धिष्ण्यानि विरच्यानि वसंतु वः ॥ स्वानि स्वानि च कार्याणि कुर्वंतु दैवभाविताः ॥ ३१ ॥ गृहाणेमां विधे शक्तिं सुरूपां चारुहासिनीम् ॥ महासरस्वतीं नाम्ना रजोगुणयुतांवराम् ॥ ३२ ॥ श्वेतांबरधरां दिव्यां दिव्यभूषणभूषिताम् ॥ वरासनसमारूढां क्रीडार्थं सहचारिणीम् ॥ ३३ ॥ एषा सहचरी नित्यं भविष्यति वरांगना ॥ माऽवमंस्था विभूतिं मे मत्वापूज्यतमां प्रियाम् ॥ ३४ ॥ गच्छ त्वमनया सार्धं सत्यलोकं बताशु वै ॥ बीजाच्चतुर्विधं सर्वं समुत्पादाय सांप्रतम् ॥ ३५ ॥ लिंगकोशाश्च जीवैस्तैः सहिताः कर्मभिस्तथा ॥ वर्तंते संस्थिताःकाले तान्कुरु त्वं यथापुरा ॥ ३६ ॥ कालकर्मस्वभावाख्यैः कारणैः सकलं जगत् ॥ स्वभावस्वगुणैर्युक्तं पूर्ववत्सचराचरम् ॥ ३७ ॥ मानर्नीयस्त्वया विष्णुः पूजनीयश्च सर्वदा ॥ सत्त्वगुणप्रधानत्वादधिकः सर्वतः सदा ॥ ३८ ॥ यदा यदा हि कार्यं वो भविष्यति दुरत्यम् ॥ करिष्यति पृथिव्यां वै अवतारं तदा हरिः ॥ ३९ ॥ तिर्यग्योनावथान्यत्र मानुषीं तनुमाश्रितः ॥ दानवानां विनाशं वै करिष्यति जनार्दनः ॥ ४० ॥ भवोऽयं ते सहायश्च भविष्यति महाबलः ॥ समुत्पाद्य सुरान्सर्वान्विहरस्व यथासुखम् ॥ ४१ ॥

करो, जैसे पहले किये थे ॥ ३६ ॥ काल कर्म स्वभाव नामवाले कारणोंसे और अपने स्वाभाविक गुणोंसे पूर्ववत् सब जगत्को रचो ॥ ३७ ॥ विष्णुको सदा मानकर पूजन करना यह सत्वगुण प्रधान होनेसे सबसे अधिक है ॥ ३८ ॥ जब जब तुम्हारा दुरत्यय कार्य होगा, तब तब भगवान् पृथिवीमें अवतार लेंगे ॥ ३९ ॥ तिर्यक् तथा मानुषी आदि योनियोंमें अवतार लेंगे और दानवोंका नाश करेंगे ॥ ४० ॥ यह महाबली शंकर तुम्हारी सहायता करेंगे, इस प्रकार सब देवताओंको प्रगट कर यथेच्छ विहार करो ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अनेक दक्षिणावाले यज्ञोंसे विधि पूर्वक तुम्हारा सबका पूजन करेंगे ॥ ४२ ॥ सब कोई मेरा नाम उच्चारण करके सब यज्ञोंमें सदा सब देवता सन्तुष्ट होंगे ॥ ४३ ॥ तमके प्रधान देवता होनेसे शिव सबके माननीय हैं और सब यज्ञकार्योंमें यत्नसे इनका पूजन करना ॥ ४४ ॥ और जब फिर कभी दैत्योंसे देवताओंको भय होगा, तब मेरी शक्ति उत्पन्न होकर भय दूर करेगी ॥ ४५ ॥ वाराही, वैष्णवी, गौरी, नारसिंही, सदाशिवा इत्यादि अनेक कार्य करेंगी सो तुम जानो ॥ ४६ ॥ यह मेरा नवाक्षर मंत्रबीज ध्यानके सहित जपते हुए ब्रह्माजी तुम सब कार्य करो ॥ ४७ ॥ हे महामते ! तुम इसको सब मंत्रोंमें उत्तम जानो, सब काम सिद्धिके निमित्त सदा हृदयमें धारण करो ॥ ४८ ॥ इस प्रकार जगन्माता मुझसे कहकर हरिसे बोली हे विष्णो !

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या नानायज्ञैः सदक्षिणैः ॥ यजिष्यंति विधानेन सर्वान्वः सुसमाहिताः ॥ ४२ ॥ मन्नामोच्चारणात्सर्वे मखेषु सकलेषु च ॥ सदा तृप्ताश्च संतुष्टा भविष्यध्वं सुराः किल ॥ ४३ ॥ शिवश्च माननीयो वै सर्वथा यत्तमोगुणः ॥ यज्ञकार्येषु सर्वेषु पूजनीयः प्रयत्नतः ॥ ४४ ॥ यदा पुनः सुराणां वै भयं दैत्याद्भविष्यति ॥ शक्तयो मे तदोत्पन्ना हरिष्यंति सुविग्रहाः ॥ ४५ ॥ वाराही वैष्णवी गौरी नारसिंही सदाशिवा ॥ एताश्चान्याश्च कार्याणि कुरु त्वं कमलोद्भव ॥ ४६ ॥ नवाक्षरमिमं मंत्रं बीजध्यानयुतं सदा ॥ जपन्सर्वाणि कार्याणि कुरु त्वं कमलोद्भव ॥ ४७ ॥ मंत्राणामुत्तमोऽयं वै त्वं जानीहि महामते ॥ हृदये ते सदा धार्यः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वा मां जगन्माता हरिं प्राह शुचिस्मिता ॥ विष्णो व्रज गृहाणेमां महालक्ष्मीं मनोहराम् ॥ ४९ ॥ सदा वक्षःस्थले स्थाने भविता नात्र संशयः ॥ क्रीडार्थं ते मया दत्ता शक्तिः सर्वार्थदा शिवा ॥ ५० ॥ त्वयेयं नावमंतव्या माननीया च सर्वदा ॥ लक्ष्मीनारायणाख्योऽयं योगो वै विहितो मया ॥ ५१ ॥ जीवनार्थं कृता यज्ञा देवानां सर्वथा मया ॥ अविरोधेन संगेन वर्तितव्यं त्रिभिः सदा ॥ ५२ ॥ त्वं च वेधाः शिवस्त्वेते देवा मद्गुणसंभवाः ॥ मान्याः पूज्याश्च सर्वेषां भविष्यंति न संशयः ॥ ५३ ॥

इस परम मनोहर महालक्ष्मीको लेकर जाओ ॥ ४९ ॥ यह तुम्हारे सदा वक्षस्थलमें स्थित होगी इसमें सन्देह नहीं है. यह मैंने कल्याणीशक्ति तुम्हारी क्रीडाके निमित्त दी है ॥ ५० ॥ इसका कभी तिरस्कार न करना, और सदा मान करना यह मैंने लक्ष्मी नारायण नामका योग विधान किया है. इसमें सन्देह नहीं ॥ ५१ ॥ देवताओंके जीवनके निमित्त यज्ञोंको विधान किया है. तुमको विरोध रहित होकर वर्तना चाहिये ॥ ५२ ॥ तुम ब्रह्मा और शिव दूसरे देवता सब मेरे अंशोंसे प्रगट हैं यह तीनों देवता सबके मान्य और पूजनीय होंगे ॥ ५३ ॥

और जो मूढचित्त मनुष्य भेद करेंगे वे भेदकरनेसे अवश्य नरकगामी होंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥ जो हरि हैं यह साक्षात् शिव हैं जो शिव हैं सो स्वयं हरि हैं. इनमें भेदकल्पना करनेसे मनुष्य नरकगामी होता है ॥ ५५ ॥ और इससे सन्देह नहीं वह द्रोही होताहै हे विष्णु ! सुनो और जो गुणोंके भेद हैं सो सुनो ॥ ५६ ॥ परमात्माके चिन्तनमें मुख्य सत्यगुण और रज तम गौण हैं ॥ ५७ ॥ लक्ष्मीके सहित विहार और अनेक भेदोंमें सर्वदा रजोगुणसे युक्त होकर इसके सहित विहार करो ॥ ५८ ॥ वाग्बीज कामराज और तृतीय मायाबीजरूप यह मंत्र मेरादिया हुआ परमार्थदाता है ॥ ५९ ॥ इसको ग्रहणकर जपो और यथासुख विहार करो. हे विष्णु ! आपको मृत्यु और कालभय न होगा ॥ ६० ॥ और जबतक यह मेरा विहार होगा तबतक जगत् रहेगा;

ये विभेदं करिष्यंति मानवाः मूढचेतसः ॥ निरयं ते गमिष्यंति विभेदान्नात्र संशयः ॥ ५४ ॥ यो हरिः स शिवः साक्षाद्यः शिवः स स्वयं हरिः ॥ एतयोर्भेदमातिष्ठन्नरकाय भवेन्नरः ॥ ५५ ॥ तथैव द्रुहिणो ज्ञेयो नात्र कार्या विचारणा ॥ अपरो गुणभेदोऽस्ति शृणु विष्णो ब्रवीमि ते ॥ ५६ ॥ मुख्यः सत्त्वगुणस्तेऽस्तु परमात्मविचिंतने ॥ गौणत्वेऽपि परौ ख्यातौ रजोगुणतमोगुणौ ॥ ५७ ॥ लक्ष्म्या सह विकारेषु नानाभेदेषु सर्वदा ॥ रजोगुणोयुतो भूत्वा विहरस्वानया सह ॥ ५८ ॥ वाग्बीजं कामराजं च मायाबीजं तृतीयकम् ॥ मंत्रोऽयं त्वं रमाकांत मद्दत्तः परमार्थदः ॥ ५९ ॥ गृहीत्वा जपतं नित्यं विहरस्व यथासुखम् ॥ न ते मृत्युभयं विष्णो न कालप्रभवं भयम् ॥ ६० ॥ यावदेष विहारो मे भविष्यति सुनिश्चयः ॥ संहरिष्याम्यहं सर्वं यदा विश्वंचराचरम् ॥ ६१ ॥ भवंतोऽपि तदा नूनं मयि लीना भविष्यथ ॥ स्मर्तव्योऽयं सदा मंत्रः कामदो मोक्षदस्तथा ॥ ६२ ॥ उद्गीथेन च संयुक्तःकर्तव्यः शुभमिच्छता ॥ कारयित्वाऽथ वैकुंठं वस्तव्यं पुरुषोत्तम ॥ ६३ ॥ विहरस्व यथाकामं चिंतयन्मां सनातनीम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा वासुदेवं सा त्रिगुणा प्रकृतिः परा ॥ ६४ ॥निर्गुणा शंकरं देवमवोचदमृतं वचः॥देव्युवाच॥ गृहाण हर गौरीं त्वं महाकालीं मनोहराम् ॥ ६५ ॥

अन्तमें इस चराचर विश्वको मैं संहार कर जाऊँगी ॥ ६१ ॥ और फिर तुमभी मुझमें लीन हो जाओगे ॥ और काम मोक्षदायक यह मंत्र आपको सदा स्मरण करना चाहिये ॥ ६२ ॥ और शुभकी इच्छासे उद्गीथ संयुक्त करना चाहिये, हे पुरुषोत्तम ! वैकुंठकी रचना करके तुम उसमें निवास करो ॥ ६३ ॥ और मुझसनातनीको हृदयमें धारण कर विहार करो. ब्रह्माजी बोले इस प्रकार वह त्रिगुणा प्रकृति वासुदेवसे कथनकरके ॥ ६४ ॥ निर्गुण शंकर देवसे अमृतके समान वचनबोली. देवी बोली हे शंकर ! इस महाकाली मनोहर गौरीको तुम ग्रहण करो ॥ ६५ ॥

और कैलासकी रचना कर यथेच्छ विहार करो. तुममें मुख्य तम और रज सत्व गौण रहेंगे ॥ ६६ ॥ असुरनाशके निमित्त तुम्हारा विहार होगा, इस निमित्त रज और तमोगुण होंगे तप करने और परमात्माके स्मरण करनेको ॥ ६७ ॥ शर्वरूप सत्वगुण शांतरूप तुमको सदा ग्रहण करना चाहिये, हे पाप रहित ! सर्वदा तुम सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाले होगे ॥ ६८ ॥ इनके विना संसारमें और कुछ वस्तु न होगी, जो कुछ संसारमें दीखता है वह सब त्रिगुणात्मक है ॥ ६९ ॥ निर्गुण वस्तु लोकमें न कभी दीखी है, न दीखेगी निर्गुण परमात्मा कभी दृश्य नहीं है ॥ ७० ॥ मैं ही सगुणा सृष्टिके समय और अन्तके समय निर्गुण होती हूं हे शंभो ? मैं कल्याणकारिणी सदा कारणरूप हूं कार्य नहीं हूं ॥ ७१ ॥ कारणरूप मैं सगुण और पुरुषके समीप

कैलासं कारयित्वा च विहरस्व यथासुखम् ॥ मुख्यस्तमोगुणस्तेऽस्तु गौणौ सत्त्वरजोगुणौ ॥ ६६ ॥ विहरासुरनाशार्थं रजोगुणतमोगुणौ ॥ तपस्तप्तुं तथाकर्तुं स्मरणं परमात्मनः ॥ ६७ ॥ शर्व सत्त्वगुणः शान्तो ग्रहीतव्यः सदाऽनघ ॥ सर्वथा त्रिगुणा यूयं सृष्टिस्थित्यंतका रकाः ॥ ६८ ॥ एभिर्विहीनं संसारे वस्तु नैवात्र कुत्रचित् ॥ वस्तु मात्रं तु यद्दृश्यं संसारे त्रिगुणं हि तत् ॥ ६९ ॥ दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतं नो भविष्यति ॥ निर्गुणः परमात्माऽसौ न तु दृश्यः कदाचन ॥ ७० ॥ सगुणा निर्गुणा चाहं समये शंकरोत्तमा ॥ सदाऽहंकारणं शंभो न च कार्यं कदाचन ॥ ७१ ॥ सगुणा कारणत्वाद्वै निर्गुणा पुरुषांतिके ॥ महत्तत्त्वमहंकारो गुणाः शब्दादयस्तथा ॥ ७२ ॥ कार्यका रणरूपेण संसरंते त्वहर्निशम् ॥ सदुद्भूतस्त्वहंकारस्तेनाहं कारणं शिवा ॥ ७३ ॥ अहंकारश्च मे कार्यं त्रिगुणोऽसौ प्रतिष्ठितः ॥ अहंकारान्म हत्तत्त्वं बुद्धिः सा परिकीर्तिता ॥ ७४ ॥ महत्तत्त्वं हि कार्यं स्यादहंकारो हि कारणम् ॥ तन्मात्राणि त्वहंकारादुत्पद्यंते सदैव हि ॥ ७५ ॥

निर्गुणरूपसे स्थित रहती हूं, महत्तत्व अहंकार शब्दादिक गुण ॥ ७२ ॥ वह सब कार्य कारणके रूपसे निरन्तर संसरण करते रहते हैं, अहंकार दो प्रकारका है एक पराहंतारूप दूसरा महत्तत्वसे उत्पन्न है, पराहंतारूप अहं ब्रह्मास्मि वृत्तिवाला है, पराहंतारूप सो अहंकार सृष्टिके समयमें पहले भाव व्यक्तरूप परावाणीरूप अहं अस्मि है, सदुद्भूत अहंकार 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदिति' है, इसी हेतुसे मैं अव्यक्तरूपा कारण शिवा हूं ॥ ७३ ॥ अहंकार मेरा कारण है और वह त्रिगुणात्म कतासे प्रतिष्ठित है. अहंकारसे महत्तत्व होता है और वह समष्टि बुद्धि कहाता है ॥ ७४ ॥ महत्तत्व कार्य है और पराहंतारूप अहंकार महत्तत्वका कारण है और अहंकारसे तन्मात्रा उत्पन्न होती हैं ॥ ७५ ॥

उन सूक्ष्मभूत कारण पंचमहाभूतसे पंचीकृत पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती हैं. जब प्रपंचकी उत्पत्तिका समय होता है, तब पांच कर्मेन्द्रिय पांच ज्ञानेन्द्रिय होती हैं, अर्थात् पंचभूतोंके सात्विक अंशसे पंच ज्ञानेंद्रियराजस अंशसे कर्मेन्द्रिय होती हैं, और मन पांचभूतोंके मिलित सात्विक अंशोंसे होता है ॥ ७६ ॥ पांच भूत इस प्रकार यह मनसहित षोड़शात्मक है, अर्थात् कार्यकारणरूप षोडशात्मक है प्राणपंचभूतोंका राजसी अंश है, यही सोलह विकार हैं ॥ ७७ ॥ इस प्रकार आठ प्रकृति षोडश विकार युक्त हैं, यह सब परिणामी माया है,परमात्मा आदिपुरुष कार्य कारण नहीं है, हे शिव ! इसप्रकार आदिसर्गमें यह सब कुछ मुझसे प्रगट होता है ॥ ७८ ॥ यह तुम्हारा समुद्भव मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है,हे श्रेष्ठो ! अब तुम विमानोंपर स्थित हो कार्यके निमित्त गमन करो

कारणं पंच भूतानां तानिसर्वसमुद्भवे ॥ कर्मेद्रियाणि पंचैव पंच ज्ञानेंद्रियाणि च ॥ ७६ ॥ महाभूतानि पंचैव मनः षोडशमेव च ॥ कार्यं च कारणं चैव गणोऽयं षोडशात्मकः ॥ ७७ ॥ परमात्मा पुमानाद्यो न कार्यं न च कारणम् ॥ एवं समुद्भवः शंभोसर्वेषामादिसंभवे ॥ ७८ ॥ सक्षेपेण मया प्रोक्तस्तव तत्र समुद्भवः ॥ व्रजंत्वद्य विमानेन कार्यार्थं मम सत्तमाः ॥ ७९ ॥ स्मरणाद्दर्शनं तुभ्यं दास्येऽहं विषमे स्थिते ॥ स्मर्तव्याऽहं सदा देवाः परमात्मा सनातनः ॥ ८० ॥ उभयोः स्मरणादेव कार्यसिद्धिरसंशयम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा विससर्जास्मान्द त्वा शक्तीः सुसंस्कृतान् ॥ ८१ ॥ विष्णवेऽथ महालक्ष्मीं महाकालीं शिवाय च ॥ महासरस्वतीं मह्यं स्थानात्तस्माद्विसर्जिताः ॥ ८२ ॥ स्थलांतरं समासाद्य ते जाताः पुरुषा वयम् ॥ चिंतयंतः स्वरूपं तत्प्रभावं परमाद्भुतम् ॥ ८३ ॥ विमानं तत्समासाद्य संरूढास्तत्र वै त्रयः ॥ न द्वीपोऽसौ न सा देवी सुधासिंधुस्तथैव च ॥ पुनर्दृष्टं विमानं वै तत्रास्माभिर्न चान्यथा ॥ ८४ ॥ आसाद्य तस्मिन्वितते विमाने प्राप्ता वयं पंकजसन्निधौ च ॥ महार्णवेयत्र हतौ दुरत्ययौ मुरारिणा तौ मधुकैटभाख्यौ ॥ ८५ ॥

॥ ७९ ॥ संकट उपस्थित होनेपर स्मरणसेही मैं तुमको दर्शन दूंगी. हे देवताओ ! परमात्मा सनातन देवकी शक्तिरूपसे मेरा सदा स्मरण करना ॥ ८० ॥ दोनोंके स्मरणसे अवश्य कार्यसिद्धि होगी. ब्रह्माजी बोले इस प्रकार संस्कार कर शक्ति देकर हमको बिदा किया ॥ ८१ ॥ विष्णुके निमित्त महालक्ष्मी, शिवके निमित्त महाकाली, और हमको महासरस्वती देकर बिदा किया । ॥ ८२ ॥ हम स्थलान्तरको प्राप्त होतेही पुरुषरूप हो गये; उस परम अद्भुत प्रभावकी चिंता करने लगे ॥ ८३ ॥ उस विमानपर हम तीनों आरूढ हुए तब वह द्वीप,देवी; सुधासिन्धु कोई भी न दीखा, फिर वह विमान ही रहा और कुछ नहीं ॥ ८४ ॥ हम उस विस्तृत विमानपर बैठकर कमलके समीप प्राप्त हुए, जहां सागरमें विष्णु भगवान्ने मधु कैटभ दैत्योंको मारा था ॥ ८५ ॥

इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पं० ज्वालाप्रसादमिश्र--कृतभाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले ! ऐसे प्रभावाली उस देवीका मैंने और विष्णुजीने दर्शन किया है और हे महाभाग ! शिवजीने भी वह देवी पृथक् देखी ॥ १ ॥ पिताके यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी परम प्रसन्न होकर प्रजापतिसे कहने लगे ॥ २ ॥ नारदजी बोले, आदिपुरुष निर्गुण अच्युत अविनाशी है, जो आपने देखा और अनुभव किया है वह कहिये ॥ ३ ॥ आपने त्रिगुण शक्ति देखी वह निर्गुण किस प्रकारकी है ? हे कमलोद्भव ! उसका और पुरुषका स्वरूप आप मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ जिसके निमित्त मैने श्वेतद्वीपमें बडा तप किया, और सिद्ध महात्मा क्रोधरहित तपस्वियोंका दर्शन किया ॥ ५ ॥ वह परमात्मा हमको प्राप्त न हुआ न दृष्टिगोचर

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवंप्रभावा सा देवी मया दृष्टाऽथ विष्णुना ॥ शिवेनापि माहभाग तास्ता देव्यः पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य पितुर्वाक्यं नारदो मुनिसत्तमः ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः प्रजापतिमिदं वचः ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ पुमानाद्योऽविनाशो यो निर्गुणोऽच्युतिरव्ययः ॥ दृष्टश्चैवानुभूतश्च तद्वदस्व पितामह ॥ ३ ॥ त्रिगुणा वीक्षिता शक्तिर्निर्गुणा कीदृशी पिताः ॥ तस्याः स्वरूपं मे ब्रूहि पुरुषस्य च पद्मज ॥ ४ ॥ यदर्थं च मया तप्तं श्वेतद्वीपे महातपः ॥ दृष्टाः सिद्धा महात्मानस्तापसा गतमन्यवः ॥ ५ ॥ परमात्मा न संप्राप्तो मयाऽसौ दृष्टिगोचरः ॥ पुनःपुनस्तपस्तीव्रं कृतं तत्र प्रजापते ॥ ६ ॥ भवता सगुणा शक्तिर्दृष्टा तात मनोरमा ॥ निर्गुणा निर्गुणश्चैव कीदृशौ तौ वदस्व मे ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्टः पिता तेन नारदेन प्रजापतिः ॥ उवाच वचनं तथ्यं स्मितपूर्वं पितामहः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ निर्गुणस्य मुने रूपं न भवेद्दृष्टिगोचरम् ॥ दृश्यं च नश्वरं यस्मादरूपं यस्य ते कथम् ॥ ९ ॥ निर्गुणा दुर्गमा शक्तिर्निर्गुणश्च तथा पुमान् ॥ ज्ञानगम्यौ मुनीनां तु भावनीयौ तथा पुनः ॥ १० ॥

हुआ, हे प्रजापते ! बरंबार तीव्र तपस्या की ॥ ६ ॥ हे तात ! आपने मनोहर सगुण शक्तिका दर्शन कियाहै; वह निर्गण शक्ति और वह निर्गुण किस भांतिके हैं ? सो आप हमसे कहिये ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले जब इस प्रकारसे नारदजीने पितासे पूछा तब हास्य करतेहुए ब्रह्माजी कहने लगे ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! निर्गुणरूप दृष्टिगोचर नहीं होता है कारण कि दृश्य तो नश्वर है अरूपका दर्शन कैसे हो सकता है ॥ ९ ॥ वह निर्गुण शक्ति बड़ी दुर्गम है इसी प्रकारनिर्गुण पुरुष है यह दोनों ज्ञानके द्वारा जाने जाते हैं, और इसी प्रकार मुनिजन भावनाभी करते हैं ॥ १० ॥

प्रकृति पुरुषको सदा अनादि निधन जानों यह विश्वाससेही जाने जाते हैं अविश्वाससे कभी नहीं जाने जाते ॥ ११ ॥ जो सब भूतोंमें चैतन्य है वही परमात्मा है
हे नारद ! अनेक भावोंमें वह तेज सर्वत्र व्याप्त होरहा है अर्थात् अनेक रूपसे व्याप्त है ॥ १२ ॥ वह चैतन्य और उससे अभिन्न शक्ति सर्वत्र व्याप्त हैं उनके
विना इस संसारमें कोई भी वस्तु नहीं है ॥ १३ ॥ इस देहमें ही मिले हुए इन अविनाशीका चिन्तन करना चाहिये. यह दोनों एक रूप चिदात्मा निर्मल
और निर्गुण हैं ॥ १४ ॥ जो शक्ति है सो यह परमात्मा है जो यह परमात्मा है सो शक्ति है. हे नारद इनका कोई सूक्ष्म अन्तर भी नहीं जान सकता
॥ १५ ॥ हे नारद ! सब शास्त्र और सांग वेदोंको पढ कर विना ज्ञानके उनके नाम मात्रके सूक्ष्म भेदको कोई नहीं जानता ॥ १६ ॥ यह स्थावर जंगमात्मक

अनादि निधनौ विद्धि सदा प्रकृति पूरुषौ ॥ विश्वासेनाभिगम्यौ तौ नाविश्वासेन कर्हिचित् ॥ ११ ॥ चैतन्यं सर्वभूतेषु यत्तद्विद्धि परा
त्मकम् ॥ तेजः सर्वत्रगं नित्यं नानाभावेषु नारद ॥ १२ ॥ तं च तां च महाभाग व्यापकौ विद्धि सर्वगौ ॥ ताभ्यां विहीनसंसारे न
किंचिद्वस्तु विद्यते ॥ १३ ॥ तौ विचिंत्यौ सदा देहे मिश्रीभूतौ सदाऽव्ययौ ॥ एकरूपौ चिदात्मनौ निर्गुणौ निर्मलावुभौ ॥ १४ ॥ या
शक्तिः परमात्माऽसौ योऽसौ सा परमा मता ॥ अंतरं नैतयोः कोऽपि सूक्ष्मं वेद च नारद ॥ १५ ॥ अधीत्य सर्वशास्त्राणि वेदान्सां
गांश्च नारद ॥ न जानति तयोः सूक्ष्ममंतरं विरतिं विना ॥ १६ ॥ अहंकारकृतं सर्वं विश्वं स्थावरजंगमम् ॥ कथं तद्रहितं पुत्र भवे
त्कल्पशतैरपि ॥ १७ ॥ निर्गुणं सगुणः पुत्र कथं पश्यति चक्षुषा ॥ सगुणं च महाबुद्धे चेतसा संविचारय ॥ १८ ॥ पित्तेनाच्छादिताजिह्वा
चक्षुश्च मुनिसत्तम ॥ कटु पित्तं विजानाति रसं रूपं न तत्तथा ॥ १९ ॥ गुणैः समावृतं चेतः कथं जानाति निर्गुणम् ॥ अहंकारोद्भवं
तच्च तद्विहीनं कथं भवेत् ॥ २० ॥ यावन्न गुणविच्छेदस्तावत्तद्दर्शनं कुतः ॥ तं पश्यति तदा चित्ते यदाऽहंकारवर्जितः ॥ २१ ॥

जगत् सब अहंकारका किया है. सो हे पुत्र सौ कल्पमेंभी किस प्रकार अहंकार रहित हो सकता है ? ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! सगुण निर्गुणको नेत्रोंसे किस
प्रकार देख सकता है ? हे महाबुद्धि सम्पन्न ! इस कारण योग्यता जबतक न हो तबतक चित्तसे सगुणका विचार करता रहे ॥ १८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !
पित्तसे आच्छादित हुई यह जिह्वा और यह नेत्र कटु आदि रस और नेत्ररूपको जानते हैं, जिह्वा रसको जानती है रूपको नहीं जानती ॥ १९ ॥
जब चित्त गुणोंसे आच्छादित है तो निर्गुणको कैसे जान सकता है फिर जो अहंकारसे उत्पन्न है वह निरहंकार कैसे हो सकता है ? ॥ २० ॥
और जबतक गुणोंका विच्छेद न हो तबतक उसका दर्शन कैसे हो सकता है ? जब अहंकार हित होगा तब चित्तमें उसका दर्शन होगा ॥ २१ ॥

नारदजी बोले हे देवेश ! इन तीनों गुणोंके स्वरूप और त्रिगुणात्मक अहंकारका कथन कीजिये ॥ २२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! सात्विक राजस तामस इनके भेदसे रूपोंका वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥ जिसके जाननेसे मैं मुक्त हो जाऊँ वह ज्ञान मुझसे कहिये और गुणोंके लक्षण भीविभागसे कहिये ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पापरहित ? इन तीनोंकी तीन गतियां मैं तुमसे कहता हूं. ज्ञान शक्ति क्रिया शक्ति और अर्थ शक्ति होती हैं ॥ २५ ॥ सात्विक गुणकी ज्ञान शक्ति रजोगुणकी क्रिया शक्ति और तमोगुणकी द्रव्यशक्ति होती है ॥ २६ ॥ हे नारद ! सुनो मैं तत्वसे इनके कार्य कहता हूं तमोगुणी द्रव्यशक्तिसे शब्द स्पर्शप्रगट होता है ॥ २७ ॥ रूप रस और गंध यह तन्मात्रा हैं आकाशका शब्दही एक गुण है. वायुका स्पर्श गुण है ॥ २८ ॥

नारद उवाच ॥ स्वरूपं देवदेवेश त्रयाणामेव विस्तरात् ॥ गुणानः यत्स्वरूपोऽस्ति ह्यहंकारस्त्रिरूपकः ॥ २२ ॥ सात्त्विको राजसश्चैव
तामसश्च तथाऽपरः ॥ विभेदेन स्वरूपाणि वदस्व पुरुषोत्तम ॥ २३ ॥ यज्ज्ञात्वा विप्रमुच्येऽहं ज्ञानं तद्वद मे प्रभो ॥ गुणानां लक्षणा
न्येव विततानि विभागशः ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्रयाणां शक्तयस्तिस्रस्तद्ब्रवीमि तवानघ ॥ ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरर्थशक्तिस्तथाऽपरा
॥ २५ ॥ सात्त्विकस्य ज्ञानशक्ती राजसस्य क्रियात्मिका ॥ द्रव्यशक्तिस्तामसस्य तिस्रश्च कथितास्तव ॥ २६ ॥ तेषां कार्याणि
वक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः ॥ तामस्या द्रव्यशक्तेश्च शब्दस्पर्शसमुद्भवः ॥ २७ ॥ रूपं रसश्च गंधश्च तन्मात्राणि प्रचक्षते ॥ शब्दैकगु
णमाकाशं वायुः स्पर्शगुणस्तथा ॥ २८ ॥ सुरूपकगुणोऽग्निश्च जलं रसगुणात्मकम् ॥ पृथ्वी गंधगुणा ज्ञेया सूक्ष्माण्येतानि नारद ॥२९॥
दशैतानि मिलित्वा तु द्रव्यशक्तियुतानि वै ॥ तामसाहंकारजः स्यात्सर्गस्तदनुवृत्तिकः ॥ ३० ॥ राजस्याश्च क्रियाशक्तेरुत्पन्नानि शृणुष्व
मे ॥ श्रोत्रं त्वग्रसना चक्षुर्घ्राणं चैव च पंचमम् ॥ ३१ ॥ ज्ञानेंद्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च ॥ वाक्पाणिपादपायुश्च गुह्यांतानि
च पंच वै ॥ ३२ ॥ प्राणोऽपानश्च व्यानश्च समानोदानवायवः ॥ पंचदशः मिलित्वैव राजसः सर्ग उच्यते ॥ ३३ ॥

अग्निका गुण रूप और जलका गुण रस है, हे नारद ? पृथ्वीका गुण गन्ध है यह सूक्ष्म तन्मात्रा हैं ॥ २९ ॥ फिर आगे कही रीतिसे यह दश मिलकर द्रव्य शक्ति युक्त होते हैं. और तामस अहंकारकी वृत्तियुक्त यह ब्रह्माण्ड होता है ॥ ३० ॥ अब राजसी क्रियाशक्तिसे उत्पन्नोंको श्रवण करो. श्रोत्र त्वचा, नासिका, चक्षु, घ्राण ॥ ३१ ॥ यह ज्ञान इंद्रिय तथा कर्मेंद्रिय वाक् पाणि चरण गुद गुह्य यह पांच हैं ॥ ३२ ॥ प्राण अपान व्यान समान उदान वायु यह पन्द्रह मिलकर राजसीसर्ग कहाता है ॥ ॥ ३३ ॥

यह सम्पूर्ण साधन क्रियाशक्तियुक्त हैं इनका उपादान कारण चिद्वृत्ति कही जाती है ॥ ३४ ॥ यह सब ज्ञानशक्तिसे युक्त और सात्विकसे प्रगट हैं. दिशा वायु सूर्य वरुण अश्विनी कुमार ॥ ३५ ॥ यह पांचों ज्ञानइंद्रियोंके अधिष्ठातृदेवता हैं, चन्द्र ब्रह्मा रुद्र और क्षेत्रज्ञ ॥ ३६ ॥ यह वृत्तिके भेदसे चार प्रकार के हुए अन्तःकरण बुद्धिआदिके भेद हैं, यह चारोंही अधिष्ठातृदेवता कहे हैं॥ ३७ ॥ यह मनसे मिलकर पन्द्रह सत्वगुणसे प्रगट होनेसे सात्विकसर्ग कहाते हैं ॥ ३८ ॥ स्थूल सूक्ष्मके भेदसे परमात्माके दो रूप हैं, ज्ञानरूप निराकार सब विवर्तादि कारण हैं॥ ३९ ॥ साधकको ध्यानादिमें स्थूलरूप कहा है, यह पुरुषका सूक्ष्म शरीर कहा है; अन्तर्मुख बहिर्मुख भेदसे मायाशक्तिके दो रूप कहे हैं, उसमें अन्तर्मुखरूप तो पराहंतारूप उत्तमाधिकारी ज्ञान विषयक

साधनानि किलैतानि क्रिया शक्तिमयानि च ॥ उपादानं किलैतेषां चिदनुवृत्तिरुच्यते ॥ ३४ ॥ ज्ञानशक्तिसमायुक्ताः सात्त्विकाच्च समुद्भवाः ॥ दिशो वायुश्च सूर्यश्च वरुणश्चाश्विनावपि ॥ ३५ ॥ ज्ञानेंद्रियाणां पंचाना पंचाधिष्ठातृदेवताः ॥ चंद्रो ब्रह्मा तथा रुद्रः क्षेत्रज्ञश्च चतुर्थकः ॥ ३६ ॥ इत्यंतः करणाख्यस्य बुद्ध्यादेश्चाधिदैवतम् ॥ चत्वार्येव तथा प्रोक्ताः कीलाधिष्ठातृदेवताः ॥ ३७ ॥ मनसा सह चैतानि नूनं पंचदशैव तु ॥ सात्त्विकस्य तु सर्गोऽयं सात्त्विकाख्यः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥ स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन द्वे रूपे परमात्मनः ॥ ज्ञानरूपं निराकारं निदानं तत्प्रचक्षते ॥ ३९ ॥ साधकस्य तु ध्यानादौ स्थूलरूपं प्रचक्षते ॥ शरीरं सूक्ष्ममेवेदं पुरुषस्यप्रकीर्तितम् ॥ ४० ॥ मम चैव शरीरं वै सूत्रमित्याभिधीयते ॥ स्थूलं शरीरं वक्ष्यामि ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ४१ ॥ शृणु नारद यत्नेन यच्छ्रुत्वा विप्रमुच्यते ॥ तन्मात्राणि पुरोक्तानि भूतसूक्ष्माणि यानि वै ॥ ४२ ॥ पंचीकृत्य तु तान्येव पंच भूतसमुद्भवः ॥ पंचीकरणभेदोऽयं शृणु संवदतः किल ॥ ४३ ॥ प्रथमं रसतन्मात्रामुपादाय मनस्यपि ॥ कल्पयेच्च तथा तद्वै यथा भवति चोदकम् ॥ ४४ ॥

है, बहिर्मुखरूप उसकी अपेक्षासे स्थूल है, बहिर्मुख मायाशक्त्याकार विशिष्ट ब्रह्मरूप मध्यमाधिकारियोंको उपासनीयहै, अक्षरार्थ तो यह है कि पुरुष परमात्मा के लिंगदेहकी अपेक्षासे सूक्ष्मही यह बहिर्मुख मायाकार रूप अन्तर्मुख मायाकारकी अपेक्षासे स्थूल शरीर उपासनीय कहा है ॥ ४० ॥ मेरा शरीर सूत्ररूप कहाजाता है, परमात्मा ब्रह्मका स्थूलशरीर कहाता है ॥ ४१ ॥ हे नारद! इसको यत्नसे सुनो, इसके सुननेसे मुक्ति हो जायगी. तन्मात्रा भूत सूक्ष्म यह पहले कथन करदिये हैं ॥ ४२ ॥ पंचीकरणद्वारा यह पंचभूतकी उत्पत्ति है, सो आप पंचीकरणका भेद सुनो, ॥ ४३ ॥ पहले रसकी तन्मात्रा मनमें निश्चय करके उसे दो प्रकारसे कल्पना करे फिर उससे स्थूल जलकी कल्पना करे ॥ ४४ ॥

इसी प्रकार अवशिष्ट चार भूतोंकेभी दो दो भाग करे, उनमें आधे भागको पृथक् करके अवशिष्ट अर्धभागके अंश पृथक् चार भाग करके अपने २ अर्धभागरहित उन अंशोंमें मिलावे. अर्थात् रसतन्मात्राके अर्धभाग जलमें रसतन्मात्राके अतिरिक्त भूतोंकी तन्मात्राके अर्ध भागोंके चारों खण्डोंमें मिलावे. इस प्रकार स्थूल जलके होनेमें ॥ ४५ ॥ फिर इसीप्रकार और चार भूतोंके पंचीकरण विभाग होनेपर उन पंचीकृत पंचभूतोंमें अधिष्ठानतासे चैतन्यके प्रतिबिम्बतासे प्रविष्ट होनेसे उस पंचभूतात्मक देहमें अहम् इस प्रकार तादात्म्यरूपवाली संशयमनोवृत्ति उठती है. अर्थात् उस देहमें अहम् (मैं) यह प्रगट होता है ॥ ४६ ॥ जब वह विशेषरूपसे प्रतीयमान होता है तब वह स्थूलदेहाभीमानविशिष्ट चैतन्य वैश्वानर इत्यादिसे आदिनारायण और भगवान् कहा जाता है ॥ ४७ ॥ जब यह पंचीकरणसे घनीभूत होता है और आकाशादिरूपसे स्पष्टताको प्राप्त होता है तब पूर्वोक्त इस तन्मात्रागुणों द्वारा कारण

शिष्टानां चैव भूतानामंशान्कृत्वा पृथक् पृथक् ॥ उदके मिश्रयेच्चांशान्कृते रसमयेततः ॥ ४५ ॥ तदा भूतविभागे च चैतन्ये च प्रकाशिते ॥ चैतन्यतस्य प्रवेशाच्च तदाऽहमिति संशयः ॥ ४६ ॥ प्रतीयमाने तेनैव विशेषेणाभि मानतः ॥ आदिनारायणो देवो भगवानिति चोच्यते ॥ ४७ ॥ घनीभूतेऽथ भूतानां विभागे स्पष्टतां गते ॥ वृद्धिं प्राप्य गुणैश्चेत्थमेकैकगुणवृद्धितः ॥ ४८ ॥ आकाशस्य गुणश्चैकः शब्द एव न चापरः ॥ शब्दस्पर्शौ च वायोश्च द्वौ गुणौ परिकीर्तितौ ॥ ४९ ॥ अग्नेः शब्दश्च स्पर्शश्च रूपमेते त्रयो गुणाः ॥ शब्दस्पर्शरूपरसाश्चत्वारो वै जलस्य च ॥ ५० ॥ स्पर्श शब्द रसा रूपं गंधश्च पृथिवी गुणाः ॥ एवं मिलितयोगैश्च ब्रह्मांडोत्पत्तिरुच्यते ॥ ५१ ॥ सर्वे जीवा मिलित्वैव ब्रह्मांडांशसमुद्भवाः ॥ चतुरशीतिलक्षाश्च प्रोक्ता वै जीवजातयः ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

भूतसे वृद्धिको प्राप्त होकर कारणगुण कार्यगुणोंका आरंभ करते हैं अर्थात् एक २ गुणकी वृद्धिसे एक २ भूत होते हैं ॥ ४८ ॥ आकाशका गुण एक ही शब्द है, अन्य नहीं. वायुमें शब्द स्पर्श दो गुण रहते हैं ॥ ४९ ॥ अग्निमें शब्द स्पर्श रूप तीन गुण हैं. जलमें शब्द स्पर्श रूप रस यह चार गुण हैं ॥५०॥ पृथ्वीमें शब्द स्पर्शरूप रस गन्ध यह पांच गुण हैं, इस प्रकार पंचीकृत भूतोंके योगसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति होती है ॥ ५१ ॥ यह ब्रह्माण्डके अंशसे प्रगट होकर सब जीव अपने कर्मफल भोगनेके निमित्त चौरासी लाख होते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले हे तात ! तुम्हारे पूँछनेसे यह सर्ग वर्णन किया है. अब मन लगाय गुणोंकी रूपसंस्था श्रवण करो ॥ १ ॥ सत्वगुण प्रीत्यात्मक है, सुखसे सब पदार्थों में प्रीति होती है, सीधापन सत्य शौच श्रद्धा क्षमा धैर्य ॥ २ ॥ अनुकम्पा लज्जा शांति संतोष इनसे निश्चल सत्व गुणकी प्रतीति होती है ॥ ३ ॥ सत्वका वर्ण श्वेत धर्ममें प्रीति करनेवाला है; नित्य सत् श्रद्धाका प्रगट करनेवाला औरअसत् श्रद्धाका निवारण करनेवाला है ॥ ४ ॥ तत्वदर्शियोंने श्रद्धा सात्विकी राजसी तामसी तीन भेदवाली कही है ॥ ५ ॥ रजका लाल वर्ण है, यह अप्रीतिकारक अद्भुत है, और अप्रीति दुःखसे होती है, इसमें सन्देह नहीं. इस कारण यह दुःखरूप है ॥ ६ ॥ द्वेष द्रोह मत्सरता स्तंभ उत्कंठा नींद और राजसी श्रद्धा इसमें होती है ॥ ७ ॥ मान दम गर्व रजसेही होती है. चतुर

ब्रह्मोवाच ॥ सर्गोऽयं कथितस्तात यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ॥ गुणानां रूपसंस्था वै शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ १ ॥ सत्त्वं प्रीत्यात्मकं ज्ञेयं सुखात्प्रीतिसमुद्भवः ॥ आर्जवं च त्त्वंतथा सत्यं शौचं श्रद्धा क्षमा धृतिः ॥ २ ॥ अनुकम्पा तथा लज्जा शांतिः संतोष एव च ॥ एतैः सत्त्वप्रतीतिश्च जायते निश्चला सदा ॥ ३ ॥ श्वेतवर्णं तथासत्त्वं धर्मे प्रीतिकरं सदा ॥ सच्छ्रद्धोत्पादकं नित्यमसच्छ्रद्धानिवारकम् ॥ ४ ॥ सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च तथाऽपरा ॥ श्रद्धा तु त्रिविधा प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५ ॥ रक्तवर्णं रजः प्रोक्तमप्रीतिकरमद्भुतम् ॥ अप्रीतिर्दुःखयोगत्वाद्भवत्येव सुनिश्चिता ॥ ६ ॥ प्रद्वेषोऽथ तथा द्रोहो मत्सरः स्तंभ एव च ॥ उत्कंठा च तथा निद्रा श्रद्धा तत्र च राजसी॥७॥ मानो मदस्तथागर्वो रजसाकिल जायते ॥ प्रत्येतव्यं रजस्त्वेतैर्लक्षणैश्च विचक्षणैः॥८॥ कृष्णवर्णं तमः प्रोक्तं मोहनं च विषादकृत्॥आलस्यं च तथाऽज्ञानं निद्रा दैन्यं भयं तथा॥९॥विवादश्चैव कार्पण्यं कौटिल्यं रोष एव च ॥ वैषम्यं वाऽतिनास्तिक्यं परदोषानुदर्शनम् ॥ १० ॥ प्रत्येतव्यं तमस्त्वेतैर्लक्षणैः सर्वथा बुधैः ॥ तामस्या श्रद्धया युक्तं परतापोपपादकम् ॥ ११ ॥ सत्त्वं प्रकाशयितव्यं नियंतव्यं रजः सदा ॥ संहर्तव्यं तमः कामं जनेन शुभमिच्छता ॥ १२ ॥

पुरुषोंको इन लक्षणोंसे रजोगुण जानना चाहिये, ॥ ८ ॥ तमका कृष्णवर्ण है यह मोहन और विषादकरनेवाला है, आलस्य. अज्ञान निद्रा, दीनता, भय ॥९॥ विवाद, कृपणता, कुटिलता: रोष. विषमता, नास्तिकता पराये दोषोंका देखना ॥ १० ॥ इन लक्षणोंसे पण्डितोंको तमोगुणकी पहचान करनी चाहिये. दूसरेको ताप देनेवाली तामसी श्रद्धा होती है ॥ ११ ॥ सत्वगुणका प्रकाश करना चाहिय, रजोगुणको रोकना चाहिये और शुभकी इच्छावाले जनको तमका संहार करना चाहिये ॥ १२ ॥

यह परस्पर एक दूसरेके अभिभवसे विरोध करते हैं यह सब ही एक दूसरेके आश्रय हैं, कभी निराश्रय नहीं रहते हैं ॥ १३ ॥ कहीं भी केवलसत्व रज वा तम नहीं रहता, यह सब मिले हुये एक दूसरेके आश्रय हैं ॥ १४ ॥ इन दोनोंके आश्रयका विस्तार कहते हैं. हे नारद! जिसको जानकर तुम भवबंधनसे छूट जाओगे ॥ १५ ॥ यह मेरा वचन युक्त जानकर इसमें सन्देह न करना चाहिये. फलके परिज्ञात होनेमें हम अनुभव करते हैं ॥ १६ ॥ हे महामते श्रवण दर्शनसे उसी समय फल दर्शनसे जो फलजनक ज्ञात है वही ज्ञान सुना और अनुभूत है, और जो संस्कारके अनुभवसे जाना जाता है वह उस पदार्थके अनुभवके विना नही जाना जाता है, जिस कर्मका फल न दीखे वह किया भी विना किया है. किसीने पवित्र तीर्थकी कथा सुनी और फल प्राप्तिका निश्चय न जानकर वहां गमन

अन्योन्याभिभवाच्चैते विरुध्यंति परस्परम् ॥ तथाऽन्योन्याश्रयाः सर्वे न तिष्ठंति निराश्रयाः ॥ १३ ॥ सत्त्वं न केवलं क्वापि न रजो न तमस्तथा ॥ मिलिताश्च सदा सर्वे तेनान्योन्याश्रयाः स्मृताः ॥ १४ ॥ अन्योन्यमिथुनाश्चैव विस्तारं कथयाम्यहम् ॥ शृणु नारद यज्ज्ञात्वा मुच्यते भवबंधनात ॥ १५ ॥ संदेहोऽत्र न कर्तव्योज्ञात्वेत्युक्तं मया वचः ॥ ज्ञातं तनुभूतं यत्परिज्ञातं फले सति ॥ १६ ॥ श्रवणाद्दर्शनाच्चैव सपद्येव महामते ॥ संस्कारानुभवाच्चैव परिज्ञातं न जायते ॥ १७ ॥ श्रुतं तीर्थं पवित्रं च श्रद्धोत्पन्ना च राजसी ॥ निर्गतस्तत्र तीर्थे वै दृष्टं चैव यथाश्रुतम् ॥ १८ ॥ स्नातस्तत्र कृतं कृत्यं दत्तं दानं च राजसम् ॥ स्थितस्तत्र कियत्कालं रजोगुण समावृतः ॥ १९ ॥ रागद्वेषान्न निर्मुक्तः कामक्रोधसमावृतः ॥ पुनरेव गृहं प्राप्तो यथापूर्वं तथा स्थितः ॥ २० ॥ श्रुतं च नानुभूतं वै तेन तीर्थं मुनीश्वर ॥ न प्राप्तं च फलं यस्मादश्रुतं विद्धि नारद ॥ २१ ॥ निष्पापत्वं फलं विद्धि तीर्थस्य मुनिसत्तम ॥ कृषेः फलं यथा लोके निष्पन्नान्नस्य भक्षणम् ॥ २२ ॥ पापदेहविकारा ये कामक्रोधादयः परे ॥ लोभो मोहस्तथा तृष्णा द्वेषो राग स्तथा मदः ॥ २३ ॥

करनेमें उसकी राजसी श्रद्धाका उदय हुआ फिर वहां जाय जैसा सुना था वैसाही दर्शन किया फिर उसी प्रकारकी चित्त वृत्तिसे ॥ १७ ॥ १८ ॥ वहां स्थान करके सब कृत्य किया और राजसी दान दिया और रजोगुण युक्त हो वहां कुछ कालतक निवास किया ॥ १९ ॥ काम क्रोधसे युक्त होनेसे काम क्रोधसे मुक्त न हुआ, और फिर भी घर आकर पूर्वके समान स्थित हुए ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर! उसने तीर्थ सुना और अनुभव भी किया और जब फलकी प्राप्ति नहीं हुई तो उसको अश्रुत और अनुभवरहित जानिये ॥२१॥ हे मुनिश्रेष्ठ तीर्थका फल निष्पाप होता है जैसे लोकेमें कृषिका फल अन्न भक्षण है ॥२२॥ पाप काम क्रोधादिक यह देहके विकारके निमित्त होते हैं, लोभ मोह तृष्णा द्वेष राग मद ॥ २३ ॥

असूया ईर्षा अक्षमा अशान्ति हे नारद ! यह पापही हैं. जबतक यह देहसे नहीं निकलते तब तक वह पाप युक्त ही हैं ॥ २४ ॥ और तीर्थ करनेपर भी जो यह देहसे न निर्गत हों तो किसानके समान इनका फल निरर्थक ही है ॥ २५ ॥ जैसे किसानने श्रमसे दुर्घट भूमिको जोता और बहुमूल्य बीज बोया यह वृत्ति कल्याण कारिणी है ॥ २६ ॥ फिर दिन रात क्लेश भोगकर फलमें इच्छा की. और हेमन्त समय आनेपर फलपाकके समय सो गया, और उसकी खेती आदि उपजका फल अन्नादि व्याघ्रादिकोंने ॥ २७ ॥ तथा शलभोंने भक्षण करके निराश कर दिया, इस प्रकार हे पुत्र ! पाप युक्त रहनेसे तीर्थ श्रम रूप है फल नहीं देता ॥ २८ ॥ शास्त्रके दर्शनसे सत्वगुण समुत्कट और वृद्धिको प्राप्त होता है, हे नारद ! तामसी वस्तुओंसे वैराग्य होना ही उसका

असूयेर्ष्याऽक्षमाऽशांतिः पापान्येतानि नारद ॥ न निर्गतानि देहात्तु तावत्पापयुतो नरः ॥ २४ ॥ कृते तीर्थे यदैतानि देहान्न निर्गतानि चेत् ॥ निष्फलः श्रम एवैकः कर्षकस्य यथा तथा ॥ २५ ॥ श्रमेणापीडितं क्षेत्रं कृष्टा भूमिः सुदुर्घटा ॥ उप्तं बीजं महार्घं च हिता वृतिरुदाहृता ॥ २६ ॥ अहोरात्रं परिक्लिष्टो रक्षणार्थं फलोत्सुकः ॥ काले सुप्तस्तु हेमंते वने व्याघ्रादिभिर्भृशम् ॥ २७ ॥ भक्षितं शलभैः सर्वं निराशश्च कृतः पुनः ॥ तद्वत्तीर्थश्रमः पुत्र कष्टदो न फलप्रदः ॥ २८ ॥ सत्त्वं समुत्कटं जातं प्रवृद्धं शास्त्रदर्शनात् ॥ वैराग्यं तत्फलं जातं तामसार्थेषु नारद ॥ २९ ॥ प्रसह्याभिभवत्येव तद्रजस्तमसी उभे ॥ रजः समुत्कटं जातं प्रवृत्तं लोभयोगतः ॥ ३० ॥ तत्तथाऽभिभवत्येव तमःसत्त्वे तथा उभे ॥ तमस्तथोत्कटं भूत्वा प्रवृद्धं मोहयोगतः ॥ ३१ ॥ तत्सत्त्वरजसी चोभे संगम्याभिभवत्यपि ॥ विस्तरं कथयाम्यद्य यथाऽभिभवतीति वै ॥ ३२ ॥ यदा सत्त्वं प्रवृद्धं वै मतिर्धर्मे स्थिता तदा ॥ न चिंतयति बाह्यार्थं रजस्तमःसमुद्भवम् ॥ ३३ ॥ अर्थं सत्त्वसमुद्भूतं गृह्णाति च न चान्यथा ॥ अनायासकृतं चार्थं धर्मं यज्ञं च वांछति ॥ ३४ ॥

फल है ॥ २९ ॥ यह रज और तम बलपूर्वक मनुष्यको आक्रमण करते हैं लोभके योगसे प्रवृत्त होकर रज उत्कट हो जाता है ॥ ३० ॥ तब वह तम और सत्य दोनोंको तिरस्कार करता है, और मोहसे तम उत्कट होकर ॥ ३१ ॥ सत्व और रज दोनोंको तिरस्कृत कर देता है. वह अभिभवका विधान विस्तार पूर्वक कहता हूं ॥ ३२ ॥ जब सत्वगुण वृद्धिको प्राप्त होता है तब धर्ममें मति होती है, रज तमसे प्रगट हुए बाह्य अर्थकी चिन्ता नहीं करता ॥ ३३ ॥ और सत्वगुणसे उत्पन्न हुए ही अर्थोंको ग्रहण करता है औरोंको नहीं, अनायास प्राप्त हुए अर्थसे यज्ञ और धर्मकी इच्छा करता है ॥ ३४ ॥

और सात्विक विभागोंमें ही मति करता है, मोक्षार्थी राजस पदार्थोंमेंही इच्छा नहीं करता, तामसमें तो कौन कहे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पहले रजका जय करनेसे फिर तमोगुणका जय होजाता है. हे पुत्र ! उस समय केवल सत्वगुण निर्मल स्थित रहता है ॥ ३६ ॥ जब रज वृद्धिको प्राप्त होता है तब सनातन धर्मको त्यागकर राजसी श्रद्धासे अन्यथा धर्मोंको करता है ॥ ३७ ॥ राजससे जो अर्थकी वृद्धि होती है उससे राजसीही भोग होते हैं; तब सत्व निर्गता होकर तमका भी निग्रह होजाता है ॥ ३८ ॥ जिस समय तमकी उत्कट बुद्धि होतीहै उस समय वेद और धर्मशास्त्रपर विश्वास नहीं होता ॥ ३९ ॥ तामसी श्रद्धासे धनका व्यय करता है सर्वत्र द्रोह करता और शांतिको प्राप्त नहीं होता है ॥ ४० ॥ वां क्रोधी दुर्मति शठ सत्वरजको जय किये विपरीत भावोंमें

सात्त्विकेष्वेव भोगेषु कामं वै कुरुते तदा ॥ राजसेषु न मोक्षार्थी तामसेषु पुनः कुतः ॥ ३५ ॥ एवं जित्वा रजः पूर्वं ततश्च तमसो जयः ॥ सत्त्वं च केवलं पुत्र तदा भवति निर्मलम् ॥ ३६ ॥ यदा रजः प्रवृद्धं वै त्यक्त्वा धर्मान्सनातनान् ॥ अन्यथा कुरुते धर्माञ्छ्रद्धां प्राप्य तु राजसीम् ॥ ३७ ॥ राजसादर्थसंवृद्धिस्तथा भोगस्तु राजसः ॥ सत्त्वं विनिर्गतं तेन तमसश्चापि निग्रहः ॥ ३८ ॥ यदा तमो विवृद्धं स्यादुत्कटं संबभूव ह ॥ तदा वेदे न विश्वासो धर्मशास्त्रे तथैव च ॥ ३९ ॥ श्रद्धां च तामसीं प्राप्य करोति च धनात्ययम् ॥ द्रोहं सर्वत्र कुरुते न शांतिमधिगच्छति ॥ ४० ॥ जित्वा सत्त्वं रजश्चैव क्रोधनो दुर्मतिः शठः ॥ वर्तते कामचारेण भावेषु विततेषु च ॥ ४१ ॥ एकं सत्त्वं न भवति रजश्चैकं तमस्तथा ॥ सहैवाश्रित्य वर्तंते गुणा मिथुनधर्मिणः ॥ ४२ ॥ रजोविना न सत्त्वं स्याद्रजः सत्त्वं विना क्वचित् ॥ तमो विना न चैवैते वर्तंते पुरुषर्षभ ॥ ४३ ॥ तमस्ताभ्यां विहीनं तु केवलं न कदाचन ॥ सर्वे मिथुनधर्माणो गुणाः कार्यांतरेषु वै ॥ ४४ ॥ अन्योन्यसंश्रिताः सर्वे तिष्ठंति न वियोजिताः ॥ अन्योन्यजनकाश्चैव यतः प्रसवधर्मिणः ॥ ४५ ॥ सत्त्वं कदाचिच्च रजस्तमसी जनयत्युत ॥ कदाचित्तु रजः सत्त्वतमसी जनयत्यपि ॥ ४६ ॥

यथेच्छ वर्तता है ॥ ४१ ॥ इकला सत्व रज वा तम नहीं रहता यह मिथुनधर्मी गुण सदा एक दूसरेका आश्रय करके वर्तते हैं ॥ ४२ ॥ रजके विना सत्व और सत्वके विना रज कभी स्थित नहीं रहताहै. हे पुरुश्रेष्ठ न ! कभी यह तमके विना स्थित रहते हैं ॥ ४३ ॥ इनके विना केवल तम स्थित नहीं रह सकता सब गुण कार्यान्तरमें मिथुन धर्मवाले हैं ॥ ४४ ॥ यह सब अन्योन्य आश्रय होकर स्थित रहते हैं वियुक्त नहीं और परस्पर एक दूसरेके प्रगट करनेवाले हैं ॥ ४५ ॥ कभी सत्वसे रज और तम प्रगट होता है कभी रजसे सत्व और तम होता है ॥ ४६ ॥

कभी तमसे सत्व और रज होता है यह परस्पर एक दूसरेको इस प्रकारसे प्रगट करते हैं जैसे मृतिका घटको प्रगट करती है ॥ ४७ ॥ बुद्धिमें स्थित हुए यह गुण परस्पर एक दूसरेको करते हैं, जैसे देवदत्त विष्णु मित्र यज्ञदत्त इत्यादि ॥ ४८ ॥ जैसे स्त्री पुरुष परस्पर मिथुनधर्मी होते हैं इसी प्रकासे गुण परस्पर युग्म भावको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ रजके मिथुनमें सत्व और सत्वके मिथुनमें रज होता है, तमके मिथुनमें दोनों सत्व और रज होते हैं ॥ ५० ॥ नारदजी बोले इस प्रकार हमारे पिताने गुणरूपका वर्णन किया, फिर यह सुनकर मैं पिताजीसे पूछने लगा ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत भाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ नारदजी बोले! आपने गुणोंका लक्षण कहा उससे आपके मुखकी अमृतरूप वाणीसे से मैं

कदाचित्तु तमः सत्त्वरजसी जनयत्युभे ॥ जनयंत्येवमन्योन्यं मृत्पिडश्चघटं यथा ॥ ४७ ॥ बुद्धिस्थास्ते गुणाः कामान्बोधयंति परस्परम् ॥ देवदत्तविष्णुमित्रयज्ञदत्तादयो यथा ॥ ४८ ॥ यथा स्त्री पुरुश्चैव मिथुनौ च परस्परम् ॥ तथा गुणाः समायांति युग्मभावं परस्परम् ॥ ४९ ॥ रजसो मिथुने सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुने रजः ॥ उभे ते सत्त्वरजसी तमसो मिथुने विदुः ॥ ५० ॥ नारद उवाच ॥ इत्येतत्कथितं पित्रा गुणरूपमनुत्तमम् ॥ श्रुत्वाऽप्येतत्स एवाहं ततोऽपृच्छं पितामहम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभा०म०तृ० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ गुणानां लक्षणं तात भवता कथितं किल ॥ न तृप्तोऽस्मि पिबन्मिष्टं त्वन्मुखात्प्रच्युतं रसम् ॥ १ ॥ गुणानां तु परिज्ञानं यथावदनुवर्णय ॥ येनाहंपरमां शांतिमधिगच्छामिचेतसि ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्टस्तु पुत्रेण नारदेन महात्मना ॥ उवाच च जगत्कर्ता रजोगुणसमुद्भवः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि गुणानां परिवर्णनम् ॥ सम्यङ्‌ नाहं विजानामि यथामति वदामि ते ॥ ४ ॥ सत्त्वं तु केवलं नैव कुत्रापि परिलक्ष्यते ॥ मिश्रीभावस्तुतेषां वै मिश्रत्वं प्रतिभाति वै ॥ ५ ॥ यथा काचिद्वरा नारी सर्वभूषणभूषिता ॥ हावभावयुता कामं भर्तुः प्रीतिकरी भवेत् ॥ ६ ॥

तृप्त हूं ॥ १ ॥ आप यथायोग्य गुणोंका वर्णन कीजिये, जिससे मैं चित्तमें परम शांतिको प्राप्त हूं ॥ २ ॥ व्यासजी बोले जब महात्मा नारदजी ने इस प्रकार पूँछा तब रजोगुणसे उत्पन्न जगत्के कर्ता कहने लगे ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले सुनो नारदजी! मैं गुणोंका वर्णन करता हूं, भली प्रकार तो मैं भी नहीं जानता, पर यथामति कहता हूं ॥ ४ ॥ केवल सत्वगुण तो कहीं भी लक्षित नहीं होता है, मिश्रभाव होनेसे मिला हुआ दीखता है ॥ ५ ॥ जैसे कोई श्रेष्ठ नारी सब भूषणोंसे भषित हो और हावभावकरके स्वामीकी प्रीतिकारिणी होती है ॥ ६ ॥

और माता पिता बंधु वर्गोंको भी प्रसन्न करती है. सपत्नीक सौतोंको दुःख और मोह प्रगट करती है ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे सत्व गुणके स्त्रीत्व प्राप्त होनेसे रज तमकी अन्यथा वृत्ति प्रगट होती है ॥ ८ ॥ और रजके स्त्री होनेसे तथा तमसे एक दूसरेके समायोगसे अन्यथा वृत्ति होती है ॥ ९ ॥ स्वभावोंमें स्थित होनेसे जात्यन्तर नहीं होता है, हे नारद! कहीं कहीं योगसे विपरीत दीखते हैं ॥ १० ॥ जैसे रूपवती स्त्री यौवनसे विभूषित हो लज्जा माधुर्य और विनय संयुक्त है ॥ ११ ॥ कामशास्त्रकी विधि जाननेवाली धर्म शास्त्रमें सम्मत भर्ताकी प्रीति करनेवाली होकर भी सौतोंको दुःखदायक होती हैं ॥ १२ ॥ मोह दुःख स्वभावमें स्थित होकर प्राणियोंसे सत्वमें स्थित कहा जाता है, इसी प्रकार सत्वके विकारमें भी दूसरे भाव प्रगट होते हैं ॥ १३ ॥ वह चोरोंसे उपद्रुत साधुओंको

मातापित्रोस्तथा सैव बंधुवर्गस्य प्रीतिदा ॥ दुःखं मोहं सपत्नीषु जनयत्यपि सैव हि ॥ ७ ॥ एवं सत्त्वेन तेनैव स्त्रीत्वमापादितेन च ॥ रजसस्तमसश्चैव जनिता वृत्तिरन्यथा ॥ ८ ॥ रजसा स्त्रीकृतेनैव तमसा च तथा पुनः ॥ अन्योन्यस्य समायोगादन्यथ प्रतिभाति वै ॥ ९ ॥ अवस्थानात्स्वभावेषु नवै जात्यंतराणि च ॥ लक्ष्यंते विपरीतानियोगान्नारद कुत्रचित् ॥ १० ॥ यथा रूपवती नारी यौवनेन विभूषिता ॥ लज्जामाधुर्ययुक्ता च तथा विनयसंयुता ॥ ११ ॥ कामशास्त्रविधिज्ञा च धर्मशास्त्रेऽपि संमता ॥ भर्तुः प्रीतिकरी भूत्वा सपत्नीनां च दुःखदा ॥ १२ ॥ मोहदुःखस्वभावस्था सत्त्वस्थेत्युच्यते जनैः ॥ तथा सत्त्वं विकुर्वाणमन्यभावं विभाति वै ॥१३॥ चोरैरुप द्रुतानां हि साधूनां सुखदा भवेत् ॥ दुःखा मूढा च दस्यूनां सैव सेना तथागुणा ॥ १४ ॥ विपरीतप्रतीतिं वै जनयंति स्वभावतः ॥ यथा च दुर्दिनं जातं महामेघघनावृतम् ॥ १५ ॥ विद्युत्स्तनितसंयुक्तं तिमिरेणावगुंठितम् ॥ सिंचद्भूमिं प्रवर्षद्वै तमोरूपमुदाहृतम् ॥ १६ ॥ यदेतत्कर्षकाणां वै तदेवातीव दुर्दिनम् ॥ बीजोपस्करयुक्तानां सुखदं प्रभवत्युत ॥ १७ ॥ अप्रच्छन्नगृहाणां च दुर्भगानां विशेषतः ॥ तृणकाष्ठगृहीतानां दुखदं गृहमेधिनाम् ॥ १८ ॥

सुख दायक होती हैं, और दुःख मूढ तथा साधुओंको वही सुख दायक है ॥ १४ ॥ स्वभावसे विपरीत प्रतीतियोंको प्रगट करते हैं जैसे मेघावृत होनेसे महामेघसे आच्छन्न दुर्दिन होता है, बिजली चमकती और अंधकार व्याप्त होता है, और वर्षा करनेसे भूमिपर सींचते हुए तमोरूप कहाते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ और यही खेती करनेवाले कर्षकोंको बडा दुर्दिन है जिनकी खेती पक गई है. और बीज बोनेवालोंकोयही सुखदायकहै ॥ १७ ॥ यही विना छाये घरवाले दुर्भागी तथा तृण काष्ठ ग्रहण करनेवाले गृहस्थियोंको दुःखरूप है ॥ १८ ॥

जिनके पति परदेश गये हैं उनको वह मोह करनेवाला है, अपने स्वभावमें स्थित वह सब गुण विपरीत दिखाते हैं ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! सुनो फिर भी मैं इनके लक्षण कहता हूं सत्व लघुप्रकाश निर्मल और विशद है ॥ २० ॥ जब नेत्रादि इन्द्रिय और अंग लघु होते हैं निर्मल चित्त होकर विषयोंको ग्रहण नहीं करता ॥ २१ ॥ उस समय शरीरमें सत्वगुण स्थित होना चाहिये जँभाई स्तंभ तंद्रा चंचलता होनेसे रजका लक्षण जानना ॥ २२ ॥ जब यह जिस किसीके देहमें उत्कट होता है उस समय क्लेश करना ग्रामान्तर गमन ॥ २३ ॥ चित्तका चलायमान होना विवादमें उद्यतता होती है अति आवरण अर्थात् शरीरमें भारीपन होनेसे तम प्रगट होता है ॥ २४ ॥ उस समय अंग भारी और तमसे आवृत होते हैं इन्द्रिय मन शून्य होकर नींद नहीं आती है ॥ २५ ॥

प्रोषितभर्तृकाणां वै मोहदं प्रवदंत्यपि ॥ स्वभावस्था गुणाः सर्वे विपरीता विभांति वै ॥ १९ ॥ लक्षणानि पुनस्तेषां शृणु पुत्र ब्रवीम्यहम् ॥ लघुप्रकाशकं सत्त्वं निर्मलं विशदं सदा ॥ २० ॥ यदांऽगानि लघून्येव नेत्रादीनींद्रियाणि च ॥ निर्मलं च तथा चेतो गृह्णाति विषयान्नतान् ॥ २१ ॥ तदा सत्त्वं शरीरे वै मतव्यं च समुत्कटम् ॥ जृंभास्तंभं चतंद्रां च चलं चैव रजः पुनः ॥ २२ ॥ यदा तदुत्कटं जातं देहे यस्य च कस्यचित् ॥ कलिं मृगयते कर्तुं गंतुं ग्रामांतरं तथा ॥ २३ ॥ चलचित्तश्च सोऽत्यर्थं विवादे चोद्यतस्तथा ॥ गुरुमावरणं कामं तमो भवति तद्यदा ॥ २४ ॥ तदांऽगानि गुरूण्याशु प्रभवंत्यावृतानि च ॥ इन्द्रियाणि मनः शून्यं निद्रां नैवाभिवांछति ॥ २५ ॥ गुणानां लक्षणान्येव विज्ञेयानीह नारद ॥ नारद उवाच ॥ विभिन्नलक्षणाः प्रोक्ता पितामह गुणास्त्रयः ॥ २६ ॥ कथमेकत्र संस्थाने कार्यं कुर्वंति शाश्वतम् ॥ परस्परं मिलित्वा हि विभिन्नाः शत्रवः किल ॥ २७ ॥ एकत्रस्थाः कथं कार्यं कुर्वंतीति वदस्व मे ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि गुणास्ते दीपवृत्तयः ॥ २८ ॥ प्रदीपश्च यथा कार्यं प्रकरोत्यर्थदर्शनम् ॥ वर्तिस्तैलं यथार्चिश्च विरुद्धाश्च परस्परम् ॥ २९ ॥

हे नारद ! इस प्रकार यह गुणोंके लक्षण जानने चाहिये नारदजी बोले हे पितामह ! आपने तीनों गुणोंके पृथक् पृथक् लक्षण कहे हैं ॥ २६ ॥ यह एक स्थानमें स्थित होकर निरन्तर कार्य कैसे करते हैं ? वे भिन्न २ शत्रु परस्पर कैसे मिलते हैं ? ॥ २७ ॥ एकत्र होकर कैसे कार्य करते हैं ? सो आप हमसे कहिये ब्रह्माजी बोले हे पुत्र ! सुनो मैं कहता हूं वे गुण दीपक वृत्तिवाले हैं ॥ २८ ॥ जैसे दीपक अर्थदर्शनका कार्य करता है; और बत्ती तेल यह दोनों परस्पर विरुद्ध है ॥ २९ ॥

इसी प्रकार विरुद्ध तेल अग्निके साथ संगत हुआ है, तेल बत्ती अग्नि यह परस्पर विरुद्ध ही हैं ॥३०॥ परन्तु एकत्र स्थित होकर पदार्थका दर्शन कराते हैं, इसी प्रकार गुण भी हैं. नारदजी बोले हे सत्यवती पुत्र ! इस प्रकार यह गुण प्रकृतिसे प्रगट होते हैं ॥ ३१ ॥ यह सब संसारके कारण हैं, जैसे मैंने पूर्व सुना है. व्यासजी बोले इस प्रकार नारदजीने विस्तारपूर्वक हमसे सब कहा है ॥ ३२ ॥ गुणोंके लक्षण और विभाग सहित उनके कार्य कहे, उसी परम शक्तिकी आराधना करनी चाहिये जिसने यह सब विस्तार कर रक्खा है ॥ ३३ ॥ वह कार्य भेदसे सदा सगुण निर्गुण होती है. पूर्ण पुरुष अकर्ता निरीह और अविनाशी है ॥ ३४ ॥ यह महामाया संसार सत् असत् करती है. ब्रह्मा विष्णु रुद्र सूर्य चन्द्रमा इन्द्र ॥ ३५ ॥ अश्विनीकुमार आठों वसु कुबेर वरुण

विरुद्धं हि तथा तैलमग्निना सह संगतम् ॥ तैलं वर्तिविरोध्येव पावकोऽपि परस्परम् ॥ ३० ॥ एकत्रस्थाः पदार्थानां प्रकुर्वंति प्रदर्शनम् ॥ नारद उवाच ॥ एवं प्रकृतिजाः प्रोक्ता गुणाः सत्यवतीसुत ॥ ३१ ॥ विश्वस्य कारणं ते वै मया पूर्वं यथाश्रुतम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तं नारदेनाथ मम सर्वं सविस्तरम् ॥ ३२ ॥ गुणानां लक्षणं सर्वं कार्यं चैव विभागशः ॥ आराध्या परमा शक्तिर्यया सर्वमिदं ततम् ॥ ३३ ॥ सगुणा निर्गुणा चैव कार्यभेदे सदैव हि ॥ अकर्ता पुरुषः पूर्णो निरीहः परमोऽव्ययः ॥ ३४ ॥ करोत्येषा महामाया विश्वं सदसदात्मकम् ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः सूर्यश्चंद्रः शचीपतिः ॥ ३५ ॥ अश्विनौ वसवस्त्वष्टा कुबेरो यादसांपतिः ॥ वह्निर्वायुस्तथा पूषा सेनानीश्च विनायकः ॥ ३६ ॥ सर्वे शक्ति युताः शक्ताः कर्तुं कार्याणि स्वानि च ॥ अन्यथा तेऽप्यशक्ता वै प्रस्पंदितुमुनीश्वराः ॥ ३७ ॥ सा चैव कारणं राजञ्जगतः परमेश्वरी ॥ समाराधय तां भूप कुरु यज्ञं जनाधिप ॥ ३८ ॥ पूजनं परया भक्त्या तस्या एव विधानतः ॥ महालक्ष्मीर्महाकाली तथा महासरस्वती ॥ ३९ ॥ ईश्वरी सर्वभूतानां सर्वकारणकारणम् ॥ सर्वकामार्थदा शांता सुखसेव्या दयान्विता ॥ ४० ॥

वह्नि वायु पूषा कार्तिकेय गणेश ॥ ३६ ॥ यह सब शक्तियुक्त होकर ही कार्य करनेको समर्थ होते हैं. हे मुनीश्वरो ? यदि वैसा न हो तो वे प्रस्पंदित भी नहीं हो सकते ॥ ३७ ॥ हे राजन् ? वही परमेश्वरी जगत्का कारण है, हे राजन् ? यज्ञ करके उसका आराधन करो ॥ ३८ ॥ परमभक्तिसे उसकाही विधि पूर्वक पूजन करना चाहिये, वह महालक्ष्मी महाकाली महासरस्वती रूप है ॥ ३९ ॥ वह सब भूतोंकी ईश्वरी और सबकारणोंकी कारण है, वह सब कामना देनेवाली शान्त सुखसे सेवनीय और दयायुक्त है ॥ ४० ॥

नामके उच्चारण मात्रसेही वांछितार्थ फल देनेवाली है, पहले ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवताओंने भगवतीका आराधन किया था ॥४१॥ और जितात्मा मुक्तिकी इच्छावाले देवताओंने भी उसकी आराधना की है, जो कोई प्रसंगसे अस्तव्यस्त भी उसका नाम उच्चारण करे ॥ ४२ ॥ वह दुर्लभ वांछित अर्थोंको प्रदान करती है, किसीने व्याघ्रसे वनमें डरकर ऐ ऐ ऐसा उच्चारण किया था ॥ ४३ ॥ यद्यपि भगवतीका मंत्र 'ऐं' ऐसा विन्दु युक्त है, तो भी ऐसे उच्चारणसेभी वांछित अर्थ दिया, हे राजन् ! इसमें सत्यव्रतका दृष्टान्त है ॥ ४४ ॥ जो भावितात्मा मुनि और हमको प्रत्यक्ष हुआ है, ब्राह्मणोंके समाजोंमें इसका उदाहरण पंडितोंद्वारा कहा हुआ ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! मैंने विस्तारपूर्वक सुना है, एक अनक्षर महामूर्ख सत्यव्रत नाम ब्राह्मण था ॥ ४६ ॥ वह

नामोच्चारणमात्रेण वांछितार्थफलप्रदा ॥ देवैराराधिता पूर्वं ब्रह्माविष्णुमहेश्वरैः ॥ ४१ ॥ मोक्षकामैश्च विविधैस्तापसैर्विजितात्मभिः ॥ अस्पष्टमपि यन्नाम प्रसंगेनापि भाषितम् ॥ ४२ ॥ ददाति वांछितानर्थान्दुर्लभानपि सर्वथा ॥ ऐऐ इति भयार्तेन दृष्ट्वा व्याघ्रादिकं वने ॥ ४३ ॥ बिंदुहीनमपित्युक्तं वांछितं प्रददाति वै ॥ तत्र सत्यव्रतस्यैव दृष्टांतो नृपसत्तम ॥ ४४ ॥ प्रत्यक्ष एव चास्माकं मुनीनां भाविता त्मनाम् ॥ ब्राह्मणानां समाजेषु तस्योदाहरणं बुधैः ॥ ४५ ॥ कथ्यमानं मया राजञ्छ्रुतं सर्वं सविस्तरम् ॥ अनक्षरो महामूर्खो नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः ॥ ४६ ॥ श्रुत्वाऽक्षरं कोलमुखात्समुच्चार्य स्वयं ततः ॥ बिंदुहीनं प्रसंगेन जातोऽसौ विबुधोत्तमः ॥ ४७ ॥ ऐकारोच्चा रणाद्देवी तुष्टा भगवती तदा ॥ चकार कविराजं तं दयार्द्रापरमेश्वरी ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ जनमेजय उवाच ॥ कोऽसौ सत्यव्रतो नाम ब्राह्मणो द्विजसत्तमः ॥ कस्मिन्देशे समुत्पन्नः कीदृशश्च वदस्वमे ॥ १ ॥ कथं तेन श्रुतः शब्दः कथमुच्चारितः पुनः ॥ सिद्धिश्च कीदृशी जाता तस्य विप्रस्य तत्क्षणात् ॥ २ ॥

कोलके मुखसे जो बिन्दुहीन था ऐसा ऐ यह अक्षर सुनकर और उच्चारण करके पंडित हो गया ॥ ४७ ॥ ऐकारके उच्चारणसे ही देवी प्रसन्न हुई और दयायुक्त हो देवीने उसे कविराज कर दिया ॥४८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥९॥ जनमेजय बोले वह ब्राह्मण सत्यव्रत कौन था ? किस देशमें उत्पन्न हुआ ? और कैसा था ? सो आप कहिये ॥ १ ॥ यह शब्द उसने किस प्रकार सुना और किस प्रकार उच्चारण किया और उस ब्राह्मणको किस प्रकार सिद्धि प्राप्त हुई ! ॥ २ ॥

और सबमें स्थित वह भवानी किस प्रकार संतुष्ट हुई ? विस्तार पूर्वक इस कथाको कहिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले ! इस प्रकार जब सत्यवती पुत्र व्यासजीसे पूँछा तो वह परमप वित्र रसवत् वचन कहने लगे ॥४॥ व्यासजी बोले सुनो राजा मैं पुराणकी सुन्दर कथा कहता हूं, हे कुरुवंशोत्पन्न ! जो मुनिसमाजमें सुनी है सो सुनो ॥ ५ ॥ हे श्रेष्ठ ! एक समय मैं पवित्र तीर्थाटन करता हुआ परमपबित्र मुनिसेवित नैमिषारण्यमें प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ और सब मुनियोंको प्रणाम कर उस वराश्रममें स्थित हुआ, जहां महाव्रतवाले जीवन्मुक्त मुनिजन निवास करते हैं ॥ ७ ॥ वहां ब्राह्मणोंके समाजमें कथा प्रसंग हो रहा था उस समय जमदग्नि मुनियोंसे पूँछने लगे ॥ ८ ॥ जमदग्नि बोले हे महाभागो ! मेरे मनमें बड़ा संदेह है, मैं मुनियोंके समाजमें निस्सन्देह होनेकी इच्छा करता हूं

कथं तुष्टा भवानी सा सर्वज्ञा सर्वसंस्थिता ॥ विस्तरेण वदस्वाद्य कथामेतां मनोरमाम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा राज्ञा व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ उवाच परमोदारं वचनं रसवच्छुचि ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ श्रुता मुनिसमाजेषु मया पूर्वं कुरूद्वह ॥ ५ ॥ एकादाऽहं कुरुश्रेष्ठ कुर्वंस्तीर्थाटनं शुचि ॥ संप्राप्तो नैमिषारण्यं पावनं मुनिसेवितम् ॥ ६ ॥ प्रणम्याहं मुनीन्सर्वान्स्थितस्तत्र वराश्रमे ॥ विधिपुत्रास्तु यत्रासञ्जीवन्मुक्ता महाव्रताः ॥ ७ ॥ कथा प्रसंग एवासीत्तत्र विप्रसमागमे ॥ जमदग्निस्तु पप्रच्छ मुनीनेवं समास्थितः ॥ ८ ॥ जमदग्निरुवाच ॥ संदेहोऽस्ति महाभागा मम चेतसि तापसाः ॥ समाजेषु मुनीनां वै निःसंदेहो भवाम्यहम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो मघवा वरुणोऽनलः ॥ कुबेरः पवनस्त्वष्टा सेनानीश्च गणाधिपः ॥ १० ॥ सूर्योऽश्विनौ भगः पूषा निशानाथो ग्रहास्तथा ॥ आराधनीयतमः कोऽत्र वांछितार्थफलप्रदः ॥ ११ ॥ सुखसेव्यश्च सततं चाशुतोषश्च मानदाः ॥ ब्रुवंतु मुनयः शीघ्रं सर्वज्ञाः संशितव्रताः ॥ १२ ॥ एवं प्रश्ने कृते तत्र लोमशो वाक्यमब्रवीत् ॥ जमदग्ने शृणुष्वैतद्यत्पृष्टं वै त्वयाऽधुना ॥ १३ ॥ सेवनीयतमा शक्तिः सर्वेषां शुभमिच्छताम् ॥ परा प्रकृतिराद्या च सर्वगा सर्वदा शिवा ॥ १४ ॥

॥ ९ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मघवा, वरुण, अनल, कुबेर, पवन, त्वष्टा स्वामिकार्तिक, गणेश ॥ १० ॥ सूर्य, अश्विनीकुमार, पूषा, निशानाथ चन्द्रमा, ग्रह इनमें सबसे अधिक कौन है ? जो पूजनेसे वांछितार्थ फल देता है ॥ ११ ॥ कौन निरन्तर सुखसे सेवन करने योग्य और शीघ्र प्रसन्न होकर मान देने वाले हैं ? हे सर्व अच्छे व्रतवाले मुनियो ! यह वार्ता शीघ्र कहो ॥ १२ ॥ इस प्रकार प्रश्न करनेपर लोमशजी कहने लगे, हे जमदग्नि ? सुनो जो तुमने प्रश्न किया है ॥ १३ ॥ सब शुभकी इच्छा करनेवालोंको उस अम्बाका सेवन करना चाहिये, वह सर्वगामिनी आद्या शिव शक्ति सबको सेवनी चाहिये ॥ १४ ॥

वही ब्रह्मादिक देवता और महात्माओंकी जननी है, वही संसाररूपी वृक्षकी आदि प्रकृति मूल है ॥ १५ ॥ वह स्मरण और उच्चारण करतेही वांछित फल देती है, सदैव वरदान दनेको वह आर्द्रचित्त रहती है सदा सेवनीय है ॥ १६ ॥ हे मुनियो ? सुनो, मैं एक सुन्दर इतिहास कहता हूं जैसे अक्षरके उच्चारण करनेसे ब्राह्मणने सिद्धि प्राप्ति की ॥ १७ ॥ कोशल देशमें एक ब्राह्मण देवदत्त बड़ा विख्यात था सन्तान उसके नहीं थी और पुत्रके निमित्त उसने विधिपूर्वक इष्टि की ॥ १८ ॥ उसने तमसाके किनारे विधिपूर्वक मंडप करके और सब कर्ममें चतुर ब्राह्मणोंको बुलाकर ॥ १९ ॥ विधिपूर्वक वेदी बनाय अग्नि स्थापन करके विधिपूर्वक वह ब्राह्मण पुत्रेष्टि यज्ञ करने लगा ॥२०॥ सुहोत्रको ब्रह्मा, याज्ञवल्क्यको अध्वर्यु, बृहस्पतिको होता ॥२१॥

देवानां जननी सैव ब्रह्मादीनां महात्मनाम् ॥ आदिप्रकृतिर्मूलं सा संसारपादपस्य वै ॥ १५ ॥ स्मृता चोच्चारिता देवी ददाति किल वांछितम् ॥ सर्वदैवाऽऽर्द्रचिता सा वरदानाय सेविता ॥ १६ ॥ इतिहासं प्रवक्ष्यामिश्शृण्वंतु मुनयः शुभम् ॥ अक्षरोच्चारणादेव यथा प्राप्तं द्विजेन वै ॥ १७ ॥ कोसलेषु द्विजः कश्चिद्देवदत्तेति विश्रुतः ॥ अनपत्यश्चकारेष्टिं पुत्राय विधिपूर्वकम् ॥ १८ ॥ तमसातीरमास्थाय कृत्वा मण्डपमुत्तमम् ॥ द्विजानाहूय वेदज्ञान्सत्रकर्मविशारदान् ॥ १९ ॥ कृत्वा वेदिं विधानेन स्थापयित्वा विभावसून् ॥ पुत्रेष्टिं विधिवत्तत्र चकार द्विजसत्तम ॥ २० ॥ ब्रह्माणं कल्पयामास सुहोत्रं मुनिसत्तमम् ॥ अध्वर्युं याज्ञवल्क्यं च होतारं च बृहस्पतिम् ॥ २१ ॥ प्रस्तोतारं तथा पैलमुद्गातारं च गोभिलम् ॥ सभ्यानन्यान्मुनीन्कृत्वा विधिवत्प्रददौवसु ॥ २२ ॥ उद्गाता सामगः श्रेष्ठः सप्तस्वरसमन्वितम् ॥ रथंतरमगायत्तुस्वरितेन समन्वितम् ॥ २३ ॥ तदाऽस्य स्वरभंगोऽभूत्कृतेश्वासेमुहुर्मुहुः ॥ देवदत्तश्चुकोपाऽशु गोभिलं प्रत्युवाच ह ॥ २४ ॥ मूर्खोऽसि मुनिमुख्याद्य स्वरभंगस्त्वया कृतः ॥ काम्यकर्मणि संजाते पुत्रार्थं यजतश्च मे ॥ २५ ॥ गोभिलस्तु तदोवाच देवदत्तं सुकोपितः ॥ मूर्खस्ते भविता पुत्रः शठः शब्दविवर्जितः ॥ २६ ॥

पलको स्तुति करनेवाला, गोभिलको उद्गाता, तथा दूसरे मुनियोंको सभ्य करके बहुतसा धन दिया ॥ २२ ॥ उद्गाता सामवेदका ज्ञाता सात स्वरसे युक्त स्वरितके सहित रथन्तर साम गाने लगा ॥ २३ ॥ वारंवार श्वास लेनेमें इसका स्वर भंग हुआ तब देवदत्तने क्रोध कर गोभिलसे कहा ॥ २४ ॥ हे मुनिमुख्य ! तुम मूर्ख हो जो तुमने स्वर भंग किया; जब कि मैं काम्य कर्म और पुत्रके निमित्त यजन करता था तुमने अशुद्ध क्यों कहा ॥ २५ ॥ तब गोभिलने क्रोधकर देवदत्तसे कहा हमको मूर्ख कहते हो इस कारण तुम्हारा पुत्र मूर्ख ही होगा, और शब्दभी उच्चारण न करसकेगा ॥ २६ ॥

सब प्राणियोंको श्वास लेना होता है, उच्छ्वास दुर्ग्राह्य है ॥ सो हे महामते ! स्वरभंगमें मेरा क्या दोष है ? ॥ २७ ॥ तब महात्मा गोभिलके यह वचन सुनकर शापसे भीत हुआ देवदत्त दुःखी हो उनसे बोला ॥ २८ ॥ हे विप्रेंद्र ! निरपराध मुझसे क्यों क्रोध करते हो ? मुनीश्वर सदा सुखदायक अक्रोधी होते हैं ॥ २९ ॥ हे विप्रेंद्र ! थोड़ेसे अपराधपर आपने मुझे क्यों शाप दिया ? पुत्रके न होनेसे मैं पहलेही दुःखी था अब तुमने फिर दुःखी किया ॥ ३० ॥ वेदवादी कहते हैं पुत्र न होना अच्छा है, परन्तु मूर्ख अच्छा नहीं, फिर ब्राह्मणोंमें मूर्ख तो सबका निन्दनीय होताही है ॥ ३१ ॥ वह पशु और शूद्रके समान सब कर्मोंमें अयोग्य है, हे द्विजसत्तम ! मूर्ख पुत्रको लेकर मैं क्या करूंगा ? ॥ ३२ ॥ मूर्ख ब्राह्मण ऐसाहै जैसा शूद्र जो पूजा दानके योग्य न होनेसे

सर्वप्राणिशरीरे तु श्वासोच्छ्वासः सुदुर्ग्रहः ॥ न मेऽत्र दूषणं किंचित्स्वरभंगे महामते ॥ २७ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गोभिलस्य महात्मनः ॥ शापाद्भीतो देवदत्तस्तमुवाचातिदुःखितः ॥ २८ ॥ कथं क्रुद्धोऽसि विप्रेंद्र वृथा मयि निरागसि ॥ अक्रोधना हि मुनयो भवंति सुखदाः सदा ॥ २९ ॥ स्वल्पेऽपराधे विप्रेंद्र कथं शप्तस्त्वया ह्यहम् ॥ अपुत्रोऽहं सुतप्तः प्राक्तापयुक्तः पुनः कृतः ॥ ३० ॥ मूर्खपुत्रादपुत्रत्ववरं वेदविदो विदुः ॥ तथाऽपि ब्राह्मणो मूर्खः सर्वेषां निंद्य एव हि ॥ ३१ ॥ पशुवच्छूद्रवच्चैव न योग्यः सर्वकर्मसु ॥ किं करोमीह मूर्खेण पुत्रेण द्विजसत्तम ॥ ३२ ॥ यथा शूद्रस्तथा मूर्खो ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥ पूजार्हो न दानार्हो निंद्यश्च सर्वकर्मसु ॥ ३३ ॥ देशे वै वसमानश्च ब्राह्मणो वेद वर्जितः ॥ करदः शूद्रवच्चैव मंतव्यः स च भूभुजा ॥ ३४ ॥ नासनेपितृकार्येषु देवकार्येषु स द्विजः ॥ मूर्खः समुपवेष्यश्च कार्यस्य फलमिच्छता ॥ ३५ ॥ राज्ञा शूद्रसमो ज्ञेयो न योज्यः सर्वकर्मसु ॥ कर्षकस्तु द्विजः कार्यो ब्रह्मणो वेदवर्जितः ॥ ३६ ॥ विना विप्रेण कर्तव्यं श्राद्धं कुशचटेन वै ॥ न तु विप्रेण मूर्खेण श्राद्धं कार्यं कदाचन ॥ ३७ ॥ आहारादधिकं चान्नं न दातव्यमपंडिते ॥ दाता नरकमाप्नोतिग्रहीत्वा तु विशेषतः ॥ ३८ ॥

सब कर्मोंसे निन्दनीय है ॥ ३३ ॥ वेदवर्जित ब्राह्मण देशमें बसता हुआ राजाओंको करदायक शूद्रके समान जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ वह ब्राह्मण देव और पितृकार्यके योग्य नहीं है, कार्यके फलकी इच्छावालोंको देव पितृकार्यमें मूर्खोंको आसन देना न चाहिये ॥ ३५ ॥ राजाओंको शूद्रके समान इन्हें कार्योंमें नियुक्त करना, वेदवर्जित ब्राह्मणसे खेती करावे ॥ ३६ ॥ बेपढे ब्राह्मणको श्राद्धका अन्न न दे किन्तु कुशके ऊपर रख दे ॥ ३७ ॥ मूर्खको आहारसे अधिक अन्न न दे और देता है तो नरकको जाता है, विशेष कर ग्रहण करनेवालाभी ॥ ३८ ॥

उस राजाके राज्यको धिक्कार है जिसके राज्यमें मूर्ख रहते हैं जहां दानमान करके मूर्ख ब्राह्मण पूजे जाते हैं ॥ ३९ ॥ जहां आसनदानमें कुछ भेद नहीं है वहां न रहे, बुद्धिमान्को मूर्ख और पण्डितका भेद अवश्य जानना चाहिये ॥ ४० ॥ जहां दान मानसे सन्तुष्ट हुए मूर्ख गर्वित होते हैं पण्डितको वहां निवास न करना चाहिये ॥ ४१ ॥ दुर्जनोंके ऐश्वर्य असतोंके उपकारके निमित्त होते हैं. नीममें फल होते हैं तोभी उसे कौए ही भोगते हैं ॥ ४२ ॥ वेदपाठी ब्राह्मण अन्न खाकर वेदाभ्यास करता है उसके पूर्वज प्रसन्न होकर स्वर्गमें क्रीडा करते हैं ॥ ४३ ॥ हे गोभिल ! इससे अधिक तुमको क्या कहना चाहिये ? संसारमें मूर्ख पुत्र मरणसेभी अतिनिन्दित हैं ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! शापके अनुग्रहके निमित्त कृपा कीजिये. आप दीनोंके उद्धारमें समर्थ हो मैं तुम्हारे चरणोंमें

धिग्राज्यं तस्य राज्ञो वै यस्य देशेऽबुधा जनाः ॥ पूज्यंते ब्राह्मणा मूर्खा दानमानादिकैरपि ॥ ३९ ॥ आसने पूजने दाने यत्र भेदो न चाण्वपि ॥ मूर्खपंडितयोर्भेदो ज्ञातव्यो विबुधेन वै ॥ ४० ॥ मूर्खा यत्र सुगर्विष्ठा दानमानपरिग्रहैः ॥ तस्मिन्देशे न वस्तव्यं पंडितेन कथंचन ॥ ४१ ॥ असतामुपकाराय दुर्जनानां विभूतयः ॥ पिचुमंदः फलाढ्योऽपि काकैरेवोपभुज्यते ॥ ४२ ॥ भुक्त्वाऽन्नं वेदविद्विप्रो वेदाभ्यां करोति वै ॥ क्रीडंति पूर्वजास्तस्य स्वर्गे प्रमुदिताः किल ॥ ४३ ॥ गोभिलातः किमुक्तं वै त्वया वेदविदुत्तम ॥ संसारे मूर्खपुत्रत्वं मरणादतिगर्हितम् ॥ ४४ ॥ कृपां कुरु महाभाग शापस्यानुग्रहं प्रति ॥ दीनोद्धारणशक्तोऽसि पतामितव पादयोः ॥ ४५ ॥ लोमश उवाच ॥ इत्युक्त्वा देवदत्तस्तु पतितस्तस्य पादयोः ॥ स्तुवन्दीनहृदत्यर्थं कृपणः साश्रुलोचनः ॥ ४६ ॥ गोभिलस्तु तदा तत्र दृष्ट्वा तं दीनचेतसम् ॥ क्षणकोपा महांतो वै पापिष्ठाः कल्पकोपनाः ॥ ४७ ॥ जलं स्वभावतः शीतं पावकातपयोगतः ॥ उष्णं भवति तच्छीघ्रं तद्विना शिशिरं भवेत् ॥ ४८ ॥ दयावान्गोभिलस्त्वाह देवदत्तं सुदुःखितम् ॥ मूर्खो भूत्वा सुतस्ते वै विद्वानपि भविष्यति ॥ ४९ ॥

गिरता हूं ॥ ४५ ॥ लोमश बोले ऐसा कहकर देवदत्त उनके चरणोंमें गिरा, और नेत्रोंमें जल भरकर दीन हो प्रार्थना करने लगा ॥४६॥ गोभिल इस प्रकार उसे दीन चित्त देखकर प्रसन्न हुए कारण कि महात्मा क्षणकोपवाले और पापिष्ठ महाकोपवाले होते हैं ॥ ४७॥ जल स्वभावसे शीतल होता है परन्तु पावक और गर्मीके योगसे गर्म होता है परन्तु क्षणमात्रमेंही उसके बिना ठंडा हो जाताहै ॥ ४८ ॥ तब दया करके गोभिल दुःखी देवदत्तसे बोले मूर्ख होकर भी तुम्हारापुत्र विद्वान् हो जायगा ॥ ४९ ॥

इस प्रकारके वरपाकर ब्राह्मणश्रेष्ठ प्रसन्न हुआ औ यज्ञ समाप्तकर ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक बिदा किया ॥ ५० ॥ कुछ दिनोंके उपरांत उसकी रूपवती भार्या रोहिणी रोहिणीके समान गर्भवती हुई ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणने विधिपूर्वक गर्भाधानादिक कर्म किये पुंसवनविधान और शृंगारकरणादि किये ॥ ५२ ॥ तथा वेद विधानसे सीमन्तोन्नयन किया और यज्ञको सफल देखकर अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ५३ ॥ उस समय रोहिणी नक्षत्र शुभदिनमें उसके पुत्र हुआ, अच्छे दिन अच्छे लग्नमें जातकर्मादि किये ॥ ५४ ॥ पुत्रका दर्शन करके नामकर्म किया और उसका नाम उतथ्यकिया ॥ ५५ ॥ फिर अष्टम वर्ष शुभ दिनमें विधिपूर्वक पिताने उसका उपनयन संस्कार किया ॥ ५६ ॥ और व्रतमें स्थित गुरुने उसको वेदाध्ययन कराया परन्तु उतथ्य मुग्धके समान

इति दत्तवरः सोऽथ मुदितोऽभूद्द्विजर्षभः ॥ इष्टिं समाप्य विप्रान्वै विससर्ज यथाविधि ॥ ५० ॥ कालेन कियता तस्य भार्या रूपवती सती ॥ गर्भं दधार काले सा रोहिणी रोहिणीसमा ॥ ५१ ॥ गर्भाधानादिकं कर्म चकार विधिवद्द्विजः ॥ पुंसवनविधानं च शृंगारकरणं तथा ॥ ५२ ॥ सीमंतोन्नयनं चैव कृतं वेदविधानतः ॥ ददौ दानादि मुदितो मत्वेष्टिं सफलां तथा ॥ ५३ ॥ शुभेऽह्नि सुषुवे पुत्रं रोहिणी रोहिणी युते॥दिने लग्नेशुभेऽत्यर्थं जातकर्म चकार स ॥ ५४ ॥ पुत्रदर्शनकं कृत्वा नामकर्म चकार च ॥ उतथ्य इति पुत्रस्य कृतं नाम पुराविदा ॥ ५५ ॥ स चाष्टमे तथा वर्षे शुभे वै शुभवासरे ॥ तस्योपनयनं कर्म चकार विधिवत्पिता ॥ ५६ ॥ वेदमध्यापयामास गुरुस्तं वै व्रते स्थितम् ॥ नोच्चचार तथोतथ्यः संस्थितो मुग्धवत्तदा ॥ ५७ ॥ बहुधा पाठितः पित्रा न दधार मतिं शठः ॥ मूढवत्तिष्ठतेऽत्यर्थं तं शुशोच पितातदा ॥ ५८ ॥ एवं कुर्वन्सदाऽभ्यासं जातो द्वादशवार्षिकः ॥ न वेद विधिवत्कर्तुं संध्यावंदनकं विधिम् ॥ ५९ ॥ मूर्खोऽभूदिति लोकेषुगता वार्ताऽतिविस्तरम् ॥ ब्राह्मणेषु च सर्वेषु तापसेष्वितरेषु च ॥ ६० ॥ जहास लोकस्तं विप्रं यत्र तत्र गतं वने ॥ पिता माता निनिंदाथ मूर्खं तमतिभर्त्सयन् ॥ ६१ ॥

स्थित रह गया उससे कुछ उच्चारण न हुआ ॥ ५७ ॥ पिताके बहुत पढ़ानेपरभी उसकी मति न स्थिर हुई और मूर्खके समान स्थित रहनेसे पिता शोच करने लगा ॥ ५८ ॥ इस प्रकार सदा अभ्यास करते बारह वर्षका हुआ, परन्तु उसे संध्यावन्दनकी विधिभी न आई ॥ ५९ ॥ यह महामूर्ख है ऐसा सब लोकोंमें विख्यात होगया, ब्राह्मण तपस्वी सबको यह विदित होगया ॥ ६० ॥ जहां तहां उसके गमनागमनमें लोग हास्य करते थे, और मूर्ख होनेसे उसे घुड़कते, तथा पिता माताभी निन्दा करते ॥ ६१ ॥

इस प्रकार मनुष्य पिता माता और बंधुओंसे निन्दित होकर यह उतथ्य वैराग्यको प्राप्त हो वनको चलागया ॥ ६२ ॥ अंधा पंगु लंगडा पुत्र अच्छा है पर मूर्ख अच्छा नहीं. पिता माताके ऐसा कहनेपर यह वनको चलागया ॥ ६३ ॥ गंगातट पर अच्छे स्थानमें पर्णकुटी करके वनकी वृत्ति कल्पना कर वहां सावधानीसे रहने लगा ॥६४॥ और यह नियम किया कि मैं कभी असत्य नहीं बोलूंगा और उस समय ब्रह्मचर्यसे स्थित हो निवास करने लगा ॥६५॥ इति श्रीदेवीभा० महापु० तृ० भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ लोमशजी बोले वेदका अध्ययन जपध्यान देवताओंका आराधन कुछ नहीं जानता था ॥ १ ॥

निंदितोऽथ जनैः कामं पितृभ्यामथ बांधवैः ॥ वैराग्यः प्रगमद्विप्रो जगाम वनमप्यसो ॥ ६२ ॥ अधो वरस्तथापंगुर्न मूर्खस्तु वरः सुतः ॥ इत्युक्तोऽसौ पितृभ्यां वै विवेश काननं प्रति ॥ ६३ ॥ गंगातीरे शुभे स्थाने कृत्वोटजमनुत्तमम् ॥ वन्यां वृत्तिं च संकल्प्य स्थितस्तत्र समाहितः ॥ ६४ ॥ नियमं च परं कृत्वा नासत्यं प्रब्रवीम्यहम् ॥ स्थित स्तत्राश्रमे रम्ये ब्रह्मचर्यव्रतो हि सः ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ लोमशः उवाच ॥ न वेदाध्ययनं किंचिज्जानाति न जपं तथा ॥ ध्यानं न देवतानां च न चैवाराधनं तथा ॥ १ ॥ नासनं वेद विप्रोऽसौ प्राणायामं तथा पुनः ॥ प्रत्याहारं तु नो वेद भूतशुद्धिं च कारणम् ॥ २ ॥ न मंत्रं कीलकं जाप्यं गायत्रीं च न वेद सः ॥ शौचं स्नानविधिं चैव तथाऽऽचमनकं पुनः ॥ ३ ॥ प्राणाग्निहोत्रं नो वेद बलिदानं न चातिथिम् ॥ न संध्यां समिधो होमं विवेद च तथा मुनिः ॥ ४ ॥ सोऽकरोत्प्रातरुत्थाय यत्किंचिद्दंतधावनम् ॥ स्नानं च शूद्रवत्तत्र गंगायां मंत्रवर्जितम् ॥ ५ ॥ फलान्यादाय वन्यानि मध्याह्नेऽपि यदृच्छया ॥ भक्ष्याभक्ष्यपरिज्ञानं न जानाति शठस्तथा ॥ ६ ॥ सत्यं ब्रूते स्थितस्तत्र नानृतं वदते पुनः ॥ जनैः सत्यतपा नाम कृतमस्य द्विजस्य वै ॥ ७ ॥

आसन प्राणायाम प्रत्याहार भूतशुद्धि इनमेंसे कुछ नहीं जानता था ॥ २ ॥ मंत्र, कीलक, जप और गायत्रीको नहीं जानता था, शौच स्नानविधि और आचमनको नहीं जानता था ॥ ३ ॥ प्राणाग्निहोत्र बलिदान अतिथिक्रिया नहीं जानता, संध्या समिधा यह कुछ भी वह नहीं जानता था ॥ ४ ॥ प्रभातकाल उठकर कुछ दतौन करता और गंगामें मंत्ररहित शूद्रवत् स्नान करता ॥ ५ ॥ मध्याह्नमें अपनी इच्छासे वनके फल लाकर खाता और उसे भक्ष्य अभक्ष्यका परिज्ञान नहीं था ॥ ६ ॥ सदा सत्य बोलता कभी असत्य नहीं बोलता था तब सबोंने उस ब्राह्मणका नाम सत्यतपा रख लिया ॥ ७ ॥

यह किसीका हिताहित नहीं करता और निर्भय होकर सुखसे चिन्तन करता था ॥ ८ ॥ कब मेरा मरण होगा मैं दुःखसे वनमें जीता हूं मूर्खके जीवनको
धिक्कार है, और मरणही उत्तम है॥ ९ ॥ दैवनेही मुझको मूर्ख किया है इसमें और कोई कारण नहीं है उत्तम जन्म प्राप्त होकर भी मेरा जन्म वृथा गया
॥ १० ॥ जैसे स्वरूपवती स्त्री और निष्फल वृक्ष वृथा है, बिना दूधकी जैसी गौ है वैसाही मैं निष्फल हूं ॥ ११ ॥ मैं दैवकी क्या निन्दा करूं ? मेरा कर्म
ही ऐसा है किसी महात्मा ब्राह्मणको मैंने पुस्तक नहीं दी ॥ १२ ॥ न मैंने निर्मल विद्या किसीको दी, उसी कर्मसे मैं शठ हुआ हूं, और द्विजोंमें निकृष्ट

नाहितं कस्यचित्कुर्यान्न तथाऽविहितं क्वचित् ॥ सुखं स्वपिति तत्रैव निर्भयश्चिंतयन्निति ॥ ८ ॥ कदा मे मरणं भावि दुःखं जीवामि
कानने ॥ जीवितं धिक्च मूर्खस्य तरसा मरणं ध्रुवम् ॥९॥ दैवेनाहं कृतो मूर्खो नान्योऽत्र कारणं मम ॥ प्राप्य चैवोत्तमं जन्म वृथा जातं
ममाधुना ॥ १० ॥ यथा वंध्या सुरूपा च यथा वा निष्फलो द्रुमः ॥ अदुग्धदोहा धेनुश्च तथाऽहं निष्फलः कृत ॥ ११ ॥ किंनुनिं
दाम्यहं दैवं नूनं कर्म ममेदृशम् ॥ न दत्तं पुस्तकं कृत्वा ब्राह्मणाय महात्मने ॥ १२ ॥ न वै विद्या मया दत्ता पूर्वजन्मनि निर्मला ॥
तेनाहं कर्मयोगेन शठोऽस्मि च द्विजाधमः ॥ १३ ॥ न च तीर्थे तपस्तप्तं सेविता न च साधवः ॥ न द्विजाः पूजिता द्रव्यैस्तेन जातोऽस्मि
दुष्टधी ॥ १४ ॥ वर्तंते मुनिपुत्राश्च वेदशास्त्रार्थपारगाः ॥ अहं सुमूढः संजातो दैवयोगेन केनचित् ॥ १५ ॥ न जानामि तपस्तप्तुं किं
करोमि सुसाधनम् ॥ मिथ्याऽयं मेऽत्र संकल्पो न मे भाग्यं शुभं किल ॥ १६ ॥ दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ वृथा श्रमकृतं
कार्यं दैवाद्भवति सर्वथा ॥ १७ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्याः किल देवताः ॥ कालस्य वशगाः सर्वे कालो हि दुरतिक्रमः ॥ १८ ॥
एवंविधान्वितर्कांस्तु कुर्वाणोऽहर्निशं द्विजः ॥ स्थितस्तत्राश्रमे तीरे जाह्नव्याः पावने स्थले ॥ १९ ॥

गिनागया हूं ॥ १३ ॥ न मैंने तीर्थ तप किया न साधु सेवाकी न द्रव्यसे ब्राह्मणोंका पूजन किया; इससे मैं दुष्टबुद्धि हुआ हूं ॥१४॥ अनेक मुनिपुत्र वेदशास्त्रमें
परायण हैं, और मैं किसी दैवयोगसे मूर्ख रह गया हूं ॥ १५ ॥ मैं तपस्या नहीं जानता हूं, क्या साधन करूं ? मेरा संकल्प मिथ्या है, मेरा भाग्य अच्छा
नहीं है ॥ १६ ॥ दैवही परम है पौरुष निरर्थक है, कार्यमें परिश्रम वृथा है; यह सब कुछ दैवसे ही होता है ॥ १७ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्रादि देवता
यह सब कालके वशमें हैं, कालही दुरतिक्रम है ॥१८॥ इस प्रकारकी वह ब्राह्मण तर्कना करता हुआ गंगाके पवित्र तटमें दिनरात निवास करता था ॥१९॥

उस आश्रममें ही स्थित हुआ वह विरक्त होगया; और निर्जन वनमें समय व्यतीत करने लगा ॥ २० ॥ इस प्रकार निर्मल आश्रममें निवास करते २ उसको पन्द्रह वर्ष बीतगये आराधन मन्त्र कालादि कुछ न जानता हुआ; वनमें समय व्यतीत करता था ॥ २१ ॥ सब लोक उसका विचार यह जानते थे, कि यह मुनि सत्य बोलता है और सब प्राणियोंमें उसका यश फैलगया, कि यह मुनि सत्यव्रत है मिथ्या नहीं बोलता है ॥ २२ ॥ वहां एक समय मृगयामें रमण करता हुआ निषाद धनुष बाण धारण किये बड़ा क्रूर देह कर्ममें मूर्ख उस स्थानमें आया ॥ २३ ॥ और धनुष पर बाण चढाय खैंचकर. उससे एक शूकरको विद्ध किया. वह भयसे व्याकुल हो भागता हुआ मुनिके समीप आया ॥ २४ ॥ वह कम्पित रुधिरसे आर्द्र देह जब आश्रममण्डलमें आया उस समय उसको

विरक्तः स तु संजातः स्थितस्तत्राश्रमे द्विजः ॥ कालातिवाहनं शांतश्चकार विजने वने ॥ २० ॥ एवं स्थितस्य तु वने विमलोदके वै वर्षाणि तत्र नव पंच गतानि कामम् ॥ नाराधनं न च जपं न विवेद मंत्रं कालातिवाहन मसौ कृतवान्वने वै ॥ २१ ॥ जानाति तस्य विततं व्रतमेव लोकः सत्यं वदत्यपि मुनिः किल नाम जातम् ॥ जातं यशश्च सकलेषु जनेषुकामं सत्यव्रतोऽयमनिशं न मृषाभिभाषी ॥ २२ ॥ तत्रैकदा तु मृगयां रममाण एव प्राप्तो निषादनिशठो धृतचापबाणः ॥ क्रीडन्वनेऽति विपुले यमतुल्य देहः क्रूराकृतिर्हननकर्मणि चातिदक्षः ॥ २३ ॥ तेनातिकृष्टेन शरेण विद्धः कोलः किरातेन धनुर्धरेण ॥ पलायमानो भयविह्वलश्च मुने समीपं विद्रुतो जगाम ॥ २४ ॥ विकंपमानो रुधिरार्द्रदेहो यदा जगामाश्रममंडलं वै ॥ कोलस्तदाऽतीव दयार्द्रभावं प्राप्तो मुनीस्तत्र समीक्ष्य दीनम् ॥ २५ ॥ अग्रे व्रजंतं रुधिरार्द्रदेहं दृष्ट्वा मुनिः सूकरमाशु विद्धम् ॥ दयाभिवेशादतिकंपमानः सारस्वतं बीजमथोच्चचार ॥ २६ ॥ अज्ञातपूर्वं च तथाऽश्रुतं च देवान्मुखे वै समुपागतं च ॥ न ज्ञातवान्बीजमसौः विमूढो ममज्ज शोके स मुनिर्महात्मा ॥ २७ ॥ कोलः प्रविश्याऽऽश्रम मंडलं तद्गतो निकुंजे प्रविलीय गूढम् ॥ अप्राप्तमार्गो दृढनिर्विण्णचेताःप्रवेपमानः शरपीडितत्वात् ॥ २८ ॥

दीन देखकर मुनि अत्यन्त दया भावको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ आगे रुधिर चुवाते शरीरवाले शूकरको देखकर दयासे कम्पित हो मुनिने 'ऐऐ' इस प्रकार सारस्वतबीजका उच्चारण किया ॥ २६ ॥ जो अज्ञातपूर्वक न कभी सुना हुआ और प्रारब्धसेही मुखसे निकला हुआ था, उस बातको तो न जाना और उस देखकर शोकसागरमें मग्न हुए ॥ २७ ॥ और आश्रममें प्रविष्ट होकर वह निकुंजमें लीन होगया. जहां कोई न पहुँचे उस स्थानमें वह बाण विद्ध हुआ कम्पित होकर निर्विण्ण चित्तसे स्थित हुआ ॥ २८ ॥

उसी समय कर्णपर्यन्त धनुष चढाये विकराल देह निषादराज शूकरकी खोज करता मुनिके समीप प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ कुशासनपर बैठे उन सत्यव्रतनाम मुनिको देखकर व्याध प्रणाम कर आगे स्थित हुआ और पूँछा हे महर्षे ? वह शूकर कहां गया ! ॥ ३० ॥ तुम्हारे सत्यव्रतको मैं जानता हूं इससे तुमसे पूछता हूं किः वह मेरे बाणसे विद्ध हुआ शूकर कहां गया ? मेरा सब कुटुम्ब व्याकुल होगया है उसकी पालनाके निमित्त मैं आया हूं ॥ ३१ ॥ विधाताने मेरी यही वृत्ति विधान की है और नहीं यह मैं सत्यही कहता हूं; कैसा भी शुभाशुभ उपाय हो अपने कुटुम्बको पालना चाहिये ॥ ३२ ॥ सो तुम सत्यव्रत हो शीघ्र कहो यह हमारा कुटुम्बवर्ग क्षुधातुर होगया है, वह बाणसे विद्ध शूकर कहां गया ? शीघ्र कहो मैं तुमसे कहता हूं ॥ ३३ ॥ जब इस

ततः क्षणादाकरणांतकृष्टं चापं दधानोऽतिकराल देहः ॥ प्राप्तस्तदंते स च मृग्यमाणो निषादराजः किल काल एव ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा मुनिं तत्र कुशासने स्थितं नाम्ना तु सत्यव्रतमद्वितीयम् ॥ व्याधः प्रणम्य प्रमुखे स्थितोऽसौ पप्रच्छ कोलः क्व गतो द्विजेश ॥ ३० ॥ जानामि तेऽहं सुव्रतं प्रसिद्धं तेनाद्य पृच्छे मम बाणविद्धः ॥ क्षुधार्दितं मे सकलं कुटुंबं विभर्तुकामः किल आगतोऽस्मि ॥ ३१ ॥ वृत्तिर्ममैषा विहिता विधात्रा नान्याऽस्ति विप्रेन्द्र ऋतं ब्रवीमि ॥ भर्तव्य मेवेह कुटुंबमंजसा केनाप्युपायेन शुभाशुभेन ॥ ३२ ॥ सत्यं ब्रवीत्वद्य सत्यव्रतोऽसि क्षुधातुरो वर्तते पोष्यवर्गः ॥ क्वासौ गतः सूकरो बाणविद्धः पृच्छाम्यहं वाडव ब्रूहि तूर्णम् ॥ ३३ ॥ तेनेति पृष्टः स मुनिर्महात्मा वितर्कमग्नः प्रबभूव कामम् ॥ सत्यव्रतं मेऽद्य भवेन्न भग्नं न दृष्ट इत्युच्चरितेन किं वै ॥ ३४ ॥ गतोऽत्र कोलः शरविद्धदेहः कथं ब्रवीम्यद्य मृषाऽमृषा वा ॥ क्षुधार्दितोऽयं परिपृच्छतीव दृष्ट्वा हनिष्यत्यपि सूकरं वै ॥ ३५ ॥ सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा दयान्वितं चानृतमेव सत्यम् ॥ हितं नराणां भवतीह येन तदेव सत्यं न तथाऽन्यथैव ॥ ३६ ॥ हितं कथं स्यादुभयोर्विरुद्धयोस्तदुत्तरं किं न यथा मृषा वचः ॥ विचारयन्वाडव धर्मसंकटे न प्राप वक्तुं वचनं यथोचितम् ॥ ३७ ॥

प्रकार इस महात्मासे उसने पूँछा तो मुनि सन्देहमें मग्न होगये, जो कि आज मेरा सत्यव्रत भी भग्न न हो और नहीं देखा यह भी कहना न पड़े ॥ ३४ ॥ शरसे विद्ध हुआ कोल यहांसे गया मृषा वा अमृषा कैसे कहूं ! यह क्षुधासे व्याकुल हुआ पूंछता है देखते ही यह शूकरको मारेगा ॥ ३५ ॥ जिसमें हिंसा हो वह सत्य भी सत्य नहीं. जिसमें दया और उपकार हो वह अनृत भी सत्य है, जिससे मनुष्योंका हित हो वही सत्य है और नहीं ॥ ३६ ॥ परन्तु तो भी मुझे असत्य बोलना न पड़े मृगकाभी हित हो ऐसा किस प्रकारसे कहा जाय ? जिसमें असत्य भाषण न हो । इस प्रकार हे जमदग्नि ! वह ब्राह्मण धर्म संकटमें विचार करता हुआ यथोचित वचन कहनेको समर्थ न हुआ ॥ ३७ ॥

परन्तु उस कोलको बाणसे ताडित हुआ देखकर जो कृपासे इसने 'ऐ ऐ' ऐसा उच्चारण किया था उस अपने बीजसे प्रसन्न हुई देवी इसको बडी विद्या देती हुई ॥ ३८ ॥ बीजके उच्चारणसे इसको विद्या प्रगट हुई जैसे वाल्मीकिको प्रगट हुई, और वह कवि हो गये थे ॥ ३९ ॥ तब धनुष धारण किये सन्मुख स्थित व्याधसे वह ब्राह्मण धर्मात्मा सत्यकाम दयावश हो यह श्लोक बोले ॥४०॥ जो देखती है वह कह नहीं सकती जो बोलती है [जिह्वा] उसने देखा नहीं. अहो व्याध! अपने कार्यकी इच्छासे वारंवार क्या पूछते हो ? ॥ ४१ ॥ महर्षिके यह वचन सुन वह व्याध चलागया और उस शूकरसे निराश हो अपने स्थानको लौटगया ॥ ४२ ॥ और वह ब्राह्मण वाल्मीकिके समान कवि हुआ और सत्यव्रत नामसे सब लोकोंमें विख्यात हुआ ॥४३॥

बाणाहतं वीक्ष्य दयान्वितं च कोलं तदंते समुदाहृतं वचः॥ तेन प्रसन्ना निजबीजतः शिवा विद्यां दुरापां प्रददौ च तस्मै॥ ३८ ॥ बीजोच्चारणतो देव्या विद्या प्रस्फुरिताऽखिला ॥ वाल्मीकेश्च यथा पूर्वं तथा स ह्यभवत्कविः ॥ ३९ ॥ तमुवाच द्विजो व्याधं सन्मुखस्थं धनुर्धरम् ॥ सत्यकामस्तु धर्मात्मा श्लोकमेकं दयापरः ॥ ४० ॥ यापश्यति न साब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति ॥ अहो व्याध स्वकार्यार्थिन्कि पृच्छसि पुनः पुनः ॥ ४१ ॥ इत्युक्तस्तु तदा तेन गतोऽसौ पशुहा पुनः ॥ निराशः सूकरे तस्मिन्परावृत्तो निजालये ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणस्तु कविर्जातः प्राचेतस इवापरः ॥ प्रसिद्ध सर्वलोकेषु नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः ॥ ४३ ॥ सारस्वतं ततो बीजं जजाप विधिपूर्वकम् ॥ पंडितश्चातिविख्यातो द्विजोऽसौ धरणीतले ॥ ४४ ॥ प्रतिपर्वसु गायंति ब्रह्मणा यद्यशः सदा ॥ आख्यानं चातिविस्तीर्णं स्तुवंति मुनयः किल ॥ ४५ ॥ तच्छ्रुत्वा सदनं तस्य समागम्य तदाश्रमे ॥ येन त्यक्तः पुरा तेन गृहं नीतोऽतिमानितः ॥ ४६ ॥ तस्मांद्राजन्सदा सेव्या पूजनीया च भक्तितः ॥ आदिशक्तिः परा देवी जगतां कारणं हि सा ॥ ४७ ॥ तस्यायज्ञं महाराज कुरु वेद विधानतः ॥ सर्वकामप्रदं नित्यं निश्चयं कथितं पुरा ॥ ४८ ॥

तब वह विधिपूर्वक सारस्वत बीज जपने लगा और वह ब्राह्मण पृथ्वीमें बडा विख्यात पंडित हुआ ॥ ४४ ॥ जिसका यश ब्राह्मण प्रतिवर्ष गाते हैं और मुनिजन विस्तीर्ण आख्यानकी स्तुति करते हैं ॥ ४५ ॥ यह उनकी बधाई सुनकर जिन्होंने त्याग किया था वे मान कर घर ले आये ॥ ४६ ॥ हे राजन् इस कारण वह आदिशक्ति परादेवी जगत्‌की कारण सदा सेवनीय है ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! इससे वेदविधानसे यज्ञ करो जो सब कामका देनेवाला नित्य है, यह निश्चय हैं ॥ ४८ ॥

वह भक्तिसे स्मरण करके पूजन करके ध्यान और उच्चारण करनेसे मनोवांछित अर्थोंको देती है, इससे कामदा कही जाती है ॥ ४९ ॥ हे राजन्! रोगी दीन क्षुधित निर्धन शठोंको देखकर अनुमान सदा करना चाहिये ॥ ५० ॥ कि जो प्राणी आर्त मूर्ख पीडित वैरियोंसे आक्रान्त दास आज्ञाकारी क्षुद्र विकल विह्वल हैं ॥ ५१ ॥ तथा जो भोजन भोगमें अतृप्त हैं सदा आर्त और अजितेन्द्रिय हैं तृष्णामें अधिक आसक्त सदा रोगसे पीडित हैं ॥ ५२ ॥ कोई विभव सपन्न पुत्र पौत्रसे परिवर्धित हैं भोगोंसे पुष्टदेह वेदवादी ॥ ५३ ॥ राजलक्ष्मीसे युक्त मनुष्योंको वशीभूत करनेवाले, स्वजनोंसे अवियुक्त सब लक्षणोंसे लक्षित हैं ॥ ५४ ॥ उन्हें व्यतिरेक और अन्वयसे बुद्धिमानोंको जान लेना चाहिये कि सुखियोंने भगवतीका आराधन किया है दुःखियोंने नहीं

स्मृता संपूजिता भक्त्या ध्याता चोच्चरिता स्तुता॥ ददाति वांछितानर्थान्कामदा तेनकीर्त्यते ॥ ४९ ॥ अनुमानमिदं राजन्कर्तव्यं सर्वथा बुधैः ॥ दृष्ट्वा रोगयुतान्दीनान्क्षुधितान्निर्धनाञ्छठाम् ॥ ५० ॥ जनानातांस्तथा मूर्खान्पीडितान्वैरिभिः सदा ॥ दासानाक्षाकरान्क्षुद्रान्विलान्विह्वलानथ ॥ ५१ ॥ अतृप्तान्भोजने भोगे सदाऽऽर्तानजितेंद्रियान् ॥ तृष्णाधिकानशक्तांश्च सदाऽऽधिपरिपीडितान् ॥ ५२ ॥ तथा विभवसंपन्नान्पुत्रपौत्रविवर्धनान् ॥ पुष्टदेहांश्च संभोगैः संयुतान्वेदवादिनः ॥ ५३ ॥ राजलक्ष्म्या युताञ्छूरान्वशीकृतजनानथ ॥ स्वजनैर वियुक्तांश्च सर्वलक्षणलक्षितान् ॥ ५४ ॥ व्यतिरेकान्वयाभ्यां च विचेतव्यं विचक्षणैः ॥ एभिर्न पूजिता देवी सर्वार्थफलदा शिवा ॥ ५५ ॥ समाराधिता च तथा नृभिरेभिः सदांऽबिका ॥ यतोऽमी सुखिनः सर्वे संसारेऽस्मिन्न संशयः ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ इति राजञ्छ्रुतं तत्र मया मुनिसमागमे ॥ लोमशस्य मुखात्कामं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ५७ ॥ इति संचिंत्य राजेंद्र कर्तव्यं च सदाऽर्चनम् ॥ भक्त्या परमया देव्याः प्रीत्या च पुरुषर्षभ ॥५८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ वद यज्ञविधिं सम्यग्देव्यास्तस्याः समंततः ॥ श्रुत्वा करोम्यहं स्वामिन्यथाशक्ति ह्यतंद्रितः ॥ १ ॥

॥ ५५ ॥ इन सुखी मनुष्योंने सदा भगवती अम्बिकाका आराधन किया है इस कारण यह सब संसारमें सुखी हैं ॥ ५६ ॥ व्यासजी बोले, हे राजन्! इस प्रकार मैंने मुनि समाजमें लोमशके मुखसे देवीका माहात्म्य सुना था ॥ ५७ ॥ हे राजन्! हे पुरुषश्रेष्ठ! ऐसा विचार कर परमभक्ति और प्रीतिसे देविका अर्चन करना चाहिये ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ राजा बोले, उस देवीके यज्ञकी विधि भली प्रकार कहो सुनकर आलस्य रहित होकर मैं सर्वथा करूंगा ॥ १ ॥

पूजाविधि मंत्र होम द्रव्यका विधान कहिये, कितने इसमें ब्राह्मण होंगे? और दक्षिणाकी संख्या क्या होगी? ॥ २ ॥ व्यासजी बोले, हे राजन्! सुनो विधिसे देविका यज्ञ कहताहूं. इसको विधिदृष्ट कर्मसे तीन प्रकारका जानना ॥ ३ ॥ सात्विकी राजसी और तामसी, मुनियोंका सात्विक और राजाओंका राजसिक कहा है ॥ ४ ॥ राक्षसोंका तामसी और ज्ञानियोंका निर्गुण यज्ञ होता है. और विमुक्तोंका ज्ञान मय होता है. मैं विस्तार पूर्वक कहता हूं ॥ ५ ॥ देश काल द्रव्य मंत्र ब्राह्मण और और सात्विकी श्रद्धासे सात्विक यज्ञ कहाता है ॥ ६ ॥ द्रव्यशुद्धि क्रियाशुद्धि मंत्रशुद्धि यह जब होती है, तब पूर्ण फल होता है ॥ ७ ॥ अन्यायसे उत्पन्न किये द्रव्यसे जो पुण्य किया जाता है. उससे न यहां कीर्ति और न परलोकमें फल होता है ॥ ८ ॥ इस कारण न्यायोपार्जित

पूजाविधिं च मंत्रांश्च होमद्रव्यमसंशयम् ॥ ब्राह्मणाः कतिसंख्याश्च दक्षिणाश्च तथा पुनः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्या यज्ञं विधानतः ॥ त्रिविधं तु सदा ज्ञेयं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ३ ॥ सात्त्विकं राजसं चैव तामसं च तथाऽपरम् ॥ मुनीनां सात्त्विकं प्रोक्तं नृपाणां राजसं स्मृतम् ॥ ४ ॥ तापसं राक्षसाना वै ज्ञानिनां तु गुणोज्झितम् ॥ विमुक्तानां ज्ञानमये विस्तरात्प्रब्रवीमि ते ॥ ५ ॥ देशः कालस्तथा द्रव्यं मंत्राश्च ब्राह्मणस्तथा ॥ श्रद्धा च सात्त्विकी यत्र तं यज्ञं सात्त्विकं विदुः ॥ ६ ॥ द्रव्य शुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मंत्रशुद्धिश्च भूमिप ॥ भवेद्यपि तदा पूर्णं फलं भवति नान्यथः ॥ ७ ॥ अन्यायोपार्जितेनैव कर्तव्य सुकृतं कृतम् ॥ न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम् ॥ ८ ॥ तस्मान्यायार्जितेनैव कर्तव्यं सुकृतं सदा ॥ यशसेपरलोकाय भवित्येव सुखाय च ॥ ९ ॥ प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र पांडवैस्तुमखः कृतः ॥ राजसूयः क्रतुवरः समाप्तवरदक्षिणः ॥ १० ॥ यत्र सक्षाद्धरिः कृष्णो यादवेंद्रो महामनाः ॥ ब्राह्मणाः पूर्णविद्याश्च भारद्वाजादयस्तथा ॥ ११ ॥ कृत्वा यज्ञं सुसंपूर्णं मासमात्रेण पांडवैः ॥ प्राप्तं महत्तरं कष्टं वनवासश्च दारुणः ॥ १२ ॥ पीडनं चैव पांचाल्यास्तथा द्यूते पराजयः ॥ वनवासो महत्कष्टं क्व गतं मखजं फलम् ॥ १३ ॥

द्रव्यसे सुकृत करना चाहिंये, वह परलोकमें यश और सुखके निमित्त होता है ॥ ९ ॥ हे राजन्! आपको विदित है कि पाण्डवोंने यज्ञकिया जो यज्ञश्रेष्ठ राजसूय और बडी दक्षिणावाला है ॥ १० ॥ जहां साक्षात् हरि कृष्ण यादवेन्द्र महामनस्वी थे और भारद्वाजादि पूर्णविद्याके ब्राह्मण थे ॥ ११ ॥ उस यज्ञको पूर्ण कर पाण्डवोंने एकही महीनेमें बडा कष्ट दारुण वनवास पाया ॥ १२ ॥ द्रौपदीका पीडन और द्यूतमें पराजय और वनवासमें बडा कष्ट पाया, यज्ञका फल कहा गया? ॥ १३ ॥

उन सब महात्माओंने विराट्के यहां दासता स्वीकार की और स्त्रियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदी कीचकद्वारा खैंचीगई ॥ १४ ॥ और शुद्ध चित्तवाले ब्राह्मणोंके आशीर्वाद कहां गये ? और उस संकटमें वासुदेवकी भक्तिसेभी कुछ सहायता न हुई ॥ १५ ॥ किसीने उस बाला द्रौपदीकी रक्षा न की और उस वरवर्णिनीको केशग्रह प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ यह धर्म वैगुण्यका कारण हुआ, इसमें क्या विचार करें ? जहां देवेश केशव और धर्मपुत्र युधिष्ठिर थे ॥ १७ ॥ जो भवितव्य ही कहा जाय तो आगमन निष्फल हो जायऔर वेदमंत्र मिथ्या हो जायँ ॥ १८ ॥ सब साधन और उपाय निरर्थक हो जायँ और इस वचनके प्रतिपादनमें भवितव्य होता है ॥ १९ ॥ आगमन अर्थवाद हो जाय और सब क्रिया निरर्थक हो जायँ, स्वर्गके निमित्त तप व्यर्थ और वर्णधर्म विपरीत हो

दासत्वं च विराटस्य कृतं सर्वैर्महात्मभिः ॥ कीचकेन परिक्लिष्टा द्रौपदी च प्रमद्वरा ॥ १४ ॥ आशीर्वादाद्द्विजातीनां क्व गताः शुद्धचेतसाम् ॥ भक्तिर्वा वासुदेवस्य क्व गतातत्र संकटे ॥ १५ ॥ न रक्षिता तदा बाला केनापि द्रुपदात्मजा ॥ प्राप्तकेशग्रहा काले साध्वी च वरवर्णिनी ॥ १६ ॥ किमत्र चिंतनीयं वै धर्मवैगुण्यकारणम् ॥ केशवे सति देवेशे धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ॥ १७ ॥ भवितव्यमिति प्रोक्ते निष्फलः स्यादत्ताऽऽगमः ॥ वेदमंत्रास्तथाऽन्ये वै वितथाः स्युरसंशयम् ॥ १८ ॥ साधनं निष्फलं सर्वमुपायश्च निरर्थकः ॥ भवितव्यं भवत्येव वचने प्रतिपादके ॥ १९ ॥ आगमोऽप्यर्थवादः स्यात्क्रियाः सर्वा निरर्थकाः ॥ स्वर्गार्थं च तपो व्यर्थं वर्णधर्मश्च वै तथा ॥ २० ॥ सर्वं प्रमाणं व्यर्थं स्याद्भवितव्ये कृते हृदि ॥ उभयं चापि मंतव्यं दैवं चोपाय एव च ॥ २१ ॥ कृते कर्मणि चेत्सिद्धिर्विपरीता यदा भवेत् ॥ वैगुण्यं कल्पनीयं स्यात्प्राज्ञैः पंडितमौलिभिः ॥ २२ ॥ तत्कर्म बहुधा प्रोक्तं विद्वद्भिः कर्म कारिभिः ॥ कर्तृभेदान्मन्त्रभेदाद्द्रव्यभेदात्तथा पुनः ॥ २३ ॥ यथा मघवता पूर्वं विश्वरूपो वृतो गुरुः ॥ विपरीतं कृतं तेन कर्म मातृहिताय वै ॥ २४ ॥

जायँ ॥ २० ॥ बहुत क्या सर्वथा भवितव्यको हृदयमें धारण करें तो सब प्रमाण व्यर्थ हो जायँ इससे दैव और उपाय दोनों व्यर्थ हो जायँगे ॥ २१ ॥ जो कर्म करनेसे सिद्धिविपरीत हो जाय तो पण्डित जनोंको उसमें विगुणता कल्पना करनी चाहिये ॥ २२ ॥ कर्म करनेवाले पण्डितोंने कर्म अनेक प्रकारका कहा है, जो कर्ताके भेदसे मंत्रके भेदसे द्रव्यके भेदसे तीन प्रकारके हैं ॥ २३ ॥ जैसे पहले इन्द्रने विश्वरूपको गुरु किया उसने माताके निमित्त दैत्यपक्ष अवलम्बन कर विपरीत कर्म किया ॥ २४ ॥

प्रत्यक्षमें देवता और परोक्षमें दैत्योंके निमित्त वारंवार स्वस्ति वाक्य कहे और मातृ पक्षवाले असुरोंकी भी रक्षा की ॥ २५ ॥ तब दैत्योंको पुष्ट देखकर इन्द्रने क्रोध किया और वज्रसे शीघ्र ही उसके शिरका छेदन कर दिया ॥ २६ ॥ निःसन्देह यहां कर्ताके भेदसे क्रियामें वैगुण्यता प्राप्त हुई. नहीं तो पांचालराज द्रुपदने रोपसे भी क्रिया करी थी ॥ २७ ॥ कि जिससे द्रोणाचार्यका विनाश और पुत्रकी उत्पत्ति हो तब वेदिके मध्यसे धृष्टद्युम्न और द्रौपदी प्रगट हुई ॥ २८ ॥ और जिस समय दशरथजीने पुत्रेष्टि यज्ञ किया तब उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २९ ॥ इस कारण युक्तिसे की हुई सब क्रिया सिद्ध होती है, हे राजन् ! अयुक्तिसे सब विपरीत हो जाती है ॥ ३० ॥ जैसे पाण्डवोंके यज्ञमें किंचित् वैगुण्यके योगसे विपरीत फल प्राप्त हुआ और जुएमें जीते गये ॥ ३१ ॥

देवेभ्यो दानवेभ्यस्तु स्वस्तीत्युक्त्वा पुनः पुनः ॥ असुरा मातृपक्षीयाः कृतं तेषां च रक्षणम् ॥ २५ ॥ दैत्यान्दृष्ट्वाऽतिसंपुष्टांश्चुकोप मघवा तदा ॥ शिरांसि तस्य वज्रेण चिच्छेद तरसा हरिः ॥ २६ ॥ क्रियावैगुण्यमत्रैव कर्तृभेदादसंशयम् ॥ नोचेत्पंचालराजेन रोषेणापि कृता क्रिया ॥ २७ ॥ भारद्वाजविनाशाय पुत्रस्योत्पादनाय च ॥ धृष्टद्युम्नः समुत्पन्नो वेदिमध्याच्च द्रौपदी ॥ २८ ॥ पुरा दशरथेनापि पुत्रेष्टिस्तु कृता यदा ॥ अपुत्रस्य सुतास्तस्य चत्वारः संप्रजज्ञिरे ॥ २९ ॥ अतः क्रिया कृता युक्त्या सिद्धिदा सर्वथा भवेत् ॥ अयुक्त्या विपरीता स्यात्सर्वथा नृपसत्तम ॥ ३० ॥ पांडवानां यथा यज्ञे किंचिद्वैगुण्ययोगतः ॥ विपरीत फलं प्राप्तं निर्जितास्ते दुरोदरे ॥ ३१ ॥ सत्यवादी तथा राजन्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ द्रौपदी च तथा साध्वी यथाऽन्येऽप्यनुजाः शुभाः ॥ ३२ ॥ कुद्रव्ययोगाद्वैगुण्यं समुत्पन्नं मखेऽथवा ॥ साभिमानैः कृताद्द्राऽपि दूषणं समुपस्थितम् ॥ ३३ ॥ सात्त्विकस्तु महाराज दुर्लभो वै मखः स्मृतः ॥ वैखानसमुनीनां हि विहितोऽसौ महामखः ॥ ३४ ॥ सात्त्विकं भोजनंये वै नित्यं कुर्वंति तापसाः ॥ न्यायार्जितं च वन्यं च तथा ऋष्यं सुसंस्कृतम् ॥ ३५ ॥ पुरोडाशपरानित्यं वियूपा मंत्रपूर्वकाः ॥ श्रद्धाधिका मखा राजन्सात्त्विकाः परमाः स्मृताः ॥ ३६ ॥

और सत्यवादि धर्मपुत्र युधिष्ठिर द्रौपदि और दूसरे भी अनुज श्रेष्ठ थे ॥ ३२ ॥ उनको कुद्रव्यके योगसे ही उस यज्ञमें विगुणता प्राप्त हुई और अभिमानके कारण उनमें दूषण उपस्थित हुआ ॥ ३३ ॥ हे महाराज! सात्विक यज्ञ बड़े दुर्लभ हैं, वह यज्ञ वैखानस महामुनि ही कर सकते हैं ॥ ३४ ॥ जो तपस्वी नित्य सात्विक भोजन करते हैं, न्यायसे उत्पन्न वनके अन्न ऋषियोंका हितकारी भली प्रकार संस्कार किये हुए ही ॥ ३५ ॥ पुरोडाशमें नित्य तत्पर पशुबंधनके यूपरहित. मंत्रपूर्वक श्रद्धाके यज्ञ सात्विक कहे हैं ॥ ३६ ॥

दे. भा. ॥३२॥

रजोगुणी यज्ञमें अधिक द्रव्य लगता है, यूप बनते हैं, वह क्षत्रिय वैश्योंका अभिमानी मख है ॥ ३७ ॥ क्रोध मदका बढ़ानेवाला दानवोंका तामसी यज्ञ होता है, महात्माओंने क्रोध और अमर्षको तामसी यज्ञ कहा है ॥ ३८ ॥ और जो मुक्तिकी इच्छावाले विरक्त महात्मा हैं उनको सब साधन युक्त मानसी यज्ञ कहा है ॥ ३९ ॥ और सब यज्ञोंमें कुछ न्यून भी हो तो द्रव्य श्रद्धा क्रिया और ब्राह्मणों द्वारा ॥ ४० ॥देश काल पृथक् द्रव्य सब साधनोंसे वह ऐसा पूर्ण नहीं होता जैसे मानसो यज्ञ पूर्ण होता है ॥ ४१ ॥ प्रथम तो गुणवर्जित मनका शोधन करना चाहिये, मनके शुद्ध होनेमें अवश्य देह शुद्ध हो जाता

राजसा द्रव्यबहुलाः सयूपाश्च सुसंस्कृताः ॥ क्षत्रियाणां विशां चैव साभिमानाश्च वै मखाः ॥ ३७ ॥ तामसा दानवानां वै सक्रोधा मदवर्धकाः ॥ सामर्षाः संस्कृताः क्रूरा मखाः प्रोक्तामहात्मभिः ॥ ३८ ॥ मुनीनां मोक्षकामानां विरक्तानां महात्मनाम् ॥ मानसस्तु स्मृतो यागः सर्वसा धनसंयुतः ॥ ३९ ॥ अन्येषु सर्वयज्ञेषु किंचिन्न्यूनं भवेदपि ॥ द्रव्येण श्रद्धया वाऽपि क्रियया ब्राह्मणैस्तथा ॥ ४० ॥ देशकाल पृथग्द्रव्यसाधनैः सकलैस्तथा ॥ नान्यो भवति पूर्णो वै तथा भवति मानसः ॥ ४१ ॥ प्रथमं तु मनःशोध्यं कर्तव्यं गुणव र्जितम् ॥ शुद्धे मनसि देहो वै शुद्ध एव न संशयः ॥४२॥ इंद्रियार्थपरित्यक्तं यदा जातं मन शुचि ॥ तदा तस्य मखस्यासौ प्रभवेदधि कारवान् ॥ ४३ ॥ तदाऽसौ मंडपं कृत्वा बहुयोजनविस्तृतम् ॥ स्तंभैश्च विपुलैः श्लक्ष्णैर्याज्ञियद्रुमसंभवैः ॥ ४४ ॥ वेदिं च विशदां तत्र मनसा परिकल्पयेत् ॥ अग्नयोऽपि तथा स्थाप्या विधिवन्मनसा किल ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणानां च वरणं तथैव प्रतिपाद्य च ॥ ब्रह्माऽध्व र्युस्तथा होता प्रस्तोता विधिपूर्वकम् ॥ ४६ ॥ उदाता प्रतिहर्ता च सभ्याश्चान्ये यथाविधि ॥ पूजनीयाः प्रयत्नेन मनसैव द्विजोत्तमाः ॥ ४७ ॥ प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानोदान एव च ॥ पावकाः पंच एवैते स्थाप्या वेद्यां विधानतः ॥ ४८ ॥

है ॥ ४२ ॥ इन्द्रियोंके अर्थ त्यागसे जहां मन शुद्ध हुआ तब यह पुरुष यज्ञका अधिकारी होता है ॥ ४३ ॥ तब यह मनमें अनेक योजनका विस्तृत मण्डप करके और यज्ञीय वृक्षोंके अनेक स्तम्भ कल्पना करके ॥ ४४ ॥ मनसे विशद वेदोंकी कल्पना करे और विधिपूर्वक मनसे ही अग्नि स्थापन करना चाहिये ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार ब्राह्मणोंके वरणको करके ब्रह्मा अध्वर्यु होता प्रस्तोता विधिपूर्वक करे ॥ ४६ ॥ उद्गाता प्रतिहर्ता और सभ्य यह भी विधिपूर्वक कल्पना करे और यह श्रेष्ठ ब्राह्मण मनसे ही पूजे ॥ ४७ ॥ प्राण अपान व्यान समान उदान यह पांचों पावक वेदिमें स्थापित करे ॥ ४८ ॥

भा. टी. तृ. अ. १२

प्राण गार्हपत्य अपान आहवनीय दक्षिणाग्नि व्यान आवसथ्यक अग्नि समान है ॥ ४९ ॥ उदान सभ्य है यह पावक परम उत्कट हैं और परम पवित्र निर्गुण द्रव्यको मनसे कल्पना करे ॥ ५० ॥ मनको ही होता और यजमान बनावे और यज्ञके अधिदेवता निर्गुण सनातन ब्रह्म हैं ॥ ५१ ॥ और निर्वेद दायक फल दायक वह निर्गुण शक्ति है जो ब्रह्मविद्या सबका आधार व्याप्य होकर सर्वत्र स्थित है ॥ ५२ ॥ उसके उद्देश्यसे प्राणाग्निमें उस द्रव्यको हवन करे फिर चित्त और प्राणोंको निरालम्ब करके सुषुम्नाके मार्गसे उन प्राणोंको ॥ ५३ ॥ भगवती पदवाच्य ब्रह्ममें लय करे इस प्राणलयसे संकल्प विकल्पके क्षय होनेपर समाधि होनेमें अपनेसे अभिन्न भगवतीको ॥ ५४ ॥ निर्विकल्प चित्तमें ध्यान करे अपनेमें सब भूतोंको और सब भूतोंमें मैं हूं ॥ ५५ ॥ इस प्रकारसे जब देखता

गार्हपत्यस्तदा प्राणोऽपानश्चाहवनीयकः ॥ दक्षिणाग्निस्तथा व्यानः समानश्चावसथ्य कः ॥ ४९ ॥ सभ्योदानः स्मृता ह्येते पावकाः परमोत्कटाः ॥ द्रव्यं च मनसा भाव्यं निर्गुणं परमं शुचि ॥ ५० ॥ मन एव तदा होता यजमानस्तथैव तत् ॥ यज्ञाधिदेवता ब्रह्म निर्गुणं च सनातनम् ॥ ५१ ॥ फलदा निर्गुणा शक्तिः सदा निर्वेददा शिवा ॥ ब्रह्मविद्याऽखिलाधारा व्याप्य सर्वत्र संस्थिता ॥ ५२ ॥ तदुद्देशेन तद्द्रव्यं हुनेत्प्राणाग्निषु द्विजः ॥ पश्चाच्चित्तं निरालंबं कृत्वा प्राणानपि प्रभो ॥ ५३ ॥ कुंडलीमुखमार्गेण हुनेद्ब्रह्मणि शाश्वते ॥ स्वानुभूत्या स्वयं साक्षात्स्वात्मभूतां महेश्वरीम् ॥ ५४ ॥ समाधिनैव योगेन ध्यायेच्चेतस्यनाकुलः ॥ सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ ५५ ॥ यदा पश्यति भूतात्मा तदा पश्यति तां शिवाम् ॥ दृष्ट्वा तां ब्रह्मविद्भूयात्सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥५६॥ तदा मायादिकं सर्वं दग्धं भवति भूमिप ॥ प्रारब्धकर्ममात्रं तु यावद्देहं च तिष्ठति ॥ ५७ ॥ जीवन्मुक्तस्तदा जातो मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ कृतकृत्यो भवेत्तात यो भजेज्जगदंबिकाम् ॥ ५८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ध्येया श्रीभुवनेश्वरी ॥ श्रोतव्या चैव मंतव्या गुरुवाक्यानुसारतः ॥ ५९ ॥ राजन्नेवं कृतो यज्ञो मोक्षदो नात्र संशयः ॥ अन्ये यज्ञाः सकामास्तु प्रभवन्ति क्षयोन्मुखाः ॥ ६० ॥

है तब उस शिवाका दर्शन होता है, उस सच्चिदानंद रूपिणीको देखकर यह प्राणी ब्रह्मवित् होता है ॥ ५६ ॥ हे राजन्! उस समय सब मायादिक दग्ध हो जाती हैं केवल देह स्थितिके निमित्त प्रारब्ध कर्ममात्र रह जाता है ॥ ५७ ॥ उस समय यह जीवन्मुक्त होकर मुक्त हो जाता है, हे राजन्! जो जगदम्बाका भजन करता है वह कृतकृत्य हो जाता है ॥ ५८ ॥ इस कारण सब प्रयत्नसे भुवनेश्वरीका ध्यान करना और गुरु वाक्यके अनुसार उसे सुने और ध्यान करे ॥ ५९ ॥ हे राजन्! इस प्रकार यज्ञ करनेसे मोक्षका देनेवाला होता है, इसमें सन्देह नहीं और सकाम यज्ञ तो क्षयोन्मुख होते हैं ॥ ६० ॥

विधिपूर्वक अग्निष्टोमसे स्वर्गकी कामनासे यज्ञ करे, मनीषियोंने यह वेदका अनुशासन कहा है ॥ ६१ ॥ वे प्राणी पुण्यके क्षीण होनेसे मृत्युलोकमें आते हैं, इस कारण मानसी यज्ञही श्रेष्ठ है कारण कि उसका फल अक्षय है ॥६२॥ जयकी इच्छा करनेवाले राजाओंसे यह यज्ञसिद्ध नहीं होता, हे राजन् ! आपने भी पहले तामसी यज्ञ किया था॥ ६३ ॥ आप दुरात्मा तक्षकका वैर निकाला जिसके कारण आपने अनेक सर्पोंका नाश किया ॥ ६४ ॥ सो अब तुम विधिपूर्वक देवीयज्ञ करो हे राजन् ! जैसा सृष्टिकी आदिमें विष्णुनेभी यज्ञ किया था ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! ऐसाही आप करो. मैं तुमसे विधि कहता हूं हे राजन् ! विधिके जाननेवाले वेदविद् ब्राह्मण हैं ॥ ६६ ॥ जो देवीबीजके विधान जाननेवाले मंत्रमार्गमें चतुर हों वे यज्ञ करानेवाले हैं और तुम यजन करो

अग्निष्टोमेन विधिवत्स्वर्गकामो यजेदिति ॥ वेदानुशासनं चैतत्प्रवदंति मनीषिणः ॥ ६१ ॥ क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं विशंति च यथामति ॥ तस्मात्तु मानसः श्रेष्ठो यज्ञोऽप्यक्षय एव सः ॥ ६२ ॥ न राज्ञा साधितुं योग्यो मखोऽसौ जयमिच्छता ॥ तामसस्तु कृतः पूर्वं सर्पयज्ञस्त्वयाऽधुना ॥ ६३ ॥ वैरं निर्वाहितं राजंस्तक्षकस्य दुरात्मनः ॥ यत्कृतेनिहताः सर्पास्त्वयाऽग्नौ कोटिशः परे ॥ ६४ ॥ देवीयज्ञं कुरुष्वाद्य विततं विधिपूर्वकम् ॥ विष्णुना यः कृतः पूर्वं सृष्ट्यादौ नृपसत्तम ॥ ६५ ॥ तथा त्वं कुरु राजेंद्र विधिं ते प्रब्रवीम्यहम् ॥ ब्राह्मणाः संति राजेंद्र विधिज्ञा वेदवित्तमाः ॥६६॥ देवीबीज विधानज्ञा मंत्रमार्गविचक्षणः ॥ याजकास्ते भविष्यंति यजमानस्त्वमेव हि ॥ ६७ ॥ कृत्वा यज्ञं विधानेन दत्त्वा पुण्यं मखार्जितम् ॥ समुद्धर महाराज पितरं दुर्गतिं गतम् ॥ ६८ ॥ विप्रावमानजं पापं दुर्घटं नरकप्रदम् ॥ तथैव शापजो दोषः प्राप्तः पित्रा तवाऽनघ ॥ ६९ ॥ तथा दुर्मरणं प्राप्तं सर्पदंशेन भूभुजा ॥ अंतराले तथा मृत्युर्न भूमौ कुशसंस्तरे ॥ ७० ॥ न संग्रामे न गंगायां स्नानदानादिवर्जितम् ॥ मरणं ते पितुस्तत्र सौधे जातं कुरूद्वह ॥ ७१ ॥ कपूणानि च सर्वाणि नरकस्य नृपोत्तम ॥ तत्रैकं कारणं तस्या न जातं चातिदुर्लभम् ॥ ७२ ॥

॥ ६७ ॥ विधिपूर्वक यज्ञ करके उसका पुण्य पिताको अर्पण कर हे महाराज ! दुर्गतिको प्राप्त हुए पिता का उद्धार करो ॥ ६८ ॥ ब्राह्मणके तिरस्कारका पाप बड़ा दुर्घट और नरकका देनेवाला है हे पापरहित ! इसी प्रकार तुम्हारे पिताको शाप प्राप्त हुआ है ॥ ६९ ॥ इसी प्रकार सर्पके काटनेसे दुर्मरण प्राप्त हुआ है और अन्तरालमें मृत्यु हुई जो भूमि और कुशाके बिछौने परभी न थी ॥ ७० ॥ न संग्राममें हुई नगंगामें और स्नान दानसे रहित तुम्हारे पिताकी महलपर मृत्यु हुई ॥ ७१ ॥हे राजन् ! सब कुत्सित कार्य नरकके कारण होते हैं उनमें एक भी उद्धार कारण न हुआ ॥ ७२ ॥

कारण कि जहां कहीं भी प्राणी स्थित हो और समय आया जाने साधनका अभाव हो संकटमें अवश हो ॥ ७३ ॥ जब निर्वेद होकर मन निर्मल होता है कि इस दुःख दायक पंचभूतात्मक देहमें मेरा क्या है ? ॥ ७४ ॥ चाहे यह आजही पतित होजाय मैं तो अविनाश हूं, यह तत्व नाशात्मक है इसमें शोककी बात क्या है ? ॥ ७५ ॥ मैं ब्रह्म हूं संसारी नहीं सदा सनातन मुक्त हूं देहके साथ मेरा सम्बन्ध नहीं है जो कि कर्मसे प्रतिपादित है ॥ ७६ ॥ उसीने सब शुभाशुभ भोगे हैं मनुष्य देहके योगसे जो कि सुखदुःखका साधन है भोगाजाता है ॥ ७७ ॥ मैं घोर भयवाले इस संसारसागरसे मुक्त हुआ, इस प्रकार चिन्ता करते हुए स्नानदानसे वार्जित ॥ ७८ ॥ भी जो शरीर त्यागकरे वह मुक्त हो जाता है. सन्देह नहीं यह योगियोंको दुर्लभ पराकाष्ठ

यत्र यत्र स्थितः प्राणी ज्ञात्वा कालं समागतम्॥साधनानामभावेऽपि ह्यवशश्चातिसंकटे ॥ ७३ ॥ यदा निर्वेदमायाति मनसा निर्मलेन वै ॥ पंचभूतात्मको देहो मम किं चात्र दुःखदम् ॥ ७४ ॥ पतत्वद्य यथाकामं मुक्तोऽहं निर्गुणोऽव्यया ॥ नाशात्मकानि तत्त्वानि तत्र का परिदेवना ॥ ७५ ॥ ब्रह्मैवाहं न संसारी सदा मुक्तः सनातनः ॥ देहे न मम संबंधः कर्मणा प्रतिपादितः ॥ ७६ ॥ तानि सर्वाणि मुक्तानि शुभानि चेतराणि च ॥ मनुष्यदेहयोगेन सुखदुःखानुसाधनात् ॥ ७७ ॥ विमुक्तोऽतिभयाद्धोरादस्मात्संसारसंकटात् ॥ इत्येवं चिंत्यमानस्तु स्नानदानविवर्जितः ॥ ७८ ॥ मरणं चेदवाप्नोति स मुच्येज्जन्मदुःखतः ॥ एषा काष्ठा पराप्रोक्ता योगिनामपि दुर्लभा ॥ ७९ ॥ पिता ते नृपशार्दूल श्रुत्वा शापंद्विजोदितम् ॥ देहे ममत्वं कृतवान्न निर्वेदमवाप्तवान् ॥ ८० ॥ नीरोगो मा देहोऽयं राज्यं निहतकंटकम् ॥ कथं जीवाम्यहं कामं मंत्रज्ञानानयंतु वै ॥ ८१ ॥ औषधं मणिमंत्रं च यंत्रं परमकं तथा ॥ आरोहणं तथा सौधे कृतवान्नृपतिस्तदा ॥ ८२ ॥ न स्नानं न कृतं दानं न देव्याः स्मरणं कृतम् ॥ न भूमौ शयनं चैव दैवं मत्वा परं तथा ॥ ८३ ॥ मग्नो मोहार्णवे घोरे मृतः सौधेऽहिना हतः ॥ कृत्वा पापं कलेर्योगात्तापसस्यावमानजम् ॥ ८४ ॥

गति है ॥ ७९ ॥ हे राजन् ! आपके पिता राजा ब्राह्मणका शाप सुनकर देहमें ममता करते हुए निर्वेदको न प्राप्त हुए ॥ ८० ॥ यह मेरा देह निरोग और राज्य कंटकरहित है मैं कैसे जीवूं ? मंत्रके जाननेवालोंको बुलाओ ॥ ८१ ॥ औषधमणि मंत्र परम यंत्रकरके राजा महलपर स्थित हुआ ॥ ८२ ॥ स्नान दान देवीका स्मरणादि कुछ न किया, और दैवको बलिष्ठ मानकर भूमिपर शयन न किया ॥ ८३ ॥ मोहकेही सागरमें मग्न रहा, महलपर सर्पके काटेसेमृत्यु हुई, कलिके योगसे तपस्वीके अवमानरूप पापको किया ॥ ८४ ॥

दे. भा.
॥३४॥

ऐसे आचरणों से तो अवश्य नरक होता है हे राजन् ! इस कारण पापसे पिताका उद्धार करो ॥ ८५ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार अमिततेजस्वी व्यासजीके वचन सुनकर जन्मेजय नेत्रोंमें जल भरकरबड़ा दुःखी हुआ ॥ ८६ ॥ यदि हमारे पिताकी सुगति नहीं है तो मेरे जीवनको धिक्कार है सो वही करूं जिससे पिता स्वर्गमें जायँ ॥ ८७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ राजाने कहा हे व्यासजी ! भगवान् विष्णुने प्रथम किस प्रकारसे यज्ञ किया था ? जो विष्णु जगत्के कारण और जयशील हैं ॥ १ ॥ उसमें कौन सहाय ? कौन ब्राह्मण और वेदज्ञ ऋत्विज थे ? सो आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ फिर मैं विधिदृष्ट कर्मसे यज्ञ करूंगा, परन्तु पहले विष्णुने भगवतीका याग किस प्रकार किया ? सो सुनाइये ॥ ३ ॥ व्यासजी बोले हे

अवश्यमेव नरकं एतैराचरणैर्भवेत् ॥ तस्मात्तं पितरं पापात्समुद्धर नृपोत्तम ॥ ८५ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य व्यासस्यामित तेजसः ॥ साश्रुकंठोऽतिदुःखार्तो बभूव जनमेजयः ॥ ८६ ॥ धिगिदं जीवितं मेऽद्य पितामे नरके स्थितः ॥ तत्करोमि यथैवाद्य स्वर्गं यात्युत्तरासुतः ॥ ८७ ॥ इति श्रीदेवीभावते महापुराणे तृतीयस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ हरिणा तु कथं यज्ञः कृतः पूर्वं पितामह ॥ जगत्कारणरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १ ॥ के सहायास्तु तत्राऽऽसन्ब्राह्मणाःके महामते ॥ ऋत्विजीवेदतत्त्वज्ञास्तन्मे ब्रूहि परंतप ॥ २ ॥ पश्चात्करोम्यहं यज्ञं विधिदृष्टेनकर्मणा ॥ श्रुत्वा विष्णुकृतं यागमंबिकायाः समाहितः ॥ ३ ॥ व्यासउवाच ॥ राजञ्छृणु महाभाग विस्तरं परमाद्भुतम् ॥ यथा भगवतीयज्ञः कृतश्च विधिपूर्वकः ॥ ४ ॥ विसर्जिता यदा देव्या दत्त्वाशक्तीश्चतास्त्रयः ॥ काजेशाः पुरुषा जाता विमानवरमास्थिताः ॥ ५ ॥ प्राप्ता महार्णवं घोरं त्रयस्ते विबुधोत्तमाः ॥ चक्रुः स्थानानि वासार्थं समुत्पाद्यधरां स्थिताः ॥ ६ ॥ आधारशक्तिरचला मुक्ता देव्या स्वयं ततः ॥ तदाधारा स्थिता जाता धरा मेदः समन्विता ॥ ७ ॥ मधुकैटभयोर्मेदः संयोगान्मेदिनी स्मृता ॥ धारणाच्च धरा प्रोक्ता पृथ्वीं विस्तारयोगतः ॥ ८ ॥

महाभाग ! हेराजन् ! इस परम अद्भुत कथाको विस्तारसे सुनो, जैसे भगवान् विष्णुने विधिपूर्वक यज्ञ किया ॥ ४ ॥ जब तीन शक्ति देकर देवीने उन तीनोंको बिदा किया और वह तीनों पुरुषत्वको प्राप्त हुए विमानपर स्थित हुए ॥ ५ ॥ और घोर महार्णवमें प्राप्त हुए, और धराको उत्पादन कर निवासके स्थान किये ॥ ६ ॥ और जब देवीने स्वयं आधारशक्ति दी तो वह भेदयुक्त धरा अचल होगई ॥ ७ ॥ मधुकैटभके भेदसंयोगसे यह मेदनी कहाती है, धारणसे धरा और विस्तारसे पृथ्वी हुई ॥ ८ ॥

अधिक होनेसे मही कहाई. शेषके मस्तकपर उद्धार कर रक्खी गई और धारणके निमित्त विस्तारपूर्वक पर्वत स्थापित किये ॥ ९ ॥ जैसे काष्ठमें लोहकी कील लगाई जाती है, इस प्रकार वे पर्वत हैं हे महाराज ! ऐसा जानो ॥ १० ॥ बहुत योजनके विस्तारमें सुवर्णपर्वत सोनेका है, जो मणिमय शृंगसे सोभायमान परम अद्भुत है ॥ ११ ॥ मरीचि, नारद, अत्रि पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष और वशिष्ठ ये ब्रह्माके पुत्र हैं ॥ १२ ॥ मरीचिसे कश्यपजी हुए, उनको दक्षकी कन्या विवाही गई, उनके अनेक देवता और दैत्य उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ तब यह बड़े विस्तारमें कश्यपकी सृष्टि चली, जो मनुष्य पशु सर्पादिके भेदसे अनेक प्रकारकी हुई ॥ १४ ॥ ब्रह्माके अर्ध देहसे स्वायंभुव मनु हुए और बाईं ओरसे शतरूपा नारी हुई ॥ १५ ॥ उसके दो पुत्र प्रियव्रत

मही चापि महीयस्त्वाधृता सा शेषमस्तके ॥ गिरयश्च कृताः सर्वे धारणार्थं प्रविस्तराः ॥ ९ ॥ लोहकीलं यथा काष्ठे तथा ते गिरयः कृताः ॥ महीधरा महाराजा प्रोच्यंते विबुधैर्जनैः ॥ १० ॥ जात रूपमयो मेरुर्बहुयोजनविस्तरः ॥ कृतो मणिमयैः शृंगैः शोभिता परमाद्भुतः ॥ ११ ॥ मरीचिर्नारदोऽत्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ दक्षोवसिष्ठ इत्येते ब्रह्मणः प्रथिताः सुतः ॥ १२ ॥ मरीचेः कश्यपो जातो दक्षकन्यास्त्रयोदश ॥ ताभ्यो देवाश्च दैत्याश्च समुत्पन्ना ह्यनेकशः ॥ १३ ॥ ततस्तु काश्यपी सृष्टिः प्रवृत्ता चातिविस्तरा ॥ मनुष्यपशुसर्पादिजातिभेदैरनेकधा ॥ १४ ॥ ब्रह्मणश्चार्धदेहात्तु मनुः स्वायंभुवोऽभवत् ॥ शतरूपा तथा नारी संजाता वामभागतः ॥ १५ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ तस्या बभूवतुः ॥ तिस्रः कन्या वरारोहा ह्यभवन्नतिसुन्दराः ॥ १६ ॥ एवं सृष्टिं समुत्पाद्य भगवान्कमलोद्भवः ॥ चकार ब्रह्मलोकं च मेरुशृंगे मनोहरम् ॥ १७ ॥ वैकुंठ भगवान्विष्णु रमारमणमुत्तमम् ॥ क्रीडास्थानं सुरम्यं च सर्वलोकोपरि स्थितम् ॥ १८ ॥ शिवोऽपि परमं स्थानं कैलासाख्यं चकार ह ॥ समासाद्य भूतगणं विजहार यथारुचि ॥ १९ ॥ स्वर्गस्त्रिविष्टपो मेरुशिखरोपरि कल्पितः ॥ तच्च स्थानं सुरेन्द्रस्य नानारत्नविराजितम् ॥ २० ॥ समुद्रमथनात्प्राप्तः पारिजातस्तरूत्तमः ॥ चतुर्दंतस्तथा नागः कामधेनुश्च कामदा ॥ २१ ॥

और उत्तानपाद हुए और तीन कन्या बहुत सुन्दर हुईं ॥ १६ ॥ इस प्रकार भगवान् ब्रह्मा सृष्टि उत्पन्न करके मेरुके शृंगपर अपना स्थान करते हुए ॥ १७ ॥ और भगवान् विष्णु वैकुण्ठमें रमण करते हुए. जो क्रीडास्थान मनोहर और सब लोकोंके ऊपर विख्यात है ॥ १८ ॥ और शिवने परम स्थान कैलास बनाया, और भूतगणोंको प्राप्त होकर यथेच्छ विहार करने लगे ॥ १९ ॥ स्वर्ग अर्थात् त्रिविष्टप मेरुके शिखरपर कल्पना किया, वह सुरेन्द्रका स्थान अनेक रत्नोंसे शोभायमान था ॥ २० ॥ समुद्रके मथनेसे वृक्षश्रेष्ठ पारिजात प्राप्त हुआ चतुर्दन्त नाग और कामदा कामधेनु प्राप्त हुई ॥ २१ ॥

उच्चैः-श्रवा घोड़ा और रंभादिक अप्सरा यह स्वर्गभूषण सब इन्द्रको प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ धन्वन्तरि, चन्द्रमा ये भी समुद्रसे प्रगट हुए, ये सब स्वर्गमें स्थित हो देवताओंके मध्यमें विराजमान हुए ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे यह तीन प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न हुई है, देवता तिर्यङ् और मनुष्य इनका भेद कल्पित है ॥ २४ ॥ अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज जरायुज यह चार प्रकारसे कर्मके अनुसार जीव हुए हैं ॥ २५ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश्वर इस प्रकार सृष्टि करके अपने २ विहार स्थानोंको श्रेष्ठ करते हुए ॥ २६ ॥ इस प्रकार सृष्टिके प्रवृत्त होनेमें अच्युत भगवान् महालक्ष्मीके सहित अपने भवनमें क्रीडा करने लगे ॥ २७ ॥ एक समय भगवान् विष्णु वैकुण्ठमें स्थित थे, उस समय सुधासागरमें मणिद्वीपका स्मरण किया ॥ २८ ॥ जहां महामायाको देखकर मंत्र प्राप्त

उच्चैःश्रवास्तथाऽश्वो वै रंभाद्यप्सरसस्तथा ॥ इंद्रेणोपात्तमखिलंजातं वै स्वर्गभूषणम् ॥ २२ ॥ धन्वंतरिश्चंद्रमाश्च सागराच्च समुद्भवौ ॥ स्वर्गे स्थितौ विराजेते देवौ बहुगणैर्वृतौ ॥ २३ ॥ एवं सृष्टिः समुत्पन्ना त्रिविधा नृपसत्तम ॥ देवतिर्यङ्मनुष्यादिभेदैर्विविधकल्पिता ॥ २४ ॥ अंडजाः स्वेदजाश्चैव चोद्भिज्जांश्च जरायुजा ॥ चतुर्भेदैः समुत्पन्ना जीवाः कर्मयुताः किल ॥ २५ ॥ एवं सृष्टिं समासाद्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ विहारं स्वेषुस्थानेषु चक्रुः सर्वे यथेप्सितम् ॥ २६ ॥ एवं प्रवर्तिते सर्गे भगवान्प्रभुरच्युतः ॥ महालक्ष्म्या समं तत्र चिक्रीड भुवने स्वके ॥ २७ ॥ एकस्मिन्समये विष्णुर्वैकुंठे संस्थितः पुरा ॥ सुधासिन्धुस्थितं द्वीपं सस्मार मणिमंडितम् ॥ २८ ॥ यत्र दृष्ट्वा महामायां मंत्रश्चासादितःशुभः ॥ स्मृत्वा तां परमां शक्तिं स्त्रीभावं गमितो यया ॥ २९ ॥ यज्ञं कर्तुं मनश्चक्रे अम्बिकाया रमापतिः ॥ उत्तीर्य भुवनात्तस्मात्समाहूय महेश्वरम् ॥ ३० ॥ ब्रह्माणं वरुणंशक्रं कुबेरं पावकं यमम् ॥ वसिष्ठं कश्यपं दक्षं नामदेवं बृहस्पतिम् ॥ ३१ ॥ संभारं कल्पयामास यज्ञार्थं चाविविस्तरम् ॥ महाविभवसंयुक्तं सात्त्विकं सुमनोहरम् ॥ ३२ ॥ मंडपं विततं तत्र कारयामास शिल्पिभिः ॥ ऋत्विजो वरयामास सप्तविंशतिसुव्रतान् ॥ ३३ ॥

किया था, जिसकी महिमासे स्त्रीभाव प्राप्त हुआ था, उस परम शक्तिका स्मरण करके ॥२९॥ रमापतिने अम्बा यज्ञ करनेकी इच्छाकी उस समय उस भुवनसे उतरकर शंकरको बुलाय ॥ ३० ॥ ब्रह्मा, वरुण, शक्र, कुबेर, पावक, यम, वसिष्ठ, कश्यप, दक्ष, वामदेव, बृहस्पति ॥ ३१ ॥ इन सबने यज्ञके निमित्त बड़ा संभार कल्पना किया, जो महा ऐश्वर्यसे संयुक्त सात्विक और अति मनोहर था ॥ ३२ ॥ कारीगरोंसे बड़ा विस्तृत मण्डप कराया और सत्ताईस बड़े सुव्रत ऋत्विजोंका वर्णन किया ॥ ३३ ॥

चिति करके वेदीका विस्तार किया और देवीके बीज सहित ब्राह्मण मंत्र जपने लगे ॥३४॥ और विधिपूर्वक हवि कल्पना करने लगे और उस समय हवनके विस्तार होनेसे अशरीरिणी वाणी प्रगट हुई ॥ ३५ ॥ और अच्छे स्वरसे विष्णुके प्रति वह वाणी बोली, हे विष्णु ! तुम सर्व देवताओंमें श्रेष्ठ हो ॥३६॥ सब देवताओंमें मान्य और पूजनीय होगे और ब्रह्मा तथा इन्द्रादिक सब तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ ३७॥ जो मनुष्य हैं वे सब तुम्हारी प्रीति करेंगे. और तुम सब मनुष्योंमें वरदायी होगे ॥ ३८ ॥ तुम सब देवताओंके कामद परम ईश्वर होगे, तुम सब यज्ञोंमें मुख्य और सब याज्ञिकोंसे पूज्यनीय होगे ॥ ३९ ॥ तुमको सब प्राणी अर्चन करेंगे सबके वरदाता तुम होगे और दानवोंसे पीडित हो देवता तुम्हारा आश्रय करेंगे ॥ ४० ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुम सबके शरण

चितिं च कारयामास वेदीश्चैवसुविस्तराः ॥ प्रजेपुर्ब्राह्मणा मंत्रान्देव्या बीजसमन्वितान् ॥ ३४ ॥ जुहुवुस्ते हविः कामं विधिवत् परिकल्पते ॥ कृते तु वितते होमे वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३५ ॥ विष्णुं तदा समाभाष्य सुस्वरामधुराक्षरा ॥ विष्णो त्वं भव देवानां हरे श्रेष्ठतमः सदा ॥ ३६ ॥ मान्यश्च पूजनीयश्च समर्थश्च सुरेष्वपि ॥ सर्वे त्वामर्चयिष्यंति ब्रह्माद्याश्च सवासवाः ॥ ३७ ॥ प्रभविष्यंति भो भक्त्या मानवा भुवि सर्वतः ॥ वरदस्त्वं च सर्वेषां भविता मानवेषु वै ॥ ३८ ॥ कामदः सर्वदेवानां परमः परमेश्वरः ॥ सर्वयज्ञेषु मुख्यस्त्वं पूज्यः सर्वैश्च याज्ञिकैः ॥ ३९ ॥ त्वां जनाः पूजयिष्यंति वरदस्त्वं भविष्यसि ॥ श्रयिष्यंति च देवास्त्वां दानवैरतिपीडिताः ॥ ४० ॥ शरण्यास्त्वं च सर्वेषां भविता पुरुषोत्तम ॥ पुराणेषु च सर्वेषु वेदेषु विततेषु च ॥ ४१ ॥ त्वं वै पूज्यतमः कामं कीर्तिस्तत्र भविष्यति ॥ यदायदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूतले ॥ ४२ ॥ तदांऽशेनावतीर्याशु कर्तव्यं धर्मरक्षणम् ॥ अवतारासुविख्याता पृथिव्यां तव भागशः ॥ ४३ ॥ भविष्यंति धरायां वै माननीया महात्मनाम् ॥ अवतारेषु सर्वेषु नानायोनिषु माधव ॥ ४४ ॥ विख्यातः सर्व लोकेषु भविता मधुसूदन ॥ अवतारेषु सर्वेषु शक्तिस्ते सहचारिणी ॥ ४५ ॥

दाता होगे; सब पुराण और विस्तृत यज्ञोंमें ॥ ४१ ॥ तुम्ही पूजनीय होगे और तुम्हारी कीर्तिका विस्तार होगा. और जब २ भूमिमें धर्मकी ग्लानि होगी ॥ ४२ ॥ तब तब अंशसे अवतार लेकर तुमको धर्मकी रक्षा करनी चाहिये. पृथ्वीमें तुम्हारे अनेक अवतार होंगे ॥ ४३ ॥ वे तुम्हारे अवतार महात्माओंको माननीय होगे. हे माधव ! अनेक अवतार और सब योनियोंमें ॥ ४४ ॥ हे मधुसूदन ! तुम सब लोकमें विख्यात होगे और सब अवतारोंमें शक्ति तुम्हारी सहचारिणी होगी ॥ ४५ ॥

और वह मेरे अंशसे होकर सब कार्य सिद्धि करेगी. वह वाराही नारसिंही अनेक भेदवाली होगी ॥ ४६ ॥ जो अनेक आयुध लिये शुभाकारवाली सब आभरणोंसे मण्डित होगी. हे माधव ! उनसे युक्त होकर देवकार्योंको ॥ ४७ ॥ मेरे दिये वरदानसे सिद्धि करोगे. और उन शक्तियोंका गर्वके लेशसे भी निरादर न करना ॥ ४८ ॥ यत्नसे उनका पूजन और मान करना, भारतखण्डमें वे शक्तियें काम देनेवाली हैं ॥ ४९ ॥ प्रतिमाओंमें पूजित होकर मनुष्योंके मनोरथकी पूर्ति करेंगी. हे देवेश ! उनसे तुम्हारी बड़ी कीर्ति होगी ॥ ५० ॥ तुमसात द्वीप और भूमण्डलमें विख्यात होगे हे महाभाग ! भूमिमण्डलमें मनुष्य तुमको और उन शक्तियोंको ॥ ५१ ॥ अपनी वांछासिद्धिके निमित्त पूजन करेंगे. अनेक भाव और उपहारसे पूजा होगी ॥ ५२ ॥ तथा वेदोक्त मंत्रोंसे नाम

भविष्यति ममांशेन सर्वकार्यप्रसाधिनी ॥ वाराही नारसिंही च नानाभेदैरनेकधा ॥ ४६ ॥ नानायुधाः शुभाकाराः सर्वाभरणमंडिताः ॥ ताभिर्युक्तः सदा विष्णो सुरकार्याणि माधव ॥ ४७ ॥ साधयिष्यसि तत्सर्वं मद्दत्तवरदानतः ॥ तास्त्वया नावमंतव्याः सर्वदागर्वलेशतः ॥ ४८ ॥ पूजनीयाः प्रयत्नेन माननीयाश्च सर्वथा ॥ नूनं ता भारते खंडे शक्तयः सर्वकामदाः ॥ ४९ ॥ भविष्यंति मनुष्याणां पूजिताः प्रतिमासु च ॥ तासां तव च देवेश कीर्तिस्यादखिलेष्वपि ॥ ५० ॥ द्वीपेषु सप्तस्वपि च विख्याता भुविमंडले ॥ ताश्च त्वां वै महाभाग मानवा भुवि मंडले ॥ ५१ ॥ अर्चयिष्यंति वांछार्थं सकामाः सततंहरे ॥ अर्चासु चोपहारैश्च नानाभावसमन्विताः ॥ ५२ ॥ पूजयिष्यंति वेदोक्तमंत्रैर्नामजपैस्तथा ॥ महिमा तव भूर्लोके स्वर्गे च मधुसूदन ॥ ५३ ॥ पूजनाद्देवदेवेशवृद्धिमेष्यति मानवैः ॥ व्यास उवाच ॥ इति दत्त्वा वरान्वाणी विरराम खसंभवा ॥ ५४ ॥ भगवानपि प्रीतात्मा ह्यभवच्छ्रवणादिव ॥ समाप्य विधिवद्यज्ञं भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ५५ ॥ विसर्जयित्वा तान्देवान्ब्रह्मपुत्रान्मुनीनथ ॥ जगामानुचरैः सार्धं वैकुंठं गरुडध्वजः ॥ ५६ ॥ स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि पुनः सर्वे सुरा स्ततः ॥ मुनयो विस्मिता वार्तां कुर्वतस्ते परस्परम् ॥ ५७ ॥ ययुः प्रमुदिताः कामं स्वाश्रमान्पावनानथ ॥ ५८ ॥

जपेंगे. हे मधुसूदन ! भूर्लोक और स्वर्गलोकमें ॥ ५३ ॥ तुम्हारे पूजनसे वृद्धि होगी. व्यासजी बोले यह कहकर वह वाणी विरामको प्राप्त हुई जो यज्ञसे प्रगट थी ॥ ५४ ॥ और विश्वात्मा भगवान् भी सुनकर प्रसन्न हुए. इस प्रकार भगवान् यज्ञको समाप्त करके ॥ ५५ ॥ उन ब्रह्मपुत्र और मुनियोंको बिदा करके अनुचरोंके सहित भगवान् गये ॥ ५६ ॥ और भी सब देवता अपने २ स्थानोंको गये और सब मुनि विस्मित होकर परस्पर वार्ता करनेलगे ॥ ५७ ॥ और प्रसन्न होकर अपने २ पवित्र स्थानों को गये ॥ ५८ ॥

कानोंको मनोहर आकाशवाणी सुनकर सबका भगवतीके विषयमें प्रेम हुआ और सब ब्राह्मण मुनिगणों सहित पूजन करने लगे, हे मुनींद्रो ! उस मूल प्रकृतिकी आराधना अवश्यही सब कामना देनेवालीहै ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ जनमेजय बोले मैंने यह विष्णुजीका यज्ञ विस्तारसे सुना, अब भगवतीकी महिमा विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ देवीका चरित्र सुनकर उत्तम यज्ञ करूँगा, हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारे प्रसादसे मैं पवित्र हो जाऊँगा ॥ २ ॥ व्यासजी बोले सुनो राजन् ! मैं उत्तम देवी का चरित्र कहता हूँ और विस्तारपूर्वक पुरानी गाथा कहता हूँ ॥ ३ ॥ सूर्यवंशमें श्रेष्ठ एक राजा कोशल देशमें था, वह महातेजस्वी पुष्पका पुत्र ध्रुवसन्धि था. ॥ ४ ॥ यह धर्मात्मा सत्यसंध वर्णाश्रमके हितमें रत था,

श्रुत्वा वाणीं परमविशदां व्योमजां श्रोतरम्यां सर्वेषां वै प्रकृतिविषये भक्तिभावश्चजातः ॥ चक्रुःसर्वेद्विजमुनिगणाः पूजनं भक्तियुक्ता स्तस्याः कामं निखिलफलदं चागमोक्तं मुनींद्राः ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ जनमेजय उवाच ॥ श्रुतो वै हरिणा क्लृप्तो यज्ञो विस्तरतो द्विजः ॥ महिमानं तथांऽबाया वद विस्तरतो मम ॥ १ ॥ श्रुत्वा देव्याश्चरित्रं वै कुर्वे मखमनुत्तमम् ॥ प्रसादात्तव विप्रेंद्र भविष्यामि च पावनः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तम ॥ इतिहासपुराणं च कथयामि सुविस्तरम् ॥ ३ ॥ कोशलेषुनृपश्रेष्ठः सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ पुष्पपुत्रो महातेजा ध्रुवसंधिरिति स्मृतिः ॥ ४ ॥ धर्मात्मा सत्यसंधश्च वर्णाश्रमहितेरतः ॥ अयोध्यायां समृद्धायां राज्यं चक्रे शुचिव्रतः ॥ ५ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये तथा द्विजाः ॥ स्वां स्वां वृत्तिं समास्थाय तद्राज्ये धर्मतोऽभवन् ॥ ६ ॥ न चौराःपिशुना धूर्तास्तस्य राज्ये च कुत्रचित् ॥ दंभाः कृतघ्ना मूर्खाश्च वसंति किल मानवाः ॥ ७ ॥ एवं वै वर्तमानस्य नृपस्य कुरुसत्तम ॥ द्वे पत्न्यौ रूपसंपन्ने ह्यासतुः कामभोगदे ॥ ८ ॥ मनोरमा धर्मपत्नी सुरूपाऽतिविचक्षणा ॥ लीलावती द्वितीया च साऽपि रूप गुणान्विता ॥ ९ ॥ विजहार स पत्नीभ्यां गृहेषूपवनेषु च ॥ क्रीडागिरौ दीर्घिकासु सौधेषु विविधेषु च ॥ १० ॥

और समृद्ध अयोध्यामें राज्य करता थी ॥ ५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा दूसरे ब्राह्मण अपनी २ वृत्तिमें स्थित राज्य में निवास करते थे ॥ ६ ॥ उसके राज्यमें चोर चुगलखोर धूर्त पाखण्डी कृतघ्नी और मूर्ख निवास नहीं करते थे ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार उसके वर्तमान होनेमें काम भोगकी देनेवाली उसके दो पत्नी थीं ॥ ८ ॥ एकका नाम मनोरमा धर्मपत्नी वह बड़ी रूपवती और चतुर थी. और दूसरी रूप गुणसम्पन्न लीलावती थी ॥ ९ ॥ गृहोंके वनों उपवनोंमें वह राजा अपनी पत्नियों सहित विहार करता था, क्रीडापर्वत बावड़ी और महलोंमें विचरता था ॥ १० ॥

मनोरमाके सुसमयमें पुत्र उत्पन्न हुआ. इसका नाम सुदर्शन था. यह राजलक्षणसे संयुक्त था ॥ ११ ॥ उसकी दूसरी पत्नी लीलावतीने भी एकही महीनेमें सुन्दर पक्ष और सुन्दर दिनमें पुत्र उत्पन्न किया ॥ १२ ॥ राजाने दोनोंके जातकर्मादि संस्कार किये और पुत्रजन्मसे प्रसन्न हो दोनोंके कल्याणनिमित्त ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ १३ ॥ राजा उन दोनों पुत्रोंमें समान प्रीति करते थे और कभी उनके सौहार्दमें अन्तर न किया ॥१४॥ और विधिपूर्वक राजाने समय पर उनका चूडाकर्म किया. जैसा राजाका ऐश्वर्य था उसी प्रकार परमतपस्वी राजाने किया ॥ १५ ॥ चूडाकरण होनेपर वे दोनों बालक राजाका मनहरण करते क्रीडा करते लोकोंका मनहरण करते थे ॥ १६ ॥ उसमें लीलावतीका पुत्र सुदर्शन ज्येष्ठ था, और दूसरा शत्रुजित अतिचतुराईके वचन

मनोरमा शुभे काले सुषुवे पुत्रमुत्तमम् ॥ सुदर्शनाभिधं पुत्रं राजलक्षणसंयुतम् ॥ ११ ॥ लीलावत्यपि तत्पत्नी मासेनैकेन भामिनी ॥ सुषुवे सुन्दरं पुत्रं शुभे पक्षे दिने तथा ॥ १२ ॥ चकार नृपतिस्तत्र जातकर्मादिकं द्वयोः ॥ ददौ दानानि विप्रेभ्य पुत्रजन्म प्रमोदितः ॥ १३ ॥ प्रीतिं तयोः समां राजा चकार सुतयोर्नृप ॥ नृपश्चकार सौहार्देष्वंतरं न कदाचन ॥ १४ ॥ चूडाकर्म तयोश्चक्रे विधिना नृपसत्तमः ॥ यथाविभवमेवासौ प्रीतियुक्तः परंतपः ॥ १५ ॥ कृतचूडौ सुतौ कामं जह्रतुर्नृपतेर्मनः ॥ क्रीडमानावुभो कांतौ लोकानामनुरंजकौ ॥ १६ ॥ तयोः सुदर्शनो ज्येष्ठो लीलावत्याः सुतः शुभः ॥ शत्रुजित्संज्ञकः कामं चाटुवाक्यो बभूव ह ॥ १७ ॥ नृपतेः प्रीतिजनको मंजुवाक्चारुदर्शनः ॥ प्रजानां वल्लभः सोऽभूत्तथा मंत्रिजनस्य वै ॥ १८ ॥ यथा तस्मिन्नृपः प्रीतिं चकार गुणयोगतः ॥ मंदभाग्यान्मंदभावो न तथा वै सुदर्शने ॥ १९ ॥ एवं गच्छति काले तु ध्रुवसंधिर्नृपोत्तमः ॥ जगाम वनमध्येऽसौ मृगयाभिरतः सदा ॥ २० ॥ निघ्नन्मृगान्रुरून्कंबून्सूकरान्गवयाञ्छशान् ॥ महिषाञ्छरभान्खड्गांश्चिक्रीड नृपतिर्वने ॥ २१ ॥

बोलनेवाला था ॥ १७ ॥ यह मंजुभाषी सुन्दर दर्शनीय राजाका अतिप्रीतिपात्र था. और प्रजा तथा मंत्रियोंकाभी प्रिय हुआ ॥ १८ ॥ गुणयोगसे राजा भी शत्रुजितमें अधिक प्रीति रखता था और मन्द भाग्यता के कारण सुदर्शनमें वैसा प्यार नहीं था ॥ १९ ॥ इस प्रकार कुछ समय बीतनेसे ध्रुवसंधि मृगया खेलनेको वनमें गया ॥ २० ॥ और मृग रुरु कम्बु शूकर गवय शश महिष शरभ खड्ग पशुओंको मारता राजा वनमें क्रीडा करने लगा ॥ २१ ॥

जब राजा उस घोर दारुण वनमें क्रीडा करता था. उस समय निकुंजसे एक परमकोपवान् सिंह प्रगट हुआ, और आगे राजाको स्थित देखकर मेघके समान शब्द किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ लांगूलको ऊपर उठाये बालोंको फैलाये गलेके बालोंको फुलाये राजाके मारनेको आकाशसे कूदा ॥ २४ ॥ राजाने यह देख बड़े वेगसे खड्ग हाथमें लिया और बायें हाथमें चर्म लेकर सिंहके समान स्थित हुआ ॥ २५ ॥ और उसके सेवकभी पृथक् २ क्रोधकर सिंहके ऊपर बाण प्रहार करने लगे ॥ २६ ॥ उस समय महा हाहाकार होने लगा कारण कि उसका दारुण प्रहार था. तब वह कठिनसिंह राजाके ऊपर कूदा ॥ २७ ॥ उसको आता हुआ देखकर राजाने खड्ग प्रहार किया उसनेभी अपने क्रूरनखोंके अग्र भागसे आकर राजाको विदीर्ण करदिया ॥ २८ ॥ नखोंसे आहत होकर राजा

क्रीडमाने नृपे तत्र वने घोरेऽतिदारुणे ॥ उदतिष्ठन्निकुंजात्तु सिंहः परमको पनः ॥ २२ ॥ राज्ञा शिलीमुखेनादौ विद्धः क्रोधवशं गतः ॥ दृष्ट्वाऽग्रे नृपतिं सिंहो ननाद मेघनिःस्वनः ॥ २३ ॥ कृत्वा चोर्ध्वं स लांगूलं प्रसारितबृहत्सटः ॥ हंतुं नृपति माकाशादुत्पपातातिकोपनः ॥ २४ ॥ नृपतिस्तरसा वीक्ष्य दधारासिं करे तदा ॥ वामे चर्मसमादाय स्थितः सिंहः इवापरः ॥ २५ ॥ सेवकास्तस्य ये सर्वे तेऽपि बाणान्पृथक्पृथक् ॥ मुंचन्कुपिताः कामं सिंहोपरि रुषाऽन्विताः ॥ २६ ॥ हाहाकारो महानासीत्संप्रहारश्च दारुणः ॥ उत्पपात ततः सिंहो नृपस्योपरि दारुणः ॥ २७ ॥ तं पततं समालोक्य खड्गेनाभ्यहनन्नृपः ॥ सोऽपि क्रूरैर्नखाग्रैश्च तत्राऽगत्य विदारितः ॥२८॥ स नखैराहतो राजा पपात च ममार वै ॥ चुक्रुशुः सैनिकास्ते तु निर्जघ्नुर्विशिखैस्तदा ॥ २९ ॥ मृतः सिंहोऽपि तत्रैव भूपतिश्च तथामृतः ॥ सैनिकैर्मंत्रिमुख्याश्च तत्रागत्य निवेदितः ॥ ३० ॥ परलोकगतं भूपं श्रुत्वा ते मंत्रिसत्तमाः ॥ संस्कारं कारयामासुर्गत्वा तत्र वनांतिके ॥ ३१ ॥ परलोकक्रियां सर्वां वसिष्ठो विधिपूर्वकम् ॥ कारयामास तत्रैव परलोकसुखावहम् ॥ ३२ ॥ प्रजाः प्रकृतयश्चैव वसिष्ठश्च महामुनिः ॥ सुदर्शनं नृपं कर्तुं मंत्रं चक्रुः परस्परम् ॥ ३३ ॥

गिरकर मरगया. और सैनिक शब्द करते उसे बाणोंसे मारने लगे ॥ २९ ॥ सिंहभी वहीं मृत हुआ; परन्तु राजाभी वहीं मृत हो गया. तब सैनिकोंने मुख्य मंत्रियोंसे आकर यह निवेदन कर दिया ॥ ३० ॥ वे मंत्रिश्रेष्ठ राजाको परलोकगामी हुआ सुनकर वनमें जाकर राजाका संस्कार कराते हुए ॥ ३१ ॥ और वशिष्ठने विधिपूर्वक उसको सुखदायक परलोककी क्रिया वहां कराई ॥ ३२ ॥ प्रजा और प्रकृति तथा महामुनि वशिष्ठजी सुदर्शनको राजा बनानेके निमित्त परस्पर सम्मति करने लगे ॥ ३३ ॥

यह धर्मपत्नीका पुत्र शान्त पुरुष सुलक्षण है, और राज्यासनके योग्यभी है, ऐसा मंत्रिश्रेष्ठ कहने लगे ॥ ३४ ॥ और यही वार्ता वशिष्ठजीने भी कही कि यह बालक धर्मवान् राज्यासनके योग्य है ॥ ३५ ॥ जब मंत्रियोंने ऐसा कहा तब उसी समय उज्जयनीका राजा युधाजित् नाम वहां आकर प्राप्त हुआ ॥ ३६ ॥ वह लीलावतीका पिता अपने जामाताका मरण सुनकर अपने धेवतेके प्रियकी इच्छा कर शीघ्रतासे आया था ॥ ३७ ॥ और उधरसे सुदर्शन धेवतेके प्रिय करनेकी इच्छासे कलिंग देशका राजा वीरसेन वहां आकर प्राप्त हुआ ॥ ३८ वे दोनों राजा सेना साथ लिये वेगसे राजा कौन हो इस विषयमें मंत्र करने लगे ॥ ३९ ॥ युधाजितत्ने पूँछा इन दोनोंमें ज्येष्ठ कौन है ? जो ज्येष्ठ हो वही राज्य पा सकता है. छोटा कभी नहीं ॥ ४० ॥

धर्मपत्नी सुतः शांतः पुरुषश्च सुलक्षणः ॥ अयं नृपासनार्हश्च ह्यब्रुवन्मंत्रि सत्तमाः ॥ ३४ ॥ वसिष्ठोऽपि तथैवाऽऽह योग्योऽयं नृपतेः सुतः ॥ बालोऽपि धर्मवान्राजा नृपासनमिहार्हति ॥ ३५ ॥ कृते मंत्रे मंत्रिवृद्धैर्युधाजिन्नाम पार्थिवः ॥ तत्राऽऽजगाम तरसा श्रुत्वा तूज्जयिनीपतिः ॥ ३६ ॥ मृतं जामातरं श्रुत्वा लीलावत्याः पिता तदा ॥ तत्राऽऽजगाम त्वरितो दौहित्रप्रियकाम्यया ॥ ३७ ॥ वीरसेनस्तथाऽऽयातः सुदर्शनहितेच्छया ॥ कलिंगाधिपतिश्चैव मनोरमापिता नृपः ॥ ३८ ॥ उभौ तौ सैन्यसंयुक्तो नृपौ साध्वससंस्थितौ ॥ चक्रतुर्मंत्रिमुख्यै स्तैर्मंत्रं राज्यस्यकारणात् ॥ ३९ ॥ युधाजित्तु तदाऽपृच्छज्ज्येष्ठः कः सुतयोर्द्वयोः ॥ राज्यं प्राप्नोति ज्येष्ठो वै न कनीयान्कदाचन ॥ ४० ॥ वीरसेनोऽपि तत्राऽऽह धर्मपत्नीसुतः किल ॥ राज्यार्हः स यथा राजञ्छास्त्रज्ञेभ्यो मया श्रुतम् ॥ ४१ ॥ युधाजित्पुनराहेदं ज्येष्ठोऽयं च यथा गुणैः ॥ राजलक्षणसंयुक्तो न तथाऽयं सुदर्शनः ॥ ४२ ॥ विवादोऽत्र सुसम्पन्नो नृपयोस्तत्र लुब्धयोः ॥ कः संदेहमपाकर्तुं क्षमः स्यादतिसंकटे ॥ ४३ ॥ युधाजिन्मंत्रिणः प्राह यूयं स्वार्थपराः किल ॥ सुदर्शनं नृपं कृत्वा धनं भोक्तुं किलेच्छथ ॥ ४४ ॥ युष्माकं तु विचारोऽयं मया ज्ञात स्तथेंगितैः ॥ शत्रुजित्सबलस्तस्मात्संमतो वो नृपासने ॥ ४५ ॥

वीरसेनने कहा धर्मपत्नीका पुत्रही राज्यका अधिकारी हो सकता है. ऐसा हमने शास्त्रोंमें सुना है ॥ ४१ ॥ युद्धाजित्ने फिर कहा जैसा यह ज्येष्ठ गुण और राज लक्षणसे युक्त है वैसा सुदर्शन नहीं है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार राज्यके लोभी दोनों राजाओंका विवाद चलने लगा. इस संकटमें कोई भी किसीका संदेह दूर न कर सका ॥ ४३ ॥ युधाजित्ने मंत्रियोंसे कहा तुम सब स्वार्थपरायण हो जो सुदर्शनको राजा करके धनके भोगकी इच्छा करते हो ॥ ४४ ॥ तुम्हारी चेष्टाओंसे मैंने तुम्हारा विचार जान लिया. यह शत्रुजित्ही सबल है और नृपासनके योग्य है ॥ ४५ ॥

मेरे जीते छोटेको राजा कौन कर सकता है ? और ज्येष्ठ जो गुणी और सेनासहित है उसे कौन त्याग कर सकता है ? ॥ ४६ ॥ इसके निमित्त मैं अवश्य युद्ध करूंगा, मेरे खड्गसे भूमि हत हो जाती है. तुम्हारी तो कथाही क्या है ? ॥ ४७ ॥ यह सुनकर वीरसेन युधाजित्से कहने लगे यह दोनों ही बालक समान बुद्धिसम्पन्न हैं हे विचक्षण ! इनमें भेद क्या है ? ॥ ४८ ॥ जब वे दोनों राजा इस प्रकार विवाद करने लगे तब प्रजा और ऋषि मनमें बडे व्यग्र हुए ॥ ४९ ॥ तब सामन्त सेनासहित क्लेशित होकर प्राप्त हुए, जो परस्पर विग्रहकी इच्छा करने लगे ॥ ५० ॥ शृंगवेरपुरके रहनेवाले निषाद उस स्थानमें आकर प्राप्त हुए जो कि राजाको मृतक सुनकर राजद्रव्यको हरण करनेकी इच्छासे आये थे ॥ ५१ ॥ दोनों पुत्रोंको बालक सुनकर

मयि जीवति कः कुर्यात्कनीयांसं नृपं किल ॥ त्यक्त्वा ज्येष्ठं गुणार्हं च सेनया च समन्वितम् ॥ ४६ ॥ नूनं युद्धं करिष्यामि तस्मिन्खड्गस्य मेदिनी ॥ धारया च द्विधा भूयाद्युष्माकं तत्रका कथा ॥ ४७ ॥ वीरसेनस्तुतच्छ्रुत्वा युधाजितमभाषऽत ॥ बालौ द्वौ सदृशप्रज्ञौ को भेदोऽत्र विचक्षण ॥ ४८ ॥ एवं विवदमानौ तौ संस्थितौ नृपती सदा ॥ प्रजाश्च ऋषयश्चैवबभूवुर्व्यग्रमानसा ॥ ४९ ॥ समाजग्मुश्च सामंताः ससैन्याः क्लेशतत्पराः ॥ विग्रहं चाभिकांक्षन्तः परस्परमतंद्रिताः ॥ ५० ॥ निषादा ह्याययुस्तत्र शृंगवेरपुराश्रयाः ॥ राजद्रव्यमुपा हर्तुं मृतं श्रुत्वा महीपतिम् ॥ ५१ ॥ पुत्रौ च बालकौ श्रुत्वा विग्रहं च परस्परम् ॥ चौरास्तत्र समाजग्मुर्देशदेशांतरादपि ॥ ५२ ॥ संमर्दस्तत्र संजातः कलहे समुपस्थिते ॥ युधाजिद्वीरसेनश्च युद्धकामौः बभूवतुः ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ संयुगे च सति तत्र भूपयोराहवाय समुपात्तशस्त्रयोः ॥ क्रोधलोभवशयोः समंततः संबभूव तुमुलस्तु विमर्दः ॥ १ ॥ संस्थितः स समरे धृत चापः पार्थिवः पृथुलबाहुयुधाजित् ॥ संयुतः स्वबलवाहानादिकैराहवाय कृतनिश्चयो नृपः ॥ २ ॥

तथा परस्पर विग्रह विचार देश देशान्तरके चोर वहां आकर प्राप्त हुए ॥ ५२ ॥ इस प्रकार क्लेशमें बडा जमघट हुआ. युधाजित् और वीरसेन दोनों युद्धकी इच्छा करने लगे ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ व्यासजी बोले जब उस संग्राममें दोनों राजाओंने शस्त्र ग्रहण किये तब उन क्रोध और लोभसे वशीभूत हुए दोनोंका बडा जमघट हुआ ॥ १ ॥ बडी बाहुवाला युधाजित् राजा धनुष्य धारणकर युद्धमें स्थित हुआ और संग्रामके निमित्त निश्चय कर अपनी सब सेनाको एकत्र किया ॥ २ ॥

और वीरसेन भी क्षात्रधर्मका स्मरण कर क्षत्रियधर्मके अनुसार अपने धेवतेके प्रियकी इच्छासे इन्द्रके समान तेज धारण कर स्थित हुआ ॥ ३ ॥ वह युधा
जित्को युद्धमें स्थित देखकर उसके ऊपर बाण वर्षा करने लगा और जैसे बिजली पर्वतपर गिरे इस प्रकार वह सत्य पराक्रमी क्रोधसे युक्त हो ॥ ४ ॥
बडे तीक्ष्ण शीघ्रगामी बाणोंसे विद्ध करने लगा और वह भी अपने बाणोंसे इसके तीक्ष्ण बाणोंका छेदन करने लगा ॥ ५ ॥ हाथी रथी अश्वारोहियोंका
बडा युद्ध होने लगा, जिस घोर युद्धको सुर नर मुनियोंने भी देखा, विहंगोंसे आकाश शीघ्रही व्याप्त होगया, कांक गृध्रादि मांसके लोभी वहां आकर
प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ वहां अद्भुत रुधिरका प्रवाह बहने लगा, जिसमें हाथी घोडे और वीरगण बह रहे थे, जो देखनेवालोंको भय देती थी, जैसे पापात्माओंको

वीरनसेन इह सैन्यसंयुतः क्षात्रधर्ममनुसृत्य संगरे ॥ पुत्रिकात्मजहिताय पार्थिवः संस्थितः सुरपतेः समतेजाः ॥ ३ ॥ स बाण वृष्टिं
विससर्ज पार्थिवो युधाजितं वीक्ष्य रणे स्थितं च ॥ गिरिं तडित्वानिव तोयवृष्टिभिः क्रोधान्वितः सत्यपराक्रमोऽसौ ॥ ४ ॥ तं वीरसेनो
विशिखैः शिलाशितैः समावृणोदाशुगमैरजिह्मगैः ॥ चिच्छेद बाणैश्च शिलीमुखानसौ तेनैव मुक्तानतिवेगपातिनः ॥ ५ ॥ गजरथतुरगाणां
संबभूवातियुद्धं सुरनरमुनि संघैर्वीक्षितं चातिघोरम् ॥ विततविहगवृंदैरावृतं व्योमसद्यः पिशितमशितु कामैः काकगृध्रादिभिश्च ॥ ६ ॥
तत्राद्भुता क्षतजसिंधुरुवाह घोरा वृंदेभ्य एव गजवीरतुरंगमाणाम् ॥ त्रासावहा नयनमार्गगतानराणां पापात्मनां रविजमार्गभवेव कामम्
॥ ७ ॥ कीर्णानि भिन्नपुलिने नरमस्तकानि केशावृतानि च विभाति यथैव सिंधौ ॥ तुंबीफलानि विहतानि विहर्तुकामैर्बालैर्यथा रविसुता
प्रभवैश्चनूनम् ॥ ८ ॥ वीरं मृतं भुवि गतं पतितं रथाद्वै गृध्रः पलार्थमुपरि भ्रमतीति मन्ये ॥ जीवोऽप्यसौ निजशरीरमवेक्ष्य कांतं कांक्ष
त्यहोऽतिविवशोऽपि पुनः प्रवेष्टुम् ॥ ९ ॥ आजौ हतोऽपि नृवरः सुविमानरूढः स्वांके स्थितां सुरवधूं प्रवदत्यभीष्टम् ॥ पश्याधुना मम
शरीरमिदं पृथिव्यां बाणाहतं निपतितं करभोरु कांतम् ॥ १० ॥

बैतरणी त्रास देती है ॥ ७ ॥ उस रुधिरनदीके तटोंमें नरोंके मुण्ड पड़े हुए बालोंसे युक्त इस प्रकार शोभित होते थे जैसे यमुनाके तटपर एकत्रित हुए बाल
कोंने विहार करनेके निमित्त तुम्बीफल डालदिये हों ॥ ८ ॥ मरे हुए वीरको रथसे भूमिमें गिरा देखकर गृध्र मांसके निमित्त उसके ऊपर भ्रमण करता था;
सो ऐसा विदित होता था मानो यह इस शरीरका जीव अपने मनोहर शरीरमें फिर प्रवेशकी इच्छा करता है ॥ ९ ॥ संग्राममें मृत्युको प्राप्त होकर कोई वीर
सुरांगनाको अपने अंकमें लेकर उससे कहने लगा हे करभोरु ! देखो यह मेरा मनोहर शरीर बाणसे विद्ध हुआ पृथ्वीमें पडा है ॥ १० ॥

कोई दूसरा शत्रुके द्वारा हत होकर अन्तरिक्षमें गया और देवांगनाको प्राप्त हो विमानमें बैठकर स्थित हुआ, परन्तु इसी अवसरमें उसकी प्रियभार्या उसके शरीरके साथ सती हूई और उस स्वकीया अबलाने दिव्य देहको प्राप्त हो उसमें अपने पतिको ग्रहण कर लिया ॥ ११ ॥ परस्पर एक दूसरेके प्रहारसे निहत होकर जो वीर स्वर्गमें गये वहां भी एक अप्सराकी प्राप्तिके निमित्त परस्पर विवाद करने लगे ॥ १२ ॥ और कोई युवा सुरांगनाको प्राप्त होकर उस गुणरूपवती स्त्रीमें अनुरक्त हो अपनेसे अधिक गुणवती विचार कर यह मुझसे विरक्त न हो जाय इस कारण अपने गुणोंका विशेष वर्णन करके उसे अपने वशीभूत और अनुकूल करता हुआ ॥ १३ ॥ भूमिसे धूरिने उड़कर आकाशमें फैल सूर्यको ढककर रात्रि कर दी थी, परन्तु वह एकसाथ ही रुधिरके

एको हतस्तु रिपुणैव गतोऽतरिक्षं देवांगनां समधिगम्य युतो विमाने ॥ तावत्प्रियाहुतवहे सुसमर्प्य देहं जग्राह कांतमबला सबला स्वकीया ॥११॥ युद्धे मृतौ च सुभटौ दिवि संगतौ तावन्योन्यशस्त्रनिहतौ सह संप्रयातौ ॥ तत्रैव जघ्नतुरलं परमाहिताख्यावेकाप्सरोर्थंवि हतौ कलहाकुलौ च ॥ १२ ॥ कश्चिद्युवा समधिगम्य सुरांगनां वै रूपाधिकां गुणवतीं किल भक्तियुक्तः ॥ स्वीयान्गुणान्प्रविततान्प्र वदंस्तदाऽसौ तां प्रेमदामनुचकार च योगयुक्तः ॥ १३ ॥ भौमं रजोऽतिविततं दिवि संस्थितं च रात्रिं चकार तरणिं च समावृणोद्यत् ॥ मग्नं तदेव रुधिरांबुनिधावकस्मात्प्रादुर्बभूव रवि रप्यतिकांतियुक्तः ॥ १४ ॥ कश्चिद्गतस्तु गगनं किल देवकन्यां संप्राप्य चारुवदनां किल भक्तियुक्ताम् ॥ नांगीचकार चतुरो व्रतनाशभीतो यास्यत्ययं मम वृथा ह्यनुकूलशब्दः ॥ १५ ॥ संग्रामे संवृते तत्र युधाजित्पृथिवी पतिः ॥ जघान वीरसेनं तं बाणैस्तीव्रैः सुदारुणैः ॥ १६ ॥ निहतः स पपातोर्व्यांछिन्नमूर्धा महीपतिः ॥ प्रभग्नं तद्बलं सर्वं निर्गतं च चतुर्दिशम् ॥ १७ ॥ मनोरमा हतं श्रुत्वा पितरं रण मूर्धनि ॥ भयत्रस्ताऽथ संजाता पितुर्वैरमनुस्मरन् ॥ १८ ॥

सागरमें मग्न होगई और कान्तिमान् सूर्य फिर प्रकाशित हुए ॥ १४ ॥ कोई आकाशमें जाय सुन्दर मुखवाली भक्तियुक्त देवकन्याको प्राप्त होकर भी ब्रह्मचारी मेरा नाम जाता रहेगा इस भयसे वह चतुर उस कन्याको अंगीकार न करता हुआ ॥ १५ ॥ इस प्रकार उस संग्रामके विस्तार होनेमें राजा युधाजित्ने तीव्र बाणोंसे वीरसेनका वध कर डाला ॥ १६ ॥ तब वह राजा छिन्न मस्तक होकर भूमिपर गिरा, और उसकी सेना भी नष्ट हो दशों दिशाओंमें भाग गई ॥ १७ ॥ जब मनोरमाने संग्राममें पिताका मरण सुना तब पिताके वैरीके डरसे व्याकुल हो उठी ॥ १८ ॥

और विचारने लगी वह दुराचारी युधाजित् अवश्य मेरे पुत्रको मारेगा कारण कि वह पापात्मा राज्यका लोभी है इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥ १९॥ मेरा पिता युद्धमें निहत हुआ अब मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? और स्वामी भी यहीं मृतक हुए पुत्र बालक है ॥ २० ॥ लोभ पाप की खान है, ऐसा कौन है ? जो इसके वशीभूत नहीं है. इससे युक्त हुआ यह पापी बली राजा क्या न करेगा ? ॥ २१॥ पिता माता भाई गुरु स्वजन बंधु इन सबको भी लोभी मनुष्य मारने की इच्छा करता है. इसमें सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ लोभसे ही अभक्ष्य भक्षण अगम्यागमन करता है तथा तृष्णासे व्याकुल हुआ धर्मकोभी त्याग देता है ॥ २३ ॥ मेरा कोई सहायक नहीं इस नगरमें ऐसा कोई नहीं जिसके आधारसे स्थित होकर मैं पुत्रकी पालना करूं ॥ २४ ॥ यदि राजा मेरे पुत्रको

हनिष्यतियुधाजिद्वै पुत्रं मम दुराशयः ॥ राज्यलोभेन पापात्मा सेति चिंतापराऽभवत् ॥ १९ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि पिता मे निहतो रणे ॥ भर्ता चापि मृतोऽद्यैव पुत्रोऽयं मम बालकः ॥ २० ॥ लोभोऽतीव च पापिष्ठस्तेन को न वशीकृतः ॥ किं न कुर्यात्तदा विष्टः पापं पार्थिवसत्तमः ॥ २१ ॥ पितरं मातरं भ्रातॄन्गुरून्स्वजनबांधवान् ॥ हंति लोभसमाविष्टो जनो नात्र विचाणा ॥ २२ ॥ अभक्ष्यभक्षणं लोभादगम्यागमनं तथा ॥ करोति किल तृष्णार्तो धर्मत्यागं तथा पुनः ॥ २३ ॥ न सहायोऽस्ति मे कश्चिन्नगरेऽत्र महाबलः ॥ यदाधारे स्थिता चाहं पालयामि सुतं शुभम् ॥ २४ ॥ हते पुत्रे नृपेणाद्य किं करिष्याम्यहं पुनः ॥ न मे त्राताऽस्ति भुवने येन वै सुस्थिता ह्यहम् ॥ २५ ॥ साऽपि वैरयुता कामं सपत्नी सर्वदा भवेत् ॥ लीलावती नमे पुत्रे भविष्यति दयावती ॥ २६ ॥ युधाजिति समायाते नमे निःसरणं भवेत् ॥ ज्ञात्वा बालं सुतं सोऽद्य कारागारं नयिष्यति ॥ २७ ॥ श्रूयते हि पुरेंद्रेण मातुर्गर्भगतः शिशुः ॥ कृंतितः सप्तधा पश्चात्कृतास्ते सप्त सप्तधा ॥ २८ ॥ प्रविश्य चोदरं मातुः करे कृत्वाऽल्पकं पविम् ॥ एकोनपंचाशदपि तेऽभवन्मरुतो दिवि ॥ २९ ॥

मार डाले तो मैं क्या करूंगी ? इस भुवनमें कोई मेरा रक्षक नहीं. जिसको प्राप्त होकर मैं सुखी हूं ॥ २५ ॥ मेरी सौत तो मुझसे वैर रखती है इस कारण यह लीलावती मेरे पुत्रमें दयावती न होगी ॥ २६ ॥ जब युधाजित् यहां आजायगा तो मेरा निकलना न होगा, वह मेरे पुत्र बालकको और मुझे कारागारमें डालदेगा॥ २७ ॥ ऐसासुना भी है कि पहले इन्द्रने दितिके गर्भको ४९ खण्ड कर डाला था ॥ २८ ॥ अर्थात् अपवित्रतामें मायासे छोटा वज्र करके माताके गर्भमेंप्रविष्ट होगये. वही गर्भके ४९ बालक स्वर्गमें मरुत नामसे स्थित हैं ॥ २९ ॥

एक राजाकी भार्याको उसकी सौतने उसे गर्भवती जानकर विष देदिया था ॥ ३० ॥ पीछे ऋषिकी कृपासे विषयुक्त ही उस बालकका जन्म हुआ. इससे वह भूमण्डलमें सागर नामसे विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ और राजा दशरथकी भार्या कैकेयीने सौतके पुत्र ज्येष्ठ रामचन्द्रको वनमें भिजवा दिया, जिसके कारण राजा दशरथकी मृत्यु हुई ॥ ३२ ॥ और जो मंत्री मेरे पुत्रको राज्य देना चाहते थे वे युधाजित्के अधीन होनेसे अवश हैं ॥ ३३ ॥ मेरा भ्राता ऐसा शूर नहीं जो मुझे बंधनसे छुड़ावेगा, दैवयोगसे मुझको बड़ा कष्ट आकर प्राप्त हुआ है ॥ ३४ ॥ परन्तु उद्यम सर्वथा करना चाहिये, प्रारब्धसे सिद्धि होती है अब मैं शीघ्रतासे पुत्रकी रक्षाके निमित्त उपाय करूं ॥ ३५ ॥ यह विचार कर उस बालाने बड़े मानी सब कार्योंमें चतुर मंत्रीश्रेष्ठ विदल्लको ॥ ३६ ॥

सपत्न्यै गरलं दत्तं सपत्न्या नृपभार्यया ॥ गर्भनाशार्थमुद्दिश्य पुरैतद्वै मया श्रुतम् ॥ ३० ॥ जातस्तु बालकः पश्चाद्देहे विषयुतः किल ॥ तेनासौ सगरो नाम विख्यातो भुवि मंडले ॥ ३१ ॥ जीवमानोऽथ भर्त्ता वै कैकेय्या नृपभार्यया ॥ रामः प्रव्राजितोज्येष्ठो मृतो दशरथो नृपः ॥ ३२ ॥ मंत्रिणस्त्ववशाः कामं ये मे पुत्रं सुदर्शनम् ॥ राजानं कर्तुकामा वै युधाजिद्वशगाश्च ते ॥ ३३ ॥ न मे भ्राता तथा शूरो यो मे बंधात्प्रमोचयेत् ॥ महत्कष्टं च संप्राप्तं मया वै दैवयोगतः ॥ ३४ ॥ उद्यमः सर्वथा कार्यः सिद्धिर्दैवाद्धि जायते ॥ उपायं पुत्ररक्षार्थं करोम्यद्यत्वरान्विता ॥ ३५ ॥ इति संचिन्त्य सा बाला विदल्लं चातिमानिनम् ॥ निपुणं सर्वकार्येषु चिंत्यं मंत्रिवरोत्तमम् ॥ ३६ ॥ समाहूय तमेकांते प्रोवाच बहुदुःखिता ॥ गृहीत्वा बालकं हस्ते रुदती दीनमानसा ॥ ३७ ॥ पिता मे निहतः संख्ये पुत्रोऽयं बालकस्तथा ॥ युधाजिद्बलवान्राजा किं विधेयं वदस्व मे ॥ ३८ ॥ तामुवाच विदल्लोऽसौ नात्र स्थातव्यमेव च ॥ गमिष्यामो वने कामं वाराणस्याः पुनः किलः ॥ ३९ ॥ तत्र मे मातुलः श्रीमान्वर्तते बलवत्तरः ॥ सुबाहुरिति विख्यातो रक्षिता स भविष्यति ॥ ४० ॥ युधाजिदर्शनोत्कंठमनसा नगराद्बहिः ॥ निर्गत्य रथमारुह्य गंतव्यं नात्र संशयः ॥ ४१ ॥

बुलाय एकान्तमें बड़ी दीनतासे रोकर बालकको हाथमें लिये इस प्रकारके वचन कहे ॥ ३७ ॥ मेरे पिता तो युद्धमेंमृतक हुए और यह पुत्र बालक है और युधाजित् बली राजा है. इसमें क्या कर्तव्य है सो मुझसे कहो ॥ ३८ ॥ यह सुनकर विदल्लने कहा अब तुमको यहां रहना नहीं चाहिये हम वनको जायँगे फिर वाराणसीको जायँगे ॥ ३९ ॥ वहां मेरा मामा बड़ा बली सुबाहु रहता है, वह हमारा रक्षक होगा ॥ ४० ॥ मैं युधाजित्को देखने नगरसे बाहर जाऊंगी. यह बहाना कर तुम यहांसे चली जाओ ॥ ४१ ॥

वह रानी मंत्रीके यह वचन सुन लीलावतीके पास जाय बोली, हे सुलोचने? मैं पिताके देखनेको जाती हूं ॥ ४२ ॥ यह कह सैरन्ध्रीके सहित रथपर चढकर विदल्लको साथले नगरसे बाहर हुई ॥ ४३ ॥ वहत्रस्त दुःखी पिताके शोकसे व्याकुल हुई चली वहां राजा युधाजित्को देखकर ॥ ४४ ॥ और अपने पिताको मृतक देखकर कंपित हो उसने शीघ्रतासे संस्कार किया. दो दिनमें वहांसे चलकर गंगातटपर प्राप्त हुई ॥ ४५ ॥ वहां निषादोंने लूटकर रानीका सब धन ले लिया और रथको भी लेकर वे दस्यु शठ चले गये ॥ ४६॥ वह सुवस्त्रा मनोरमा रुदन करती हुई पुत्रको लिये सैरन्ध्रीका हाथ पकड़े गंगाके तटपर आई ॥ ४७ ॥ और डरके मारे बहुत शीघ्र एक छोटी नौकापर चढी और गंगाको तरकर चित्रकूट पर्वतको गई ॥ ४८ ॥ और भयसे शीघ्रता करती भारद्वाज आश्रममें

इत्युक्का तेन सा राज्ञी गत्वा लीलावतीं प्रती ॥ उवाच पितरं द्रष्टुं गच्छाम्यद्य सुलोचने ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सैरंध्री संयुता तदा ॥ बिदल्लेनच संयुक्ता निःसृता नगराद्बहिः ॥ ४३ ॥ तत्र द्युर्ताऽतिकृपणापितुः शोकसमाकुला ॥ दृष्ट्वा युधाजितं भूपं पितरं गतजीवितम् ॥ ४४ ॥ संस्कार्य च त्वरायुक्ता वेपमाना भयाकुला ॥ दिनद्वयेन संप्राप्ता राज्ञी भागीरथीतटम् ॥ ४५ ॥ निषादैर्लुंठिता तत्र गृहीतं सकलं वसु ॥ रथं चापि गृहीत्वा ते निर्गता दस्यवः शठाः ॥ ४६ ॥ रुदती सुतमादाय चारुवस्त्रा मनोरमाम् ॥ निर्ययौ जाह्नवीतीरे सैरंध्रीकरलंबिता ॥ ४७ ॥ आरुह्य च भयाच्छीघ्रमुडुपं सा भयाकुला ॥ तीर्त्वा भागीरथीं पुण्यां ययौ त्रिकूटपर्वतम् ॥ ४८ ॥ भारद्वाजाश्रमं प्राप्ता त्वरया च भयाकुला ॥ संवीक्ष्य तापसांस्तत्र संजाता निर्भयातदा ॥ ४९ ॥ मुनिना सा ततः पृष्टा काऽसि कस्य परिग्रहः ॥ कष्टेनात्र कथं प्राप्ता सत्यं ब्रूहि शुचिस्मिते ॥ ५० ॥ देवी वा मानुषी वाऽसि बालपुत्रा वने कथम् ॥ राज्यभ्रष्टेव वामोरु भासि त्वं कमलेक्षणे ॥ ५१ ॥ एवं सा मुनिना पृष्टा नोवाच वरवर्णिनी ॥ रुदती दुःखसंतप्ता विदल्लं च समादिशत् ॥ ५२ ॥विदल्लस्त मुवाचेदं ध्रुवसंधिर्नृपोत्तमः ॥ तस्य भार्या धर्मपत्नी नाम्ना चेयं मनोरमा ॥ ५३ ॥

प्राप्त हुई. और वहां उन तपस्वीको देखकर निर्भय हो गई ॥ ४९ ॥ मुनिने पूँछा तुम कौन ? किसकी स्त्री हो ? तुम कष्टसे कैसे यहां आई हो ? हे शुचिस्मिते ! सत्य कहो ॥ ५० ॥ तुम देवी वा मानुषी बालक पुत्रको लिये कौन हो ? हे कमल लोचनी ! तुम हमको राज्य भ्रष्टके समान दीखती हो॥ ५१ ॥ इस प्रकार मुनिके पूँछनेपर भी उसने कुछ न कहा और दुःखसे व्याकुल हो उस रोती हुईने विदल्लको आज्ञा दी ॥ ५२ ॥ तब विदल्लने कहा नृपश्रेष्ठ ध्रुवसन्धि राजाकी धर्मपत्नी यह मनोरमा रानी है ॥ ५३ ॥

वह महाबली सूर्यवंशी राजा सिंहसे निहत हुए यह सुदर्शन नाम उस राजाका पुत्र है ॥ ५४ ॥ इस मनोरमाके पिता धर्मात्मा धेवतेके प्रिय करनेकी इच्छासे युद्धमें निहत हुए. यह युधाजित्के भयसे निर्जन वनमें आई ॥ ५५ ॥ यह बालक पुत्रवाली रानी अब तुम्हारी शरणमें प्राप्त हुई है. हे महा भाग!मुनिश्रेष्ठ ! आप इसके रक्षक हुजिये ॥ ५६ ॥ दुःखीकी रक्षा करनेका पुण्य यज्ञसे भी अधिक कहा है, और भयभीत दीनकी तो रक्षा करता महाफल दायक है ॥ ५७ ॥ ऋषिने कहा, हे कल्याणी ! तुम निर्भय होकर निवास करो, और इस पुत्रकी पालना करो.हे दीर्घलोचने ! तुमको यहां शत्रुसे भय न करना चाहिये ॥ ५८ ॥ अपने मनोहर पुत्रको पालो यही राजा होगा, यहां दुःख और शोक कभी कुछ न होगा ॥ ५९ ॥ व्यासजी बोले, मुनिके ऐसा

सिंहेन निहतो राजा सूर्यवंशी महाबलः ॥ पुत्रोऽयंनृपतेस्तस्य नाम्ना चैव सुदर्शनः ॥ ५४ ॥ अस्याः पिताऽतिधर्मात्मा दौहित्रार्थे मृतो रणे ॥ युधाजिद्भयसंत्रस्ता संप्राप्ता विजनेवने ॥ ५५ ॥ त्वामेव शरणं प्राप्ता बालपुत्रा नृपात्मजा ॥ त्राता भव महाभाग त्वमस्या मुनि सत्तम ॥ ५६ ॥ आर्तस्य रक्षणे पुण्यं यज्ञाधिकमुदाहृतम् ॥ भयत्रस्तस्य दीनस्य विशेषफलदं स्मृतम् ॥ ५७ ॥ ऋषिवाच ॥ निर्भया वत्स कल्याणि पुत्रं पालय सुव्रते ॥ न ते भयं विशालाक्षि कर्तव्यं शत्रुसम्भवम् ॥ ५८ ॥ पालयस्व सुतं कांतं राजा तेऽयं भविष्यति ॥ नात्र दुःखं तथा शोकः कदाचित्संभविष्यति ॥ ५९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता मुनिना राज्ञी स्वस्था सा संबभूव ह ॥ उटजे मुनिना दत्ते वीतशोका तदाऽवसत् ॥ ६० ॥ सैरंध्रीसहिता तत्र विदल्लेन च संयुता ॥ सुदर्शनं पालयानान्यवसत्सा मनोरमा ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ व्यास उवाच ॥ युधाजित्त्वथ संग्रामाद्गत्वाऽयोध्यां महाबलः ॥ मनोरमां च प्रपच्छ सुदर्शन जिघांसया ॥ १ ॥ सेवकान्प्रेषयामास क्व गतेति मुहूर्वदन् ॥ शुभे दिनेऽथ दौहित्रं स्थापयामास चासने ॥ २ ॥

कहनेपर रानी स्वस्थ हुई, और मुनिकी दी हुई कुटीमें शोकरहित हो निवास करने लगी ॥ ६० ॥ सैरन्ध्री और विदल्लके सहित सुदर्शनका पालन करती वह, मनोरमा रहने लगी ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले, महाबली युधाजित् संग्रामसे अयोध्यामें आकर सुदर्शनके मारनेकी इच्छासे मनोरमाको पूछने लगा ॥ १ ॥ और वह कहां गई इस प्रकार वारंवार कहकर सेवकोंको ढूंढ़नेके निमित्त भेजता हुआ. और शुभ मुहूर्तमें अपने धेवतेकोराज आसनपर स्थापित किया ॥ २ ॥

मंत्रीजन और वसिष्ठजीने अथर्ववेदके मंत्रोंसे तथा जलपूर्ण घटोंसे अभिषेक किया ॥ ३ ॥ भेरी शंखोंके शब्द बाजोंके शब्द पूर्वक नगरीमें बडा भारी उत्सव हुआ ॥ ४ ॥ ब्राह्मणोंके वेदपाठ बन्दीजनों की स्तुति और मंगलीक जयशब्दोंसे अयोध्या प्रसन्न होगई ॥ ५ ॥ हृष्ट पुष्ट जनोंसे व्याप्त स्तुति और बाजोंके शब्दोंसे पूर्ण होकर वह उस नये राजाके कारण नयीसी होगई ॥ ६ ॥ जो साधुजन थे वे घरमें स्थित हो शोक करने लगे कि वह राजकुमार सुदर्शन कहां गया ? ॥७॥ और वह साध्वी मनोरमा पुत्रके सहित कहां गई ? इस वैरी राज्यलोभीने युद्धमें उसके पिताको मार डाला ॥ ८ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए वे समबुद्धि साधु शत्रुजित्‌के वशीभूत हुए दुःखसे रहने लगे ॥ ९ ॥ और युधाजित् विधि पूर्वक धेवतेको राज्यपर स्थापन करके मंत्रीके अधीन

मंत्रिभिश्च वसिष्ठेन मंत्रैराथर्वणैः शुभैः ॥ अभिषिक्तश्च संपूर्णैः कलशैर्जलपूरितैः ॥ ३ ॥ भेरीशंखनिनादैश्च तूर्याणां चाथ निःस्वनैः ॥ उत्सवस्तु नगर्यां वै संबभूव कुरूद्वह ॥ ४ ॥ विप्राणां वेदपाठैश्च बंदिनां स्तुतिभिस्तथा ॥ अयोध्या मुदितेवासीज्जयशब्दैः सुमंगलैः ॥ ५ ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णा स्तुतिवादित्रनिःस्वना ॥ नवे तस्मिन्महीपाले पूर्वभौ नूतनेव सा ॥ ६ ॥ केचित्साधुजना ये वै चक्रुः शोकं गृहे स्थिताः ॥ सुदर्शनं विचिंत्याद्य क्व गतोऽसौ नृपात्मजः॥७॥ मनोरमाऽतिसाध्वी सा क्व गता सुतसंयुता॥पिताऽस्या निहतः संख्ये राज्यलोभेन वैरिणा ॥ ८ ॥ इत्येवं चिंत्यमानास्ते साधवः समबुद्धयः ॥ अतिष्ठन्दुःखितास्तत्र शत्रुजिद्वशवर्तिनः ॥ ९ ॥ युधाजिदपि दौहित्रं स्थापयित्वा विधानतः ॥ राज्यं च मंत्रिसात्कृत्वा चलितः स्वां पुरीं प्रति ॥ १० ॥ श्रुत्वा सुदर्शनं तत्र मुनीनामाश्रमे स्थितम् ॥ हंतुकामो जगामाऽऽशु चित्रकूटं स पर्वतम् ॥ ११ ॥ निषादाधिपतिं शूरं पुरस्कृत्य बलाभिधम् ॥ दुर्दर्शाख्यमगादाशुशृङ्गवेरपुराधिपम् ॥ १२ ॥ श्रुत्वा मनोरमा तत्र बभूवाति सुदुःखिता ॥ आगच्छंतं बालपुत्रा भयार्ता सैन्य संयुतम् ॥ १३ ॥ तमुवाचाऽतिशोकार्ता मुनिं साश्रुविलोचना ॥ किं करोमि क्क गच्छामि युधाजित्समुपस्थितः ॥ १४ ॥

अवधका राज्य कर अपनी पुरीकी ओर चला ॥ १० ॥ मार्गमें मुनियोंके आश्रममें सुदर्शनको स्थित सुनकर उसके मारनेकी इच्छा कर चित्रकूट पर्वतको गया ॥ ११ ॥ और बड़े बली शूर निषाद देशके राजाको आगे करके अर्थात् उस शृंग वेर पुरके अधिपति दुर्दर्शको लेकर चला ॥ १२ ॥ यह समाचार मनोरमा सुनकर बड़ी दुःखी हुई, कि वह मेरे बालक पुत्रको मारनेके निमित्त सेना लिये आता है ॥ १३ ॥ वह व्याकुल हो नेत्रोंमें जलभर मुनिसे कहने लगी अब मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? युधाजित् आकर प्राप्त हुआ है ॥ १४ ॥

इसने मेरे पिताको मारकर अपने धेवतेको राजा किया है अब सेना लिये मेरे पुत्रको मारनेकी इच्छासे आता है ॥१५॥ हे स्वामिन् ! यह मैंने महले सुना था कि, कि पाण्डव बनमें द्रौपदीके सहित मुनियोंके आश्रममें रहते थे ॥ १६ ॥ एक समय वे पांचों भाई मृगयाके निमित्त वनको गये थे और मुनियोंके आश्रममें द्रौपदी स्थित थी ॥ १७ ॥ धौम्य, अत्रि, गालव, पेल, जाबाली, गौतम, भृगु, च्यवन, अत्रि, गोत्र कण्व, जतु, क्रतु ॥ १८ ॥ वीतिहोत्र, सुमन्त यज्ञदत्त, वत्सल, राशासन, कहोड यवक्री, यज्ञकृत, क्रतु ॥ १९ ॥ यह तथा और भारद्वाजादि शुभ मुनि वेदपाठकरनेवाले उस आश्रममें स्थित थे ॥ २० ॥ वह दासियोंके सहित द्रौपदी आश्रममें स्थित थी. वह सुन्दर अंगवाली मुनियोंके आश्रम निर्भय थी ॥ २१ ॥ और पृथाके पुत्र इस वनसे उसमें इससे उसमें मृगोंके

पिता मे निहतोऽनेन दौहित्रो भूपतिः कृतः ॥ सुतं मे हंतुकामोऽत्र समायाति बलान्वितः ॥ १५ ॥ पुरा श्रुतं मया स्वामिन्पांडवा वै वने स्थिताः ॥ मुनीनामाश्रमे पुण्येपांचाल्या सहितास्तदा ॥ १६ ॥ गतास्ते मृगयां पार्था भ्रातरः पंच एव ते ॥ द्रौपदी संस्थिता तत्र मुनीनाश्रमे शुभे ॥ १७ ॥ धौम्योऽत्रिर्गालवः पैलो जाबालिर्गौतमो भृगुः ॥ च्यवनश्चात्रिगोत्रश्च कण्वश्चैव जतुः क्रतुः ॥ १८ ॥ वीतिहोत्रः सुमंतुश्च यज्ञदत्तोऽथ वत्सलः ॥ राशासनः कहोडश्च यवक्रीर्यज्ञकृत्क्रतुः ॥ १९ ॥ एते चान्ये च मुनयो भारद्वाजादयः शुभाः ॥ वेदपाठयुताः सर्वे संस्थिताश्चाश्रमे स्थिताः ॥ २० ॥ दासीभिः सहिता तत्र याज्ञसेनी स्थिता मुने ॥ आश्रमे चारुसर्वांगी निर्भयां मुनिसंवृते ॥ २१ ॥ पार्था मृगानुगास्तावत्प्रयाताश्च वनाद्वनम् ॥ धनुर्बाणधरा वीराः पंचैव शत्रुतापनाः ॥ २२ ॥ तावत्तिंसिधुपतिः श्रीमान्मार्गस्थो बलसंयुतः ॥ आगतश्चाश्रमाभ्याशे श्रुत्वा तु निगमध्वनिम् ॥ २३ ॥ श्रुत्वा वेदध्वनिं राजा मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ उत्ततार रथात्तूर्णं दर्शनाकांक्षया नृपः ॥ २४ ॥ यदा निरगमत्तत्र भृत्यद्वयसमन्वितः ॥ वेदपाठयुतान्वीक्ष्य मुनीनुद्यमसंस्थितः ॥ २५ ॥ कृतांजलिपुटः स्वामिन्संस्थितोऽथ जयद्रथः ॥ आश्रमे मुनिभिर्जुष्टे भूपतिः संविवेश ह ॥ २६ ॥

पीछे चले गये. यह पांचों वीर धनुष धारी शत्रु नाशक थे ॥ २२ ॥ इसी अवसरमें सिन्धु देशका राजा श्रीमान् जयद्रथ सेनासहित विचरता वेदपाठकी ध्वनि सुनकर मुनियोंके आश्रममें आया ॥ २३ ॥ भावित आत्मावाले मुनियोंके वेदपाठकी ध्वनि सुनकर उनके दर्शनकी इच्छासे राजा रथसे उतरा ॥ २४ ॥ जब कि यह अपने दो सेवकोंके साथ चला और वेदपाठ करते हुए मुनियोंको इसने देखा ॥ २५ ॥ तब वह जयद्रथ मुनियोंके आश्रममें हाथ जोडे हुए प्रविष्ट हुआ ॥ २६ ॥

वहां जब राजा बैठा तब इसके देखनेको मुनियोंकी स्त्रियें कौतुहलसे 'यह राजा है' ऐसा विचारकर आई ॥ २७ ॥ उनके मध्यमें सुमुखी याज्ञसेनी भी आकर प्राप्त हुई. उसे रूपमें लक्ष्मीके समान जयद्रथने देखा ॥ २८ ॥ उस असितापांगीको दूसरी देवकन्याके समान देख करराजाने पूँछा यह सुमुखी वरांगना कौन है ? ॥ २९ ॥ किसकी भार्या ? किसकी सुता ? क्या इसका नाम है ? यह रूप लावण्यसंयुक्त मानो इन्द्राणी ही भूमिमें आई है ॥ ३० ॥ जैसे बबूलके वृक्षोंके मध्यमें लौंगकी बेलहो वा राक्षसियोंके मध्यमें रंभाहो इस प्रकार यह भामिनी विदित होती है ॥ ३१ ॥ हे महाभाग ! सत्य कहो यह अबला किसकी है ? हे द्विज ! यह तो राजपत्नीके समान दीखती है; मुनि वधू नहीं है॥ ३२ ॥ धौम्य बोले, पाण्डवोंकी प्रिया भार्या शुभलक्षण

तत्रोपविष्टं राजानं द्रष्टुकामाः स्त्रियस्तदा ॥ आययुर्मुनिभार्याश्च कोऽयमित्यब्रुवन्नृपम् ॥२७॥ तासां मध्ये वरारोहा याज्ञसेनी समागता॥ जयद्रथेन दृष्टा सा रूपेण श्रीरिवापरा ॥ २८ ॥ तांविलोक्यासितापांगीं देवकन्या मिवापराम् ॥ पप्रच्छ नृपतिर्धौम्यं केयं श्यामा वरानना ॥ २९ ॥ भार्या कस्य सुता कस्य नाम्ना का वरवर्णिनी ॥ रूपलावण्यसंयुक्ता शचीव वसुधां गता ॥ ३० ॥ बर्बूलवनमध्यस्था लवंगलतिका यथा ॥ राक्षसीवृंदगा नूनंरंभेवाऽऽभाति भामिनी ॥ ३१ ॥ सत्यं वद महाभाग कस्येयं वल्लभाऽबला ॥ राजपत्नीव चाभाति नैषा मुनिवधूर्द्विज ॥ ३२ ॥ धौम्य उवाच ॥ पांडवानां प्रिया भार्या द्रौपदी सुभलक्षणा ॥ पांचाली सिंधुराजेंद्र वसत्यत्र वराश्रमे ॥ ३३ ॥ जयद्रथ उवाच ॥ क्व गताः पांडवा पंच शूराः संप्रति विश्रुताः ॥ वसंत्यत्र वने वीरा वीतशोका महाबलाः ॥ ३४ ॥ धौम्य उवाच ॥ मृगयार्थं गताः पंच पांडवा रथसंस्थिताः ॥ आगमिष्यंति मध्याह्ने मृगानादाय पार्थिवाः ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य उदतिष्ठदसौ नृपः ॥ द्रौपदीसन्निधौ गत्वा प्रणम्येदमुवाच ह ॥ ३६ ॥ कुशलं ते वरारोहे क्व गताः पतयश्च ते ॥ एकादश गतान्यद्य वर्षाणि च वने किल ॥ ३७ ॥

द्रौपदी पांचालराजकी कन्या हमारे आश्रममें निवास करती है ॥ ३३ ॥ जयद्रथने कहा, वह पांच शूर पांडव कहां गये हैं? वे महाबली शोक रहित होकर इसी वनमें निवास करते हैं ॥ ३४ ॥ धौम्य बोले, रथमें स्थित होकर पांचों पाण्डव मृगयाके निमित्त वनमें गये हैं वे मृगोंको लेकर मध्याह्नके समय आवेंगे ॥ ३५ ॥ धौम्यके यह वचन सुन वह राजा उठा और द्रौपदीके समीप जाय प्रणाम कर बोला ॥ ३६ ॥ हे वरारोहे ! तुम्हारी कुशल है ? पति कहां गये हैं ? अब तुमको वनमें ग्यारह वर्ष बीतगये ॥ ३७ ॥

तब द्रौपदी बोली, हे राजपुत्र ? आपका कल्याण हो आप आश्रमके समीप निवास करो अभी पाण्डव आते हैं ॥ ३८ ॥ उसके ऐसा कहनेपर वह राजा लोभाक्रांत होकर मुनिश्रेष्ठोंका विचार न करके द्रौपदीका हरण करता हुआ फिर पांडवोंने छुडाया ॥ ३९ ॥ इससे पंडितोंको किसीका विश्वास न करना चाहिये करनेसे दुःख होता है, इसमें राजा बलिका दृष्टांत है ॥ ४० ॥ वैरोचनका पुत्र धर्मात्मा सत्यवादी यज्ञका करनेंवाला शरणागतवत्सल साधुसंमत था ॥ ४१ ॥ वह प्रह्लादका पौत्रक भी अर्धममें रत नहीं था, उसने दक्षिणावाले ९९ यज्ञोंको किया था ॥ ४२ ॥ जो सत्त्वमूर्ति विष्णु सदा योगियोंको सेवनीय निर्विकार हैं, वे देवकार्यसिद्धिकेनिमित्त ॥ ४३ ॥ कपटसे वामनरूप धर कश्यपके यहां प्रगट हुए; और उन्होंने सागरपर्यन्त भूमि और राज्यका

द्रौपदी तु तदोवाच स्वस्ति तेऽस्तु नृपात्मज ॥ विश्रमस्वाश्रमाभ्याशे क्षणादायांति पांडवाः ॥ ३८॥ एवं ब्रुवत्यां तस्यां तु लोभाविष्टः स भूपतिः ॥ जहार द्रौपदीं वीरोऽनादृत्य मुनिसत्तमान् ॥३९॥ कस्यचिन्नैव विश्वासः कर्तव्य सर्वथा बुधैः ॥ कुर्वन्दुःखमवाप्नोति दृष्टांतस्त्वत्र वै बलिः ॥ ४० ॥ वैरोचनसुतः श्रीमान्धर्मिष्ठः सत्यसंगरः ॥ यज्ञ कर्ता च दाता च शरण्यः साधुसंमतः ॥ ४१ ॥ नाधर्मे निरतः क्वापिप्रह्लादस्य च पौत्रकः ॥ एकोनशतयज्ञान्वै स चकार सदक्षिणान् ॥ ४२ ॥ सत्त्वमूर्तिः सदा विष्णुः सेव्यः स योगिनामपि ॥ निर्विकारोऽपि भगवान्देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ४३ ॥ कश्यपाच्च समुद्भूतो विष्णुः कपटवामनः ॥ राज्यं छलेन हृतवान्मही चैव ससागराम् ॥४४॥ सोऽभवत्सत्यवाग्राजा बलिर्वैरोचनिस्तदा ॥ कपटं कृतवान्विष्णुरिंद्रार्थे तु मया श्रुतम् ॥ ४५ ॥ अन्यः किं न करोत्येवं कृतं वै सत्त्वमूर्तिना ॥ वामनं रूपमास्थाय यज्ञपातं चिकीर्षता ॥४६॥ न च विश्वसितव्यं वै कदाचित्केनचित्तथा ॥ लोभश्चेतसि चेत्स्वामिन्की दृक्पापकृतं भयम् ॥ ४७ ॥ लोभाहताः प्रकुर्वंति पापानि प्राणिनः किल ॥ परलोकाद्भयं नास्ति कस्यचित्कर्हिचिन्मुने ॥ ४८ ॥ मनसा कर्मणा वाचा परस्वादानहेतुतः ॥ प्रपतंति नराः सम्यग्लोभोपहतचेतसः ॥ ४९ ॥

हरण किया ॥ ४४ ॥ विरोचनका पुत्र राजा बलि इतनेपरभी सत्यवाक् रहा और विष्णुने इन्द्रके निमित्त वंचना की ॥ ४५ ॥ जब सत्त्वमूर्तिने ऐसा किया तो और कौन न करेगा ? वामनरूपकरके यज्ञकी रक्षा करनेवालेने उसे छला ॥ ४६ ॥ इस कारण किसीका विश्वास न करना चाहिये. हे स्वामिन् ! जब चित्तमें लोभ होता है तब पापका भय नहीं होता ॥ ४७ ॥ लोभसे युक्त होकरही प्राणी पाप करते हैं. हे मुने ! ऐसोंको कभी परलोकका भय नहीं होताहै ॥ ४८ ॥ मन वचन कर्मसे दूसरेका धन लेनेके कारण लोभसेही मनुष्य नरकमें पड़ते हैं ॥ ४९ ॥

मनुष्य भली प्रकार देवताओंका आराधन कर धनकी इच्छा करते हैं. परन्तु देवता किसीके हाथोंमेंतो धन देतेही नहीं ॥ ५० ॥ वे भी दूसरेसे धन लाकर यथेच्छ देते हैं. व्यापार दान चोरी बल ॥ ५१ ॥ तथा बेचनेकी वस्तुओंसे वस्त्रादिक धन ग्रहण करके वैश्य देवताओंका पूजन करते हैं कि हमारे यहां धन हो जाय ॥ ५२ ॥ हे परंतप ! क्या व्यापारसे पराये द्रव्यके लेनेकी इच्छा नहीं है ? नाज भरतेही व्यापारी इच्छा करते हैं कि अकरा हो जाय ॥ ५३ ॥ इस प्रकारसे सब प्राणी पराये धन लेनेकी इच्छामें वर्तमान हैं. हे ब्रह्मन् ! फिर किसका विश्वास किया जाय ॥ ५४ ॥ ऐसोंका तीर्थदान वेदपाठ वृथा होता है लोभ मोहसे व्याप्त चित्तवालोंका किया कार्य नहीं किया है ॥ ५५ ॥ हे महाभाग ! इस कारण इस राजाको घर लौटा दो और मैं जानकीके समान

देवानाराध्य सततं वांछंति च धनं नराः ॥ न देवास्तत्करे कृत्वा समर्था दातुमंजसा ॥५०॥ अन्यस्यानीय ते वित्तं प्रयच्छंति मनीषितम्॥ वाणिज्येनाथ दानेन चौर्येणापि बलेन वा ॥ ५१ ॥ विक्रयार्थं गृहीत्वा च धान्यवस्त्रादिकं बहु ॥ देवानर्चयते वैश्यो महर्द्धिर्मे भवेदिति ॥ ५२ ॥ नात्र किं परवित्तेच्छा वाणिज्येन परंतप ॥ ग्रहणकाले तु संप्राप्ते महर्घं चापि कांक्षति ॥५३॥ एवंहि प्राणिनः सर्वे परस्वादान तत्पराः ॥ वर्तंते सततं ब्रह्मन्विश्वासः कीदृशः पुनः ॥५४॥ वृथा तीर्थं वृथा दानं वृथाऽध्ययनमेव च ॥ लोभमोहवृतानां वै कृतं तदकृतं भवेत् ॥ ५५ ॥ तस्मादेनं महाभाग विसर्जय गृहं प्रति ॥ सपुत्राऽहं वसिष्यामि जानकीवद्द्विजोत्तम ॥५६॥ इत्युक्तोऽसौ मुनिस्तावद्गत्वा युधाजितं नृपम् ॥ उवाच वचनं राज्ञे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५७ ॥ गच्छ राजन्यथा कामं स्वपुरंनृपसत्तम ॥ नेयं मनोरमाऽभ्येति बालपुत्रा सुदुःखिता ॥ ५८ ॥ युधाजिदुवाच ॥ मुने मुंच हठं सौम्य विसर्जय मनोरमाम् ॥ न च यास्याम्यहं मुक्त्वा नेष्याम्यद्य बलात्पुनः ॥ ५९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ नयस्व यदि शक्तिस्ते बलेनाद्य ममाश्रमात् ॥ विश्वामित्रो यथा धेनुंवसिष्ठस्य मुनेः पुरा ॥ ६० ॥

पुत्रसहित निवास करूंगी ॥ ५६ ॥ यह सुनकर वह प्रतापी भारद्वाज मुनि जाकर युधाजित् राजासे कहने लगे ॥ ५७ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आप यथेष्ट अपने पुरको चले जाइये, बालपुत्रवाली दुःखित मनोरमा तुम्हारे दर्शनपथमें प्राप्त न होगी ॥ ५८ ॥ युधाजित् बोले, हे मुने ! हठ छोड़कर मनोरमाको त्यागदो मैं इसे छोड़कर न जाऊंगा बलपूर्वक ले जाऊंगा ॥ ५९ ॥ ऋषि बोले, यदि शक्ति हो तो बलपूर्वक मेरे आश्रमसे ले जाओ स्मरण रखना विश्वामित्रने बलपूर्वक वसिष्ठजीके आश्रमसे धेनु ग्रहण की थी क्या हुआ ? ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले, राजा इस प्रकार मुनिके वचन श्रवणकरके सावधान हो वृद्ध मंत्री से पूँछनेलगा ॥ १ ॥ हे सुव्रत! सुबुद्धि! कहो इस समय मुझे क्या करना उचित है उस सुभाषिणी पुत्रवालीको क्या मैं बलसे ग्रहण करूं?॥ २ ॥ शुभकी इच्छावालोंको तो छोटे शत्रुकी अपेक्षा न करनी चाहिये, वह राजयक्ष्माके समान बढकर अन्तमें मृत्युही करदेता है ॥ ३ ॥ यहः कुछ सेना योधा तो हैही नहीं जो मुझे निवारण करें इससे उस दौहित्रके शत्रुको ग्रहण करके उसे मारूंगा ॥ ४ ॥ जिससे मेरे धेवतेका राज्य निष्कंटक होजाय. वह कार्य मैं बलसे करूंगा, सुदर्शनके मरनेपर यह अवश्य निर्भय हो जायगा ॥ ५ ॥ मंत्री बोला, हे राजन्! इसमें साहस मत करो आपने मुनिका वचन सुना हे राजन्! उसने

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनेस्तत्रावनीपतिः ॥ मंत्रिवृद्धं समाहूय पप्रच्छ तमतंद्रितः ॥ १ ॥ किं कर्तव्यं सुबुद्धेऽत्र मयाऽद्य वद सुव्रत ॥ बलान्नयामि तां कामं सपुत्रां च सुभाषिणीम् ॥ २ ॥ रिपुरल्पोऽपि नोपेक्ष्यः सर्वथा शुभमिच्छता ॥ राजयक्ष्मेव संवृद्धो मृतवे परिकल्पयेत् ॥ ३ ॥ नात्र सैन्यं न योद्धाऽस्ति यो मामत्र निवारयेत् ॥ गृहीत्वा हन्मि तं तत्र दौहित्रस्य रिपुं किल ॥ ४ ॥ निष्कंटकं भवेद्राज्यं यताम्यद्य बलादहऽम् ॥ हते सुदर्शने नूनं निर्भयोऽसौ भवेदिति ॥ ५ ॥ प्रधान उवाच ॥ साहसं न हि कर्तव्यं श्रुतं राजन्मुनेर्वचः ॥ विश्वामित्रस्य दृष्टांतः कथितस्तेन मारिष ॥ ॥ ६ ॥ पुरां गाधिसुतः श्रीमान्विश्वामित्रोऽतिविश्रुतः ॥ विचरन्स नृप श्रेष्ठो वसिष्ठाश्रममभ्यगात् ॥ ७ ॥ नमस्कृत्य च तं राजा विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ उपविष्टो नृपश्रेष्ठो मुनिना दत्तविष्टरः ॥८॥ निमंत्रितो वसिष्ठेन भोजनाय महात्मना ॥ ससैन्यश्च स्थितो राजा गाधिपुत्रो महाशयः ॥ ९ ॥ नंदिन्याऽऽसादितं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिकं च यत् ॥ भुक्त्वा राजा ससैनश्च वांछितं तत्र भोजनम् ॥ १० ॥ प्रतापं त च नंदिन्याः परिज्ञाय स पार्थिवः ॥ ययाचे नंदिनी राजा वसिष्ठं मुनिसत्तम् ॥ ११ ॥

विश्वामित्रका दृष्टांत कहा है ॥ ६ ॥ पहले गाधिके पुत्र श्रीमान् विश्वामित्र बडे प्रतापी हुए हैं वे नृपश्रेष्ठ विचरते हुए वसिष्ठके आश्रममें आये ॥ ७ ॥ प्रतापी विश्वामित्रने उनको प्रणाम किया और मुनिके दिये आसनपर बैठे ॥ ८ ॥ तब महात्मा वसिष्ठजीने उनको भोजन करनेको कहा वह महायशस्वी गाधिपुत्र सेना सहित निमंत्रित हुए ॥ ९ ॥ जो कुछ भक्ष्य भोज्य था वह सब नंदिनीने सम्पादन किया, राजाने सेनासहितवांछित भोजन कर ॥ १० ॥ और यह सब नंदिनीका प्रताप जानकर वसिष्ठसे नंदिनीको मांगा ॥ ११ ॥

विश्वामित्र बोले, हे मुने ! तुमको घटोघ्नी सहस्र गौ दूंगा, यह नंदिनी मुझकोदो मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं ॥ १२ ॥ वसिष्ठजी बोले, हे राजन् ! मैं यह होम धनु कभी नहीं दूंगा. यह सहस्रों धेनु आपके पास रहें ॥ १३ ॥ विश्वामित्र बोले,दस सहस्र अथवा एक लक्ष गौ आपको देता हूं. हे मुने ! यह गौ हमको दो नहीं तो मैं बलसे ग्रहण कर लूंगा ॥ १४ ॥ वसिष्ठजी बोले, हे राजन् ! जैसे आपकी रुचिहो तो बलसे ग्रहण कर लीजिये और अपनी इच्छासे मैं नंदिनीको घरसे नहीं जाने दूंगा ॥ १५ ॥ यह सुनकर राजाने महाबली भृत्योंको आज्ञा दी कि तुम अपने बलदर्पसे नंदिनीको ग्रहण कर लो ॥ १६ ॥ तब उन भृत्योंने बलसे नंदिनीको पकड़ा, तब सुरभी नेत्रोंमें जल भरकर कंपित होकर मुनिसे बोली ॥ १७ ॥ हे मुने ! भलीप्रकार यंत्रित मुझको क्यों त्याग

विश्वामित्र उवाच ॥ मुने धेनुसहस्रं ते घटोध्नीनां ददाम्यहम् ॥ नंदिनीं देही मे धेनुं प्रार्थयामि परंतप ॥१२॥ वसिष्ठ उवाच ॥ होमधेनुरियं राजन्न ददामि कथंचन ॥ सहस्रं चापि धेनूनां तवेदं तव तिष्ठतु ॥१३॥ विश्वामित्र उवाच ॥ अयुतं वाऽथ लक्षं वा ददामि मनसेप्सितम् ॥ देहि मे नंदिनी साधो ग्रहीष्यामि बलादथ॥ १४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ कामं गृहाण नृपते बलादद्य यथारुचि ॥ नाहं ददामि ते राजन्स्वेच्छया नंदिनीं गृहात् ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा नृपतिर्भृत्यानादिदेश महाबलान् ॥ नयध्वं नंदिनीं धेनुं बलदर्पसुसंस्थिताः ॥ १६ ॥ ते भृत्याजगृहु धेनुं हठादाक्रम्य यंत्रिताम् ॥ वेपमाना मुनिं प्राह सुरभिः साश्रुलोचना ॥ १७ ॥ मुने त्यजसि मां कस्मात्कर्षयंति सुयत्रिताम् ॥ मुनिस्तां प्रत्युवाचेदं त्यजे नाहं सुदुग्धदे ॥१८॥ बलान्नयति राजाऽसौ पूजितोऽद्य मया शुभे ॥ किं करोमि न चेच्छामि त्यक्तुं त्वां मनसा किल ॥ १९ ॥ इयुक्ता मुनिना धेनुः क्रोधयुक्ता बभूव ह ॥ हंभारवं चकाराशु क्रूरशब्दं सुदारुणम् ॥२०॥ उद्गतास्तत्र देहात्तु दैत्या घोरतरास्तदा ॥ सायुधास्तिष्ठ तिष्ठेति ब्रुवंतः कवचावृताः ॥ २१ ॥ सैन्यं सर्वं हतं तैस्तु नंदिनी प्रतिमोचिता ॥ एकाकी निर्गतो राजा विश्वामित्रोऽतिदुःखितः ॥ २२ ॥

करते हो, मुनिने कहा, हे दुग्धदात्रि ! मैं तुझको त्याग नहीं करता हूं ॥ १८ ॥ हे शुभे ! यह राजा तुझको बलसे लिये जाता है. क्या करूं ? मैं तो तुझको मनसेभी छोडनेकी इच्छा नहीं करता ॥ १९ ॥ मुनिके ऐसा कहते ही वह धेनु क्रोधयुक्त हो गई और उसने हंबा शब्दपूर्वक बडा दारुण शब्द किया ॥२०॥ और उसके शरीर से घोर दैत्य निकलने लगे और कवच पहरे खडे रहो 'कहकर आयुध ले धावमान हुए ॥ २१ ॥ उन्होंने विश्वामित्रकी सब सेनाको नष्ट करके नंदिनीको छुडालिया, तब इकला राजा विश्वामित्र दुःखी हो वहांसे चले गये ॥ २२ ॥

बडा खेद करके वे दीनात्मा क्षात्रबलकी निंदा करते हुए ब्रह्मबलको श्रेष्ठ मानकर तपमें स्थित हुए ॥ २३ ॥ महावनमें बहुत वर्षोंतक घोर तपके क्षात्रविधिको त्याग कर विश्वामित्रने ऋषिपनकी प्राप्ति की ॥ २४ ॥ हे राजेंद्र ! इस कारण तुमको वैर नहीं करना चाहिये तपस्वियोंसे वैर करना निश्चयही कुलनाशके निमित्त होता है ॥ २५ ॥ तुम इन तपोनिधि मुनिश्रेष्ठका आश्वासन करके राजधानीको चलो. हे राजेन्द्र ! सुदर्शनभी यहां सुखपूर्वक निवास करे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह निर्धन बालक तुम्हारा क्या अहित कर सकता है ? इस अनाथ दुर्बल बालकमें तुम्हारा वैरभाव वृथा है ॥ २७ ॥ यह जगत दैवाधीन है सर्वत्र दया करनी चाहिये. हे नृपश्रेष्ठ ईर्षासे कुछ नहीं जो होनहार है सो होगा ॥ २८ ॥ हे राजन् ! दैवयोगसे तो वज्र भी तृण हो जाता है

हंत पापोऽतिदीनात्मा निंदन्क्षात्त्रबलं महत् ॥ ब्राह्मं बलं दुराराध्यं मत्वा तपसि संस्थितः ॥२३॥ तप्त्वा बहूनि वर्षाणि तपो घोरं महावने॥ ऋषित्वं प्रापगाधेयस्त्यक्त्वा क्षात्त्र विधिं पुनः ॥ २४ ॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र मा कृथा वैरमद्भुतम् ॥ कुलनाशकरं नूनं तापसैः सह संयुगम् ॥ २५ ॥ मुनिवर्यं व्रजाद्य त्वं समाश्वास्य तपोनिधिम् ॥ सुदर्शनोऽपि राजेंद्र तिष्ठत्वत्र यथासुखम् ॥ २६ ॥ बालोऽयं निर्धनः किं ते करिष्यति नृपाहितम् ॥ वृथा ते वैरभावोऽयमनाथे दुर्बले शिशौ ॥ २७ ॥ दया सर्वत्र कर्तव्या दैवाधीनमिदं जगत् ॥ ईर्ष्यया किं नृपश्रेष्ठ यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥ २८ ॥ वज्रं तृणायते राजन्दैवयोगान्न संशयः ॥ तृणं वज्रायते क्वापि समये दैवयोगतः ॥ २९ ॥ शशको हंति शार्दूलं मशको वै यथा गजम् ॥ साहसं मुंच मेधाविन्कुरु मे वचनंहितम् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य युधाजिन्नृपसत्तमः ॥ प्रणम्य तं मुनिं मूर्ध्ना जगाम स्वपुरं नृपः ॥ ३१ ॥ मनोरमाऽपि स्वस्थाऽभूदाश्रमे तत्र संस्थिता ॥ पालयामास पुत्रं तं सुदर्शनमृतव्रतम् ॥ ३२ ॥ दिने दिने कुमारोऽसौ जगामोपचयं ततः ॥ मुनिबालगतः क्रीडन्निर्भयः सर्वतः शुभः ॥ ३३ ॥

कभी दैवयोगसे तृणभी वज्र हो जाता है ॥ २९ ॥ खरगोश सिंहको मशक हाथीको मार देता है. हे मेधावी ! इस कारण साहसको छोड़कर मेरे हितकारी वचन मानो ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले, इस प्रकारसे वह युधाजित् मंत्रीके वचन सुनकर उन मुनिको शिर झुकाय प्रणाम कर अपने घर चला गया ॥ ३१ ॥ और मनोरमाभी स्वस्थ होकर उस आश्रममें अपने पुत्र सुदर्शनकी पालना करती हुई ॥ ३२ ॥ दिन २ यह कुमार वृद्धिको प्राप्त होने लगा और यह शुभ मुनियोंके बालकोंके साथ निर्भय हो क्रीडा करने लगा ॥ ३३ ॥

एक समय वहां विदल्लमंत्री आकर प्राप्त हुआ. मुनिपुत्रोंने हँसीसे उसको क्लीब नामसे सम्बोधन दिया ॥ ३४ ॥ सुदर्शनने यह सुनकर उस एक अक्षरको धारण करलिया और बकार भूलकर ' क्ली ' इस प्रकार वारंवार उच्चारण करने लगा ॥ ३५ ॥ उस प्रकार यह कामराजका बीज उसने मनसे धारण किया और उसको मनमें धारण कर वारंवार जपने लगा ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! होनहारके योगसे स्वभावसे उस राजपुत्रने यह कविराज नामक बीज ग्रहण किया ॥ ३७ ॥ तब यह पंचम वर्षमें श्रेष्ठ मंत्रको प्राप्त होकर जो कि ऋषि छन्द ध्यान न्याससे रहित था ॥ ३८ ॥ लेटते क्रीडा करते समयमें भी यही मनमें जपता हुआ, इसीको साररूप मानकर कभी न भूलता हुआ ॥ ३९ ॥ ग्यारहवें वर्षकी प्राप्तिमें यह नृपात्मज कुमार मुनिद्वारा यज्ञोपवीतको प्राप्त होकर वेद

एकस्मिन्समये तत्र विदल्ल समुपागतम् ॥ क्लीबेति मुनिपुत्रस्तमामंत्रयत्तदंतिके ॥ ३४ ॥ सुदर्शनस्तु तच्छ्रुत्वा दधारैकाक्षरं स्फुटम् ॥ अनुस्वारयुतं तच्च प्रोवाचाति पुनः पुनः ॥ ३५ ॥ बीजं वै कामराजाख्यगृहीतं मनसा तदा ॥ जजाप बालकोऽत्यर्थं धृत्वा चेतसि सादरम् ॥ ३६ ॥ भावियोगान्महाराजकामराजाख्यमद्भुतम् ॥ स्वभावेनैव तेनेत्थं गृहीतं बालकेन वै ॥ ३७ ॥ तदाऽसौ पंचमे वर्षे प्राप्य मंत्रमनुत्तमम् ॥ ऋषिच्छंदोविहीनं च ध्यानन्यासविवर्जितम् ॥३८॥ प्रजपन्मनसा नित्यं क्रीडत्यपि स्वपित्यपि॥ विसस्मार न तं मंत्रं ज्ञात्वा सारमिति स्वयम् ॥ ३९ ॥ वर्षे चैकादशे प्राप्ते कुमारोऽसौ नृपात्मजः ॥ मुनिना चोपनीतोऽथ वेदमध्यापितस्तथा ॥ ४० ॥ धनुर्वेदं तथा सांगं नीतिशास्त्रं विधानतः ॥ अभ्यस्ताः सकला विद्यास्तेन मंत्रबलादिव ॥ ४१ ॥ कदाचित्सोऽपि प्रत्यक्षं देवीरूपंददर्श ह ॥ रक्तांबरं रक्तवर्णं रक्त सर्वांगभूषणम् ॥४२॥ गरुडे वाहने संस्थां वैष्णवीं शक्तिमद्भुताम् ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नवदनः स बभूव नृपात्मजः ॥४३॥ वने तस्मिन्स्थितः सोऽथ सर्वविद्यार्थतत्त्ववित् ॥ मातरं सेवमानस्तु विजहार नदीतटे ॥ ४४ ॥ शरासनं च संप्राप्तं विशिखाश्च शिलाशिताः ॥ तूणीरं कवचं तस्मै दत्तं चांबिकया वने ॥ ४५ ॥

पढ़ने लगा ॥ ४० ॥ सांग धनुर्वेद और नीति शास्त्र पढ़ता हुआ बहुत क्या इस मंत्रके बलसे इसने सम्पूर्ण विद्या पढ़ली ॥ ४१ ॥ एक समय इसने देवीका प्रत्यक्ष दर्शन किया. जो लालवस्त्र लालवर्ण और सर्वांगमें लाल भूषण धारण किये थी ॥ ४२ ॥ गरुडवाहनके ऊपर स्थित अद्भुत वैष्णवी शक्तिको देखकर यह राजकुमार बडा प्रसन्न हुआ ॥ ४३ ॥ वह सब विद्याओंके तत्त्वका ज्ञाता उस वनमें स्थित हुआ, और माताकी सेवा करता हुआ नदीके तटमें विहार करने लगा ॥ ४४ ॥ धनुष और पैने बाण तरकस और कवच ये देवीने उसको स्वयं प्रदान किये ॥ ४५ ॥

इसी समय काशी राजकी शशिकला नामक सर्व लक्षण सम्पन्न कन्याने ॥ ४६ ॥ राजपुत्र सुदर्शनको वनमें स्थित सुनकर कि यह सब लक्षणसे सम्पन्न शूर मानो दूसरा कामदेव है ॥ ४७ ॥ इस प्रकार राजपुत्रकी बड़ाई बन्दीजनोंके मुखसे सुनकर मनसे उसने उसको वरण करनेका विचार किया ॥४८॥ रात्रिमें जगदम्बाने उसके समीप आकर स्वप्नमें आश्वासन पूर्वक यह वचन कहे ॥ ४९ ॥ हे सुश्रोणि ! उसको तू वर, वह सुदर्शन मेरा भक्त है. हे भामिनि ! मेरे वचनसे वह तुमको सब कामनाका देनेवाला होगा ॥ ५० ॥ इस प्रकार शशिकला स्वप्नमें मनोहर रूपको देखकर और अम्बाके वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुई ॥ ५१ ॥ प्रसन्न होकर उठी. माताने वारंवार पूँछा भी परन्तु लज्जासे उससे हर्षका कारण न कहा ॥ ५२ ॥ और वारंवार स्वप्नका स्मरण कर प्रसन्नतासे

एतस्मिन्समये पुत्री काशीराजस्य सुप्रिया ॥ नाम्ना शशिकला दिव्या सर्वलक्षणसंयुता ॥ ४६ ॥ शुश्राव नृपपुत्रं तं वनस्थं च सुदर्शनम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं शूरं काममिवापरम् ॥ ४७ ॥ बंदीजनमुखाच्छ्रुत्वा राजपुत्रं सुसंमतम् ॥ चकमे मनसा तं वै वरं वरयितुं धिया ॥ ४८ ॥ स्वप्ने तस्याः समागम्य जगदंबा निशांतरे ॥ उवाच वचनं चेदं समाश्वास्य सुसंस्थिता ॥ ४९ ॥ वरं वरय सुश्रोणि मम भक्तः सुदर्शनः ॥ सर्वकाम प्रदस्तेऽस्तु वचनान्मम भामिनी ॥ ५० ॥ एवं शशिकला दृष्ट्वा स्वप्ने रूपं मनोहरम् ॥ अंबाया वचनं स्मृत्वा जहर्ष भृशमानिनी ॥ ५१ ॥ उत्थिता सा मुदा युक्ता पृष्टा मात्रा पुनः पुनः ॥ प्रमोदे कारणं बाला नोवाचातित्रपान्विता ॥ ५२ ॥ जहास मुदमापन्ना स्मृत्वा स्वप्नं मुहुर्मुहुः ॥ सखीं प्राह तदाऽन्यां वै स्वप्नवृत्तं सविस्तरम् ॥ ५३ ॥ कदाचित्सा विहारार्थमवापोपवनं शुभम् ॥ सखीयुक्ता विशालाक्षी चंपकैरुपशोभितम् ॥ ॥५४॥ पुष्पाणि चिन्वती बाला चंपकाधःस्थिताऽबला ॥ अपश्यद्ब्राह्मणं मार्गे आगच्छंतं त्वरान्वितम् ॥ ५५ ॥ तं प्रणम्य द्विजं श्यामा बभाषे मधुरं वचः ॥ कुतो देशान्महाभाग कृतमागमनं त्वया ॥ ५६ ॥ द्विज उवाच ॥ भारद्वाजाश्रमाद्बाले नूनमागमनं मम ॥ जातं वै कार्ययोगेन किंपृच्छसि वदस्व माम् ॥ ५७ ॥

हँसनेलगी और दूसरी सखीसे अपने स्वप्नका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहा ॥ ५३ ॥ एक समय वह विहारके निमित्त उपवनमें गई वह वन चम्पकोंसे शोभित था यह विशालनयना सखीके सहित वहां प्राप्त हुई ॥ ५४ ॥ वह बाला फूलोंको तोडती चम्पकके नीचे स्थित हुई. तब मार्गमें शीघ्रतासे आते हुए एक ब्राह्मणको देखा ॥ ५५ ॥ यह उस ब्राह्मणको प्रणाम कर मधुर वचन बोली, हे महाभाग ! आपने कहांसे आगमन किया ? ॥ ५६ ॥ ब्राह्मण बोले, हे बाले ! मेरा आना भारद्वाजके आश्रमसे हुआ है.मैं किसी कार्य निमित्त आया हूं तुम क्या पूँछती हो ? मुझसे कहो ॥ ५७ ॥

शशिकला बोली, महाराज ! कहो उस आश्रममें वर्णन करनेयोग्य क्या वस्तु है? विशेषकर सब लोकोंसे अधिक देखने योग्य वहां क्या है ? ॥ ५८ ॥ ब्राह्मणने कहा, ध्रुवसंधिका पुत्र श्रीमान् सुदर्शननाम कुमार पुरुषोत्तम यथार्थ नामसे वहां वर्तता है ॥ ५९ ॥ हे वामोरु ! मेरे जान तो जिसने उसका दर्शन नहीं किया उसके नेत्र निष्फल ही हैं ॥ ६० ॥ उसके निर्माणकी इच्छासे विधाताने उसमें एकत्रही गुणोंका सन्निवेश किया है. कारण कि विधाताको कौतुकसे गुणोंके आकारके देखनेकी इच्छा थी ॥ ६१ ॥ हे कन्ये ! वह कुमार तुम्हारे योग्य है. तुम्हारा भर्ता होने योग्य है, विधाता यह योग करे तो मणिकांचनका योग है ॥६२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्यासजी बोले, वह श्यामा किशोरबाला उसके वचन श्रवण कर बड़े प्रेमसे युक्त

शशिकलोवाच ॥ तत्राश्रमे महाभाग वर्णनीयं किमस्ति वै ॥ लोकातिगं विशेषेण प्रेक्षणीयतमं किल ॥ ५८ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ध्रुवसंधिसुतः श्रीमानास्ते सुदर्शनो नृपः ॥ यथार्थनामा सुश्रोणि वर्तते पुरुषोत्तमः ॥ ५९ ॥ तस्य लोचनमत्यंतं निष्फलं प्रति भाति मे ॥ येन दृष्टो न कामोरु कुमारस्तु सुदर्शनः ॥ ६० ॥ एकत्र निहिता धात्रा गुणाः सर्वे सिसृक्षुणा ॥ गुणानामाकरं द्रष्टुं मन्ये तेनैव कौतुकात् ॥ ६१ ॥ इव योग्यः कुमारोऽसौ भर्ता भवितुमर्हसि ॥ योगोऽयं विहितोऽप्यासीन्मणिकांचनयोरिव ॥ ६२ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ छ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तद्वचनं श्यामा प्रेमयुक्ता बभूव ह ॥ प्रतस्थे ब्राह्मणस्तस्मात्स्थानादुक्त्वा समाहितः ॥ १ ॥ सा तु पूर्वानुरागाद्वै मग्ना प्रेम्णाऽतिचंचला ॥ कामबाणहते वासगते तस्मिन्द्विजोत्तमे ॥२॥ अथ कामार्दिता प्राह सखीं छन्दोनुवर्तिनीम् ॥ विकारश्च समुत्पन्नो देहे यच्छ्रवणादनु ॥ ३ ॥ अज्ञातरसविज्ञानं कुमारं कुलसंभवम् ॥ दुनोति मदनः पापः किं करोमि क्व यामि च ॥ ४ ॥

हुई, और ब्राह्मण भी यह कहकर उस स्थानसे चलागया ॥ १ ॥ और वह पहले अनुरागके कारण और भी प्रेमसे चंचल हो गई, और ब्राह्मणके जानेपर अतिशय कामबाणसे ताडित हुई ॥ २ ॥ और कामसे व्याकुल हो अपने अनुकूलचारिणी सखीसे कहनेलगी, इस वाक्यके श्रवणसे देहमें विकार उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥ अभी तक रसके ज्ञानकोभी न प्राप्त हुआ मेरा मन उस कुलसंभव कुमारको न प्राप्त होकर व्याकुल है. यह पापी काम मुझे दुःख देता है. मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? ॥ ४ ॥

दूसरे कामके समान कुमार मैंने स्वप्नमें देखा है अब मेरा कोमल मन विरहसे व्याकुल होकर अधिक तपता है ॥ ५ ॥ हे भामिनी ! देहमें लगाया हुआ चन्दन विषके समान विदित होता है; यह माला सर्पवत् और चन्द्रकिरण अग्निवत् विदित होती हैं ॥६॥ महल बावडी पर्वत नदी आदि कोई भी मुझे सुखदायक विदित नहीं होते ॥७॥ शय्या ताम्बूल गीत बाजे कोईभी मुझे अच्छे नहीं लगते न मेरे नेत्र तृप्त होते हैं ॥८॥ मैं अब वहीं जाऊंगी जहां वह धूत है. क्या कहूं ? कुललज्जासे भीत और पितासे परतंत्र हूं ॥ ९ ॥ मेरा पिता स्वयंवर नहीं करता मैं क्या करूं ? मैं राज पुत्र सुदर्शनको ही शरीरप्रदान करूंगी ॥१०॥ बड़े २ ऋद्धिमान् अनेक राजा हैं, वे मुझे अच्छे नहीं लगते परन्तु मुझे यह राज्यहीन सुदर्शन ही अच्छा लगता है ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले एकाकी

स्वप्नेषु वा मया दृष्टः पंचबाण इवापरः ॥ तपते मे मनोऽत्यर्थं विरहाकुलितं मृदु ॥ ५ ॥ चंदनं देहलग्नं मे विषवद्भाति भामिनि ॥ स्रगियं सर्पवच्चैव चंद्रपादाश्च वह्निवत् ॥ ६ ॥ न च हर्म्ये वने शं मे दीर्घिकायां न पर्वते ॥ न दिवा न निशायां वा न सुखं सुखसाधनैः ॥ ७ ॥ न शय्या न च तांबूलं न गीतं न च वादनम् ॥ प्रीणयंति मनो मेऽद्य न तृप्ते मम लोचने ॥ ८ ॥ प्रयाम्यद्य वने तत्र यत्रासौ वर्तते शठः ॥ भीताऽस्मि कुललज्जायाः परतंत्रा पितुस्तथा ॥ ९ ॥ स्वयंवरं पिता मेऽद्य न करोति करोमि किम् ॥ दास्यामि राजपुत्राय कामं सुदर्शनाय वै ॥ १० ॥संत्यन्ये पृथिवीपाला शतशः संभृतर्द्धयः ॥ रमणीया न मे तेऽद्य राज्यहीनोऽप्यसौ मतः ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ एकाकी निर्धनश्चैव बलहीनः सुर्दशनः ॥ वनवासी फलाहारस्तस्याश्चित्ते सुसंस्थितः ॥ १२ ॥ वाग्बीजस्य जपात्सिद्धिस्तस्या एषाऽप्युपस्थिता ॥ सोऽपि ध्यानपरोऽत्यंत जजाप मंत्रमुत्तमम् ॥ १३ ॥ स्वप्ने पश्यत्यसौ देवीं विष्णुमायामखंडिताम् ॥ विश्वमातरम व्यक्तां सर्वसंपत्करांबिकाम् ॥ १४ ॥ शृङ्गवेरपुराध्यक्षो निषादः समुपेत्य तम् ॥ ददौ रथवरं तस्मै सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ १५ ॥ चतुर्भि स्तुरगैर्युक्तं पताकावरमंडितम् ॥ जैत्रं राजसुते ज्ञात्वा ददौ चोपायनं तदा ॥ १६ ॥

निर्धन बलहीन वनवासी फलभोजी सुदर्शनही उसके मनमें निवास करता हुआ ॥ १२ ॥ वाग्बीजके जपसे ही सिद्धि उसको प्राप्त हुई. और वह भी नित्य ध्यान करता हुआ मंत्र जपनेसे सिद्ध हुआ ॥ १३ ॥ यह अखण्डित विष्णुमायाको स्वप्नमें देखता, जो विष्णुकी माया अव्यक्त सब सम्पत्ति करनेवाली अम्बिका है ॥ १४ ॥ शृंगवेरपुरके अधिपति निषादने आकर सब सामग्रीसहित उसको रथ प्रदान किया ॥ १५ ॥ चार घोड़े और पताकाओंसे शोभित जयका रथ राजपुत्रको भेंट दिया ॥ १६ ॥

मित्रत्वमें उपस्थित प्रीतिसे उसने वह दिया और राजपुत्रने ग्रहण किया, और वनके मूलफलसे उस शबरकी अर्चना की ॥ १७ ॥ जब आतिथ्य होनेपर निषादराज चलागया, तब प्रीतियुक्त हो दूसरे तपस्वी कहनेलगे ॥ १८ ॥ हे राजपुत्र ! अवश्य ही तुम राज्यको प्राप्त होगे, और निःसन्देह थोड़े ही दिनोंमें तुमको राज्यकी प्राप्ति होगी ॥ १९ ॥ वरदायक विश्वकी मोहनेवाली अम्बिका देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न है. वह तुम्हारी सहाय करेगी हे सुव्रत ! किसी प्रकारकी तुम चिन्ता मत करो ॥ २० ॥ इसी प्रकार व्रतके अनुष्ठानी ब्राह्मणोंने मनोरमासे कहा. हे शुचिस्मिते ! शीघ्र ही तुम्हारा पुत्र धराधीश होगा ॥ २१ ॥ मनोरमाने कहा आपके वचन सफल हों यह आपका दास है, आप महात्मा सद्विप्रोंकी उपासनासे राज्य प्राप्ति विचित्र बात नहीं है ॥ २२ ॥ सैन्य सचिव कोश

सोऽपि जग्राह तत्प्रीत्या मित्रत्वेन सुसंस्थितम् ॥ मन्यैर्मूलफलैः सम्यगर्चयामास शंबरम् ॥ १७ ॥ कृतातिथ्ये गते तस्मिन्निषादाधिपतौ तदा ॥ मुनयः प्रीतयुक्तास्ते तमूचुस्तपसा मिथः ॥१८॥ राजपुत्र ध्रुवं राज्यं प्राप्स्यसि त्वं च सर्वथा ॥ स्वल्पै रहोभिरव्यग्रः प्रतापान्नात्र संशयः ॥ १९ ॥ प्रसन्ना तेंऽबिका देवी वरदा विश्वमोहिनी ॥ सहायस्तु सुसंपन्नो न चिंतां कुरु सुव्रत ॥२०॥ मनोरमां तथोचुस्ते मुनयः संशितव्रताः ॥ पुत्रस्तेऽद्य धराधीशो भविष्यति शुचिस्मिते ॥ २१ ॥ सा तानुवाच तन्वंगी वचनं वोऽस्तु सत्फलम् ॥ दासोऽयं विप्राः किं चित्रं सदुपासनात् ॥ २२ ॥ न सैन्यं सचिवाः कोशो न सहायश्चं कश्चन ॥ केन योगेन पुत्रो मे राज्यं प्राप्तुमिहार्हति ॥ २३ ॥ आशीर्वादेश्च वो नूनं पुत्रोऽयं मे मही पतिः ॥ भविष्यति न संदेहो भवंतो मंत्रवित्तमाः ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ रथारूढः स मेधावी यत्र याति सुदर्शनः ॥ अक्षौहिणीसमा वृत्त इवाऽऽभाति स तेजसा ॥२५॥ प्रतापो मंत्रबीजस्य नान्यः कश्चन भूपते ॥ एवं वै जपतस्तस्य प्रीतियुक्तस्य सर्वथा ॥ २६ ॥ संप्राप्य सद्गुरोर्बीजं कामराजाख्यमद्भुतम् ॥ जपेद्यस्तु शुचिः शांतः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २७ ॥

सहायादि कुछ भी नहीं है. किस योगसे मेरा पुत्र राज्य प्राप्त करेगा ? ॥ २३ ॥ अवश्य ही मेरा पुत्र आपकी कृपासे राजा होगा, इसमें सन्देह नहीं कारण कि, आप मंत्र ज्ञाता हो ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले' जहां वह मेधावी सुदर्शन रथारूढ होकर जाता वहां वह अक्षौहिणीसे युक्त विदित होता है ॥ २५ ॥ यह मंत्र बीजका ही प्रताप है और किसीका नहीं. इस प्रकार प्रीतियुक्त उसका जय करते हुए यह तो विना गुरुके मंत्रका प्रभाव है और जो ॥ २६ ॥ इस प्रकार कामराज नामक सद्गुरुके बीजको प्राप्त होकर जो शान्त होकर जपता है वह सब कामनाओंको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

ऐसी कोई वस्तु पृथ्वी वा दिव्य लोकमें दुर्लभ नहीं जो कुछ भगवतीके प्रसन्न होनेसे दुर्लभ हो ॥ २८ ॥ वे मंद दुर्भाग्य और रोगोंसे व्याप्त हैं जिनका भगवतीके अर्चनादिमें विश्वास नहीं है ॥ २९ ॥ जो युगादिमें सब देवताओंकी माता कही गई है, हे कुरूद्वह ! इसी कारण वह आदि माता कहाती है ॥३०॥ बुद्धि, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी, शक्ति, श्रद्धा, मति, स्मृति, रूपसे वह सब प्राणियोंको प्रत्यक्ष दीखती है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य मायासे मोहित हैं वे नहीं जानते. कुतर्की विश्वेश्वरी शिवाका भजन नहीं करते ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वासव, (इंद्र) वरुण यम, वायु, अग्नि, कुबेर, त्वष्टा, पूषा, अश्विनीकुमार, भग ॥ ३३ ॥ आदित्य, वसु, रुद्र , विश्वेदेवा, मरुद्गण, यह सब कोई सृष्टि स्थिति अन्त करनेवालीका सदा ध्यान करते हैं ॥ ३४ ॥ कौन विद्वान् उस

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि वाऽपि सुदुर्लभम् ॥ प्रसन्नायां शिवायाश्च यदप्राप्यं नृपोत्तम ॥ २८ ॥ ते मंदास्तेऽतिदुर्भाग्या रोगैस्ते समभिद्रुताः ॥ येषां चित्ते न विश्वासो भवेदंबार्चनादिषु ॥ २९ ॥ या माता सर्वदेवानां युगादौ परिकीर्तिता ॥ आदिमातेति विख्याता नाम्ना तेन कुरूद्वह ॥ ३० ॥ बुद्धिः कीर्तिर्धृति लक्ष्मीः शक्तिः श्रद्धा मतिः स्मृतिः ॥ सर्वेषां प्राणिनां सा वै प्रत्यक्षं वै विभासते ॥३१॥ न जानंति नरा ये वै मोहिता मायया किल ॥ न भजंति कुतर्कज्ञा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा शंभुर्वासवो वरुणो यमः ॥ वायुरग्निः कुबेरश्च त्वष्टा पूषाऽश्विनौ भगः ॥३३॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ सर्वे ध्यायंति तां देवीं सृष्टिस्थित्यंतकारिणीम् ॥ ३४ ॥ को न सेवेत विद्वान्वै तां शक्तिं परमात्मिकाम् ॥ सुदर्शनेन सा ज्ञाता देवी सर्वार्थदा शिवा ॥ ३५ ॥ ब्रह्मैवसाऽतिदुष्प्रापा विद्याऽविद्यास्वरूपिणी ॥ योगगम्या परा शक्तिर्मुमुक्षूणां च वल्लभा॥३६॥परमात्मस्वरूपं को वेत्तुमर्हति तां विना ॥ या सृष्टिं त्रिविधां कृत्वा दर्शयत्यखिलात्मने ॥ ३७॥ सुदर्शनस्तु तां देवीं मनसा परिचिंतयन् ॥ राज्यलाभात्परं प्राप्य सुखं वै कानने स्थितः ॥ ३८॥ साऽपि चंद्रकलाऽत्यर्थं कामबाणप्रपीडिता ॥ नानोपचारैरनिशं दधार दुःखितं वपुः ॥ ३९ ॥

परमात्मिका शक्तिका सेवन न करे उस सब अर्थ देनेवाली देवीको सुदर्शनने जाना ॥ ३५ ॥ वह विद्या अविद्या रूपवाली ब्रह्मकोभी दुष्प्राप है, वह पराशक्ति योगगम्य और मुमुक्षुओंकी प्रिया है ॥ ३६ ॥ उसके विना परमात्माका स्वरूप कौन जान सकता है ? जो तीन प्रकारकी सृष्टि करके सबके आत्माको दिखाती है ॥ ३७ ॥ उस भगवतीको सुदर्शन मनसे विचार कर ताहुआ वनमें स्थित हुआ भी राज्यलाभसे अधिक सुख मानता हुआ ॥ ३८ ॥ इधर यह चन्द्रकला भी काम बाणसे अतिशय पीडित हुई अनेक उपचारोंसे अपने दुःखी शरीरको धारण करती थी ॥ ३९ ॥

तबतक उसके पिताने जाना कि यह कन्या वरकी इच्छा करती है, ऐसा विचार कर उसने स्वयंवर किया ॥ ४० ॥ विद्वानोंने तीन प्रकारका स्वयंवर कहा है वह राजा हैओंके ही योग्य औरोंके नहीं ॥ ४१ ॥ एक इच्छा स्वयंवर चाहे जिसे वरले. दूसरा प्रणवाला जैसा रामको शंकर धनुभंगसे जानकी मिली ॥ ४२ ॥ तीसरा शूरता शुल्कवाला यह वीरोंका स्वयंवर है. सो राजाने इच्छा स्वयंवर किया ॥ ४३ ॥ शिल्पियोंसे अच्छे आस्तरण युक्त विछौने कराये, जब अनेक आकारके सभ्योंके मण्डप हो गये ॥ ४४ ॥ और विवाहके निमित्त सामग्रीका विस्तार हो गया, तब दुःखी हो सुलोचनी शशिकलाने अपनी सखीसे कहा ॥ ४५ ॥ सखी ! तुम मेरी मातासे जाकर यों कहो मैंने अपने मनमें ध्रुवसंधिके पुत्रको वरण कर लिया है ॥ ४६ ॥ सुदर्शनको

तावत्तस्याः पिता ज्ञात्वा कन्यां पुत्रवरार्थिनीम् ॥ सुबाहुः कारयामास स्वयं वरमतंद्रितः ॥ ४० ॥ स्वयंवरस्तु त्रिविधो विद्वद्भिः परिकीर्तितः ॥ राज्ञां विवाहयोग्यो वै यान्येषां कथितः किल ॥४१॥ इच्छास्वयं वरश्चैको द्वितीयश्च पणाभिधः ॥ यथा रामेण भग्नं वै त्र्यंबकस्य शरासनम् ॥ ४२ ॥ तृतीयः शौर्यशुल्कश्च शूराणां परिकीर्तितः ॥ इच्छास्वयंवरं तत्र चकार नृपसत्तमः ॥ ४३ ॥ शिल्पिभिः कारिता मंचाः शुभैरास्तरणैर्युताः ॥ ततश्च विविधाकाराः सुक्लृप्ताः सभ्यमंडपाः ॥ ४४ ॥ एवं कृतेऽतिसंभारे विवाहार्थं सुविस्तरे ॥ सखीं शशिकला प्राह दुःखित चारुलोचना ॥ ४५ ॥ इदं मे मातरं ब्रूहि त्वमेकांते वचो मम ॥ मया वृतः पतिश्चित्ते ध्रुवसंधिसुतः शुभः ॥ ४६॥ नान्यं वरं वरिष्यामि तमृते वै सुदर्शनम् ॥ स मे भर्ता नृपसुतो भगवत्या प्रतिष्ठितः ॥४७॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता सा सखी गत्वा मातरं प्राह सत्वरा ॥ वैदर्भीं विजने वाक्यं मधुरं मंजुभाषिणी ॥ ४८ ॥ पुत्री ते दुःखिता प्राह साध्वि त्वां मन्मुखेन यत् ॥ शृणु त्वं कुरु कल्याणि तद्धितं त्वरिताऽधुना ॥४९॥ भारद्वाजाश्रमे पुण्ये ध्रुवसंधिसुतोऽस्ति यः ॥ स मे भर्ता वृतश्चित्ते नान्यं भूपं वृणोम्यहम् ॥ ५० ॥

छोड़कर मैं अन्यको वरण न करूंगी, भगवतीका कहा हुआ वह राजपुत्र मेरा स्वामी है ॥ ४७ ॥ व्यासजी बोले, इस प्रकार वह सखी शीघ्रतासे जाकर मातासे बोली. और वह मंजु बोलनेवाली एकान्तमें वैदर्भीसे सुनने लनी ॥ ४८ ॥ हे साध्वी ! मेरे मुखसे जो तुम्हारी पुत्रीने दुःखी होकर कहा म हे कल्याणि ? उसे सुनकर तुमशीघ्रतासे प्रतिपादन करो ॥ ४९ ॥ भरद्वाजके पवित्र आश्रममें जो ध्रुवसंधिका पुत्र है उसे ही मैंने चित्तमें वरण किया है. दूसरेको मैं वरण नहीं करूंगी ॥ ५० ॥

व्यासजी बोले, रानीने यह वचन सुनकर राजाके घर आनेपर वे पुत्रीके वचन यथायोग्य वर्णन कर दिये ॥ ५१ ॥ यह वचन सुन राजा विस्मित हो हँसते हुए अपनी वैदर्भी भार्यासे बचन कहने लगे ॥५२॥ हे सुभ्रु ! क्या तुमको विदित है कि, वह कुमार बालकपनमें ही राज्यसे निकाला गया था, वह अकेला माता सहित निर्जन वनमें निवास करता है ॥ ५३ ॥ इसीके निमित्त युधाजित्ने राजा वीरसेनको मारडाला वह निर्धन स्वामी किस प्रकार इसके योग्य हो सकता है ! ॥ ५४ ॥ हे चारुलोचने ! अपनी पुत्रीसे जाकर कहो स्वयंवरमें बड़े २ राजा आवेंगे उनके विपरीत कार्य न करना चाहिये ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यासजी बोले, स्वामीके ऐसा कहनेपर रानीने पुत्रीको गोदमें करके उस

व्यास उवाच ॥ राज्ञी तद्वचनं श्रुत्वा स्वपतौ गृहमागते ॥ निवेदयामास तदा पुत्रीवाक्यं यथातथम् ॥ ५१ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विस्मितः प्रहसन्मुहुः ॥ भार्यामुवाच वैदर्भी सुबाहुस्तु ऋतं वचः ॥ ५२ ॥ सुभ्रु जानासि बालोऽसौ राज्यान्निष्कासितो वने ॥ एकाकी सह मात्रा वै वसते निर्जने वने ॥५३॥ तत्कृते निहतो राजा वीरसेनो युधाजिता ॥ स कथं निर्धनो भर्ता योग्यः स्याच्चारुलोचने ॥५४॥ ब्रूहि पुत्रीं ततो वाक्यं कदाचिदपि विप्रियम् ॥ आगमिष्यंति राजानः स्थितिमंतः स्वयंवरे ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८॥ व्यास उवाच॥ भर्त्रा साऽभिहिता बालां पुत्रीं कृत्वांऽकसंस्थिताम् ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं समाश्वास्य शुचिस्मिताम् ॥ १ ॥ किंवृथा सुदतित्वं हि विप्रियं मम भाषसे ॥ पिता ते दुःखमाप्नोति वाक्येनानेन सुव्रते ॥ २ ॥ सुदर्शनोऽति दुर्भाग्यो वरोऽयं वै वन राश्रयः ॥ बलकोशविहीनश्च परित्यक्तस्तु बांधवै ॥ ३ ॥ मात्रा सह वनं प्राप्तः फलमूलाशनः कृशः ॥ न ते योग्यो वरोऽयं वै वन वासी च दुर्भगः ॥ ४ ॥ राजपुत्राः कृतप्रज्ञा रूपवंतः सुसंमताः ॥ तवार्हाः पुत्रि संत्यन्ये राजचिह्नैरलंकृताः ॥५॥ भ्राताऽस्य वर्तते कांतः स राज्यं कोसलेषु वै ॥ करोति रूपसंपन्नः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ ६ ॥

बालासे मनोहर वचन समझाकर इस प्रकार कहा ॥ १ ॥ हे सुदति ! तुम क्यों वृथा हमारा विप्रिय कथन करती हो ? हे सुव्रते ! इस वचनसे तुम्हारा पिता दुःखी होता है ॥ २ ॥ सुदर्शन तो बडा दुर्भाग्य राजभ्रष्ट और निराश्रय है तथा बल और कोशसे हीन बांधवोंसे त्यागा हुआ है ॥३॥ वह फल मूल भोजी कृश हुआ माताके सहित वनमें प्राप्त है वह वनवासी दुर्भागी वह तेरे योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ जो राजपुत्र बड़े कृतज्ञ रूपवाले सुसंमत हैं, ! राजचिह्नोंसे युक्त ये तुम्हारे योग्य हैं ॥ ५ ॥ हे पुत्रि ! इसका भ्राता कोसल देशका राजा वह रूपसम्पन्न सब लक्षणोंसे लक्षित है ॥ ६ ॥

दे. भा. ॥५०॥

हे सुभ्रु ? और भी एक कारण है सुनो जो कुछ मैंने सुना है, युधाजित् निरन्तर उस राजकुमारके मारनेकी इच्छा करता है ॥ ७ ॥ उसने वहां संग्राम कर राज्यमें अपने दौहित्रको स्थापित किया हैऔर इसके नाना वीरसेनको मंत्री और मंत्रियोंसहित मारडाला ॥ ८ ॥ और वह युधाजित् सुदर्शनके मारनेकी इच्छासे भरद्वाजके आश्रममें प्राप्त हुआ फिर मुनिके निवारण करनेसे आश्रमसे अपने स्थानको गया ॥ ९ ॥ शशिकला बोली, हे माता! वह राजकुमार मेरा ईप्सित चाहे वनमें भी स्थित है तो भी मुझे इष्ट है, जैसा शर्यातिके वचनसे सुकन्या पतिव्रता ॥ १० ॥ च्यवनको प्राप्त होकर उनकी शुश्रूषामें तत्पर रही, स्वामीकी शुश्रूषाही स्त्रियोंको स्वर्ग और मोक्षकी देनेवाली है ॥ ११ ॥ उनसे छल न करनाही स्त्रियोंको अवश्य सुखका देने वाला है, मुझे तो उत्तमवर भगव

अन्यच्च कारणं सुभ्रु शृणु यच्च मया श्रुतम् ॥ युधाजित्सततं तस्य वधकामोऽस्ति भूमिपः ॥७॥ दौहित्रः स्थापितस्तेन राज्ये कृत्वाऽतिसंगरम् ॥ वीरसेनं नृपं हत्वा संमंत्र्य सचिवैः सह ॥८॥ भारद्वाजाश्रमं प्राप्तं हंतुकामः सुदर्शनम् ॥ मुनिना वारितः पश्चाज्जगाम निजमंदिरम् ॥ ९ ॥ शशिकलोवाच ॥ मातर्ममेप्सितः कामे वनस्थोऽपि नृपात्मजः ॥ शर्यातिवचनेनैव सुकन्या च पतिव्रता ॥ १० ॥ च्यवनं च यथा प्राप्य पतिशुश्रूषणे रता ॥ भर्तृशुश्रूषणंस्त्रीणां स्वर्गदं मोक्षदं तथा ॥ ११ ॥ अकैतवकृतं नूनं सुखदं भवति स्त्रियाः ॥ भगवत्सा समादिष्टं स्वप्ने वरमनुत्तमम् ॥ १२ ॥ तमृतेऽहं कथं चान्यं संश्रयामि नृपात्मजम् ॥ मच्चित्तभित्तौ लिखितो भगवत्या सुदर्शनः ॥ १३ ॥ तं विहाय प्रियं कांतं करिष्येऽहं न चापरम् ॥ व्यास उवाच ॥ प्रत्यादिष्टाऽथवैदर्भी तया बहुनिदर्शनैः ॥ १४ ॥ भर्तारं सर्वमाचष्ट पुत्र्योक्तं वचनं भृशम् ॥ विवाहस्य दिनादर्वागाप्तं श्रुतसमन्वितम् ॥ १५ ॥ द्विजं शशिकला तत्र प्रेषयामास सत्वरम् ॥ यथा न वेद मे तातस्तथा गच्छ सुदर्शनम् ॥ १६ ॥

तीने स्वप्नमें प्रदान करदिया है ॥ १२ ॥ उसे छोड कर मैं दूसरे राजाको कैसे आश्रित करसकती हूं? भगवतीने मेरे चित्तकी भीतमें सुदर्शनको लिख दिया है ॥ १३ ॥ उस अत्यंत प्रियको छोडकर मै दूसरेको वरण न करूंगी. व्यासजी बोले, उसने बहुत दृष्टान्तोंसे कन्याको समझाया पर उसने अनेक दृष्टान्तोंसे उसका निषेध किया ॥ १४ ॥ तब रानीने पुत्रीका कहा हुआ राजासे सुनाया और विवाहसे पहले शशिकलाने एक आप्त शास्त्र सम्मत ॥ १५ ॥ ब्राह्मणको सुदर्शनके आश्रममें भेजा और कहा पिताको समाचार ज्ञात न हो इस प्रकातुम जाओ ॥ १६ ॥

हे विभो ! भरद्वाजके आश्रममें मेरे वाक्यसे आप जाकर सुदर्शनसे कहो कि, मेरे निमित्त पिताने स्वयम्बर किया है ॥ १७॥ अनेक बली राजा इस अवसरमें आवेंगे और मैंने सर्वथा प्रीतिपूर्वक चित्तमें तुमको वरण किया है ॥ १८॥ हे देवतुल्य सुन्दर ! भगवतीने स्वप्नमें तुमको मुझे दिया है, यदि तुम न आओगे तो मैं विष खालूंगी. वा अग्निमें गिर पडूंगी ॥ १९ ॥ पिताके प्रेरणा करने पर भी मैं औरको वरण न करूंगी मन वचन कर्मसे मैंने तुमकोही वरण किया है ॥ २० ॥ और भगवती के प्रसादसे हमारा तुम्हारा कल्याण होगा. तुमको यहां दैवबलका आश्रय कर अवश्य आना चाहिये ॥ २१ ॥ जिसके अधीन यह सब चराचर जगत् वर्तता है उस भगवतीने जो आज्ञा दी है वह मिथ्या न होगी ॥ २२ ॥ जिसके वशमें शंकरादि सब देवता वर्तमान हैं. हे ब्राह्मण !

भारद्वाजाश्रमे ब्रूहि मद्वाक्यात्तरसा विभो ॥ पित्रा मे संभृतः कामं मदर्थेन स्वयंवरः ॥ १७ ॥ आगमिष्यंति राजानो बलयुक्ता ह्यनेकशः ॥ मया त्वं वै वृतश्चित्ते सर्वथा प्रीतिपूर्वकम् ॥ १८ ॥ भगवत्या समादिष्टः स्वप्ने मम सुरोपम ॥ विषमग्निं हुताशे वा प्रपतामि प्रदीपते ॥ १९ ॥ वरये त्वदृते नान्यं पितृभ्यां प्रेरिताऽपि वा ॥ मनसा कर्मणा वाचा संवृतस्त्वं मया वरः ॥ २० ॥ भगवत्याः प्रसादेन शर्मावाभ्यः भविष्यति ॥ आगंतव्यं त्वयाऽत्रैव दैवं कृत्वा परं बलम् ॥ २१ ॥ यदधीनं जगत्सर्वं वर्तते सचराचरम् ॥ भगवत्या यदादिष्टं न तन्मिथ्या भविष्यति ॥ २२ ॥ यद्वशे देवताः सर्वा वर्तंते शंकरादयः ॥ वक्तव्योऽसौ त्वया ब्रह्मन्नेकांते वै नृपात्मजः ॥ २३ ॥ यथा भवति मे कार्यं तत्कर्तव्यं त्वयानघ ॥ इत्युक्त्वा दक्षिणां दत्त्वा मुनिर्व्यापारितस्तया ॥ २४ ॥ गत्वा सर्वं निवेद्याशु तत्र प्रत्यागतो द्विजः ॥ सुदर्शनस्तु तज्ज्ञात्वा निश्चयं गमने तदा ॥ २५ ॥ चकार मुनिना तेन प्रेरितः परमादरात् ॥ व्यास उवाच ॥ गमनायोद्यतं पुत्रं तमुवाच मनोरमा ॥ २६ ॥ वेपमानाऽतिदुःखार्ता जातत्रासाऽश्रुलोचना ॥ कुत्र गच्छसि तत्राद्य समाजे भूभृतां किल ॥ २७ ॥

उस राजकुमारसे एकान्तमें आप कहना ॥ २३ ॥ हे पापरहित ! जिससे मेरा कार्य बने सोई तुमको कर्तव्य. ऐसा कह दक्षिणा देकर ब्राह्मणको बिदा किया ॥ २४ ॥ ब्राह्मणने वहां जाकर सब सुनाया और लौट आया सुदर्शनने यह सब जानकर जानेका निश्चय ॥ २५ ॥ मुनियोंसे किया और उन्होंने प्रेरणा की. परम आदरसे कहा जाओ. व्यासजी बोले; गमनमें उद्यत पुत्रसे मनोरमा कहने लगी ॥२६॥ जो उस समय दुःखसे आंसू भरे कंपित हो ही थी बोली. हे पुत्र ! बड़े राजाओंके समाजमें कहां जाते हो ? ॥ २७ ॥

तुम इकले वैरी राजाओंके स्वयंवरमें कहां जाते हो वह तुम्हारे मारने की इच्छावाला युधाजित् भी वहाँ आकर प्राप्त होगा ॥ २८ ॥ हे पुत्र ! वहां तुम्हारा कोई सहायक नही है, इस कारण तुम मत जाओ. मैं एक पुत्रा बड़ी दीन तुम्हारे आधारवाली निराश्रय हूं ॥ २९ ॥ हे महाभाग ! इस समय तुम मुझे निराश करनेको योग्य नहीं हो. जिसने मेरे पिताको मारा वहभी उस स्थानपर आया है ॥ ३० ॥ हे पुत्र ! इकला जानेसे युधाजित् तुमको मारेगा. सुदर्शनने कहा माता ! होनहार होती ही है इसमें विचार कर्तव्य नहीं ॥ ३१ ॥ जगन्माताकी आज्ञासे मैं स्वयंवरमें जाता हूं. हे वरानने ! कल्याणि ! क्षत्रिय होकर तुम शोक मत करो ॥ ३२ ॥ भगवतीके प्रसादसे मुझे कहीं भय नहीं है, व्यासजी बोले जब ऐसा कह रथपर चढ सुदर्शन जाने लगा ॥ ३३ ॥ तब मनोरमा पुत्रको

एकाकी कृतवैरश्च किं विचिंत्य स्वयंवरे ॥ युधाजिद्धंतुकामस्त्वां समेष्यति महीपतिः ॥ २८ ॥ न तेऽन्योऽस्ति सहायश्च तस्मान्मा व्रज पुत्रक ॥ एकपुत्राऽतिदीनाऽस्मि तवाऽऽधारा निराश्रया ॥ २९ ॥ नार्हसि त्वं महाभाग निराशां कर्तुमद्य माम् ॥ पितामे निहतो येन सोऽपि तत्रागतो नृपः ॥ ३० ॥ एकाकिनं गतं तत्र युधाजित्त्वां हनिष्यति ॥ सुदर्शन उवाच ॥ भवितव्यं भवत्येव नात्र कार्या विचारणा ॥ ३१ ॥ आदेशाच्च जगन्मातुर्गच्छाम्यद्य स्वयंवरे ॥ मा शोकं कुरु कल्याणि क्षत्रियाऽसि वरानने ॥ ३२ ॥ न बिभेमि प्रसादेन भगवत्या निरंतरम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा रथमारूह्य गंतुकामं सुदर्शनम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा मनोरमा पुत्रमासीर्भिश्चान्वमोदयत् ॥ अग्रतस्तेऽम्बिका पातु पार्वती पातु पृष्ठतः ॥ ३४ ॥ (पार्वती पार्श्वयोः पातु शिवः सर्वत्र सांप्रतम्) ॥ वाराही विषमे मार्गे दुर्गा दुर्गेषु कर्हिचित् ॥ कालिका कलहे घोरे पातु त्वां परमेश्वरी ॥ ३५ ॥ मंडपे तत्र मातंगी तथा सौम्या स्वयंवरे ॥ भवानी भूपमध्ये तु पातु त्वां भवमोचनी ॥ ३६ ॥ गिरिजा गिरिदुर्गेषु चामुण्डा चत्वरेषु च ॥ कामगा काननेष्वेवं रक्षतु त्वां सनातनी ॥ ३७ ॥ विवादे वैष्णवी शक्तिरक्तात्त्वां रघूद्वह ॥ भैरवी च रणे सौम्य शत्रूणां वै समागमे ॥ ३८ ॥

आशीर्वादसे प्रसन्न करने लगी कि, आगे तुमको अम्बिका और पृष्ठ भागमें भगवती रक्षा करे ॥ ३४ ॥ (पार्वती दोनों पार्श्वमें रक्षण करे शिवा सर्वत्र रक्षा करे) विषम मार्गेमें और दुर्ग मार्गमें दुर्गा रक्षा करे घोर कलहमें कालिका परमेश्वरी रक्षा करे ॥ ३५ ॥ मंडपमें मातंगी स्वयंवरमें सौम्या तुम्हारी रक्षा करे भवमोचनी भवानी राजाओंके मध्यमें तुम्हारी रक्षा करे ॥ ३६ ॥ पर्वत दुर्गम मार्गमें गिरिजा चौराहेमें चामुण्डा सनातनी कामगा वनमें तुम्हारी रक्षा करे और ॥ ३७ ॥ रघूद्वह ! विवादमें वैष्णवी शक्ति तुम्हरी रक्षा करे और शत्रुओंके समागममें भैरवी शक्ति तुम्हारी रक्षा करे ॥ ३८ ॥

वह महाकान्तिमान् इकलाही रथपर चढ माताके सहित आया है सो अवश्यही यह ककुत्स्थवंशी विवाहके निमित्त आया है ॥ ५१ ॥ इन सेना आयुधधारी राजपुत्रोंको छोड़कर क्या वह राजपुत्री इस महाभुजावालेको वरण करेगी? ॥ ५२ ॥ तब राजा युधाजित्ने उन राजाओंसे कहा मैं कन्याके निमित्त अवश्य इसको मारूंगा ॥५३॥ उस समय नीतिमें श्रेष्ठ केरलदेशाधिपतिने कहा. हे राजन् ! इस इच्छास्वयंवरमें युद्ध करना न चाहिये ॥ ५४ ॥ यहां शुल्कस्वयंवर नहीं है बलसे हरण नहीं होगा यहां तो कन्याकी इच्छासे वरण होगा. विवाद कैसा? ॥ ५५ ॥ पहले आपने अन्यायसे इसको राज्यसे निकाल दिया और बलपूर्वक दौहित्र को राज्य दिया ॥ ५६ ॥ हे महाभाग ! यह काकुत्स्थभी कोशलदेशके राजाका पुत्र है विना अपराध इस राजपुत्रको कैसे मारोगे ? ॥ ५७ ॥

एकाकी रथमारुह्य मात्रा सह महामतिः ॥ विवाहार्थमिहायातः काकुत्स्थः किंनु सांप्रतम् ॥ ५१ ॥ एतान्राजसुतांस्त्यक्त्वा ससैन्यान्सायुधानथ ॥ किमेनं राजपुत्री सा वरिष्यति महाभुजम् ॥ ५२ ॥ युधाजिदथ राजेशस्तानुवाच महीपतीन् ॥ अहं मेनं हनिष्यामि कन्याऽर्थे नात्र संशयः ॥ ५३ ॥ केरलाधिपतिः प्राह तं तदा नीतिसत्तमः ॥ नात्र युद्धं प्रकर्तव्यं राजन्निच्छास्वयंवरे ॥ ५४ ॥ बलेन हरणं नास्ति नात्र शुल्कस्वयंवरः ॥ कन्येच्छयाऽत्र वरणं विवादः कीदृशस्त्विह ॥ ५५ ॥ अन्यायेन त्वया पूर्वमसौ राज्यात्प्रवासितः ॥ दौहित्रायार्पितं राज्यं बलवन्नृपसत्तम ॥ ५६ ॥ काकुत्स्थोऽयं महाभाग कोसलाधिपतेः सुतः ॥ कथमेनं राजपुत्रं हनिष्यसि निरागसम् ॥ ५७ ॥ नप्स्यसे तत्फलं नूनमनयस्य नृपोत्तम ॥ शास्ताऽस्ति कश्चिदायुष्माञ्जगतोऽस्य जगत्पतिः ॥ ५८ ॥ धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम् ॥ माऽनयं कुरु राजेंद्र त्यज्य पापमतिं किल ॥ ५९ ॥ दौहित्रस्तव संप्राप्तः सोऽपि रूपसमन्वितः ॥ राज्ययुक्त स्तथा श्रीमान्कथं तं न वरिष्यति ॥ ६० ॥ अन्ये राजसुताः कामं वर्तंते बलवत्तराः ॥ कन्यास्वयंवरे कन्या स्वीकरिष्यति सांप्रतम् ॥ ६१ ॥ वृते तथा विवादः कः प्रवदंतु महीभुजः ॥ परस्परं विरोधोऽत्र न कर्तव्योविजानता ॥ ६२ ॥

हे राजन् ! अनीतिका फल तुमको अवश्य मिलेगा. हेराजन् ! इस जगत्का अधिपति विलक्षण कोई परमेश्वर रक्षक है ॥ ५८ ॥ धर्मकी जय है अधर्मकी नहीं; सत्यकी जय है असत्यकी नहीं. हे राजन् ! अनीति मत करो पापमति छोड़ो ॥ ५९ ॥ तुम्हारा धेवता प्राप्त हुआ है सो भी रूपवान् है और राजयुक्त श्रीमान् है उसको क्यों न वरेगी ? ॥ ६० ॥ और भी बड़े बली राजपुत्र हैं इस कन्याके स्वयंवरमें आये हैं किसीको कन्या स्वीकार करेगी ॥ ६१ ॥ स्वयंवरमें विवाद कैसा ? सो कहिये तो, बुद्धिमान् को जानकर परस्पर विरोध न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

वह महाकान्तिमान् इकलाही रथपर चढ माताके सहित आया है सो अवश्यही यह ककुत्स्थवंशी विवाहके निमित्त आया है ॥ ५१ ॥ इन सेना आयुधधारी राजपुत्रोंको छोड़कर क्या वह राजपुत्री इस महाभुजावालेको वरण करेगी? ॥ ५२ ॥ तब राजा युधाजित्ने उन राजाओंसे कहा मैं कन्याके निमित्त अवश्य इसको मारूंगा ॥५३॥ उस समय नीतिमें श्रेष्ठ केरलदेशाधिपतिने कहा. हे राजन् ! इस इच्छास्वयंवरमें युद्ध करना न चाहिये ॥ ५४ ॥ यहां शुल्कस्वयंवर नहीं है बलसे हरण नहीं होगा यहां तो कन्याकी इच्छासे वरण होगा. विवाद कैसा? ॥ ५५ ॥ पहले आपने अन्यायसे इसको राज्यसे निकाल दिया और बलपूर्वक दौहित्र को राज्य दिया ॥ ५६ ॥ हे महाभाग ! यह काकुत्स्थभी कोशलदेशके राजाका पुत्र है विना अपराध इस राजपुत्रको कैसे मारोगे ? ॥ ५७ ॥

एकाकी रथमारुह्य मात्रा सह महामतिः ॥ विवाहार्थमिहायातः काकुत्स्थः किंनु सांप्रतम् ॥ ५१ ॥ एतान्राजसुतांस्त्यक्त्वा ससैन्यान्सायुधानथ ॥ किमेनं राजपुत्री सा वरिष्यति महाभुजम् ॥ ५२ ॥ युधाजिदथ राजेशस्तानुवाच महीपतीन् ॥ अहं मेनं हनिष्यामि कन्याऽर्थे नात्र संशयः ॥ ५३ ॥ केरलाधिपतिः प्राह तं तदा नीतिसत्तमः ॥ नात्र युद्धं प्रकर्तव्यं राजन्निच्छास्वयंवरे ॥ ५४ ॥ बलेन हरणं नास्ति नात्र शुल्कस्वयंवरः ॥ कन्येच्छयाऽत्र वरणं विवादः कीदृशस्त्विह ॥ ५५ ॥ अन्यायेन त्वया पूर्वमसौ राज्यात्प्रवासितः ॥ दौहित्राय ार्पितं राज्यं बलवन्नृपसत्तम ॥ ५६ ॥ काकुत्स्थोऽयं महाभाग कोसलाधिपतेः सुतः ॥ कथमेनं राजपुत्रं हनिष्यसि निरागसम् ॥ ५७ ॥ नप्स्यसे तत्फलं नूनमनयस्य नृपोत्तम ॥ शास्ताऽस्ति कश्चिदायुष्माञ्जगतोऽस्य जगत्पतिः ॥ ५८ ॥ धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम् ॥ माऽनयं कुरु राजेंद्र त्यज्य पापमतिं किल ॥ ५९ ॥ दौहित्रस्तव संप्राप्तः सोऽपि रूपसमन्वितः ॥ राज्ययुक्त स्तथा श्रीमान्कथं तं न वरिष्यति ॥ ६० ॥ अन्ये राजसुताः कामं वर्तंते बलवत्तराः ॥ कन्यास्वयंवरे कन्या स्वीकरिष्यति सांप्रतम् ॥ ६१ ॥ वृते तथा विवादः कः प्रवदंतु महीभुजः ॥ परस्परं विरोधोऽत्र न कर्तव्योविजानता ॥ ६२ ॥

हे राजन् ! अनीतिका फल तुमको अवश्य मिलेगा. हेराजन् ! इस जगत्का अधिपति विलक्षण कोई परमेश्वर रक्षक है ॥ ५८ ॥ धर्मकी जय है अधर्मकी नहीं; सत्यकी जय है असत्यकी नहीं. हे राजन् ! अनीति मत करो पापमति छोड़ो ॥ ५९ ॥ तुम्हारा धेवता प्राप्त हुआ है सो भी रूपवान् है और राजयुक्त श्रीमान् है उसको क्यों न वरेगी ? ॥ ६० ॥ और भी बड़े बली राजपुत्र हैं इस कन्याके स्वयंवरमें आये हैं किसीको कन्या स्वीकार करेगी ॥ ६१ ॥ स्वयंवरमें विवाद कैसा ? सो कहिये तो, बुद्धिमान् को जानकर परस्पर विरोध न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ व्यासजी बोले, केरलदेशके राजाने ऐसा कहा तब हे महाभाग ! युधाजित् राजा बोला ॥१॥ हे राजन् ! जो कुछ आप कहते हो क्या नीति यही है ? राजाओंके समाजमें तुम जितेन्द्रिय सत्यवाक् हो ॥ २ ॥ परन्तु हे कुलश्रेष्ठ ! योग्य कुलके वर्तमान होते कन्यारत्न अयोग्यको प्राप्त हो ? क्या यह न्याय आपको अच्छा लगता है ? ॥ ३ ॥ सिंहका भाग गीदड़ किस प्रकार भोग सकता है ? वैसे क्या यह सुदर्शन कन्यारत्नको प्राप्त हो सकता है ॥४॥ ब्राह्मणोंका बल वेद और राजाओंका बल धनुष है, हे महाराज ! इस स्थलमें क्या अन्याय करता हूं ? ॥ ५ ॥ जैसे राजाओंका विवाहमें शुल्क बल कहा है कि बलवान्‌ही कन्या ग्रहण कर सकता है. निर्बल नहीं ॥ ६ ॥ इस कारण कन्याका पण करके

इति श्रीदे० म० तृ० एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ व्यास उवाच ॥ इतिवादिनि भूपाले केरलाधिपतौ तदा ॥ प्रत्युवाच महाभाग युधाजिदपि पार्थिवः ॥ १ ॥ नीतिरियं महीपाल यद्ब्रवीति भवानिह ॥ समाजः पार्थिवानां वै सत्यवाग्विजितेंद्रियः ॥ २ ॥ योग्येषु वर्तमानेषु कन्यारत्नं कुलोद्वह ॥ अयोग्योऽर्हति भूपाल न्यायोऽयं तव रोचते ॥ ३ ॥ भागं सिंहस्य गोमायुर्भोक्तुमर्हति वा कथम् ॥ तथा सुदर्शनोऽयं वै कन्यारत्नं किमर्हति ॥ ४ ॥ बलं वेदो हि विप्राणां भूभुजां चापजं बलम् ॥ किमन्याय्यं महाराज ब्रवीम्यह मिहाधुना ॥ ५ ॥ बलं शुल्कं यथाराज्ञां विवाहे परिकीर्तितम् ॥ बलवानेव गृह्णातु नाबलस्तु कदाचन ॥ ६ ॥ तस्मात्कन्यां पणं कृत्वा नीतिरत्र विधीयताम् ॥ अन्यथा कलहः कामं भविष्यति महीभुजाम् ॥ ७ ॥ एवं विवादे संवृत्ते राज्ञां तत्र परस्परम् ॥ आहूतस्तु सभा मध्येसुबा हुर्नृपसत्तमः ॥ ८ ॥ समाहूय नृपाः सर्वे तमूचुस्तत्त्वदर्शिनः ॥ राजन्नीतिस्त्वया कार्या विवाहेऽत्र समाहिता ॥ ९ ॥ किं ते चिकीर्षितं राजंस्तद्वदस्वसमाहितः ॥ पुत्र्याः प्रदानं कस्मै ते रोचते नृप चेतसि ॥१०॥ सुबाहुरुवाच ॥ पुत्र्या मे मनसा कामं वृतः किल सुदर्शनः ॥ मया निवारिताऽत्यर्थं न सा प्रत्येति मेवचः ॥ ११ ॥

नीतिका विधान कियाजाय, नहीं तो अवश्य राजाओंमें क्लेश होगा ॥ ७ ॥ इस प्रकार वहां राजाओंके परस्पर विवाद होनेमें सभामें राजा सुबाहु बुलाया गया ॥ ८ ॥ उसको बुलाकर सब तत्वदर्शी राजा कहने लगे. हे राजन् ! आपको इस विवाहमें नीति करनी चाहिये ॥ ९ ॥ हे राजन् ! आपकी क्या इच्छा है सो यथेष्ट हमसे कहिये. हे राजन् ! आप मनमें अपनी पुत्री किसको देना चाहते हैं? ॥ १० ॥ सुबाहुने कहा. मेरी पुत्रीने मनमें सुदर्शनको वरण किया है, मैंने उसको निवारण किया पर वह मेरा वचन नहीं मानती ॥ ११ ॥

इस बातको मैं क्या करूं ! मेरी पुत्रीका मन वशीभूत नहीं और सुदर्शनभी इकला निर्भय आकर प्राप्त हुआ है ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले,सब राजा सुदर्शनको बुलाकर इकले उस शान्तसे इस प्रकारके वचन कहने लगे ॥ १३ ॥ हे राजपुत्र महाभाग ! तुमको किसने बुलाया है ? जो तुम इन राजाओंके समाजमें इकले आये हो ॥ १४ ॥ सेना मंत्री कोश बल कुछभी तुम्हारे पास नहीं है फिर तुम कैसे आये हो ? यह तत्वसे कहिये ॥ १५ ॥ इस समागममें बहुतसे राजा युद्धकी इच्छासे वर्तमान हैं. यह सेना कन्याके निमित्त सम्पन्न हुई है. तुम क्या करनेकी इच्छा करते हो ! ॥ १६ ॥ तुम्हारा भाई शूरसेनासहित तुमको मारनेकी इच्छासे प्राप्त हुआ है. और महाबाहु युधाजित्भी सहाय करनेको आया है ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र! तुम यहां रहो वा जाओ यह मैंने सत्यही कहा है तुम

किं करोमि सुताया मे न वशे वर्तते मनः ॥ सुदर्शनस्तथैकाकीसंप्राप्तोऽस्ति निराकुलः ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ संपन्नभूभुजः सर्वे
समाहूय सुदर्शनम् ॥ ऊचुः समागतं शांतमेकाकिनमतंद्रिताः ॥ १३ ॥ राजपुत्र महाभाग केनाहूतोऽसि सुव्रत ॥ एकाकी यः समायातः
समाजे भूभृतामिह ॥ १४ ॥ न वै सैन्यं न सचिवा न कोशो न बृहद्बलम् ॥ किमर्थं च समायातस्तत्त्वं ब्रूहि महामते ॥ १५ ॥ युद्ध
कामा नृपतयो वर्ततेऽत्र समागमे ॥ कन्यार्थं सैन्यं सम्पन्ना किंत्वं कर्तुमिहेच्छसि ॥ १६ ॥ भ्राता ते सुबलःशूरः संप्राप्तोऽस्ति जिघृ
क्षया ॥ युधाजिच्च महाबाहुः साहाय्यं कर्तुमागतः ॥ १७ ॥ गच्छ वा तिष्ठ राजेंद्र याथातथ्यमुदाहृतम् ॥ त्वयि सैन्यविहीने च यथेष्टं
कुरु सुव्रत ॥ १८ ॥ सुदर्शन उवाच ॥ न बलं न सहायो मे न कोशो दुर्गसंश्रयः ॥ न मित्राणि न सौहार्दी न नृपारक्षका मम ॥ १९ ॥
अत्र स्वयंवरं श्रुत्वा द्रष्टुकाम इहागतः ॥ स्वप्ने देव्या प्रेरितोऽस्मि भगवत्या न संशयः ॥ २० ॥ नान्यच्चिकीर्षितं मेऽद्य मामाह
जगदीश्वरी ॥ तया यद्विहितं तच्च भविताऽद्यन संशयः ॥ २१ ॥ न शत्रुरस्ति संसारे कोऽप्यत्र जगदीश्वराः ॥ सर्वत्र पश्यतो मेऽद्य
भवानीं जगदंबिकाम् ॥ २२ ॥

सेनाहीन हो विचार कर जो इच्छा हो सो करो ॥ १८ ॥ सुदर्शन बोले, सेना, कोशदुर्गका आश्रय और सहायता हमारे पास कुछ नहीं है 'मित्र सुहृद् और कोई राजाभी रक्षक नहीं है ॥ १९ ॥ यहां स्वयंवर सुनकर केवल देखनेकी इच्छासे चला आया हूं और स्वप्नमें भगवती देवीने मुझको प्रेरणा किया है ॥ २० ॥ मेरी कोई भी इच्छा नहीं केवल भगवतीने मुझको कहा हैजो उस ने विधान किया है वह होगा इसमें संदेह नहीं है ॥ २१ ॥ इस संसारमें कोई भी शत्रु नहीं है सर्वत्र जगदीश्वरी अम्बिका दिखाई देती है ॥ २२ ॥

हे राजो! कोई मेरे साथ शत्रुता करेगा उसकी शास्ता जगदम्बिका है मैं शत्रुता नहीं जानता ॥ २३ ॥ हे राजो! जो होनहार है वह अन्यथा नहीं होती इसमें क्या चिंता करनी चाहिये? मैं सदा दैवाधीन हूं ॥ २४ ॥ देव भूत मनुष्य सब प्राणियोंमें सबमें शक्ति विद्यमान है उसके सिवाय और कुछ नहीं है ॥ २५ ॥ हे राजो! जो वह इच्छा करती है वही होता है निधनी धनी वही करती है, इसमें मुझे क्या चिंता है ? ॥२६॥ उस परम शक्तिके विना ब्रह्मा विष्णु हरादि देवता कुछ भी करनेको समर्थ नहीं. फिर मुझे क्या चिंता है ? ॥ २७ ॥ अशक्त शक्त जो कुछ भी हूं सो हूं हे राजो! उसकी आज्ञासे मैं स्वयंवरमें प्राप्त हुआ हूं ॥ २८ ॥ वह जो इच्छा करेगी सो होगा मेरी चिंता करनेसे क्या है ? इसमें शंका न करनी चाहिये. यह मैं सत्य कहता हूं ॥ २९ ॥

यः करिष्यति शत्रुत्वं मया सह नृपात्मजाः ॥ शास्ता तस्य महाविद्या नाहं जानामि शत्रुताम् ॥ २३ ॥ यद्भावि तद्भै भविता नान्यथा नृपसत्तमाः ॥ का चिंता ह्यत्र कर्तव्या दैवाधीनोऽस्मि सर्वदा ॥ २४ ॥ देवभूतमनुष्येषु सर्वभूतेषु सर्वदा ॥ सर्वेषां तत्कृता शक्तिर्नान्यथा नृपसत्तमाः ॥ २५ ॥ सा यं चिकीर्षते भूपं तं करोति नृपाधिपाः ॥ निर्धनं वा नरं कामं का चिंता वै तदा मम ॥ २६ ॥ तामृते परमां शक्तिं ब्रह्म विष्णुहरादयः ॥ न शक्ताः स्पंदितुं देवाः का चिंता मे तदा नृपाः ॥ २७ ॥ अशक्तो वा सशक्तो वा यादृशस्तादृशस्त्वहम् ॥ तदाज्ञया नृपाऽद्यैव संप्राप्तोऽस्मिस्वयंवरे ॥ २८ ॥ सा यदिच्छति तत्कुर्यान्मम किं चिंतनेन वै ॥ नात्र शंका प्रकर्तव्या सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २९ ॥ जये पराजये लज्जा न मेऽत्राण्वपि पार्थिवाः ॥ भगवत्यास्तु लज्जाऽस्ति तदधीनोऽस्मि सर्वदा ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य तदाकर्ण्य वचनं राजसत्तमाः ॥ ऊचुः परस्परं प्रेक्ष्य निश्चयज्ञा नराधिपाः ॥ ३१ ॥ सत्यमुक्तं त्वया साधो न मिथ्या कर्हिचिद्भवेत् ॥ तथाऽप्युज्जयिनीनाथस्त्वां हंतुं परिकांक्षति ॥ ३२ ॥ त्वत्कृतेन दया दिष्टा त्वां ब्रवीमो महामते ॥ यद्युक्तं तत्त्वया कार्यं विचार्य मनसाऽऽनघ ॥ ३३ ॥

हे राजन्! मुझको जय पराजयकी कुछ भी लज्जा नहीं यह लज्जा भगवतीको है मैं सर्वदा इसके अधीन हूं ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले, हे राजसत्तम ! इस प्रकारसे उस कुमारके वचन सुन वे उसके निश्चय जानने वाले राजा कहने लगे ॥ ३१ ॥ हे साधो! जो तुमने कहा वह सत्य है मिथ्या नहीं होगा तो भी उज्जयनीका स्वामी तुमको मारनेकी इच्छा करता है ॥ ३२ ॥ हे महामते ! तुम्हारे ऊपर दया करके हम तुमसे कहते हैं. पर जो कुछ होना है वह तुमको मनसे विचारकर कहना चाहिये ॥ ३३ ॥

सुदर्शनने कहा आप कृपालु सुहृज्जनोंने सत्य कहा है आपके कथनपर फिर भी मैं कहता हूं ॥ ३४ ॥ किसीसे किसीकी मृत्यु कभी नहीं होती. यह स्थावर जंगमात्मक सब जगत् दैवके अधीन है ॥ ३५ ॥ यह जीव अपने वशमें नहीं सदा कर्मके अधीन है. सो तत्त्वदर्शी विद्वानोंने तीन प्रकारका कर्म कहा है ॥ ३६ ॥ संचित् वर्तमान और प्रारब्ध इस प्रकार काल कर्मसे सारा जगत् विस्तृत हो रहा है ॥ ३७ ॥ कालके आये विना दैव किसीके मारनेको समर्थ नहीं है परंतु सनातन काल निमित्त मात्रसे मारे हुए सबको मारता है ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार शत्रुनाशी मेरे पिताको सिंहने मारा इसी प्रकार मातामहको भी युद्धमें कालने मारा ॥ ३९ ॥ कोटि यत्नभी करो परन्तु दैवयोगसे मृत्यु होतीही है दैवकी इच्छासे विना रक्षाके भी सहस्र वर्षतक प्राणी जीता है ॥ ४० ॥

सुदर्शन उवाच ॥ सत्यमुक्तं भवद्भिश्च कृपावद्भिः सुहृज्जनैः ॥ किं ब्रवीमि पुनर्वाक्यमुक्त्वा नृपतिसत्तमाः ॥ ३४ ॥ न मृत्युः केनचिद्राव्यः कस्यचिद्वा कदाचन ॥ दैवाधीनमिदं सर्वं जगस्थावरजंगमम् ॥ ३५ ॥ स्ववशोऽयं न जीवोऽस्ति स्वकर्मवशगः सदा ॥ तत्कर्म त्रिविधं प्रोक्तं विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥३६॥ संचितं वर्तमानं च प्रारब्धं च तृतीयकम् ॥ कालकर्मस्वभावैश्च ततं सर्वमिदं जगत्॥ ३७ ॥ न देवो मानुषं हंतुं शक्तः कालागमं विना ॥ हतं निमित्तमात्रेण हंति कलः सनातनः ॥३८॥ यथा पिता मे निहतः सिंहेनामित्रकर्षणः ॥ तथा मातामहोऽप्येवंयुद्धे युधाजिता हतः ॥ ३९ ॥ यत्नकोटिं प्रकुर्वाणो हन्यते दैवयोगतः ॥ जीवेद्वर्षसहस्राणि रक्षणेन विना नरः ॥ ४० ॥ नाहं बिभेमिधर्मिष्ठाः कदाचिन्न युधाजितः ॥ दैव मेव परं मत्वा सुस्थितोऽस्मि सदा नृपाः ॥ ४१ ॥ स्मरणं सततं नित्यं भगवत्याः करोम्यहम् ॥ विश्वस्य जननी देवी कल्याणं सा करिष्यति ॥ ४२ ॥ पूर्वार्जितं हि भोक्तव्यं शुभं वाऽप्य शुभं तथा ॥ स्वकृतस्य च भोगेन कीदृक्छोको विजानताम् ॥ ४३ ॥ स्वकर्मफलयोगेन प्राप्य दुःखमचेतनः ॥ निमित्तकारणे वैरं करोत्यल्पमतिः किल ॥ ४४ ॥ न तथाऽहं विजानामि वैरं शोकं भयं तथा ॥ निःशंकमिह संप्राप्तः समाजे भूभृतामिह ॥ ४५ ॥

हे धर्मात्माओ ! मैं युधाजित् से किसी प्रकारभी नहीं डरता हूं. हे राजो ! मैं दैवकोही परम मानकर स्थित हो रहा हूं ॥ ४१ ॥ नित्य प्रति भगवतीकाही स्मरण मैं करता हूं वह विश्वकी जननी देवी कल्याण करेगी ॥ ४२ ॥ पूर्वार्जितही शुभ वा अशुभ भोगा जाता है, जब अपना किया भोगा है तो ज्ञानीको शोक क्या है ? ॥ ४३ ॥ यह अचेतन अपने कर्मयोगसे ही दुःख पाता है, फिर यह अल्पमति निमित्त कारणसे ही वैर करता है ॥ ४४ ॥ मैं वैर शोक भय नहीं जानता. इन राजाओंके समाजमें निश्शंक आकर प्राप्त हुआ हूं ॥ ४५ ॥

मैं उत्तम स्वयंवरको इकलाही देखनेकी इच्छासे आया हूं. जो होनहार है सो होगी मैं चण्डिकाकी आज्ञासे प्राप्त हुआ हूं ॥ ४६ ॥ मेरा प्रमाण भगवती ही है और मैं नहीं जानता उसीका किया हुआ सुख दुःख होगा इसमें अन्यथा न होगा ॥ ४७ ॥ युधाजित् सुख प्राप्त करे. हे राजो ! मुझको वैर नहीं है जो मुझसे वैर करेगा वह उसका फल पावेगा ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले, ऐसा कहने पर राजा सन्तुष्ट हुए और वहभी अपने आश्रमको प्राप्त होकर स्थित हुए ॥ ४९ ॥ दूसरे दिन शुभकालमें राजा निमंत्रित हुए राजा सुबाहुने सुन्दर मंदिरमें बुलाया ॥ ५० ॥ जो कि; मंचक दिव्य बिछोनेसे शोभित थे उनपर अच्छे शृंगार कर राजा बैठे ॥ ५१ ॥ वह दिव्य वेष धारण किये हुए जैसे विमानोंमें देवता हों इस प्रकार दीप्यमान हो स्वयंवर देखनेकी इच्छासे

एकाकी द्रष्टु कामोऽहं स्वयंवरमनुत्तमम् ॥ भविष्यति च यद्भाव्यं प्राप्तोऽस्मि चंडिकाज्ञया ॥ ४६ ॥ भगवत्या प्रमाणं मे नान्यं जानामि संयतः ॥ तत्कृतं च सुखं दुखं भविष्यति च नान्यथा ॥ ४७ ॥ युधाजित्सुखमाप्नोतु नमे वैरं नृपोत्तमाः ॥ यः करिष्यति मे वैरं स प्राप्स्यति फलं तथा ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तास्ते तथा तेन संतुष्टा भूभुजः स्थिताः ॥ सोऽपि स्वमाश्रमं प्राप्य सुस्थितः संबभूव ह ॥ ४९ ॥ अपरेऽह्नि शुभे काले नृपाः संमंत्रिताः किल ॥ सुबाहुना नृपेणाथ रुचिरे वै स्वमंडपे ॥ ५० ॥ दिव्यास्तरण युक्तेषु मंचेषु रचितेषु च ॥ उपविष्टाश्च राजानः शुभालंकरणैर्युताः ॥ ५१ ॥ दिव्यवेषधराः कामं विमानेष्वमरा इव ॥ दीप्यमानाः स्थितास्तत्र स्वयंबर दिदृक्षया ॥ ५२ ॥ इति चिंतापराः सर्वे गदा साऽप्यागमिष्यति ॥ भाग्यवंतं नृपश्रेष्ठं श्रुतपुण्यं वरिष्यति ॥ ५३ ॥ यदा सुदर्शनं दैवात्स्रजा संभूषयेदिह ॥ विवादो वै नृपाणां च भविता नात्र संशयः ॥ ५४ ॥ इत्येवं चिंत्यमानास्ते भूपा मंचेषु संस्थिताः ॥ वादित्रघोषः सुमहानुत्थितो नृपमंडपे ॥ ५५ अथ काशीपतिः प्राह सुतां स्नातां स्वलंकृताम् ॥ मधूकमालासंयुक्तां क्षौमवासोविभूषिताम् ॥ ५६ ॥

बैठे ॥ ५२ ॥ और सबको यह चिंता हुई वह राजपुत्री कब आवेगी और किसी भाग्यवान् श्रुतपुण्य राजाको वरण करेगी ॥ ५३ ॥ और यदि प्रारब्धसे सुदर्शनको मालासे भूषित करे तो अवश्य राजाओंका विवाद होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥ ऐसा विचार कर वे राजा मंचोंपर स्थित हुए और नृप मंडलमें बडा बाजोंका शब्द होने लगा ॥ ५५ ॥ तब स्नान कर अलंकृत हुई अपनी कन्यासे काशीपतिने कहा महुएकी माला पहरे क्षौम वस्त्रसे अलंकृत थी ॥ ५६ ॥

उसका दिव्य लक्ष्मीके समान विवाहका उपस्कर देखकर कि, सुवस्त्र धारण करके भी चिंतामें प्राप्त है, राजा हँसते हुए यह वचन बोला ॥ ५७ ॥ हे सुनासे पुत्रि ! उठो और हाथमें माला लेकर राजाओंके समाज मण्डपमें जाओ ॥ ५८ ॥ गुणवान् रूपसम्पन्न राजा जो तुम्हारे मनमें बसे हे सुमध्यमे ! उसीको वरण करो, ॥ ५९ ॥ देश देशके राजा रचे हुए मंचोंमें बैठे हुए हैं हे तन्वंगि ! उनको देखकर वरणकरो, जिसमें तुम्हारी रुचि हो ॥ ६० ॥ व्यासजी बोले ! इस प्रकार पिताके कहने पर यह सुभाषिणी बाला ललित धर्म संयुक्त वचन इस प्रकारसे बोली ॥ ६१ ॥ शशिकला बोली, हे पितः ! मैं किसी भी राजाको दृष्टिमार्गमें प्राप्त न हूंगी जो स्त्री कामुक राजाओंके दृष्टिमार्गमें जाती हैं, वह और होती हैं ॥ ६२ ॥ हे तात ! धर्मशास्त्रमें मैंने यह

विवाहोपस्करैर्युक्तां दिव्यां सिंधुसुतोपमाम् ॥ चिंतापरां सुवसनां स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ ५७ ॥ उत्तिष्ठ पुत्रि सुनसे करे धृत्वा शुभांस्रजम् ॥ व्रजमंडपमध्येऽद्य समाजं पश्य भूभुजाम् ॥ ५८ ॥ गुणवान्रूपसंपन्नः कुलीनश्च नृपोत्तमः ॥ तव चित्ते वसेद्यस्तु तं वृणुष्व सुमध्यमे ॥ ५९ ॥ देशदेशाधिपाः सर्वे मंचेषु रचितेषु च ॥ संविष्टाः पश्य तन्वंगि वरयस्व यथारुचि ॥ ६० ॥ व्यास उवाच ॥ तं तथा भाषमाणं वै पितरं मितभाषणी ॥ उवाच वचनं बाला ललितं धर्मसंयुतम् ॥ ६१ ॥ शशिकलोवाच ॥ नाहं दृष्टिपथे राज्ञां गमिष्यामि पितः किल ॥ कामुकानां नरेशानां गच्छंत्यन्याश्च योषितः ॥ ६२ ॥ धर्मशास्त्रे श्रुतं तात मयेदं वचनं किल ॥ एक एव वरो नार्या निरीक्ष्यः स्यान्न चापरः ॥ ६३ ॥ सतीत्वं निर्गत्वं तस्या या प्रयाति बहूनथ ॥ संकल्पयंति ते सर्वे दृष्ट्वा मे भवतात्त्विति ॥ ६४ ॥ स्वयंवरे स्रजं धृत्वा यदा गच्छति मंडपे ॥ सामान्या सा तदा जाता कुलटेवापरा वधूः ॥ ६५ ॥ वारस्त्री विपणे गत्वा यथा वीक्ष्य नरान्स्थितान् ॥ गुणागुणपरिज्ञानं करोति निज मानसे ॥ ६६ ॥ नैकभावा यथा वेश्या वृथा पश्यति कामुकम् ॥ तथाऽहं मंडपे गत्वा कुर्वे वारस्त्रिया कृतम् ॥ ६७ ॥

वचन सुना है कि, स्त्रियोंको एकही वर देखना चाहिये दूसरा नहीं ॥ ६३ ॥ जो बहुतोंके समीप जाती है उसका सतीत्व जाता रहता है, उसको देखकर सब यह इच्छा करते हैं कि यह मेरी हो जाय ॥ ६४ ॥ स्वयंवरमें माला धारणकर जब मण्डपमें जाती है तभी वह वधू सामान्या कुलटाके समान हो जाती है ॥ ६५ ॥ जैसे वारस्त्री बाजा रोंमें जाकर अनेक पुरुषोंको देखती हैं और गुण अगुणका ज्ञान अपने मनमें करती हैं ॥ ६६ ॥ जैसे वेश्या एकभाव न होकर कामीको वृथा देखती है, क्या इसी प्रकार मैं मण्डपमें जाकर वारस्त्रियोंका कृत्य करूं ? ॥ ६७ ॥

यह जो वृद्धोंने किसी कारण वंशधर्म किया है; मैं इसको इस समय न करूंगी, कारण कि मनमें पतिवरण करचुकी मैं तो पत्नीव्रतका आचरण करूंगी ॥ ६८ ॥ सामान्या पहले जाकर मनमें बहुत संकल्प करके फिर विचार कर एकको वरती है मैं कब ऐसा कर सकती हूं ? ॥ ६९ ॥ कारणकि मैं सर्वात्मासे पहिले सुदर्शनको वरणकर चुकी हूं हे राजन् ! उसके सिवाय और करनेकी इच्छा नहीं है ॥ ७० ॥ हे राजन् ! आप अच्छे दिन विवाहकी विधिसे कन्यादान सुदर्शनको कर दो जो मेरा हित चाहते हो ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यासजी बोले, सुबाहु यह कन्याका वचन सुन बड़ी चिन्तामें मग्न हुआ कि अब क्या करूं ? ॥ १ ॥ सेना सामग्रीसहित राजा प्राप्त हुए हैं महाबली युद्धकी

वृद्धैरेतैः कृतं धर्मं न करिष्यामि सांप्रतम् ॥ पत्नीव्रतं तथा कामं चरिष्येऽहं धृतव्रता ॥ ६८ ॥ सामान्या प्रथमं गत्वा कृत्वा संकल्पितं बहु ॥ वृणोति चैकं तद्वद्वै वृणोमि कथमद्य वै ॥ ६९ ॥ सुदर्शनो मया पूर्वं वृतः सर्वात्मना पितः ॥ तमृते नान्यथा कर्तुमिच्छामि नृपसत्तम ॥ ७० ॥ विवाहविधिना देहि कन्यादानं शुभे दिने ॥ सुदर्शनाय नृपते यदीच्छसि शुभं मम ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीय स्कंधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ सुबाहुरपि तच्छ्रुत्वा युक्तमुक्तं तया तदा ॥ चिंताविष्टो बभूवाशु किं कर्तव्यमितः परम् ॥ १ ॥ संगताः पृथिवीपालाः ससैन्याः सपरिग्रहाः ॥ उपविष्टाश्च मंचेषु योद्धुकामा महाबलाः ॥ २ ॥ यदि ब्रवीमि तान्सर्वान्सुता नायाति सांप्रतम् ॥ तथाऽपि कोपसंयुक्ता हन्युर्मां दुष्टबुद्धयः ॥ ३ ॥ न मे सैन्यबलं तादृङ् न दुर्गबलमद्भुतम् ॥ येनाहं नृपतिसर्वान्प्रत्यादेष्टुमिहोत्सहे ॥ ४ ॥ सुदर्शनस्तथैकाकी ह्यसहायोऽधनः शिशुः ॥ किं कर्तव्यं निमग्नोऽहं सर्वथा दुःखसागरे ॥ ५ ॥ इति चिंतापरो राजा जगाम नृपसन्निधौ ॥ प्रणम्य तानुवा चाथ प्रश्रयावनतो नृपः ॥ ६ ॥ किं कर्तव्यं नृपाः कामं नैति मे मंडपेसुता ॥ बहुशः प्रेर्यमाणाऽपि सा मात्राऽपि मयापि च ॥ ७ ॥

कामनासे मंचोंमें बैठे हैं ॥ २ ॥ जो मैं उन सबसे यह कहूं कि पुत्री नहीं आती तो वह दुष्ट बुद्धि क्रोधकर मुझको मारेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ न मेरी इतनी सेना है और न इतना दुर्गका बल है जो मैं सब राजाओंका प्रत्याख्यान कर सकूं ॥ ४ ॥ और सुदर्शन इकला असहाय निर्धन शिशु है, मैं दुःख सागरमें निमग्न हुआ, क्या करूं ॥ ५ ॥ ऐसी चिन्ता करते हुए राजा राजोंके पास गये और प्रणामकर बडी नम्रतासे कहा ॥ ६ ॥ हे राजो ! मैं अब क्या करूं ? हमारी सुता मण्डपमें नहीं आती मैंने और माताने बहुत कुछ प्रेरणा की परन्तु वह नहीं आती ॥ ७ ॥

हे राजो ! मैं तुम्हारा दास हूं तुम्हारे चरणोंमें शिर रखता हूं अपनी अपनी पूजा ग्रहणकर आप अपने घरोंको चले जायँ ॥ ८ ॥ आपको मैं अनेक रत्न वस्त्र गज रथ दूंगा, उन्हें ग्रहण कर कृपापूर्वक आप अपने स्थानोंको पधारें ॥ ९ ॥ वह बाला मेरे वशमें नहीं है यदि वह खेदित होकर मर जाय तो मुझे बड़ा दुःख होगा यही मुझे बड़ी चिन्ता है ॥ १० ॥ आप करुणावान् महाभाग बड़े प्रतापी हो इस मंद दुर्विनीत मेरी दुहिताको प्राप्त होकर भी क्या करोगे ? ॥ ११ ॥ मेरे ऊपर आपको विशेष दया करनी चाहिये मैं सबका दास हूं आपको सर्वथा मेरी कन्या अपनी कन्याके समान माननी चाहिये ॥१२॥ व्यासजी बोले, सुबाहुके वचन सुनकर कोई भी राजा कुछ न बोला, परन्तु युधाजित् क्रोधसे लाल नेत्र कर बोला ॥ १३ ॥ हे राजन् ! अब निन्दित

मूर्ध्ना पतामि पादेषु राज्ञां दासोऽस्मि सांप्रतम् ॥ पूजादिकं गृहीत्वाऽद्य व्रजंतु सदनानि वः ॥ ८ ॥ ददामि बहुरत्नानि वस्त्राणि च गजा न्रथान् ॥ गृहीत्वाऽद्य कृपां कृत्वा व्रजंतु भवनान्युत ॥ ९ ॥ न वशे मे सुता बाला म्रियेत यदि खेदिता ॥ तदा मे स्यान्महद्दुःखं तेन चिंतातुरोऽस्म्यहम् ॥ १० ॥ भवंतः करुणावंतो महाभाग्या महौजसः ॥ किमेतया दुहित्रा मे मंदया दुर्विनीतया ॥ ११ ॥ अनुग्राह्योऽस्मि वः कामं दासोऽहमिति सर्वथा ॥ सुता सुतेव मंतव्या भवद्भिः सर्वथा मम ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा सुबाहुवचनं नोचुः केचन भूमिपाः ॥ युधाजित्क्रोधताम्राक्षस्तमुवाच रुषाऽन्वितः ॥ १३ ॥ राजन्मूर्खोऽसि किं ब्रूषे कृत्वा कार्यं सुनिंदितम् ॥ स्वयंवरः कथं मोहाद्रचितः संशये सति ॥ १४ ॥ मिलिता भूभुजः सर्वे त्वयाऽहूताः स्वयंवरे ॥ कथमद्य नृपा गंतुं योग्यास्ते स्वगृहान्प्रति ॥ १५ ॥ अवमान्य नृपान्सर्वांस्त्वं किं सुदर्शनाय वै ॥ दातुमिच्छसि पुत्रीं च किमनार्यमतः परम् ॥ १६ ॥ विचार्य पुरुषेणादौ कार्यं वै शुभ मिच्छता ॥ आरब्धव्यं त्वया तत्तु कृतं राजन्नजानता ॥ १७ ॥ एतान्विहाय नृपतीन्बलवाहनसंयुतान् ॥ वरं सुदर्शनं कर्तुं कथमिच्छसि सांप्रतम् ॥ १८ ॥

कार्य करके मूर्खके समान क्या बोलते हो जब यह सन्देह था तो मोहसे स्वयंवर क्यों किया ? ॥ १४ ॥ तुमसे बुलाये हुए यह सब राजा स्वयंवरमें मिलित हुए हैं यह अब किस प्रकार अपने घरोंको चले जायँ ॥ १५ ॥ क्या तुम सब राजोंका तिरस्कार करके सुदर्शनको कन्या देना चाहते हो इससे अधिक अनाड़ीपन और क्या होगा ? ॥ १६ ॥ पुरुषको पहिले ही विचार कर कार्य करना चाहिये, सो आपने विना विचारे कार्यका आरंभ किया ॥ १७ ॥ इन बल वाहनोंसे संयुक्त राजोंको छोड़कर तुम सुदर्शनको किस प्रकार वरणकी इच्छा करते हो ॥ १८ ॥

हे पापिष्ठ ! मैं पहिले तुझको मारकर पीछे सुदर्शनको मारूंगा और वह कन्या मेरे दौहित्रको मिलेगी, यह मुझे निश्चय है स्वयं मैं दूंगा ॥ १९ ॥ मेरे होते ऐसा कौन है जो कन्याहरणकी इच्छा करे, वह निर्बल निर्धन बालक सुदर्शन क्या वस्तु है ॥ २० ॥ भरद्वाजके आश्रममें पहिले मुनिके कहनेसे मैंने उसे छोड़दिया था अब मैं उस बालकको जीता नहीं छोडूंगा ॥ २१ ॥ इस कारण तुम भली भांति भार्यासहित विचारकर सुभ्रूकन्याको मेरे दौहित्रके निमित्त प्रदान करो ॥ २२ ॥ इस मनोरमा पुत्रीको देकर हमारे सम्बन्धी बनो, कल्याणकी इच्छावालोंको सदा ऊंचेका आश्रय करना चाहिये ॥ २३ ॥ इस अपनी प्राणप्रिया पुत्रीको राज्यहीन इकले सुदर्शनको देकर तुम क्या सुखकी इच्छा करतेहो ? ॥ २४ ॥ "कुल, धन, बल, रूप, राज्य, दुर्ग, सुहृज्जन यह देखकर

अहं त्वां हन्मि पापिष्ठ तथा पश्चात्सुदर्शनम् ॥ दौहित्रायाद्य मे कन्यां दास्यामीति विनिश्चयः ॥ १९ ॥ मयि तिष्ठति कोऽन्योऽस्ति यः कन्यां हर्तुमिच्छति ॥ सुदर्शनः कियानद्यनिर्धनो निर्बलः शिशुः ॥ २० ॥ भारद्वाजाश्रमे पूर्वं मुक्तो मुनिकृते मया ॥ नाद्याहं मोचयिष्यामि सर्वथा जीवितं शिशोः ॥ २१ ॥ तस्माद्विचार्य सम्यक्त्वं पुत्र्या च भार्यया सह ॥ दौहित्राय प्रियां कन्यां देहि मे सुभ्रुवं किल ॥ २२ ॥ संबंधीभव दत्त्वा त्वं पुत्रीमेतां मनोरमाम् ॥ उच्चाश्रयः प्रकर्तव्यः सर्वदा शुभमिच्छता ॥ २३ ॥ सुदर्शनाय दत्त्वा त्वं पुत्रीं प्राणप्रियां शुभाम् ॥ एकाकिनेऽप्यराज्याय किं सुखं प्राप्तुमिच्छसि ॥ २४ ॥ "कुलं वित्तं बलं रूपं राज्यं दुर्गं सुहृज्जनम् ॥ दृष्ट्वा कन्यां प्रदातव्या नान्यथा सुखमृच्छति ॥ १ ॥ " परिचिंतय धर्मं त्वं राज्यनीतिं च शाश्वतीम् ॥ कुरु कार्यं यथायोग्यं मा कृथा मतिमन्यथा ॥ २५ ॥ सुहृदसि ममात्यर्थं हितं ते प्रब्रवीम्यहम् ॥ समानय सुतां राजन्मंडपे तां सखीवृताम् ॥ २६ ॥ सुदर्शनमृते चेयं वरिष्यति यदाऽप्यसौ ॥ विग्रहो मे तदा न स्याद्विवाहोऽस्तु तवेप्सितः ॥ २७ ॥ अन्ये नृपतयः सर्वे कुलीनाः सबलाः समाः ॥ विरोधः कीदृशस्त्वेनं वृणोद्यदि नृपोत्तम ॥ २८ ॥

कन्याको देना चाहिये, नहीं तो कन्यासुख नहीं पाती" हे राजन् ! तुम धर्म और निरन्तरकी रहनेवाली राजनीतिको विचारो, यथायोग्य कार्य करो वृथा मति मत करो ॥ २५ ॥ तुम मेरे बहुत सुहृद् हो इस कारण मैं तुम्हारे हितकारी वचन कहता हूं । सखी सहित सुताको मंडपमें लाओ ॥ २६ ॥ सुदर्शनको छोडकर वह चाहे जिसको वरण करे. इसमें मुझको विग्रह नहीं है तुम्हारे मन इच्छित विवाह होगा ॥ २७ ॥ और भी यह सब राजा कुलीन और समान हैं, इनके वरणमें मुझको कुछभी विरोध नहीं है ॥ २८ ॥

यदि ऐसा न होगा तो बल पूर्वक मैं शुभ कन्याको हरण करूंगा, हमारा विरोध दुःसाध्य है, हे राजन्! जाओ कार्य करो ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले,
युधाजित् के ऐसा कहनेपर सुबाहु शोकयुक्त हो श्वास लेता हुआ घर जाय भार्यासे बोला ॥ ३० ॥ हे धर्मज्ञे ! जाकर पुत्रीसे कहो यह क्लेश उपस्थित हुआ
है, हे सुलोचने ! अब मैं क्या करूं ? अशक्य और तुम्हारे अधीन हूं ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले वह रानी पतिके वचन सुन सुताके समीप जाय बोली हे
पुत्री ! महाराज तुम्हारे पिता बडे दुःखी हैं॥ ३२ ॥ तुम्हारे निमित्त यह राजोंका विग्रह उपस्थित हुआ है, हे- सुश्रोणी ! सुदर्शनको छोडकर और किसी
राजाको वरण करो ॥ ३३ ॥ हे पुत्री ! यदि हठसे तुम सुदर्शनको वरण करोगी, तो सेना युक्त युधाजित् तुमको और हमको मारेगा ॥ ३४ ॥ और

अन्यथाऽहं हरिष्येऽद्य बलात्कन्यामिमां शुभाम् ॥ मा विरोधं सुदुःसाध्यंगच्छ पार्थिवसत्तम ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ युधाजिता
समादिष्टः सुबाहुः शोकसंयुतः ॥ निःश्वसन्भवनं गत्वा भार्यां प्राह शुचावृतः ॥ ३० ॥ पुत्रीं ब्रूहि सुधर्मज्ञे कलहे समुपस्थिते ॥ किं
कर्त्तव्यं मया शक्यं त्वद्वशोऽस्मि सुलोचने ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच॥ सा श्रुत्वा पतिवाक्यं तु गत्वा प्राह सुतांतिकम् ॥ वत्से राजाऽतिदुः
खार्तः पिता तेऽद्यापि वर्तते ॥ ३२ ॥ त्वदर्थे विग्रहः कामं समुत्पन्नोऽद्य भूभृताम् ॥ अन्यं वरय सुश्रोणि सुदर्शनमृते नृपम् ॥ ३३ ॥
यदि सुदर्शनं वत्से हठात्त्वं वै वरिष्यसि ॥ युधाजित्त्वां च मां चैव हनिष्यति बलान्वितः ॥ ३४ ॥ सुदर्शनं च राजाऽसौ बलमत्तः
प्रतापवान् ॥ द्वितीयस्ते पतिः पश्चाद्भविता कलहे सति ॥ ३५ ॥ तस्मात्सुदर्शनं त्यक्त्वा वरयान्यं नृपोत्तमम् ॥ सुखमिच्छसि चेन्मह्यं
तुभ्यं वा मृगलोचने ॥ इति मात्रा बोधितां तां पश्चाद्राजाऽप्यबोधयत् ॥ ३६ ॥ उभयोर्वचनं श्रुत्वा निर्भयोवाच कन्यका ॥
कन्योवाच ॥ सत्यमुक्तं नृपश्रेष्ठ जानासि च व्रतं मम ॥ ३७ ॥ नान्यं वृणोमि भूपालं सुदर्शनमृते क्वचित् ॥ बिभेषि यदि राजेंद्र
नृपेभ्यः किल कातरः ॥ ३८ ॥

सुदर्शनको भी मारेगा कारण-कि वह राजा बलमें मत्त और प्रतापवान् है, फिर क्लेशके उपरान्त भी अन्य ही तुम्हारा पति होगा ॥ ३५ ॥ इस कारण
सुदर्शनके सिवाय अन्य राजाको वरण करो. हे मृगलोचनी ! जो अपना और हमारा सुख चाहती हो तो यह करो इस प्रकार माताके समझानेसे पीछे राजा
भी पुत्रीको समझाने लगा ॥ ३६ ॥ दोनोंके वचन सुनकर निर्भय हो कन्या बोली [कन्याने कहा] हे राजन् ! आपने सत्य कहा, पर मेरे व्रतको आप
जानते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! मैं सुदर्शनके सिवाय अन्यको वरण नहीं करूंगी, और हे राजेन्द्र ! यदि आप कातर होकर राजोंसे डरते हो ॥ ३८ ॥

तो मुझे सुदर्शन को देकर नगरसे बाहर कर दो मुझे रथपर बैठाय वह तुम्हारे नगरसे चला जायगा ॥ ३९ ॥ पीछे जो होना है सो होगा, हे राजन् ! भवितव्यमें आपको चिन्ता करनी उचित नहीं ॥ ४० ॥ होनहार अवश्य ही होता है, इसमें सन्देह नहीं, राजाने कहा, हे पुत्रि ! बुद्धिमान्को अति साहस करना उचित नहीं ॥ ४१ ॥ वेदवादी कहते हैं बहुतोंके साथ विरोध न करना चाहिये, राजपुत्रको देखकर कन्याको कैसे निकालदूं ? ॥ ४२ ॥ यह वैर संयुक्त राजा क्या न कर बैठे ? हे वत्से ! यदि तुमको रुचे तो कुछ पण लगाऊं ॥ ४३ ॥ जैसे सीताके स्वयंवरमें राजा जनकने शिवका धनुष धरकर उसके तोडनेका पण किया था ॥ ४४ ॥ हे तन्वंगी ! इसी प्रकार मैं कोई कठिन पण करूंगा. जिससे राजोंका विवाद न होकर शान्ति रहेगी ॥ ४५ ॥ जो पणकी कामना

सुदर्शनाय दत्त्वा मां विसर्जय पुराद्बहिः ॥ स मां रथे समारोप्य निर्गमिष्यति ते पुरात् ॥ ३९ ॥ भवितव्यं तु पश्चाद्वै भविष्यति न चान्यथा ॥ नात्र चिंतात्वया कार्या भवितव्ये नृपोत्तम ॥ ४० ॥ यद्भावि तद्भवत्येव सर्वथाऽत्र न संशयः ॥ राजोवाच ॥ न पुत्रि साहसं कार्यं मतिमद्भिः कदाचन ॥ ४१ ॥ बहुभिर्न विरोद्धव्यमिति वेदविदोविदुः ॥ विसृक्ष्यामि कथं कन्यां दत्त्वा राजसुताय च ॥ ४२ ॥ राजानो वैरसंयुक्ताः किं न कुर्युरसांप्रतम् ॥ यदि ते रोचते वत्से पणं संविदधाम्यहम् ॥ ४३ ॥ जनकेन यथा पूर्वं कृतः सीतास्वयंवरे ॥ शैवं धनुर्यथा तेन धृतं कृत्वा पणं तथा ॥ ४४ ॥ तथाऽहमपि तन्वंगिकरोम्यद्य दुरासदम् ॥ विवादो येन राज्ञां वै कृते सति शमं व्रजेत् ॥ ४५ ॥ पालयिष्यति यः कामं स ते भर्ता भविष्यति ॥ सुदर्शनस्तथाऽन्यो वा यः कश्चिद्बलवत्तरः ॥ ४६ ॥ पालयित्वा पणं त्वां वै वरयिष्यति सर्वथा॥एवं कृते नृपाणां तु विवादः शमितो भवेत् ॥ ४७ ॥ सुखेनाहं विवाहं ते करिष्यामि ततः परम् ॥ कन्योवाच ॥ संदेहे नैवमज्जामि मूर्खकृत्यमिदं यतः ॥ ४८ ॥ मया सुदर्शनः पूर्वं धृतश्चेतसि नान्यथा ॥ कारणं पुण्यपापानां मन एव महीपते ॥ ४९ ॥ मनसा विधृतं त्यक्त्वा कथमन्यं वृणे पितः ॥ कृते पणे महाराज सर्वेषां वशगा ह्यहम् ॥ ५० ॥

करेगा वही तेरा भर्ता होगा सुदर्शन अथवा जो कोई बहुत बलिष्ठ होगा ॥ ४६ ॥ वह उस पणको निर्वाह कर निःसन्देह तुझको वरण करेगा, ऐसा करनेसे अवश्य राजोंका विवाद शांत हो जायगा ॥ ४७ ॥ तब मैं सुखपूर्वक तेरा विवाह करूंगा, कन्या बोली, मैं सन्देहमें मग्न होना नहीं चाहती,कारण कि यह मूर्खकृत्य है ॥ ४८ ॥ मैंने तो प्रथमही मनमें सुदर्शनको वरण लिया है, अब वह अन्यथा न होगा. हे राजन् ! पुण्य और पापोंका कारण मन ही है ॥ ४९ ॥ हे पिता ! मनसे वरण कियेको छोडकर औरको कैसे वरण कर सकती हूं? हे महाराज ! पण करनेपर तो मैं सबके ही वशवर्तिनी हूंगी ॥ ५० ॥

हे पिता ! एक दो अथवा बहुतोंने उस पणको पूरा किया तो फिर विवाद उपस्थित होनेमें मुझको क्या करना होगा ॥ ५१ ॥ संसय वाले कार्यमें मैं मति नहीं लगाऊंगी, हे राजन् ! चिन्ता मत करो मुझे सुदर्शनके निमित्त दे दो ॥ ५२ ॥ विधिपूर्वक विवाह करदो सब प्रकार भगवती कल्याण करेगी, जिसके नाम कीर्तनसे ही दुःख समूह शान्त हो जाते हैं ॥ ५३ ॥ उस परमशक्तिको स्मरण कर शांति सहित सब कार्य करो अभी जाकर हाथ जोड़ राजोंसे कहो ॥ ५४ ॥ सब राजा लोग कल दिन स्वयम्बरमें आवे, ऐसा कहकर इस समय सब राजमण्डलको बिदा करो ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! रात्रिमें वेदोक्त विधिसे विवाह कर दो, और यथा योग्य भेंट देकर सुदर्शनको विसर्जन करो ॥ ५६ ॥ वह ध्रुवसंधिका पुत्र मुझे लेकर चला जायगा, और जो वे राजा क्रोध

एकः पालयिता द्वौ वा बहवो वा भवंति चेत् ॥ किं कर्तव्यं तदा तात विवादे समुपस्थिते ॥ ५१ ॥ संशयाधिष्ठिते कार्ये मतिं नाहं करोम्यतः ॥ मा चिंतां कुरु राजेंद्र देहि सुदर्शनाय माम् ॥ ५२ ॥ विवाहं विधिना कृत्वा शंविधास्यति चंडिका ॥ यन्नामकीर्तनादेव दुःखौघो विलयं व्रजेत् ॥ ५३ ॥ तां स्मृत्वा परमांशक्तिं कुरु कार्यमतंद्रितः ॥ गत्वा वद नृपेभ्यस्त्वं कृतांजलिपुटोऽद्य वै ॥ ५४ ॥ आगन्तव्यं च श्वः सर्वैरिह भूपै स्वयंवरे ॥ इत्युक्त्वा त्वं विसृज्याशु सर्वं नृपतिमंडलम् ॥ ५५ ॥ विवाहं कुरु रात्रौ मे वेदोक्तविधिना नृप ॥ पारिबर्हं यथायोग्यं दत्त्वा तस्मै विसर्जय ॥ ५६ ॥ गमिष्यति गृहीत्वा मां ध्रुवसंधिसुतः किल ॥ कदाचित्ते नृपः क्रुद्धाः संग्रामं कर्तुमुद्यताः ॥ ५७ ॥ भविष्यंति तदा देवी साहाय्यं नः करिष्यति ॥ सोऽपि राजसुतैस्तैस्तु संग्रामं संविधास्यति ॥ ५८ ॥ दैवान्मृधे मृते तस्मिन्मरिष्याम्यहमप्युत ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गृहे तिष्ठदत्त्वा मां सहसैन्यकः ॥ ५९ ॥ एकैवाहं गमिष्यामि तेन सार्धं रिरंसया ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा राजाऽसौ कृतनिश्चयः ॥ ६० ॥ मतिं चक्रे तथा कर्तुं विश्वासं प्रतिपद्य च॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

कर संग्राम करनेको उद्यत होंगे ॥ ५७ ॥ तो देवी भगवती अवश्य हमारी सहाय करेगी और वह भी सब राजपुत्रोंसे संग्राम करेगा ॥ ५८ ॥ यदि दैवात् संग्राममें हमारे स्वामीकी मृत्यु होगी तो मैं उनके साथ मर जाऊंगी और तुम्हारा मंगल हो मुझे प्रदान कर आप सेना सहित घरमें रहिये ॥५९॥ मैं इकली ही उसके साथ प्रीतिपूर्वक जाऊंगी व्यासजी बोले ! यह कन्याके वचन सुन राजा भी इसमें निश्चय करके ॥ ६० ॥ विश्वासको प्राप्त हो इसी कार्यके करनेको इच्छा करते हुए ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

व्यासजी बोले, वह अनिंदितात्मा राजा कन्याके वचन सुनकर राजोंके पास जाकर कहने लगा. हे महाराजो ? इस समय आप अपने डेरोंको जाइये, कल दिन हम विवाहके करेंगे ॥ १ ॥ भक्ष्य और पीनेके पदार्थ मेरे दिये ग्रहण कर प्रसन्न हो प्रभात समय कल फिर सब मंडपमें आइये कार्य होगा ॥ २ ॥ पुत्री मंडपमें नहीं आती. हे राजन् ! मैं क्या करूं ? प्रभातकाल समझाकर पुत्रीको लाऊंगा, इस कारण अब आप सब लोग डेरोंको जायँ ॥ ३ ॥ बुद्धिमानोंको विग्रह न करके मेरे ऊपर कृपा करनी चाहिये, तथा इस अपनी संतानपर इस समय दया करो, प्रभात समय समझाकर यहां लाऊंगा इस समय अपने २ स्थानोंको पधारो ॥ ४ ॥ अथवा कोई इच्छापण करके प्रभात काल विवाह करूंगा, कल सब कोई इस स्थानपर आना प्रभात कालको सर्व मतसे विवाह करूंगा ॥ ५ ॥

व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा सुतावाक्यमनिंदितात्मा नृपांश्च गत्वा नृपतिर्जगाद ॥ व्रजंतु कामं शिबिराणि भूपाः श्वो वा विवाहं किल संविधास्ये ॥ १ ॥ भक्ष्याणि पेयानि मयार्पितानि गृह्णन्तु सर्वे मयि सुप्रसन्नाः ॥ श्वो भावि कार्यं किल मंडपेऽत्र समेत्य सर्वैरिह संविधेयम् ॥ २ ॥ नायाति पुत्री किल मण्डपेऽद्य करोमि किं भूपतयोऽत्र कामम् ॥ प्रातः समाश्वास्य सुतां नयिष्ये गच्छंतु तस्माच्छिविराणि भूपाः ॥३॥ न विग्रहो बुद्धिमतां निजाश्रिते कृपा विधेया सततं ह्यपत्ये ॥ विधाय तां प्रातरिहानयिष्ये सुतां तु गच्छंतु नृपा यथेष्टम् ॥ ४ ॥ इच्छापणं वा परिचिंत्य चित्ते प्रातः करिष्याम्यथ संविवाहम् ॥ सर्वैः समेत्यात्र नृपैः समेतैः स्वयंवरः सर्वमतेन कार्यः ॥ ५ ॥ श्रुत्वा नृपास्तेऽवितथं विदित्वा वचो ययुः स्वानि निकेतनानि ॥ विधाय पार्श्वे नगरस्य रक्षां चक्रुः क्रिया मध्यदिनोदिताश्च ॥ ६ ॥ सुबाहुरप्यार्यजनैः समेतश्चकार कार्याणि विवाहकाले ॥ पुत्रीं समाहूय गृहेषु गुप्ते पुरोहितैर्वेदविदां वरिष्ठैः ॥ ७ ॥ स्नानादिकं कर्म वरस्य कृत्वा विवाहभूषाकरणं तथैव ॥ आनाय्य वेदीरचिते गृहे वै तस्यार्हणां भूमिदतिश्चकार ॥ ८ ॥ सविष्टरं चाचमनीयमर्घ्यं वस्त्रद्वयं गामथ कुंडले द्वे ॥ समर्प्य तस्मै विधिवन्नरेंद्र ऐच्छत्सुतादानमहीनसत्त्वः ॥ ९ ॥

राजाके इस प्रकार वचन सत्य मानकर सब नृपति अपने २ स्थानोंको चलेगये और पार्श्वमें नगरकी रक्षा कर मध्यदिनकी क्रिया करते हुए ॥ ६ ॥ सुबाहुने भी श्रेष्ठ जनोंके सहित विवाहकालके कृत्य करने प्रारंभ किये और वेदवादी पुरोहितोंको बुलाय गुप्तस्थानमें पुत्रीको आह्वान कर ॥ ७ ॥ और वरके भी स्नानादि कर्म करके तथा भूषणोंसे सजाय रचित गृहकी वेदीमें उसको लाकर उसकी पूजा राजाने की ॥ ८ ॥ विष्टर, आचमन, अर्घ्य दोनों वस्त्र गौ दो कुंडल यह राजा विधिपूर्वक उसको समर्पण करके कन्यादानकी इच्छा करता हुआ ॥ ९ ॥

दे. भा. ॥५९॥

और सुदर्शनने भी निर्भय होकर वह सब ग्रहण किया उस समय मनोरमाकी चिन्ता दूर हुई उस सुकेशी कन्या रूपनिधिको निधिवत् मानकर परम प्रसन्नता प्राप्त की ॥१०॥ उस वरश्रेष्ठको भूषण वस्त्रदानसे पूजन कर मंत्रीआदि प्रसन्नतापूर्वक भयरहित हो सब कौतुकमण्डपमें लाये ॥११॥ सब शृंगारविधिको पूर्ण कर स्त्रियोंने उस राजकन्याको उत्तम यानमें चढाय चौकोन मण्डपमें वरके समीप प्राप्त किया ॥ १२ ॥ पुरोहितने अग्न्याधानकर और प्रज्वलित करके शृंगार होनेके उपरांत उन वधू और वरको बुलाया ॥ १३ ॥ विधिपूर्वक लाजाहोम करके तथा अग्निकी प्रदक्षिणा करके उन दोनोंने अपने कुल गोत्रका

सोऽप्यग्रहीत्सर्वमदीन चेताः शशाम चिंताऽथ मनोरमायाः ॥ कन्यां सुकेशीं निधिकन्यकासमां मेने तदाऽऽत्मानमनुत्तमं च ॥ १० ॥
सुपूजितं भूषणवस्त्रदानैर्वरोत्तमं तं सचिवास्तदानीम् ॥ निन्युश्च ते कौतुकमण्डपांतर्मुदाऽन्विता वीतभयाश्च सर्वे ॥ ११ ॥ समाप्त भूषां
विधिवद्विधिज्ञाः स्त्रियश्च तां राजसुतां सुयाने ॥ आरोप्य निन्युर्वरसंनिधानं चतुष्कयुक्ते किल मण्डपे वै ॥ १२ ॥ अग्निं समाधाय
पुरोहितः स हुत्वा यथावच्च तदन्तराले ॥ आह्वाययत्तौ कृतकौतुकौ तु वधूवरौ प्रेमयुतौ निकामम् ॥१३॥ लाजाविसर्गं विधिवद्विधाय
कृत्वा हुताशस्य प्रदक्षिणां च ॥ तौ चक्रतुस्तत्र यथोचितं तत्सर्वं विधानं कुलगोत्रजातम् ॥ १४ ॥ शतद्वयं चाश्वयुजां रथानां सुभूषितं
चापि शरौघसंयुतम् ॥ ददौ नृपेंद्रस्तु सुदर्शनाय सुपूजितं पारिबर्हं विवाहे ॥ १५ ॥ मदोत्कटान्हेमविभूषितांश्च गजान्गिरेः शृङ्गसमान
देहान् ॥ शतं सपादं नृपसूनवेऽसौ ददावथ प्रेमयुतो नृपेंद्रः ॥ १६ ॥ दासीशतं कांचनभूषितं च करेणुकानां च शतं सुचारु ॥ समर्प
यामास वराय राजा विवाहकाले मुदितोऽनुवेलम् ॥ १७ ॥ अदात्पुनर्दाससहस्रमेकं सर्वायुधैः संभृतभूषितं च ॥ रत्नानि वासांसि
यथोचितानि दिव्यानि चित्राणि तथाऽऽविकानि ॥ १८ ॥ ददौ पुनर्वासगृहाणि तस्मै रम्याणि दीर्घाणि विचित्रितानि ॥ सिंधूद्भवानां
तुरगोत्तमानामदात्सहस्रद्वितयं सुरम्यम् ॥ १९ ॥

सम्पूर्ण विधान किया ॥ १४ ॥ दो सौ घोडे दोसौ रथ तरकसादिसे संगठित यह राजाने सुदर्शनके निमित प्रदान किये ॥ १५ ॥ मदसे उत्कट सुवर्णसे भूषित पर्वत शृंगके समान देहवाले सवासौ हाथी प्रसन्न होकर राजाने सुदर्शनको दिये ॥ १६ ॥ सुवर्णके गहने पहरे सौ दासी, सौ हथिनी यह विवाह समय राजाने प्रसन्न हो वरको प्रदान की ॥ १७ ॥ और सब आयुधभूषणोंसहित १००० दास भी प्रदान किये, रत्न और यथोचित वस्त्र दिव्य विचित्र ऊर्णवस्त्र ॥ १८ ॥ तथा बडे मनोहर रमणीय विचित्र डेरे चौडे लम्बे और दो सहस्र सिंधुदेशके उत्तम घोडे दिये ॥ १९ ॥

भा. टी.तृ. अ. २२

तीनसौ ऊंट भार वहन करनेके निमित्त प्रदान किये और दोसौ छकडे धान्यसे पूर्ण कर प्रदान किये ॥ २० ॥ फिर राजसुता मनोरमाको प्रणाम कर हाथ जोड़कर राजा बोला हे श्रेष्ठ राजसुता ! मैं तेरादास हूं जो तुम्हारे मनमें हो सो भी तुम कहो ॥ २१ ॥ मनोरमा भी राजासे सुन्दर वचन बोली, हे राजन् ! आपका मंगल और कुलकी वृद्धि हो अपनी रत्नरूप कन्या देकर मेरा बड़ा सन्मान किया है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! मैं बंदि मागधकी पुत्री नहीं हूं किस दप्रकार ऐसे बडे आपकी स्तुति करूं आपने मेरे पुत्रको सुमेरुके समान बना दिया ॥ २३ ॥ अहो राजाका चरित्र बड़ा विचित्र परम पवित्र है, मैं क्या कहूं ? जो राज्य भ्रष्ट

क्रमेलकानां च शतत्रयं वै प्रत्यादिशद्भारभृतां सुचारु ॥ शतद्वयं वै शकटोत्तमानां तस्मै ददौ धान्यरसैः प्रपूरितम् ॥ २० ॥ मनोरमां राजसुतां प्रणम्य जगाद वाक्यं विहितांजलिः पुरः ॥ दासोऽस्मि ते राजसुते वरिष्ठे तद्ब्रूहि यस्यात्तु मनोगतं ते ॥ २१ ॥ तं चारुवाक्यं निजगाद साऽपि स्वस्त्यस्तु ते भूपकुलस्य वृद्धिः ॥ संमानिताऽहं मम सूनवे त्वया दत्ता यतो रत्नवरा स्वकन्या ॥ २२ ॥ न बंदिपुत्री नृप मागधी वा स्तौमीह किं त्वां स्वजनं महत्तरम् ॥ सुमेरुतुल्यस्तु कृतः सुतोऽद्य मे सम्बंधिना भूपतिनोत्तमेन ॥ २३ ॥ अहोऽतिचित्रं नृपतेश्चरित्रं परं पवित्रं तव किं वदामि ॥ यद्भ्रष्टराज्याय सुताय मेऽद्य दत्ता त्वया पूज्यसुता वरिष्ठा ॥२४॥ वनाधिवासाय किलाधनाय पित्रा विहीनाय विसैन्यकाय ॥ सर्वांनिमान्भूमिपतीन्विहाय फलाशनायार्थविवर्जिताय ॥ २५ ॥ समानवित्तेऽथ कुले बले च ददाति पुत्रीं नृपतिश्च भूयः ॥ न कोऽपि मे भूप सुतेऽर्थहीने गुणान्वितां रूपवतीं च दद्यात् ॥२६॥ वैरं तु सर्वैं सह संविधाच नृपैर्वरिष्ठैर्बलसंयुतैश्च ॥ सुदर्शनायाथ सुताऽर्पिता मे किं वर्णये धैर्यमिदं त्वदीयम् ॥ २७ ॥ निशम्य वाक्यानि नृपः प्रहृष्टः कृतांजलिर्वाक्यमुवाच भूयः ॥ गृहाण राज्यं मम सुप्रसिद्धं भवामि सेनापतिरद्य चाहम् ॥ २८ ॥

मेरे पुत्रको तुमने अपनी श्रेष्ठ कन्या प्रदान की ॥ २४ ॥ वनवासी अधन पिता और सेनाहीन, फलाहारी धनहीन पुत्रको इन सब राजोंको छोडकर कन्या दी ॥ २५ ॥ समान धनवाले समान कुलमें राजा कन्या देते हैं मेरे पुत्रको जो धनहीन है कौन अपनी रूपवती कन्या देता? ॥२६॥ बड़े बली राजोंसे परस्पर वैर करके भी आपने मेरे पुत्रको कन्या दी मैं तुम्हारे धैर्यको कहांतक वर्णन करूं ॥ २७ ॥ यह वचन सुन राजा प्रसन्न हुआ और हाथ जोडकर यह वचन बोला, यह मेरा सम्पूर्ण राज्य तुम ग्रहण करो और मैं तुम्हारा सेनापति हूँगा ॥२८॥

और नहीं तो आधा राज्य लेकर पुत्रके सहित राज्यफल भोगो, काशीको छोडकर और वन वा नगरका तुम्हारा वास मुझे सम्मत नहीं है ॥ २९ ॥ यह जो राजा क्रोधयुक्त है पहले तो जाकर इनको शांत करूंगा उसके उपरान्त दाम भेद उपाय हैं, अन्यथा पश्चात् युद्ध करूंगा ॥ ३० ॥ यद्यपि जय पराजय दैवाधीन है, तथापि धर्ममें जय अधर्ममें हार है, सो उन अधर्मी राजाओंकी जय किस प्रकार होगी? ॥ ३१ ॥ यह राजाका अर्थ और गौरवयुक्त वचन सुनकर मनोरमा, मानको प्राप्त होकर सब प्रकार प्रसन्न हुई बोली ॥ ३२ ॥ हे राजन्! आपका मंगल हो आप भय त्याग पुत्रोंसहित राज्य करो और मेरा पुत्र भी अयोध्याका राज्य प्राप्त कर आनन्दसे विचरेगा ॥ ३३ ॥ हे राजन्! अब आप हमको घर जानेको बिदा दो भवानी सब मंगल करेगी, हे राजन्!

नोचेत्तदर्धं प्रतिगृह्य चात्र सुतान्वितो राज्यफलानि भुंक्ष्व ॥ विहाय वाराणसिकानिवासं वने पुरे वा समतो न मेऽस्ति ॥ २९ ॥ नृपास्तु संत्येव रुषाऽन्विता वै गत्वा करिष्ये प्रथमं तु सान्त्वनम् ॥ ततः परं द्वावपरावुपायौ नोचे त्ततो युद्धमहं करिष्ये ॥ ३० ॥ जयाजयौ दैववशौ तथाऽपि धर्मे ययो नैव कृतेऽप्यधर्मे ॥ तेषां किलाधर्मवतां नृपाणां कथं भविष्यत्यनुचिन्तितं वै ॥ ३१ ॥ आकर्ण्य तद्भाषितमर्थवच्च जगाद वाक्यं हितकारकं तम् ॥ मनोरमा मानमवाप्य तस्मात्सर्वात्मना मोदयुता प्रसन्ना ॥ ३२ ॥ राजञ्छिवं तेऽस्तु कुरुष्व राज्यं त्यक्त्वा भयं त्वं स्वसुतैः समेतः ॥ सुतोऽपि मे नूनमवाप्य राज्यं साकेतपुर्यां प्रचरिष्यतीह ॥ ३३ ॥ विसर्ज यास्मन्निजसद्म गन्तुं शिवं भवानि तव संविधास्यति ॥ न काऽपि चिन्ता मम भूप वर्तते सञ्चिन्तयन्त्याः परमाम्बिकां वै ॥ ३४ ॥ दोषगता विविधवाक्यपदै रसालैरन्योन्यभाषणपदैरमृतोपमैश्च ॥ प्रातर्नृपाः समधिगम्य कृतं विवाहं रोषान्विता नगरबाह्यगतास्तथोचुः ॥ ३५ ॥ अद्यैव तं नृपकलंकधरं च हत्वा बालं तथैव किल तं न विवाहयोग्यम् ॥ गृह्णीम तां शशिकलां नृपतेश्च लक्ष्मीं लज्जामवाप्य निजसद्म कथं व्रजेम ॥ ३६ ॥

मुझको कोई चिन्ता नहीं वर्तती, कारण कि मैं भगवतीका चिन्तन करती हूं ॥ ३४ ॥ इस प्रकारसे अनेक प्रकारके वचन कहते सुनते रात बीत गई. परस्परके अमृत भरे वचन थे और प्रभातकाल राजा आकर प्राप्त हुए और विवाह हुआ जानकर नगरके बाहर रोषकर बोले ॥ ३५ ॥ अभी उस राजोंमें कंलकीको मारकर और विवाहके अयोग्य उस बालकको मारकर इस शशिकला और राजलक्ष्मीको ग्रहण करेंगे, विना इसके लज्जा त्यागकर किस प्रकार अपने घरको जायंगे ॥ ३६ ॥

सुनो तुरही शंख मृदंगोंका शब्द सर्वत्र पूर्ण हो रहा है, गीतकी वेदकी ध्वनि हो रही है, विदित होता है कि राजाने विवाहकर लिया ॥ ३७ ॥ हमको अनेक वचनोंसे प्रतारणकर इसने विवाहकी विधिसे कर पीडन किया, रहे जो ! अब क्या विचारते हो जो कर्तव्य है सो सम्मति करके करो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार राजोंके कथन होनेपर महाप्रभावी काशीपति अपने सुहृद् मित्रोंके सहित राजोंकेनि मंत्रित करनेको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ उस समय राजा काशीपतिको आत देखकर क्रोधसे कुछ भी न बोले, और मौनतासे स्थिर रहे ॥ ४० ॥ और राजा प्रणामकर हाथ जोड़ बोला, हे राजाओ ! आज आप सब भोजनके निमित्त हमारे घर चलिये ॥ ४१ ॥ कन्याने सुदर्शनको ही वरण किया इस समयमें क्या हिता हित करूं आपको भी शान्ति करनी चाहिये, कारण कि आप

शृण्वंतु तूर्यनिनदान्किल वाद्यमानाञ्छंखस्वानभिभवन्ति मृदङ्गशब्दाः ॥ गीतध्वनिं च विविधं निगमस्वनं च मन्यामहे नृपतिनाऽत्र कृतो विवाहः ॥ ३७ ॥ अस्मानन्प्रतार्य वचनैर्विधिवच्चकार वैवाहिकेन विधिना करपीडनं वै ॥ कर्त्तव्यमद्य किमहो प्रविचिन्तयन्तु भूपाः परस्परमतिं च समर्थयन्तु ॥ ३८ ॥ एवं वदत्सु नृपतिष्वथ कन्यकायाः कृत्वा विवाहविधिमप्रतिमप्रभावः ॥ भूपान्निमन्त्रयितुमाशु जगामराजा काशीपतिः स्वसुहृदैः प्रथितप्रभावैः ॥ ३९ ॥ आगच्छन्तं च तं दृष्ट्वा नृपाः काशीपतिं तदा ॥ नोचुः किं चिदपि क्रोधा मौनमाधाय संस्थिताः॥ ४० ॥ सगत्वा प्रणिपत्याह कृताञ्जलिरभाषत ॥ आगंतव्यं नृपैः सर्वैर्भोजनार्थं गृहे मम ॥ ४१ ॥ कन्ययाऽसौ वृतो भूपः किं करोमि हिताहितम्॥भवद्भिस्तु शमःकार्यो महान्तो हि दयालवः॥४२॥ तन्निशम्य वचस्तस्य नृपाः क्रोधपरिप्लुताः॥प्रत्यूचुर्भुक्त मस्माभिः स्वगृहं नृपते व्रज ॥४३॥ कुरु कार्याण्यशेषाणि यथेष्टं सुकृतं कृतम् ॥ नृपाःसर्वे प्रयान्त्वद्य स्वानि स्वानि गृहाणि वै ॥४४॥ सुबाहुरपि तच्छ्रुत्वा जगाम शंकितो गृहम् ॥ किं करिष्यंति संविग्नाः क्रोधयुक्ता नृपोत्तमाः ॥ ४५ ॥ गते तस्मिन्महीपालाश्चक्रुश्च समयं पुनः ॥ रुद्ध्वा मार्गे ग्रहीष्यामः कन्यां हत्वा सुदर्शनम् ॥ ४६ ॥

महान् और दयालु हैं ॥ ४२ ॥ यह उसके वचन सुन राजा बड़ा क्रोधकर बोले, राजन् ! हम खा चुके, अब तुम अपने घरको जाओ ॥ ४३ ॥ शेष कार्योंको भी सम्पादन करो, आपने यथेष्ट सुकृत किया और सब राजा अब अपने २ घरोंको जाते हैं ॥ ४४ ॥ सुबाहु भी यह सुनकर शंकित हो अपने घरको गया. कि यह क्रोधकर मिले हुए राजा न जाने क्या करेंगे ॥४५॥ उसके जानेपर सब राजोंने परस्पर प्रतिज्ञा की कि, मार्ग रोककर सुदर्शनको मार हम कन्या ले जायंगे ॥ ४६ ॥

कोई बोले हमको उसके मारनेसे क्या मिलेगा हमतो यह कौतुक देख अपने स्थानको जायंगे ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर वे सब राजा मार्गको आक्रमण कर स्थित हुए और सुबाहु भी अपने घर जाकर कार्य करता हुआ ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजी बोले, राजाने उसके निमित्त अनेक गौरव भोज्य पदार्थ विधिसे विधान करके छः दिनतक भक्तिसे भोजन कराया ॥ १ ॥ इस प्रकार वह राजा विवाह कार्य करके और दायजा देकर मन्त्रियोंसे सम्मति करके॥२॥दूतोंसे यह वचन सुनकर कि राजोंने मार्ग रोका है महातेजस्वी सुबाहु राजा दुःखी हुए ॥ ३ ॥ उस समय सुदर्शनने अपने श्वसुरसे कहा आप हमको बिदा कीजिये हम अशंकित होकर जायंगे ॥ ४ ॥ हम सावधानतासे भरद्वाजके आश्रममें जायंगे, वहां जाकर

केचनोचुः किमस्माकं हंत तेन नृपेण वै ॥ दृष्ट्वा तु कौतुकं सर्वं गमिष्यामो यथागतम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वा ते नृपाः सर्वे मार्गमाक्रम्य संस्थिताः ॥ चकारोत्तरकार्याणि सुबाहुः स्वगृहं गतः ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० तृ० द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्मै गौरवभोज्यानि विधाय विधिव त्तदा ॥ वासराणि च षड्राजा भोजयामास भक्तितः ॥ १ ॥ एवं विवाहकार्याणि कृत्या सर्वाणि पार्थिवः ॥ पारिबर्हं प्रदत्त्वाऽथ मन्त्रयन्सचिवैःसह ॥ २ ॥ दूतैस्तु कथितं श्रुत्वा मार्गसंरोधनं कृतम् ॥ बभूव विमना राजा सुबाहुरमितद्युति ॥ ३ ॥ सुदर्शनस्तदोवाच श्वसुरं संशितव्रतः ॥ अस्मान्विसर्जयाशु त्वं गमिष्यामो ह्यशंकिताः ॥ ४ ॥ भारद्वाजाश्रमं पुण्यं गत्वा तत्र समाहिताः ॥ निवासाय विचारो वै कर्तव्यः सर्वथा नृप ॥ ५ ॥ नृपेभ्यश्च न कर्तव्यं भयं किंचित्त्वयाऽनघ ॥ जगन्माता भवानी मे साहाय्यं वै करिष्यति ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्येति मतमाज्ञाय जामातुर्नृपसत्तमः ॥ विसर्ज धनं दत्त्वा प्रतस्थे सोऽपि सत्वरः ॥७॥ बलेन महताऽऽविष्टो ययावनु नृपोत्तमः ॥ सुदर्शनो वृतस्तत्र चचाल पथि निर्भयः ॥ ८ ॥ रथैः परिवृतः शूरः सदारो रथसंस्थितः ॥ गच्छन्ददर्श सैन्यानि नृपाणां रघुनंदनः ॥९॥ सुबाहुरपि तान्वीक्ष्य चिंताविष्टो बभूव ह ॥ विधिवत्स शिवां चित्त जगामं शरणं मुदा॥१०॥

निवास करनेका विचार करेंगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! तुमको इन राजोंसे भय न करना चाहिये, जगन्माता भवानी मेरी सहायता करेगी ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले, यह राजा इस प्रकार जामाताका मत जानकार धन देकर बिदा करते हुए और आप भी ॥ ७ ॥ बड़े बलसे युक्त होकर पीछे २ रहे और सुदर्शन निर्भय मार्गमें गमन करने लगा ॥ ८ ॥ दारासहित वह रघुनन्दन शूर रथमें स्थित हुआ मार्गमें जाते हुए शत्रुओंकी सेना देखने लगा ॥९॥ सुबाहु राजा उस सेनाको देखकर चिंता करने लगा, और विधिपूर्वक सुदर्शन भगवतीकी शरण हुआ ॥ १० ॥

और वह कामराज श्रेष्ठ मंत्र जपने लगा, और नई ब्याही पत्नीके सहित निर्भय और शोकरहित रहा ॥ ११ ॥ उसी समय सब राजा कोलाहल करके कन्याके हरणकी इच्छासे सेना सहित उठे ॥ १२ ॥ काशीराज भी उनको देखकर मारनेकी इच्छा करने लगे उस समय सुदर्शनने उनको बहुतही निवारण किया ॥ १३ ॥ वहां शंख भेरी दुंदुभी बजने लगीं, सुबाहु और राजोंका परस्पर नाशक युद्ध हुआ ॥ १४ ॥ और शत्रुजित् भी युद्ध करनेकी इच्छासे स्थित हुआ और युधाजित् उसकी सहायता करनेको स्थित हुआ ॥ १५ ॥ और कोई केवल उन सेनाके देखनेको स्थित हुए और युधाजित् आगे जाकर सुदर्शनके समीप उपस्थित हुआ ॥ १६ ॥ उसके साथ यह छोटा भ्राता अपने बडे भ्राताको मारनेको उपस्थित हुआ, और क्रोधित होके

जजापैकाक्षरं मंत्रं कामराजमनुत्तमम् ॥ निर्भयो वीतशोकश्च पत्न्या सह नवोढया ॥११॥ ततः सर्वे महीपालाः कृत्वा कोलाहलं तदा ॥ उत्थिताः सैन्यसंयुक्ता हन्तुकामास्तु कन्यकाम् ॥ १२ ॥ काशीराजस्तु तान्दृष्ट्वा हंतुकामो बभूव ह ॥ निवारितस्तदाऽत्यर्थं राघवेण जिघांसया ॥ १३ ॥ तत्रापि नेदुः शंखाश्च भेर्यश्चानकदुंदुभिः ॥ सुबाहोश्च नृपाणां च परस्परजिघांसताम् ॥ १४ ॥ शत्रुजित्तु सुसंवृत्तः स्थितस्तत्र जिघांसया ॥ युधाजित्तत्सहायार्थं सन्नद्धः प्रबभूव ह ॥१५॥ केचिच्च प्रेक्षकास्तस्या सहानीकैः स्थितास्तदा ॥ युधाजिदग्रतो गत्वा सुदर्शनमुपस्थितः ॥ १६ ॥ शत्रुजित्तेन सहितो हंतुं भ्रातरमानुजः ॥ परस्परं ते बाणौघैस्ततक्षुः क्रोधमूर्छिताः ॥१७॥ संमर्दः सुमहांस्तत्र संप्रवृत्तः सुमार्गणैः ॥ काशीपतिस्तदा तूर्णं सैन्येन बहुना वृतः ॥१८॥ साहाय्यार्थं जगामाशु जामातरम निंदितम् ॥ एवं प्रवृत्ते संग्रामे दारुणे लोमहर्षणे ॥१९॥ प्रादुर्बभूव सहसा देवी सिंहोपरिस्थिता ॥ नानायुधधरा रम्या वराभूषणभूषिता ॥ २० ॥ दिव्यांबरपरीधाना मंदारस्रक्सुसंयुता ॥ तां दृष्ट्वा तेऽथ भूपाला विस्मयं परमं गताः ॥ २१ ॥ केयं सिंहसमारूढा कुतो वेति समुत्थिता ॥ सुदर्शनस्तु तां वीक्ष्य सुबाहुमिति चाब्रवीत् ॥ २२ ॥

परस्पर बाणोंका प्रहार करने लगे ॥ १७ ॥ वहां बाणोंका बडा संमर्द हुआ, उस समय काशीपति भी अपनी बडी सेना लेकर ॥ १८ ॥ जामाताकी सहायताके निमित्त आया. इस प्रकार जब दारुण लोमहर्षण संग्राम हुआ ॥ १९ ॥ तब सिंहके ऊपर स्थित हुई देवी सहसा प्रगट होती हुई, जो अनेक आयुध धारे सुन्दर आभूषणोंसे भूषित थीं ॥ २० ॥ दिव्य वस्त्र धारे मंदारके फूलोंकी माला पहरे भगवतीको देखकर सब राजा बडे विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ यह सिंहपर आरूढ कौन कहांसे आई, तब सुदर्शन भगवतीका दर्शनकर सुबाहुसे बोले ॥ २२ ॥

हे राजन् ! देखो यह दिव्य दर्शनवाली महादेवी दयाकरके मेरे अनुग्रहके निमित्त प्रगट हुई है ॥ २३ ॥ हे महाराज ! इस समय तो मैं निर्भयसे भी निर्भय हूं इस प्रकार सुदर्शन और सुबाहु उस प्रमदाश्रेष्ठ भगवतीको देखकर ॥ २४ ॥ प्रसन्न हो प्रणाम करते हुए, उस समय सिंहने गर्जना की जिससे हाथी व्याकुल होकर कंपायमान होगये ॥ २५ ॥ घोरपवन चलने लगा, दिशा बड़ी दारुण होगई तब सुदर्शनने अपने सेनापतिसे कहा ॥ २६ ॥ तुम शीघ्रतासे उस मार्गको चलो जहां राजा एकत्र हैं वे दुष्टचित्त राजा क्रोधकर क्या करेंगे ? ॥ २७ ॥ वह भगवती देवी हमको शरण देनेको प्राप्त हुई है इस राजाओंके मार्गमें निस्सन्देह निश्शंक गमन करो ॥ २८ ॥ यह महादेवी मेरे स्मरण करते ही रक्षा करनेको प्राप्त हुई है, यह सुनकर सेनापति उसी मार्गसे गमन करने लगा ॥ २९ ॥ तब

पश्य राजन्महादेवीमागतां दिव्य दर्शनाम् ॥ अनुग्रहाय मे नूनं प्रादुर्भूता दयान्विता ॥ २३ ॥ निर्भयोऽहं महाराज जातोऽस्मि निर्भयादपि ॥ सुदर्शनः सुबाहुश्च तामालोक्य वराननाम् ॥२४॥ प्रणामं चक्रतुस्तस्या मुदितौ दर्शनेन च ॥ ननाद च तथा सिंहो गजास्त्रस्ताश्च कंपिरे ॥ २५ ॥ वबुर्वाता महाघोरा दिशश्चासन्सुदारुणाः ॥ सुदर्शनस्तदा प्राह निजं सेनापतिं प्रति ॥२६॥ मार्गे व्रज त्वं तरसा भूपाला यत्र संस्थिताः ॥ किं करिष्यंति राजानः कुपिता दुष्टचेतसः ॥ २७ ॥ शरणार्थं च संप्राप्ता देवी भगवती हि नः ॥ निरातंकैश्च गंतव्यं मार्गेऽस्मिन्भूपसंकुले ॥ २८ ॥ स्मृता मया महादेवी रक्षणार्थमुपागता ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं सेना पतिस्तेन पथाऽव्रजत् ॥ २९ ॥ युधाजित्तु सुसंक्रुद्धस्तानुवाच महीपतीन् ॥ किं स्थिता भयसंत्रस्ता निघ्नंतु कन्यकान्वितम् ॥३०॥ अवमन्य च नः सर्वान्बलहीनो बलाधिकान् ॥ कन्यां गृहीत्वा संयाति निर्भयस्तरसा शिशुः ॥ ३१ ॥ किं भीताः कामिनीं वीक्ष्य सिंहोपरि सुसंस्थिताम् ॥ नोपेक्ष्यो हि महाभाग हंतव्योऽत्र समाहितैः ॥ ३२ ॥ हत्वैनं संग्रहीष्यामः कन्यां चारुविभूषणाम् ॥ नायं केसरिणाऽऽदत्तां छेत्तुमर्हति जंबुकः ॥३३॥ इत्युक्त्वा सैन्यसंयुक्तः शत्रुजित्सहितस्तदा ॥ योद्धुकामः सुसंप्राप्तो युधाजित्क्रोधसंवृतः ॥ ३४ ॥

युधाजित् क्रोधकर उन राजाओंसे कहने लगा तुम भयभीत क्यों स्थित हो कन्यासहित मारो ॥ ३० ॥ हम सब अधिक बलियोंको निरादर कर यह निर्बल बालक वेगसे कन्याको ग्रहण कर गमन करता है ॥ ३१ ॥ सिंहपर स्थित हुई इस स्त्रीको देखकर क्यों भीत होते हो ? इसकी उपेक्षा न करो सब मिलकर इसे मारो ॥ ३२ ॥ इनको मारकर सुन्दर भूषणवाली कन्याको ले जायंगे यह शृगाल सिंहसे गृहीत कामिनीके छीननेको समर्थ नहीं है. यह गीदड़ छेदन करने योग्य है ॥ ३३ ॥ यह कहकर शत्रुजित्के सहित क्रोधित हो युधाजित् युद्ध करनेको प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥

और शिलापर तीक्ष्ण किये पुंखवाले बाणोंको जो कि लोहकारसे मांजे हुए थे कर्णपर्यन्त खैंचकर छोडे॥ ३५॥ इस प्रकार वह दुर्बुद्धि मारनेकी इच्छासे सुदर्शनपर प्रहार करने लगा. सुदर्शनने अपने बाणोंसे उनका क्षणमें छेदन कर दिया ॥ ३६ ॥ इस प्रकार युद्ध होनेपर चण्डिका अत्यन्त क्रुद्ध हुई और दुर्गा देवी युधाजित्पर बाण प्रहार करने लगी ॥ ३७ ॥उस समय भगवती अनेक अस्त्र शस्त्र धारण किये अनेक रूप होगई और जगदम्बिकाने बडा भयंकर संग्राम किया ॥ ३८॥ उसमें शत्रुजित् और युधाजित् दोनों मारे गये, जिस समय वह रथसे पतित हुए उसी समय जयशब्द हुआ ॥ ३९ ॥ सब राजा उनको मृत देखकर परमविस्मयको प्राप्त हुए, इस प्रकार मामा भांजेका संग्राममें निधन हुआ ॥ ४० ॥ सुबाहु उन दोनोंको युद्धमें निहत देखकर दुर्गतिनाशिनी दुर्गादेवीको परमप्रीतिसे सन्तुष्ट करने

मुमोच विशिखांस्तूर्णं समपुंखाञ्छिलाशितान् धनुराकृष्य कर्णांतं कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ३५ ॥ हंतुकामः सुदुर्मेधाः सुदर्शनमथोपरि॥ सुदर्शनस्तु तान्वाणैश्चिच्छेदापततः क्षणात् ॥ ३६ ॥ एवं युद्धे प्रवृत्तेऽथ चुकोप चंडिका भृशम् ॥ दुर्गादेवी मुमोचाथ वाणान्युधाजितं प्रति ॥ ३७ ॥ नानारूपा तदा जाता नानाशस्त्रधरा शिवा ॥ संप्राप्ता तुमुलं तत्र चकार जगदंबिका ॥ ३८ ॥ शत्रुजिन्निहतस्तत्र युधाजिदपि पार्थिवः ॥ पतितौ तौ रथाभ्यां तु जयशब्दस्तदाऽभवत् ॥ ३९ ॥ विस्मयं परमं प्राप्ता भूपाः सर्वे विलोक्य तान् ॥ निधनं मातुलस्यापि भागिनेयस्य संयुगे ॥ ४० ॥ सुबाहुरपि तं दृष्ट्वा निधनं संयुगे तयोः ॥ तुष्टाव परमप्रीतो दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ ४१ ॥ सुबाहुरुवाच ॥ नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः ॥ दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः ॥ ४२ ॥ नमः शिवायै शांत्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः ॥ विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे ॥ ४३ ॥ नाहं गतिं तव धिया परिचिंतयन्वै जानामि देवि सगुणः किल निर्गुणायाः ॥ किं स्तौमि विश्वजननि प्रकटप्रभावां भक्तार्तिनाशनपरां परमां च शक्तिम् ॥ ४४ ॥ वाग्देवता त्वमसि सर्वगतैव बुद्धिर्विद्या मतिश्च गतिरप्यसि सर्वजन्तोः ॥ त्वां स्तौमि किं त्वमसि सर्वमनो नियन्त्री किं स्तूयते हि सततं खलु चात्मरूपम् ॥ ४५ ॥

लगा ॥ ४१ ॥ जगन्माता शिवा देवीको निरन्तर प्रणाम है दुर्गा भगवती कामदा कोनिरन्तर प्रणाम है ॥ ४२ ॥ शिवा, शांता, विद्या, मोक्षदात्री विश्वमें व्याप्त जगत्की माता जगद्धात्री शिवाके निमित्त प्रणाम है॥ ४३ ॥ हे देवि ! बुद्धिसे विचारकरभी मैं तुम्हारी गति जाननेमें समर्थ नहीं हूं कि, तुम सगुणा निर्गुणा हो, प्रगटप्रभाववाली हे मातः ! मैं आपकी क्या स्तुति करूं? आप भक्तोंके दुःख दूर करनेवाली परम शक्ति हो ॥ ४४ ॥ तुम वाग्देवता सबमें प्राप्तबुद्धिरूपा हो तुम बुद्धिविद्या और सब प्राणियोंकी गति हो मैं तुम्हारी क्या स्तुति करूं तुम सबके मनकी नियंत्री हो, सर्वव्यापक आत्मरूपकी स्तुति कैसी की जाय ? ॥ ४५॥

ब्रह्मा हर हरि तुम्हारे गुणोंकी निरन्तर स्तुति करते हैं परन्तु वे श्रेष्ठ देवता तुम्हारे गुणोंसे पार नहीं होते, हे मातः! मैं अप्रसिद्ध सत्त्वादिगुणोंसे बद्ध भेदमतिवाला जीव तुम्हारे चरित्रको किसी समय भी जाननेको समर्थ नहीं हूं ॥ ४६ ॥ अहो यह चित्त तुम्हारे चरित्रोंकी संगति क्यों नहीं करता ? कारण कि, प्रसंगसे भी चित्तकी शुद्धि तुम्हारे चरित्रोंसे ही होती है अपने जामाताकी संगतिके कारण मैंने भी यह तुम्हारा अद्भुत दर्शन पाया ॥ ४७ ॥ जिनका दर्शन ब्रह्मा हरि हर इन्द्रादिक देवता तत्त्ववादी मुनि निरन्तर चाहते हैं. हे मातः! वह तुम्हारा दुर्लभ दर्शन मैंने जप तप शम दम समाधिके विना पाया ॥ ४८ ॥ कहां तो मुझ मंदमति मंदको तुम्हारा दर्शन और कहां हे मातः! आप संसाररोगकी अद्वितीय औषधि ? हे देवि! विदित हुआ कि, तुम निरंतर देवताओंसे पूजित भक्तोंके

ब्रह्मा हरश्च हरिरप्यनिशं स्तुवन्तो नांतं गताः सुरवरः किलते गुणानाम् ॥ क्वाहं विभेदमतिरंब गुणैर्वृतो वै वक्तुं क्षमस्तव चरित्रमहो प्रसिद्धः ॥ ४६ ॥ सत्संगतिः कथमहो न करोति कामं प्रासंगिकाऽपि वहिता खलु चित्तशुद्धिं ॥ जामातुरस्य विहितेन समागमेन प्राप्तं मयाऽद्भुतमिदं तव दर्शनं वै ॥ ४७ ॥ ब्रह्माऽपि वांछति सदैव हरो हरिश्च सेंद्राः सुराश्च मुनयो विदितार्थतत्त्वाः ॥ यद्दर्शनं जननि तेऽद्य मया दुरापं प्राप्तं विना दमशमादिसमाधिभिश्च ॥४८॥ क्वाहं सुमंदमतिराशु तवावलोकं क्वेदं भवानि भवभेषजमद्वितीयम् ॥ ज्ञाताऽसि देवि सततं किल भावयुक्ता भक्तानुकम्पनपराऽमरवर्गपूज्या॥४९॥किं वर्णयामि तवदेवि चरित्रमेतद्यद्रक्षितोऽस्ति विषमेऽत्र सुदर्शनोऽयम्॥ शत्रू हतौ सुबलिनौ तरसात्वया यद्भक्तानुकंपि चरितं परमं पवित्रम् ॥ ५० ॥ नाश्चर्यमेतदिति देवि विचारितेऽर्थे त्वं पासि सर्वमखिलं स्थिरजंगमंवै ॥त्रातस्त्वया च विनिहत्य रिपुर्दयातः संरक्षितोऽयमधुना ध्रुवसंधिसूनुः ॥ ५१ ॥ भक्तस्य सेवनपरस्य यशोऽतिदीप्तं कर्तुं भवानि रचितं चरितं त्वयैतत् ॥ नो चेत्कथ सुपरिगृह्य सुतां मदीयां युद्धे भवेत्कुशलवाननवद्यशीलः ॥ ५२ ॥

प्रेमको देख उनपर कृपा करती हो ॥ ४९ ॥ हे भगवति ! तुम्हारे इस चरित्रको मैं क्या वर्णन करूं? जो कि आपने विषम संकटसे सुदर्शनका उद्धार किया और बडे वेगसे इसके शत्रुओंको तुमने मारा यह तुम्हारा भक्तोंपर दया करनेवाला परम पवित्र चरित्र है ॥ ५० ॥ हे मातः! विचारनेसे यह कोई बड़े आश्चर्यकी बात नहीं कारण कि, आप स्थावर जंगमात्मक सब जगत्की रक्षा करती हो, दया करके तुमने शत्रुओंको मार ध्रुवसन्धिके पुत्रकी रक्षा की ॥ ५१ ॥ इस सेवामें तत्पर भक्तका बड़ा विस्तृत यश हुआ. हे भवानि! इस चरित्रको रचकर यह तुमने ही किया नहीं तो किसप्रकार यह मेरी सुताको ग्रहण करके निंदारहित शीलवान् युद्धमें कुशल रहता ?॥ ५२ ॥

हे मातः ! तुम तो जन्ममरणके भय नाश करनेमें समर्थ हो, भक्तजनकी रक्षा करना क्या बडी बात है ? हे जननि ! निरंतर भक्तजन आपका गान करते हैं, तुम पाप पुण्यसे रहित सगुण निर्गुण हो ॥ ५३ ॥ आपके दर्शनसे मैं सुकृती कृतार्थ हुआ हूं, हे भुवनेश्वरी ! अब मेरा जन्म धन्य है. हे मातः! मैं आपके भजनका बीज नहीं जानता, अब तुम्हारी महिमा जानी जिसका प्रगट प्रभाव है ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले, इसप्रकार स्तुति करनेसे प्रसन्नवदन होकर शिवा राजासे बोली, हे सुव्रत ! इच्छित वर माँगो ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले, राजा इस प्रकार भवानीके वचन सुनकर भक्तिपूर्वक यह वचन बोला ॥१॥ सुबाहुने कहा एक ओर तो देवलोक और भूमंडलका राज्य और एक ओर तुम्हारा दर्शन

शक्ताऽसि जन्ममरणादिभयान्विहंतुं किं चित्रमत्र किल भक्तजनस्य कामम् ॥ त्वं गीयसे जननि भक्तजनैरपारा त्वं पापपुण्यरहिता सगुणाऽगुणा च ॥ ५३ ॥ त्वद्दर्शनादहमहो सुकृती कृतार्थो जातोऽस्मि देवि भुवनेश्वरि धन्य जन्मा ॥ बीजं न ते न भजनं किल वेद्मि मातर्ज्ञातस्तवाद्य महिमा प्रगटप्रभावः ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी प्रसन्नवदना शिवा ॥ उवाच च नृपं देवी वरं वरय सुव्रत ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ व्यास उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भवान्याः स नृपोत्तमः ॥ प्रोवाच वचनं तत्र सुबाहुर्भक्तिसंयुतः ॥ १ ॥ सुबाहुरुवाच ॥ एकतो देवलोकस्य राज्यं भूमण्डलस्य च ॥ एकतो दर्शनं ते वै न च तुल्यं कदाचन ॥ २ ॥ दर्शनात्सदृशं किंचित्त्रिषु लोकेषु नास्ति मे ॥ कं वरं देवि याचेऽहं कृतार्थोऽस्मि धरातले ॥ ३ ॥ एतदिच्छाम्यहं मातर्याचितुं वांछितं वरम् ॥ तव भक्तिः सदा मेऽस्तु निश्चला ह्यनपायिनी ॥ ४ ॥ नगरेऽत्र त्वया मातः स्थातव्यं मम सर्वदा ॥ दुर्गा देवीति नाम्ना वै त्वं शक्तिरिह संस्थिता ॥ ५ ॥ रक्षा त्वया च कर्तव्या सर्वदा नगरस्य ह ॥ यथा सुदर्शन स्त्रातो रिपुसंघादनामयः ॥ ६ ॥

इसमें सारा भूमंडलका राजा भी तुम्हारे दर्शनकी तुलना नहीं कर सकता ॥ २ ॥ मेरी सम्मतिमें दर्शनके समान त्रिलोकीमें और कुछ नहीं है. हे देवि ! मैं और क्या वर माँगू ? भूमंडलमें मैं कृतार्थ हो गया हूं ॥ ३ ॥ हे माता ! मैं यही वांछित वर चाहता हूं कि, सदा निश्चल अनपायिनी भक्ति तुम्हारी मुझको रहे ॥ ४ ॥ हे मातः ! इसी नगरमें सदा तुमको स्थित रहना चाहिये और दुर्गादेवी नामसे यह आप शक्तिरूप यहां रहें ॥ ५ ॥ तुमको सदा मेरे नगरकी रक्षा करनी उचित है. जैसे आपने कुशलपूर्वक शत्रओंसे सुदर्शनकी रक्षा की ॥ ६ ॥

हे मातः ! इसी प्रकार वाराणसीकी तुमको रक्षा करनी उचित है. जब तक भूमिमें यह पुरी प्रतिष्ठापूर्वक है ॥ ७ ॥ हे कृपावति दुर्गे ! देवी ! तबतक तुमको यहां रहना चाहिये यह वर तुमको देना चाहिये और मैं क्या प्रार्थना करूं ? ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारकी कामनाको मुझे देकर शत्रुओंको मारो और सदैवलोकोंके अमंगलका नाश करो ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले, जब दुर्गतिनाशिनी देवीकी इस प्रकार प्रार्थना करी तब स्तुति कर आगे खडे हुए राजासे भगवतीने कहा ॥ १० ॥ देवी बोली, हे राजन् ! इस मोक्षदा पुरीमें मैं सदा निवास करूंगी. सब लोकोंकी रक्षा करनेको पृथ्वीलय पर्यन्त मैं स्थित रहूंगी ॥ ११ ॥ तब सुदर्शन भी उस स्थानमें प्रेमपूर्वक जाय परम भक्तिसे प्रणाम कर जगन्माताको संतुष्ट करने लगा ॥ १२ ॥ अहो मातः ! मैं तुम्हारी कृपाका कहां तक वर्णन करूं ?

तथाऽत्र रक्षा कर्तव्या वाराणस्यास्त्वयांऽबिके ॥ यावत्पुरी भवेद्भूमौ सुप्रतिष्ठा सुसंस्थिता ॥ ७ ॥ तावत्त्वयाऽत्र स्थातव्यं दुर्गे देवी कृपानिधे ॥ वरोऽयं मम ते देयः किमन्यत्प्रार्थयाम्यहम् ॥ ८ ॥ विविधान्सकलान्कामान्देहि मे विद्विषो जहि ॥ अभद्राणां विनाशं च कुरु लोकस्य सर्वदा ॥९॥ व्यास उवाच ॥ इति संप्रार्थिता देवी दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ॥ तमुवाच नृपं तत्र स्तुत्वावै संस्थित परः ॥१०॥ दुर्गोवाच ॥ राजन्सदा निवासो मे मुक्तिपुर्यां भविष्यति ॥ रक्षार्थं सर्वलोकानां यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥११॥ अथो सुदर्शनस्तत्र समागम्य मुदाऽन्वितः ॥ प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टाव जगदंबिकाम् ॥ १२ ॥ अहो कृपा ते कथयाम्यहं किं त्रातस्त्वया यत्किल भक्तिहीनः ॥ भक्तानुकंपी सकलो जनोऽस्ति विमुक्तभक्तेरवनं व्रतं ते ॥ १३ ॥ त्वं देवि सर्वं सृजसि प्रपंचं श्रुतं मया पालयसि स्वसृष्टम् ॥ त्वमत्सि संहारपरे च काले न तेऽत्र चित्रं मम रक्षणं वै ॥ १४ ॥ करोमि किं ते वद देवि कार्यं क्व वा व्रजामीत्यनुमोदयाशु ॥ कार्ये विमूढोऽस्मि तवाज्ञयाऽहं गच्छामि तिष्ठे विहरामि मातः ॥ १५ ॥ व्यास उवाच ॥ तं तथा भाषमाणं तु देवी प्राह दयान्विता ॥ गच्छायोध्यां महाभाग कुरु राज्यं कुलोचितम् ॥ १६ ॥

जो आपने मुझ भक्तिहीनकी रक्षा की. भक्तके ऊपर तो सभी कृपा करते हैं, परंतु भक्तिहीनकी रक्षा करना तुम्हारा ही व्रत है ॥ १३ ॥ हे देवि ! मैंने सुना है तुम ही सब प्रपंचका सृजन करके पालन करती हो और संहार कालमें संहार करती हो तो मेरा रक्षण करना कोई विचित्र बात नहीं है ॥ १४ ॥ हे मातः ! अब कहिये मैं क्या सेवा करूं ? और कहां जाऊं ? कार्यमें मैं विमूढ हो रहा हूं, तुम्हारी आज्ञासे मैं जाऊंगा, विहार करूंगा स्थित रहूंगा ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले, ऐसा उस कुम्हारके कहनेपर देवी दयाकर बोली, हे महाभाग ! अयोध्यामें जाकर कुलोचित राज्य करो ॥ १६ ॥

सदा मेरा स्मरण और पूजन करना. हे राजन् ! मैं सदा तुम्हारे राज्यमें शान्ति रक्खूंगी ॥ १७॥ अष्टमी नवमी चतुर्दशीको बलिदानके विधानसे मेरी पूजा करनी ॥ १८ ॥ हे पापरहित ! मेरी प्रतिमा अपने नगरमें स्थापित करनी और तीनों कालमें भक्तिपूर्वक पूजाकरनी चाहिये ॥ १९ ॥ और शरत्कालमें सर्वदा मेरी पूजा करनी चाहिये, नवरात्रका विधान भक्तिभावसे करना चाहिये ॥२०॥ चैत्र, आश्विन, आषाढ और माघमें महोत्सव करना चाहिये. हे महाराज ! नवरात्रमें विशेष पूजा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ कृष्णपक्षकी चौदशको अष्टमीको भक्तिभावके सहित तुमको पूजा करनी चाहिये ॥ २२ ॥ व्यासजी बोले, ऐसा कहकर दुर्गतिनाशिनी देवी अन्तर्हित हो गई. सुदर्शननेभी अनेक प्रणाम कर स्तुतिकी ॥ २३ ॥ भगवतीको अन्तर्हित हुआ जानकर वे सब राजा सुदर्शनको

स्मरणीया सदाऽहं ते पूजनीया प्रयत्नतः ॥ शं विधास्याम्यहं नित्यं राज्ये ते नृपसत्तम ॥ १७ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां च विशेषतः ॥ मम पूजा प्रकर्तव्या बलिदानविधानतः ॥ १८ ॥ अर्चा मदीया नगरे स्थापनीया त्वयाऽनघ ॥ पूजनीया प्रयत्नेन त्रिकालं भक्तिपूर्वकम् ॥ १९ ॥ शरत्काले महापूजा कर्तव्या मम सर्वदा ॥ नवरात्रविधानेन भक्तिभावयुतेन च ॥ २० ॥ चैत्रेऽश्विने तथाऽऽषाढे माघे कार्यो महोत्सवः ॥ नवरात्रे महाराज पूजा कार्या विशेषतः ॥२१ ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां मम भक्तिसमन्वितैः ॥ कर्तव्या नृपशार्दूल तथाऽष्टम्यां सदाबुधैः ॥ ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांऽतर्हिता देवी दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ॥ न ता सुदर्शनेनाथ स्तुता च बहुविस्तरम् ॥ २३ ॥ अंतर्हितां तु तां दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते ॥ प्रणेमुस्तं समागम्य यथा शक्रं सुरास्तथा ॥ २४ ॥ सुबाहुरपि तं नत्वा स्थितश्चाग्रे मुदाऽन्वितः ॥ ऊचुः सर्वे महीपाला अयोध्याधिपतिं तदा ॥ २५ ॥ त्वमस्माकं प्रभुः शास्ता सेवकास्ते वयं सदा ॥ कुरु राज्यमयोध्यायां पालयास्मान्नृपोत्तम ॥ २६ ॥ त्वत्प्रसादान्महाराज दृष्टा विश्वेश्वरी शिवा ॥ आदिशक्तिर्भवानी सा चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ २७ ॥ धन्यस्त्वं कृतकृत्योऽसि बहुपुण्यो धरातले ॥ यस्माच्च त्वत्कृते देवी प्रादुर्भूता सनातनी ॥ २८ ॥

आकर ऐसे प्रणाम करने लगे जैसे देवता इन्द्रको प्रणाम करते हैं ॥ २४ ॥ और सुबाहुभी प्रणाम कर प्रसन्नता सहित आगे स्थित हुआ. तब सब राजा अयोध्याके अधिपतिसे बोले ॥ २५ ॥ तुम हमारे प्रभु शास्ता हो और हम तुम्हारे सेवक हैं. हे राजन् ! हमको पालन करते हुए अयोध्याका राज्य करो ॥ २६ ॥ हे महाराज ! आपकी कृपासे विश्वेश्वरी शिवाका दर्शनहुआ, वह आदि शक्ति भवानी चारवर्गोंका फल देती है ॥ २७॥ तुम धन्य कृतकृत्य और पृथ्वीमें बहु पुण्य वाले हो. जो कि आपके निमित्त सनातनी देवी प्रगट हुई ॥ २८ ॥

हे श्रेष्ठ राजन् ! हमने तमोगुण युक्त और मायासे मोहित होनेके कारण चंडिकाका प्रभाव न जाना ॥ २९ ॥ हम तो सदा धन स्त्री और पुत्रोंके ही चिन्तनमें लगे रहते हैं, इस काम क्रोध रूपी मगरसे भरे संसार सागरमें मग्न रहते हैं ॥ ३० ॥ हे महामते ! महाभाग ! तुम सर्वज्ञ हो, हम तुमसे पूँछते हैं यह कौन शक्ति कहांसे प्रगट हुई ? किस प्रभाववाली है सो कहो ॥ ३१ ॥ आप ही इस संसारमें पार करनेको नौकासदृश हो, साधु दयालु होते हैं इस कारण हे काकुत्स्थ ! हमसे देवीका माहात्म्य कहो ॥ ३२ ॥ इस देवीका जैसा प्रभाव जैसा उदय हो. हे राजन् ! वही तुमसे सुननेकी इच्छा है तो आप तत्वसे कहिय ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले, राजाओंके ऐसा कहनेपर वह ध्रुवसंधिका पुत्र प्रसन्न हो मनसे देवीको प्रणामकर उनसे बोला ॥ ३४ ॥ सुदर्शनने कहा, हे ०राजो ! उसके

न जानीमो वयं सर्वे प्रभावं नृपसत्तम ॥ चंडिकायास्तमो युक्ता मायया मोहिताः सदा ॥२९॥ धनदारसुतानां च चिंतनेऽभिरताः सदा ॥ मग्ना महार्णवे घोरे कामक्रोधझषाकुले ॥ ३० ॥ पृच्छामस्त्वां महाभाग सर्वज्ञोऽसि महामते ॥ केयं शक्तिः कुतोजाता किंप्रभावा वदस्व तत् ॥ ३१ ॥ भव त्वं नौश्च संसारे साधवोऽतिदयापराः ॥ तस्मान्नो वद काकुत्स्थ देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३२ ॥ यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपां यदुद्भवा ॥ तत्सर्व श्रोतुमिच्छामस्त्वं ब्रूहि नृवरोत्तम ॥३३॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्ठस्तथा तैस्तु ध्रुवसंधिसुतो नृपः ॥ विचिंत्य मनसा देवीं तानुवाच मुदाऽन्वितः ॥३४॥ सुदर्शन उवाच ॥ किं ब्रवीमि महीपालास्तस्याश्चरितमुत्तमम् ॥ ब्रह्मादयो न जानंति सेशाः सुरगणास्तथा ॥ ३५ ॥ सर्वस्याऽऽद्या महालक्ष्मीर्वरेण्या शक्तिरुत्तमा ॥ सात्त्विकीयं महीपाला जगत्पालनतत्परा ॥ ३६ ॥ सृजते या रजोरूपा सत्त्व रूपा च पालने ॥ संहारे च तमोरूपा त्रिगुणा सा सदा मता ॥ ३७ ॥ निर्गुणा परमा शक्तिः सर्वकामफलप्रदा ॥ सर्वेषां कारणं सा हि ब्रह्मादीनां नृपोत्तमाः ॥ ३८ ॥ निर्गुणा सर्वथा ज्ञातुमशक्या योगिभिर्नृपाः ॥ सगुणा सुखसेव्या या चिंतनीया सदा बुधैः ॥ ३९ ॥

उत्तम चरित्र तुमसे क्या कहूं ? ब्रह्मादिक देवता भी इसको नहीं जानते ॥ ३५ ॥ वह महालक्ष्मी सबकी आद्या उत्तम शक्ति है. हे राजन् ! यह सात्विक जगत्के पालनमें तत्पर है ॥ ३६ ॥ जो सृजनमें रजोगुणी, पालनमें सत्यरूप, संहारमें तमोरूप इस प्रकार त्रिगुणा है ॥ ३७ ॥ और वह निर्गुणा शक्ति सब काम और फलकी देनेवाली. हे राजन् ! वह सब ब्रह्मादिकोंका भी कारण है ॥ ३८ ॥ हे राजाओ ! वह निर्गुण शक्ति तो योगियोंको भी अगम्य है. सगुण सुखसे सेवनके योग्य है जिसका पंडित सदा चिन्तन करते हैं ॥ ३९ ॥

सब राजा बोले, हे कुमार ! तुम तो डरकर बालकपनसे ही वनमें प्राप्त हुए थे. यह परमउत्तम शक्ति तुमको किसप्रकार प्राप्त हुई ? ॥ ४० ॥ और तुमने कैसे उपासना करके पूजी ? जिसने प्रसन्न होकर तुम्हारी शीघ्रतासे सहायता की ॥ ४१ ॥ सुदर्शनने कहा बाल भावमें मैंने भगवतीका बीजमन्त्र पाया हे राजाओ ! उस काम बीजका निरन्तर जप किया ॥ ४२ ॥ और ऋषियोंके कथन करनेसे मैंने अम्बिका शिवाको जाना. उसको मैं परम भक्तिसे दिनरात जपता हूं ॥ ४३ ॥ व्यासजी बोले, कुमारके यह वचनसुन सब राजा भक्तिमें तत्पर हुए और परम भक्तिको मानकर सब अपने २ घरको गये ॥ ४४ ॥ और सुदर्शनसे पूँछकर सुबाहु काशीमें आया और धर्मात्मा सुदर्शन कोसल देशको गया ॥४५॥ जब मंत्रीने शत्रुजितको युद्धमें मृतक सुना और सुदर्शनकी जीत

राजान ऊचुः ॥ बाल एव वनं प्राप्तस्त्वं तु नूनं भयातुरः ॥ कथं ज्ञाता त्वया देवी परमा शक्तिरुत्तमा ॥ ४० ॥ उपासिता कथं चैव पूजिता च कथं नृप ॥ या प्रसन्ना तु साहाय्यं चकार त्वरयाऽन्विता ॥ ४१ ॥ सुदर्शन उवाच ॥ बालभावान्मया प्राप्तं बीजं तस्याः सुसंमतम् ॥ स्मरामि प्रजपन्नित्यं कामबीजाभिधं नृपाः ॥ ४२ ॥ ऋषिभिः कथ्यमाना सा मया ज्ञाताऽम्बिका शिवा ॥ स्मरामि तां दिवारात्रं भक्त्या परमया पराम् ॥ ४३ ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य राजानो भक्तितत्पराः ॥ तां मत्वा परमां शक्तिं निर्ययुः स्वगृहान्प्रति ॥ ४४ ॥ सुबाहुरगमत्काश्यां तमापृच्छ्य सुदर्शनम् ॥ सुदर्शनोऽपि धर्मात्मा निर्जगाम सुकोशलान् ॥ ४५ ॥ मंत्रिणस्तु नृपं श्रुत्वा हतं शत्रुजितं मृधे ॥ जितं सुदर्शनं चैव बभूवुः प्रेमसंयुताः ॥ ४६ ॥ आगच्छंतं नृपं श्रुत्वा तं साकेतनिवासिनः ॥ उपायनान्युपादाय प्रययुः संमुखे जनाः ॥ ४७ ॥ तथा प्रकृतयःसर्वे नानोपायनपाणयः ॥ ध्रुवसंधिसुतं मत्वा मुदिताः प्रययुः प्रजाः ॥ ४८ ॥ स्त्रियोपसंयुतः सोऽथ प्राप्यायोध्यां सुदर्शनः ॥ संमान्य सर्वलोकांश्च ययौ राजा निवेशनम् ॥ ४९ ॥ बंदिभिः स्तूयमानस्तु वंद्यमानश्च मंत्रिभिः ॥ कन्याभिः कीर्यमाणश्च लाजैः सुमनसैस्तथा ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

सुनी तब बडे प्रसन्न हुए ॥ ४६ ॥ अयोध्यावासी उस राजाको आया सुनकर अनेक प्रकारकी भेंटैं लेकर सन्मुख उपस्थित हुए ॥४७॥ इसी प्रकारसे और सब प्रजाभी अनेक भेंटैं लेकर ध्रुवसन्धिके पुत्रके निकट प्रेमसे आई ॥ ४८ ॥वधूके सहित सुदर्शन अयोध्यामें प्राप्त होकर सब लोगोंका सन्मान कर राजमन्दिरमें गया ॥ ४९ ॥ बन्दियोंसे स्तुतिको प्राप्त होकर मन्त्रियोंसे बन्दित होकर कन्याओंकी खीलैं और फूलोंकी वर्षाका अनुभव करते राजमन्दिरमें आगमन किया ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

व्यासजी बोले, वह राजश्रेष्ठ सुहृदोंसे युक्त अयोध्यामें जाकर शोकयुक्त शत्रुजित्की मातासे बोला ॥ १ ॥ हे मातः ! संग्राममें मैंने तुम्हारे पुत्रको नहीं मारा न मैंने तुम्हारे पिता युधाजित्को मारा मैं तुम्हारे चरणोंकी सौगन्ध खाता हूं ॥ २ ॥ भगवती दुर्गाके सन्मुख होनेसे दोनों मृतक हुए इसमें मेरा अपराध नहीं है, होनहार किसीसे टलती नहीं है ॥ ३ ॥ हे मानिनि ! मृत पुत्रका शोक तुमको न करना चाहिये. जीव अपने कर्मके अनुसार सुख असुख भोगता है ॥ ४ ॥ हे मातः !इस प्रकार मैं तुम्हारा दास हूं जैसे मनोरमाका, हे धर्मज्ञे ! इसी प्रकार तुम हो मैं कुछ भी तुममें भेद नहीं मानता ॥ ५ ॥ शुभाशुभ क्रिया कर्म अवश्य भोगना पडता है इस कारण तुमको सुख दुःखमें शोच करना न चाहिये ॥ ६ ॥ जो दुःखमें अधिक दुःख सुखमें अधिक सुख देखते हैं ? आत्माको

व्यास उवाच ॥ गत्वाऽयोध्यां नृपश्रेष्ठो गृहं राज्ञाः सुहृद्वृतः ॥ शत्रुजिन्मातरं प्राह प्रणम्य शोकसंकुलाम् ॥ १ ॥ मातर्न ते मया पुत्रः संग्रामे निहतः किल ॥ न पिता ते युधाजिच्च शपे ते चरणौ तथा॥२॥दुर्गया तौ हतौ संख्ये नापराधो ममात्र वै॥अवश्यंभाविभावेषु प्रतीकारो न विद्यते ॥ ३ ॥ न शोकोऽत्र त्वया कार्यो मृतपुत्रस्य मानिनि ॥ स्वकर्मवशगो जीवो भुंक्ते भोगान्सुखासुखान् ॥ ४ ॥ दासोऽस्मि तव भो मातर्यथा मम मनोरमा ॥ तथा त्वमपि धर्मज्ञे न भेदोऽस्ति मनागपि ॥ ५ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ तस्मान्न शोचितव्यं ते सुखदुःखे कदाचन ॥६॥ दुःखे दुखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम् ॥ आत्मानं शोकहर्षाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत् ॥ ७ ॥ दैवाधीनमिदं सर्वं नात्माधीनं कदाचन ॥ न शोके न तदाऽऽत्मानं शोषयेन्मतिमान्नरः ॥ ८ ॥ यथा दारुमयी योषा नटादीनां प्रचेष्टते ॥ तथा स्वकर्मवशगो देही सर्वत्र वर्तते ॥ ९ ॥ अहंवनगतो मातर्नाभवं दुःखमानसः ॥ चिंतयन्स्वकृतं कर्म भोक्तव्यमिति वेद्मि च ॥ १० ॥ मृतो मातामहोऽत्रैव विधुरा जननी मम ॥ भयातुरा गृहीत्वा मां निर्ययौ गहनं वनम् ॥११॥ लुंठिता तस्करैर्मार्गे वस्त्रहीना तथा कृता ॥ पाथेयं च हृतं सर्वं बालपुत्रा निराश्रया ॥ १२ ॥

शत्रुके समान हर्षशोकको अर्पण न करे ॥ ७ ॥ यह सब दैवके आधीन है अपने अधीन नहीं है बुद्धिमान् शोकसे अपनी आत्माको नष्ट न करे ॥ ८ ॥ जैसे काठके पुतली नटादिके द्वारा चेष्टा करती है, इसी प्रकार देही सर्वत्र अपने कर्मके अधीन चेष्टा करता है ॥ ९ ॥ हे मातः ! मैं वनमें जाकरभी मनमें दुःखी न हुआ मैंने यही विचारा कि, यह अपना क्रियाही कर्मभोगना है ॥ १० ॥ मेरे मातामह यहीं मृतक हुए, माता वैधव्यको प्राप्त हुई और भयातुर हो मुझे लेकर गहन वनमें गई ॥ ११ ॥ हमको मार्गमें चोरोंने लूट लिया वस्त्रतक हरणकर लिये और उस निराश्रय बालक पुत्रवालीका सब खर्च ले लिया ॥ १२ ॥

मातामुझे लेकर भरद्वाजके आश्रममें प्राप्त हुई, केवल यह विदल्ल मन्त्री और धाय हमारे साथ रही ॥ १३ ॥ मुनि और मुनिपत्नियोंने बहुत दया करके हम तीनोंकी नीवार अन्न और मूल फलसे पुष्टि किया ॥ १४ ॥ तब मुझे दुःख बहुत हुआ. और अन धनागमसे बड़ा प्रसन्न नहीं हूं मेरे चित्त किसी प्रकार वैर और मात्सर्य नहीं है ॥ १५ ॥ हे परन्तप ! राजभोगसे सो नीवारका भक्षण ही श्रेष्ठ है राजभोगी नरकमें जाता है परन्तु नीवारादि भक्षण करनेवाला तपस्वी कभी नरकमें नहीं जाता ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् पुरुषको धर्मका आचरण करना चाहिये. और इंद्रि योंको जीतना चाहिये. जिससे नरक न हों ॥ १७ ॥ हे मातः ! इस भरतखण्डमें मनुष्यका जन्म बडा दुर्लभ है, आहारादिका सुख तो सब योनियोंमें मिल सकता है ॥ १८ ॥ मनुष्य देहको प्राप्त

माता गृहीत्वा मां प्राप्ता भारद्वाजाश्रमं प्रति॥विदल्लोऽयं समायातस्तथा धात्रेयिकाऽबला ॥१३॥ मुनिभिर्मुनिपत्नीभिर्दयायुक्तैः समंततः ॥ पोषिताः फल नीवारैर्वयं तत्र स्थितास्त्रयः ॥ १४ ॥ दुःखं न मे तदा ह्यासीत्सुखं नाद्य धनागमे ॥ न वैरं न च मात्सर्यं मम चित्ते तु कर्हिचित् ॥ १५ ॥ नीवारभक्षणं श्रेष्ठं राजभोगात्परंतपे ॥ तदाशी नरकं याति न नीवाराशनः क्वचित् ॥ १६ ॥ धर्मस्याचरणं कार्यं पुरुषेण विजानता ॥ संजित्येंद्रियवर्गं वै यथा न नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥ मानुष्यं दुर्लभं मातः खंडेऽस्मिन्भारते शुभे ॥ आहारादिसुखं नूनं भवेत्सर्वासु योनिषु ॥ १८ ॥ प्राप्य तं मानुषं देहं कर्तव्यं धर्म साधनम् ॥ स्वर्गमोक्षप्रदं नृणां दुर्लभं चान्ययोनिषु ॥ १९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता सा तदा तेन लीलावत्यतिलज्जिता ॥ पुत्रशोकं परित्यज्य तमाहाश्रुविलोचना ॥ ॥ २० ॥ सापराधाऽस्मि पुत्राहं कृता पित्रा युधाजिता ॥ हत्वा मातामहं तेऽत्र हृतं राज्यं तु येन वै ॥ २१ ॥ न तं वारयितुं शक्ता तदाऽहं न सुतं मम ॥ यत्कृतं कर्म तेनैव नापराधोऽस्ति मे सुते ॥ २२ ॥ तौ मृतौ स्वकृतेनैव कारणं त्व तयोन च ॥ नाहं शोचामि तं पुत्रं सदा शोचामि तत्कृतम् ॥ २३ ॥

करके धर्मका साधन करना चाहिये. यह मनुष्योंको स्वर्ग और मोक्षप्रद है. और योनियोंमें दुर्लभ है ॥ १९ ॥ व्यासजी बोले कुमारके यह वचन सुन लीलावती बड़ी लज्जित हुई. पुत्रका शोक छोड़कर आँसू भरकर उससे बोली ॥ २० ॥ युधाजितने मुझे पुत्र सहित अपराधी किया जिसने तुम्हारे मातामहको मारकर राज्य हरण किया ॥ २१ ॥ उसको मैं वा मेरा पुत्र निवारण करनेको समर्थ न था जो उसने कर्म किया उसके मैं निवारण करनेमें समर्थ नहीं थी. इसमें मेरा अपराध नहीं है ॥ २२ ॥ वे अपने कर्मसे मरे, 'हे पुत्र इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है' मैं पुत्रको नहीं सोचती उसके कृत्यको शोचती हूं ॥ २३ ॥

हेपुत्र ! तुम श्रेष्ठ हो मनोरमा मेरी भगिनी है हे पुत्र ! तुमपर मेरा कुछभी क्रोध नहीं है ॥ २४ ॥ हे महाभाग ! भली प्रकार प्रजापालन पूर्वक राज्य करो यह भगवतीके प्रसादसे तुमको अकंटक राज्य प्राप्त हुआहै ॥ २५ ॥ राजकुमार माताके यह वचन सुन उसको प्रणामकर मनोरमा माता जहां पहले रहती थी उस पवित्र स्थानको गया ॥ २६ ॥ वहां जाय उसने निवास किया और सब मंत्रियोंको बुलाय और ज्योतिषियोंको बुलाकर शुभमुहूर्त पूँछा ॥ २७ ॥ कि मैं सुवर्णका मनोहर सिंहासन बनाय उसपर भगवतीका सदा पूजन करूंगा ॥ २८ ॥ पहले धर्म अर्थ काम मोक्षदायक भगवतीको स्थापन करके राज्य पीछे करूंगा जैसे श्रीरामचन्द्रादिने किया ॥ २९ ॥ सब नगर निवासियोंको सदा भगवतीका पूजन करना चाहिये और सब काम अर्थकी सिद्धि देनेवाली

पुत्रस्त्वमसि कल्याण भगिनी मे मनोरमा ॥ न क्रोधो न च शोको मे त्वयि पुत्र मनागपि ॥ २४ ॥ कुरु राज्यं महाभाग प्रजाः पालय सुव्रत ॥ भगवत्याः प्रसादेन प्राप्तमेतदकंटकम् ॥ २५ ॥ तदाकर्ण्य वचो मातुर्नत्वा तां नृपनंदनः ॥ जगाम भुवनं रम्यं यत्र पूर्वं मनोरमा ॥ २६ ॥ न्यवसत्तत्र गत्वा तु सर्वानाहूय मंत्रिणः ॥ दैवज्ञानथ प्रपच्छ मुहूर्तं दिवसं शुभम् ॥ २७ ॥ सिंहासनं तथा हैमं कारयित्वा मनोहरम् ॥ सिंहासने स्थितां देवीं पूजयिष्ये सदाऽप्यहम् ॥ २८ ॥ स्थापयित्वाऽऽसने देवीं धर्मार्थकाममोक्षदाम् ॥ राज्यं पश्चात्करिष्यामि यथा रामादिभिः कृतम् ॥ २९ ॥ पूजनीया सदा देवी सर्वैर्नागरिकैर्जनैः ॥ माननीया शिवा शक्तिः सर्वकामार्थसिद्धिदा ॥ ३० ॥ इत्युक्ता मंत्रिणस्ते तु चक्रुर्वै राजशासनम् ॥ प्रासादं कारयामासुः शिल्पिभिः सुमनोरमम् ॥ ३१ ॥ प्रतिमां कारयित्वाऽथ मुहूर्तेऽथ शुभे दिने ॥ द्विजानाहूय वेदज्ञान्स्थापयामास भूपतिः ॥ ३२ ॥ हवनं विधिवत्कृत्वा पूजायित्वाऽथ देवताम् ॥ प्रासादे मतिमान्देव्याः स्थापयामास भूमिपः ॥ ३३ ॥ उत्सवस्तत्र संवृत्तो वादित्राणां च निःस्वनैः ॥ ब्राह्मणानां वेदघोषैर्गानैस्तु विविधैर्नृप ॥ ३४ ॥

भगवतीका सदा मान करना चाहिये ॥ ३० ॥ ऐसा सुनतेही वे मंत्री राजाकी आज्ञा करते हुए और कारीगरोंसे उन्होंने बहुत सुन्दर मंदिर बनवाया ॥ ३१ ॥ और भगवतीकी प्रतिमा बनाय शुभ मुहूर्त दिनमें वेद ज्ञाता ब्राह्मणोंको बुलाकर राजाने स्थापन किया ॥ ३२ ॥ विधिपूर्वक हवन कर और देवताओंका पूजन कर मंदिरमें राजाने भगवतीका स्थापन किया ॥ ३३ ॥ बाजोंके शब्दोंसे वहां बडा उत्सव हुआ. ब्राह्मणोंके वेदघोष और अनेक प्रकारके गान स्तुतियोंसे मंगल हुआ ॥ ३४ ॥

व्यासजी बोले, इस प्रकार वेदवादियोंने भगवतीकी स्थापना की और राजा भी परम भक्तिसे पूजा करने लगा ॥ २५ ॥ पूजा विधि कर राजा अपने पिताके राज्यको प्राप्त हो सुख भोगने लगे अम्बिका देवी सब कोसल देशमें विख्यात हुई ॥ ३६ ॥ इस प्रकार राजा राज्य पाय सब सामंत और राजाओंको सद्धर्मसे जयकर अपने वशीभूत करता हुआ ॥ ३७ ॥ जैसे रामचन्द्र दिलीप रघुका राज्य हुआ वैसी ही मर्यादा और प्रजाओंको सुख हुआ ॥ ३८ ॥ वर्णाश्रमोंका चतुष्पाद धर्म जागरूक था. किसीका भी अधर्ममें चित्त नही लगता था ॥ ३९ ॥ सब लोगोंने ग्राम २ में भगवतीके मन्दिर बनाये इस प्रकार कोसल देशमें भगवतीकी प्रीति पूर्वक पूजाप्रवृत हुई ॥ ४० ॥ सुबाहुने भी देवी की सुन्दर प्रतिमा काशीजीमें मंदिर बनवाय स्थापित की और बडी

व्यास उवाच ॥ प्रतिष्ठाप्य शिवां देवीं विधिवद्वेदवादिभिः ॥ पूजां नानाविधां राजा चकारातिविधानतः ॥३५॥ कृत्वा पूजाविधिं राजा राज्यं प्राप्य स्वपैतृकम् ॥ विख्यातश्चांबिका देवी कोसलेषु बभूव ह ॥ ३६ ॥ राज्यं प्राप्य नृपः सर्वसामंतकनृपानथ ॥ वशे चक्रेऽतिध र्मिष्ठान्सद्धर्मविजयी नृपः ॥ ३७ ॥ यथा रामः स्वराज्येऽभूद्दिलीपस्य रघुर्यथा ॥ प्रजानां वै सुखं तद्वन्मर्यादाऽपि तथाऽभवत् ॥ ३८ ॥ धर्मो वर्णाश्रमाणां च चतुष्पादभवत्तथा ॥ नाधर्मे रमते चित्तं केषामपि महीतले ॥ ३९ ॥ ग्रामेग्रामे च प्रासादांश्चक्रुः सर्वे जनाधिपाः ॥ देव्याःपूजा तदा प्रीत्या कोसलेषु प्रवर्तिता ॥४०॥ सुबाहुरपि काश्यां तु दुर्गायाः प्रतिमां शुभाम् ॥ कारयित्वा च प्रासादं स्थापयामास भक्तितः ॥ ॥ ४१ ॥ तत्र तस्या जनाः सर्वे प्रेमभक्तिपरायणाः ॥ पूजां चक्रुर्विधानेन यथा विश्वेश्वरस्य ह ॥ ४२ ॥ विख्याता सा बभूवाथदुर्गादेवी धरातले ॥ देशेदेशे महाराज तस्या भक्तिर्व्यवर्धत ॥ ४३ ॥ सर्वत्र भारते लोके सर्ववर्णेषु सर्वथा ॥ भजनीया भवानी तु सर्वेषामभवत्तदा ॥ ४४ ॥ शक्तिभक्तिरताः सर्वे मानिनश्चाभवन्नृप ॥ आगमोक्तैरथ स्तोत्रैर्जपध्यानपरायणाः ॥ ४५ ॥ नवरात्रेषु सर्वेषु चक्रुः सर्वे विधानतः ॥ अर्चन हवनं यागं देव्या भक्तिपराजनाः ॥४६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीय स्कंधे पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

भक्ति की ॥ ४१ ॥ वहां वे सब कोई नगरनिवासी प्रेम भक्ति परायण हुए और विश्वेश्वर जीके समान प्रेम भक्तिसे पूजा करने लगे ॥ ४२ ॥ भूमितलमें भगवती बडी विख्यात हुई. हे महाराज ! देश देशमें भक्ति बढने लगी ॥ ४३ ॥ सम्पूर्ण भारतवर्ष और सब लोकोंमें सब वर्णोंमें वह भवानी सबको भजन करने योग्य होगई ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! वे सब कोई शक्ति और भक्तिमें रत हुए और आगममें कहते हुए स्तोत्रोंसे जप ध्यानमें परायण हुए ॥ ४५ ॥ नवरात्रमें सब कोई प्रेमसे जप पूजा करते थे और भक्तिमें तत्पर मनुष्य देवीका अर्चन हवन और यज्ञ करने लगे ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

जनमेजय बोले; हे व्यासजी ! नवरात्रके प्राप्त होनेमें क्या करना चाहिये ? और विशेषकर शरत्कालका भी विधान कहिये ॥ १ ॥ इसका क्या फल ? और क्या विधि है ? हे द्विजोत्तम ! यह विस्तारपूर्वक कहिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले सुनो राजन् ! नवरात्रका सुन्दर विधान कहता हूं. जो शरत्कालमें विशेषकर विधिपूर्वक करना चाहिये ॥ ३ ॥ इसी प्रकार प्रेमपूर्वक वसन्तमें करना चाहिये यह दोनों ऋतु सब जनोंको यमद्रंष्ट्रा कही हैं ॥ ४ ॥ यह शरत् और वसन्त प्राणियोंको दुर्गम है इस कारण शुभकी इच्छावालेको यह यत्नसे करनी चाहिये ॥ ५ ॥ यह दोनों ही ऋतु महाघोर मनुष्योंको यह रोग करनेवाली हैं यह दोनों ही रोगोत्पादन कर जनोंका नाश करती हैं ॥ ६ ॥ इस कारण पण्डितोंको इन ऋतुओमें चण्डिकाका पूजन करना चाहिये; चैत्र और

जनमेजय उवाच ॥ नवरात्रे तु संप्राप्ते किं कर्तव्यं द्विजोत्तम ॥ विधानं विधिवद् ब्रूहि शरत्काले विशेषतः ॥ १ ॥ किं फलं खलु कस्तत्र विधिः कार्यो महामते ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि कृपया द्विजसत्तम ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि नवरात्रव्रतं शुभम् ॥ शरत्काले विशेषेण कर्तव्यं विधिपूर्वकम्॥३॥ वसंते च प्रकर्तव्यं तथैव प्रेमपूर्वकम् ॥ द्वावृतू यमदंष्ट्राख्यौ नूनं सर्वजनेषु वै ॥४॥ शरद्वसंत नामानौ दुर्गमौ प्राणिनामिह ॥ तस्माद्यत्नादिदं कार्यं सर्वत्र शुभमिच्छता ॥५॥ द्वावेव सुमहाघोरा वृत रोगकरौनृणाम् ॥ वसंतशरदावेव जननाशकरावुभौ ॥ ६ ॥ तस्मात्तत्र प्रकर्तव्यं चंडिकापूजनं बुधैः ॥ चैत्रेऽश्विने शुभे मासे भक्तिपूर्वं नराधिप ॥७॥ अमावस्यां च संप्राप्य संभारं कल्पयेच्छुभम् ॥ हविष्यं चाशनं कार्यमेकभुक्तं तु तद्दिने ॥ ८ ॥ मंडपस्तु प्रकर्तव्यः समे देशे शुभे स्थले ॥ हस्तषोडशमानेन स्तंभध्वज समन्वितः ॥९॥ गौरमृद्गोमयाभ्यां च लेपनं कारयेत्ततः ॥ तन्मध्ये वेदिका शुभ्रा कर्तव्या च समा स्थिरा ॥१०॥ चतुर्हस्ता च हस्तोच्छ्रा पीठार्थं स्थानमुत्तमम् ॥ तोरणानि विचित्राणि वितानं च प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥ रात्रौ द्विजानथामंत्र्यदेवोतत्त्वविशारदान् ॥ आचारनिरतान्दांतान्वेदवेदांगपारगान् ॥ १२ ॥

आश्विनके शुभ महीनेमें भक्तिसे पूजन करे ॥ ७ ॥ अमावास्याके दिन सब सामर्थ्य कल्पित करे उस दिन हविष्यका भोजन एक समय करे ॥८॥ समाज देश शुभस्थलमें मण्डप बनावे जो सोलह हाथका प्रमाणमें और ध्वजा पताकासे युक्त हो ॥९॥ पीली मृतिका और गौके गोबरसे वहां लीपना चाहिये उसके मध्यमें समान और स्थिर वेदिका करनी चाहिये ॥ १० ॥ चार हाथ लम्बा चौडा और एक हाथ ऊंचा पीठस्थान करना चाहिये, विचित्र तोरण बन्दनवार लगावे, चन्दोवा ताने ॥ ११ ॥ देवीके तत्त्व जाननेवाले पंडितोंको रात्रिमें आमंत्रण करे वे ब्राह्मण आचारमें निरत वेदवेदांगके पारगामी हों ॥ १२ ॥

प्रतिपदाके दिन विधिपूर्वक प्रातःस्नान करना चाहिये नदी तडाग बावडी कूप वा घरमें स्नान करे ॥ १३ ॥ प्रभात काल नित्य कार्यसे निश्चिन्त हो ब्राह्मणोंका वरण करे और मधुके सहित उनको अर्घ्य पाद्य सब प्रदान करे ॥ १४ ॥ अपनी शक्तिसे उनको वस्त्र और अलंकार दे यदि ऐश्वर्य हो तो धनकी शठता न करे ॥ १५ ॥ ब्राह्मणोंके सन्तोषसे अवश्य ही सब कार्य होता है, नौ पांच तीन वा एक ब्राह्मणसे देवीका पाठ करावे ॥ १६ ॥ पारायण करनेमें शांत ब्राह्मणका वरण करना चाहिये और वेद मंत्रोंसे स्वस्तिवाचन करावे ॥ १७ ॥ वेदीमें सिंहासन स्थापन करके क्षौम वस्त्र उसमें धरकर उसपर चतुर्भुजी आयुध हाथमें लिये स्थापन करे ॥ १८ ॥ रत्नभूषणोंसे संयुक्त मोतियोंके हारसे विराजित, दिव्य वस्त्र धारे सौम्य सब लक्षणोंसे संयुक्त ॥ १९ ॥

प्रतिपद्दिवसे कार्यं प्रातःस्नानं विधानतः ॥ नद्यां नदे तडागे वा वाप्यां कूपे गृहेऽथवा ॥ १३ ॥ प्रातर्नित्यं पुरः कृत्वा द्विजानां वरणं ततः ॥ अर्घ्यपाद्यादिकं सर्वं कर्तव्यं मधुपूर्वकम् ॥ १४ ॥ वस्त्रालंकरणादीनि देयानि च स्वशक्तितः ॥ वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं विभवे सति कर्हिचित् ॥ १५ ॥ विप्रैः संतोषितैः कार्यं संपूर्णं सर्वथा भवेत् ॥ नव पंच त्रयश्चैको देव्याः पाठे द्विजाः स्मृताः ॥ १६ ॥ वरयेद्ब्राह्मणं शांतं पारायणकृते तदा ॥ स्वस्तिवाचनकं कार्यं वेदमंत्रविधानतः ॥ १७ ॥ वेद्यां सिंहासनं स्थाप्य क्षौमवस्त्रसमन्वितम् ॥ तत्र स्थाप्यांऽबिका देवी चतुर्हस्ताऽऽयुधान्विता ॥ १८ ॥ रत्नभूषणसंयुक्ता मुक्ताहारविराजिता ॥ दिव्यांबरधरा सौम्या सर्वलक्षणसंयुता ॥ १९ ॥ शंखचक्रगदापद्मधरा सिंहे स्थिता शिवा ॥ अष्टादशभुजा वाऽपि प्रतिष्ठाप्या सनातनी ॥ २० ॥ अर्चाभावे तथा यंत्रं नवार्णमंत्रसंयुतम् ॥ स्थापयेत्पीठपूजार्थं कलशं तत्र पार्श्वतः ॥ २१ ॥ पंचपल्लवसंयुक्तं वेदमंत्रैः सुसंस्कृतम् ॥ सुतीर्थजलसंपूर्णं हेमरत्नैः समन्वितम् ॥ २२ ॥ पार्श्वे पूजार्थसंभारान्परिकल्प्य समंततः ॥ गीतावादित्रनिर्घोषान्कारयेन्मंगलाय वै ॥ २३ ॥

शंख, चक्र, गदा, पद्म धारे सिंहके ऊपर स्थित शिवा स्वरूपिणी है अथवा अष्टादश भुजायुक्त सनातनी देवीको स्थापित करे ॥ २० ॥ यदि प्रतिमाका अभाव होतो उस सिंहासनमें मंत्रसहित मध्यमें लिखे नवार्णमंत्रसे संयुक्त यंत्रको स्थापन करे, [सिंहासनके दक्षिण भागमें कलश स्थापन करे, कहीं सिंहासनके आगे कलश स्थापनकरे, सिंहासनपरनित्य पूजन है कलशमें नैमित्तिक पूजन है और मूर्तिके अभावमें कलशमें प्राणादिस्थापन आवाहन होता है] ॥ २१ ॥ पंच पल्लवोंसे संयुक्त वेदमंत्रोंसे संस्कृत अच्छे तीर्थके जलसे सम्पूर्ण सुवर्णसहित कलशमें डाले ॥ २२ ॥ पार्श्वमें पूजाका संभार कल्पना करके मंगलके निमित्त बाजोंका निर्घोष करे ॥ २३ ॥

हस्तयुक्त तिथि और नंदा तिथिमें पूजन करना उत्तम है, हे राजन् ! प्रथम दिवसका पूजन मनुष्योंको कामना देनेवाला है ॥ २४ ॥ पहले नियम करके पीछे पूजाका आरंभ करे. उपवास करेरात्रिको एकवार भोजन करे ॥ २५ ॥ हे मातः ! नवरात्रका व्रत मैं विधि पूर्वक करूंगा. हे जगदम्बा देवी ! तू मेरी हायता कर ॥ २६ ॥ व्रतके निमित्तस यथाशक्ति नियम करना चाहिये पीछे मंत्रपूर्वक विधिसे पूजा करे ॥ २७ ॥ चंदन अगर कर्पूर सुगंधिके फूल मंदार करज अशोक चंपा कनेर ॥ २८ ॥ मालती ब्राह्मीका फूल तथा अच्छे बेलपत्र इनसे धूप दीपक विधानसे जगत्की माताका पूजन करें ॥ २९ ॥ अनेक प्रकारके फल नारियल मातुलिंग दाडमी केला दे अनेक प्रकारसे अर्घ्य दे ॥ ३० ॥ नारंगी पनस बिल्वफल भेंटकरे. हे राजन् ! भक्तिसे अन्नदान भी करना

तिथौ हस्तान्वितायां च नंदायां पूजनं वरम् ॥ प्रथमे दिवसे राजन्विधिवत्कामदं नृणाम् ॥ २४ ॥ नियमं प्रथमं कृत्वा पश्चात्पूजां समाचरेत् ॥ उपवासेन नक्तेन चैकभक्तेन वां पुनः ॥ २५ ॥ करिष्यामि व्रतं मातर्नवरात्रमनुत्तमम् ॥ साहाय्यं कुरु मे देवि जगदंब ममाखिलम् ॥ २६ ॥ यथाशक्ति प्रकर्तव्यो नियमो व्रत हेतवे ॥ पश्चात्पूजा प्रकर्तव्या विधिदन्मंत्रपूर्वकम् ॥ २७ ॥ चंदनागुरुकर्पूरैः कुसुमैश्च सुगंधिभिः ॥ मंदारकरजाशोकचंपकैः करवीरकैः ॥ २८ ॥ मालती ब्रह्मकापुष्पैस्तथा बिल्वदलैः शुभैः ॥ पूजयेज्जगतां धात्रीं धूपैर्दीपैर्विधानतः ॥ २९ ॥ फलैर्नानाविधैरर्घ्यं प्रदातव्यं च तत्र वै ॥ नारिकेलैर्मातुलिंगैर्दाडिमीकदलीफलैः ॥ ३० ॥ नारंगैः पनसै श्चैवंतथा पूर्णफलैः शुभैः ॥ अन्नदानं प्रकर्तव्यं भक्तिपूर्वं नराधिप ॥ ३१ ॥ मांसाशनं ये कुर्वंति तैः कार्यं पशुहिंसनम् ॥ महिषाजवरा हाणां बलिदानं विशिष्यते ॥ ३२ ॥

चाहिये ॥ ३१ ॥ और जो मांसाशी हैं उनको इसी अवसरमें पशुहिंसन करना चाहिये अन्यत्र नहीं, महिष बकरे वराह इनका बलिदान विशेष कहा है यह मांसकी विधि क्षत्रियके निमित्त ही है अन्यत्रोंको नहीं जैसा शारदामें लिखा है " ब्राह्मणो नियतः शुद्धः सात्विकं बलिमाहरेत् " कालिका पुराणमें कहा है " सिंहव्याघ्रादिकं दत्त्वा चात्मवध्यमवाप्नुयात् । मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते । अवश्यं विहितो यत्र बलिस्तत्र द्विजः पुनः । पिष्टेनापि घृतेनापि निर्मितं तु समर्पयेत् " इति । अर्थात् ब्राह्मण सात्विकको सत्वगुणी बलि देनी, कालीपुराणमें कहा है. सिंह व्याघ्रादि देनेसे आत्मवधको प्राप्त होता है मद्य देनेसे ब्रह्मत्वसे हीन होता है, जहां अवश्यही विधान है वहां पिष्टका पशु बनाय बलि देनी अथवा घृतकी आहुति देनी ॥ ३२ ॥

देवीके आगे निहत हुए पशु स्वर्गको जाते हैं कारण कि, ब्रह्मविद्या जीव दशाकी निहंत्री है हे पापरहित! इस कारण वहां पशु मारनेकी हिंसा नहीं है ॥ ३३॥ सब शास्त्रोंमें यह निर्णय है कि, वह यज्ञका हनन हिंसा नहीं है सो यह क्षत्रियके उद्देशमें ही बलिको छोड़कर अन्यत्र न करे इस न्यूनताके ही निमित्त है. कारण कि, इस उद्देशसे देवताके उद्देशसे बलि किये पशु स्वर्ग जाते हैं ॥ ३४ ॥ होमके निमित्त त्रिकोण कुण्ड बनावे, अथवा त्रिकोणकेही परिमाणमे स्थण्डिल (समस्थान) करे [अर्थात् हवनकी सामग्रीके अनुसार एक हाथसे दश हाथ तक का निर्माण करे ५० आहुतिमें मुष्टिमात्रशतहोममें अरत्निमात्र करे. ऐसा शारदातिलकमें कहा है] ॥ ३५ ॥ तीनों कालमें अनेक मनोहर द्रव्योंसे पूजन करे गीत वादित्र और नृत्यपूर्वक महोत्सव करना चाहिये ॥ ३६ ॥

देव्यग्रे निहता यांति पशवः स्वर्गमव्ययम् ॥ न हिंसा पशुजा तत्र निघ्नतां तत्कृतेऽनघ ॥३३॥ अहिंसा याज्ञकी प्रोक्ता सर्वशास्त्रविनिर्णये ॥ देवतार्थे विसृष्टानां पशूनां स्वर्गतिर्ध्रुवा ॥३४॥ होमार्थं चैव कर्तव्यं कुंडं चैव त्रिकोणकम् ॥ स्थंडिलं वा प्रकर्तव्यं त्रिकोणं मानतः शुभम् ॥३५॥ त्रिकालं पूजनं नित्यं नानाद्रव्यैर्मनोहरैः ॥ गीतवादित्रनृत्यैश्च कर्तव्यश्च महोत्सवः ॥ ३६ ॥ नित्यं भूमौ च शयनं कुमारीणां च पूजनम् ॥ वस्त्रालंकरणैर्दिव्यैर्भोजनैश्च सुधामयैः ॥३७॥ एकैकां पूजयेन्नित्यमेकवृद्ध्या तथा पुनः ॥ द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि प्रत्येकं नवकं च वा ॥३८॥ विभवस्यानुसारेण कर्तव्यं पूजनं किल ॥ वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं राजञ्छक्तिमखे सदा ॥३९॥ एकवर्षा नं कर्तव्या कन्या पूजाविधौ नृप ॥ परमज्ञा तु भोगानां गंधादीनां च बालिका ॥ ४० ॥ कुमारिका तु सा प्रोक्ता द्विवर्षा या भवदेहि ॥ त्रिमूर्तिश्च त्रिवर्षा च कल्याणी चतुरब्दिका ॥ ४१ ॥ रोहिणी पंचवर्षा च षड्वर्षा कालिका स्मृता ॥ चंडिका सप्तवर्षा स्यादष्टवर्षा च शांभवी ॥ ४२ ॥

नित्य पृथ्वीमें शयन करे कुमारीपूजन करे उसको दिव्य वस्त्र अलंकार और अमृतमय भोजन दे ॥ ३७ ॥ अथवा नित्यप्रति एकका पूजन करे अथवा एक वृद्धिसे पूजन करे अथवा दूनी तिगुनी वृद्धि करे, अथवा प्रति दिन नौका पूजन करे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! शक्तियज्ञमें वित्तकी संकोचता करनी उचित नहीं. ऐश्वर्यके अनुसार पूजन करे ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! कन्यापूजनमें एकवर्षकी कन्याका पूजन न करे. कारण कि, वह भोग और गंधादि ज्ञानमें परम अज्ञ है ॥ ४० ॥ कुमारी उसको कहते हैं जो दो वर्षकी हो तीन वर्षकी त्रिमूर्ति और चार वर्षकी कल्याणी कहाती है ॥ ४१ ॥ पांच वर्षकी रोहिणी और छः वर्षकी कालिका कही है. सात वर्षकी चण्डिका और आठ वर्षकी शांभवी है ॥ ४२ ॥

नौवर्षकी दुर्गा दश वर्षकी सुभद्रा होती है. इससे अधिक कुमारी पूजामें न लेना। आगे सब कार्योमें विगर्हित है ॥ ४३ ॥ इन नामोंसे विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये. इन नौ नामोंसे पूजा करनेका फल कहता हूं ॥ ४४॥ पूजित हुई कुमारी दुःख दारिद्र्यका नाश करती है. शत्रुक्षय धन आयुष्य बलकी वृद्धि करती है ॥४५॥ त्रिमूर्तिके पूजनसे आयु और त्रिवर्गकाफल होता है. धन धान्यका आगम पुत्र पौत्रकी वृद्धि होती है ॥४६ ॥ विद्यार्थी विजयकी इच्छावाला और जो राजा जयकी इच्छावाला है और सुखार्थी अवश्यही सब कामना देनेवाली कल्याणीका पूजन करे ॥४७॥ और शत्रुओंके नाश करनेके निमित्त कल्याणीका पूजन करे, ऐश्वर्य और धनकी कामनासे चण्डिकाका पूजन करे ॥ ४८ ॥ और संमोहनके निमित्त शांभवीका पूंजन करे. इस

नववर्षा भवेद्दुर्गा सुभद्रा दशवार्षिकी ॥ अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या सर्वकार्यविगर्हिता ॥ ४३ ॥ एभिश्च नामभिः पूजा कर्तव्या विधिसंयुता ॥ तासां फलानि वक्ष्यामि नवानां पूजने सदा ॥ ४४ ॥ कुमारी पूजिता कुर्याद्दुःखदारिद्र्य नाशनम् ॥ शत्रुक्षयं धनायुष्यं बलवृद्धिं करोति वै ॥ ४५ ॥ त्रिमूर्तिपूजंनादायुस्त्रिवर्गस्य फलं भवेत् ॥ धनधान्यागमश्चैव पुत्रपौत्रादिवृद्धयः ॥ ४६ ॥ विद्यार्थी विजयार्थी च राज्यार्थी यश्च पार्थिवः ॥ सुखार्थी पूजयेन्नित्यं कल्याणीं सर्वकामदाम् ॥ ४७ ॥ कालिका शत्रुनाशार्थं पूजयेद्भक्तिपूर्वकम् ॥ ऐश्वर्यधनकामश्च चंडिका परिपूजयेत् ॥ ४८ ॥ पूजयेच्छांभवीं नित्यं नृप संमोहनाय च ॥ दुःखदारिद्र्यनाशाय संग्रामे विजयाय च ॥ ४९ ॥ क्रूरशत्रुविनाशार्थं तथोग्रकर्मसाधने ॥ दुर्गा च पूजयेद्भक्त्या परलोकसुखाय च ॥ ५० ॥ वांछितार्थस्य सिद्ध्यर्थं सुभद्रां पूजयेत्सदा ॥ रोहिणीं रोगनाशाय पूजयेद्विधिवन्नरः ॥ ५१ ॥ श्रीरस्त्विवति च मंत्रेण पूजयेद्भक्तितत्परः । श्रीयुक्तमंत्रैरथवा बीज मंत्रैरथापि वा ॥ ५२ ॥ कुमारस्य च तत्त्वानि या सृजत्यपि लीलया ॥ कादीनपि च देवांस्तां कुमारीं पूजयाम्यहम् ॥ ५३ ॥

पूजनसे दुःख दारिद्र्यका नाश और संग्राममें विजय होती है ॥ ४९ ॥ क्रूरशत्रुके नाशार्थ तथा उग्रकर्मके साधनके निमित्त तथा परलोकसुखके निमित्त दुर्गादेवीका पूजन करे ॥५०॥ और सुभद्राके पूजनेसे वांछितार्थकी सिद्धि होती है रोगनाशके निमित्त रोहिणीका पूजन करे ॥ ५१ ॥ भक्तिमें तत्पर होकर 'श्रीरस्तु' इस मंत्रसे पूजन करे श्रीयुक्त मंत्रों अथवा दूसरेमंत्रोंसे पूजन करे ॥ ५२ ॥ जो कुमार 'षण्मुख' के तत्वोंको लीलासे ही सृजन करते हैं ब्रह्मादि देवता और कुमारीका मैं पूजन करता हूं ॥ ५३ ॥

जो सत्त्वादि त्रिमूर्तिसे नानास्वरूपिणी है त्रिकालव्यापिनी शक्ति त्रिमूर्तिकी मैं पूजा करता हूं ॥ ५४ ॥ कल्याणकारिणी नित्य भक्तोंसे पूजित हुई सब कामनादायिनी है इससे भक्तिपूर्वक कल्याणीका पूजन करता हूं ॥ ५५ ॥ जो प्राग्जन्मके संचित कर्मोंको अंकुरित करती है. जो देवी सब प्राणियोंको अंकुरित करतीहै. उस रोहिणीका पूजन करता हूं ॥ ५६ ॥ कालिका चराचर सब ब्रह्माण्डको कलित करती है. प्रलय करती है उस कालिकाका मैं पूजन करता हूं ॥ ५७ ॥ चण्डिका चण्डरूपा चण्डमुण्डकी नाशक कठिन पापकी दूर करनेवाली चण्डिकाका पूजन करता हूं ॥ ५८ ॥ अकारणसे ही समुत्पत्ति जिसके स्वरूपोंकी कही गई है उस सबकी सुखदायक शांभवीदेवीका मैं पूजन करता हूं ॥ ६०. ॥ जो दुर्गा भक्तोंकी रक्षा करनेवाली दुर्गति नाशनेवाली

सत्त्वादिभिस्त्रिमूर्तिर्या तैर्हि नानास्वरूपिणी ॥ त्रिकालव्यापिनी शक्तिस्त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम् ॥ ५४ ॥ कल्याणकारिणीं नित्यं भक्तानां पूजिताऽनिशम् ॥ पूजयामि च तां भक्त्या कल्याणींसर्वकामदाम् ॥ ५५ ॥ रोहयंती च बीजानि प्राग्जन्मसंचितानि वै ॥ या देवी सर्वभूतानां रोहणीं पूजयाम्यहम् ॥ ५६ ॥ काली कालयते सर्वं ब्रह्मांडं सचराचरम् ॥ कल्पांतसमये या तां कालिकां पूजयाम्यहम् ॥ ५७ ॥ चंडिका चंडरूपां च चंडमुंड विनाशिनीम् ॥ तां चंडपापहरिणीं चंडिकापूजयाम्यहम् ॥ ५८ ॥ अकारणात्समुत्पत्तिर्यन्मयैः परिकीर्तिता ॥ यस्यास्तां सुखदां देवीं शांभवीं पूजयाम्यहम् ॥ ५९ ॥ दुर्गात्त्रायति भक्तं या सदा दुर्गार्तिनाशिनी ॥ दुर्ज्ञेया सर्व देवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम् ॥ ६० ॥ सुभद्राणि च भक्तानां कुरुते पूजिता सदा ॥ अभद्रनाशिनीं देवींसुभद्रां पूजयाम्यहम् ॥ ६१ ॥ एभिर्मंत्रैः पूजनीयाः कन्यकाः सर्वदा बुधैः ॥ वस्त्रालंकरणैर्माल्यैर्गन्धैरुच्चावचैरपि ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवी० म० तृतियस्कंधे षड्विंशोध्यायः ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ हीनांगीं वर्जयेत्कन्यां कुष्ठयुक्तां व्रणांकिताम् ॥ गंधस्फूरितहीनांगीं विशालकुलसंभवाम् ॥ १ ॥

है जो सब देवताओंको दुर्ज्ञेय है उस दुर्गाका मैं पूजन करता हूं ॥ ६० ॥ जो पूजित हुइ सदा भक्तोंके भद्र (कल्याण) करती है. उस अभद्रनाशिनी सुभद्रा देवीका मैं पूजन करता हूं ॥ ६१ ॥ पंडितोंको इन मंत्रोंसे सदा कन्याओंका पूजन करना चाहिये. वस्त्र अलंकार माला और उच्चावच गन्धोंसे पूजन करना चाहिये ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले जो कन्या कुष्ठयुक्त व्रणोंसे अंकित, गंधसे स्फुरित हीनांगी दुष्ट कुलवाली हो उसका पूजन न करे ॥ १ ॥

तथा जाति अंधी एक हातवाली कानी कुरूपा बहुत रोमवाली रोहिणी रक्तपुष्पादिसे अंकित हो उसे त्यागदे ॥ २ ॥ बहुत दुबली बहुत थोडे दिनकी हुई विधवासे उत्पन्न अविवाहित कन्यासे उत्पन्न यह कन्यायें सदा पूजादि कर्ममें त्यागदेनी चाहिये ॥ ३ ॥ रोगरहित सुरूपवती अंगवाली सुन्दरी व्रणसे रहितशुद्ध माता पितासे उत्पन्न कन्याको भली प्रकारसे पूजन करे ॥ ४ ॥ सब कार्योंमें ब्राह्मणी, जयकार्योंमें क्षत्रिया, लाभके निमित्त वैश्यवंशोत्पन्ना अथवा शूद्रवंशकी कन्याका पूजन करे ॥ ५ ॥ ब्राह्मणोंको ब्राह्मणकी पूजनी क्षत्रियोंको ब्रह्मक्षत्रियकी, वैश्यको ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यकी कन्या पूज्य है. और शूद्रोंको चारोंवर्णकी कन्या पूजनीय हैं ॥ ६ ॥ शिल्पियोंको अपने वंशकी कन्या पूजनीय है. यह भक्तिपूर्वक नवरात्रके विधानसे कार्य करना चाहिये ॥ ७ ॥ यदि नवरात्रमें

जात्यंधां केकरां काणीं कुरूपां बहुरोमशाम् ॥ संत्यजेद्रोगिणीं कन्यां रक्तपुष्पादिनांऽकिताम् ॥ २ ॥ क्षामां गर्भसमुद्भूतां गोलकां कन्यकोद्भवाम् ॥ वर्जनीयाः सदा चैताः सर्वपूजादिकर्मसु ॥ ३ ॥ अरोगिणीं सुरूपांगीं सुंदरीं व्रणवर्जिताम् ॥ एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यक्प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थं नृपवंशजा ॥ लाभार्थे वैश्यवंशोत्था मता वा शूद्रवंशजा ॥ ५ ॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मजाः पूज्या राजन्यैर्ब्रह्मवंशजा ॥ वैश्यैस्त्रिवर्गगाः पूज्याश्चतस्रः पादसंभवैः ॥ ६ ॥ कारुभिश्चैव वंशोत्था यथायोग्यं प्रपूजयेत् ॥ नवरात्रविधानेन भक्तिपूर्वं सदैव हि ॥ ७ ॥ अशक्तो नियतं पूजां कर्तुं चेन्नवरात्रके ॥ अष्टम्यां च विशेषेण कर्तव्यं पूजनं सदा ॥ ८ ॥ पुराऽष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी ॥ प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनीकोटिभिः सह ॥९॥ अतोऽष्टम्यां विशेषेणकर्तव्यं पूजनं सदा ॥ नानाविधोपहारैश्च गंधमाल्यानुलेपनैः ॥ १० ॥ पायसैरामिषैर्होमैर्ब्राह्मणानां च भोजनैः ॥ फलपुष्पोपहारैश्च तोषयेज्जगदंबिकाम् ॥११॥ उपवासे ह्यशक्तानां नवरात्रव्रते पुनः ॥ उपोषणत्रयं प्रोक्तं यथोक्तं फलदं नृप ॥ १२ ॥

निरंतर पूजा करनेमें अशक्य हो तो अष्टमीको विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये ॥ ८ ॥ कारण कि पहले दक्षका यज्ञ नाश करनेवाली भद्रकाली करोडों योगिनियों सहित अष्टमीको ही प्रगट हुई है ॥ ९ ॥ इस कारण विशेषरूपसे अष्टमीको पूजन करना चाहिये; अनेक प्रकारके उपहार और गंधमालासे अर्चित करे ॥ १० ॥ पायस खीरसे होम करे क्षत्रिय मांसकीभी बलिप्रदान कर सकते हैं. ब्राह्मण भोजन कराकर फल पुष्पोंकी भेंटसे जगदम्बाको सन्तुष्ट करे ॥११॥ यदि नवरात्रके उपवासमें समर्थ न हो तो हे राजन्! तीन उपवासभी विशेष फल देते हैं ॥ १२ ॥

सप्तमी अष्टमी नवमीको भक्तिभावसे तीन रात व्रत पूजन करनेसे पूर्ण फल मिलता है ॥ १३ ॥ पूजा होम और कुमारीव्रत करनेसे तथा ब्राह्मण भोजनसे व्रत पूर्ण होता है ॥ १४ ॥ जो और व्रतदान अनेक प्रकारके हैं वे कोईभी पृथ्वीमें नवरात्र व्रतके समान नहीं हैं ॥ १५ ॥ यह नित्य धनधान्यका दातासुख सन्तान और वृद्धिका देनेवाला आयु आरोग्य और स्वर्ग मोक्षका देनेवाला है ॥ १६ ॥ विद्यार्थी धनार्थी पुत्रार्थी मनुष्यको यह सौभाग्य दायक व्रत अवश्य करना चाहिये ॥ १७ ॥ इस व्रतके साधनसे विद्यार्थी सब विद्याओंको प्राप्त होता है और राज्यभ्रष्ट राजा सब प्रकारके राज्यको प्राप्त करता है ॥ १८ ॥ जिन्होंने

सप्तम्यां च तथाऽष्टम्यां नवम्यां भक्तिभावतः ॥ त्रिरात्रकरणात्सर्वं फलं भवति पूजनात् ॥१३॥ पूजाभिश्चैव होमैश्च कुमारीपूजनैस्तथा ॥ सम्पूर्णं तद्व्रतं प्रोक्तं विप्राणां चैव भोजनैः ॥ १४ ॥ व्रतानि यानि चान्यानि दानानि विविधानि च ॥ नवरात्रव्रतस्यास्य नैव तुल्यानि भूतले ॥१५॥ धनधान्यप्रदं नित्यं सुखसन्तानवृद्धिदम् ॥ आयुरारोग्यदं चैव स्वर्गदं मोक्षदं तथा ॥१६॥ विद्यार्थी वा धनार्थी वा पुत्रार्थी वा भवेन्नरः ॥ तेनेदं विधिवत्कार्यं व्रतं सौभाग्यदं शिवम् ॥ १७ ॥ विद्यार्थी सर्वविद्यां वै प्राप्नोति व्रतं साधनात् ॥ राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं समवाप्नोति सर्वथा ॥ १८ ॥ पूर्वजन्मनि यैर्नूनं न कृतं व्रतमुत्तमम् ॥ ते व्याधिनो दरिद्राश्च भवंति पुत्रवर्जिताः ॥ १९॥ वंध्या च या भवेन्नारी विधवा धनवर्जिता ॥ अनुमा तत्र कर्त्तव्या नेयं कृतवती व्रतम् ॥ २० ॥ नवरात्रव्रतं प्रोक्तं न कृतं येन भूतले ॥ स कथं विभवं प्राप्य मोदते च तथा दिवि ॥ २१ ॥ रक्तचंदन संमिश्रैः कोमलैर्बिल्वपत्रकैः ॥ भवानी पूजिता येन स भवेन्नृपतिः क्षितौ ॥२२॥ नाराधिता येन शिवा सनातनी दुखार्तिहा सिद्धि करी जगद्धरा ॥ दुःखावृतः शत्रुयुतश्च भूतले नूनं दरिद्रो भवतीह मानवः ॥ २३ ॥

पूर्वजन्ममें यह श्रेष्ठ व्रत नहीं किया है वे ही मनुष्य व्याधियुक्तदरिद्र और पुत्रहीन होते हैं ॥ १९ ॥ जो स्त्री वन्ध्या विधवा धनवर्जित हो यह अनुमान कर लो कि इसने यह व्रतनहीं किया है ॥ २० ॥ यह नवरात्रव्रत जिन्होंने भूतलमें नहीं किया है वे ऐश्वर्यको प्राप्त हो किस प्रकार स्वर्गमें आनंद करेंगे ॥ २१ ॥ रक्तचन्दनयुक्त कोमल बेलपत्रसे जिन्होंने भवानीका पूजन किया है वही भूमिका राजा होगा ॥२२॥ जिसने दुःखनाशक सिद्धिकारक जगत्में श्रेष्ठ सनातनी शिवाका आराधन नहीं किया है. वही नर भूतलमें दुःख और शत्रुसे युक्त हुआ अवश्य दरिद्री होताहै ॥ २३ ॥

जिसको विष्णु इन्द्र हर ब्रह्मा अग्निकुबेर वरुण सूर्य सर्वार्थकी प्राप्तिके निमित्त प्रसन्न होकर ध्यान करते हैं, मनुष्य उस चण्डिका देवीका भजन क्यों नहीं करते ॥ २४ ॥ सब यज्ञोंमें स्वाहा और स्वधाके नामसे ही सब देवता पितर तृप्त होते हैं. और बड़े मुनि प्रसन्न होकर सब यज्ञोंमें यही नाम उच्चारण करते हैं ॥ २५ ॥ जिसकी इच्छासे प्रजापति इस विश्वकी रचना करते उस भगवान् हरि अनेक अवतार धारण करते हैं अन्तमें शंकर सबका लय करते हैं उस कल्याण दायिनीका मनुष्य क्यों नहीं भजन करते हैं ॥ २६ ॥ सब भुवनोंमें भगवतीके विना देवता मनुष्य विहंग सर्प गंधर्व राक्षस पिशाच नग (पर्वत) ऐसा नहीं है जो उसकी शक्तिके विना स्पन्दित होनेको समर्थ हो ॥२७॥ उस सब कामको देनेवाली भगवती की कौन न सेवा करे और धर्म, अर्थ, काम,

यां विष्णुरिंद्रो हरपद्मजौ तथा वह्निः कुबेरो वरुणौ दिवाकरः ॥ ध्यायंति सर्वार्थसमाप्तिनंदितास्तां किं मनुष्या न भजंति चंडिकाम् ॥ २४ ॥ स्वाहा स्वधानाम मनुप्रभावैस्तृप्यंति देवाः पितरस्तथैव ॥ यज्ञेषु सर्वेषु मुदा हरंति यन्नामयुग्मश्रुतिभिर्मुनीन्द्राः ॥ २५ ॥ यस्येच्छया सृजति विश्वमिदं प्रजेशो नानावतारकलनं कुरुते हरिश्च ॥ नूनं करोति जगतः किल भस्म शंभुस्तां शर्मदां न भजते नु कथं मनुष्यः ॥ २६ ॥ नैकोऽस्ति सर्वं भवनेषु तया विहीनो देवो नरोऽथ विहगः किल पन्नगो वा । गंधर्वराक्षसपिशाचनगेषु नूनं नस्पंदितुं भवति शक्तियुतो यथेच्छम् ॥ २७ ॥ तां न सेवेत कश्चण्डीं सर्वकामार्थदां शिवाम् ॥ व्रतं तस्या न कः कुर्याद्वांछन्नर्थचतुष्टयम् ॥२८॥ महापातकसंयुक्तो नवरात्रव्रतंचरेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो नात्र कार्या विचारणा ॥२९॥ पुरा कश्चिद्वणिक्क्षीणो धनहीनः सुदुःखितः ॥ कुटुंबी चाभवत्कश्चित्कौसले नृपसत्तम ॥ ३० ॥ अपत्यानि बहून्यस्याभवन्क्षुत्पीडितानि च ॥ भक्ष्यं किंचित्तु सायाह्ने प्रापुस्तस्य च बालकाः ॥ ३१ ॥ भुंक्ते स्म कार्यकर्ताऽसौ परस्याथ बुभुक्षितः ॥ कुटुंबभरणं तत्र चकारातिनिराकुलः ॥ ३२ ॥ सदा धर्मरतः शांतः सदाचारश्च सत्यवाक् ॥ अक्रोधनश्च धृतिमान्निर्मदश्चानसूयकः ॥ ३३ ॥

मोक्षकी इच्छावाला कौन पुरुष उसका व्रत न करे ॥ २८ ॥ महापातकी पुरुष भी जो नवरात्रका व्रत करे यह सब पापोंसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ पहले कभी कोई निर्धन वणिक् धन न होनेसे दुःखी हुआ कुटुम्बयुक्त कोसल देशमें निवास करता था ॥ ३० ॥ इसके भूख प्याससे व्याकुल बहुतसे सन्तान थे और सायंकालको उसके बालकोंको अन्न मिलता ॥ ३१ ॥ और यह भी कार्य करनेके उपरान्त संध्याको भोजन करता पर धैर्यसे कुटुम्ब पालन करता था ॥ ३२ ॥ सदा धर्ममें रत शान्त सदाचार सत्यवाक् था यह धैर्यवान क्रोध रहित मद रहित असूया रहित था ॥ ३३ ॥

देवता अतिथि पितरोंको नित्य पूजन कर फिर कुटुम्बियोंके भोजन कर चुकनेपर पीछे यह आप भोजन करता ॥ ३४ ॥ यह कुछ समय बीतने पर अपने गुणोंसे सुशील कहाया, एक समय वह दरिद्रसे व्याकुल होकर एक शान्त ब्राह्मणसे पूछने लगा ॥ ३५ ॥ सुशीलने कहा, हे महामते ! ब्राह्मण ! कृपा करके आप कहिये निश्चय करके मेरा दरिद्र किस प्रकार नाश होगा ॥ ३६ ॥ हे मानद ! मुझको ऐसी धनकी इच्छा नहीं है कि, मैं धनी हो जाऊं केवल कुटुम्ब पालनकी इच्छासे मैं पूँछता हूं ॥ ३७ ॥ यह मेरी पुत्री और बालक भूखसे रोते हैं. इतना भी मेरे अन्न नहीं जो किसीको मुष्टिमात्र भी मैं अन्न प्रदान कर सकूं ॥ ३८ ॥ देखो मैंने बालकको घरसे पृथक् किया वह रोता हुआ चला गया इस कारण मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल होता है ॥ ३९ ॥ मेरी कन्याका

संपूज्य देवता नित्यं पितॄनप्यतिथींस्तथा ॥ भुंजाने पोष्यवर्गेऽथ कृतवान्भोजनं वणिक् ॥ ३४ ॥ एवं गच्छति काले वै सुशीलो नामतो गुणैः ॥ दारिद्र्यार्तो द्विजं शान्तं पप्रच्छातिबुभुक्षितः ॥ ३५ ॥ सुशील उवाच ॥ भो भूदेव कृपां कृत्वा वदस्वाद्य महामते ॥ कथं दारिद्र्यनाशः स्यादिति मे निश्चयेन वै॥ ३६ ॥धनेषणा मे नैवास्ति धनी स्यामिति मानद ॥ कुटुंबभरणार्थं वै पृच्छामि त्वां द्विजोत्तम ॥ ३७ ॥ पुत्रीसुतस्तु मे बालो भक्षार्थी रोदते भृशम् ॥ तावन्मात्रं गृहे नान्नं मुष्टिमेकां ददाम्यहम् ॥ ३८ ॥ विसर्जितो यतो गेहाद्गतो बालो रुदन्मया ॥ अतो मे दह्यतेऽत्यर्थं किं करोमि धनं विना ॥ ३९ ॥ विवाहोऽस्ति सुताया मे नास्ति वित्तं करोमि किम् ॥ दशवर्षाधिकायास्तु दानकालोऽपि यात्यलम् ॥४०॥ तेन शोचामि विप्रेन्द्र सर्वज्ञोऽस्ति दयानिधे ॥ तपो दानं व्रतं किंचिद् ब्रूहि मंत्रं जपं तथा ॥ ४१ ॥ येनाहं पोष्यवर्गस्य करोमी द्विज पोषणम् ॥ तावन्मे स्याद्धनप्राप्तिर्नाधिकं प्रार्थये किल ॥४२॥ त्वत्प्रसादात्कुटुंबं मे सुखितं प्रभवेदिह ॥ तत्कुरुष्व महाभाग ज्ञानेन परिचिन्त्य च ॥ ४३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्टस्तथा तेन ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥ उवाच परमप्रीतस्तं वैश्यं नृपसत्तम ॥ ४४ ॥

विवाह है धन भी नहीं है क्या करूं यह दश वर्षसे अधिक हो गई. दानकाल बीता जाता है ॥ ४० ॥ हे विप्र ! इस प्रकार मैं शोच करता हूं आप सर्वज्ञ और दयासागर हो तप दान व्रत और मंत्रजप कहिये ॥ ४१ ॥ हे द्विज ! जिससे मैं अपने कुटुम्ब वर्गका पोषण करूँ बस इतना धन मैं चाहता हूं. अधिककी मुझे इच्छा नहीं है ॥ ४२ ॥ आपकी कृपासे मेरा कुटुम्ब सुखी हो, हे महाभाग ! ज्ञानसे विचारकर कहिये ॥ ४३ ॥ व्यासजी बोले , हे राजन् ! इस प्रकार उनके पूँछनेसे वह श्रेष्ठ ब्राह्मण परम प्रीतिसे उस वैश्यसे कहने लगा ॥ ४४ ॥

दे. भा. ॥७३॥

हे वैश्य श्रेष्ठ! तुम नवरात्रका व्रत भगवतीका पूजन हवन भोजन करो ॥ ४५ ॥ वेदका पारायण शक्तिका होम जप यथा शक्ति करो तुम्हारा कार्य होगा ॥ ४६ ॥ इससे अधिक पृथ्वीमें व्रतादि नहीं है, हे वैश्य! यह नवरात्र व्रत पवित्र और सुखदायक है ॥४७॥ यह ज्ञान मोक्ष सुख सन्तानका बढाने वाला है यह शत्रुका नाशक नवरात्रका व्रत है ॥ ४८ ॥ सीतासे वियुक्त होकर राज्यसे च्युत हुए महाराज रामचन्द्रने इस व्रतको किया था ॥ ४९ ॥प्रतप्त और सीता विरहकी अग्निसे व्याकुल रामने नवरात्रके व्रतपूर्वक देवीकी विधिसे पूजाकी थी ॥ ५० ॥ इसीसे सागरमें सेतु बांधकर वैदेही प्राप्त की थी. और मन्दोदरीपति रावण और महाबली कुंभकर्णको मारा ॥ ५१ ॥ तथा मेघनादको मार विभीषणको राज्य दे पीछे अयोध्यामें आया निष्कंटक राज्य किया ॥ ५२ ॥ हे

वैश्यवर्य कुरुष्वाद्य नवरात्रव्रतं शुभम् ॥ पूजनं भगवत्याश्च हवनं भोजनं तथा ॥४५॥ वेदपारायणं शक्तिजपहोमादिकं तथा ॥ कुरुष्वाद्य यथाशक्ति तव कार्य भविष्यति ॥ ४६ ॥ एतस्मादपरं किंचिद्व्रतं नास्ति धरातले ॥ नवरात्राभिधं वैश्यपावनं सुखदं तथा ॥ ४७ ॥ ज्ञानदं मोक्षदं चैव सुखसन्तानवर्धनम् ॥ शत्रुनाशकरं कामं नवरात्रव्रतं सदा ॥ ४८ ॥ राज्यभ्रष्टेन रामेण सीता विरहितेन च ॥ किष्कि न्धायां व्रतं चैतत्कृतंदुःखातुरेण वै ॥ ४९ ॥ प्रतप्तेनापि रामेण सीताविरहवह्निना ॥ विधिवत्पूजिता देवी नवरात्रव्रतेन वै ॥ ५० ॥ तेन प्राप्ताऽथ वैदेही कृत्वा सेतुं महार्णवे ॥ हत्वा मन्दोदरीनाथं कुंभकर्णं महाबलम् ॥ ५१ ॥ मेघनादं सुतं हत्वा कृत्वा भूपं विभीषणम् ॥ पश्चादयोध्यामागत्य प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥ ५२ ॥ नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभावेण विशांवर ॥ सुखं भूमितले प्राप्तं रामेणामिततेजसा ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति विप्रवचः श्रुत्वा स वैश्यस्तं द्विजं गुरुम् ॥ कृत्वा जग्राह सन्मन्त्रं मायाबीजाभिध नृप ॥ ५४ ॥ जजाप परया भक्त्या नवरात्रमतंद्रितः ॥ नानाविधोपहारैश्च पूजयामास सादरम् ॥ ५५॥ नवसंवत्सरं चैव मायाबीजपरायणः ॥ नवमे वत्सरांते तु महाष्टम्यां महेश्वरी ॥ ५६ ॥ अर्धरात्रे तु सञ्जाते प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ नानावरप्रदानैश्च कृतकृत्यं चकार तम् ॥ ५७ ॥

वैश्यश्रेष्ठ! इस नवरात्र व्रतके प्रभावसे महाराज रामचन्द्रको बडा सुख प्राप्त हुआ ॥ ५६ ॥ व्यासजी बोले, यह वचन सुनकर वह वैश्य उस ब्राह्मणको गुरु करके माया बीजको ग्रहण करता हुआ ॥५४॥ और परमभक्तिसे नवरात्रतक जप करता हुआ और अनेक प्रकारके उपहारोंसे आदरसे पूजता हुआ ॥५५॥ इस प्रकार नौवर्षतक माया बीजमें परायण हुए नौवें वर्षके अन्तमें महा अष्टमीको भगवतीने ॥ ५३ ॥ आधीरातको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और अनेक वरदानसे उसको कृतकृत्य किया ॥ ५७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ जनमेजय बोले, रामचन्द्रने किस प्रकार देवीका व्रत किया; वह कैसे राजभ्रष्ट हुए और कैसे सीता हरण हुआ ॥ १ ॥ व्यासजी बोले, श्रीमान् राजा दशरथ अयोध्याके पति थे; यह सूर्य वंशमें श्रेष्ठ देवता और ब्राह्मणोंके पूजक थे ॥२॥ इनके लोक विख्यात चार पुत्र हुए, जिनके राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न नाम थे ॥ ३ ॥ यह अपने गुणरूपमें समान सब राजाके प्रिय करने वाले थे, कौशल्याके पुत्र राम कैकेयीके भरत थे ॥ ४ ॥ सुमित्राके दो पुत्र बड़े मनोहर हुए वे किशोर अवस्थामें धनुष्यबाण धारण करने वाले थे ॥ ५ ॥ यह संस्कार किये हुए राजाके सुख बढानेवाले थे तब विश्वामित्रने आकर रामचन्द्रको मांगा ॥ ६ ॥ यज्ञकी रक्षा करनेको मांगा जब कि यह सोलह वर्षके लगभग थे,

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं रामेण तच्चीर्णं व्रतं देव्याः सुखप्रदम् ॥ राज्यभ्रष्टः कथं सोऽथ कथं सीता हृता पुनः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ राजा दशरथः श्रीमानयोध्याधिपतिः पुरा ॥ सूर्यवंशवरश्चासीद्देव ब्राह्मण पूजकः ॥ २ ॥ चत्वारो जज्ञिरे तस्य पुत्रा लोकेषु विश्रुताः ॥ रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्चेति नामतः ॥ ३ ॥ राज्ञः प्रियंकराः सर्वे सदृशा गुणरूपतः ॥ कौसल्यायाः सुतोरामः कैकेय्या भरतः स्मृतः ॥ ४ ॥ सुमित्रातनयौ जातौ यमलौ द्वौ मनोहरौ ॥ ते जाता वै किशोराश्च धनुर्बाणधराः किल ॥ ५ ॥ सूनवः कृतसंस्कारा भूपतेः सुखवर्धकाः ॥ कौशिकेन तदाऽऽगत्यप्रार्थितो रघुनंदनः ॥ ६ ॥ राघवं मखरक्षार्थं सूनु षोडशवार्षिकम् ॥ तस्मै सोऽयं ददौ रामं कौशिकाय सलक्ष्मणम् ॥ ७ ॥ तौ समेत्य मुनिं मार्गे जग्मतुश्चारुदर्शनौ ॥ ताटका निहता मार्गे राक्षसी घोरदर्शना ॥ ८ ॥ रामणैकेन बाणेन मुनीनां दुःखदा सदा ॥ यज्ञरक्षा कृता तत्र सुबाहुर्निहतः शठः ॥ ९ ॥ मारीचोऽथ मृतप्रायो निक्षिप्तो बाणवेगतः ॥ एवं कृत्वा महत्कर्म यज्ञस्य परिरक्षणम् ॥ १० ॥ गतास्ते मिथिलां सर्वे रामलक्ष्मणकौशिकाः ॥ अहल्या मोचिता शापान्निष्पापा सा कृताऽबला ॥ ११ ॥

राजाने विश्वामित्रको लक्ष्मण सहित रामको दिया ॥ ७ ॥ वे सुन्दर दर्शन वाले मुनिके सहित मार्गमें जाते हुए मार्गमें घोर दर्शनवाली ताडकाका वध किया ॥ ८ ॥ उस मुनियोंके दुःख देनेवालीको रामने एकही बाणसे मारडाला, आश्रममें जाकर यज्ञकी रक्षा की. सुबाहु दैत्यको मारा ॥ ९ ॥ और मारीचको भी मृतकके समान बाणवेगसे दूर फेंक दिया, इस प्रकार यज्ञ परिरक्षणरूपमहत्कर्म करके ॥ १० ॥ राम और लक्ष्मण विश्वामित्रके साथ मिथिलामें आये शापसे अहल्याको मुक्त कर उसको निष्पाप किया ॥ ११ ॥

इसी प्रकार मुनिके साथ वह विदेह नगरमें प्राप्त हुए और पणीभूत जनकके स्थापित शिव धनुषका भंग किया ॥ १२ ॥ और लक्ष्मीके अंशसे प्रगट जानकीको वरण किया और अपनी सुपुत्री उर्मिलाको राजाने लक्ष्मणसे विवाह दिया ॥ १३ ॥ इसी प्रकार दोनों भाइयोंने कुशध्वजकी कन्याओंको प्राप्त किया यह सुशील भरत और शत्रुघ्नको विवाही गई ॥ १४ ॥ इस प्रकार मिथिला पुरीमें विधिपूर्वक चारों भाइयोंकी दार क्रिया हुई ॥ १५ ॥ घर आकर राजा दशरथने रामचन्द्रको राज्यके योग्य देखकर उनको राज्य देनेका विचार किया ॥ १६ ॥ उस संभारको होता देखकर कैकेयीने अपने पूर्व कल्पित दो वरोंको अपने वशवर्ती राजासे मांगा ॥ १७ ॥ एकसे भरतको राज्य और दूसरेसे रामको १४ वर्षका वनवास ॥ १८ ॥ रामचन्द्र इस प्रकार

विदेहनगरे तौ तु जग्मतुर्मुनिना सह ॥ बभंज शिवचापं च जनकेन पणीकृतम् ॥ १२ ॥ उपमेये ततः सीतां जानकीं च रमांशजाम् ॥ लक्ष्मणाय ददौ राजापुत्रीमेकां तथोर्मिलाम् ॥ १३॥ कुशध्वजसुते कन्ये प्रापतु र्भ्रातरावुभौ ॥ तथा भरतशत्रुघ्नौ सुशीलौ शुभ लक्षणौ ॥ १४ ॥ एवं दारक्रियास्तेषां भ्रातृणां चाभवन्नृप ॥ चतुर्णां मिथिलायां तु यथा विधि विधानतः ॥ १५ ॥ राज्ययोग्यं सुतं दृष्ट्वा राजा दशरथस्तदा ॥ राघवाय धुरं दातुं मनश्चक्रे निजाय वै ॥ १६ ॥ संभारं विहितं दृष्ट्वा कैकेयी पूर्वकल्पितौ ॥ वरौ संप्रार्थयामास भर्तारं वशवर्तिनम् ॥ १७ ॥ राज्यं सुताय चैकेन भरताय महात्मने ॥ रामाय वनवासं च चतुर्दश समास्तथा ॥ १८ ॥ रामस्तु वचनात्तस्याः सीतालक्ष्मणसंयुता ॥ जगाम दंडकारण्यं राक्षसैरुपसेवितम् ॥१९॥ राजादशरथः पुत्रविरहेण प्रपीडितः ॥ जहौ प्राणानमेयात्मा पूर्वशापमनुस्मरन् ॥ २० ॥ भरतः पितरं दृष्ट्वा मृतं मातृकृतेन वै ॥ राज्यमृद्धं न जग्राह भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥ २१ ॥ पंचवट्यां वसन्रामो रावणावरजां वने ॥ शूर्पणखां विरूपां वै चकारातिस्मरातुराम् ॥ २२ ॥ खरादयस्तु तां दृष्ट्वा छिन्ननासां निशाचराः ॥ चक्रुः संग्राममतुलं रामेणामिततेजसा ॥२३॥ स जघान खरादींश्च दैत्यानतिबलान्वितान् ॥ मुनीनां हितमन्विच्छन् रामः सत्यपराक्रमः ॥२४॥

माताके वचनसे सीता लक्ष्मणके सहित राक्षसोंसे भरे दण्डक वनको गये ॥ १९ ॥ इधर अमेयात्मा राजा दशरथ पुत्रके विरहसे पीडितहो श्रवणका शाप स्मरण कर प्राण त्याग करते हुए ॥ २० ॥ भरतने माताकी करतूतसे पिताको मृतक देख रामके प्रियकी इच्छासे समृद्ध राज्यको ग्रहण न किया ॥२१॥ इधर पञ्चवटीमें रहते हुए रामने रावणकी बहन कामसे व्याकुल शूर्पणखाको विरूप कर दिया ॥ २२ ॥ उसकी छिन्न नासिका देखकर खरादिराक्षस महातेजस्वी रामसे बडा संग्राम करने लगे ॥२३॥ रामने बडे बली खरादिराक्षसोंका वध किया और सत्यपराक्रमी रामने मुनियोंके हितकी इच्छा की ॥ २४ ॥

तब दूषित हुई शूर्पणखाने लंकामें जाकर रावणसे राम द्वारा खरदूषणका वध सुनाया ॥ २५ ॥ वह दुष्ट भी शूर्पणखासे खरादिका विनाश सुनकर बडा क्रोधित हुआ और रथपर चढकर मारीचके आश्रमपर गया ॥२६॥ और सुवर्णका मृग करके उसे रामके आश्रममें भेजा, वह मायावी सीताके लुभानेको चला ॥२७॥ वह मायावी चित्रविचित्र अङ्गवाला सोनेका मृग बनकर सीताकें सन्मुख हुआ और समीपमें विचरने लगा ॥२८॥ उसे देख दैवसे प्रेरित हो जानकी रामसे बोली, जैसे स्वाधीनपतिका बोलती हैं, हे कांत! आप इसका चर्म लाइये ॥ २९ ॥ राम भी कुछ विचार न करके वहां लक्ष्मणको स्थापनकर शर और धनु लेकर मृगके पीछे हुए ॥ ३० ॥ वह मृगभी भगवान्‌को देखकर अनेक मायामें चतुर दीखता अन्तर्हित होता इस वनसे उस वनमें गया ॥ ३१ ॥

गत्वा शूर्पणखा लंकां खरदूषणघातनम् ॥ दूषिता कथयामास रावणाय च राघवात् ॥ २५ ॥ सोऽपि श्रुत्वा विनाशं तं जातः क्रोधवशः खलः ॥ जगाम रथमारुह्य मारीचस्याश्रमं तदा ॥ २६ ॥ कृत्वा हेममृगं नेतुं प्रेषयामास रावणः ॥ सीताप्रलोभनार्थाय मायाविनम संभवम् ॥ २७ ॥ सोऽथ हेम मृगो भूत्वा सीतादृष्टिपथं गतः ॥ मायावी चातिचित्रांगश्चरन्प्रबलमंतिके ॥ २८ ॥ तं दृष्ट्वा जानकी प्राह राघवं दैवनोदिता ॥ चर्मानयस्व कान्तेति स्वाधीनपतिका यथा ॥ २९ ॥ अविचार्याथ रामोऽपि तत्र संस्थाप्य लक्ष्मणम् ॥ सशरं धनुरादाय ययौ मृगपदानुगः ॥ ३० ॥ सारंगोऽपि हरिं दृष्ट्वा मायाकोटि विशारदः ॥ दृश्यादृश्यो बभूवाथ जगाम च वनांतरम् ॥३१॥ मत्वा हस्तगतं रामः क्रोधाकृष्टधनुः पुनः ॥ जघान चातितीक्ष्णेन शरेण कृत्रिमं मृगम् ॥ ३२ ॥ स हतोऽतिबलात्तेन चुक्रोश भृशदुःखितः ॥ हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति मायावी नश्वरः खलः ॥ ३३ ॥ स शब्द स्तुमुलस्तावज्जानक्या संश्रुतस्तदा ॥ राघवस्येति सा मत्वा दीना देवरमब्रवीत् ॥ ३४ ॥ गच्छ लक्ष्मण तूर्णं त्वं हतोऽसौ रघुनंदनः ॥ त्वामाह्वयति सौमित्र साहाय्यं कुरु सत्वरम् ॥३५॥ तत्राऽऽह लक्ष्मणः सीतामंब रामवधादपि ॥ नाहं गच्छेऽद्य मुक्त्वा त्वामसहायामिहाश्रमे ॥ ३६ ॥

फिर रामचन्द्रने उसको अपने धनुषके मार्गमें प्राप्त हुआ जान क्रोधसे धनुष चढाय उस तीक्ष्ण बाणसे कृत्रिम मृगको मारा ॥३२॥ वह बलपूर्वक मरते समय दुःखसे शब्द करने लगा, हा लक्ष्मण मैं मरा ऐसा उस मायावी दुष्टने शब्द किया ॥ ३३ ॥ वह तुमुल शब्द जानकीने सुन और उसे रामका मानकर दुःखी हो देवरसे बोली ॥ ३४ ॥ हे लक्ष्मण! बहुत शीघ्र जाओ रघुनन्दनपर कष्ट है तुमको बुलाते हैं शीघ्र सहायता करो ॥ ३५ ॥ तब लक्ष्मण बोले, हे मात! मैं तो यहांसे रामके हत होने पर भी असहाय आश्रममें तुमको छोड नहीं जा सकता, फिर इस मायाके शब्दसे तो कैसे छोडकर चला जाऊं ॥ ३६ ॥

हे माता! मुझे रामचन्द्रकी यहां रहनेकी आज्ञा है उसको त्यागके डरसे मैं तुमको छोडनहीं सकता ॥ ३७ ॥ मैंने देखा कि वह मायावी दैत्य रामको दूर लेगया है, हे शुचिस्मिते ! मैं तुमको छोडकर एक पद भी नहीं जा सकता ॥ ३८ ॥ तुम धैर्यधारण करो रामको मारनेवाला कोई भी पृथ्वीपर नहीं है, रामके कथनको उल्लंघनकर मैं तुमको छोड़कर नहीं जा सकता ॥ ३९ ॥ व्यासजी बोले, तब वह सुदती विधातासे प्रेरित हो सरलहोकर भी रोती हुई शुभ लक्षणवाले लक्ष्मणको क्रूरवचनबोली ॥ ४० ॥ हे लक्ष्मण ! मैं जानती हूं तुम मुझमें अनुराग करते हो, मेरे निमित्तही तुमको भरतने भेज दिया है ॥ ४१ हे अश्रेष्ठ मैं कुलटानारी नहीं हूं रामके न रहनेपर मैं काम से अन्य पति नहीं कर सकती ॥ ४२ ॥ यदि रघुनाथ न आवेंगे तो अभी शरीर त्याग

आज्ञा मे राघवस्यात्र तिष्ठति जनकात्मजे ॥ तदतिक्रमभीतोऽहं न त्यजामि तवांतिकम् ॥ ३७ ॥ हृतं वै राघवं दृष्ट्वा वने मायाविना किल ॥ त्यक्त्वा त्वां नाधिगच्छामि पदमेकं शुचिस्मिते ॥३८॥ कुरु धैर्यं न मन्येऽद्य रामं हंतुं क्षमं क्षितौ ॥ नाहं त्यक्त्वा गमिष्यामि विलंघ्य रामभाषितम् ॥ ३९ ॥ व्यास उवाच ॥ रुदती सुदती प्राह तं तदा विधिनोदिता ॥ अक्रूरा वचनं क्रूरं लक्ष्मणं शुभ लक्षणम् ॥ ४० ॥ अहं जानामि सौमित्रे सानुरागं च मां प्रति ॥ प्रेरितं भरतेनैव मदर्थमिह संगतम् ॥ ४१ ॥ नाहं तथा विधा नारी स्वैरिणी कुहकाधमा ॥ मृते रामे पतिं त्वां न कर्तुमिच्छामि कामतः ॥ ४२ ॥ नागमिष्यति चेद्रामो जीवितं संत्यजाम्यहम् ॥ विना तेन न जीवामि विधुरा दुःखिता भृशम् ॥ ४३ ॥ गच्छ वा तिष्ठ सौमित्रे न जानेऽहं तवेप्सितम् ॥ क्व गतं तेऽत्र सौहार्दं ज्येष्ठे धर्मरते किल ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या लक्ष्मणो दीनमानसः ॥ प्रोवाच रुद्धकंठस्तु तां तदा जनकात्मजाम् ॥ ४५ ॥ किमात्थ क्षितिजे वाक्यं मयि क्रूरतरं किल ॥ किं वदस्यत्यनिष्टं ते भावि जाने धिया ह्यहम् ॥ ४६ ॥ इत्युक्त्वा निर्ययौ वीरस्तां त्यक्त्वा प्ररुदन्भृशम् ॥ अग्रजस्य ययौ पश्यञ्छोकार्तः पृथिवीपते ॥ ४७ ॥

करूंगी, उनके विना विधुरा दुःखी होकर मैं नहीं जीऊंगी ॥ ४३ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम रहो वा जाओ, मैंने तुम्हारी इच्छा न जानी, वह जो ज्येष्ठभ्रातामें तुम्हारा सौहार्द धर्मपूर्वक था सो कहां गया ? ॥ ४४ ॥ जानकीके यह वचन सुन लक्ष्मण अतिदीन मनसे गद्गदकंठ हो जानकीसे बोले ॥ ४५ ॥ हे भूमिजे ! यह अत्यन्त कठोर वचन हमसे क्यों कहती हो, ऐसा कहनेसे विदित होता है तुमपर कोई भारी अनिष्ट आनेवाला है ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! ऐसा कह वह वीर रोते हुए जानकीको छोड़ चले गये और शोकार्त हो रामको देखने गये ॥ ४७ ॥

लक्ष्मणके जाते ही वह कपटकी आकृतिवाला रावण भिक्षुका वेष धारण कर आश्रममें प्रविष्ट हुआ ॥ ४८ ॥ जानकीने उसको यति मानकर आदरसे वन सम्बन्धी अर्घ्य देकर दुरात्मा रावणके निमित्त भिक्षा समर्पण की ॥ ४९ ॥ वह दुष्टात्मा नम्रता पूर्वक उनसे पूछने लगा, हे पद्मपलाशाक्षि ! तुम कौन हो और हे प्रिये ! यहां वनमेंइकली क्यों? ॥ ५० ॥ हे वामोरु ? तुम्हारे पिता भ्राता और पति कौन हैं हे वरवर्णिनि ! यहां तुम मूढ (मार्गभ्रष्ट) के समान स्थित हो ॥ ५१ ॥ हे प्रिये ! तुम महलमें रहने योग्य हो सो इस निर्जनवनमें पर्णशालामें मुनिपत्नीके समान क्यों स्थित हो तुम्हारी देव कन्याके समान कान्ति है ॥ ५२ ॥ व्यासजी बोले यह वचन सुनकर जानकी उस मन्दोदरीके पतिको परारब्ध वश यति मानती हुई बोली ॥ ५३ ॥ श्रीमान महाराजा

गतेऽथ लक्ष्मणे तत्र रावणः कपटा कृतिः ॥ भिक्षुवेषं ततः कृत्वा प्रविवेश तदाश्रमे ॥४८॥ जानकी तं यतिं मत्वा दत्त्वाऽर्घं वन्यमादरात्॥ भैक्ष्यं समर्पयामास रावणाय दुरात्मने ॥ ४९ ॥ तां पप्रच्छ सदुष्टात्मा नम्रपूर्वं मृदुस्वरम् ॥ काऽसि पद्मपलाशाक्षि वने चैकाकिनी प्रिये ॥ ५० ॥ पिता कस्तेऽथ वामोरु भ्राता कः कः पतिस्तव ॥ मूढवैकाकिनी चात्र स्थिताऽसि वरवर्णिनि ॥ ५१ ॥ निर्जने विपिने किं त्वं सौधार्हा त्वमसि प्रिये ॥ उटजे मुनिपत्नीवद्देवकन्यासमप्रभा ॥५२॥ व्यास उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विदेहजा ॥ दिव्यं दिष्ट्या यतिं ज्ञात्वा मंदोदर्याः पतिंतदा ॥५३॥ राजा दशरथः श्रीमांश्चत्वारस्तस्य वै सुतः ॥ तेषां ज्येष्ठः पतिर्मेऽस्ति रामनामेति विश्रुतः ॥ ५४ ॥ विवासितोऽथ कैकेय्या कृते भूपतिना वरे ॥ चतुर्दश समा रामो वस तेऽत्र सलक्ष्मणः ॥ ५५ ॥ जनकस्य सुता चाहं सीतानाम्नीति विश्रुता ॥ भक्त्वा शैवं धनुः कामं रामेणाहं विवाहिता ॥ ५६ ॥ रामबाहु बलेनात्र वसामोनिर्भया वने ॥ कांचनं मृगमालोक्य हंतुं मे निर्गतः पतिः ॥ ५७ ॥ लक्ष्मणोऽपि पुनः श्रुत्वा रवं भ्रातुर्गतोऽधुना ॥ तयोर्बाहुबलादत्र निर्भयाऽहं वसामि वै ॥ ५८ ॥

दशरथ अयोध्याके राजा हैं उनके चार पुत्र हैं उनमें बड़े पुत्र रामचन्द्रजी मेरे पति हैं ॥ ५४ ॥ उन राजाने कैकेईके निमित्त इनकोवनमें भेज दिया है और वह लक्ष्मणके साथ चौदह वर्ष वनमें रहेंगे ॥ ५५ ॥ मैं सीता नामक जनकपुत्री हूँ शिवकाधनुष तोड़कर रामने मुझे विवाहा है ॥ ५६ ॥ मैं रामके बाहुबलसे इस वनमें निर्भय निवास करती हूं, सुवर्णका मृग देख हमारे पति उसे मारने गये हैं ॥ ५७ ॥ और लक्ष्मण भी भ्राताका शब्द सुनकर अभी गये हैं इन दोनोंहीके भुजबलसे मैं यहां रहती हूं ॥ ५८ ॥

मैंने यह सब अपने वनवासका वृत्तान्त कहा, और भ्राता सहित हमारे स्वामी आकर तुम्हारा सत्कार करेंगे ॥ ५९ ॥ यति विष्णुस्वरूप है, इस कारण मैंने तुम्हारा पूजन किया, हमने राक्षसोंसे आकुल घोर वनमें आश्रम किया ॥ ६० ॥ इस कारण मैं तुमसे पूछती हूं; मेरे सामने सत्य कहो तुम त्रिदंडीके रूपसे वनमें क्यों विचरते हो ? ॥ ६१ ॥ रावण बोला, हे अरालाक्षि ! मैं लंकेश मन्दोदरी पति हूं, हे शोभने ! तुम्हारे ही निमित्त मैंने यह यतिका रूप बनाया है ॥ ६२ ॥ हे वरारोहे ! बहिनीकी प्रेरणासे मैं यहां आया हूं, जब सुना कि जनस्थानसे खर और दूषण मृतक हो गये ॥ ६३ ॥ इन मानुष पतिको छोड़कर मुझ राजाको अपना पति बनाओ, तुम्हारे पति राज्यलक्ष्मीसे हीन होकर निर्बल वनवासी हैं ॥ ६४ ॥ तुम मन्दोदरीके ऊपर मेरी

मयेदं कथितं सर्वं वृत्तांतं वनवासकम् ॥ तेऽत्रागत्यार्हणां ते वै करिष्यंति यथाविधि ॥ ५९ ॥ यतिर्विष्णुस्वरूपोऽसि तस्मात्त्वं पूजितो मया ॥ आश्रमो विपिने घोरे कृतोऽस्ति रक्षसां कुले ॥ ६० ॥ तस्मात्त्वां परिपृच्छामि सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥ कोऽसि त्रिदंडी रूपेण विपिने त्वं समागतः ॥ ६१ ॥ रावण उवाच ॥ लंकेशोऽहं मरालाक्षि श्रीमान्मंदोदरीपतिः ॥ त्वत्कृते तु कृतं रूपं मयेत्थं शोभनाकृते ॥ ६२ ॥ आगतोऽहं वरारोहे भगिन्या प्रेरितोऽत्रवै ॥ जनस्थाने हतौ श्रुत्वा भ्रातरौ खरदूषणौ ॥ ६३ ॥ अंगीकुरु नृपं मां त्वं त्यक्त्वा तं मानुषं पतिम् ॥ हृतराज्यं गतश्रीकं निर्बलं वनवासिनम् ॥ ६४ ॥ पट्टराज्ञी भव त्वं मे मंदोदर्युपरि स्फुटम् ॥ दासोऽस्मि तव तन्वंगि स्वामिनी भव भामिनि ॥ ६५ ॥ जेताऽहं लोकपालानां पतामि तव पादयोः ॥ करं गृहाणमेऽद्य त्वं सनाथं कुरु जानकि ॥६६॥ पिता ते याचितः पूर्वं मया वै त्वत्कृतेऽबले ॥ जनको मामुवाचेत्थं पणबंधो मया कृतः ॥ ६७ ॥ रुद्रचापभयान्नाहं संप्राप्तस्तु स्वयंवरे ॥ मनो मे संस्थितं तावन्निमग्नं विरहातुरम् ॥ ६८ ॥ वनेऽत्र संस्थितां श्रुत्वा पूर्वानुराग मोहितः ॥ आगतोऽस्म्यसितापांगि सफलं कुरु मे श्रमम् ॥ ६९ ॥

पटरानी हो, हे तन्वंगी ! मैं तुम्हरा दास हूं, तुम मेरी स्वामिनी हो ॥ ६५ ॥ मैं लोकपालोंका जीतनेवाला तुम्हारे चरणोंमें पडता हूं, हे जानकी ! तुम मेरा हाथ पकडकर मुझे सनाथ करो ॥ ६६ ॥ मैंने पहले तुमको तुम्हारे पितासे भी मांगा था, पर जनकने कहा मैंने पण लगाया है ॥ ६७ ॥ तब रुद्र चापके भयसे मैं स्वयंवरसे नहीं गया, पर मेरा मन तुममें ही स्थित है मैं विरहातुर हो रहा हूं ॥ ६८ ॥ इस वनमें तुम्हारा रहना सुनकर पूर्व अनुरागसे मोहित हुआ मैं हे अनवद्य अंगवाली !यहां आया हूं तुम मेरा श्रम सफल करो ॥ ६९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले, यह दुष्ट वचन सुनते ही जानकी भयसे विह्वल हो गई और कांप गई फिर मनको स्थिर कर वचन बोली ॥ १ ॥ हे पुलस्त्यकी सन्तान ! काममे मोहित हो क्यों असत्य वचन बोलते हो ? मैं स्वैरिणी स्त्री नहीं हूं किंतु जनकके कुलमें उत्पन्न हूं ॥ २ ॥ हे रावण ! तुम लंकाको चले जाओ नहीं तो रामचंद्र तुमको मारेंगे, और मेरे निमित्त तुम्हारा मरण होगा; इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर जानकी पर्णशालामें अग्निके समीप चली गई और लोकोंको डरानेवाले रावणसे कहा जा जा ॥ ४ ॥ तब रावण अपना रूप प्रगट कर कुटीके समीप गया तब भयसे व्याकुल रोती हुई उस बालाको बलसे ग्रहण किया ॥ ५ ॥ उस समय राम २ लक्ष्मण २ ऐसा कहती हुई रोने

श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचो दुष्टं जानकी भयविह्वला ॥ वेपमाना स्थिरं कृत्वा मनो वाचमुवाच ह ॥ १ ॥ पौलस्त्य किमसद्वाक्यं त्वमात्थ स्मर मोहितः ॥ नाहं वै स्वैरिणी किंतु जनकस्य कुलोद्भवा ॥ २ ॥ गच्छ लंकां दशास्य त्वं रामस्त्वां वै हनिष्यति ॥ मत्कृते मरणं तत्र भविष्यति न संशयः ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वा पर्णशालायां गता सा वह्निसन्निधौ ॥ गच्छ गच्छेति वदती रावणं लोकरावणम् ॥ ४ ॥ सोऽथ कृत्वा निजं रूपं जगामोटजमंतिकम् ॥ बलाज्जग्राह तां बालां रुदतीं भयविह्वलाम् ॥ ५ ॥ राम रामेति क्रंदतीं लक्ष्मणेति मुहुर्मुहुः ॥ गृहीत्वा निर्गतः पापो रथमारोप्य सत्वरः ॥ ६ ॥ गच्छन्नरुणपुत्रेण मार्गे रुद्धो जटायुषा ॥ संग्रामोऽभून्महारौद्रस्तयोस्तत्र वनांतरे ॥ ७ ॥ हत्वा तं तां गृहीत्वा च गतोऽसौ राक्षसाधिपः ॥ लंकायां क्रंदती तात कुररीव दुरात्मना ॥ ८ ॥ अशोकवनिकायां सा स्थापिता राक्षसी युता ॥ स्ववृत्तानैव चलिता सामदानादिभिः किलः ॥९॥ रामोऽपि तं मृगं हत्वा जगामाऽऽदाय निर्वृतः ॥ आयांतं लक्ष्मणं वीक्ष्य किं कृतं तेऽनुजासमम् ॥ १० ॥

लगी और पापी उनको रथमें बैठाय ले चला ॥ ६ ॥ मार्गमें जाते अरुणपुत्र जटायुने उसको रोका, उन दोनोंका वनान्तरमें बडा संग्राम हुआ ॥ ७ ॥ वह राक्षस जटायुको मारकर जानकीको ले गया, वह कुररीके समान रुदन करती लंकाको गई ॥ ८ ॥ राक्षसियोंके पहरेमें अशोक वाटिकामें रावणने स्थापित की, और सामदानादिके प्रयोगसे भी वह अपने चरित्रसे चलायमान न हुई ॥ ९ ॥ रामचन्द्र भी उस दैत्यको मारकर लौट और लक्ष्मणको आता देखकर बोले हे अनुज यह तुमने क्या विषम बात की ? ॥ १० ॥

इकली प्रियाको छोड़कर तुम यहां कैसे आये ? क्या उस पापीका शब्द सुनकर आगये ? यह रामने कहा ॥ ११ ॥ लक्ष्मण बोले हे प्रभो ! मैं सीताके वाग्बाणसे पीडित होकर कालयोगसे यहां चला आया इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ तब उन्होंने पर्णशालामें जाकर देखा तो जानकी नहीं है, खाली आश्रम देखकर दुःखी हुए और दोनों जानकीके खोजनेका यत्न करेन लगे ॥ १३ ॥ खोजते २ वहां आये जहां वह पक्षी पतित हुआ था उस समय पृथ्वीपर पडे जटायुके प्राणमात्र शेष थे ॥ १४ ॥ उसने कहा जानकीको रावण हरकर लेगया. मैंने उस पापात्माको युद्धमें रोका सो वह मुझे मार गया । ॥ १५ ॥ ऐसा कहनेपर उसके प्राण निकल गये, रामचन्द्रने उसका और्ध्वदैहिक संस्कार कर लक्ष्मणसहित आगे गमन किया ॥ १६ ॥ और कबंधको

एकाकिनीं प्रियां हित्वा किमर्थं त्वमिहागतः ॥ श्रुत्वा स्वनं तु पापस्य राघवस्त्वब्रवीदिदम् ॥ ११ ॥ सौमित्रिस्त्वब्रवीद्वाक्यं सीतावाग्बाणताडितः ॥ प्रभोऽत्राहं समायातः कालयोगान्न संशयः ॥ १२ ॥ तदा तौ पर्णशालायां गत्वा वीक्ष्यातिदुःखितौ ॥ जानक्यन्वेषणे यत्नमुभौ कर्तुं समुद्यतौ ॥ १३ ॥मार्गमाणौ तु संप्राप्तौ यत्रास्ते पतितः खगः ॥ जटायुः प्राणशेषस्तु पतितः पृथिवीतले ॥ १४ ॥ तेनोक्तं रावणेनाद्य हृताऽसौ जनकात्मजा ॥ मया निरुद्धः पापात्मा पातितोऽहं मृधे पुनः ॥१५॥ इत्युक्त्वाऽसौ गतप्राणः संस्कृतो राघवेण वै ॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकं रामलक्ष्मणौ निर्गतौ ततः ॥१६॥ कबंधं घातयित्वाऽसौ शापाच्चामोचयत्प्रभुः ॥ वचनात्तस्य हरिणा सख्यं चक्रेऽथ राघवः ॥ १७ ॥ हत्वा च वालिनं वीरं किष्किंधाराज्यमुत्तमम् ॥ सुग्रीवाय ददौ रामः कृतसख्याय कार्यतः ॥ १८ ॥ तत्रैव वार्षिकान्मासांस्तस्थौ लक्ष्मणसंयुतः ॥ चिंतयञ्जानकीं चित्ते दशाननहृतां प्रियाम् ॥१९॥ लक्ष्मणं प्राह रामस्तु सीताविरहपीडितः ॥ सौमित्रे कैकयसुता जाता पूर्णमनोरथा ॥ २० ॥ न प्राप्ता जानकी नूनं नाहं जीवामि तां विना ॥ नागमिष्याम्ययोध्यायामृते जनकनंदिनीम् ॥ २१ ॥

मारकर उसे शापसे मुक्त किया. उसके वचनसे रामने सुग्रीवसे मित्रता की ॥ १७ ॥ रामचन्द्रने वीर बालीको मारकर किष्किंधाकाराज्य जानकीके लानेकी प्रतिज्ञासे सुग्रीवको दिया ॥ १८ ॥ वहीं प्रवर्षणपर आप लक्ष्मणसहित वर्षाके चार महीने रहे और रावणसे हरी हुई जानकीको चित्तमें विचारते रहे ॥ १९ ॥ सीताके विरहसे पीडित हुए राम लक्ष्मणसे बोले, हे लक्ष्मण ! अब कैकेयी पूर्ण मनोरथ हुई ॥ २० ॥ यदि जानकी न मिली तो मैं उनके विना न जिऊंगा जानकीके विना मैं अयोध्या न जाऊंगा ॥ २१ ॥

राज्य गया, वनमें वासकरना पड़ा, पिताका मरण और प्रियाका हरण हुआ, वह दुष्टात्मा दैव मुझको पीडित करता है न जाने आगे दैव क्या करेगा ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! प्राणियोंका भवितव्य नहीं जाना जाता, हे तात ! न जाने दुःखरूप हमारी क्या गति होगी ? ॥ २३ ॥ हम दोनों राजपुत्र मनुके वंशमें जन्म प्राप्त कर अपने पूर्वकृतके अनुसार वनमें दुःख भागी हुए ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण ! तुमभी दैवयोगसे भोग छोडकर मेरेसाथ चले आये, अब दुःख भोगो ॥ २५ ॥ हमारे कुलमें हमारे समान कोई दुःख भागी न हुआ होगा, मुझसा अकिंचन निःक्षमन कोई हुआ न होगा ॥२६॥ हे लक्ष्मण ! दुःखसागरमें मग्न हुआ मैं क्या करूं ? मुझ असहायके तरनेका कोई उपाय नहीं है ॥२७॥ हे वीर हमको धन और बल नहीं है आपही एक सहायक हो

गतं राज्यं वनेवासो मृतस्तातो हृता प्रिया ॥ पीडयन्मां स दुष्टात्मा दैवोऽग्रे किं करिष्यति ॥ २२ ॥ दुर्ज्ञेयं भवितव्यं हि प्राणिनां भ्रातानुज ॥ आवयोः का गतिस्तात भविष्यति सुदुःखदा ॥ २३ ॥ प्राप्य जन्म मनोर्वंशे राजपुत्रावुभौ किल ॥ वनेऽतिदुःखभोक्तारौ जातौ पूर्वकृतेन च ॥ २४ ॥ त्यक्त्वा त्वमपि भोगांस्तु मया सह विनिर्गतः ॥ दैवयोगाच्च सौमित्रे भुंक्ष्व दुःखं दुरत्ययम् ॥ २५ ॥ न कोप्यस्मत्कुले पूर्वं मत्समो दुःखभाङ्नरः ॥ अकिंचनोऽक्षमः क्लिष्टो न भूतो न भविष्यति ॥२६॥ किं करोम्यद्य सौमित्रे मग्नोऽस्मि दुःखसागरे ॥ न चास्ति तरणोपायो ह्यसहायस्य मे किल ॥ २७ ॥ न वित्तं न बलं वीर त्वमेकः सहचारकः ॥ कोपं कस्मिन्करोम्यद्य भोगेऽस्मिन्स्व कृतेऽनुज ॥ २८ ॥ गतं हस्तगतं राज्यं क्षणादिंद्रसभोपमम् ॥ वने वासस्तु संप्राप्तः को वेद विधिनिर्मितम् ॥ २९ ॥ बालभावाच्च वैदेही चलिता चावयोः सह ॥ नीता दैवेन दुष्टेन श्यामा दुःखतरां दशाम् ॥ ३० ॥ लंकेशस्य गृहे श्यामा कथं दुःखं भविष्यति ॥ पतिव्रता सुशीला च मयि प्रीतियुता भृशम् ॥ ३१ ॥ न च लक्ष्मण वैदेही सा तस्य वशगा भवेत् ॥ स्वैरिणीव वरारोहा कथं स्याज्जनकात्मजा ॥ ३२ ॥

इस अपने कियेके भोगमें किसपर क्रोध करूं ? ॥ २८ ॥ क्षणमें इन्द्रके समान राज्य चला गया और वनवास प्राप्त हुआ विधाताकी विधि कौन जानसकता है ? ॥ २९ ॥ बालभावसे जानकीभी हमारेसाथ चली आई दुष्ट प्रारब्धने उसको कठिन दुःखमें प्राप्त करदिया ॥३०॥ रावणके यहां उस अबलाको कितना दुःख हुआ होगा, वह पतिव्रता सुशीला मुझमें अधिक प्रीति करती है ॥ ३१ ॥ हे लक्ष्मण ! जानकी कभी रावणके वशीभूत न होगी, वह वरारोहा जनकात्मजा कभी स्वच्छन्दचारिणी न होगी ॥ ३२ ॥

बल करनेपर जानकी अवश्य प्राण त्यागदेगी यह तो निश्चय है रावणके वशीभूत न होगी ॥३३॥ हे वीर ! यदि जानकी मरगई तो मैं अवश्य प्राण त्याग दूंगा, यदि वह न रही तो मेरे देहसे क्या होगा ? ॥ ३४ ॥ इस प्रकारसे विलाप करते कमललोचन रामसे धर्मात्मा लक्ष्मण समझाते मधुर वाणीसे बोले ॥ ३५ ॥ हे महाबाहो ! कातरता को छोड़कर धैर्य करो, मैं उस राक्षसको मारकर जानकीको लाऊंगा ॥ ३६ ॥ आपत्ति और सम्पत्तिमें जो समानधीरतासे रहते हैं वही धीर हैं और अल्पबुद्धिवाले तो विभव होनेपरभी थोड़ेही कष्टमें व्याकुल होजाते हैं ॥ ३७ ॥ संयोग वियोग दोनोंही दैवाधीन हैं, जव यह देह आत्मा है

त्यजेत्प्राणान्नियंतृत्वे मैथिली भरतानुज ॥ न रावणस्य वशगा भवेदिति सुनिश्चितम् ॥ ३३ ॥ मृता चेज्जानकी वीर प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ मृता चेदसितापांगी किं मे देहेन लक्ष्मण ॥ ३४ ॥ एवं विलपमानं तं रामं कमललोचनम् ॥ लक्ष्मणः प्राह धर्मात्मा सांत्वयन्नृतया गिरा ॥ ३५ ॥ धैर्यं कुरु महाबाहो त्यक्त्वा कातरतामिह ॥ आनयिष्यामि वैदेहीं हत्वा तं राक्षसाधमम् ॥ ३६ ॥ आपदि संपदि तुल्या धैर्याद्भवंति ते धीराः ॥ अल्पधियस्तु निमग्नाः कष्टे भवंति विभवेऽपि ॥ ३७ ॥ संयोगो विप्रयोगश्च दैवाधीनावुभावपि ॥ शोकस्तु कीदृशस्तत्र देहेऽनात्मनि च क्वचित् ॥ ३८ ॥ राज्याद्यथा वने वासो वैदेह्या हरणं यथा ॥ तथा काले समीचीने संयोगोऽपि भविष्यति ॥ ३९ ॥ प्राप्तव्यंसुखदुःखानां भोगान्निर्वर्तनं क्वचित् ॥ नान्यथा जानकी जाने तस्माच्छोकं त्यजाधुना ॥ ४० ॥ वानराः संति भूयांसो गमिष्यंति चतुर्दिशम् ॥ शुद्धिं जनकनंदिन्या आनयिष्यंति ते किल ॥ ४१ ॥ ज्ञात्वा मार्गस्थितिं तत्र मत्वा कृत्वा पराक्रमम् ॥ हत्वा तं पापकर्माणमानयिष्यामि मैथलीम् ॥ ४२ ॥ ससैन्यं भरतं वाऽपि समाहूय सहानुजम् ॥ हनिष्यामो वयं शत्रुं किं शोचसि वृथाऽग्रज ॥ ४३ ॥

ही नहीं तो शोक किस बातका है ?॥३८॥ राज्यसे जैसे वनवास और जानकीका हरण हुआ इसीप्रकार कुछ कालमें संयोगभी होगा ॥ ३९ ॥ हे जानकीके पति ! प्राप्त होनेवाले सुखदुःखोंका कभी निवर्तन नहीं होता, इस कारण तुम दुःख त्यागदो ॥ ४० ॥ सेनामें बड़े बन्दर हैं यह चारों दिशाओंको जायंगे, वे अवश्य जानकीकी सुधि लावेंगे ॥ ४१ ॥ मार्गकीस्थित जानकर पूर्ण पराक्रम कर वहां जाय उस पापकर्माको मार जानकीको लावेंगे ॥ ४२ ॥ अथवा सेना सहित भरत औरशत्रुघ्नको बुलाकर हम शत्रुको मारेंगे, हे स्वामिन् ! आप क्यों वृथा शोक करते हो ! ॥ ४३ ॥

रघुने एकही रथसे सर्व दिशा जीती थी, हे राघव ! उनके वंशमें प्रगट होकर आप क्यों शोक करते हो ? ॥४४॥ मैं इकलाही सब सुर असुरोंके जीतनेमें समर्थ हूं फिर आपकी सहायतायुक्त होकर कुलपांसु रावणका मारना क्या बडी बात है ॥ ४५ ॥ हे रघुनन्दन ! अथवा जनककों हमसहायताको बुलावेंगे और सुरोंको कंटकरूपदुराचारी उस रावणको मारेंगे ॥ ४६ ॥ सुखके उपरान्त दुःख दुःखके उपरान्त सुख होताहैं हे राम ! यह चक्रकी नेमिके समान घूमते हैं ॥४७॥ जिसका मन बहुत कातर है यह दुःखसुखमें शोकसागरमें मग्न होजाता है और कभी सुखी नहीं होता ॥ ४८ ॥ हे राम ! एक समय इन्द्रको भी दुःख हुआथा उस समय सब देवताओंने इन्द्रके पदमें नहुषको स्थापित किया था ॥ ४९ ॥ और इन्द्र अपना पद त्यागकर अज्ञातवास करते हुए बहुत वर्षोंतक कमलनालमें

रघुणैकरथेनैव जिताः सर्वा दिशः पुरा ॥ तद्वंशजः कथं शोकं कर्तुमर्हसि राघव ॥ ४४ ॥ एकोऽहं सकलाञ्जेतुं समर्थोऽस्मि सुरासुरान् ॥ किं पुनःससहायो वै रावणं कुलपांसनम् ॥ ४५ ॥ जनकं वा समानीय साहाय्ये रघुनन्दन ॥ हनिष्यामि दुराचारं रावणं सुरकंटकम् ॥ ४६ ॥ सुखस्यानंतरं दुःखं दुःखस्यानंतरं सुखम् ॥ चक्रनेमिरिवैकं तन्न भवेद्रघुनंदन ॥ ४७ ॥ मनोऽतिकातरं यस्य सुखदुःखसमुद्भवे ॥ स शोकसागरे मग्नो न सुखी स्यात्कदाचन ॥ ४८ ॥ इंद्रेण व्यसनं प्राप्तं पुरा वै रघुनन्दन ॥ नहुषः स्थापितो देवैः सर्वैर्मघवतः पदे ॥ ४९ ॥ स्थितः पंकजमध्ये च बहुवर्षगणानपि ॥ अज्ञानवासं मघवा भीतस्त्यक्त्वा निजं पदम् ॥ ५० ॥ पुनः प्राप्तं निजं स्थानं काले विपरिवर्तिते ॥ नहुषः पतितो भूमौ शापादजगराकृतिः ॥ ५१ ॥ इन्द्राणीं कामयानस्तु ब्राह्मणानवमन्य च ॥ अगस्तिकोपात्संजातः सर्पदेहो महीपतिः ॥ ५२ ॥ तस्माच्छोको न कर्तव्यो व्यसने सति राघव ॥ उद्यमे चित्तमास्थाय स्थातव्यं वै विपश्चिता ॥ सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थोऽसि जगत्पते ॥ किं प्राकृत इवात्यर्थं कुरुषे शोकमात्मनि ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति लक्ष्मणवाक्येन बोधितो रघुनन्दनः ॥ त्यक्त्वा शोकं तथाऽत्यर्थं बभूव विगतज्वरः ॥ ५५ ॥

रहे ॥ ५० ॥ और फिर कुछ समयके उपरान्त अपने पदपर स्थित हुए और शापसे अजगर हो नहुष पृथ्वीपर गिरा ॥ ५१ ॥ इन्द्राणीकी इच्छा करने और ब्राह्मणोंके तिरस्कार करनेमें अगस्त्यके क्रोधमें राजाको सर्पकी देह प्राप्त हुई ॥५२॥ हे राम ! इससे दुःख प्राप्त होनेपर शोक न करो, बुद्धिमान्को उद्यममें चित्त लगाकर स्थित होना चाहिये ॥ ५३ ॥ हे महाभाग ! आप समर्थ और सर्वज्ञ हो, प्राकृतके समान आत्माको क्यों शोकयुक्त करते हो ? ॥५४॥ व्यासजी बोले इस प्रकार लक्ष्मणने रामको समझाया तब शोकत्याग कर रामचन्द्र स्वस्थ हुए ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले इस प्रकारसे यह दोनों वार्ता करके जब मौन हुए उसी समय आकाशमार्गमे देवर्षि नारदजी आये ॥ १ ॥ स्वर ग्राममे विभूषित महती वीणाको बजाते तथा बृहद्रथन्तर साम गायन करतेप्राप्त हुए ॥ २ ॥ रघुनाथजीने महर्षिको आया देख सुन्दर धर्मरूप वृष दिया और महाद्युतिमान्ने उनको अर्घ्यपाद्य और आसन दिया ॥ ३ ॥ और परमपूजा कर हाथ जोडकर उपस्थित हुए और मुनिसे सत्कृत हो रामचन्द्र भगवान् उनके समीप बैठे ॥ ४ ॥ अनुजसहित बैठे मनमें दुःखी राम चन्द्रसे मुनिश्रेष्ठ नारदजी कुशल पूछने लगे ॥ ५ ॥ हे राम! साधारण मनुष्यके समान क्यों शोक करते हो ? मैं जानता हूं दुरात्मा रावण जानकीको हरकर ले गया है ॥ ६ ॥ मैंने देवलोकमेंही

इति श्रीदे० म० तृ० एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं तौ संविदं कृत्वा यावत्तूष्णीं बभूवतुः ॥ आजगाम तदाऽऽकाशान्नारदो भगवानृषिः ॥ १ ॥ रणयन्महतीं वीणां स्वरग्रामविभूषिताम् ॥ गायन्बृहद्रथं साम तदा तमुपतस्थिवान् ॥ २ ॥ दृष्ट्वा तं राम उत्थाय ददावथ वृषशुभम् ॥ आसनं चार्घपाद्यं च कृतवानमितद्युतिः ॥ ३ ॥ पूजां परमिकां कृत्वा कृतांजलिरुपस्थिताः ॥ उपविष्टः समीपे तु कृताज्ञो मुनिना हरिः ॥ ४ ॥ उपविष्टं तदा रामं सानुजं दुःखमानसम् ॥ पप्रच्छ नारदः प्रीत्या कुशलं मुनिसत्तमः ॥ ५ ॥ कथं राघव शोकार्तो यथा वै प्राकृतो नरः ॥ हृतां सीतां च जानामि रावणेन दुरात्मना ॥ ६ ॥ सुरसद्मगतश्चाहं श्रुतवाञ्जनकात्मजाम् ॥ पौलस्त्येन हृतां मोहान्मरणं स्वमजानता ॥ ७ ॥ तव जन्म च काकुत्स्थ पौलस्त्यनिधनाय वै ॥ मैथिलीहरणं जातमेतदर्थं नराधिप ॥ ८ ॥ पूर्वजन्मनि वैदेही मुनिपुत्री तपस्विनी ॥ रावणेन वने दृष्टा तपस्यंती शुचिस्मिता ॥ ९ ॥ प्रार्थिता रावणे नासौ भव भार्येति राघव ॥ तिरस्कृतस्तयाऽसौ वै जग्राह कबरं बलात् ॥ १० ॥ शशाप तत्क्षणं राम रावणं तापसी भृशम् ॥ कुपिता त्यक्तुमिच्छंती देहं संस्पर्शदूषितम् ॥ ११ ॥

यह वार्ता सुनी थी कि दुरात्मा रावणने अपनी मृत्युके निमित्तही जानकी हरण की है ॥ ७ ॥ हे राम! तुम्हारा जन्म रावणके वधके निमित्तही है. हे नराधिप! इसी कारण जानकीका हरण हुआ है ॥ ८ ॥ पूर्वजन्ममें यह वैदेही मुनिकी पुत्री बडी तपस्विनी थीं, इन मनोहराको वनमें तप करते रावणने देखा था ॥ ९ ॥ हे राघव! रावणने भार्या होनेकी प्रार्थना की जब उसने तिरस्कार किया तब रावणमे बलसे केश ग्रहण किये ॥ १० ॥ हे राम! उसी समय उस तापसीने इसके स्पर्शसे दूषित देहको त्यागनेकी इच्छासे क्रोध कर उसी समय रावणको शाप दिया ॥ ११ ॥

हे दुरात्मन् ! मैं तेरे नाशके निमित्त फिर भूमिमें अवतार लूंगी, उस अयोनिज वरानारीने अपना शरीर त्याग किया ॥ १२ ॥ वही यह लक्ष्मीके अङ्गसे प्रगट होकर उस राक्षससे गृहीत हुई है. उसने कुलनाशके निमित्तही मालाके भ्रमसे सर्पिणी ग्रहण की है ॥ १३ ॥ हे राम ! तुम्हारा जन्म निशाचरोंके नाशके निमित्तही है और देवताओंकी प्रार्थनासे अजन्मा हरिरूप आपने जन्म लिया है ॥ १४ ॥ हे महाबाहो ! तुम धैर्य धारण करो वहां वह अवश सती धर्ममें तत्पर सीता निरन्तर आपका ध्यान करती है ॥ १५ ॥ स्वयं इन्द्रने कामधेनुका दूध पात्रमें जानकीके पानके निमित्त प्रदान किया ॥ १६ ॥ कामधेनुके दुग्धपानसे वह भूख प्याससे वर्जित हुई स्थित कमलपत्राक्षी मैंने देखी है ॥ १७ ॥ हे राम ! मैं उस दैत्यके नाशका उपाय कहता हूं. तुम श्रद्धापूर्वक आश्विनमासमें व्रत

दुरात्मंस्तव नाशार्थं भविष्यामि धरातले ॥ अयोनिजा वरा नारीत्युक्त्वा देहं जहावपि ॥ १२ ॥ सेयं रमांशसंभूता गृहीता तेन रक्षसा ॥ विनाशार्थं कुलस्यैव व्याली स्रगिव संभ्रमात् ॥ १३ ॥ तव जन्म च काकुत्स्थ तस्य नाशाय चामरैः ॥ प्रार्थितस्य हरेरंशादजवंशेऽप्य जन्मनः ॥ १४ ॥ कुरु धैर्यं महाबाहो तत्र सा वर्ततेऽवशा ॥ सती धर्मरता सीता त्वां ध्यायंती दिवानिशम् ॥ १५ ॥ कामधेनुपयः पात्रे कृत्वा मघवता स्वयम् ॥ पानार्थं प्रेपितं तस्याः पीतं चैवामृतं तथा ॥ १६ ॥ सुरभीदुग्धपानात्सा क्षुत्तृड्दुःख विवर्जिता ॥ जाता कमलपत्राक्षी वर्तते वीक्षिता मया ॥ १७ ॥ उपायं कथयाम्यद्य तस्य नाशाय राघव ॥ व्रतं कुरुष्व श्रद्धावानाश्विने मासि सांप्रतम् ॥ १८ ॥ नवरात्रोपवासं च भगवत्याः प्रपूजनम् ॥ सर्वसिद्धिकरं राम जपहोमविधानतः ॥ १९ ॥ मेध्यैश्च पशुभिर्देव्या बलिं दत्त्वा विशंसितैः ॥ दशांशं हवनं कृत्वा सुशक्तस्त्वं भविष्यसि ॥ २० ॥ विष्णुना चरितं पूर्वं महादेवेन ब्रह्मणा ॥ तथा मघवता चीर्णं स्वर्गमध्यस्थितेन वै ॥ २१ ॥ सुखिना राम कर्तव्यं नवरात्रव्रतं शुभम् ॥ विशेषेण च कर्तव्यं पुंसा कष्टगतेन वै ॥ २२ ॥ विश्वमित्रेण काकुत्स्थ कृतमेतन्न संशयः ॥ भृगुणाऽथ वसिष्ठेन कश्यपेन तथैव च ॥ २३ ॥

करो ॥ १८ ॥ नवरात्रका उपवास और भगवतीका पूजन करो, हे राम ! जप होमके विधानसे सब सिद्धि होगी ॥ १९ ॥ मेध्यपशुओंकी भगवतीको बलि दो और दशांश हवन करके तुम अधिक समर्थ होंगे ॥ २० ॥ इस व्रतको पहले विष्णु और महादेवने किया था तथा ब्रह्माजीनेभी किया और स्वर्गमें स्थित इन्द्रनेभी इस व्रतको किया था ॥ २१ ॥ हे राम ! सुखी पुरुषोंकोभी नवरात्रका सुन्दर व्रत करना चाहिये और कष्टमें प्राप्त हुए पुरुषोंको तो अवश्यही व्रत करना चाहिये ॥ २२ ॥ हे राम ! निःसंदेह यह व्रत विश्वामित्रने किया था, भृगु वसिष्ठ और कश्यपनेभी यह व्रत किया था ॥ २३ ॥

बृहस्पतिने दारहरणमें यही व्रत किया था, हे राजेन्द्र ! तुमभी रावणवधके निमित्त यह व्रत करो ॥२४॥ इन्द्रने वृत्रासुरके नाशको और शंकरने त्रिपुरनाशके निमित्त पहले यह व्रत किया था ॥ २५ ॥ हरिने मधुनाशके निमित्त मेरुमें यह व्रत किया था, हे राम ! तुमभी सावधान होकर इसे करो ॥२६॥ श्रीराम बोले वह कौन देवी ? क्या उसका प्रभाव है ? कहांसे हुई ? क्या नाम है ? हे दयानिधे ! उनका व्रत कैसा है ? आप सर्वज्ञ हो कहिये ॥ २७ ॥ नारदजी बोले हे राम ! सुनो, वह विद्या आद्या सनातनी शक्ति है, वह सब कामना दायक देवी पूजनेसे सब दुःख नाशनेवाली है, आद्या कहनेसे सबकी कारणभूत ब्रह्मरूपा तथा आदिसिद्ध जडरूप मायावाली अग्निमें अग्नि शक्तिके समान ब्रह्ममें स्थित है, यह दोनों मायाविशिष्टरूप देवीपदवाच्य हैं. वही जगत्कारण माया शरीरमें प्रविष्ट होकर अनेक रूपवाली होती है, यह प्रथम प्रश्नका उत्तर हुआ यही बृहदारण्यके गार्गिब्राह्मणमें स्पष्टस्वरूपसे कहा है, [यदूर्ध्व याज्ञवल्क्यादिवो

गुरुणा हृतदारेण कृतमेतन्महाव्रतम् ॥ तस्मात्त्वं कुरु राजेंद्र रावणस्य वधाय च ॥ २४ ॥ इंद्रेण वृत्रनाशाय कृतं व्रतमनुत्तमम् ॥
त्रिपुरस्य विनाशाय शिवेनापि पुराकृतम् ॥ २५ ॥ हरिणा मधुनाशाय कृतं मेरौ महामते ॥ विधिवत्कुरु काकुत्स्थ व्रतमेतदतंद्रितः
॥ २६ ॥ श्रीराम उवाच ॥ का देवी किंप्रभावा सा कुतो जाता किमाह्वया ॥ व्रतं किं विधिवद् ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ॥ २७ ॥
नारद उवाच ॥ शृणु राम सदा नित्या शक्तिराद्या सनातनी ॥ सर्वकामप्रदा देवी पूजिता दुःखनाशिनी ॥ २८ ॥ कारणं सर्वजंतूनां
ब्रह्मादीनां रघूद्वह ॥ तस्याः शक्तिं विना कोऽपि स्पंदितुं न क्षमो भवेत् ॥ २९ ॥ विष्णोः पालनशक्तिः सा कर्तृशक्तिः पितुर्मम ॥
रुद्रस्य नाशशक्तिः सा त्वन्यशक्तिः परा शिवा ॥ ३० ॥ यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्भुवनत्रये ॥ तस्य सर्वस्य या शक्ति स्तदुत्पत्तिः
कुतो भवेत् ॥ ३१ ॥ न ब्रह्मा न यदा विष्णुर्न रुद्रो न दिवाकरः ॥ न चेंद्राद्याः सुराः सर्वे न धरा न धराधराः ॥ ३२ ॥

यदवाक्पृथिव्यामंतरा इत्यादि] यह पूँछनेपर कि यह जगत् किससे ओतप्रोत है, तब इसी विषयका उत्तर है [एत द्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति इत्यादि] यह जो पूछा कि, क्या प्रभाववाली है? इसपर कहते हैं. सबका कर्तृत्वही इसका प्रभाव है [तथाक्षरात्संभवतीह विश्वम् इति श्रुतेः] ॥ २८ ॥ हे राम ! वह सब जन्तु और ब्रह्मादिका कारण है. उसकी भक्तिके विना कोईभी गमन करनेको समर्थ नहीं है ॥ २९ ॥ विष्णुमें पालनरूप हमारे पिता ब्रह्मामें कर्तृरूप और रुद्रमें संहाररूपसे निवास करती है ॥३०॥ कौन है ? इसपर कहते हैं. जो कुछ त्रिलोकीमें सद्असद्रूप है उस सबकी जो शक्ति है उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है ? ॥ ३१ ॥ जिस समय रुद्र ब्रह्मा विष्णु सूर्य इन्द्रादि देवता भूमि पर्वत कुछ न थे ॥ ३२ ॥

तब उस परम पुरुषसे यह प्रकृति पूर्ण होकर उसके युक्तही युगादिमें निर्गुण शिवाशक्ति विहार करती है ॥ ३३ ॥ पीछे यही सगुणा होकर जगत् उत्पन्न करती है, पहले ब्रह्मादिको प्रगट करके और उनको सब प्रकार शक्ति देकर सम्पन्न करती है ॥ ३४ ॥ उसीको जानकर यह प्राणी संसार बंधनमे मुक्त हो जाता है वह विद्यावेदकी आद्या वेदकी करनेवाली जाननी चहिए ॥ ३५॥ उसके असंख्य नामें ब्रह्मादिने गुण कर्मके विधानसे कहे हैं, तुमसे कहांतक कहें ॥ ३६ ॥ अकारसे लेकर क्षकारान्त सब स्वर वर्णोंसे युक्त हे रघुनन्दन ! उसके अनेक नाम होते हैं ॥ ३७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले, हे नारदजी ! आप संक्षेपसे इस व्रतका विधान कहिये अभी मैं श्रद्धापूर्वक देवीका आराधन करूंगा ॥ ३८ ॥ नारदजी बोले हे राम ! समस्थानमें सिंहासन स्थापन कर उसपर भगवतीको

तदा सा प्रकृतिः पूर्णा पुरुषेण परेण वै ॥ संयुता विहरत्येव युगादौ निर्गुण शिवा ॥ ३३ ॥ सा भूत्वा सगुणा पश्चात्करोति भुवन त्रयम् ॥ पूर्वं संसृज्य ब्रह्मादीन्दत्त्वा शक्तिश्च सर्वशः ॥ ३४ ॥ तां ज्ञात्वा मुच्यते जंतुर्जन्मसंसारबंधनात् ॥ सा विद्या परमा ज्ञेया वेदाद्या वेदकारिणी ॥ ३५ ॥ असंख्यातानि नामानि तस्या ब्रह्मादिभिः किल ॥ गुणकर्मविधानैस्तु कल्पितानि च किं ब्रुवे ॥ ३६ ॥ अकारादिक्षकारांतैः स्वरैर्वर्णस्तु योजितैः ॥ असंख्येयानि नामानि भवंति रघुनन्दन ॥ ३७ ॥ राम उवाच ॥ विधिं मे ब्रूहि विप्रर्षे व्रतस्यास्य समासतः ॥ करोम्यद्यैवश्रद्धावाञ्छ्रीदेव्याः पूजनं तथा ॥ ३८ ॥ नारद उवाच ॥ पीठं कृत्वा समे स्थाने संस्थाप्य जगदंबिकाम् ॥ उपवासान्नवैव त्वं कुरु राम विधानतः ॥ ३९ ॥ आचार्योऽहं भविष्यामि कर्मण्यस्मिन्महीपते ॥ देवकार्यविधानार्थमुत्साहं प्रकरोम्यहम् ॥ ४० ॥ व्यास उवास ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं मत्वा रामः प्रतापवान् ॥ कारयित्वा शुभं पीठं स्थापयित्वांऽबिकां शिवम् ॥ ४१ ॥ विधिवत्पूजनं तस्याश्चकार व्रतवान्हरिः ॥ संप्राप्ते चाश्विने मासितस्मिन्गिरिवरे तदा ॥ ४२ ॥ उपवासपरो रामः कृतवान्व्रतमुत्तमम् ॥ होमं च विधिवत्तत्र बलिदानं च पूजनम् ॥ ४३ ॥

स्थापनकर विधिपूर्वक नवरात्र व्रत कीजिये ॥ ॥ . ३९ ॥ हे भगवन् ! आपके इस कार्यमें आचार्य मैं हूंगा, देवकार्य विधानके निमित्त मुझको भी उत्साह है ॥ ४० ॥ व्यासजी बोले यह सत्य उनके वचन सुनकर प्रताप वान् रामचन्द्र सुन्दर सिंहासन करवाय उसपर शिवाको स्थापन कर ॥ ४१ ॥ व्रतपूर्वक भगवानने विधिसे पूजन किया, आश्विनमासके उस गिरिवरपर प्राप्त होनेपर ॥ ४२ ॥ उपवासमें तत्पर होकर रामने उत्तम व्रत किया, होम बलिदान और विधिपूर्वक पूजन किया ॥ ४३ ॥

प्रेमपूर्वक दोनों भ्राताओंने नारदजीकी सम्मतिसे किया । अष्टमीके दिन आधी रातको देवी भगवती ॥ ४४ ॥ पूजित होकर सिंहपर आरूढ हो दर्शन देती हुई और पर्वश्रृंग पर स्थित हो सानुज रामसे बोली ॥ ४५ ॥ भक्तिभावसे संतुष्ट हो मेघगंभीर भावसे देवी बोली, हे राम ! महाबाहो ! मैं तुम्हारेव्रतसे सन्तुष्ट हुई हूं ॥ ४६ ॥ जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो, आप मनुवंशमें नारायण अंशसे प्रगट हुए हो ॥ ४७ ॥ रावणके वधके निमित्त ही देवताओं ने तुम्हारी प्रार्थना की है, पहले तुमने मत्सरूप धारण कर घोररूप राक्षसको मारा ॥ ४८ ॥ देवताओंके हितके इच्छासे वेदोंकी रक्षा की, कच्छपरूप धारण कर मंदर पर्वतको धारण किया ॥ ४९ ॥ और समुद्रका मथन कर देवताओंको संतुष्ट किया और वाराहरूप धारणकर अपनें दांतोंके अग्र भागपर ॥ ५० ॥

भ्रातरौ चक्रतुः प्रेम्णा व्रतं नारदसंमतम् ॥ अष्टम्यां मध्यरात्रे तु देवी भगवती हि सा ॥ ४४ ॥ सिंहारूढा ददौ तत्र दर्शनं प्रतिपूजिता ॥ गिरिश्रृंगे स्थितोवाच राघवं सानुजं गिरा ॥ ४५ ॥ मेघगंभीरया चेदं भक्तिभावेन तोषिता ॥ देव्युवाच ॥ राम राम महाबाहो तुष्टाऽस्म्यद्य व्रतेन ते ॥ ४६ ॥ प्रार्थयस्व वरं कामं यत्ते मनसि वर्तते ॥ नारायणांशसंभूतस्त्वं वंशे मानवेऽनघे ॥ ४७ ॥ रावणस्य वधायैव प्रार्थितस्त्वमरैरसि ॥ पुरा मत्स्यतनुं कृत्वा हत्वा घोरं च राक्षसम् ॥ ४८ ॥ त्वया वै रक्षिता वेदाः सुराणां हितमिच्छता ॥ भूत्वा कच्छपरूपस्तु धृतवान्मन्दरं गिरिम् ॥ ४९ ॥ अकूपारं प्रमंथानं कृत्वा देवानपोषयः ॥ कोलरूपं पुरा कृत्वा दशनाग्रेण मेदिनीम् ॥ ५० ॥ धृतवानसि यद्रामहिरण्याक्षं जघान च ॥ नारसिंहीं तनुं कृत्वा हिरण्यकशिपुं पुरा ॥ ५१ ॥ प्रह्लादं राम रक्षित्वा हतवानसि राघव ॥ वामनं वपुरास्थायपुरा छलितवान्बलिम् ॥ ५२ ॥ भूतत्वेंद्रस्यानुजः कामं देवकार्यप्रसाधकः ॥ जमदग्निसुतस्त्वं मे विष्णोरंशेन संगतः ॥ ५३ ॥ कृत्वांऽतंक्षत्रियाणां तु दानं भूमेरदाद्द्विजे ॥ तथेदानीं तु काकुत्स्थ जातो दशरथात्मजः ॥ ५४ ॥ प्रार्थितस्तु सुरैः सर्वैं रावणे नातिपीडितैः ॥ कपयस्ते सहाया वै देवांशा बलवत्तर ॥ ५५ ॥

मेदनीको धारणकर हिरण्याक्षको मारा और इसी प्रकार पूर्वमें नृसिंह शरीर धारण करके हिरण्यकशिपुको मारा ॥ ५१ ॥ हे राघव ! तुमने प्रह्लादकी रक्षा की, वामनरूप धारणकर बलिको छला ॥ ५२ ॥ यह आप देव कार्य सिद्धिके निमित्त इन्द्रके अनुज हुए थे, तुम ही विष्णुके अंश होकर जमदग्निके पुत्र हुए ॥ ५३ ॥ और क्षत्रियोंका नाशकर ब्राह्मणोंको भूमि प्रदान की, इसी प्रकार हे काकुत्स्थ ! अब आप दशरथके पुत्र हुए हो ॥ ५४ ॥ रावणसे पीडित हुए देवतोंने आपकी प्रार्थना की यह देवांशसे हुए बली वानर आपकी सहायता करेंगे ॥ ५५ ॥

हे नरव्याघ्र ! यह हमारी शक्तिसे संयुक्त हैं और शेषके अंशसे यह तुम्हारे अनुज लक्ष्मण हैं, यह रावणके पुत्रको मारेंगे ॥५६॥ हे पापरहित ! इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हैं और वसन्तमें भी श्रद्धापूर्वक मेरा सेवन करना चाहिये ॥५७॥ पापी रावणको मारकर यथायोग्य राज्य करना. ग्यारह सहस्र वर्षतक पृथ्वीमें सुख भोगकर ॥५८॥ हे रघुश्रेष्ठ ! फिर राज्यकर स्वर्गलोकको जाओगे. व्यासजी बोले ऐसा कह देवी अन्तर्धान हुई और रघुनाथजी बडे प्रसन्न हुए ॥५९॥ औरउस व्रतको समाप्त कर दशमीके दिन उन्होंने प्रयाण किया, विजया दशमीका पूजनकर अनेक दान दिये ॥ ६० ॥ सुग्रीवकी सेनासे युक्त अनुज सहित रामचन्द्र परम शक्तिसे प्रेरित हो पूर्ण कामनासे सागरके समीप जाय पुल बांधकर पार हो अमरशत्रु अर्थात् देवशत्रु रावणको मारकर कीर्तिमान् एहु ॥६१॥ जो मनुष्य

भविष्यंति नरव्याघ्र मच्छक्तिसंयुता ह्यमी ॥ शेषांशोऽप्यनुजस्तेऽयं रावणात्मजनाशकः ॥ ५६ ॥ भविष्यति न संदेहः कर्तव्योऽत्र त्वयाऽनघ ॥ वसंते सेवनं कार्यं त्वया तत्रातिश्रद्धया ॥ ५७ ॥ हत्वाऽथ रावणं पापं कुरु राज्यं यथासुखम् ॥ एकादश सहस्राणि वर्षाणि पृथिवीतले ॥ ५८ ॥ कृत्वा राज्यं रघुश्रेष्ठ गंतासि त्रिदिवं पुनः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधे देवी रामस्तु प्रीतमानसः ॥ ५९ ॥ समाप्य तद्व्रतं चक्रे प्रयाणं दशमीदिने ॥ विजयापूजनं कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥ ६० ॥ कपिपतिबलयुक्तः सानुजः श्रीपतिश्च प्रकट परम शक्त्याप्रेरितः पूर्णकामः ॥ उदधितटगतोऽसौ सेतुंबंधं विधायात्यहनदमरशत्रुं रावणं गीतकीर्तिः ॥ ६१ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या देव्याश्चरित मुत्तमम् ॥ स भुक्त्वा विपुलान्भोगान्प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ६२ ॥ संत्यन्यानि पुराणानि विस्तराणि बहूनि च ॥ श्रीमद्भागवतस्यास्य न तुल्यानीति मे मतिः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीय स्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ इति तृतीयस्कंधः सम्पूर्णः ॥

देव्या भागवतस्यास्य तृतीयस्कंधविस्तरम् ॥ सार्धैः षडब्धिशैलेंदु (१७४६) पद्यैर्व्यासो व्यरीरचत् ॥

शक्तिसे देवका चरित्र सुनते हैं वे अनेक भोग भोगकर परम पदको प्राप्त होते हैं ॥६२॥ दूसरे पुराण भी बड़े विस्तार युक्त हैं परन्तु वे इस भागवतके समान नहीं ऐसी मेरी मति है ॥६३॥ इति श्रीशिवकुलोत्पन्न महामहिम कान्यकुब्ज पण्डित सुखानन्द मिश्रात्मज पण्डितज्वालाप्रसाद मिश्रकृते देवीभागवतव्याख्याने तृतीयस्कन्धे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥ श्रीरस्तु । इस तृतीयस्कन्धमें व्यासजीने ॥१७४६॥ श्लोक रचे हैं जो अतिश्रेष्ठ हैं ॥ दोहा--जगतजननिके पदक मल, प्रेम सहित मन लाय । एहि तृतीय स्कन्धकी, भाषा लिखी बनाय ॥ १ ॥ वसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद । तहाँ भजन अम्बा करत, द्विज ज्वालापरसाद ॥ २ ॥ शुभमस्तु ।

इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते तृतीयस्कन्धः समाप्तः

अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते चतुर्थस्कन्धः प्रारभ्यते

दो०--जेहि उन्मेषनिमेषते, प्रलय जगत पुनिहोय । भुवनेशानी सच्चिदा, नंदरूपिणीजोय ॥ १ ॥

ताके युगपदकमलको, वंदौं वारंवार । नेक ध्यानके कियेते, छुटत, बंधसंसार ॥ २ ॥

जनमेजय बोले हे सर्वज्ञाननिधे! हे प्रभो! हे विमलात्मन्! हे मुनिवर! व्यासदेव आप सदाही मेरे कुलकी मंगलकामना करते हैं, मैं, आपसे कई प्रश्न पूछनेकी इच्छा करता हूं ॥१॥ हे मुनिवर! मैंने पूर्वमें सुना है कि, स्वयं भगवान् हरि जिनके पुत्रभावको प्राप्त हुए थे, वे प्रतापवान् ॥ २ ॥ आनकदुन्दुभि देवतागणोंकेभी पूजनीय श्रीमान् शूरसेनके पुत्र वसुदेव सदा धर्ममें निरत रहकरभी कंसके कारागारमें बन्दी हुए थे इसका क्या कारण है? ॥३॥ देवकी भार्याके सहित उन्होंने क्या अपराध किया था? किसलिये ययातिकुलनन्दन कंसराजाने देवकीके छे बाल पुत्रोंका विनाश किया था? ॥४॥ किसलिये भगवान् हरिने वसुदेवजीके पुत्र

श्रीगणेशाय नमः ॥ जनमेजय उवाच ॥ वासवेय मुनिश्रेष्ठ सर्वज्ञाननिधेऽनघ ॥ प्रष्टुमिच्छाम्यहं स्वामिन्नस्माकं कुलवर्धन ॥ १ ॥ सूरसेनसुतः श्रीमान्वसुदेवः प्रतापवान् ॥ श्रुतं मया हरिर्यस्य पुत्रभावमवाप्तवान् ॥ २ ॥ देवानामपि पूज्योऽभून्नाम्ना चाऽऽनक दुंदुभिः ॥ कारागारे कथं बद्धः कंसस्य धर्मतत्परः ॥ ३ ॥ देवक्या भार्यया सार्धं किमागः कृतवानसौ ॥ देवक्या बालषट्कस्य विनाशश्च कृतः पुनः ॥ ४ ॥ तेन कंसेन कस्माद्वै ययातिकुलजेन च ॥ कारागारे कथं जन्म वासुदेवस्य वै हरेः ॥ ५ ॥ गोकुले च कथं नीतो भगवान्सात्वतां पतिः ॥ गतो जन्मांतरं कस्मात्पितरौ निगडे स्थितौ ॥ ६ ॥ देवकीवसुदेवौ च कृष्णस्यामिततेजसः ॥ कथं न मोचितौ वृद्धो पितरौ हरिणाऽमुना ॥ ७ ॥ जगत्कर्तुं समर्थेन स्थितेन जनकोदरे ॥ प्राक्तनं किं तयोः कर्म दुर्विज्ञेय महात्मभिः ॥ ८ ॥

होकर कारागारमें जन्म ग्रहण किया था? ॥५॥ किसलिये सात्वतकुलपति भगवान् वसुदेव गोकुलमें लाये गये थे? क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर किसकारण वे लोकमें गोपालकुलज कहकर विख्यात हुए थे ॥ ६ ॥ अपरिमिततेजसम्पन्न श्रीकृष्णके मातापिता वसुदेव और देवकीको किस कारण बेड़ियें पहिराई गई थीं? जो जगत्की सृष्टि स्थिति और प्रलय करनेमें समर्थ हैं उन अपरिमित प्रभाव भगवान् हरिने जननीके जठरमें अवस्थित होकर भी किस कारण निगढ़बद्ध पितामाताको तत्काल कारागारसे नहीं छुड़ाया ॥ ७ ॥ वे जो महात्मागणोंके पक्षमेंभी दुर्जय अपने अपने प्राक्तनकर्मके फलसे कारावंधनको प्राप्त हुए थे, यह नहीं कह सकते ॥ ८ ॥

दे. भा. ॥ २ ॥

क्योंकि परमपुरुष श्रीकृष्णने जिस स्थानमें जन्म ग्रहण किया था. उस स्थानमें क्या फिर प्राक्तनकर्मका फलभोग हो सकता है ? और वसुदेवके औरस एवं देवकीके गर्भसे उत्पन्न होकर अन्तमें जो कंसके हाथसे बालक मारे गये वे पूर्व जन्ममें कौनथे ? ॥ ९ ॥ जो कन्या कंसके हाथसे शिलापर पटकी जाकर तत्काल अष्टभुजा होकर आकाश मार्गमें चलीगई थी, वह कौन थी ? हे विमलात्मन् ! जिन्होंने अनेकों स्त्रियोंका पाणिग्रहण किया था उन श्री हरिने किस प्रकारका गृहस्थधर्मका आचरण किया ॥ १० ॥ और उन्होंने उस जन्ममें जो जो कर्म करके जिसप्रकार देह त्याग किया, वह सब विषय मुझसे वर्णन कीजिये । मैंने किंवदन्तीसे जो जो सुना है, वह सब मेरे मनको मोहित किये डालता है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! उसमें सुना है, कि वासुदेवके चरित्र कभी ईश्वरके समान और कभी सामान्य जीवके समान हैं अतएव वे ईश्वर हैं अथवा सामान्य मनुष्य हैं इस प्रकार संशयविजृम्भित मोहमें मेरा मन व्याकुल होगया है, आप

जन्म वै वासुदेवस्य यत्राऽऽसीत्परमात्मनः ॥ के ते पुत्राश्च का बाला या कंसेन विपोथिता ॥ ९ ॥ शिलायां निर्गता व्योम्नि जाता त्वष्टभुजापुनः ॥ गार्हस्थ्यं च हरे ब्रूहि बाहुभार्यस्य चानघ ॥ १० ॥ कार्याणि तत्र तान्येव देहत्यागं च तस्य वै ॥ किंवदंत्या श्रुतं यत्तन्मनो मोहयतीव मे ॥ ११ ॥ चरितं वासुदेवस्य त्वमाख्याहि यथातथम् ॥ नरनारायणौ देवौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥ १२ ॥ धर्मपुत्रौ महात्मानौतपश्चेरतुरुत्तमम् ॥ यौ मुनी बहु वर्षाणि पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥ १३ ॥ निराहारौ जितात्मानौ निःस्पृहौ जितषड्गुणौ ॥ विष्णोरंशौ जगत्स्थेम्ने तपश्चेरतुरुत्तमम् ॥ १४ ॥ तयोरंशावतारौ हि जिष्णुकृष्णौ महाबलौ ॥ प्रसिद्धौ मुनिभिः प्रोक्तौ सर्वज्ञैर्नारदादिभिः ॥ १५ ॥ विद्यमान शरीरौ तौ कथं देहांतरंगतौ ॥ नरनारायणौ देवौ पुनःकृष्णार्जुनौ कथम् ॥ १६ ॥

भगवान् वासुदेवके चरित्र यथार्थ रीतिसे वर्णन करके मेरा यह मोह दूर कीजिये ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! पूर्व कालमें धर्मपुत्र महात्मा पुरातन मुनि ऋषिश्रेष्ठ नर नारायण नामक दो देवताओंने पवित्र बद्रिकाश्रममें अनेकों वर्षतकअति उत्तम तपस्या की थी ॥ १३ ॥ ये दोनों मुनि विष्णुके अंश थे, इन्होंने जगत्का कल्याण साधनेके लिये निःस्पृह जितेन्द्रिय और निराहार हो, काम क्रोधादिशत्रुओंको परास्त कर अति उत्तम तपस्या की थी ॥ १४ ॥ सर्वज्ञान युक्त नारदादि मुनिगण कहते हैं कि सुप्रसिद्ध महाबल अर्जुन और कृष्ण पूर्वोक्त पुरातन दोनों मुनियोंके अंशावतार थे ॥ १५ ॥ वह नर नारायण दोनों देवता पूर्वके विद्यमान रहते भी किस प्रकार देहांतर ग्रहणपूर्वक कृष्णार्जुन होकर उत्पन्न हुए थे ॥ १६ ॥

और जिन दोनों मुनीन्द्रोंने मुक्तिके लिये उग्र तपस्या करके योगसिद्धि लाभ की थी उन्होंने किस प्रकार देह धारण किया था? ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन्! मैंने सुना है, स्वधर्मनिरत शूद्र देहांतमें वैश्य होकर जन्म ग्रहण करता है. इसी प्रकार वैश्य सदाचारनिष्ठ होनेसे क्षत्रियकुलमें जन्म लेता है और सदाचार संपन्न क्षत्रिय देह त्यागकर ब्राह्मणके कुलमें जन्म ग्रहण करता है ॥ १८ ॥ और ब्राह्मण यदि निस्पृह और शान्ति यथावलम्बी हो तो संसारकी यंत्रणासे छूट जाता है. हे भगवन्! वे नर नारायण तपस्याद्वारा शरीर सुखाकरभी जो क्षत्रिय हुए थे यह विषय मुझे नियमके विरुद्ध बोध होता है ॥ १९ ॥ जो उन्होंने योगी होकर भी किस कर्मके द्वारा पुनर्वार जन्म ग्रहण कियाथा? अथवा वे ब्राह्मण हो शापवशतःही क्षत्रिय होकर उत्पन्न हुए थे ॥ २० ॥ जो

यौ चक्रतुस्तपश्चोग्रंमुक्त्यर्थं मुनिसत्तमौ ॥ तौ कथं प्रापतुर्देहौ प्राप्तयोगौ महातपौ ॥ १७ ॥ शूद्रः स्वधर्मनिष्ठस्तु देहान्ते क्षत्रियस्तु सः ॥ शुभाचारौ मृतोयौ वै स शूद्रो ब्राह्मणो भवेत् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणो निःस्पृहः शांतोभवरोगाद्विमुच्यते ॥ विपरीतमिदं भाति नरनारायणौ च तौ ॥ १९ ॥ तपसा शोषितात्मानौ क्षत्रियौ तौ बभूवतुः ॥ केन तौ कर्मणाशांतौ जातौ शापेन वा पुनः ॥ २० ॥ ब्राह्मणौ क्षत्रियौ जातौ कारणं तन्मुने वद ॥ यादवानां विनाशश्च ब्रह्मशापादिति श्रुतः ॥ २१ ॥ कृष्णस्याऽपि हि गांधार्याः शापेनैव कुलक्षयः ॥ प्रद्युम्नहरणं चैव शंबरेण कथं कृतम् ॥ २२ ॥ वर्तमाने वासुदेवे देवदेवे जनार्दने ॥ पुत्रस्य सूतिकागेहाद्धरणं चातिदुर्घटम् ॥ २३ ॥ द्वारकादुर्गमध्याद्वै हरिवेश्मादू दुरत्ययात् ॥ नज्ञातं वासुदेवेन तत्कथं दिव्यचक्षुषा ॥ २४ ॥ संदेहोऽयं महाब्रह्मन्निःसंदेहं कुरु प्रभो ॥ यत्पत्न्योवासुदेवस्य दस्युभिर्लुंठिता हृताः ॥ २५ ॥

हो हे मुने! आप मेरे निकट इसका कारण कहकर संशय दूर कीजिये. मैंने सुना है कि ब्रह्मशापसे यदुकुलध्वंस हुआ ॥ २१ ॥ और श्रीकृष्ण ईश्वरावतार होकर भी गान्धारीके शापसे उनका कुलक्षय हुआ था! असुरराज शम्बरने किस लिये प्रद्युम्नको हरण किया था? ॥ २२ ॥ देवदेव वासुदेव जनार्दनके विद्यमान रहते भी सूतिकागृहसे पुत्रका हरण अत्यन्त दुर्घट बोध होता है ॥ २३ ॥ शम्बरासुर दुरतिक्रम्य द्वारका मध्यस्थित हरिके गृहसे प्रद्युम्नको जब हरण करके लेगया तब वासुदेव दिव्यचक्षुद्वारा क्यों नहीं देखसके? ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन्! वासुदेवके देहत्याग करनेपर दस्युगणोंने जो उनकी पत्नीको लूट लिया था, इस विषयमें मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है ॥ २५ ॥

हे मुनिसत्तम ! देवदेव वासुदेवके स्वर्गगमन करतेही उक्त व्यापार क्यों संघटित हुआ ? हे ब्रह्मन् ! इसके अतिरिक्त मुझे और एक बडा संशय है. जो मनमें उदय होकर चित्तको चंचल करता है ॥२६॥ हे साधो ! श्रीकृष्ण विष्णुके अंशसे उत्पन्न हैं. मुनिगण भी कहते हैं कि भूभार हरण करनेके लिये भगवान् हरि पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए थे, उन्हीं श्रीकृष्णने जरासन्धके भयसे मथुराका राज्य परित्याग करके ॥२७॥ सैन्य और सुहृद्गणोंके सहित द्वारका नगरीमें गमन किया था इस विषयमें मुझको आश्चर्य ही बोध होता है और देखो यदि अमेयात्मा वासुदेव पृथ्वीका भारहरण ॥ २८ ॥ पापात्मा गणोंका विनाश और धर्म स्थापनके लिये अवतीर्ण हुए थे, तो जिन दुष्ट तस्करोंने उनकी पत्नियोंका लुंठन कर लिया था, उनका पहिले उन्होंने विनाश क्यों नहीं किया ? ॥ २९ ॥

स्वर्गते देवदेवे तु तत्कथं मुनिसत्तम ॥ संशयो जायते ब्रह्मंश्चित्तादोलनकारकः ॥ २६ ॥ विष्णोरंशः समद्भूतः शौरिर्भूभारहारकृत् ॥ स कथं मथुराराज्यं भयात्त्यक्त्वा जनार्दनः ॥ २७ ॥ द्वारवत्यां गतः साधो ससैन्यः ससुहृद्गणः॥अवतारो हरेः प्रोक्तो भूभारहरणाय वै ॥ २८ ॥ पापात्मनां विनाशाय धर्मसंस्थापनायच ॥ तत्कथं वासुदेवेन चौरास्तेन निपातिताः ॥ २९ ॥ यैर्हृता वासुदेवस्य पत्न्यः सलुंठिताश्च ताः ॥ स्तेनास्ते किं न विज्ञाताः सर्वज्ञेन सता पुनः ॥ ३० ॥ भीष्मद्रोणवधः कामं भूभारहरणे मतः ॥ अविताश्च महात्मानः पांडवा धर्मतत्पराः ॥ ३१ ॥ कृष्ण भक्ताः सदाचारा युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ते कृत्वा राजसूयं च यज्ञराजं विधानतः ॥ ३२ ॥ दक्षिणा विविधा दत्त्वा ब्राह्मणेभ्योऽतिभावतः ॥ पांडुपुत्रस्तु देवांशा वासुदेवाश्रिता मुने ॥ ३३ ॥ घोरं दुःखं कथं प्राप्ताः क्व गतं सुकृतं च तत् ॥ किं तत्पापं महारौद्रं येन ते पीडिताः सदा ॥ ३४ ॥

वे सर्वज्ञ होकर भी क्या उन चोरोंको नहीं जानते थे ॥३०॥ यद्यपि उन्होंने धर्मनिरत महात्मा पांडवगणोंकी रक्षा की थी किन्तु अतिमहात्मा धर्मपरायण भीष्म द्रोणादिको भूभार विचारकर किस प्रकार उनका वधसाधन किया था ? इस विषयमें मुझको महान् संशय उत्पन्न रहता है ॥३१॥ युधिष्ठिर इत्यादि पांडुपुत्रगण सदाचार देवांशसंभूत कृष्णभक्त थे उन्होंने भक्तिभावसे विधिपूर्वक राजसूय महायज्ञ सम्पादन करके ॥३२॥ ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी दक्षिणा प्रदान पूर्वक वासुदेवके आश्रित हुए थे ॥ ३३ ॥ तथापि हे मुने ! उन्होंने किसप्रकार घोरतर दुःख पाया था ? उनकी पुण्यराशि कहां हरण होगई थी ? हे मुनिवर उन्होंने ऐसा क्या घोर पाप किया था. जिससे उनको सदाही क्लेश भोगना पड़ा था ? ॥ ३४ ॥

महाभागा द्रौपदी वेदीके मध्यसे उत्पन्न हुई थी. वह लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न साध्वी और कृष्णभक्तियुक्त थी ॥३५॥ वह किस लिये वारंवार अतुलनीय घोरतर दुःखको प्राप्त हुई थी ? हाय ! द्रौपदी दुःशासनके केशाकर्षण करनेसे अत्यंत पीडित ॥ ३६ ॥ एवं रजस्वला एकवस्त्रा और भीत होनेपर भी उस दुष्ट दुःशासन द्वारा राजसभामें लाई गयी थी, वह विराट नगरके मत्स्यराजाकी दासी ॥ ३७ ॥ और कुररीके समान रोदन करनेपर भी कीचकद्वारा धर्षिता और अपमानिता हुई ? हाय ! उस द्रौपदीके अत्यन्त दुःखित होकर क्रंदन करने पर भी वह जयद्रथके द्वाराहरी जाकर ॥३८॥ अन्तमें बलवान् महात्मा पांडवगणोंसे छुडाई गई थी; हे मुनिवर ! पूर्वजन्ममें उन पांडवगणोंने ऐसा क्या पाप किया था, जिसके द्वारा उनको इस प्रकारके घोरतर महाक्लेशमें पड़ना हुआ था ?

द्रौपदी च महाभागा वेदी मध्यात्समुत्थिता ॥ रमांशजा च साध्वी च कृष्णभक्तियुता तथा ॥ ३५ ॥ सा कथं दुःखमतुलं प्रापघोरं पुनः पुनः ॥ दुःशासनेन सा केशे गृहीता पीडिता भृशम् ॥ ३६ ॥ रजस्वला सभायां तु नीता भीतैकवाससा ॥ विराटनगरे दासी जाता मत्स्यस्य सा पुनः ॥ ३७ ॥ धर्षिता कीचकेनाथ रुदती कुररी यथा ॥ हृता जयद्रथेनाथ क्रंदमानाऽतिदुःखिता ॥ ३८ ॥ मोचिता पांडवैः पश्चाद्बलवद्भिर्महात्मभिः ॥ पूर्वजन्मकृतं पापं किं तद्येन च पीडिताः ॥ ३९ ॥ दुःखान्यानेकान्याप्तास्ते कथयाद्य महामते ॥ राजसूयं क्रतुवरं कृत्वा ते मम पूर्वजाः ॥ ४० ॥ दुःखं महत्तरं प्राप्ताः पूर्वजन्मकृतेन वै ॥ देवांशानांकथं तेषां संशयोऽयं महान्हि मे ॥ ४१ ॥ सदाचारैस्तु कौंतेयैर्भीष्म द्रोणादयो हताः ॥ छलेन धनलोभार्थं जानानैर्नश्वरं जगत् ॥ ४२ ॥ प्रेरिता वासुदेवेन पापे घोरे महात्मना ॥ कुलं क्षयितवंतस्ते हरिणा परमात्मना ॥ ४३ ॥

॥ ३९ ॥ हे महामते ! मेरे पूर्वपुरुषगणोंने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करके भी किस कारण इस प्रकार अनेकभांतिके दुःख भोग किये थे ? यह आप मेरे निकट वर्णन कीजिये ॥ ४० ॥ यदि कहो कि उन्होंने पूर्वजन्ममें किये कर्मके वश अत्यन्त महत् दुःख पाया था. यह संभव नहीं हो सकता, क्यों कि वे देवांश थे, अतएव उनको इस प्रकार दुःख भोग किस लिये उपस्थित हुआ था ? इस विषयमें मुझको महासंशय रहता है ॥४१॥ कुन्तीके पुत्रोंने सदाचार संपन्न होकर और इस जगत्को नाशमान जानकर भी धनके लोभसे किस कारण छलपूर्वक भीष्मद्रोणादिका वध किया था ॥ ४२ ॥ उन्होंने, परमात्मस्वरूप महात्मा वासुदेव हरिकर्तृक घोरतर पापकार्यमें प्रेरित होकर अपने कुलका क्षय किया था, इसका भी मुझे महाआश्चर्य है ॥ ४३ ॥

दे. भा. ॥ ४ ॥

हे साधो ! वरन् भिक्षाटन भी अच्छा, नीवार कणिकासे प्राण धारण भी अच्छा और शिल्पकर्मद्वारा जीवन यात्रा निर्वाह करना कभी अच्छा है, किन्तु लोभके वशीभूत हो अन्याय युद्धमें योधाओंका वध करना कभी कर्त्तव्य नहीं है ॥४४॥ हे मुनिसत्तम ? आपने ही अतुल पराक्रमी समस्त गोलक पुत्रोंको उत्पन्न करके इस विच्छिन्न वंशकी रक्षा की थी ॥ ४५ ॥ और उससे सत्कुलोत्पन्न उत्तरात्मज महानुभाव पिताने अकस्मात् किस कारण तपस्वी ब्राह्मणके गलेमें मरा हुआ सर्प डाला था ? इस विषयमें मुझको बड़ाही आश्चर्य है ॥ ४६ ॥ क्षत्रिय कुलोत्पन्न कोई व्यक्ति भी ब्राह्मणके प्रति द्वेश प्रकाश नहीं करता, पिताने क्या मौनव्रतधारी तापसके प्रति इस प्रकार आचरण किया था? आप क्या इस विषयको निश्चय करके कह सकते हैं ? ॥ ४७ ॥ हे मुनिवर ! इन सब और

वरं भिक्षाटनं साधोर्नीवारैर्जीवनं वरम् ॥ योधान्न हत्वा लोभेन शिल्पेन जीवनं वरम् ॥ ४४ ॥ विच्छिन्नस्तु त्वया वंशो रक्षितो मुनिसत्तमः ॥ समुत्पाद्य सुतानाशु गोलकाञ्छत्रुनाशनान् ॥ ४५ ॥ सोऽल्पेनैव तु कालेन विराटतनयासुतः ॥ तापसस्य गले सर्पं न्यस्तवान्कथमद्भुतम् ॥ ४६ ॥ नकोऽपि ब्राह्मणं द्वेष्टि क्षत्रियस्य कुलोद्भवः ॥ तापसं मौनसंयुक्तं पित्रा किं तत्कृतं मुने ॥ ४७ ॥ एतैरन्यैश्च संदेहैर्विकलं मे मनोऽधुना ॥ स्थिरं कुरु पितः साधो सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे जनमेजयप्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ एवं पृष्टः पुराणज्ञो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ परीक्षितसुतं शांतं ततो वै जनमेजयम् ॥ १ ॥ उवाच संशयच्छेतृ वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ व्यास उवाच ॥ राजन्किमेतद्वक्तव्यं कर्मणां गहनो गतिः ॥ २ ॥ दुर्ज्ञेया किल देवानां मानवानां च का कथा ॥ यदा समुत्थितं चैतद्ब्रह्माण्डं त्रिगुणात्मकम् ॥ ३ ॥

अन्याय अनेक संदेहजालोंमें मेरा मन जटित होकर इस समय अत्यन्ते विकल और व्याकुल होता है । हे दयानिधे हे साधो ? आप सर्वज्ञ है अत एव कृपा करके मेरे इस चंचल मनको स्थिर कीजिये ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूतजी बोले, अनन्तर सत्यवतीपुत्र पुराणविद् वाक्यविशारद व्यासदेव इसप्रकार पूँछे जानेपर परीक्षित् पुत्र शान्त चित्त जनमेजयसे ॥ १ ॥ संशय छेदन करनेवाले वचन कहने लगे--हे राजन् ! इस विषयमें और अधिक कहना क्या है ? आप जानते हैं कि इस संसारमें कर्मकी गति महजमें नहीं जानी जाती ॥ २ ॥ इसकी विचित्र गतिको देवता लोग भी जाननेमें समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्य गणोंके पक्षमें क्या कहूं ? जिस समय यह त्रिगुणात्मक जगत् उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

तब कर्मके द्वारा ही सबकी उत्पत्ति होती है इसमें सन्देह नहीं. कर्मरूपी बीजसे उत्पन्न हुए समस्त जीवोंका आदि और अंत नहीं है ॥ ४ ॥ वे इस कर्म बीज द्वारा ही अनेक प्रकारकी योनिमें वारंवार जन्म ग्रहण करते हैं और वारंवार मृत्युको प्राप्त होते हैं, क्यों कि कर्मोंका क्षय होनेसे जीवको कभी फिर देहके सहित संयुक्तहोना नहीं पड़ता है ॥ ५ ॥ जीवगणोंके कर्म शुभ, अशुभ और मिश्र हैं, दिनमें सात्विक कर्म शुभ, तामस कर्म अशुभ और राजसिक कर्म मिश्रित हैं. तत्वदर्शी पण्डित गणोंने जीव गणोंके कर्म ये तीन प्रकार कह कर निरूपण किये हैं ॥ ६ ॥ उक्त तीन प्रकारके कर्म फिर सञ्चित भविष्य और प्रारब्ध भेदसे तीन प्रकारमें विभक्त हैं यह तीन प्रकारके कर्म जीवके देहमें सदा विद्यमान रहते हैं ॥ ७ ॥ हे नृपते ! ब्रह्मादि समस्त ही इन कर्मोंके वशीभूत हैं और सुख, दुःख, बुढापा, मृत्यु हर्ष शोकादि ॥ ८ ॥ और काम, क्रोध और लोभादि देह गत समस्त गुण कर्म जनित अदृष्टके वशवर्ती होकर प्रादुर्भूत होते हैं ॥९॥

कर्मणैव समुत्पत्तिः सर्वेषां नात्र संशयः ॥ अनादिनिधना जीवाः कर्मबीजसमुद्भवाः ॥ ४ ॥ नानायोनिषु जायंते म्रियंते च पुनः पुनः ॥ कर्मणा रहितो देहसंयोगो न कदाचन ॥ ५ ॥ शुभाशुभैस्तथा मिश्रैः कर्मभिर्वेष्टितं त्विदम् ॥ विविधानि हितान्याहुर्बुधास्तत्त्वविदश्च ये ॥ ६ ॥ संचितानि भविष्याणि प्रारब्धानि तथा पुनः ॥ वर्तमानानि देहेऽस्मिंस्त्रैविध्यं कर्मणां किल ॥ ७ ॥ ब्रह्मादीनां च सर्वेषां तद्वशत्व नराधिप ॥ सुखदुःख जरामृत्युहर्षशोकादयस्तथा ॥ ८ ॥ कामक्रोधौ च लोभश्च सर्वे देहगता गुणाः ॥ दैवाधीनाश्च सर्वेषां प्रभवंति नराधिप ॥ ९ ॥ रागद्वेषादयो भावाः स्वर्गेऽपि प्रभवंति हि ॥ देवानां मानवानां च तिरश्चां च तथा पुनः ॥ १० ॥ विकाराः सर्व एवैते देहेन सह संगता ॥ पूर्ववैरानुयोगेन स्नेहयोगेन वै पुनः ॥ ११ ॥ उत्पत्तिः सर्वजंतूनां विना कर्म न विद्यते ॥ कर्मणा भ्रमते सूर्य शशांकः क्षयरोगवान् ॥ १२ ॥ कपाली च तथा रुद्रः कर्मणैव न संशयः ॥ अनादिनिधनं चैतत्कारणं कर्मसंभवे ॥ १३ ॥

अत एव रागद्वेषादि शारीरिक संपूर्ण धर्म समान भावसे प्रभुता करते हैं देवता मनुष्य और तिर्यग्जातिका ॥ १० ॥ पूर्व वैरानुयोगसे क्रोध ईर्षा द्वेषादि और स्नेह योगसे दया दाक्षिण्यादि समस्त प्रकारके विकार देहके सहित कर्म सूत्रमें बँध रहे हैं ॥ ११ ॥ हे राजन् ! कर्मके विना किसी जीवकी भी उत्पत्ति नहीं हो सकती कर्मके द्वारा ही सूर्यदेव आकाश मंडलमें भ्रमण करते हैं, कर्मकेही द्वारा चंद्रमा राजयक्ष्मा रोगसे ग्रसित हुए हैं ॥१२॥ और रुद्र देवने कर्म द्वारा ही कपाल माला धारण की है । अत एव इस कर्मका अदि भी नहीं और मोक्षके पूर्व क्षण पर्यन्त विनाश भी नहीं है. इस कर्मकोही जगत्की उत्पत्तिके विषयमें एक मात्र कारण जानना चाहिये ॥ १३ ॥

दे. भा.
॥ ५ ॥

इसी कारण स्थावर जंगमात्मक यह सब जगत् नित्य है, किन्तु मुनिगण इसके नित्यानित्य विचारमें सर्वदा निमग्न रहते हैं ॥ १४ ॥ यह जगत् नित्य है, वा अनित्य. यह वे भली भांति नहीं जान सकते. जहां माया विद्यमान है वहां जगत् नित्य प्रतीत होता है ॥ १५ ॥ क्योंकि जहां कारण सर्वतो भावसे वर्त्तमान है वहां कार्यभाव किस प्रकार कह सकते हैं ? माया नित्य और सर्वदा ही सबके कारण रूपमें विद्यमान रहती है ॥१६॥ अत एव हे राजन् ! पण्डित गण कर्मबीजको नित्य कह कर विवेचना करते हैं हे नृप ! यह संपूर्ण जगत् कर्म द्वारा नियन्त्रित निबद्ध होकर सदाही परिवर्तित होता है ॥१७॥ हे राजेंद्र ! अमित तेज विष्णुकी इच्छासे नाना विध धर्ममय अनेक प्रकारकी योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है. हे नृपते ! यदि अमित पराक्रमशाली विष्णुका जन्म इच्छा मात्रसे ही होता है ॥ १८ ॥ तो उन्होंने किस निमित्त अधर्ममय अनेक योनियोंमें जन्म ग्रहण किया है ? किस निमित्त भगवान् विष्णुने युग युगमें अनेकानेक

तेनेह शाश्वतं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ नित्यानित्यविचारेऽत्र निमग्ना मुनयः सदा ॥ १४ ॥ न जानंति किमेतद्वै नित्यं वाऽनित्यमेव च ॥ मायायां विद्यमानायां जगन्नित्यं प्रतीयते ॥ १५ ॥ कार्याभावः कथं वाच्यः कारणे सति सर्वथा ॥ माया नित्या कारणं च सर्वेषां सर्वदा किल ॥ १६ ॥ कर्मबीजं ततोऽनित्यं चिंतनीयं सदा बुधैः ॥ भ्रमत्येव जगत्सर्वं राजन्कर्मनियंत्रितम् ॥ १७ ॥ नानायोनिषु राजेंद्र नानाधर्ममयेषु च॥इच्छया च भवेज्जन्म विष्णोरमिततेजसः ॥ ॥ १८ ॥ युगेयुगेष्वनेकासु नीचयोनिषु तत्कथम् ॥ त्यक्त्वा वैकुंठ संवासं सुखभोगाननेकशः ॥ १९ ॥ विण्मूत्रमंदिरे वासं संत्रस्तः कोऽभिवांछति ॥ पुष्पावचयलीला च जलकेलिः सुखासनम् ॥ २० ॥ त्यक्त्वा गर्भगृहे वासं कोऽभिवांछित बुद्धिमान् ॥ तूलिकां मृदुसंयुक्तां दिव्यां शय्यां विनिर्मिताम् ॥ २१ ॥ त्यक्त्वाऽधोमुखवासं च कोऽभिवांछति पंडितः ॥ गीतं नृत्यं च वाद्यं च नानाभावसमन्वितम् ॥ ॥ २२ ॥ मुक्त्वा को नरके वासं मनसाऽपि विचिंतयेत् ॥ सिंधुजाद्भुतभावानां रसं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम् ॥ २३ ॥

नीच योनिमें जन्म ग्रहण किया है ? कौन स्वतंत्र पुरुष वैकुंठ वास और अनेक प्रकारके सुख भोग छोड़कर ॥ १९ ॥ विष्ठामूत्रपरि पूरित मंदिरमें वास करनेकी इच्छा करता है ? कौन बुद्धिमान् फूल तोडनेकी लीला विलास जलकेलि और सुखासन छोड़कर ॥२०॥ गर्भगृहमें वास करनेकी अभिलाषा करेगा ? रुई पूर्ण कोमल मनोरम दिव्य शय्या छोड़कर कौन बुद्धिमान् ॥ २१ ॥ अधोमुखसे गर्भ वास करनेका अभिलाषी होगा ? हे नरेन्द्र ! अनेक प्रकार हावभाव परिपूर्ण नृत्य गीत और वाद्य (बाजा) ॥२२॥ परित्याग पूर्वक कौन नरकमें वास करनेकी मनमें भी चिन्ता कर सकता है ? हे राजेन्द्र !लक्ष्मीके अनुपम मनोरम अद्भुत दुस्त्यज अद्भुत भावको त्यागकर ॥ २३ ॥

विष्ठामूत्रका रसपान करनेमें किस बुद्धिमान् की प्रवृत्ति उत्पन्न हो सकती है ? हे जनमेजय ! इन तीनों भुवनोंमें गर्भ वासके समान अन्य नरक कुछ नहीं है ॥ २४ ॥ इसकेही भयसे भीत होकर मुनिगण कठिन तपस्या करते हैं मुनिगण जिसके भयसे भीत हो राज्य और विषय भोगको त्यागकर वनमें चले जाते हैं ॥२५॥ फिर ऐसा मूढ कौन है. जो उसी नरककी सेवा करनेके लिये इच्छापूर्वक कामना करेगा ? देखो गर्भवासके समय कृमिगण दंशन करते हैं और जठराग्नि अधोभागमें ताप देती है ॥ २६ ॥ उसमें फिर गर्भवेष्टन मांस द्वारा सदाही निर्दयरूपमें बँधकर रहना होता है. हे राजेन्द्र ! उसमें कुछभी तो सुख दिखाई नहीं देता यद्यपि कारागृहमें वास और बेडियोंमें बँधा रहना भी अच्छा है ॥ २७ ॥ किन्तु अल्पक्षणमात्रभी गर्भ वास शुभकर नहीं है, प्रथमतो दशमास गर्भवासमें ॥ २८ ॥ और फिर दारुण योनियन्त्रद्वारा निकलनेके समयभी जीवको महादुःख अनुभव करनापड़ता है. बाल्यावस्थामें वचन कहनेका अभाव और अज्ञानताके

विण्मूत्ररसपानं च क इच्छेन्मतिमान्नरः ॥ गर्भवासात्परो नास्ति नरको भुवनत्रये ॥ २४ ॥ तद्भीताश्च प्रकुर्वंति मुनयो दुस्तरं तपः ॥ हित्वा भोगं च राज्यं च वने यांतिमनस्विनः ॥ २५ ॥ यद्भीता स्तु विमूढात्मा कस्तं सेवितुमिच्छति ॥ गर्भे तुदंति कृमयो जठराग्निस्तपत्यधः ॥ २६ ॥ वपासंवेष्टनं क्रूरं किं सुखं तत्र भूपते ॥ वरं कारागृहे वासो बन्धनं निगडैर्वरम् ॥ २७ ॥ अल्पमात्रं क्षणं नैव गर्भवासः क्वचिच्छुभः ॥ गर्भवासेमहद्दुःखं दशमासनिवासनम् ॥ २८ ॥ तथा निःसरणे दुःखं योनियंत्रेऽतिदारुणे ॥ बालभावे तदा दुःखं मूकाज्ञभावसंयुतम् ॥ २९ ॥ क्षुत्तृडावेदनाशक्तः परतंत्रोऽतिकातरः ॥ क्षुधिते रुदिते बाले माता चिंतातुरा तदा ॥ ३० ॥ भैषजं पातु मिच्छंती ज्ञात्वा व्याधिव्यथां दृढाम् ॥ नानाविधानि दुःखानि बालभावे भवंति वै ॥ ३१ ॥ किं सुखं विबुधा दृष्ट्वा जन्म वांछंति चेच्छया ॥ संग्रामममरैः सार्धं सुखं त्यक्त्वा निरंतरम् ॥३२॥ कर्तुमिच्छेच्च को मूढः श्रमदं सुखनाशनम् ॥ सर्वथैव नृपश्रेष्ठसर्वे ब्रह्मादयः सुराः ॥३३॥

कारण ॥ २९ ॥ भूख प्यासके जतानेमें असमर्थ होताहै, सुतरांपराधीन और अतिशय कातर होकर जीव दुःखपाते हैं फिर जब बालक भूखा होकर रोता है; उसको सुनकर माताभी चिन्तातुर होती है ॥३०॥ तब वह बालकके रोगकी यातना अधिकतर जानकर औषधि पान करानेकी इच्छा करती है, इसीप्रकार बाल्यावस्थामेंभी अनेक प्रकारके दुःख उपस्थित होते हैं ॥ ३१ ॥ अत एव देवगण क्या सुख देखकर इस घोरतर दुःख संकुल संसारमें अपनी इच्छानुसार जन्म ग्रहण करनेकी इच्छा करेंगे ? हे नृप ! निरंतर संतोष सुख परित्यागकरके कौन मूढ देवताओंके संग श्रमदायक और सुखनाशक संग्राममें करनेकी इच्छा करेगा ? हे नृपेन्द्र ! ब्रह्मादि देवतागण सभी ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥

कृतकर्मका विपाक हेतु सर्वतोभावमें सुख दुःख भोग करते हैं. हे नृपोत्तम! क्या देवता क्या मनुष्य क्या तिर्यग्जाति जो कोई देह धारी मात्र क्यों नहीं, सब कोई अपने अपने किये कर्मका शुभाशुभ फल अवश्य भोगना होगा. इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥ ३४ ॥ हे पार्थिव ! मनुष्य तपस्या दान और यज्ञ द्वारा इन्द्रत्वको प्राप्त होसकता है. किन्तु पुण्य क्षीण होनेपर इन्द्रभी अपने स्थानसे पतित होता है ॥ ३५ ॥ देखो रामावतारके समय देवताओंने उनकी सहायता करनेके लिये वानर होकर और कृष्णअवतारमें गोप व यादव होकर जन्म ग्रहण किया था ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार युगयुगमें ब्रह्माजीके द्वारा प्रेरित होकर भगवान् विष्णु धर्मकी रक्षाके लिये पृथ्वीमंडलमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ३७ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार भगवान् हरि रथचक्रके समान परिवर्तित होकर अनेक योनियोंमें अनेक

कृतकर्मविपाकेन प्राप्नुवंति सुखासुखे ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ देहवद्भिर्नृभिर्देवैस्तिर्यग्भिश्च नृपोत्तम ॥ ३४ ॥
तपसा दानयज्ञैश्च मानवश्चेन्द्रतां व्रजेत् ॥ क्षीणे पुण्येऽथ शक्रोऽपि पतत्येव न सशयः ॥ ३५ ॥ रामावतारयोगेन देवा वानरतां गताः ॥
तथा कृष्णसहायार्थं देवा यादवतां गताः ॥ ३६ ॥ एवं युगे युगे विष्णुरवताराननेकशः ॥ करोतिधर्मरक्षार्थं ब्रह्मणा प्रेरितो भृशम्
॥ ३७ ॥ पुनःपुनर्हरेरेवं नानायोनिषुपार्थिव ॥ अवतारा भवंत्यन्ये रथ चक्रवदद्भुताः ॥ ३८ ॥ दैत्यानां हननं कर्म कर्तव्यं हरिणा स्वयम् ॥
अंशांशेन पृथिव्यां वै कृत्वा जन्म महात्मना ॥ ३९ ॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि कृष्णजन्मकथां शुभाम् ॥ स एव भगवान्विष्णुरवतीर्णो यदोः
कुले ॥ ४० ॥ कश्यपस्य मुनेरंशो वसुदेवः प्रतापवान् ॥ गोवृत्तिरभवद्राजन्पूर्वशापानुभावतः ॥ ४१ ॥ कश्यपस्य च द्वे पत्न्यौ शापादत्र
महीतले ॥ अदितिः सुरसा चैवमासतुः पृथिवीपते ॥ ४२ ॥ देवकी रोहिणी चोभे भगिन्यौ भरतर्षभ ॥ वरुणेन महाञ्छापो दत्तः
कोपादिति श्रुतम् ॥ ४३ ॥

बार अद्भुतरूपसे वारंवार अवतीर्ण हुए थे ॥ ३८ ॥ अमेयात्मा हरि स्वयं अंशांशसे पृथ्वीमें अवतीर्ण होकर दैत्य संहाररूप कर्तव्य कर्म संपादन करते हैं ॥ ३९ ॥ अत एव तुमसे वह कल्याण दायक कृष्ण कथाही कहूँगा वह भगवान् विष्णुही यदुकुलमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ४० ॥ हे राजन् ! कश्यप मुनिके अंशसे उत्पन्न प्रभाव संपन्न वसुदेवजी पूर्व शापके कारण जन्म ग्रहणकर पशुपालन वृत्तिद्वारा जीविका निर्वाह करते थे ॥ ४१ ॥ हे नृपवर ! कश्यप ऋषिकी दोनों पत्नी अदिति और सुरसाने शापके वश ॥ ४२ ॥ देवकी और रोहिणी दो भगिनी रूपमें जन्म ग्रहण किया था. हे भरतवर्ष ! मैंने इस प्रकार सुना है कि जलाधिपति वरुणजीने किसी समय क्रोधमें भरकर उनको शाप दिया था ॥ ४३ ॥

जनमेजय बोले हे महामते ! महर्षि कश्यपजी क्या अपराध किया था जिसकेद्वारा उन्होंने भार्याके सहित पशुजीवी होकर जन्मग्रहणकिया था ॥ ४४ ॥ वैकुण्ठवासी अखंडितात्माविष्णुने किस निमित्त गोकुलमें जन्म ग्रहण किया था ? यह मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४५ ॥ जो भगवान् और नायण हैं जो सुरश्रेष्ठ और निग्रहानुग्रहमें समर्थ हैं जो सर्वाधार और अव्यय हैं उन सर्व युगादि वैकुण्ठवासी हृषीकेशने ॥ ४६ ॥ किस कारण अपना भवन परित्याग पूर्वक नर लोकमें जन्मग्रहण करके मानुषीकर्म किये थे ? इस विषयमें मुझको महान् संदेह रहता है ॥ ४७ ॥ उन्होंने मनुष्य देहधारण करके अनेक प्रकारकी विडम्बना भोग और अनेक प्रकारके दुष्ट भाव अनुभव किये थे ॥ ४८ ॥ क्यों कि मनुष्यजन्ममें कभी काम, क्रोध, अमर्ष, शोक और वैर कभी प्रीति ॥४९॥ कभी

राजोवाच ॥ किं कृतं कश्यपे नाऽऽगो येन शप्तो महानृषिः ॥ सभार्यः स कथं जातस्तद्वदस्व महामते ॥ ४४ ॥ कथं च भगवान्विष्णु स्तत्रजातोऽस्ति गोकुले ॥ वासी वैकुण्ठनिलयेरमापतिरखंडितः ॥ ॥ ४५ ॥ निदेशात्कस्य भगवान्वर्ततेप्रभुरव्ययः ॥ नारायणः सुरश्रेष्ठो युगादिः सर्वधारकः ॥ ४६ ॥ स कथं सदनंत्यक्त्वा कर्मवानिव मानुषे ॥ करोति जननं कस्मादत्र मे संशयो महान् ॥ ४७ ॥ प्राप्य मानुषदेहं तु करोति च विडंबनम् ॥ भावान्नानाविधांस्तत्र मानुषे दुष्टजन्मनि ॥ ४८ ॥ कामः क्रोधोऽमर्षशोकौ वैरं प्रीतिश्च कर्हिचित् ॥ सुखं दुःखं भयं नृणां दैन्यमार्जवमेव च ॥ ४९ ॥ दुष्कृतं सुकृतं चैव वचनं हननं तथा ॥ पोषणं चलनं तापो विमर्शश्च विकत्थनम् ॥ ५० ॥ लोभो दंभस्तथा मोहः कपटं शोचनं तथा ॥ एते चान्ये तथा भावा मानुष्ये संभवंति हि ॥ ५१ ॥ स कथं भगवान्विष्णु स्त्यक्त्वा सुखमनश्वरम् ॥ करोति मानुषं जन्म भावैरेतैरभिद्रुतम् ॥ ५२ ॥ किं सुखं मानुषं प्राप्य भुवि जन्म मुनीश्वर ॥ किंनिमित्तं हरिः साक्षाद्गर्भवासं करोति वै ॥ ५३ ॥ गर्भदुःखं जन्मदुःखं बालभावे तथा पुनः ॥ यौवने कामजं दुःखं गार्हस्थ्येऽतिमहत्तरम् ॥ ५४ ॥

सुख कभी दुःख कभी मानवता सुलभ दीनता, सुकृत, दुष्कृत, वचन और हनन पोषण और चलन, विमर्श (विचार) और श्लाघा ॥ ५० ॥ लोभ दम्भ और मोह (कपट) और शोच मनुष्योंमेंही यह सब और अन्यान्य अनेक प्रकरके भाव उत्पन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ अत एव उन भगवान् विष्णुने नित्य सुख परित्याग करके किस लिये इस सब दुष्टभावसे युक्त मनुष्य जन्मको ग्रहण किया था ? ॥ ५२ ॥ हे मुनिवर ! पृथ्वीतलपर मानुष जन्म ग्रहण करनेमें ऐसा क्या सुख है ? कि उन साक्षात् हरिने भी जिसके लिये गर्भवास स्वीकार किया था ॥ ५३ ॥ हे मुनीन्द्र ! जिस मनुष्यजन्ममें गर्भवासमें, उत्पत्तिकालमें, बालभाव और यौवनमें भी दुःख एवं गार्हस्थ्य आचरणमें तो दुःखकी सीमा नहीं है ॥ ५४ ॥

हे द्विजसत्तम ! तो फिर वे भगवान् विष्णु किस लिये वारंवार मनुष्य जन्में अवतीर्ण हुए थे ? ॥ ५५ ॥ देखो वेही ब्रह्मसंभव हरि रामावतारको प्राप्त होकर दारुण वनवासमें अत्यन्त महत् दुःखको प्राप्त हुए थे ॥५६॥ उन महात्माने जनकात्मजाके विरहजनित दुःख वारंवार संग्राम प्रियतमकान्ता (स्त्री) के वियोग इत्यादि महादुःखदायक समस्त विषय अनुभव किये थे ॥ ५७ ॥ इसी प्रकार कृष्णावतारके समय कारागृहमें जन्म ले गोकुलमें गमन और गौचारण ॥ ५८ ॥ कंसनाश, अतिकष्टसे द्वारकामें गमन इत्यादि अनेक प्रकारके संसार दुःख क्यों भोग किये थे ? ॥ ५९ ॥ हे भगवन् ! आप सभी जानते हैं अत एव कहिये कौन ज्ञानवान् मुक्त पुरुष दुःखलाभकी आकांक्षा करता है ? आप मेरे चित्तकी शान्तिके निमित्त यह महासंशय छेदन करके मुझपर दया प्रकाश कीजिये ॥६०॥

दुःखान्येतान्यवाप्नोति मानुषे द्विजसत्तम ॥ कथं स भगवान्विष्णुरवतारान्पुनः पुनः ॥ ५५ ॥ प्राप्य रामावतारं हि हरिणा ब्रह्मयोनिना ॥ दुःखं महत्तरं प्राप्तं वनवासेऽतिदारुणे ॥ ५६ ॥ सीताविरहजं दुःखं संग्रामश्च पुनः पुनः ॥ कांतात्यागोऽप्यनेनैवमनुभूतो महात्मना ॥ ५७ ॥ तथा कृष्णाऽवतारेऽपि जन्म रक्षागृहे पुनः॥गोकुलं गमनं चैव गवां चारणमित्युत ॥ ५८ ॥ कंसस्य हननं कृष्टाद्द्वारकागमनं पुनः ॥ नानासंसारदुःखानि भुक्तवान्भगवान्कथम् ॥ ५९ ॥ स्वेच्छया कः प्रतीक्षेत मुक्तो दुःखानि ज्ञानवान् ॥ संशयं छिंधि सर्वज्ञ मम चित्तप्रशांतये ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ कारणानि बहून्यत्राप्यवतारे हरेः किल ॥ सर्वेषां चैव देवानामंशावतरणेष्वपि ॥ १ ॥ वसुदेवावतारस्य कारणं शृणु तत्त्वतः ॥ देवक्याश्चैव रोहिण्या अवतारस्य कारणम् ॥ २ ॥ एकदा कश्यपः श्रीमान्यज्ञार्थं धेनुमाहरत् ॥ याचितोऽयं बहुविधं न ददौ धेनुमुत्तमाम् ॥ ३ ॥ वरुणस्तु ततो गत्वा ब्रह्माणं जगतः प्रभुम् ॥ प्रणम्योवाच दीनात्मा स्वदुःखं विनयान्वितः ॥ ४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ दोहा--एहि तृतीय अध्यायमें, शिवा शम्भु मन लाय । अदितिशापकी कथाको, वर्णत हैं मन लाय ॥ १ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! इन हरिके अवतार और सम्पूर्ण देवतागणोंके अंशावतारमें अनेक कारण दिखाई देते हैं ॥ १ ॥ इस समय आप वसुदेव देवकी और रोहिणीके अवतारका कारण भली भांति श्रवण कीजिये ॥ २ ॥ एक दिन श्रीमान् कश्यप ऋषि यज्ञके लिये वरुण देवकी कामधेनु हरण कर लाये. अनन्तर वरुणदेवके इस धेनुके लिये वारंवार प्रार्थना करनेपर भी उन्होंने इनको वह उत्तम धेनु नहीं दी ॥ ३ ॥ तब वरुणदेव अत्यन्त दुःखित हुए और जगत् प्रभु ब्रह्माजीके निकट जाय विनयसहित अपना दुःख निवेदन करके उन्होंने कहा ॥ ४ ॥

हे महाभाग ! महर्षि कश्यप इस समय प्रायः उन्मत्त हैं. उन्होंने किसी प्रकार भी मुझको धेनु नहीं दी, मैंने माताके विरहमें अत्यन्त दुःखित वत्सगणोंकी रोदनध्वनि सुनकर उनको यहकर कर शाप दिया है कि, तुम नरलोकमें गोपालहोकर जन्म ग्रहण करो और तुम्हारी दोनों भार्या अतिशय दुःखको प्राप्त होकर उसी स्थानमें जन्मलाभ करें ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! वत्सगणोंका वह कष्ट देख अत्यन्त क्रोधमें भर फिर अदितिसे कहा कि तुम पृथ्वीतलमें मृतवत्सा, कारावासिनी और अत्यन्त दुखकी भागिनी होगी ॥ ७ ॥ हे जनमेजय ! पद्मयोनि ब्रह्माजीने वरुणके यह वचन सुन कश्यपजीको बुलाकर कहा ॥ ८ ॥ हे महाभाग ! आपने किस लिये लोकपाल वरुणदेवकी धेनु हरण की है ? और किसलिये पुनर्वार वह धेनु न देकर अन्यायका किया ॥ ९ ॥

किं करोमि महाभाग मत्तोऽसौ न ददाति गाम् ॥ शापो मया विसृष्टोऽस्मै गोपालो भव मानुषे ॥ ५ ॥ भार्ये द्वे अपि तत्रैव भवेतां चातिदुःखिते ॥ यतो वत्सारुदंत्यत्रमातृहीनाः सुदुःखिताः ॥ ६ ॥ मृतवत्सा दितिस्तस्माद्भविष्यति धरातले ॥ कारागारनिवासा च तेनापि बहुदुःखिता ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य यादोनाथस्य पद्मभूः ॥ समाहूय मुनिं तत्र तमुवाच प्रजापतिः ॥ ८ ॥ कस्मात्त्वया महाभाग लोकपालस्यधेनवः ॥ हृताः पुनर्न दत्ताश्च किमन्यायं करोषि वै ॥ ९ ॥ जानन्न्यायं महाभाग परवित्तापहारणम् ॥ कृतवान्कथमन्यायं सर्वज्ञोऽसि महामते ॥ १० ॥ अहो लोभस्य महिमा महतोऽपि न मुंचति ॥ लोभं नरकदं नूनं पापाकरम संमतम् ॥ ११ ॥ कश्यपोऽपि न तं त्यक्तुंसमर्थ किं करोम्यहम् ॥ सर्वदैवाधिकस्तस्माल्लोभोवै कलितो मया ॥ १२ ॥ धन्यास्ते मुनयः शांता जितो यैर्लोभ एव च॥वैखानसैः शमपरैः प्रतिग्रह पराङ्मुखैः ॥ १३ ॥

हे भगवन् ! आप सर्वज्ञ और मतिमान् होकर एवं न्यायका मर्म जानकर भी परधन हरण करके किसलिये अन्याय कार्यमें प्रवृत्त हुए हैं ? ॥ १० ॥ अहो ! लोभकी क्या अपूर्व महिमा है ? महत् पुरुष भी लोभके हाथसे मुक्त होनेमें समर्थ नहीं होते. लोभ पापकी खानि है, वह सज्जन गणोंके असम्मत और निःसंदेह नरकप्रद होता है ॥ ११ ॥ कश्यप भी त्यागनेको समर्थ नहीं तो मैं अब क्या करूं ? इस समय मैंने सब प्रकार दैवसे भी लोभको अधिक प्रभाव युक्त जाना ॥ १२ ॥ जिन महर्षिगणोंने शान्ति परायण शान्तचित्त और प्रतिग्रहणसे पराङ्मुख और वैखानस वृत्ति अवलम्वन करके लोभको पराजित् किया है वेही धन्य हैं ॥ १३ ॥

संसारमें लोभ ही बलवान् शत्रु है, लोभके समान अपवित्र और घृणित वस्तु संसारमें दूसरी नहीं है, हाय ? उसी लोभने महर्षि कश्यपको भी सामान्य स्नेहमें बद्ध और दुराचारी कर डाला. यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है, इसमें संदेह नहीं ॥१४॥ अनन्तर प्रजापति ब्रह्माजीने भी न्याय और धर्मकी रक्षा करनेके लिये अपने परम प्रियतम पौत्र कश्यपजीको शाप देखकर कहा कि ॥ १५ ॥ तुम पृथ्वीतलपर यदुकुलमें जन्म ग्रहण कर मायाके सहित मिलित हो गोपालन कार्य संपादन करो ॥ १६ ॥ हे महाराज ! अंशावतार और भूभार हरण करनेके लिये ब्रह्मा और वरुणजीने महर्षि कश्यपजीको इस प्रकार शाप दिया ॥१७॥ और दितिने अत्यन्त शोक संतप्त होकर अदितिको यह कहकर शाप दिया था कि तुम्हारे सात पुत्र जन्मते जन्मते नाशको प्राप्त होंगे ॥ १८ ॥ जनमेजयने

संसारे बलवाञ्छत्रुर्लोभोऽमेध्यवरः सदा ॥ कश्यपोऽपि दुराचारः कृतस्नेहो दुरात्मना ॥ १४ ॥ ब्रह्माऽपि तं शशापाऽथ कश्यपं मुनिसत्तमम् ॥ मर्यादारक्षणार्थं हि पौत्रं परमवल्लभम् ॥ १५ ॥ अंशेन त्वं पृथिव्यां वै प्राप्य जन्म यदोःकुले ॥ भार्याभ्यां संयुतस्तत्र गोपालत्वं करिष्यसि ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं शप्तः कश्यपोऽसौ वरुणेन च ब्रह्मणा ॥ अंशावतरणार्थाय भूभारहरणाय च ॥ १७ ॥ तथा दित्याऽदितिः शप्ता शोकसंतप्तया भृशम् ॥ जाताजाता विनश्येरंस्तव पुत्रास्तु सप्त वै ॥ १८ ॥ जनमेजय उवाच ॥ कस्माद्दित्या च भगिनी शप्तेन्द्रजननी मुने ॥ कारणं वद शापे च शोकस्तु मुनिसत्तम ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ पारीक्षितेन पृष्टस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ राजानं प्रत्युवाचेदं कारणं सुसमाहितः ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ राजन्दक्षसुते द्वे तु दितिश्चादितिरुत्तमे ॥ कश्यपस्य प्रिये भार्ये बभूवतुरुरुक्रमे ॥ २१ ॥ अदित्यां मघवा पुत्रो यदाऽऽभूदतिवीर्यवान् ॥ तदा तु तादृशं पुत्रं चकमे दितिरोजसा ॥ २२ ॥

कहा, हे मुनिसत्तम ! दितिने इन्द्रजननी भगिनी अदितिको किस कारण शाप दिया था ? उसके शापका कारण क्या है ? सो मुझसे कहिये यह विषय सुनकर मेरे अन्तःकरणमें शोक उदय होता है ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषिगण ! परीक्षित पुत्र जनमेजयके सत्यव्रतीपुत्र व्यासदेवसे इस प्रकार पूछनेपर महर्षि समाहित हो राजासे उसी प्रकार उन विषयोंका कारण कहने लगे ॥ २० ॥ व्यासजी बोले, हे राजन् ! दिति और अदितिनामक प्रजापति दक्षकी दो कन्याथीं ? यह दोनों सुव्रता कन्या महर्षि कश्यपजीकी प्रियभार्या हुई ॥ २१ ॥ अदितिके गर्भसे अत्यन्त वीर्यवान् देवरात इन्द्र उत्पन्न हुए. तब दितिने भी अपने इसी प्रकार वीर्यवान् और तेज संपन्न पुत्रकी कामना की ॥ २२ ॥

उस असितापाङ्गी दितिने पतिको संबोधन देकर कहा हे स्वामिन् ! आप सबको ही मान देते हैं. अतएव प्रार्थना करती हूं मुझको इन्द्रके समान बलशाली, वीर, धीर, धर्मिष्ठ और वीर्यवान् पुत्र दो ॥ २३ ॥ महर्षिजी बोले हं कान्ते ! सावधान होओ, मैं तुझसे जिस व्रताचरणका विषय करता हूं उस व्रतके समापन करनेसे ही तुम इन्द्रके समान पुत्र लाभ करोगी ॥२४ ॥ आप जो आज्ञा करते हैं मैं वही करूंगी यह कहकर दितिके उस उत्तम व्रतका अनुष्ठान करनेपर महर्षि कश्यपने उसके उदरमें गर्भ स्थापन किया. दिति वह गर्भसे यथानियम धारण करने लगी ॥ २५ ॥ वरवर्णिनी दिति नियमान्वित और पवित्र रहकर एकाग्र चित्तसे पयोव्रतके अनुष्ठान पूर्वक भूमिमें शयन करने लगी ॥ २६ ॥ इस प्रकार वह तेजसम्पन्न गर्भ जब परिपूर्ण हो गया तब अदिति दिति

पतिमाहासितापांगी पुत्रं मे देहि मानद ॥ इंद्रतुल्यबलं वीरं धर्मिष्ठं वीर्यवत्तमम् ॥ २३ ॥ तामुवाच मुनिः कान्त स्वस्था भव मया दिते ॥ व्रतांते भविता तुभ्यं शतक्रतुसमः सुतः॥२४ ॥ सा तथेति प्रतिश्रुत्य चकार व्रतमुत्तमम् ॥ निषिक्तं मुनिना गर्भं बिभ्राणा सुमनोहरम् ॥ २५ ॥ भूमौ चकार शयनं पयोव्रतपरायणा ॥ पवित्रा धारणा युक्ता बभूव वरवर्णिनी ॥ २६ ॥ एवं जातः सुसंपूर्णो यदा गर्भोऽतिवीर्यवान् ॥ शुभ्रांशुमतिर्दीप्तांगीं दितिं दृष्ट्वा तु दुःखिताः ॥ २७ ॥ मघवत्सदृशः पुत्रो भविष्यति महाबलः ॥ दित्यास्तदा मम सुतस्ते जोहीनो भवेत्किल ॥ २८ ॥ इति चिंतापरा पुत्रमिंद्रं चोवाच मानिनी ॥ शत्रुस्तेऽद्य समुत्पन्नो दितिगर्भेऽतिवीर्यवान् ॥ २९ ॥ उपायं कुरु नाशाय शत्रोरद्य विचिंत्य च ॥ उत्पत्तिरेव हंतव्या दित्या गर्भस्य शोभन ॥ ३० ॥ वीक्ष्य तामसितापांगीं सपत्नीभावमास्थिताम् ॥ दुनोति हृदये चिंता सुखमर्मविनाशिनी ॥ ३१ ॥

कोश्वेतवर्ण और दीप्ताङ्गी देखकर दुःखित चित्तसे चिन्ता करने लगी कि ॥ २७ ॥ जब दितिके इन्द्रके समान महाबल पुत्र उत्पन्न होगा, तब निःसंदेह मेरा पुत्र तेजहीन हो जायगा ॥२८॥ अभिमानिनी अदितिने इस प्रकार चिन्तातुर होकर अपने पुत्र अमरराजसे कहा हे वत्स ! अतिशय वीर्यवान् तुम्हारा एक शत्रु इस समय दितिके गर्भमें विद्यमान है ॥२९॥ तुम अभीसे शत्रुविनाशके लिये उपाय विचारो. हे सुशोभन ! दितिका गर्भ जिससे उत्पन्न होनेके पहिले नाशको प्राप्त होजाय इस विषयमें तुम यत्नवान् होओ ॥ ३० ॥ सपत्नीभावमें गर्विता उस असितापांगी दितिको देखकर सुखनाशिनी और मर्मघातिनी चिन्ता मेरे हृदयको अत्यन्त तापित करती है ॥ ३१ ॥

देखो, शत्रु राजयक्ष्माके समान बद्धमूल होनेसे फिर उसका विनाश नहीं किया जाता अत एव बुद्धिमान् शत्रुगणको अंकुरित अवस्थामें ही विनाश करें ॥ ३२ ॥ हे शतक्रतो! दितिका गर्भ लोहेकीशंकु कीलके समान मेरे हृदयमें निक्षिप्त हुआ है तुम जिस किसी उपायसे इसका विनाश करो ॥ ३३ ॥ हे महाभाग! यदि तुम मेरी प्रिय कामना करते हो तो साम दानादि अथवा बलद्वारा दितिके गर्भका नाश करके मेरे सन्तापित चित्तको शीतल करो ॥ ३४ ॥ हे महाराज! अमरराज इन्द्र माताके वचन सुन मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ताकर विमाताके निकट गये ॥ ३५ ॥ वे पाप मति विनयान्वित हो दितिके चरणवंदनपूर्वक विषगर्भित मधुरवचन द्वारा उससे कहने लगे ॥३६॥ हे मातः! तुम व्रताचरणसे क्षीणदेह और अत्यन्तदुर्बल होगई हो. मैं तुम्हारी सेवाकेलिये

राजयक्ष्मेव संवृद्धो नष्टो नैवभवेद्रिपुः ॥ तस्मादंकुरितं हन्याद् बुद्धिमानहितं किल ॥ ३२ ॥ लोहशंकुरिव क्षिप्तो गर्भो वै हृदये मम ॥ येनकेनाऽप्युपायेन पातयाद्यशतक्रतो ॥ ३३ ॥ सामदानबलेनापि हिंसनीयस्त्वया सुतः ॥ दित्या गर्भो महाभाग मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा मातृवचः शक्रो विचिन्त्य मनसा ततः ॥ जगामापरमातुः स समीपममराधिपः ॥ ३५ ॥ ववंदे विनयात्पादौ दित्याः पापमतिर्नृप ॥ प्रोवाच विनयेनासौ मधुरं विषगर्भितम् ॥ ३६ ॥ इंद्र उवाच ॥ मातस्त्वं व्रतयुक्ताऽसि क्षीणदेहाऽति दुर्बला ॥ सेवार्थमिह संप्राप्तः किं कर्तव्यं वदस्व मे ॥ ३७ ॥ पादसंवाहनं तेऽहं करिष्यामिति पतिव्रते ॥ गुरुशुश्रूषणात्पुण्यं लभते गतिमक्षयाम् ॥ ३८ ॥ न मे किमपि भेदोऽस्ति तथाऽदित्या शपे किल ॥ इत्युक्त्वा चरणौस्पृष्ट्वा संवाहनपरोऽभवत् ॥ ३९ ॥ संवाहनसुखं प्राप्य निद्रामाप सुलोचना ॥ श्रांता व्रतकृशा सुप्ता विश्वस्ता परमा सती ॥ ४० ॥ तां निद्रावशमापन्नां विलोक्य प्राविशत्तनुम् ॥ रूपं कृत्वाऽतिसूक्ष्मं च शस्त्रपाणिः समाहितः ॥ ४१ ॥ उदरं प्रविवेशाशु तस्या योगबलेन वै ॥ गर्भं चकर्त वज्रेण सप्तधा पविनायकः ॥ ४२ ॥

आया हूं इस समय क्या करूं? आज्ञा कीजिये ॥ ३७ ॥ हे पतिव्रते! मैं तुम्हारे चरणोंकी सेवा करना चाहता हूं, क्यों कि गुरुकी सेवा करनेसे पुण्य और अक्षय गति लाभ होती है ॥३८॥ हे माता! मैं शपथकरके कहता हूं कि मेरे अन्तःकरणमें अदिति और तुममें कुछ भेदबुद्धि नहीं है यह कह चरणोंका स्पर्श कर पैर दाबने लगे ॥ ३९ ॥ व्रतसे थकी कृश सुलोचना दिति पैर दाबनेके सुखको प्राप्त हो और इन्द्रके वचनमें विश्वास कर गाढ निद्रामें निमग्न हुई॥४०॥ वज्रपाणि इन्द्रने उसको सोती देख, अत्यंत सूक्ष्मरूप धारण कर ॥ ४१ ॥ सावधानीसे योगबलके द्वारा उसके उदरमें शीघ्र प्रवेश किया और वज्रद्वारा उसके गर्भको छेदनकरके सात भागमें विभक्त कर डाला ॥ ४२ ॥

उदरमें स्थितहुए बालक वज्रद्वारा आहत होकर रोनेलगे. इन्द्र 'रोओ मत, रोओ मत' ऐसा कहकर बालकको वारंवार सांत्वना करनेलगे ॥ ४३ ॥ किंतु बालकको निवृत्त हुआ न देखकर इस सप्तखंडमेंके प्रत्येकखण्डकोही पुनर्वार सातसातभागमें विभक्त किया. हे नृपवर! उससेही उनचास मरुद्गणोंकी उत्पति हुई ॥४४॥ सुमति दितिने तब जागकर जाना कि कपटाचारी इन्द्रने मेरा गर्भ छेदन किया है. इससे वह अतिदुःखित और क्रोधित हुई ॥ ४५ ॥ यह सब कार्य अपनी बहनका किया जानकर सत्यवादिनी पतिपरायणा दितिने अदिति और इन्द्रको क्रोधसे ॥४६॥ शाप दिया कि, तेरे पुत्रने छलपूर्वक जिसप्रकार मेरा गर्भ काटा है. इसीप्रकार उसका त्रिभुवनराज्य नष्ट होगा ॥ ४७ ॥ और पापाचारिणी अदितिने जिसप्रकार गुप्तरीतिसे मेरा गर्भ निपात कराय मेरे पुत्रका

रुरोद च तदा बालो वज्रेणाभिहतस्तथा ॥ मारुदेति शनैर्वाक्यमुवाच मघवानमुम् ॥ ४३ ॥ शकलानि पुनः सप्त सप्तधा कर्तितानि च ॥ तदा चैकोनपंचाशन्मरुतश्चाभवन्नृप ॥ ४४ ॥ तदा प्रबुद्धा सुदती ज्ञात्वा गर्भं तथा कृतम् ॥ इंद्रेण च्छलरूपेण चुकोप भृशदुःखिता ॥ ४५ ॥ भगिनीकृतं तु सा बुद्ध्वा शशाप कुपिता तदा ॥ अदितिं मघवंतं च सत्यव्रतपरायणा ॥ ४६ ॥ यथा मे कर्तितो गर्भस्तव पुत्रेण छद्मना ॥ तथा तन्नाशमायातु राज्यं त्रिभुवनस्य तु ॥ ४७ ॥ यथा गुप्तेन पापेन मम गर्भो निपातितः ॥ अदित्या पापचारिण्या यथा मे घातितः सुतः ॥ ४८ ॥ तस्याः पुत्रास्तु नश्यंतु जाता जाता पुनःपुनः ॥ कारागारे वसत्वेषा पुत्रशोकातुरा भृशम् ॥ ४९ ॥ अन्य जन्मनि चाप्येव मृतापत्या भविष्यति ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युत्सृष्टं तदा श्रुत्वा शापं मरीचिनंदनः ॥ ५० ॥ उवाच प्रणयोपेतो वचनं शमयन्निव ॥ मा कोपं कुरु कल्याणि पुत्रास्ते बलवत्तराः ॥ ५१ ॥ भविष्यंति सुराः सर्वे मरुतो मघवत्सखाः ॥ शापोऽयं तव वामोरु त्वष्टाविंशेऽथ द्वापरे ॥ ५२ ॥ अंशेन मानुषं जन्म प्राप्य भोक्ष्यति भामिनी ॥ वरुणेनापि दत्तोऽस्ति शापः संतापितेन ज ॥ ५३ ॥

नाश किया है ॥ ४८ ॥ उसी प्रकार इसके पुत्र जन्मते जन्मते वारंवार नाशको प्राप्त हों. पुत्रशोकसे अत्यन्त कातर होकर कारागारमें वास करे ॥ ४९ ॥ और जन्मांतरमेंभी मृतवत्सा हो. व्यासजी बोले हे महाराज! मरीचिनंदन महर्षि कश्यप इस शापके वचनको सुन ॥ ५० ॥ प्रणयवचनद्वारा उसका कोप शान्त करके कहने लगे हे कल्याणि ! तुम कोप मत करो. तुम्हारे पुत्र अत्यन्त बलवान् ॥ ५१ ॥ और मरुत्नामक देवतागण होकर इन्द्रके सखा होंगे. हे वामोरु! तुम्हारा वह शाप विफल नहीं होगा । अट्ठाईसवें मन्वन्तरके समय द्वापरयुगके अन्तमें इसका फल फलेगा ॥ ५२ ॥ उसकाल ईर्षाकलुषित कोपना अदिति अंशद्वारा मनुष्यजन्मको प्राप्त होकर इसका फल भोगकरेगी वरुणजीनेभी संतापित होकर इसको शाप दिया था ॥ ५३ ॥

तुम्हारे दोनोंके शापवशतः यह अदिति मानुषी होकर जन्म ग्रहण करेगी. हे महाराज ! तब वरवर्णिनी देवी दितिने पतिद्वारा आश्वासित होकर संतोषलाभ किया ॥ ५४ ॥ फिर और कुछ अप्रिय वचन न कह. हे राजन् ! यह मैंने तुम्हारे निकट पूर्ण शापका कारण वर्णन किया ॥ ५५ ॥ हे नृपसत्तम ! इस प्रकार अदितिने अपने अंशसे देवकी होकर जन्म ग्रहण किया था ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थ स्कंधे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ दोहा--एहि चतुर्थ अध्यायमें; जग अधर्ममय होय । सो सब वर्णन करहिंगे, जेहि जानत कोइकोय ॥ १ ॥ राजाने कहा हे महाभाग! यह उपाख्यान सुनकर मैं विस्मित हुआ हूं। हे महामते ! मैं देखता हूं यह संसारही पाप स्वरूप है तो जीवगण संसारमें आकर किस प्रकार मुक्तिलाभ करेंगे ? इस विषयमें आशा

उभयोः शापयोगेन मानुषीयं भविष्यति ॥ व्यास उवाच ॥ पतिनाऽऽश्वासिता देवी संतुष्टा साऽभवत्तदा ॥ ५४ ॥ नोवाच विप्रियं किंचित्ततः सा वरवर्णिनी ॥ इतिते कथितं राजन्पूर्वशापस्य कारणम् ॥ ५५ ॥ अदितिर्देवकी जाता स्वांशेन नृप सत्तम ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ विस्मितोऽस्मि महाभाग श्रुत्वाऽऽख्यानं महामते ॥ संसारोऽयं पापरूपः कथं मुच्येत बंधनात् ॥ १ ॥ कश्यपस्यापि दायादस्त्रिलोकीविभवे सति ॥ कृतवानीदृशं कर्म को न कुर्याज्जुगुप्सितम् ॥ २ ॥ गर्भंप्रविष्य बालस्य हननं दारुणं किल ॥ सेवामिषेणमातुश्च कृत्वा शपथमद्भुतम् ॥ ३ ॥ शास्ता धर्मस्य गोप्ता च त्रिलोक्याः पतिरप्युत ॥ कृतवानीदृशं कर्म को न कुर्यादसांप्रतम् ॥ ४ ॥ पितामहा मे संग्रामेकुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम् ॥ कृतवंतस्तथाऽऽश्चर्यां दुष्टं कर्म जगद्गुरो ॥ ५ ॥

तो कुछ हो नहीं सकती ॥ १ ॥ क्योंकि जिन्होंने परमपवित्र कश्यप ऋषिके वीर्यसे जन्म ग्रहण किया और त्रैलोक्य जिनका विभव है उन देवराज इन्द्रनेभी जब इस प्रकार गर्हित (नीच) कार्य किया तब फिर कौन व्यक्ति गर्हित कार्यमें प्रवृत्त नहीं होगा ? ॥२॥ सेवा करनेके छलसे भारी शपथ कर माताके गर्भमें प्रवेशपूर्वक बालकका प्राणनाश करना निःसंदेह अत्यन्त दारुण कार्य है ॥ ३ ॥ जो सबके शासक और धर्मके रक्षक हैं जो त्रैलोक्यके अधिपति हैं जब उन्होंनेभी इस प्रकार घृणित कार्य किया, तब फिर कौन गर्हित और दूषित कार्यमें प्रवृत नहीं होगा ? ॥४॥ हे जगद्गुरो ! मेरे पितामहगणोंने कुरुक्षेत्रके संग्रामस्थलमें अत्यन्त दारुण निन्दित कार्य किये थे, यह भी अत्यन्त आश्चर्यका विषय बोध होता है ॥ ५ ॥

देखो भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अधिक क्या धर्मके अंशावतार युधिष्ठिर भी उसी निन्दित कार्यमें लिप्त हुए थे, उन सबने देवांश, धर्मनिरत और बुद्धिमान् होकर एवं संसारकी असारता जानकर भी वासुदेवकर्तृक ॥ ६ ॥ गुरुवधादिरूप विशुद्ध धर्ममें प्रेरित होकर किस प्रकार घृणित कर्मका आचरण किया ॥ ७ ॥ हे विप्रकुलेन्द्र ! ऐसे महान् पुरुषोंका जब धर्मके विषयमें इस प्रकार आचरण है, तब धर्मकी अवस्थितिके विषयमें आस्था वा श्रद्धा क्या है ? और उस विषयमें निश्चित प्रमाणही क्याहै ? हे मुनींद्र ! यह सब आख्यान सुनकर मेरा चित्त अत्यन्तही विचलित हुआ है ॥ ८ ॥ यदि आप्तवाक्यही धर्मके विषयका प्रमाण कहे, तो श्रेष्ठ देहधारी आपही कौन हैं ? संपूर्ण विषयासक्त पुरुषगण सम्यक् प्रकार विषयमें अनुरागी होते हैं अतएव वे आप्त नहीं होसकते ॥ ९ ॥ मैंने निश्चित प्रकारसे समझा है, कि स्वार्थनाश होनेसेही राग और द्वेश उत्पन्न होता है, और स्वार्थसिद्धिके लिये उसी द्वेषसे असत्य वचन केहे जाते

भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो धर्मांशोऽपि युधिष्ठिरः ॥ सर्वे विरुद्धधर्मेण वासुदेवेन नोदिताः ॥ ६ ॥ असारतांविजानंतः संसारस्य सुमेधसः ॥ देवांशाश्च कथं चक्रुर्निंदितं धर्मतत्पराः ॥ ७ ॥ काऽऽस्था धर्मस्य विप्रेंद्र प्रमाणं किं विनिश्चितम् ॥ चलचित्तोऽस्मि संजातः श्रुत्वा चैतत्कथानकम् ॥ ८ ॥ आप्तवाक्यं प्रमाणं चेदाप्तः कः परदेहवान् ॥ पुरुषो विषयाशक्तो रागी भवति सर्वथा ॥ ९ ॥ रागो द्वेषो भवेन्नून मर्थनाशादसंशयम् ॥ द्वेषादसत्यवचनं वक्तव्यं स्वार्थसिद्धये ॥ १० ॥ जरासंधविघातार्थं हरिणा सत्व मूर्तिना छलेन रचितं रूपं ब्राह्मणस्य विजानता ॥ ११ ॥ तदाप्तः कः प्रमाणं किं सत्त्वमूर्तिरपीदृशः ॥ अर्जुनोऽपि तथैवात्र कार्ये यज्ञविनिर्मिते ॥ १२ ॥ कीदृशोऽयं कृतो यज्ञः किमर्थं शमवर्जितः ॥ परलोकपदार्थं वा यशसे वाऽन्यथा किल ॥ १३ ॥ धर्मस्य प्रथमः पादः सत्यामेतच्छ्रुतेर्वचः ॥ द्वितीयस्तु तथा शौचं दया पादस्तृतीयकः ॥ १४ ॥

हैं ॥ १० ॥ सत्त्वमूर्ति श्रीकृष्णने जरासन्धके वधार्थ जान सुनकर भी छलपूर्वक ब्राह्मणका वेष धारण किया था ॥ ११ ॥ सात्विकमूर्ति वासुदेवने जिस प्रकार स्वार्थसाधनके लिये छलका अवलंबन किया अर्जुननेभी इसी प्रकार यज्ञकार्य साधनके लिये छलका आश्रय लियाथा तब आप्तकौन है ? और प्रमाण क्या है ? ॥ १२ ॥ जिस स्थानमें शिशुपालवधादिरूप अनर्थकी उत्पत्ति हुई वह यज्ञ कैसा था ? यह यज्ञ किस लिये शान्तिरहित हुआ ? यह परलोकप्राप्तिके लिये, वा यशकेलिये अथवा अन्य किसी अभिप्रायसाधनके लिये हुआ था ? ॥ १३ ॥ पुराणवित् पण्डितगण कहते हैं कि सत्य धर्मका प्रथम पाद शौच दूसरा पाद दया तीसरा पाद ॥ १४ ॥

और दान चौथा पाद है. यह श्रुतिवाक्य है यह पादविहीन धर्म, सबका सम्मत होकर इस संसारमें उत्तम प्रकारसे अवस्थिति नहीं कर सकता ॥ १५ ॥ पांडवगणोंने सत्य और दयादिरहित होकर यज्ञकार्य संपादन किया था अत एव वह किस प्रकार फलदायक होसकता है ? धर्मके विषयमें जो कहीं भी किसीकी मति स्थिर थी, ऐसा प्रतीत नहीं होता, अत एव उन्होंने दंभपूर्ण होकरही यज्ञ किया था, तब वे किस प्रकार आप्त हो सकते हैं ? ॥ १६ ॥ जगद्विभु विष्णु छल करनेके लिये ही वामनावतार हुए थे. उसीके अनुसार इस वामनरूपसे बलीराजाको छला था हे मुने ! जब भगवान् विष्णुनेही इस प्रकार छलका अवलम्बन किया था, तब फिर कौन आप्त होनेके लिये शेष रहा ? ॥ १७ ॥ बलिराजा शतयज्ञका अनुष्ठान कर्त्ता वेदकी आज्ञाका प्रतिपालक धर्मिष्ठ दानशील सत्यवादी और जितेन्द्रिय था ॥ १८ ॥ जगत्प्रभविष्णु विष्णुने इस प्रकार अनेकसद् गुणयुक्तको अकस्मात् स्थानभ्रष्ट किया. हे

दानं पादश्चतुर्थश्च पुराणज्ञा वदन्ति वै ॥ तैर्विहीनः कथं धर्मस्तिष्ठेदिह सुसंमतः ॥ १५ ॥ धर्महीनं कृतं कर्म कथं तत्फलदं भवेत् ॥ धर्मे स्थिरा मतिः क्वापि न कस्यापि प्रतीयते ॥ १६ ॥ छलार्थं च यदा विष्णुर्वामनोऽभूज्जगत्प्रभुः ॥ येन वामनरूपेण वंचितोऽसौ बलिर्नृपः ॥ १७ ॥ विहर्ता शतयज्ञस्य वेदाज्ञापरिपालकः ॥ धर्मिष्ठो दानशीलश्च सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ १८ ॥ स्थानात्प्रभ्रंशितोऽकस्माद्विष्णुना प्रभविष्णुना॥जितं केन तयोः कृष्ण बलिना वामनेन वा ॥ १९ ॥ छलकर्मविदा चायं संदेहोऽत्र महान्मम ॥ वंचयित्वा वंचितेन सत्यं वद द्विजोत्तम ॥ २० ॥ पुराणकर्तात्वमसि धर्मज्ञश्च महामतिः ॥ व्यास उवाच ॥ जितं वै बलिना राजन्दत्ता येन च मेदिनी ॥ २१ ॥ त्रिविक्रमोऽपि नाम्ना यः प्रथितोवामनोऽभवत् ॥ छलनार्थमिदं राजन्वामनत्वं नराधिप ॥ २२ ॥

द्विजोत्तम ! उन दोनोंमें क्या बलिकी जय अथवा वामनकी जय हुई ? ॥ १९ ॥ क्या छलकर्मके जाननेवाले वामनने बलिको जीता. अथवा वंचनासे वंचित किये हुए बलिने वामनको जीता ? इस विषयमें मुझको बडा संदेह है, हे द्विजोत्तम ! आप सत्य कहो ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तम ! आप धर्मज्ञ पुराणकर्ता महामति हो, व्यासजीने कहा हे महाराज ! बलिराजाने भूमिदान करनेकी जो प्रतिज्ञाकी थी उसको प्रतिपालनपूर्वक सत्यकी रक्षा करनेसे बलिराजाकी ही जय हुई थी ॥२१॥ हे नरेद्र ! त्रिविक्रम जो वामन कहकर विख्यात हैं उन्होंनेही छलावलम्बी होकर वामनमूर्ति धारणकी थी अर्थात् अपने शरीरके द्वाराही छलावलम्बका क्षुद्रत्व प्रकाश किया था ॥ २२ ॥

हे पार्थिव ! सत्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ मूलधर्म दूसरा कुछ नहीं है, आप देखिये वेही सत्यापहारी हरिछलके फलसे बलिका द्वारपालत्व लाभ करनेमें बाध्य हुए थे ॥ २३ ॥ अत एव हे राजन् ! सम्यक् प्रकारसे सत्यकी रक्षा देहधारियोंके पक्षमें दुःसाध्य जाननी चाहिये. हे राजन् ! त्रिगुणात्मिका बहुरूपिणी अघटितघटना पटीयसी मायाजाननेमें नहीं आती है ॥ २४ ॥ मायाही बलवती है उसी मायाने अपने विमिश्रित तीनों गुणोंके द्वारा इस विश्वको निर्माण किया है इस कारण छलावलंबी किस प्रकार सत्यकी भलीभांति रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ॥ २५ ॥ यह विश्व मिश्रगुणमें अर्थात् रजोगुणद्वारानिर्मित है अत एव रजोगुणात्मक इस संसारमें केवल निर्मल सत्य दुर्लभ है, हे राजन् ! इसको ही सनातनी मर्यादा अर्थात् विधिनिर्दिष्ट नित्य कार्य जानना चाहिये यदि कहें कि वैखानस मुनिगण निर्मल सत्यकी मर्यादा रक्षा करते हैं यद्यपि यह सत्य है किन्तु वह निःसंग निष्परिग्रह ॥ २६ ॥ सत्ययुक्त विगतराग और श्रमरहित हैं

संप्राप्त हरिणा भूयो द्वारपालत्वमेव च ॥ सत्यादन्यतरन्नास्ति मूलंधर्मस्य पार्थिव ॥ २३ ॥ दुःसाध्यं देहिनां राजन्सत्यं सर्वात्मना किल ॥ माया बलवती भूप त्रिगुणा बहुरूपिणी ॥ २४ ॥ ययेदं निर्मितं विश्वं गुणैः शबलितं त्रिभिः ॥ तस्माच्छलवता सत्यं कुतोऽविद्धं भवेन्नृप ॥ २५ ॥ मिश्रेण जनितश्चैव स्थितिरेषा सनातनी ॥ वैखानसाश्च मुनयो निःसंगा निष्प्रतिग्रहाः ॥ २६ ॥ सत्ययुक्ता भवंत्यत्र वीतरागा गततृषः ॥ दृष्टांतदर्शनार्थाय निर्मितास्ते च तादृशाः ॥ २७ ॥ अन्यत्सर्वं शबलितं गुणैरेभिस्त्रिभिर्नृप ॥ नैकं वाक्यं पुराणेषु वेदेषु नृपसत्तम ॥ २८ ॥ धर्मशास्त्रेषु चांगेषु सगुणै रचितेष्विह ॥ सगुणः सगुणं कुर्यान्निर्गुणो न करोति वै ॥ २९ ॥ गुणास्ते मिश्रिताः सर्वे न पृथग्भावसंगताः ॥ निर्व्यलीके स्थिरे धर्मे मतिः कस्यापि न स्थिरा ॥ ३० ॥ भवोद्भवे महाराज मायया मोहितस्य वै ॥ इंद्रियाणि प्रमाथीनि तदाशक्तं मनस्तथा ॥ ३१ ॥

और दृष्टान्त दिखाने के लिये निर्मित हुए हैं अत एव उनकी बात स्वतंत्र है ॥२७॥ उक्त मुनिगणोंके अतिरिक्त सब ही त्रिगुण समन्वित हैं अत एव मुनिगणोंके सहित अपरकी तुलना नहीं हो सकती. हे नृपसत्तम ! गुणवानोंके बनाये पुराणादि और साङ्गवेदमें और धर्मशास्त्रमें एक प्रकारकी उक्ति नहीं होती. बनानेवालोंके गुणोंकी विभिन्नतासे भिन्नभिन्न हो गई है क्योंकि सगुण पुरुष सगुण कार्य करते हैं, किन्तुनिर्गुण सगुण कार्य नहीं करते ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ समस्त गुण मिलित होनेपर कभी पृथक्भाव अवलंबन नहीं करते. वे जिस जिस गुणके सहित परस्पर मिलते हैं उसी उसी गुणका भाव प्रकाश करते हैं. हे महाराज ! इस संसारमें जन्म ग्रहण करके सभी मायाके द्वारा मोहित होते हैं. अत एव छलादिरहित निर्मल और अटल धर्ममें किसीकी भी मति स्थिर नहीं रह सकती ॥ ३० ॥ इन्द्रियें बुद्धिको मलिन विपरीत करके भोगमार्गमें विचरण करतीहैं मन उन इन्द्रियोंमेंही आसक्त है अत एव तीनों गुणोंके द्वारा निरन्तर भावसे प्रेरित होकर ॥ ३१ ॥

अनेक भावमें विचरण करता है हे राजन् ! ब्रह्माजीसे लेकर स्थावर जंगम पर्यन्त ॥ ३२ ॥ सभी प्राणी ही मायाके वशीभूत हैं वह माया उनको लेकर अनेक प्रकारकी क्रीडा करती है यह माया ही सबको मोहित करती है और सदा जगत्की विकृति साधन करती है ॥ ३३ ॥ हे नरेंद्र ! मनुष्यगण प्रथम कार्यके वश असत्यका आश्रय करते हैं वे जब इन्द्रियोंके लिये भोगादिकी चिन्ता करके उसको नहीं पाते ॥ ३४ ॥ तब छलअवलंबन करते हैं और इसी कारण पापमें प्रवृत होते हैं, काम क्रोध और लोभ यह प्राणिगणोंके अतिशय बलवान् शत्रु हैं ॥ ३५ ॥ जीवगण इनके वशीभूत होकर कार्य अकार्यका विचार करनेमें समर्थ नहीं होते. विभवके वियमान होनेपर अहंकार प्रबल होता है ॥ ३६ ॥ उस अहंकारसे मोह और मोहसे अंतमें मृत्यु होती है, संसारमें जीवगणोंके

करोति विविधान्भावान्गुणैस्तैः प्रेरितो भृशम् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंताः प्राणिनः स्थिरजंगमाः ॥ ३२ ॥ सर्वे मायावशा राजन्साऽक्रीडति तैरिह ॥ सर्वान्वै मोहयत्येषाविकुर्वत्यनिशं जगत् ॥ ३३ ॥ असत्यो जायते राजन्कार्यवान्प्रथमं नरः ॥ इंद्रियार्थांश्चिंतयानो न प्राप्नोति यदा नरः ॥ ३४ ॥ तदर्थं छलमादत्ते छलात्पापे प्रवर्तते ॥ कामः क्रोधश्च लोभश्च वैरिणो बलवत्तराः ॥ ३५ ॥ कृताकृतं न जानंति प्राणिनस्तद्वशं गताः ॥ विभवे सत्यहंकारः प्रबलः प्रभवत्यपि ॥ ३६ ॥ अहंकाराद्भवेन्मोहो मोहान्मरणमेव च ॥ संकल्पा बहवतत्र विकल्पाः प्रभवंति च ॥ ३७ ॥ ईर्ष्याऽसूया तथा द्वेषः प्रादुर्भवति चेतसि ॥ आशा तृष्णा तथा दैन्यं दंभोऽधर्म मतिस्तथा ॥ ३८ ॥ प्राणिनां प्रभवंत्येते भावा मोहसमुद्भवाः ॥ यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतानि नियमास्तथा ॥३९॥ अहंकाराभिभूतस्तु करोति पुरुषोऽन्वहम् ॥ अहंभावकृतं सर्वं प्रभवेद्वैः न शौचवत् ॥४०॥ रागलोभात्कृतं कर्म सर्वांगं शुद्धिवर्जितम् ॥ प्रथमं द्रव्यशुद्धिश्च द्रष्टव्या विबुधैः किल ॥४१॥

मनमें अनेक संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ ईर्ष्या असूया और द्वेषादि उत्पन्न होते हैं फिर आशा तृष्णा दैन्य (दीनता) दंभ और विषयगामिनी बुद्धि ॥ ३८ ॥ यह सब मोहसे उत्पन्न होकर प्राणी गणोंके ऊपर प्रभुत्व करते हैं ॥ ३९ ॥ पुरुषगण अहंकारसे ग्रसित होकर ही दिनदिन यज्ञ, दान तीर्थसेवा, व्रत और नियमादिका अनुष्ठान करते हैं. यह सब यज्ञादि अहंकारभावके द्वारा अनुष्ठित होनेसे ॥ ४० ॥ शौचादिके समान मालिन्य दूर करनेमें समर्थ नहीं होता. विशेषतः राग वा लोभके वश होकर कोई भी कार्य करनेसे वह सर्वाङ्गशुद्ध नहीं होता अत एव यज्ञादि कार्यका अनुष्ठान करना हो तो प्रथम उसकी द्रव्यशुद्धिको देखना ही पण्डितगणोंका कर्त्तव्य है ॥ ४१ ॥

हिंसादि न करके जो द्रव्य उपार्जन किया जाय वह द्रव्य धर्मकार्यमें श्रेष्ठ है हे नृपोत्तम। मनुष्यगणोंके द्रोहार्जित द्रव्य द्वारा शुभ कार्यका अनुष्ठान करनेपर ॥ ४२ ॥ वह फल देनेके समय विपरीत फल प्रदान करता है. जिसका मन अत्यन्त निर्मल है, वही भलीभांति शुभ फल लाभ करता है ॥ ४३ ॥ विकार युक्त मनवाले यथार्थ फल लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते. यदि कार्यके समय आचार्य, ऋत्विक् इत्यादि कार्यकर्तागण ॥ ४४ ॥ शुद्धमन हों और यदि देश, काल, क्रिया, द्रव्य, यजमान और मंत्र यह सब शुद्ध हों ॥ ४५ ॥ तभी कर्मका फल भलीभांतिसे हो सकता है, शत्रुनाश और अपनी उन्नतिके उद्देशसे ॥ ४६ ॥ क्रिया करनेपर वह विपरीत फल प्रदान करती है. अत एव पराये विनाशके लिये कर्म करना उचित नहीं है स्वार्थनिरत पुरुष शुभाशुभ कर्मके

अद्रोहेणार्जितं द्रव्यं प्रशस्तं धर्मकर्मणि ॥ द्रोहार्जितेन द्रव्येण यत्करोति शुभं नरः ॥ ४२ ॥ विपरीतं भवेत्तत्तु फलकाले नृपोत्तम ॥ मनोऽतिनिर्मलं तस्य स सम्यक्फलभाग्भवेत् ॥ ४३ ॥ तस्मिन्विकारयुक्ते तु न यथार्थं फलं लभेत् ॥ कर्तारः कर्मणां सर्वे आचार्यऋत्विजादयः ॥ ४४ ॥ स्युस्ते विशुद्धमनसस्तदा पूर्णं भवेत्फलम् ॥ देशकाल क्रिया द्रव्यकर्तॄणां शुद्धता यदि ॥ ४५ ॥ मंत्राणां च तदा पूर्णं कर्मणां फलमश्नुते ॥ शत्रूणां नाशमुद्दिश्य स्ववृद्धिं परमां तथा ॥ ४६ ॥ करोति सुकृतं तद्वद्विपरीतं भवेत्किल ॥ स्वार्थसक्तः पुमान्नित्यं न जानाति शुभाशुभम् ॥ ४७ ॥ दैवाधीनः सदा कुर्य्यात्पापमेव न सत्कृतम् ॥ प्राजा पत्याः सुराः सर्वे ह्यसुराश्च तदुद्भवाः ॥ ४८ ॥ सर्वे ते स्वार्थनिरताः परस्परविरोधिनः ॥ सत्त्वोद्भवाः सुराः सर्वेऽप्युक्ता वेदेषु मानुषाः ॥ ४९ ॥ रजोद्भवास्तामसास्तु तिर्यंचः परिकीर्तिताः ॥ सत्त्वोद्भवानां तैर्वैरं परस्परमनारतम् ॥ ५० ॥ तिरश्चामत्र किं चित्रं जातिवैरसमुद्भवे ॥ सदा द्रोहपरा देवास्तपोविघ्नकरास्तथा ॥ ५१ ॥ असंतुष्टा द्वेषपराः परस्परविरोधिनः ॥ अहंकारसमुद्भूतः संसारोऽयं यतो नृप ॥ ५२ ॥

विचारमें समर्थ नहीं होते ॥ ४७ ॥ वे दैवके आधीन होकर पापही करते हैं, पुण्य कर्मके करनेमें समर्थ नहीं होते. सब देवता और असुरगणोंने प्रजापतिसे ही जन्म ग्रहण किया हे ॥ ४८ ॥ यह सभी स्वार्थनिरत होनेसे परस्पर विरोध करते हैं. वेदमें कहा गया है कि देवताओंने सत्त्वगुणसे मनुष्यगणोंने रजोगुणसे ॥ ४९ ॥ और तिर्यग्गणोंने तमोगुणसे जन्म ग्रहण किया है. हे राजन्! यदि सतोगुणसे उत्पन्न हुए देवता गण ही परस्पर सदा वैर करें ॥ ५० ॥ तो तिर्यग्गणोंकी जो जातिवैरिता संघटित हो तो इस विषयमें विचित्रत्व क्या है ? जब कि देवतागण सदा ही असंतुष्ट द्वेषकलुषित परस्पर विरोध और पराये तपमें विघ्न करनेवाले हैं तो निःसन्देह जानिये कि यह संसार अहंकारसे ही उत्पन्न है. अतएव किस प्रकार वह रागद्वेषादि रहित हो सकता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ दोहा—मायामय जगकथन कर एहि पंचम अध्याय ॥ नारायणकी कथाको, वर्णन करहिं सुभाय ॥ १ ॥ द्वैपायनने कहा हे नृपसत्तम ! बहुत वाक्य कहनेका क्या प्रयोजन है ? केवल इतनाही कहना ठीक होगा कि, इस संसारमें हिंसा द्वेषजनित कलुषित बुद्धिका परित्याग कर धर्म परायण हों, ऐसे पुरुष बहुत थोडे हैं ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! सत्ययुगमें भी यह स्थावर जंगमात्मक विश्व, रागद्वेषादिसे व्याप्त था. इस समय कलुषित कलिकाल उपस्थित है. इस समय जो संसार राग द्वेषादिसे व्याप्त हो, इसमें फिर आश्चर्य क्या है ? ॥ २ ॥ हे नृपवर ! देवतागणसे जब द्वेष और ईर्षायुक्त एवं छलपरायण हैं. तब फिर तिर्यग् रागद्वेष और मनुष्यगणोंकी बात क्या कहूं ? ॥ ३ ॥ हे पृथ्वीपते ! द्रोह करनेवाले जीवसे द्रोह करें, क्यों कि इस विषयमें समानता दिखाई देता है. किन्तु हिंसारहित शान्त जीवसे द्वेष करनेपर दुष्टता है ॥४॥ जिस किसी व्यक्तिके शान्त,तापस, जप परायण और

रागद्वेषविहीनस्तु स कथं जायते नृप ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ अथ किं बहुनोक्तेन संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम ॥ धर्मात्माऽद्रोहबुद्धिस्तु कश्चिद्भवति कर्हिचित् ॥ १ ॥ रागद्वेषावृतं विश्वं सर्वं स्थावरजंगमम् ॥ आद्ये युगेऽपि राजेंद्र किमद्य कलिदूषिते ॥ २ ॥ देवाः सेर्ष्याश्च सद्रोहाश्छलकर्मरताः सदा ॥ मानुषाणां तिरश्चां च का वार्ता नृप गण्यते ॥ ३ ॥ द्रोहपरे द्रोहपरो भवेदिति समानता ॥ अद्रोहिणी तथा शान्ते विद्वेषः खलता स्मृता ॥ ४ ॥ यः कश्चित्तापसः शांतो जपध्यान परायणः ॥ भवत्तस्य जपे विघ्नकर्ता वै मघवा परम् ॥ ५ ॥ सतां सत्ययुगं साक्षात्सर्वदैवासतां कलिः॥मध्यमो मध्यमानां तु क्रियायोगौ युगे स्मृतौ ॥ ६ ॥ कश्चित्कदाचिद्भवति सत्यधर्मानुवर्तकः ॥ अन्यथाऽन्ययुगानां वै सर्वे धर्म परायणाः ॥ ७ ॥ वासना कारणं राजन्सर्वत्र धर्मसंस्थितौ ॥ तस्यां वै मलिनायां तु धर्मोऽपि मलिनो भवेत् ॥ ८ ॥

ध्यान निमग्न होनेपर अमरराज उसकी तपस्यामें विघ्न डालते हैं अत एव इन्द्रकी खलता स्पष्टही दिखाई देती है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! सब युगोंमें ही साधु असाधु और मध्यम इन तीन प्रकारों के मनुष्य दिखाई देते हैं. उनमेंजो साधुहैं उनको सर्वदाही सत्ययुग है. जो असाधु हैं उनको सदा कलियुग है और जिस जिस युगमें क्रिया और योग व्यवस्थित है वह द्वापरात्मक और त्रेतात्मक युगही सदा मध्यम गणोंके लिये निर्दिष्ट रहता है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! आप जानते हैं कि कभी कोई भी सत्यधर्मका अनुसरण करता है यह न करकेभिन्न भिन्न युगके सब प्राणी ही उस उस युगधर्मका अनुवर्तन करते हैं ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र ! धर्मस्थितिविषयमें सर्व त्रही वासनाको कारण कहकर अवगति करते हैं उस वासनाके मलीन होनेपर धर्म भी मलीन होता है ॥ ८ ॥

आप जानते हैं कि शुद्ध वासना पुराण साध्य होनेसे वह अल्प ही होती है और मलीन वासना स्वभावसे ही अधिकतर होती है, यह मलीन वासना ही जीवगणोंको सम्यक् प्रकारसे नष्ट करती है, अतएव इसका आचरण कभी कर्तव्य नहीं है। हे नृपोत्तम ! इन सब वचनोंके द्वाराकृष्ण और इन्द्रादिका छल और अधर्माचरण एव पांडवगणोंकी अधर्मशीलताका कारण समझ लीजिये. अब मुक्तिके लिये तपाचरणशील नरनारायणकी देहान्तर प्राप्तिकी कथा सुनिये. ब्रह्माके हृदयसे धर्म नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ ९ ॥ वह ब्रह्मज्ञाननिष्ठ सत्य संपन्न और सदाही वेदधर्ममें अनुरक्त था. उस महात्मा गृहस्थ धर्मावलम्बी मुनिवर धर्मने प्रजापति दक्षकी दश कन्याओंसे यथाविधि विवाह किया था. सत्य निष्ठगणोंमें अग्रणी उस धर्मने उनके गर्भसे हरि कृष्ण नर और

मलिना वासना सत्यं विनाशयति सर्वथा ॥ ब्रह्मणो हृदयाज्जातः पुत्रो धर्म इति स्मृतः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणः सत्यसंपन्नो वेदधर्मरतः सदा ॥
दक्षस्य दुहितारो हि वृता दश महात्मना ॥ १० ॥ विवाहविधिना सम्यङ्‌ मुनिना गृहधर्मिणा ॥ तास्वजीजनयत्पुत्रान्धर्मः सत्यवतां
वरः ॥ ११ ॥ हरिं कृष्णं नरं चैव तथा नारायणं नृप ॥ योगाभ्यासरतो नित्यं हरिः कृष्णो बभूव ह ॥ १२ ॥ नरनारायणौ चैव
चेरतुस्तप उत्तमम् ॥ प्रालेयाद्रिं समागत्य तीर्थे बदरिकाश्रमे ॥ १३ ॥ तपस्विषु धुरीणौ तौ पुराणौ मुनिसत्तमौ ॥ गृणंतौऽतत्परं
ब्रह्म गंगाया विपुले तटे ॥ १४ ॥ हरेरंशौ स्थितौ तत्र नरनारायणावृषी ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं तु चक्राते तप उत्तमम् ॥ १५ ॥ तापितं च
जगत्सर्वं तपसा सचराचरम् ॥ नरनारायणाभ्यां च शक्रः क्षोभं तदा ययौ ॥ १६ ॥ चिंताविष्टः सहस्राक्षो मनसा समकल्पयत् ॥ किं
कर्तव्यं धर्मपुत्रौ तापसौ ध्यानसंयुतौ ॥ १७ ॥

नारायणनामक चार पुत्र उत्पन्न किये थे, उनमें हरि और कृष्ण सदाही योगाभ्यासमें रत होकर रहते थे ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ नर और नारायण भी हियालय पर्वतपर आय बदरिकाश्रमतीर्थमें अति उत्तम तपस्या करने लगे ॥ १३ ॥ वह तपस्वी प्रधान पुराण दोनों मुनि गंगाके प्रशस्त तटपर गायत्री संज्ञक परब्रह्मके मंत्रका जप करने लगे ॥ १४ ॥ हरिके अंशसे उत्पन्न नर और नारायण नामक दोनों ऋषियोंने पूर्ण हजार वर्ष पर्यन्त उस स्थानमें उत्तम तपस्या करी ॥ १५ ॥ उनके तप सम्बन्धी तेजसे चराचर संपूर्ण जगत् तप्त हो उठा, और देवराज इन्द्रभी संक्षोभित होगये ॥ १६ ॥ सहस्र लोचन चिन्तायुक्त होकर मनमें कल्पना करने लगे कि, वे दोनों धर्मपुत्र तपोनिरत और ध्यान परायण हुए हैं ॥ १७ ॥

यह तपसिद्ध होनेपर इस मेरे अति उत्तम राज्य आसनपर अधिकार कर सकेंगे, तो इस समय इनकी तपस्या भंग करनेके लिये किस प्रकारसे विघ्न उत्पादन करूं ? ॥ १८ ॥ देवराज इन्द्रने इस अभिप्रायसे, काम क्रोध और अति दारुण लोभको उत्पन्न कर, ऐरावतपर चढ़ ॥ १९ ॥ विघ्नाचरण करनेके लिए गंधमादन पर्वतपर जाय, उस पुण्याश्रममें उपस्थित हो उन पुरातन दोनों ऋषियोंका दर्शन किया ॥ २० ॥ उनको तपके तेजसे सूर्यके समान दीप्तिमान् देखकर देवराज विचार करने लगे कि ये ब्रह्मा हैं, वा विष्णु हैं अथवा सूर्य हैं ॥ २१ ॥ ये धर्म पुत्र और ऋषि हैं. ये तपस्याद्वारा क्या करेंगे इस प्रकार चिन्ता करके शचीनाथ उनके समीप जाय कहने लगे ॥ २२ ॥ हे महाभाग ! धर्मतनय दोनों ऋषियो ! आप लोगोंका कार्य वा प्रार्थना क्या

सिद्धार्थौ सुभृशं श्रेष्ठमासनं न ग्रहीष्यतः ॥ विघ्नः कथं प्रकर्तव्यस्तपो येन भवेन्न हि ॥ १८ ॥ उत्पाद्य कामं क्रोधं च लोभं वाऽप्यतिदारुणम् ॥ इत्युद्दिश्य सहस्राक्षः समारुह्य गजोत्तमम् ॥ १९ ॥ विघ्नकामस्तु तरसा जगाम गंधमादनम् ॥ गत्वा तत्राऽऽश्रमे पुण्ये तावपश्यच्छतक्रतुः ॥ २० ॥ तपसा दीप्तदेहौ तु भास्कराविव चोदितौ ॥ ब्रह्मविष्णू किमेतौ वै प्रकटौ वा विभावसू ॥ २१ ॥ धर्म पुत्रावृषी एतौ तपसा किं करिष्यतः ॥ इति संचिन्त्य तौ दृष्ट्वा तदोवाच शचीपतिः ॥ २२ ॥ किं वां कार्यं महाभागौ ब्रूतं धर्मसुतौ किल ॥ ददामि वां वरं श्रेष्ठं दातुं यातोऽस्म्यहमृषी ॥ २३ ॥ अदेयमपि दास्यामि तुष्टोऽस्मि तपसा किल ॥ व्यास उवाच ॥ एवं पुनःपुनः शक्रस्तावुवाच पुरः स्थितः ॥ २४ ॥ नोचतुस्तावृषी ध्यानसंस्थितौ दृढचेतसौ ॥ ततो वै मोहिनीं मायां चकार भयदां वृषः ॥ २५ ॥ वृकान्सिंहांश्च व्याघ्रांश्च समुत्पाद्याबिभीषयत् ॥ वर्षं वातं तथा वह्निं समुत्पाद्य पुनःपुनः ॥ २६ ॥ भीषयामास तौ शक्रो मायां कृत्वा विमोहिनीम् ॥ भयतोऽपि वशं नीतौ न तौ धर्मसुतौ मुनी ॥ २७ ॥

है ? कहो, मैं तुमको उत्तम वर देनेके लिये यहां आया हूं, मैं तुम्हारी तपस्यासे अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूं अत एव आप जो प्रर्थना करेंगे वह अदेय होनेपर भी मैं प्रदान करूंगा. व्यासजी बोले कि इन्द्र उनके सन्मुख खडे हो कर बारंबार इस प्रकार कहने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ किन्तु दोनों ऋषि दृढचित्त और ध्यानमें मग्न थे इस कारण उन्होंने कुछ न कहा. यह देख अमर राजने अत्यन्त भयदायक मोहिनी मायाकी कल्पना करी ॥ २५ ॥ सिंह, व्याघ्र, वृक इत्यादि समस्त हिंसक जन्तु और वृष्टि, पवन, अग्नि इत्यादि वारंवार उत्पन्न करके भय दिखाने लगे ॥ २६ ॥ यद्यपि शत्रुमोहिनी मायाको प्रगट करके भय दिखाया किन्तु इसके द्वारा भी उन धर्मपुत्र दोनों मुनियोंको वशमें न करसके ॥ २७ ॥

उन नर नारायण दोनों मुनियोंको वर ग्रहणमें लुब्ध अथवा सिंहादि वा अग्नि पवनादिसे डरा हुआ न देखकर ॥ २८ ॥ देवराज इन्द्र अपने स्थानको चले गये अनन्तर इन्द्र घर जाय दुःखित होकर चिन्ता करने लगे कि जब ये दोनों मुनि सिंह व्याघ्रादिके द्वारा आक्रान्त होकर भी अपने आसनसे चलित न हुए ॥ २९ ॥ तब कोई इनका ध्यानभंग करनेमें समर्थ नहीं होगा. ये दोनों मुनि भय लोभादिसे विचलित न हुए ॥ ३० ॥ ये आदिशक्ति महाविद्या सनातनी त्रिलोकेश्वरी अद्भुतरूपिणी पर प्रकृति श्रीभुवनेश्वरीका ध्यान करतेहैं इस समय अनेक मायाका जानने वाला होकर भी ऐसा कौन है जो इनका ध्यान भंग करनेमें समर्थ हो? क्योंकि जो परमा शक्ति देवासुरकृत सब मायाकी मूल है ॥ ३१ ॥ इस योगमाया महाशक्तिके ध्यानपरायण होकर पापके हाथसे

नरनारायणौ दृष्ट्वा शक्रः स्वभवनं गतः ॥ वरदाने प्रलुब्धौ न न भीतौ वह्निवायुतः ॥ २८ ॥ व्याघ्रसिंहादिभिः क्रांतौ चलितौ नाश्रमा त्स्वकात् ॥ न तयोर्ध्यानभंगं वै कर्तुं कोऽपि क्षमोऽभवत् ॥ २९ ॥ इंद्रोऽपि सदनं गत्वा चिंतयामास दुःखितः ॥ चलितौ भयलोभाभ्यां नेमौ मुनिवरोत्तमौ ॥३०॥ चिंतयंतौ महाविद्यामादिशक्तिं सनातनीम् ॥ ईश्वरीं सर्वलोकानां परां प्रकृतिमद्भुताम् ॥ ३१ ॥ ध्यायतां कः क्षमो लोके बहुमाया विदप्युत ॥ यन्मूलाः सकला माया देवासुरकृताः किल ॥ ३२ ॥ ते कथं बाधितुं शक्ता ध्यायंति गतकल्मषा ॥ वाग्बीजं काम बीजं च मायाबीजं तथैव च ॥ ३३ ॥ चित्ते यस्य भवेत्तं तु बाधितुं कोऽपि न क्षमः ॥ मायया मोहितः शक्रो भूयस्तस्य प्रतिक्रियाम् ॥३४॥ कर्तुं कामवसंतौ तु समाहूयाब्रवीद्वचः ॥ मनोभव वसंतेन रत्या युक्तो व्रजाधुना ॥ ३५ ॥ अप्सरोभिः समायुक्त स्तरसा गंधमादनम् ॥ नरनारायणौ तत्र पुराणावृषिसत्तमौ ॥ ३६ ॥

मुक्त रहते हैं, त्रलोक्यमें ऐसा कौन है जो उसका ध्यानभंग करनेमें समर्थ हो ? ॥ ३२ ॥ जो सरस्वतीबीज, कामबीज और मायाबीज जपकर निष्पाप और विशुद्धात्मा हुए हैं ॥ ३३ ॥ जिनके चित्तक्षेत्रमें भुवनेश्वरीबीज प्रगट हुआ है उनके विघ्नाचरण करनेमें कौन समर्थ होगा ? हे महाराज ! मायाका क्या प्रभाव हैं ? देखिये शाक्तगणोंके अत्याचारमें कोई समर्थ नहीं होता यह जानकरभी देवराज मायासे मोहित हो पुनर्वार उसका प्रतिकार करनेके मन्मथ (कामदेव) और वसंतको बुलाकर कहने लगे हे मनोभव? तुम इस समय वसंत और रतिके सहित मिल और अप्सराओंको संग ले शीघ्र गंधमादन पर्वतपर जाओ. उस स्थानमें नर नरायणनामक पुरातन दो ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥

ऋषि बद्रिकाश्रममें एकान्त बैठकर तपस्या करते हैं, हे मन्मथ ! तुम उनके निकट जाय अपने बाणोंके प्रभावसे ॥ ३७ ॥ उनका चित्त कामातुर करके मेरा यह कार्य संपादन करो. तुम अपने शराघातसे उनको मोहित और उच्चाटित करो. ॥ ३८ ॥ कभी इससे कुंठित मत होओ. हे महाभाग ! इस प्रकार तुम उन धर्मपुत्र दोनों मुनियोंको वशीभूत करो, हे कन्दर्प ! इस संपूर्ण संसारमें देवता दैत्य वा मनुष्यगणोंमें ऐसा कौन है? ॥ ३९ ॥ जो ताडित होकर तुम्हारे बाणके वशीभूत न हुआ हो, ब्रह्मा मैं गिरजानाथ (शिव) चंद्रमा और अग्निभी जब तुम्हारे बाणसे मोहित हैं ॥ ४० ॥ तो तुम्हारा बाण उन ऋषियोंके प्रति पराक्रम प्रकाश करनेमें क्यों न समर्थ हो ? फिर क्या विचार करना चाहिये ? तुम्हारी सहायता करनेके लिये इन वारांगनाओंको तुम्हारे संग भेजता हूं ॥ ४१ ॥

कुरुतस्तप एकांते स्थितौ बदरिकाश्रमे ॥ गत्वा तत्र समीपे तु तयोर्मन्मथमार्गणैः ॥ ३७ ॥ चित्तं कामातुरं कार्यं कुरु कार्यं ममाधुना ॥ मोहयित्वोच्चाटयित्वा विशिखैस्ताडयाऽऽशु च ॥ ३८ ॥ वशीकुरु महाभाग मुनी धर्मसुतावपि ॥ को ह्यस्मिन्सर्वसंसारे देवो दैत्योऽथ मानवः ॥ ३९ ॥ यस्ते बाणवशं प्राप्तो न याति भृश ताडितः ॥ ब्रह्माऽहं गिरिजानाथश्चंद्रो वह्निर्विमोहितः ॥ ४० ॥ गणना काऽन्ययोः काम त्वद्बाणानां पराक्रमे ॥ वारांगनागणोऽयं ते सहायार्थं मयेरितः ॥४१॥ आगमिष्यति तत्रैव रंभादीनां मनोरमा ॥ एका तिलोत्तमा रंभा कार्यं साधयितुं क्षमा ॥ ४२ ॥ त्वमेवैकः क्षमः कामं मिलितैः कस्तु संशयः ॥ कुरु कार्यं महाभाग ददामि तव वांछितम् ॥ ४३ ॥ प्रलोभितौ मयाऽत्यर्थं वरदानैस्तपस्विनौ ॥ स्थानान्न चलितौ शांतौ वृथाऽयं मे गतः श्रमः ॥ ४४ ॥ तथा वै मायया कृत्वा भीषितौ तापसौ भृशम् ॥ तथाऽपि नोत्थितौ स्थानाद्देहरक्षापरौ न तौ ॥ ४५ ॥

यह रंभादि समस्त मनोरम अप्सरागणभी उस स्थानमें जायँ, तिलोत्तमा रंभा अथवा तुम अकेलेही कार्यसाधनमें समर्थ हो ॥ ४२ ॥ फिर सब मिलकर जो कार्यसाधन करोगे तो इसमें संदेह ही क्या है ? हे महाभाग ! तुम कार्यसाधनकरो मैं तुमको वांछित अर्थ प्रदान करूंगा ॥ ४३ ॥ हे मन्मथ ! मैंने दोनों तपस्वियोंको वरदान देनेका लोभ दिखाया था किन्तु वे शांतात्मा दोनों तपस्वी अपने निश्चितार्थसे विचलित न हुए इससे मेरा यत्न और परिश्रम सभी विफल होगया है ॥ ४४ ॥ फिर मैंने इनदोनों तपस्वियोंकोमाया के द्वारा अत्यन्त भय दिखाया था तोभी अपने स्थानसे न उठे अतएव बोध होता है कि वे देहकी रक्षामें यत्नवान् नहीं हैं ॥ ४५ ॥

व्यासदेवने कहा, कामदेवने देवराज इन्द्रके इस प्रकार वचन सुनकर कहा हे देवेन्द्र ! अभी मैं आपका अभिलषित कार्य संपादन करूंगा ॥ ४६ ॥ किन्तु एकबात यह है कि यदि वे दोनों तपस्वी विष्णु महेश्वर, ब्रह्मा वा दिवाकरके ध्यानपरायण हों तब मैं उनको वशीभूत करनेमें समर्थ हूंगा ॥ ४७ ॥ नहीं तो जो पुरुष कामराज महाबीजमंत्रके चिन्तनमें निरत है, मैं उस देवीभक्त पुरुषको वशीभूत करनेमें कभी समर्थ नहीं हूं ॥ ४८ ॥ यदि दोनों तपस्वियोंने उसी महाशक्ति महादेवीका भक्तिभावसे आश्रय किया है तब वे मेरे शरके गोचरीभूत नहीं होंगे ॥ ४९ ॥ इंद्रने कहा हे महाभाग ! तुम कार्यसाधनोद्यत अनुचरगणोंके सहित जाओ मेरे इस दुःसाध्य हितकर कार्यका साधन करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है ॥ ५० ॥ व्यासजीने

व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा शक्रं प्राह मनोभवः ॥ वासवाद्य करिष्यामि कार्यंते मनसेप्सितम् ॥ ४६ ॥ यदि विष्णुं महेशं वा ब्रह्माणं वा दिवाकरम् ॥ ध्यायतौ तौ तदाऽस्माकं भवितारौ वशौ मुनी ॥ ४७ ॥ देवीभक्तं वशीकर्तुं नाहं शक्तः कथंचन ॥ कामराजं महाबीजं चिंतयंतं मनस्यलम् ॥४८॥ तां देवीं चेन्महाशक्तिं संश्रितौ भक्तिभावतः ॥ न तदा मम बाणानां रोचगौ तापसौ किल ॥४९॥ इंद्र उवाच ॥ गच्छ त्वं च महाभाग सर्वैस्तत्र समुद्यतैः ॥ कार्यं ममातिदुःसाध्यं कर्ता हितमनुत्तमम् ॥ ५० ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेन समादिष्टा ययुः सर्वे समुद्यताः ॥ तत्र तो धर्मपुत्रौ द्वौ ते पाते दुष्करं तपः ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पंचमोध्यायः ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ प्रथमं तत्र संप्राप्तो वसंतः पर्वतोत्तमे ॥ पुष्पिताः पादपाः सर्वे द्विरेफालि विराजिताः ॥ १ ॥ आम्राश्च बकुला रम्यास्तिलकाः किंशुकाः शुभाः ॥ सालास्तालास्तमालाश्च मधूका पुष्पिता बभुः ॥ २ ॥ बभूवुः कोकिलाऽऽलापा वृक्षाग्रेषु मनोहराः ॥ वल्ल्योऽपि पुष्पिताः सर्वा आलिलिंगुर्नगोत्तमान् ॥ ३ ॥

कहा इसप्रकार इंद्रकी आज्ञा पाय उन सबने ही जहां वे दोनों धर्मके पुत्र नर नारायण दुष्कर तपस्या करते थे वहां गमन किया ॥ ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! प्रथम ऋतुराज वसंत उस मनोहर पर्वतके ऊपर प्रगट हुआ, उसकाल सब वृक्ष पुष्पित और भ्रमरसमूहोंसे शोभायमान हो गये ॥ १ ॥ मनोहर आम बकुल तिलक और शोभायमान किंशुक शाल ताल तमाल और मधूकादि तरुराजिने कुसुममालासे विराजित होकर अनुपम शोभा धारण की ॥ २ ॥ वृक्षोंके ऊपर कोकिलाओंका मधुर शब्द सुनाई आने लगा. सब लताओंने पुष्पित होकर वनस्पतियोंका आलिंगन किया ॥ ३ ॥

प्राणिगण कामातुर होकर अपनी २ भार्याओंसे प्रेमयुक्त और परस्पर क्रीडासक्त हो अत्यन्त उन्मत्त हो गये ॥ ४ ॥ मंद सुगंध और सुखस्पर्श दक्षिण पवन बहने लगा, सब इद्रियें बलवान् होकर फिर मुनिगणोंके वशमें न रहीं ॥ ५ ॥ तब मीनकेतन (कामदेव) रतिके सहित मिलित हो, पंचबाण धारण कर उस बदरिकाश्रममें शीघ्र जाय वास करने लगा ॥ ६ ॥ संगीतमें चतुर रंभा और तिलोत्तमादि प्रधान प्रधान सब अप्सरा उस मनोहर आश्रममें जाकर स्वर, ताल और लयके सहित गान करने लगीं ॥ ७ ॥ वह मधुर संगीत, कोकिलाओंका मनोहर कूजन और भौरोंकी मधुरकलध्वनि सुनकर वे दोनों मुनि जागरित हुए ॥ ८ ॥ नर नानायण दोनों ऋषि अकालमें ऋतुराज वसन्तका उदय और वन पादपोंका पुष्पोदय देखकर चिन्ता करने लगे

प्राणिनः स्वासु भार्यासु प्रेम युक्ताः स्मराऽऽतुराः॥बभूवुश्चातिमत्ताश्च क्रीडासक्ताः परस्परम् ॥ ४ ॥ ववुर्मंदाः सुगंधाश्च सुस्पर्शा दक्षिणाऽनिलाः ॥ इंद्रियाणि प्रमाथीनि मुनीनामपि चाभवन् ॥ ५ ॥ रतियुक्तस्ततः कामः पूरयन्पंचमार्गणान् ॥ चकार त्वरितस्तत्र वासं बदरिकाऽऽश्रमे ॥ ६ ॥ रंभातिलोत्तमाद्याश्च गत्वा तत्र वराऽऽश्रमे ॥ गानं चक्रुः सुगीतज्ञाः स्वरतानसमन्वितम् ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा मधुरोद्गीतं कोकिलानां च कूजितम् ॥ भ्रमरालिविरावं च प्रबुद्धौ तौ मुनीश्वरौ ॥ ८ ॥ ऋतुराजमकाले तु दृष्ट्वा तौ पुष्पितं वनम् ॥ जातौ चिंतापरौ तत्र नरनारायणावृषी ॥ ॥ ९ ॥ किमद्य शिशिरापायः संवृत्तः समयं विना ॥ प्राणिनो विह्वलाः सर्वे लक्ष्यं तेऽतिस्मरातुराः ॥ १० ॥ कालधर्मविपर्यासः कथमद्य दुरासदः ॥ नरनारायणः प्राह विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ११ ॥ नारायण उवाच ॥ पश्य भ्रातरिमे वृक्षाः पुष्पिता प्रतिभांति वै ॥ कोकिलाऽऽलापसंघुष्टा भ्रमरालिविराजिताः ॥ १२ ॥ शिशिरं भीतमातंगं दारयन्स्वखरैर्नखैः ॥ वसंतकेशरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मुने ॥ १३ ॥

॥ ९ ॥ नियमके विना इससमय किस प्रकार वसंत ऋतुका उदय हुआ? और उस समय सबही प्राणी अत्यन्त कामातुर तथा विह्वल दिखाई देते हैं ॥ १० ॥ कालधर्मका विपरीत होना अति दुर्घट है, किस प्रकार वह संघटित हुआ? इसके उपरांत नारायण विस्मयोत्फुल्लनेत्रद्वारा नर नामक ऋषिसे कहने लगे ॥ ११ ॥ नारायण बोले हे भ्राता! देखो, ये सब वृक्ष पुष्पित होकर शोभायमान हो रहे हैं कोकिलकी कलध्वनि सुनाई आ रही है. संपूर्ण भौंरे मधुर ध्वनि करके इधर उधर विचरण कर रहे हैं ॥ १२ ॥ यह देखो, वसंत केशरी पलाश कुसुमरूप अपने खर नखोंसे शिशिर रूप भयंकर मातंगको विदारित करकें उपस्थित हुआ है ॥ १३ ॥

हे ब्रह्मन् ! देखो, किस प्रकार मनोहर सुषमा संपन्न वसन्त लक्ष्मी बदरीकाश्रममें उदित हुई है, हे देवर्षे ! लाल अशोक इसका करतल है, किंशुककुसुम इसके मनोहर चरण, नील अशोक इसके श्याम केशकलाप, विकसित कमल इसका बदन ॥ १४ ॥ नीलकमल इसके नेत्र, बिल्वफल इसके मनोरम पयोधर, प्रफुल्ल कुन्दकुसुम इसके दर्शन, मंजरी इसका मनोहर कर्णफूल है ॥ १५ ॥ बंधुजीव इसका अधर, सिंधुवार अद्भुत नख; पुन्स्कोकिलकी कलध्वनि इसका कंठस्वर, कदम्बकुसुम इसके वसन ॥ १६ ॥ मोरगण इसका भूषण, सारसस्वर इसकी मधुरध्वनि, कुसुमदाम इसका चन्द्रहार, मत्तहंसकी गतिही इसका गमन ॥ १७ ॥ कदम्बकेशर इसकी रोमराजि हैं। हे ऋषिवर! इन सबके द्वारा वसन्तलक्ष्मीने क्या अपूर्व शोभा धारण की है? ॥ १८ ॥ यह

रक्तशोककरा तन्वी देवर्षे किंशुकांघ्रिका ॥ नीलाऽशोककचा श्यामा विकासिकमलाऽऽनना ॥ १४ ॥ नीलेंदीवरनेत्रा सा बिल्ववृक्षफलस्तनी ॥ प्रोफुल्लकुंदरदना मंजरीकर्णशोभिता ॥ १५ ॥ बंधुजीवधरा शुभ्रा सिंधुवारनखाद्भुता ॥ पुंस्कोकिलस्वरा पुण्या कदंबवसना शुभा ॥ १६ ॥ बर्हिवृंदकलापा चसारसस्वननूपुरा ॥ वासंतीबद्धरशना मत्तहंसगतिस्तथा ॥ १७ ॥ पुत्रजीवांशुकन्यस्तरोमराजिविराजिता वसंतलक्ष्मीः संप्राप्ता ब्रह्मन्बदरिकाश्रमे ॥ १८ ॥ अकाले किमियं प्राप्ता विस्मयोयं ममाऽधुना ॥ तपोविघ्नकरा नूनं देवर्षे परिचिंतय ॥ १९ ॥ श्रूयते सुरनारीणां गानं ध्यानविनाशनम् ॥ आवयोस्तपभंगाय कृतं मघवता किल ॥ २० ॥ ऋतुराडन्यथाऽकाले प्रीतिं संजनयेत्कथम् ॥ विघ्नोऽयं विहितो भाति भीतेनाऽसुरशत्रुणा ॥ २१ ॥ वाताः सुगंधाः शीताश्च समायांति मनोहराः ॥ नान्यत्कारणमस्तीह शतक्रतुकृतिं विना ॥ २२ ॥ इति ब्रुवति विप्राऽग्र्ये देवे नारायणे विभौ ॥ सर्वे दृष्टिपथं प्राप्ता मन्मथप्रमुखास्तदा ॥ २३ ॥

अकालमें उपनीत क्यों हुई? इस विषयमें इस समय मुझको आश्चर्य उत्पन्न होता है तुम विचार कर देखो यह निश्चय तपस्यामें विघ्न करनेवाली है ॥ १९ ॥ यह सुनो देवताओंकी स्त्रियें कैसा मनमोहन ध्यान विनाशक गान करती हैं! बोध होता है, हमारी तपस्याका भंग करनेके लिये देवराज इन्द्रने सब उपाय किये हैं॥ २० ॥ ऋतुराज असमयमें क्यों प्रीति उत्पन्न कराते हैं? इससे स्पष्ट विदित होता है कि असुरारि इन्द्रने हमारी तपस्यासे डरकर तपस्या भंग करनेके उपाय स्वरूप ये सब विघ्न नियोजित किये हैं ॥ २१ ॥ देखो, शीतल सुगंध मनोहर पवन प्रवाहित होता है, इन्द्रके कार्यके अतिरिक्त इसमें दूसरा कोई कारण दिखाई नही देता ॥ २२ ॥ विप्रवर बि भुदेव नारायण ये सब वचन कहते ही थे कि इसी समय मन्मथादि सब उनको दिखाई दिये ॥ २३ ॥

भगवान् नर और नारायण दोनोंही उनको देखकर आश्चर्यमें हुए ॥ २४ ॥ फिर उन्होंने मनोभव मेनका रंभा तिलोत्तमा पुष्पगंधा सुकेशी महाश्वेता मनोरमा ॥ २५ ॥ प्रमद्वारा चारुहासिनी संगीतकी जाननेवाली घृताची, चन्द्रप्रभा, कोकिलभाषिणी, सोमा, ॥२६॥ अम्बुजाक्षी, कांचनमालिनी, विद्युन्माला इन सब और अन्यान्य वरारोहा अप्सराओंको सन्मुख देखा ॥ २७ ॥ आठ हजार पांच सौ अप्सरागण और कामकी विस्तृत सेनाको देखकर दोनों मुनि विस्मित हुए ॥ २८ ॥ तब दिव्यमालासे शोभायमान दिव्याभरण युक्त देवताओंकी स्त्रियें दोनों मुनियोंको प्रणामकर सन्मुख अवस्थिति करने लगीं ॥ २९ ॥ फिर उन सब अप्सराओंने पृथ्वीतलमें दुर्लभ और कामदेवका बढ़ानेवाला स्वर्गीय संगीत आरंभ किया ॥ ३० ॥ भगवान् विष्णुस्वरूप नर

ददर्श भगवान्सर्वान्नरो नारायणस्तथा ॥ विस्मयाविष्टमनसौ बभूवतुरुभावपि ॥२४॥ मन्मथं मेनकांचैव रंभाचैव तिलोत्तमाम् ॥ पुष्पगंधां सुकेशीं च महाश्वेतां मनोरमाम् ॥२५॥ प्रमद्वरां घृताचीं च गीतज्ञां चारुहासिनीम् ॥ चंद्रप्रभां च सोमां च कोकिलालापमंडिताम्॥२६॥ विद्युन्मालांबुजाक्षीं च तथा कांचनमालिनीम् ॥ एताश्चान्या वरारोहा दृष्टास्ताभ्यां तदांऽतिके ॥२७॥ तासां ह्यष्टसहस्राणि पंचाशदधिकानि च ॥ वीक्ष्य तौ विस्मितौ जातौ कामसैन्यं सुविस्तरम् ॥२८॥ प्रणम्याग्रे स्थिताः सर्वा देववारांगनास्तदा ॥ दिव्याऽऽभरणभूषाढ्यादिव्यमाल्योपशोभिताः ॥ २९ ॥ जगुश्छलेन ताः सर्वाः पृथिव्यामतिदुर्लभम् ॥ तत्तथाऽवस्थितं दिव्यं मन्मथादिविवर्धनम् ॥ ३० ॥ शुश्राव भगवान्विष्णुर्नरो नारायणस्तदा ॥ श्रुत्वा प्रोवाच तास्तत्र प्रीत्या नारायणो मुनिः ॥ ३१ ॥ आस्यतां सुखमत्रैव करोम्यातिथ्यमद्भुतम् ॥ भवंत्योऽतिथिधर्मेण प्राप्ताः वर्गात्सुमध्यमाः ॥३२॥ व्यास उवाच ॥ साभिमानस्तु संजातास्तदा नारायणो मुनिः ॥ इंद्रेण प्रेषिता नूनं तथा विघ्नचिकीर्षया ॥३३॥ वराक्यः का इमाः सर्वाः सृजाम्यद्य नवाः किल ॥ एताभ्यो दिव्यरूपाश्च दर्शयामि तपोबलम् ॥३४॥

नारायण दोनों मुनियोंने वह संगीत सुनकर प्रसन्नता पूर्वक उनसे कहा ॥ ३१ ॥ हे शोभनमध्यमा ! अप्सरागण ! तुम स्वर्गसे अतिथि धर्ममें यहां आई हो तुम इस स्थानमें सुख पूर्वक रहो हम भलीभांतिसे तुम्हारा अतिथिसत्कार करेंगे ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! देवराज इन्द्रने तपस्यामें विघ्न करनेकी इच्छासे निःसंदेह इन अप्सराओंको भेजा है यह चिन्ता कर नर नारायण दोनों मुनियोंने अभिमानमें पूर्ण हो विचारा ॥ ३३ ॥ कि ये सब अप्सरा सामान्य रूपसंपन्न और जघन्य निकृष्ट हैं. हम इस समय इनसेभी श्रेष्ठ दिव्यरूपसंपन्न नूतन अप्सराओंको उत्पन्न करके अपने तपोबलको दिखावें ॥ ३४ ॥

मनमें इसप्रकार विचार करद्वारा ऊरुताडन करके शीघ्रही एक सर्वाङ्गसुंदरी नारी उत्पन्न करी ॥ ३५ ॥ वह शुभानना मुनिवरके ऊरुस्थलसे उत्पन्न होनेसे उर्वशीनामसे विख्यात हुई. अनन्तर वे सब अप्सरा इसको देखकर अत्यन्त अचंभेमें हुईं ॥ ३६ ॥ अनन्तर नारायण मुनिने इन्द्रकी भेजी अप्सराओंकी सेवा करनेको उनकी अपेक्षाभी सुंदरी उतनीही स्त्रियें सहसा उत्पन्न करीं ॥ ३७॥ उन उत्पन्न हुई समस्त अप्सराओंने अनेक भांतिके उपहार द्रव्य हाथमें लिये गान और हास्य करते, अञ्जली बांध दोनों मुनियोंके आगे स्थित हो प्रणाम किया॥ ३८ ॥ इंद्रकी भेजी देवांगना अन्यको मोहित करनेवाली होकरभी अपने मनको भ्रम करनेवाली तपस्याके फल सम्पत्ति स्वरूपिणी सर्वाङ्गसुंदरी उर्वशीको देखकर मोहित हुई और उनके सब अङ्ग रोमांचसे उत्फुल्ल होगये

इति संचिन्त्य मनसा करेणोरुं प्रताड्य वै ॥ तरसोत्पादयामास नारीं सर्वांगसुंदरीम् ॥ ३५ ॥ नारायणोरुसंभूता ह्युर्वशीति ततः शुभ ॥ दहशुस्ताः स्थितास्तत्र विस्मयं परमं ययुः ॥३६॥ तासां च परिचर्यार्थं तावतीश्चातिसुंदरीः ॥ प्रादुश्चकार तरसा तदा मुनिरसंभ्रमः ॥३७॥ गायंत्यश्च हसंत्यश्च नानोपायनपाणयः ॥ प्रणेमुस्ता मुनी सर्वाः स्थिताः कृत्वाऽञ्जलिं पुरः ॥ ३८ ॥ तां वीक्ष्य विभ्रमकरीं तपसो विभूतिं देवांगना हि मुमुहुः प्रविमोहयंत्यः ॥ ऊचुश्च तौ प्रमुदिताननपद्मशोभा रोमोद्गमोल्लसित चारुनिजां गवल्ल्यः ॥३९॥ कुर्युः कथं स्तुतिमहो तपसो महत्त्वं धैर्यं तथैव भवतामभिवीक्ष्य बालाः ॥ अस्मत्कटाक्ष विषदिग्धशरेण दग्धः को वा न तत्र भवतां मनसो न्यथा न ॥ ४० ॥ ज्ञातौ युवां नरहरे परमांशभूतौ देवौ मुनी शमदमादिनिधि सदैव ॥ सेवानिमित्तमिह नो गमनं न कामं कार्यं हरेःशतमखस्य विधातुमेव ॥ ४१ ॥

तब वे अपने अपने वदनकमलकी परम शोभा विस्तारित करके दोनों मुनियोंसे कहने लगीं ॥ ३९ ॥ हे देवयुगल ! हम बाला हैं हमको कुछभी ज्ञान नहीं है । आपकी तपस्याका महत्त्व और आपका धैर्य देखकर हम किस प्रकार आपकी स्तुति करनेमें समर्थ हों, अहो ! हमारे कटाक्षरूप विषदग्ध बाणसे जो दग्ध न हो ऐसा पुरुष पृथ्वीतलमें दिखाई नहीं देता. किन्तु उससे आपके मनमें कुछभी विकार दिखाई नहीं देता, अतएव आपका माहात्म्य अति आश्चर्यजनक है ॥ ४० ॥ हम जानती हैं आप दोनोंही अंश विष्णुके स्वरूप देव और मननशील तथा शमदमादिही आपके निधि स्वरूप हैं। आपकी सेवाके लिये हम इस स्थानमें नहीं आई हैं. वरन् आपकी तपस्यामें विघ्नसंपादनरूप देवराज इंद्रका कार्य साधनके लिये ही हम इस स्थानमें आई हैं ॥४१ ॥

दे. भा. हमारे इस प्रकार दुर्जन होनेपर भी हमारे किसी संचित भाग्यके फलसे आपका दर्शन प्राप्त हुआ। उससे हम अवगत नहीं हैं और हमारे समान अपराध
॥ १८॥ करनेवाले व्यक्तिके प्रति शापादि प्रदान करनेमें समर्थ होकर भी अपना जन जान जो आपने शापादिप्रदान न करके मनस्ताप दूर किया. इससे आपका क्षमागुण अत्यन्त प्रशंसनीय हुआ. हम जानती हैं ॥ ४२ ॥ महानुभाव पण्डितगण तुच्छ फलप्रद शापादिसे अपनी तपस्याका व्यय नहीं करते. व्यासजी बोले हे राजन्! काम और लोभके जीतनेवाले वे धर्मपुत्र दोनों महर्षि विनयावनत सुरकामिनीगणोंके इस प्रकारके वचन सुनकर ॥ ४३ ॥ प्रीत और प्रसन्नवदन हुए और अपने तपकी प्रभासे प्रदीप्ताङ्ग हो उनसे कहने लगे. नर नारायण बोले हे रमणीगण! हम तुम्हारे प्रति संतुष्ट हुए हैं. तुम अभिलषित वर

भाग्येन केन युवयोः किल दर्शनं नः संपादितं न विदितं खलु संचितं तत् ॥ चितं क्षमं निजजने विहितं युवाभ्यामस्मद्विधे किल कृतागसि तापमुक्तम् ॥ ४२ ॥ कुर्वंति नैव विबुधास्तपसो व्ययं वै शापेन तुच्छफलदेन महानुभावाः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्थं निशम्य वचनं सुरकामिनीनां तावूचतुर्मुनिवरौ विनयानतानाम् ॥४३॥ प्रीतौ प्रसन्नवदनौ जितकामलोभौ धर्मात्मजौ निजतपोरुचिशोभितांगौ ॥ नरनारायणावूचतुः ॥ ब्रुवंतु वांछितान्कामान्ददावस्तुष्टमानसौ ॥४४॥ यांतु स्वर्गं गृहीत्वेमामुर्वशीं चारुलोचनाम् ॥ उपायनमियं बाला गच्छत्वद्य मनोहरा ॥४५॥ दत्ताऽऽवाभ्यां मघवतः प्रीणनायोरुसंभवा ॥ स्वस्त्यस्तु सर्वदेवेभ्यो यथेष्टं प्रव्रजंतु च ॥४६॥ "न कस्यापि तपोविघ्नं प्रकर्तव्यमतः परम्" ॥ देव्य ऊचुः ॥ क्व गच्छामो महाभाग प्राप्तास्ते पादपंकजम् ॥ नारायण सुरश्रेष्ठ भक्त्या परमया मुदा ॥ ४७ ॥ वांछितं चेद्वरं नाथ ददासि मधुसूदन॥तुष्टः कमलपत्राक्ष ब्रवीमो मनसेप्सितम् ॥ ४८ ॥

मांगो. हम इसी समय वह प्रदान करेंगे॥ ४४ ॥ फिर तुम इस शोभायमान नेत्रवाली उर्वशीको लेकर स्वर्गमें चली जाओ यह मनोरमा बालिका उर्वशी देवराजका उपहारस्वरूप तुम्हारे संग गमन करे ॥ ४५ ॥ हमने अमरराजकी प्रीतिके लिये ऊरुसे उत्पन्न हुई इस उर्वशीको प्रदान किया. इस समय सब
भा. टी. च. देवताओंका कल्याण हो, तुम अपने अपने इष्ट स्थानमें जाओ इसके पीछे फिर किसीकी तपस्यामें विघ्न न करना ॥ ४६ ॥ अप्सरागणोंने कहा हे
अ. ६ नारायण! हे सुरश्रेष्ठ! हम परमभक्तिवशतः आपके चरणकमलोंको प्राप्त होकर अत्यन्त आह्लादित हुई हैं. हम इस समय कहां जायँ ॥ ४७॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! हे कमललोचन! आप यदि सन्तुष्ट होकर हमको वांछित वर देते हैं तो अपने मनोरथ आपसे कहती हैं सुनिये ॥ ४८ ॥

हे देवेश! आप जगत्के पति हैं. अतएव आप हमारे पति हूजिये. हे परंतप! हम प्रसन्नचित्तसे आपकी सेवामें सदा नियुक्त रहेंगी ॥ ४९ ॥ आपने जिन सब नारियोंको उत्पन्न किया है वे शोभायमान नेत्रवाली रमणीगणभी इस स्थानमें विद्यमान हैं इस समय उर्वशी इत्यादि ॥ ५० ॥ नारीगण सभी आपकी आज्ञासे स्वर्गमें गमन करें और हम सोलह हजार पांचसो रमणी इस स्थानमें आपकी सेवा करती रहें ॥ ५१ ॥ हे माधव! आप देवतागणोंके प्रभु हैं अतएव हमको वांछित वर देकर आप सत्यभाषी हूजिये. तत्त्वदर्शी धर्मके जाननेवाले मुनियोंने कहा है कि कामातुर स्त्रियोंके आशाका भंग करनेसे हिंसाजनित पापमें लिप्त होना पड़ता है ॥ ५२ ॥ हम भाग्यवशतः स्वर्गसे इस स्थानमें आकर प्रेममें निमग्न हुई हैं ॥ ५३ ॥ हे देवेश! आप जगत्के

पतिस्त्वं भव देवेश वरमेनं परंतप ॥ भवामः प्रीतियुक्तास्त्वां सेवितुं जगदीश्वर ॥४९॥ त्वया चोत्पादिता नार्यः संत्यन्याश्चारुलोचनाः ॥ उर्वश्याद्यास्तथा यांतु स्वर्गं वै भवदाज्ञया ॥ ५० ॥ स्त्रीणां षोडशसाहस्रं तिष्ठत्वत्र शतार्धकम् ॥ सेवान्तेऽत्र करिष्यामो युवयोस्ताप सोत्तमौ ॥ ५१ ॥ वांछितं देहि देवेश सत्यवाग्भव माधव ॥ आशाभंगो हि नारीणां हिंसनं परिकीर्तितम् ॥ ५२ ॥ कामतानां च मुनि भिर्धर्मज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ भाग्ययोगादिह प्राप्ताः स्वर्गात्प्रेमपरिप्लुताः ॥ ५३ ॥ त्यक्तुं नार्हसि देवेश समर्थोऽसि जगत्पते ॥ नारायण उवाच ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं तु तपस्तप्तं महाऽत्र वै ॥ ५४ ॥ जितेन्द्रियेण चार्वंग्यः कथं भंगं करोम्यतः ॥ नेच्छा कामे सुखे काचित्सुख धर्मविनाशके ॥ ५५ ॥ पशूनामपि साधर्म्ये रमेत मतिमान्कथम् ॥ अप्सरस ऊचुः ॥ शब्दादीनां च पंचानां मध्ये स्पर्शसुखं वरम् ॥ ५६ ॥ आनंदरसमूलं वै नान्यदस्ति सुखं किल ॥ अतोऽस्माकं महाराज वचनं कुरु सर्वथा ॥ ५७ ॥

स्वामी हैं, आप सभी कार्यमें समर्थ हैं अत एव आप हमको परित्याग नहीं कीजिये. नारायणने कहा हे तन्वंगी अप्सराओ! मैंने इस स्थानमें पूर्ण हजार वर्षपर्यन्त जितेंद्रिय होकर तपस्या करी है ॥ ५४ ॥ इसमय किसप्रकार विषयसंगमें लिप्त होकर उस तपस्याका भंग कर सकता हूँ? परमानंद और धर्मके विनाशक विषयसंभोग सुखमें हमारी वासना नहीं होती ॥ ५५ ॥ क्यों कि कौन मतिमान् पशुके समान विषयसंभोग धर्ममें प्रवृत्त हो सकता है ? अप्सरा गणोंने कहा हे मुनिवर शब्दादिपाँचोंमें स्पर्शसुख ही ॥ ५६ ॥ आनंदरसमूलक और श्रेष्ठ है इसके समान श्रेष्ठ सुख दूसरा और कुछ नहीं है अतएव आप हमारे वचनानुसार कार्य करके आनन्दरसभोग कीजिये ॥ ५७ ॥

आप इस गंधमादन पर्वतमें अत्यन्त सुख प्राप्त करके विचरण कीजिये ! आप यदि स्वर्गकी कामना करते हैं तो जानिये कि गंधमादनसे श्रेष्ठ स्वर्ग दूसरा नहीं है ॥ ५८ ॥ आप इस परम मनोहर शोभायमान स्थानमें सुराङ्गनागणोंके सहित परम सुखसे विहार करके परमानन्दरस अनुभव कीजिये ॥ ५९ ॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! महत् प्रभाव संपन्न धर्मनंदन नारायण उन अप्सराओंके इस प्रकार वचन सुनकर अपने कर्त्तव्य कार्यकी चिंता करने लगे ॥ १ ॥ यदि मैं इस समय विषयासङ्गमें प्रवृत्त हूं तो मुनिगणोंमें अवश्य ही उपहासका भाजन हूंगा और अहंकार ही धर्मविनाशका आदि और प्रधानमूल है, अहंकारसे ही जो यह दुःख उपस्थित हुआ है इस विषयके विचारमें अब प्रयोजन नहीं है ॥ २ ॥

निर्भरं सुखमासाद्य चरस्व गंधमादने ॥ यदि वांछसि नाकत्वं नाऽधिको गंधमादनात् ॥ ५८ ॥ रमस्वाऽत्र शुभे स्थाने प्राप्य सर्वाः सुरांगनाः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ व्यास उवास ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तासां धर्म पुत्रः प्रतापवान् ॥ विमर्शमकरोच्चित्ते किं कर्तव्यं मयाऽधुना ॥ १ ॥ "हास्योऽहं मुनिवृन्देषु भविष्याम्यद्य संगमात् ॥ " अहंकारादिदं प्राप्तं दुःखं नाऽत्र विचारणा ॥ मूलं धर्मविनाशस्य प्रथमं यदहं कृतिः ॥२॥ मूलं संसारवृक्षस्य यतःप्रोक्तो महात्मभिः ॥ दृष्ट्वा मौनं समाधाय न स्थितोऽहं समागतम् ॥ ३ ॥ वारांगना गणं जुष्टं तेनाऽऽसं दुःखभाजनम् ॥ उत्पादितास्तथा नार्यो मया धर्मव्ययेन वै ॥ ४ ॥ तास्तु मां बाधितुं वृत्ताः कामार्ताः प्रमदोत्तमाः ॥ ऊर्णनाभिरिवाद्याऽहं जालेन स्वकृतेन वै ॥ ५ ॥ बद्धोऽस्मि सुदृढेनाऽत्र किं कर्तव्यमितः परम् ॥ यदि चिंतां समुत्सृज्य संत्यजाम्यबला इमाः ॥ ६ ॥

महात्मा महर्षिगण कहते हैं कि अहंकार ही संसाररूपी वृक्षकी जड है; मैंने वाराङ्गना गणोंको देखकर मौनावलम्बन पूर्वक अवस्थान न किया ॥ ३ ॥ वरन उनसे बात चीत इत्यादि की है इसीसे दुःखका भाजन हुआ। विशेषतः धर्मव्यय करके स्त्रियोंको उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥ इन्द्रकी भेजी यह उत्तम और मनोहर प्रमदागण कामातुर होकर तपोधर्षण तपके नाश करनेमें प्रवृत हुई हैं यदि अहंकारसे इनको उत्पन्न न करता तो मुझको यह दुःख उपस्थित ही नहीं होता । इस समय मैं ऊर्णनाभ (मकरी) के समान अपने बनाये दृढजालमें स्वयं ही बंध गया, अब मुझको क्या करना चाहिये ॥ ५ ॥ इन तपके नाशनेवाली स्त्रियोंके त्याग करनेमें क्या चिंता है यह विचारकर यदि इन अबलागणोंको परित्याग करें ॥ ६ ॥

तो यह भग्नमनोरथ हो केवल शाप देकर चली जांयगी तो शीघ्र भारी विपदसे छूटकर विजन स्थानके मध्य उत्तम तपस्या करनेमें समर्थ हूंगा ॥ ७॥ अतएव क्रोध प्रगट करके इन सुन्दरी गणोंको परित्याग करूं। व्यासजी बोले हे राजन्! नारायण मुनि ॥ ८ ॥ सुखोत्पादन साधनार्थ इस प्रकार चिन्ता करके मनमें विचारने लगे कि यह दूसरा महाशत्रु क्रोध त्रैलोक्यमें अत्यन्त सन्तापदायक है ॥ ९ ॥ यह कामसे भी अधिक बलवान् और लोभसे भी अत्यन्त दारुण है। मनुष्यगण क्रोधयुक्त होकर प्राणविनाशिनी हिंसा करते हैं ॥ १० ॥ यह हिंसा नरकका बगीचा भूमिको दीर्घिका रूपिणी (बावड़ी) है और सब जीवोंको दुःख देनेवाली है जिस प्रकार वृक्षोंके संघर्षणसे अग्नि उत्पन्न होकर अपनी उत्पत्तिके कारण वृक्षोंको ही जलाती है. ॥ ११ ॥ इसी प्रकार दारुण क्रोध भी देहसे उत्पन्न होकर

शप्त्वा भ्रष्टा व्रजिष्यंति सर्वा भग्नमनोरथाः ॥ मुक्तोऽहं संचरिष्यामि विजने परमं तपः ॥ ७ ॥ तस्मात्क्रोधं समुत्पाद्य त्यक्षामि सुंदरी गणम् ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचित्य मनसा मुनिर्नारायणस्तदा ॥८॥ विमर्शमकरोच्चित्ते सुखोत्पादनसाधने ॥ द्वितीयोऽयं महाशत्रुः क्रोधः संतापकारकः ॥ ९ ॥ कामादप्यधिको लोके लोभादपि च दारुणः ॥ क्रोधाभिभूतः कुरुते हिंसां प्राणविघातिनीम् ॥ १० ॥ दुःखदां सर्वभूतानां नरकारामदीर्घिकाम् ॥ यथाग्निर्घर्षणाज्जातः पादपं प्रदहेत्तथा ॥ ११ ॥ देहोत्पन्नस्तथा क्रोधो देहं दहति दारुणः ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचित्य मानं तं भ्रातरं दीनमानसम् ॥ १२ ॥ उवाच वचनं तथ्यं नरो धर्मसुतोऽनुजः ॥ नर उवाच ॥ नारायण महाभाग कोपं यच्छ महामते ॥ १३ ॥ शांतम्भावं समाश्रित्य नाशयाऽहंकृतिं पराम् ॥ पुराऽहंकारदोषेण तपो नष्टं हि लाऽऽवयोः ॥ १४ ॥ संग्रामश्चाभवत्ताभ्यां भावाभ्यामसुरेण ह ॥ दिव्यवर्ष सहस्रं तु प्रह्लादेन महाद्भुतम् ॥ १५ ॥ दुःखं बहुतरं प्राप्तं तत्राऽऽवाभ्यां सुरोत्तम ॥ तस्मात्क्रोधं परित्यज्य शांतो भव मुनीश्वर ॥ १६ ॥

देहको ही जलाता है. द्वैपायनने कहा नर नामक धर्मके छोटे पुत्रने भ्राताको इस प्रकार चिन्तातुर और दीनमन देखकर ॥ १२ ॥ यथार्थ वचन कहे नर बोले, हेनारायण ! आप महाभाग और महामति हैं ॥ १३ ॥ अतएव क्रोध भावको दूरकर शान्तभाव अवलम्बन पूर्वक दुर्द्धर्ष अहंकारका विनाश कीजिये आपको क्या स्मरण नहीं है कि पूर्वमें अहंकारके दोषसे ही हमारी तपस्या नष्ट हुई थी ॥ १४ ॥ और दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त असुरेन्द्र प्रह्लादके संग अत्यन्त अद्भुत संग्राम उपस्थित हुआ था ॥ १५ ॥ हे सुरोत्तम ! उसमें हमने अत्यन्त दुःख पाया था अतएव हे मुनीन्द्र ! आप क्रोध भावको छोड़कर शान्तभावका अवलम्बन कीजिये ॥ १६ ॥

"मुनिगण कहते हैं कि; शांति ही तपस्याकी एक मात्र मूल है" व्यासजी बोले हे ! नरऋषिके ये सब वचन सुनकर धर्मनंदन नारायणने शांतभावका अवलम्बन किया, जन्मेजयने कहा हे मुनीश्वर ! महात्मा प्रह्लाद विष्णुभक्त और शांतचित्त थे ॥ १७ ॥ पूर्वकालमें उनके संग किस प्रकार युद्ध उपस्थित हुआ था ? नर नारायण दोनों ऋषियोंने किस प्रकार उनसे युद्ध किया था ? इस विषयमें मुझको अत्यन्तसंशय उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ दोनों धर्मपुत्र तापस और शांतचित्त थे इनके सहित दैत्यसुतका समागम किस प्रकार हुआ था ॥ १९ ॥ उन महात्माके संग दोनों ऋषियोंने किस प्रकार संग्राम किया था ? प्रह्लाद भी अत्यंत धार्मिक, ज्ञानवान् और एकान्त विष्णुपरायण थे ॥ २० ॥ नरनरायण भी सत्वगुणसंपन्न तापस थे, अतएव प्रह्लादके संग यदि

"शांतत्वं तपसो मूलं मुनिभिः परीकीर्तितम्" ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा शांतोऽभूद्धर्मनंदनः ॥ जनमेजय उवाच ॥ संशयोऽयं मुनिश्रेष्ठ प्रह्लादेन महात्मना ॥ १७ ॥ विष्णुभक्तेन शांतेन कथं युद्धं कृतं पुरा ॥ कृतवंतौ कथं युद्धं नरनारायणावृषी ॥ १८ ॥ तापसौ धर्मपुत्रौ द्वौ सुशांतमानसावुभौ ॥ समागमः कथं जातस्तयोर्दैत्यसुतस्य च ॥१९॥ संग्रामस्तु कथं ताभ्यां कृतस्तेन महात्मना॥ प्रह्लादोऽप्यतिधर्मात्मा ज्ञानवान्विष्णुतत्परः ॥ २० ॥ नरनारायणौ तद्वत्तापसौ सत्त्वसंस्थितौ ॥ तेन ताभ्यां समुद्भूतं वैरं यदि परस्परम् ॥ २१ ॥ तदा तपसि धर्मे च श्रम एव हि केवलम् ॥ क्व जपः क्व तपश्चर्या पुरा सत्ययुगेऽपि च ॥ २२ ॥ तादृशैर्न जितं चित्तं क्रोधाऽहंकारसंवृतम् ॥ न क्रोधो न च मात्सर्यमहंकारांकुरं विना ॥ २३ ॥ अहंकारात्समुत्पन्नाः कामक्रोधादयः किल ॥ वर्षकोटि सहस्रं तु तपः कृत्वाऽतिदारुणम् ॥ २४ ॥ अहंकारांकुरे जाते व्यर्थं भवति सर्वथा ॥ यथा सूर्योदये जाते तमोरूपं न तिष्ठति ॥ २५ ॥ अहंकारांकुरस्याऽग्रे तथा पुण्यं न तिष्ठति ॥ प्रह्लादोऽपि महाभाग हरिणा समयुध्यत ॥ २६ ॥

नारायणका वैरभाव उत्पन्न हुआ था ॥ २१ ॥ तो पहिले सतयुगके समय भी तपस्या धर्ममें केवल श्रममात्र ही दिखाई देता है तथा जप औरतप सभी वृथा बोध होता है ॥ २२ ॥ऐसे तपस्वी भी क्रोधवृत और अहंकाराच्छन्न चित्तको नहीं जीत सके । क्योंकि अहंकारके अंकुर विना क्रोध और मात्सर्य कभी उत्पन्न नहीं होसकता ॥ २३ ॥ अहंकार मेही कामक्रोधादि उत्पन्न होते हैं, कोटिसहस्रवर्ष कठिन तपस्या करके भी ॥ २४ ॥ यदि अहंकारका अंकुर उत्पन्न हो, तो वह संपूर्ण तप व्यर्थ हो जाता है. जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार का लेशमात्रभी नहीं रहसकता ॥ २५ ॥ इसी प्रकार अहंकारके अंकुरका अग्रभाग उदित होनेमे किंचित् भी पुण्य नहीं रहता प्रह्लादने भी यदि बलवान् हरिके संग युद्ध किया था ॥ २६ ॥

तब तो पृथ्वीमें सुकृत सभी विफल होगया है, शान्तचित्त नर नारायण दोनों ऋषियोंने परम पदार्थ तपस्याको त्यागकर जब युद्ध किया था ॥ २७ ॥ तब शान्ति और सुकृत कहां रही? जब कि इस प्रकार सत्त्वगुणसंपन्न दोनों ऋषि अहंकारको नहीं जीतसके ॥ २८ ॥ तो मेरे समान असारचित्त पुरुषोंको अहंकार नाश विषयमें फिर क्या कहना है इस प्रकार महान् व्यक्तिगण जब अहंकारसे मुक्त नहीं थे, तब तीनों भुवनोंमें अहंकाररहित और कौन होसकता है ॥ २९ ॥ मैं निश्चय जानता हूं इस विश्वमें अहंकारमुक्त न कोई हुआ न होगा. लोहेकी बेडी वा काष्ठकी बेडीसेभी मनुष्य मुक्त हो सकता है ॥ ३० ॥ किन्तु एकबार अहंकारसे बांधनेंपर फिर कभी उससे मुक्त नहीं हो सकता यह स्थावर जंगमात्मक संपूर्ण जगत अहंकारसे आवृत होकर ॥ ३१ ॥ विष्ठामूत्रप्रदूषित इस संसारमें भ्रमण करता है अतएव इस मोहसे ढकेहुए संसारमें ब्रह्मज्ञान कहां है ? ॥ ३२ ॥ हे सुव्रत ! मीमांसकगणोंका कर्मप्रधान मतही संगत और समीचीन

तदा व्यर्थं कृतं सर्वं सुकृतं किल भूपते ॥ नरनारायणौशांतौ विहाय परमं ततः ॥ २७ ॥ कृतवन्तौ यदा युद्धं क्व शमः सुकृतं पुनः ॥ ईदृग्भ्यां सत्त्वयुक्ताभ्या मजेया यद्यहंकृतिः ॥ २८ ॥ मादृशानां च का वार्ता मुनेऽहंकारसंक्षये ॥ अहंकारपरित्यक्तः कोऽप्यस्ति भुवनत्रये ॥ २९ ॥ न भूतो भविता नैव यस्त्यक्तस्तेन सर्वथा ॥ मुच्यते लोहनिगडैर्बद्धः काष्ठमयैस्तथा ॥ ३० ॥ अहंकारनिबद्धस्तु न कदाचिद्वि मुच्यते ॥ अहंकाराऽऽवृतं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ३१ ॥ भ्रमत्येव हि संसारे विष्ठामूत्रप्रदूषिते ॥ ब्रह्मज्ञान कुतस्तावत्संसारे मोहसंवृते ॥ ३२ ॥ मतं मीमांसकानां वै संमतं भाति सुव्रत ॥ महांतोऽपि सदा युक्ताः कामक्रोधाभिर्मुने ॥३३॥ मादृशानां कलावस्मिन्का कथा मुनिसत्तम ॥ व्यास उवाच ॥ कार्यं वै कारणाद्भिन्नं कथं भवति भारत ॥३४॥ कटकं कुंडलं चैव सुवर्णसदृशं भवेत् ॥ अहंकारोद्भवं सर्वं ब्रह्मांड सचराचरम् ॥ ३५ ॥ पटस्तंतुवशः प्रोक्तस्तद्वियुक्तः कथं भवेत् ॥ मायागुणैस्त्रिभिः सर्वं रचितं स्थिरजंगमम् ॥ ३६ ॥

दिखाई देता है हे मुने ! जब प्रधान प्रधान पुरुषभी सदा काम क्रोधादिसे ग्रसित हुए हैं ॥ ३३ ॥ तब कलयुगमें मेरे समान लघुचित्तकी फिर बातही क्या है ? व्यासजीने कहा हे भरतकुलभूषण ! कार्य कारणसे भिन्न है. यह किस प्रकार कहसकते हैं ॥ ३४ ॥ कटक और कुंडल उपाधि भेदसे भिन्न होनेपरभी दोनोंही अपने कारण सुवर्णके समान हैं. यह सब चराचर ब्रह्माण्ड अहंकारसे उत्पन्न है ॥ ३५ ॥ वस्त्रका कारण तन्तु है अतएव वस्त्र जिसप्रकार तन्तुसे अभिन्न नहीं हो सकता इसी प्रकार चराचरके सहित यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अहंकारसे उत्पन्न होकर किस प्रकार उससे मुक्त हो सकता है ! छोटे तृणसे लेके स्तम्बपर्यन्त स्थावर जंगात्मक यह संपूर्ण जगत् मायाके तीनगुणोंसे विरचित है ॥ ३६ ॥

अतएव उसके मिथ्या होनेपर ज्ञानीगणोंको उससे दुःखादि क्या है ? हे नृपसत्तम ! ब्रह्मा विष्णु और महादेवभी अहंकारसे मोहित होकर ॥ ३७ ॥ इस अगाध संसार समुद्रमें भ्रमण करते हैं, वसिष्ठ नारदादि महाज्ञानी मुनियोंने भी ॥ ३८ ॥ इस संसारमें वारंवार जन्म ग्रहण किया है और करते हैं. हे राजेन्द्र ! इस त्रैलोक्यमंडलमें ऐसा कोई भी देहधारी नहीं है ॥ ३९ ॥ जो मायाके गुणोंसे एकबार ही मुक्त तथा शान्त और परमात्मासुखमें अवस्थित हो सके. हे नृपोत्तम ! काम, क्रोध, लोभ और मोह सभी अहंकारसे उत्पन्न हैं ॥ ४० ॥ यह देहधारियोंमें किसीकोभी परित्याग नहीं करते. संपूर्ण वेद शास्त्र अध्ययन और सब पुराणोंकी आलोचना ॥ ४१ ॥ तीर्थपर्यटन, दान, ध्यान और देवार्चना करके भी मनुष्यगण विषयासक्त होकर तस्करके समान सभी कर्म

सतृणस्तंबपर्यंतं का तत्र परि देवना ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्ते चाहंकारमोहिताः ॥ ३७ ॥ भ्रमंत्यस्मिन्महागाधे संसारे नृपसत्तम ॥ वशिष्ठनारदाद्याश्च मुनयो ज्ञानिनः परम् ॥३८॥ तेऽभिभूताः संसरंति संसारेऽस्मिन्पुनःपुनः ॥ न कोऽप्यस्ति नृपश्रेष्ठ त्रिषु लोकेषु देहभृत् ॥३९॥ एभिर्मायागुणैर्मुक्तः शांत आत्मसुखे स्थितः ॥ कामक्रोधौ तथा लोभो मोहोऽहंकारसंभवः ॥४०॥ न मुंचंति नरं सर्वे देहवंतं नृपोत्तम ॥ अधीत्य वेदशास्त्राणि पुराणानि विचिन्त्य च ॥ ४१ ॥ कृत्वा तीर्थाऽटनं दानं ध्यानं चैव सुराऽर्चनम् ॥ करोति विषयासक्तः सर्वं कर्म च चौरवत् ॥ ४२ ॥ विचारयति नो पूर्वं काममोहमदान्वितः ॥ कृते युगेऽपि त्रेतायां द्वापरे कुरु नंदन ॥ ४३ ॥ विद्धोऽत्रास्ति च धर्मोऽपि का कथाऽद्य कलौ पुनः ॥ स्पर्धा सदैव सद्रोहा लोभामर्षौ च सर्वदा ॥ ४४ ॥ एवंविधोऽस्ति संसारो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ साधवो विरला लोके भवंति गतमत्सराः ॥४५॥ जितक्रोधा जितामर्षा दृष्टांतार्थं व्यवस्थिताः ॥ राजोवाच ॥ ते धन्याः कृतपुण्यास्ते मदमोहविवर्जिताः ॥ ४६ ॥

करते हैं ॥ ४२ ॥ वे कामान्ध मोहान्ध और महान्ध होकर प्रथम कुछ भी विचार करनेमें समर्थ नहीं होते. हे कुरुनन्दन ! इस संसारमें सत्य त्रेता और द्वापर ॥ ४३ ॥ इन तीनों युगोंमें ही धर्म विद्ध और क्षत विक्षत हुआ है अब कलिकालकी बात फिर क्या कहूं ? इस कलियुगमेंसदाही द्रोह लोभ और अमर्षादि वर्त्तमान रहता है ॥ ४४ ॥ अतएव यह काल जो अतिशय दूषित होगा इसमें फिर बातही क्या है ? इस कालमें मत्सरहीन क्रोधजित् अमर्षजित् साधुपुरुष अत्यन्त विरल हैं ॥ ४५ ॥ केवल आदर्श दिखानेके कोई कोई शान्तचित्त व्यक्ति वर्तमान रहते हैं. राजाने कहा हे मुने ! जो मोह रहित जितेन्द्रिय और सदाचार सम्पन्न हैं वे ही धन्य और पुण्यवान् हैं ॥ ४६ ॥

उन्होंने ही त्रैलोक्यको जीता है. हे मुनिवर ! मेरे महात्मा पिताने जो कार्य किया इससे मैं दुःखी हूं ॥ ४७ ॥ विना अपराध तपस्वीके गलेमें मरा हुआ सर्प डाला था. उनका वह पापकार्य स्मरण करके मैं अत्यन्त दुःखी और क्लिष्ट होता हूं. अतएव हे मुने ! आप कहिये मैं उसका क्या प्रतिकार कर सतका हूं ॥ ४८ ॥ हे भगवन् ! बुद्धिदोषसे इस विषयमें क्या संघटित होगा सो मैं नहीं कह सकता ! मूढात्मा मधुके लालचसे मधुही देखते हैं, सन्मुख जो प्राणसंहारक पर्वत पडा रहता है उसको वे बुद्धिके दोषसे कभी नहीं देख सकते ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सब लोक निन्दितकर्म करते हैं और सन्मुख जो घोरतर भयंकर नरक रहता है उसको वे मोहके वशीभूत होकर नहीं देखते, अतएव उससे डरते भी नहीं सो जो हो हे मुनींद्र ! पूर्वकालमें किस प्रकार युद्ध हुआ ? सो कहो

जितेंद्रियाः सदाचारा जितं तैर्भुवनत्रयम् ॥ दुनोमि पातकं स्मृत्वा पितुर्मम महात्मनः ॥४७॥ कृतस्तपस्विनः कंठे मृतसर्पो ह्यघं विना ॥ अतस्तस्य मुनिश्रेष्ठ भविता किं ममाग्रतः ॥ ४८ ॥ न जाने बुद्धिसंमोहात्किं वा कार्यं भविष्यति ॥ मधु पश्यति मूढात्मा प्रपातं नैव पश्यति ॥ ४९ ॥ करोति निंदितं कर्म नरकान्न बिभेति च ॥ कथं युद्धं पुरा वृत्तं विस्तरात्तद्वदस्व मे ॥ ५० ॥ प्रह्लादेन यथा चोग्रं नरनारायणस्य वै ॥ प्रह्लादस्तु कथं यातः पातालात्तद्वदस्व मे ॥५१॥ सारस्वते महातीर्थे पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥ नरनारायणौ शांतौ तापसौ मुनिसत्तमौ ॥ ५२ ॥ कृतवंतौ तथा युद्धं हेतुना केन मानद ॥ वैरं भवति वित्तार्थं दारार्थं वा परस्परम् ॥ ५३ ॥ एषणारहितौ कस्माच्चक्रतुः प्रधनं महत् ॥ प्रह्लादोऽपि च धर्मात्मा ज्ञात्वा देवौ सनातनौ ॥ ५४ ॥ कृतवान्स कथं युद्धं नरनारायणौ मुनी ॥ एतद्विस्तरतो ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि कारणम् ॥ ५५ ॥

॥ ५० ॥ प्रह्लादके संग नरनारायणका घोर युद्ध उपस्थित हुआ था ? यह आप विस्तार सहित मुझसे वर्णन कीजिये. प्रह्लाद पातालतलसे सारस्वतमहातीर्थमें तथा पुण्यकर और पवित्र बदरिकाश्रममें किस लिये आये थे ? यह आप मुझसे कहिये. हे मुने ! शान्त चित्त मुनिवर नरनारायणने ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ किस कारण प्रह्लादसे युद्ध किया था ? धन संपत्तिके लिये वा स्त्रीके लिये स्वभावसे ही परस्पर विवाद होता है ॥ ५३ ॥ उक्त दोनों महर्षि वासनारहित थे तो किस लिये घोर संग्राममें प्रवृत्त हुए थे ? और प्रह्लाद भी धर्मात्मा थे. वे जानते थे कि नर नारायण दोनों मुनि सनातन देवता हैं ॥ ५४ ॥ तब उन्होंने किस कारण उनसे युद्ध किया था ? हे ब्रह्मन् ! इसका कारण विस्तार सहित सुननेकी मुझको अत्यन्त वासना उत्पन्न हुई है ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ सूतजी बोले हे तापसगण ! परीक्षितके पुत्र जन्मेजयके इस प्रकार पूँछनेपर सत्यवतीके पुत्र विप्रोत्तम व्यास देवजीने उन सब विषयोंको विस्तार सहित कहा था ॥ १ ॥ धर्मात्मा जनमेजय उन सबको सुन, अपने पिता उत्तरातनय परीक्षितका दुश्चरित समझ अत्यन्त दुःखको प्राप्त हुए थे ॥ २ ॥ उनके पिताने ब्राह्मणकी अपमानता स्वरूप पापाचरणके कारण यमलोकमें गमन किया. उनका उद्धार करनेके लिये वह सदा ही मनमें चिन्ता करते थे ॥ ३ ॥ हे ऋषिगण ! पुन्नामक नरकसे पिताकी रक्षा करनेके कारण आत्मजका पुत्र यह नाम हुआ है; अतएव जिस किसी उपायसे पिताकी रक्षा करनेसे आत्मजका "पुत्र" नाम सार्थक होता है ॥ ४ ॥ उत्तराके पुत्र राजा परीक्षितने ब्राह्मणके शापसे

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा विप्रो राज्ञा पारीक्षितेन वै ॥ उवाच विस्तरात्सर्वं व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥ जनमेजयोऽपि धर्मात्मा निर्वेदं परमं गतः ॥ चित्तं दुश्चरितं मत्वा वैराटीतनयस्य वै ॥ २ ॥ तस्यैवोद्धरणार्थाय चकार सततं मनः ॥ विप्रावमानपापेन यमलोकं गतस्य वै ॥ ३ ॥ पुन्नामनरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं स्वकम् ॥ पुत्रेति नाम सार्थं स्यात्तेन तस्य मुनीश्वराः ॥ ४ ॥ सर्पदष्टं नृपं श्रुत्वा हर्म्योपरि मृतं तथा ॥ विप्रशापादौत्तरेयं स्नानदानविवर्जितम् ॥५॥ पितुर्गतिं निशम्याऽसौ निर्वेदं गतवान्नृपः ॥ पारीक्षितो महाभाग संतप्तो भयविह्वलः ॥६॥ पप्रच्छाऽथ मुनिं व्यासं गृहागतमनिंदितः ॥ नरनारायणस्येमां कथां परमविस्तृताम् ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ स यदा निहतो रौद्रो हिरण्यकशिपुर्नृप ॥ अभिषिक्तस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम तत्सुतः ॥ ८ ॥ तस्मिञ्छासति दैत्येंद्रे देवब्राह्मणपूजके ॥ मखैर्भूम्यां नृपतयो यजंतः श्रद्धयाऽन्विताः ॥ ९ ॥

स्नानदान रहित हो महलके ऊपर प्राण परित्याग किया है ॥५॥ पिताकी इस प्रकार दुर्गति सुनकर परीक्षितपुत्र महाभाग नरपति जनमेजय अत्यन्त संतप्त और भयसे विह्वल हो दुःखको प्राप्त हुए थे ॥ ६ ॥ फिर ऋषि श्रेष्ठ निर्मलात्मा व्यास देवजीके घर आनेपर उन्होंने उनसे नरनारायणकी यह अत्यन्त विस्तृत कथा पूछी थी ॥ ७ ॥ ऋषिवर व्यासदेवजी जनमेजयके प्रश्न सुनकर कहने लगे हे नृपते ! जब अत्यन्त उग्रवीर्य असुरराज हिरण्यकशिपु मारा गया तब प्रह्लाद नामक उसका पुत्र उस राज्यमें अभिषिक्त हुआ ॥ ८ ॥ देवता और ब्राह्मणोंका पूजनेवाला वह दैत्यश्रेष्ठ राज्य शासन करने लगा, तब पृथ्वी तलमें वास करनेवाले राजागण श्रद्धायुक्त हो अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंको तृप्त करने लगे ॥ ९ ॥

उसके राजत्वकालमें ब्राह्मणगण तपस्या धर्म और तीर्थयात्रामें निरत, वैश्यगण व्यापारादि अपने अपने कार्यमें आसक्त और शूद्रगण सेवामें मन लगाते हुए ॥ १० ॥ हरिके अवतार नृसिंहदेवने दैत्य राज प्रह्लादको पाताल तलमें स्थापित किया था, प्रह्लाद उस स्थानपर ही प्रजापालनमें निरत रहकर राज्य करते थे ॥ ११ ॥ किसी समय भृगुके पुत्र महातपा च्यवन मुनि नर्मदाके जलमें स्नान करनेको व्याहृतीश्वर नामक तीर्थमें गये थे ॥ १२ ॥ उस स्थानमें महानदी रेवाको देखकर उसमें उतर रहे थे इसी समयमें एक भयानक सर्पने आकर उनको ग्रहण किया ॥ १३ ॥ उन मुनिसत्तमने नागद्वारा ग्रसित हो ! पातालतलमें पहुँच अत्यन्त भयसे मनमें भगवान् देवदेव जनार्दन विष्णुका स्मरण किया था ॥ १४ ॥ पुण्डरीकाक्षका स्मरण करनेसे वह महासर्प निर्विष

ब्राह्मणाश्च तपोधर्मतीर्थयात्राश्च कुर्वते वैश्याश्च स्वस्ववृत्तिस्थाः शूद्राः शुश्रुषणे रताः ॥ १० ॥ नृसिंहेन च पाताले स्थापितः सोऽथ दैत्यराट् ॥ राज्यं चकार तत्रैव प्रजापालनतत्परः ॥ ११ ॥ कदाचिद्भृगुपुत्रोऽथ च्यवनाख्यो महातपाः ॥ जगाम नर्मदां स्नातुं तीर्थं वै व्याहृतीश्वरम् ॥ १२ ॥ रेवां महानदीं दृष्ट्वा ततस्तस्यामवातरत् ॥ उत्तरंतं प्रजग्राह नागो विषभयंकरः ॥ १३ ॥ गृहीतो भयभीतस्तु पाताले मुनि सत्तमः ॥ सस्मार मनसा विष्णुं देवदेवं जनार्दनम् ॥ १४ ॥ संस्मृते पुंडरीकाक्षे निर्विषोऽभून्महोरगः ॥ न प्राप च्यवनो दुःखं नीयमानो रसातलम् ॥ १५ ॥ द्विजिह्वेन मुनित्यक्तो निर्विण्णेनाऽतिशंकिना ॥ मां शपेत मुनि क्रुद्धस्तापसोऽयं महानिति ॥ १६ ॥ चचार नागकन्याभिः पूजितो मुनि सत्तमः ॥ विवेशाप्यथ नागानां दानवानां महत्पुरम् ॥१७॥ कदाचिद् भृगु पुत्रं तं विचरंतं पुरोत्तमे ॥ ददर्श दैत्यराजोऽसौ प्रह्लादो धर्म वत्सलः ॥१८॥ दृष्ट्वा तं पूजयामास मुनिं दैत्यपतिस्तदा ॥ पप्रच्छ कारणं किं ते पातालागमने वद॥१९॥

होगया था, इसलिये मुनिवर पातालमें पहुँचकर भी विषजनित किसी प्रकारके दुःखको प्राप्त नहीं हुए थे ॥ १५ ॥ तब सर्पराजने मुनिवरके प्रभावको जाना " फिर ये तपस्वी मुझको शाप देंगे " इस भयसे अत्यन्त शंकित और दुःखयुक्त हो उनको छोड़ दिया ॥ १६ ॥ मुनिसत्तम च्यवन नागकन्याओंसे पूजित वहां विचरण करने लगे. फिर एक समय नाग और दानवगणोंके परम मनोहर पुरमें गये ॥ १७ ॥ भृगुनंदन च्यवन किसी समय अन्तःपुरमें विचरण कर रहे थे. इसी समयमें दैत्यराज धर्मवत्सल प्रह्लादने उनको देखा ॥ १८ ॥ दैत्यराजने उनको देखकर उस समय उनकी पूजा करी और फिर उनसे पातालमें आनेका कारण पूछा ॥ १९ ॥

प्रह्लादने उनसे कहा हे द्विजोत्तम ! आप क्या इन्द्रके भेजे यहां आये हैं ? सो सत्य कहिये. मुझको बोध होता है कि दैत्यविद्वेषी इन्द्रने ही आपको मेरा राज्य देखनेके लिये भेजा है ॥ २० ॥ च्यवनने कहा हे राजन् ! इन्द्रके संग मेरा कोई भी कार्य और संगति नहीं है, उनका भेजा दूतकार्य करनेके लिये मैं आपकी नगरीमें क्यों आऊंगा ? ॥ २१ ॥ आप मुझको धर्मतत्पर ज्ञाननेत्र भृगुका पुत्र च्यवन जानिये. हे दैत्येन्द्र ! इन्द्रका भेजा हुआ जानकर किसी प्रकारकी शंका न कीजिये ॥ २२ ॥ हे राजेन्द्र ! मैंने स्नान करनेके लिये नर्मदाके पवित्र तीर्थमें जाय नदीके जलमें उतर रहा था, इसी अवसरमें एक सर्पने मुझको पकड़ लिया ॥ २३ ॥ तब मैंने विष्णुका स्मरण किया. विष्णुका स्मरण करनेसे सर्पने निर्विष होकर मुझे छोड़ दिया है ॥ २४ ॥ हे राजेन्द्र ! यहां आकर आपका

प्रेषितोऽसि किमिंद्रेण सत्यं ब्रूहि द्विजोत्तम ॥ दैत्यविद्वेषयुक्तेन मम राज्यदिदृक्षया ॥२०॥ च्यवन उवाच ॥ किं मे मघवता राजन्यद्हं प्रेषितः पुनः ॥ दूत कार्यं प्रकुर्वाणः प्राप्तवान्नगरे तव ॥ २१ ॥ विद्धि मां भृगुपुत्रं तं स्वनेत्रं धर्मतत्परम् । मा शंकां कुरु दैत्येंद्र वासवप्रेषितस्य वै ॥ २२ ॥ स्नानार्थं नर्मदां प्राप्तः पुण्यतीर्थे नृपोत्तम ॥ नद्यामेवावतीर्णोऽहं गृहीतश्च महाऽहिना ॥ २३ ॥ जातोऽसौ निर्विषः सर्पो विष्णोः संस्मरणा दिव ॥ मुक्तोऽहं तेन नागेन प्रभावात्स्मरणस्य वै ॥ २४ ॥ अत्राऽऽगतेन राजेंद्र मयाऽऽप्तं तव दर्शनम् ॥ विष्णुभक्तोऽसि दैत्येंद्र तद्भक्तं मां विचिंतय ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचः श्लक्ष्णं हिरण्यकशिपोः सुतः ॥ पप्रच्छ परया प्रीत्या तीर्थानि विविधानि च ॥ ॥ २६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ पृथिव्यां कानि तीर्थानि पुण्यानि मुनि सत्तम ॥ पाताले च तथाऽऽकाशे तानि नो वद विस्तरात् ॥ २७ ॥ च्यवन उवाच ॥ मनोवाक्कायशुद्धानां राजंस्तीर्थं पदेपदे ॥ तथा मलिनचित्तानां गंगाऽपि कीकटाऽधिका ॥२८॥ प्रथमं चेन्मनः शुद्धं जातं पापविवर्जितम् ॥ तदा तीर्थानि सर्वाणि पावनानि भवंति वै ॥ २९ ॥

दर्शन पाया. आप विष्णुके भक्त हैं मुझको भी उन्हीं विष्णुका भक्त जानिये ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लादने उनके इस प्रकार मीठे वचन सुनकर परम प्रीति सहित उनसे अनेक तीर्थोंका विषय पूछा ॥ २६ ॥ प्रह्लादने कहा हे मुनि सत्तम ! पृथ्वीतलमें, पातालमें, अथवा अकाशमंडलमें कौन कौन तीर्थ पुण्यदायक हैं ? उन सबका मुझसे विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ २७ ॥ च्यवनने कहा हे राजेंद्र जिसका देह, वाक्य और मन विशुद्ध हो गया है, उसको पदपदमें ही तीर्थ हैं, जिसका चित्त मलीन है उसको गंगाभी कीकटदेशसे अधिक कही गई हैं ॥ २८ ॥ यदि प्रथम मन पापरहित और विशुद्ध हो तो उसके पक्षमें सब तीर्थही पवित्रकर होते हैं ॥ २९ ॥

हे दैत्यसत्तम! गंगातीरमें अनेक नगर, वसति, व्रज वा गोष्ठ, आकर, ग्राम,क्षुद्रपल्ली, छोटे गाम ॥ ३० ॥ निषादनिवास और कैवर्त्तनिवास, हूण,म्लेच्छजाति, वङ्गजाति खस (जातिविशेष) अधिक क्या म्लेच्छगणोंके अनेक वासस्थान रहते हैं॥ ३१ ॥ वहांके निवासी मनुष्यगण अपनी इच्छानुसार सदाही ब्रह्मोपम गंगाजल पान करते हैं, और उसी जलमें स्नानादि करते हैं ॥ ३२ ॥ हे राजेन्द्र! उन सबमें कोई भी विशुद्धात्मा नहीं हो सकता तो देखिये जिसका चित्त विषयोंमें आसक्त है, सुतरां जो विनष्टचित्त हो रहा है उसको फिर तीर्थका क्या फल हो सकता है? ॥ ३३ ॥ तीर्थादि धर्म कर्मोविषयमें मनको ही प्रधान कारण जानना चाहिये अन्य कुछ भी नहीं है. जो शुद्धिकी कामना करते हैं मनको शुद्ध करनाही उनका प्रधान कर्त्तव्य है ॥ ३४ ॥ तीर्थवासी पुरुषगण तीर्थ स्थानमें अन्यव्यक्तिको छलकर महापापी होते हैं. तीर्थस्थानमें पापाचरण करने पर वह फिर नष्ट नहीं होता बरन वह पाप अनन्त और अक्षय

गंगातीरे हि सर्वत्र वसंति नगराणि च ॥ व्रजाश्चैवाकरा ग्रामाः सर्वे खेटातथाऽपरे ॥ ३० ॥ निषादानां निवासाश्च कैवर्तानां तथाऽपरे ॥ हूणवंगखसानां च म्लेच्छानां दैत्यसत्तम ॥ ३१ ॥ पिबंति सर्वदा गांगं जलं ब्रह्मोपमं सदा ॥ स्नानं कुर्वंति दैत्येंद्र त्रिकालं स्वेच्छया जनाः ॥ ३२ ॥ तत्रैकोऽपि विशुद्धात्मा न भवत्येव मारिष ॥ किं फलं तर्हि तीर्थस्य विषयोपहतात्मसु ॥ ३३ ॥ कारणं मन एवाऽऽत्र नान्यद्राजन्विचिन्तय ॥ मनः शुद्धिः प्रकर्तव्या सततं शुद्धिमिच्छता ॥३४॥ तीर्थवासी महापापी भवेत्तत्रान्यवंचनात् ॥ तत्रैवाऽऽचरितं पापमानंत्याय प्रकल्पते ॥ ३५ ॥ यथेंद्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते ॥ भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्नातो न शुध्यति ॥ ३६ ॥ प्रथमं मनसः शुद्धिः कर्तव्या शुभमिच्छता ॥ शुद्धे मनसि द्रव्यस्य शुद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ३७ ॥ तथैवाऽऽचारशुद्धिः स्यात्ततस्तीर्थं प्रसिध्यति ॥ अन्यथा तु कृत सर्वं व्यर्थं भवति तत्क्षणात् ॥ ३८ ॥ " हीनवर्णस्य संसर्गं तीर्थे गत्वा सदा त्यजेत् " ॥ भूतानुकंपनं चैव कर्तव्यं कर्मणा धिया ॥ यदि पृच्छसि राजेंद्र तीर्थं वक्ष्याम्यनुत्तमम् ॥ ३९ ॥

होता है ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार इन्द्रवारुणीका फल पकने पर भी मीठा नहीं हो सकता, इसीप्रकार जिसके चित्तका भाव दूषित है वह करोडबार तीर्थके जलमें स्नान करनेसे भी शुद्ध नहीं होता ॥ ३६ ॥ जो कल्याणकी कामना करते हैं पहिले मन शुद्ध करनाही उनका कर्तव्य है, मन शुद्ध होनेपर फिर द्रव्यशुद्धि ॥ ३७ ॥ तदनन्तर आचार शुद्धि और तदुपरांत तीर्थभ्रमण सिद्ध होता है. इसके अन्यथा होनेसे तत्काल समस्त व्यर्थ हो जाता है ॥ ३८ ॥ तीर्थमें जाकर हीनवर्णके सहित संसर्ग छोड बुद्धि और कर्मद्वारा जीवगणोंके प्रति दया प्रकाश करनी चाहिये. हे राजेन्द्र ! आपने पुण्यतीर्थकी कथा पूँछा है अतएव मैं अतिउत्तम सब तीर्थोंकी कथा आपसे कहता हूं श्रवण कीजिये ॥ ३९ ॥

हे नृप ! पुण्यदायक नैमिषारण्यही प्रथम है फिर चक्रतीर्थ और तदुपरांत पुष्कर तीर्थ है इनके अतिरिक्त पृथ्वीतलमें अन्यान्य अनेक तीर्थ हैं, उनकी गिनती नहीं है ॥ ४० ॥ हे नृपोत्तम ! इनके अतिरिक्त भूमण्डलमें अनेक पवित्र स्थान भी विद्यमान है, व्यासजी बोले हे राजन् ! दैत्यराज प्रह्लादने उनका यह वचन सुन नैमिषारण्यमें जानेके लिये उद्यत हो ॥ ४१ ॥ प्रसन्नतापूर्वक दैत्यगणोंसे चलनेको कहा. प्रह्लाद बोले हे महाभागगण ! तुमलोग सब उठो हम सब अभी नैमिषारण्यमें जायँगे ॥ ४२ ॥ पुंडरीकाक्ष पीतवासा अच्युतदेवके दर्शन कर चरितार्थ होंगे. व्यासजीने कहा हे राजन्! विष्णुभक्त प्रह्लादने जब इस प्रकार कहा तब सब दानवगण मुदितमन हो ॥ ४३ ॥ उनके संग पातालसे निकले उन महाबल दैत्य और दानवगणोंने मिलकर ॥ ४४ ॥ प्रसन्नचित्तसे

प्रथमं नैमिषं पुण्यं चक्रतीर्थं च पुष्करम् ॥ अन्येषां चैव तीर्थानां संख्या नास्ति महीतले ॥ ४० ॥ पावनानि च स्थानानि बहूनि नृपसत्तम ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा नैमिषं गंतुमुद्यतः ॥ ४१ ॥ नोदयामास दैत्यान्वै हर्षनिर्भरमानसः ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ उत्तिष्ठंतु महाभागा गमिष्यामोऽद्य नैमिषम् ॥ ४२ ॥ द्रक्ष्यामः पुंडरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता विष्णुभक्तेन सर्वे ते दानवास्तदा ॥ ४३ ॥ तेनैव सह पातालान्निर्ययुः परया मुदा ॥ ते समेत्य च दैतेया दानवाश्च महाबलाः ॥ ४४ ॥ नैमिपारण्य मासाद्य स्नानं चक्रुर्मुदाऽन्विताः ॥ प्रह्लादस्तत्र तीर्थेषु चरन्दैत्यैः समन्वितः ॥ ४५ ॥ सरस्वतीं महापुण्यां ददर्श विमलोदकाम् ॥ तीर्थे तत्र नृपश्रेष्ठ प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ ४६ ॥ मनः प्रसन्नं संजातं स्नात्वा सारस्वते जले ॥ विधिवत्तत्र दैत्येंद्रः स्नानदानादिकं शुभे ॥४७॥ चकारातिप्रसन्नात्मा तीर्थे परमपावने ॥ इति श्रीदेवीभा० म० चतुर्थस्कंधेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ कुर्वस्तीर्थविधिं तत्र हिरण्यकशिपोःसुतः ॥ न्यग्रोधं सुमहच्छायमपश्यत्पुरतस्तदा ॥ १ ॥

वहाँ जाय स्नान किया था, प्रह्लादने उस तीर्थमें दैत्यगणोंके सहित विचरण करते करते ॥ ४५ ॥ महापुण्यदायक निर्मल जलवाली सरस्वती नदीका दर्शन किया. हे नरेन्द्र! सरस्वतीके विमल जलमें ॥ ४६ ॥ स्नानकरके महात्मा प्रह्लादका मन प्रसन्न हुआ. दैत्यराजने प्रसन्न होकर उस कल्याणप्रद परमपवित्र तीर्थमें स्नान दानादि कर्म विधिपूर्वक समापन किया था ॥ ४७ ॥ इस तीर्थमें प्रह्लाद बहुत प्रसन्नतासे सब कार्य करते हुए ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यसाजीने कहा हे राजन् ! हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लादने उस स्थानमें विधिपूर्वक तीर्थक्रिया करते करते पुरोभागमें छायाप्रधान एक वटका वृक्ष देखा ॥ १ ॥

फिर वहां गृध्रपक्षयुक्त, शाणित (धारवाले), सुतीक्ष्ण, महोज्वल बाणोंको सुसज्जित देख ॥ २ ॥ मनमें चिन्ता करने लगे कि, इस परमपवित्र पुण्यतीर्थरूप ऋषियोंके आश्रममें किसके शर रक्षित हैं ॥ ३ ॥ प्रह्लाद मनमें इस प्रकार चिन्ता करते ही थे कि इसी समय उन्होंने कृष्णाजिनधारी, ऊंची जटाआदि धारण किये धर्मपुत्र दोनों मुनि नरनारायणको ॥ ४ ॥ और उनके अग्रभागमें शास्त्रोक्तलक्षणयुक्त सुशोभित शार्ङ्ग और आजवगवनामक दो धनुष तथा अक्षय तरकस रक्खे हुए देखे ॥ ५ ॥ धर्मपुत्र महाभाग नर नारायण दोनों ऋषि ध्यानमें स्थित थे. असुरपालक प्रह्लाद उस समय उनको देख ॥ ६ ॥ क्रोधसे लाल लाल नेत्र करके कहने लगे हे दोनों तपस्वियो ! तुम्हारे मनमें क्या धर्मविनाशक दम्भने प्रवेश किया है ? ॥ ७ ॥ आपने कभी देखा वा सुना नहीं है कि,

ददर्श बाणानपरान्नाना जातीयकांस्तदा ॥ गृध्रपक्षयुतांस्तीव्राञ्छिलाधौतान्महोज्ज्वलान् ॥ २ ॥ चिंतयामास मनसा यस्येमे विशिखा स्त्विह ॥ ऋषीणा माश्रमे पुण्ये तीर्थे परमपावने ॥ ३ ॥ एवं चिंतयताऽनेन कृष्णाजिनधरौ मुनी ॥ समुन्नतजटाभारौ दृष्टौ धर्मसुतौ तदा ॥ ४ ॥ तयोरग्रे धृते शुभ्रे धनुषी लक्षणान्विते ॥ शर्ङ्गमाजगवं चैव तथाऽक्षय्यौ महेषुधी ॥ ५ ॥ ध्यानस्थौ तौ महाभागौ नरनाराय णावृषी ॥ दृष्ट्वा धर्मसुतौ तत्र दैत्यानामधिपस्तदा ॥ ६ ॥ क्रोधरक्तेक्षणस्तौ तु प्रोवाचऽसुरपालकः ॥ किं भवद्भ्यां समारब्धो दंभो धर्म विनाशनः ॥ ७ ॥ न श्रुतं नैव दृष्टं हि संसारेऽस्मिन्कदाऽपिहि ॥ क्व तपश्चरणं तीव्रं तथा चापस्य धारणम् ॥ ८ ॥ विरोधोऽयं युगे चाऽऽद्ये कथं युक्तं कलिप्रियम् ॥ ब्राह्मणस्य तपो युक्तं तत्र किं चापधारणम् ॥ ९ ॥ क्व जटाधारणं देहे क्वेषुधी च विडंबनो ॥ धर्म स्याऽऽचरणं युक्तं युवयोर्दिव्यभावयोः ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा नरः प्रोवाच भारत ॥ का ते चिंताऽत्र दैत्येंद्र वृथा तपसि चाऽऽवयो ॥ ११ ॥ सामर्थ्येसति यः कुर्यात्तत्संपद्येत तस्य हि ॥ आवां कार्यद्वये मंद समर्थौ लोकविश्रुतौ ॥ १२ ॥

संसारमें सतयुगके समय तपाचरण और उग्रशरासन धारण ॥ ८ ॥ इन दोनोंका अत्यन्त विरोध है, यह कलिकालके उपयुक्त हैं, सतयुगमें इन दोनोंका अनुष्ठान किस प्रकार संगत हो सकता है ? तपाचरण ही ब्राह्मणके उपयुक्त धर्म है. तब आप चाप क्यों धारण करते हैं ? ॥ ९ ॥ मस्तकमें जटाभार धारण करना कहां ? और विडम्बनास्वरूप धनुष बाण धारण करना कहां ? अतएव आपको दिव्य भावयुक्त होकर धर्मका आचरण करना ही युक्तिसंगत बोध होता है ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे भरत कुलभूषण ! मुनिवर नरनें प्रह्लादके इस प्रकार वचन सुनकर कहा हे दैत्येन्द्र ! हमारी इस तपस्याके विषयमें तुमको वृथा इतनी चिन्ता क्यों हुई है ? ॥ ११ ॥ जिसको सामर्थ्य है वह सबसे ही संपन्न होता है। हे मन्दबुद्धे ! हम इन दोनों कार्योंमें ही भलीभांति समर्थ हैं, यह तीनों लोकमें ही विख्यात है ॥ १२ ॥

हमको युद्ध और तपस्या इन दोनों कार्योंमें ही सामर्थ्य है, तुम इस विषयमें क्या करोगे यह मार्ग स्वच्छ पडा है, जहां इच्छा हो, वहां चले जाओ इस स्थानमें किस कारण श्लाघा प्रकाश करते हो ? ॥ १३ ॥ तुम मूढबुद्धि होकर ब्रह्मतेजको किस प्रकार जान सकते हो ? तुमको जानना चाहिये, कि जो सुखलाभ करनेकी अभिलाषा करते हैं, उनको ब्राह्मण संबन्धीय किसी विषयका विचार करना कभी उचित नहीं है ॥ १४ ॥ प्रह्लादने कहा हे दोनों तपस्वियो ! तुम मंदबुद्धि और वृथागर्वसे मोहित हो, धर्म–सेतुके प्रवर्तक दैत्यराज मेरे इस तीर्थमें विद्यमान रहते हैं ॥ १५ ॥ यहां अधर्माचरण युक्तियुक्त नहीं हो सकता हे तपोधन ! तुम्हारी युद्धके विषयमें क्या शक्ति है ? वह अभी मुझको दिखाओ ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! मुनिवर नरने प्रह्लादके यह वचन सुनकर

युद्धे तपसि सामर्थ्यं त्वं पुनः किं करिष्यसि ॥ गच्छ मार्गे यथाकामं कस्मादत्र विकत्थसे ॥ १३ ॥ ब्रह्मतेजो दुराराध्यं न त्वं वेद विमोहितः ॥ विप्रचर्चा न कर्तव्या प्राणिभिः सुखमीप्सुभिः ॥ १४ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तापसौ मंदबुद्धीस्थो मृषा वां गर्वमोहितौ ॥ मयि तिष्ठति दैत्येंद्रे धर्मसेतुप्रवर्तके ॥ १५ ॥ न युक्तमेतत्तीर्थेऽस्मिन्न धर्माऽऽचरणं पुनः ॥ का शक्तिस्तव युद्धेऽस्ति दर्शयाऽद्य तपोधन ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ उवाच ॥ तदाऽऽकर्ण्य वचस्तस्य नरस्तं प्रत्युवाच ह ॥ युध्यस्वाऽद्य मया सार्धं यदि ते मतिरीदृशी ॥ १७ ॥ अद्य ते स्फोटयिष्यामि मूर्धानमसुराधम ॥ "युद्धे श्रद्धा न ते पश्चाद्भविष्यति कदाचन" व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य दैत्येंद्रः कुपितस्तदा ॥ १८ ॥ प्रह्लादो बलवानत्र प्रतिज्ञामारुरोह सः ॥ येन केनाप्युपायेन जेष्यामि तावुभावपि ॥ १९ ॥ नर नारायणौ दांता वृषी तपसिसमन्वितौ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं दैत्यः प्रतिगृह्य शरासनम् ॥ २० ॥ आकृष्य तरसा चापं ज्याशब्दं च चकार ह ॥ नरोऽपि धनुरादाय शरांस्तीव्राञ्छिलाशितान् ॥ २१ ॥ मुमोच बहुशः क्रोधात्प्रह्लादोपरि पार्थिव ॥ २२ ॥

कहा. यदि तुम्हारी इसी प्रकार बुद्धि उत्पन्न हुई है. तो मुझसे अभी युद्ध करो ॥ १७ ॥ हे असुराधम ! अभी युद्ध करके मैं तेरा मस्तक विदीर्ण कर डालूंगा तो फिर तेरी कभी युद्ध करनेकी अभिलाषा नहीं होगी. व्यासजीने कहा हे राजन् ! महाबलशाली दैत्यराज प्रह्लादने उनका वचन सुन, कुपित हो ॥ १८ ॥ यह प्रतिज्ञा करी की जिस किसी उपायसे इन तपस्वी नर नारायण ॥ १९ ॥ दोनों ऋषियोंको युद्धमें पराजित करूंगा. व्यासजी बोले तदनन्तर दैत्यराजने शरासन ग्रहण कर ॥ २० ॥ शीघ्र आकर्षणपूर्वक प्रत्यंचाका शब्द किया, हे राजेन्द्र ! उसकाल ऋषिवर नर भी शरासन ग्रहण कर क्रोधयुक्त हो अनेक शिलापर पैनाये ॥ २१ ॥ सब अस्त्र प्रह्लादके ऊपर निक्षेप करने लगे ॥ २२ ॥

अनन्तर दैत्यपति प्रह्लादने शीघ्रता सहित स्वर्णपुंख बाणोंसे नरके चलाये सब बाणोंको छिन्नभिन्न कर डाला। तब ऋषिवर नर अपने चलाये सब बाणोंको कटता देखकर क्रोधयुक्त हुए और अन्यान्य अनेक बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २३ ॥ तब दैत्याधिपति प्रह्लादने तीव्रवेगी बाणोंसे उन सब बाणोंको काटकर उन मुनिवरके ऊरुस्थलमें आघात किया और नरने भी क्रोधित होकर पांच बाणोंसे दैत्यराजकी दोनों भुजा विंध डालीं ॥ २४ ॥ उनका युद्ध देखनेके लिये इन्द्रादि देवतागण विमानमें बैठ आकाश मण्डलमें स्थिति कर कभी नर ऋषिकी और कभी प्रह्लादकी प्रशंसा करने लगे ॥ २५ ॥ दैत्यराज चाप ग्रहण कर, मेघ जिस प्रकार पर्वतके शृंगपर जलकी वर्षा करते हैं. इसी प्रकार नरके ऊपर अत्यन्त क्रोधयुक्त हो अनेक भांतिके अस्त्रोंकी वर्षा करने लगा. हे महाराज ! उस समय मुनिवर नर प्रह्लादके बाणोंसे विद्ध होकर अत्यन्त ग्लानियुक्त हुए. तब नारायण नरको क्लांत देखकर अत्यन्त रुष्ट हुए और अप्रमेय शार्ङ्ग

तान्दैत्यराजस्तपनीयपुंखैश्चिच्छेद बाणैस्तरसा समेत्य ॥ समीक्ष्य छिन्नांश्च नरः स्वसृष्टानन्यान्मुमोचाऽऽशुरुषाऽन्वितो वै ॥ २३ ॥
दैत्याऽधिपस्तानपि तीव्रवेगैः छित्त्वा जघानोरसि तं मुनींद्रम् ॥ नरोऽपि तं पञ्चभिराशुगैश्च क्रुद्धोऽहनद्दैत्यपतिं बाहु देशे ॥ २४ ॥ सेंद्राः
सुरास्तत्र तयोर्हि युद्धं द्रष्टुं विमानैर्गगनस्थिताश्च ॥ नरस्यवीर्यं युधि संस्थितस्य त तुष्टुवुर्दैत्यपतेश्च भूयः ॥ २५ ॥ ववर्ष दैत्याधिप
आत्तचापः शिलीमुखानंबुधरो यथापः ॥ आदाय शार्ङ्गं धनुरप्रमेयं मुमोच बाणाञ्छितहेमपुंखान् ॥ २६ ॥ बभूव युद्धं तुमुलं तयोस्तु
जयैषिणोः पार्थिवदेवदैत्ययोः ॥ ववर्षुराकाशपथे स्थितास्ते पुष्पाणि दिव्यानि प्रहृष्टचित्ताः ॥ २७ ॥ चुकोप दैत्याधिपतिर्हरौ स मुमोच
बाणानतितीव्रवेगान् ॥ चिच्छेद तान्धर्मसुतः सुतीक्ष्णैर्धनुर्विमुक्तैर्विशिखैस्तदाऽऽशु ॥ २८ ॥ ततो नारायणं बाणैः प्रह्लादश्चातितर्पितैः
ववर्ष सुस्थितं वीरं धर्मपुत्रं सनातनम् ॥ नारायणोऽपि तं वेगान्मुक्तैर्बाणैः शिलाशितैः ॥ २९ ॥

शरासन धारण कर स्वर्णपुंख बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २६ ॥ हे पृथ्वीन्द्र ! उसकाल परस्पर जय की इच्छा करनेवाले नारायण और प्रह्लादका तुमुल संग्राम उपस्थित हुआ. देवतागण आकाशमार्गमें अवस्थिति करके उनके ऊपर प्रसन्न चित्तसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥ दैत्यराज प्रह्लाद अत्यन्त कुपित होकर अत्यन्त तीव्र वेगसे अस्त्रोंका निक्षेप करने लगा. धर्मपुत्र नारायणने धनुषसे छोडे हुए तीक्ष्ण अस्त्रोंके द्वारा तत्काल उन सब अस्त्रोंको काट डाला ॥ २८ ॥ तदनन्तर प्रह्लाद तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा युद्धमें अटल उन वीरवर धर्मपुत्र नारायणपर बाण बरसाने लगे. नारायणने भी शिलापर पैनाये बाणोंको वेगसहित चलाकर ॥ २९ ॥

आगे स्थित दैत्यपतिको पीडित और अस्थिर किया उस युद्धको देखनेके लिये आकाशमें ॥ ३० ॥ देवता और दैत्यगणोंका समूह उपस्थित हुआ. उसके बीचबीचमें दोनोंके जयकी घोषणा करने लगे दोनोंके शरवर्षणसे गगनतल आच्छादित होकर ॥ ३१ ॥ दिवाभागभी रात्रिके समान अंधकारमय हो उठा । तब देवता और दैत्यगणोंने अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर परस्पर कहा कि ॥ ३२ ॥ इस प्रकारका दारुण युद्ध हमने पहले कभी नहीं देखा. उस काल देवर्षिगण, गंधर्वगण, यक्षगण, किन्नरगण, सर्पगण ॥ ३३ ॥ विद्याधरगण और चारणगण सभी अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुए थे. नारद और पर्वत ऋषि भी इस युद्धको देखनेके निमित्त उपस्थित हुए थे ॥ ३४ ॥ देवर्षि नारदने पर्वतसे कहा पहिले कभी इस प्रकार युद्ध उपस्थित नहीं हुआ था । तारकासुर और वृत्रासुरका

तुतोदाऽतीव पुरतो दैत्यानामधिपं स्थितम् ॥ सन्निपातोंऽबरे तत्र दिदृक्षूणां बभूव ह ॥३०॥ देवानां दानवानां च कुर्वतां जयघोषणम् ॥ उभयोः शरवर्षेण च्छादिते गगने तदा ॥ ३१ ॥ दिवाऽपि रात्रिसदृशं बभूव तिमिरं महत् ॥ऊचुः परस्परं देवा दैत्याश्चातीव विस्मिताः ॥ ३२ ॥ अदृष्टपूर्वं युद्धं वै वर्ततेऽद्य सुदारुणम् ॥ देवर्षयोऽथगंधर्वा यक्षकिन्नरपन्नगाः ॥३३॥ विद्याधराश्चारणाश्च विस्मयं परमं ययुः ॥ नारदः पर्वतश्चैव प्रेक्षणार्थं स्थितौ मुनी ॥ ३४ ॥ नारदः पर्वतं प्राह नेदृशं चाभवत्पुरा ॥ तारकासुरयुद्धं च तथा वृत्रासुरस्य च ॥ ३५ ॥ मधुकैटभयोर्युद्धं हरिणा चेदृशं कृतम् ॥ प्रह्लादः प्रबलः शूरो यस्मान्नारायणेन च ॥ ३६ ॥ करोति सदृशं युद्धं सिद्धेनाद्भुतकर्मणा ॥ व्यास उवाच ॥ दिने दिने तथा रात्रौ कृत्वा कृत्वा पुनः पुनः ॥ ३७ ॥ चक्रतुः परमं युद्धं तौ तदा दैत्यतापसौ ॥ नारायणस्तु चिच्छेद प्रह्लादस्य शरासनम् ॥ ३८ ॥ तरसैकेन बाणेन स चाऽन्यद्धनुरादद ॥ नारायणस्तु तरसा मुक्ताऽन्यं च शिलीमुखम् ॥ ३९ ॥ तदैव मध्यतश्चापं चिच्छेद लघुहस्तकः॥छिन्नं छिन्नं पुनर्दैत्यो धनुरन्यत्समाददे ॥ ४० ॥

युद्ध ॥ ३५ ॥ तथा हरिका मधुकैटभके संग जो युद्ध हुआ था, वे सब युद्ध भी ऐसे नहीं थे, बोध होता है कि प्रह्लाद अतिशय वीर्यवान् है, क्योंकि सिद्ध पुरुष ॥ ३६ ॥ अद्भुतकर्मा नारायणके सहित अभीतक समान ही युद्ध कर रहा है. व्यासजी बोले हे राजन् ! उसकाल दिनरातमें वारंवार ॥ ३७ ॥ वह दैत्य और तापस नारायण ये दोनों वारंवार अत्यन्त घोर संग्राम करने लगे तब नारायणने शीघ्रतासहित एकही बाणसे प्रह्लादका शरासन काट डाला ॥ ३८ ॥ फिर प्रह्लादने भी दूसरा धनुष ग्रहण किया ! लघुहस्त नारायणने शीघ्रता सहित दूसरा बाण चलाकर ॥ ३९ ॥ उस धनुषका मध्य भाग काट डाला इस प्रकार वारंवार धनुष कटनेपर प्रह्लाद भी वारंवार उसको ग्रहण करने लगा ॥ ४० ॥

नारायण भी क्रोधकर अस्त्रसे उनको वारंवार काटने लगे. इस प्रकार सब धनुषोंके कटनेपर फिर दैत्यराजने परिघ ग्रहण किया ॥ ४१ ॥ और अत्यन्त कुपित होकर नारायणकी बाहुमें शीघ्रता सहित निक्षेप किया. बलवीर्य वान् भगवान् नारायणने उस घोर परिघको आता हुआ देख ॥ ४२ ॥ शीघ्रता सहित बाण चलाय उसको काट डाला और दशबाणोंसे प्रह्लादको विद्ध किया अनन्तर प्रह्लादने लोहेकी दृढ गदा उठाय ॥ ४३ ॥ क्रोधमें भर नारायणके जानुदेशको लक्ष कर वेग सहित चलाई. अत्यन्त बलवान् धर्म नन्दनने, गदा देखकर भी स्थिरमन और पर्वतके समान अचल भावसे खड़े रहकर ॥ ४४ ॥ शीघ्रता सहित अपने बाणोंके द्वारा दैत्यपतिकी उस दृढ गदाको काट डाला ॥ ४५ ॥ उसकाल आकाशमें स्थित दर्शकगण अत्यन्त आश्चर्य

नारायणस्तु चिच्छेदविशिखैराशु कोपितः ॥ छिन्ने धनुषि दैत्येंद्रः परिघं तु समाददे ॥४१॥ जघान धर्मजं तूर्णं बाहोर्मध्येऽतिकोपनः ॥ तमायांतं स बलवान्मार्गणैर्नवभिर्मुनिः ॥ ४२ ॥ चिच्छेदपरिघं घोरं दशभिस्तमताडयत् ॥ गदामादाय दैत्येंद्रः सर्वायसमयीं दृढाम् ॥ ४३ ॥ जानुदेशे जघानाऽऽशुदेवं नारायणं रुषा ॥ गदया चापि गिरिवत्संस्थितः स्थिरमानसः ॥४४॥ धर्मपुत्रोऽतिबलवान्मुमोचाऽऽशु शिलीमुखान् ॥ गदां चिच्छेद भगवांस्तदा दैत्यपतेर्दृढाम् ॥ ४५ ॥ विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षका गगने स्थिताः ॥ स तु शक्तिं समादाय प्रह्लादः परवीरहा ॥ ४६ ॥ चिक्षेप तरसा क्रुद्धो बलान्नारायणोरसि ॥ तामापतंतीं संवीक्ष्य बाणेनैकेन लीलया ॥४७॥ सप्तधा कृतवानाशु सप्तभिस्तं जघान ह ॥ दिव्यवर्षसहस्रं तु तद्युद्धं परमं तयोः ॥ ४८ ॥ जातं विस्मयदं राजन्सर्वेषां तत्र चाश्रमे ॥ तदाऽऽजगाम तरसा पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ४९ ॥ प्रह्लादस्याऽऽश्रमं तत्र जगाम च गदाधरः ॥ चतुर्भुजो रमाकांतो रथांगदरपद्मभृत् ॥ ५० ॥

युक्त हुए थे. इसके उपरांत शत्रुविनाशी प्रह्लादने अत्यन्त कुपित हो शक्ति ग्रहण पूर्वक ॥ ४६ ॥ शीघ्र नारायणके ऊरुस्थलको लक्ष्य करके तीव्रवेगसे चलाई । उस शक्तिको आती हुई देखकर नारायणने लीलापूर्वक ही एक बाणसे काटकर ॥ ४७ ॥ सात टुकड़े कर दिये और सात बाणोंसे शीघ्र उसको वींधडाला. इस प्रकार उस आश्रममें प्रह्लाद और नारायणका दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त ॥ ४८ ॥ सर्वजीवोंको परमाश्चर्यदायक घोर युद्ध हुआ था, तव पीतवासा चतुर्भुज गदाधारने शीघ्रता सहित ॥ ४९ ॥ प्रह्लादके निकट आय उसको बुलाया । हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लादने चतुर्भुज, रमाकांतने, पद्मधारी, चक्रधर, नारायणको ॥ ५० ॥

उस स्थानमें आया देख, परमभक्ति सहित प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़कर उनसे कहा. प्रह्लाद बोले हे देवदेव ! आप जगन्नाथ और भक्त वत्सल हैं ॥ ५१ ॥ हे माधव ! मैंने दिव्य पूर्ण सौ वर्षतक संग्राम किया तो भी इन दोनों तपस्वियोंको किस कारण मैं समरमें परास्त न कर सका ॥ ५२ ॥ इस विषयमें मुझको महान् आश्चर्य उत्पन्न हुआ विष्णुजीने कहा हे क्षमाशील ! यह दोनों "सिद्ध" मेरे अंश हैं इसमें विस्मय क्या है ? ॥ ५३ ॥ यह नर नारायण दोनों ऋषि तापस जितात्मा हैं इसलिये तुम इनको पराजय नहीं करसके । हे राजेन्द्र ! तुम अब पातालमें जाओ मेरे प्रति उसी प्रकार अचल भक्ति करो ॥ ५४ ॥ हे महामते ! तुम दोनों तपस्वियोंसे फिर विरोध न करना. व्यासजीने कहा हे राजन् ! दैत्यराज प्रह्लाद भगवान् विष्णुसे इस प्रकार आज्ञा पाय

दृष्ट्वा तमागतं तत्र हिरण्यकशिपोः सुतः ॥ प्रणम्य परया भक्त्या प्रांजलिः प्रत्युवाच ह ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ भक्तवत्सल माधव ॥ ५१ ॥ कथं न जितवानाजावहमेतौ तपस्विनौ ॥ संग्रामस्तु मया देव कृतः पूर्णं शतं समाः ॥ ५२ ॥ सुराणां न जितौ कस्मादिति मे विस्मयो महान् ॥ विष्णुरुवाच ॥ सिद्धाविमौ मदंशौ च विस्मयः कोऽत्र मारिष ॥ ५३ ॥ तापसौ न जितात्मानौ नरनारायणौजितौ ॥ गच्छ त्वं वितलं राजन्कुरु भक्तिं ममाऽचलाम् ॥५४॥ नाऽऽभ्यां कुरु विरोधं त्वं तापसाभ्यां महामते ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याज्ञप्तो दैत्यराजो निर्ययावसुरैः सह ॥ ५५ ॥ नरनारायणौ भूयस्तपोयुक्तौ बभूवतुः ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ जनमेजय उवाच ॥ संदेहोऽयं महानत्र पाराशर्य कथानके ॥ नरनारायणौ शांतौ वैष्णवांशौ तपोधनौ ॥ १ ॥ तीर्थाश्रयौ सत्त्वयुक्तौ वन्याशनपरौ सदा ॥ धर्मपुत्रौ महात्मानौ तापसौ सत्यसंस्थितौ ॥ २ ॥ कथं रागसमायुक्तौ जातौ युद्धे परस्परम् ॥ संग्रामं चक्रतः कस्मात्त्यक्त्वा तपमिमनुत्तमाम् ॥ ३ ॥

असुरगणोंके सहित वहांसे चले गये ॥ ५५ ॥ और दोनों नर नारायणने भी फिर तपस्यामें मन लगाया ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दोहा--कहत दशम अध्यायमें, भृगुमहर्षिके शाप ॥ देहधारि श्रीकृष्णने, दूर किये सन्ताप ॥ जनमेजय बोले हे पराशरनन्दन ! आपके पूर्वोक्त वचन सुनकर मुझको महान् संशय उत्पन्न होता है. धर्मपुत्र नरनारायण दोनों तपोधन, शान्त, विष्णुके अंश, तीर्थाश्रयी, सत्वगुणसंपन्न, सदा वनके फल मूलादिका आहार करने वाले, महात्मा, तापस, और सत्यनिष्ठ होकर ॥ १ ॥ २ ॥ किस प्रकार संग्राममें ऐसे अनुरागी हुए थे ? और किस निमित्त परम कल्याणकारी तपस्याको छोड़कर ॥ ३ ॥

पूर्ण दिव्य सहस्र वर्षतक प्रह्लादके संग युद्ध किया था ? किस कारण वे शांतसुखको परित्याग कर ऐसे दुःखदायक युद्धमें प्रवृत्त हुए थे ? ॥ ४ ॥ हे महाभाग मुनिवर ! किस लिये उन्होंने प्रह्लादसे युद्ध किया था ? आप उस विग्रहका कारण मुझसे विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ स्त्री, सुवर्ण वा दूसरे किसी विषयका कार्य विग्रहका कारण होता है, किंतु नर नारायण दोनों मुनि सब विषयोंसे विरागी थे, उनका इन सब विषयोंमें कोई प्रयोजन दिखाई नहीं देता तो उनको युद्धकी बुद्धि क्यों उत्पन्न हुई थी ? हे तपोधन ! उन्होंने किस निमित्त ऐसी तपस्याका अनुष्ठान किया ? ॥ ६ ॥ हे मुनिवर ! उन्होंने औरको मोहित करनेके निमित्त अथवा सुखभोगके निमित्त या राग प्रीति करनेके निमित्त यह उत्कट सर्व फलदायक कठोर तपस्या करी थी ॥ ७ ॥ और यह शांतचित्त

प्रह्लादेन समं पूर्णं दिव्यवर्षशतं किल ॥ हित्वा शांतिसुखं युद्धं कृतवंतौ कथं मुनी ॥ ४ ॥ कथं तौ चक्रतुर्युद्धं प्रह्लादेन समं मुनी ॥ कथयस्व महाभाग कारणं विग्रहस्य वै ॥ ५ ॥ "कामिनी कनकं कार्यं कारणं विग्रहस्य वै ॥" युद्धबुद्धिः कथं जाता तयोश्च तद्विरक्तयोः ॥ तथाविधं तपस्तप्तं ताभ्यां च केन हेतुना ॥ ६ ॥ मोहार्थं सुखभोगार्थं स्वर्गार्थं वा परंतप ॥ कृतमत्युत्कटं ताभ्यां तपः सर्वफलप्रदम् ॥ ७ ॥ मुनिभ्यां शान्तचित्ताभ्यां प्राप्तं किं फलमद्भुतम् ॥ तपसा पीडितो देहः संग्रामेण पुनः पुनः ॥ ८ ॥ दिव्यवर्षशतं पूर्णं श्रमेण परिपीडितौ ॥ न राज्यार्थे धने वाऽपि न दारेषु गृहेषु च ॥ ९ ॥ किमर्थं तु कृतं युद्धं ताभ्यां तेन महात्मना ॥ निरीहः पुरुषः कस्मात्प्रकुर्याद्युद्धमीदृशम् ॥ १० ॥ दुःखदं सर्वथा देहे जानन्धर्मं सनातनम् ॥ सुबुद्धिः सुखदानीह कर्माणि कुरुते सदा ॥ ११ ॥ न दुःखदानि धर्मज्ञ स्थितिरेषा सनातनी ॥ धर्मपुत्रौ हरेरंशौ सर्वज्ञौ सर्वभूषितौ ॥ १२ ॥

दोनों मुनि तपस्याके किस अद्भुत फलको प्राप्त हुए थे वे क्या तपस्यासे कृश देह होकर भी ॥ ८ ॥ पूर्ण दिव्य सहस्र वर्ष वारंवार संग्राम करके श्रम द्वारा पीडित नहीं हुए थे ? राज्यके लाभ करनेके निमित्त वा धनलाभके निमित्त वा स्त्रीलाभके निमित्त इस प्रकारके संग्राममें प्रवृत्त नहीं हुए ॥ ९ ॥ तो किस निमित्त वा उन्होंने उस महात्मा प्रह्लादसे युद्धकिया था ? निरीह पुरुष कौन ऐसा करेगा ॥ १० ॥ धर्मको सनातन जानकर भी किस कारण ऐसे देह-दुःखप्रद युद्धमें सम्यक् प्रकारसे प्रवृत्त हुए. हे धर्मज्ञ ! श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष सदाही सुख दायक कर्म करते हैं ॥ ११ ॥ वे कभी दुःखदायक कर्म नहीं करते यही सनातनी संसारमर्यादा प्रतिष्ठित है, दोनों धर्मके पुत्र हरिके अंश, सवर्ज्ञ और सर्व संपदासे विभूषित थे ॥ १२ ॥

तो वे दुःखकर और धर्मनाशक संग्राममें क्यों प्रवृत्त हुए थे हे महर्षे! इस संसारमें मूर्ख मनुष्यभी ऐसे सुख और आनंदजनक तथा सर्व फल दायक तपस्या और समाधि छोड़कर ॥ १३ ॥ दारुणदुःखदायक युद्धकी कामना नहीं करते मैंने सुना है कि, पृथ्वीपति ययाति स्वर्गसे च्युत हुए थे ॥ १४ ॥ यह यज्ञ दान और धर्म निरत राजा होकर भी अहंकारजनित पापके कारण स्वर्गसे परिच्युत हो पृथ्वीमें गिरे थे ॥१५॥ मैं अश्वमेघादि यज्ञका अनुष्ठान कर्ता हूं इत्यादि अहंकार सूचक शब्दके उच्चारण करते ही वज्रपाणि इन्द्रने उसको पतित किया था, अत एव अहंकारके विना युद्ध उपस्थित नहीं होता यही स्थिर निश्चय है ॥ १६ ॥ हे मुने! मुनियोंकोदेह बल नहीं है अत एव उनको तपोबलसे ही युद्ध करना होता है, सुतरां मुनियोंके युद्ध करनेसे तप नाशके अतिरिक्त और उससे क्या

कृतवंतौ कथं युद्धे दुःखं धर्मविनाशकम् ॥ त्यक्त्वा ततः समाधीतं सुखारामं महत्फलम् ॥ १३ ॥ संयुगं दारुणं कृष्ण नैव मूर्खोऽपि वांछति ॥ श्रुतो मया ययातिस्तु च्युतः स्वर्गान्महीपतिः ॥ १४॥ अहंकारभवात्पापात्पातितः पृथिवीतले ॥ यज्ञकृद्दानकर्ता च धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ १५ ॥ शब्दोच्चारणमात्रेण पातितो वज्रपाणिना ॥ अहंकारमृते युद्धं न भवत्येव निश्चयः ॥ १६ ॥ किं फलं तस्य युद्धस्य मुनेः पुण्यविनाशनम् ॥ व्यास उवाच ॥ राजन्संसारमूलं हि त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ १७ ॥ अहंकारस्तु सर्वज्ञैर्मुनिभिर्धर्मनिश्चये ॥ स कथं मुनिना त्यक्तुं योग्यो देहभृता किल ॥ १८ ॥ कारणेन विना कार्यं न भवत्येव निश्चयः ॥ तपो दानं तथा यज्ञाः सात्त्विका त्प्रभवंति ते ॥ १९ ॥ राजसाद्रा महाभाग तामसात्कलहस्तथा ॥ क्रिया स्वल्पाऽपि राजेंद्र नाहंकारं विना क्वचित् ॥२०॥ शुभा वाऽप्य शुभा वापि प्रभवत्यपि निश्चयः ॥ अहंकाराद्वन्धकारी नान्योऽस्ति जगतीतले ॥ २१ ॥

फल हो सकता है? व्यासजी बोले हे राजन् ! संसारका मूल तीन प्रकारका है ॥ १७ ॥ धर्ममें निश्चित मति सर्वज्ञ मुनिगण सात्विक राजस और तामस इस त्रिविध अहंकारको ही संसारका कारण कहते हैं इस कारण मुनि गण देहधारी होकर उस अहंकारको परित्याग करनेमें किस प्रकार समर्थ हों ॥ १८ ॥ कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती. यह स्थिर निश्चय जानना चाहिये हे महाभाग! सात्विक अहंकारसे तपस्या दान और यज्ञ ॥ १९ ॥ तथा राजस वा तामस अहंकारसे कलहकी उत्पत्ति होती है. हे राजेन्द्र! अहंकारके विना इस संपूर्ण ब्रह्माण्डके किसी स्थानमें स्वल्प मात्र भी क्रिया उत्पन्न नहीं होती ॥ २० ॥ शुभ हो, वा अशुभ अहंकारसे ही वह उत्पन्न होती है, यह स्थिर निश्चय जानना चाहिये इस जगत्में अहंकारके अतिरिक्त दूसरी कोई भी बंधनकारक वस्तु नहीं है ॥ २१ ॥

अहंकारसेही यह विश्व रचा गया है. अतएव ये किस प्रकार अहंकार रहित हो सकते हैं, हे राजन् ! जब ब्रह्मा विष्णु और रुद्र यह भी अहंकारयुक्त हैं ॥ २२ ॥ तब इनके सिवाय सामान्य मुनिगण जो अहंकारयुक्त हों तो फिर इस विषयमें बातही क्या है अहंकारसे आवृत होकर यह चराचर विश्व भ्रमण करता है ॥ २३ ॥ पुनर्जन्म और पुनर्मृत्यु इत्यादि सबही कर्मवशतः होती हैं. हे महीन्द्र ! देवता, तिर्यक् और मनुष्यगण इस संससारमें ॥ २४ ॥ रथके पहियोंके समान सदाही भ्रमण करते हैं इस विस्तीर्ण संसारके मध्यम--उत्तम मध्यम और अधम योनियोंमें भगवान् विष्णुके अवतारोंकी संख्या कौन जान सकता है, साक्षात् नारायण हरिने मत्स्य कूर्म अव तार धारण किया ॥ २५ ॥ २६ ॥ शूकर नृसिंह और वामन देहका आश्रय किया था वासुदेव जगन्नाथ जनार्दन युगयुगमें

तेनेदं रचितं विश्वं कथं तद्रहितं भवेत ॥ ब्रह्मा रुद्रस्तथा विष्णुरहंका रयुतास्त्वमी ॥२२॥ अन्येषां चैव का वार्ता मुनीनां वसुधाधिप ॥ अहंकाराऽऽवृतं विश्वं भ्रमतीदं चराचरम् ॥ २३ ॥ पुनर्जन्म पुनर्मृत्युः सर्वं कर्मवशाऽनुगम् ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणां संसारेऽस्मिन्महीपते ॥ २४ ॥ रथांगवदसर्वार्थं भ्रमणं सर्वदा स्मृतम् ॥ विष्णोरप्यवताराणां संख्यां जानाति कः पुमान् ॥ २५ ॥ विततेऽस्मिंस्तु संसार उत्तमाधमयोनिषु ॥ नारायणो हरिः साक्षान्मात्स्यं वपुरुपाश्रितः ॥ २६ ॥ कामठं सौकरं चैव नारसिंहं च वामनम् ॥ युगेयुगे जगन्नाथो वासुदेवो जनार्दनः ॥ २७ ॥ अवतारानसंख्याता न्करोति विधियंत्रितः ॥ वैवस्वते महाराज सप्तमे भगवान्हरिः ॥ २८ ॥ मन्वंतरेऽवता रान्वै चक्रे तान्छृणु तत्त्वतः ॥ भृगुशापान्महराज विष्णुर्दत्तवरः प्रभुः ॥ २९ ॥ अवताराननेकांस्तु कृतवानखिलेश्वरः ॥ राजोवाच ॥ संदेहोऽयं महाभाग हृदये मम जायते ॥३०॥ भृगुणा भगवान्विष्णुः कथं शप्तः पितामह ॥ हरिणा च मुनेस्तस्य विप्रियं किं कृतं मुने ॥ ३१ ॥ यद्दोषाद् भृगुणा शप्तो विष्णुर्देवनमस्कृतः ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि भृगोः शापस्य कारणम् ॥ ३२ ॥

॥ २७ ॥ ब्रह्मासे प्रेरित हो असंख्य रूपोंसे अवतीर्ण होते रहते हैं. हे महाराज ! वैवस्वत नामक सातवें मन्वन्तरमें भगवान् हरिके ॥ २८ ॥ जो सब अवतार हुए थे वह यथातत्व सुनो. हे राजेन्द्र ! देवताओंमें श्रेष्ठ ईश्वर विभु विष्णु भृगुके शापसे अनेक बार पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए थे ॥ २९ ॥ इस प्रकार उन्होंने अनेक अवतार धारण किये. राजाने कहा हे महाभाग ! मेरे हृदयमें और एक महासंशय उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ भगवान् ! भृगुने विष्णुको किस कारण शाप दिया था ? हे मुने ! भगवान् हरिने उनका क्या अनिष्ट किया था ॥ ३१ ॥ जिससे देवतागणोंके नमस्कार करने योग्य जनार्दन विष्णु भगवान् भृगुसे शापित हुए थे। व्यासजी बोले हे राजन् ! भृगुके शाप देनेका कारण कहता हूं सुनो ॥ ३२ ॥

पूर्वकालमें कश्यपका पुत्र हिरण्यकशिपु जब तब देवताओंसे संग्राम करता ॥ ३३ ॥ इसप्रकार सदा संग्रामसे सब जगत् व्याकुल हो उठा था तदुपरांत दैत्यपतिके नृसिंहद्वारा मारे जानेपर शत्रुतापन प्रह्लाद राजा होकर ॥ ३४ ॥ पितृशत्रु देवताओंको पीडित करने लगा उस काल देवराज और दैत्यराजका संग्राम ॥ ३५ ॥ सौ वर्ष पर्यन्त लोकोंको आश्चर्य दायक होता रहा। हे राजन् इस युद्धमें देवताओंने ही उग्रतर युद्ध करके जयलाभ किया था ॥ ३६ ॥ और प्रह्लाद पराजित हुआ था उसकाल प्रह्लाद अत्यन्त दुःखको प्राप्त हो सनातन धर्मको श्रेष्ठ जान विरोचनके पुत्र बलिको राज्यदे ॥ ३७ ॥ तपस्या करनेके निमित्त गंधमादनपर गया. बलि भी राज्यको प्राप्त हो देवताओंसे वैर करने लगा ॥ ३८ ॥ अनंतर परस्परमें घोरतर संग्राम होनेसे देवताओंने असुरोंको

पुरा कश्यपदायादो हिरण्यकशिपुर्नृपः ॥ यदा तदाऽसुरैः सार्धं कृतं संख्यं परस्परम् ॥ ३३ ॥ कृते संख्ये जगत्सर्वं व्याकुलं समजायत ॥ हते तस्मिन्नृपे राजा प्रह्लादः समजायत ॥ ३४ ॥ देवान्स पीडयामास प्रह्लादः शत्रुकर्षणः ॥ संग्रामो ह्यभवद्धोरः शक्रप्रह्लादयोस्तदा ॥ ३५ ॥ पूर्णं वर्षशतं राजँल्लोकविस्मयकारकम् ॥ देवैर्युद्धं कृतं चोग्रं प्रह्लादस्तु पराजितः ॥ ३६ ॥ निर्वेदं परमं प्राप्तो ज्ञात्वा धर्मं सनातनम् ॥ विरोचनसुतं राज्ये प्रतिष्ठाप्य बलिं नृप ॥ ३७ ॥ जगाम स तपस्तप्तुं पर्वते गंधमादने ॥ प्राप्य राज्यं बलिः श्रीमान्सुरैर्वैरं चकार ह ॥ ३८ ॥ ततः परस्परं युद्धं जातं परमदारुणम् ॥ ततः सुरैर्जिता दैत्या इंद्रेणाऽमिततेजसा ॥३९॥ विष्णुना च सहायेन राज्यभ्रष्टाः कृता नृप ॥ ततः पराजिता दैत्याःकाव्यस्य शरणं गताः ॥ ४० ॥ किं त्वं न कुरुषे ब्रह्मन्साहाय्यं नः प्रतापवान् ॥ स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम् ॥ ४१ ॥ यदि त्वं न सहायोऽसि त्रातुं मंत्रविदुत्तम ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः सोऽब्रवीद्दैत्यान्काव्यः कारुणिको मुनिः ॥ ४२ ॥ मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन भो सुराः ॥ मन्त्रैस्तथौषधीभिश्च साहाय्यं वः सदैव हि ॥ ४३ ॥

पराजित किया. हे राजेन्द्र ! अनंतर अमिततेजा इंद्रके ॥ ३९ ॥ विष्णुकी सहायतासे दैत्यगणोंको राज्यभ्रष्ट करनेपर पराजित दैत्यगणोंने कुलगुरु शुक्राचार्यजीकी शरणागत हो ॥ ४० ॥ उनसे कहा हे ब्रह्मन् ! आप तपोबल संपन्न और प्रतापवान् हैं, आप दैत्यगणोंकी सहायता क्यों नहीं करते ? वो हम फिर पृथ्वीतलमें वास करनेको समर्थ नहीं हो सकेंगे हमको शीघ्र ही रसातलमें प्रवेश करना पड़ेगा ॥ ४१ ॥ यदि मंत्र जाननेवालोंमें उत्तम आप हमारी सहायता न करोगे! व्यासजी बोले हे राजन् ? दैत्यगणोंके इस प्रकार कहनेपर उन परम करुणामय मुनिवर गुरु शुक्राचार्यने उनसे कहा ॥ ४२ ॥ हे दैत्यगण तुमलोग भय मत करो मैं अपने तेजसे तुम्हारी रक्षा करूंगा तथा मंत्र और औषधीसे तुम्हारी सहायता करूंगा ॥ ४३ ॥

तुम उत्साह युक्त होकर मनसे दुःख और संताप दूर करो. व्यासजीने कहा हे राजन् ! इसके उपरांत दैत्यगण शुक्राचार्यका आश्रय पाय निर्भय हुए ॥ ४४ ॥ फिर देवताओंने यह सब वृत्तान्त दूतके मुखसे जाना और इन्द्रके सहित परामर्श करके यह ॥ ४५ ॥ स्थित किया कि, जबतक दैत्यगण शुक्राचार्यके मंत्रके प्रभावसे राज्यच्युत न करें. तबतक हम अतिशीघ्र उनसे युद्ध करनेको चलें ॥ ४६ ॥ इस प्रकार सहसा आक्रमण कर विनाश कर एक बचे असुरोंको पातालमें भेज देंगे देवतागण इस प्रकार परामर्श कर अस्त्रशस्त्रके धारण पूर्वक क्रोध युक्त हो दैत्यगणोंसे युद्ध करनेको गये ॥ ४७ ॥ और इंद्रकी आज्ञा पाय विष्णुके सहित दैत्योंका विनाश करने लगे. इस प्रकार जब देवताओंने दैत्योंका वध करना आरंभ किया; तब वे भीत और

करिष्यामि कृतोत्साहा भवंतु विगतज्वराः ॥ व्यास उवाच ॥ ततस्ते निर्भया जाता दैत्याः काव्यस्य संश्रयात् ॥ ४४ ॥ देवैः श्रुतस्तु वृत्तांतः सर्वैश्चारमुखात्किल ॥ तत्र संमंत्र्य ते देवाः शक्रेण च परस्परम् ॥ ४५ ॥ मन्त्रं चक्रुः सुसंविग्नाः काव्यमन्त्रप्रभावतः ॥ योद्धुं गच्छामहे तूर्णं यावन्न च्यावयंति वै ॥ ४६ ॥ प्रसह्य हत्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे ॥ दैत्याञ्जग्मुस्ततो देवाः संरुष्टाः शस्त्रपाणयः ॥ ४७ ॥ जग्मुस्तान्विष्णुसहिता दानवान्हरिणोदिताः ॥ वध्यमानास्तु ते दैत्याः संत्रस्ता भयपीडिताः ॥ ४८ ॥ काव्यस्य शरणं जग्मू रक्ष रक्षेति चाऽब्रुवन् ॥ तान्छुक्रः पीडितान्दृष्ट्वा देवैर्दैत्यान्महाबलान् ॥ ४९ ॥ मा भैष्टेति वचः प्राह मन्त्रौषधबलाद्विभुः ॥ दृष्ट्वा काव्यं सुराः सर्वे त्यक्त्वा तान्प्रययुः किल ॥ ५० ॥ इति श्रीदे० म० चतुर्थ स्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ तथा गतेषु देवेषु काव्यस्तान्प्रत्युवाच ह ॥ ब्रह्मणा पूर्वमुक्तं यच्छृणुध्वं दानवोत्तमाः ॥ १ ॥

त्रसित हो ॥ ४८ ॥ "हे प्रभु ! रक्षा करो रक्षा करो" यह कहते हुए शुक्राचार्यजीकी शरणमें आये. शुक्राचार्यजीने उन महाबलवान् दैत्योंको देवताओंसे पीडित देखकर ॥ ४९ ॥ मंत्रौषधिके प्रभाव द्वारा "भय नहीं भय नहीं" यह बचन ऊंचे वरसे कहा. अनंतर देवता शुक्राचार्यजीको देख, असुरोंको छोड़ अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! जब देवतागण शुक्राचार्यको देख समर छोड़ चले गये, तब शुक्राचार्यजीने दानवगणोंसे कहा हे दनुजगण ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जो कहा है, वह मैं तुमसे कहता हूं सुनो ॥ १ ॥

जनार्दन विष्णु दैत्योंके मारनेमें नियुक्त होकर संपूर्ण दैत्यगणोंका ही विनाश करेंगे, इसमें संदेह नहीं पूर्वमें उन्होंने वराहरूप धारण कर असुरश्रेष्ठ हिरण्याक्षका संहार किया था ॥ २ ॥ नृसिंहमूर्ति धारण करके हिरण्यकशिपुका जिस प्रकार वध किया था, इस समय वैसे ही उत्साह युक्त हो सब दैत्यगणोंका विनाश करेंगे, इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ॥ इस समय मेरे मंत्रका बल हरिके निकट भलीभांति फलदायक नहीं होगा. और जब मैं तुम्हारी रक्षा कर लूंगा फिर तुम देवताओंके जीतनेमें समर्थ होगे ॥ ४ ॥ अतएव हे दानवोत्तमो ! कुछ कालतक प्रतीक्षा करो मैं अभी मंत्रप्राप्तिके लिये महादेवजीके निकट जाता हूं ॥ ५ ॥ अनंतर फिर मैं उस स्थानमें मंत्र प्राप्त करके शीघ्रही लौटता हूं; हे दानवोत्तम ! मैं उस मंत्र बलसे तुम्हारी भलीभांति रक्षा करूंगा ॥ ६ ॥ दैत्यगणोंने

विष्णुर्दैत्यवधे युक्तो हनिष्यति जनार्दनः ॥ वाराहरूपं संस्थाय हिरण्याक्षो यथा हतः ॥ २ ॥ यथा नृसिंहरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ तथा सर्वान्कृतोत्साहो हनिष्यति न चाऽन्यथा ॥३॥ न मे मन्त्रबलं सम्यक्प्रतिभाति यथा हरिम् ॥ जेतुं यूयं समर्थाः स्म मया त्राताः सुरानथ ॥ ४ ॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं कियंतं दानवोत्तमाः ॥ अहमद्य महादेवं मंत्रार्थं प्रव्रजामि वै ॥ ५ ॥ प्राप्य मंत्रान्महादेवादागमिष्यामि सांप्रतम् ॥ युष्मभ्यं तान्प्रदास्यामि यथार्थं दानवोत्तमाः ॥ ६ ॥ दैत्या ऊचुः ॥ पराजिताः कथं स्थातुं पृथिव्यां मुनिसत्तम ॥ शक्ता भवामोऽप्यबलास्तावत्कालं प्रतीक्षितुम् ॥ ७ ॥ निहता बलिनः सर्वे केचिच्छिष्टाश्च दानवाः ॥ नाद्य युक्ताश्च संग्रामे स्थातुमेवं सुखावहाः ॥ ८ ॥ शुक्र उवाच ॥ यावदहं मंत्रविद्या मानयिष्यामि शंकरात् ॥ तावद्भवद्भिः स्थातव्यं तपोयुक्तैः शमन्वितैः ॥ ९ ॥ सामदानादयः प्रोक्ता विद्वद्भिः समयोचिताः ॥ देशं कालं बलं वीरैर्ज्ञात्वा शक्तिबलं बुधैः ॥ १० ॥

कहा हे मुनिवर ! हम पराजित और दुर्बल हो गये हैं इस समय हम पृथ्वीमें कैसे रह सकते हैं ! उतने कालतक प्रतीक्षा करनेमें किस प्रकार समर्थ होंगे ! ॥ ७ ॥ हममें जो महाबलशाली थे वे सभी निहत हो गये हैं, हम इस समय थोड़ेसे दानव शेष हैं ऐसी अवस्थामें हमारा समरमें रहना युक्ति संगत और शुभकर बोध नहीं होता. शुक्राचार्यजीने कहा मैं श्रीमहादेवजीकेनिकटसे मंत्रविद्या ग्रहण करके जबतक न आऊं, तबतक तुम शांतियुक्त और तपस्यामें नियुक्त होकर अवस्थिति करो ॥ ८ ॥ ९ ॥ पण्डितगणोंने कहा है कि, वीरगण साम, दान; भेद, और दंड; इन चार प्रकारके उपायोंके अनुसार देश, काल, बल और सामर्थ्यका विचार कर प्रयोग करें ॥ १० ॥

कल्याणकी कामना करनेवाले पुरुषगण समयकी गतिके अनुसार शत्रुओंकी भी सेवा करें, किंतु जब देखें कि, अपनी शक्ति सम्यक् प्रकारसे बढ गई है, तब शत्रुओंका विनाश करनेकी चेष्टा करें ॥ ११ ॥ अतएव इस समय विनय सहित छल प्रकाश पूर्वक साम अवलम्बन करके मेरे आनेकी प्रतिक्षा कर अपने घरमें रहो ॥ १२ ॥ हे दानवगण ! जब महादेवजीसे मंत्रग्रहण करके आऊं तब मंत्रके बलसे युक्त होकर पुनर्वार देवताओंसे युद्ध आरंभ करो ॥ १३ ॥ हे राजन् ! शुक्राचार्यजी इस प्रकार कहकर मंत्र लानेमें कृतनिश्चय हो महादेवजीके निकट गये ॥ १४ ॥ इधर दानवगणोंने संधि (मेल) करनेके लिये सत्यवादी, स्थिर चित्त विशेष, कर देवताओंके विश्वासप्रद प्रह्लादको देवताओंके पास भेजा ॥ १५ ॥ राजवर प्रह्लादने असुरोंके सहित विनयावनत होकर

सेवाऽथ समये कार्या शत्रूणां शुभकाम्यया ॥ स्वशक्त्युपचये काले हंत व्यास्ते मनीषिभिः ॥११॥ तदद्य विनयं कृत्वा सामपूर्वं छलेन वै ॥ तिष्ठध्वं स्वनिकेतेषु मदागमनकांक्षया ॥ १२ ॥ प्राप्य मन्त्रान्महादेवादागमिष्यामि दानवाः ॥ युध्यामहे पुनर्देवान्मंत्रमास्थाय वै बलम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाऽथ भृगुस्तेभ्यो जगाम कृतनिश्चयः ॥ महादेवं महाराज मंत्रार्थं मुनिसत्तमः ॥ ॥ १४ ॥ दानवाः प्रेषयामासुः प्रह्लादं सुरसन्निधौ ॥ सत्यवादिनमव्यग्रं सुराणां प्रत्ययप्रदम् ॥ १५ ॥ प्रह्लादस्तु सुरान्प्राह प्रश्रयावनतो नृपः ॥ असुरैः सहितस्तत्र वचनं नम्रतायुतम् ॥ १६ ॥ न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे निःसन्नाहास्तथैव च ॥ देवास्ततश्चरिष्यामः संवृता वाल्कलैर्युता ॥ १७ ॥ प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्याऽभिव्याहृतं तु तत् ॥ ततो देवा न्यवर्तंत विज्वरा मुदिताश्च ते ॥ १८ ॥ न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु विनिवृत्तास्तदा सुराः ॥ विश्रब्धाः स्वगृहान्गत्वा क्रीडासक्ता सुसंस्थिताः ॥ १९ ॥ दैत्यादंभं समालंब्य तापसास्तपसिसंयुताः ॥ कश्यपस्याऽऽश्रमे वासं चक्रुः काव्याऽऽगमेच्छया ॥ २० ॥

अत्यन्त विनयसे देवताओंसे इस प्रकार वचन कहे ॥ १६ ॥ हे देवताओ ! इस समय हम सबने ही अस्त्र और वर्म (कवच) का त्याग किया है, अब हम वल्कल धारण करके तपका अनुष्ठान करेंगे, यही हमारी इच्छा है ॥ १७ ॥ देवता प्रह्लादके यह सत्य वचन सुनकर युद्धसे निवृत हुए और संग्रामजनित दुःख सन्ताप छोड़कर आनन्दित हुए ॥ १८ ॥ दैत्यगणोंके शस्त्रपरित्याग करनेपर देवता युद्धसे निवृत्त हो विश्वस्त चित्तसे घर जाय चित्तकोस्थिर कर आमोद प्रमोदमें रत हुए ॥ १९ ॥ दैत्य लोग भी दम्भ अवलम्बन करके तपमें निरत तपस्वी हो. शुक्राचार्यजीके आनेकी इच्छासे कश्यपजीके आश्रममें वास करने लगे ॥ २० ॥

दे. भा. ॥३१॥

इधर शुक्राचार्यजीने कैलासमें जाकर श्रीमहादेवजीको प्रणाम किया. तब महादेवजीने उनसे आनेका कारण पूँछा ॥ २१ ॥ तब शुक्राचार्यने कहा. जो मंत्र देवताओंके पास नहीं है मैं देवताओंकी पराजय और असुरोंकी जीतके लिये उन्हीं सब मंत्रोंको ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूं ॥ २२ ॥ हे राजन् ! कल्याणप्रद सर्वज्ञ महादेवजीने उनका यह वचन सुनकर मनमें विचार किया कि अब क्या करना चाहिये॥ २३ ॥ फिर उन्होंने मनमें स्थिर किया कि दैत्यगुरु शुक्राचार्य देवताओंके प्रति विद्रोहाचरण करेंगे इस प्रकार बुद्धियुक्त हो.असुरोंकी विजयके लिये मेरे पासमंत्र लेनेको आये हैं ॥ २४ ॥ क्योंकि देवताओंकी रक्षा करना हमारा अत्यन्त कर्तव्य है. उन्होंने इस प्रकार विचार कर काव्यको एक कठिन व्रतके अनुष्ठान करनेका उपदेश दिया ॥ २५ ॥ कि पूरे

काव्यो गत्वाऽथ कैलासं महादेवं प्रणम्य च ॥ उवाच विभुना पृष्टः किं ते कार्यमिति प्रभुः ॥ २१ ॥ मंत्रानिच्छाम्यहं देव ये न संति बृहस्पतौ ॥ पराजयाय देवनामसुराणां जयाय च ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सर्वज्ञः शंकरः शिवः ॥ चिंतयामास मनसा किं कर्तव्यमतः परम् ॥२३॥ सुरेषु द्रोहबुद्ध्याऽसौ मंत्रार्थमिह सांप्रतम् ॥ प्राप्तः काव्यो गुरुस्तेषां दैत्यानां विजयाय च ॥२४॥ रक्षणीया मया देवा इति संचिंत्य शंकरः ॥ दुष्करं व्रतमत्युग्रं तमुवाच महेश्वरः ॥ २५ ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्छिराः ॥ यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रानवाप्स्यसि ॥ २६ ॥ इत्युक्तोऽसौ प्रणम्येशं बाढमित्यब्रवीद्वचः ॥ व्रतं चराम्यहं देव त्वयाऽऽज्ञप्तः सुरेश्वर ॥ २७ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा शंकरं काव्यश्चकार व्रतमुत्तमम् ॥ धूमपानरतः शांतो मन्त्रार्थं कृतनिश्चयः ॥ २८ ॥ ततो देवाः परिज्ञाय काव्यं व्रतरतं तदा ॥ दैत्यान्दंभरतांश्चैव बभूवुर्मन्त्रतत्पराः ॥ २९ ॥

हजार वर्षतक ऊर्ध्वपद (ऊंचे पैर) और नीचेको शिर होकर यदि कणधूम (तुषका धुआं) पान कर सको तो तुम्हारी कामना पूर्ण होगी और उसके द्वारा मंत्रलाभ कर सकोगे ॥ २६ ॥ शुक्राचार्य इस प्रकारसुन महादेवजीको प्रणाम कर " हे सुरेश्वर ! आप जो अनुमति देते हैं. मैं उसी प्रकार उस व्रतका अनुष्ठान करूंगा" यह कहकर उसको स्वीकारकिया ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले, हे राजन् ! शुक्राचार्य महादेवजीसे इस प्रकार स्वीकार कर मंत्रके लिये कृतनिश्चय हुए और शमगुण अवलंबन कर धूम्रपानमें निरत हो उस कठोरतर अत्युत्तम व्रतका अनुष्ठान करने लगे ॥ २८ ॥ तदनन्तर देवतालोग शुक्राचार्यको व्रतमें निरत और दैत्यगणोंको दंभयुक्त देखकर मन्त्रणा (सलाह) में तत्पर हुए ॥ २९ ॥

हे नरेन्द्र ! देवता मनही मनमें विचारकर जिसस्थानमें दानव प्रवरगण वास करते थे. अस्त्र शस्त्र धारणपूर्वक समरमें उद्यत हो उसी स्थानमें गये ॥ ३० ॥ दैत्यगणदेवताओंको आयुध और कवच धारण किये चारों ओरसे आये देखकर भयसे अत्यन्त उद्विग्न होगये ॥ ३१ ॥ वे देवताओंको सहसा अस्त्रशस्त्रोंसे सजे हुए देखकर चकित हुए और भयसे कातर हो बलदर्पित देवताओंसे नीतिगर्भ वचन कहने लगे ॥ ३२ ॥ हे देवताओ ! हमने अस्त्र त्याग किया है. हमारे आचार्य देवव्रतमें निरत हुए हैं. और आपने पूर्वमें हमको अभय दियाहै. तो किस निमित्त इस समय हमको मारनेके निमित्त सुसज्जित होकर उपस्थित हुए हो ॥ ३३ ॥ हे देवता लोगो ! तुम्हारा सत्य और श्रुतिविहित धर्म कहां गया ? श्रुतिमें कहा है कि शस्त्रत्यागी भीत और शरणागतका विनाश न

विचार्य मनसा सर्वे संग्रामायोद्यता नृप ॥ ययुर्धृतायुधास्तत्र यत्र ते दानवोत्तमाः ॥३०॥ तानागतान्समीक्ष्याऽथ सायुधान्दंशितांस्तथा ॥ आसंस्ते भय संविग्ना दैत्या देवान्समंततः ॥ ३१ ॥ उत्पेतुः सहसा ते वै सन्नद्धान्भय कर्शिताः ॥ अब्रुवन्वचनं तथ्यं ते देवान्बलदर्पितान् ॥ ३२ ॥ न्यस्तशस्त्रे भयवति आचार्ये व्रतमास्थिते ॥ दत्त्वाऽभयं पुरा देवाः संप्राप्ता नो जिघांसया ॥ ३३ ॥ सत्यं वः क्व गतं देवा धर्मश्च श्रुतिनोदितः ॥ न्यस्त शस्त्रा न हंतव्या भीताश्च शरणं गताः ॥३४॥ देवा ऊचुः ॥ भवद्भिः प्रेषितः काव्यो मंत्रार्थं कुहकेन च ॥ तपो ज्ञातं हि युष्माकं तेन युध्याम एव हि ॥ ३५ ॥ सज्जा भवंतु युद्धाय संरब्धाः शस्त्रपाणयः ॥ शत्रुश्छिद्रेण हंतव्य एष धर्मः सनातनः ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्या विचार्य च परस्परम् ॥ पलायनपराः सर्वे निर्गता भयविह्वलाः ॥ ३७ ॥ शरणं दानवा जग्मुर्भीतास्ते काव्यमातरम् ॥ दृष्ट्वा ताँनतिसंतप्तानभयं च ददावथ ॥ ३८ ॥

करे. उस धर्मका आपने क्यों परित्याग किया ? ॥ ३४ ॥ देवताओंने कहा तुमने मंत्र शिक्षाके निमित्त शुक्राचार्यजीको छलपूर्वक भेजा है. तुम्हारी दुष्टभावयुक्त तपस्याको हमने जानलिया है. अतएव इस समय हम तुम्हारे संग निःसंदेह युद्ध करेंगे ॥ ३५ ॥ तुम इस समय युद्ध करनेके लिये अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके सज्जित होओ. देखो छिद्रपाते ही शत्रुको मारना, चाहिये यहि सनातन धर्म है ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! दैत्य लोग देवताओंके ये वचन सुन आपसमें विचारकर सभी भयसे विह्वल हुए और उस स्थानसे निकलकर भागे ॥ ३७ ॥ दानव लोग डरकर शुक्राचार्यकी माताके शरणमें गये । तब शुक्र--जननीने उनको भयसे अत्यन्त संतप्त देख अभय देकर कहा ॥ ३८ ॥

तुमको भय नहीं. हे दानवगणो ! तुम भयका परित्याग करो तुम जब मेरे समीप अवस्थान करते हो तब फिर भयका विषय कुछ भी नहीं है. निर्भय इस स्थानमें वास करो ॥ ३९ ॥ असुरगण उनका यह वचन सुनकर उद्वेगहीन हुए और आयुधरहित होकर भी उस स्थानमें भय छोडकर वास करने लगे ॥ ४० ॥ इधर देवतागण दानवोंको भागते देख उनके पीछेपीछे दौडे और बलाबल न विचार कर उस आश्रममें जाय दैत्योंका हनन करनेमें उद्यत हुए ॥ ४१ ॥ तब शुक्राचार्यकी माताने निवारण किया किन्तु उनके निवारण करनेपर भी देवतालोग उनका वचन न सुन आश्रमस्थित दैत्योंको हनन करने लगे ॥ ४२ ॥ देवताओंको असुरोंका वध करता देख शुक्रमाताने अत्यन्त रुष्ट होकर कहा मैं तपोबलसे अभी देवताओंको निद्रित करती हूं ॥ ४३ ॥

काव्यमातोवाच ॥ न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः ॥ मत्सन्निधौ वर्तमानान्न भीर्भवितुमर्हति ॥ ३९ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्याः स्थितास्तत्र गतव्यथाः ॥ निरायुधाह्यसम्भ्रांतास्तत्राऽऽश्रमवरेऽसुराः ॥ ४० ॥ देवास्तान्विद्रुतान्वीक्ष्य दानवांस्ते पदा नुगाः ॥ अभिजग्मुः प्रसह्यैतानविचार्य बलाबलम् ॥ ४१ ॥ तत्राऽऽगताः सुराः सर्वे हंतुं दैत्यान्समुद्यताः ॥ वारिताः काव्यमात्राऽपि जघ्नुस्तानाश्रमस्थितान् ॥ ४२ ॥ हन्यमानान्सुरैर्दृष्ट्वा काव्यमाताऽतिवेपिता ॥ उवाच सर्वान्सनिद्रांस्तपसा वै करोम्यहम् ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वा प्रेरिता निद्रा ताना गत्य पपात च ॥ सेंद्रा निद्रावशं याता देवा मूकवदास्थिताः ॥ ४४ ॥ इंद्रं निद्राजितं दृष्ट्वा दीनं विष्णुभाषत ॥ मां त्वं प्रविश भद्रं ते त्वां च सुरोत्तम ॥ ४५ ॥ एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरन्दरः ॥ निर्भयो गतनिद्रश्च बभूव हरिरक्षितः ॥ ४६ ॥ रक्षितं हरिणा दृष्ट्वा शक्रं तत्र गतव्यथम् ॥ काव्यमाता ततः क्रुद्धा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ४७॥ मघवंस्त्वां भक्षयामि सविष्णुं वै तपो बलात् ॥ पश्यतां सर्व देवानामीदृशंमे तपोबलम् ॥ ४८ ॥

उसने यह कहकर निद्राको प्रेरण किया निद्राने जाय देवताओंको मोहित कर भूमिमें गिरा दिया. तब देवता इन्द्रके सहित निद्रामें अभिभूत होकर मूकके समान अवस्थिति करने लगे ॥ ४४ ॥ भगवान् विष्णुने इन्द्रको निद्रासे ग्रसित और दीन देखकर कहा. हे सुरोत्तम ! तुम मुझमें प्रवेश करो. इसमें तुम्हारा मंगल होगा. मैं तुमको अन्यत्र ले जाऊंगा ॥ ४५ ॥ इन्द्रने इस प्रकार सुनकर विष्णुके शरीरमें प्रवेश किया तब हरिसे रक्षित हो. इन्द्र निद्रारहित और निर्भय हुए ॥ ४६ ॥ देवराज इन्द्रको हरिसे रक्षित और व्यथारहित हुआ देखकर शुक्रमाता क्रुद्ध होकर इस प्रकार कहने लगी ॥ ४७ ॥ हे इन्द्र ! मैं आज तपोबलसे विष्णुके सहित तुमको भक्षण करूंगी सब देवतालोग यह देखें. हे इन्द्र ! तुम मेरा तपोबल इसी प्रकार जानो ॥ ४८ ॥

व्यासजी बोले, हे राजन् ! शुक्राचार्यजीकी माताजीके इस प्रकार कहनेपर विष्णु और इन्द्र दोहों ही योग विद्यामें अभिभूत और स्तब्ध होकर रहे ॥ ४९ ॥ देवतागण उनको अत्यन्त अभिभूत और पीड़ित देखकर अतिशय विस्मित हुए और अत्यन्त दीनमन होकर हाहाकार करने लगे ॥ ५० ॥ शचीपति इन्द्रेन देवताओंको आर्त्तनाद करताहुआ देखकर विष्णुसे कहा, हे मधुसूदन ! मैं आपकी अपेक्षा विशेष अभिभूत हुआ हूं ॥ ५१ ॥ हे माधव ! अब विचारका प्रयोजन नहीं है. यह तपोदर्पिता दुष्टा जबतक हमको दग्ध न करे, तबतक शीघ्र इसका विनाश करो ॥ ५२ ॥ भगवान् विष्णुने अति पीड़ित शत्रुसे इस प्रकार अभिहित होकर स्त्रीवधजनित घृणाकापरित्याग करके शीघ्र सुदर्शनका स्मरण किया ॥ ५३ ॥ विष्णुका वशीभूत चक्र स्मरण करतेही उपस्थित

व्यास उवाच ॥ इत्युक्तौ तु दया देवौ विष्ण्विन्द्रौ योगविद्यया ॥ अभिभूतौ महात्मानौ स्तब्धौ तौ संबभूवतुः ॥ ४९ ॥ विस्मितास्तु तदा देवा दृष्ट्वा तावतिबाधितौ ॥ चक्रुः किलकिलाशब्दं ततस्ते दीनमानसाः ॥ ५० ॥ क्रोशमानान्सुरान्दृष्ट्वा विष्णुं प्राह शचीपतिः ॥ विशेषणाभिभूतोऽस्मि त्वत्तोऽहं मधुसूदन ॥५१॥ जह्येनां तरसा विष्णो यावन्नौ न दहेत्प्रभो ॥ तपसा दर्पितां दुष्टां मा विचारय माधव ॥ ५२ ॥ इत्युक्तो भगवान्विष्णुः शक्रेण प्रथितेन च ॥ चक्रं सस्मार तरसा घृणां त्यक्त्वाऽथ माधवः ॥ ५३ ॥ स्मृतमात्रं तु संप्राप्तं चक्रं विष्णुवशानुगम् ॥ दधार च करे क्रुद्धो वधार्थं शक्रनोदितः ॥ ५४ ॥ गृहीत्वा तत्करे चक्रं शिरश्चिच्छेद रंहसा ॥ हतां दृष्ट्वा तु तांशक्रो मुदितश्चाभवत्तदा ॥ ५५ ॥ देवाश्चातीव संतुष्टा हरिं जयजयेति च ॥ तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे संजाता विगतज्वराः ॥ ५६ ॥ इंद्राविष्णू तु संजातौ तत्क्षणाद्धृदयव्यथौ ॥ स्त्रीवधाच्छंकमानौ तु भृगोः शापं दुरत्ययम् ॥५७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ छ ॥ व्यास उवाच ॥ तं दृष्ट्वा तु वधं घोरं चुक्रोध भगवान्भृगुः ॥ वेपमानोऽतिदुःखार्तः प्रोवाच मधुसूदनम् ॥१॥

हुआ. तब इन्द्रकी प्रेरणासे क्रोधित होकर भगवान्ने चक्र धारण किया ॥ ५४ ॥ और फिर क्रोधयुक्त हो वेगसहित निक्षेप करके शुक्राचार्यकी माताका शिर काटडाला. यह देखकर इन्द्र अतिशय आनन्दित हुए ॥ ५५ ॥ देवता लोगभी संतापरहित होकर जयजयशब्दसे हरिका स्तवन करने लगे ॥ ५६ ॥ इन्द्र और विष्णु उसकाल सब क्लेशसे छूट गये. किन्तु भृगुके दारुण दुरतिक्रमणीय शापकी बात मनमें विचारकर अत्यन्त शंका करनेलगे ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले, हे महाराज जन्मेजय ! अनन्तर भगवान् भृगु विष्णुका स्त्रीवध रूप दारुण पापकार्य देखकर क्रोधसे कॉंपने लगे और अत्यन्त दुःखार्त्त होकर मधुसूदनसे बोले ॥ १ ॥

१ भृगु बोले, हे मधुसूदन ! तुम अतिशय बुद्धिमान् हो और जान सुनकर भी ऐसा अकार्य किया. क्या आश्चर्य है ? इस विप्रकन्याका वध एक बार मनमें धारण करनेको भी समर्थ नहीं हुआ जाता और तुमने उसको साक्षात् संपादन किया ॥ २ ॥ हे देव ! महर्षिगण तुमको सत्त्वगुणसंपन्न, ब्रह्माको रजोगुण युक्त और शंभुको तमोगुणयुक्त कहते हैं. तब इस समय उसके विपरीत क्यों हुआ ? ॥ ३ ॥ तुमने किसलिये तमोगुणयुक्त होकर अतिनिन्दित कर्म किया ? हे विष्णु, स्त्री जाति अवध्य अर्थात् मारनेयोग्य नहीं है तो विना अपराध इस अबला नारीका क्यों विनाश किया ॥ ४ ॥ तुमने अत्यन्त निन्दित कार्यका आचरण किया है. इस समय मैं तुम्हारा क्या करूं ? तुमको शाप देनाही युक्ति संगत विचारता हूं. हेपापिष्ठ ! तुमने इन्द्रके लिये मुझको अत्यन्त दुःखान्वित

भृगुरुवाच ॥ अकृतं ते कृतं विष्णो जानन्पापं महामते ॥ वधोऽयं विप्रजाताया मनसा कर्तुमक्षमः ॥ २ ॥ आख्या तस्त्वं सत्त्वगुणः स्मृतो ब्रह्मा च राजसः ॥ तथाऽसौ तामसः शंभुर्विपरीतं कथं स्मृतम् ॥ ३ ॥ तामसस्त्वं कथं जातः कृतं कर्मातिनिंदितम् ॥ अवध्य स्त्री त्वया विष्णो हता कस्मान्निरागसा ॥४॥ शपामि त्वां दुराचारं किमन्यत्प्रकरोमि ते ॥ विधुरोऽहं कृतः पाप त्वयाऽहं शक्रकारणात् ॥ ५ ॥ न शपेऽहं तथा शक्रं शपे त्वां मधुसूदन ॥ तदा छलपरोऽसि त्वं कीटयोनिर्दुराशयः ॥ ६ ॥ ये च त्वां सात्त्विकं प्राहुस्ते मूर्खा मुनयः किल ॥ तामसस्त्वं दुराचारः प्रत्यक्ष मे जनार्दन ॥ ७ ॥ अवतारा मृत्युलोके संतु मच्छापसंभवाः ॥ प्रायो गर्भभवं दुःखं भुंक्ष्व पापाज्जनार्दन ॥८॥ व्यास उवाच ॥ ततस्तेनाथशापेन नष्टेधर्मे पुनः पुनः ॥ लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह ॥९॥ राजोवाच ॥ भृगुभार्या हता तत्र चक्रेणामिततेजसा ॥ गार्हस्थ्यं च पुनस्तस्य कथं जातं महात्मनः ॥ १० ॥

और कातर किया है ॥ ५ ॥ मैं इन्द्रको शाप नहीं दूंगा. तुम सदाही कपटभाव अवलंब और काले सर्पके समान व्यवहार करते हो. तुम अत्यन्त दुष्टाशय हो. मैं तुमकोही शाप देता हूं ॥ ६ ॥ जो मुनिगण तुमको सत्त्वगुण संपन्न कहते हैं. वे अत्यंत मूर्ख हैं. तुमजो अतिशय दुराचारी हो. वह मैंने आज प्रत्यक्ष जाना ॥ ७ ॥ हेविष्णु ! तुम मेरे शापसे मर्त्य लोकमें अनेकवार अवतीर्ण होकर पापकर्मका फलस्वरूप प्रायःगर्भकी यंत्रणाभोग करोगे इसमें संदेह नहीं ॥ ८ ॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णु उशी शापके वश धर्म नष्ट होनेसे लोकोंका हित करनेकेलिये इस मनुष्य लोकमें वारंवार अवतीर्ण होते हैं ॥ ९ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! तेजपुंजशाली चक्रद्वारा भृगुकी भार्याके वहां नियत होनेपर उन महात्माका पुनर्वार गार्हस्थ्य धर्म किस प्रकार संपादित हुआ था ? ॥ १० ॥

व्यासजी बोले, हे राजन् ! कार्यविद् भृगुजीने क्रोधयुक्त हो हरिको इसप्रकार शाप दे फिर उस छिन्न मस्तकको ग्रहणपूर्वक शीघ्र देहके ऊपर लगाकर कहा ॥ ११ ॥ देवि ! इस समय विष्णुने तुमको मारा है, मैं तुमको अभी जीवित करता हूं यदि मैं नव धर्मोंको जानता हूं, यदि मैं धर्मका आचरण करता हूं ॥ १२ ॥ यदि मैं सदाही सत्य कहता हूँ तो उस धर्मके बलसे तुम जीवन लाभ करो सब देवता लोग मेरा तपो बल देखें ॥ १३ ॥ यदि सत्यही मेरा वेदाध्ययन और वेदज्ञान है, यदि मेरा तपोबल है, तो तुमको अभिमंत्रित शीतल जलसे प्रोक्षित करके तपोबलके द्वारा इसी समय जीवित करता हूं ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले, हे राजन् ! भृगुद्वारा जलसे संप्रोक्षित होकर भृगु--भार्या तत्काल जीवनलाभ करके उठी और परमप्रीतिलाभ करके कुछेक हंसनेलगी ॥ १५ ॥

व्यास उवाच ॥ इति शप्त्वा हरिं रोपात्तदादाय शिरस्त्वरन् ॥ काये संयोज्य तरसा भृगुः प्रोवाच कार्यवित् ॥११॥ अद्य त्वां विष्णुना देवि हतां संजीवयाम्यहम् ॥ यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोऽपि वा ॥१२॥ तेन सत्येन जीवेत यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ पश्यंतु देवताः सर्वा मम तेजोबलं महत् ॥ १३ ॥ अद्भिस्तां प्रोक्ष्य शीताभिर्जीवयामि तपोबलात् ॥ सत्यं शौचं तथा वेदा यदि मे तपसो बलम् ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ अद्भिः संप्रोक्षिता देवी सद्यः संजीविता तदा ॥ उत्थिता परमप्रीताभृगोर्भार्या शुचिस्मिता ॥ १५ ॥ ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव ॥ साधु साध्विति तं तां तु तुष्टुवुः सर्वतोदिशम् ॥ १६ ॥ एवं संजीविता तेन भृगुणा वरवर्णिनी ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्देवाः सेंद्रा विलोक्य तत् ॥ १७ ॥ इन्द्रःसुरानथोवाच मुनिना जीविता सती ॥ काव्यस्तप्त्वा तपो घोरं किं करिष्यति मंत्रवित् ॥१८॥ व्यास उवाच ॥ गता निंद्रा सुरेन्द्रस्य देहेऽक्षेममभून्नृप ॥ स्मृत्वा काव्यस्य वृत्तांतं मंत्रार्थमतिदारुणम् ॥१९॥ विमृश्य मनसा शक्रो जयंतीं स्वसुतां तदा ॥ उवाच कन्यां चर्वगीं स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ २० ॥

उसकाल सब जीवगणोंने उसको सोते हुएके समान उठी देखकर भृगुको और उसको चारों ओरसे "साधु साधु" कहकर स्तव किया था ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार उस वरवर्णिनीके भृगुसे जीवनलाभ करनेपर इन्द्रादि देवता उसको देख अत्यन्त विस्मित हुए ॥ १७ ॥ तब इंद्रने देवताओंसे कहा हे देवताओ ! इस समय तो शुक्रजननीने भृगुद्वारा जीवन लाभ किया किंतु शुक्राचार्य घोरतर तपस्या करके मंत्रलाभ करने पर न जाने हमारा क्या अनिष्ट करेंगे ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे नरेंद्र ! उसकाल देवराजकी वह निद्रा रूपिणी माया दूर होनेपरभी शुक्राचार्यकी मंत्रप्राप्तिके लिये उसअति दारुण तपस्याका वृत्तांत सुनकर उनके देहमें दुःखका संचार हुआ ॥ १९ ॥ अनंतर सुरपति इंद्रने मनमें विचार करके अपनी कन्या तन्वङ्गी जयंतीसे सस्मित वचनसे कहा ॥ २० ॥

हे तनये ! मैं तुमको शुक्राचार्यकी सेवामें नियोजित करता हूं ! हे तन्वङ्गि ! वहां जाकर मेरा कार्य साधनके निमित्त उस तपश्चारी शुक्रकी आराधना करके वशीभूत कर ॥ २१ ॥ उस उत्तम आश्रममें शीघ्र जाकर जिस जिस कार्यसे मुनिका मन परितुष्ट हो उसी उसी प्रिय कार्यके अनुष्ठानसे तुम उनकी आराधना करके मेरा भय दूर करो ॥ २२ ॥ उस विशालाक्षी मनोरमा जयंतीने पिताका वचन सुनकर वहां गमन किया और वहां देखा तो शुक्राचार्य आश्रममें तपोनिरत होकर धूम्रपान करते हैं ॥ २३ ॥ शुक्राचार्य देहको देख और पिताका वचन स्मरणकर जयंती केलेके पत्ते लाय उनकी बयार करने लगी ॥ २४ ॥ बुद्धिशालिनी जयंती अव्यग्ररहकर निर्मल, सुशीतल और सुवासितजल लाकर परमभक्ति सहित उनके पान करनेके लिये धीरे धीरे रख देती

गच्छ पुत्रि मया दत्ता काव्याय त्वं तपस्विने ॥ समाराधय तन्वंगि मत्कृते तं वशं कुरु ॥ २१ ॥ उपचारैर्मुनिं तैस्तैः समाराध्य मनःप्रियैः ॥ भयं मे तरसा गत्वा हर तत्र वराश्रमे ॥२२॥ सा पितुर्वचनं श्रुत्वा तत्रागच्छन्मनोरमा ॥ तमपश्यद्विशालाक्षी पिबंतं धूममाश्रमे ॥ २३ ॥ तस्य देहं समालोक्य स्मृत्वा वाक्यं पितुस्तदा ॥ कदलीदलमादाय वीजयामास तं मुनिम् ॥ २४ ॥ निर्मलं शीतलं वारि समानीय सुवासितम् ॥ पानाय कल्पयामास भक्त्या परमया लघु ॥ २५ ॥ छायां वस्त्रातपत्रेण भास्करे मध्यगे सति ॥ रचयामास तन्वंगी स्वयं धर्मे स्थिता सती ॥ २६ ॥ फलान्यानीय दिव्यानि पक्वानि मधुराणि च ॥ मुचोचाग्रे मुनेस्तस्य भक्ष्यार्थं विहितानि च ॥ २७ ॥ कुशाः प्रादेशमात्रा हि हरिताः शुकसन्निभाः ॥ दधाराग्रेऽथ पुष्पाणि नित्यकर्मसमृद्धये ॥ २८ ॥ निद्रार्थं कल्पयामास संस्तरं पल्लवान्वितम् ॥ तस्मिन्मुनौ चाऽऽदरस्था चकार व्यजनं शनैः ॥ २९ ॥ हावभावादिकं किंचिद्विकारजननं च तत् ॥ न चकार जयंती सा शापभीता मुनेस्तदा ॥ ३० ॥

॥ २५ ॥ वह सुंदरी जयंती स्वयं धर्ममें नियुक्त रहकर इसप्रकार शुक्राचार्यकी सेवा करनेलगी जब मार्त्तंडदेव मस्तकपर गमन करते वस्त्रद्वारा उनके मस्तकपर छत्रकी रचना करके छाया करदेती ॥ २६ ॥ मुनिके भक्षण करनेको शास्त्रविहित दिव्य पके हुए और मधुर फल लाकर उनके सन्मुख रख देती ॥ २७ ॥ उनके नित्यकर्म समाधानार्थ तोतेके शरीरके समान हरिद्वर्णप्रादेशप्रमाण कुश और पुष्प उनके आगे रख देती ॥ २८ ॥ मुनिकी निद्राके लिये कोमल पल्लवोंसे शय्याकी रचना कर रखती और उस मुनिके प्रति भक्तियुक्तस्थिर हो बयार करती ॥ २९ ॥ जयंती मुनिके शाप देनेके भयसे भीत होकर कभी हावभावादि मनोविकारजनक कुछभी कार्य नहीं करती ॥ ३० ॥

वह सुभाषिणी कृशाङ्गी प्रीतिकार और अनुकूल वचनोंसे महात्मा शुक्राचार्यकी स्तुत करती ॥ ३१ ॥ मुनिके जागरित होनेपर उनके आचमनके लिये जल लीकर सन्मुख रखती इस प्रकार मुनिके मनके अनुकूल आचरण करके जयंती उस स्थानमें वास करने लगी ॥ ३२ ॥ भयातुर इंद्रभी उस मुनिकी प्रवृत्ति जाननेके लिये वहां सेवकगणोंको भेजदे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार क्रोधरहित और ब्रह्मचर्य परायण इंद्रतनया जयंती बहुत कालतक शुक्राचार्यकी सेवामें नियुक्त रही ॥ ३४ ॥ क्रम क्रमसे हजार वर्ष पूर्ण होनेपर श्रीमहादेवजी परितुष्ट और प्रसन्नमन हो वर देनेके निमित्त शुक्राचार्यसे कहने लगे ॥ ३५ ॥ शिवजी बोले--हे भृगुनंदन ब्रह्मन् ! इस विश्वसंसारमें जो कुछ विद्यमान है तुम नेत्रोंसे जो कुछ देखते हो और जो किसीके वचनगोचरभी नहीं है ॥ ३६ ॥ तुम

स्तुतिं चकार तन्वंगी गीर्भिस्तस्य महात्मनः ॥ सुभाषिण्यनुकूलाभिः प्रीतिकर्त्रीभिरप्युत ॥३१॥ प्रबुद्धे जलमादाय दधाराचमनाय च ॥ मनोऽनुकूलं सततं कुर्वंती व्यचरत्तदा ॥ ३२ ॥ इंद्रोऽपि सेवकांस्तत्र प्रेषयामास चातुरः ॥ प्रवृत्तिं ज्ञातुकामो वै मुनेस्तस्य जितात्मनः ॥३३॥ एवं बहूनि वर्षाणि परिचर्यापराऽभवत् ॥ निर्विकारा जितक्रोधा ब्रह्मचर्यपरा सती ॥३४॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु परितुष्टो महेश्वरः ॥ वरेण च्छन्दयामास काव्यं प्रीतमना हरः ॥ ३५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ यच्च किंचिदपि ब्रह्मन्विद्यते भृगुनंदन ॥ प्रतिपश्यसि यत्सर्वं यच्च वाच्यं न कस्यचित् ॥ ३६ ॥ सर्वाभिभावकत्वेन भविष्यसि न संशयः ॥ अवध्य सर्वभूतानां प्रजेशश्च द्विजोत्तमः ॥ ३७ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं दत्त्वा वरान्छंभुस्तत्रैवांतरधीयत ॥ काव्यस्तामथ संवीक्ष्य जयंतीं वाक्यमब्रवीत् ॥ ३८ ॥ काऽसि कस्यासि सुश्रोणि ब्रूहि किं ते चिकिर्षितम् ॥ किमर्थमिह संप्राप्ता कार्यं वद वरोरु मे ॥ ३९ ॥ किं वांछसि करोम्यद्य दुष्करं चेत्सुलोचने ॥ प्रीतोऽस्मि त्वत्कृतेनाद्य वरं वरय सुव्रते ॥ ४० ॥

उन सबके अभिभावक जीतनेवाले होकर प्रभुत्व करोगे, इसमें संदेह नहीं ! इसके अतिरिक्त तुम सबजीव गणोंसे अवध्यप्रजाओंके ईश्वर और द्विजश्रेष्ठ होगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३७ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! देवदेवशम्भु इस प्रकार वर देकर उसी स्थानमें अन्तर्हित होगये. तब शुक्राचार्य जयन्तीको देखकर कहने लगे ॥ ३८ ॥ हे सुश्रोणी ! तुम कौन हो किसकी कन्या हो ? तुम्हारे मनकी अभिलाषा क्या है ? किस निमित्त तुम यहां आई हो ! हे वामोरु ! तुम्हारा क्या कार्य है ! वह कहो ॥ ३९ ॥ हे सुलोचने ! मैं तुम्हारे कार्यसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं, तुम मेरे निकट क्या वांछा करती हो ! हे सुव्रते ! तुम वर मांगो वह मैं अत्यन्त दुष्कर होनेपरभी तुमको दूंगा ॥ ४० ॥

यह सुनकर जयंतीका मुखकमल प्रफुल्लित हुआ, तब सुव्रता बालाने विनयनम्र वचनद्वारा तपोधनसे कहा, हे भगवन् ! मेरा मनोरथ आप तपोबलसे जान लीजिये ॥ ४१ ॥ शुक्राचायजीने कहा मैंने तुम्हारे मनका भाव जान लिया है तो भी तुम भलीभांति समझाकर कहो, सर्वथा तुम्हारा मंगल संपादन करूंगा मैं तुम्हारी सेवासे अत्यंत प्रसन्न और परितुष्ट हुआ हूं ॥ ४२ ॥ जयंतीने कहा हे ब्रह्मन् ! मैं इंद्रकी कन्या जयंतकी छोटी बहन हूं, पिताने मुझको आपको समपर्ण किये हैं ॥ ४३ ॥ मैं आपसे सकामा हुई हूं इस समय आप मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये. हे महाभाग ! मैं धर्मानुसार प्रीतिपूर्ण हृदयसे आपके संग रमण करूं यही मेरी इच्छा है ॥ ४४ ॥ शुक्राचार्यजी बोले-'हे नितम्बिनी ! तुम दशवर्षपर्यन्त सब भूतोंसे अदृश्य हो अपनी इच्छानुसार मेरे संग

ततः सा तु मुनिं प्राह जयंती मुदितानना ॥ चिकीर्षितं मे भगवंस्तपसा ज्ञातुमर्हसि ॥ ४१ ॥ काव्य उवाच ॥ ज्ञातं मया तथाऽपि त्वं ब्रूहि यन्मनसेप्सितम् ॥ करोमि सर्वथा भद्रं प्रीतोऽस्मि परिचर्यया ॥४२॥ जयन्त्युवाच ॥ शक्रस्याऽहं सुता ब्रह्मन्पित्रा तुभ्यं समर्पिता ॥ जयन्ती नामतश्चाहं जयन्तावरजा मुने ॥ ४३ ॥ सकामाऽस्मि त्वयि विभो वांछितं कुरु मेऽधुना ॥ रंस्ये त्वया महाभाग धर्मतः प्रीतिपूर्वकम् ॥ ४४ ॥ शुक्र उवाच ॥ मया सह त्वं सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि ॥ सर्वैर्भूतैरदृश्या च रमस्वेह यदृच्छया ॥ ४५ ॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्त्वा गृहं गत्वा जयंत्याः पाणिमुद्वहन् ॥ तया सहावसद्देव्या दश वर्षाणि भार्गवः ॥ ४६ ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतः प्रभुः ॥ दैत्यास्तमागतं श्रुत्वा कृतार्थं मंत्रसंयुतम् ॥ ४७ ॥ अभिजग्मुर्गृहे तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः ॥ नापश्यन्नममाणं ते जयंत्या सह संयुतम् ॥ ४८ ॥ तदा विमनसः सर्वे जाता भग्नोद्यमाश्च ते ॥ चिंतापरातिदीनाश्च वीक्षमाणाः पुनः पुनः ॥ ४९ ॥ अदृष्ट्वा तं तु संवृत्तं प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ स्वगृहान्दैत्यवर्यास्ते चिंताविष्टा भयातुराः ॥ ५० ॥

रमण करो ॥ ४५ ॥ श्रीव्यासजी बोले, हे महाराज ! भार्गव श्रेष्ठ शुक्राचार्यजीने इस प्रकार कह घर आय जयन्तीका पाणिग्रहण किया और मायासे संयुक्त होकर तथा जीवगणोंसे अदृश्य हो उस देवीके सहित दशवर्षपर्यंत वास करने लगे ॥ ४६ ॥ इधर शुक्राचार्य मंत्रलाभ करके घर आये हैं यह सुनकर दैत्यगण अत्यन्त आनंदित हुए ॥ ४७ ॥ और उनका दर्शन करनेके निमित्त उनके घर आये किंतु वह जयंतीके संग रमण करते थे इस कारण असुरगण उनको न देख सके ॥ ४८ ॥ तब वह अत्यन्तविमन और भग्नोद्यम हुए चिंतायुक्त और दीन होकर वारंवार उनको ढूँढने लगे ॥ ४९ ॥ मायासंवृत शुक्राचार्यके न देखनेपर दैत्दगण चिंतायुक्त और भयातुर हो अपने अपने घरको लौट आये ॥ ५० ॥

इधर शुक्राचार्यको जयंतीके संग क्रीडासक्त जानकर देव राजने महाभाग देवताओंके गुरु बृहस्पतिजीसे कहा. हे गुरो ! अब हमको क्या करना चाहिये सो कहिये ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप इस समय दानवलोगोंके पास जाइये. हे मानद ! जिस कार्यसे मानकी रक्षा हो वह कीजिये आप दैत्यगणोंको माया जालसे मोहित करके भलीभांति विचारपूर्वक मेरा कार्य कीजिये ॥ ५२ ॥ बृहस्पतिजी इंद्रके वचन सुन और शुक्राचार्यको मायासे मोहित तथा जयंतीके सहित रमणासक्त जान शुक्राचार्यका रूप धारणकर दैत्योंके निकट गये ॥ ५३ ॥ उस स्थानमें जाय, बृहस्पतिजीने अत्यंत आदरपूर्वक दैत्योंको बुलाया। तब दैत्यलोगोंने आकर शुक्राचार्यको संमुख देखा ॥ ५४ ॥ वे अत्यंत आह्लादसे मोहित हो; उनको शुक्राचार्य जान, प्रणाम करके आगे खडे रहे. किंतु

रममाणं तथा ज्ञात्वा शक्रः प्रोवाच तं गुरुम् ॥ बृहस्पतिं महाभागं किं कर्तव्यमितः परम् ॥ ५१ ॥ गच्छाद्य दानवान्ब्रह्मन्मायया त्वं प्रलोभय ॥ अस्माकं कुरु कार्यं त्वं बुद्ध्या संचिंत्य मानद ॥ ५२ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यं रममाणं सुसंवृतम् ॥ ज्ञात्वा तद्रूपमास्थाय दैत्यान्प्रति ययौ गुरुः ॥ ५३ ॥ गत्वा तत्राऽतिभक्त्याऽसौ दानवान्समुपाह्वयत् ॥ अगातास्तेऽसुराः सर्वे ददृशुः काव्यमग्रतः ॥ ५४ ॥ प्रणम्य संस्थिताः सर्वे काव्यं मत्वाऽतिमोहिताः ॥ न विदुस्ते गुरोर्मायां काव्यरूपविभाविनीम् ॥ ५५ ॥ तानुवाच गुरुः काव्यरूपः प्रच्छन्नमायया ॥ स्वागतं मम याज्यानां प्राप्तोऽहं वो हिताय वै ॥ ५६ ॥ अहं वो बोधयिष्यामि विद्यां प्राप्तामभायया ॥ तपसा तोषितः शंभुर्युष्मत्कल्याणहेतवे ॥ ५७॥ तच्छ्रुत्वा प्रीतमनसो जातास्ते दानवोत्तमाः ॥ कृतकार्यं गुरुं मत्वा जहृषुस्ते विमोहिताः ॥५८॥ प्रणेमुस्ते मुदा युक्ता निरातंका गतव्यथाः ॥ देवेभ्यश्च भयं त्यक्त्वा तस्थुः सर्वे निरामयाः ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे द्वादशोध्यायः ॥ १२ ॥

वह जो शुक्ररूपधारिणी बृहस्पतिकी माया थी उसको वे नहीं जानसके ॥ ५५ ॥ तब मायासे प्रच्छन्न शुक्ररूपी देवताओंके गुरुने दैत्योंसे कहा--आप लोगोंकी कुशल तो है ? मैं तुम्हारे हितके ही लिये आया हूं ॥ ५६ ॥ तुम्हारे कल्याणार्थ मैंने कठिन तपस्यासे शम्भुको संतुष्ट करके जो विद्या प्राप्त की है. वह तुम्हें निष्कपटतापूर्वक समझाये देता हूं ॥ ५७ ॥ यह सुनकर दानवोत्तम प्रसन्न हुए और गुरुजीके द्वारा कार्य हुआ समझ आह्लादसे मोहित हुए ॥ ५८ ॥ उन्होंने प्रसन्न होकर उनको प्रणाम किया और निरातंक (निर्भय) तथा व्यथाहीन होकरदेवताओंसे भयकी शंका छोड स्वच्छन्द मनसे वास करने लगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

राजा बोले, हे ऋषिवर ! बुद्धिमान् बृहस्पतिजीने असुरोंके गृहोंमें शुक्राचार्यके रूपसे वास करके और छलपूर्वक दैत्यगणोंके पौरोहित्यमें व्रती होकर क्या किया था ? ॥१॥ हे मुने ! बृहस्पति देवताओंके गुरु हैं वे सदाही वेदादिकी आलोचना करते रहते हैं विशेष करके वे अंगिरामुनिके पुत्र और स्वयं मुनि हैंइन गुणोंसे युक्त होकर भी उन्होंने किस प्रकार छल अवलम्बन किया था ? ॥ २ ॥ मुनिगणोंने सभीशास्त्रोंमें कहा है कि, सत्यही धर्मका कारण और सत्यसेही परमात्माकी प्राप्ति होती है ॥३॥ तब बृहस्पतिजीने जब दैत्यगणोंकेनिकट मिथ्यावचन कहे थे तब संसारमें कौन गृहाश्रमी सत्यवक्ता होगा?हे मुनिवर! इस विषयमें विचार कर मैं कुछ स्थिर नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ यदि कहें कि लोभके वशीभूत होकर लोक असत् कार्यमें प्रवृत्त होते हैं किंतु यहभी यथार्थ बोधनहीं होता, क्योंकि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें यदि किसीके ऐश्वर्य हो तोभी उसका आहारपूर्तिके अतिरिक्त अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता

राजोवाच ॥ किं कृतं गुरुणा पश्चाद्भृगुरूपेण वर्तता॥छलेनैव हि दैत्यानां पौरोहित्येन धीमता ॥ १ ॥ गुरुः पुराणमनिशं सर्वविद्यानिधिस्तथा ॥ सुतोऽगिंरस एवाऽसौ स कथं छलकृन्मुनिः ॥ २ ॥ धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु सत्यं धर्मस्य कारणम् ॥ कथितं मुनिभिर्येन परमात्माऽपि लभ्यते ॥ ३ ॥ वाचस्पतिस्तथा मिथ्या वक्ता चेद्दानवान्प्रति ॥ कः सत्यवक्ता संसारे भविष्यति गृहाश्रमी ॥ ४ ॥ आहारादधिकं भोज्यं ब्रह्मांडविभवेऽपि न ॥ तदर्थं मुनयो मिथ्या प्रवर्तंते कथं मुने ॥ ५ ॥ शब्दप्रमाणमुच्छेदं शिष्टाभावे गतं न किम् ॥ छलकर्मप्रवृत्ते वाऽवि गीतत्वं गुरौ कथम् ॥ ६ ॥ देवाः सत्त्वसमुद्भूता राजसा मानवाः स्मृताः ॥ तिर्यचस्तामसाः प्रोक्ता उत्पत्तौ मुनिभिः किल ॥ ७ ॥ अमराणां गुरुः साक्षान्मिथ्यावादी स्वयं यदि ॥ तदा कः सत्यवक्ता स्याद्राजसस्तामसः पुनः ॥ ८ ॥

अतएव इस लोभके लिये मुनिगण क्यों मिथ्यामें प्रवृत्त होंगे ॥५॥ हे मुनीश्वर ! पुरातन शिष्ट मुनिगण जो शब्दप्रयोग कर गये हैं. उसका वाचक पदार्थ अवश्य ही है. इस प्रकारके विश्वाससे पण्डितगण प्रमाणमें शिष्टताके कारण शब्दको एक प्रमाण कहकर अब धारण करते हैं. इस समय देखा जाता है कि, शिष्टव्यक्तिके अभावमें वह शब्द-प्रमाण उच्छिन्न होगया है ? क्योंकि छलकार्यमें निरत बृहस्पतिमें गर्हित कार्य वर्त्तमान रहनेसे उनका फिर शिष्टत्व कहां है ? ॥ ६ ॥ उत्पत्तिके विषयमें मुनिगण कहते हैं कि, देवतागण सत्त्वगुणसे, मनुष्यगण रजोगुणसे और तिर्यग्गण तमोगुणसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ७ ॥ तो वही सत्त्वगुणाश्रित जो देवताओंके साक्षात् गुरु हैं वे भी यदि स्वयं मिथ्यावादी हुए तब फिर राजस और तमोगुणमें कौन सत्यवादी होगा ॥ ८ ॥

क्या आश्चर्य है ? यदि सम्पूर्ण विश्वही मायामें आच्छन्न हो तो सनातनधर्मका स्थान कहाँ है ? और सम्पूर्ण जीवगणोंकी क्या गति है ? हे मुनिवर ! इस विषयमें मुझको महासंशय उपस्थित हुआ है ॥ ९ ॥ जब कि, भगवान् हरि ब्रह्मा शचीपति और अन्यान्य सुर सत्तमगण सभी कपट-कर्म में चतुर हुए हैं तब स्वल्पसत्व और अल्पबुद्धि मनुष्योंकी फिर क्या बात है ॥ १० ॥ हे मानद ! जब कि, सब देवतागण, वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र और बृहस्पति इत्यादि तपोधन मुनिगण भी काम क्रोधमें अभिभूत लोभमें विनष्टचित्त छलकर्ममें दक्ष और पापमें निरत हैं तब धर्मकी फिर क्या गति है? ॥ ११ ॥ १२ ॥ हाय! जब कि, इन्द्र अग्नि चंद्रमा और विधाता यह भी कामके उत्कट लोभमें अभिभूत होकर परदारासक्त हुए तब इस संपूर्ण भुवनमें फिर शिष्टता कहाँ रही ? ॥१३॥ हे विमलात्मन् ! जब संपूर्ण देवतागण और मुनिगण लोभमें ग्रसित हुए तो फिर किसका वचन उपदेश स्वरूपमें ग्रहण करें ॥ १४ ॥

क्व स्थितिस्तस्य धर्मस्य संदेहोऽयं ममाऽऽत्मनः ॥ का गतिः सर्वजंतूनां मिथ्याभूते जगत्त्रये ॥ ९ ॥ हरिर्ब्रह्मा शचीकांतस्तथाऽन्ये सुरसत्तमाः ॥ सर्वे छलविधौ दक्षा मनुष्याणां च का कथा ॥ १० ॥ कामक्रोधाभिसंतप्ता लोभोपहतचेतसः ॥ छले दक्षा सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ॥ ११ ॥ वसिष्ठो वामदेवश्च विश्वामित्रो गुरुस्तथा ॥ एते पापरताः काऽत्र गतिर्धर्मस्य मानद ॥ १२ ॥ इंद्रोऽग्निश्चंद्रमा वेधाः परदाराभिलंपटाः ॥ आर्यत्वं भुवनेष्वेषु स्थितं कुत्र मुने वद ॥ १३ ॥ वचनं कस्य मंतव्यमुपदेशधिया नघ ॥ सर्वे लोभाऽभिभूतास्ते देवाश्च मुनयस्तदा ॥१४॥ व्यास उवाच ॥ किं विष्णु किंशिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः ॥ देहवान्प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा ॥ १५ ॥ रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्माऽपि रागसंयुतः ॥ "रागवान्किमकृत्यं वै न करोति नराधिप ॥" रागवानपि चातुर्याद्विदेह इव लक्ष्यते ॥ १६ ॥ संप्राप्ते संकटे सोऽपि गुणैः संबाध्यते किल ॥ कारणाद्रहितं कार्यं कथं भवितुमर्हति ॥ १७ ॥

व्यासजी बोले हे राजन् ! इन्द्र हो बृहस्पति हो ब्रह्मा हो विष्णु हो वा महादेव हो, जो देह धारण करेगा उसकोही पूर्वोक्त अहंकार और लोभादि विकार दोषमें लिप्त होना पडता है, इसमें संदेह नहीं ॥ १५ ॥ हे महाराज। ब्रह्मा विष्णु और शिव यह सभी विषयानुरागी हैं अतएव अनुरागी व्यक्ति क्या अकार्य नहीं कर सकता ॥ १६ ॥ हे नरेन्द्र ! अनुरागी व्यक्ति चातुर्य वशसे केवल मुक्तके समान दीखते हैं किंतु संकट स्थल उपस्थित होनेपर उस समय स्वगुणसे उनकी धूर्तता प्रकाशित हो जाती है, तब वह गुणोंके वशीभूत होकर कार्य करते हैं अतएव इस विषयमें तीनों गुणोंकोही कारण जानना चाहिये, क्योंकि कारणके बिना कभी कार्यकी उत्पत्तिका संभव नहीं हो सकता ॥ १७ ॥

ब्रह्मादि देवताओंके भी तीनों गुण ही कारण हैं. कारण कि, उन सबके देहभी प्रधान महत्तत्त्वादि पचीस तत्वसे उत्पन्न हुए हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥ १८ ॥ हे नृपवर ! ब्रह्मादि भी मरणधर्मशील अर्थात् नाशवान् हैं, अतएव इसमें फिर आपको संदेह क्या है ? आप जानिये कि, सभी दूसरेको उपदेश देनेके समय भली भांति शिष्टता प्रकाश करते हैं ॥ १९ ॥ किंतु अपना कार्य उपस्थित होनेपर स्वभावका विप्लव हो जाता है. तब वह काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, अहंकार और मत्सर्यादि सब उपस्थित होकर कार्य करते हैं ॥ २० ॥ कोई देहधारी पुरुष उनको परित्याग करनेमें समर्थ नहीं होता। हे महाराज ! महर्षिगण कहते हैं. यह संसार सदा इसी प्रकार चला आता है ॥ २१ ॥ यह शुभाशुभमय संसार कभी अन्य भावको प्राप्त नहीं होता. इसी प्रकार चला आता है. देखो, भगवान् विष्णु कभी दारुण तपश्चरण करते हैं ॥ २२ ॥ देवराज इन्द्रभी कभी अनेक भांतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं और देखो परम

ब्रह्मादीनां च सर्वेषां गुणा एव हि कारणम् ॥ पंचविंशत्समुद्भूता देहास्तेषां न चान्यथा ॥ १८ ॥ काले मरणधर्मास्ते संदेहः कोऽत्र ते नृप ॥ परोपदेशे विस्पष्टं शिष्टाः सर्वे भवंति च ॥ १९ ॥ विप्लुतिर्ह्यविशेषेण स्वकार्ये समुपस्थिते ॥ कामः क्रोधस्तथा लोभद्रोहाऽहंकारमत्सराः ॥ २० ॥ देहवान्कः परित्यक्तुमीशो भवति तान्पुनः ॥ संसारोऽयं महाराजसदैवैवंविधः स्मृतः ॥ २१ ॥ नाऽन्यथा प्रभवत्येव शुभाशुभमयः किल ॥ कदाचिद्भगवान्विष्णुस्तपश्चरति दारुणम् ॥ २२ ॥ कदाचिद्विविधान्यज्ञान्वितनोति सुराधिपः ॥ कदाचित्तु रमारंगरंजितः परमेश्वरः ॥ २३ ॥ रमते किल वैकुंठे तद्वशस्तरुणो विभुः ॥ कदा चिद्दानवैः सार्धं युद्धं परमादारुणम् ॥ २४ ॥ करोति करुणासिंधुस्तद्बाणाऽऽपीडितोभृशम् ॥ कदाचिज्जयमाप्नोति दैवात्सोऽपि पराजयम् ॥ २५ ॥ सुखदुःखाभिभूतोऽसौ भवत्येव न संशयः ॥ शेषे शेते कदाचिद्वै योगनिद्रासमावृतः ॥२६॥ काले जागर्ति विश्वात्मा स्वभाव प्रतिबोधितः ॥ शर्वो ब्रह्मा हरिश्चेत इंद्राद्या ये सुरास्तथा॥२७॥

प्रभु लीलामय विष्णु कभी कमलाके कमनीय विलास तरंगरंगमें रंजित चित्त होकर ॥ २३ ॥ वैकुंठमें विहार करते हैं और कभी करुणासिंधु होकर भी दुर्जय दानवगणोंके संग अत्यन्त दारुणयुद्ध करके उनके ॥ २४ ॥ शरजालसे अत्यन्त पीडित होते हैं तथा कभी जय प्राप्त करते हैं और कभी दैववशतः पराजितभी होते हैं ॥ २५ ॥ इससे वह निःसंदेह सुख दुःखके वशीभूत होते हैं. हे महाराज! वही नारायण कभी विश्व संसारको अपनी कुक्षिमें रक्षा कर योगनिद्रामें अभिभूत हो, शेष शय्यापर शयन करते हैं ॥ २६ ॥ फिर यथा समयमें प्रकृतिद्वारा प्रतिबोधित होकर जागरित होते हैं हे राजन् ! अधिक क्या कहूं इस विश्व संसारमें महादेव, ब्रह्मा, हरि इत्यादि देवतागण ॥ २७ ॥

और मुनिगण सभी अपनी अपनी आयुके परिमाण कालतकजीवित रहकर विचरण करते हैं. प्रलय कालका अवसान होनेपर नष्टप्राय यह स्थावर जंगमात्मक जगत् ॥ २८ ॥ फिर उत्पन्न होता है इसमें कुछ भी संदेह नहीं है हे राजन्! अपनी अपनी आयुके अन्तमें ब्रह्मादि सभी नाशको प्राप्त होते हैं, इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥ फिर यथा समयमें विष्णु और महादेव इत्यादि देवतागण देहधारी होकर वह सब कामादि भाव लाभ करते हैं ॥ ३० ॥ हे पार्थिव! आप इस विषयमें विस्मित न हूजिये यह संसार काम क्रोधादिसे मुक्त होंकर सदा ही भ्रमण करता है ॥ ३१ ॥ हे राजन्! इस संसारमें कामादिसे मुक्त परमार्थके जाननेवाले पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं. जो व्यक्ति इस संसारसे डरते हैं; वे स्त्री ग्रहण न करते ॥३२॥ इस कारण वह सब प्रकार विषयासंगसे मुक्त और शंका हीन होकर विचरण करते हैं इस कारणही चंद्रमाने बृहस्पतिकी भार्याको हरण किया था ॥ ३६ ॥ गुरुने भी अपने छोटे भ्राताकी भार्याको हरण किया था इस प्रकार संसारचक्रमें

मुनयश्च विनिर्माणैः स्वायुषो विचरंति हि ॥ निशाऽवसाने संजाते जगत्स्थावरजंगमम् ॥ २८ ॥ म्रियते नात्र संदेहो नृप किंचित्कदाऽपि च ॥ स्वायुषोंऽते पद्मजाद्याः क्षयमृच्छंति पार्थिव ॥ २९ ॥ प्रभवंति पुनर्विष्णुहरशक्रादयः सुराः ॥ तस्मात्कामादिकान्भावान्देहवान्प्रतिपद्यते ॥ ३० ॥ नात्र ते विस्मयः कार्यः कदाचिदपि पार्थिव ॥ संसारोऽयं तु संदिग्धः कामक्रोधादिभिर्नृप ॥ ३१ ॥ दुर्लभस्तद्विनिर्मुक्तः पुरुषः परमार्थवित् ॥ यो बिभर्तीह संसारे सदारान्न करोत्यपि ॥ ३२ ॥ विमुक्तः सर्व संगेभ्यो विचरत्यविशंकितः ॥ तस्माद् बृहस्पतेर्भार्या शशिना लंभिता पुनः ॥ ३३ ॥ गुरुणा लंभिता भार्या तथा भ्रातुर्यवीयसः ॥ एवं संसारचक्रेऽस्मिन्रागलोभादिभिर्वृतः ॥ ३४ ॥ गार्हस्थ्यं च समास्थाय कथं मुक्तो भवेन्नरः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन हित्वा संसारसारताम् ॥ ३५ ॥ आराधयेन्महेशानीं सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ तन्मायागुणतश्छन्नं जगदेतच्चराचरम् ॥ ३६ ॥ भ्रमत्युन्मत्तवत्सर्वं मदिरामत्तवन्नृप ॥ तस्या आराधनेनैव गुणान्सर्वान्विमृद्य च ॥ ३७ ॥ मुक्तिं भजेत मतिमान्नान्यः पंथास्त्वितः परः ॥ आराधिता महेशानी न यावत्कुरुते कृपाम् ॥ ३८ ॥

समस्त जीवही सदाराग लोभादिसे आवृत रहते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन्! गार्हस्थ्य अवलम्बन करनेपर मनुष्यगण किसी प्रकार मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते, अतएव सर्व प्रयत्नसे संसारकी सारताका विचार छोड़ ॥ ३५ ॥ सच्चिदानन्दरूपिणी महेशानीकी आराधना करनी चाहिये. यह चराचर जगत् उनकेही मायागुणमें आच्छन्न होकर ॥ ३६ ॥ मदिरा मत्तके समान अथवा उन्मत्तके समान सदा भ्रमण करता है बुद्धिमान् पुरुष उनकी आराधनासे ही सब गुणोंको पददलित करके ॥ ३७ ॥ मुक्तिलाभ करते हैं हे राजेन्द्र! इसके अतिरिक्त मुक्ति लाभका दूसरा कोई मार्ग नहीं है. महेशानीकी आराधना करके जबतक उनकी करुणा प्राप्त न होसके ॥ ३८ ॥

तबतक सुख कहाँ है ? उनके अतिरिक्त दूसरे किसीकी प्रकृत दयादृष्टि नहीं होतीअ तएवविशुद्ध चित्त होकर उन करुणामयीका भजन करना उचित है॥ ३९ ॥ क्योंकि उनकी आराधना करनेसे ही पुरुष जीवन्मुक्त हो सकता है. जिस व्यक्तिने मनुष्यशरीरको पाकर महेश्वरीकी सेवा न करी ॥ ४० ॥ वह सोपानश्रेणीके उपरीभागसे नीचेगिर गया यही मेरा विचार है. यह त्रिगुणयुक्त विश्व अहंकारमें आवृत ॥ ४१ ॥ और असत्यमें सम्बद्ध है अतएव उन सर्वेश्वरींकी आराधनाके अतिरिक्त फिर किस प्रकार् मुक्तिलाभ हो सकता है? हे राजन् ! सब विषयोंका परित्याग करके उन भुवनेश्वरीकी सेवा करना ही सबका एकान्त कर्त्तव्य है ॥ ४२ ॥ जनमेजय बोले हे मुने ! शुक्ररूपधारी देवगुरुने उस समय क्या किया था? और शुक्राचार्य कितने दिन पीछे दैत्योंके समीप आये थे ? यह मुझको

तावद्भवेत्सुखं कस्मात्कोऽन्योऽस्ति दयया युतः ॥ करुणासागरामेतां भजेत्तस्मादमायया ॥ ३९ ॥ यस्यास्तु भजनेनैव जीवन्मुक्तत्वमश्नुते ॥ मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य सेविता न महेश्वरी ॥ ४० ॥ निश्रेणिकाग्रात्पतिता अध इत्येव विद्महे ॥ अहंकाराऽऽवृतं विश्वं गुणत्रयसमन्वितम् ॥४१॥ असत्येनापि संबद्धं मुच्यते कथमन्यथा ॥ हित्वा सर्वं ततः सर्वैः संसेव्या भुवनेश्वरी ॥४२॥ राजोवाच ॥ किं कृतं गुरुणा तत्र काव्यरूपधरेण च ॥ कदा शुक्रः समायातस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥४३॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यत्कृतं गुरुणा तदा ॥ कृत्वा काव्यस्वरूपं च प्रच्छन्नेन महात्मना ॥ ४४ ॥ गुरुणा बोधिता दैत्या मत्वा काव्यं स्वकं गुरुम् ॥ विश्वासं परमं कृत्वा बभूवुस्तन्मयास्तदा ॥४५॥ विद्यार्थं शरणं प्राप्ता भृगुं मत्वाऽतिमो हिताः ॥ गुरुणा विप्र लब्धास्ते लोभात्को वा न मुह्यति॥ ४६ ॥ दश वर्षात्मके काले संपूर्णसमये तदा ॥ जयंत्या सह क्रीडित्वा काव्यो याज्यानचिंतयत् ॥ ४७ ॥ आशया मम मार्गं ते पश्यंतः संस्थिताः किल ॥ गत्वा तान्वै प्रपश्येऽहं याज्यानतिभयातुरान् ॥ ४८ ॥

भलीभाँति कहिये ॥ ४३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! शुक्रवेषधारी महात्मा ब्रहस्पतिने उस समय जो किया था वह मैं कहता हूं सुनिये ॥ ४४ ॥ देवगुरुके भलीभांति समझा देनेपर दैत्यगण उनको ही अपना गुरु शुक्राचार्य जान सम्यक् प्रकार विश्वास करके ततपरायण हो उनके आज्ञावर्ती हुए ॥ ४५ ॥ ब्रहस्पतिकी मायासे मोहित और प्रतारित दैत्यगण उनको ही अपना गुरु शुक्राचार्य जानकर उनकी शरणागत हुए क्यों कि इस संसारमें लोभके वशीभूत हो सभी मोहित होते हैं ॥ ४६ ॥ इस ओर जब दश वर्ष पूर्ण हुए तब दैत्यगुरु जयंतीके संग क्रीडा समापन पूर्वक यजमान गणोंका स्मरण करने लगे ॥ ४७ ॥ वह विचार करने लगे कि, दैत्यगण हमारे आनेका मार्ग देखते हुए अवस्थित हैं मैं जाकर उन भयातुर असुरोंको अवलोकन करूं ॥ ४८ ॥

वे मेरे भक्त हैं अतएव देवताओंके द्वारा जिससे उनको भय न हो वह करना उचित है. इस प्रकार चिन्ता करके जयंतीसे कहा ॥ ४९ ॥ हे चारुलोचने ! मेरे पुत्रोंने देवताओंकी शरण ली है तुम्हारा दश वर्षका समय आज संपूर्ण हुआ ॥ ५० ॥ अतएव हे सुमध्यमे ! मैं इस समय अपने यजमानोंको देखनेके निमित्त जाता हूं फिर शीघ्रही तुम्हारे निकट आऊँगा ॥ ५१ ॥ पतिव्रता जयन्तीने तथास्तु कह उनके जानेमें सम्मति प्रदान करके कहा हे धर्मज्ञ ! आपकी जहाँ इच्छा हो वहाँ जाइये । मैंआपका धर्म लुप्त करनेकी इच्छा नहीं करती हूं ॥ ५२ ॥ शुक्राचार्यने उसका वचन सुन शीघ्र दानवगणोंके समीप उपस्थित होकर देखा कि, दानवगणोंके समीप छलवेषधारी सौम्याकृति बृहस्पतिजी विराजमान हैं ॥ ५३ ॥ वह निज प्रणीत जैनधर्म छलपूर्वक समझा रहे हैं और

मादेवेभ्यो भयं तेषां मद्भक्तानां भवेदिति ॥ संचिंत्य बुद्धिमास्थाय जयंतीं प्रत्युवाच ह ॥४९॥ देवानेवोपसंयांति पुत्रा मे चारुलोचने ॥ समयस्तेऽद्य संपूर्णो जातोऽयं दशवार्षिकः ॥ ५० ॥ तस्माद्गच्छाम्यहं देवि द्रष्टुं याज्यान्सुमध्यमे ॥ पुनरेवाऽऽगमिष्यामि तवांतिकमनुद्रुतः ॥ ५१ ॥ तथेति तमुवाचाऽथ जयंती धर्मवित्तमा ॥ यथेष्टं गच्छ धर्मज्ञ न ते धर्मं विलोपये ॥५२॥ तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यो जगाम त्वरितस्ततः ॥ अपश्यद्दानवानां स पार्श्वे वाचस्पतिं तदा ॥ ५३ ॥ छद्मरूपधरं सौम्यं बोधयंतं छलेन तान् ॥ जैनं धर्मं कृतं स्वेन यज्ञनिंदापरं तथा ॥ ५४ ॥ भो देवरिपवः सत्यं ब्रवीमिभवतां हितम् ॥ अहिंसा परमो धर्मोऽहंतव्या ह्याततायिनः ॥ ५५ ॥ द्विजैर्भोगरतैर्वेदे दार्शितं हिंसनं पशोः ॥ जिह्वास्वादपरैः काममहिंसैव परा मता ॥५६॥ एवं विधानि वाक्यानि वेदशास्त्रपराणि च ॥ ब्रुवाणं गुरुमाकर्ण्य विस्मितोऽसौ भृगोः सुतः ॥ ५७ ॥ चिंतयामास मनसा मम द्वेष्यो गुरुःकिल ॥ वंचिताः किल धूर्तेन याज्या मे नात्र संशयः ॥५८॥

हिंसादि दोष दिखलाकर यज्ञकी निन्दा करते हैं ॥ ५४ ॥ वह कहते हैं अहो ! देववैरीगण ! मैं तुम्हारे हितकर सत्य वचन कहता हूं । अहिंसा ही परम धर्म है अधिक क्या? आततायी लोगोंका मारना भी उचित नहीं है ॥ ५५ ॥ तुमको निश्चय जानना चाहिये कि, भोग निरत ब्राह्मणोंने ही अपनी अपनी रसना चरितार्थ करनेको ही वेदमें पशु हिंसाका मार्ग दिखाया है, किन्तु अहिंसाके समान श्रेष्ठ परम धर्म दूसरा कुछ नहीं है ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! देवगुरुको वेद शास्त्रकी निन्दा करते हुए यह वचन सुनकर भृगुपुत्र अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ५७ ॥ और मनमें चिन्ता करने लगे यह गुरु निस्संदेह मेरा विद्वेषी है इस धूर्तके द्वारा मेरे यजमानगण छले गये हैं. इसमें सन्देह नहीं ॥ ५८ ॥

पापके एकमात्र कारण स्वरूप जो लोभद्वारा प्रेरित होकर यह गुरु भी मिथ्या कहते हैं उस पापबीज और नरकके द्वार स्वरूप लोभको धिक्कार है ॥ ५९ ॥ क्या आश्चर्य है ! जो सब देवताओंके गुरु और धर्मशास्त्रके प्रवर्तक हैं. जिनका वचन प्रमाण कहकर ग्राह्य होता है' उन्होंने भी आज पाखंड मत धारण किया। अहो ! लोभकी क्या अनिर्वचनीय महिमा है ॥ ६० ॥ लोभके वशीभूत होकर सुरुगुरु भी जब पाखंड पण्डित हुए तो लोभके वशीभूत हो मलिनमन मूढबुद्धि पुरुष क्या अकार्य न करेंगे ? ॥ ६१ ॥ आज यह सुर गुरु ब्राह्मण होनेपर भी नटके समान समस्त चेष्टा ग्रहण करके मूढबुद्धि मेरे यजमान दैत्य गणोंको छलते हैं ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ दोहा--दिशावेद अध्यायमें, गुरु पायो जिमि जान ॥ सो सब वर्णहि सुमिरि श्री, शिवाचरण सुखदान ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! शुक्राचार्य मन ही मनमें इस प्रकार चिन्ताकर दैत्यगणोंसे हँसते हुए कहने लगे

धिग्लोभं पापबीजं वै नरकद्वारमूर्जितम् ॥ गुरुरप्यनृतं ब्रूते प्रेरितो येन पाप्मना ॥ ५९ ॥ प्रमाणवचनं यस्य सोऽपि पाखण्डधारकः ॥ गुरुः सुराणां सर्वेषां धर्मशास्त्रप्रवर्तकः ॥६०॥ किं किं न लभते लोभान्मलिनी कृतमानसः ॥ अन्योऽपि गुरुरप्येवं जातः पाखंडपंडितः ॥ ६१ ॥ शैलूषवेषितं सर्वं परिगृह्य द्विजोत्तमः ॥ वंचयत्यति संमूढान्दैत्यान्याज्यान्ममाप्यसौ ॥ ६२ ॥ इति श्रीदे० म० चतुर्थस्कंधे त्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिंत्य मनसा तानुवाच हसन्निव ॥ वंचिता मत्स्वरूपेण दैत्याः किं गुरुणा किल ॥१॥ अहं काव्यो गुरुश्चाऽयं देवकार्यप्रसादकः ॥ अनेन वंचिता यूयं मद्याज्या नात्र संशयः ॥ २ ॥ मा श्रद्धध्वं वचोऽस्याऽऽर्या दांभिकोऽयं मदा कृतिः ॥ अनुगच्छत मां याज्यास्त्यजतैनं बृहस्पतिम् ॥ ३ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य दृष्ट्वा तौ संदृशौ पुनः ॥ विस्मयं परमं जग्मुः काव्योऽयमिति निश्चिताः ॥ ४ ॥ स तान्वीक्ष्य सुसंभ्रांतान्गुरुर्वाक्यमुवाच ह ॥ गुरुर्वो वंचयत्येव मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः ॥ ५ ॥

हे दैत्यगण ! तुम मेरे रूपधारी सुरगुरु बृहस्पति द्वारा कैसे वञ्चित हुए ? ॥ १ ॥ मैं शुक्राचार्य हूं और तुम मेरे यजमान हो, यह देवताओंका कार्य साधन करनेवाले सुरगुरु बृहस्पति हैं. इन्होंने निःसंदेह तुम लोगोंको छला है ॥ २ ॥ इस दांभिकने मेरा आकार धारण किया है, तुम इसके वचनमें कभी श्रद्धा न करना. हे दैत्यगण ! तुम लोग मेरे यजमान हो, अतएव मेरे अनुवर्त्ति होओ, इस बृहस्पतिका परित्याग करो ॥ ३ ॥ दैत्यगण उनका वह वचन सुन और उन दोनोंकी समान आकृति देख अत्यंत आश्चर्य युक्त हुए और उपस्थित व्यक्तिको ही शुक्राचार्यने निश्चय किया ॥ ४ ॥ उस समय बृहस्पतिने उनको सरल स्वभावयुक्त और मायासे मोहित देखकर कहा, यही देवगुरु बृहस्पति हैं, इस समय मेरा रूप धारण करके तुमको छलना ही इनका अभिप्राय है ॥ ५ ॥

यह देवताओंका कार्य साधनेके लिये तुम्हारे छलनेको इस स्थानमें आये हैं, हे असुर प्रवरगण ! तुम लोग इनके वचनमें कभी विश्वास न करना ॥ ६ ॥ मैंने शिवके निकटसे जो विद्या प्राप्त की है तुमको वही अध्ययन कराता हूं. मैं देवताओंके सहित युद्धमें तुमको निःसंदेह विजयी करूंगा ॥ ७ ॥ तब शुक्र रूपधारी गुरुके इस प्रकार वचन सुन दैत्यगणोंने ''यही शुक्राचार्य हैं'' यह निश्चय करके उन्हींके वचनमें अतिशय विश्वास किया ॥ ८ ॥ जो हो उस काल दानवगुरु शुक्राचार्यने यद्यपि दानव लोगोंको भलीभांति समझाया था, किन्तु तो भी उन्होंने बृहस्पतिकी मायासे मोहित हो विपरीत कालकी विचित्रताके कारण वह सब कुछ भी न समझे ॥९॥ तब उन्होंने स्थित निश्चय होकर महात्मा शुक्राचार्यसे कहा, यही हमारे बुद्धिप्रद और हितनिरत गुरु हैं ॥ १० ॥ इन्हीं धार्मिकचूडामणि भार्गवने दशवर्षतक हमको उपदेश दिया है, तुम हमारे गुरु नहीं हो वरन् मायावी बोध होते हो, अतएव इस स्थानसे चले जाओ ॥ ११ ॥

प्राप्तो वंचयितुं युष्मान्देवकार्यार्थसिद्धये ॥ मा विश्वासं वचस्यस्य कुरुध्वं दैत्यसत्तमाः ॥ ६ ॥ प्राप्ता विद्या मया शंभोर्युष्मान् ध्याप यामि ताम् ॥ देवेभ्यो विजयं नूनं करिष्यामि न संशयः ॥ ७ ॥ इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं काव्यंरूपधरस्य ते ॥ निश्वासं परमं जग्मुः काव्योऽयमिति निश्चयात् ॥ ८ ॥ काव्येन बहुधा तत्र बोधिताः किल दानवाः ॥ बुबुधुर्न गुरोर्मायामोहिताः काल पर्ययात् ॥ ९ ॥ एवं ते निश्चयं कृत्वा ततो भार्गवमब्रुवन् ॥ अयं गुरुर्नो धर्मात्मा बुद्धिदश्च हिते रतः ॥ १० ॥ दशवर्षाणि सततमयं नःशास्ति भार्गवः ॥ गच्छ त्वं कुहका भासि नाऽस्माकं गुरुरप्युत ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वा भार्गवं मूढा निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः ॥ जगृहुस्तं गुरुं प्रीत्या प्रणिपत्या ऽभिवाद्य च ॥ १२ ॥ काव्यस्तु तन्मयान्दृष्ट्वा चुकोपाऽथ शशाप च ॥ दैत्यान्विबोधि तान्मत्वा गुरुणा चातिवंचितान् ॥ १३ ॥ यस्मान्मया बोधिता वै गृह्णीयुर्न च मे वचः ॥ तस्मात्प्रनष्टसंज्ञा वै पराभवमवाप्स्यथ ॥ १४ ॥ मदवज्ञाफलं कामं स्वल्पे काले ह्यवा प्स्यथ ॥ तदाऽस्य कपटं सर्वं परिज्ञातं भविष्यति ॥ १५ ॥

मूढबुद्धि दैत्यगणोंने भार्गवसे इस प्रकार कह और वारंवार भर्त्सना कर शुक्ररूपी सुरगुरुको प्रणाम और अभिवादन पूर्वक प्रसन्न मनसे उनको ही गुरु समझकर ग्रहण किया ॥ १२ ॥ इधर शुक्राचार्यने दैत्योंको सुरगुरुका अत्यंत अनुवर्ती देख और बृहस्पतिके वचनमें विश्वास करनेके कारण वंचित हुआ स्थित कर क्रोधयुक्त हो उनको यह शाप दिया कि ॥ १३ ॥ जब मेरे समझाने पर भी तुमने मेरा वचन ग्रहण नहीं किया, तब तुम संज्ञाहरण होकर पराभवको प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥ तुम लोगोंने मेरी जो अवज्ञा की, है उसका फल अल्प कालमें ही प्राप्त होगा और उस समय इन सुरगुरुका कपटभाव भलीभांति अनुभव कर सकोगे ॥ १५ ॥

व्यासजी बोले हे राजन्! इस प्रकार कहकर शुक्राचार्य क्रोधमें भरे हुए शीघ्र चले गये और बृहस्पति हृष्ट तथा स्थिर चित्त होकर उस स्थानमें कुछ काल अवस्थिति करने लगे ॥ १६ ॥ तदनंतर दैत्योंको भार्गवके शापसे अभिशप्त हुआ जान उन्होंने उस स्थानको त्याग किया और अपना रूप धारण पूर्वक ॥ १७ ॥ शीघ्र इंद्रके समीप आकर उनसे कहा, मैंने इस समय निश्चय ही कार्य साधन किया है क्योंकि भार्गवने दैत्योंको शाप दिया है और मैंने भी इस समय उनको परित्याग किया है ॥ १८ ॥ वह निराश्रय हुए हैं हे महाभाग ! सुरसत्तमगण ! मैंने दैत्यगणोंको शापदग्ध किया है. तुम इस समय उनके संग युद्ध करनेकी चेष्टा करो ॥ १९ ॥ देवराज इंद्र सुरगुरु बृहस्पतिजीका इस प्रकार वचन सुनकर प्रसन्न चित्त हुए और संपूर्ण देवतागणोंने संतुष्ट हो बृहस्पतिकी

व्यास उवाच ॥ इत्युक्काऽसौ जगामाऽऽशु भार्गवः क्रोधसंयुतः ॥ बृहस्पतिर्मुदं प्राप्य तस्थौ तत्र समाहितः ॥ १६ ॥ ततः शप्तान्गुरु र्ज्ञात्वा दैत्यांस्तान्भार्गवेण हि ॥ जगाम तरसा त्यक्त्वा स्वरूपं स्वं विधाय च ॥ १७ ॥ गत्वोवाच तदा शक्रं कृतं कार्यं मया ध्रुवम् ॥ शप्ताः शुक्रेण ते दैत्या मया त्यक्ताः पुनः पुनः ॥१८॥ निराधाराः कृता नूनं यतध्वं सुरसत्तमाः ॥ संग्रामार्थं महाभाग शापदग्धा मया कृताः ॥ १९ ॥ इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं मघवा मुदमाप्तवान् ॥ जहृषुश्च सुराः सर्वे प्रतिपूज्य बृहस्पतिम् ॥ २० ॥ संग्रामाय मतिं चक्रुः संविचार्य मिथः पुनः ॥ निर्ययुर्मिलिता सर्वे दानवाऽभिमुखाः सुराः ॥ २१ ॥ सुरान्समुद्यताञ्ज्ञात्वा कृतोद्योगान्महाबलान् ॥ अंतर्हितं गुरुं चैव बभूवुश्चिंतयाऽन्विताः ॥ २२ ॥ परस्परमथोचुस्ते मोहितास्तस्य मायया ॥ संप्रसाद्यो महात्मा च यातोऽसौ रुष्टमानसः ॥२३॥ वंचयित्वा गतः पापो गुरुः कपटपंडितः ॥ भ्रातृस्त्रीलंभनः प्रायो मलिनोऽन्तर्बहिः शुचिः ॥ २४ ॥

पूजा की ॥ २० ॥ और पुनर्वार निर्जनमें परामर्श कर संग्रामके निमित्त उद्योग करने लगे इसके पीछे देवता मिलित हो संग्रामको असुरगणोंके संमुख अग्रसर हुए ॥ २१ ॥ महाबलशाली देवताओंको उद्योग सहित संग्रामके निमित्त आता जान और गुरुदेवको अंतर्धान हुआ जान दैत्यगण अत्यंत चिंतायुक्त हुए ॥ २२ ॥ उस काल परस्परमें कहने लगे. अहो ! हम उन सुरगुरुकी मायासे मोहित हुए हैं. महात्मा शुक्राचार्यने क्रुद्ध होकर हमको परित्याग किया है. इस समय उनको प्रसन्न करना हमारा एकांत कर्त्तव्य है ॥ २३ ॥ वह मायामय भ्रातृभार्यागामी, अंतर मलिन बहिःशुचि और कपट पण्डित सुरगुरु हमको निसंदेह छलकर इस समय अंतर्धान हुआ है ॥ २४ ॥

अब हम क्या करें ? कहां जायँ ? किस प्रकार उन क्रोधित शुक्राचार्यजीको अपनी सहायताके निमित्त प्रसन्न करें ? ॥२५॥ दैत्य लोग इस प्रकार चिंता कर सब मिलित हो भयसे व्याकुल चित्त हुए प्रह्लादको आगे किये शुक्राचार्यजीके समीप गये ॥ २६ ॥ भार्गव शुक्राचार्यजी दैत्यगणोंको देखकर चुप रहे, जब दैत्योंने उनके चरणकमलोंमें प्रणाम किया, तब वह क्रोधित हो लाल नेत्र कर उनसे कहने लगे ॥ २७ ॥ जब कि मेरे समझा देनेपर भी तुमने कपटगुरुकी मायासे मोहित हो मेरा पवित्र हितकर और ज्ञानगर्भ वचन नहीं सुना ॥ २८ ॥ बरन् उनके वशवर्ति और मदसे उन्मत्त होकर मेरी अवज्ञा करी, तब तुम उसका फल अवश्य पाओगे ॥ २९ ॥ तुम इस समय कल्याणसे भ्रष्ट हुए हो, अर्थात् अपने आप ही अपना सर्वनाश किया है; अब जहां वह कपटरूपी सुरकार्यार्थी

किं कुर्मः क्व च गच्छामः कथं काव्यं प्रकोपितम् ॥ कूर्वीमहि सहायार्थं प्रसन्नं स्दृष्टमानसम् ॥ २५ ॥ इति संचिन्त्य ते सर्वे मिलिता भयकंपिताः ॥ प्रह्लादं पुरतः कृत्वा जग्मुस्ते भार्गवं पुनः ॥ २६ ॥ प्रणेमुश्चरणौ तस्य मुनेर्मौनभृतस्तदा ॥ भार्गवस्तानुवाचाथ रोषसंरक्तलोचनः ॥ २७ ॥ मया प्रबोधिता यूयं मोहिता गुरुमायया ॥ न गृहीतं वचो योग्यं तदा याज्या हितं शुचि ॥२८॥ तदाऽवगणितश्चाहं भवद्भिस्तद्वशं गतैः ॥ प्राप्तं नूनं मदोन्मत्तैर्ममाऽवमानजं फलम् ॥ २९ ॥ तत्र गच्छत सद्भ्रष्टा यत्रासौ कपटाकृतिः ॥ वंचकः सुरकार्यार्थी नाहं तद्वद्धि वंचकः ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ एवं ब्रुवतं शुक्रं तु वाक्यं संदिग्धया गिरा ॥ प्रह्लादस्तं तदोवाच गृहीत्वा चरणौ ततः ॥ ३१ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ भार्गवाऽद्य समायातान्याज्यानस्मांस्तथाऽऽतुरान् ॥ त्यक्तुं नार्हसि सर्वज्ञ त्वद्धितांस्तनयान्हि नः ॥ ३२ ॥ गते त्वयि तु मंत्रार्थं शैलूपेण दुरात्मना ॥ त्वद्वेषमधुराऽऽलापैर्वयं तेनप्रवंचिताः ॥ ३३ ॥ अज्ञानकृतदोषेण नैव कुप्यति शांतिमान् ॥ सर्वज्ञस्त्वं विजानासि चित्तं नः प्रवणं त्वयि ॥ ३४ ॥

वंचक पंडित हैं, वहीं जाओ, मुझको उसके समान छली मत जानो ॥ ३० ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्; शुक्राचार्यजीके इस प्रकार संदिग्धवचन कहने पर प्रह्लाद उस समय उनके चरण पकड़कर यह वचन कहने लगे ॥ ३१ ॥ प्रह्लादने कहा हे गुरुदेव भार्गव ! हम इस समय कातरभावसे आपके निकट आये हैं. हे सर्वज्ञ ! हम आपके यजमान हितकर पुत्रके समान हैं, अतएव आप हमारा परित्याग न कीजिये ॥ ३२ ॥ आपके मंत्रलाभार्थ गमन करनेपर अवसर पाय उस नटरूपी आपका वेषधारी दुरात्मा बृहस्पतिने मधुरालापद्वारा हमको छला है ॥ ३३ ॥ आपसे अधिक क्या कहें ! धीर चित्त महात्मा अज्ञानकृत अपराधसे कुपित नहीं होते, आप सर्वज्ञ हैं, हमारा चित्त जो आपमें ही एकान्त आसक्त है. यह आप जानते ही हैं ॥ ३४ ॥

हे महाबुद्धे ! आप तपोबलके प्रभावसे हमारे मनका भाव जानकर कोपका परित्याग कीजिये. मुनिगण कहते हैं कि, साधुगणोंका कोप चिरस्थायी नहीं है ॥ ३५ ॥ हे मुने ! जल स्वभावसे ही शीतल है यद्यपि अग्निके द्वारा तापसे वह उष्ण होता है, किंतु क्षण काल पीछे ताप दूर होनेसे फिर शीतल हो जाता है ॥ ३६ ॥ हे सुव्रत ! क्रोध चण्डालके समान है, अतएव पंडितगण उसको परित्याग करते हैं, आपके निकट प्रार्थना है कि; आप हमारे प्रति कोपदूर करके प्रसन्न हूजिये ॥ ३७ ॥ यदि आप क्रोधका परित्याग न करके इस प्रकार घोर दुःखाभिभूत हम लोगोंका परित्याग करेंगे हे महाभाग ! तो आपसे परित्यक्त होकर हम रसातलमें प्रवेश करेंगे ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! शुक्राचार्य प्रह्लादके वचन सुन ज्ञाननेत्रसे देख प्रसन्नचित्त हुए और कुछ एक हँसकर

ज्ञात्वा नस्तपसा भावं त्यज कोपं महामते ॥ ब्रुवंति मुनयः सर्वे क्षणकोपा हि साधवः ॥ ३५ ॥ जलं स्वभावतः शीतं वह्न्यातप समागमात् ॥ भवत्युष्णं वियोगाच्च शीतत्वमनुगच्छति ॥ ३६ ॥ क्रोधश्चांडालरूपो वै त्यक्तव्यः सर्वथा बुधैः ॥ तस्मात्कोपं परित्यज्य प्रसादं कुरु सुव्रत ॥ ३७ ॥ यदि न त्यजसि क्रोधं त्यजस्यस्मान्सुदुःखितान् ॥ त्वया त्यक्ता महाभाग गमिष्यामो रसातलम् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा भार्गवो ज्ञानचक्षुषा ॥ विलोक्य सुमना भूत्वा तानुवाच हसन्निव ॥ ३९ ॥ न भेतव्यं न गंतव्यं दानवा वा रसातलम् ॥ रक्षयिष्यामि वो याज्यान्मंत्रैरवितथैः किल ॥ ४० ॥ हितं सत्यं ब्रवीम्यद्य शृणुध्वं तत्तुनिश्चयम् ॥ वचनं मम धर्मज्ञाः श्रुतं यद्ब्रह्मणः पुरा ॥ ४१ ॥ अवश्यंभाविनो भावाः प्रभवंति शुभाऽशुभाः ॥ दैवं न चाऽन्यथा कर्तुं क्षमः कोऽपि धरातले ॥ ४२ ॥ अद्य मंदबला यूयं कालयोगादसंशयम् ॥ देवैर्जिताःसकृच्चाऽपि पातालं प्रतिपत्स्यथ ॥ ४३ ॥ प्राप्तः पर्यायकालो वै इति ब्रह्माऽभ्यभापत ॥ भुक्तं राज्यं भवद्भिश्च पूर्णं सर्वं समृद्धिमत् ॥ ४४ ॥

कहने लगे ॥ ३९ ॥ तुमको अब भय करना वा रसातलमें प्रवेश करना नहीं पडेगा, तुम हमारे यजमान हो; मैं तुम्हारी अमोघमंत्रके प्रभावसे अवश्य रक्षा करूंगा ॥ ४० ॥ हे धर्मज्ञगण ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जो कहा था उसीके अनुसार हमारे यह सत्य, हितकर और निश्चित वचन सुनो ॥ ४१ ॥ जो अवश्य होने वाली बात है वह शुभ हो वा अशुभ हो, अवश्यही होगी पृथ्वीतलमें कोई भी दैवके विरुद्ध नहीं कर सकता ॥ ४२ ॥ तुमलोग इस समय कालकी गतिसे निःसंदेह हीनबल हुए हो, अतएव इस समय तुमको देवताओंके प्रभावसे पराभूत होकर एक बार पातालतलमें गमन करना पड़ेगा ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजीने कहा है कि, जब तुम्हारा त्रैलोक्य राज भोग करनेका पर्याय काल उपस्थित हुआ था तब तुमने समृद्धिपरिपूर्ण इस त्रैलोकयका आधिपत्य सुख भोगा है॥ ४४ ॥

तुमने दैवबलसे देवताओंको आक्रमण कर उनके मस्तकपर चरणधर पूर्ण दश युगपर्यन्त निर्विघ्न त्रैलोक्य सुख संभोग किया है ॥ ४५ ॥ सावर्णिक मन्वन्तरमें यह राज्य फिर तुम्हारे अधिकारमें होगा ! उसकालमें बलिनामक तुम्हारे वंशमें त्रैलोक्यविजयी प्रह्लादका पौत्र राज्यको प्राप्त होकर विशेष ख्यातिलाभ करेगा ॥ ४६ ॥ वैकुण्ठनाथ हरिने जब वामनरूपसे बलिका राज्य हरण किया था तब भगवान् जनार्दन विष्णुने दैत्यराज बलिसे कहाथा ॥ ४७ ॥ कि मैंने देवताओंकी वांछितार्थ सिद्धिके लिये छलसे तुम्हारा राज्य हरण किया आगामी सावर्णिक मन्वन्तर उपस्थित होनेपर तुम्हीं इन्द्र होंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ४८ ॥ हे प्रह्लाद ! भगवान् हरिके वचनानुसार तुम्हारा पुत्र बलि इस समय सब भूतोंसे अदृश्य रहकर अत्यन्त भीतके समान अवस्थिति करता है

युगानि दश पूर्णानि देवानाक्रम्य मूर्धनि ॥ दैवयोगाच्च युस्माभिर्भुक्तं त्रैलोक्यमूर्जितम् ॥ ४५ ॥ सावर्णिके मनौ राज्यं पुनस्तत्तु भविष्यति ॥ पौत्रस्त्रैलोक्य विजयी राज्यंप्राप्स्यति ते बलिः ॥ ४६ ॥ यदा वामनरूपेण हृतं देवेन विष्णुना ॥ तदैव च भवत्पौत्रः प्रोक्तो देवेन जिष्णुना ॥४७॥ हृतं येन बले राज्यं देववांछार्थ सिद्धये ॥ त्वमिंद्रो भविता चाग्रे स्थिते सावर्णिके मनौ ॥४८॥ भार्गव उवाच ॥ इत्युक्तो हरिणा पौत्रस्तव प्रह्लाद सांप्रतम् ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां गुप्तश्चरति भीतवत् ॥ ४९ ॥ एकदा वासवेनासौ बलिर्गर्दभरूपभाक् ॥ शून्ये गृहे स्थितः कामं भयभीतः शतक्रतो ॥ ५० ॥ पृष्टश्च बहुधा तेन वासवेन बलिस्तदा ॥ किमर्थं गार्दभं रूपं कृतवान्दैत्यपुंगव ॥ ५१ ॥ भोक्ता त्वं सर्वलोकस्य दैत्यानां च प्रशासिता ॥ " न लज्जा खररूपेण तव राक्षससत्तम ॥ " तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैत्यराजो बलिस्तदा ॥ ५२ ॥ प्रोवाच वचनं शक्रं कोऽत्र शोकः शतक्रतो ॥ यथा विष्णुर्महातेजा मत्स्यकच्छपतां गतः ॥५३॥ तथाऽहं खररूपेण संस्थितः कालयोगतः ॥ यथा त्वं कमले लीनः संस्थितो ब्रह्महत्यया ॥ ५४ ॥

॥ ४९ ॥ वह इन्द्रके भयसे भीत होकर गर्दभरूप धारण पूर्वक शून्यगृहमें अवस्थित है ॥ ५० ॥ इसी समय एकदिन देवराजने उसको देखकर अनेक प्रकार उससे गर्दभ देहधारण करनेका कारण पूँछा ॥ ५१ ॥ हे दैत्यवर ! तुम सदा सर्वलोक सुखभोग करते और तुम्हीं दैत्यगणोंके शासनकर्त्ता थे हे दैत्यसत्तम ! सब लोकोंके ऊपर तुम्हारा अचल आधिपत्य था अतएव गर्दभरूप धारण करनेमें तुमको लज्जा उत्पन्न क्यों नहीं होती ? दैत्यराज बलिने उनका यह वचन सुनकर कहा ॥५२॥ हे शक्र ! इस विषयमें शोक वा दुःख क्या है ? जब कि महातेजा विष्णुने भी मत्स्यकच्छपका रूप धारण किया है ॥५३॥ तो मैं जो कालवशतः खराकार धारण करके रहता हूं इसमें फिर आश्चर्य क्या है ? आप ब्रह्महत्याके पीछे जिस प्रकार मानससरोवरमें कमलके मध्य तल्लीन होकर स्थित थे ॥ ५४ ॥

इसी प्रकार मैं भी इस समय कातर हो गर्दभरूप धारण कर स्थित रहता हूं. हे पाकशासन ! दैवाधीन पुरुषव्यक्तिको सुख दुःख क्या है ? उसके पक्षमें सभी समान हैं ॥ ५५ ॥ क्योंकि काल जब जिस प्रकार इच्छा करता है तब वह उसके प्रति निःसंदेह उसी प्रकार कार्य करता है. भार्गव शुक्राचार्य बोले हे प्रह्लाद ! बलि और देवराज आपसमें इस प्रकार वार्तालाप करके ॥ ५६ ॥ दोनों प्रबोधको प्राप्त हुए और दोनों यथेच्छ स्थानको चले गये. हे असुरसत्तम ! मैंने देवकी बलवानताके विषयमें यह उपाख्यान तुम्हारे निकट वर्णन किया ॥ ५७ ॥ सुर असुर और मनुष्य सहित यह संपूर्ण जगत् देवकेही आधीन जानना चाहिये ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ दोहा—देवासुरके युद्धकी, शान्ति भई जहि भाय । कहब पंचदशमें

पीडितश्च तथा ह्यद्य स्थितोऽहं खररूपधृक् ॥ दैवाधीनस्य किं दुःखं किं सुखं पाकशासन ॥ ५५ ॥ कालः करोति वै नूनं यदिच्छति यथा तथा ॥ भार्गव उवाच ॥ इति तौ बलिदेवेशौ कृत्वा संविदमुत्तमाम् ॥ ५६ ॥ प्रबोधं प्रापतुः कामं यथास्थानं च जग्मतुः ॥ इत्येतत्ते समाख्याता मया दैवबलिष्ठता ॥५७॥ दैवाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥५८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः ॥ प्रह्लादस्तु सुसंहृष्टो बभूव नृपनंदनः ॥ १ ॥ ज्ञात्वा दैवं बलिष्ठं च प्रह्लादस्तानुवाच ह ॥ कृतेऽपि युद्धे न जयो भविष्यति कदाचन ॥ २ ॥ तदा ते जयिनः प्रोचुर्दानवा मदगर्विताः संग्रामस्तु प्रकर्तव्यो दैवं किं न विदामहे ॥ ३ ॥ निरुद्यमानां दैवं हि प्रधानमसुराधिप ॥ केन दृष्टं क्व वा दृष्टं कीदृशं केन निर्मितम् ॥ ४ ॥ तस्माद्युद्धं करिष्यामो बलमास्थाय सांप्रतम् ॥ भवाग्रे दैत्यवर्य त्वं सर्वज्ञोऽसि महामते ॥ ५ ॥

कथा, सुमिर शिवा सुखदाय ॥ व्यासजी बोले हे महाराज जनमेजय ! प्रह्लाद महात्मा भार्गवके पूर्वोक्त वचन सुन-कर आनन्दित हुए ॥ १ ॥ तब उन्होंने दैवको बलवान् जानकर दैत्योंसे कहा हे दैत्य लोगो ! देवताओंसे युद्ध करनेपर भी कभी हमारी जीत न हो ॥ २ ॥ फिर विजयी मद गर्वित दानवोंने प्रह्लादसे कहा संग्राम हमारा अवश्य कर्त्तव्य है। दैव किसको कहते हैं सो हम नहीं जानते ॥३॥ हे असुरेंद्र ! जो उद्योगहीन अर्थात् अकर्मण्य हैं दैव उनकाही प्रधान आश्रय है. दैव किस प्रकार है ? उसको किसने बनाया है ? और किसने उसको कहां देखा है ॥ ४ ॥ जो हम इस समय बल अवलम्बन करके युद्धमें प्रवृत्त होंगे. हे दैत्यप्रवर ! आप अतिशय बुद्धिशाली और सर्वज्ञ हैं अतएव हमारे प्रधान नायक होकर इस समय युद्धकार्य संपादन कीजिये ॥ ५ ॥

हे राजन् ! दैत्य लोगोंके इस प्रकार कहनेपर प्रबल--वैरि--विनाशक प्रह्लादने दैत्यकुलके सेनापति होकर देवताओंको युद्धमें बुलाया ॥ ६ ॥ देवता असुरोंको युद्धमें उपस्थित देख अस्त्र शस्त्र धारण कर सुसज्जित हो उनसे संग्राम करने लगे ॥ ७ ॥ उस काल प्रह्लाद और इन्द्रका पूर्ण सौवर्ष पर्यंत भयंकर संग्राम हुआ इस युद्धके देखनेसे मुनियोंको भी आश्चर्य उत्पन्न हुआ था ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उस उपस्थित दारुण संग्राममें शुक्राचार्यके अनुगत प्रह्लादप्रमुख दैत्यगणोंकी जीत हुई ॥ ९ ॥ तब इंद्र सुरगुरुके वचनानुसार सर्वदुःख विनाशिनी मुक्तिप्रदा परात्परा कल्याणदायिनी भुवनेश्वरीको मनमें स्मरण करके स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १० ॥ इन्द्रने कहा हे महामाये देवी ! हे शूलधारिणी अंबिके ! आप सब विश्वको अभय देनेको शंख चक्र गदा पद्म और कृपाण धारण करती हैं ॥ ११ ॥ हे भुवनेशानि ! आपको नमस्कार है आपही शक्तिसे प्रधान प्रतिपादक दर्शन शास्त्रकी नायिका और शैव शाक्त तथा वैष्णवादि मतसे अनेक भांति

इत्युक्तस्तैस्तदा राजन्प्रह्लादः प्रबलारिहा सेनानीश्च तदाभूत्वा देवान्युद्धे समाह्वयत् ॥ ६ ॥ तेऽपि तत्रासुरान्दृष्ट्वा संग्रामे संसुपस्थितान् ॥ सर्वे संभृतसंभारा देवा स्तान्समयोधयन् ॥ ७ ॥ संग्रामस्तु तदा घोरः शक्रप्रह्लादयोर्भवत् ॥ पूर्णं वर्षशते तत्र मुनीनां विस्मयावहः ॥ ८ ॥ वर्तमाने महायुद्धे शुक्रेण प्रतिपालिताः ॥जयमापुस्तदा दैत्याःप्रह्लादप्रमुखा नृप ॥९॥ तदैवेंद्रो गुरोर्वाक्यात्सर्वदुःखविनाशिनीम् ॥ सस्मार मनसा देवीं मुक्तिदां परमां शिवाम् ॥ १० ॥ इंद्र उवाच ॥ जयदेवि महामाये शूल धारिणि चांबिके ॥ शंखचक्रगदापद्म खड्गह स्तेऽभयप्रदे ॥ ११ ॥ नमस्ते भुवनेशानि शक्तिदर्शननायिके ॥ दशतत्त्वात्मिके मातमहाबिंदुस्वरूपिणि ॥ १२ ॥ महाकुंडलिनीरूपे सच्चिदानंदरूपिणि ॥ प्राणाऽग्निहोत्रविद्ये ते नमो दीपशिखात्मिके ॥ १३ ॥ पंचकोशांतरगते पुच्छब्रह्मस्वरूपिणि ॥ आनंदकलिके मातः सर्वोपनिषदर्चिते ॥ १४ ॥

तत्वोंकी भिन्नता रहनेपर भी आप दशतत्वात्मिका हैं. हे मातः ! आपही महाविद्या बिंदुस्वरूपिणी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ १२ ॥ हे मातः ! आपही आधार पद्ममें स्थित महाकुण्डलिनी हैं, आपही सच्चिदानंदस्वरूपिणी हैं आपही प्राण और अग्निहोत्र यागस्वरूपिणी अर्थात् आपही उक्त दोनों यागोंकी अधिदेवता हैं मेघोंके उदय होनेपर जिसप्रकार बिजली प्रकाश पाती है वैसेही आप हृदयाकाशमें सर्वदा अग्निकी शिखाके समान दीप्तिको प्राप्त होती हैं हे माता ! आपको नमस्कार करता हूं ॥ १३ ॥ हे जननि ! आपही अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय और आनंदमय इन पंचकोषमें अवस्थित रही हैं. आपही आनंदमयकोशमें ब्रह्मस्वरूपिणी हैं. हे माता ! आपही आनंदकलिका और परा ब्रह्मविद्यारूप सब उपनिषद्की परिपूजिता हैं हे जननि ! आपको नमस्कार करता हूं ॥ १४ ॥

हे मातः ! आप हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये हम दैत्योंसे पराजित और हीनतेज हुए हैं आप हमारी रक्षा कीजिये । हे सर्वशक्ति संपन्ने देवि ! केवल आपही इस भुवनमें आश्रयदायिनी होकर हमारा दुःख दूर करनेमें समर्थ होती हैं ॥ १५ ॥ हे देवि ! जो सदा आपका ध्यान करत हैं वेहीं प्रकृत सुखी हैं और जो आपका ध्यान नहीं करते उनका शोक और भय दूर नहीं होता. सुतरां वे केवल दुःखही भोगते हैं जो मोक्षार्थी सदा आपका ध्यान धारण करते हैं वे सज्जनगण अभिमान रहित और निःसंग होकर संसार समुद्रका अपार पार देखते हैं इस विषयमें कुछ संदेह नहीं हैं ॥१६॥ हे विश्वजननि देवि ! विश्वकी रक्षाके लिये आपका प्रभाव विख्यात है. कहें क्या ? आपके प्रभावसे दुःखी पुरुषकी पीड़ा दूर होती है आपही इस संपूर्ण संसारका संहार करनेको कालरूपिणी होकर रहती हैं । हे अम्ब ! मंदमति मनुष्योंमें कौन आपका आचरित जान सकता है ? ॥१७॥ सूर्य, मैं, यम, वरुण, अग्नि, पवन, महानुभाव मुनिगण, आगम,

मातः प्रसादसुमुखी भवहीनसत्त्वांस्त्रायस्व नो जननि दैत्यपराजितान्वै ॥ त्वं देवि नः शरणदा भुवने प्रमाणा शक्ताऽसि दुःखशमनेऽखिलवीर्ययुक्ते ॥ १५ ॥ ध्यायंति येऽपि सुखिनो नितरां भवंति दुःखान्विताविगतशोकभयास्तथाऽन्ये ॥ मोक्षार्थिनो विगतमानविमुक्तसंगाः संसारवारिधिजलं प्रतरंति संतः ॥१६॥ त्वं देवि विश्व जननि प्रथितप्रभावा संरक्ष णार्थमुदिताऽऽर्तिहरप्रतापा ॥ संहर्तुमेदखिलं किलकालरूपा को वेत्ति तेंऽब चरितं ननु मंदबुद्धिः ॥ १७ ॥ ब्रह्मा हरश्च हरिदश्वरथो हरिश्च इन्द्रो यमोथ वरुणोऽग्निसमीरणौ च ॥ ज्ञातुं क्षमा न मुनयोऽपि महानुभावा यस्याः प्रभावमतुलं निगमाऽऽगमाश्च ॥ १८ ॥ धन्यास्त एव तव भक्तिपरा महांतः संसारदुःखरहिताः सुखसिंधुमग्नाः ॥ ये भक्तिभावरहिता न कदाऽपि दुःखांभोधिं जनिक्षयतरंगयुमे तरंति ॥ १९ ॥ ये वीज्यमानाः सितचामरैश्च क्रीडंति धन्याः शिबिकाधिरूढाः ॥ तैः पूजिता त्वं किल पूर्वदेहे नानोपहारैरिति चिंतयामि ॥ २० ॥

निगम, अधिक क्या ? ब्रह्मा विष्णु और महादेवभी आपका अतुल प्रभाव जाननेमें समर्थ नहीं हैं. हे माता ! मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूं ॥ १८ ॥ हे उमे ! जो आपके प्रति भक्तिपरायण हैं वे ही धन्य और वेही महान् हैं वे संसारके दुःखसे रहित होकर सदा सुखसागरमें मग्न रहते हैं और जो आपके प्रति भक्तिविहीन हैं वे जन्ममृत्यु स्वरूप तरंगयुक्त दुःखसमुद्रके पार होनेमें किसी प्रकार समर्थ नहीं होते ॥ १९ ॥ हे देवि ! जो सदा श्वेत चामरसे वीज्यमान होता है और जो पालकीमें चढ़कर जाता आता है उनसे निस्संदेह पूर्व जन्ममें अनेक प्रकारके उपहारसे आपकी पूजा की थी अतएव इस जन्ममें उसके अनुरूप फलपाया है. यही मैं विचारता हूं ॥ २० ॥

जो मनुष्यमण्डलमें सदाही पूज्य हैं, जो श्रेष्ठ हाथीपर चढकर गमन करते हैं जो विलासिनी गणोंके विलास रसमें निमग्न होकर आनंद अनुभव करते हैं जो अधीनस्थ सामन्तगणोंमे परिवेष्टित होकर गमन करते हैं, हे देवि ! मैं विचारता हूं कि, उन्होंने पूर्वजन्ममें आपकी पूजा की थी, उसीके बलसे इस सब सुखसं पत्तिलाभके अधिकारी हुए हैं ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! देवराज इंद्र इसप्रकार स्तव कर रहे थे. इसी समय देवी सिंहपर चढी सहसा प्रगट हुई ॥ २२ ॥ उनकी चारों भुजा शंख, चक्र, गदा, और पद्मसे सुशोभित थीं. उनके तीनों नेत्र अत्यन्त मनोहर, परिधान लाल वस्त्र और गलदेश दिव्य मालासे विभूषित था ॥ २३ ॥ देवीने प्रसन्नवदन हो देवताओंसे कहा हे देवताओ ! तुम भयका परित्याग करो. इस समय मैं तुम्हारा मंगल करूंगी ॥ २४ ॥ वह

ये पूज्यमाना वरवारणस्था विलासिनीवृंदविलासयुक्ताः ॥ सामंतकैश्चोपनतैर्व्रजंति मन्ये हितैस्त्वं किल पूजिताऽसि ॥२१॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता मघवता देवी विश्वेश्वरी तदा ॥ प्रादुर्बभूव तरसा सिंहारूढा चतुर्भुजा ॥ २२ ॥ शंखचक्रगदापद्मान्बिभ्रती चारुलोचना ॥ रक्तांबरधरा देवी दिव्यमाल्यविभूषिणा ॥२३॥ तानुवाच सुरान्देवी प्रसन्नवदना गिरा ॥ भयं त्यजंतु भो देवाः शं विधास्ये किलाऽधुना ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहाऽऽरूढाऽतिसुन्दरी ॥ जगाम तरसा तत्र यत्र दैत्या मदान्विताः ॥ २५ ॥ प्रह्लादप्रमुखाः सर्वे दृष्ट्वा देवीं पुरः स्थिताम् ॥ ऊचुः परस्परं भीताः किं कर्तव्यमितस्तदा ॥ २६ ॥ देवं नारायणं चाऽत्र संप्राप्ता चंडिका किल ॥ महिषांतकरी नूनं चण्डमुण्डविनाशिनी ॥ २७ ॥ निहनिष्यति नः सर्वानंबिका नाऽत्र संशयः ॥ वक्रदृष्ट्या यया पूर्वं निहतौ मधुकैटभौ ॥ २८ ॥ एवं चिंताऽतुरान्वीक्ष्य प्रह्लादस्तानुवाच ह ॥ योधव्यं नाऽथ गंतव्यं पलाय्य दानवोत्तमाः ॥ २९ ॥

दिव्य सुंदरी सिंहपर चढ़ी देवी देवताओंसे उक्त वचन कहकर जिस स्थानमें मदमत्त असुरगण स्थित थे, उसी स्थानमें चली गई ॥ २५ ॥ तब प्रह्लाद इत्यादि असुरगण देवीको आगे स्थित देख भयभीत हो परस्पर कहने लगे. इस समय क्या करना चाहिये ॥ २६ ॥ यह चण्डिका देवताओंकी रक्षा करनेको इस स्थानमें आई हैं. इसनेही महिषासुर और चण्डमुण्डका विनाश किया है ॥ २७ ॥ इसनेही वक्रदृष्टिसे पूर्वमें मधुकैटभका संहार किया था. अब वही अम्बिका हम सबका विनाश करेगी, इसमें संदेह नहीं ॥ २८ ॥ प्रह्लादने दानवोंको इस प्रकार चिंतातुर देखकर कहा हे दानवगण ! इस समय युद्ध न करके भागना ही उचित है ॥ २९ ॥

तब नमुचिनातमक दैत्य भागते हुए दानवोंसे बोला कि, तुम्हारे पलायन करनेपर यह जगन्माता हस्तधृत अस्त्रद्वारा क्या तुमको विनाश करेंगी ? ॥ ३० ॥ जो हो जिससे दोनों पक्षों की रक्षा हो, वही करना हमारा कार्य है. हम भुवनेश्वरीकी स्तुति कर उनकी आज्ञा ले, अभी पातालमें गमन करेंगे. मैंने यही स्थिर किया है ॥ ३१ ॥ तब प्रह्लादने कहा मैं सृष्टि, स्थित, प्रलय करनेवाली सबकी जननी सर्वजनोंको अभय देनेवाली महामायाका स्तवन करता हूं ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले कि, इस प्रकार कह परमार्थतत्वके जाननेवाले विष्णुभक्त प्रह्लाद हाथ जोड़ देवीका जगद्धात्रीका स्तवन करने लगे ॥ ३३ ॥ मालाके देखनेसे जिस प्रकार सर्पका भय होता है, इसी प्रकार जिनके आश्रयसे यह चराचर शोभा पाता है. जो इस अखिलको अधिष्ठान स्वरूप है. उन्हीं ह्रींका

नमुचिस्तानुवाचाऽथ पलायनपरानिह ॥ हनिष्यति जगन्माता रुषिता किल हेतिभिः ॥३०॥ तथा कुरु महाभाग यथादुःखं न जायते॥ व्रजामोऽद्यैव पातालं तांस्तुत्वा तदनुज्ञया ॥ ३१ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ स्तौमि देवीं महामायां सृष्टिस्थित्यंतकारिणीम् ॥ सर्वेषां जननीं शक्तिभक्तानामभयंकरीम् ॥ ३२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा विष्णुभक्तस्तु प्रह्लादः परमार्थवित् ॥ तुष्टाव जगतां धात्रीं कृतांजलिपुटस्तदा ॥ ३३ ॥ मालासर्पवदाभाति यस्यां सर्वं चराचरम् ॥ सर्वाधिष्ठानरूपायै तस्यै ह्रींमूर्तये नमः ॥ ३४ ॥ त्वत्तः सर्वमिदं विश्वं स्थावरं जङ्गमं तथा ॥ अन्ये निमित्तमात्रास्ते कर्तारस्तव निर्मिताः ॥ ३५ ॥ नमो देवि महामाये सर्वेषां जननी स्मृता ॥ को भेदस्तव देवेषु दैत्येषु स्वकृतेषु च ॥ ३६ ॥ मातुः पुत्रेषु को भेदोऽप्यशुभेषु शुभेषु च ॥ तथैव देवेष्वस्मासु न कर्तव्यस्त्वयाऽधुना ॥ ३७॥ यादृशास्तादृशा माताः सुतास्ते दानवाः किल ॥ यतस्त्वं विश्वजननी पुराणेषु प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥

रवीजमूर्ति भुवनेश्वरीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३४ ॥ हे देवि ! आपसेही स्थावर जंगमादि इस संपूर्ण विश्वकी उत्पत्ति हुई है. ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि कर्त्ता निमित्तमात्र हैं.वास्तवमें आपनेही सृष्टि इत्यादि कार्यके निमित्त उनको उत्पन्न किया है ॥ ३५ ॥ हे महामाये ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ आप सबकी जननी हैं. सुर और असुरगण सभी आपसे उत्पन्न हैं, तब फिर आपकी दृष्टिमें देवता और दैत्यगणोंमें भेद किस प्रकार संभवित है ?॥ ३६ ॥जब उत्तम और अधम पुत्रमें माताकी भेदबुद्धि दिखाई नहीं देती. तो देवतालोग हमलोगोंको भेदभावसे नहीं देखिये. यही हमारी प्रार्थना है ॥ ३७॥ हे देवी ! आप सब पुराणोंमें विश्वजननी कहकर कीर्तित हुई हैं. अतएव हे मातः ! देवतालोग जिसप्रकार आपके पुत्र हैं हम भी उसी प्रकार हैं ॥ ३८ ॥

हे जननी वह जिसप्रकार स्वार्थमें तत्पर हैं हमारा स्वार्थ भी उसी प्रकार है. सुतरां दैत्य और देवताओंमें कोईभी भेद नहीं है. यदि कोई भेदबुद्धि करे तो वह भ्रांतिमूलक है ॥ ३९ ॥ हे देवी ! धन स्त्री इत्यादि विषयभोगमें हम जिस प्रकार आसक्त हैं देवता भी इसी प्रकार हैं. हे देवेशि ! तो असुरगणोंके सहित देवताओंमें क्या भेद है ?॥ ॥ ४० ॥ हे मातः ! वह भी महर्षि कश्यपजीके पुत्र हैं और हमभी उन्हींके आत्मज हैं. अतएव इस विषयमें आपके स्नेहका विपरीत भाव किस प्रकार हो सकता है ॥ ४१ ॥ हे विश्वजननि ! आपके ऐसा विरोध कहींभी दिखाई नहीं देता. इस कारण आप देवता और असुरगणोंके समान मानिये ॥ ४२ ॥ देवतागण और असुरगण सभी गुणोंके संयोगसे उत्पन्न हुए हैं. देवतागण देहधारी होकर किस प्रकार अधिगुणयुक्त हो सकते हैं ॥ ४३ ॥

तेऽपि स्वार्थपरा नूनं तथैव वयमप्युत ॥ नांतरं दैत्य सुरयोर्भेदोऽयं मोहसंभवः ॥ ३९ ॥ धनदारादिभोगेषु वयं सक्ता दिवानिशम ॥ तथैव देवा देवेशि को भेदोऽसुरदेवयोः ॥ ४० ॥ तेऽपि कश्यपदायादा वयं तत्संभवाः किल ॥ कुतो विरोधसंभूतिर्जाता मातस्तवाऽधुना ॥ ४१ ॥ न तथा विदितं मातस्त्वयि सर्वं समुद्भवे ॥ साम्यतैव त्वया स्थाप्या देवेष्वस्मासु चैव हि ॥४२॥ गुणव्यतिकरात्सर्वे समुत्पन्नाः सुरासुराः ॥ गुणान्विता भवेयुस्ते कामं देह भृतोऽमराः ॥४३॥ कामः क्रोधश्च लोभश्च सर्वदेहेषु संस्थिताः ॥ वर्तते सर्वदा तस्मात्कोऽवि रोधी भवेज्जनः ॥४४॥ त्वया मिथो विरोधोऽयं कल्पितः किल कौतुकात् ॥ मन्यामहे विभेदेन नूनं युद्धदिदृक्षया ॥४५॥ अन्यथा नः भ्रातृणां विरोधः कीदृशोऽनघे ॥ त्वं चेन्नेच्छसि चामुंडे वीक्षितुं कलहं किल॥ ४६ ॥जानामि धर्मं धर्मज्ञे वेद्मि चाऽहं शतक्रतुम् ॥ तथाऽपि कलहोऽस्माकं भोगार्थं देवि सर्वदा ॥ ४७॥ एकः कोऽपि न शास्ताऽस्ति संसारे त्वां विनाऽबिके ॥ स्पृहावतस्तु कः कर्तुं क्षमते वचनं बुधः ॥ ४८ ॥

संपूर्ण देहमेंही काम, क्रोध, और लोभ इत्यादिका अधिकार है. तब कौन व्यक्ति अविरोधि हो सकता है ? ॥ ४४॥ मैं जानता हूं कि, आपनेही कौतुकवशतः युद्ध देखनेको परस्पर हमारा भेद कराकर यह विरोध उपस्थित किया है ॥ ४५ ॥ नहीं तो हे चामुण्डे ! यदि हमारा कलह देखनेकी तुम्हारी इच्छा नहीं होती, तो हम भ्रातालोग परस्पर विरोध क्यों करते ? ॥ ४६ ॥ हे देवि ! हम धर्मको भी जानते हैं शतक्रतुकोभी जानते हैं. तथापि विषयसंभोगकेलिये हमारा सदाही कलह होता है ॥ ४७ ॥ हे अम्बिके ! इस संपूर्ण संसारमें तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई सबका शासनकर्ता दिखाई नहीं देता । जो स्पृहा वान हैं, उनका वचन प्रतिपालन करनेमें कौन पंडित समर्थ हो सकता है? ॥ ४८ ॥

हे मातः ! किसी समयमें देवता और असुरोंने मिलकर समुद्रका मंथन किया था, तब विष्णुने सुधा-रत्न बाँटनेके मिषमे देवता और असुरोंमें परस्पर भेद करा दिया था ॥ ४९ ॥ हे मातः ! आपने जिनको जगद्गुरु और जगत्का पालनकर्ता किया है, उन्होंने ही लोभके वशीभूत हो अमर सुंदरी लक्ष्मी देवीको ग्रहण किया था ॥ ५० ॥ देवराज इंद्रने ऐरावत, पारिजात, कामधेनु, तथा उच्चैश्रवाको ग्रहण किया था। इसी प्रकार विष्णुकी इच्छासे अन्यान्य देवताओंने उत्तम उत्तम सामग्री ग्रहण करी थी ॥ ५१ ॥ क्या आश्चर्य है ? इस प्रकार अन्याय कार्यकरनेपर भी देवता साधु हुए, वास्तवमें देवताही अन्यायकारी हैं इसमें संदेह नहीं । हे देवि ! आप इस विषयमें यथार्थ धर्म क्या है ? सो अवलोकन कीजिये बहुमानी विष्णुने देवताओंको स्वपदमें स्थापित और दैत्योंको पराभूत किया है । हे देवि ! आप इस विषयमें धर्मका लक्षण अवलोकन कीजिये धर्म कहां है ? किस प्रकारका है ? धर्मका कार्य क्या है ? साधुता किस प्रकार है ?

देवाऽसुरैरयं सिंधुर्मथितः समये क्वचित् ॥ विष्णुना विहितो भेदः सुधारत्नच्छलेन वै ॥ ४९ ॥ त्वयाऽसौ कल्पितः शौरिः पालकत्वे जगद्गुरुः ॥ तेन लक्ष्मीः स्वयं लोभाद् गृहीताऽमरसुंदरी ॥५०॥ ऐरावतस्तथेंद्रेण पारिजातोऽथ कामधुक् ॥ उच्चैःश्रवाः सुरैः सर्वं गृहीतं वैष्णवेच्छया ॥ ५१ ॥ अनयं तादृशं कृत्वा जाता देवास्तु साधवः ॥ “ अन्यायिनः सुरा नूनं पश्य त्वं धर्मलक्षणम् ” ॥ संस्थापिताः सुरा नूनं विष्णुना बहुमानिना ॥ ५२ ॥ नूनं दैत्याः पराभूवन्पश्य त्वं धर्मलक्षणम् ॥ क्व धर्मः कीदृशो धर्मः क्व कार्यं क्व च साधुता ॥ ५३ ॥ कथयामि च कस्याऽग्रेसिद्धं ममांसिकं मतम् ॥ तार्किका युक्तिवादज्ञा विधिज्ञा वेदवादकाः ॥ ५४ ॥ उक्ताः सकर्तृकं विश्वं विवदंते जडात्मकाः ॥ कर्ता भवति चेदस्मिन्संसारे वितते किल ॥ ५५ ॥ विरोधः कीदृशस्तत्र चैककर्मणि वै मिथः ॥ वेदे नैकमतिः कस्माच्छास्त्रेष्वपि तथा पुनः ॥ ५६ ॥

यह आप भली भांति विचार करके देखिये, किसके धर्मकी रक्षा हुई है. किसकी साधुता प्रकाशित हुई है. किसकी जीत वा हार होनी उचित है क्योंकि इन सब बातोंके विचारनेमें आप भली भांति समर्थ हैं ॥ ५२ ॥ ५३ हाय मीमांसक गणोंका सिद्धांत किसके संमुख प्रकाश करूं ? विचार करके देखनेसे यह जगत् विवादका क्षेत्र है, क्योंकि तार्किकगण युक्तिपथके पक्षपाती और वेदवादी विधिमार्गके अनुवर्ती हैं ॥ ५४ ॥ यह सब स्थूलबुद्धिगण इस संसारको एक जनके कर्तृत्वसे उत्पन्न और पालित स्वीकार करते हैं, तथा आपसमें विरोध करते हैं ॥ यदि इस अनंत विस्तृत संसारमें एकही जन कर्त्ता हो तो एक कार्यमें परस्परका मतभेद और विरोध क्यों होता है ? वेदमें किस कारण एकमत दिखाई नहीं देता और सब शास्त्रोंका मतभी किस निमित्त पृथक् २ है ? ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

वेदविद्गणोंके अभिप्रायका भी अनैक्य क्यों देखा जाता है ? हे देवि ! यह स्थावर जंगमात्मक सब जगत् स्वार्थपरायण है, इस कारणही उक्त प्रकारका मतभेद हुआ है, इसमें संदेह नहीं ॥ ५७ ॥ इस संसारमें स्पृहाहीन पुरुष न है, न होगा, देखो, चन्द्रमाने जानकर तथा सुनकरभी बलपूर्वक गुरुकी भार्याका हरण किया, ॥ ५८ ॥ इंद्रने धर्मके तत्त्वको निश्चय जानकरभी गौतमकी भार्याका हरण किया, देवगुरुने अनुजकी भार्यामें बलपूर्वक रमण किया और ज्येष्ठकी गर्भवती भार्यासे ॥ ५९ ॥ बलात्कार करके गर्भगत बालकको शाप देकर अंधा किया। अधिक क्या ? सत्त्वगुणयुक्त विष्णुने भी विना अपराध बलपूर्वक राहुका मस्तक काटा ॥ ६० ॥ हे अम्बिके ! धार्मिकगणोंमें अग्रणी, सत्यव्रत परायण, यज्ञशील, वदान्य, शांत, सर्वज्ञ मेरा पौत्र बलि, जो सबके मानकी रक्षा करता था छलावलम्बी हरिने वामनरूप धारणपूर्वक ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ उसको छलकर उसके सम्पूर्ण राज्यका हरण कर लिया. हाय !

नैकवाक्यं वचस्तेपामपि वेदविदां पुनः ॥ यतः स्वार्थपरं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ५७ ॥ निःस्पृहः कोऽपि संसारे न भवेन्न भविष्यति ॥ शशिनाऽथ गुरोर्भार्या हृता ज्ञात्वा बलादपि ॥ ५८ ॥ गौतमस्य तथेंद्रेण जानता धर्मनिश्चयम् ॥ गुरुणाऽनुजभार्या च भुक्ता गर्भवती बलात् ॥ ५९ ॥ शप्तो गर्भगतो बालः कृतश्चांधस्तथा पुनः ॥ विष्णुना च शिरश्छिन्नं राहोश्चक्रेण वै बलात् ॥ ६० ॥ अपराधं विना कामं तदा सत्त्ववतांऽम्बिके ॥ पौत्रो धर्मवतां शूरः सत्यव्रतपरायणः ॥६१॥ यज्वा दानपतिः शांतः सर्वज्ञः सर्वपूजकः ॥ कृत्वाऽथ वामनं रूपं हरिणा छलवेदिना ॥ ६२ ॥ वंचितोऽसौ बलिः सर्वं हृतं राज्यं पुरा किल ॥ तथाऽपि देवान्धर्मस्थान्प्रवदंति मनीषिणः ॥ ६३ ॥ वदंति चाटुवादांश्च धर्मवादाञ्जनं गताः ॥ एवं ज्ञात्वा जगन्मातर्यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६४ ॥ शरणा दानवाः सर्वे जहि वा रक्ष वा पुनः ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सर्वे गच्छत पातालं तत्र वासं यथेप्सितम् ॥ ६५ ॥ कुरुध्वं दानवाः सर्वे निर्भया गतमन्यवः ॥ कालः प्रतीक्ष्यो युष्माभिः कारणं स शुभेशुऽभे ॥ ६६ ॥

तो भी मुनिगण देवताओंको धर्मका स्थापन कर्त्ता कहकर व्याख्या करते हैं ॥ ६३ ॥ क्या आश्चर्य है? इस जगत्में जो चाटुकार " बनावटी " कहते हैं, उनको ही जय और जो यथार्थ धर्मवादी हैं, उनका ही क्षय होता है ॥ हे देवि ! आप जगत्की माता हैं, यह सब विचार कर जो इच्छा हो वही कीजिये ॥ ६४ ॥ सब दानवोंको अपनीही शरणागत जानो अब उनका वध वा रक्षा जो उचित हो सो करो. देवीने कहा, हे दानवलोगो ! तुम सब पातालको जाओ और समरजनित क्रोध छोड़कर निर्भय रहो वहां इच्छानुसार वास करते रहो तुम लोग इस समय शुभ और अशुभ प्राप्तिके कारणस्वरूप कालकी प्रतीक्षा करो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

जो निर्वेदपरायण संसारके पृथक् और विरागी हैं उनको सर्वदा सब स्थानोंमेंही सुख विद्यमान है और जिनका मन लोभाक्रान्त है, उनको त्रैलोक्यका राज्य प्राप्त होनेपर सुख नहीं होता ॥ ६७ ॥ अधिक क्या ? सत्य युगमेंभी लोभ परायण पुरुष फल प्राप्त होनेपरभी सुख लाभ नहीं कर सके ॥ ६८ ॥ अत एव तुम लोग पृथ्वी छोडकर पातालको जाओ तुम विगतपाप हो मेरी आज्ञा मस्तकपर धारण करके पातालमें गमन करो. व्यासजी बोले, दानवोंने देवीका यह वचन सुनकर शिरोधारण कर ॥ ६९ ॥ और उनको प्रणाम कर तथा उनके द्वारा प्रतिपालित हो पातालमें चले गये इसके उपरांत देवी अंतर्धान हो गई और देवता अपने अपने भवनको चले गये ॥ ७० ॥ इस प्रकार देवता और दानव लोग आपसका वैरभाव छोड़कर वास करने लगे. हे महाराज! जो

सुनिर्वेदपराणां हि सुखं सर्वत्र सर्वदा ॥ त्रैलोक्यस्य च राज्येऽपि न सुखं लोभचेतसाम् ॥ ६७ ॥ कृतेऽपि न सुखं पूर्णं सस्पृहाणां फलैरपि ॥ तस्मात्त्यक्त्वा महीमेतां प्रयांत्वद्य महीतलम् ॥६८॥ ममाऽऽज्ञां पुरतः कृत्वा सर्वे विगतकल्मषाः ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देव्यास्तथेत्युक्त्वा रसातलम् ॥ ६९ ॥ प्रणम्य दानवाः सर्वे गताः शक्त्याऽभिरक्षिताः ॥ अंतर्दधे ततो देवीः देवाः स्वभुवनं गता ॥ ७० ॥ त्यक्त्वा वैरं स्थिताः सर्वे ते तदा देवदानवाः ॥ एतदाख्यानमखिलं यः शृणोति वदत्यथ ॥७१॥ सर्वदुःखविनिर्मुक्तः प्रयाति पदमुत्तमम् ॥७२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पञ्चदशोध्यायः ॥१५॥ जनमेजय उवाच ॥ भृगुशापान्मुनिश्रेष्ठ हरेरद्भुत कर्मणः ॥ अवताराः कथं जाताः कस्मिन्मन्वन्तरे विभो ॥ १ ॥ विस्तराद्वद धर्मज्ञ अवतारकथां हरेः ॥ पाप नाशकरीं ब्रह्मञ्छ्रुतां सर्वसुखावहाम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि अवतारान्हरेर्यथा ॥ यस्मिन्मन्वन्तरे जाता युगे यस्मिन्नराधिप ॥ ३ ॥ येन रूपेण यत्कार्यं कृतं नारायणेन वै ॥ तत्सर्वं नृपवक्ष्यामि संक्षेपेण तवाऽधुना ॥ ४ ॥

कोई इस आख्यानको पढते हैं वा सुनते हैं ॥ ७१ ॥ वे सब प्रकारके दुःखोंसे छूटकर भगवान्के परम पदको पाते हैं ॥ ७२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ जनमेजय बोले, हे विभो ! भृगुशापके कारण विचित्रकर्मा हरि किस मन्वन्तरमें किस अवतारमें किस प्रकार अवतीर्ण हुए थे ? ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञ ! आप पापनाशिनी सर्वसुखदायिनी और कल्याण विधायिनी उन्हीं हरिके अवतारकी कथाका विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥२॥ व्यासजीने कहा हे नरेन्द्र ! जिस २ मन्वन्तर और जिस युगमें भगवान् अवतीर्ण हुए थे, वह वर्णन करता हूं सुनो ॥ ३ ॥ भगवान् नारायणने जो जो आकार धारण करके जो जो कार्य साधन किये थे। इस समय मैं संक्षेपमे वे तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं, श्रवण करो ॥ ४ ॥

चाक्षुषमन्वन्तरमें धर्मका अवतार प्रकाशित हुआ. उसमें नरनारायण नामक दो धर्मके पुत्र अवतीर्ण होकर पृथ्वीतलमें विख्यात हुए थे ॥ ५ ॥ फिर वर्तमान वैवस्वत मनुके अधिकार समय दूसरे युगमें भगवान् हरि अत्रिऋषिके पुत्र होकर दत्तात्रेयनामसे अवतीर्ण हुए थे ॥ ६ ॥ अत्रिकी अनसूयाने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन तीन प्रधान देवताओंको संतानरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा की, उसीके अनुसार उन्होंने ऋषिपत्नीकी कामना पूर्ण करनेको उसके गर्भसे जन्म ग्रहण किया ॥ ७ ॥ अनसूया सती स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थी. इस कारण केवल उसके प्रार्थना करतेही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरने उसके पुत्र होना स्वीकार किया ॥ ८ ॥ उनमें ब्रह्मा सोमरूपसे, स्वयं हरि दत्तात्रय रूपमे और रुद्रदेव दुर्वासारूपसे प्रादुर्भूत हुए थे ॥ ९ ॥ चौथे युगमें भगवान् देवताओंका कार्य साधनेके निमित्त

धर्मस्यैवाऽवतारोऽभूच्चाक्षुषेमनुसंभवे ॥ नरनारायणौ धर्मपुत्रौ ख्यातौ महीतले ॥ ५ ॥ अथ वैवस्वताख्येऽस्मिन्द्वितीये तु युगे पुनः ॥ दत्तात्रेयोऽवतारोऽत्रेः पुत्रत्वमगमद्धरिः ॥ ६ ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयोऽमी देवसत्तमाः ॥ पुत्रत्वमगमन्देवास्तस्याऽत्रेर्भार्यया वृताः ॥ ७ ॥ अनसूयाऽत्रिपत्नी च सतीनामुत्तमा सती ॥ यया संप्रार्थिता देवा पुत्रत्वमगमंस्त्रयः ॥ ८ ॥ ब्रह्माऽभूत्सोमरूपस्तु दत्तात्रेयो हरिः स्वयम् ॥ दुर्वासा रुद्ररूपोऽसौ पुत्रत्वं ते प्रपेदिरे ॥ ९ ॥ नृसिंहस्यावतारस्तु देवकार्यार्थसिद्धये ॥ चतुर्थे तु युगे जातो द्विधारूपो मनोहरः ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपोः सम्यग्वधाय भगवान्हरिः ॥ चक्रे रूपं नारसिंहं देवानां विस्मयप्रदम् ॥ ११ ॥ बलेर्नियमनार्थाय श्रेष्ठे त्रेतायुगे तथा ॥ चकार रूपं भगवान्वामनं कश्यपान्मुनेः ॥ १२ ॥ छलयित्वा मखे भूपं राज्यं तस्य जहार ह ॥ पाताले स्थापयामास बलिं वामनरूपधृक् ॥ १३ ॥ युगे चैकोनविंशेऽथ त्रेताख्ये भगवान्हरिः ॥ जमदग्निसुत जातो रामो नाम महाबलः ॥ १४ ॥ क्षत्रियांतकरः श्रीमान्सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ दत्तवान्मेदिनीं कृत्स्नां कश्यपाय महात्मने ॥ १५ ॥

मनोहर द्विरूप अर्थात् मृगेन्द्रमुख और अवशिष्टांग नराकार धारण करके नृसिंहरूपमे अवतीर्ण हुए थे ॥ १० ॥ वे हिरण्यकशिपुको मारनेकेलिये ही देवतागणोंको भी विस्मित कर नृसिंहमूर्तिमें अवतीर्ण हुए ॥ ११ ॥ भगवान् हरिने बलिका प्रभाव प्रशमित करनेके लिये युगश्रेष्ठ त्रेतामें महर्षि कश्यपके और सपुत्र होकर वामनरूप धारण किया था ॥१२॥ उन्हीं वामनरूपधारी हरिने यज्ञस्थलमें छलपूर्वक बलिका राज्य ग्रहण करके उसको पातालमें स्थापित किया था ॥ १३॥ फिर त्रेतानामक एकोनविंश युगमें भगवान् हरि जमदग्नि ऋषिके महाबल पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण कर परशुराम नामसे विख्यात हुए ॥१४॥ वे रूपवान् सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे। उनमेही क्षत्रियकुल निर्मूल हुआ और उन्होंनेही महात्मा कश्यप ऋषिको सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य समर्पण किया था ॥ १५ ॥

हे राजेन्द्र ? उन्हीं अद्भुतकर्मा हरिका परशुराम नामक पाप--विनाशक अवतार है ॥ १६ ॥ अनन्तर भगवान् हरि त्रेतायुगके समय रघुकुलमें रामनामसे दशरथके पुत्ररूपमें प्रादुर्भूत हुए थे ॥ १७ ॥ अनन्तर अष्टाविंशतिद्वापरयुगमें नरनारायणके अंशसे महाबल अर्जुन और कृष्णरूपसे पृथ्वीतलमें जन्म ग्रहण किया इन कृष्ण और अर्जुनने भूमिके भारका नाश करनेके लिये जन्म ग्रहण करके ॥१८॥ कुरुक्षेत्रमें अत्यन्त दारुण संग्राम उपस्थित किया । हे राजन् ! इस प्रकार युगयुगमें ॥ १९. ॥ हरिकी प्रकृतिके अनुरूप अनेक अवतार होते हैं. हे राजेन्द्र ! यह अखिल तीनों जगत् प्रकृतिके वशमें अवस्थित रहते हैं ॥ २० ॥ यह प्रकृति जिस प्रकार इच्छा करती है. उसी प्रकार जगत्को निरंतर भ्रमण कराती है प्रकृतिपुरुषका प्रिय साधन करनेके लियेही निरंतर इस

योवै परशुरामाख्यो हरे रद्भुत कर्मणः ॥ अवतारस्तु राजेंद्र कथितः पापनाशनः ॥ १६ ॥ त्रेतायुगे रघोर्वंशे रामो दशरथात्मजः ॥ नरनारायणांशौ द्वौ जातो भुवि महाबलौ ॥ १७ ॥ अष्टाविंशे युगे शस्तौ द्वापरेऽर्जुनशौरिणौ ॥ धराभाराऽवताराय जातौ कृष्णार्जुनौ भुवि ॥ १८ ॥ कृतवंतौ महायुद्धं कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम् ॥ एवं युगे युगे राजन्नवतारा हरेः किल ॥ १९ ॥ भवंति बहवः कामं प्रकृतेरनुरूपतः ॥ प्रकृतेरखिलं सर्वं वशमेतज्जगत्त्रयम् ॥ २० ॥ यथेच्छति तथैवेयं भ्रामयत्यनिशं जगत् ॥ पुरुषस्य प्रियार्थं सा रचयत्यखिलं जगत् ॥२१॥ सृष्ट्वा पुरा हि भगवञ्जगदेतच्चराचरम् ॥ सर्वादिः सर्वगश्चासौ दुर्ज्ञेयः परमोऽव्ययः ॥२२॥ निरालंबो निराकारो निःस्पृहश्च परात्परः ॥ उपाधितस्त्रिधा भाति यस्याः सा प्रकृतिः परा ॥ २३ ॥ उत्पत्ति कालयोगात्सा भिन्ना भाति शिवा तदा ॥ सा विश्वं कुरुते कामं सा पालयति कामदा ॥२४॥ कल्पान्ते संहरत्येव त्रिरूपा विश्वमोहिनी ॥ तया युक्तोऽसृजद्ब्रह्मा विष्णुः पाति तयाऽन्वितः ॥२५॥ रुद्रः संहरते कामं तया संमिलितः शिवः ॥ सा चैवोत्पाद्य काकुत्स्थं पुरा वै नृपसत्तमम् ॥ २६ ॥

अखिलजगत्की रचना करती है ॥ २१ ॥ जिस मायाकी उपाधिसे परात्पर, सर्वादि, सर्वगत, दुर्ज्ञेय, परम, अव्यय, निरावलम्ब निराकार निस्पृह भगवान् इस चराचर जगत्की सृष्टि करके ब्रह्मा; विष्णु, महेश्वररूपसे अथवा सात्विक, राजस और तामस रूपसे प्रतिभात हुए हैं. उस मायाकोही परमा प्रकृति जानना चाहिये ॥ २२ ॥ २३ ॥ वह शिवा प्रकृति उत्पत्ति और कालयोगसे भिन्न भिन्न रूपमें प्रतिभात होती हैं, वह त्रिरूपा विश्वमोहिनीही विश्वकी सृष्टि और पालन करती हैं ॥ २४ ॥ और कल्पान्तमें संहार करती हैं. हे राजन् ! इस प्रकृतिके सहित संयुक्त होनेसे ही ब्रह्मा सृष्टि, विष्णु पालन ॥ २५ ॥ और कल्याणमय महादेव संहार कार्य साधन करते हैं. उन्होंनेही पूर्वकालमें नृपसत्तम काकुत्स्थको उत्पन्न करके ॥ २६ ॥

दानवगणोंकी जयकोकिसी स्थानमें स्थापित किया था। हे महाराज ! इस प्रकार प्राणिगण इस संसारमें विधिनियममें आबद्ध होकर कभी सुखी और दुःखी होकर विचरण करते हैं ॥ २७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ दोहा-- सुरललनाको गमन जिमि, नारायणके गेह। भयो सप्तदशमें सकल, वर्णहिं सहित सनेह ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने कहा है कि, नर नारायणके आश्रममें स्वर्गकी अप्सराओंने कामातुर होकर शान्तचित्त एकमात्र नारायणकीही कामना की थी ॥ ॥ १ ॥ उस समय नारायण मुनि उनको शाप देनेको उद्यत हुए तब उनके भ्राता नरऋषिने उनको निवारण किया था ॥ २ ॥ इस समय पूँछता हूं इस प्रकार संकटका समय उपस्थित होनेपर नारायण मुनिने क्या किया था? अमरनाथ इन्द्रने जिन सब

कुत्रचित्स्थापयामास दानवानां जयाय च ॥ एवमस्मिंश्च संसारे सुखदुःखान्विताः किल ॥ २७ ॥ भवंति प्राणिनः सर्वे विधितंत्रनियंत्रिताः
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ जनमेजय उवाच ॥ वारांगनास्त्वयाऽऽख्याता नरनारायणाऽऽश्रमे ॥
एकं नारायणं शांतं कामयानाः स्मरातुराः ॥ १ ॥ शप्तुकामस्तदा जातो मुनिर्नारायणश्च ताः ॥ निवारितो नरेणाऽथ भ्रात्रा धर्मविदा
नृप ॥ २ ॥ किं कृतं मुनिना तेन व्यसने समुपस्थिते ॥ ताभिः संकल्पितनाऽर्थकामार्थाभिभृशं मुने ॥ ३ ॥ शक्रेणोत्पादिताभिश्च बहु
प्रार्थनया पुनः ॥ याचितेन विवाहार्थं किं कृतं तेन जिष्णुना ॥ ४ ॥ इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि चरितं तस्य मोक्षदम् ॥ नारायणस्य मे ब्रूहि
विस्तरेण पितामह ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यथा तस्य महात्मनः ॥ धर्मपुत्रस्य धर्मज्ञ विस्तरेण वदामि ते ॥ ६ ॥
शप्तुकामस्तु संदृष्टो नरेणाऽथ यदा हरिः ॥ वारितोऽसौ समाश्वास्य मुनिर्नारायणस्तदा ॥७॥ शांतकोपस्तदोवाच तास्तपस्वी महामुनिः ॥
स्मितपूर्वमिदं वाक्यं मधुरं धर्मनंदनः ॥ ८ ॥

कामाभिलाषी सुरवाराङ्गनाओंको भेजा था ॥ ३॥ उनके अनेक बार परिणय प्रार्थना करनेपर उन विष्णु नारायण ऋषिने क्या किया ? ॥ ४ ॥ हे पितामह ! उन नारायणके ये मोक्षप्रद संपूर्ण पवित्र चरित्र श्रवण करनेकी हमारी अत्यन्त वासना उत्पन्न हुई है. आप उनको विस्तार सहित वर्णन करके हमारी अभिलाषा पूर्ण कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले, हे राजन् ! उन महात्मा धर्म पुत्रके आचरणोंका मैं तुम्हारे निकट विस्तार सहित वर्णन करता हूं तुम सुनो ॥ ६ ॥ नारायण हरिने जब शाप देनेकी इच्छाकी तब नरऋषिने यह देख उनको सांत्वना शांति पूर्वक निवारण किया ॥ ७ ॥ तब महामुनि तपोधन धर्म नन्दनने अपना क्रोध भाव छोड़ कुछेक हँसकर उनसे मधुर वचन द्वारा कहा ॥ ८ ॥

हे सब सुन्दरियो ! इस जन्ममें हमने तपश्चरणका संकल्प किया है. सुतरां इस अवस्थामें हमको स्त्रीग्रहण करना किसी प्रकार उचित नहीं है ॥ ९ ॥ इस कारण तुम हमपर कृपा करके स्वर्गको जाओ. देखो जो धर्मज्ञ हैं वह कभी दूसरेका व्रतभंग करनेकी अभिलाषा नहीं करते ॥ १० ॥ हे सुलोचनागणो ! शृंगार रसमें रतिही स्थायी भावसे कही गई है हममें इस समय उसका अभाव है अतएव हम किस प्रकार उस संबंधकी संयोजना कर सकते हैं ? ॥ ११ ॥ कारण के विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती यह स्थिर निश्चय है, कवियोंने शास्त्रमें रसकोही स्थायी भाव कहा है ॥ १२ ॥ जो हो, हमारे अंग प्रत्यङ्ग सब निश्चयही सुशोभन हैं, मही पृथ्वीतलमें धन्य और सौभाग्यवान् हूं नहीं तो मैं तुम्हारा अकृत्रिम प्रणयास्पद क्यों होता ? ॥ १३ ॥ तुम सौभाग्यवती हो. इस कारण कृपा करके हमारे व्रतकी रक्षा करो. मेरी यही प्रार्थना है कि जन्मान्तरमें तुम्हारा पति हूं ॥ १४ ॥ हे विशालाक्षी सब सुंदरीगणो ! अट्ठाईसवें द्वापर युगमें

अस्मिञ्जन्मनि चार्वंग्यः कृतसंकल्पवाहनम् ॥ आवाभ्यां च न कर्तव्यः सर्वथा दारसंग्रहः ॥ ९ ॥ तस्माद्गच्छंतु त्रिदिवं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ धर्मज्ञा न प्रकुर्वंति व्रतभंगं परस्य वै ॥१०॥ शृङ्गारेऽस्मिन्रसे नूनं स्थायीभावोरतिः स्मृतः ॥ कथं करोमि सम्बन्धं तदभावे सुलोचनाः ॥ ११ ॥ कारणेन विना कार्यं न भवेदिति निश्चयः ॥ कविभिः कथितं शास्त्रे स्थायीभावो रसः किल ॥ १२ ॥ धन्यः सुचारुसर्वांगः सभाग्योऽहं धरातले ॥ प्रीतिपात्रं यतो जातो भवतीनामकृत्रिमम् ॥ १३ ॥ भवतीभिः कृपां कृत्वा रक्षणीयं व्रतं मम ॥ भविष्यामि महाभागाः पतिरप्यन्यजन्मनि ॥ १४ ॥ अष्टाविंशे विशालाक्ष्यो द्वापरेऽस्मिन्धरातले ॥ देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं प्रभविष्यामि सर्वथा ॥ १५ ॥ तदा भवत्यो मद्दाराः प्राप्य जन्म पृथक्पृथक् ॥ भूपतीनां सुता भूत्वा पत्नीभावं गमिष्यथ ॥ १६ ॥ इत्याश्वास्य हरिस्तास्तु प्रतिश्रुत्य परिग्रहम् ॥ व्यसर्जयत्स भगवाञ्जग्मुश्च विगतज्वराः ॥१७॥ एवं विसर्जितास्तेन गताः स्वर्गं तदाऽङ्गनाः ॥ शक्राय कथयामासुः कारणं सकलं पुनः ॥१८॥ आश्रुत्य मघवांस्ताभ्यो वृत्तांतं तस्य विस्तरात् ॥ तुष्टाव तं महात्मानं नारीर्दृष्ट्वा तथोर्वशीः ॥१९॥

देवताओंकी कार्य सिद्धिके निमित्त मैं पृथ्वीतलमें निःसंदेह अवतीर्ण हूंगा ॥ १५ ॥ उस समय तुम भी सब पृथ्वीतलमें राजकन्या रूपसे पृथक् पृथक् जन्म ग्रहण करके हमारे पत्नी भावको प्राप्त होंगी ॥ १६ ॥ नारायणने इस प्रकार भरोसा दे विवाह करना स्वीकार कर उनको बिदा किया ॥ १७ ॥ वे भी मनकी उत्कंठा छोड़कर सुरपुरमें चली गई और इंद्रके निकट जायकर आदिसे अंततक सब वृत्तांत उन्हींने कहा ॥ १८ ॥ सुरपति इंद्र सुरांगनागणोंके मुखसे उन दोनों ऋषियोंका वृत्तांत विस्तार पूर्वक सुनकर और नारायण ऋषिके ऊरुसे उत्पन्न हुई उर्वशी इत्यादि सुंदरियोंको देखकर महात्मा नारायणके गुणकीर्तन करने लगे ॥ १९ ॥

इन्द्रने कहा—अहो मुनिकी क्या आश्चर्य धैर्य शक्ति है! क्या चमत्कारी तपका प्रभाव है! अहो! उन्होंने तपोबलसे उर्वशी इत्यादि इन सब अनुपम सुंदरी गणोंको अपने ऊरु देशसे उत्पन्न किया है ॥ २० ॥ सुरराज इस प्रकार उनके गुणकीर्तन करके निरुद्वेग हुए, इधर धर्मात्मा नारायण भी अपनी तपस्यामें निरत हुए ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र! यह मैंने तुमसे महामुनि नारायणका अद्भुत संपूर्ण वृत्तांत सम्यक् प्रकार वर्णन किया ॥ २२ ॥ हे भरत कुलभूषण! वही नर नारायण भृगु शापके कारण पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये कृष्ण और अर्जुन नामक वीर स्वरूपमें अवतीर्ण हुए थे ॥ २३ ॥ राजाने कहा हे मानद! हे मुने! इस समय कृष्णावतारके चरित्र विस्तार सहित कहकर मेरे मनका संदेह दूर कीजिये ॥ २४ ॥ हे मुनिवर! महाबल हरि और अनन्तने

इन्द्र उवाच ॥ अहो धैर्यं मुने कामं तथैव च तपोबलम् ॥ येनोर्वश्यः स्वतपसा तद्रूपाः प्रकल्पिताः ॥ २० ॥ इति स्तुत्वा प्रसन्नात्मा बभूव सुरराट् ततः ॥ नारायणोऽपि धर्मात्मा तपस्यभिरतोऽभवत् ॥ २१ ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं मुनेर्वृत्तांतमद्भुतम् ॥ नारायणस्य सकलं नरस्य च महामुने ॥ २२ ॥ तौ हि कृष्णार्जुनौ वीरौ भूभारहरणाय च ॥ जातौ तौ भरतश्रेष्ठ भृगोः शापवशादिह ॥२३॥ राजोवाच ॥ कृष्णावतारचरितं विस्तरेण वदस्व मे ॥ संदेहो मम चित्तेऽस्ति तं निवारय मानद ॥ २४ ॥ ययोः पुत्रत्वमापन्नौ हर्यनन्तौ महाबलौ ॥ देवकीवसुदेवौ तौ दुःखभाजौ कथं मुने ॥२५॥ कंसेन निगडे बद्धौ पीडितौ बहुवासरान् ॥ ययोः पुत्रो हरिः साक्षात्तपसा तोषितोऽभवत् ॥२६॥ जातोऽसौ मथुरायां तु गोकुले स च कथं गतः ॥ कंसं हत्वा द्वारवत्यां निवासं कृतवान् कथम् ॥२७॥ पित्रादिसेवितं देशं समृद्धं पावनं किल ॥ त्यक्त्वा देशांतरेऽनार्ये गतवान्स कथं हरिः ॥ २८ ॥ कुलं च द्विजशापेन कथमुत्सादितं हरेः ॥ भारावतारणं कृत्वा वासुदेवः सनातनः ॥ २९ ॥

जिनका पुत्रत्व स्वीकार किया था, वे वसुदेव और देवकी दुःखके भाजन क्यों हुए ॥ २५ ॥ तपस्यासे संतुष्ट होकर साक्षात् भगवान् जनार्दन जिनके पुत्र हुए थे, वे बहुत काल पर्यंत कंसके कारागारमें निगडबद्ध क्यों रहे? इसका क्या तात्पर्य है ॥ २६ ॥ कृष्ण मथुरामें जन्म लेकर गोकुलमें क्यों गये और कंसको मारकर किस कारण समुद्रमध्यवर्तिनी द्वारावती नगरीमें वास किया? ॥ २७ ॥ उनके मातापिता और आत्मीयवर्ग समृद्धि संपन्न जिस समृद्धिसंपन्न देशमें वास करते थे, उसका परित्याग करके दूसरे जघन्य देशांतरमें वास करनेका क्या कारण है? ॥ २८ ॥ किस कारण ब्राह्मणके शापसे यदुपतिका निज—कुलक्षय हुआ? किस प्रकार सनातन वासुदेव पृथ्वीका भार उतार ॥ २९ ॥

देहपरि त्याग पूर्वक स्वर्गमें गये? पापिष्ठ लोगोंके भारसे पृथ्वी व्याकुल हुई थी ॥ ३० ॥ वे पापीगण अमितकर्मा कृष्ण और अर्जुनके हाथसे मारे गये थे किन्तु जिन्होंने हरिकी पत्नियोंको लूटा था उन दुष्टोंको न मारनेका क्या तात्पर्य है? ॥ ३१ ॥ भीष्म, द्रोण, कर्ण नरपति बाह्लीक, विराट्, विकर्ण, धृष्टद्युम्न ॥ ३२ ॥ राजा सोमदत्त इत्यादि प्रधान प्रधान पुरुषोंको मारकर भूमिका भार हरण किया गया, किन्तु तस्कर लोगोंको मारकर उनके भार हरण क्यों न हुआ? ॥ ३३ ॥ पतिव्रता कृष्णकी पत्नियोंने किस कारण अंतमें दुःख पाया? इस विषयको जानकर मेरे मनमें महान् संदेह उत्पन्न हुआ है ॥ ३४ ॥ धर्मात्मा वसुदेवने पुत्रके दुःखसे तापित होकर किस निमित्त प्राण परित्याग किया और किस कारण उनकी अपमृत्यु हुई ॥ ३५ ॥ हे मुनिसत्तम ! पाण्डव

देहं मुमोच तरसा जगाम च दिवं हरिः ॥ पापिष्ठानां च भारेण व्याकुलाऽभूच्च मेदिनी ॥ ३० ॥ ते हता वासुदेवेन पार्थेनामितकर्मणा ॥
लुंठिता यैर्हरेः पत्न्यस्ते कथं न निपातिताः ॥ ३१ ॥ भीष्मो द्रोणस्तथा कर्णो बाह्लीकोऽप्यथ पार्थिवः ॥ वैराटोऽथ विकर्णश्च धृष्टद्युम्नश्च
पार्थिवः ॥ ३२ ॥ सोमदत्तादयः सर्वे निहताः समरे नृप ॥ तेषामुत्तारितो भारश्चौराणां न हृतः कथम् ॥ ३३ ॥ कृष्णपत्न्यः कथं दुःखं
प्राप्तः प्रांते पतिव्रताः ॥ संदेहोऽयं मुनिश्रेष्ठ चित्ते मे परिवर्तते ॥ ३४ ॥ वासुदेवस्तु धार्मात्मा पुत्रदुःखेन तापितः ॥ त्यक्तवान्स कथं
प्राणानपमृत्युं जगाम ह ॥ ३५ ॥ पांडवा धर्मसंयुक्ताः कृष्णे च निरताः सदा ॥ ते कथं दुःखभोक्तारो ह्यभवन्मुनिसत्तम ॥३६॥ द्रौपदी
च महाभागा कथं दुःखस्य भागिनी ॥ वेदीमध्याच्च संजाता लक्ष्म्यंशसंभवा किल ॥३७॥ सभायां च समानीता रजोदोष समन्विता ॥
बालः दुःशासनेनाथ केशग्रहणकर्शिता ॥ ३८ ॥ पीडिता सिंधुराज्ञाऽथ वनमध्यगता सती ॥ तथैव कीचकेनापि पीडिता रुदती भृशम्
॥ ३९ ॥ पुत्राः पंचैव तस्यास्तु निहता द्रौणिना गृहे सुभद्रायाः सुतो युद्धे बाल एव निपातितः ॥ ४० ॥

गण कृष्णनिरत और धर्मज्ञ थे तब उनके इतना दुःख भोगनेका क्या कारण है? ॥३६॥ जो द्रौपदी लक्ष्मीके अंशसे सम्भूत और यज्ञकी वेदीसे उत्पन्न हुई थी, उसने किस कारण इतना दुःख भोगा? ॥ ३७ ॥ उस बालाके रजस्वला होने परभी दुःशासन उसके केश पकड़कर सभास्थलमें क्यों लाया? ॥ ३८ ॥ और किस कारण वनवास कालमें सिंधुराज जयद्रथने उसको अत्यन्त मर्मपीडा दी थी? उस भामिनी पाण्डवगेहिनीके रोदन करनेपर भी किस कारण कीचकने उसको उत्पीड़न और अपमानित किया था? ॥ ३९ ॥ किस कारण उसके गृह-स्थित पांचों पुत्रोंको अश्वत्थामाने मारा था? सुभद्राके बालक पुत्रने युद्धस्थलमें प्राणपरित्याग किया, इसका क्या कारण है? ॥ ४० ॥

कंसराजने किस कारण देवकीके छः बालकोंको मारा था ? किस निमित्त भगवान् हरिने दैवकेअन्यथा करनेमें समर्थ होकर भी उसको न किया ॥ ४१ ॥ क्या आश्चर्य है ? यादवगणोंके प्रति ब्रह्मशाप होकर प्रभासमें उनका निधन, एकबार ही यदुकुलका ध्वंश और उनकी पत्नियोंका लूटना इन सब भारी विषयोंमें भी क्या उन्होंने दैवकी उपेक्षा की थी ? ॥ ४२ ॥ यदि वे सबके ईश्वर और स्वयं नारायण थे तो उन्होंने सर्वदा उग्रसेनके प्रति दासके समान व्यवहार क्यों किया ? ॥ ४३ ॥ हे महाभाग ! उन नारायण मुनिके प्रति यह संदेह होता है कि, उनका व्यवहार निरंतरही साधारण जीवके समान था ॥ ४४ ॥ उनके हर्ष शोकादि सब भाव किस कारण साधारण मनुष्योंके समान थे ! यदि वह नारायण हरिपरमेश्वर थे ! तो क्यों उनका भाव ऐश्वरिक न होकर साधारण जन्तुके समान हुआ था ॥ ४५ ॥ अतएव लोकातीत प्रभाव हरिने पृथ्वीतलमें जो जो कर्म किये थे, आप वे सब और उनकी दिव्य लीलाभी विस्तार सहित कहिये

तथाच देवकोपुत्राः षट् कंसेन निषूदिताः ॥ समर्थेनापि हरिणा दैवं न कृतमन्यथा ॥४१॥ यादवानां तथा शापः प्रभासे निधनं पुनः ॥ कुलक्षयस्तथा तीव्रस्तत्पत्नीनां च लुंठनम् ॥ ४२ ॥ विष्णुना चेश्वरेणापि साक्षान्नारायणेन च ॥ उग्रसेनस्य सेवा वै दासवत्स ततं कृता ॥ ४३ ॥ संदेहोऽयं महाभाग तत्र नारायणे मुनौ ॥ सर्वजंतुसमानत्वं व्यवहारे निरंतरम् ॥ ४४ ॥ हर्षशोकादयो भावाः सर्वेषां सदृशाः कथम् ॥ ईश्वरस्य हरेर्जाता कथमप्यन्यथा गतिः ॥ ४५ ॥ तस्माद्विस्तरतो ब्रूहि कृष्णस्य चरितं महत् ॥ अलौकिकेन हरिणा कृतं कर्म महीतले ॥ ४६ ॥ हता आयुःक्षये दैत्याः क्लेशेन महता पुनः ॥ क्वैश्वर्यशक्तिः प्रथिता हरिणा मुनिसत्तम ॥ ४७ ॥ रुक्मिणीहरणे नूनं गृहीत्वाऽथ पलायनम् ॥ कृतं हि वासुदेवेन चौरवच्चरितं तदा ॥ ४८ ॥ मथुरामंडलं त्यक्त्वा समृद्धं कुलसंमतम् ॥ जरासंधभयात्तेन द्वारकागमनं कृतम् ॥ ४९ ॥ तदा केनाऽपि न ज्ञातो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ किंचित्प्रब्रूहि मे ब्रह्मन्कारणं व्रज गोपनम् ॥ ५० ॥

॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तम ! आयुके क्षय होनेपर ही जीवका जीवन नष्ट होता है तो अत्यन्त कष्ट स्वीकार करके दैत्योंके मारनेमें ईश्वर हरिका क्या ऐश्वर्य प्रकाशित हुआ ? ॥ ४७ ॥ रुक्मिणीके हरण कालमें भगवान् रुक्मिणीको ग्रहण कर भागे थे तो उनका वह आचरण चोरके समान हुआ था, इसमें संदेह नहीं ॥ ४८ ॥ जरासंधके भयसे महासमृद्धि संपन्न कुलसम्मत मथुरामंडल परित्याग करके उनके द्वारकामें भागनेका उद्देश्य क्या था ? ॥ ४९ ॥ जब कि उन्होंने यह सब कार्य किये. तब क्या उनको कोई ईश्वर भगवान् हरि जान सकता है ? हे ब्रह्मन् ! यदि वह स्वयं भगवान् होते तो व्रजमें छिपे हुए क्यों रहते ? इसका क्या कारणहै ? सो आप मुझसे कहिये ॥ ५० ॥

दे. भा. हे मुने ! वह सब और अन्यान्य अनेक संदेह मेरे हृदयमें सदा विद्यमान रहते हैं, आप द्विजोत्तम सर्वज्ञ और महाभाग हैं, आपके निकट प्रार्थना है कि,
॥५०॥ मेरे यह सब संदेह दूर कीजिये ॥ ५१ ॥ हे तपोधन ! मेरे मनमें और एक अत्यन्त गोपनीय संदेह वर्तमान रहता है, वह किसीसे दूर नहीं होता । हे मुनिवर !
पांचालीके जो पांच पति हुए थे, वे क्या लोकसमाजमें घृणाकर और लज्जाजनक नहीं हैं ॥ ५२ ॥ पंडितगण सदाचारको ही धर्मका प्रमाण कहकर निर्देश
करते हैं, तब उन पांडवगणोंने सम्यक् प्रकारसे समर्थ होकर भी किस कारण पशुधर्मका आचरण किया था ? ॥ ५३ ॥ पृथ्वीतलमें देवरूपसे वासकर भीष्मने
क्या किया ? मैं आपसे पूँछता हूँ कि, गोलक दो पुत्र उत्पन्न करके वंशकी रक्षा करना क्या उनके सदृश कार्य हुआ है ? ॥ ॥ ५४ ॥ मुनियोंने "जिस किसी

एते चान्ये च बहवः संदेहा वासवीसुत ॥ नाशयाऽद्य महाभाग सर्वज्ञोऽसि द्विजोत्तम ॥ ५१ ॥ गोप्यस्तथैकः संदेहो हृदयान्न निवर्तते ॥
पांचाल्याः पंचभर्तृत्वं लोके किं न जुगुप्सितम् ॥५२॥ सदाचारं प्रमाणं हि प्रवदंति मनीषिणः ॥ पशुधर्मः कथं तैस्तु समर्थैरपि संश्रितः
॥ ५३ ॥ भीष्मेणापि कृतं किं वा देवरूपेण भूतले ॥ गोलकौ तौ समुत्पाद्य यत्तुवंशस्य रक्षणम् ॥५४॥ धिग्धर्मनिर्णयः कामं मुनिभिः
परिदर्शितः ॥ येनकेनाप्युपायेन पुत्रोत्पादनलक्षणः ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥
व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कृष्णस्य चरितं महत् ॥ अवतारकारणं चैव देव्या श्चरितमद्भुतम् ॥१॥ धरैकदा भराक्रांता रुदती
चातिकर्शिता ॥ गोरूपधारिणी दीना भीताऽगच्छत्त्रिविष्टपम् ॥ २ ॥ पृष्टा शक्रेण किंतेऽद्य वर्तते भयमित्यथ ॥ केन वै पीडिताऽसि त्वं
किं ते दुःखं वसुंधरे ॥ ३ ॥

उपायसे हो पुत्र उत्पन्न करै" इस प्रकार व्यवस्था देकर धर्मका निर्णय किया है उनके उस धर्म निर्णयको धिक्कार है ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते
महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्यासजी बोले, हे राजन् ! कृष्णके विस्तृत चरित्र और अवतारकी कथा तथा देवी भुवनेश्वरीके
भा. टी. च. विचित्र चरित्रादिका विषय वर्णन करता हूं, सुनो ॥ १ ॥ किसी समयमें पृथ्वी दुष्ट राजाओंके भारसे आक्रांत होकर अत्यंत पीडित और भीत हुई थी तब
अ. १८ वह गौका रूप धारण कर रोदन करती करती दीन मनसे देवलोकमें गई ॥ २ ॥ देवराजने उससे पूँछा, हे वसुंधरे ? इस समय तुम्हारे भयका क्या कारण है ?
किसने तुमको पीडित किया है तुमको क्या दुःख उपस्थित हुआ है ? यह सब मुझसे कहो ॥ ३ ॥

पृथ्वीने इंद्रका यह वचन सुनकर कहा, हे मानद ! आप यदि मेरे दुःख और पीड़ाका कारण पूँछते हैं, तो मैं आपसे सब बात कहती हूं. सुनिये मैं इस समय अत्यंत भारसे दबी जाती हूं ॥ ४ ॥ घोर पापी मगधराज पृथ्वीम राजत्व करता है इसी प्रकार चेदीपति शिशुपाल, दुर्द्दान्त काशीराज ॥ ५ ॥ रूक्मी, बलवान् कंस, महाबल नरक, सौभपतिशाल्व, क्रूरमत केशी, धेनुक और वत्सक ॥ ६ ॥ ये सभी राज्यपदमें प्रतिष्ठित हुए हैं, हे देवराज ! अधिक क्या कहूं ? यह सभी राजा लोग धर्महीन परस्पर विरोधी मदोन्मत्त और पापाचारमें रत हैं. यह काल स्वरूप राजा होकर ॥ ७ ॥ मुझको निरंतर पीडित करते हैं. मैं उनका भार वहन नहीं कर सकती इस समय कहां जाऊं ! क्या करूं ! यह महती चिंता मेरे अन्तःकरणमें उदित रहकर मुझको निरंतर ही पीडा देती है

तच्छ्रुत्वेला तदोवाच शृणु देवेश मेऽखिलम् ॥ दुःखं पृच्छसि यत्त्वं मे भाराक्रांताऽस्मि मानद ॥४॥ जरासंधे महापापी मागधेषु पतिर्मम ॥ शिशुपालस्तथा चैद्यः काशिराजः प्रतापवान् ॥ ५ ॥ रुक्मी च बलवान्कंसो नरकश्च महाबलः ॥ शाल्वः सौभपतिः क्रूरः केशी धेनुक वत्सकौ ॥ ६ ॥ सर्वधर्मविहीनाश्च परस्परविरोधिनः ॥ पापाचारा मदोन्मत्ताः कालरूपाश्च पार्थिवाः ॥ ७ ॥ तैरहं पीडिता शक्र भाराक्रांताऽक्षमा विभो ॥ किं करोमि क्व गच्छामि चिंता मे महती स्थिता ॥८॥ पीडिताहं वराहेण विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ शक्र जानीहि हरिणा दुःखाद्दुःखतरं गता ॥९॥ यतोऽहं दुष्टदैत्येन कश्यपस्यात्मजेन वै ॥ हृताऽहं हिरण्याक्षेण मग्ना तस्मिन्महार्णवे ॥१०॥ तदा सूकररूपेण विष्णुना निहतोऽप्यसौ ॥ उद्धृताऽहं वराहेण स्थापिता हि स्थिरा कृता ॥ ११ ॥ नोचेद्रसातले स्वस्था स्थिता स्यांसुखशायिनी ॥ न शक्ताऽस्म्यद्य देवेश भारं वोढुं दुरात्मनाम् ॥ १२ ॥ अग्रे दुष्टः समायाति ह्यष्टाविंशस्तथा कलिः ॥ तदाऽहं पीडिता शक्र गंताऽस्म्याशु रसातलम् ॥ १३ ॥

॥ ८ ॥ हे वासव ! कहूं क्या प्रभावशाली वाराहरूपी विष्णु ही मेरे कष्टके कारण हुए हैं. हे शक्र ! इससेही मैं दुःखके ऊपर दुःखमें गिरी हूं ॥ ९ ॥ क्योंकि जब कश्यपके पुत्र दुष्ट दैत्य हिरण्याक्षने मुझको हरणकर महार्णवमें डुबोकर रक्खा था ॥ १० ॥ उसकाल विष्णुने वाराहरूप धारणपूर्वक उसको मार मेरा उद्धार कर स्थिर भावसे रक्षा की थी ॥ ११ ॥ वे यदि उस समय मेरा उद्धार न करते तो मैं रसातलके गर्भमें सुखपूर्वक काल व्यतीत करती । हे देवेन्द्र ! मैं इस समय उक्त दुरात्माओंका भारवहन करनेमें समर्थ नहीं होती हूं ॥ १२ ॥ हे सुरेंद्र ! शीघ्र ही सामने दुष्ट अट्ठाईसवाँ कलियुग आता है उसका जिस प्रकार प्रभाव है उससे बोध होता है कि, उसी समय मुझको पीडित होकर रसातलमें जाना पड़ेगा ॥ १३ ॥

अतएव हे देवेश्वर ! मैं आपके चरण कमलमें प्रणाम करती हूं आप मेरा भार हरण करके इस अपार दुःखके समुद्रसे मेरी रक्षा कीजिये ॥१४॥ सुरपति
इंद्रने कहा, हे पृथ्वी ! मैं तुम्हारा क्या करूं ? तुम ब्रह्माजीके निकट जाय उनकी शरण ग्रहण करो मैं भी वहां जाता हूं उनसे ही तुम्हारा दुःख दूर होगा
॥ १५ ॥ तब पृथ्वी इन्द्रका वचन सुनकर तत्काल ब्रह्मलोकमें गई और इधर इन्द्र भी सब देवताओंके सहित पृथ्वीके पीछे पीछे ब्रह्मलोकमें उपस्थित हुए
॥ १६ ॥ हे महाराज ! पितामह ब्रह्माजीने पृथ्वीको आती हुई देख ध्यानयोगसे उसके आनेका कारण जान लिया और कहा ॥ १७ ॥ हे कल्याणि ! तुम
क्यों रोती हो ? तुमको इस समय क्या दुःख हुआ है ? किस दुराचारीने तुमको पीडित किया है ? कहो ॥ १८ ॥ पृथ्वी बोली, हे जगतीपते ! दुष्ट कलि

तस्मात्त्वं देवदेवेश दुःखरूपार्णवस्य च ॥ पारदो भव भारं मे हर पादौ नमामि ते ॥ १४ ॥ इंद्र उवाच ॥ इले किं ते करोम्यद्य ब्रह्माणं
शरणं व्रज ॥ अहं तत्राऽऽगमिष्यामि स ते दुःखं हरिष्यति ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा त्वरिता पृथ्वी ब्रह्मलोकं गता तदा ॥ शक्रोपि पृष्ठतः
प्राप्तः सर्वदेवपुरःसरः ॥१६॥ सुरभीमागतां तत्र दृष्ट्वोवाच प्रजापतिः ॥ महीं ज्ञात्वा महाराज ध्यानेन समुपस्थिताम् ॥ १७ ॥ कस्माद्रुदसि
कल्याणि किं ते दुःखं वदाधुना ॥ पीडिताऽसि च केन त्वं पापाचारेण भूर्वद ॥ १८ ॥ धरोवाच ॥ कलि रायाति दुष्टोऽयं बिभेमि तद्भयादहम्
पापाचाराः प्रजास्तत्र भविष्यंति जगत्पते ॥ १९ ॥ राजानश्च दुराचाराः परस्पर विरोधिनः ॥ चौरकर्मरताः सर्वे राक्षसाः पूर्णवैरिणः
॥ २० ॥ तान्हत्वा नृपतीन्भारं हर मेऽद्य पितामह ॥ पीडिताऽस्मि महाराज सैन्यभारेण भूभृताम् ॥२१॥ ब्रह्मोवाच ॥ नाहं शक्तस्तथा
देवि भारावतरणे तव ॥ गच्छावः सदनं विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ॥ २२ ॥ स ते भारापनोदं वै करिष्यति जनार्दनः ॥ पूर्वं मयाऽपि ते
कार्यं चिंतितं सुविचार्य च ॥ २३ ॥

सम्मुख ही आ रहा है इसके प्रभावमें सब प्रजा घोर पापाचारी होगी, अतएव मैं कलिके भयसे अत्यन्त शंकित हुई हूं ॥ १९ ॥ इस कलिके प्रारम्भमें
राजरूपसे अवतीर्ण पूर्व वैरी असुरगण अत्यन्त दुराचारी, परस्पर विरोधी, और चोरीके कार्यमें चतुर हैं. इसमें संदेह नहीं ॥ २० ॥ हे पितामह ! इस समय
इन दुर्वृत्त राजाओंको मारकर मेरा भार हरण कीजिये हे महाप्रभो ! मैं उन राजाओंकी सेनाके भारसे अत्यंत पीडित हुई हूं ॥ २१ ॥ ब्रह्माजीने कहा, हे
देवि इंद्रके समान मैं भी तुम्हारा भार हरण करनेमें समर्थ नहीं हूं चलो हम दोनों जने चक्रधारी विष्णुके पास चलें ॥२२॥ वह जनार्दन ही तुम्हारा भार
हरण करेंगे मैंने प्रथम ही चिंता करके तुम्हारा कार्य विचार रक्खा है ॥ २३ ॥

सो जनार्दनके निकट गमन करना चाहिये व्यासजी बोले, इस प्रकार वे कहकर वेदकर्त्ता ब्रह्माजी पृथ्वी और देवताओंको आगे कर ॥ २४ ॥ अपने वाहन हंसपर चढ विष्णुके समीप गये और भक्तिभाव सहित वेदवाक्य द्वारा उन देवदेव जनार्दनका स्तव करने लगे ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले, आप सहस्रशीर्षा अर्थात् असंख्य मस्तक, आप ही सहस्राक्ष अर्थात् असंख्यनेत्र , आप ही सहस्रपात् अर्थात् असंख्य चरण और आप ही वेदपुरुष देवदेव तथा सनातन हैं ॥ २६ ॥ हे विभो ! जो अतीत हैं जो भविष्यत् और वर्त्तमान हैं वह सब आपही हैं ! हे रमापते ! आपने ही मुझको अमरत्व प्रदान किया है ॥२७॥ आपही इस जगत्के करनेवाले पालनेवाले और संहार करनेवाले हैं आपही जगत्की एकमात्र गति और ईश्वर हैं, आपसे जो यह सब महिमा विद्यमान है सो त्रिभुवनमें कौन नहीं जानता ? ॥ २८ ॥ श्रीव्यासजी बोले, हे महाराज ! ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तवन करनेपर गरुडध्वज विष्णु प्रसन्न हुए और उन्होंने

तत्र गच्छ सुरश्रेष्ठ यत्र देवो जनार्दनः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा वेद कर्ताऽसौ पुरस्कृत्य सुरांश्च गाम् ॥ २४ ॥ जगाम विष्णुसदनं हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ तुष्टाव वेदवाक्यैश्च भक्तिप्रवणमानसः ॥२५॥ ब्रह्मोवाच ॥ सहस्रशीर्षा त्वमसि सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ त्वं वेदपुरुषः पूर्वं देवदेवः सनातनः ॥ २६ ॥ भूतपूर्वं भविष्यच्च वर्तमानं च यद्विभो ॥ अमरत्वं त्वया दत्तमस्माकं च रमापते ॥२७॥ एतावान्महिमा तेऽस्ति को न वेत्ति जगत्त्रये ॥ त्वं कर्ताऽप्यविता हंता त्वं सर्वगतिरीश्वरः ॥ २८ ॥ व्यास उवाच ॥ इतीडितः प्रभुर्विष्णुः प्रसन्नो गरुड ध्वजः ॥ दर्शनं च ददौ तेभ्यो ब्रह्मादिभ्योऽमलाशयः ॥ २९ ॥ पप्रच्छ स्वागतं देवान्प्रसन्नवदनो हरिः ॥ ततस्त्वागमने तेषां कारणं च सविस्तरम् ॥ ३० ॥ तमुवाचाब्जजो नत्वा धरादुःखं च संस्मरन् ॥ भारावतरणं विष्णो कर्तव्यं ते जनार्दन ॥ ३१ ॥ भुवि धृत्वाऽवतारं त्वं द्वापरान्ते समागते ॥ हत्वा दुष्टान्नृपानुर्व्या हर भारं दयानिधे ॥३२॥ विष्णुरुवाच ॥ नाऽहं स्वतंत्र एवाऽत्र न ब्रह्मा न शिवस्तथा ॥ नेन्द्रोऽग्निर्न यमस्त्वष्टा न सूर्यो वरुणस्तथा ॥ ३३ ॥

उन ब्रह्मादि देवताओंके सामने प्रगट होकर उनको दर्शन दिया ॥२९॥ इसके उपरांत भगवान्ने उनका स्वागत करके उनके आनेका कारण सम्यक् प्रकारसे पूँछा ॥ ३० ॥ तब ब्रह्माजीने उनको प्रणाम करके धरणीके समस्त दुःखका कारण स्मरण पूर्वक कहा, हे प्रभो ! इस समय आपको पृथ्वीका भार हरण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे दयानिधे ! द्वापरयुगका शेषभाग समागत होनेपर आप पृथ्वीतलमें अवतीर्ण हो, दुष्टराजाओंको मारकर पृथ्वीका भार हरण कीजिये ॥ ३२ ॥ विष्णुने कहा मैं इस विषयम स्वाधीन नहीं हूं. केवल मैं ही क्या ? ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, यम विश्वकर्मा, सूर्य, और वरुण इत्यादि देवताओंमें भी कोई स्वाधीन नहीं है ॥ ३३ ॥

यह सब स्थावरजंगमात्मक जगत् योग मायाके वशीभूत रहता है और ब्रह्मा दिस्तम्बपर्यन्त सभी उनके गुण सूत्रमें ग्रथित रहते हैं ॥ ३४ ॥ हे सुव्रत ! वही हितकारिणी इच्छामयी अपनी इच्छासे जो करनेकी अभिलाषा करें वही कर सकती हैं हम सबको ही उनके वशीभूत जानो ॥३५॥ तुम मनमें विचार करके देखो, यदि मैं स्वाधीन होता तो क्यों महार्णवमें वास करके मत्स्य और कच्छप देह धारण करता ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन् ! तिर्यग्योनिमें संभोग, कीर्ति, सुख क्या है ? क्षुद्रयोनिमें जन्म ग्रहण करके मुझको क्या पुण्य वा फलकी प्राप्ति है ॥ ३७ ॥ किस कारण मैं सूकर देहधारी होता ? क्यों नृसिंहरूप और वामन देह धारण करता ? किस कारण जमदग्निका पुत्र होकर जन्म ग्रहण करता ? ॥ ३८ ॥ भूतलमें क्यों नृशंस कर्म करके क्षत्रियोंके रुधिरसे कुंड पूर्ण

योगमायावशे सर्वमिदं स्थावरजंगमम् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं ग्रथितं गुणसूत्रतः ॥ ३४ ॥ यथा सा स्वेच्छया पूर्वं कर्तुमिच्छति सुव्रत ॥ तथा करोति सुहिता वयं सर्वेऽपि तद्वशाः ॥ ३५ ॥ यद्यहं स्यां स्वतंत्रो वै चिंतयंतु धिया किल ॥ कुतोऽभवन्मत्स्यवपुः कच्छपो वा महार्णवे ॥ ३६ ॥ तिर्यग्योनिषु को भोगः का कीर्तिः किं सुखं पुनः ॥ किं पुण्यंकिं फलं तत्र क्षुद्रयोनिगतस्य मे ॥३७॥ कोलो वाऽथ नृसिंहो वा वामनो वाऽभवं कुतः ॥ जमदग्निसुतः कस्मात्संभवेयं पितामह ॥ ३८ ॥ नृशंसं वा कथं कर्म कृतवानस्मि भूतले ॥ क्षतजैस्तु ह्रदान्सर्वान्पूरयेयं कथं पुनः ॥ ३९ ॥ तत्कथं जमदग्नेश्च पुत्रो भूत्वाद्विजोत्तमः क्षत्रियान्हतवानादौ निर्दयो गर्भगानपि ॥ ४० ॥ रामो भूत्वाऽथ देवेंद्र प्राविशद्दंडकं वनम् ॥ पदातिश्चीरवासाश्च जटावल्कलवान्पुनः ॥ ४१ ॥ असहायो ह्यापथेयो भीषणे निर्जने वने ॥ कुर्वन्ना खेटकं तत्र व्यचरं विगतत्रपः ॥ ४२ ॥ न ज्ञातवान्मृगं हैमं मायया पिहितस्तद उटजे जानकीं त्यक्त्वा निर्गतस्तत्पदानुगः ॥ ४३ ॥

करता ॥ ३९ ॥ विशेष करके ऐसे महात्माका पुत्र और द्विजोत्तम होकर भी क्यों ऐसा नृशंस कार्य करता ? मैंने निर्दयी होकर क्षत्रियोंका तथा विशेष कर उनकी गर्भस्थित संतानका संहार किया है, यदि मैं स्वाधीन होता तो क्यों ये सबका कठोर और बीभत्स कार्य करता ?॥ ४० ॥ हे देवेन्द्र ! देखो, मैंने रामावतारके समय दण्डकवनमें प्रवेशकर चीर, जटा और वल्कल धारण पूर्वक ॥ ४१ ॥ असहाय और पाथेय रहित होकर पयादेही भयंकर निर्जन वनमें निर्लज्जके समान पशुहननादिरूप व्याधका कार्य करके निरंतर भ्रमण किया है ॥ ४२ ॥ मैं मायासे मोहित होकर सुवर्णके मृगका स्वरूप नहीं जान सका, इस कारण पर्णशालामें जानकीको छोड़, वहांसे निकलकर उस मृगके पदका अनुसरण किया ॥ ४३ ॥

मेरे बहुत बार समझानेपर भी लक्ष्मणने प्रकृतिक गुणसे मोहित होकर जानकीको परित्याग कर मेरा अनुसरण किया था ॥ ४४ ॥ तब कपट मूर्ति राक्षस राज रावणने भिक्षुकका वेश धारणकर शोकसे क्षीण हुई जनकतनयाको बलपूर्वक हरण किया था ॥४५॥ मैं प्रियाके विरहजनित दुःखसे अत्यन्त कातर हो वन वनमें रुदन करता फिरा हूं और कार्यके वशीभूत हो वानरराज सुग्रीवसे मित्रता की थी ॥ ४६ ॥ मैंने अन्यायपूर्वक वानरराज वालीको मारकर उसको शापसे छुड़ाया है फिर वानरोंको सहाय करके लंकामें गया हूं ॥ ४७ ॥ जिस समय अनुज लक्ष्मण और मैं दोनों जने नागपाशमें बँध और चेतना रहित होकर गिर गये, उस काल वानरगण अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुए थे ॥ ४८ ॥ फिर गरुडने आकर हम दोनों भाइयोंको नागपाशसे छुड़ाया, तब

लक्ष्मणोऽपि च तां त्यक्त्वा निर्गतो मत्पदानुगः ॥ वारितोऽपि मयाऽत्यर्थं मोहितः प्राकृतैर्गुणैः ॥ ४४ ॥ भिक्षुरूपं ततः कृत्वा रावणः कपटाकृतिः ॥ जहार तरसा रक्षो जानकीं शोककर्शिताम् ॥ ४५ ॥ दुःखार्तेन मया तत्र रुदितं च वनेवने ॥ सुग्रीवेण मित्रत्वं कृतं कार्यं वशान्मया ॥ ४६ ॥ अन्यायेन हतो वाली शापाच्चैव निवारितः ॥ सहायान्वानरान्कृत्वा लंकायां चलितः पुनः ॥ ४७ ॥ बद्धोऽहं नागपाशैश्च लक्ष्मणश्चममानुजः ॥ विसंज्ञौ पतितौ दृष्ट्वा वानरा विस्मयं गताः ॥४८॥ गरुडेना तदाऽऽगत्य मोचितौ भ्रातरौ किल ॥ चिंता मे महती जाता दैवं किं वा करिष्यति ॥४९॥ हृतं राज्यं वने वासो मृतस्तातः प्रिया हृता ॥ युद्धं कष्टं ददात्येवमग्रे किं वा करिष्यति ॥ ५० ॥ प्रथमं तु महादुःखमराज्यस्य वनाश्रयम् ॥ राजपुत्र्याऽन्वितस्यैव धनहीनस्य मे सुराः ॥ ५१ ॥ वराटिकाऽपि पित्रा ये न दत्ता वननिर्गमे ॥ पदातिरसहायोऽहं धनहीनश्च निर्गतः ॥ ५२ ॥ चतुर्दशैव वर्षाणि नीतानि च तदा मया ॥ क्षात्रं धर्मं परित्यज्य व्याधवृत्त्या महावने ॥ ५३ ॥

मैं वह चिंता करने लगा कि, नहीं जानता दैवने हमारे अदृष्टमें किस अमंगलकी संयोजना की है ॥ ४९ ॥ मेरा राज्य हरण हुआ, वनमें वास हुआ, पिता परलोक गये जानकी हरी गई, इस समय दारुणयुद्धमें अतिशय क्लेश होता है, नहीं जानता दैव मुझको और भी किस घोर कष्टमें निपतित करेगा? ॥ ५० ॥ हे देवताओ ! इसकी अपेक्षा अधिक दुःखका दूसरा क्या विषय है कि, मैं प्रथमही राज्य हीन और वनगमन पूर्वक राजपुत्री सीताके सहित वनाश्रयी हूं ॥ ५१ ॥ वन गमन कालमें पिताने मुझको एक वराटिका भी नहीं दी, मैं धनहीन और असहाय होकर पैरोंही अयोध्यासे निकला था ॥ ५२॥ मैंने महावनमें जाय अन्य उपाय न देख क्षत्रिय धर्म छोड़ा व्याधवृत्ति अवलम्बन कर चौदह वर्ष बिताये थे ॥ ५३ ॥

दे. भा. ॥५३॥

इसके उपरान्त देवके अनुग्रहसेही उस महाअसुर रावणको मारकर युद्धमें जयी हुआ और सीताको पुनर्वार अयोध्यामें लाया ॥ ५४ ॥ वहां कोशलनिवासी प्रजा शासनकर्त्ता होकर कितने ही वर्ष संसारका सुख अनुभव करके पूर्ण राज्यको प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥ पूर्वकालमें सीताहरणादि व्यपार संघटित हुआ था, इसके पीछे ही राज्य प्राप्त हुआ. फिर मनुष्यगण सीताको निंदित कहकर अपमान करने लगे तब मैंने अत्यन्त भीत होकर उसको वनवास करनेको त्याग दिया ॥ ५६ ॥ उस समय मुझको दूसरी बार पत्नीके विरहका कठिन दुःख भोगना पड़ा था. इसके उपरांत धरात्मजा धरातल भेद करके पातालमें चली गई ॥ ५७ ॥ हे देवताओ! रामावतारमें मैंने भी जब पराधीन होकर निरंतर दुःख भोगा है. तब फिर दूसरा कौन पुरुष स्वाधीन है सो कहो ॥ ५८ ॥

दैवाद्युद्धे जयः प्राप्तो निहतोऽसौ महासुरः ॥ आनीता च पुनः सीता प्राप्ताऽयोध्या मया तथा ॥ ५४ ॥ वर्षाणि कतिचित्तत्र सुखं संसार संभवम् ॥ प्राप्तं राज्यं च संपूर्णं कोसलानधितिष्ठता ॥ ५५ ॥ पुरैवं वर्तमानेन प्राप्तराज्येनवै तदा ॥ लोकापवादभीतेन त्यक्ता सीता वने मया ॥ ५६ ॥ कांताविरहजं दुःखं पुनः प्राप्तं दुरासदम् ॥ पातालं सा गता पश्चाद्धरां भित्त्वा धरात्मजा ॥ ५७॥एवं रामावतारेऽपि दुःखं प्राप्तं निरंतरम् ॥ परतंत्रेण मे नूनं स्वतंत्रः को भवेत्तदा ॥ ५८ ॥ पश्चात्कालवशात्प्राप्तः स्वर्गो मे भ्रातृभिः सह ॥ परतंत्रस्य का वार्ता वक्तव्या विबुधेन वै ॥ ५९ ॥ परतंत्रोऽस्म्यहं नूनं पद्मयोने निशामय ॥ तथा त्वमपि रुद्रश्च सर्वे चान्ये सुरोत्तमाः ॥६०॥ इति श्रीदे० महापुराणे चतुर्थस्कन्धेऽष्टादशोध्यायः ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनराह प्रजापतिम् ॥ यन्मायामोहितः सर्व स्तत्त्वं जनाति नो जनः ॥ १ ॥ वयं मायावृताः कामं न स्मरामो जगद्गुरुम् ॥ परमं पुरुषं शांतं सच्चिदानंदमव्ययम् ॥ २ ॥

तदुपरान्त कालके वश हो भ्राताओंके सहित मैं स्वर्गको गया था. जो हो पराधीन पुरुषके पक्षमें कितनी दुर्घटना होती है उसके कहनेमें बुद्धिमान् पण्डितगण ही समर्थ होते हैं ॥ ५९ ॥ हे पद्मासन! तुम मेरा वचन सुनो मैं निःसंदेह पराधीन हूं और केवल मैं ही क्या इसी प्रकार तुम और रुद्र तथा संपूर्ण सुरोत्तम गण भी पराधीन हैं ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंन्धे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! भगवान विष्णु फिर प्रजापति ब्रह्माजीसे कहने लगे हे ब्रह्मन्! सभी उन भगवती महामायाके मायासे मोहित होकर परमतत्वको नहीं जान सकते ॥ १ ॥ मैं भी मायाद्वारा मोहित होनेसे शान्त परमपुरुष जगद्गुरु सच्चिदानंदमय अव्यय परमात्माको किसी प्रकार नहीं जान सकता ॥ २ ॥

भा. टी. च.

अ. १९

हे विधाता ! मैं ही विष्णु, मैं ही ब्रह्मा, मैं ही रुद्र, इस प्रकारके गर्वमें मोहित रहकर मैं सनातन परमवस्तुको नहीं पहँचान सकता ॥ ३ ॥ जैसे काठकी पुतली इन्द्रजालिकके वशमें रहकर उसकी इच्छानुसार नृत्य इत्यादि करती हैं, मैं भी इसी प्रकार परमात्माकी मायासे मोहित होकर पराधीन भावमें सदाही भ्रमण करता हूं ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! कल्पादिमें मैंने तुमने तथा महादेवजीने मंदारवृक्ष शोभित रासक्रीडाके स्थानस्वरूप मणिद्वीप तथा देवताओंके समाजमें परमात्माकी उस अनिर्वचनीय मूर्तिका दर्शन किया था ॥ ५ ॥ मैंने फिर एकवार और भी सुधार्णवमें उस अद्भुतमूर्तिका दर्शन किया. किंतु आश्चर्यका विषय यही है कि, जिस समयतक उसका दर्शन नहीं किया था. तबतक उसका विषय कुछ भी नहीं सुना ॥ ६ ॥ इससे हे देवताओ ! अब तुम लोग परमात्माकी

अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शिवोऽहमिति मोहिताः ॥ न जानीमो वयं धातः परं वस्तु सनातनम् ॥३॥ यन्मायामोहितश्चाहं सदा वर्ते परात्मनः ॥ परवान्दारुपांचाली मायिकस्य यथा वशे ॥४॥ भवताऽपि तथा दृष्टा विभूतिस्तस्य चाद्भुता ॥ कल्पादौ भवयुक्तेन मयाऽपि च सुधार्णवे ॥ ५ ॥ मणिद्वीपेऽथ मंदारविटपे रासमंडले ॥ समाजे तत्र सा दृष्टा श्रुत्वा न वचसाऽपि च ॥ ६ ॥ तस्मात्तां परमां शक्तिं स्मरंत्वद्य सुराः शिवाम् ॥ सर्वकामप्रदां मायामाद्यां शक्तिं परात्मनः ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता हरिणा देवा ब्रह्माद्या भुवनेश्वरीम् ॥ सस्मरुर्मनसा देवीं योगमायां सनातनीम् ॥ ८ ॥ स्मृतमात्रा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ पाशांकुशवराभीतिधरा देवी जपारुणा ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिता देवास्तुष्टुवुस्तां सुदर्शनाम् ॥ ९ ॥ देवा ऊचुः ॥ ऊर्णनाभाद्यथा तंतुर्विस्फुलिंगा विभावसोः ॥ तथा जगद्यदेतस्या निर्गतं तां नता वयम् ॥ १० ॥

आद्यशक्ति शिवरूपिणी शक्तिका स्मरण करो, वही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगी ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले, हे महाराज ! भगवान् हरिके इस प्रकार. कहनेपर ब्रह्मादि देवताओंने उन सनातनी योगमाया भुवनेश्वरी देवीको मनहीमनमें स्मरण किया ॥८॥ स्मरण करतेही रक्तजपा (गुडहरफूल) के समान अरुणवर्णा देवी भुवनेश्वरी पाश अंकुश वर और अभय धारण किये प्रत्यक्षरूपसे प्रगट हुई तब देवतालोग देवीका दर्शन करके उनका स्तव करने लगे ॥९॥ जिस प्रकार ऊर्णनाभसे तंतु और विभावसुअग्निसे विस्फुलिंग (चिनगारे) निकलते हैं, इसी प्रकार जिनसे यह संपूर्ण जगत् निकला है हम भक्तिनम्रहृदयसे उनको प्रणाम करते हैं ॥ १० ॥

जिनकी मायाशक्तिके प्रभावसे यह चराचर जगन्मण्डल विरचित हुआ है उन्ही चित्स्वरूप करुणार्णवरूपिणी भुवनेश्वरी देवीको हम नमस्कार करते हैं ॥११॥ जिनके स्वरूपका तत्व न जाननेसे ही यह जगत् प्रतिभात होता है और जिनके स्वरूपका तत्त्व जाननेसेही यह संपूर्ण जगत् मिथ्याभ्रमसे नष्ट होता है उन्हीं संवित् स्वरूपिणी देवीको हम स्मरण करते हैं वह भी हमको इस स्मरण और ध्यानमें नियोग करें ॥ १२ ॥ हम उन्हीं महालक्ष्मीको जाननेकी वासना करते हैं और उन्हीं शक्तिस्वरूपिणीका ध्यान करते हैं वह देवी कृपा करके हमको अपने ध्यानादिविषयमें प्रेरण करे ॥ १३ ॥ हे संपूर्ण दुःखविनाशिनी जननि ! हम आपको नमस्कार करते हैं आप प्रसन्न हूजिये। हे करुणामयी ! आप यह कार्य संपादन करके हमारा कल्याण कीजिये. हे विश्वेश्वरि ! आप असुरोंको मार

यन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम् ॥ तां चिते भुवनाधीशां स्मरामः करुणार्णवाम् ॥ ११ ॥ यदज्ञानाद्भवोत्पत्तिर्यज्ज्ञानाद्भवनाश
नम् ॥ संविद्रूपां च तां देवीं स्मरामः सा प्रचोदयात् ॥ १२ ॥ महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि ॥ तन्नो देवी प्रचोदयात्
॥ १३ ॥ मातर्नताः स्म भुवनार्तिहरे प्रसीद शं नो विधेहि कुरु कार्यमिदं दयार्द्रे ॥ भारं हरस्व विनिहत्य सुरारिवर्गं मह्या महेश्वरि सतां
कुरु शं भवानि ॥ १४ ॥ यद्यंबुजाक्षि दयसे न सुरान्कदाचित्किं ते क्षमा रणमुखेऽसिशरैः प्रहर्तुम्॥एतत्त्वयैव गदितं ननु यक्षरूपं धृत्वा
तृणं दह हुताशपदाभिलापैः ॥ १५ ॥ कंसः कुजोऽथ यवनेंद्रसुतश्च केशी बार्हद्रथो बकबकी खरशाल्वमुख्याः ॥ येऽन्ये तथा नृपतयो
भुवि संति तांस्त्वं हत्वा हरस्व जगतो भरमाशु मातः ॥१६॥ ये विष्णुना न निहताः किल शंकरेण ये वा विगृह्य जलजाक्षि पुरंदरेण ॥
ते ते मुखंसुखकरं सुसमीक्षमाणास्संख्ये शरैर्विनिहता निजलीलया ते ॥ १७ ॥

पृथ्वीका भार हरणकर हमारा मंगल कीजिये ॥१४॥ हे कमललोचने ! आप यदि देवताओंपर दया प्रकाश न करेंगी तो रणस्थलमें अस्त्र शस्त्रोंसे शत्रुओंको प्रहार करनेमें कभी समर्थ नहीं होंगे. हे देवि ! आपने यक्षरूप धारण पूर्वक "हे हुताशन ! तुम यह तृण भस्म करो"इत्यादि वचनसे उसको भलीभाँति प्रकाशित किया है ॥१५॥ हे मातः कंस, भौम, कालयवन, केशी बृहद्रथतनय जरासंध, बक, पूतना, खर और शाल्व इत्यादि तथा अन्यान्य अनेक पापिष्ठ राजालोग पृथ्वीतलमें वास करते हैं आप उनको मारकर पृथ्वीका भार हरण कीजिये ॥१६॥ हे कमल लोचने मातः ! जो असुरगण इन्द्र विष्णु और महादेवजीके हाथसे नहीं मरे, आपने उनको लीलापूर्वकही मारा है और उन्होंने उस कालमें आपका सुखकर आनन अवलोकन करते करते जीवनलीला संवरण परिपूर्ण की है ॥१७॥

हे चंद्रशेखरे देवि! हरिहर ब्रह्मादि देवतागण शक्तिके विना पदमात्र चलनेमेंभी समर्थ नहीं हैं. हे देवि! अधिक बात क्या है! धारण शक्ति न होनेसे नाग राज अनन्त कभी क्षण मात्र पृथ्वीधारण करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १८ ॥ इन्द्रने कहा, हे भगवति! सरस्वतीके बिना ब्रह्मा क्या विश्व रचनेमें कभी समर्थ होते? रमाके विना क्या देवदेव विष्णु विश्वका पालन कर सकते थे ? उमाके विना क्या महादेव विश्वका संहार करनेमें समर्थ होते? कभी नहीं ये महाप्रभु तीनों देवता अपने अंशरूप सरस्वती इत्यादि शक्तिसे युक्त होकर ही विश्वका कार्य चलानेमें समर्थ होते. हैं ॥ १९ ॥ विष्णुने कहा, हे विमले! आपकी शक्तिसे रहित होकर ब्रह्मा जगत् उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होते और मैं भी जगत्का पालन करनेमें कभी समर्थ नहीं होता तथा महेश्वर भी विश्वका संहार करनेमें

शक्तिं विना हरिहरप्रमुखाः सुराश्च नैवेश्वरा विचलितुं तव देवदेवि ॥ किं धारणाविरहितः प्रभुरप्यनन्तो धर्तुं धरां च रजनी शकलावतंसे ॥१८॥ इन्द्र उवाच ॥ वाचा विना विधिरलं भवतीह विश्वं कर्तुं हरिः किमु रमारहितोऽथ पातुम् ॥ संहर्तुमीश उमयोज्झित ईश्वरः किं ते ताभिरेव सहिताः प्रभवः प्रजेशाः ॥ १९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ कर्तुं प्रभुर्न द्रुहिणो न कदाचनाहं नापीश्वरस्तव कलारहितस्त्रिलोक्याः ॥ कर्तुं प्रभुत्वमनघेऽत्र तथा विहर्तुं त्वं वै समस्तविभवेश्वरि भासि नूनम् ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी तानाह विबुधेश्वरान् ॥ किं तत्कार्यं वदंत्वद्य करोमि विगतज्वराः ॥ २१ ॥ असाध्यमपि लोकेऽस्मिंस्तत्करोमि सुरेप्सितम् ॥ शंसंतु भवतां दुःखं धरायाश्च सुरोत्तमाः ॥२२॥ देवा ऊचुः ॥ वसुधेयं भराक्रांता संप्राप्ता विबुधान्प्रति ॥ रुदती वेपमाना च पीडिता दुष्टभूभुजैः ॥२३॥ भारापहरणं चास्याः कर्तव्यं भुवनेश्वरि ॥ देवानामीप्सितं कार्यमेतदेवाधुना शिवे ॥ २४ ॥

समर्थ नहीं होते. अतएव हे देवि! आपही विश्व वैभवकी ईश्वरी होकर विश्वमें विराजित रहती हैं ॥ २० ॥ व्यासजी बोले, हे राजन्! देवताओंके इस प्रकार भुवनेश्वरीकी स्तुति करनेपर देवीने उनसे कहा, हे सुरोत्तमगण! तुमलोग निश्चिन्त होओ तुम्हारा क्या कार्य है? कहो ॥ २१ ॥ क्योंकि इसलोकमें अत्यन्त असाध्य होनेपरभी जो देवताओंका अभिलषित कार्य होगा वह निःसंदेह करूँगी. अपने और पृथ्वीके दुःखका कारण कहो ॥२२॥ देवताओंने कहा कि, दुष्ट राजाओंने इस पृथ्वीको अत्यन्त पीडित किया है, अब पृथ्वी उनका भार वहन नहीं कर सकती, उसीसे रोदनपूर्वक काँपती काँपती देवताओंके समीप आई है ॥२३॥ हे भुवनेश्वरि! इस समय आपको इस पृथ्वीका भार हरण करना चाहिये. हे शिवे! इस समय इसी कार्यको देवताओंका अभीष्ट जानिये॥२४॥

हे मातः !आपने पूर्वकालमें महिषरूपी अत्यन्त बलवान् दानवको करोड करोड सहायकके सहित मारा है ॥ २५ ॥ अधिक क्या शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, महाबलवान् चण्ड, मुण्ड, धूम्रलोचन, दुर्मुख, दुःसह अतिवीर्यवान् कराल और अन्यान्य अनेक क्रूर दानवोंको संहार किया है ॥ २६ ॥ अबभी उसी प्रकार देवताओंके वैरी राजाओंको मारकर उनके भारी बोझसे पृथ्वीकी रक्षा कीजिये. व्यासजी बोले, देवताओंकी देवीसे इसप्रकार कहने पर कल्याणरूपिणी ॥ २७ ॥ असितापाङ्गी देवी अम्बिकाने हँसकर मेघके समान गंभीरस्वरसे कहा देवी बोली, हे देवताओ ! मैंने विचार लिया है जिससे अंशा वतार ॥ २८ ॥ और दुष्ट राजाओंका भार हरण होगा, वह मैंने पहलेही विचार लिया है मैं इन सब अधर्मी राजाओंको मारूंगी ॥ २९ ॥ ३० ॥ मगधराज जरासंध इत्यादि

घातितस्तु पुरा मातस्त्वया महिषरूपभृत् ॥ दानवोऽति बलाक्रांतस्तत्सहायाश्च कोटिशः ॥ २५ ॥ तथा शुंभो निशुंभश्च रक्तबीजस्त थाऽपराः ॥ चंडमुंडौ महावीर्यौ तथैव धूम्रलोचनः ॥ २६ ॥ दुर्मुखो दुःसहश्चैव करालश्चातिवीर्यवान् ॥ अन्ये च बहवः क्रूरास्त्वयैव च निपातिताः ॥ २७ ॥ तथैव च सुरारींश्च जहि सर्वान्महीश्वरान् ॥ "भारं हर धरायाश्च दुर्धरं दुष्टभूभुजाम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी देवानाहांबिका शिवा ॥२८॥ सप्रहस्यासितापांगी मेघगंभीरया गिरा ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ मयेदं चिंतितं पूर्वमंशावतरणं सुराः ॥ २९ ॥ भारावतरणं चैव यथा स्याद्दुष्टभूभुजाम् ॥ मया सर्वे निहंतव्या दैत्येशा ये महीभुजः ॥३०॥ मागधाद्या महाभागाः स्वशक्त्या मंदतेजसः ॥ भवद्भिरपि स्वैरंशैरवतीर्य धरातले ॥ ३१ ॥ मच्छक्तियुक्तैः कर्तव्यं भारावतरणं सुराः ॥ कश्यपो भार्यया सार्धं दिविजानां प्रजापतिः ॥ ३२ ॥ यादवानां कुले पूर्वं भविताऽऽनकदुंदुभिः ॥ तथैव भृगुशापाद्वै भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ ३३ ॥ अंशेन भविता तत्र वसुदेवसुतो हरिः ॥ तदाऽहं प्रभविष्यामि यशोदायां च गोकुले ॥ ३४ ॥ कार्यं सर्वं करिष्यामि सुराणां सुरसत्तमाः ॥ कारागारे गतं विष्णुं प्रापयिष्यामि गोकुले ॥ ३५ ॥

महैश्वर्यशाली जो असुरांशसंभूत राजा प्रदीप्त हुए हैं मैं उन सबको अपनी शक्तिके द्वारा हीनबल करके मारूंगी. हे देवताओ ! तुमलोग भी अपने अपने अंशसे ॥ ३१ ॥ पृथ्वीमें मेरी शक्तिसहित अवतीर्ण होकर भारहरण करोगे देव प्रजापति महर्षि कश्यपने प्रथमही भार्याके सहित ॥ ३२ ॥ यदुकुलमें आनक दुन्दुभी वसुदेव होकर जन्म ग्रहण किया है ॥ अव्यंगात्मा भगवान् विष्णुभी भृगुशापके कारण ॥३३॥ वसुदेवके पुत्र होकर अंशसे अवतीर्ण होंगे. हे देवताओ ! उसी समय मैं भी गोकुलमें यशोदाके जठरसे जन्म ग्रहण कर ॥ ३४ ॥ देवताओंके संपूर्ण कार्य संपादन करूंगी कारागारसे विष्णुको गोकुलमें ॥ ३५ ॥

और देवीके गर्भसे अनन्तदेव रोहिणीके गर्भमें भरण करूंगी वे दोनों मेरीशक्तिसे वर्द्धित होकर द्वापरके अंतमें दुष्ट राजाओंका संहार करेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ३६ ॥ द्वापरके अन्तमें अवश्य दुष्टराजाओंका क्षय होगा इन्द्रके अंशसे उत्पन्न अर्जुन भी उन दुर्वृत राजाओंके बलका क्षय करेगा ॥ ३७ ॥ उसकाल धर्मके अंशसे महाराज युधिष्ठिर, वायुके अंशसे भीमसेन, दोनों अश्विनी कुमारके अंशसे नकुल और सहदेव ॥ ३८ ॥ तथा वसुके अंशसे गंगापुत्र भीष्मदेव जन्मग्रहण करके उनके बलको नष्ट करेंगे. हे देवताओ ! इस समय तुम स्थिर चित्त होकर जाओ ॥ ३९ ॥ पृथ्वी भी स्थिर होवे तुम निश्चय जानो कि, मैं अवश्यही पृथ्वीका भार हरण करूंगी ॥ ४० ॥ मैं उनको निमित्तमात्र करके अपनी शक्तिके द्वारा निस्संदेह कुरुक्षेत्रमें क्षत्रियगणोंका संहार करूंगी ॥ ४१ ॥

शेषं च देवकीगर्भात्प्रापयिष्यामि रोहिणीम् ॥ मच्छक्त्योपचितौ तौ च कर्तारौ दुष्टसंशयम् ॥ ३६ ॥ दुष्टानां भूभुजां कामं द्वापरांते सुनिश्चितम् ॥ इंद्रांशोऽप्यर्जुनः साक्षात्करिष्यति बलक्षयम् ॥ ३७ ॥ धर्मांशोऽपि महाराजो भविष्यति युधिष्ठिरः ॥ वाय्वंशो भीमसे नश्चाऽश्विन्यंशौ च यमावपि ॥ ३८ ॥ वसोरंशोऽथ गांगेयः करिष्यति बलक्षयम् ॥ व्रजंतु च भवंतोऽद्य धरा भवतु सुस्थिरा ॥ ३९ ॥ भारावतरणं नूनं करिष्यामि सुरोत्तमाः ॥ कृत्वा निमित्तमात्रांस्तान्स्वशक्त्याऽहं न संशयः ॥ ४० ॥ कुरुक्षेत्रे करिष्यामि क्षत्रियाणां च संक्षयम् ॥ असूयेर्ष्या मतिस्तृष्णा ममताऽभिमता स्पृहा ॥ ४१ ॥ जिगीषा मदनो मोहो दोषैर्नक्ष्यंति यादवाः ॥ ब्राह्मणस्य च शापेन वंशनाशो भविष्यति ॥ ४२ ॥ भगवानपि शापेन त्यक्ष्यत्येतत्कलेवरम् ॥ भवंतोऽपि निजांगैश्च सहायाः शार्ङ्गधन्वनः ॥ ४३ ॥ प्रभवंतु सनारीका मथुरायां च गोकुले ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधे देवी योगमाया परात्मनः ॥ ४४ ॥ सधरा वै सुराः सर्वे जग्मुः स्वान्या लयानि च ॥ धराऽपि सुस्थिरा जाता तस्यावाक्येन तोषिता ॥ ४५ ॥

असुया (निन्दा) ईर्षा दुर्मति तृष्णा ममता अभिमान स्पृहा जयेच्छा मद और मोह इन सब दोषोंसे यादवगण नाशको प्राप्त होंगे. ब्राह्मणोंके शापसेही यदुकुलध्वंस होगा ॥४२॥ भगवान्भी शापके वशीभूत हो कलेवर परित्याग करेंगे अब तुम भी अपने अंशसे अवतीर्ण होकर भगवान्की सहायतासे ॥ ४३ ॥ स्त्रियोंके सहित गोकुल और मथुरामें जन्म ग्रहण करो. व्यासजी बोले यह सब बातें कहकर परमात्माकी मायास्वरूपिणी भुवनेश्वरी देवी अन्तर्धान हो गई ॥४४॥ देवतालोग और पृथ्वी अपने अपने स्थानको चलेगये ! हे राजन् ! जनमेजय ! उसकाल पृथ्वीदेवी देवीके वचनसे संतुष्ट और स्थिर होकर ॥४५॥

भांति भांतिकी औषधि और वीरुध गुल्मवृक्षद्वारा पवित्र होकर अवस्थित करने लगी. उस काल प्रजालोग जिस प्रकार सुखी हुए ब्राह्मणोंके जिस प्रकार सुख समृद्धिकी वृद्धि हुई ॥ ४६ ॥ मुनिगणभी तदनुरूप संतुष्ट होकर धर्मकर्ममें तत्पर हुए ॥ ४७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ व्यासजीने कहा, हे भरतकुल भूषण ! मैं तुम्हारे निकट पृथ्वीका भार उतारना कुरुक्षेत्र और प्रभास तीर्थमें सैन्यगणोंका संहार ॥ १ ॥ एवं भृगुशापसे अमिततेजा भगवान् हरिने महामायाके प्रभावसे जिस प्रकार यदुकुलमें जन्म ग्रहण किया वह समस्त ही कहता हूँ श्रवण करो ॥२॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णुने जो पृथ्वीतलमें जन्म ग्रहण किया मेरे विचारमें वह मायाकृत योगके शिवाय और कुछ नहीं है. मायाहीने पृथ्वीका भार उतारनेको इस

ओषधीवीरुधोपेता बभूव जनमेजय ॥ प्रजाश्च सुखिनो जाता द्विजाश्चापुर्मुहोदयम् ॥ ४६ ॥ सन्तुष्टा मुनयः सर्वे बभूवुर्धर्मतत्पराः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु भारत वक्ष्यामि भारावतरणं तथा ॥ कुरुक्षेत्रे प्रभासे च क्षपितं योगमायया ॥ १ ॥ यदुवंशे समुत्पत्तिर्विष्णोरमिततेजसः ॥ भृगुशापप्रतापेन महामायाबलेन च ॥ २ ॥ क्षितिभारसमुत्तारनिमित्तमिति मे मतिः ॥ मायया विहितो योगो विष्णोर्जन्म धरातले ॥३॥ किं चित्रं नृप देवी सा ब्रह्मविष्णुसुरानपि ॥ नर्तयत्यनिशं माया त्रिगुणानपरान्किमु ॥ ४ ॥ गर्भवासोद्भवं दुःखं विण्मूत्रस्नायुसंयुतम् ॥ विष्णोरापादितं सम्यग्यया विगतलीलया ॥ ५ ॥ पुरा रामावतारेऽपि निर्जरा वानराः कृताः ॥ विदितं ते तथा विष्णुर्दुःखपाशेन मोहितः ॥ ६ ॥ अहं ममेति पाशेन सुदृढेन नराधिप ॥ योगिनो मुक्तसंगाश्च भुक्तिं कामामुमुक्षवः ॥ ७ ॥

प्रकार किया था. यही मेरा स्थिर सिद्धान्त है ॥ ३ ॥ हे नृपते ! जो त्रिगुणा माया देवी ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देवगणोंको भी नचाती रहती हैं. वह जो अन्यको मोहित करे तो फिर इस विषयमें आश्चर्य्यही क्या है ? ॥ ४ ॥ हे राजन् ! उस महामायाकी लीला तो सिद्धही है. अधिक क्या उसने विष्णुकोभी भलीभांतिसे विष्ठा मूत्र और स्नायु परिपूरित गर्भमें वास कराकर दुःख दिया था ॥ ५ ॥ पूर्वकालके समय रामअवतारमें उसने देवगणोंकोभी वानर किया था. हे राजन् ! मैं मेरा इस प्रकार मायापाशमें बँधकर भगवान् विष्णुने जो कि दुःख भोगा था. वह तो तुम भलीभाँति जानते हो ॥ ६ ॥ इसीसे अहं ममताके पाशमें बँधता है मुक्तसङ्ग मुमुक्षु योगीगण मुक्तिलाभकी आशासे ॥ ७ ॥

उसी विश्वरूपिणी विश्वेश्वरी देवीकी उपासना करते हैं. हे राजन् ! जिसकी भक्तिलेशका कणमात्र प्राप्त करके ॥ ८ ॥ जीवगणोंको मुक्ति प्राप्त होती है. कौन प्राणी उसकी सेवा नहीं करता है मनुष्योंमें यदि कोई "भुवनेश्वरी" यह नाम उच्चारण करे तो वह उसको त्रिभुवन प्रदान करती है ॥ ९ ॥ और कोई यदि "मेरी रक्षा करो" यह वचन कहता है तो विश्वेश्वरी विश्वब्रह्माण्डमें देने योग्य वस्तु न देखकर उसके निकट ऋणी होती हैं. इसमें सन्देह नहीं है. हे पार्थिव ! उसके विद्या और अविद्या यह दो प्रकारके रूप जानने चाहिये ॥ १० ॥ जीवगण इस विद्यासे मुक्ति और अविद्यासे बन्धनको प्राप्त होते हैं ब्रह्मा विष्णु रुद्र ॥ ११ ॥ और उनके अवतार गण रस्सीमें बंधे हुएके समान उसके अधीनमें अवस्थित रहते हैं. भगवान् हरि कभी वैकुण्ठमें कभी क्षीर समुद्रमें अवस्थान

तामेव समुपासंते देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥ यद्भक्तिलेशलेशांशलेशलेशलवांशकम् ॥ ८ ॥ लब्ध्वा मुक्तो भवेज्जंतुस्तां न सेवेत को जनः ॥ भुवनेशीत्येव वक्रे ददाति भुवनत्रयम् ॥९॥ मां पाहीत्यस्य वचसो देयाभावादृणान्विता ॥ विद्याऽविद्येति तस्या द्वे रूपे जानीहि पार्थिव ॥ १० ॥ विद्यया मुच्यते जंतुर्बध्यतेऽविद्यया पुनः ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वे तस्या वशानुगाः ॥ ११ ॥ अवताराः सर्व एव यंत्रिता इव दामभिः ॥ कदाचिच्च सुखं भुंक्ते वैकुंठे क्षीरसागरे ॥ १२ ॥ कदाचित्कुरुते युद्धं दानवैर्बलवत्तरैः ॥ हरिः कदाचिद्यज्ञान्वै वितता न्प्रकरोति च ॥ १३ ॥ कदाचिच्च तपस्तीव्रं तीर्थे चरति सुव्रत ॥ कदाचिच्छयने शेते योगनिद्रामुपाश्रितः ॥१४॥ न स्वतंत्रः कदाचिच्च भगवान्मधुसूदनः ॥ तथा ब्रह्मा तथा रुद्रस्तथेंद्रो वरुणो यमः ॥ १५ ॥ कुबेरोऽग्नी रवींदू च तथाऽन्ये सुरसत्तमाः ॥ मुनयः सनकाद्याश्च वसिष्ठाद्यास्तथाऽपरे ॥ १६ ॥ सर्वेंऽबावशगा नित्यं पांचालीव नरस्य च ॥ नसि प्रोता यथा गावो विचरंति वशानुगाः ॥ १७ ॥

करके सुख भोगते हैं ॥ १२ ॥ कभी बलवान् दानवगणोंके सहित युद्ध, किसी समय बहुत विस्तृत यज्ञका अनुष्ठान ॥ १३ ॥ कभी तीव्रतर तपस्याका आचरण करते हैं और कभी योग मायाके आश्रयमें शयन करते हैं ॥ १४ ॥ अतएव भगवान् मधुसूदन किसी समय स्वाधीनता लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते. हे राजन् ! विष्णुके समान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, यम ॥ १५ ॥ कुबेर, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और अन्यान्य देवता श्रेष्ठगण, सनकादि मुनिगण एवं वसिष्ठादि ऋषिगण ॥ १६ ॥ सबही नाचनेवाली पुतलीके समान सदाही उस भुवनेश्वरीके वशीभूत होते हैं नथा हुआ बलवान् बैल जिस प्रकार मनुष्यके नशी भूत होकर विचरण करता है ॥ १७ ॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण देवतागण कालपाशमें नियन्त्रित हो रहे हैं. हे राजेन्द्र ! हर्ष, शोक निद्रा, तन्द्रा, और आलस्यादि समस्त भाव ॥ १८ ॥ सर्वदा ही देही मात्रके देह, ग्रहका आश्रय करके रहते हैं ग्रन्थकारगणोंने देवतागणोंको अमर अर्थात् मरण धर्म्म रहित और निर्जर अर्थात् जरा धर्म्म विहीन कहा है ॥ १९ ॥ किंतु दह नाम मात्र ही प्रकाश पाते हैं. वास्तवमें अर्थगत वह कभी नहीं हो सकते क्योंकि जिनकी उत्पत्ति स्थिति और विनाशधर्म सदा ही रहता है ॥ २० ॥ उनको किस प्रकार अमर और निर्जर कहा जा सकता है दुःखयुक्त विबुध कैसे होते हैं ॥ २१ ॥ क्योंकि विपद् उपस्थित होनेपर भी किस प्रकार क्रीडा हो सकती है देखनेमें आता है कि, इस संसारमें कमलकीट और मशकगण उत्पन्न होकर क्षणमें ही नष्ट होते हैं इस प्रकार देवतागणोंको भी आयुके शेषमें मरण

तथैव देवताः सर्वाः कालपाशनियंत्रिताः ॥ हर्षशोकादयो भावा निद्रातंद्रालसादयः ॥ १८ ॥ सर्वेषां सर्वदा राजन्देहिनां देहसंश्रिताः ॥ अमरा निर्जराः प्रोक्ता देवाश्च ग्रंथकारकैः ॥ १९ ॥ अभिधानतश्चार्थतो न नूनं तादृशाः क्वचित् ॥ उत्पत्तिस्थितिनाशाख्या भावा येषां निरंतरम् ॥ २० ॥ अमरास्ते कथं वाच्या निर्जराश्च कथं पुनः ॥ कथं दुःखाभिभूता वा जायंते विबुधोत्तमाः ॥ २१ ॥ कथं देवाश्च वक्तव्या व्यसने क्रीडनं कथम् ॥ क्षणादुत्पत्तिर्नाशश्च दृश्यतेऽस्मिन्न संशया ॥२२॥ जलजानां च कीटानां मशकानां तथा पुनः ॥ उपमा न कथं चैषामायुषोंऽते मराः स्मृताः ॥२३॥ ततो वर्षायुषश्चापि शतवर्षायुस्तथा ॥ मनुष्या ह्यमरा देवास्तस्माद्ब्रह्मा परः स्मृतः ॥२४॥ रुद्रस्तथा तथा बिष्णुः क्रमश श्च भवंतिहि ॥ नश्यंति क्रमशश्चैव वर्धंति चोत्तरोत्तरम् ॥ २५॥ नूनं देहवतो नाशो मृतस्योत्पत्तिरेव च ॥ चक्रवद्भ्रमणं राजन्सर्वेषां नाऽत्र सशंयः ॥२६॥ मोहजालाऽऽवृतो जंतुर्मुच्यते न कदाचन॥ मायायां विद्यमानायां मोहजालं न नश्यति॥२७॥

धर्म प्राप्त होता है. तो देवतागण इन सम्पूर्ण मरण धर्म्मशील जीवगणके उपमास्थल क्यों न हों ? उनका "मर" यह नाम न हो ॥ २२ ॥ २३ ॥ जन्मादि विकारवान् होनेसे मनुष्योंमें कोई एक वर्ष कोई सौ वर्ष कालकी आयुलाभ करते हैं. और फिर देवतागण मनुष्यसे; प्रजापति ब्रह्मा देवतागणोंसे ॥ २४ ॥ रुद्रदेव ब्रह्मासे और विष्णु रुद्रसे अधिकतर आयुको प्राप्त होते हैं इस प्रकार क्रमक्रमसे समस्त ही नष्ट और बराबर बढते हैं ॥ २५ ॥ जो देह धारण करता है निश्चय ही उसका विनाश होता है हे राजन् ! इस प्रकार इस संसारमें संपूर्ण जीव ही चक्रके समान सदा भ्रमण करते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ जीवगण मोहजालमें आच्छन्न हैं. वह कभी मुक्तिलाभ नहीं कर सकते जबतक माया विद्यमान रहती है तबतक मोहजाल दूर नहीं होता ॥ २७ ॥

हे नृप! सृष्टिकालमें ब्रह्मादि समस्त वस्तुओंकी यथा क्रमसे उत्पत्ति और प्रलयकालमें नाश होता है ॥ २८ ॥ इससे जिसके नाश विषयमें जो कारण होता है वह उसको विनाश करता है भगवतीकी इच्छासे विधाता जो रचना करते हैं वह फिर अन्यथा नहीं होती ॥ २९ ॥ इस संसारमें यही स्थिर सिद्धान्तजानना चाहिये विधाताके नियत अनुसार सम्पूर्ण जीवगणोंका जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, दुःख अथवा सुख यह समस्त व्यापार ही सम्पादित होता है कभी इसके अन्यथा नहीं होता ॥ ३० ॥ देखो प्रत्यक्ष देवता चन्द्र और सूर्य सबको ही सुख प्रदान करते हैं किन्तु इनकी वैरिकृत पीडा कभी नष्ट नहीं होती ॥ ३१ ॥ सूर्यके पुत्र सदाही अपकारी होनेसे उनका "मन्द" नाम हुआ है, चन्द्रमा राजयक्ष्मा रोगसे ग्रस्त और कलंकी है. हे राजन्! सामान्य व्यक्तिके सम्बंधमें और

उत्पित्सुकाल उत्पत्तिः सर्वेषां नृप जायते ॥ तथैव नाशः कल्पान्ते ब्रह्मादीनां यथाक्रमम् ॥ २८ ॥ निमित्तं यस्तु यन्नाशे स घातयति तं नृप ॥ नान्यथा तद्भवेन्नूनं विधिना निर्मितं तु यत् ॥ २९ ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखं वा सुखमेव वा ॥ तत्तथैवभवेत्कामं नान्यथेह विनिर्णयः ॥३०॥ सर्वेषां सुखदौ देवौ प्रत्यक्षौ शशिभास्करौ ॥ न नश्यति तयो पीडा क्वचित्तद्वैरिसंभवा ॥३१॥ भास्करस्य सुतो मंदः क्षयी चंद्रः कलंकवान् ॥ पश्य राजन्विधेः सूत्रं दुर्वारं महतामपि ॥ ३२ ॥ वेदकर्ता जगद्धर्ता बुद्धिदस्तु चतुर्मुखः ॥ सोऽपि विक्लवतां प्राप्तो दृष्ट्वा पुत्रीं सरस्वतीम् ॥३३॥ शिवस्याऽपि मृता भार्या सती दग्ध्वा कलेवरम् ॥ सोऽभवद्दुःखसंतप्तः कामार्तश्च जनार्तिहा ॥ ३४ ॥ कामाग्निदग्धदेहस्तु कालिंद्यां पतितः शिवः ॥ साऽपि श्यामजला जाता तन्निदाघवशान्नृप ३५ ॥ कामार्तो रममाणस्तु नग्नः सोऽपि भृगोर्वनम् ॥ गतः प्राप्तोऽथ भृगुणा शप्तः कामातुरो भृशम् ॥ ३६ ॥

क्या कहूं? महद् व्यक्तिगणोंके प्रति भी विधिनियतका इस प्रकार प्रभाव दिखाई देता है ॥ ३२ ॥ जगत्को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा वेदकर्त्ता और बुद्धिप्रद हैं वे भी अपनी कन्या सरस्वतीको देखकर कामातुर हुए थे ॥ ३३ ॥ शिवकी भार्या सतीके प्राणत्याग करनेपर महादेव सम्पूर्ण दुःखनाश न होनेपर भी अत्यंत कामार्त्त हो अतिदुःखसे सन्तप्त हुए थे ॥ ३४ ॥ उस समय वह कामाग्निसे दग्ध हो कालिंदीके जलमें पतित हुए उनके सन्तापसे तापिता ही यह नदी भी श्यामवर्ण होगई ॥ ३५ ॥ हे राजन्! महादेव जिस समय कामार्त्त और नग्न हो भृगुके वनमें जा रमण कर रहे थे उस समय तपोधन भृगुने उनको इस अवस्थामें देखकर "तुम अत्यंत निर्लज्ज हो ॥ ३६ ॥

अतएव इस समय तुम्हारा लिङ्ग पतित हो" यह कहकर उनके प्रति दारुण शाप दिया तब महादेवजीने आनन्द भोगके लिये दानवगणोंका बनाया हुआ अमृतदीर्घिकाका जलपान किया ॥ ३७ ॥ देवराज इन्द्र भी पृथ्वीतलमें बल होकर ककुत्स्थ राजाके वाहन हुए थे अधिक क्या सम्पूर्ण लोकके आदिभूत विवेकी भगवान् विष्णुकी ॥ ३८ ॥ सर्वज्ञता और प्रभुशक्ति ही कहां गई थी ? क्याआश्चर्यका विषय है कि, वह स्वर्णसे मृगके विषयमें कुछ भी नहीं जान सके ॥ ३९ ॥ हे राजेन्द्र ! आप योगमायाका बल अवलोकन कीजिये रामचंद्रजीने कामसे मोहित और सीताके विरहानलमें संतप्त एवं अत्यन्त कातर हो अतिरोदन किया था ॥ ४० ॥ उन्होंने अत्यंत मोहित हो उच्चस्वरसे रोदन करते करते वृक्षगणोंसे पूंछा था जनकात्मजा सीता कहां गई हैं ? क्या उनको हिंस्र जंतुगण

पतत्वद्यैव ते लिंगं निर्लज्जेति भृशं किल ॥ पपौ चामृतवापीं च दानवैर्निर्मितां मुदे ॥३७॥ इंद्रोऽपि च वृषो भूत्वा वाहनत्वं गतः क्षितौ ॥ आद्यस्य सर्वलोकस्य विष्णोरेव विवेकिनः ॥ ३८ ॥ सर्वज्ञत्वं गतं कुत्र प्रभु शक्तिः कुतो गता ॥ यद्धेममृगविज्ञानं न ज्ञातंहरिणा किल ॥ ३९ ॥ राजन्मायाबलं पश्य रामो हि काममोहितः ॥ रामो विरहसंतप्तो रुरोद भृशमातुरः ॥ ४० ॥ योऽपृच्छत्पादपान्मूढः क्व गता जनकात्मजा ॥ भक्षिता वाऽहृता केन रुदन्नुच्चतरं ततः ॥ ४१ ॥ लक्ष्मणाऽहं मरिष्यामि कांताविरहदुःखितः ॥ त्वं चापि मम दुःखेन मरिष्यसि वनेऽनुज ॥ ४२ ॥ आवयोर्मरणं ज्ञात्वा माता मम मरिष्यति ॥ शत्रुघ्नोऽप्यतिदुःखार्तः कथं जीवितुमर्हति ॥ ४३ ॥ सुमित्रा जीवितं जह्यात्पुत्र व्यसनकर्शिता ॥ पूर्णकामाऽथ कैकेयी भवेत्पुत्रसमन्विता ॥४४॥ हा सीते क्व गताऽसि त्वं मां विहाय स्मरातुरा ॥ एह्येहि मृगशावाक्षि मां जीवय कृशोदरि ॥ ४५ ॥

भक्षण कर गये ? अथवा कोई दुर्वृत्त उनको हरण कर ले गया ? ॥ ४१ ॥ हे भ्रातृलक्ष्मण ! मैं प्रियाके विरहानलमें दग्ध हो इस समय प्राण त्याग करूंगा हाय ! फिर तुम भी मेरी विरहाग्निमें जीवन विसर्जन करोगे ॥ ४२ ॥ मेरा मृत्यु संवाद सुनकर माता भी जीवन विसर्जन करेगी, शत्रुघ्नभी अत्यंत दुःखसे कातर हो जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं होंगे ॥ ४३ ॥ सुमित्रा माताभी पुत्रम रणके शोकानलमें प्राणत्याग करेगी तब भरतके सहित कैकेयीका मनोरथ निःसंदेह पूर्ण होगा ॥ ४४ ॥ हा सीते ! मैं कामबाणसे पीडित होता हूं तुम मुझको त्यागकर कहां चली गई. हे मृगलोचने ! हे कृशोदरि ! तुम आओ और शीघ्र मुझको प्राणदान दो ॥ ४५ ॥

मैं क्या करूं ? कहां जाऊँ ? मेरा जीवन तुम्हारे ही अधीन है, हे जनक नंदिनि ! मैं तुम्हारा प्रिय हूं इस समय तुम्हारे विरहमें अत्यंत दीन हुआ हूँ तुम आकर मुझको समझाओ ॥ ४६ ॥ अलौकिक प्रभाव संपन्न श्रीरामचंद्रजीने इस प्रकार विलाप करते करते वनवनमें भ्रमण किया था किंतु जनकतनयाको नहीं देख सके ॥ ४७ ॥ क्या आश्चर्य है ! कि कमललोचन श्रीरामचंद्र संपूर्ण लोकोंकी शरण देनेवाले थे उन्होंने मायामें मोहित होकर वानरगणोंका आश्रय ग्रहण किया था ॥ ४८ ॥ और उनकी सहायतासे समुद्रमें पुल बांध महोदर वीरवर कुम्भकर्ण और रावणका विनाश किया था ॥ ४९ ॥ तदनंतर सीताको अपने समीप लाया स्वयं सर्वज्ञ होकर भी दुरात्मा रावणने सीताका हरण किया है यह जानकर उसको दिव्य कराया था ॥ ५० ॥ हे महाराज! योगमायाका बल अत्यंत महत् है उसके प्रभावकी बात क्या कहूं यह समस्त विश्वमण्डल उसके द्वारा चलायमान हो निरंतर भ्रमण करता है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार अनेक

किं करोमि क्व गच्छामि त्वदधीनं च जीवितम् ॥ समाश्वासय दीनं मां प्रियं जनकनंदिनि ॥ ॥ ४६ ॥ एवं विलपता तेन रामेणाऽमित तेजसा ॥ वनेवने च भ्रमता नेक्षिता जनकात्मजा ॥ ४७ ॥ शरण्यः सर्वलोकानां रामः कमल लोचनः ॥ शरणं वानराणां स गतो माता विमोहितः ॥ ४८ ॥ सहायान्वानरान्कृत्वा बबन्ध वरुणालयम् ॥ जघान रावणं वीरं कुम्भकर्णं महोदरन् ॥ ४९ ॥ आनीय च ततः सीतां रामो दिव्यमकारयत् ॥ सर्वज्ञोऽपि हृतां मत्वा रावणेन दुरात्मना ॥ ५० ॥ किंब्रवीमि महाराज योगमायाबलं महत् ॥ यया विश्व मिदं सर्वं भ्रामितं भ्रमते किल ॥ ५१ ॥ एवं नानाऽवतारेऽत्र विष्णुः शापवश गतः ॥ करोति विविधाश्चेष्टा दैवाधीनः सदैव हि ॥ ५२ ॥ तवाहं कथयिष्यामि कृष्ण स्याऽपि विचेष्टितम् ॥ प्रभवं मानुषं लोके देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ५३ ॥ कालिंदीपुलिने रम्ये ह्यासी न्मधुवनं पुरा ॥ लवणो मधुपुत्रस्तु तत्राऽऽसीद्दानवो बली ॥ ५४ ॥ द्विजानां दुःखदः पापो वरदानेन गर्वितः ॥ निहतोऽसौमहाभाग लक्ष्मणस्यानुजेन वै ॥ ५५ ॥ शत्रुघ्नेनाथ संग्रामे तं निहत्य मदोत्कटम् ॥ वासिता मथुरा नाम पुरी परमशोभना ॥ ५६ ॥

अवतारमें भगवान् विष्णु शापके वशीभूत और दैवके अधीन हो सदाही अनेक प्रकारके कार्य्य करते हैं ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! मैं इस समय देवतागणोंके कार्य साधनेके लिये श्रीकृष्णकी मनुष्यलोकमें उत्पत्ति और उनके चरित्रकी कथा वर्णन करता हूं सुनो ॥ ५३ ॥ पूर्वकालके समय कालिंदीके मनोहर तटपर मधुवननामक एक स्थान था मधुका पुत्र लवण नामक एक महाबलवान् दानव उस स्थानमें वास करता था ॥ ५४ ॥ वह पापाशय वरलाभसे गर्वित हो ब्राह्मण गणोंको अत्यंत दुःख देता. इसके उपरान्त लक्ष्मणके भ्राता शत्रुघ्नके उस कठिन मारने योग दैत्यको संग्राममें दलित कर उसी स्थानमें मथुरानामक परम मनोहर एक पुरी बनाई ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

दे. भा. ॥५९॥

शत्रुविनाशन मतिमान् शत्रुघ्नने अपने (पुष्कराक्षौ) कमल लोचन दोनों पुत्रोंको उसराज्यमें अभिषिक्त करके मरनेका समय उपस्थित होनेपर स्वर्गमें गमन किया ॥ ५७ ॥ फिर सूर्यवंशकी क्षीणदशा हुई ययाति कुलमें उत्पन्न हुए यादवगणोंने उस मुक्ति देनेवाली मथुरापुरी पर अधिकार किया ॥ ५८ ॥ हे राजेन्द्र ! शूरसेन नामक शूरवर एक यादव नृपति उस स्थानमें राजा हो मथुराके ऐश्वर्यका भोग करता रहा ॥ ५९ ॥ वहां वरुणके शाप और कश्यपके अंशसे वसुदेव नामक विख्यात शूरसेनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥६०॥ वह वैश्यवृत्ति अर्थात् खेती कार्य्यादिमें तत्पर हुआ फिर उसके पिताकी मृत्यु होनेपर श्रीमान् उग्रसेनने मथुराका आधिपत्य लाभ किया, कुछ काल व्यतीत होनेपर कंसनामक उसके एक अत्यंत तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६१ ॥ इधर देवक राजाके अदितिके अंशसे देवकी नामक एक कन्याने वरुणके शापसे जन्म ग्रहण किया कश्यपकी अनुगामिनी ॥ ६२ ॥ अपनी कन्याके संग महात्मा देवकराजाने

स तत्र पुष्कराक्षौ द्वौ पुत्रौ शत्रुनिषूदनः ॥ निवेश्य राज्ये मतिमान्काले प्राप्त दिवं गतः ॥५७॥ सूर्यवंश क्षये तां तु यादवाः प्रतिपेदिरे ॥
मथुरां मुक्तिदां राजन्ययातितनयाः पुरा ॥५८॥ शूरसेनाभिधः शूरस्तत्राभून्मेदिनीपतिः ॥ माथुरांञ्छुरसेनांश्च बुभुजे विषयान्नृप ॥५९॥
तत्रोत्पन्नः कश्यपांशः शापाच्च वरुणस्य वै ॥ वसुदेवोऽतिविख्यातः शूरसेनसुतस्तदा ॥६०॥ वैश्यवृत्तिरतः सोऽभून्मृते पितरि माधवः ॥
उग्रसेनो बभूवाथ कंसस्तस्याऽऽत्मजो महान् ॥ ६१ ॥ अदितिर्देवकी जाता देवकस्य सुता तदा ॥ शापाद्वै वरुणस्यात्र कश्यपानुगता
किल ॥ ६२ ॥ दत्ता सा वसुदेवाय देवकेन महात्मना ॥ विवाहे रचिते तत्र वागभूद्गगने तदा ॥ ६३ ॥ कंस कंस महाभाग देवकीगर्भसं
भवः॥ अष्टमस्तु सुतः श्रीमांस्तव हंता भविष्यति ॥ ६४ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं कंसो विस्मितोऽभून्महाबलः ॥ देववाचं तु तां मत्वा सत्यां
चिंतामवाप सः ॥६५॥ किं करोमीति संचित्य विमर्शं मकरोत्तदा ॥ निहत्यैनां नमे मृत्युर्भवेदद्यैव सत्वरम् ॥ ६६ ॥ उपायो नान्यथा
चास्मिन्कार्ये मृत्युभयावहे ॥ इयं पितृष्वसा पूज्या कथं हन्मीत्यचिंतयत ॥ ६७ ॥

वसुदेवका विवाह किया यह विवाह कार्य्य हो चुकने पर ॥ ६३ ॥ कंसके प्रति यह आकाशवाणी हुई कि, हे महाभाग कंस ! इस देवकीके गर्भसे आठवीं संतान तेरे मारनेवाली होगी ॥ ६४ ॥ महाबल कंस उस आकाशवाणीको सुन आश्चर्य युक्त हो और उसको सत्य जानकर अत्यंत चिंतामें मग्न हुआ ॥ ६५ ॥ उस समय कंस क्या करूं ! इस प्रकार चिंता करके मनमें विचारने लगा एकबार यह विचार किया कि, अब शीघ्र इसको मारडालूं तो फिर मैं न मरूंगा ॥ ६६ ॥ क्योंकि इस मृत्युजनक कार्य्यका अन्य कोई उपाय नहीं दीखता फिर विचारा कि, यह मेरे पिताके स्थानापन्न देवककी कन्या अतएव मेरी भगिनी है तथा पूजनीय है इसको किस प्रकार मारूं ? ॥ ६७ ॥

अन्तमें यह निश्चय किया कि यह मेरी पूजनीय भगिनी होनेपरभी मेरी मृत्युरूपिणी हुई है अतएव इसके मारनेसे मुझको पाप स्पर्श नहीं कर सकता क्योंकि पंडितगण कहते हैं कि, पापकाय द्वाराभी अपने देहकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ६८ ॥ प्रायश्चित्तसे सर्वदाही पापकी शुद्धि होती है अतएव पापकार्य्य करके भी अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ पापाशय कंसने मनमें इस प्रकार चिंता करके शीघ्र खड्ग धारणपूर्वक उसके केशग्रहण किये ॥ ७० ॥ और वरारोहा देवकीके विनाशकी इच्छासे मियानसे खड्ग खींचकर सबके सामने उस नव विवाहिता कामिनीका आकर्षण करने लगा ॥ ७१ ॥ कंसको देवकीके मारनेमें उद्यत देखकर सभी महाकोलाहल करने लगे तब वासुदेवके वशमें रहनेवाले वीरोंने शरासन संयोजित किया ॥ ७२ ॥ वह अद्भुत साहसशाली वीरगण

पुनर्विचारयामास मरणं मेऽस्त्यहो स्वसा ॥ पापेनाऽपि प्रकर्तव्या देहरक्षा विपश्चिता ॥६८॥ प्रायश्चित्ते न पापस्य शुद्धिर्भवति सर्वदा ॥ प्राणरक्षा प्रकर्तव्या बुधैरप्येनसा तथा ॥ ६९ ॥ विचिंत्य मनसा कंसः खड्गमादाय सत्वरः ॥ जग्राह तां वरारोहां केशेष्वाकृष्य पापकृत् ॥७०॥ कोशात्खड्गमुपाकृष्य हंतुकामो दुराशयः ॥ पश्यतां सर्वलोकानां नवोढां तां चकर्ष ह ॥७१॥ हन्यमानां च तां दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् ॥ वासुदेवानुगा वीरा युद्धायो द्यतकार्मुकाः ॥ ७२ ॥ मुंच मुंचेति प्रोचुस्तं ते तदाऽद्भुतसाहसाः ॥ कृपया मोचायामासुर्देवकीं देवमातरम् ॥ ७३ ॥ तद्युद्धमभवद्धोरं धीराणां च परस्परम् ॥ वसुदेवसहायानां कंसेन च महात्मना ॥ ७४ ॥ वर्तमाने तथा युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥ कंसं निवारयामासुर्वृद्धा ये यदुसत्तमाः ॥ ७५ ॥ पितृष्वसेयं ते वीर पूजनीया च बालिश ॥ न हंतव्या त्वया वीर विवाहोत्सव संगमे ॥ ७६ ॥ स्त्रीहत्या दुःसहा वीर कीर्तिघ्नी पापकृत्तमा ॥ भूतभाषितमात्रेण न कर्तव्या विजानता ॥ ७७ ॥

देवकीको छोड़नेके लिये वारंवार कंससे कहने लगे फिर उन्होंने दया करके देवमाता देवकीको दुरात्मा कंसके हाथ छुड़ा लिया ॥ ७३ ॥ तब महाबलवान् कंससे उन वसुदेवके सहायक वीरोंका घोर युद्ध हुआ ॥ ७४ ॥ फिर दारुण लोम हर्षण युद्ध होता देख बूढ़े यादवोंने कंसको निवारण करके कहा ॥७५॥ यह देवकी तुम्हारी बहन है. इसका तुमको संमान करना उचित है किंतु तुम जो इसको मारोगे. यह बात इस बालिकाने विचारी भी नहीं है. अतएवहे वीर! इस विवाहके उत्सव कालमें इसका वध करना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है. ॥७६॥ हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ! स्त्रीकी हत्यासे यशका नाश और घोरतर पाप होता है, एवं वह मनुष्यके पापमें अत्यन्त असहनीय है और ज्ञानी पुरुषका सामान्य आकाशवाणीके ऊपर विश्वास करके स्त्री हत्या करना कभी उचित नहीं है ॥ ७७ ॥

ज्ञात होता है तुम्हारे अथवा वसुदेवके किसी शत्रुने छिपकर यह अनर्थकर वचन कहा है. ऐसा न होनेसे कोई भी कारण संभव नहीं हो सकता ॥ ७८ ॥
हमको बोध होता है, तुम्हारे यशका नाश और वसुदेवके गृहका नाश करनेको ही इन्द्र जालिक माया विद्या विशारद किसी शत्रुने यह आकाशवाणी रची
है ॥७९॥ हे नृप! तुम वीरवर होकर भी भूत वाक्यसे भयकरते हो! हमको निश्चय बोध होता है. तुम्हारे यशरूपी वृक्षकी जड उखाड़नेके लिये ही शत्रुओंने
इस प्रकार उपाय किया है. इसमें संदेह नहीं ॥ ८० ॥ हे महाराज! भवितव्यके अन्यथा कभी नहीं होता. इस कारण विवाह कालमें इस पूजनीय बहनका
वध करना उचित नहीं है ॥ ८१ ॥ हे राजन् जनमेजय! वृद्ध यादवोंके समझानेपर भी जब कंसराज निवृत नहीं हुआ. तब नीतिशास्त्रके जाननेवाले वसुदेवने
उससे कहा ॥ ८२ ॥ हे कंस! यह त्रिभुवन सत्यमें ही प्रतिष्ठित है. मैं सत्य कहता हूं कि, देवकीके गर्भसे मेरे जितनी संतान उत्पन्न होगी. उत्पन्न होते ही वह

अंतर्हितेन केनाऽपि शत्रुणा तव चास्य वा ॥ उदितेति कुतो न स्याद्व्यगनर्थकरी विभो ॥७८॥ य शसस्ते विघाताय वसुदेवगृहस्य च ॥
अरिणा रचिता वाणी गुणमायाविदा नृप ॥ ७९ ॥ बिभेषि वीरस्त्वं भूत्वा भूतभाषित भाषया ॥ यशोमूलविघातार्थमुपायास्त्वरिण
कृतः ॥ ८० ॥ पितृष्वसा न हंतव्या विवाहसमये पुनः ॥ भवितव्यं महाराज भवेच्च कथमन्यथा ॥ ८१ ॥ एवं तैर्बोध्यमानोऽसौ निवृत
नाऽभवद्यदा ॥ तदा तं वसुदेवोऽपि नीतिज्ञः प्रत्यभाषत ॥ ८२ ॥ कंस सत्य ब्रवीम्यद्य सत्याधारं जगत्त्रयम् ॥ दास्यामि देवकीपुत्रानु
त्पन्नांस्तव सर्वशः ॥ ८३ ॥ जातं जातं सुतं तुभ्यं न दास्यामि यदि प्रभो ॥ कुंभिपाके तदा घोरे पततु मम पूर्वजाः ॥८४॥ श्रुत्वाऽथ
वचनं सत्यं पौरवा ये पुरः स्थिताः ॥ ऊचुस्ते त्वरिताः कंसं साधु साधु पुन पुनः ॥८५॥ न मिथ्या भाषते क्वापि वसुदेवो महामनाः ॥
केशं मुंच महाभाग स्त्रीहत्यापातकं तथा ॥ ८६ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्रबोधितः कंस यदुवृद्धैर्महात्मभिः ॥ क्रोधं त्यक्त्वा स्थितस्तत्र
सत्यवाक्यानुमोदितः ॥ ततो दुंदुभयो नेदुर्वादित्राणि च सस्वनुः ॥ ८७ ॥

सब मैं आपको समर्पण करूंगा ॥ ८३ ॥ जो सब पुत्र उत्पन्न होंगे. वे उत्पन्न होते ही यदि सब तुमको न दूँ. तो मेरे पूर्व पुरुषगण कुंभी पाकनरकमें गिरें
॥ ८४ ॥ सामने खडे पुरुवंशी लोगोंने वसुदेवका इस प्रकार सत्य वचन सुन बारंबार साधु वाद देकर कंससे कहा ॥ ८५ ॥ वसुदेव महाशय पुरुष हैं. यह किसी
समय भी मिथ्या वचन नहीं कहते अतएव हे महाभाग! अब देवकीके केशकलाप छोडकर हत्याके पापसे मुक्त होओ ॥ ८६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्!
जब महात्मा बूढे यादवोंने कंसको इस प्रकार समझाया तब वह वसुदेवके सत्य वाक्यका अनुमोदन कर क्रोध परित्याग पूर्वक खडा रहा, उसकाल दुन्दु भीकी
ध्वनि और वादित्रस्वरसे वह स्थान पूर्ण हो गया ॥ ८७ ॥

" और सबका धन्य धन्य जयशब्द उच्चारित होने लगा " तब शूरसेनके पुत्र महायशा वसुदेव ने इस प्रकार कंसराजको प्रसन्न करके देवकीको छुडाया और फिर स्वजनगणोंसे परिवृत हो नवोढ़ा (नई ब्याही) वधूके सहित निर्भय अपने घरकी ओर शीघ्र प्रस्थान किया ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां विंशोध्यायः ॥ २० ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! अनन्तर देवरूपिणी देवकीने वसुदेवके संग यथा नियमसे मिलित हो गर्भ धारण किया ॥ १ ॥ फिर दशमास पूर्ण होनेपर देवकीका स्वरूप शोभानाकृति प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ उस समय महाभाग वसुदेव कंसके निकट प्रतिज्ञाके सत्यवाक्य और भवितव्यता स्मरण करके अदितिके अंशोत्पन्न देवकीसे कहने लगे ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी। मैंने तुम्हारे विवाहकालमें कंससे " देवकीके गर्भसे

"जयशब्दस्तु सर्वेषामुत्पन्नस्तत्र संसदि ॥" प्रसाद्य कंसंप्रतिमोच्य देवकीं महायशाः शूरसुत स्तदानीम् ॥ जगाम गेहं स्वजनानुवृत्तो नवोढया वीतभयस्तरस्वी ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ अथ काले तु संप्राप्ते देवकी देवरूपिणी ॥ गर्भंदधार विधिवद्वसुदेवेन संगता ॥ १ ॥ पूर्णेऽथ दशमे मासे सुषुवे सुतमुत्तमम् ॥ रूपावयवसंपन्नं देवकी प्रथमं यदा ॥ २ ॥ तदाऽऽहवसुदेवस्तां सत्यवाक्यानुमोदितः ॥ भावित्वाच्च महाभागो देवकीं देवमातरम् ॥ ३ ॥ वरोरु समयं मे त्वं जानासि स्वसुतार्पणे ॥ मोचिता त्वं महाभागे शपथेन मया तदा ॥ ४ ॥ इमं पुत्रं सुकेशांते दास्यामि भ्रातृसूनवे ॥ " खले कंसे विना शार्थ दैवे किं वा करिष्यसि ॥ " विचित्रकर्मणां पाको दुर्ज्ञेयोह्यकृतात्मभिः ॥५॥ सर्वेषां किल जीवानां कालपाशानुवर्तिनाम् ॥ भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ ६ ॥

जो संतान जन्मग्रहण करेगी, उत्पन्न होते ही तुमको दूंगा " यह कह शपथ कर तुम्हारी उसके हाथसे रक्षा करी है, सो तुम जानती ही हो अब कंसके हाथमें पुत्रको समर्पण करनेका वही समय उपस्थित है ॥ ४ ॥ हे सुकेशी ! इस समय इस पुत्रको तुम्हारे पितृव्य पुत्र अर्थात् भ्राता कंसके हाथमें समर्पण करूंगा ! हे देवि ! देखो अत्यन्त खल कंस और दैवके विषयमें पुत्रके नाशार्थ क्या उपाय करोगी यह मैं कह नहीं सकता हे महाभागे ! इस विषयमें तुम्हारी वा मेरी क्या सामर्थ्य है ? कर्मका परिणाम अतिशय विचित्र है साधारण मनुष्य उसको नहीं जान सकता ॥ ५ ॥ सम्पूर्णही जीव कालपाशके वशीभूत हो अपने किये अच्छे बुरे कर्मका फल भोगते हैं ॥ ६ ॥

जीवगणोंका प्रारब्ध अर्थात् कर्माधीन फल भोग विधि निर्मित जानकर इस विषयका अनुमोदन करो । देवकी बोली हे स्वामिन् ! मनुष्योंको अवश्यही पूर्वकृत कर्मोंका फल भोगना होता है ॥ ७ ॥ किन्तु वह क्या तीर्थवास, तपस्या, अथवा दानसे वह पाप ध्वंश नहीं होता, महात्मा महर्षिगणोंने धर्मशास्त्रमें पूर्वार्जित पाप विनाशके निमित्त प्रायश्चितकी विधि कही है ॥ ८ ॥ ब्रह्मघाती, सुवर्ण चुराने वाले, मदिरा पीनेवाले और गुरुकी स्त्रीका हरण करनेवाले इत्यादि पातकी ॥ ९ ॥ द्वादश वार्षिक व्रतका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होते हैं, मनु इत्यादि मुनियोंने जिस प्रकार प्रायाश्वित विधान किया है ॥ १० ॥ यदि मनुष्यगण उसीके अनुसार क्रियाका अनुष्ठान करें तो क्या पापसे मुक्त न हों ? यदि प्रायश्चित्तको शुद्धिका कारण स्वीकार न किया जाये तो क्या धर्मशास्त्रके

प्रारब्धं सर्वथैवाऽत्र जीवस्य विधिनिर्मितम् ॥ देवक्युवाच ॥ स्वामिन्पूर्वं कृतं कर्म भोक्तव्यं सर्वथा नृभिः ॥ ७ ॥ तीर्थैस्तपोभिर्दानैर्वा किं न याति क्षयं हि तत् ॥ लिखितो धर्मशास्त्रेषु प्रायश्चित्तविधिर्नृप ॥ ८ ॥ पूर्वार्जितानां पापानां विनाशाय महात्मभिः ॥ ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ॥ ९ ॥ द्वादशाब्दव्रते चीर्णे शुद्धिं याति यतस्ततः ॥ मन्वादिभिर्यथोद्दिष्टं प्रायश्चित्तं विधानतः ॥ १० ॥ तथा कृत्वा नरः पापान्मुच्यते वा न वाऽनघ ॥ विगीतवचनास्तं किं मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥११॥ याज्ञवल्क्यादयः सर्वे धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः ॥ भवितव्यं भवत्येव यद्येवं निश्चयः प्रभो ॥ १२ ॥ आयुर्वेदः स मिथ्यैव मंत्रवादास्तथाऽखिलाः ॥ उद्यमस्तु वृथा सर्वमेवं चेद्दैवनिर्मितम् ॥१३॥ भवितव्यं भवत्येव प्रवृत्तिस्तु निरर्थिका ॥ अग्निष्टोमादिकं व्यर्थं नियतं स्वर्गसाधनम् ॥ १४ ॥ यदा तदा प्रमाणं हि पृथैव परिभाषितम् ॥ वितथे तत्प्रमाणे तु धर्मोच्छेदः कुतो न हि ॥ १५ ॥

प्रवर्त्तक याज्ञवल्क्यादि तत्वदर्शी महर्षिगणोंके वचनको मिथ्या और गर्हित कहें ? हे प्रभो! जो भवितव्य अर्थात् होनहार है वह अवश्यही होगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ यह यदि निश्चित ही है, तो सम्पूर्ण आयुर्वेद और मंत्रवाद मिथ्या हुआ जाता है, यदि सम्पूर्ण कार्यही दैवसंघटित हों तो किसी उद्यमसे कोई भी फल लाभ नहीं होता, अतएव उन सबको ही वृथा मानना होगा ॥ १३ ॥ और जो भवितव्य है वही होगा. यदि यह बात स्वीकार कीजाय तो कर्ममें प्रवृत्ति और अग्निष्टोमादि स्वर्गसाधक सब यज्ञ निरर्थक हुए जाते हैं ॥ १४ ॥ विचार करके देखो, यदि दैवकी ही प्रबलता स्वीकार की जाय, तो परमेश्वरके कहे सम्पूर्ण वेदही मिथ्या हुए जाते हैं यदि वेदका प्रमाण मिथ्या हो तो धर्मका भी क्यों न होगा ? ॥ १५ ॥

जब कि उद्यम करनेसेही फलसिद्धि प्रत्यक्ष देखी जाती है तो कार्यसाधनके लिये विचारपूर्वक किसी उपायका अवलम्बन करना चाहिये ॥ १६ ॥ अतएव जिससे मेरे सद्योजात बालकका मंगल हो, विचार करके इसका कोई अच्छा उपाय स्थिर करो. पंडितगण कहते हैं कि, यदि किसी जीवकी रक्षा इत्यादि मंगलाकांक्षासे कदाचित् झूठ बोलो ॥ १७ ॥ तो वह दोषमें नहीं गिना जाता यह महात्माओंका कथन है । वसुदेवजी बोले हे महाभागे ! मैं तुमसे सत्यका विषय कहता हूं सुनो ॥ १८ ॥ यद्यपि उद्यम मनुष्यका अवश्य कर्तव्य है, किन्तु उसका फल दैवके आधीन जानना चाहिये । पुरातन तत्त्ववादी इस संसारमें तीन प्रकारके कर्म कहते हैं ॥ १९ ॥ पुराण और आगम (शास्त्र) में कहा है कि, इस संसारमें जीवोंके कर्म तीन प्रकार हैं. हे सुमध्ये ! पूर्वकृत संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म ॥ २० ॥

उद्यमे च कृते सिद्धिः प्रत्यक्षेणैव साध्यते ॥ तस्मादत्र प्रकर्तव्यः प्रपंचश्चित्तकल्पितः ॥ १६ ॥ यथाऽयं बालकः क्षेमं प्राप्नोति मम पुत्रकः ॥ मिथ्या यदि प्रकर्तव्यं वचनं शुभमिच्छता ॥ १७ ॥ न तत्र दूषणं किंचित्प्रवदंति मनीषिणः ॥ वसुदेव उवाच ॥ निशामय महाभागे सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १८ ॥ उद्यमः खलु कर्तव्यं फलं दैववशानुगम् ॥ त्रिविधा नीह कर्माणि संसारेऽत्र पुराविदः ॥ १९ ॥ प्रवदंतीह जीवानां पुराणेष्वागमेषु च ॥ संचितानि च जीर्णानि प्रारब्धानि सुमध्यमे ॥ २० ॥ वर्तमानानि वामोरु त्रिविधानीह देहिनाम् ॥ शुभाशुभानि कर्माणि बीजभूतानि यानि च ॥ २१ ॥ बहुजन्मसमुत्थानि काले तिष्ठंति सर्वथा ॥ पूर्वदेहंपरित्यज्य जीवः कर्मवशानुगः ॥ २२ ॥ स्वर्गं वा नरकं वाऽपि प्राप्नोति स्वकृतेन वै ॥ दिव्य देहं च संप्राप्य यातना देहमर्थजम् ॥ २३ ॥ भुनक्ति विविधान्भोगान्स्वर्गे वा नरकेऽथ वा ॥ भोगांते च यदोत्पत्तेः समयस्तस्य जायते ॥ २४ ॥ लिंगदेहेन सहितं जायते जीवसंज्ञितम् ॥ तदैव संचितेभ्यश्च कर्मभ्यःकर्मभिः पुनः ॥ २५ ॥

और वर्तमान अनेक जन्मोंके किये बीजस्वरूप जो शुभाशुभ (अच्छे बुरे) कर्म हैं ॥ २१ ॥ वह सभी जन्मांतरोंके समयमें अवस्थित रहते हैं उन कर्मोंके वशीभूत होकर ही जीव पूर्व देह छोड़कर अपने कर्मसे ॥ २२ ॥ स्वर्ग वा नरक भोगते हैं, जीवगण अपने अपने शुभाशुभ कर्मानुसार पुण्यजनित दिव्यदेह अथवा पापजनित यातनामय देह धारण करके ॥ २३ ॥ स्वर्ग वा नरकमें पुण्यपापसे उत्पन्न विविध प्रकारके भोग करते हैं, इन कर्मोंके भोगनेपर फिर जब उसके देह धारण करनेका समय आता है ॥ २४ ॥ लिंगदेहके सहित जीव संज्ञाको प्राप्त होकर जन्म ग्रहण करता है लिंगदेहके आविर्भाव समयमें परमेश्वर जीवके संचित कर्मसमूहसे परिपक्वकर्मसमूह ॥ २५ ॥

इस जीवमें योजित करते हैं. इस कारण संचित शुभाशुभ कर्मसमूह जीवदेहमें निरन्तर वर्तमान रहते हैं ॥ २६ ॥ हे सुलोचने ! प्रारब्ध कर्मका फल जीवोंको अवश्य ही भोगना होता है. हे भामिनी ! यथाविधि प्रायश्चित अनुष्ठानसे जीवोंके वर्तमान सब कर्म नष्ट होते हैं ॥ २७ ॥ इसी प्रकार संचित भी और प्रारब्ध भोगद्वारा ही क्षय होता है. प्रायश्चित वा अन्य किसी प्रकारसे उसका क्षय नहीं होता ॥ २८ ॥ अतएव कंसराजको तुम्हारा यह पुत्र अवश्य देना चाहिये हे देवि ! इस संसारमें जिससे लोकनिंदा या मिथ्या बात प्रकाशित हो मैं कभी वह नहीं करूंगा ॥ २९ ॥ इससे तुम सत्यकी रक्षा करके कंसके हाथमें कुमारको समर्पण करो । हे देवकी ! इस असार संसारमें धर्म ही सार वस्तु है महात्मा लोगोंका जीवन मरण दैवके आधीन है ॥ ३० ॥ इस कारण जीवोंको निरर्थक

योजयत्येव तं कालं कर्माणि प्राक्तनानि च ॥ देहेनाने भाव्यानि शुभानि चाशुभानि च ॥ २६ ॥ प्रारब्धानि च जीवेन भोक्तव्यानि सुलोचने ॥ प्रायश्चित्तेन नश्यंति वर्तमानानि भामिनि ॥२७॥ संचितानि तथैवाऽऽशु यथार्थं विहितेन च ॥ प्रारब्धकर्मणां भोगात्संक्षयो नान्यथा भवेत् ॥ २८ ॥ तेनायं ते कुमारो वै देयः कंसाय सर्वथा ॥ नमिथ्या वचनं मेऽस्ति लोकनिंदाऽभिदूषितम् ॥ २९ ॥ अनित्येऽस्मिंस्तु संसारे धर्मसारे महात्मनाम् ॥ दैवाधीनं हि सर्वेषां मरणं जननं तथा ॥३०॥ तस्माच्छोको न कर्तव्यो देहिना हि निरर्थकः ॥ सत्यं यस्य मतं कांते वृथा तस्यैव जीवितम् ॥ ३१ ॥ इहलोको गतो यस्मात्परलोकः कुतस्ततः ॥ अतो देहि सुतं सुभ्रु कंसाय प्रददाम्यहम् ॥ ३२ ॥ सत्यसंस्तरणाद्देवि शुभमग्रे भविष्यति ॥ कर्तव्यं सुकृतं पुंभिः सुखे दुःखे सति प्रिये ॥ ३३ ॥ "सत्यसंरक्षणाद्देवि शुभमेव भविष्यति ॥" व्यास उवाच ॥ इत्युक्तवति कांते सा देवकी शोक संयुता ॥ ददौ पुत्रं प्रसूतं च वेपमाना मनस्विनी ॥ ३४ ॥

शोकप्रकाश करना कभी कर्त्तव्य नहीं है. हे जीवनाधिके ! अधिक क्या कहूं । जिसका सत्य नष्ट होजाता है उसका जीवन ही वृथा है ॥ ३१ ॥ हे सुभ्रू ! जिसका यह लोक नष्ट हुआ इससे फिर परलोकका क्या कार्य साधित हो सकता है । कहो अतएव हे देवि ! बालकको दो, मैं कंसके हाथमें इसको समर्पण करूं ॥ ३२ ॥ हे प्रिये ! सत्यपार होनेपर फिर अवश्यही हमारा मंगल होगा जिस स्थानमें जीवका सुखदुःख निश्चित रहता है, उस स्थानमें सुकृत साधन उचित ही है ॥ ३३ ॥ " सत्यकी रक्षा करनेसे अवश्यही शुभ फल होगा इसमें संदेह नहीं" व्यासजी बोले अपने स्वामी वसुदेवके यह सब वचन कहनेपर शोकयुक्त मनस्विनी देवकीने कंपित कलेवर हो सयभसत उस पुत्रको वसुदेवके हाथमें समर्पण किया ॥ ३४ ॥

धर्मात्मा वसुदेव उस बालक पुत्रको लेकर कंसके भवनकी ओर चले । मार्गमें मनुष्य उनके इस अद्भुत कार्यको देख प्रशंसा करके कहने लगे ॥ ३५ ॥ लोक बोले हे जनगण ! वसुदेवकी मनस्विता देखो, यह अपने सत्य वचनकी रक्षाके निमित्त निज बालक पुत्रको ग्रहण करके कंसके घर जा रहे हैं ॥ ३६ ॥ यह सत्यवादी असूयारहित पुरुष प्रधान वसुदेव अपने पुत्रको मृत्युके कराल कवलमें देनेके अभिलाषी हुए हैं तुम लोग इनका यह अद्भुत धैर्य देखो. अहो ! इस महापुरुषका ही जीवन सार्थक है ॥ ३७ ॥ यह कालरूप कंसको पुत्र देने जाते हैं व्यासजी बोले हे पृथ्वीन्द्र ! वसुदेव इस प्रकार स्तूयमान होकर कंसके गृहमें पहुँचे ॥३८॥ और तुर्तके हुए उस देवरूपी पुत्रको कंसके हाथमें समर्पण किया उनका इस प्रकार धैर्य देखकर कंसराजको भी अत्यन्त अचंभा हुआ ॥३९॥

वसुदेवोऽपि धर्मात्मा आदाय स्वसुतं शिशुम् ॥ जगाम कंससदनं मार्गे लोकैरभिष्टुतः ॥ ३५ ॥ लोका ऊचुः ॥ पश्यंतु वसुदेवं भो लोका एवं मनस्विनम् ॥ स्ववाक्यमनुरुध्यैव बालमादाय यात्यसौ ॥ ३६ ॥ मृत्यवे दातुकामोऽद्य सत्यवागनसूयकः ॥ सफलं जीवितं चाऽस्य धर्मं पश्यंतु चाऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥ यः पुत्रं याति कंसाय दातुं कालात्मनेऽपि हि ॥ व्यास उवाच ॥ इति संस्तूयमानस्तु प्राप्तः कंसालयं नृप ॥ ३८ ॥ ददावस्मैः कुमारं तं जातमात्रममानुषम् ॥ कंसोऽपि विस्मयं प्राप्तो दृष्ट्वा धैर्यं महात्मनः ॥ ३९ ॥ गृहीत्वा बालकं प्राह स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ धन्यस्त्वं शूरपुत्राद्य ज्ञातः पुत्रसमर्पणात् ॥ ४० ॥ मम मृत्युर्न चायं वै गिरा प्रोक्तस्तु चाष्टमः ॥ न हंतव्यो मया कामं बालोऽयं यातु ते गृहम् ॥ ४१ ॥ अष्टमस्तु प्रदातव्यस्त्वया पुत्रो महामते ॥ इत्युक्त्वा वासुदेवाय ददावाशु खलः शिशुम् ॥ ४२ ॥ गच्छत्वयं गृहे बालः क्षेमं व्याहृतवान्नृपः ॥ तमादाय तदा शौरिर्जगाम स्वगृहं मुदा ॥ ४३ ॥

तब उसने बालकको ले कुछेक हँसकर कहा हे शूरपुत्र ! तुम इस समय मुझको पुत्र देकर धन्य हुए ॥ ४० ॥ किन्तु वह आकाशवाणी हुई है कि तुम्हारा आठवां पुत्रही मेरा कालस्वरूप है, तुम्हारा यह प्रथम पुत्र मेरा मृत्युस्वरूप नहीं है इससे मैं इस बालकको नहीं मारूंगा, यह बालक तुम्हारे घर जाय ॥४१॥ हे महामते ! जब तुम्हारा आठवां पुत्र जन्म ले, तब तुम वह पुत्र मुझको अवश्य प्रदान करना, क्रूरात्मा कंसने यह कहकर वसुदेवके हाथमें उस बालकको फेर दिया ॥ ४२ ॥ और कहा कि हे राजन् ! इस पुत्रको निर्विघ्न घरले जाओ कंसराजके इस प्रकार कहनेपर शूरसेनके पुत्र वसुदेव पुत्रको लेकर अपने घर चले गये ॥ ४३ ॥

तब कंसराजने भी अपने मंत्रियोंसे कहा जब आकाशवाणी हुई है कि, देवकीका आठवां पुत्र ही मेरा मृत्युस्वरूप होगा तब इस बालक को वृथा क्यों मारूं ॥ ४४ ॥ प्रथम पुत्रको मारकर पापग्रहण करनेका क्या प्रयोजन है? मंत्री लोग कंसका यह वचनसुन साधु साधु कह उसकी बहुत प्रशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥ अनंतर कंसराजके उनको बिदा देनेपर वह अपने अपने घर गये तदुपरांत मुनिसत्तम नारदजी आकर कंसके समीप उपस्थित हुए ॥ ४६ ॥ तब उग्रसेनके पुत्र कंसने उठ पाद्य और अर्घ्यादि दे उनकी पूजा और कुशल प्रश्न कर उनके सहसा आनेका कारण पूंछा ॥ ४७ ॥ तब महर्षि नारदने कुछेक हँस आदरपूर्वक कंससे कहा हे महाभाग ! मैं घटना उपस्थित होनेपर सुमेरु पर्वतमें गया था ॥ ४८ ॥ वहां ब्रह्मादिदेवता लोग मिलित होकर यह परामर्श

कंसोऽपि सचिवानाह वृथा किं घातये शिशुम् ॥ अष्टमाद्देवकीपुत्रान्मम मृत्युरुदाहृतः ॥ ४४ ॥ अतः किं प्रथमं बालं हत्वा पापं करोम्यहम् ॥ साधुसाध्विति तेऽप्युक्त्वा संस्थिता मन्त्रिसत्तमाः ॥ ४५ ॥ विसर्जितास्तु कंसेन जग्मुस्ते स्वगृहान्प्रति ॥ गतेषु तेषु संप्राप्तो नारदो मुनिसत्तमः ॥ ४६ ॥ अभ्युत्थानार्घ्यपाद्यादि चकारोग्रसुतस्तदा ॥ पप्रच्छ कुशलं राजा तत्राऽऽगमनकारणम् ॥ ४७ ॥ नारदस्तं तदोवाच स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ कंस कंस महाभाग गतोऽहं हेमपर्वतम् ॥ ४८ ॥ तत्र ब्रह्मादयो देवा मंत्रं चक्रुः समाहिताः ॥ देवक्यां वसुदेवस्य भार्यायां सुरसत्तमः ॥ ४९ ॥ वधार्थं तव विष्णुश्च जन्म चाऽत्र करिष्यति ॥ तत्कथं न हतः पुत्रस्त्वया नीतिं विजानता ॥ ५० ॥ कंस उवाच ॥ अष्टमं च हनिष्येऽहं मृत्युं मे देवभाषितम् ॥ नारद उवाच ॥ न जानासि नृपश्रेष्ठ राजनीतिं शुभाशुभम् ॥ ५१ ॥ मायाबलं च देवानां न त्वं वेत्सि वदामि किम् ॥ रिपुरल्पोऽपि शूरेण नोपेक्ष्यः शुभमिच्छता ॥ ५२ ॥ संमेलनक्रियायां तु सर्वे ते ह्यष्टमः स्मृताः ॥ मूर्खस्त्वमरिसंत्यागः कृतोऽयं जानता त्वया ॥ ५३ ॥

करते थे कि वसुदेवकी भार्या देवकीके गर्भसे सुरसत्तम ॥ ४९ ॥ विष्णु कंसके मारनेको जन्मग्रहण करें तुमसे पूछता हूं कि तुम नीतिशास्त्रमें पण्डित हो. विशेष करके देववाणीका मर्मभी जानते हो. किन्तु तो भी वसुदेवके पुत्रको न मारनेका कारण क्या है ॥ ५० ॥ कंसने कहा मैं आकाशवाणीके अनुसार आठ वहीं पुत्रको मारूंगा नारदजीने कहा हे नृपवर ! जान पडता है, तुम शुभाशुभ भूलकर नीतिको कुछ नहीं जानते ॥ ५१ ॥ विशेषकर देवताओंकी माया किस प्रकार है, उसको जब तुम नहीं जानते तब फिर तुमसे क्या कहूं ? कल्याणकी इच्छा करनेवाले शूरगण अत्यंत छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करते ॥ ५२ ॥ तुमसे अधिक और क्या कहूं आप अष्टम शब्दका अर्थ भली भांतिसे नहीं समझ सके. प्रथमसे आरंभ करके अष्टमपर्यंत जो संतान हो. गणना प्रणालीसे वह सब

आठवीं हो सकती है शत्रुको छोड़ना नहीं चाहिये. यह तुम जानतेही हो. तो फिर क्यों हाथमें लेकर उस शत्रुको छोड़ दिया ? इसमें तुम्हारी मूर्खता प्रकाशके सिवाय और क्या हो सकता है ॥ ५३ ॥ यह कहकर श्रीमान् देवप्रतिम महर्षि नारदजी तत्काल चले गये तब मंदबुद्धि कंस बालकको उसी समय बुला ॥५४॥ पत्थरपर पटक उसका प्राणसंहार कर स्थिरचित्त हुआ. इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ जनमेजय पूछने लगे हे पितामह ! उस बालकने ऐसा क्या पापकार्य किया था जो उत्पन्न होते ही कंसने उसका विनाश किया ॥ १ ॥ विशेष करके महर्षि नारद मुनियोंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मविद्गणोंमें अग्रणी, सदा धर्ममें तत्पर और ज्ञानवान् होकर ऐसे पापकार्यमें प्रवृत्त क्यों हुए ॥ २ ॥ पण्डितगण कहते हैं कि पापकार्यका कहनेवाला और उसमें प्रवृत्त करानेवाला दोनोंही समान पापके भागी हैं. तो मुनिश्रेष्ठ नारदने किसकारण उस खल कंसको शिशुवधमें प्रवृत्त किया ॥ ३ ॥ इस विषयमें मुझको

इत्युक्त्वाऽऽशु गतः श्रीमान्नारदो देव दर्शनः ॥ गतेऽथ नारदे कंसः समाहूयाथ बालकम् ॥ ५४ ॥ पाषाणे पोथयामास सुखं प्राप च मंदधीः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे च० स्कं० एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ जनमेजय उवाच ॥ किं कृतं पातकं तेन बालकेन पितामह ॥ यो जातमात्रो निहतस्तथा तेन दुरात्मना ॥ १ ॥ नारदोऽपि मुनिश्रेष्ठो ज्ञानवान्धर्मतत्परः ॥ कथमेवंविधं पापं कृतवान्ब्रह्मवित्तमः ॥ २ ॥ कर्ता कारयिता पापे तुल्यपापौ स्मृतौ बुधैः ॥ स कथं प्रेरयामास मुनिः कंसं खलं तदा ॥ ३ ॥ संशयोऽयं महान्मेऽत्र ब्रूहि सर्वं सविस्तरम् ॥ येन कर्मविपाकेन बालको निधनंगतः ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ नारदः कौतुकप्रेक्षी सर्वदा कलहप्रियाः ॥ देवकार्यार्थमागत्य सर्वमेतच्चकार ह ॥ ५ ॥ न मिथ्या भाषणे बुद्धिर्मुनेस्तस्य कदाचन ॥ सत्यवक्ता सुराणां स कर्तव्ये निरतः शुचिः ॥ ६ ॥ एवं षड् बालकास्तेन जाता जाता निपातिताः ॥ षड्गर्भाः शापयोगेन संभूय मरणं गताः ॥ ७ ॥

घोर संदेह उपस्थित हुआ है हे मुनींद्र. जो कर्मविपाकके कारण वह बालक मृत्युको प्राप्त हुआ हो . यह आप विस्तारसहित मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले, देवर्षि नारद सदा कलहप्रिय हैं, अतएव सर्वदाही कौतुक देखना अच्छा समझते हैं।विशेष कर वह देवताओंका कार्य साधनके निकट ही कंसके निकट आकर इस प्रकार कार्यमें प्रवृत्त हुए थे ॥ ५ ॥ वास्तवमें उनके कभी मिथ्या कहनेका अभिप्राय नहीं है. वह सत्यवक्ता, पवित्रचेता और देवताओंके कार्यसाधनमें सदा तत्पर हैं ॥ ६ ॥ जो हो. इसी प्रकार क्रमानुसार देवकीके छ पुत्र उत्पन्न हुए कंसने भी उत्पन्न होते ही उन छओं बालकोंका क्रमशः विनाश किया वे गर्भ छे बालक शापका कारण जन्मते ही नष्ट हुए ॥ ७ ॥

हे राजन्! उनके शापके कारण कहता हूं. सुनो स्वायम्भुव मनुके अधिकार कालमें महर्षि मरीचिकी ॥ ८ ॥ ऊर्णानाम्नी पत्नीके गर्भसे धर्मनिरत महाबल वान् छे पुत्र उत्पन्न हुए किसी समय प्रजापति ब्रह्मा कामबाणसे मोहित हो अपनी कन्याके संग रमण करनेमें उद्यत हुए. तब वे इनको देखकर हंसे ॥ ९ ॥ इस कारण ब्रह्माने उनको यह कहकर शाप दिया कि तुम शीघ्र असुरयोनिमें जन्म ग्रहण करो हे राजन् ! तदनन्तर उसी षड्गर्भने प्रथम कालनेमिके पुत्र होकर जन्म ग्रहण किया था ॥ १० ॥ दूसरे जन्ममें वह हिरण्यकशिपुके पुत्ररूपमें प्रादुर्भूत हुए इस बार वह पूर्वके शापभयसे ज्ञानविच्युत नहीं हुए ॥ ११ ॥ इस जन्ममें वे शान्त और सावधान होकर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए. इससे ब्रह्माजीने प्रसन्नतापूर्वक उनको वर देनेमें उद्यत होकर कहा ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तेषां शापस्य कारणम् ॥ स्वायंभुवेऽन्तरे पुत्रा मरीचे षण्महाबलाः ॥ ८ ॥ ऊर्णायां चैव भार्यायामासन्धर्मविचक्षणाः ॥ ब्रह्माणं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥ ९ ॥ शशाप तांस्तदा ब्रह्मा दैत्ययोनिं विशंत्वधः ॥ कालनेमिसुता जातास्ते षड्गर्भाविशांपते ॥१०॥ अवतारे परे ते तु हिरण्यकशिपोः सुताः ॥ जातास्ते ज्ञानसंयुक्ताः पूर्वं शापभयान्नृप ॥ ११ ॥ तस्मिञ्जन्मनि शांताश्च तपश्चक्रुः समाहिताः ॥ तेषां प्रीतोऽभवद्ब्रह्मा षड्गर्भाणां वरान्ददौ ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शप्ता यूयं मया पूर्वं क्रोधयुक्तेन पुत्रकाः ॥ तुष्टोऽस्मि वो महाभागा ब्रुवंतु वांछितं वरम् ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ तेतुश्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः प्रीतमानसाः ॥ ब्रह्माण मब्रुवन्कामं सर्वे कार्यार्थतत्पराः ॥ १४ ॥ गर्भा ऊचुः ॥ पितामहाद्य तुष्टोऽसि देहि नो वांछितं वरम् ॥ अवध्या दैवतैः सर्वैर्मानवैश्च महोरगैः ॥ १५ ॥ गंधर्वसिद्धपतिभिर्विधो मा भूत्पितामह ॥ व्यास उवाच ॥ तानुवाच ततो ब्रह्मा सर्वमेतद्भविष्यति ॥ १६ ॥ गच्छंतु वो महाभागाः सत्यमेव न संशयः ॥ दत्त्वा वरं ततो ब्रह्मा मुदितास्ते तदाऽभवन् ॥ १७ ॥

पुत्रगण ! मैंने पूर्वमें क्रोधित होकर तुमको शाप दिया था किन्तु अब मैं तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ हूं तुम लोग वांछितवर मांगो ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले अनन्तर वह सभी ब्रह्माजीका वचन सुन अपने कार्यसाधनमें तत्पर हुए और प्रसन्नमन हो प्रजापतिसे कहा ॥ १४ ॥ हे पितामह ! आप अब हमारे प्रति प्रसन्न हुए हैं तो इस समय हमको वांछित वर दीजिये ! हे पितामह ! हम सब देवता मानव महोरग ॥ १५ ॥ गन्धर्व और सिद्धपतिगणोंसे अवध्य हों यही हमारी प्रार्थना है. व्यासजी बोले उनके यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले तुमने जो प्रार्थना की वह सिद्ध होगी॥ १६ ॥ हे महाभाग ! तुम लोग जाओ यह वर सत्य होगा इसमें संशय नहीं है ब्रह्माजीके इस प्रकार वर देनेसे वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और ब्रह्माजी अपने स्थानको चले गये ॥ १७ ॥

हिरण्यकशिपुके पुत्रगणभी अभिलाषित वर पाकर अत्यन्त आनन्दित हुए हे कुरुसत्तम ! हिरण्यकशिपुके " पुत्रोंने मुझको छोड़ पितामहको संतुष्ट किया " यह जान अत्यन्त क्रोधित होकर उनसे कहा ॥ १८ ॥ तुम लोग वरके प्रभावसे अत्यंत दर्पित हुए हो विशेष करके तुमने जब मेरे प्रति स्नेहत्याग किया, वो मैं भी तुम्हारा त्याग करता हूँ ॥ १९ ॥ अब तुम पातालमें जाओ, तुम पृथ्वीतलमें षड्गर्भ नामसे विख्यात होगे और तुम पातालमें जाकर सदा निद्रामें पड़े हुए अनेक वर्ष पर्यन्त वास करते रहो ॥ २० ॥ फिर तुम जिस समय देवकीके गर्भसे वर्ष २ में जन्म ग्रहण करोगे, उसी समय मैं तुम्हारा पूर्व पिता कालनेमि कंसरूपमें प्रगट होगा ॥ २१ ॥ वह नृशंसचित्त कंस तुमको उत्पन्न होते ही वध करेगा व्यासजी बोले उनको इस प्रकार शाप हुआ था, इस कारण

हिरण्य कशिपुः क्रुद्धस्तानुवाच कुरूद्वह ॥ यस्माद्विहाय मां पुत्रास्तोषितो वै पितामहः ॥ १८ ॥ वरेण प्रार्थितोऽत्यर्थं बलवन्तो यतोऽभवन् ॥युष्माभिर्हापितः स्नेहततो युष्मांस्त्यजाम्यहम् ॥ १९ ॥ यूयं व्रजंतु पाताले षड् गर्भा विश्रुता भुवि ॥ पाताले निद्रयाऽऽविष्टास्तिष्ठंतु बहुवत्सरान् ॥ २० ॥ ततस्तु देवकीगर्भे वर्षे वर्षे पुनः पुनः ॥ पिता वः कालनेमिस्तु तत्र कंस भविष्यति ॥ २१ ॥ स एव जातमा त्रान्वो वधिष्यति सुदारुणः ॥ व्यास उवाच ॥ एव शप्तांस्तदा तेन गर्भे जातान्पुनः पुनः ॥ २२ ॥ जघान देवकीपुत्रान्षड्गर्भाञ्छापनोदितः ॥ शेषांशः सप्तमस्तत्र देवकीगर्भसस्थितः ॥ २३ ॥ विस्रंसितश्च गर्भोऽसौ योगेन योगमायया ॥ नीतश्च रोहिणीगर्भे कृत्वा संकर्षणं बलात् ॥ २४ ॥ पतितः पंचमे मासि लोकख्यातिं गतस्तदा ॥ कंसोऽपि ज्ञातवांस्तत्र देवकीगर्भपातनम् ॥ २५ ॥ मुदं प्राप स दुष्टात्माश्रुत्वा वार्तां सुखावहाम् ॥ अष्टमे देवकीगर्भे भगवान्सात्वतां पतिः ॥ २६ ॥ उवास देवकार्यार्थं भारावतरणाय च ॥ राजोवाच ॥ वसुदेवः कश्यपांशः शेषांशश्च तदाऽभवत् ॥ २७ ॥

ही उन्होंने वारंवार जन्म ग्रहण किया ॥ २२ ॥ और कंसने भी उसी शापसे देवकीके गर्भोत्पन्न पुत्रोंको जन्मते ही विनाश किया। जब देवकीके सातवें गर्भमें अनंत देव आये ॥ २३ ॥ तब योगमायाने योगबलसे इस गर्भका आकर्षण कर रोहिणीके गर्भमें स्थापन किया ॥ २४ ॥ फलतः उसकाल देवकीका गर्भ पांचवें महीनेमें गिरगया यही लोकमें प्रचलित है कंसने भी जान लिया कि देवकीका गर्भ गिरगया ॥२५॥ यह सुखदायक संवाद सुनकर उस दुष्टात्माके संतोषकी सीमा न रही किंतु इधर भक्तजन प्रतिपालक भगवान्‌ने भी इसी समय देवताओंका कार्यसाधन ॥ २६॥ और पृथ्वीका भारहरण करनेको देवकीके अष्टमगर्भमें वास किया राजाने कहा हे मुनिवर ! आपने केवल कश्यपके अंश वसुदेव और पृथ्वीकी प्रार्थनानुसार भारहरण करनेको अनंत ॥ २७ ॥

और विष्णु देवके अंशावतारकोही विषय कहा किंतु क्रमसे किसी अंशावतारका विषय न कहा अतएव अब अन्यान्य देवता जो जिसरूपमें अपने अपने अंशसे आकर ॥ २८ ॥ पृथ्वीमें भार उतारनेको उत्पन्न हुए थे, आप यह सब वर्णन कीजिये व्यासजी बोले देवता और असुरोंके जो सब अंश पृथ्वीमें जिस नामसे विख्यात हुए थे ॥ २९ ॥ मैं वह विवरण संक्षेपसे कहता हूं, सुनो वसुदेव कश्यपके अंश, देवकी अदितिका, ॥ ३० ॥ बलदेव अनंतका अंश, धर्मके पुत्र श्रीमान् नारायण ऋषि कहकर विख्यात हैं ॥३१॥ उनके अद्यापि पूर्व शरीरमें विद्यमान रहनेपर भी वासुदेव कृष्ण उनके अंश हैं, जो नारायणके अनुज नरनामसे विख्यात हैं, अर्जुन उनकाही अंश है ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार धर्मका अंश युधिष्ठिर, वायुका अंश भीमसेन, महाबलवान् माद्रीके दोनों पुत्र

हरेरंशस्तथा प्रोक्तो भवता मुनिसत्तम ॥ अन्ये च येंऽशा देवानां तत्र जातास्तु तान्वद ॥ २८ ॥ भारावतरणार्थं वै क्षितेः प्रार्थनयाऽनघ ॥ व्यास उवाच ॥ सुराणामसुरां च ये येंऽशा भुवि विश्रुताः ॥ २९ ॥ तानहं संप्रवक्ष्यामि संक्षेपेण शृणुष्व तान् ॥ वसुदेवः कश्यपांशो देवकी च तथाऽदितिः ॥ ३० ॥ बलदेवस्त्वनंतांशो वर्तमानेषु तेषु च ॥ योऽसौ धर्मसुतः श्रीमान्नारायण इति श्रुतः ॥ ३३ ॥ तस्यांशो वासुदेवस्तु विद्यमाने मुनौ तदा ॥ नरस्तस्यानुजो यस्तु तस्यांशोऽर्जुन एव च ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिरस्तु धर्मांशो वाय्वंशो भीम इत्युत ॥ अश्विन्यंशौ ततः प्रोक्तौ माद्रीपुत्रौ महाबलौ ॥ ३३ ॥ सूर्यांश कर्ण आख्यातो धर्मांशो विदुरः स्मृत ॥ द्रौणो बृहस्पतेरंशस्तत्सुतस्तु शिवांशजः ॥ ३४ ॥ समुद्रः शंतनुः प्रोक्तो गंगा भार्या मता बुधैः ॥ देवकस्तु समाख्यातो गंधर्वपतिरागमे ॥३५॥ वसुर्भीष्मो विराटस्तु मरुद्गण इति स्मृतः ॥ अरिष्टस्य सुतो हंसौ धृतराष्ट्रः प्रकीर्तितः ॥ ३६ ॥ मरुद्गणः कृपः प्रोक्तः कृतवर्मा तथाऽपरः ॥ दुर्योधनः कलेरंशः शकुनिं विद्धि द्वापरम् ॥ ३७ ॥

दोनों अश्विनी कुमारका अंश ॥ ३३ ॥ कुन्तीका गर्भजात महावीर कर्ण दिनपति सूर्यदेवका अंश और परम तत्त्वके जाननेवाले महात्मा विदुरको साक्षात् धर्मराज यमका अवतार जानना चाहिये. कुरु पाण्डवोंको आचार्य द्रोण महाशय बृहस्पतिके अंश हैं, उनका पुत्र अश्वत्थामा रुद्र देवका अंश है ॥ ३४ ॥ समुद्रके अंश शंतनु, उनकी भार्या मानवरूप धारिणी गंगा है। पुराणमें कथित है कि, देवक नृपति गंधर्वपतिका अंश है. ॥३५॥ कौरव--पितामह शूराग्रगण्य भीष्मदेव साक्षात् वसुका अवतार है. मत्स्यपति विराट् मरुद्गणोंका अंश. दैत्य अरिष्टनेमि पुत्र हंसके अंशसे धृतराष्ट्र उत्पन्न हैं ॥ ३६ ॥ कृप और कृतवर्मा मरुद्गणोंका अंश. दुर्योधन कलिका और शकुनि द्वापरयुगका अंश है ॥ ३७ ॥

सोमपुत्र सुवर्चाख्य सोमप्ररुनामसे विख्यात हुआ था. धृष्टद्युम्न अग्नि और शिखंडी राक्षसका अंश है ॥ ३८ ॥ प्रद्युम्न सनत्कुमारका अंश. द्रुपदराजा वरुणका अंश. द्रौपदी लक्ष्मीका अंश ॥ ३९ ॥ द्रौपदीके पांच पुत्र विश्वेदेवाओंके अंश. कुन्ती सिद्धरूपिणी माद्री धृतिरूपिणी गान्धारी मतिरूपिणी है ॥ ४० ॥ कृष्ण पत्नीगण स्वर्गवाराङ्गना है इस प्रकार संपूर्ण देवता इन्द्रसे प्रेरित होकर राजा आदि अपने २ अंशसे उत्पन्न हुए थे ॥४१॥ असुरोंमें स्वयं हिरण्यकशिपु शिशुपालरूपमें अवतीर्ण हुआ था. इसी प्रकार जरासंध विप्र चित्तिके, शल्य प्रह्लादके, ॥ ४२ ॥ कंस कालनेमिके और केशी हयशिराके अंशसे उत्पन्न है. अरिष्ट नामक वृषभरूपधारी जो असुर गोकुलमें कृष्णके हाथसे मारा गया वह बलिका पुत्र था ॥ ४३ ॥ धृष्टकेतु अनुह्रादके, भगदत्त बाष्कलके, प्रलम्ब

सोमपुत्रः सुवर्चाख्यः सोमप्ररुरुदाहृत ॥ पाकांशो धृष्टद्युम्नश्च शिखंडी राक्षसस्तथा ॥ ३८ ॥ सनत्कुमारस्यांशस्तु प्रद्युम्नः परिकीर्तितः ॥ द्रुपदो वरुणस्यांशो द्रौपदी च रमांशजा ॥३९॥ द्रौपदी तनयाः पंच विंश्वेदेवांशजाः स्मृताः ॥ कुंतिः सिद्धिर्धृतिर्माद्री मतिर्गांधारराजजा ॥ ४० ॥ कृष्णपत्न्यस्तथा सर्वदेववारांगनाः स्मृताः ॥ राजानश्च तथा सर्वे असुराः शक्रनोदितः ॥४१॥ हिरण्यकशिपोरंशः शिशुपाल उदाहृतः ॥ विप्रचित्तिर्जरासंधः शल्यः प्रह्लाद इत्यपि ॥ ४२ ॥ तालनेमिस्तथा कंसः केशी हयशिरास्तथा ॥ अरिष्टो बलिपुत्रस्तु ककुद्मीगोकुले हतः ॥ ४३ ॥ अनुह्रदो धृष्ट केतुर्भगदत्तोऽथ बाष्कलः ॥ लंबः प्रलंबसंजातः खरोऽसौ धेनुकोऽभवत् ॥ ४४ ॥ वाराहश्च किशोरश्च दैत्यो परमदारुणौ ॥ मल्लौ तावेव संजातौ ख्यातौ चाणूरमुष्टिकौ ॥ ४५ ॥ दितिपुत्र स्तथाऽरिष्टो गजः कुवलयाभिधः ॥ बलिपुत्री बकी ख्याता बकस्तदनुजः स्मृतः ॥४६॥ यमो रुद्रस्तथा कामः क्रोधश्चैव चतुर्थकः ॥ तेषामंशैस्तु संजातो द्रोणपुत्रो महाबलः ॥ ४७ ॥ अंशावतरणे पूर्वं दैतेया राक्षसा स्तथा ॥ जाताः सर्वे सुरांशास्ते क्षितिभारावतारणे ॥ ४८ ॥

लम्बके और धेनुक खरके अंशसे उत्पन्न हुआ था ॥ ४४ ॥ वाराह और किशोर नामक जो अत्यन्त दारुण दो दैत्य थे चाणूर और मुष्टिक नामक दोनों मल्ल इन्हीं दोनोंके अंशसे उत्पन्न हैं ॥ ४५ ॥ कुवलयनामक कंसका हाथी अरिष्ट नामक दितिपुत्रके अंशसे उत्पन्न है, बकी बलिकी कन्या बक उसका अनुज ॥ ४६ ॥ द्रोणाचार्यका महाबलवान् पुत्र अश्वत्थामा यद्यपि केवल रुद्रांश कहकर विख्यात है किंतु वास्तविक यम, रुद्र, काम और क्रोध इन चारके अंशसे उत्पन्न हुआ था ॥४७॥ पृथ्वीके भारावतरणको अंशावतारसे जो जो दैत्य और राक्षस गण उत्पन्न हुए थे. वह सभी असुरगणोंका अंश हैं ॥४८॥

हे नृप ! पुराणमें सुर और असुरगणोंका अंशावतार कथित है, वह मैंने तुमको सब वर्णन किया ॥ ४९ ॥ ब्रह्मादि देवता जिस समय प्रार्थनाके उद्देशसे विष्णुके निकट गये थे. उसकाल हरिने उनको एक अपना श्वेतवर्ण और एक कृष्णवर्ण यह दो केश दिये थे ॥ ५० ॥ उनमेंसे श्यामवर्ण केशसे कृष्णकी और शुभ्र (सफेद) केशसे संकर्षण बलदेवजीकी उत्पत्ति हुई. इन दोनोंने ही भूमिका भार हरण करनेके लिये विष्णुके अंशसे जन्म ग्रहण किया था ॥ ५१ ॥ जो पुरुष भक्ति भावसे इस अंशावतारकी कथा सुनता है. वह सब पापोंसे छूट स्वजनगणोंके संग प्रमोद सहित कालव्यतीत करता है इसमें संदेह नहीं ॥ ५२ ॥ यह केशादि शब्द अंशवाचक जानने चाहिये । इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजी बोले उग्रसेन तनय

एतेषां कथितं राजन्नंशावतरणं नृप ॥ सुराणां चासुराणां च पुराणेषु प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥ यदा ब्रह्मादयो देवाः प्रार्थनार्थं हरिं गताः ॥ हरिणा च तदा दत्तौ केशौ खलु सितासितौ ॥ ५० ॥ श्याम वर्णस्ततः कृष्णः श्वेतः संकर्षणस्तथा ॥ भारावतारणार्थं तौ जातौ देवांशसंभवौ ॥ ५१ ॥ अंशावतरणं चैतच्छृणोति भक्तिभावतः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते स्वजनैर्वृतः ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ हतेषु षट्सु पुत्रेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ सप्तमे पतिते गर्भे वचनान्नारदस्य च ॥ १ ॥ अष्टमस्य च गर्भस्य रक्षणार्थमतंद्रितः ॥ प्रयत्नमकरोद्राजा मरणं स्वं विचिन्तयन् ॥ २ ॥ समये देवकीगर्भे प्रवेशमकरोद्धरिः ॥ अंशेन वसुदेवे तु समागत्य यथाक्रमम् ॥ ३ ॥ तदैयं योगमाया च यशोदायां यथेच्छया ॥ प्रवेशमकरोद्देवी देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ४ ॥ रोहिण्यास्तनयो रामो गोकुले समजायत ॥ यतः कंसभयोद्विग्ना संस्थिता सा च कामिनी ॥ ५ ॥

कंसके देवकीके छः पुत्रोंका इस प्रकार विनाश करनेपर और सातवें गर्भके गिरजानेपर ॥ १ ॥ फिर जब आठवें गर्भका संचार हुआ तब कंस नारदजीके वचनानुसार अपने मरणकी चिन्ता करके सावधानीसे उस गर्भकी रक्षा करनेके लिये यत्न करने लगा ॥ २ ॥ इस ओर उसी समय भगवान् हरिने अंशद्वारा प्रथम तो वसुदेवके देहका आश्रयकर यथाक्रमसे देवकीके गर्भमें प्रवेश किया ॥ ३ ॥ इसी अवसरमें देवी योगमायाने देवताओंका कार्य साधनके लिये अपनी इच्छासे यशोदाके गर्भमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥ वसुदेवकी रोहिणीनामक स्त्री कंसके भयसे उद्विग्न होकर नंद गोकुलमें वास करती थी, अंश बलरामने उनके पुत्र होकर उसी स्थानमें जन्म ग्रहण किया ॥ ५ ॥

तदुपरांत कंसने देवपूज्य देवकीको कारागारमें डाल कर उसकी रक्षाके लिये सेवकोंको नियुक्त कर दिया ॥ ६ ॥ वसुदेव अपनी प्रियतमा भार्याके प्रेम सूत्रमें बँध और अपने पुत्रोत्पत्तिके विषयकी चिन्ता कर भार्या देवकीके सहित कारागारमें प्रविष्ट हुए ॥ ७ ॥ इस ओर देवताओंको कार्य सिद्धिके निमित्त देवकीके गर्भागारमेंप्रविष्ट देवदेव विष्णु देवतागणोंसे नित्य स्तूयमान होकर यथा नियम वृद्धिको प्राप्त होने लगे ॥८॥ फिर जब देवकीके गर्भका दशवाँ महीना पूर्ण हुआ तब उस जगन्मङ्गलजनक श्रावणमास, कृष्णपक्ष रोहिणी नक्षत्रयुक्त अष्टमी तिथिके दिन ॥ ९ ॥ कंसने अत्यन्त भयसे विह्वल हो अनुचर दानवोंसे कहा. तुम सब लोग कारागारके भीतर स्थित देवकीकी यत्नपूर्वक रक्षा करो ॥ १० ॥ देवकीका यह आठवां गर्भही मेरा परमशत्रु है. अतएव मेरे

कारागारे ततः कंसो देवकीं देवसंस्तुताम् ॥ स्थापयामास रक्षार्थं सेवकान्समकल्पयत् ॥६॥ वासुदेवस्तु कामिन्याः प्रेमतंतुनियंत्रितः ॥ पुत्रोत्पत्तिं च संचित्य प्रविष्टः सह भार्यया ॥७॥ देवकीगर्भगो विष्णुर्देवकार्यार्थसिद्धये ॥ संस्तुतोऽमरसंघैश्च व्यवर्धत यथाक्रमम् ॥८॥ संजाते दशमे तत्र मासेऽथ श्रवणे शुभम् ॥ प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ते कृष्णपक्षेऽष्टमीदिने ॥ ९ ॥ कंसस्तु दानवान्सर्वानुवाच भयविह्वलः ॥ रक्षणीया भवद्भिश्च देवकी गर्भमंदिरे ॥ १० ॥ अष्टमो देवकीगर्भः शत्रुर्मे प्रभविष्यति रक्षणीयः प्रयत्नेन मृत्युरूपः स बालकः ॥ ११ ॥ हत्वैनं बालकं दैत्याः सुखं स्वप्स्यामि मंदिरे ॥ निवृत्तिवर्जिते दुःखे नाशिते चाऽष्टमे सुते ॥ १२ ॥ खड्गप्रासधराः सर्वे तिष्ठंतु धृतकार्मुकाः ॥ निद्रातंद्राविहीनाश्च सर्वत्र निहितेक्षणाः ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्यादिश्यासुरगणान्कृशोऽतिभयविह्वलः ॥ मंदिरं स्वं जगामाऽऽशु न लेभे दानवः सुखम् ॥ १४ ॥ निशीथे देवकी तत्र वसुदेवमुवाच ह ॥ किं करोमि महाराज प्रसवावसरो मम ॥ १५ ॥

उसी मृत्यु स्वरूप बालककी यत्नपूर्वक रक्षा करो जिससे वसुदेव वा देवकी किसी प्रकारसे उस बालकको स्थानान्तरित न कर सकें ॥ ११ ॥ हे दैत्यगण! अपने निरन्तर उद्वेगकारी और अशेष दुःखदायक देवकीके अष्टम पुत्रको विनाश करके ही मैं निर्विघ्न अपने घर नींद ले सकता हूं ॥ १२ ॥ तुम सभी खड्गप्रास (शस्त्र विशेष) और धनुर्धारण करके निद्रा तंद्रापरित्याग पूर्वक सब ओर दृष्टिरखकर स्थित रहो ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले अनंतर सदा चिन्तासे कृश कंसराज असुरगणोंको इस प्रकार आज्ञा दे भयसे विह्वल चित्त हो शीघ्रही निज मंदिरमें चला गया, किन्तु किसी प्रकार मनमें सुख लाभ न कर सका ॥ १४ ॥ इधर देवकीने उस कारागारमें अर्धरात्रिके समय वसुदेवसे कहा हे महाराज! मेरा प्रसवकाल उपस्थित है क्या करूं ॥ १५ ॥

यहां अनेक भयंकर रक्षपाल नियुक्त हैं अब मैं क्या करूं पूर्वमें नंदपत्नी यशोदाने मेरा वचन सुनकर इस प्रकार कहा था ॥ १६ ॥ हे मानिनी ! तुम्हारा चित्त शोक तापसे जर्जरित होगया है इस कारण तुम मेरे घर अपने पुत्रको भेज देना. मैं भलीभांति उसका लालन पालन करूंगी ॥ १७ ॥ विशेषकर कंसकी प्रतीतिके निमित्त मैं भी तुमको एक संतान दूंगी हे नाथ ! इस समय विषम संकट उपस्थित है. अब क्या कर्त्तव्य है ? कहिये ॥१८॥ ऐसे स्थलमें आप किस प्रकार सन्तानके बदलनेमें समर्थ होंगे ? जो हो, हे नाथ ! इस समय मुझको अधिकतर लज्जा उपस्थित हुई है. अतएव आप दूरही रहो ॥ १९ ॥ हे स्वामिन् ! आप मुंह फेरकर बैठिये. नहीं तो मैं क्या करूं दूसरा उपाय कोई नहीं है । देवकीने देवपूजित महाभाग वसुदेवसे यह कह ॥ २० ॥ आधी रातके समय उस कारागा

बहवो रक्षपालाश्च तिष्ठंत्यत्र भयानकः ॥ नन्दपत्न्या मया सार्धं कृतोऽस्ति समयः पुरा ॥ १६ ॥ प्रेषितव्यस्त्वया पुत्रोमंदिरे मम मानिनि ॥ पालयिष्याम्यहं तत्र तवातिमनसाकिल ॥ १७ ॥ अपत्यं ते प्रदास्यामि कंसस्य प्रत्ययाय वै ॥ किं कर्तव्यं प्रभो चाऽद्य विषमे समुपस्थिते ॥ १८ ॥ व्यत्ययः संततेः शौरे कथं कर्तुं क्षमो भवेः ॥ दूरे तिष्ठस्वकांताद्य लज्जा मेऽति दुरत्यया १९ ॥ परावृत्य मुखं स्वामिन्नन्यथा किं करोम्यहम् ॥ इत्युक्त्वा तं महाभागं देवकी देवसंमतम् ॥ २० ॥ बालकं सुषुवे तत्र निशीथे परमाद्भुतम् ॥ दृष्ट्वा विस्मयं प्राप देवकी बालकं शुभम् ॥२१ ॥ पतिं प्राह महाभागा हर्षोत्फुल्लकलेवरा ॥ पश्य पुत्रमुखं कांत दुर्लभं हि तव प्रभो ॥ २२ ॥ अथैनं कालरूपोऽसौ घातयिष्यति भ्रातृजः ॥ वसुदेवस्तथेत्युक्त्वा तमादाय करे सुतम् ॥२३॥ अपश्यच्चाननं तस्य सुतस्याद्भुतकर्मणः ॥ वीक्ष्य पुत्रमुखं शौरिश्चिंताविष्टो बभूव ह ॥२४॥ किं करोमि कथं न स्याद्दुःखमस्य कृते मम ॥ एवं चिंतातुरे तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ॥ २५ ॥ वसुदेवं समाभाष्य गगने विशदाक्षरा ॥ वसुदेव गृहीत्वैनं गोकुलं नय सत्वरः ॥ २६ ॥

रमेंही एक अद्भुत पुत्ररत्न उत्पन्न किया उस शोभन दर्शन बालकको देखकर महाभाग देवकी आश्चर्य युक्त हुई ॥ २१ ॥ और प्रफुल्लित कलेवर हो उसने पतिसे कहा हे नाथ ! तुम दुर्लभ पुत्रका मुख देखो ॥ २२ ॥ हाय ! मेरे पिताका भ्रातृपुत्र कालरूप कंस अभी मेरे इस बालकका विनाश करेगा, वसुदेव " कंस तो यही करेगा " यह कह पुत्रको ग्रहणकर ॥ २३ ॥ उस अद्भुतकर्म्मा बालकका मुख देखने लगे वसुदेव पुत्रका मुख देखकर मनमें चिंता करने लगे मैं क्या करूं ॥ २४ ॥ क्या करनेसे मुझको यह पुत्रनाशका दुःख भोगना न हो वसुदेव इस प्रकार चिंतातुर हो रहे थे इसी समय अशरीरिणी वाणी हुई ॥ २५ ॥ वसुदेवसे संभाषणकर गगनमें स्पष्टाक्षरसे आकाशवाणी हुई " हे वसुदेव ! तुम शीघ्र इस बालकको ग्रहण करके गोकुलमें जाओ ॥ २६ ॥

संपूर्ण रक्षपालोंको मैंने माया निद्रासे मोहित किया है दृढ अष्टधातके किवाड खोल दिये हैं तुम जञ्जीर खोलकर ॥ २७ ॥ इस पुत्रको नंदके घर रख वहांसे योगमायाको ले आओ " उस कारागारमें स्थित वसुदेवने इस आकाशवाणीको सुन ॥ २८ ॥ द्वारकी ओर दृष्टि करके देखा कि, दर्वाजा खुला है. हे राजेन्द्र ! तब वह शीघ्र उस पुत्रको ले सम्पूर्ण द्वारपालोंसे छिपकर बाहर हुए ॥ २९ ॥ और यमुनातटपर जाय कलिंदकन्याका तीव्र प्रवाह बहता देख चिंतातुर हुए किंतु वह सरिद्वरा यमुना तत्काल कमरके बराबर हुई ॥ ३० ॥ तब वसुदेव योगमायाके प्रभावसे यमुनापार हो निर्जनमार्गद्वारा गमन कर निशीथ समय गोकुलमें पहुँचे ॥ ३१ ॥ और नंदके द्वारमें उपस्थित होकर उनका गौमाहिषादि ऐश्वर्य देखने लगे इसी समय उस स्थानमें यशोदाके गर्भसे ॥ ३२ ॥

रक्षपालास्तथा सर्वे मया निद्राविमोहिताः ॥ विवृतानि कृतान्यष्ट कपाटानि च शृंखलाः ॥ २७ ॥ मुक्त्वैनं नंदगेहे त्वं योगमायां समानय ॥ श्रुत्वैवं वसुदेवस्तु तस्मिन्कारागृहे गतः ॥ २८ ॥ विवृतं द्वारमालोक्य बभूव तरसा नृप ॥ तमादाय ययावाशु द्वारपालैर लक्षितः ॥ २९ ॥ कालिंदीतटमासाद्य पूरं दृष्ट्वा सुनिश्चितम् ॥ तदैव कटिदघ्नी सा बभूवाशु सरिद्वरा ॥ ३० ॥ योगमायाप्रभावेण ततारानकदुंदुभिः ॥ गत्वा तु गोकुलं शौरिर्निशीथे निर्जने पथि ॥ ३१ ॥ नन्दद्वारे स्थितः पश्यन्विभूतिं पशुसंज्ञिताम् ॥ तदैव तत्र संजाता यशोदा गर्भसंभवा ॥ ३२ ॥ योगमायांशजा देवी त्रिगुणा दिव्यरूपिणी ॥ जातां तां बालिकां दिव्यां गृहीत्वा करपंकजे ॥३३॥ तत्रागत्य ददौ देवी सैरन्ध्रीरूपधारिणी ॥ वसुदेवः सुतं दत्त्वा सैरन्ध्रीकर पंकजे ॥ ३४ ॥ तामादाय ययौ शीघ्रं बालिकां मुदिताशयः ॥ कारागारे ततो गत्वा देवक्याः शयने सुताम् ॥ ३५ ॥ निक्षिप्य स स्थितः पार्श्वे चिंताविष्टो भयाऽऽतुरः ॥ रुरोद सुस्वरं कन्या तदैवा गतसंज्ञकाः ॥ ३६ ॥ उत्तस्थुः सेवका राज्ञः श्रुत्वा तद्रुदितं निशि ॥ तमूचुर्भूपतिं गत्वा त्वरितास्तेऽतिविह्वलाः ॥ ३७ ॥

त्रिगुणात्मिकादिव्य रूपिणी महादेवी योगमायाने अपने अंशसे जन्म ग्रहण किया तब महादेवी योगमायाने उस प्रगट बालिकाको ॥ ३३ ॥ सैरन्ध्रीका रूप धारण करके करकमलमें ग्रहण पूर्वक उसस्थानमें आय वसुदेवके हाथमें अर्पण किया ॥ ३४ ॥ वसुदेवभी पुत्रको देवीके करकमलमें समर्पणकर बालिकाको ग्रहणपूर्वक प्रसन्न चित्तसे शीघ्र चले इसके उपरांत कारागारमें जाय देवीकी शय्यापर ॥ ३५ ॥ उस कन्याको स्थापन कर भयातुर जो चिंतायुक्त हो देवकीके निकट बैठ रहे किंतु शयन करातेही वह कन्या उच्चस्वरसे रोने लगी ॥ ३६ ॥ तब राजाके रक्षकगण जागे और वह रोनेकी ध्वनि सुनकर भयसे अतिविह्वल हो शीघ्र जाय राजाके निकट उपस्थित हुए और बोले ॥ ३७ ॥

हे महाराज ?.शीघ्र जाइये, देवकीके पुत्र उत्पन्न हुआ है भोज नृपति उनका यह वचन सुन वहां शीघ्र गया ॥ ३८ ॥ और द्वार खुला देख वसुदेवको बुलाकर कहा, कंस बोला हे महामते ! मेरा मृत्यु स्वरूप देवकीका आठवां पुत्र लाओ ॥ ३८ ॥ मैं उस हरिसंज्ञक वैरीको अभी विनाश करूंगा व्यासजीने कहा हे महाराज ! वसुदेवने कंसका यह वचन सुन भयसे व्याकुलनेत्र ॥ ४० ॥ और विह्वल हो कांपते कांपते उस कन्याको कंसके हाथमें समर्पण किया । राजा कंस देवकीकी कन्या संतान देखकर अत्यंत आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ और चिंता करने लगा कि देववाणी और नारदकी वाणी वृथा हुई वसुदेव इस स्थान में रहकर दुःख रूपी संकटमें भी अन्यान्यकार्य्य करनेमें किस प्रकार समर्थ होंगे ॥ ४२ ॥ विशेष कर मेरे रक्षकगण निःसंदेह सावधानीसे रहते थे

देवक्याश्च सुतो जातः शीघ्रमेहि महामते ॥ तदाकर्ण्य वचस्तेषां शीघ्रं भोजपतिर्ययौ ॥ ३८ ॥ प्रावृतं द्वारमालोक्य वसुदेवमथाह्वयत् ॥ कंस उवाच ॥ सुतमानय देवक्या वसुदेव महामते ॥ ३९ ॥ मृत्युर्मे चाऽष्टमो गर्भस्तन्निहन्मि रिपुं हरिम् ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा कंसवचः शौरिर्भयत्रस्तविलोचनः ॥ ४० ॥ तामादाय सुतां पाणौ ददौ चाऽऽश्रु रुदन्निव ॥ दृष्ट्वाऽथ दारिकां राजा विस्मयं परमं गतः ॥ ४१ ॥ देववाणी वृथा जाता नारदस्य च भाषितम् ॥ वासुदेवः कथं कुर्यादनृतं संकटे स्थितः ॥४२॥ रक्षापालाश्च मे सर्वे सावधाना न संशयः ॥ कुतोऽत्र कन्यका कामं क्व गतः स सुतः किल ॥ ४३ ॥ सन्देहोऽत्र न कर्तव्यः कालस्य विषमा गतिः ॥ इति संचिन्त्य तां बालां गृहीत्वा पादयोः खलः ॥ ४४ ॥ पोथयामास पाषाणे निर्घृणः कुलपांसनः ॥ सा कराग्निःसृताः बाला ययावाकाशमंडलम् ॥४५॥ दिव्यरूपा तदा भूत्वा तमुवाच मृदुस्वना ॥ किं मया हतया पाप जातस्ते बलवान्रिपुः ॥ ४६ ॥ हनिष्यति दुराराध्यः सर्वथा त्वं नराधमम् ॥ इत्युक्त्वा सा गता कन्या गगनं कामगा शिवा ॥ ४७ ॥

यह कन्या यहां किस प्रकार आई ? और वह अष्टमगर्भोत्पन्न पुत्र कहां गया ॥ ४३ ॥ इस विषयमें संदेह करना उचित नहीं क्योंकि कालकी गति अत्यंत विषम है इस प्रकार चिंता करके उस निर्दयी कुलनाशक खल भूपाल कंसने कन्याके दोनों पैर पकड़ ॥ ४४ ॥ पत्थरपर पटकनेके लिये उसको आकाशमें उठा लिया उसकाल वह कन्या इसके हाथसे छूटकर आकाश मंडलमें गई ॥ ४५ ॥ और दिव्यरूप धारण कर मीठी वाणी द्वारा कंसराजसे बोली मेरे मारनेसे तुझको क्या होगा ? तेरे बलवान् शत्रु ने जन्म ग्रहण किया है ॥ ४६ ॥ हे नराधम ! वह दुराराध्य पुरुष श्रेष्ठ तुझको निश्चयही मारेंगे इसमें संदेह नहीं यह कहकर वह शिवरूपणी कामगामनी कन्या गगन तलमें गई ॥ ४७ ॥

कंसभी आश्चर्य युक्त होकर घर गया और क्रोध तथा भयसे अधीर हो दानवोंको बुलाय बोला ॥ ४८ ॥ बक धेनुक वत्स इत्यादि दानवोंसे कहने लगा हे दानवगण ! तुम लोग सभी मेरे कार्यसिद्धिको जाओ ॥ ४९ ॥ तुम जिस किसी स्थानमें ही बालकको उत्पन्न होता देखकर हनन करो यह बालकघातिनी पूतना अभी नन्दके गोकुलमें जाय ॥ ५० ॥ मेरी आज्ञासे उत्पन्न हुए बालक मात्रकोही विनाश करे । धेनुक वत्सक केशी प्रलम्ब और बकादि ॥ ५१ ॥ तुम सब लोगही मेरा कार्य्य साधन करनेके लिये उस गोकुलमें वास करते रहो खल भूपाल कंस असुर गणोंको इस प्रकार आज्ञा दे अपने घर जाय ॥ ५२ ॥ निरन्तर इस विषयकी चिन्ता कर अत्यन्त भयातुर और दीन होने लगा ॥५३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

कंसस्तु विस्मयाविष्टोगतो निज गृहं तदा ॥ आनाय्य दानवान्सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥४८॥ बकधेनुकवत्सादीन्क्रोधाविष्टो भयाऽऽतुरः ॥ गच्छंतु दानवाः सर्वे मम कार्यार्थसिद्धये ॥ ४९ ॥ जातमात्राश्च हंतव्या बालका यत्र कुत्रचित् ॥ पूतनैषा व्रजत्वद्य बालघ्नी नंदगोकुलम् ॥ ५० ॥ जातमात्रान्वि निघ्नंती शिशूंस्तत्र ममाऽऽज्ञया ॥ धेनुको वत्सकः केशी प्रलंबो बक एव च ॥ ५१ ॥ सर्वे तिष्ठंतु तत्रैव मम कार्यचिकीर्षया ॥ इत्याज्ञाप्यासुरान्कंसो ययौ निजगृहं खलः ॥ ५२ ॥ चिंताविष्टोऽतिदीनात्मा चिंतयित्वैव तं पुनः ॥ इति श्रीदे० म० पु० चतुर्थस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ व्यास उवाच ॥ प्रातर्नंदगृहे जातः पुत्रजन्ममहोत्सवः ॥ किंवदंत्यथ कंसेन श्रुता चारमुखादपि ॥ १ ॥ जानाति वसुदेवस्य दारास्तत्र वसंति हि ॥ पशवो दासवर्गश्च सर्वे ते नंदगोकुले ॥ २ ॥ तेन शंकासमाविष्टो गोकुलं प्रति भारत ॥ नारदेनाऽपि तत्सर्वं कथितं कारणं पुरा ॥ ३ ॥ गोकुले ये च नंदाद्यास्तत्पत्न्यश्च सुरांशजाः ॥ देवकीवसुदेवाद्याः सर्वे ते शत्रवः किल ॥ ४ ॥

व्यासजी बोले हे महाराज ! इधर प्रातःकालके समय नंदके घर पुत्र जन्मका महोत्सव आरम्भ हुआ तदनन्तर कंसराजने किंवदंती और दूतके द्वारा जाना कि ॥ १ ॥ नंदके गोकुलमें पुत्र जन्मके कारण महोत्सव आरम्भ हुआ है इससे पहिले वह जानता था कि वसुदेवकी पत्नी पशुगण और दासगण सभी गोकुलमें नंदके घर वास करते हैं ॥ २ ॥ हे राजन् ! इन सब कारणोंसे कंसराज गोकुलपर संदेह करता था विशेष करके देवर्षि नारदने भी पूर्वमें उससे इस प्रकार कहा था कि ॥ ३ ॥ नंदादि जो जो गोपगण गोकुलमें वास करते हैं वे और उनकी सब पत्नी तथा देवकी और वसुदेव इत्यादि सब ही देवताओंके अंशसे उत्पन्न हैं अतएव वे सभी तुम्हारे शत्रु हैं ॥ ४ ॥

नारदके इन सब वचनोंसे प्रबोधित होकर वह परम पापाचारी कुलाधम कंस अत्यन्त क्रोधित हुआ था ॥ ५ ॥ और उतना बक वत्स धेनुक तथा प्रलम्ब इत्यादि महाबलशाली दुर्दान्तदानवोंको गोकुलमें भेजा था। अमित पराक्रमशाली कृष्णने उन सबको ही विनाश किया ॥ ६ ॥ प्रलम्बको मार गोप और महिषादिकी रक्षाके निमित्त गोवर्द्धन पर्वत धारण किया यह सब वृत्तान्त सुनकर कंसने अपना मरण निश्चय जाना ॥ ७ ॥ इसके उपरांत जब सुना कि केशी दैत्य भी मारागया है तब अत्यन्त उदास हो धनुर्यज्ञके बहाने बलराम और कृष्ण दोनों भाइयोंको मथुरामें बुलानेके लिये उद्योग करने लगा ॥ ८ ॥ अनंतर उस पापमति कंसने अमित विक्रम रामकृष्णका विनाश करनेके निमित्त उनको मथुरामें बुलानेके अर्थ अक्रूरको गोकुलमें भेजा ॥ ९ ॥ गांदिनी

इति नारदवाक्येन बोधितोऽसौ कुलाधमः ॥ जातः कोपमना राजन्कंसः परमपापकृत् ॥५॥ पूतना निहता तत्र कृष्णेनामिततेजसा ॥ बको वत्सासुरश्चापि धेनुकश्च महाबलः ॥ ६ ॥ प्रलंबो निहतस्तेन तथा गोवर्धनो धृतः ॥ श्रुत्वैतत्कर्म कंसस्तु मेने मरणमात्मनः ॥ ७ ॥ तथा बिनिहतः केशी ज्ञात्वा कंसोऽतिदुर्मनाः ॥ धनुर्याग मिषेणाशु तावानेतुं प्रचक्रमे ॥ ८ ॥ अक्रूरं प्रेषयामास क्रूरः पापमतिस्तदा ॥ आनेतुं रामकृष्णौ च वधायामितविक्रमौ ॥ ९ ॥ रथमारोप्य गोपालौ गोकुलाद्गांदिनीसुतः ॥ आगतो मथुरायां तु कंसादेशे स्थितः किल ॥१०॥ तावागत्य तदा तत्र धनुर्भंगं च चक्रतुः ॥ हत्वाऽथ रजकं कामं गजं चाणूरमुष्टिकम् ॥११॥ शलं च तोशलं चैव निजघान 'हरिस्तदा ॥ जघान कंसं देवेशः केशेष्वाकृष्य लीलया ॥ १२ ॥ पितरौ मोचयित्वाऽथ गतदुःखौ चकार ह ॥ उग्रसेनाय राज्यं तद्ददावरिनिषूदनः ॥ १३ ॥ वसुदेवस्तयोस्तत्र मौंजीबंधनपूर्वकम् ॥ कारयामास विधिवद्व्रतबंधं महामनाः ॥ १४ ॥

पुत्र अक्रूर कंसकी आज्ञानुसार गोकुलमें जाय उन दोनों गोपालोंको रथमें चढ़ाय मथुरामें ले आये ॥ १० ॥ राम और कृष्णने मथुरामें आय प्रथम तो धनुष तोड़ा, फिर रजक, कुवलयापीड हाथी एवं चाणूर मुष्टिक ॥ ११ ॥ शल और तोशल इत्यादि मल्लोंको मारकर सर्व देवेश्वर हरिने कंसके केश खैंचकर लीलपूर्वक ही उसको मार डाला ॥ १२ ॥ दोहा—"कंस मार भूसार हर, उग्रसेन करि भूप। कहां हमारे मातु पितु, तब बोले सुखरूप" ॥ शत्रुओंके मारनेवाले कृष्णने माता पिताको कारागारसे मुक्तकर उनके मनमें गड़े दुःखरूपी बाणको निकाला और उग्रसेनको मथुराका राज्य दिया ॥ १३ ॥ अनंतर महामना वसुदेवने उस स्थानमें मौंजी मेखला बांध, यज्ञोपवीतके निमित्त राम और कृष्णको उपनयन प्रदानकर व्रत धारण कराया ॥ १४ ॥

वह उपनीत अर्थात् जनेऊ होनेपर सान्दीपन मुनिके पवित्र गृहमें विद्या सीखनेके अर्थ उपस्थित हो शीघ्र सब विद्याका अभ्यासकर फिर मथुरामें आये ॥ १५ ॥ आनकदुन्दुभीके वे दोनों पुत्र मथुरामें वास करते करते जब उनकी अवस्था बारह वर्षकी हुई तब वे सब विषयमें चतुर और महाबलशाली हो गये ॥ १६ ॥ इसी समय मगधराज जरासन्ध जमाईके मरनेसे अत्यन्त दुःखित हो, असंख्य सेना इकट्ठीकर मथुरामें आया ॥ १७ ॥ मगधराजने इस प्रकार सत्रह बार मथुरा नगरीपर आक्रमण किया था, किन्तु कृतबुद्धि महामति मधुपुर निवासी कृष्णने अपनी बुद्धिसे सत्रहों बार उसको पराजित किया ॥ १८ ॥ अन्तमें जरासंधने यादवोंको भयावह समस्त म्लेच्छके अधिपति वीर्यसम्पन्न कालयवनको मथुरामें आक्रमण करनेको भेज दिया ॥ १९ ॥ मधुसूदन कृष्ण

उपनीतौ तदा तौ तु गतौ सांदीपनालयम् ॥ विद्याः सर्वाः समभ्यस्य मथुरामागतौ पुनः ॥ १५ ॥ जातौ द्वादशवर्षीयौ कृतविद्यौ महा बलौ ॥ मथुरायां स्थितौ वीरौ सुतावानकदुंदुभेः ॥१६॥ मागधस्तु जरासंधो जामातृवधदुःखितः ॥कृत्वा सैन्य समाजं स मथुरामागतः पुरीम् ॥ १७॥ स सप्तदशवारं तु कृष्णेन कृतबुद्धिना ॥ जितः संग्राममासाद्य मधुपुर्यां निवासिना ॥ १८ ॥ पश्चाच्च प्रेरितस्तेन स काल यवनाभिधः ॥ सर्वम्लेच्छाधिपः शूरो यादवानां भयंकरः ॥ १९ ॥ श्रुत्वा यवनमायांतं कृष्णः सर्वान्यदूत्तमान् ॥ आनाय्य च तथा राम मुवाच मधुसूदनः ॥ २० ॥ भयं नोऽत्र समुत्पन्नं जरासंधान्महाबलात् ॥ किं कर्तव्यं महाभागा यवनः समुपैति वै ॥ २१ ॥ प्राणत्राणं प्रकर्तव्यं त्यक्त्वा गेहं बलं धनम् ॥ सुखेन स्थीयते यत्र सन्देश खलु पैतृकः ॥ २२ ॥ सदोद्वेगकरः कामं किं कर्तव्यः कुलोचितः ॥ शैल सागरसान्निध्ये स्थातव्यं सुखमिच्छता ॥ २३ ॥

यवनको आता सुन सम्पूर्ण यादव सत्तम और बलदेवजीको बुलाकर कहने लगे, हे महाभागगण ! ॥ २० ॥ इस समय हमारे घोर शत्रु जरासंधसे महाभय उत्पन्न होता है, अब कालयवन आता है, अतएव क्या करना चाहिये ? ॥ २१ ॥ गृह, भवन, धन और सेना परित्याग करके प्राण रक्षा ही कर्त्तव्य है आप जानते हैं. जिस स्थानमें सुखसे वास किया जाय. वही पैतृक स्थान है ॥ २२ ॥ जिस स्थानमें वास करनेसे सदा उद्वेग (दुचिताई) उपस्थित हो, वह स्थान कुलोचित होनेसे भी उसमें वास करना उचित नहीं है इस कारण सुख सहित वास करनेकी इच्छा हो तो पर्वत और सागर-निकटवर्ती प्रदेशमें वास करना चाहिये ॥ २३ ॥

जिस स्थानमें वैरीका भय नहीं होता. पंडितगण उसी स्थानमें वास करते हैं, भगवान् हरि शेषशय्याका आश्रय करके समुद्रके भीतर सुखपूर्वक शयन करते हैं, ॥ २४ ॥ बोध होता है, त्रिपुरारी महादेवजी भी इसी कारण कैलासपर्वतमें वास कर रहे हैं कि शत्रुभय न हो मैं भी इस स्थानमें शत्रुसे दुःखी हुआ हूं इस कारण अब इस स्थानमें मेरा रहना युक्तिसंगत नहीं है ॥ २५ ॥ हम स्वजन और धनादिसंग लेकर द्वारावती नगरीमें जाय पक्षिराजगरुडने मुझको उसद्वारावतीका विषय भलीभांति विदित किया है ॥ २६ ॥ वह मनोहर नगरी रैवतक नामक पर्वतके समीप समुद्रके तटपर वसी हुई है । व्यासजी बोले प्रधान प्रधान यादवगणोंने श्रीकृष्णके इस प्रकार हितकर वचन सुन ॥ २७ ॥ संपूर्ण स्वजन और वाहनोंके सहित उस स्थानमें जानेकी इच्छा की तब

यत्र वैरिभयं न स्यात्स्थातव्यं तत्र पंडितैः ॥ शेषशय्यां समाश्रित्य हरिः स्वपिति सागरे ॥२४॥ तथैव च भयाद्भीत कैलासे त्रिपुरार्दनः ॥ तस्मान्नात्रैव स्थातव्यमस्माभिः शत्रुतापितैः ॥ २५ ॥ द्वारवत्यां गमिष्यामः सहिताः सर्व एव वै ॥ कथिता गरुडेनाद्य रम्या द्वारवती पुरी ॥ २६ ॥ रेवताचलसांनिध्ये सिंधुकूले मनोहरा ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तथ्यं सर्वे यादवपुंगवाः ॥ २७ ॥ गमनाय मतिं चक्रुः सकुटुंबाः सवाहनाः ॥ शकटानि तथोष्ट्राश्च वाम्यश्च महिषास्तथा ॥ २८ ॥ धनपूर्णानि कृत्वा ते निर्ययुर्नगराद्बहिः ॥ रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सर्वे ते सपरिच्छदाः ॥२९॥ अग्रे कृत्वा प्रजाः सर्वाश्चेलुः सर्वे यदूत्तमाः ॥ कतिचिद्दिवसैः प्रापुः पुरीं द्वारवतीं किल ॥३०॥ शिल्पिभिः कारयामास जीर्णोद्धारं हि माधव ॥ संस्थाप्य यादवांतस्त्र तावेतौ बलकेशवौ ॥ ३१ ॥ तरसा मथुरामेत्य संस्थितौ निर्जनां पुरीम् ॥ तदा तत्रैव संप्राप्तो बलवान्यवनाधिपः ॥ ३२ ॥

उनके जो सब ऊँट घोड़े और महिषादि थे ॥ २८ ॥ उनको इकट्ठा कर और संपूर्ण शकटों (गाडियों) को धन रत्नादिसे भर नगरसे बाहर हुए राम और कृष्ण आगे २ चलने लगे ॥ २९ ॥ पीछे पीछे सब यादवगण और आगे २ प्रजागणके झुंडके झुंड चले वे कुछ दिनों चलकर द्वारावती पहुँचे ॥ ३० ॥ अनंतर द्वारकाके जो जो स्थान पुराने और नष्ट होगये थे श्रीकृष्णने शिल्पकारोंसे उन सब स्थानोंका संस्कार कराया. बलराम और केशव यादवोंको उस स्थानमें रख ॥ ३१ ॥ आप दोनों जन शीघ्र मथुरामें आय उस जनशून्य पुरीमें वास करने लगे । इस ओर महाबलशाली यवनराज उसी समय मथुरामें आकर उपस्थित हुआ ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्ण यवनपतिके आनेका वृत्तान्त जानकर नगरके बाहर निकले जनार्दन भगवान्मधुसूदन ॥ ३३ ॥ पीतवसनसे सुसज्जित होकर हँसते हँसते पैदलही कालयवनके सन्मुख उपस्थित हुए. क्रूरमति यवनपतिने कमललोचन श्रीकृष्णको सन्मुख उपस्थित देख ॥ ३४ ॥ पकड़नेको पैदलही उनका अनुसरण किया तब भगवान् मधुसूदन जिस स्थानमें महाबल राजर्षि मुचुकुन्द गाढ़निद्रामें मग्न था ॥ ३५ ॥ कालयवनको लेकर क्रमक्रमसे उसी स्थानमें जाकर उपस्थित हुए । श्रीकृष्ण मुचुकुन्दको देखतेही उसी स्थानमें छिप गये ॥ ३६ ॥ तब यवनराजने भी वहाँ पहुँच उस निद्राभिभूत राजर्षिको देखा उस क्रूरमति यवनने उनको वासुदेव जान उनके अंगपर पदाघात किया ॥ ३७ ॥ महाबलनृपति मुचुकुन्द जागरित हो क्रोधसे लोहित लोचन हुए और तत्काल उस

ज्ञात्वैनमागतं कृष्णो निर्ययौ नगराद्बहिः ॥ पदातिरग्रे तस्याभूद्यवनस्य जनार्दनः ॥ ३३ ॥ पीतांबरधरः श्रीमान्प्राहसन्मधुसूदनः ॥ तं दृष्ट्वा पुरतो यातं कृष्णं कमललोचनम् ॥ ३४ ॥ यवनोऽपि पदा शंसन्पृष्ठतोऽनुगतः खलः ॥ प्रसुप्तो यत्र राजर्षिर्मुचुकुंदो महाबलः ॥ ३५ ॥ प्रययौ भगवांस्तत्र सकालयवनो हरिः ॥ तत्रैवांतर्दधे विष्णुर्मुचुकुंदं समीक्ष्य च ॥३६॥ तत्रैव यवनः प्राप्तः सुप्तभूतमपश्यत ॥ मत्वा तं वासुदेवं स पादे नाताडयन्नृपम् ॥ ३७ ॥ प्रबुद्धः क्रोधरक्ताक्षस्तं ददाह महाबलः ॥ तंदग्ध्वा मुचुकुंदोऽथ ददर्श कमलेक्षणम् ॥ ३८ ॥ वासुदेवं सुदेवेशं प्रणम्य प्रस्थितो वनम् ॥ जगाम द्वारकां कृष्णो बलदेवसमन्वितः ॥ ३९ ॥ उग्रसेनं नृपं कृत्वा विजहार यथारुचि ॥ अहरद्रुक्मिणीं कामं शिशुपालस्वयंवरात् ॥४०॥ राक्षसेन विवाहेन चक्रे दारविधिं हरिः ॥ ततो जांबवतीं सत्यां मित्रविंदां च भामिनीम् ॥ ४१ ॥ कालिंदीं लक्ष्मणांभद्रां तथा नाग्नजितीं शुभाम् ॥ पृथक्पृथक्समानीयाप्युपयेमे जनार्दनः ॥ ४२ ॥

पापिष्ठ यवनको दृष्टिसे भस्म कर दिया यवनको भस्म करके नृपतिमुचुकुन्दने कमल लोचन श्रीकृष्णका दर्शन किया ॥ ३८ ॥ फिर वह देवप्रवर वासुदेवको प्रणाम करके वनमें चला गया इसके उपरांत श्रीकृष्ण बलदेवजीके सहित द्वारका नगरीमें आये ॥ ३९ ॥ उग्रसेनको राजा कर यथेच्छ विहार करने लगे. फिर कुछकाल बीतने पर जनार्दनने शिशुपालके विवाहमें विदर्भराज भवनमें जो स्वयंवरसभाका आडम्बर हुआ था. वहांसे रुक्मिणीको हरण करके ॥ ४० ॥ राक्षसविधिके अनुसार उसका पाणिग्रहण किया. हे महाराज! इसके उपरांत उन्होंने जाम्बवती सत्यभामा मित्रविंदा ॥ ४१ ॥ कालिन्दी लक्ष्मणा भद्रा और नाग्नजिती (नग्नजित राजाकी कन्या) इनको भिन्न भिन्न समयमें लाय विवाह किया ॥ ४२ ॥

यह आठ स्त्रियेंही श्रीकृष्णकी परमशोभना महिषी थीं प्रथम रुक्मिणीके प्रियदर्शन प्रद्युम्ननामक पुत्रको उत्पन्न करनेपर ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्णने उसका जातकर्मादि समापन किया इसके उपरांत शम्बरनामक बलवान् दानवने सूतिकागृहसे उस बालक पुत्रको हरण कर ॥ ४४ ॥ अपनी नगरीमें ले जाय मायावतीके हाथमें समर्पण किया । वासुदेव श्रीकृष्णपुत्रको हरण हुआ जान अति शोकातुर हुए ॥४५॥ और भक्तियुक्त मनसे भगवतीकी शरणागत हुए जिन्होंने लीलापूर्वकही वृत्रासुर इत्यादि दैत्योंको निहत किया है ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्ण परममहत् अक्षर संयुक्त कल्याणदायक मधुरस्वरसे उन्हीं योगमायाकी स्तुति करने लगे ॥४७॥ हे जननि ! मैंने पूर्वजन्ममें धर्मपुत्र होकर बदरीवनमें तपस्या करके आपको सन्तुष्ट किया है और अनेक भाँतिके उपहारोंसे आपका पूजन किया है. हे मातः !

अष्टावेव महीपालपत्न्यः परमशोभनाः ॥ प्रासूत रुक्मिणी पुत्रं प्रद्युम्नं चारुदर्शनम् ॥ ४३ ॥ जातकर्मादिकं तस्य चकार मधुसूदनः ॥ हृतोऽसौ सूतिकागेहाच्छंबरेण बलीयसा ॥ ४४ ॥ नीतश्च स्वपुरीं बालो मायावत्यै समर्पितः ॥ वासुदेवो हृतं दृष्ट्वा पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ४५ ॥ जगाम शरणं देवीं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ वृत्रासुरादयो दैत्या लीलयैव यया हताः ॥ ४६ ॥ ततोऽसौ योगमायायाश्चकार परमां स्तुतिम् ॥ वचोभिः परमोदारैरक्षरैः स्तवनैः शुभैः ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ मातर्मयाऽतितपसा परितोषिता त्वं प्राग्जन्मनि प्रसुमनादिभिरर्चिताऽसि ॥ धर्मात्मजेन बदरीवनखंडमध्ये किं विस्मृतो जननि ते त्वयि भक्तिभावः ॥ ४८ ॥ सूतीगृहादपहृतः किमु बालको मे केनापि दुष्टमनसाऽप्यथ कौतुकाद्वा ॥ मानापहारकरणाय ममाद्य नूनं लज्जा तवांब खलु भक्तजनस्य युक्ता ॥ ४९ ॥ दुर्गो महानतितरां नगरी सुगुप्ता तत्रापि मेऽतिसदनं किल मध्यभागे ॥ अंतः पुरे च पिहितं ननु सूतिगेहं बालो हृतः खलु तथाऽपि ममैव दोषात् ॥ ५० ॥

आपके प्रति मेरा जो भक्तिभाव है वह क्या आप भूलगई है? ॥ ४८ ॥ हे अम्ब ! क्या कोई दुराशय शत्रु सूतिकागारसे मेरे शिशु संतानको हरण करके ले गया है वा कौतुक देखनेके लिये ही यह कार्य हुआ है ? किंतु मुझको बोध होता है कि निःसंदेह कोई शत्रुपक्षीय पुरुष अपमानित करनेके निमित्त बालकको हरण करके ले गया है जो हो हे मातः ! आपके भक्तजनोंकी लज्जा जानी इस प्रकार कभी उपयुक्त नहीं है ॥ ४९ ॥ हे मातः ! मेरी यह द्वारावती अत्यंत रक्षित है इसमें महान् दुर्ग बने हुए हैं जिसमें फिर मेरा घर इसके मध्यभागमें अवस्थित है फिर अंतःपुरमें सूतिकागृह है तो भी अदृष्टदोषसे ही मेरा यह बालक पुत्र हृत हुआ है यही कहना चाहिये ॥ ५० ॥

हे जननि ! मैं शत्रुपुरीमें भी नहीं गया यादवगणभी वहां नहीं गये; यह द्वारावती श्रेष्ठ योधाओंसे रक्षित है तो किस प्रकार मेरी बालकसंतान हरी गई. हे जननि ! मुझको ज्ञात होता है यह आपकी ही मायाका कार्य है हे देवि ! आपकी मायाका ऐसा प्रभाव तो तीनों लोकमें ही होता है ॥ ५१ ॥ हे देवि ! जब मैं ही आपके गुह्यतम चरित्र नहीं जानता तब देहाभिमानी तुच्छ बुद्धि जीवोंमें ऐसा कौन है ? जो आपके चरित्र जाननेमें समर्थ हो ? मेरा बालक पुत्र कहां गया ? किसने उसको हरण किया ? मेरे रक्षकोंने कुछ नहीं देखा. हे अम्बिके ! जान पड़ता है यह आपकी ही कल्पित माया जवनिका मात्र है ॥ ५२ ॥ हे जननि ! आपके पक्षमें यह आश्चर्यका विषय नहीं है क्योंकि पतिव्रता रोहिणी देवीके दूर देशमें अवस्थित और पुरुष संगसे हीन होनेपर भी आपने मेरे सामने पंचम मासमें ही मेरी माताके गर्भसे पुत्रको माया द्वारा सञ्चालित करके फिर बलदेवको प्रसव कराया था सो भी प्रसिद्ध है ॥ ५३ ॥

नाहं गतः परपुरं न च यादवाश्च रक्षा वतिव नगरी किल वीरवर्यैः ॥ माया तवैव जननि प्रकटप्रभावा मे बालकः परिहृतः कुहकेन केन ॥ ५१ ॥ नो वेद्म्यहं जननि ते चरितं सुगुप्तं को वेद मंदमतिरल्पविदेव देही ॥ क्वाऽसौ गतो मम भटैर्न च वीक्षितो वा हताऽम्बिके जवनिका तव कल्पितेयम् ॥ ५२ ॥ चित्रं न तेऽत्र पुरतो मम मातृगर्भान्नीतस्त्वयाऽर्धसमये किलमाययाऽसौ ॥ यं रोहिणी हलधरं सुषुवे प्रसिद्धं दूरे स्थितापतिपरा मिथुनं विनाऽपि ॥ ५३ ॥ सृष्टिं करोषि जगतामनुपालनं च नाशं तथैव पुनरप्यनिशं गुणैस्त्वम् ॥ को वेद तेंऽब चरितं दुरितांतकारिप्रायेण सर्वमखिलं विहितं त्वयैतत् ॥ ५४ ॥ उत्पाद्य पुत्रजननप्रभवं प्रमोदं दत्वा पुनर्विरहजं किल दुःखभारम् ॥ त्वं क्रीडसे सुललितैः खलु तैर्विहारैर्नो चेत्कथं मम सुताप्तिरतिर्वृथास्यात् ॥ ५५ ॥ माताऽस्य रोदिति भृशं कुररीव बाला दुःखं तनोति मम सन्निधिगा सदैव ॥ कष्टं न वेत्सि ललितेऽप्रमितप्रभावे मातस्त्वमेव शरणं भवपीडितानाम् ॥ ५६ ॥

हे मातः ! आपही सदा गुणोंके द्वारा इस संपूर्ण जगत्की सृष्टि पालन और विनाश करती हैं. हे अम्ब ! आपके अप्रमेय पापहारक चरित्र कौन जान सकता है ? हे मातः ! आप बाहुल्यरूपसे इस अखिलके अखिल कार्यका निर्वाह करती हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ५४ ॥ आपही प्रथम मनुष्यको पुत्र जन्मका आनंद उत्पन्न कराय फिर पुत्र--विरहका दुःख देकर ललितविहार द्वारा सदाही क्रीडा करती हैं नहीं तो मेरे यहां पुत्र उत्सव वृथा क्यों होता ॥ ५५ ॥ इस बालककी माता दिनरात कुररीके समान रोती है वह नित्य मेरे समीप आकर अपने मनकी वेदना कहती है. हे कृपामयी ! आप अपरिमित प्रभाव संपन्न होकर भी क्या मेरा यह कष्ट नहीं जान सकती ? क्योंकि हे मातः ! आपही भव पीडित जनका एक मात्र आश्रय हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ५६ ॥

हे देवि ! तत्त्वके जाननेवाले मुनिलोग कहते हैं कि मनुष्यके घर पुत्र जन्मही सुखकी सीमा है और पुत्रका विनाश ही दुःखकी परम अवस्था है अतएव हे जननि! अब मैं इस विषयमें क्या करूं ? अधिक क्या प्रथम पुत्रके नष्ट होनेसे इस समय मेरा हृदय विदीर्ण हुआ है ॥ ५७ ॥ हे मातः ! मैं आपके तुष्टिकर यज्ञव्रत और पूजा इत्यादि सम्पूर्ण दैवकार्यका अनुष्ठान करूंगा आप मेरा दुःख दूर कीजिये. हे जननि ! यदि मेरा पुत्र बचा हो तो एक बार मुझको दिखाओ. हे मातः ! आपके अतिरिक्त शोक नष्ट करनेमें दूसरा कोई समर्थ नहीं है ॥ ५८ ॥ व्यासजी बोले जो लीलापूर्वक ही भूभार हरणादि देवतागणोंसे भी असाध्य संपूर्ण कार्य सम्पादन करते हैं उन जगद्गुरु श्रीकृष्णने जब देवीका इस प्रकार स्तव किया, तब वह प्रगट होकर उनसे कहने लगी ॥ ५९ ॥

सीमा सुखस्य सुतजन्म तदीयनाशो दुःखस्य देवि भवने विबुधा वदंति ॥ तत्किं करोमि जननि प्रथमे प्रनष्टे पुत्रे समाद्य हृदयं स्फुटतीव मातः ॥५७॥ यज्ञं करोमि तव तुष्टिकरं व्रतं वा दैवं च पूजनमथाखिलदुःखहात्वम् ॥ मातः सुतोऽत्र यदि जीवति दर्शयाशु त्वं वै क्षमा सकलशोकविनाशनाय ॥ ५८ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा प्रत्यक्षदर्शना भूत्वा तमुवाच जगद्गुरुम् ॥ ५९ ॥ श्री देव्युवाच ॥ शोकं मा कुरु देवेश शापोऽयं ते पुरातनः ॥ तस्य योगेन पुत्रस्ते शंबरेण हृतो बलात् ॥ ६० ॥ अतस्ते षोडशे वर्षे हत्वा तं शंबरं बलात् ॥ आगमिष्यति पुत्रस्ते मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ६१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधे देवी चंडिका चंडविक्रमा ॥ भगवानपि पुत्रस्य शोकं त्यक्त्वाऽभवत्सुखी ॥ ६२ ॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ राजोवाच ॥ संदेहो मे मुनिश्रेष्ठ जायते वचनात्तव ॥ वैष्णवांशे भगवति दुःखोत्पत्तिं विलोक्य च ॥ ॥ १ ॥

हे देवेश अब शोक मत करो. पूर्वमें तुम्हारे प्रति एक शाप था, इसी कारण शम्बरने अपनी आसुरी मायाके प्रभावसे तुम्हारे पुत्रका हरण किया है ॥६०॥ अतएव तुम्हारा पुत्र जब सोलह वर्षका होगा तब वह मेरे प्रसादसे शम्बर दैत्यको बलपूर्वक मारकर आवेगा. इसमें संदेह नहीं है ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! चण्डविक्रमा देवी चण्डिका इस प्रकार आश्वासनप्रद वचनोंसे समझाकर अन्तर्धान हो गई तब भगवान् श्रीकृष्ण भी पुत्र शोकको छोड़ सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! विष्णुके अंशस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी दुःखोत्पत्तिका विषय सुनकर आपकी बातमें मुझको संशय उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

देखो भगवान् वासुदेव साक्षात् नारायणके अंशसे उत्पन्न थे. तो फिर शम्बरासुरने सूतिकागृहसे किस प्रकार उनके पुत्रका भी हरण किया ? ॥ २ ॥ एक तो मनोरम द्वारका नगरी भलीभांति रक्षित थी, तिसपर भी फिर सूतिका गृह उसके मध्यमें स्थित था, ऐसे स्थानमें इस दैत्यने किस प्रकार प्रवेश करके पुत्रका हरण किया ? ॥ ३ ॥ हे सत्यवतीतनय! वासुदेव क्यों उसको नहीं जान सके? यह विषय मुझको अद्भुत बोध होता है, और मनमें परम आश्चर्यरसका उदय होता है ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन्! केशव मूर्तिके द्वारकामें स्थित रहने पर भी किस प्रकर सूतिका गृहसे बालकका हरण हुआ ? और किसलिये वह उसको नहीं जान सके इसका कारण वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! मनुष्योंके बुद्धिको मोहित करनेवाली शाम्भवी मायाही इस विषयका कारण है

नारायणांशसंभूतो वासुदेवः प्रतापवान् ॥ कथं स सूतिकागाराद्धृतौ बालो हरेरपि ॥ २ ॥ सुगुप्तनगरे रम्ये गुप्तेऽथ सूतिकागृहे ॥ प्रविश्य तेन दैत्येन गृहीतोऽसौ कथं शिशुः ॥ ३ ॥ न ज्ञातो वासुदेवेन चित्रमेतन्ममाद्भुतम् ॥ जायते महदाश्चर्यं चित्ते सत्यवतीसुत ॥ ४ ॥ ब्रूहि तत्कारणं ब्रह्मन्न ज्ञातं केशवेन यत् ॥ हरणं तत्र संस्थेन शिशोर्वा सूतिकागृहात् ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ माया बलवती राज न्नराणां बुद्धिमोहिनी ॥ शांभवी विश्रुता लोके को वा मोहं न गच्छति ॥ ६ ॥ मानुषं जन्म संप्राप्य गुणाः सर्वेऽपि मानुषाः ॥ भवंति देहजाः कामं न देवा नासुरास्तदा ॥ ७ ॥ क्षुतृण्निद्राभयं तंद्रा व्यामोहःशोकसंशयः ॥ हर्षश्चैवाऽभिमानश्च जरा मरणमेव च ॥ ८ ॥ अज्ञानं ग्लानिरप्रीतिरीर्ष्याऽसूया मदः श्रमः ॥ एते देहभवा भावाः प्रभवंति नराधिप ॥९॥ यथा हेममृगं रामो न बुबोध पुरो गतम् ॥ जानक्या हरणं चैव जटायुमरणं तथा ॥१०॥ अभिषेकदिने रामो वनवासं न वेद च ॥ तथा न ज्ञातवान्रामः स्वशोकान्मरणं पितुः ॥११॥

यह लोकमें विख्यात है इस संसारमें ऐसा कौन है? जो मायासे मोहित न हो ॥ ६ ॥ जीवगण जब मनुष्य जन्मको प्राप्त होते हैं तब उनमें सब मनुष्योंके ही गुण वर्त्तमान रहते हैं. कुछ देवता वा असुरोंके गुण वर्त्तमान नहीं रहते ॥ ७ ॥ हे नराधिप ! मनुष्योंके देहधारण करनेपर ही भूख, प्यास, निद्रा, भय, तन्द्रा, मोह, शोक, संशय, हर्ष, अभिमान, जरा, रमण अज्ञान, ज्ञान, अप्रीति, ईर्षा, असूया, मद. और श्रम यह सब देहजात भाव उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ देखो श्री रामचंद्र निशाचर मारीचके मायाबलसे हेममय मृगरूप धारण करके सम्मुख उपस्थित होनेपर भी कुछ नहीं जान सके फिर सीताहरण और जटायुमरण ॥ १० ॥ तथा अभिषेकके दिन वनगमन और उनके शोकमें पितृमरण, इन सब बातको भी कुछ न जानसके ॥ ११ ॥

रावणने जब बलपूर्वक जानकीको हरण किया, तब वह इसके पहले कुछ नहीं जान सके, केवल वनमें अज्ञानीके समान ढूंढ़ते हुए फिरे थे ॥ १२ ॥ इसके उपरांत वह वानरगणोंकी सहायतासे इंद्रपुत्र वालीको मारकर समुद्रमें पुल बांध उसके पार हुए थे ॥ १३ ॥ उन्होंने सीताको ढूंढ़नेके लिये प्रधान प्रधान वानरगणोंको सब ओर भेजा था और रणांगणमें घोरतर युद्ध करके महत् दुःख भोग किया था ॥ १४ ॥ महाबलशाली रघुनंदन श्रीरामचंद्रकी नागपाशमें बँध गये थे. फिर गरुडने आकर मुक्त किया ॥ १५ ॥ इसके उपरांत उन्होंने कुपित होकर कुंभकण, निकुंभ, मेघनाद और रावणका विनाश किया ॥ १६ ॥ उन जनार्दन श्रीरामचंद्रजीने सीताकी निर्दोषता न जानकर. उनको शुद्ध कराया और विशेष परीक्षा लेनेके लिये अग्निमें प्रवेश कराया था ॥१७॥

अज्ञवद्विचचारासौ पश्यमानो वनेवने ॥ जानकीं न विवेदाथ रावणेन हृतां बलात् ॥१२॥ सहायान्वानरान्कृत्वा हत्वा शक्रसुतं बलात् ॥
सागरे सेतुबंधं च कृत्वोत्तीर्य सरित्पतिम् ॥ १३ ॥ प्रेषयामास सर्वासु दिक्षु तान्कपिकुञ्जरान् ॥ संग्रामं कृतवान्घोरं दुःखं प्राप रणाजिरे
॥ १४ ॥ बंधनं नागपाशेन प्राप रामो महाबलः ॥ गरुडान्मोक्षणं पश्चादन्वभूद्रघुनंदनः ॥ १५ ॥ अहनद्रावणं संख्ये कुंभकर्णं महाबलम् ॥
मेघनादं निकुंभं च कुपितो रघुनंदनः ॥ १६ ॥ अदूष्यत्वं च जानक्या न विवेद जनार्दनः ॥ दिव्यं च कारयामास ज्वलिताग्नौ प्रवेशनम्
॥ १७ ॥ लोकापवादाच्च परं ततस्तत्याज तां प्रियाम् ॥ अदूष्यां दूषितां मत्वा सीतां दशरथात्मजः ॥ १८ ॥ न ज्ञातौ स्वसुतौ तेन
रामेण च कुशीलवौ ॥ मुनिना कथितौ तौ तु तस्य पुत्रौ महाबलौ ॥१९॥ पातालगमनं चैव जानक्या ज्ञातवान्न च ॥ राघवः कोपसंयुक्तो
भ्रातरं हंतुमुद्यतः ॥ २० ॥ कालस्यागमनं चैव न विवेद खरांतकः ॥ मानुषं देहमाश्रित्य चक्रे मानुषचेष्टितम् ॥ २१ ॥

तदनंतर दशरथतनय श्रीरामचंद्रजीने लोकापवादके भयसे दोषरहित प्रेयसी सीताको दूषित जानकर त्याग किया ॥ १८ ॥ वनमें लवकुशनामक उनके जो दो पुत्र उत्पन्न हुए उनको वह नहीं जान सके फिर महर्षिवालमीकिके कह देनेपर वह जान सके थे ॥ १९ ॥ और देखो, रामचंद्र जान कीके पाताल जानेका विषय कुछभी नहीं जान सके और वे एक समय कुपितहोकर भ्राताके मारनेमें उद्यत हुए थे ॥ २० ॥ खर निशाचरके मारनेवाले श्रीरामचंद्रजी कालपुरुषके आनेका वृतांत नहीं जान सके और उन्होंने मनुष्यदेह धारण करके मनुष्योंकेही कर्म किये थे, इसी प्रकार यदुनंदन श्रीकृष्णने भी मनुष्यजन्म ग्रहण करके संपूर्ण कार्य मनुष्यकेही किये थे, इस विषयमें फिर संदेह क्या है ? ॥ २१ ॥

देखो कृष्ण प्रथमही कंसके भयसे गोकुलमें चले गये थे, फिर जरासंधके भयसे द्वारावती नगरीमें भागे ॥ २२ ॥ और उन्होंने सनातनधर्म जानकर भी शिशुपालकी वरी रुक्मिणीका हरण किया था, इस कार्यमें उनका अत्यंत अधर्म हुआ था; ॥ २३ ॥ शम्बर दैत्यके बालक पुत्रको हरण करनेपर उन्होंने शोक किया था; फिर भगवतीसे उसको जानकर हर्षयुक्त हुए थे, तो भलीभांति जाना जाता है कि, साधारण मनुष्योंके समान सम्पत् विपद्में उनको भी हर्ष विषाद उपस्थित होता था ॥ २४ ॥ इसके उपरांत पारिजात वृक्षके निमित्त स्वर्गमें जाय सत्यभामाकी आज्ञासे इन्द्रके संग जो युद्ध किया था, इससे वे स्त्रीके वशीभूत थे, यह स्पष्ट ही प्रकाशित होता है ॥ २५ ॥ इस युद्धमें चक्रधर हरिने देवराज इन्द्रको पराजित करके मानिनीकी मान रक्षाके निमित्त

तथैव मानुषान्भावान्नात्र कार्या विचारणा ॥ पूर्वं कंसभयात्प्राप्तो गोकुले यदुनंदनः ॥ २२ ॥ जरासंधभयात्पश्चाद्द्वारवत्यां गतो हरिः ॥ अधर्मं कृतवान्कृष्णो रुक्मिण्या हरणं च यत् ॥ २३ ॥ शिशुपालहृतायाश्च जानन्धर्मं सनातनम् ॥ शुशोच बालकं कृष्णः शंबरेण हृतं बलात् ॥ २४ ॥ मुमोद जानन्पुत्रं तं हर्षशोकयुतस्ततः ॥ सत्यभामाज्ञया यत्तु युयुधे स्वर्गतः किल ॥ २५ ॥ इन्द्रेण पादपार्थं तु स्त्रीजितत्वं प्रकाशयन् जहार कल्पवृक्षं यः पराभूय शतक्रतुम् ॥ २६ ॥ मानिनीमानरक्षार्थं हरिश्चित्रधरः प्रभुः ॥ बद्ध्वा वृक्षे हरिं सत्या नारदाय ददौ पतिम् ॥२७॥ दत्त्वाऽथ कानकं कृष्ण मोचयामास भामिनी ॥ दृष्ट्वा पुत्रान्पुरुगुणान्प्रद्युम्नप्रमुखानथ ॥२८॥ कृष्णंजांबवती दीना ययाचे संततिं शुभाम् ॥ स ययौ पर्वतं कृष्णस्तपस्याकृतनिश्चयः ॥ २९ ॥ उपमन्युर्मुनिर्यत्र शिवभक्तः परंतपः ॥ उपमन्युं गुरुं कृत्वा दीक्षां पाशुपतीं हरिः ॥ ३० ॥ जग्राह पुत्रकामस्तु मुंडी दंडी बभूव ह ॥ उग्रं तत्र तपस्तेपे मासमेकं फलाशनः ॥ ३१ ॥

कल्पवृक्ष हरण किया था ॥ २६ ॥ किंतु सत्यभामाने फिर हरिको वृक्षमें बांधकर नारदको दिया इस प्रकार हरिने उसके मानकी रक्षा की ॥ २७ ॥ फिर उसी भामिनीने कनक देकर छुड़ाया था अनेक गुण सम्पन्न प्रद्युम्न इत्यादि रुक्मिणीके पुत्रोंको देखकर ॥ २८ ॥ जाम्बवतीने अतिदीनभावसे उनके निकट शोभायमान सन्ततिके निमित्त प्रार्थना की। श्रीकृष्ण उसके पुत्रार्थ तपस्याका निश्चय होकर पर्वतपर गये ॥ २९ ॥ जिस स्थानमें शिवभक्त उपमन्यु मुनि वास करते थे, उसी स्थानमें गये, वह हरि, पुत्रकामनासे उपमन्युको दीक्षागुरु कर ॥ ३० ॥ पाशुपतमंत्र ग्रहण और मस्तक मुंडनपूर्वक दंडी हुए और वहां प्रथम मासमें फलमात्र अहार करके ॥ ३१ ॥

शिवध्यान परायण और शिवमंत्र जपमें निरत होकर उन्होंने उग्रतर तपस्या की थी, दूसरे महीनेमें जलमात्र पान करके एक चरण खडे रहे ॥ ३२ ॥ तीसरे महीनेमें केवल वायुभक्षण पूर्वक पदांगुष्ठके अग्रभागसे खड़े होकर तपस्या करने लगे इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर छठे महीनेमें इन्दुमौलि भगवान् रुद्रदेवने उनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर ॥ ३३ ॥ उस स्थानमें उनको दर्शन दिया । महादेवजीने बैलपर चढ देवताओंसे युक्त ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा और विष्णुके सहित इंद्रादि देवताओंसे परिवृत यक्ष तथा गंधर्वगणोंसे सेवित हुए वहां आय वसुदेवसे कहा ॥ ३५ ॥ हे महामते यदुनंदन कृष्ण ! मैं तुम्हारी उग्र तपस्यासे बहुत संतुष्ट हुआ हूं अब तुम अपना वांछित वर मांगो, मैं वही दूंगी ॥ ३६ ॥ मैं संपूर्ण भक्तगणोंकी अभिलाषा का पूर्णकारी हूं, मेरा साक्षात्कार

जजाप शिवमंत्रं तु शिवध्यानपरो हरिः ॥ द्वितीये तु जलाहारस्तिष्ठन्नेकपदाहरिः ॥ ३२ ॥ तृतीये वायुभक्षस्तु पादांगुष्ठाग्रसंस्थितः ॥ षष्ठे तु भगवान्रुद्रः प्रसन्नो भक्तिभावतः ॥ ३३ ॥ दर्शनं च ददौ तत्र सोमः सोमकला धरः ॥ आजगाम वृषारूढः सुरैरिंद्रादिभिर्वृतः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मविष्णुयुतः साक्षाद्यक्षगंधर्वसेवितः ॥ संबोधयन्वासुदेवं शंकरस्तमुवाच ह ॥ ३५ ॥ तुष्टोऽस्मि कृष्ण तपसा तवोग्रेण महामते ॥ ददामि वांछितान्कामान् ब्रूहि यादवनंदनः ॥ ३६ ॥ मयि दृष्टे कामपूरे कामशेषो न संभवेत् ॥ व्यास उवाच ॥ तं दृष्ट्वा शंकरं तुष्टं भगवान्देवकीसुतः ॥ ३७ ॥ पपात पादयोस्तस्य दंडवत्प्रेमसंयुतः ॥ स्तुतिं चकार देवेशो मेघगंभीरया गिरा ॥ ३८ ॥ स्थितस्तु पुरतः शंभोर्वासुदेवः सनातनः ॥ कृष्ण उवाच ॥ देव देव जगन्नाथ सर्वभूतार्तिनाशन ॥ ३९ ॥ विश्वयोने सुरारिघ्न नमस्त्रैलोक्यकारक ॥ नीलकंठ नमस्तुभ्यं शूलिने ते नमो नमः ॥ ४० ॥ शैलजावल्लभायाथ यज्ञघ्नाय नमोऽस्तु ते ॥ धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं दर्शनात्तव सुव्रत ॥ ४१ ॥

प्राप्त होनेसे ऐसी क्या कामना है जो पूर्ण न हो, व्यासजी बोले भगवान् देवकीतनय शंकर देवको प्रसन्न देखकर ॥ ३७ ॥ प्रेमाकुलित चित्तसे उनके चरण कमलोंमें दण्डके समान गिर पडे और वही सुरेश्वर सनातन वसुदेव शंभुके आगे खडे होकर मेघके समान स्वरसे उनकी स्तुति करने लगे, श्रीकृष्ण बोले हे देवदेव हे जगन्नाथ ! आपही सब जीवोंकी दुर्गति विनाश करते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे असुरनाशन ! आपही इस विश्वके उत्पन्न कर्त्ता और कारणस्वरूप हैं अतएव आपको नमस्कार करता हूँ हे नीलकण्ठ ! आपको प्रणाम करता हूं हे शूलधारिन् ! आपको मैं वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ ४० ॥ हे शैलजावल्लभ ! आप ही दक्षयज्ञके विनाशक हैं मैं आपको नमस्कार करता हूं, आपका दर्शन करके मैं धन्य और कृतकृत्य हुआ ॥ ४१ ॥

हे सुव्रत ! आपके चरणकमलोंमें प्रणाम करनेसे मेरा जन्म सफल हुआ हे अखिलगुरो ! हे विलोचन ! मैं कामिनीमय पाशसे इस संसारमें बँध रहा हूं ॥ ४२ ॥ अब रक्षा पानेको आपकी शरणागत हुआ हूं हे दुःखविनाशन ! मैं मनुष्यजन्म पाकर अत्यन्त खिन्न (दुःखी) हुआ हूं ॥ ४३ ॥ हे भव ! संसारके भयसे डरकर आपकी शरण ग्रहण की है अब आप मेरी रक्षा कीजिये हे मदनदाहन ! मैंने गर्भवासके समय महादुःख पाया है ॥ ४४ ॥ फिर कंसके भयसे नन्दके गोकुलमें जाकर निरंतर दुःखभोग किया है वहां गोपोंकी आज्ञासे गोचारण पूर्वक नन्दका गोपाल हो ॥४५॥ और गोधूलिद्वारा धूसरित केश हो सदाही वृन्दावनके निबिड़ वनमें घूमता फिरा हूं हे विभो ! मैंने म्लेच्छराज कालयवनके भयसे अत्यन्त त्रसित हो द्वारावतीमें गमन किया ॥ ४६ ॥ दुर्लभ

जन्म मे सफलं जातं नत्वा ते पादपंकजम् ॥ बद्धोऽहं श्रीमयैः पाशैः संसारेऽस्मिञ्जगद्गुरो ॥ ४२ ॥ शरणं तेऽद्य संप्राप्तो रक्षार्थं त्रिलोचन ॥ संप्राप्य मानुषं जन्म खिन्नोऽहं दुःख नाशन ॥ ४३ ॥ त्राहि मां शरणं प्राप्तं भवभीतं भवाधुना ॥ गर्भवासे महद्दुःखं प्राप्तं मदनदाहक ॥ ४४ ॥ जन्मतः कंसभयजमनुभूतं च गोकुले ॥ जातोऽहं नंदगोपालो बह्लवाज्ञाकरस्तथा ॥ ४५ ॥ गोरजःकीर्णकेशस्तु भ्रमवृन्दावने घने ॥ म्लेच्छराजभयत्रस्तो गतो द्वारवतीं पुनः ॥ ४६ ॥ त्यक्त्वा पित्र्यं शुभं देशं माथुरं दुर्लभं विभो ॥ ययातिशापबद्धे नतस्मै दत्तं भयाद्विभो ॥ ४७ ॥ राज्यं सुपुष्टमपि च धर्मरक्षापरेण च ॥ उग्रसेनस्य दासत्वं कृतं वै सर्वदा मया ॥ ४८ ॥ राजाऽसौ यादवानां वै कृतो नः पूर्वजैः किल ॥ गार्हस्थ्यं दुःखद शंभो स्त्रीवश्यं धर्मखंडनम् ॥४९॥ पारतंत्र्यं सदा बंधो मोक्षवार्ताऽत्र दुर्लभा ॥ रुक्मिण्यास्तनयान्दृष्ट्वा भार्या जांबवती मम ॥५०॥ प्रेरयामास पुत्रार्थं तपसे मदनांतक ॥ सकामेन मया तप्तं तपः पुत्रार्थमद्य वै ॥५१॥

पितृस्थान मथुरापुरी छोड़ा हे प्रभो ! ययातिके शापके कारण धर्मकी रक्षाके निमित्त मैंने उत्कृष्ट ॥ ४७ ॥ पुष्ट राज्यभी उग्रसेनको दे दिया है मेरे पूर्वजगणोंने उनको ही यादवोंका राजा किया था मैं उन्हींके अनुसार उनको राज्य दे उनका दासत्व (सेवा) करता हूं हे शम्भो ! गार्हस्थ्य आश्रम अत्यन्त दुःख दायक, स्त्री-वश्य और धर्मनाशक है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इससे सदा पराधीनता है. संसार-बंधन छूटनेकी वार्त्ता उसमें अत्यन्तही दुर्लभ है हे मदनान्तक ! जाम्बवतीनामक मेरी एक भार्याने रुक्मिणीके पुत्रको देखकर ॥ ५० ॥ सुशोभन संतानलाभ करनेको मुझे तपस्या करने भेजा है. हे देवेश ! हे जगद्गुरो ! मैं इस समय कामनाके वशीभूत हूं पुत्रके निमित्त तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं ॥ ५१ ॥

हे देव ! इस पुत्रकी प्रार्थनासे मुझको अत्यन्त लज्जा बोध होती है आप भक्तवत्सल, मुक्तिप्रद और सब देवताओंके ईश्वर हैं, आराधनाद्वारा ॥ ५२ ॥ आपको प्रसन्न करके कौन मूढ विनाशशील तुच्छ फलकी प्रार्थना करेगा ? हे जगतीपते ! हे विभो ! आपको साक्षात् मुक्तिदाता स्वरूप जानकर भी मायासे मोहित हो स्त्रीकी प्रलोभनासे मोक्षतत्त्वको त्यागकर पुत्रसुखकी प्रार्थना करता हूं इससे मेरे समान मूढ दूसरा कौन है ? हे शंकर ! संसार दुःखका घर संसारदुःखका कारण ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ संसार अनित्य और विनाशधर्मशील है यद्यपि मैं यह सब जानता हूं किन्तु तो भी मैं संसारसे विरत नहीं होता, मैंने नारायणके अंशरूपी होकरभी शापके वशीभूत हो पृथ्वीमें जन्म लिया ॥ ५५ ॥ माया–पाशमें बँध, अनेक दुःख भोगनेको आया हूं व्यासजी बोलेहे महाराज !

लज्जा भवति देवेश प्रार्थनायां जगद्गुरो ॥ कस्त्वा माराध्य देवेशं मुक्तिदं भक्तवत्सलम् ॥ ५२ ॥ प्रसन्नं याचते मूढः फलं तुच्छं विनासि यत् ॥ सोऽयं मायाविमूढात्मा याचे पुत्रसुखं विभो ॥ ५३ ॥ कामिन्या प्रेरितः शंभो मुक्तिदं त्वां जगत्पते ॥ जानामि दुःखदं शंभो संसारं दुःखसाधनम् ॥ ५४ ॥ अनित्यं नाश धर्माणं तथाऽपि विरतिर्न मे ॥ शापान्नारायणांशोऽहं जातोऽस्मिन्क्षितमंडले ॥ ५५ ॥ भोक्तुं बहुतरं दुःखं मायापाशेन यंत्रितः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तवंतं गोविंदं प्रत्युवाच महेश्वरः ॥ ५६ ॥ बहवस्ते भविष्यंति पुत्राः शत्रुनिषूदन ॥ स्त्रीणां षोडशसाहस्रं भविष्यति शतार्धकम् ॥ ५७ ॥ तासु पुत्रा दशदश भविष्यंति महाबलाः ॥ इत्युक्तो पररामाशु शंकरः प्रियदर्शनः ॥ ५८ ॥ उवाच गिरिजा देवी प्रणतं मधुसूदनम् ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो संसारेऽस्मिन्नराधिप ॥५९॥ गृहस्थप्रवरो लोके भविष्यति भवानिह ॥ ततो वर्षशतांते तु द्विजशापाज्जनार्दन ॥ ६० ॥ गांधार्याश्च तथा शापाद्भविता ते कुलक्षयः ॥ परस्परं निहत्याजौ पुत्रास्ते शापमोहिताः ॥ ६१ ॥

शत्रुघातनगोविन्दके इस प्रकार स्तव करनेपर देवदेव महादेवने उनसे कहा ॥ ५६ ॥ हे कृष्ण तुम्हारे अनेक पुत्र होंगे तुम्हारी एकशत सोलह हजार स्त्री होंगी ॥ ५७ ॥ उन सब स्त्रियोंमें प्रत्यकके गर्भसे दशदश महाबलयुक्त पुत्र उत्पन्न होंगे. इसमें संदेह नहीं प्रियदर्शन शंकर जब यह कहकर मौन हुए ॥ ५८ ॥ तब श्रीकृष्णने गिरिजाके चरणोंमें प्रणाम किया. तब देवी पार्वतीने वारंवार वासुदेवसे कहा हे महाबाहो ! हे कृष्ण ! हे नरश्रेष्ठ ! इस संसारमें ॥ ५९ ॥ तुम सब गृहस्थगणोंके आदर्शस्वरूप होगे. फिर सौ वर्ष व्यतीत होनेपर विप्रशाप ॥ ६० ॥ और गान्धारीके शापसे तुम्हारा कुलक्षय होगा. तुम्हारे सब पुत्रगण और अन्यान्य यादवगण मदिरापानसे मोहित हो ॥ ६१ ॥

युद्धस्थलमें परस्पर प्रहार करके नाशको प्राप्त होंगे इसके उपरांत फिर तुम बलभद्रके सहित देहपरित्याग करके स्वर्गमें जाओगे ॥ ६२ ॥ हे विभो ! तुम इस भवितव्य (होनहार) विषयमें कदापि शोक न करना तुमको जानना चाहिये कि भवितव्यताका प्रतीकार नहीं है ॥ ६३ ॥ अतएव इस विषयमें शोक करना उचित नहीं है यह मेरा सदा मत है हे मधुसूदन ! महर्षि अष्टावक्रके शापसे तुम्हारे मरनेके पीछे तुम्हारी भार्याओंको ॥ ६४ ॥ दुर्दान्तदस्युगण हरणकरेंगे इसमें संदेह नहीं है । व्यासजी बोले हे राजन् ! देवी पार्वतीके इस प्रकार वचन कहनेपर शंभु देवताओंके सहित अन्तर्धान होगये ॥ ॥ ६५ ॥ और श्रीकृष्ण भी उपमन्युको प्रणाम करके द्वारकामें गये । हे राजेंद्र ! यद्यपि ब्रह्मा इत्यादि देवता जगत्के अधीश्वर कहकर विख्यात हैं ॥ ६६ ॥

गमिष्यंति क्षयं सर्वे यादवाश्च तथाऽपरे ॥ सानुजस्त्वं तथा देहं त्यक्त्वा यास्यसि वै दिवम् ॥६२॥ शोकस्तत्र न कर्तव्यो भवितव्यप्रति प्रभो ॥ अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते ॥ ६३ ॥ तत्र शोको न कर्तव्यो नूनं मम मतं सदा ॥ अष्टावक्रस्य शापेन भार्यास्ते मधुसूदन ॥ ६४ ॥ चौरेभ्यो ग्रहणं कृष्ण गमिष्यंति मृते त्वयि ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधे शंभुः सोमः ससुरमंडलः ॥ ६५ ॥ उपमन्युं प्रणम्याथ कृष्णोऽपि द्वारकां ययौ ॥ तस्माद्ब्रह्मादयो राजन्संति यद्यप्यधीश्वराः ॥ ६६ ॥ तथाऽपि मायाकल्लोलयोगसंक्षुभितांतराः ॥ तदधीनाः स्थिताः सर्वे काष्ठपुत्तलिकोपमाः ॥ ६७ ॥ यथायथा पूर्वभवं कर्म तेषां तथातथा ॥ प्रेरयत्यनिशं माया परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ६८ ॥ न वैषम्यं न नैर्घृण्यं भगवत्यां कदाचन ॥ केवलं जीवमोक्षार्थं यतते भुवनेश्वरी ॥ ६९ ॥ यदि सा नैव सृज्येत जगदेतच्चराचरम् ॥ तदा मायाविना भूतं जडं स्यादेव नित्यशः ॥ ७० ॥ तस्मात्कारुण्यमाश्रित्य जगज्जीवादिकं च यत् ॥ करोति सततं देवी प्रेरयत्यनिशं च तत् ॥ ७१ ॥

किन्तु तो भी वह मायासिंधुकी कल्लोलमालासे क्षुभित होते हैं वह काठकी पुतलीके समान मायाके अधीन होकर अवस्थित रहते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ६७ ॥ उनके जैसा जैसे पूर्वजन्म कृतकर्म हैं परब्रह्मरूपिणी महामाया उनको उसी उसी रूपमें प्रेरणा करती है ॥ ६८ ॥ वह विषम वा करुणारहित नहीं हैं वह भुवनेश्वरी जीवोंकी मुक्तिके निमित्त सदा यत्न करती रहती हैं ॥ ६९ ॥ यदि वह भुवनेश्वरी इस चराचर जगत्को उत्पन्न न करतीं और कूटस्थ चैतन्य रूपमें जीवोंकी अधिष्ठात्री न होती तो यह सम्पूर्ण जगत् जड़वत् होकर तामसी मायामें विलीन हो जाता इसमें संदेह नहीं ॥ ७० ॥ अतएव देवी भुवनेश्वरी करुणावशसे उस जीवादिसंपूर्ण जगत्को उत्पन्न कर प्रत्येक जीवमें अधिष्ठात्री रह उनके कर्मानुसार उनको प्रेरणा करती हैं ॥ ७१ ॥

इस कारण ब्रह्मादि भी जो मायामें मोहित रहते हैं इसमें फिर संदेह ही क्या है ? क्योंकि सुर और असुरादि सब ही मायाके अन्तर्गत और मायाके अधीन हैं ॥ ॥ ७२ ॥ अतएव हे राजन् ! यह निश्चय जानना चाहिये कि केवल वह महादेवी भगवती ही अपनी इच्छानुसार विहार और विचरण करती हैं. वह किसीके अधीन नहीं हैं इस कारण सर्वान्तःकरणसे महेश्वरीकी सेवा करनी चाहिये ॥ ७३ ॥ इस त्रिभुवनमें उनकी अपेक्षा अधिकतर वा उत्कृष्टतर वस्तु दूसरी कुछ नहीं है अतएव उन परमाशक्तिके चरणोंका बिना स्मरण किये जन्मकी सफलता नहीं हो सकती ॥७४॥ "वह देवी जिस कुलकी अभीष्ट देवता नहीं हैं, उस कुलमें जन्म न हो मैंही वह देवी भगवती हूं, अन्य नहीं, मैं ही ब्रह्म हूं; मैं शोकभागी नहीं" ॥ ७५ ॥ इस प्रकार अभेद ज्ञानसे उन नित्या जगद

तस्माद्ब्रह्मादिमोहेऽस्मिन्कर्तव्यः संशयो न हि ॥ मायांतः पातिनः सर्वे मायाधीनाः सुराऽसुराः ॥ ७२ ॥ स्वतंत्रा सैव देवेशी स्वेच्छाचार विहारिणी ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्सेवनीया महेश्वरी ॥ ७३ ॥ नातः परतरं किंचिदधिकं भुवनत्रये ॥ एतद्धि जन्मसाफल्यं पराशक्तेः पदस्मृतिः ॥ ७४ ॥ मा भूत्तत्र कुले जन्म यत्र देवी न दैवतम् ॥ अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ॥ ७५ ॥ इत्यभेदेन तां नित्यां चिंतयेज्जगदंबिकाम् ॥ ज्ञात्वा गुरुमुखादेनां वेदांतश्रवणादिभिः ॥ ७६ ॥ नित्यमेकाग्रमनसा भावयेदात्मरूपिणीम् ॥ मुक्तो भवति तेनाशु नान्यथा कर्मकोटिभिः ॥ ७७ ॥ श्वेताश्वतरादयः सर्वे ऋषयो निर्मलाशयाः ॥ आत्मरूपां हृदा ज्ञात्वा विमुक्ता भवबंधनात् ॥ ७८ ॥ ब्रह्मविष्णवादयस्तद्वद्गौरिलक्ष्म्यादयस्तथा ॥ तामेव समुपासंते सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ ७९ ॥ इति ते कथितं राजन्यद्यत्पृष्टं त्वयाऽनघ ॥ प्रपंचतापत्रस्तेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ८० ॥

म्बिकाकी चिन्ता करे प्रथमगुरु मुखसे फिर वेदान्तश्रवणादि द्वारा भगवतीको जानकर ॥ ७६ ॥ प्रतिदिन एकाग्रमनसे उन आत्मरूपिणीका ध्यान करनेसे शीघ्रही मुक्तिलाभ होगा अन्यथा करोड़ कर्म द्वारा भी मुक्ति प्राप्त होनेकी संभावना नहीं है ॥ ७७ ॥ श्वेताश्वतरादि निर्मलाशय ऋषिगणोंने इन आत्मरूपिणी कीहृदयमें चिन्ताकरके भवबंधनसे मुक्तिलाभ की थी ॥ ७८ ॥ ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देवतागण और गौरी तथा लक्ष्मी इत्यादि देवीगण भी उन सच्चिदानंद रूपिणीकी उपासना करती हैं ॥७९ हे विमलात्मन् ! राजेन्द्र ! तुमने संसार भयसे त्रसित होकर जो जो पूछा था वह सब ही तुम्हारे निकट वर्णन किया अब क्या सुननेकी इच्छा करते हो ? ॥ ८० ॥

हे राजन् ! यह मैंने तुमसे सब प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला पुण्यप्रद परम अद्भुत पुराणाख्यान वर्णन किया ॥ ८१ ॥ जो पुरुष प्रतिदिन इस वेदतुल्य भागवत पुराणकी कथा सुनता है वह सब प्रकारके पापोंसे छूटकर देवीलोकमें जाय महामहिमासे काल व्यतीत करता है इसमें संदेह नहीं ॥ ८२ ॥ सूतजी बोले हे ऋषिगण ! व्यासदेवने यह श्रीमद्भागवतनामक पंचमपुराण पूर्वमें कीर्त्तन किया था, मैंने उनसे जिस प्रकार सुना था आपके निकट भी उसी प्रकार वर्णन

एतत्ते कथितं राजन्मयाऽऽख्यानमनुत्तमम् ॥ सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं परमाद्भुतम् ॥ ८१ ॥ य इदं शृणु यान्नित्यं पुराणं वेदसंमितम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोके महीयते ॥८२॥ सूत उवाच ॥ एतन्मया श्रुतं व्यासात्कथ्यमानं सविस्तरम् ॥ पुराणं पंचमं नूनं श्रीमद्भागवताभिधम् ॥८३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे पंचविंशोध्यायः ॥२५॥ स्कन्धश्चायं समाप्तः ॥

अर्धाधिकैर्वसुविधुयुगविश्वंभरा ॥ (१४१८ ॥) भिधैः ॥ पद्यैश्चतुर्थस्कन्धोऽयं कथितो व्यासनिर्मितैः ॥

किया ॥ ८३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायांपंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ १४१८ श्लोकोंमें यह चतुर्थस्कन्ध पूर्ण हुआ. श्रीजगदम्बा मंगल करें । शुभमस्तु.

इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते चतुर्थस्कन्धः समाप्तः

अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते पञ्चमस्कन्धः प्रारभ्यते

दोहा--दुस्तर भवसागरतरण, अजा कोटिरविज्योति ॥ मन्दहसनके चरणयुग, बन्दत मंगल होति ॥ १ ॥
सकलकामप्रद भक्तहित, धरतसदा अवतार ॥ जगदम्बाके चरण भज, जो चाहत निस्तार ॥ २ ॥
श्रीरघुपतिकोमल चरण, बार बार मन लाय ॥ यहि पंचमस्कन्धकी, भाषा लिखत बनाय ॥ ३ ॥

ऋषिगण बोले हे सूत ! श्रीकृष्णके उपाख्यान विषयमें उनके अद्भुत अलौकिक और संपूर्ण पापोंकेविध्वंस करनेवाले पवित्रकी चरित्रोंकी कथा वर्णन की है ॥ १ ॥ किन्तु हे महाभाग ! तुमने महाप्राज्ञ होकर भी वासुदेव विषयक कथा संक्षेपसे वर्णन करी. इसलिये हमारे अन्तरमें अनेक संशय उपस्थित हुए हैं ॥२॥

ऋषय ऊचुः ॥ भवता कथितं सूत महदाख्यानमुत्तमम् ॥ कृष्णस्य चरितं दिव्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ संदेहोऽत्र महाभाग वासुदेव कथानके ॥ जायते नः प्रोच्यमानेऽविस्तरेण महामते ॥२॥ वने गत्वा तपस्तप्तं वासुदेवेन दुष्करम् ॥ विष्णोरंशावतारेण शिवस्याऽऽराधनं कृतम् ॥ ३ ॥ वरप्रदानं देव्या च पार्वत्या यत्कृतं पुनः ॥ जगन्मातुश्च पूर्णायाः श्रीदेव्या अंशभूतया ॥ ४ ॥ ईश्वरेणापि कृष्णेन कुतस्तौ संप्रपूजितौ ॥ न्यूनता वा किमस्त्यस्य तदेवं संशयो मम ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वं कारणं तत्र मया व्यास श्रुतं च मम् ॥ प्रब्रवीमि महाभागाः कथां कृष्णगुणान्विताम् ॥ ६ ॥ वृतांतं व्यासतः श्रुत्वा वैराटी सुतजस्तदा ॥ पुनः पप्रच्छ मेधावी संदेहं परमं गतः॥ ७ ॥

प्रथम तो विष्णुके अंशावतार वासुदेव पुत्रकी कामनासे वनमें जाय कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हो शक्तिसहित शिवकी आराधनाको सर्वोत्तम जान उनकीही आराधनामें रत हुए ॥ ३ ॥ दूसरे जगज्जननी परा प्रकृति श्रीदेवीके अंशरूप होकर भी देवी पार्वती और महादेवजीने वासुदेवको वर दिया ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णने ईश्वर होकर भी क्यों उनकी पूजा की ? तो क्या श्रीकृष्ण हर पार्वतीकी अपेक्षा हीन प्रभाव हैं यही हमारा संशय है ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा हे महाभाग ! महर्षिगण ! श्रीकृष्णके शिवकी आराधना करनेका कारण जो श्रीव्यास देवजीसे मैंने सुना है सो,मैं आपके निकट उन्हीं श्रीकृष्णकी गुणोंकी गाथा वर्णन करता हूं ॥६॥ परीक्षितपुत्र बुद्धिमान् जनमेजयने जबसे व्यासजीसे यह वृत्तान्त सुना तब उन्होंने भी उक्त विषयमें अत्यन्त संदेह युक्त होकर उनसे पूँछा था ॥ ७ ॥

जनमेजयने कहा हे सत्यवतीतनय ! आपसे परम कारण स्वरूप भगवतीकी अनेकानेक तत्त्वकथा सुनकर भी मेरे मनका संशय दूर नहीं होता । हे महाभाग ! श्रीकृष्णने स्वयं देवादिदेव विष्णुका अवतार होकर भी जो अतिकठोर तपानुष्ठान करके शम्भुकी आराधना की थी यही मेरे आश्चर्यका विषय है ॥ ८ ॥ ९ ॥ जो सब जीवोंके आत्मा जगत्के एकमात्र अधीश्वर और संपूर्ण सिद्धिप्रदान करनेमें समर्थ हैं उन प्रभु हरिने प्राकृत मनुष्यके समान किस कारण घोर तपस्याका अनुष्ठान किया ॥ १० ॥ जो श्रीकृष्ण स्थावार जंगममय विश्वकी सृष्टि पालन वा संहार सभी करनेमें समर्थ हैं उन्होंने किस कारण ये कठोर तपका आचरण किया ? ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! तुमने जो कहा सो सत्य है यद्यपि दानव निषूदन वासुदेव जनार्दन देवाताओंकी भी सृष्टि और

जनमेजय उवाच ॥ सम्यक्सत्यवतीसूनो श्रुतं परमकारणम् ॥ तथाऽपि मनसो वृत्तिः संशयं न विमुंचति ॥ ८ ॥ कृष्णेनाराधितः शंभुस्तपस्तप्त्वाऽतिदारुणम् ॥ विस्मयोऽयं महाभाग देवदेवेन विष्णुना ॥ ९ ॥ यः सर्वात्माऽपि सर्वेशः सर्वसिद्धिप्रदः प्रभुः ॥ स कथं कृतवान्घोरं तपः प्राकृतवद्धरिः ॥ १० ॥ जगत्कर्तुं क्षमः कृष्णस्तथा पालयितुं क्षमः ॥ संहर्तुमपि कस्मात्स दारुणं तप आचरत् ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ सत्यमुक्तं त्वया राजन्वासुदेवो जनार्दनः ॥ क्षमः सर्वेषु कार्येषु देवानां दैत्यसूदनः ॥ १२ ॥ तथाऽपि मानुषं देहमाश्रितः परमेश्वरः ॥ कृतवान्मानुषान्भावान्वर्णाश्रमसमाश्रितान् ॥ १३ ॥ वृद्धानां पूजनं चैव गुरुपादाभिवंदनम् ॥ ब्राह्मणानां तथा सेवा देवताराधनं तथा ॥ १४ ॥ शोके शोकाभियोगश्च हर्षेहर्षसमुन्नतिः ॥ दैन्यं नानापवादाश्च स्त्रीषु कामोपसेवनम् ॥ १५ ॥ कामः क्रोधस्तथा लोभः कालेकाले भवंति हि ॥ तथा गुणमये देहे निर्गुणत्वं कथं भवेत् ॥ १६ ॥

पालनादि सब कार्यमें समर्थ हैं ॥ १२ ॥ किंतु तो भी उन परमेश्वरने मनुष्य देहधारी होनेसे मनुष्योंके अवलम्बित वर्ण और आश्रम धर्मका अनुष्ठान किया था ॥ १३ ॥ देखो बूढे मनुष्योंकी पूजा, गुरुजनोंके पदवंदन, ब्राह्मणकी सेवा देवताओंकी आराधना ॥ १४ ॥ शोकके समयमें शोकका उदय हर्षके समयमें हर्षका उदय अपवाद वा दीनता प्रकाश अथवा स्त्रियोंके सहित रतिक्रीडादि ॥ १५ ॥ अधिक क्या कहूं ? तात्पर्य यह है कि समयमें काम क्रोध वा लोभ इत्यादि वे सब कार्य ही मनुष्यमात्रसे देह-धर्मके कारण होते हैं अतएव श्रीकृष्ण स्वरूपसे विशुद्धसत्व प्रधान होनेपर भी गुणमय मनुष्यदेह धारण करके फिर किस प्रकार निर्गुण भाव अवलंबन करते ॥ १६ ॥

हे नरनाथ ! सुबल--तनया गांधारी और ब्राह्मणोंके शापसे यादवकुलके ध्वंस होनेपर श्रीकृष्णने देह त्याग किया ॥ १७ ॥ इसके उपरांत उन आभीर जातीय तस्करोंके मार्गमें उनकी पत्नियोंका हरण और धनरत्नादिलूटनेपर अर्जुन उनको निवारण नहीं कर सके उन्होंने इस समय निर्वीर्य पुरुषके समान केवल आंसू बहाये थे ॥ १८ ॥ कामदेव और अनिरुद्ध इनके द्वारका गृहसे हरण होनेपर कुछ भी नहीं जान सके वह केवल इस मनुष्यदेहकाही व्यवहार धर्म है १९ ॥॥ विशेषतः विष्णुके अंशातवार नाराणय ऋषि और उनके अंशावतार वासुदेव हैं अतएव इन वासुदेवने जो शिवकी आराधना की, इसमें फिर आश्चर्य ही क्या है ? ॥२०॥ सुषुप्तिका आधारभूत जो कारण अपना शरीर है सर्वेश्वर शिव उस कारण देहके अधिष्ठता स्वरूप हैं, इससे वे विष्णुके भी जनक है अतएव स्वयं विष्णु

सौबलीशापजाद्दोषात्तथा ब्राह्मणशापजात् ॥ निधनं यादवानां तु कृष्णदेहस्य मोचनम् ॥ १७ ॥ हरणं लुंठनं तद्वत्तत्पत्नीनां नराधिप ॥ अर्जुनस्यास्त्रमोक्षे च क्लीबत्वं तस्करेषु च ॥ १८ ॥ अज्ञत्वं हरणं गेहात्तत्प्रद्युम्नानिरुद्धयोः ॥ एवं मानुषदेहेऽस्मिन्मानुषं खलु चेष्टितम् ॥ १९ ॥ विष्णोरंशावतारेऽस्मिन्नारायणमुनेस्तथा ॥ अंसजे वासुदेवेऽत्र किं चित्रं शिवसेवने ॥ २० ॥ स हि सर्वेश्वरो देवो विष्णोरपि च कारणम् ॥ सुषुप्तस्थाननाथः स विष्णुना च प्रपूजितः ॥ २१ ॥ तदंशभूताः कृष्णाद्यास्तैः कथं न स पूज्यते ॥ अकारो भगवान्ब्रह्मा ऽप्युकारः स्याद्धरिः स्वयम् ॥ २२ ॥ मकारो भगवान्रुद्रोऽप्यर्धमात्रा महेश्वरी ॥ उत्तरोत्तरभावेना प्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः ॥ २३ ॥ अतः सर्वेषु शास्त्रेषु देवी सर्वोत्तमा स्मृता ॥ अर्धमात्रा स्थिता नित्या याऽनुच्चार्या विशेषतः ॥ २४ ॥ विष्णोरप्यधिको रुद्रो विष्णुस्तु ब्रह्मणो ऽधिकः ॥ तस्मान्न संशयः कार्यः कृष्णेन शिवपूजने ॥ २५ ॥

भी इसी कारण उनकी पूजा करते हैं ॥ २१ ॥ राम कृष्ण इत्यादि सम्पूर्ण अवतार उन विष्णुका अंशमात्र हैं. फिर वे क्यों शिवकी पूजा न करें ? अकार भगवान् ब्रह्मा, उकार साक्षात् हरि ॥ २२ ॥ मकार स्वयं भगवान् रुद्र और अर्द्धमात्रा ही माहेश्वरी है. इसीसे पंडितोंने ब्रह्माकी अपेक्षा विष्णुका विष्णुकी अपेक्षा रुद्रका और रुद्रकी अपेक्षा तुरीयरूपिणी महेश्वरीका श्रेष्ठत्व प्रतिपादन किया है॥ २३ ॥ जो अर्द्धमात्रा किसीसे भी उच्चारित नहीं होती. वही नित्यरूपा देवी उसका स्वरूप है. अतएव सम्पूर्ण शास्त्रोंमें ही उसका सबकी अपेक्षा श्रेष्ठत्व प्रतिपादित हुआ है ॥ २४ ॥ ब्रह्मासे विष्णु प्रधान, विष्णुसे रुद्र प्रधान हैं, अतएव कृष्णने जो शिवकी पूजा की इसमें फिर संशय करना उचित नहीं है ॥ २५ ॥

शिवकी इच्छानुसार ब्रह्माको वरदेनेको ब्रह्माके ललाटसे मूलरुद्रके अंश दूसरे रुद्र उत्पन्न हुए थे ॥ २६ ॥ मूलरुद्रकी बात तो दूर रहे. वे भी सबके पूजनीय हैं हे राजन् ! परमात्मस्वरूपिणी देवीके प्रभावसे शिवका उत्कर्ष प्रतिपादित हुआ है ॥ २७ ॥ योगमायाके प्रभावसे युगयुगमें विष्णुके इसीप्रकार अनेक अवतार होते हैं इस विषयमें विचार करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ २८ ॥ केवल अच्युतको ही नहीं. वह ईश्वरी ब्रह्मा और महादेवको भी सदा अनेक अवतारोंके निमित्त क्लेशप्रदान करती है अधिक क्या वही प्रच्छन्न भावसे नेत्रनिमेष मात्रमें सर्व प्रकारसे विश्व संसारकी सृष्टि, स्थिति और संहार करती हैं ॥ २९ ॥ योग मायाने श्रीकृष्णको सूतिकागृहसे व्रजमें भेजकर पशुपालपति नंदके घर भलीभांतिसे रक्षा की. फिर कंसका विनाश करनेकी इच्छासे कृष्णको मथुरामें ले गई उस स्थानमें जरासंधसे भीत होनेपर फिर द्वारावतीमें प्रेरण किया था ॥ ३० ॥ अधिक क्या. उन्होंने सोलह हजार पांचसौ रमणी और अपने अंशसे प्रधान

इच्छया ब्रह्मणो वक्त्रा द्वरदानार्थमुद्भभौ ॥ मूलरुद्रस्यांशभूता रुद्रनामा द्वितीयकः ॥ २६ ॥ सोऽपि पूज्योऽस्ति सर्वेषां मूलरुद्रस्य का कथा ॥ देवी तत्त्वस्य सान्निध्यादुत्तमत्वं स्मृतं शिवे ॥२७॥ अवतारा हरेरेवं प्रभवंति युगेयुगे ॥ योगमायाप्रभावेन नात्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥ या नेत्रपक्ष्मपरिसंचलनेन सम्यग्विश्वं सृजत्यवति हन्ति निगूढभावा ॥ सैषा करोति सततं द्रुहिणाच्युतेशान्नानावतार कलने परिभूयमानान् ॥२९॥ सूतीगृहाद्व्रजनमप्यनया नियुक्तं संगोपितश्च भवने पशुपालराज्ञः ॥ संप्रापितश्च मथुरां विनियो जितश्च श्रीद्वारका प्रणयने ननु भीतचित्तः ॥३०॥ निर्माय षोडशसहस्रशतार्धकास्ता नार्योऽष्ट संमततराः स्वकलासमुत्थाः ॥ तासां विलासवशगं तु विधाय कामं दासीकृतो हि भगवाननयाऽप्यनंतः ॥ ३१ ॥ एकाऽपि बंधनविधौ युवती समर्था पुंसो यथा सुदृढलोहमयं तु दाम ॥ किं नाम षोडशसहस्रशताऽधिकाश्च तं स्वीकृतं शुकमिवाऽति निबंधयंति ॥ ३२ ॥ सात्राजितीवशगतेन मुदाऽन्वितेन प्राप्तं सुरेंद्रभवनं हरिणा तदानीम् ॥ कृत्वा मृधं मघवता विहृतस्तरूणामीशः प्रियासदनभूषणतां य आप ॥ ३३ ॥

आठ नायिका उत्पन्न करके अनंतक अवतार स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको उनके विलास भोगके वशीभूत दासस्वरूप किया था ॥ ३१ ॥ स्त्री अकेली होनेपर भी जब दृढ लोहेकी शृंखला (जञ्जीर) के समान मायाजालमें पुरुषको बांध सकती है. तब पांचसौ अधिक षोडश सहस्र रमणी जो उन कृष्णको पालित शुकके समान सब कार्यमें प्रयोग करै. फिर इसमें आश्चर्यही क्या है ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्ण सत्यभामाके इस प्रकार वशीभूत हुए थे कि उसकी आज्ञासे अत्यानंद सहित पारिजात पुष्प लेने इंद्रालयमें गये फिर सुरपतिसे संग्राम करके पारिजात तरु हरणपूर्वक उसको प्रियतमा सत्यभामाके आलयमें महार्ह भूषणस्वरूप कर दिया था ॥ ३३ ॥

देखो. उन्हीं श्रीकृष्णने संपूर्ण धर्मकार्यके विधानाभिलाषसे अपने बाहुबल द्वारा शिशुपाल इत्यादिको पराजित कर भीष्मकी कन्या रुक्मिणीका हरण पूर्वक फिर स्वीयधर्मपत्नीरूपमें ग्रहण किया. अतएव पराई स्त्री ग्रहण करनेसे जो पाप होता है. वह विधि कहां रही ? ॥ ३४ ॥ बोध होता है. देह धारण मात्रसे प्राणीगण एक बारही प्रकृतिक कारण अहंकारके दास होजाते हैं. सुतरां तब उसी अधःपतनकारी भीषण मोहसे मोहित होकर शुभ व अशुभ कार्यका अनुष्ठान करते हैं ॥ ३५ ॥ मूल प्रकृतिसे ब्रह्मा विष्णु तथा हर और प्रकृतिसंभव तामस अहंकारसे स्थावर जंगममय विश्व संसार उत्पन्न हुआ है ॥ ३६ ॥ कमलयोनि पितामह जब अहंकारसे वियुक्त होते हैं तभी विमुक्त रहते हैं. यह न होनेसे संसार कार्य करते हैं ॥ ३७ ॥ अहंकारका त्याग करनेसे ही जीव विमुक्त होता

यो भीमजा हि हृतवाञ्छिशुपालकादीञ्जित्वा विधिं निखिलधर्मकृतो विधित्सुः ॥ जग्राह तां निजबलेन च धर्मपत्नीं कोऽसौ विधिः परकलत्रहृतौ विजातः ॥ ३४ ॥ अहंकारवशः प्राणी करोति च शुभाऽशुभम् ॥ विमूढो मोह जालेन तत्कृतेनाऽतिपातिना ॥ ३५ ॥ अहंकाराद्धि संजातमिदं स्थावरजंगमम् ॥ मूलाद्धरिहरादीनामुग्रात्प्रकृतिसंभवात् ॥ ३६ ॥ अहंकारपरित्यक्तो तदा भवति पद्मजः ॥ तदा विमुक्तो भवति नो चेत्संसारकर्मकृत् ॥ ३७ ॥ तन्मुक्तस्तुविमुक्तो हि बद्धस्तद्वशतां गतः ॥ न नारी न धनं गेहं न पुत्रा न सहोदराः ॥ ३८ ॥ बंधनं प्राणिनां राजन्नहंकारस्तु बंधकः ॥ अहं कर्ता मयाचेदं कृतं कार्यं बलीयसा ॥ ३९ ॥ करिष्यामि करोम्येवं स्वयं बध्नाति प्राणभृत् ॥ कारणेन विना कार्यं न संभवति कर्हिचित् ॥ ४० ॥ यथा न दृश्यते जातो मृत्पिंडेन विना घटः ॥ विष्णुः पालयिता विश्वस्याहंकारसमन्वितः ॥ ४१ ॥ अन्यथा सर्वदा चिंता बुधो मग्नः कथं भवेत् ॥ अहंकार विमुक्तस्तु यदा भवति मानवः ॥ ४२ ॥

है. तब गृह, धन, स्त्री, पुत्र और सहोदर किसीका बंधन नहीं रहता। किंतु अहंकारमें बंधनेसे ही जीव उनके वशमें हो जाता है ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! अहंकार प्राणी मात्रकाही बंधनकारक है. सुतरां अहंबुद्धिसे ही "मैंने अपनी सामर्थ्यसे यह कार्य किया है, करता हूं ॥ ३९ ॥ व करूंगा" इत्यादि ज्ञानसे जीव स्वयंहीबँधता है मिट्टीके पिंडविना घट उत्पन्न नहीं होता, इसी प्रकार कारणके विना कभी कार्यकी उत्पत्ति नहीं होसकती सुतरां विष्णु अहंकारमें बंधकर ही विश्वसंसारका पालन करते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ मनुष्य मात्रही अहंकारमें बँधकर सर्वदा चिंता सागरमें डूबे रहते हैं, किंतु जब अहंकारसे मुक्त होते हैं तो फिर चिंतामें मग्न क्यों रहेंगे ॥ ४२ ॥

अहंकारसे मोह उत्पन्न होता है. मोहसे संसार इत्यादि होता है, नहीं तो वह मंगलमय हरि अनेक योनियोंमें अवतीर्ण क्यों हो ? ॥ ४३ ॥ अहंकारहीन पुरुषको मोह नहीं होता, इस कारण संसारमें भी प्रवृत्ति नहीं रहती है महाराज ! अहंकार गुण प्रभेदसे तीन हैं, सात्विक, राजसिक और तामसिक ॥ ४४ ॥ वह तीनों अहंकार ही सृष्ट्यादि कार्यानुसार क्रमसे ब्रह्मा, विष्णु और महादेवमें विराजमान हैं हे राजेन्द्र ! यह जो केवल मैं ही कहता हूं, ऐसा नहीं है प्रजापति, हरि और हर इन प्रत्येकमें ॥ ४५ ॥ जो विविध अहंकार सदा वर्त्तमान रहते हैं, वह तत्त्वज्ञानी महर्षि मात्र ही सदा कहते हैं, अतएव उस अहंकारसे ही जो यह बद्ध हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ४६ ॥ मंदबुद्धि पंडितजन भी मायासे मोहित होकर कहते हैं कि विष्णु अपनी इच्छासे नाना अवतार

अवतारप्रवाहेषु कथ मज्जेच्छुभाशयः ॥ मोहमूलमहंकारः संसारस्तत्समुद्भवः ॥ ४३ ॥ अहं कारविहीनानां न मोहो न च संसृतिः ॥ त्रिविधः पुरुषः प्रोक्तः सात्त्विको राजसस्तथा ॥ ४४ ॥ तामसस्तुमहाराज ब्रह्माविष्णुशिवा दिषु ॥ त्रिविधस्त्रिषु राजेंद्र काजेशादिषु सर्वदा ॥ ४५ ॥ अहंकारः सदा प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ अहंकारेण तेनैव बद्धा एते न संशयः ॥ ४६ ॥ मायाविमोहिता मंदाः प्रवदंति मनीषिणः ॥ करोति स्वेच्छया विष्णुरवताराननेकशः ॥४७॥ मंदोऽपि दुःखगहने गर्भवासेऽतिसंकटे ॥ न करोति मतिं विद्वान्कथं कुर्यात्स चक्रभृत् ॥४८॥ कौसल्यादेवकीगर्भे विष्ठामलसमाकुले ॥ स्वेच्छया प्रवदंत्यद्धा गतो हि मधुसूदनः ॥ ४९ ॥ वैकुंठसदनंत्यक्त्वा गर्भवासे सुखं नु किम् ॥ चिंताकोटिसमुत्थाने दुःखदे विषसंमिते ॥ ५० ॥ तपस्तप्त्वा क्रतून्कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥ न वांछंति यतो लोका गर्भवासं सुदुःखदम् ॥५१॥ स कथं भगवान्विष्णुः स्ववशश्चेज्जनार्दनः ॥ गर्भवासरुचिर्भूयाद्भवेत्स्ववशता यदि ॥ ५२ ॥

रूपमें उत्पन्न होते हैं ॥ ४७ ॥ किंतु जब कि मूर्ख लोगभी अत्यन्त क्लेशकारी गर्हित अतिशय संकट स्थल गर्भवासकी अभिलाषा नहीं करते तब चक्रधारी विष्णु किस कारण गर्भवासकी अभिलाषा करेंगे ? ॥४८॥ मधुसूदन कौशल्या और देवकीके मलादिसे दूषित गर्भमें अपनी इच्छासे आये थे, वैष्णवलोग यही बात कहते हैं ॥ ४९ ॥ किंतु क्लेशकर विषके समान उस गर्भमें शत शत चिंता उदय होती हैं. अतएव हरि वैकुण्ठवास त्यागकर जो गर्भमें वास करैं तो उसमें सुख क्या ? ॥ ५० ॥ विशेष करके देखा जाता है कि पुरुष दुःखसहगर्भवासके क्लेशसे छूटनेको ही तपस्या यज्ञ और अनेक प्रकारके दान करते हैं ॥ ५१ ॥ भगवान् विष्णु क्या स्वाधीन हैं ? यदि वे अपने स्वाधीन होते तो कभी गर्भमें वास करनेकी कामना नहीं करते ॥ ५२ ॥

अतएव हे महाराज ! यह एक प्रकार स्थिर जानिये कि देवता, मनुष्य, तिर्यक्, अधिक क्या, ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त समस्त जगन्मण्डल उन्हीं योगमायाके अधीन हैं ॥ ५३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और हर इत्यादि सभी उनकी मायारूप तन्तुसे बँधे हैं अतएव मायासे बँधकर ही ऊर्णनाभके समान वह क्रीडाकी वासनासे अनेक योनियोंमें भ्रमण और बँधन लाभ करते हैं ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ राजाने कहा,हे प्रभो ! आपने महामाया योगेश्वरीका प्रभाव विस्तारपूर्वक वर्णन किया, अब उनके चरित्रकी कथा सुननेको मेरे हृदयमें अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है, आप उसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ उन महेश्वरीसेही यह चराचर संपूर्ण जगत् उत्पन्न है, यह जानकर कौन उस महादेवीके प्रभावकी कथा सुननेकी वासना नहीं करता

जानीहि त्वं महाराज योगमायावशे जगत् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं देवमानुषतिर्यगम् ॥ ५३ ॥ माया तंत्री निबद्धा ये ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ भ्रमंति बंधमायांति लीलया चोर्णनाभवत् ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ योगेश्वर्याः प्रभावोऽयं कथितश्चातिविस्तरात् ॥ ब्रूहि तच्चरितं स्वामिञ्छ्रोतुं कौतूहलं मम ॥ १ ॥ महादेव्योप्रभावं वै श्रोतुं को नाभि वांछति ॥ यो जानाति जगत्सर्वं तदुत्पन्नं चराचरम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महामते ॥ श्रद्दधानाय शांताय न ब्रूयात्स तु मंदधीः ॥ ३ ॥ पुरा युद्धमभूद्घोरं देवदानवसेनयोः ॥ पृथिव्यां पृथिवीपाल महिषाख्ये महीपतौ ॥ ४ ॥ महिषो नाम राजेंद्र चकार तप उत्तमम् ॥ गत्वा हेमगिरौ चोग्रं देवविस्मयकारकम् ॥ ५ ॥ वर्षाणामयुतं पूर्णं चिंतयन्हृदि देवताम् ॥ तस्य तुष्टो महाराज ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ६ ॥ तत्रागत्याब्रवीद्वाक्यं हंसःरूढश्चतुर्मुखः ॥ वरं वरय धर्मात्मन्ददामि तव वांछितम् ॥ ७ ॥

है ? ॥ २ ॥ व्यासजी बोले,हे राजन् ! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो मैं तुम्हारे निकट यह विषय विस्तार सहित वर्णन करूंगा, श्रद्धायुक्त और शांतके निकट जो उसका वर्णन नहीं करते उनका अन्तःकरण अत्यन्त हीन है, इसमें संदेह नहीं ॥३॥ हे भूपते ! पूर्वमें पृथ्वीमें महीषासुरके महिपति होनेपर देवता और दानवोंकी सेनामें घोर संग्राम उपस्थित हुआ था ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र ! अपनी मनोरथ सिद्धिके निमित्त वह महिष सुमेरु पर्वतपर जाय देवताओंको विस्मयकर उत्कृष्ट और कठोरतर तपस्या करने लगा ॥ ५ ॥ हे महाराज ! हृदयमें इष्टदेवताका ध्यान करते करते उसको दश हजार वर्ष पूर्ण हुए तब सर्वलोकपितामह ब्रह्माजी उसपर संतुष्ट हुए ॥ ६ ॥ चतुराननने हंसपर चढ़ उस स्थानमें आकर महिषासुरसे कहा, हे धर्मात्मन् ! तुम अपने अभिलषित वरकी प्रार्थना करो, मैं वही दूंगा ॥ ७ ॥

दे. भा. ॥ ५ ॥

महिषने कहा, हे प्रभो ! कमलयोने ! मैं अमर होनेकी वासना करता हूं, अतएव हे दवदेव पितामह ! जिससे मुझको मृत्युका भय न रहे आप वही कीजिये ॥ ८ ॥ ब्रह्माजीने कहा हे महिष ! उत्पत्ति होनेपर मरण और मरण होनेपर उत्पत्ति, यही जीवगणोंका सनातन धर्म है अतएव जन्म लेनेसे मृत्यु और मृत्यु होनेपर जन्म अवश्यही होगा, इसमें संदेह नहीं ॥ ९ ॥ हे दानवपते ! अधिक क्या? कालसे महागिरि, महासागर और सम्पूर्ण प्राणीगण सर्वथा विलीन होंगे ॥ १० ॥ हे महीमाल ! तुम साधु हो, अतएव अमर होनेके अतिरिक्त तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो सो कहो, मैं वही प्रदान करूंगा ॥ ११ ॥ महिषने कहा, हे पितामह ! देव, दानव और मनुष्य जाति पुरुषसे मेरी मृत्यु नहीं होवे स्त्रियोंको मैं गिनता नहीं अबलाओंमें कोई मुझको नहीं मार सकती ॥ १२ ॥ अतएव

महिष उवाच ॥ अमरत्वं देवदेव वांछामि द्रुहिण प्रभो ॥ यथा मृत्युभयं न स्यात्तथा कुरु पितामह ॥ ८ ॥ ब्रह्मो वाच ॥ उत्पन्नस्य ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ सर्वथा मरणोत्पत्ती सर्वेषां प्राणिनां किल ॥९॥ नाशः कालेन सर्वेषां प्राणिनां दैत्यपुंगव ॥ महामहीधराणां च समुद्राणां च सर्वथा ॥ १० ॥ एकं स्थानं परित्यज्य मरणस्य महीपते ॥ प्रब्रूहि तं वरं साधो यस्ते मनसि वर्तते ॥ ११ ॥ महिष उवाच ॥ न देवान्मानुषाद्दैत्यान्मरणं मे पितामह ॥ पुरुषान्न च मे मृत्युर्योषामां का हनिष्यति ॥१२॥ तस्मान्मे मरणं नूनं कामिन्याः कुरु पद्मज ॥ अबला हंत मां हंतुं कथं शक्ता भविष्यति ॥ १३ ॥ ब्रह्मो वाच ॥ यदा कदाऽपि दैत्येंन्द्र नार्यास्ते मरणं ध्रुवम् ॥ न नरेभ्यो महाभाग मृतिस्ते महिषासुर ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं दत्त्वा वरं तस्मै ययौ ब्रह्मा निजालयम् ॥ सोऽपि दैत्यवरः प्राप निजं स्थानं मुदाऽन्वितः ॥१५॥ राजोवाच ॥ महिषः कस्य पुत्रोऽसौ कथं जातो महाबली ॥ कथं च माहिषं रूपं प्राप्तं तेन महात्मना॥१६॥

हे पद्मयोने ! कामिनीसेही मेरी मृत्यु स्थिर कीजिये, कामिनियोंका बल बहुत थोडा है अतएव वह मुझको किस प्रकार मारनेमें सपर्थ होंगी ? ॥ १३ ॥ पितामहने कहा, हे दानवेन्द्र ! किसी समय नारीसेही अवश्य तुम्हारी मृत्यु होगी, किसी पुरुषजातिसे तुमको मृत्युका भय नहीं है। हे महिष ! तुमने सौभाग्य शाली होनेसेही यह वर प्राप्त किया ॥ १४ ॥ व्यासजीने कहा, हे राजन् ! ब्रह्माजी उसको इसप्रकार वर देकर अपने स्थानमें चले आये और वह दानवेन्द्रभी हर्षसहित अपने स्थानको चला गया ॥ १५ ॥ राजाने कहा हे भगवन् ! महाबल महिषासुर किसका पुत्र था ? किसप्रकार जन्मग्रहण किया था! और किस प्रकार उसने महात्मा होकरभी महिष देह प्राप्त किया ? ॥ १६ ॥

भा. टी. पं. अ. २

व्यासजीने कहा हे महाराज ! रंभ और करम्भनामक दनुके दो पुत्र हुए. यह श्रेष्ठ दानवयुगल भूमण्डलमें विख्यातहै ॥ ॥ १७ ॥ हे महाराज ! उनके पुत्र नहीं हुआ. सुतरां अभिलषित पुत्रकी कामनासे वह पंचनदके पवित्र जलमें जाय अनेक वर्षपर्यंत तपस्या करनेलगे ॥ १८ ॥ इनमें करम्भ जलमें निमग्न होकर महा तपस्याके अनुष्ठानमें निरत हुआ और रम्भयक्षिणीका स्थान रसालवटवृक्ष अवलम्बनपूर्वक अग्निकी आराधना करने लगा ॥ १९ ॥ रंभ पंचाग्निसाधनामें निरत हुआ है. शचीपति यह वृत्तान्त जान दुःखितचित्त हो दोनों दानवोंकेसमीप गये ॥ २० ॥ वासवने पंचनदमें जाय कुंभीर (ग्राह) रूप धारणपूर्वक करम्भदानवके दोनों पैर पकड़ उसका विनाश किया ॥ २१ ॥ वृत्रनिषूदन वासवने उसीप्रकार दुष्ट करंभको मारा, रम्भ भ्राताकी मरणवार्ता सुनकर अत्यन्त कुपित हुआ

व्यास उवाच ॥ दनोः पुत्रो महाराज विख्यातौ क्षितिमंडले ॥ रंभश्चैव करंभश्च द्वावास्तां दानवोत्तमौ ॥ १७ ॥ तावपुत्रौ महाराज पुत्रार्थं तेपतुस्तपः ॥ बहून्वर्षगणान्कामं पुण्ये पंचनदे जले ॥ १८ ॥ करंभस्तु जले मग्नश्चकार परमं तपः ॥ वृक्षं रसालवटं प्राप्य स रंभोऽग्निम सेवत ॥ १९ ॥ पंचाग्निसाधनासक्तः स रंभस्तु यदाऽभवत् ॥ ज्ञात्वा शशीपतिर्दुःखमुद्ययौ दानवौ प्रति ॥ २० ॥ गत्वा पंचनदे तत्र ग्राहरूपं चकार ह ॥ वासवस्तु करंभं तं तदा जग्राह पादयोः ॥ २१ ॥ निजघान च तं दुष्टं करंभं वृत्रसूदनः ॥ भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रंभः कोपं परं गतः ॥ २२ ॥ स्वशीर्षं पावके होतुमैच्छच्छित्त्वा करेण ह केशपाशे गृहीत्वाऽऽशु वमेन क्रोधसंयुतः ॥ २३ ॥ दक्षिणेन करेणोग्रं गृहीत्वा खड्गमुत्तमम् ॥ छिनत्ति शीर्षं तत्तावद्वह्निना प्रतिबोधितः ॥ २४ ॥ उक्तश्च दैत्य मूर्खोऽसिस्वशीर्षं छेत्तुमिच्छसि ॥ आत्महत्याऽतिदुःसाध्या कथं त्वं कर्तुमुद्यतः ॥ २५ ॥ वरं वरय भद्रंतेय स्तेमनसि वर्तते ॥ मा म्रियस्व मृतेनाद्य किं ते कार्यं भविष्यति ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं रंभः पावकस्य सुभाषितम् ॥ ततोऽब्रवीद्वचो रंभस्त्यक्त्वा केशकलापकम् ॥ २७ ॥

॥ २२ ॥ तब रम्भने क्रोधसे तत्काल वामहस्तमें केश ग्रहणपूर्वक अपना मस्तक छेदन करके अग्निमें होम करनेकी अभिलाषा की ॥ २३ ॥ फिर दक्षिण हाथमें तीक्ष्ण खड्ग लेकर जैसेही मस्तक काटनेमें उद्यत हुआ, उसी समयमें अग्निने उसको ज्ञान दानपूर्वक निषेध कर कहा ॥ २४ ॥ रे मूर्ख दानव ! तू अपना मस्तक छेदन करनेकी अभिलाषा करता है ? आत्महत्या अतिदुष्कर्म है, किसी प्रकार उससे छूटनेका उपाय नहीं हैं अतएव ऐसे कार्यमें क्यों उद्यत हुआ है ? ॥ २५ ॥ तू इस समय प्राणत्याग मत करै, मरनेमे तेरा क्या सिद्ध होगा ? अतएव तू अपने मनका अभिलषित वर मांग मंगलहोगा ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! पावकके यह मधुर वचन सुनकर रंभने केशसमूह त्याग करके कहा ॥ २७ ॥

हे देवेश ! यदि आप संतुष्ट हुए हैं, तो मुझको अभिलषित वरप्रदान कीजिये, जिससे त्रैलोक्यविजयी शत्रुबलविनाशक मेरे एक पुत्र हो ॥ २८ ॥ वह पुत्र सब प्रकार देव दानव और मनुष्यसे अजेय महावीर्यवान् कामरूपी और सबसे सम्मानित हो ॥ २९ ॥ पावकने कहा महाभाग ! तुमको वांछितपुत्र प्राप्त होगा. अतएव मरनेकी इच्छा छोड़ दो ॥ ३० ॥ हे महाभाग ! रंभ ! तुम जिस स्त्रीकी इच्छा करोगे, उससेही तुम्हारे अधिक बलवान पुत्र होगा, इसमें संदेह नहीं ॥ ३१ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उस दानवश्रेष्ठ रंभने अग्निका मनोरंजन वचन सुन उनको प्रणामकर ॥ ३२ ॥ यक्षगणोंसे परिवृत शोभाय मान रमणीय,स्थानमें प्रस्थान किया, तब एक सुदृश्यमत्तमहिषी दानवश्रेष्ठके दृष्टिगोचर हुई फिर उसने अन्यरमणी परित्याग पूर्वक उससेही रमण करनेकी

यदि तुष्टोऽसि देवेश देहि मे वांछितं वरम् ॥ त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्नः परबलार्दनः ॥ २८ ॥ अजेयः सर्वथा स स्याद्देवदानवमानवैः ॥ कामरूपी महावीर्यः सर्वलोकाभिवंदितः ॥२९॥ पावकस्तं तथेत्याह भविष्यति तवेप्सितम् ॥ पुत्रस्तव महाभाग मरणाद्विरमाधुना॥३०॥ यस्यां चित्तं तु रंभ त्वं प्रमदायां करिष्यसि ॥ तस्यां पुत्रो महाभाग भविष्यति बलाधिकः ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो वह्निना रंभो वचनं चित्तरंजनम् ॥ श्रुत्वा प्रणम्य प्रययौ वह्निं तं दानवोत्तमः ॥३२॥ यक्षैः परिवृतं स्थानं रमणीयं श्रियाऽन्वितम् ॥ दृष्ट्वा चक्रे तदा भावं महिष्यां दानवोत्तमः ॥ ३३ ॥ मत्तायां रूपपूर्णायां विहायान्यां च योषितम् ॥ सा समागाच्च तरसा कामयंती मुदाऽन्विता ॥ ३४ ॥ रंभोऽपि गमनं चक्रे भवितव्यप्रणोदितः ॥ सा तु गर्भवती जाता महिषी तस्य वीर्यतः ॥ ३५ ॥ तां गृहीत्वाऽथ पातालंप्रविवेश मनोहरम् ॥ महिषेभ्यश्चतां रक्षन्प्रियामनुमतां किल ॥ ३६ ॥ कदाचिन्महिषश्चान्यः कामार्तस्तामुपाद्रवत् ॥ स्वयमागत्य तं हंतुं दानवः समुपाद्रवत् ॥ ३७ ॥ स्वरक्षार्थं समागम्य महिषं समताडयत् ॥ सोऽपि तं निजघानाशु शृंगाभ्यां काममोहितः ॥ ३८ ॥

अभिलाषा की । महिषीने भी सहर्ष हो समागमकी वासनासे तत्काल उसकी कामना करी ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ रंभके भी भवितव्यताके वश हो उससे संगम करनेपर महिषी उसके वीर्यसे गर्भवती हुई ॥ ३५ ॥ दानवने भी मनोगत प्रियतमाकी रक्षा करनेके लिये उसको लेकर मनोहर पातालपुरमें प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ अनन्तर किसी समय अन्य एकमहिषने कामसे पीडित होकर उक्त महिषीको आक्रमण किया, तब दानव स्वयं उपस्थित होकर विनाश करनेमें उद्यत हुआ ॥ ३७ ॥ दानवने अपनी पत्नीकी रक्षा करनेके निमित्त वेगसहित आकर उस महिषको आघात किया फिर उस काममोहित महिषने भी तत्काल सींगोंसे रंभपर आघात किया ॥ ३८ ॥

महिषने दोनों तीक्ष्ण सींगोंसे उसके हृदयमें ऐसा दारुण प्रहार किया कि, रम्भ उसके आघातसे सहसा पृथ्वीतल में गिरकर मूर्च्छितऔर अन्तमें मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ स्वामीकी मृत्यु होनेपर महिषी कातर हो भयसे तत्काल भाग गई वह शीघ्रतासहित जाय वटवृक्षके समीप यक्षगणोंके शरणागत हुई ॥ ४० ॥ किन्तु यह कामातुर महिष बलवीर्यके मदसे उद्धूत हो महिषीकी कामना करता हुआ उसके पीछे पीछे दौड़ा ॥ ४१ ॥ यक्षोंने देखा कि महिषी भयके कारण कातर होकर दीनभावसे अत्यन्त रोदन करती है और कामवृत्तिको चरितार्थ करनेकी इच्छासे महिष उसके पीछे दौड़ रहा है, यह देख यक्षगण महिषीकी रक्षा करनेके लिये आये ॥ ४२ ॥ महिषके संग यक्षोंका घोरतर संग्राम उपस्थित हुआ, फिर महिष उनके बाणोंसे आहत होकर

ताडितस्तेन तीक्ष्णाभ्यां शृंगाभ्यां हृदये भृशम् ॥ भूमौ पपात तरसा ममार च विमूर्छितः ॥३९॥ मृते भर्तरि सा दीना भयार्ता विद्रुता भृशम् ॥ सा वेगात्तं वटं प्राप्य यक्षाणां शरणं गता ॥ ४० ॥ पृष्ठतस्तु गतस्तत्र महिषः कामपीडितः ॥ कामयानस्तु तां कामी बलवीर्यमदोद्धतः ॥ ४१ ॥ रुदती सा भृशं दीना दृष्टा यक्षैर्भयातुरा ॥ धावमानं च तं वीक्ष्य यक्षास्त्रातुं समाययुः ॥ ४२ ॥ युद्धं समभवद्घोरं यक्षाणां च हयारिणा ॥ शरेण ताडितस्तूर्णं पपात धरणीतले ॥ ४३ ॥ मृतं रंभं समानीय यक्षास्ते परमं प्रियम् ॥ चितायां रोपयामासुस्तस्य देहस्य शुद्धये ॥ ४४ ॥ महिषी सा पतिं दृष्ट्वा चितायां रोपितं तदा ॥ प्रवेष्टुं सा मतिं चक्रे पतिना सह पावकम् ॥ ४५ ॥ वार्यमाणाऽपि यक्षैः सा प्रविवेशः हुताशनम् ॥ ज्वालामालाकुलं साध्वी पतिमादाय वल्लभम् ॥ ४६ ॥ महिषस्तु चितामध्यात्समुत्तस्थौ महाबलः ॥ रंभोऽप्यन्यद्वपुः कृत्वा निःसृतः पुत्रवत्सलः ॥ ४७ ॥ रक्तबीजोऽप्यसौ जातो महिषोऽपि महाबलः ॥ अभिषिक्तस्तु राज्येऽसौ हयारिरसुरोत्तमैः ॥ ४८ ॥

सहसा पृथ्वीमें गिरगया ॥ ४३ ॥ रम्भ यक्षोंका परमप्रिय पात्र था, इस कारण उन्होंने उसका देह शुद्ध करनेकी इच्छासे उसका मृतक देह लेकर अग्निमें जलाया पतिको चितामें रखता हुआ देखकर महिषीने उसके सहित पावकमें प्रवेश करनेकी इच्छा की ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ यक्षोंके निवारण करनेपर भी वर साध्वी प्रियतमा पतिको लेकर शिखासमाकुल हुताशनमें प्रविष्ट हुई ॥ ४६ ॥ महिषीके मरनेपर तब महाबलवान् महिष मातृगर्भपरित्याग करके चिताके मध्यसे उत्थित हुआ. फिर रम्भ भी पुत्रके प्रति वात्सल्यके कारण रूपान्तर धारण करके बहिर्गत हुआ ॥ ४७ ॥ रम्भ रूपान्तरको प्राप्त होकर रक्तबीज नामसे विख्यात हुआ तिसके पुत्र बलवान् दानवने इस प्रकार जन्म ले महिष नाम ग्रहण किया, तब प्रधान प्रधान दानवोंने महिषको राज्यमें अभिषिक्त

दे. भा.
॥ ७ ॥

किया ॥ ४८ ॥ हे नृपवर ! महावीर्यवान् रक्तबीज और महिषदानव इस प्रकार जन्म ग्रहण करके देवता, दानव और मनुष्यगणोंसे अवध्य हुए थे ॥ ४९ ॥
हे राजन् ! वह मैंने तुमसे उस महात्मा महिषदानवका जन्म और उसके वरलाभका वृत्तान्त संपूर्ण विस्तारसहित वर्णन किया ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते
महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व्यासजी बोले, उस बलदर्पित महाबलवान् महिषासुरने राज्य लाभ करके संपूर्ण जगत्‌को अपने
वशमें करलिया ॥ १॥ महिषासुर जब बाहुबलसे सागरसहित भूमण्डलको जीतकर शासन करने लगा, उसकाल उस राज्यमें छत्रधारी दूसरे किसी राजा
वा वैरियोंका गर्व तथा किसी भयका कारण नहीं था ॥ २ ॥ तिस समय अतीव वीर्यवान् मदोद्धत चिक्षुर उसके सेनापतिकार्यमें नियुक्त था और ताम्र

एवं स महिषो जातो रक्तबीजश्च वीर्यवान् ॥ अवध्यैस्तु सुरैर्दैत्यैर्मानवैश्च नृपोत्तम ॥ ४९ ॥ इत्येतत्कथितं राजञ्जन्म तस्य महात्मनः ॥
वरप्रदानं च तथा प्रोक्तं सर्वं सविस्तरम् ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे महिषासुरोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥
॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स महिषो नाम दानवो वरदर्पितः ॥ प्राप्य राज्यं जगत्सर्वं वशे चक्रे महाबलः ॥ १ ॥ पृथिवीं पालयामास
सागरांतां भुजार्जिताम् ॥ एकच्छत्रां निरातंकां वैरिवर्गविवर्जिताम् ॥ २ ॥ सेनानीश्चिक्षुरस्तस्य महावीर्योमदोत्कटः ॥ धनाध्यक्षस्तथा
ताम्रः सेनायुतसमावृतः ॥ ३ ॥ असिलोमा तथोदर्को बिडालाख्यश्च बाष्कलः ॥ त्रिनेत्रोऽथ तथा कालबंधको बलदर्पितः ॥ ४ ॥ एते
सैन्ययुता सर्वे दानवा मेदिनीं तदा ॥ आवृत्य संस्थिता काममृद्धाः सागरमेखलाम् ॥ ५ ॥ करदाश्च कृताः सर्वे भूमिपालाः पुरातनाः ॥
निहता ये बलोदग्राः क्षात्रधर्मव्यवस्थिताः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणा वशगाजाता यज्ञभागसमर्पकः ॥ महिषस्य महाराज निखिले क्षितिमंडले
॥ ७ ॥ एकातपत्रं तद्राज्यं कृत्वा स महिषासुरः॥ स्वर्गं जेतुं मनश्चक्रे वरदानेन गर्वितः ॥ ८ ॥

बहुसंख्यक सेनाके सहित धनकी रक्षामें नियोजित हुआ ॥ ३ ॥ असिलोमा, बिडाल, उदर्क, बाष्कल, त्रिनेत्र, और कालबंधक, इत्यादि बलदर्पित ॥ ४ ॥
सेनानायक दानवलोग उसकाल अपनी २ सेनासहित सागर सहित समृद्धिशालीपृथ्वीमण्डलको आवृत करके वास करने लगे. हे राजन् ! जिन सब पराक्रांत
भा. टी. पं. राजाओंने क्षत्रिय धर्मके अनुसार पलायन न करके युद्ध किया, महिषने उनको निहत किया और उनमें बचे हुए पुरातन महीपालोंको करद किया
अ. ३ अर्थात् उनसे कर लेने लगा ॥ ५ ॥ पृथ्वीमण्डलके ब्राह्मण लोग महिषके वशी भूत होकर उसको यज्ञ भाग देने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ इस प्रकार भूमण्डलमें
महिषका राज्य हुआ एक छत्र राज्य करके भी महिषने वरलाभसे गर्वित होकर स्वर्गका राज्य जीतनेकी इच्छा की ॥ ८ ॥

तब दानवराज महिषने शचीपतिके निकट दूत भेजनेका निश्चय कर शीघ्र वार्ता वाहकको बुलाकर कहा ॥ ९ ॥ कि तुम सत्यनिष्ठ वीर हो, अतएव तुम मेरा दूत कार्य करो, तुम निःशंक चित्तसे सुरालयमें जाय देवताओंके समीप इन्द्रसे कहो कि ॥ १० ॥ हे सहस्रलोचन! तुम स्वर्ग छोड़कर जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चले जाओ, अब विलम्ब मत करो, अथवा महात्मा महिषकी सेवा करो ॥ ११ ॥ वह राजा हैं इस कारण तुम्हारे शरणागत होनेपर अवश्यही तुम्हारी रक्षा करेंगे अतएव हे शचीनाथ! तुम महिषका आश्रय ग्रहण करो ॥ १२ ॥ हे बलसूदन! यदि ऐसा करनेकी तुम्हारी इच्छा न हो तो शीघ्र युद्धके लिये वज्र ग्रहण करो. तुम मेरे पूर्व पुरुषोंसे पराजित हुए थे अतएव मैं तुम्हारे पुरुषत्वको जानता हूं ॥ १३ ॥ हे सुरपते! तुम अह

प्रणिधिं प्रेषयामास हयारिस्तु शचीपतिम् ॥ स संदेशहरं शीघ्रमाहूयोवाच दैत्यराट् ॥ ९ ॥ गच्छ वीर महाबाहो दूतत्वं कुरु मेऽनघ ॥ ब्रूहि शक्रं दिवं गत्वा निःशंकः सुरसन्निधौ ॥ १० ॥ मुञ्च स्वर्गं सहस्राक्ष यथेष्टं गच्छ मा चिरम् ॥ सेवां वा कुरु देवेश महिषस्य महात्मनः ॥ ११ ॥ स त्वां संरक्षयेन्नूनं राजा शरणमाग तम् ॥ तस्मात्त्वं शरणं याहि महिषस्य शचीपते ॥ १२ ॥ नोचेद्वज्रं गृहाणाशु युद्धाय बलसूदन ॥ पूर्वैर्जितोऽसि चास्माकं जानामि तव पौरुषम् ॥ १३ ॥ अहल्याजार विज्ञातं बलं ते सुरसंधप ॥ युध्यस्व व्रज वा कामं यत्र ते रमते मनः ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शक्रः क्रोधसमन्वितः ॥ उवाच तं नृपश्रेष्ठ स्मितपूर्वं वचस्तदा ॥ १५ ॥ न जानेऽहं सुमंदात्मन्यतस्त्वं मददर्पितः ॥ चिकित्सां संकरिष्यामि रोगस्याऽस्य प्रभोस्तव ॥ १६ ॥ अतः परं करिष्यामि मूलस्याऽस्य निर्मूलनम् ॥ गच्छ दूत तथा ब्रूहि तस्याग्रे मम भाषितम् ॥१७॥ शिष्टैर्दूता न हंतव्यस्तस्मात्त्वां विसृजाम्यहम् ॥ युद्धेच्छा चेत्समागच्छ त्वरितो महिषीसुत ॥ १८ ॥

ल्याके जार हो सुतरां तुम्हारा बल स्त्री आकर्षणमें ही उपयुक्त है यह मैं भलीभांति जानता हूं इससे यदि इच्छा हो तो युद्ध करो नहीं राज्यत्याग करके जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चले जाओ ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले, हे नृपवर! दानवके दूतने सुरपतिके निकट उपस्थित होकर महिषासुरके कहे सब वचन कहे तब शक्रने उसके वचनसे कुपित हो कुछेक हँसकर कहा ॥ १५ ॥ रे निर्बोध। तू मदके गर्वसे दर्पित हुआ है इसीसे मुझको नहीं जानता, अतएव तेरे प्रभु महिषासुरको इस रोगकी औषधी शीघ्रही प्रदान करूंगा ॥ १६ ॥ अब इसको समूल निर्मूलन करूंगा. नीतिके जाननेवाले पुरुष दूतको नहीं मारते, मैं इसी कारण तुझको छोडता हूं, अत एव हे दूत! मैं तुझसे जो कहता हूं, दुरात्मा महिषासुरके पास जाकर वह सब कह दे हे महिषीपुत्र! यदि तुझे युद्धकी

त्रासना हुई हैं, तो शीघ्र आ ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे महिष! तू तृणभक्षक और जडाकृति है, अतएव तेरा बल विक्रम हमसे छिपा नहीं है, सुतरां संग्राममें आते ही तेरे सींग लेकर दृढ शरासन बनाऊंगा ॥ १९ ॥ तू सींगोंके बलसे ही दर्प करता है, यह मैं भलींभांति जानता हूं. रे महिषाधम! तू सींगोंसे ही आघात करनेमें चतुर है युद्धका विषय कुछ भी नहीं जानता. अतएव तू जिस सींगोंके बलसे पूर्ण होकर बलका दर्प करता है, मैं वे ही दोनों सींग काटकर तेरा संपूर्ण बलवीर्य नष्ट करूंगा ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले दूत सुरपतिके इस प्रकार वचन सुनकर शीघ्र उस स्थानसे चला फिर प्रमत्त महिषासुर दानवके सन्मुख जाय प्रणाम करके कहने लगा ॥ २२ ॥ हे राजन्! देवाधिपति इन्द्रने देवसेनासे परिवेष्टित हो अपनेको ही पूर्ण बलसे युक्त

हयारे त्वद्बलं ज्ञातं तृणादस्त्वं जडाकृतिः ॥ शृंगयोस्ते करिष्यामि सुदृढं च शरासनम् ॥१९॥ दर्पः शृंगबलात्तेऽस्ति विदितं कारणं मया॥ विषाणे ते परिच्छिद्य संहरिष्यामि तद्बलम् ॥ २० ॥ यद्बलेनातिपूर्णस्त्वं जातोऽसि बलदर्पितः ॥ कुशलस्त्वं तदाघाते न युद्धे महिषाधम ॥ २१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तोऽसौ सुरेन्द्रेण स दूतस्त्वरितो गतः ॥ जगाम महिषं मत्तं प्रणम्य प्रत्युवाच ह ॥२२॥ दूत उवाच ॥ राजन्देवाधिपः कामं न त्वां विगणयत्यसौ ॥ मन्यते स्वबलं पूर्णं देवसैन्यसमावृतः ॥ २३ ॥ यदुक्तं तेन मूर्खेण कथमन्यद्ब्रवीम्यहम् ॥ प्रियं सत्यं च वक्तव्यं भृत्येन पुरतः प्रभोः ॥२४॥ प्रियं सत्यं च वक्तव्यं प्रभोरग्रे शुभेच्छुना ॥ इति नीतिर्महाराज जागर्ति शुभकारिणी ॥ २५ ॥ केवलं चेत्प्रियं ब्रूयान्न ते कार्यं भविष्यति ॥ परुषं च न वक्तव्यं कदाचिच्छुभमिच्छता ॥२६॥ यथा रिपुमुखाद्वाचः प्रसरंति विषोपमाः ॥ तथा भृत्यमुखान्नाथ निःसरंति कथं गिराः ॥ २७ ॥ यादृशानी ह्वाक्यानि तेनोक्तानि महीपते ॥ तादृशानि न मेजिह्वा वक्तुमर्हति कर्हिचित् ॥ २८ ॥

समझा है। आपकी उमयुक्त प्रतिद्वन्द्वीमें गणना नहीं की ॥ २३ ॥ प्रभुके संमुख भृत्यको प्रिय वा सत्य बातही कहनी चाहिये. उस मूर्ख सुरपतिने जो कहा है वह मैं आपसे किस प्रकार कहूँ? ॥ २४ ॥ विशेष कर हे महाराज! हिताभिलाषी भृत्य प्रभुके समीप प्रिय और सत्यवचन कहे यह मंगल विधायिनी नीति जागरित रहती है ॥ २५ ॥ यदि केवल तृप्तिकर बातही कहूं तो आपका कार्य नहीं होगा और शुभाभिलाषी भृत्यको कभी परुष वचन कहना भी उचित नहीं है ॥ २६ ॥ हे नाथ! शत्रुके मुखसे जिस प्रकार विषके समान परुष वचन निकले हैं वैसे कठोर वचन भृत्यके मुखसे किस प्रकार निकलेंगे ॥ २७ ॥ हे महीपते! सुरपति जैसे वचन कहे हैं मेरी जिह्वा कभी वैसे वचन कहनेमें समर्थ नहीं होगी ॥ २८ ॥

व्यासजी बोले, वार्त्तावहके उक्त प्रकारके हेतु युक्त वचन सुन तृणभोजी महिष दानव अत्यंत कुपित हो ॥ २९ ॥ पूंछको पीठमें स्थापन कर मूत्र त्याग करने लगा, फिर क्रोधसे दोनों नेत्र लालकर दानवोंको बुलाय उसने कहा ॥ ३० ॥ हे दानवलोगो ! सुरेन्द्रने युद्धके लिये सब प्रकार निश्चय किया है, अतएव तुम सेना इकट्ठी करो उस सुराधमको जीतना होगा ॥ ३१ ॥ मेरी अपेक्षा कौन वीर है ? यदि सुरेन्द्रके समान करोड़ करोड़ वीर आवें, तो उनमें मैं किसीका भी भय नहीं करता. हे दानवो ! उस सुरपतिको आज सब प्रकारसे निहत करूंगा ॥ ३२ ॥ वह इन्द्र केवल शान्त और निरीह पुरुषोंके निकटही शूर और तपसे कृश हुए तपस्वीगणोंके निकटही बलवान् है, किन्तु मेरी समानके समीप उसमें किसी विक्रमके प्रकाश करनेकी सामर्थ्य नहीं है,

व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हेतुगर्भं तृणाशनः ॥ भृशं कोपपरीतात्मा बभूव महिषासुरः ॥ २९ ॥ समाहूयाब्रवीदैत्यान्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ लांगूलं पृष्ठदेशे च कृत्वा मूत्रं परित्यजन् ॥ ३० ॥ भो भो दैत्याः सुरेंद्रोऽसौ युद्धकामोऽस्ति सर्वथा ॥ बलोद्योगं कुरुध्वं वै जेतव्योऽसौ सुराधमः ॥ ३१ ॥ मदग्रे को भवेच्छूरः कोटिशश्चेत्तथाविधाः ॥ न बिभेम्येकतः कामं हनिष्याम्यद्य सर्वथा ॥ ३२ ॥ शूरः शान्तेष्वसौ नूनं तपस्विषु बलाधिकः ॥ बलकर्ता हि कुहको लंपटः परदारहृत् ॥ ३३ ॥ अप्सरोबलसंमत्तस्तपोविघ्नकरः खलः ॥ छिद्रप्रहरणः पापो नित्यं विश्वासघातकः ॥३४॥ नमुचिर्निहतो येन कृत्वा संधिं दुरात्मना ॥ शपथान्विविधानादौ कृत्वा भीतेन च्छद्मना ॥ ३५ ॥ विष्णुस्तु कपटाचार्यः कुहकः शपथाकरः ॥ नानारूपधरः कामं बलकृद्दंभपंडितः ॥ ३६ ॥ कृत्वा कोलाकृतिं येन हिरण्याक्षो निपातितः ॥ हिरण्यकशिपुर्येन नृसिंहेन च घातितः ॥ ३७ ॥

वह लंपट है सुतरां अन्यायबलका प्रयोग कर छलसे पराई स्त्रीका हरण करता है ॥ ३३ ॥ वह अत्यन्त खल पापपरायण और छिद्रान्वेषी है, नहीं तो अप्सराओंके सौन्दर्यबलसे मत्त होकर तपस्यामें विघ्न उत्पादन क्यों करते ? उसने अत्यन्त विश्वास घातक होनेसे ॥ ३४ ॥ प्रथम तो भीत हो अनेकप्रकारसे शपथ करके महात्मा नमुचिके सहित संधि की. फिर अवसर पाय उस दुरात्माने संधि कर कपटता पूर्वक उनको मारा ॥ ३५ ॥ किन्तु वीर्यवान् विष्णु कपटव्यवहारके आचार्य शपथके आकरस्वरूप और अपना गर्व करनेमेंही चतुर और पण्डित हैं वह माया द्वारा इच्छानुसार अनेक रूप धारण करते है ॥ ३६ ॥ इन्हीं सब कारणों मेविष्णुने शूकराकृति होकर हिरण्याक्षको और नृसिंहमूर्ति धारण करके हिरण्यकशिपुको मारा था ॥ ३७ ॥

हे दानवलोगो ! मैं कभी उस विष्णुके वशीभूत नहीं हूंगा क्योंकि मैं देवताओंका किसी वचन वा कार्यमें कभी विश्वास नहीं करता ॥ ३८ ॥ जब कि अत्यन्त बलवान् रुद्र युद्धके मध्य मेरेप्रतिकूल आचरण करनेमें समर्थ नहीं हैं तब इन्द्र वा विष्णु मेरा क्या करेंगे ? ॥ ३९ ॥ मैं अभी इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, पावक, चन्द्र और सूर्यको पराजित करके स्वर्गका राज्य ग्रहण करूंगा ॥ ४१ ॥ देवताओंको जीतकर हम सभी यज्ञका भाग ग्रहण और सोमपान करके दानवोंसे विहार करेंगे ॥ ४१ ॥ हे दानवगण ! वरलोभके कारण देवताओंसे हमको किंचित्मात्रभी भय नहीं है, विशेषकर पुरुषसे तो मुझको मृत्यु--भय है ही नहीं. केवल स्त्रीसेही मुझको मरनेका भय है; किन्तु स्त्रियें मेरा क्या कर सकेंगी ? ॥ ४२ ॥ हे दूतलोगो ! अभी पाताल और पर्वतसे प्रधान २ दान

नाहं तद्वशगो नूनं भवेयं दनुनंदनः ॥ विश्वासं नैव गच्छामि देवानां कुत्र कर्हिचित् ॥३८॥ किं करिष्यति मे विष्णुरिंद्रो वा बलवत्तरः ॥ रुद्रो वाऽपि नमे शक्तः प्रतिकर्तु रणांगणे ॥ ३९ ॥ त्रिविष्टपं ग्रहीष्यामि जित्वेन्द्रं वरुणं यमम् ॥ धनदं पावकं चैव चंद्रसूर्यौ विजित्य च ॥४०॥ यज्ञभागभुजः सर्वे भविष्यामोऽद्य सोमपाः ॥ जित्वा देवसमूहं च विहरिष्यामि दानवैः ॥ ४१ ॥ न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानेन दानवाः ॥ मरणं न नरेभ्यश्च नारी किं मे करिष्यति ॥ ४२ ॥ पातालपर्वतेभ्यश्च समाहूय वरान्वरान् ॥ दानवान्मम सैन्येशान्कुर्वंतु त्वरिताश्चराः ॥ ४३ ॥ एकोऽहं सर्वदेवेशान्विजेतुं दानवाः क्षमः ॥ शोभार्थं वः समाहूय नयामि सुरसंगमे ॥४४॥ शृंगाभ्यां च खुराभ्यां च हनिष्येऽहं सुरान्किल ॥ न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानप्रभावतः ॥ ४५ ॥ अवध्योऽहं सुरगणैरसुरैर्मानवैस्तथा ॥ तस्मात्सज्जा भवंत्वद्य देवलोकजयाय वै ॥ ४६ ॥ जित्वा सुरालयं दैत्या विहरिष्यामि नंदने ॥ मंदारकुसुमापीडा देवयोषित्समन्विताः ॥४७॥ कामधेनुपयोत्सिक्ताः सुधापानप्रमोदिताः ॥ देवगंधर्वगीतादिनृत्यलास्यसमन्विताः ॥ ४८ ॥

वोंको बुलाकर मेरे सेनाध्यक्ष पदमें नियुक्त करो ॥ ४३ ॥ हे दानवो ! मैं अकेलाही संपूर्ण प्रधान प्रधान देवताको पराजित कर सकता हूं केवल युद्धकी शोभाके लिये ही तुमको बुलाकर देवताओंके संग्राममें लिये जाता हूं ॥ ४४ ॥ वरप्रभावके कारण देवताओंसे हमको कोई भय नहीं है अतएव सींग और खुरोंके प्रहारसेही उनको मार डालेंगे ॥ ४५ ॥ सुर. असुर वा दानव सबसेही मैं अवध्य हूं, अतएव देवलोकको जीतनेके लिये तुमलोग सज्जित होओ ॥ ४६ ॥ हे दानवलोगो ! सुरालय को जीत पारिजातकी मालासे विभूषित हो हमलोग देवाङ्गनाओंके संग नन्दनवनमें विहार करेंगे ॥ ४७ ॥ हम उस समय कामधेनुके दुग्धपान और सुधापानसे उल्लासित होकर देवता और गंधर्वोंके नृत्य गीत और वाद्य दर्शन तथा श्रवण करेंगे ॥ ४८ ॥

उर्वशी, मेनका, रंभा, घृताची तिलोत्तमा, प्रमद्वरा, महासेना, मिश्रकेशी, मदोत्कटा ॥ ४९ ॥ विप्रचित्ति इत्यादि नृत्यगीतविशारद स्वर्गकी वेश्याओंसे नानाविध मद्यनिषेवणद्वारा तुम सबका ही चित्त प्रसन्न करूंगा ॥ ५० ॥ अतएव यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम पवित्र माङ्गल्य कार्यका अनुष्ठान करके देवताओंके संग संग्राम करनेके लिये अभी सज्जित होओ ॥ ५१ ॥ और दैत्यगुरु मुनिसत्तम भृगनंदन पवित्रात्मा शुक्राचार्यजीको बुलाय उनकी पूजा करके सब दैत्योंकी रक्षा के लिये विजयकी कामनासे उनको यज्ञ करनेमें नियोजित करो ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! पापबुद्धि महिषने उसकाल प्रधान प्रधान दानवोंकी इस प्रकार आज्ञा दे प्रसन्न चित्तसे अपने घरमें प्रवेश किया ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ व्यासजी

उर्वशी मेनका रंभा घृताची च तिलोत्तमा ॥ प्रमद्वरा महासेना मिश्रकेशी मदोत्कटा ॥ ४९ ॥ विप्रचित्तिप्रभृतयो नृत्यगीतविशारदाः ॥ रंजयिष्यंति वः सर्वान्नानासवनिषेवणैः ॥ ५० ॥ सर्वैं सज्जा भवंत्वद्य रोचतां गमनं दिवि ॥ संग्रामार्थं सुरैः सार्धं कृत्वा मंगलमुत्तमम् ॥ ५१ ॥ रक्षणार्थं च सर्वेषां भार्गवं मुनि सत्तमम् ॥ समाहूय च संपूज्य स्थाप्य यज्ञे गुरुं परम् ॥ ५२ ॥ व्यास उवाच ॥ इति संदिश्य दैत्येन्द्रान्महिषः पापधीस्तदा ॥ जगामत्वरितो राजन्भवनं स्वं मुदाऽन्वितः ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते० पंचमस्कंधे भगवती माहात्मे दैत्यसैन्योद्योगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ गते दूते सुरेंद्रोऽपि समाहूय सुरानथ ॥ यमवायुधनाध्यक्षवरुणानिदमू चिवान् ॥ १ ॥ महिषो नाम दैत्येंद्रो रंभ पुत्रो महाबलः ॥ वरदर्पमदोन्मत्तो मायाशतविचक्षणः ॥ २ ॥ तस्य दूतोऽद्य संप्राप्तः प्रेषि तस्तेन भोः सुराः ॥ स्वर्गकामेन लुब्धेन मामुवाचेदृशं वचः ॥ ३ ॥ त्यज देवालयं शक्र यथेच्छं व्रज वासव ॥ सेवां वा कुरु दैत्यस्य महिषस्य महात्मनः ॥ ४ ॥ दयावान्दानवेंद्रोऽसौ स ते वृत्तिं विधास्यति ॥ न तेषु भृत्यभूतेषु न कुप्यति कदाचन ॥ ५ ॥

बोले हे राजन् ! दानवदूतके चले जानेपर देवराज इन्द्रने यम, वायु, वरुण और कुबेर इत्यादि देवताओंको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ हे देवताओ ! रम्भपुत्र महाबलवान् महिष इस समय दानवोंका राजा है. विशेषकर वह शतशत मायाओंमें चतुर और वरके दर्पसे दर्पित हो रहा है ॥ २ ॥ हे देवताओ ! महिषने स्वर्गकी कामनासे दूत भेजा है. उसके दूतने अभी मेरे निकट आकर इस प्रकार कहा है ॥ ३ ॥ हे शक्र ! सुरालय त्याग करके जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चले जाओ, अथवा दानवपति महात्मा महिषासुरकी सेवामें तत्पर होओ ॥ ४ ॥ विपक्षके भृत्यके समान बननेपर दानवपति उसके प्रति कभी कुपित नहीं होते. जब तुम उनकी सेवामें प्रवृत्त होगे तब वह दयाके वश हो तुम्हारी वृत्ति नियत कर देंगे ॥ ५ ॥

देवेश ! यह बात यदि तुम्हें स्वीकार न हो तो युद्धके लिये स्वयं सेना इकट्ठी करो, इस स्थानसे मेरे लौटते ही दानवपति महिष अभी युद्धके लिये उपस्थित होगा ॥ ६ ॥ दुष्टप्रकृति उन दानवका दूत यह अभी कहकर गया है. अतएव हे सुरोत्तमगण ! अब क्या करना चाहिये इस विषयका विचार करो ? ॥ ७ ॥ हे देववृंद ! देखो स्वयं बलवान् होनेपर भी शत्रुको दुर्बल जानकर उपेक्षा करनी उचित नहीं है । विशेष करके जो शत्रु बलवान् बाहु बलसे दर्पित और सर्वदाही उद्यमशील है उसकी तो कभी उपेक्षा न करे ॥ ८ ॥ अपने अपने बल और बुद्धिके अनुसार उद्योग करना एकांत कर्त्तव्य है, फिर जीत हो, वा हार हो, सो नितांतही दैवके आधीन है ॥ ९ ॥ खलके संग संधि करना निरर्थक है. इस कारण इसके संग संधि करना किसी प्रकार उचित नहीं है. तुम लोग साधु हो और वह दानव अत्यन्त खल हैं इस कारण वारंवार भलीभांति विचार कर जो अच्छा विचार हो वही करो ॥ १० ॥

नो चेद्युद्धाय देवेश सेनोद्योगं कुरुस्वयम् ॥ गते मयि स दैत्येंद्रस्त्वरितः समुपेष्यति ॥६॥ इत्युक्त्वा स गतो दूतो दानवस्य दुरात्मनः ॥ किं कर्तव्यमतः कार्यं चिंतयध्वं सुरोत्तमाः ॥ ७ ॥ दुर्बलोऽपि न चोपेक्ष्यः शत्रुर्बलवता सुराः ॥ विशेषेण सदोद्योगी बलवान्बलदर्पितः ॥ ८ ॥ उद्यमः किल कर्तव्यो यथाबुद्धि यथाबलम् ॥ दैवाधीनो भवेन्नूनं जयो वाऽथ पराजयः ॥ ९ ॥ सन्धियोगो न चात्रास्ति खले संधिर्निरर्थकः ॥ सर्वथा साधुभिः कार्यं विचार्य च पुनः पुनः ॥ १० ॥ यानमप्यधुना नैव कर्तव्यं सहसा पुनः ॥ प्रेक्षकाः प्रेषणीयाश्च शीघ्रगाः सुप्रवेशकाः ॥ ११ ॥ इंगितज्ञाश्च निःसंगा निस्पृहाः सत्यवादिनः ॥ सेनाभियोगं प्रस्थानं बलसंख्यां यथार्थतः ॥ १२ ॥ वीराणां च परिज्ञानं कृत्वाऽऽयांतु त्वरान्विताः ॥ ज्ञात्वा दैत्य पतेस्तस्य सैन्यस्य च बलाबलम् ॥ १३ ॥ करिष्यामि ततस्तूर्णं यानं वादुर्गसंग्रहम् ॥ "विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं बुद्धिमता सदा ॥" सहसा विहितं कार्यं दुःखदं सर्वथा भवेत् ॥ १४ ॥

शत्रुका बलाबल न जानकर सहसा इस समय युद्धयात्रा करना भी अनुचित है अतएव जिसका शत्रुपक्षीय किसीके संग कुछ संबन्ध नहीं है और जो सहजसेही शत्रुके दलमें प्रवेश कर उसका बलाबल जान ले ॥ ११ ॥ ऐसे इंगितज्ञ (चेष्टाके जाननेवाले) सत्यवादी निःस्पृह और द्रुतगामी दूतको भेजना चाहिये वह सेनाका स्थान उसकी गति और संख्याको ठीक ठीक जान ले ॥ १२ ॥ और उनका कौन कैसा वीर है ? उनकी संख्या कितनी है ? यह भी जानकर शीघ्रता सहित यहां लौट आवे, पहिले तो उस दानवपतिकी सैन्यका बलाबल जान ॥ १३ ॥ फिर तत्काल युद्धमें यात्रा करेंगे अथवा दुर्गका आश्रय लेंगे, बुद्धिमान् पुरुषको सर्वदा विचारकर कार्य करना चाहिये, सहसा कोई कार्य करनेसे वह क्लेशदायी होता है ॥ १४ ॥

इस कारण विज्ञ पुरुष विचारकर कार्य करे, तो सब विषय सुखदायक होते हैं. सब दानव लोग एक प्राण और एकचित्त हैं, अतएव उनमें भेद प्रयोग करना किसी प्रकार न्याय संगत नहीं है ॥ १५ ॥ वे सब एक चित्त हैं, अतएव हमारे दूत वहां जायँ, उनके बलाबलको जान जब यहां आवें, तब उनके मुखसे संपूर्ण वृत्तांत जानकर विचार पूर्वक ॥ १६ ॥ कार्यतत्पर दानवोंके प्रतिविधिवत् नीतिका प्रयोग करना चाहिये नीतिके विरुद्ध कार्य होनेसे॥ १७ ॥ वह अज्ञात औषधके समान सब प्रकार विपरीत फल प्रदान करता है, इसमें संदेह नही. व्यासजी बोले, हे राजन् ! सुरपति इंद्रने देवताओंसे इस प्रकार परामर्श कर कार्य ज्ञानके ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण वृत्तांतको जाननेकी इच्छासे कार्यदक्षदूतको भेजा. दूतने भी शीघ्र दानवालयमें जाय, भलीभांति अनुसंधान कर

तस्माद्विमृश्य कर्तव्यं सुखदं सर्वथा बुधैः ॥ नाऽत्र भेदविधिर्न्याय्यो दानवेषु च सर्वथा ॥ १५ ॥ एकचित्तेषु कार्येऽस्मिंस्तस्मा च्चारा व्रजंतु वै ज्ञात्वा बलाबलं तेषां पश्चान्नीतिर्विचार्य च ॥ १६ ॥ विधेया विधिवत्तज्ज्ञैस्तेषु कार्यपरेषु च ॥ अन्यथा विहितं कार्यं विपरीतफलप्रदम् ॥ १७ ॥ सर्वथा तद्भवेन्नूनमज्ञातमौषधं यथा ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिन्त्य तैः सर्वैः प्रणिधिं कार्यवेदिनम् ॥ १८ ॥ प्रेषयामासदेवेंद्रः परिज्ञानाय पार्थिव ॥ दूतस्तु त्वरितो गत्वा समागम्य सुराधिपम् ॥ १९ ॥ निवेदयामास तदा सर्वसैन्यबलाबलम् ॥ ज्ञात्वा तद्बलमुद्योगं तुराषाडतिविस्मितः ॥ २० ॥ देवानचोदयत्तूर्णं समाहूय पुरोहितम् ॥ मंत्रं मंत्रविदां श्रेष्ठं चकार त्रिदशेश्वरः ॥२१॥ उवाचांगिरसश्रेष्ठं समासीनं वरासने ॥ इन्द्र उवाच ॥ भो भो देवगुरो विद्वन्किं कर्तव्यं वदस्व नः ॥ २२ ॥ सर्वज्ञोऽसि समुत्पन्ने कार्ये त्वं गतिरद्य नः ॥ दानवो महिषो नाम महावीर्यो मदान्वितः ॥ २३ ॥ योद्धुकामः समायातिबहुभिर्दानवैर्वृतः ॥ तत्र प्रतिक्रिया कार्या त्वया मंत्रविदाऽधुना ॥ २४ ॥

फिर आय सुरपतिसे ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण दानवसैन्यका बलाबल निवेदन किया, तब इन्द्र दानव सेनाके उद्योगका विषय जानकर अत्यन्त अचंभेमें हुए ॥ २० ॥ फिर देवताओंको शीघ्र युद्धके उद्योगमें नियोजित कर त्रिदशनाथ मंत्रकुशल पुरोहितको बुलाय परामर्श करने लगे ॥ २१ ॥ आंगिरसश्रेष्ठ बृहस्पतिके उत्तम आसनमें बैठने पर सुरपतिने पूंछा हे देवगुरो ! इस समय हमको क्या करना चाहिये ॥ २२ ॥ यह मुझसे कहिये ? आप सर्वज्ञ हैं इस कारण आपसे कोई विषय छिपा नहीं है. सम्प्रति जो महिष नामक दानव अत्यन्त पराक्रमशाली और मदसे गर्वित हुआ है ॥ २३ ॥ वह दानवदलसे युक्त होकर मेरे संग संग्राम करनेको आता है. आप मंत्र विषारद हैं अत एव अब इस समय इसका प्रतिविधान कीजिये ॥ २४ ॥

शुक्राचार्य जिस प्रकार असुरोंके विघ्न हरण करते हैं आपभी हमारे उसी प्रकार विघ्नहर्त्ता ही रहे हैं यह मैं भलीभांति जानता हूं. व्यासजी बोले, हे राजन् ! बृहस्पतिने वासवका वचन सुन ॥ २५ ॥ कार्य साधनकी वासनासे मनमें भलीभांति अभिलषित विषयकी आलोचना करके उसने कहा, बृहस्पति बोले, हे सुरेन्द्र ! तुम सबके माननीय हो, अतएव धैर्य अवलम्बन करके प्रकृतिमें स्थित होओ ॥ २६ ॥ व्यसन उपस्थित होनेसे सहसा धैर्यका त्याग करना उचित नहीं है हे सुराध्यक्ष ! जय वा पराजय सर्वथा दैवके ही आधीन है ॥ २७ ॥ इससे बुद्धिमानोंको सर्वदा धैर्यका अवलम्बन करके रहना उचित है. हे शतक्रतो ! जो होनहार है, वह अवश्यही होगा ॥ २८ ॥ यह निश्चय जानकर सदा अपने पौरुषके अनुरूप उत्साह करे, सम्पूर्ण कार्य दैवके आधीन है यह जानकर

तेषां शुक्रस्तथा त्वं मे विघ्नाहर्ता सुसंमतः ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह तुरासाहं बृहस्पतिः ॥ २५ ॥ विचिंत्य मनसा कामं कार्यसाधनतत्परः ॥ गुरुरुवाच ॥ स्वस्थो भव सुरद्रें त्वं धैर्यमालंब्य मारिष ॥ २६ ॥ व्यसने च समुत्पन्ने न त्याज्यं धैर्यमाशु वै ॥ जयाजयौ सुराध्यक्ष दैवाधीनौ सदैव हि ॥२७॥ स्थातव्यं धैर्यमालंब्य तस्माद् बुद्धिमता सदा ॥ भवितव्यं भवत्येव जानन्नेव शतक्रतो ॥ २८ ॥ उद्यमः सर्वथा कार्यो यथा पौरुषमात्मनः ॥ मुनयोऽपि हि मुक्त्यर्थमुद्यमैकरताः सदा ॥ २९ ॥ दैवाधीनं च जानंतो योगध्यानपरायणाः ॥ तस्मात्सदैव कर्तव्यो व्यवहारोदितोद्यमः ॥ ३० ॥ सुखं भवतु वा मा वा देवे का परिदेवना॥ विना पुरुष कारेण कदाचित्सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ अंधवत्पंगुवत्कामं न तथा मुदमावहेत् ॥ कृते पुरुषकारेऽपि यदि सिद्धिर्न जायते ॥ ३२ ॥ न तत्र दूषणं तस्य देवाधीने शरीरिणि ॥ कार्यसिद्धिर्न सैन्येऽस्ति न मंत्रे न च मंत्रणे ॥ ३३ ॥ न रथेनाऽऽयुधे नूनं देवाधीना सुराधिप ॥ बलवान्क्लेशमाप्नोति निर्बलः सुखमश्नुते ॥ ३४ ॥

मुनि लोग युक्ति लाभकी आशासे एक मात्र उद्योगमेंही निरत रहकर ॥२९॥ योग और ध्यानमें मग्न रहते हैं. सब दैवाधीन न जानते हैं अतएव व्यहार शास्त्रका बताया उद्यम करना अवश्य है ॥ ३० ॥ फिर सुख हो वा दुःख हो, दैवविषयमें परिताप अकर्त्तव्य है. यद्यपि पुरुषकारके विना कभी सिद्धि प्राप्त हो जाय अर्थात् ॥३१॥ अंध और पंगुके समान कदाचित् सिद्धि लाभ होती है, किंतु उसमें अत्यन्त हर्षित होना उचित नहीं हैं. शरीर मात्रही दैवके आधीन है, अतएव पुरुषकारक अवलम्बन करनेसे भी यदि कार्यसिद्धि न हो ॥ ३२ ॥ इसमें पुरुषका कुछ दोष नहीं है कारण कि, शरीर दैवाधीन है. हे सुराधिप ! क्या सैन्य, क्या मंत्र क्या मन्त्रणा ॥ ३३ ॥ क्या रथ, क्या आयुध, किसीसे कार्य सिद्धि नहीं होती; केवल दैवके द्वाराही निःसन्देह कार्य

सिद्धि होती है. संसार दैवके आधीन है, अतएव बलवान् पुरुष दैवके बलसे ही क्लेश पाता है दुर्बल पुरुषभी सुखलाभ करता है ॥३४॥ बुद्धिमान् पुरुषभी क्षुधित होकर शयन करता है, निर्बुद्धिपुरुष भोगवान् होता है, कातर पुरुषभी जयलाभ करता है, शूरकी भी पराजय होती है ॥३५॥ इसमें परितापका क्या विषय है ? हे सुरनाथ ! उद्यममें सुख हो वा दुःख हो भवितव्यता अवश्यही उसमें नियोजित करेगी ॥३६॥ अर्थात् वह उद्योग सुखदायक वा दुःखदायक होगा प्रथमही इस प्रकार विचार न करे. संपूर्ण लोग दुःखके समय दुःखकी अधिकताही देखते हैं, सुखके समय सुखकी अधिकता देखते हैं ॥ ३७ ॥ किन्तु हर्ष और शोकमें अभिभूत होकर शत्रुके मुखमें आत्मसमर्पण करना उचित नहीं है, हर्षशोकमें पंडितोंको धैर्य धारण करना चाहिये ॥ ३८ ॥ अधैर्य होनेसे जिस प्रकार क्लेश होता है। धैर्य अवलम्बन करनेसे वैसा क्लेश नहीं होता, सुख वा दुःखके समय उसका सहन कठिन है ॥ ३९ ॥ अतएव बुद्धिकी निश्चयताके

बुद्धिमान्क्षुधितः शेते निर्बुद्धिर्भोगवान्भवेत् ॥ कातरो जयमाप्नोति शूरो याति पराजयम् ॥ ३५ ॥ दैवाधीने तु संसारे कामं का परिदेवना ॥ उद्यमे योजयेन्नूनं भवितव्यं सुराधिप ॥ ३६ ॥ दुःखदेसुखदेवाऽपि तत्र तौ न विचिंतयेत् ॥ दुःख दुःखाधिकान्पश्येत्सुखेपश्येत्सुखाधिकान् ॥ ३७ ॥ आत्मानं हर्षशोकाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत् ॥ धैर्यमेवावगंतव्यं हर्षशोकोद्भवेबुधैः ॥ ३८ ॥ अधैर्याद्यादृशं दुःखं न तु धैर्येऽस्ति तादृशम् दुर्लभं ॥ सहनत्वं वै समये सुखदुःखयोः ॥ ३९ ॥ हर्षशोकोद्भवो यत्र न भवेद्बुद्धिनिश्चयात ॥ किं दुःखं कस्य वा दुःखं निर्गुणोऽहं सदाऽव्ययः ॥ ४० ॥ चतुर्विंशातिरिक्तोऽस्मि किं मे दुःखं सुखं च किम् ॥ प्राणस्य क्षुत्पिपासे द्वे मनसः शोकमूर्च्छने ॥ ४१ ॥ जरामृत्यू शरीरस्य षडूर्मिरहितः शिवः ॥ शोकमोहौ शरीरस्य गुणौ किं मेऽत्र चिन्तने ॥ ४२ ॥ शरीरं नाहमथवा तत्संबंधी न चाप्यहम् ॥ सप्तैकषोडशादिभ्योविभिन्नोऽहं सदा सुखी ॥ ४३ ॥

कारण जिससे हर्ष और शोकका उदय न हो, वही करना कर्तव्य है. मैं निरंतर अव्यय और निर्गुण हूं, अत एव दुःख किसको है? और वह दुःख क्या है ? तब इस प्रकार करना चाहिये ॥ ४० ॥ मैं चौबीस तत्वोंसे अतिरिक्त हूं अतएव मुझको सुख वा दुःख क्या है ? प्राणका धर्म क्षुधा और पिपासा (भूंख प्यास) मनका धर्म शोक और मूर्छा ॥ ४१ ॥ शरीरका धर्म जरा और मृत्यु इन छः व्याधियोंसे मुक्त होकर मैं शिव हूं. शोक और मोह यह शरीरके गुण हैं सुतरां इसकी चिन्तासे मेरा क्या प्रयोजनहै ? ॥ ४२ ॥ मैं शरीरका धर्म वा उसके संबंधसे जीवभी नहीं हूं. मैं महदादि सप्त विकृति प्रकृति और सोलह विकृतिसे पृथक् हूं अतएव मैं सदाही सुखी हूं ॥ ४३ ॥

मैं प्रकृति वा विकृति नहीं अतएव मुझको सदा दुःख क्यों होगा? हे सुरेश! तुम अपने मनमें इस प्रकार विचार करके निर्मोह हो ॥ ४४ ॥ हे शतक्रतो! मोह ही परम दुःखका कारण और निर्ममताही परमसुखका मूल है, इसलिये निर्ममताही तुम्हारे दुःखनाशका प्रधान उपाय है ॥ ४५ ॥ हे शचीपते! संतोषसे अधिक सुखका विषय दूसरा कोई नहीं है अथवा ममतानाश विषयमें यदि तुमको ज्ञान न हो ॥४६॥ तो भवितव्य (होनेपर) विषयमें विवेक करना चाहिये हे सुराधिप! भोग न होनेसे कभी प्रारब्ध कार्यका नाश दिखाई नहीं देता॥ ४७ ॥ हे सुरसत्तम! तुम्हारा बुद्धिबल ही सहाय हो अथवा सब देवता सहाय हों, तुम्हारा जो होनेवाला है वह अवश्य ही होगा, अतएव सुख वा दुःखमें फिर तुमको क्या चिन्ता है?॥ ४८ ॥ हे राजन्! पुराण पुण्यक्षयके लिये सुख

प्रकृतिर्विकृतिर्नाऽहं किं मे दुःखं सदा पुनः ॥ इति मत्वा सुरेश त्वं मनसा भव निर्ममः ॥ ४४ ॥ उपायः प्रथमोऽयं ते दुःखनाशे शतक्रतो ॥ ममता परमं दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम् ॥ ४५ ॥ संतोषादपरं नास्ति सुखस्थानं शचीपते ॥ अथवा यदि न ज्ञानं ममता नाशने किल ॥ ४६ ॥ ततो विवेकः कर्तव्यो भवितव्ये सुराधिप ॥ प्रारब्धकर्मणां नाशो नाभोगाल्लक्ष्यते किल ॥ ४७ ॥ यद्भावि तद्भव त्येव का चिंता सुखदुःखयोः ॥ सुरैः सर्वैः सहायैर्वा बुद्ध्या वा तव सत्तम ॥ ४८ ॥ सुखं क्षयाय पुण्यस्य दुःखं पापस्य मारिष ॥ तस्मात्सुखक्षये हर्षः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः ॥ ४९ ॥ अथवा मंत्रयित्वाऽद्य कुरु यत्नं यथाविधि ॥ कृते यत्ने महाराज भवितव्यं भविष्यति ॥ ५० ॥ इति श्रीदे० भा० म० पंचमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा सहस्राक्षः पुनराह बृहस्पतिम् ॥ युद्धो द्योगं करिष्यामि हयारेर्नाशनाय वै ॥१॥ नोद्यमेन विना राज्यं न सुखं न च वै यशः ॥ निरुद्यमं न शंसंति कातरा न च सोद्यमाः ॥२॥

और पापक्षयके लिये दुःख होता है अतएव सुखके क्षय होनेपर पंडितगणोंको भली भांतिसे हर्ष प्रकाश करना उचित है ॥ ४९ ॥ हे महाराज! इस समय मंत्रणा करके यथाविधि यत्न करो किन्तु यत्न करनेपर भी जो भवितव्य है वह होगा ॥ ५० ५१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! सहस्रलोचन इन्द्रने यह वचन सुनकर बृहस्पतिसे फिर कहा कि महिषासुरके मारनेको युद्धका उद्योग करो ॥ १ ॥ उद्यमके विना राज्यलाभ सुख वा यश कुछ नहीं होता, जो कातर हैं, वही निरुद्यमकी प्रशंसा करते हैं, और जो पराक्रान्त हैं, वे उसकी प्रशंसा नहीं करते॥ २ ॥

यती लोगोंका ज्ञान और ब्राह्मणोंका संतोष ही परम भूषण है किन्तु जो ऐश्वर्यका अभिलाषा करते हैं उनका उद्यम और शत्रुसंहारक पराक्रम ही उत्तम भूषण है ॥ ३ ॥ हे मुनिसत्तम ! मैंने उद्यमसे जिस प्रकार वृत्र नमुचि और बलासुरको मारा है इसी प्रकार उद्यमसे महिषासुरको मारूंगा ॥ ४ ॥ आप देवताओंके गुरु हैं, अतएव आप और उत्तम आयुध वज्र ये दोनों ही मेरा उत्तम बल है और फिर इसपर भी अव्यय हरि और उमापति हर अवश्य ही मेरा सहायता करेंगे ॥ ५ ॥ हे गुरो ! जिससे मेरी मानरक्षा हो वही कीजिये, इस समय मेरी मंगल कामनासे विघ्ननाशक मंत्रपाठ कीजिये मैं महिष दानवके उद्देशसे स्वीयसेनासन्निवेशपूर्वक युद्धका उद्योग करता हूं ॥ ६ ॥ श्रीव्यासजी बोले बृहस्पतिने देवराज इन्द्रका वचन सुननेके पीछे कुछेक हँसकर युद्धमें अनुरक्त सुरेन्द्रसे कहा ॥ ७ ॥ बृहस्पति बोले हे इन्द्र ! युद्ध करनेसे जीत वा हारका निश्चय नहीं है मैं इस सन्दिग्ध विषयमें तुमको प्रेरण भी नहीं करता और

यतीनां भूषणं ज्ञानं संतोषो हि द्विजन्मनाम् ॥ उद्यमः शत्रुहननं भूषणं भूतिमिच्छताम् ॥ ३ ॥ उद्यमेन हतस्त्वाष्ट्रोनमुचिर्बल एव च ॥ तथैनं निहनिष्यामि महिषं मुनिसत्तम ॥ ४ ॥ बलं देवगुरुस्त्वं मे वज्रमायुधमुत्तमम् ॥ सहायस्तु हरिर्नूनंतथोमापतिरव्ययः ॥ ५ ॥ रक्षोघ्नान्पठ मे साधो करोम्यद्य समुद्यमम् ॥ स्वसैन्याभिनिवेशं च महिषं प्रति मानद ॥ ६ ॥ व्यास उवाच इत्युक्तो देवराजेन वाचस्पतिरुवाच ह ॥ सुरेद्रं युद्धसंरक्तं स्मितपूर्वं वचस्तदा ॥ ७ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ प्रेरयामि न चाहं त्वां न च निवारयाम्यहम् ॥ संदिग्धेऽत्र जये कामं युध्यतश्च पराजये ॥ ८ ॥ न तेऽत्र दूषणं किंचिद्भवितव्ये शचीपते ॥ सुखं वा यदि वा दुःखं विहितं च भविष्यति ॥ ९ ॥ न मया तत्परिज्ञातं भावि दुःखं सुखं तथा ॥ यद्भार्याहरणेप्राप्तं पुरा वासव वेत्सि हि ॥ १० ॥ शशिना मे हृता भार्या मित्रेणामित्रकर्शन ॥ स्वाश्रमस्थेन संप्राप्तं दुःखं सर्वसुखापहम् ॥ ११ ॥

निवारण भी नहीं करता ॥ ८ ॥ हे शचीपते ! भवितव्य विषयमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं है इसमें यदि सुख विहित हो तो सुख होगा और यदि इसमें दुःख विहित हो तो दुःख होगा हे वासव ! तुमको युद्धमें सुख वा दुःख होगा ॥ ९ ॥ इस भविष्यत् विषयको मैं नहीं जानता क्योंकि पूर्वमें जब मेरी भार्या हृत हुई तब मैंने जो क्लेश अनुभव किया है तुम उसको जानते हो अतएव मुझको भविष्यत् ज्ञान नहीं है यदि वह होता, तो फिर दुःख क्यों पाता ? ॥ १० ॥ हे शत्रुनाशक ! चन्द्रमाने मेरी भार्याका हरण किया, इस कारण मेरे संपूर्ण सुखका विनाश हुआ मैं अपने आश्रममें अवस्थित होकर अत्यंत ही दुःख पाने लगा ॥ ११ ॥

हे सुरनाथ ! मैं सब लोकोंमें बुद्धिमान् कहकर विख्यात हूं, किंतु जब चन्द्रमाने बलपूर्वक भार्याका हरण किया था, तब मेरी बुद्धि कहां गई थी? ॥ १२ ॥ हे सुराधिप ! मुझको बोध होता है कार्यसिद्धि सब प्रकारसे दैवके आधीन है, तथापि बुद्धिमान् लोगोंको सर्वदा उपाय अवलम्बन करना चाहिये ॥ १३ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन् ! शचीपति गुरुके इस प्रकार सत्य वचन सुन, उनके संग ब्रह्मलोकमें जाय पितामहकी शरणागत हो प्रणामपूर्वक कहने लगे ॥ १४ ॥ हे पितामह ! महिष दानव मेरा स्वर्गराज्य छीननेकी अभिलाषासे अधिकतर सेना इकट्ठी करता है ॥ १५ ॥ अन्यान्य दानवगण सभी संग्रामके अभिलाषी होकर उसके सैन्यमें उपस्थित हुए हैं वह सभी युद्ध विशारद और अत्यन्त वीर्यशाली हैं ॥ १६ ॥ इसमें मैं अत्यंत डरकर आपके निकट

बुद्धिमान्सर्वलोकेषु विदितोऽहं सुराऽधिप ॥ क्व मे गता तदा बुद्धिर्यदा भार्या हृता बलात् ॥ १२ ॥ तस्मादुपायः कर्तव्यो बुद्धिमद्भिः सदा नरैः ॥ कार्यसिद्धिः सदा नूनं दैवाधीना सुराधिप ॥ १३ ॥ व्यास उवाच॥तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं गुरोः सार्थं शचीपतिः ॥ ब्रह्माणं शरणं गत्वा नत्वा वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥ पितामह सुराध्यक्ष दैत्यो महिषसंज्ञकः ॥ गृहीतुकामः स्वर्गं मे बलोद्योगं करोत्यलम् ॥ १५ ॥ अन्ये च दानवाः सर्वे तत्सैन्यं समुपस्थिताः ॥ योद्धुकामा महावीर्याः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १६ ॥ तेनाहं भीतभीतोऽस्मि त्वत्सकाशमिहागतः ॥ सर्वज्ञोऽसि महाप्राज्ञ साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गच्छामः सर्व एवाद्य कैलासं त्वरिता वयम् ॥ शंकरं पुरतः कृत्वा विष्णुं च बलिनां वरम् ॥ १८ ॥ ततो युद्धं प्रकर्तव्यं सर्वैः सुरगणैः सह ॥ मिलित्वा मंत्रमाधाय देशं कालं विचिंत्य च ॥ १९ ॥ बलाबलमविज्ञाय विवेकमपहाय च ॥ साहसं तु प्रकुर्वाणो नरः पतनमृच्छति ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य सहस्राक्षः कैलासं निर्जगाम ह ॥ ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा लोकपालसमन्वितः ॥ २१ ॥

आया हूं. हे महाप्राज्ञ ! आप सर्वज्ञ हैं इसलिये आप मेरी सहायता कीजिये ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले हम सब अभी कैलासमें जायँ वहांसे शंकरको संग लेकर विष्णुके निकट चलैं ॥ १८ ॥ वहां सब देवताओंके एकत्र होनेपर मंत्रणा करनेके पीछे देश और कालका विचार करके युद्ध करना उचित है वा नहीं यह स्थिर किया जायगा ॥ १९ ॥ क्योंकि जो पुरुष अपना बलाबल न जान और विचार न कर किसी कार्यके करनेमें शीघ्रता करता है वह अपनी अवनतिका ही लाभ करता है ॥ २० ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन् ! सहस्रलोचन इन्द्र यह बात सुन ब्रह्माको आगे कर लोकपालोंके सहित कैलासकी ओर चले ॥ २१ ॥

अनंतर शंकरके समीप उपस्थित हो वेद मंत्रसे उनका स्तव करने लगे महेश्वरके प्रसन्न होनेपर उनको आगे करके विष्णुपुर वैकुंठमें गये ॥ २२ ॥ सुरपति देवदेवेशने विष्णुका स्तव करके कहा कि महिषदानव वर पानेसे अत्यंत उद्धत हुआ है. इस कारण अब उससे हमको अतिशय भय उपस्थित है आप उसके वधका उपाय कीजिये ॥ २३ ॥ तब विष्णुने उनके भयका विवरण जानकर देवताओंसे कहा कि, हम संग्राम करके उस दुर्जय असुरको मारेंगे ॥ २४ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन् ! ब्रह्मा विष्णु, शिव और इन्द्र इत्यादि देवता स्थिर निश्चय कर अपने अपने वाहनपर चढकर चले गये ॥ २५ ॥ जिसकाल ब्रह्मा हंसपर, विष्णु गरुड़पर, शंकर बैलपर, देवराज ऐरावत पर ॥ २६ ॥ स्कन्द मोरपर और यम भैंसेपर चढकर समस्त देवताओंकी सेनाके सहित निकले

तुष्टाव शंकरं गत्वा वेदमंत्रैर्महेश्वरम् ॥ प्रसन्नं पुरतः कृत्वा ययौ विष्णुपुरं प्रति ॥ २२ ॥ स्तुत्वा तं देवदेवेशं कार्यं प्रोवाच चात्मनः ॥ महिषात्तद्भयं चोग्रं वरदानमदोद्धतात् ॥ २३ ॥ तदाकर्ण्य भयं तस्य विष्णुर्देवानुवाच ह ॥ करिष्यामो वयं युद्धं हनिष्यामस्तु दुर्जयम् ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति ते निश्चयं कृत्वा ब्रह्मविष्णुहरीश्वराः ॥ स्वानि स्वानि समारुह्य वाहनानि ययुः सुराः ॥ २५ ॥ ब्रह्मा हंस समारूढो विष्णुर्गरुडवाहनः ॥ शंकरो वृषभारूढो वृत्रहा गजसंस्थितः ॥ २६ ॥ मयूरवाहनः स्कंदो यमो महिषवाहनः॥कृत्वा सैन्यस मायोगं यावत्तेनिर्ययुः सुराः ॥ २७ ॥ तावद्दैत्यबलं प्राप्तं दृप्तं महिषपालितम् ॥ तत्राभूत्तुमुलं युद्धं देवदानवसैन्ययोः ॥ २८ ॥ बाणैः खड्गैस्तथाप्रासैर्मुसलैश्च परश्वधैः ॥ गदाभिः पट्टिशैः शूलैश्चक्रैश्च शक्तितोमरैः ॥ २९ ॥ मुद्गरैर्भिंदिपालैश्च हलैश्चैवातिदारुणैः ॥ अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥ ३० ॥ सेनानीश्चिक्षुरस्तस्य गजारूढो महाबलः ॥ मघवंतं पंचभिस्तैः सायकैः समताडयत् ॥ ३१ ॥ तुराषाडपितांश्छित्त्वा बाणैर्बाणांस्त्वरान्वितः ॥ हृदये चार्धचंद्रेण ताडयामास तं कृती ॥ ३२ ॥ बाणाहतस्तु सेनानीः प्राप मूर्च्छां गजोपरि ॥ करिणं वज्रघातेन स जघान करे ततः ॥ ३३ ॥

॥ २७ ॥ उसी समय अस्त्र शस्त्र युक्त महिषसे पालित दानओंका सेनादल सन्मुख हुआ. तब देवता और दानवोंकी सेनाका घोर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ २८ ॥ बाण, खड्ग, प्रास (साँग) मूशल, परशु; गदा, पट्टिश (अस्त्र विशेष) शूल, चक्र, शक्ति, तोमर ॥ २९ ॥ मुद्गर, भिन्दिपाल, गोपाल, लाङ्गल (कूंड) और अन्यान्य अनेक दारुण अस्त्रोंसे वह परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ३० ॥ तब महिषके सेनापति महाबलवान् चिक्षुरने अत्यन्त तीक्ष्ण पांच बाणोंसे वासवको ताडित किया॥ ३१ ॥ लघुहस्त इन्द्र शीघ्र बाणोंसे उन सब बाणोंको काटकर अर्द्धचन्द्र बाण द्वारा उसके हृदयमें प्रहार किया ॥ ३२ ॥ सेनापतिके शराहत होकर गजपृष्ठमें मूर्च्छित होनेपर वासवने उस हाथीकी सूंडमें वज्रप्रहार किया ॥ ३३ ॥

तब वह हाथी उनके वज्रसे सब प्रकारसे आहत और भग्न होकर अपनी सेनासे भागा। दानवपतिने यह देख, कुपित हो बिडाल नामक दानवसे कहा ॥ ३४ ॥ हे वीर! तुम अत्यंत बलशाली हो, अतएव तुम जाकर प्रथम मदगर्वित इन्द्रको मारो, फिर वरुण इत्यादि अन्यान्य देवताओंको मारकर मेरे निकट आओ ॥ ३५ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन्! बिडालनामक महाबली असुर दानवपतिका यह वचन सुन मतवाले हाथीपर चढ़ त्रिदशाधिपति इंद्रके निकट आया ॥ ३६ ॥ वासवने उसको आता देखकर क्रोधसहित आय विषके समान प्रभावशाली भयंकर बाणसे उसपर आघात किया ॥ ३७ ॥ परंतु उनसे भी चापनिस्सृत बाणोंके द्वारा शीघ्रता सहित उनके सब बाण काट पांचसो शीलीमुख चलाकर वासवपर सहसा प्रहार किया ॥ ३८ ॥

तद्वज्राभिहतो नागो भग्नः सैन्यं जगाम ह ॥ दृष्ट्वा तं दैत्यराट् क्रुद्धो बिडालाख्यमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ गच्छ वीर महाबाहो जहींद्रं मदगर्वितम् ॥ वरुणादीन्परान्देवान्हत्वाऽऽगच्छ ममांतिकम् ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य बिडालाऽऽख्यो महाबलः ॥ आरुह्य वारणं मत्तं जगाम त्रिदशाधिपम् ॥ ३६ ॥ वासवस्तं समायांतं दृष्ट्वा क्रोधसमान्वतः ॥ जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ३७ ॥ स तु च्छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः ॥ पंचाशद्भिर्जघानाशु वासवं च शिलीमुखैः ॥ ३८ ॥ तथेंद्रोऽपि च तान्बाणांश्छित्त्वा कोपसमन्वितः ॥ जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसम प्रभैः ॥ ३९ ॥ स तुच्छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः ॥ गदया ताडयामास गजं तस्य करोपरि ॥ ४० ॥ स्वकरे निहतो नागश्चकारार्तस्वरं मुहुः ॥ परिवृत्य जघानाशु दैत्यसैन्यं भयातुरम् ॥ ४१ ॥ दानवस्तु गजं वीक्ष्य परावृत्य गतं रणात् ॥ समाविश्य रथे रम्ये जगामाशु सुराग्रणे ॥ ४२ ॥ तुराषाडपि तं वीक्ष्य रथस्थं पुनरागतम् ॥ अहनद्विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ४३ ॥

इन्द्रनेभी उन सब बणोंको काटकर क्रोधसहित फिर सर्पके समान तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर आघात किया ॥ ३९ ॥ और धनुषके छूटे हुए अपने बाणोंसे उसके बाणोंको खंड खंड करके तत्काल उसके हाथीकी सूंडमें गदा मारी ॥ ४० ॥ हाथी अपनी सूंडमें आघात लगनेके कारण आर्तस्वरसे वारंवार चीत्कार शब्द करने लगा. तब वह भयातुर हो फिर आते आते दानवोंकी सेनाका ही विनाश करने लगा ॥ ४१ ॥ सेनापति बिडालाख्य रणस्थलसे हाथीको भागता देख, मनोहर रथमें बैठ तत्काल युद्धस्थलमें देवताओंके सन्मुख हुआ ॥ ४२ ॥ सुरपतिने रथमें चढ़े दानवको फिर आता देख आशीविष (सर्प) के समान तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर प्रहार किया ॥ ४३ ॥

वह महा बलवान् दानव भी कुपित होकर भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगा, तब जयाभिलाषी वासव और दानवका तुमुल संग्राम होने लगा ॥ ४४ ॥ दानवको बलवान् देखकर क्रोधके मारे इन्द्रकी सब इन्द्रिय आकुल हो गईं, तब अपने पुत्र जयन्तको संग ले दोनों संग्राम में प्रवृत्त हुए ॥ ४५ ॥ जयंतने पांच शोणित बाण बलसे खैंच मदगर्वित दानवकी छातीमें मारे ॥ ४६ ॥ दानव बाणोंके द्वारा आहत होकर रथके नीडमें गिर गया, तब सारथी रथ लेकर रणाङ्गणसे चला गया ॥ ४७ ॥ उस विडाल नामक दानवके मूर्छित होकर चले जाने पर देवताओंकी दुन्दुभिका निःस्वन और महान् जयशब्द होने लगा ॥ ४८ ॥ देवता हर्षमें भर शचीपतिका स्तव करने लगे, गंधर्व पतिगण गान और अप्सरागण नृत्य करने लगीं ॥ ४९ ॥ हे राजन्! महिषने उस समय

सोऽपि क्रुद्धश्चकारोग्रां बाणवृष्टिं महाबलः ॥ बभूव तुमुलं युद्धं तयोस्तत्र जयैषिणोः ॥ ४४ ॥ इंद्रस्तु बलिनं दृष्ट्वा कोपेनाकुलितेंद्रियः ॥ जयंतमग्रतः कृत्वा युयुधे तेन संयुतः ॥ ४५ ॥ जयंतस्तु शितैर्बाणैस्तं जघान स्तनांतरे ॥ पंचभिः प्रबलाकृष्टैरसुरं मदगर्वितम् ॥ ४६ ॥ स बाणाभिहतस्तावन्निपपात रथोपरि ॥ अतिवाह्य रथं सूतो निर्जगाम रणाजिरात् ॥ ४७ ॥ तस्मिन्विनिर्गते दैत्ये बिडालाख्येऽथ मूर्च्छिते ॥ जयशब्दो महानासीद्दुन्दुभीनां च निःस्वनः ॥ ४८ ॥ सुराः प्रमुदिताः सर्वे तुष्टुवुस्तं शचीपतिम् ॥ जगुर्गंधर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४९ ॥ चुकोप महिषः श्रुत्वा जयशब्दं सुरैः कृतम् ॥ प्रेषयामास तत्रैव ताम्रं परमदापहम् ॥ ५० ॥ ताम्रस्तु बहुभिः सार्धं समागम्य रणाजिरे ॥ शरवृष्टिं चकाराशुतडित्वानिव सागरे ॥ ५१ ॥ वरुणः पाशमुद्यम्य जगाम त्वरितस्तदा ॥ यमश्च महिषारूढो दंडमादाय निर्ययौ ॥ ५२ ॥ तत्र युद्धमभूद्घोरं देवदानवयोर्मिथः ॥ बाणैः खड्गैश्च मुसलैः शक्तिभिश्च परश्वधैः ॥ ५३ ॥ दंडेन निहतस्ताम्रो यमहस्तोद्यतेन च ॥ न चचाल महाबाहुः संग्रामांगणस्तदा ॥ ५४ ॥

देवताओंका उच्चारित जयशब्द सुन कुपित हो शक्रगर्वहारी ताम्र नामक दानवको संग्राममें भेजा ॥ ५० ॥ ताम्र रणस्थलमें उपस्थित और अनेकानेक प्रतिपक्ष योधाओंके सन्मुख हो मेघके सागरपर जलवर्षणके समान बाण बरसाने लगा ॥ ५१ ॥ तब वरुण पाश उद्यत करके चले. यम भी भैंसेपर चढ दण्ड हाथमें ले धावमान हुए ॥ ५२ ॥ बाण खड्ग, मूशल, शक्ति और परशुद्वारा देवता और दानवोंका परस्पर घोर युद्ध होने लगा ॥ ५३ ॥ यमने हाथसे दण्ड उद्यत करके ताम्रको प्रहार किया, महाबाहु ताम्र यम दण्डसे ताडित होकर भी उसकाल रणस्थलसे विचलित न हुआ ॥ ५४ ॥

वरन् उसने वेगसहित धनुष खैंचकर तीक्ष्ण बाणोंसे रणाङ्गणमें इन्द्र इत्यादि देवताओंको शीघ्र प्रहार किया ॥ ५५ ॥ देवता भी कुपित होकर शिलापर पैनाये तीक्ष्ण और दिव्य बाणोंसे दानवोंको आघात करके. ठहरो ठहरो यह कहकर आक्रोश प्रकाश करने लगे ॥ ५६ ॥ देवताओंके बाणोंसे आहत होकर दानव ताम्र रण स्थलमें मूर्च्छित हुआ, तब दानवोंकी सेना भयातुर होकर महान् हाहाकार शब्द करने लगी ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन् ! सेनापति ताम्रके मूर्च्छित होनेपर महिषने क्रोधमें भर भारी गदा तान देवताओंके समीप उपस्थित होकर ॥ १ ॥ कहा हे देवताओ ! तुम काकके समान सदा ही बलहीन हो अतएव रहो, अभी तुमको गदाघातसे मारता हूं ॥ २ ॥ मदगर्वित

चापमाकृष्य वेगेन मुक्त्वा तीव्राञ्छिलीमुखान् ॥ इंद्रादीनहनत्तूर्णं ताम्रस्तस्मिन्रणाजिरे ॥ ५५ ॥ तेऽपि देवाः शरैर्दिव्यैर्निशितैश्च शिलाशितैः ॥ निजघ्नुर्दानवान्क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति चुक्रुशुः ॥ ५६ ॥ निहतस्तैः सुरै दैत्यो मूर्च्छामाप रणांगणे ॥ हाहाकारो महानासीद्दैत्यसैन्ये भयाऽऽतुरे ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे दैत्यसैन्यपराजयो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ ताम्रेऽथ मूर्छिते दैत्ये महिषः क्रोधसंयुतः ॥ समुद्यम्य गदां गुर्वीं देवानुपजगाम ह ॥ १ ॥ तिष्ठंत्वद्य सुराः सर्वे हन्म्यहं गदया किल ॥ सर्वे बलिभुजः कामं बलहीनाः सदैव हि ॥ २ ॥ इत्युक्त्वाऽसौ गजारूढं संप्राप्य मदगर्वितः ॥ जघान गदया तूर्णं बाहुमूले महाभुजः ॥३॥ सोऽपि वज्रेण घोरेण चिच्छेदाशु गदां च ताम् ॥ प्रहर्तुकामस्त्वरितो जगाम महिषं प्रति ॥ ४ ॥ हयारिरपि कोपेन खड्गमादाय सुप्रभम् ॥ ययाविंद्रं महावीर्यं प्रहरिष्यन्निवांकितम् ॥ ५ ॥ बभूव च तयोर्युद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ आयुधैर्विविधैस्तत्र मुनिविस्मयकारकम् ॥ ६ ॥ चकाराशु तदा दैत्यो मायां मोहकरीं किल ॥ शांबरीं सर्वलोकघ्नीं मुनीनामपि मोहिनीम् ॥ ७ ॥

महाबलवान् महिषने ऐरावतारूढ इन्द्रको सन्मुख पाया गदासे तत्काल उसके बाहुमूलमें आघात किया ॥३ ॥ इन्द्रने भी उसी समय घोरतर वज्रके प्रहारसे उस गदाको खंड खंड कर डाला और उसपर प्रहार करनेकी अभिलाषा करके सहसा उसके समीपमें हुए ॥ ४ ॥ तब महिष भी क्रोधके वशीभूत होकर दीप्तिमान् खड्ग ग्रहण कर महावीर्यवान् इन्द्रको मारनेके निमित्त उनके निकट आया ॥ ५ ॥ फिर अनेक आयुधोंके वर्षणसे उन दोनोंका जो युद्ध हुआ उससे संपूर्ण लोगोको भय और मुनि लोगोंको विस्मय उत्पन्न हुआ ॥६॥ उस समय इस दानवने सब लोकोंका विनाश करने वाली अधिक क्या मुनियोंको भी मोह उत्पन्न करनेवाली शाम्बरी माया फैलाई ॥ ७ ॥

तब रणस्थलमें महिषके समान रूप युक्त, और महापराक्रमशाली करोड़ करोड़ महिष दिखाई देनेलगे, वह सभी आयुध लेकर देवताओंकी सेनाका संहार करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ८ ॥ इस दानवकृत मोहकरी मायाको देख इन्द्र विस्मित और अत्यन्त भयके कारण उद्विग्न हुए ॥ ९ ॥ वरुण, धनपति, यम, अग्नि, चन्द्र, सूर्य इत्यादि सब देवता भयार्त होकर ॥ १० ॥ भागे, तब देवता मायाजालमें मोहित हो मनमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेवको स्मरण करेने लगे ॥ ११ ॥ स्मरण करते ही सुरवर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हंस, गरुड और बैलपर चढ, उत्तम उत्तम आयुध धारणपूर्वक उनकी रक्षा करनेको आये ॥ १२ ॥ शौरिने उस मोहिनी मायाको देखकर उज्ज्वल सुदर्शन चक्र चलाया, तब सुदर्शनके तेजके प्रभावसे ही वह माया तिरोहित हुई ॥ १३ ॥ महिष

कोटिशो महिषास्तत्र तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ददृशुः सायुधः सर्वे निघ्नतो देववाहिनीम् ॥ ८ ॥ मघवाविस्मितस्तत्र दृष्ट्वा तां दैत्यनिर्मिताम् ॥ बभूवातिभयोद्विग्नो मायां मोहकरीं किल ॥ ९ ॥ वरुणोऽपि सुसंत्रस्तस्तथैव धननायकः ॥ यमो हुताशनः सूर्यः शीत रश्मिर्भयातुरः ॥ १० ॥ पलायनपराः सर्वे बभूवुर्मोहिताः सुराः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्मरणं चक्रु रुद्यताः ॥ ११ ॥ तत्राजग्मुश्च काजेशाः स्मृत मात्राः सुरोत्तमाः ॥ हंसतार्क्ष्यवृषारूढास्त्रातुकामावरायुधाः ॥ १२ ॥ शौरिस्तां मोहिनीं दृष्ट्वा सुदर्शनमथोज्ज्वलम् ॥ सुमोच तत्तेजसैव माया सा विलयं गता ॥ १३ ॥ वीक्ष्य तान्महिषस्तत्र सृष्टिस्थित्यंतकारिणः ॥ योद्धुकामः समादाय परिघं समुपाद्रवत् ॥ १४ ॥ महिषाख्यो महावीरः सेनानीश्चिक्षुरस्तथा ॥ उग्रास्यश्चोग्रवीर्यश्च दुद्रुवुर्युद्धकामुकाः ॥ १५ ॥ असिलोमा त्रिनेत्रश्च बाष्कलोंऽधक एव च ॥ एते चान्ये च बहवो युद्धकामा विनिर्ययुः ॥ १६ ॥ सन्नद्धा धृतचापांस्ते रथारूढा मदोद्धताः ॥ परिवव्रुः सुरान्सर्वान्वृका इव सुवत्सकान् ॥ १७ ॥ बाणवृष्टिं ततश्चक्रुर्दानवा मदगर्विताः ॥ सुराश्चापि तथा चक्रुः परस्परजिघांसवः ॥ १८ ॥

सृष्टिकारी ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु और प्रलयकारी महेश्वरको वहाँ देख युद्धकी अभिलाषासे परिघ लेकर दौडा ॥ १४ ॥ फिर सेनापति चिक्षुर, उग्रास्य, उग्रवीर्य चले ॥ १५ ॥ असिलोमा, त्रिनेत्र, वाष्कल, अन्धक और अन्यान्य योद्धा सभी युद्धकी इच्छासे निकले ॥ १६ ॥ उन मदोद्धत दानवगणने वर्म (कवच) धारे और धनुष बाण लिये रथमें चढ क्षुद्र व्याघ्र जिस प्रकार सुकुमार वत्सगणोंपर आक्रमण करता है, इसी प्रकार देवताओंका वेष्टन किया ॥ १७ ॥ अनन्तर उन मदगर्वित दानवोंने बाणवर्षा आरंभ की और देवता भी परस्पर मारनेकी इच्छासे उसी प्रकार बाणवृष्टि करने लगे ॥ १८ ॥

सेनापति अन्धकने हरिके समीपस्थ हो अत्यन्त बलसे कानोंपर्यन्त खैंचकर विषके बुझे शिलापर पैनाये पांच बाण चलाये ॥ १९ ॥ तब शत्रुनाशक वासुदेवने भी स्वप्रेरित बाणद्वारा उन सब बाणोंके सन्मुख न आते आतेही तत्काल काटकर फिर पंच बाण छोड़े ॥ २० ॥ तब हरि और दानवपक्षके बाण, असि, चक्र, मूशल, गदा. शक्ति, और परशुद्वारा परस्पर आघात करने लगे॥ २१ ॥ इस ओर महादेव और अंधकका परस्पर पचास दिनपर्यन्त लोमहर्षण तुमुल युद्ध हुआ था ॥ २२ ॥ इसी प्रकार बाष्कलके संग इन्द्रका, महिषके संग रुद्रका, त्रिनेत्रके संग यमका, महाहनुके संग धनपतिका और असिलोमाके संग वरुणका अत्यन्त दारुण युद्ध होने लगा ॥ २३ ॥ महिषने हरिके वाहन गरुडको गदासे आघात किया तब गरुड गदा प्रहारसे अति कातर हो श्वास छोड़ता

अंधको रिपुमासाद्य पंचबाणाञ्छिलाशितान् ॥ मुमोच विषसंदिग्धान्कर्णाऽऽकृष्टान्महाबलान् ॥ १९ ॥ वासुदेवोऽप्यसंप्राप्तान्विशिखाना
शुगैस्तदा ॥ चिच्छेद तान्पुनः पञ्च मुमोच रिपुनाशकः ॥ २० ॥ तयो परस्परं युद्धं बभूव हरिदैत्ययो ॥ बाणासिचक्रमुसलैर्गदाशक्तिपर
श्वधैः ॥ २१ ॥ महेशांधकयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ पंचाशद्दिनपर्यन्तं बभूव च परस्परम् ॥ २२ ॥ इन्द्रबाष्कलयोस्तद्वन्महिषासुर
रुद्रयोः ॥ यमत्रिनेत्र योस्तद्वन्महाहनुधनेशयोः ॥ २३ ॥ असिलोमवरुणयोर्युद्धं परमदारुणम् ॥ गरुडं गदया दैत्यो जघान हरिवाहनम्
॥ २४ ॥ स गदा पातखिन्नांगो निःश्वसन्नवतिष्ठते ॥ शौरिस्तं दक्षिणेनाशु हस्तेन परिसांत्वयन् ॥ २५ ॥ स्थिरं चकार देवेशो वैनतेयं
महाबलम् ॥ समा कृष्ण धनुः शार्ङ्गं मुमोच विशिखान्बहून् ॥ २६ ॥ अंधकोपरि कोपेन हंतुकामो जनार्दनः ॥ दानवोऽपि च तान्बाणां
श्चिच्छेद स्वशरैः शितैः ॥ २७ ॥ पंचाशद्भिर्हरिं कोपाज्जघान च शिलाशितैः ॥ वासुदेवोऽपि तांस्तूर्णं वंचयित्वा शरोत्तमान् ॥ २८ ॥
चक्रं मुमोच वेगेन सहस्रारं सुदर्शनम् ॥ त्यक्तं सुदर्शनं दूरात्स्वचक्रेण न्यवारयत् ॥ २९ ॥

हुआ गिर गया ॥ २४ ॥ उस समय देवपति शौरिने दाहिने हाथसे सान्त्वना आश्वासन करके विनतानंदन महाबल गरुडको स्थिर किया ॥ २५ ॥ जनार्दनने कोपवशसे अन्धकका संहार करनेकी इच्छा कर शार्ङ्ग धनुष खैंच उसके ऊपर अनेक बाण चलाये ॥ २६ ॥ प्रथम तो दानवने अपने तीक्ष्ण शरजालसे उनके उन सब बाणोंको खंड खंडकर डाला ॥ २७॥ फिर कोपसहित शिलापर पैनाये पचास बाणोंसे हरिपर आघात किया, वासुदेवने भी तत्काल उन उत्तम२ सब बाणोंको विफल करके ॥ २८ ॥ सहस्र अरोंसे युक्त सुदर्शन चक्र वेग सहित छोड़ा. हे महाराज ! अन्धकने अपने चक्रसे सुदर्शन चक्रका निवारण करके ॥ २९ ॥

ऐसी गर्जना करी कि उस समय उससे समस्त देवता मोहको प्राप्त हुए, शार्ङ्गधर वासुदेवके चक्रको विफल हुआ देख ॥ ३० ॥ देवता शोकाकुल हुए और दानवोंको हर्ष प्राप्त हुआ वासुदेवभी देवताओंको शोकाकुल देख ॥ ३१ ॥ कौमोदकी गदा ग्रहणकर दानवके सामने दौड़े तब हरिने उस मायावी दानवके मस्तकमें गदाप्रहार किया ॥ ३२ ॥ उसकाल वह गदाघातसे मूर्छित हो पृथ्वीमें गिर गया । अतिकोपन स्वभाव महिष दानव अंधकको गिरा देख ॥ ३३ ॥ गंभीर गर्जनशब्दसे रमानाथको त्रसित करता हुआ आया. उसको क्रोधसे अधीर होकर आया देख वासुदेवने ॥ ३४ ॥ धनुर्ज्या [प्रत्यंचा] का ऐसा भयंकर शब्द किया कि, उससे देवताओंको हर्षका उदय हुआ तब भगवान्ने महिषके ऊपर बाणोंकी वर्षा करी ॥ ३५ ॥ किन्तु महिषने अपने बाणोंसे

ननाद च महाराज देवान्सम्मोहयन्निव ॥ दृष्ट्वा तु विफलं जातं चक्रं देहस्य शार्ङ्गिणः ॥३०॥ जग्मुः शोकं सुराः सर्वे जहर्षुर्दानवास्तथा ॥ वासुदेवोऽपि तरसा दृष्ट्वा देवाञ्छुचाऽऽवृतान् ॥ ३१ ॥ गदां कौमोदकीं धृत्वा दानवं समुपाद्रवत् ॥ तं जघानातिवेगेन मूर्ध्नि मायाविनं हरिः ॥ ३२ ॥ स गदाभिहतो भूमौ निपपातातिमूर्छितः ॥ तं तथा पतितं वीक्ष्य हयारिरति कोपनः ॥ ३३ ॥ आजगाम रमानाथं त्रासयन्नतिगर्जितैः ॥ वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा समायांतं क्रुधाऽन्वितम् ॥ ३४ ॥ चापज्यानिनदं चोग्रं चकार नंदयन्सुरान् ॥ शरवृष्टिं चकाराशु भगवान्महिषोपरि ॥ ३५ ॥ सोऽपि चिच्छेद बाणौघैस्तान्छरान्गगनेरितान् ॥ तयोर्युद्धमभूद्राजन्परस्परभयावहम् ॥ ३६ ॥ गदयाताडयामास केशवो मस्तकोपरि ॥ स गदाभिहतो मूर्ध्नि पपातोर्व्यां सुमूर्छितः ॥ ३७ ॥ हाहाकारो महानासीत्सैन्ये तस्य सुदारुणः ॥ स विहाय व्यथां दैत्यो मुहूर्तादुत्थितः पुनः ॥३८॥ गृहीत्वा परिघं शीर्षे जघान मधुसूदनम् ॥ परिघेणाहतस्तेन मूर्छामाप जनार्दनः ॥३९॥ मूर्छितं तमुवाहाशु जगाम गरुडोरणात् ॥ परावृत्ते जगन्नाथे देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ४० ॥

आकाशमार्गमें ही उन सब बाणोंको काटडाला. हे राजन् ! फिर उनके परस्पर भयावह युद्धका आरंभ हुआ ॥ ३६ ॥ केशवने गदासे उसके मस्तकमें आघात किया वह गदाप्रहारसे मस्तकमें आहत होकर पृथ्वीमें गिर गया ॥ ३७ ॥ तब उसकी सेनामें दारुण हाहाकार शब्द होने लगा वह दानव मुहूर्तमात्रमें व्यथा रहित होकर उठा ॥ ३८ ॥ तब उसने फिर परिघ लेकर मधुसूदनके मस्तकमें प्रहार किया उस परिघसे आहत होकर जनार्दन मूर्छित हुए ॥ ३९ ॥ तब गरुड उनको मूर्छित अवस्थामें लेकर तत्काल रणस्थलसे चले गये जगन्नाथके फिर जानेसे इन्द्रआदि देवता ॥ ४० ॥

भीत और अतिशय कातर होकर आर्त्तनाद करने लगे शंकरने देवताओंका रुदन करना सुन शूल ले ॥ ४१ ॥ सरोष चित्तसे शीघ्र महिषके निकट जाय उसपर शूलसे प्रहार किया दुष्टस्वभाव महिषने भी उनका त्रिशूल विफल करके गर्जना की और शक्ति लेकर शंकरके वक्षस्थलमें मारी तब शंकर वक्षस्थलमें आघात लगनेसेभी कुछ व्यथित नहीं हुए ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ बरन् क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर उन्होंने फिर त्रिशूलसे उसपर आघात किया दुरात्मा महिषके संग शंकरको समरमें प्रवृत हुआ देख ॥ ४४ ॥ हरिभी प्रहारजनित मूर्छा छोड़कर वहां आये महावीर्य देवदेव चक्रधर हरि और शूलधारी शंकरको संग्रामकी वासनासे समरस्थलसे उपस्थित हुआ देख महिष अतिशय कुपित हुआ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तब महिष देहधारण कर अपनी विशाल पूँछ इधर उधर संचालित

भयं प्रापुः सदुःखर्ताश्चुक्रुशुश्च रणाजिरे ॥ क्रंदमानान्सुरान्वीज्य शंकरः शूलभृत्तदा ॥ ४१ ॥ महिषं तरसाऽभ्येत्य प्राहरद्रोषसंयुतः ॥ सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ शंकरस्योरसि स्फुटम् ॥ ४२ ॥ जगर्ज स च दुष्टात्मा वंचयित्वा त्रिशूलकम् ॥ शंकरोऽपि तदा पीडां न प्रापोरसि ताडितः ॥ ४३ ॥ तं जघान त्रिशूलेन कोपादरुणलोचनः ॥ संलग्नं शंकरं दृष्ट्वा महिषेण दुरात्मना ॥ ४४ ॥ आजगाम हरिस्तावत्त्यक्त्वा मूर्छां प्रहारजाम् ॥ महिषस्तु तदा वीक्ष्य संप्राप्तौ हरिशंकरौ ॥ ४५ ॥ युद्धकामौ महावीर्यौ चक्र शूलधरौ वरौ ॥ पर्युकोक्तो बभूवासौ दृष्ट्वा तौ समुपागतौ ॥ ४६ ॥ जगाम संमुखस्तावत्संग्रामार्थं महाभुजः ॥ महिषं वपुरास्थाय धुन्वन्पुच्छं समुत्कटम् ॥ ४७ ॥ चकार भैरवं नादं त्रासयन्नमरानपि ॥ धुन्वञ्छृंगे महाकायो दारुणो जलदो यथा ॥ ४८ ॥ शृङ्गाभ्यां पार्वताञ्छृंगांश्चिक्षेप भृशमुत्कटान् ॥ दृष्ट्वा तौ तु महावीर्यौ दानवं देवसत्तमौ ॥ ४९ ॥ चक्रतुर्बाणवृष्टिं च दानवोपरि दारुणाम् ॥ कुर्वाणौ बाणवृष्टिं तौ दृष्ट्वा हरिहरौ हरिः ॥ ५० ॥ चिक्षेप गिरिशृंगं तु पुच्छेनावृत्य दारुणम् ॥ आपतंतं गिरिं वीक्ष्य भगवान्सात्वतांपतिः ॥ ५१ ॥

करता हुआ समरकी इच्छासे उनके सन्मुख हुआ ॥ ४७ ॥ उस महाकाय भयानक महिषने दोनों सींग कम्पित करके मेघके समान इस प्रकार गंभीर गर्जना करी कि उससे देवता लोग भी त्रसित हुए ॥ ४८ ॥ वह दोनों सींगोंसे विशाल २ पर्वतके शिखरोंका निरन्तर निक्षेप करनेलगा महावीर्य देवसत्तम हरि और हर दानवको देखकर ॥ ४९ ॥ दारुण बाणोंकी वर्षा करने लगे हरि और हर दोनोंको बाणवृष्टि करता देख ॥ ५० ॥ महिष पूँछसे दारुण गिरशृंग लपेटकर चलाने लगा. पर्वत शिखरको गिरता हुआ देखकर भगवान् हरिने ॥ ५१ ॥

बाणोंसे उसके शतखंड (सौ टुकडे) करके तत्काल चक्रसे उसका प्रहार किया. हरिके चक्रसे आहत होकर दानवपति रणमें मूर्छित हो गया ॥ ५२ ॥ किन्तु क्षणमात्रमें ही फिर मनुष्य देहधारण करके उठा तब पर्वतके समान वह भयंकर दानव हाथमें गदा लेकर ॥ ५३ ॥ देवताओंको भय दिखाता मेघके समान गंभीर शब्दसे गर्जने लगा, भगवान् विष्णुने भी उस शब्दके सुनतेही समुज्ज्वल पाञ्चजन्य शंख लेकर ॥ ५४ ॥ पूर्ण कर गंभीर और घोरतर शब्द किया. शंखके उस शब्दको सुनकर दानवलोग भयसे चकित हुए ॥ ५५ ॥ तथा तपोधन ऋषि और देवता आनन्दित हुए ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा पुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले, हे राजन् ! उस समय महिषने दानवोंको व्याकुल देखकर महिषरूप छोड़ सिंहमूर्त्ति धारण

विशिखैः तध शचाक्रे चक्रेणाशु जघान तम् ॥ हरिचक्राहतः संख्ये मूर्छामाप स दैत्यराट् ॥ ५२ ॥ उत्तस्थौ च क्षणान्नूनं मानुषं वपुरा स्थितः ॥ गदापाणिर्महाघोरोदानवः पर्वतोपमः ॥ ५३ ॥ मेघ नादं ननादोच्चैर्भीषयन्नमरानपि ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुः पांचजन्यं समुज्ज्वलम् ॥ ५४ ॥ पूरयामास तरसा शब्दं कर्तुं खरस्वरम् ॥ तेन शब्देन शंखस्य भयत्रस्ताश्च दानवः ॥ ५५ ॥ बभूवुर्मुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ इति श्रीदेवीभ गवते ,महा० पं० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ असुरान्महिषो दृष्ट्वा विषण्णमनसस्तदा ॥ त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव मृगराडसौ ॥ १ ॥ कृत्वा नादं महाघोरं विस्तार्य च महासटाम् ॥ प्रपात सुरसेनायां त्रासयन्नखदं शनैः ॥ २ ॥गरुडं च नखाऽऽघातैः कृत्वा रुधिरविप्लुतम् ॥ जघान च भुजे विष्णुं नखाघातेन केसरी ॥ ३ ॥ वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा चक्रमुद्यम्य वेगवान् ॥ हंतुकामो हरिः काममवापाऽऽशु क्रुधाऽन्वितः ॥ ४ ॥ यावद्धयरिपुं वेगाच्चक्रेणाभिजघान तम् ॥ तावत्सोऽतिबलः शृंगी शृंगाभ्यां न्यहनद्धरिम् ॥ ५ ॥

की ॥ १ ॥ और अपनी विशाल जटाओंको विस्तार कर घोर गर्जना करता हुआ देवताओंकी सेनामें टूटा, तब देवता उसके तीक्ष्ण नख देखकर अत्यन्त त्रसित हुए ॥ २ ॥ उस सिंहरूपधारी महिषासुरने प्रथम तो गरुडके इस प्रकार नखाघात किया, कि उसका शरीर रुधिरस्रावसे प्लावित हो गया इसके पीछे फिर विष्णुके बाहुमूलमें नखसे प्रहार किया ॥ ३ ॥ वासुदेव हरिने भी उस दानवको देख क्रोधसे चक्र उद्यत कर उसको मारनेकी इच्छासे वेगसहित आक्रमण किया ॥ ४ ॥ जैसेही हरिने महिष दानवपर अति वेगसे चक्र प्रहार किया वैसे ही उस महाबलवान् दानवने भी तत्काल सिंहरूप त्याग महिषरूप धारण कर दोनों सींगोंसे हरिपर आघात किया ॥ ५ ॥

वासुदेव सींगोंसे वक्षस्थलमें ताडित हो विह्वल चित्तसे वेगसहित वहांसे अपने वैकुण्ठ धाममें चले गये ॥ ६ ॥ हरिके चले जानेपर शंकरभी उसको नितांत अवध्य विचार कर भयसे कैलास पर्वतको चले गये ॥ ७ ॥ ब्रह्माभी भयके कारण शीघ्र अपने आलयकी ओर दौडे किंतु महाबलवान् वासव धैर्य अवलम्बन करके समरमें स्थिर रहे ॥ ८ ॥ वरुण शक्ति ले धैर्य धारण कर समरकी प्रतीक्षामें रहे,यम भी दंडग्रहण किये समरमें तत्पर होकर रहे ॥ ९ ॥ इसी प्रकार यक्षपति कुबेर भी अतिशय संग्राममें व्यग्र रहे, पावक शक्ति ग्रहण करके वहां युद्धकी अभिलाषासे स्थित रहे ॥ १० ॥ दानव श्रेष्ठ महिषको देखकर नक्षत्रपति चन्द्र और सूर्य दोनों एकत्र युद्धके लिये कृतनिश्चय होकर रहे ॥ ११ ॥ हे महाराज! इसी अवसरमें दानवसैन्य कुपित होकर कठिन विषहरके

वासुदेवो विषाणाभ्यां ताडितोरसि विह्वला ॥ पलायनपरो वेगाज्जगाम भुवनंनिजम् ॥ ६ ॥ गतं दृष्ट्वा हरिं कामं शंकरोऽपि भयान्वितः ॥ अवध्यं तं परं मत्वा ययौ कैलासपर्वतम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मापि च निजं धाम त्वरितः प्रययौ भयात् ॥ मघवा वज्रमालंब्य तस्थावाजौ महाबलः ॥ ८ ॥ वरुणः शक्तिमालंब्य धैर्यमालंब्य संस्थितः ॥ यमोऽपि दंडमादाय यत्तः समरतत्परः ॥ ९ ॥ततो यक्षाधिपः कामं बभूव रणतत्परः ॥ पावकः शक्तिमादाय तत्राऽभूद्युद्धमानसः ॥ १० ॥ नक्षत्राधिपतिः सूर्यः समवेतौ स्थिताबुभौ ॥ वीक्ष्य तं दानवश्रेष्ठं युद्धाश्च कृतनिश्चयौ ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नंतरे क्रुद्धं दैत्यसैन्यं समभ्यगात् ॥ विसृजन्बाणजालानि क्रूराहिसदृशानि च॥ १२ ॥ कृत्वा हि माहिषं रूपं भूपतिः संस्थितस्तदा ॥ देवदानवयोधानां निनादस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥ ज्याघातश्च तलाघातो मेघनादसमोऽभवत् ॥ संग्रामे सुमहाघोरे देवदानवसेनयोः ॥ १४ ॥ शृंगाभ्यां पार्वतान्छृगांश्चिक्षेप च महाबलः ॥ जघान सुरसंघांश्च दानवो मदगर्वितः ॥ १५ ॥ खुरघातैस्तथा देवान्पुच्छस्य भ्रमणेन च ॥ स जघान रुषाऽविष्टो महिषः परमाद्भुतः ॥ १६ ॥

समान बाण वर्षण करती हुई चारों ओरको दौडी ॥ १२ ॥ तब दानवराजभी महिषरूप धारण करके उसमें स्थिति करने लगा इसी समय देवता और दानवोंके योधाओंका तुमुल शब्द उत्थित हुआ ॥ १३ ॥ देवता और दानवसेनाके घोरतर संग्राम समयमें मेघके शब्दके समान ज्याघात (प्रत्यञ्चाशब्द) का और करतलाघातका शब्द समुत्थित होने लगा ॥ १४ ॥ उस समय महाबल दानव मदगर्वित होकर सींगोंसे पहाड़ोंके शिखर चलाकर देवताओंका संहार करने लगा ॥ १५ ॥ वह अति अद्भुत महिष क्रोधयुक्त होकर किसी किसी देवताको खुरप्रहारसे और किसी किसीको पूंछके घूमानेसे मारने लगा ॥ १६ ॥

तब देवता और गंधर्व बहुत डरे, यही क्या ? वरन् महिषको देखतेही इन्द्रको भी भागना पड़ा ॥ १७ ॥ जब शचीपति इंद्र संग्राम त्यागकर चले गये तब यम, कुबेर और वरुण, यह भी सब भयसे आर्त हो रणस्थल छोड़कर चले गये ॥ १८ ॥ इंद्र ऐरावत हाथी, और उच्चैः श्रवा घोड़ेको छोड़कर भागे थे, सुतरां महिष वह हाथी घोड़ा और भास्करकी काम दुहा गौ हरणकर महाजय हुई विचार अपने गृहको चला गया, फिर शीघ्र अपनी सेना युक्त हो स्वर्गधाममें जानेकी इच्छा करी ॥ १९ ॥ २० ॥ महिषने तत्काल देवसदनमें जाय भयातुर देवताओंके छोडे हुए सुरराज्यको ग्रहण किया ॥ २१ ॥ फिर दानवराजने इंद्रके रमणीय आसनमें बैठकर अन्यान्य दानवोंको देवताओंके स्थानमें स्थापित किया ॥ २२ ॥ इस प्रकार पूरे सौ वर्ष युद्ध करके उस मदगर्वित दानवने

ततो देवाः सगंधर्वाभय माजग्मुरुद्यताः ॥ मघवा महिषं दृष्ट्वा पलायनपरोऽभवत् ॥ १७ ॥ संगरं संपरित्यज्य गते शक्रे शचीपतौ ॥ यमो धनाधिपः पाशी जग्मुः सर्वे भयाऽतुराः ॥ १८ ॥ महिषोऽतिजयं मत्वा जगाम स्वगृहं ततः ॥ ऐरावतं गजं प्राप्य त्यक्तमिंद्रेण गच्छता ॥ १९ ॥ तथोच्चैःश्रवसं भानोः कामधेनुं पयस्विनीम् ॥ स्वसैन्यसंवृतस्तूर्णं स्वर्गं गंतुं मनो दधे ॥ २० ॥ तरसा देवसदनं गत्वा स महिषासुरः॥जग्राह सुरराज्यं वै त्यक्तं देवैर्भयाऽऽतुरैः ॥ २१ ॥ इंद्राऽऽसने तथा रम्ये दानवः समुपाविशत् ॥ दानवान्स्थापयामास देवानां स्थानकेषु सः ॥ २२ ॥ एवं वर्षशतं पूर्णं कृत्वा युद्धं सुदारुणम् ॥ अवापैंद्रपदं कामं दानवो मदगर्वितः ॥ २३ ॥ निर्जरा निर्गता नाकात्तेन सर्वेऽतिपीडिताः॥ एवं बहूनि वर्षाणि बभ्रमुर्गिरिगह्वरे॥२४॥श्रांताः सर्वे तदा राजन्ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ प्रजापतिं जगन्नाथं रजोरूपं चतुर्मुखम् ॥ २५ ॥ पद्मासनं वेदगर्भं सेवितं मुनिभिः स्वजैः ॥ मरीचिप्रमुखैः शांतैर्वेद वेदाङ्गपारगैः॥ ॥ २६ ॥ किन्नरैः सिद्धगंधर्वैश्चारणोरगपन्नगैः ॥ तुष्टुवुर्भयभीतास्ते देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ २७ ॥

अभिलषित इंद्रपद प्राप्त किया ॥ २३ ॥ जब उसने देवताओंको स्वर्ग लोकसे निकाल दिया तब वे सब पीडित होकर उसी प्रकार बहुत वर्षपर्यन्त पर्वतकी गुहाओंमें घूमते फिरे ॥ २४ ॥ हे राजन्! तब देवता दुःखी होकर रजोमूर्ति चतुर्मुख प्रजापति ब्रह्माकी शरणमें गये ॥ २५ ॥ उस समय वेदगर्भ जगत्पति कमलासनपर आसीन थे उनके चारों ओर वेदवेदांगके पारगामी शान्तचित्त उनके मनसे प्रगट मरीचि इत्यादि मुनिगण ॥ २६ ॥ सिद्धगण, गन्धर्वगण, किन्नरगण, चारणगण, उरगगण और पन्नगगण, दण्डायमान थे. इसी अवसरमें वे भयभीत देवता लोग देवदेव जगद्गुरु ब्रह्माका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २७ ॥

देवता बोले हे कमलयोने! आप जगत्का संपूर्ण क्लेश निवारण करते हैं किन्तु दानवपतिसे पराजित होकर हम स्थान भ्रष्ट हुए हैं, अधिक क्या? हम लोग पर्वतके गुहाओंमें वास करके अत्यन्त क्लेश भोग करते हैं, तो हमारी यह अवस्था देखकर भी क्यों आपको दया नहीं होती? ॥ २८ ॥ हे धातः! पुत्र शत अपराधका अपराधी होनेपर भी लोभरहित पिता क्या उसको छोडकर अतिशय क्लेश देते हैं? हम लोग दानवोंसे पीडित हुए हैं और विशेषकर आपके चरण कमलोंमें एकान्त भक्ति परायण हैं, किंतु तो भी इन दीन लोगोंकी आज आप उपेक्षा करते हैं ॥ २९ ॥ वह दुरात्मा सब प्रकारसे देवताओंका राज्य भोग करता है, यज्ञीय हविका योग भाग ब्राह्मणोंसे बलपूर्वक ग्रहण करता है, पारिजात पुष्पोंका उपभोग करता है और जलनिधिकी निधिस्वरूप कामधेनु

देवा ऊचुः ॥ धातः किमेतदखिलाऽऽर्ति हरांबुजन्मजन्माऽभिवीक्ष्य न दयां कुरुषे सुरान्यत् ॥ संपीडितान्रणजितानसुराधिपेन स्थान च्युतान्गिरि गुहाकृत सन्निवासान् ॥ २८ ॥ पुत्रान्पिता किमपराधशतैः समेतान्संत्यज्य लोभरहितः कुरुतेऽतिदुःस्थान् ॥ यस्त्वं सुरां स्तव पदांबुजभक्तियुक्तान्दैत्यार्दितांश्च कृपणा न्यदुपेक्षसेऽद्य ॥ २९ ॥ अमरभुवनराज्यं तेन भुक्तं नितांतं मखहविरपि योग्यं ब्राह्मणैरा ददाति ॥ सुरतरुवरपुष्पं सेवतेऽसौ दुरात्मा जल निधिनिधिभूतां गामसौ सेवते ताम् ॥ ३० ॥ किं वा गृणीमः सुरकार्यमद्भुतं जानासि देवेश सुरारिचेष्टितम् ॥ ज्ञानेन सर्वं त्वमशेषकार्यं वित्तस्मात्प्रभो ते प्रणताः स्म पादयोः ॥ ३१ ॥ यत्रापि कुत्रापि गतान्सुरानसौ नाना चरित्रैः खलु पापमानसः ॥ पीडां करोत्येव स दुष्ट चेष्टितस्त्राताऽसि देवेश विधेहि शं विभो ॥ ३२ ॥ नोचेद्वयं दावमहाऽग्निपीडिताः कं शांतिकर्तारमनंततेजसम् ॥ यामः प्रजेशं शरणंसुरेष्टं धातारमाद्यं परिमुच्य कं शिवम् ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति स्तुत्वा सुराः सर्वे प्रणेमुस्तं प्रजापतिम् ॥ बद्धांजलिपुटाः सर्वे विषण्णवदना भृशम् ॥ ३४ ॥

लेकर उसका भी भोग करता है ॥ ३० ॥ असुर गणोंके अद्भुत कार्यके विषयमें और क्या कहे हे देवेश! देवताओंके शत्रुओंकी सबही चेष्टा जानते हैं. क्योंकि आपको ज्ञानके द्वारा सब कार्य विदित होते हैं, अतएव हे प्रभो! हम आपके चरणोंमें प्रणत हैं ॥ ३१ ॥ दानवपतिके चरित्र अपवित्र और उसका मन पापसे कलुषित है. अतएव देवता जिस किसी स्थानमें जाते हैं, वही वह अनेक प्रकारसे क्लेश देता है. हे देवेश आपही एकमात्र रक्षक हैं. अतएव हे विभो! हमारा मंगलविधान कीजिये ॥ ३२ ॥ आप देवताओंको अभीष्ट प्रदान करते हैं, आपही सबके आदि प्रजापति और विधाता हैं. अतएव आप यदि मंगल न करेंगे, तो हम दारुण दावानलमें पीडित हो आपको छोड़ अन्य किस अमिततेज मंगलमय शान्तिकर्त्ताकी शरणमें

जायँगे ? ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! संपूर्ण देवताओंने इस प्रकार स्तव करके अत्यन्त मलीन वदनसे हाथ जोड़ प्रजापतिको प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ लोकपितामह उन देवताओंकी ऐसी अवस्था देख मधुरवचनसे सुख उत्पादन कर कहने लगे ॥ ३५ ॥ हे देवताओ ! मैं क्या करूं ? वह दानव वर पानेके कारण अत्यन्त दर्पित है. वह स्त्रीसे मरेगा. पुरुषसे नहीं मरेगा. अतएव इसका उपाय क्या है ? ॥ ३६ ॥ इस कारण हे देवताओ ! हम सब मिलकर पर्वतश्रेष्ठ कैलासको चलें, वहांसे देवकार्यविशारद शंकरको आगे करके ॥ ३७ ॥ वैकुण्ठमें देवदेव जनार्दनके निकट चल. वहां सब मिलित होकर देवकार्य साधनके लिये विशेष परामर्श करेंगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कार्यकी आज्ञा करके ब्रह्मा हंसपर चढ़ देवताओंके सहित कैलासपर्वतकी ओर

तांस्तथा पीडितान्दृष्ट्वा तदा लोकेपितामहः ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचासुखं संजनयन्निव ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किं करोमि सुराः कामं दानवो वरदर्पितः ॥ स्त्रीवध्योऽसौ न पुंवध्यो विधेयं तत्र किं पुनः ॥ ३६ ॥ व्रजामोऽद्य सुराः सर्वे कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥ शंकरं पुरतः कृत्वा सर्वकार्यविशारदम् ॥ ३७ ॥ ततो व्रजाम वैकुण्ठं यत्र देवे जनार्दनः ॥ मिलित्वा देवकार्यं च विमृशामो विशेषतः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा हंसमारुह्य ब्रह्मा कार्यसमुच्चये ॥ देवांश्च पृष्ठतः कृत्वा कैलासाभिमुखो ययौ ॥ ३९ ॥ तावच्छिवोऽपि तरसा ज्ञात्वा ध्यानेन पद्मजम् ॥ आगच्छंतं सुरैः सार्धं निर्गतः स्वगृहाद्बहिः ॥ ४० ॥ दृष्ट्वा परस्परं तौ तु कृताऽभिवादनौ भृशम् ॥ प्रणतौ च सुरैःसर्वैः सन्तुष्टौ संबभूवतुः ॥ ४१ ॥ आसनानि पृथग्दत्त्वा देवेभ्यो गिरिजापतिः ॥ उपविष्टेषु तेष्वेव निषसादासने स्वके ॥ ४२ ॥ कृत्वा तु कुशलप्रश्नं ब्रह्माणं वृषभध्वजः ॥ पप्रच्छ कारणं देवान्कैलासाऽऽगमने विभुः ॥ ४३ ॥ शिव उवाच ॥ किमत्राऽऽगमनं ब्रह्मन्कृत देवैः सवासवैः ॥ भवता च महाभाग ब्रूहि तत्कारणं किल ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ महिषेण सुरेशान पीडिताः स्वर्निवासिनः ॥ भ्रमंति गिरिदुर्गेषु भयत्रस्ताः सवासवाः ॥ ४५ ॥

चले ॥ ३९ ॥ शिवभी ध्यानयोगसे देवताओंके सहित पद्मयोनिका आगमन वृत्तान्त जान अपने गृहसे शीघ्र निकट कर आगे हुए ॥ ४० ॥ फिर दोनोंका साक्षात् होनेपर शिव और ब्रह्मा आपसमें प्रणामकर अत्यन्त संतोषको प्राप्त हुए. तब देवताओंने उनको प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ देवताओंको पृथक् पृथक् आसन प्रदान करनेपर वे उनपर बैठे. पार्वतीपतिभी अपने आसनपर विराजमान हुए ॥ ४२ ॥ वृषध्वजने ब्रह्मा और देवताओंसे कुशल प्रश्न कर उनके कैलास आनेका कारण पूँछा ॥ ४३ ॥ शिवजी बोले हे ब्रह्मन् ! इन्द्र इत्यादि देवताओंके सहित आप किस कारण इस स्थानमें आये हैं ? हे महाभाग ! इसका

कारण क्या है ? उसको आप कहिये ॥४४॥ ब्रह्माजी बोले हे देवदेव ! महिष दानव स्वर्गवासी देवताओंको पीडित करता है, इस कारण देवता इन्द्रके सहित भयसे त्रसित हो पर्वतोंकी गुहाओंमें भ्रमण करते हैं ॥ ४५ ॥ महिष और अन्यान्य दानव यज्ञ भागका भोग करते हैं. अतएव लोकपाल पीडित होकर आज आपकी शरणागत हुए हैं ॥ ४६ ॥ हे शम्भो ! कार्यके भारी होनेसे मैं उनको आपके स्थानमें ले आया हूं इस कारण हे सुरेश्वर ! जिससे देवताओंका कार्य युक्ति अनुसार सिद्ध हो आप वही कीजिये ॥ ४७ ॥ हे भूतभावन ! सब देवताओंका भार आपमें ही (स्थित) है व्यासजी बोले हे राजन् ! शंकर यह बात सुन कुछेक हँसते हुए ॥ ४८ ॥ मधुर वचन द्वारा कमलयोनिसे कहने लगे. शिवजी बोले हे विभो ! वर देनेसे आपनेही पहिले ॥ ४९ ॥ देवताओंका

यज्ञभुग्महिषो जातस्तथाऽन्ये सुरशत्रवः ॥ पीडिता लोकपालाश्च त्वामद्य शरणं गताः ॥ ४६ ॥ मया ते भवनं शंभो प्रापिताः कार्यगौरवात् ॥ यद्युक्तं तद्विधत्स्वाद्य सुरकार्यं सुरेश्वर ॥ ४७ ॥ त्वयि भारोऽस्ति सर्वेषां देवानां भूतभावन ॥ व्यास उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा शंकरः प्रहसन्निव ॥ ४८ ॥ वचनं श्लक्ष्णया वाचा प्रोवाच पद्मजं प्रति ॥ शिव उवाच ॥ भवतैव कृतं कार्यं वरदानात्पुरा विभो ॥ ४९ ॥ अनर्थदं च देवानां किं कर्तव्यमतः परम् ॥ ईदृशो बलवाञ्छूरः सर्वदेवभयप्रदः ॥ ५० ॥ का समर्था वरा नारी तं हंतुं मददर्पितम् ॥ न मे भार्या न ते भार्या संग्रामं गंतुमर्हति ॥ ५१ ॥ गत्वैव ते महाभागे युयुधाते कथं पुनः ॥ इन्द्राणी च महाभाग न युद्धकुशलाऽस्ति हि ॥ ५२ ॥ काऽन्या हंतुं समर्थाऽस्ति तं पापं मददर्पितम् ॥ ममेदं मतमद्यैव गत्वा देवं जनार्दनम् ॥ ५३ ॥ स्तुत्वा तं देवकार्याय प्रेरयामः सुसत्वरम् ॥ सोऽतिबुद्धिमतां श्रेष्ठो विष्णुः सर्वार्थसाधने ॥ ५४ ॥

अनर्थकर कार्य किया है, अब फिर क्या करना चाहिये वह ऐसा बलवान् और शूर है कि सब देवताओंको भी उसने भय उत्पादन किया है ॥ ५० ॥ अतएव कौन ऐसी उत्तम स्त्री है, जो उस मदगर्वित दानवके मारनेमें समर्थ होगी ? तुम्हारी भार्या वा मेरी भार्या संग्राममें जानेको समर्थन हीं होंगी ॥ ५१ ॥ और जो वे दोनों महाभागा समरमें जाँय तो वह किस प्रकार युद्ध करेंगी ? सौभाग्य शालिनी इन्द्राणी भी समरमें कुशल नहीं है ॥ ५२ ॥ अतएव अन्य कौन स्त्री उस पापबुद्धि मदगर्वित दानवके मारनेमें समर्थ होगी ? अतएव मेरा अभिप्राय यही है कि अभी जनार्दनके समीप जाय ॥ ५३ ॥ उनका स्तव कर देवकार्यके निमित्त शीघ्र उनको नियोजित करें. विष्णु बुद्धिमानोंमें अग्रणी हैं, इस कारण सब प्रयोजन संपादनविषयमें समर्थ हैं ॥ ५४ ॥

वासुदेवके सहित मिलित होकर कार्यका विचार करना चाहिये, वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे परामर्श स्थिर कर कार्यसाधन करेंगे ॥ ५५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! ब्रह्मादि सुरसत्तमगण रुद्रके इस प्रकार वचन सुन " यही हो " ऐसी कहकर शिवके सहित शीघ्र उठे ॥ ५६ ॥ उस समय कार्यसिद्धिके निमित्त सब प्रसन्नचित्त हो उत्तम शकुन देखकर अपने अपने वाहनपर चढ़ विष्णुपुरीको चले ॥ ५७ ॥ तब शीत स्पर्श सुगंधित वायु अनुकूलभावसे मन्द मन्द बहने लगा और पक्षीगण मार्गमें सर्वत्र ही मंगलध्वनि करने लगे ॥५८॥ आकाश निर्मल और सब दिशाएं निर्मल हुईं, अधिक क्या देवताओंके गमनसमयमें समस्तही शुभकर हो गया ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले देवता शीघ्रता सहित विष्णु

मिलित्वा वासुदेवं वै कर्तव्यं कार्यचिन्तनम् ॥ प्रपञ्चेन च बुद्ध्या स संविधास्यति साधनम् ॥ ५५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति रुद्रवचः श्रुत्वा ब्रह्माद्याः सुरसत्तमा ॥ उत्थितास्ते तथेत्युक्त्वा शिवेन सह सत्वराः ॥ ५६ ॥ स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे ययुर्विष्णुपुरं प्रति ॥ मुदिताः शकुनान्दृष्ट्वा कार्यसिद्धिकाराञ्छुभान् ॥ ५७ ॥ ववुर्वाताः शुभाः शांताः सुगंधाः शुभशंसिनः ॥ पक्षिणश्च शिवा वाचस्तत्रोचुः पथि सर्वशः ॥ ५८ ॥ निर्मलं चाऽभवद्व्योमदिशश्च विमलास्तथा ॥ गमने तत्र देवानां सर्वं शुभमिवाभवत् ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ तरसा तेऽथ संप्राप्य वैकुंठं विष्णुवल्लभम् ॥ ददृशुः सर्वशोभाढ्यं दिव्य गृहविराजितम् ॥ १ ॥ सरोवापीसरिद्भिश्च संयुतं सुखदं शुभम् ॥ हंससारसचक्राह्वैः कूजद्भिश्च विराजितम् ॥ २ ॥ चंपकाऽशोककह्ला रमंदारबकुलावृतैः ॥ मल्लिकातिलकाम्रातयुतै कुरबकादिभिः ॥ ३ ॥ कोकिला रावसन्नादैः शिखंडैर्नृत्यरंजितैः ॥ भ्रमरारावरम्यैश्च दिव्यैरुपवनैर्युतम् ॥ ४ ॥

पालित वैकुंठमें पहुँच उसका अनिर्वचनीय सौन्दर्य देखने लगे कि स्थान स्थानमें शोभायमान गृह विराजमान हैं ॥ १ ॥ उनके सन्मुख सरोवर और दीर्घिका कह्लार पुष्पसे शोभित हैं, कहीं नदियें बह रहीहैं, उनमें हंस सारस और चक्रवाकादि जलचर पक्षीगण श्रवण मनोहर उपवन ध्वनि करते करते विचरण करते हैं ॥ २ ॥ कहीं मनोहर उपवन हैं. उनमें चंपक, अशोक, मन्दार, वकुल, आम्रातक, तिलक, कुरबक और मल्लिका इत्यादि पुष्पतरु शोभायमान थे. तहां स्थान स्थानमें कोकिल और भ्रमरगण मनोहर झंकार शब्द और मोर नृत्य करते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥

मध्यस्थलमें हरिका गगनस्पर्शी प्रसाद (महल) उसके सब दूसरे महल मनोहर स्थान स्थानमें रत्नखचित और विचित्र चित्रसे अलंकृत थे उसके मध्य मणिमय आसनपर विष्णु विराजमान हैं, सुनन्द और नन्दन इत्यादि पार्षदगण उनके ऐसे भक्त हैं कि, उनके चित्तकी वृत्ति अन्य कहीं भी आसक्त नहीं होती. अतएव वे एकान्तचित्तसे उनकी भक्तिपरायण होकर उनका स्तव करते हैं॥ ५ ॥ ६ ॥ उस स्थानमें अप्सराओंके नृत्य और देव गंधर्व तथा किन्नरगण मनोहर मधुर स्वरसे संगीत करते हैं॥ ७ ॥ जो वेदपाठमें आदर करते हैं ऐसे शान्तस्वभाव मुनि वेदसूक्तपाठ करके उनका स्तव करते हैं ॥ ८ ॥ सुन्दराकृति द्वारपाल जय और विजय स्वर्णयष्टि धारण करके द्वारपर स्थित हैं. देवताओंने विष्णुपुरके समीप पहुँच उनका अवलोकन करके कहा ॥ ९ ॥

सुनंदनंदनाद्यैश्च पार्षदैर्भक्तितत्परैः ॥ संस्तुवद्भिर्युतं भक्तैरनन्यभववृत्तिभिः ॥ ५ ॥ प्रासादै रत्नखचितैः कांचनैश्चित्रमंडितैः अभ्रंलिहैर्वि राजद्भिः संयुतं शुभसद्मकैः ॥ ६ ॥ गायद्भिर्देवगंधर्वैर्नृत्यद्भिरप्सरोगणैः ॥ रंजितं किन्नरैः शश्वद्रक्तकंठैर्मनोहरैः ॥ ७ ॥ मुनिभिश्च तथा शान्तैर्वेदपाठकृताऽऽदरैः ॥ स्तुवद्भिः श्रुतिसूक्तैश्च मंडितं सदनं हरेः ॥ ८ ॥ ते च विष्णुगृहं प्राप्यद्वार पालौ शुभाऽऽकृती ॥ वीक्ष्योचुर्ज यविजयौ हेमयष्टिधरौ स्थितौ ॥ ९ ॥ गत्वैकोऽप्युभयोर्मध्ये निवेदयतु संगतान् ॥ द्वारस्थान्ब्रह्मरुद्रादीन्विष्णुदर्शनलालसान् ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ विजयस्तद्वचः श्रुत्वा गत्वाऽथ विष्णुसन्निधौ ॥ सर्वान्समागतान्देवान्प्रणम्योवाच सत्वरः ॥ ११ ॥ विजय उवाच ॥ देवदेव महाराज रमाकांत सुरारिहन् ॥ समागताः सुरा सर्वे द्वारि तिष्ठति वै विभो ॥ १२ ॥ ब्रह्मा रुद्रस्तथेंद्रश्च वरुणः पावको यमः ॥ स्तुवंति वेदवाक्यैस्त्वाममरा दर्शनार्थिनः ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुर्विजयस्य रमापतिः ॥ निर्जगाम गृहात्तूर्णं सुरान्समाधिकोत्सवः ॥ १४ ॥

तुम दोनोंमेंसे एक जन विष्णुके समीप जाकर निवेदन करो कि ब्रह्मा और रुद्रादि देवता मिलित होकर आपके दर्शनकी लालसासे द्वारपर खडे हैं ॥१०॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! विजयने उनका वचन सुन शीघ्र विष्णुके समीप जाय प्रणाम कर संपूर्ण देवताओंके आनेका वृत्तान्त निवेदन करके कहा ॥ ११ ॥ हे महाराज ! संपूर्ण सुरशत्रु संहार करनेसे आप संपूर्ण देवताओंके परमाराध्य देवता हैं, अतएव हे रमानाथ! इस समय सब देवता आकर आपके द्वार खडे हुए हैं ॥ १२ ॥ हे विभो ! ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण. पावक और यम इत्यादि देवतालोग आपके दर्शनकी लालसासे वेदवाक्यद्वारा आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ १३ ॥ हे महाराज ! रमापति विष्णु विजयके वचन सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए और देवताओंसे भेंट करनेके लिये उत्सुक होकर तत्काल

गृहसे बाहर निकले ॥ १४ ॥ तब हरिने उनके निकट द्वारपर खड़े हुए देवताओंको अति दुःखी तथा श्रमसे कातर देख प्रीति पूर्ण अनुकूलदृष्टिसे मनको प्रसन्न किया ॥ १५ ॥ उसकाल संपूर्ण देवता उन वेदविदित दैत्यारि देवदेव जगन्नाथको प्रणाम करके स्तव करने लगे ॥ १६ ॥ देवता बोले हे देवदेव! आप सृष्टि स्थिति और संहार कारक होकर भी दयाके सागर और जगत्के एकमात्र आश्रय हैं. हे महाराज! हम आपकी शरणागत हैं, इस कारण आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥ देवताओंका इस प्रकार स्तव सुनकर विष्णुने कहा हे देवताओं! तुम आसनपर बैठकर अपना अपना कुशलवृत्तान्त कहो, सबके मिलित होकर इस स्थानमें आनेका क्या कारण है ?॥ १८ ॥ तुम दीनचित्त दुःखसे व्याकुल और इतने चिन्तातुर क्यों हुए हो ? हे देवताओ! तुम किस कार्यके लिये ब्रह्मा और रुद्रके सहित मिलित होकर इस स्थानमें आये हो ? सो शीघ्र कहो ॥ १९ ॥ देवता बोले हे महाराज! महिषासुर

गत्वा वीक्ष्य हरिर्देवान्द्वारस्थाञ्छ्रमकर्शितान् ॥ प्रीतिप्रवणया दृष्ट्या प्रीणयामास दुःखितान् ॥ १५ ॥ प्रणेमुस्ते सुराः सर्वे देवदेवं जनार्दनम् तुष्टवुश्च सुरारिघ्नं वाग्भिर्वेदविनिश्चितम् ॥ १६ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यंतकारक ॥ दयासिंधो महाराज त्राहि नः शरणागतान् ॥ १७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ विशंतु निर्जराः सर्वे कुशलं कथयंतु वः ॥ आसनेषु किमर्थं वै मिलिताः समुपागताः ॥ १८ ॥ चिंतातुराः कथं जाता विषण्णा दीनमानसाः ॥ ब्रह्मरुद्रेण सहिताः कार्यं प्रब्रूत सत्वरम् ॥ १९ ॥ देवा ऊचुः महिषेण महाराज पीडिताः पापकर्मणा ॥ असाध्येनाऽतिदुष्टेन वरदृप्तेन पापिना ॥ २० ॥ यज्ञभागानसौ भुंक्ते ब्राह्मणैः प्रतिपादितान् ॥ अमरागिरि दुर्गेषु भ्रमंति च भयातुराः ॥२१॥ वरदानेन धातुः स दुर्जयो मधुसूदन ॥ तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता ज्ञात्वा तत्कार्यगौरवम् ॥२२॥ समर्थोऽसि समुद्धर्तुं दैत्यमायाविशारद ॥ कुरु कृष्ण वधोपायं तस्य दानवमर्दन ॥ २३ ॥

अति दुष्टस्वभाव विशेषकर सदाही पापकार्यमें निरत है, अब वह पापिष्ठ वर पानेके कारण अत्यन्त उद्धत होकर हमको निरन्तर क्लेश देता है ॥ २० ॥ अधिक क्या ? ब्राह्मण लोग जो यज्ञ संपन्न करते हैं वह उन सब यज्ञोंका भाग भोग करता है, अतएव हम उसके भयसे कातर होकर गिरिदुर्गमें भ्रमण करते हैं ॥ २१ ॥ हे मधुसूदन ! विधाताके वरदानसे वह दुर्जय है, इसलिये ही हम उस कार्यका भारी विचार कर आपकी शरणमें आये हैं ॥ २२ ॥ हे कृष्ण ! आपही दैत्योंकी संपूर्ण माया जानते हैं कारण आपही दानवोंका विनाश करते हैं, अतएव इस विपदसे हमको उद्धार करनेमें आपही समर्थ हैं आपही उसके वधका उपाय विचारिये ॥ २३ ॥

दे. भा. ॥२२॥

विधाताने उसको यह वर दिया है कि तू पुरुषसे अवध्य होगा अतएव उस शठको समरमें निहत कर सके, ऐसी बलशालिनी स्त्री कौन है ?॥ २४ ॥ महिष वरदानके बलसे अति दुरात्मा हुआ है, अतएव उमा, लक्ष्मी, शची, वा विद्या कौन स्त्री उसको मार सकेगी ? ॥ २५ ॥ अतएव हे भक्तवत्सल ! आपही भुवनके रक्षक हैं इस समय बुद्धिसे भलीभांति इसकी मृत्युका कारण विचारकर जिससे देवताओंका कार्य सिद्ध हो वही कार्य कीजिये ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! विष्णुने इस प्रकार उनके वचन सुनकर-हँसते हँसते उनसे कहा; मैंने पहिले संग्राम किया था, किन्तु यह असुर उसमें भी न मरा ॥२७॥ यदि इस समय देवताओंकी निज निज शक्तिके अंश और रूपसे कोई वरारोहा रमणी उत्पन्न हो तो वह ललना बलपूर्वक उसका विनाश करे ॥ २८ ॥

धात्रा तस्मै वरो दत्तो ह्यवध्योऽसि नरैः किल ॥ का स्त्री त्वेवंविधा बाला या हन्यात्तं शठं रणे ॥ २४ ॥ उमा मा वा शची विद्या का समर्थाऽस्य घातने ॥ महि षस्याति दुष्टस्य वरदानबलादपि ॥ २५ ॥ विचिन्त्य बुद्ध्या यत्सर्वं मरणस्याऽस्य कारणम् ॥ कुरु कार्यंच देवानां भक्तवत्सल भूधर ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तद्वचनं विष्णुस्तानुवाच हसन्निव ॥ युद्धं कृतं पुराऽस्माभिस्तथाऽपि न मृतो ह्यसौ ॥ २७ ॥ अद्य सर्वसुराणां वै तेजोभी रूपसंपदा ॥ उत्पन्ना चेद्वरारोहा सा हन्यात्तं रणे बलात् ॥ २८ ॥ हयारिं वरदृप्तं च माया शतविशारदम् ॥ हंतुं योग्या भवेन्नारी शक्त्यंशैर्निर्मिता हि नः ॥ २९ ॥ प्रार्थयंतु च तेजोंऽशान्स्त्रियोऽस्माकं तथा पुनः ॥ उत्पन्नैस्तैश्च तेजोंऽशैस्तेजोराशिर्भवेद्यथा ॥ ३० ॥ आयुधानि वयं दद्मः सर्वे रुद्रपुरोगमाः तस्यै सर्वाणि दिव्यानि त्रिशूलादीनि यानि च ॥ ३१ ॥ सर्वाऽऽयुधधरा नारी सर्वतेजः समन्विता ॥ हनिष्यति दुरात्मानं तं पापं मदगर्वितम् ॥ ३२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तवति देवेशे ब्रह्मणो वदनाततः स्वयमेवोद्भभौ तेजोराशिश्चातीव दुःसहः ॥ ३३ ॥

हम लोगोंकी शक्तिके अंशसे नारीके निर्मित होनेपर वह शतशत माया विशारद बलदर्पित महिषका संहार कर सकेगी ॥ २९ ॥ अतएव तुमलोग अपनी अपनी स्त्रीके संग मिलकर तैजस अंशके निकट प्रार्थना करो कि उत्पन्न हुआ सब तेज मिलकर स्त्रीरूप हो ॥ ३० ॥ तब रुद्रादि देवताओंके त्रिशूल इत्यादि जो जब दिव्य अस्त्र हैं, हम सब वह सब आयुध उनको देंगे ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त वह नारी संपूर्ण तेजःपुंजसे परिपूर्ण होकर सम्पूर्ण आयुध धारणपूर्वक मदगर्वित दुष्टस्वभाव पापिष्ठ असुरको विनाश करेगी ॥ ३२॥ व्यासजी बोले देवेश ! विष्णुके इस प्रकार कहते ही ब्रह्माजीके मुखमण्डलसे स्वयंही अतिदुःसह तेजोराशि प्रादुर्भूत हुई ॥ ३३ ॥

भा. टी. पं. अ. ८

यह तेज पद्मरागमणिके समान रक्तवर्ण, कुछेक शीतल और उष्ण सुंदर अवयव (अंग) युक्त और मरीचिमालासे मण्डित था ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! विपुलविक्रम महात्मा हरि और हर भी उस निकले हुए तेजको देखकर आश्चर्यमें हुए ॥ ३५ ॥ इसके पीछे फिर शंकरके शरीरसे जो अति अद्भुत विपुलतेज निकला वह रौप्यवर्ण, भयानक, दुःसह और अत्यन्त कष्टसे भी नहीं देखा जाता था ॥ ३६ ॥ वह पर्वतके शिखरके समान विशाल और दूसरे तमोगुणके समान भयंकर था. उसको देखनेसे देवताओंको आश्चर्य और दैत्योंको भय उदय हुआ ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त नीलवर्ण सत्वगुण युक्त महाद्युति अपर तेजोराशिके समान विष्णुके शरीरसे निकली ॥ ३८ ॥ फिर सुरपति वासवके शरीरसे जो दुःसह तेज निकला वह अति सुंदर और त्रिगुणमय

रक्तवर्णं शुभाकारं पद्म रागमणिप्रभम् ॥ किंचिच्छीतं तथा चोष्णं मरीचिजालमंडितम् ॥ ३४ ॥ निःसृतं हरिणा दृष्टं हरेण च महा त्मना ॥ विस्मितौ तौ महाराज बभूवतुरुरुक्रमौ ॥ ३५ ॥ शंकरस्य शरीरात्तु निःसृतं महदद्भुतम् ॥ रौप्यवर्णमभूत्तीव्रं दुर्दर्शं दारुणं महत् ॥ ३६ ॥ भयंकरं च दैत्यानां देवानां विस्मयप्रदम् ॥ घोररूपं गिरिप्रख्यं तमोगुणमिवापरम् ॥ ३७॥ततो विष्णुशरीरात्तु तेजोरा शिमिवापरम् ॥ नीलं सत्त्वगुणोपेतं प्रादुरास महाद्युति ॥ ३८ ॥ ततश्चेंद्रशरीरात्तु चित्र रूपं दुरासदम् ॥ आविरा सीत्सुसंवृत्तं तेजः सर्वगुणात्मकम् ॥ ३९ ॥ कुबेरयमवह्नीनां शरीरेभ्यः समंततः ॥ निश्चक्राम महत्तेजो वरुणस्य तथैव च ॥ ॥ ४० ॥ अन्येषां चैव देवानां शरीरेभ्योऽतिभास्वरम् ॥ निर्गतं तन्महातेजोराशिरासीन्महोज्ज्वलः ॥ ४१ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ तेजोराशिं महादिव्यं हिमाचलमिवापरम् ॥ ४२ ॥ पश्यतां तत्र देवानां तेजः पुञ्जसमुद्भवा ॥ बभूवातिवरा नारी सुंदरी विस्मय प्रदा ॥ ॥ ४३ ॥ त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः सर्वदेवशरीरजा ॥ अष्टादशभुजा रम्या त्रिवर्णा विश्वमोहिनी ॥ ४४ ॥

था, अतएव वह विचित्रवर्ण था ॥ ३९ ॥ कुबेर यम अग्नि और वरुणके शरीरसे एक बारही महत् तेजःपुञ्ज प्रादुर्भूत हुआ ॥ ४० ॥ और अन्यान्य देवता ओंके शरीरसे भी अत्यंत भास्वर (प्रकाशमान) तेज निकला उसकाल उस महातेजका समूह मिलकर अति उज्ज्वल होगया ॥ ४१ ॥ दूसरे हिमाचलके समान वह महान् दिव्य तेजोराशि देखकर विष्णु इत्यादि सम्पूर्ण देवतालोग विस्मित हुए ॥ ४२ ॥ देवता इकटक नेत्रोंसे देख रहे थे, इसी अवसरमें उस तजःपुंजसे एक अद्वितीय सुन्दरी स्त्रीने उत्पन्न होकर उनको आश्चर्य उत्पन्न किया ॥ ४३ ॥ सब देवताओंके शरीरसे जो त्रिगुण रमणीय शक्ति उत्पन्न हुई वह साक्षात् महालक्ष्मी थीं. उन त्रिवर्णधारिणी विश्वमोहिनीके अठारह बाहु ॥ ४४ ॥

दे. भा. मुखमण्डल श्वेतवर्ण नयन कृष्णवर्ण अधरपल्लव रक्तवर्ण और हथेली ताम्रवर्ण थीं। उन्होंने दिव्य भूषणोंसे भूषित होकर मनोहर कांति धारण की थी
॥२३॥ ॥ ४५ ॥ देवी परा शक्तिके हजार बाहु होनेपर भी इस समय वह असुरोंको मारनेके लिये तेजोराशिसे अठारह ही भुजायुक्त होकर प्रगट हुई ॥ ४६ ॥
जनमेजयने कहा हे मुनिसत्तम कृष्ण! आप सब प्रकार सौभाग्यसे परिपूर्ण और सर्वज्ञ हैं अतएव आपसे कोई बात छिपी नहीं है इस कारण उनके
शरीरकी उत्पत्तिका विषय विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ ४७ ॥ हे देव! सब देवताओंका तेज क्या इकट्ठा हुआ था? अथवा पृथक् पृथक् था और
उसके सब अंग क्या तेजोमय हुए थे? ॥ ४८ ॥ मुख नासिका नेत्र इत्यादि सब अंग क्या पृथक् २ तेजके विभागसे वा संपूर्ण तेजके मिलित होनेसे उत्पन्न

श्वेतानना कृष्णनेत्रा संरक्ताधरपल्लवा ॥ ताम्रपाणितला कांता दिव्यभूषणभूषिता ॥ ४५ ॥ अष्टादशभुजा देवी सहस्रभुजमंडिता ॥ संभू
ताऽसुरनाशाय तेजोराशिसमुद्भवा ॥ ४६ ॥ जनमेजय उवाच ॥ कृष्ण देव महाभाग सर्वज्ञ मुनिसत्तम ॥ विस्तारं ब्रूहि तस्यास्त्वं शरीरस्य
समुद्भवम् ॥ ४७ ॥ एकीभूतं च सर्वेषां तेजः किं वा पृथक्स्थितम् ॥ अंगानि चैव तस्यातु सर्वतेजोमयानि वा ॥ ४८ ॥ भिन्नभागविभा
गेन जातान्यंगानि यानि तु ॥ मुखनासाऽक्षिभेदेन सर्वत्रैकभवानि च ॥ ४९ ॥ ब्रूहि तद्विस्तरं व्यास शरीरांगसमुद्भवम् ॥ बभूव यस्य
देवस्य तेजसोऽगं यदद्भुतम् ॥ ५० ॥ आयुधाऽऽभरणादीनि दत्तानि यैर्यथा यथा ॥ तत्सर्वं श्रोतुकामोऽस्मि त्वन्मुखांबुजनिर्गतम्
॥ ५१ ॥ नहि तृप्याम्यहं ब्रह्मन्सुधामयरसं पिबन् ॥ चरितं च महालक्ष्म्यास्त्वन्मुखांभोजनिःसृतम् ॥ ५२ ॥ सूत उवाच ॥ इति तस्य
वचः श्रुत्वा राज्ञः सत्यवतीसुतः ॥ उवाच ॥ मधुरं वाक्यं प्रीणयन्निव भूपतिम् ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्महाभाग विस्तरेण
ब्रवीमि ते ॥ यथामति कुरुश्रेष्ठ तस्या देह समुद्भवम् ॥ ५४ ॥

हुए थे? ॥ ४९ ॥ शरीर और अंगकी उत्पत्ति विस्तार सहित कहिये और जिस जिस देवताओंके तेजसे अंशसे जो जो अंग उत्पन्न हुए थे, यह भी कहिये
॥ ५० ॥ देवताओंने उसके अंगमें जो जो आभरण और आयुध दिया था, आपके मुखकमलसे उस वृत्तान्तके सुननेकी अत्यन्त इच्छा है ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन्!
भा. टी. पं. मैं आपके मुखकमलसे निकला हुआ महालक्ष्मीका चरित्ररूप सुधामय रसपान करके तृप्तिलाभ नहीं कर सकता ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले सत्यवती तनय
अ. ८ श्रीवेदव्यासजी राजाके यह वचन सुन उनको मधुरवचनोंसे प्रसन्न करके कहने लगे ॥ ५३ ॥ हे कुरुवर! आप अति भाग्यवान् हैं, नहीं तो आपकी इस
प्रकार प्रवृत्ति क्यों होती? इस कारण आपकी बुद्धिके अनुसार विस्तारपूर्वक उनके देहकी उत्पत्तिका विषय तुमसे कहता हूं सुनो ॥ ५४ ॥

साक्षात् रुद्र, क्या ब्रह्मा, क्या हरि, क्या इंद्र, कभी यथा योग्य उनके रूपका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ५५ ॥ तुमसे पहिलेही कहा है कि, वचनके आरंभ मात्रमें ही वह उत्पन्न हुई इस निमित्तदेवीका रूप वा सादृश्यका विषय किस प्रकार जान सकता हूं ॥५६॥ वह नित्या हैं अतएव सदा ही सत्स्वरूप हैं, वह एक रूपा होकर भी देवताओंका भारी कार्यसिद्ध करनेके लिये अनेक रूप धारण करती हैं ॥ ५७ ॥ स्वभावतः नटका रूपएक होनेपर भी वह जिस प्रकार मनुष्योंका चित्त प्रसन्न करनेके निमित्त अनेक रूपमें दिखाई देता है इसी प्रकार स्वभावसे एक रूप होकर ॥ ५८ ॥ यह निर्गुणा देवी अरूपा होकर देवताओंका कार्य संपादन करनेको अपनी लीलासे सत्वादिगुणयुक्त अनेक रूप धारण करती हैं ॥ ५९ ॥ कहीं कार्यके अनुसार कहीं कर्मानुसार धातुका अर्थ

न ब्रह्मा न हरिः साक्षान्न रुद्रो न च वासवः ॥ याथातथ्येन तद्रूपं वक्तुमीशः कदाचन ।५५॥ कथं जानाम्यहं देव्या यद्रूपं यादृशं यतः ॥ वाचारंभणमात्रं तदुत्पन्नेति ब्रवीमि यत् ॥ ५६ ॥ सा नित्या सर्वदैवास्ते देवकार्यार्थसिद्धये नानारूपा त्वेकरूपा जायते कार्यगौरवात् ॥ ५७ ॥ यथा नटोरंगगतो नानारूपो भवत्यसौ ॥ एकरूपस्वभावोऽपि लोकरंजनहेतवे ॥५८॥ तथैषा देवकार्यार्थमरूपाऽपि स्वली लया ॥ करोति बहुरूपाणि निर्गुणा सगुणानि च ॥ ५९ ॥ कार्यकर्माऽनुसारेण नामानि प्रभवंति हि ॥ धात्वर्थगुणयु क्तानि गौणानि सुबहून्यपि ॥ ६० ॥ तद्वै बुद्धयनुसारेण प्रब्रवीमि नराधिप ॥ यथा तेजःसमुद्भूतं रूपं तस्या मनोहरम् ॥ ६१ ॥ शंकरस्य च यत्तेजस्तेन तन्मुखपकजम् ॥ श्वेतवर्णं शुभाकारमजायत महत्तरम् ॥ ६२ ॥ केशास्तस्यास्तथास्निग्धा याम्येन तेजसाऽभवन्॥ वक्राग्राश्चातिदीर्घा वै मेघवर्णा मनोहराः ॥ ६३ ॥ नयनत्रितयं तस्या जज्ञे पावकतेजसा॥कृष्णं रक्तं तथा श्वेतं वर्णत्रयविभूषितम् ॥ ६४ ॥ वक्रे स्निग्धे कृष्ण वर्णे संध्ययोस्तेजसा भ्रुवौ ॥ जाते देव्याः सुतेजस्के कामस्य धनुषीव ते ॥ ६५ ॥

और गुणयुक्त मुख्य तथा गौण उनके अनेक नाम होते हैं ॥ ६० ॥ इस कारण हे नराधिप ! तेजसे जिस प्रकार उनका मनोहर रूप प्रगट हुआ था, मैं अपने आज्ञानुसार आपके निकट उसीका वर्णन करता हूं ॥ ६१ ॥ शंकरके तेजसे उनका विमल श्वेतवर्ण और मनोहर मुखकमल उत्पन्न हुआ था ॥ ६२ ॥ उनके चिकने केश यमके तेजसे उत्पन्न हुए, यह केश जानुपर्यन्त लम्बित कुटिलाग्र कृष्णवर्ण और मनोहर थे ॥ ६३ ॥ उनके तीनों नेत्र पावकके तेजसे उत्पन्न थे. उन सबके तारा कृष्णवर्ण, मध्यस्थल श्वेतवर्ण और प्रान्तभाग रक्तवर्णका था ॥ ६४ ॥ देवीकी कृष्णवर्ण दोनों भौंहें दोनों संध्याओंके तेजसे उत्पन्न हुई थीं. ये दोनों भौंहें चिकनी, वक्र और कामकार्मुकके समान तेजस्कर थीं ॥ ६५ ॥

वायुके तेजसे उनके दोनों कान उत्पन्न हुए. बहुत बड़े और बहुत छोटे भी नहीं थे. कामदेवके दोला [तराजुके पल्ले] के समान अत्यन्त मनोहर थे ॥ ६६ ॥ धनदके तेजसे उनकी नासिका उत्पन्न हुई. वह तिलकुसुमके समान स्निग्धवर्ण और अत्यन्त मनोरम थी ॥ ६७ ॥ हे राजन्! उनके सब दांत दक्षादिके तेजसे उत्पन्न हुए. वह कुन्दकुसुमके समान श्रेणीबद्ध. मसृण (चिकने) और द्युतिशाली थे ॥ ६८ ॥ उनके अत्यन्त रक्तवर्ण अधर अरुणके तेजसे और मनोहर ओष्ठ कार्तिकके तेजसे उत्पन्न हुए ॥ ६९ ॥ उनकी अठारह बाहु विष्णुके तेजसे और रक्तवर्ण सब अंगुलियें वसुगणोंके तेजसे उत्पन्न हुईं ॥ ७० ॥ उनके उत्तम दोनों स्तन सोमके तेजसे और त्रिवलीयुक्त मध्यस्थल इन्द्रके तेजसे उत्पन्न हुआ ॥ ७१ ॥ उनकी जंघा और दोनों ऊरु वरुणके

वायोश्च तेजसा शस्तौ श्रवणौ संबभूवतुः नाऽतिह्रस्वौ दोलाविव मनोभुवः ॥ ६६ ॥ तिलपुष्पसमाकारा नासिका सुमनोहरा ॥ संजाता स्निग्धवर्णा वै धनदस्य च तेजसा ॥ ६७ ॥ दंताः शिखरिणःश्लक्ष्णाः कुंदाग्रसदृशाः समाः ॥ संजाताः सुप्रभा राजन्प्राजापत्येन तेजसा ॥ ६८ ॥ अधरश्चातिरक्तोऽस्याः संजातोऽरुणतेजसा ॥ उत्तरोष्ठस्तथा रम्यः कार्तिकेयस्य तेजसा ॥ ६९ ॥ अष्टादशभुजाकारा बाहवो विष्णुतेजसा ॥ वसूनां तेजसांऽगुल्यो रक्तवर्णास्तथाऽभवन् ॥ ७० ॥ सौम्येन तेजसा जातं स्तनयोर्युग्ममुत्तमम् ॥ ऐंद्रेणास्यास्तथा मध्यं जातं त्रिवलिसंयुतम् ॥ ७१ ॥ जंघोरू वरुणस्याऽथ तेजसा संबभूवतुः ॥ स तु संजातो विपुलस्तेजसा भुवः ॥ ७२ ॥ एवं नारी शुभाकारा सुरूपा सुस्वरा भृशम् ॥ समुत्पन्ना तथा राजंस्तेजोराशिसमुद्भवा ॥ ७३ ॥ तां दृष्ट्वा सुष्ठुसर्वांगीं सुदतीं चारुलोचनाम् ॥ मुदं प्रापुः सुराः सर्वे महिषेण प्रपीडिताः ॥७४॥ विष्णुस्त्वाह सुरान्सर्वान्भूषणान्यायुधानि च ॥ प्रयच्छंतु शुभान्यस्यै देवाः सर्वाणिसांप्रतम् ॥ ७५ ॥ स्वायुधेभ्यः समुत्पाद्य तेजोयुक्तानि सत्वराः ॥ समर्पयंतु सर्वेऽद्य देव्यै नानाऽऽयुधानि वै ॥ ७६ ॥

तेजसे और विपुल नितम्ब पृथ्वीके तेजसे उत्पन्न हुए ॥ ७२ ॥ हे राजन्! इस प्रकार देवताओंके तेजः पुंजसे यह नारी उत्पन्न हुई. उनके सब अंग सुंदर, रूप अनुपम और स्वर अतीव मधुरता ॥ ७३ ॥ अधिक क्या ? उस चारुलोचनाके सभी अवयव मनोहर थे; महिषासुरसे पीडित देवता उस शोभना देवीको देखकर हर्षित हुए ॥ ७४ ॥ उस समय विष्णुने देवताओंसे कहा हे देवताओ ! तुम इनको शुभदायक सब आयुध और आभरण प्रदान करो ॥ ७५ ॥ तुम सब अभी अपने अपने आयुधसे तेजःसंपन्न अनेक आयुध उत्पन्न करके देवीको समर्पण करो ॥ ७६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले देवता विष्णुके वचन सुन संतुष्ट हो तत्काल भूषण, वस्त्र और अपने अपने आयुध देने लगे ॥ १ ॥ क्षीरोद समुद्रने प्रसन्न होकर उनको सुसज्जित विमल हार और अक्षय सूक्ष्म रक्तवर्ण दिव्य दो वस्त्र दिये ॥ २ ॥ विश्वकर्माने प्रसन्नचित्त होकर उनको मस्तकमें करोड सूर्यके समान प्रभावशाली दिव्य चूडामणी, कर्णमें शुभ्रवर्ण कुंडल, हाथमें वलय (कण) केयूर (बाजूबंद) और अनेक प्रकारके रत्नसे खचित कंकण ॥ ३ ॥ ४ ॥ तथा सुंदर परोंमें शब्दायमान रत्न भूषित विमल कांति, सूर्यके समान उज्ज्वल, दो नूपुर दिये ॥ ५ ॥ महार्णवके समान अगाध बुद्धिशाली उस सुरशिल्पीने उनको रमणीय ग्रीवाभूषण और परमज्योतिर्मय रत्नखचित उत्तम उत्तम सब अंगु

इति श्रीदे० म० पंचमस्कंन्धे देवीमाहात्म्ये स्वरूपोद्भवो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ देवा विष्णुवचः श्रुत्वा सर्वे प्रमुदितास्तदा ॥ ददुश्च भूषणान्याशु वस्त्राणि स्वायुधानि च ॥ १ ॥ क्षीरोदश्चांबरे दिव्ये रक्ते सूक्ष्मे तथाऽजरे ॥ निर्मलं च तथा हारं प्रीतस्तस्यै सुमंडितम् ॥ २ ॥ ददौ चूडामणिं दिव्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ कुंडले च तथा शुभ्रे कटकानि भुजेषु वै ॥ ३ ॥ केयूरान्कंकणान्दिव्यान्नानारत्नविराजितान् ॥ ददौ तस्यै विश्वकर्मा प्रसन्नेंद्रियमानसः॥४॥ नूपुरौ सुस्वरौ कांतौ निर्मलौ रत्नभूषितौ ॥ ददौ सूर्यप्रतीकाशौ त्वष्टा तस्यै सुपादयोः ॥ ५ ॥ तथा ग्रैवेयकं रम्यं ददौ तस्यै महार्णवः ॥ अंगुलीयकरत्नानि तेजोवंति च सर्वशः ॥६॥ अम्लानपंकजां मालां गंधाढ्यां भ्रमराऽनुगाम् ॥ तथैव वैजयन्तीं च वरुणः संप्रयच्छत ॥ ७ ॥ हिमवानथ संतुष्टो रत्नानि विविधानि च ॥ ददौ च वाहनं सिंहं कनकाभं मनोहरम् ॥ ८ ॥ भूषणैर्भूषिता दिव्यः सा रराज वरा शुभा ॥ सिंहारूढा वरारोहा सर्वलक्षणसंयुता ॥ ९ ॥ विष्णुश्चक्रात्समुत्पाद्य ददावस्यै रथांगकम् ॥ सहस्रारं सुदीप्तं च देवारिशिरसां हरम् ॥ १० ॥

लीयक, (अँगूठी) प्रदान किये ॥ ६ ॥ जो कमल किसी समय भी नहीं कुँभलाते गंधमें भरकर अंध हो भौंरे जिसका अनुगमन करते हैं. वरुणने वही कमलमाला और वैजयन्ती माला अर्पण करी ॥ ७ ॥ हिमवानने संतुष्ट होकर उनको नानाविध रत्न और सवारीके लिये कनकवर्ण मनोहर सिंह प्रदान किया ॥ ८ ॥ उसकाल वह वरारोहा सर्व लक्षण संपन्ना प्रधाना कल्याण दायिनी कामिनी दिव्य भूषणोंसे भूषित होकर सिंहके ऊपर शोभा पाने लगी ॥ ९ ॥ उस समय विष्णुने भी अपने चक्रसे अपर एक असुरशिरोहर सहस्रार तेजोमय चक्र उत्पन्न करके उनको दिया ॥ १० ॥

शंकरने अपने शूलसे देवताओंका भयनाशक और असुरनाशक एक उत्तम शूल उत्पन्न करके देवीको दिया ॥ ११ ॥ वरुणने प्रसन्नचित्त हो अपने शंखसे मंगलमय घोररव अति उज्ज्वल शंख उत्पन्न करके उनको दिया ॥ १२ ॥ जो शतघ्नी शक्ति यमके समान अत्यन्त वेगसे दैत्योंका विनाश करती है. हुताशनने प्रसन्नचित्तसे उनको वही शक्ति दी ॥ १३ ॥ जो अति कठिनतासे खैंचाजाय और जिसका शब्द अत्यन्त कठोर है. ऐसा अद्भुत दर्शन चाप और बाणपूर्ण तरकस अमरप्रवर मारुतने उनको दिया ॥ १४ ॥ इन्द्रने अपने वज्रसे अतिदारुण वज्र उत्पन्न करके और ऐरावतसे शब्दायमान घंटा लेकर तत्काल उनको दिया ॥ १५ ॥ कालपूर्ण होनेपर जिस दण्डसे सब भूतोंका विनाश करते हैं, यमके उसी कालदंडसे मनोहर दण्ड उत्पन्न करके उनको

स्वत्रिशूलात्समुत्पाद्य शंकरः शूलमुत्तमम् ॥ ददौ देव्यै सुरारीणां कृन्तनं भयनाशनम् ॥ ११ ॥ वरुणश्च प्रसन्नात्मा ददौ शंखं समुज्ज्वलम् ॥ घोषवंतं स्वशंखात्तु समुत्पाद्य सुमंगलम् ॥१२॥ हुताशनस्तथा शक्तिं शतघ्नीं सुमनोजवाम् ॥ प्रायच्छत्तु प्रसन्नात्मा तस्यै दैत्यविनाशिनीम् ॥ १३ ॥ इषुधिं बाणपूर्णं च चापं चाद्भुतदर्शनम् ॥ मारुतो दत्तवांस्तस्यै दुराकर्षं खरस्वरम् ॥ १४ ॥ स्ववज्राद्वज्रमुत्पाद्य ददाविंद्रोऽतिदारुणम् ॥ घंटामैरावतात्तूर्णं सुशब्दां चातिसुंदराम् ॥ १५ ॥ ददौ दंडं यमः कामं कालदंडसमुद्भवम् ॥ येनांतं सर्वभूतानामकरोत्काल आगते ॥१६ ॥ ब्रह्मा कमंडलुं दिव्यं गंगावारिप्रपूरितम् ॥ ददावस्यै मुदा युक्तो वरुणः पाशमेव च ॥१७॥ कालः खड्गं तथा चर्म प्रायच्छत्तु नराधिप ॥ परशुं विश्वकर्मा च तीक्ष्णमस्यै ददावथ ॥ १८ ॥ धनदस्तु सुरापूर्णं पानपात्रं सुवर्णजम् ॥ पंकजं वरुणश्चादाद्देव्यै दिव्यं मनोहरम् ॥ १९ ॥ गदां कौमोदकीं त्वष्टा घंटाशतनिनादिनीम् ॥ अदात्तस्यै प्रसन्नात्मा सुरशत्रुविनाशिनीम् ॥ २० ॥ अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाऽभेद्यं च दंशनम् ॥ ददौ त्वष्टा जगन्मात्रे निजरश्मीन्दिवाकरः ॥ २१ ॥

दिया ॥ १६ ॥ ब्रह्माजीने हर्षमें भरकर गंगाजलपूर्ण दिव्य कमण्डलु और वरुणने शाप दिया ॥१७॥ हे नराधिप! कालने खड्ग और चर्म व विश्वकर्माने उनको तीक्ष्ण परशु दिया ॥१८॥ धनपतिने सुवर्णमय सुरापूर्ण पान पात्र, और वरुणने दिव्य मनोहर पंकज अर्पण किया ॥ १९ ॥ जिसमें शत शत घंटा लगे हुए और जो देवताओंके शत्रुओंका विनाश करती है, विश्वकर्माने प्रसन्न होकर वही कौमोदकी गदा ॥ २० ॥ अभेद्य कवच और अनेक प्रकारके सब अस्त्र उनको दिये. दिवाकरने जगन्माताको अपनी रश्मिप्रदान की ॥ २१ ॥

आयुध और अलंकारोंसे उनको भूषित देखकर देवता विस्मित भावसे उन त्रैलोक्य मोहिनी शिवा देवीका स्तव करने लगे ॥ २२ ॥ देवता बोले हे देवि ! तुम शिवा और कल्याणी हो, तुमको नमस्कार है तुम्हीं शान्ति और पुष्टि हो, तुमको वारंवार नमस्कार करते हैं. तुम्हीं देवी भगवती और रुद्राणी हो, हम तुमको सर्वदा नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ तुम्हीं कालरात्रि, तुम्हीं इन्द्राणी, तुम्हीं अम्बा हो,तुमको वारंवार प्रणाम करते हैं, तुम्हीं सिद्धि, तुम बुद्धि, तुम्हीं वृद्धि, और तुम्हीं वैष्णवी हो, तुमको हम वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ २४ ॥ जो पृथ्वीके अन्तरमें वास करती हैं, किन्तु वो भी पृथ्वी जिनको नहीं जान सकती, और पृथ्वीके अन्तर रहकर जो अपना कार्य होनेसे उसको नियमित करती है, उन्हींपर देवता ईश्वरीकी वन्दना करते हैं ॥ २५ ॥ जो मायामें

सायुधां भूषणैर्युक्तां दृष्ट्वा ते विस्मयं गताः ॥ तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं त्रैलोक्यमोहिनीं शिवाम् ॥ २२ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमः शिवायै कल्याण्यै शांतये पुष्टयै नमो नमः ॥ भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः ॥ २३ ॥ कालरात्र्यै तथांऽबाया इंद्राण्यै ते नमो नमः ॥ सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः ॥२४॥ पृथिव्यां या स्थिता पृथ्व्या न ज्ञाता पृथिवीं च या ॥ अंतः स्थिता यमयति वंदे तामीश्वरीं पराम् ॥ २५ ॥ मायायां या स्थिता ज्ञाता मायया न च तामजाम् ॥ अंतः स्थिता प्रेरयति प्रेरयित्रीं नमः शिवाम् ॥ २६ ॥ कल्याणं कुरु भो मातस्त्राहि नः शत्रुतापितान् ॥ जहि पापं हयारिं त्वं तेजसा स्वेन मोहितम् ॥ २७ ॥ खलं मयाविनं घोरं स्त्रीवध्यं वरदर्पितम् ॥ दुःखदं सर्वदेवानां नानारूपधरं शठम् ॥ २८ ॥ त्वमेका सर्वदेवानां शरणं भक्तवत्सले ॥ पीडितान्दातानवेनाद्य त्राहि देवि नमोऽस्तुते ॥ २९ ॥

वास करती हैं, तो भी माया जिनको नहीं जानती, किन्तु मायाके अन्तरवर्तिनी होकर जो उस अजा [अजन्मा] को कार्यमें नियुक्त करती हैं उन्हीं प्रेरयित्री शिवाको हम नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ हे मातः ! तुम कल्याण करो, हम शत्रुसे पीडित हुए हैं, अतएव हमारी रक्षा करो, तुम अपने तेजके प्रभावसे मोहित करके पापी महिषका संहार करो ॥ २७ ॥ वह स्त्रीवध्य खल, शठ, भयंकर और वरदर्पित है और मायासे अनेक रूप धारण करके सब देवताओंको क्लेश देता है ॥ २८ ॥ हे भक्तवत्सले ! सब देवताओंकी तुम्हीं एक मात्र आश्रय स्थान हो, हे देवि ! हम इस दानवसे पीडित हैं. अतएव इस समय तुम हमारी रक्षा करो, हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥ २९ ॥

व्यासजी बोले जब देवताओंने देवीका इस प्रकार स्तव किया, तब सर्व सुखदात्री महादेवी हँसते हँसते उनसे मंगलमय वचन कहने लगीं ॥ ३० ॥ हे देवताओ ! मन्दमति महिषको मोहित करके अभी समरमें संहार करूंगी ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले देवी देवताओंसे इस प्रकार कहकर मधुर स्वरसे हँसने लगीं. हे राजन् ! जगत् भ्रम और मोहसे पूर्ण है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और इन्द्र इत्यादि अन्यान्य देवता महिषके भयसे त्रसित होकर कांपते हैं संसारमें यह अत्याश्चर्यका विषय है ॥ ३३ ॥ क्या आश्चर्य है, दैवबल अति भयंकर है और वह सुरसत्तम गणोंको भी दुरतिक्रमणीय है. हे राजन् ! काल ही सुखका प्रभु और दुःखका कर्ता है अतएव वही ईश्वर है ॥ ३४ ॥ क्योंकि. जो सृष्टि, स्थिति और संहार कर सकते हैं. वे भी महिषसे पीडित

व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी सुरैः सर्वसुखप्रदा ॥ तानुवाच महादेवी स्मितपूर्वं शुभं वचः ॥ ३० ॥ देव्युवाच ॥ भयं त्यजंतु गीर्वाणा महिषान्मंदचेतसः ॥ हनिष्यामि रणेऽद्यैव वरदृप्तं विमोहितम् ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा सुरान्देवी जहासातीव सुस्वरम् ॥ चित्रमेतच्च संसारे भ्रममोहयुतं जगत् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सेंद्राश्चान्ये सुरास्तथा ॥ कंपयुक्ता भयत्रस्ता वर्तंते महिषात्किल ॥ ३३ ॥ अहो दैवबलं घोरं दुर्जयं सुरसत्तमाः ॥ कालः कर्ताऽस्ति दुःखानां सुखान प्रभुरीश्वरः ॥ ३४ ॥ सृष्टिपालनसंहारे समर्था अपि ते यदा ॥ मुह्यंति क्लेशसंतप्ता महिषेण प्रपीडिताः ॥३५॥ इति कृत्वा स्मितं देवी साट्टहासं चकार ह ॥ उच्चैः शब्दं महाघोरं दानवानां भयप्रदम् ॥ ३६ ॥ चकंपे वसुधा तत्र श्रुत्वा तच्छब्दमद्भुतम् ॥ चेलुश्च पर्वताः सर्वे चुक्षोभाब्धिश्च वीर्यवान् ॥ ३७ ॥ मेरुश्चचाल शब्देन दिशः सर्वाः प्रपूरिताः ॥ भयं जग्मुस्तदा श्रुत्वा दानवास्तं स्वनं महत् ॥ ३८ ॥ जय पाहीति देवास्तामूचुः परमहर्षिताः ॥ महिषोऽपि स्वनं श्रुत्वा चुकोप मदगर्वितः ॥ ३९ ॥

होकर क्लेश संतापमे मोहित हुए ॥ ३५ ॥ देवी इस प्रकार जान कुछेक हँसती हुई अत्यन्त उच्च शब्दसे अट्टहास करने लगीं, उस महाघोर शब्दसे दानवोंको भय उपस्थित हुआ ॥३६॥ उस समय उस अद्भुत शब्दको सुनकर पृथ्वी कंपित, पर्वत चञ्चल और वीर्यवान् अक्षोभ्य समुद्र भी क्षुभित हुआ ॥३७॥ अधिक क्या इस शब्दसे सब दिशायें पूर्ण और मेरु पर्वत भी चलायमान हुआ, तब दानव उस महत् शब्दको सुनकर अत्यन्त भीत हुए ॥ ३८ ॥ देवताओंने अत्यन्त हर्षितचित्त होकर देवीसे कहा, हे देवि ! आपकी जय हो आप हमारी रक्षा कीजिये मदगर्वित महिष भी यह शब्द सुनकर कुपित हुआ ॥ ३९ ॥

महिषने शब्द सुन शंकित हो दैत्योंसे पूंछा हे दूतो ! तुम शब्द उत्पत्तिका कारण जाननेके लिये शीघ्र जाओ ॥ ४० ॥ कानोंको क्लेशकर यह भयंकर शब्द किसने किया ? देव दानव वा जो कोई शब्द करता हो ॥ ४१ ॥ तुम उस दुरात्माको लेकर मेरे निकट आओ मैं अहंकारसे मत्त गर्जन कारी इस दुराचारीका संहार करूंगा ॥ ४२ ॥ क्षीण आयु उस मंदमतिको नष्ट करूंगा देवता पराजित होकर भयार्त हुए हैं इस कारण वह कभी गर्जन नहीं करेंगे ॥ ४३ ॥ और असुर तो हमारे वशीभूत हैं अतएव वह भी गर्जना नहीं कर सकते तो फिर यह मूढके समान किसका कार्य है ? तुम अभी शब्दका कारण जानकर मेरे निकट आओ ॥ ४४ फिर मैं जाकर उस वृथा शब्दकारी पापमतिका संहार करूंगा. व्यासजी बोले महिषके यह वचन सुनते ही दूतोंने

किमेतदिति तान्दैत्यान्पप्रच्छ स्वन शंकितः ॥ गच्छंतु त्वरिता दूता ज्ञातुं शब्दसमुद्भवम् ॥ ४० ॥ कृतः केनायमत्युग्रः शब्दःकर्णव्यथाकरः ॥ देवो वा दानवो वाऽपि यो भवेत्स्वनकारकः ॥ ४१ ॥ गृहीत्वा तं दुरात्मानं मत्समीपं नयंत्विह ॥ हनिष्यामि दुराचारं गर्जंतं स्मय दुर्मदम् ॥ ४२ ॥ क्षीणायुष्यं मंदमतिं नयामि यमसादनम् ॥ पराजिताः सुराः कामं गर्जंति भयातुराः ॥ ४३ ॥ नासुरा मम वश्यास्ते कस्येदं मूडचष्टितम् ॥ त्वरिता मामुपायांतु ज्ञात्वा शब्दस्य कारणम् ॥ ४४ ॥ अहं गत्वा हनिष्यामि तं पापं वितथश्रमम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तास्तेन ते दूता देविं सर्वांगसुन्दरीम् ॥ ४५ ॥ अष्टादशभुजां दिव्यां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नां वरायुधधरां शुभाम् ॥ ४६ ॥ दधतीं चषकं हस्ते पिबंती च मुहुर्मधु ॥ संविक्ष्य भयभीतास्ते जग्मुस्त्रस्ताः सुशंकिताः ॥ ४७ ॥ सकाशे महिषस्याशु तमूचुः स्वनकारणम् ॥ दूता ऊचुः ॥ देवी दैत्येश्वर प्रौढा दृश्यते काचिदंगना ॥ ४८ ॥ सर्वांगभूषणा नारी सर्वरत्नोपशोभिता ॥ न मानुषी नासुरी सा दिव्यरूपा मनोहरा ॥ ४९ ॥

देवीके समीप जाकर देखा कि ॥ ४५ ॥ उनके सब अंग सुन्दर, बाहु अठारह, सब अवयव अनेक प्रकारके गहनोंसे विभूषित, शरीरमें सर्व सुलक्षण देदीप्यमान और हाथोंमें उत्तम अस्त्र है ॥ ४६ ॥ वह शुभप्रदा मनोरमा देवी हाथमें चषक [पानपात्र] लेकर वारंवार मधुपान करती हैं, उन्होंने देवीका इस प्रकार रूप देख भीत हो शंकित चित्तसे तत्काल भाग ॥ ४७ ॥ महिषासुरके समीप जाय शब्दका कारण कहा. दैत्योंने कहा हे दैत्येश्वर ! हमने एक प्रौढा अपरिचिता अङ्गनाको देखा ॥ ४८ ॥ उस देवीके सब अङ्ग गहनोंसे भूषित और रत्नोंसे सुसज्जित हैं, वह नारी मानुषी वा आसुरी नहीं है किन्तु उसका रूप अलौकिक और मनोहर है ॥ ४९ ॥

वह प्रधाना नारी सिंहके ऊपर चढी अठारह भुजाओंमें आयुध धारण किये गर्जना कर रही है, वह सुरापानमें रत है, अतएव वह मदगर्विता बोध होती है ॥ ५० ॥ हमको निश्चय बोध होता है कि उसका स्वामी नहीं है. देवता आकाशमें टिके हुए हर्षसहित यह कहकर उसका स्तव करते हैं. ॥ ५१ ॥ कि तुम्हारी जय हो, तुम शत्रुका संहार करके हमारी रक्षा करो. हे प्रभो ! वह वरारोहा सुंदरी कौन है ? किसकी पत्नी है ? ॥ ५२ ॥ किस कारण यहां, आई है ? और उसकी अभिलाषा क्या है ? यह हम कुछ नहीं जानते. शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र और अद्भुत रस उसमें देदीप्यमान् हैं ! अतएव हम उसके तेजप्रभावसे पीडित होकर उसके देखनेमें भी समर्थ नहीं हुए, हे महाराज ! ऐसी नारीको देखतेही हम आपकी आज्ञानुसार बातचीत न करके लौट आये

सिंहारूढाऽऽयुधधरा चाष्टादशकरा वरा ॥ सा नादं कुरुते नारी लक्ष्यते मदगर्विता ॥ ५० ॥ सुरापानरता कामं जानीमो न सभर्तृका ॥ अंतरिक्षस्थिता देवास्तां स्तुवंति मुदान्विताः ॥ ५१ ॥ जयेति पाहि नश्चेति जहि शत्रुमिति प्रभो ॥ न जाने का वरारोहा कस्य वा सा परिग्रहः ॥ ५२ ॥ किमर्थमागता चात्र किं चिकीर्षति सुंदरी ॥ द्रष्टुं नैव समर्थाः स्मस्तत्तेजः परिधर्षिताः ॥५३॥ शृङ्गारवीरहासाढ्या रौद्राद्भुतरसान्विता ॥ दृष्ट्वैवैवंविधां नारीमसंभाष्य समागताः ॥५४॥ वयं त्वदाज्ञयाराजन्किं कर्तव्यमतः परम् ॥ महिष उवाच ॥ गच्छ वीर मयाऽऽदिष्टो मंत्रिश्रेष्ठ बलान्वितः ॥ ५५ ॥ सामादिभिरुपायैस्त्वं समानय शुभाननाम् नायाति यदि सा नारी त्रिभिः सामादिभिस्त्विह ॥ ५६ ॥ अहत्वा तां वरारोहां त्वमानय समांतिकम् ॥ करोमि पट्टमहिषीं तां मरालभ्रुवं मुदा ॥ ५७ ॥ प्रीतियुक्ता समायाति यदि सा मृगलोचना ॥ रसभंगो यथा न स्यात्तथाकुरु ममेप्सितम् ॥ ५८ ॥ श्रवणान्मोहितोऽस्म्यद्य तस्या रूपस्य संपदा ॥ व्यास उवाच ॥ महिषस्य वचः श्रुत्वा पेशलं मंत्रिसत्तमः ॥ ५९ ॥

हैं ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ अब क्या करें ? सो आज्ञा दीजिये. महिषने कहा हे मंत्रिश्रेष्ठ वीर ! मेरी आज्ञासे तुम सेनासहित जाकर ॥ ५५ ॥ सामादि उपायसे उस चन्द्रबदनाको मेरे निकट लाओ. साम, दान, भेद इन तीन उपायोंसे वह नारी यदि यहां न आवे ॥ ५६ ॥ तो वरारोहाका जिससे जीवन नष्ट न हो, ऐसा दंड देकर उसको मेरे समीप ले आओ मैं उस कुटिलकेशी रमणीको हर्षसहित पटरानी करूंगा ॥ ५७ ॥ यदि वह मृग लोचना प्रीतिसहित चली आवे तो जिससे रसभंग न हो, तदनुसार मेरा अभिलाषित कार्य करो ॥ ५८ ॥ मैं उसके सौन्दर्य संपदूका विषय सुनकर मोहित हुआ हूं, व्यासजी बोले मंत्रिसत्तम महिषके उत्तम वचन सुन ॥ ५९ ॥

हाथी, घोड़ेऔर रथ लेकर शीघ्र अभिलाषित स्थानमें गये. मंत्री देवीके समीपउपस्थित हो दूरसे ही ॥ ६० ॥ विनयावनत वचन द्वारा उनसे मधुर वचन कहने लगा. प्रधानने कहा हे मधुरालापे ! तुम कौन हो ! तुम्हारे यहां आनेका क्या कारण है ? ॥ ६१ ॥ हे महाभागे ! मेरे प्रभुने मेरे मुखद्वारा तुमसे यह बात पूछी है, वह सब देवता और मनुष्योंसे अवध्य हैं और सर्वलोकविजयी हैं ॥ ६२ ॥ हे चारुलोचने ! वह बलवान् दैत्येश्वर ब्रह्माके वरदानसे गर्वित हो सदा अपनी इच्छानुसार रूप धारण करते हैं ॥ ६३ ॥ हमारे राजा महिषनामक पृथ्वीप तिने तुम्हारे मनोहर रूप और वेषका वृत्तांत सुनकर तुम्हारे देखनेकी इच्छा की है ॥ ६४ ॥ हे चार्वङ्गी ! वह मनुष्यरूप धारण कर तुम्हारे समीप आवेंगे, अथवा तुम्हारी जैसी इच्छा होगी हम उसीके अनुसार

जगाम तरसा कामं गजाश्वरथसंयुतः ॥ गत्वा दूरतरं स्थित्वा तामुवाच मनस्विनीम् ॥६०॥ विनयावनतः श्लक्ष्णं मंत्री मधुरया गिरा ॥ प्रधान उवाच ॥ काऽसि त्वं मधुरालापे किमत्रागमनं कृतम् ॥ ६१ ॥ पृच्छति त्वां महाभागे मन्मुखेन मम प्रभुः ॥ स जेता सर्वदेवाना मवध्यस्तु नरैः किल ॥ ६२ ॥ ब्रह्मणो वरदानेन गर्वितश्चारुलोचने ॥ दैत्येश्वरोऽसौ बलवान्कामरूपधरः सदा ॥ ६३ ॥ श्रुत्वा त्वां समु पायातां चारुवेषां मनोहराम् ॥ द्रष्टुमिच्छति राजा मे महिषो नाम पार्थिवः ॥ ६४ ॥ मानुषं रूपमादाय त्वत्समीपं समेष्यति ॥ यथा रुच्येत चर्वंगि तथा मन्यामहे वयम् ॥ ६५ ॥ तद्र्वेहि मृगशावाक्षि समीपं तस्य धीमतः ॥ नो चेदिहानयाम्येनं राजानं भक्तितत्परम् ॥ ६६ ॥ तथा करोमि देवेशि यथा ते मनसेप्सितम् ॥ वशगोऽसौ तवात्यर्थं रूपसंश्रवणात्तव ॥ ६७ ॥ करभोरु वदाऽऽशु त्वं संविधेयं मया तथा ॥ ६८ ॥ इति श्रीदे० भा० म० देवीमाहात्म्ये नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य प्रमदो त्तमा ॥ तमुवाच महाराज मेघगंभीरया गिरा ॥ १ ॥

कार्य करेंगे ॥ ६५ ॥ अतएव हे मृगलोचने ! उन बुद्धिमान् महाराजके निकट चलो; यदि तुम न चलोगी तो हम भक्तिपरायण राजाको तुम्हारे पास लावेंगे ॥ ६६ ॥ हे सुरेश्वरी ! तुम्हारे रूपलावण्यका विषय सुनकर राजा तुम्हारे अत्यन्त वशीभूत हुऐ हैं. इस कारण तुम्हारी जैसी इच्छा हो, हम वही करें ॥ ६७ ॥ अतएव हे करभोरु ! तुम्हारी जिस प्रकार इच्छा हो, सो कहो हम उसीके अनुसार शीघ्र कार्य करेंगे ॥६८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! उन प्रमदोत्तमा महामायाने महिषके मंत्रीका इस प्रकार वचन सुन, कुछेक हँस मेघके समान गंभीरवचन द्वारा उससे कहा ॥ १ ॥

हे मंत्रिवर ! मुझको देवताओंकी जननी जानना चाहिये. मेरा नाम महालक्ष्मी है. मैं ही संपूर्ण दैत्योंका संहार करती हूं ॥ २ ॥ दानवपतिने देवताओंको पीडित करके यज्ञभागसे वंचित किया है, इस कारण उन सबने मिलकर महिषासुरका वध करनेके लिये मेरी प्रार्थना की है, ॥ ३ ॥ अतएव हे सचिवसत्तम ! उसका वध करनेमें उद्यत हो सेना संग न लेकर आज अकेलीही इस स्थानमें आई हूं ॥ ४ ॥ हे अनघ ! तुमने जो मेरा सन्मान करके मधुरवचनोंसे आदरपूर्वक स्वागत पूंछा; इससे मैं संतुष्ट हुई हूं ॥ ५ ॥ यदि तुम ऐसा व्यवहार न करते, तो कालाग्निके समान दृष्टिसे तुमको निःसंदेह भस्म कर देती, हे मंत्रिन् ! मीठी बात किसको प्रीतिकर नहीं होती ? ॥ ६ ॥ तुम महिषके निकट जाकर मैंने जो कहा है, वह सब वचन उससे कहो कि, रे पाप ! यदि

देव्युवाच ॥ मन्त्रिवर्य सुराणां वै जननीं विद्धि मां किल ॥ महालक्ष्मीमितिख्यातां सर्वदैत्यनिषूदिनीम् ॥ २ ॥ प्रार्थिताऽहं सुरैः सर्वैर्महिषस्य वधाय च ॥ पीडितैर्दानवेन्द्रेण यज्ञभागबहिष्कृतैः ॥३॥ तस्मादिहागताऽस्म्यद्य तद्वधार्थं कृतोद्यमा ॥ एकाकिनी न सैन्येन संयुता मंत्रिसत्तम ॥ ४ ॥ यत्त्वयाऽहं सामपूर्वं कृत्वास्वागतमादरात् ॥ उक्ता मधुरया वाचा तेन तुष्टाऽस्मि तेऽनघ ॥ ५ ॥ नो चेद्धन्मि दृशा त्वां वै कालाग्निसमया किल ॥ कस्य प्रीतिकरं न स्यान्माधुर्यवचनं खलु ॥६॥ गच्छ तं महिषं पाप वद मद्वचनादिदम् ॥ गच्छ पातालमधुना जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ ७ ॥ नोचेत्कृतागसं दुष्ट हनिष्यामि रणांगणे ॥ मद्बाणक्षुण्णदेहस्त्वं गंतासि यमसादनम् ॥ ८ ॥ दयालुत्वं ममेदं त्वं विदित्वा गच्छ सत्वरम् ॥ हते त्वयि सुरा मूढ स्वर्गं प्राप्स्यंति सत्वरम् ॥ ९ ॥ तस्माद्गच्छस्व त्यक्त्वैकोमेदिनीं च ससागराम् ॥ पातालं तरसा मंद यावद्बाणा न मेऽपतन् ॥ १० ॥ युद्धेच्छा चेन्मनसि ते तर्ह्येहि त्वरितोऽसुर ॥ वीरैर्महाबलैः सर्वैर्नयामि यमसादनम् ॥ ११ ॥

तुझे जीवनकी इच्छा है, तो इस समय रसातलमें चला जा ॥ ७ ॥ इसके अन्यथा करनेसे उस अपराधी दुष्टको समराङ्गणमें संहार करूंगी अधिक क्या ? मेरे शरजालसे छिन्नभिन्न कलेवर हो शमनसदनमें जाना होगा ॥ ८ ॥ रे मूढ ! मैं तुझपर दया प्रकाश करकेही कहती हूं, तू यह जानकर शीघ्र पातालमें चला जा और देवता अभी स्वर्गका राज्य ग्रहण करे ॥ ९ ॥ रे मन्द ! जबतक मेरे बाण पतित न हों, उससे पहिलेही तू एकाकी समसागर भूमंडल छोड़कर शीघ्र पातालमें प्रवेश कर ॥ १० ॥ हे असुरवर ! यदि तेरे मनमें युद्धकी इच्छा हो, वो महाबलवान् वीरोंके सहित शीघ्र आ. मैं सबको ही शमनसदनमें प्रेरण करनेको प्रस्तुत हूं । ॥ ११ ॥

हे महामूढ ! तेरे समान असंख्य असुरोंको जिस प्रकार युगयुगमें निहत किया है, इसी प्रकार तुमको भी समरमें निहत करूँगी ॥ १२ ॥ हे कामार्त्त ! तू मेरे सहित संग्राममें प्रवृत्त होकर मेरे शस्त्रधारणके श्रमको सफलकर नहीं तो वह निष्फल होगा ॥१३॥ रे मूढ ! तूने स्त्रीवध्य होनेसे पूज्यतम देवताओंको पीडित किया है. किन्तु रे दुष्टात्मन् ! तू स्त्रीवध्य होनेसे ब्रह्माके इस वरका गर्व मत कर ॥ १४ ॥ विधाताका वचन पालन करना चाहिये. यह विचार कर मैं अतुलनीय स्त्रीरूप धारण कर पापिष्ठ होनेसे तुझको मारनेके लिये यहां आई हूँ ॥ १५ ॥ रे मूढ ! यदि तू जीवनकी इच्छा करता है, तो स्वर्गका राज्य छोड़ पन्नगोंसे युक्त पाताल वा जहां तेरी इच्छा हो वहां चला जा ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले कि देवीके इस प्रकार वचन सुनकर उस बलयुक्त सचिवप्रवरने हेतुयुक्त

युगेयुगे महामूढ हतास्त्वत्सदृशाः किल ॥ असंख्यातास्तथा त्वां वै हनिष्यामि रणांगणे ॥ १२ ॥ साफल्यं कुरु शस्त्राणां धारणे तु श्रमोऽन्यथा ॥ तद्युद्ध्यस्व मया साध समरे स्मरपीडितः ॥ १३ ॥ मा गर्वं कुरु दुष्टात्मन्यन्मेऽस्ति ब्रह्मणो वरः ॥ स्त्रीवध्यत्वे त्वया मूढ पीडिताः सुरसत्तमाः ॥ १४ ॥ कर्तव्यं वचनं धातुस्तेनाहं त्वामुपागता ॥ स्त्रीरूपमतुलं कृत्वा सत्यं हंतुं कृतागसम् ॥१५॥ यथेच्छं गच्छ वा मूढ पातालं पन्नगावृतम् ॥ हित्वा भूसुरसद्माद्य जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः स ततो देव्या मंत्रिश्रेष्ठो बलान्वितः ॥ प्रत्युवाच निशम्यासौ वचनं हेतुगर्भितम् ॥ १७ ॥ देवि स्त्रीसदृशं वाक्यं ब्रूषे त्वं मदगर्विता ॥ क्वासौ क्व त्वं कथं युद्धमसंभाव्यमिदं किल ॥ १८ ॥ एकाकिनी पुनर्बाला प्रारब्धयौवना मृदुः ॥ महिषोऽसौ महाकायो दुर्विभाव्यं हि संगतम् ॥ १९ ॥ सैन्यं बहुविधं तस्य हस्त्यश्वरथसंकुलम् ॥ पदातिगणसंविद्धं नानाऽऽयुधविराजितम् ॥२०॥ कः श्रमः करिराजस्य मालती पुष्पमर्दने ॥ मारणे तव वामोरु महिषस्य तथारणे ॥ २१ ॥

वचनसे उत्तर दिया ॥ १७ ॥ हे देवी ! तुम मदगर्वित होकर ऐसे वचन कहती हो तुम स्त्री हो और दैत्यपति वीर है, अतएव तुम दोनोंका युद्ध किस प्रकार होगा ? यह मुझको अत्यन्त असंभव बोध होता है ॥ १८ ॥ तुम कोमलाङ्गी नवयौवना और बाला हो, विशेष करके अकेली हो और महिष महाकाय है सुतरां तुम्हारा समर असंभव है ॥ १९ ॥ विशेष कर उनके हाथी, घोडे, रथ और पैदल इत्यादि विविध आयुधधारी असंख्य सैन्य है ॥ २० ॥ अतएव हे वामोरु ! गजराजको जिस प्रकार मालतीपुष्प मर्दन करनेमें कुछ क्लेश नहीं होता. इसी प्रकार तुमको समरमें विनाश करनेमें उनको किंचित् मात्र भी श्रम नहीं होगा ॥ २१ ॥

किन्तु यदि कुछ भी तुमसे परुष वचन कहूं; तो यह शृंगाररसके विरुद्ध होगा, इस कारण रसभंगके भयसे कोई कठोर वचन कहनेमें समर्थ नहीं हूं ॥२२॥ यद्यपि हमारे राजा देवताओंके शत्रु हैं, किंतु तो भी तुम्हारे अत्यन्त भक्त हुए हैं अतएव साम वा दानयुक्त ही वचन कहना चाहिये ॥ २३ ॥ ऐसा न होकर तुम जिस प्रकार वृथा अभिमान और रूपयौवनका गर्व तथा चतुरता प्रकाश करके मिथ्या वचन कहती हो इस कारण मैं बाणोंसे अभी तुमको निहत करता ॥ २४ ॥ किंतु तुम्हारा भुवनातीत रूप सुनकर हमारे प्रभु मोहित हुए हैं सुतरां उसकी प्रिय कामनासे तुमको यथेष्ट प्रिय वचन कहनाही हमको उचित है ॥ २५ ॥ हे विशाल नयन ! राज्य समस्त धन ही तुम्हारा है अधिक क्या महिष भी तुम्हारा दास होगा इस प्रकार अपना मरणदायक क्रोध त्यागकर

यदि त्वां परुषं वाक्यं ब्रवीमि स्वल्पमप्यहम् ॥ शृंगारे तद्विरुद्धं हि रस भंगाद्बिभेम्यहम् ॥ २२ ॥ राजास्माकं सुररिपुर्वर्तते त्वयि भक्ति मान् ॥ साममेव मया वाच्यं दानयुक्तं तथा वचः ॥ २३ ॥ नो चेद्धन्म्यहमद्यैव बाणेन त्वां मृषा वदाम् ॥ मिथ्याभिमानचतुरां रूपयौवन गर्विताम् ॥२४॥ स्वामी मे मोहितः श्रुत्वा रूपं ते भुवनातिगम् ॥ तत्प्रियार्थं प्रियं कामं वक्तव्यं त्वयि यन्मया ॥ २५ ॥ राज्यं तव धनं सर्वं दासस्ते महिषः किल ॥ कुरु भावं विशालाक्षि त्यक्त्वा रोषं मृतिप्रदम् ॥२६॥ पतामि पदायोस्तेऽहं भक्तिभावेन भामिनि ॥ पट्टराज्ञी महाराज्ञो भव शीघ्रं शुचिस्मिते ॥२७॥ त्रैलोक्यविभवं सर्वं प्राप्स्यसि त्वमनाविलम् ॥ सुखं संसारजं सर्वं महिषस्य परिग्रहात् ॥ २८ ॥ देव्युवाच ॥ शृणु साचिव वक्ष्यामि वाक्यानां सारमुत्तमम् ॥ शास्त्रदृष्टेन मार्गेण चातुर्यमनुचिंत्य च ॥ २९ ॥ महिषस्य प्रधानस्त्वं मया ज्ञातं धिया किल ॥ पशुबुद्धिस्वभावोऽसि वचनात्तव सांप्रतम् ॥ ३० ॥ मन्त्रिणस्त्वादृशा यस्य कथं स बुद्धिमान्भवेत् ॥ उभयोः सदृशो योगः कृतोऽयं विधिना किल ॥ ३१ ॥

उनके प्रति सद्भाव स्थापन करो ॥२६॥ हे शुचिस्मिते ! मैं तुम्हारे चरणोंमें गिरता हूं तुम अभी जाकर महाराजकी पटरानी होओ ॥२७॥ हे भामिनि ! तुम्हारे महिषकी पत्नी होनेपर त्रैलोक्यके संपूर्ण विमल विभव और संसार जनित असीम सुख यहां सभी प्राप्त होंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ देवीने कहा हे सचिव ! तुम्हारे वाक्चातुर्यका विषय विचार कर शास्त्रदृष्ट पथानुसार तुमसे सारगर्भ उत्तम वचन ही कहती हूं. सुनो ॥ २९ ॥ सम्प्रति तुम्हारे वचनानुसार मैंने बुद्धीसे विचार कर जाना कि तुम महिषके प्रधान कर्मचारी पुरुष अतएव तुम्हारा प्रभाव और बुद्धि पशुके समान है ॥ ३० ॥ जिसके मंत्री तुम्हारे समान हैं वह किस प्रकार बुद्धिमान् होगा ? तुम दोनोंका इस प्रकार सदृश योग निस्संदेह विधाताने किया है ॥ ३१ ॥

रे मूढ ! तूमन जो मुझको स्त्री स्वभाव कहा. यह क्या विचारकर देखा है ? यद्यपि मैं वास्तवमें पुरुष नहीं हूं किन्तु वह परम पुरुष स्वभावा केवल स्त्रीवेश धारिणीमात्र हूं ॥ ३२ ॥ तेरे प्रभुने पूर्वमें ब्रह्माजीके निकट स्त्रीसे मरनेकी प्रार्थना की है. इस कारण मैं विचारती हूं कि वह अत्यन्त मूर्ख और वीररसका अनभिज्ञ है ॥ ३३ ॥ क्योंकि स्त्रीके हाथसे मरण वीरको क्लेशदायक और क्लीबको सन्तोषजनक है. देखो तुम्हारे प्रभु महिषने आत्म बुद्धिके अनुसार कामिनीके हाथसे मरनेकी प्रार्थना की है ॥ ३४ ॥ इसलिये ही मैं स्त्री रूपधारण करके कार्य साधनके निमित्त आई हूं. अतएव शास्त्रविरोधी तुम्हारे वचनोंसे मैं क्यों भय करूं ? ॥ ३५ ॥ जब दैव प्रतिकूल होता है उस समय तृण भी कुलिशके समान होता है और विधाताके अनुकूल होनेपर वह

यदुक्तं स्त्रीस्वभावाऽसि तद्विचारय मूढ किम् ॥ पुमान्नाऽहं तत्स्वभावाऽभव स्त्रीवेषधारिणी ॥ ३२ ॥ याचितं मरणं पूर्वं स्त्रियात्वत्प्रभुणा यथा ॥ तस्मान्मन्येऽतिमूर्खोऽसौ न वीररसवित्तमः ३३ ॥ कामिन्या मरणं क्लीबरतिदं शूरदुःखदम् ॥ प्रार्थितं प्रभुणा तेन महिषेणात्म बुद्धिना ॥ ३४ ॥ तस्मात्स्त्रीरूपमाधाय कार्यं कुर्तुमुपागता ॥ कथं बिभेमि त्वद्वाक्यैर्धर्मशास्त्रविरोधकैः ॥ ३५ ॥ विपरीतं यदा दैवं तृणं वज्रसमं भवेत् ॥ विधिश्चेत्सुमुखः कामं कुलिशं तूलवत्तदा ॥ ३६ ॥ किं सैन्यैरायुधैः किं वा प्रपंचदुर्गसेवनैः ॥ मरणं सांप्रतं यस्य तस्य सैन्यैस्तु किं फलम् ॥ ३७ ॥ यदाऽयं देहसंबंधो जीवस्य कालयोगतः ॥ तदैव लिखितं सर्वं सुखं दुःखं तथा मृतिः ॥ ३८ ॥ यस्य येन प्रकारेण मरणं दैवनिर्मितम् ॥ तस्य तेनैव जायेत नान्यथेति विनिश्चयः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मादीनां यथा काले नाशोत्पत्ती विनिर्मिते ॥ तथैव भवतः कामं किमन्येषां विचार्यते ॥ ४० ॥

वज्र भी फिर रुईके समान कोमल हो जाता है ॥ ३६ ॥ विपुल सैन्य आयुध अथवा अति विस्तृत दृढ़ दुर्गका ही आश्रय करनेसे क्या हो सकता है मरण जिसका समीप वर्त्ती है उसका सैन्यसे क्या फलोदय होगा ? ॥ ३७ ॥ कालयोगसे जब इस जीवकी देह सम्बन्ध है उसी समय सुख दुःख और मृत्यु यह सब लिखी जाती हैं ॥ ३८ ॥ जिसकी जिस प्रकार मृत्यु दैवने निर्दिष्ट की है उसकी उसी प्रकार मृत्यु होगी इससे अन्यथा कभी न होगा यही स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ ३९ ॥ ब्रह्मादि देवताओंका जिस प्रकार यथा समयमें नाश और उत्पत्ति विहित हुई है तुम्हारा भी अवश्य उसी प्रकार होगा, अन्यके विचारसे प्रयोजन क्या है ? ॥ ४० ॥

जो मृत्यु धर्मके एकान्त वशवर्ती हैं उनके वरदानसे दर्पित होकर जो मनमें विचारे कि "मैं नहीं मरूंगा" वह मूढ और अत्यन्त मन्द बुद्धि है ॥ ४१ ॥ इस कारण तुम भी अभी नृपके समीप जाकर मेरे वचन कहो. फिर भूपति जो आज्ञा दे तुम वह अवश्य पालन करो ॥ ४२ ॥ यदि जीवन रखनेकी इच्छा हो तो पातालपुरमें प्रवेश करो और इन्द्र स्वर्गराज्य व देवता यज्ञीय हविर्लाभ करें ॥ ४३ ॥ यदि दुरात्मा महिषकी अन्यथा मति हो तो मरनेके निमित्त उत्सुक होकर मेरे संग संग्राम करें ॥ ४४ ॥ यदि मनमें जानते हो कि, विष्णु इत्यादि देवता समर छोड़कर भाग गये हैं इसमें तुम्हारा किंचिन्मात्र भी पुरुषार्थ नहीं है केवल प्रजापतिका वरदान और दैव उसका कारण है ॥ ४५ ॥ व्यासजी बोले देवीके इस प्रकार वचन सुनकर दानव चिन्ता करने लगा कि,

ये मृत्युधर्मिणस्तेषां वरदानेन दर्पिताः ॥ मरिष्यामो न मन्यंते ते मूढा मंदचेतसः ॥ ४१ ॥ तस्माद्गच्छ नृपंब्रूहि वचनं मम सत्वरम् ॥ यदाज्ञापयते भूपस्तत्कर्तव्यं त्वया किल ॥ ४२ ॥ मघवा स्वर्गमाप्नोति देवाः संतु हविर्भुजः ॥ यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥ ४३ ॥ अन्यथा चेन्मतिर्मंद महिषस्य दुरात्मनः ॥ तद्युध्यस्व मया सार्धं मरणाय कृतादरः ॥ ४४ ॥ मन्यसे संगरे भग्ना देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ दैवं हि कारणं तत्र वरदानं प्रजापतेः ॥ ४५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति देव्या वचः श्रुत्वा चिंतयामास दानवः ॥ किं कर्तव्यं मया युद्धं गंतव्यं वा नृपं प्रति ॥४६॥ विवाहार्थमिहाज्ञप्तो राज्ञा कामातुरेण वै ॥ तत्कथं विरसं कृत्वा गच्छेयं नृपसन्निधौ ॥४७॥ इयं बुद्धिः समीचीना यद्व्रजामि कलिं विना ॥ यथाऽऽगतं तथा शीघ्रं राज्ञे संवेदयाम्यहम् ॥४८॥ स प्रमाणं पुनः कार्ये राजा मतिमतांवरः ॥ करिष्यति विचार्यैव सचिवैर्निपुणैः सह ॥४९॥ सहसा न मया युद्धं कर्तव्यमनया सह ॥ जये पराजये वाऽपि भूपतेरप्रियं भवेत् ॥५०॥

मुझको क्या युद्ध करना उचित है ? वा महिषके निकट हो जाना चाहिये ॥ ४६ ॥ राजाने कामातुर होकर विवाहके निमित्त मुझको इस कार्यमें नियुक्त किया है. वह काय रसहीन करके मैं किस प्रकार राजाके समीप जाऊं ? ॥ ४७ ॥ इस समय युद्ध न करके राजाके निकट जानाही उचित है. अतएव जिस प्रकार आया हूं उसी प्रकार शीघ्र जाकर राजासे सब वृत्तान्त निवेदन करूं ॥ ४८ ॥ राजा अद्वितीय बुद्धिमान् और विशेष करके हमारे प्रभु हैं. इस कारण वह चतुर मंत्रियोंके संग विचार करके इस विषयमें जो उचित होगा वही करेंगे ॥ ४९ ॥ अतएव इसके संग सहसा संग्राम करना मुझको उचित नहीं है क्यों कि जय वा पराजय दोनों बातही राजाके अप्रिय होंगी ॥ ५० ॥

यदि यह सुंदरी मुझको मार डाले अथवा मैं ही इसको निहत करूं तो जिस किसी प्रकार हो राजा अवश्य ही मेरे ऊपर कुपित होंगे ॥ ५१ ॥ अतएव देवीने इस समय जो कहा मैं वहां जाकर राजासे वह कहूं फिर उनकी जो रुचि हो सो करें ॥ ५२ ॥ व्यासजी बोले वह बुद्धिमान् मंत्रिका पुत्र इस प्रकार विचार करके राजाके समीप गया फिर प्रणामपूर्वक हाथ जोडकर उनसे कहने लगा ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! वह वरारोहा भुवनमोहिनी मनोरमा देवी अठारह भुजाओंमें उत्तम आयुध धारण करके सिंहके ऊपर चढी हुई है ॥ ५४ ॥ हे महाराज ! "हे भामिनी ! तुम महिषासुरसे प्रीति करो तो त्रैलोक्याधिपति राजाकी प्रियतमा महिषी होगी ॥ ५५ ॥ तुम्हीं उनकी पटरानी होगी इसमें संदेह नहीं. वह तुम्हारे वशवर्ती आज्ञाकर दास होकर जीवन व्यतीत करेंगे

यदि मां सुंदरी हन्यादहं वा हन्मितां पुनः ॥ केनाऽप्युपायेन स कुप्येत्पार्थिवः किल ॥ ५१ ॥ तस्मात्तत्रैव गत्वाऽहं बोधयिष्यामि तं नृपम् ॥ यथाऽद्याभिहितं देव्या यथारुचि करोतु सः ॥५२॥ व्यास उवाच ॥ इति संचित्य मेधावी जगाम नृपसन्निधौ ॥ प्रणम्य तमुवाचेदं कृतांजलिरमात्यजः ॥ ५३ ॥ मंत्र्युवाच ॥ राजन्देवी वरारोहा सिंहस्योपरि संस्थिता ॥ अष्टादशभुजा रम्या वराऽऽयुधधरा परा ॥ ५४ ॥ सा मयोक्ता महाराज महिषं भज भामिनि ॥ महिषी भव राज्ञस्त्वं त्रैलोक्याधिपतेः प्रिया ॥५५॥ पट्टराज्ञी त्वमेवास्य भविता नात्र संशयः ॥ स ते वाऽऽज्ञाकरो जातो वशवर्ती भविष्यति ॥ ५६ ॥ त्रैलोक्यविभवं भुक्त्वा चिरकालं वरानने ॥ महिषं पतिमासाद्य योषितां सुभगा भव ॥५७॥ इति मद्वचनं श्रुत्वा सा स्मयावेशमोहिता ॥ मामुवाच विशालाक्षी स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ ५८ ॥ महिषीगर्भसंभूतं पशूनामधमं किल ॥ बलिं दास्याम्यहं देव्यै सुराणां हितकाम्यया ॥५९॥ का मूढा कामिनी लोके महिषं वै पतिं भजेत् ॥ मादृशी मंदबुद्धे किं पशुभावं भजेदिह ॥ ६० ॥

॥ ५६ ॥ हे वरानने ! महिषको पति करनेसे तीनों लोकके संपूर्ण विभव भोगकर तुम स्त्रियोंमें सौभाग्यवती होगी" ॥ ५७ ॥ मेरे इस प्रकार वचन सुनकर भी अहंकारसे मोहित हो उस विशालाक्षीने कुछेक हँसते हँसते मुझसे कहा कि ॥ ५८ ॥ वह महिषीके गर्भसे उत्पन्न और पशुओंमें अधम है, इस कारण मैं देवताओंके हितकी कामनासे उसको देवीके सन्मुख बलिदान दूँगी ॥ ५९ ॥ इस लोकमें ऐसी मन्द बुद्धि स्त्री कौन है जो महिषको पतिरूपसे वरण करेगी ? रे मन्दबुद्धे ! मेरी समान स्त्री क्या पशुभावकी अभिलाषा करती है ? ॥ ६० ॥

दे. भा. ॥३१॥

महिषी शृंगसंयुक्त है, अतएव वह शृंगारमदसे प्रमत्त होकर अव्यक्त शब्द करते करते सशृंग महिषको पति कर सकती है, किन्तु मैं उसके समान वा मूढ स्वभाव नहीं हूं जो उसको पति करूं ॥ ६१ ॥ रे दुष्ट ! समराङ्गणमें युद्ध करके उस देवताओंके अप्रियकारी असुरका संहार करूँगी, यदि उसको जीवनकी इच्छा हो तो पातालमें भाग जाय ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! उसने मत्त होकर इस प्रकार कर्कश वचन कहे, मैं उनको सुनकर प्रतिकारका विचार करते करते आपके पास आया हूं ॥ ६३ ॥ हे महाराज ! रसभंग होनेकी आशंकासे मैंने युद्ध नहीं किया. विशेष कर आपकी आज्ञाके विना अत्यन्त निरर्थक उत्साह किस प्रकार करता ? ॥ ६४ ॥ हे महीपाल ! सौदामिनी अपने बलके मदसे अत्यन्त उन्मत्त हो रही है, जाना नहीं जाता कि क्या होनहार है ?

महिषी महिषं नाथं सशृंगा शृंगसंयुतम् ॥ कुरुते क्रंदमाना वै नाहं तत्सदृशी शठ ॥६१॥ करिष्येऽहं मृधे युद्धं हनिष्ये त्वां सुराप्रियम् ॥ गच्छ वा दुष्ट पातालं जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ ६२ ॥ परुषं तु तया वाक्यमित्युक्तं नृप मत्तया ॥ तच्छ्रुत्वाऽहं समायातः प्रतिचिंत्य पुनः पुनः ॥६३॥ रसभंगं विचिंत्यैव न युद्धं तु मया कृतम् ॥ आज्ञां विना तवात्यंतं कथं कुर्यां वृथोद्यमम् ॥ ६४ ॥ साऽतीव च बलोन्मत्ता वर्तते भूप भामिनि ॥ भवितव्यं न जानामि किं वा भावि भविष्यति ॥ ६५ ॥ कार्येऽस्मिंस्त्वं प्रमाणं नो मंत्रोऽतीव दुरासदः ॥ युद्धं पलायनं श्रेयो न जानेऽहं विनिश्चयम् ॥६६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा महिषो मदविह्वलः ॥ मंत्रिवृद्धान्समाहूय राजा वचनमब्रवीत् ॥१॥ राजोवाच ॥ मंत्रिणः किं च कर्तव्यं विश्रब्धं ब्रूत मा चिरम् ॥ आगता देवविहिता मायेयं शांबरीव किम् ॥ २ ॥

वा जो होनहार है सो अवश्य ही होगा ॥ ६५ ॥ इस विषयमें आपही एकमात्र प्रभु हैं अतएव आप जो कहें हम वही करें, किन्तु इसकी मन्त्रणा अत्यन्त कठिन है सुतरां युद्ध करना अच्छा वा भागना अच्छा इसका मैं कुछ निश्चय नहीं कर सकता ॥६६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ व्यासजी बोले कि, मदमोहित राजा महिषासुरने दूतके इस प्रकार वचन सुन बूढे मंत्रियोंको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ हे मंत्रियो ! इस समय मुझको क्या करना चाहिये ? आप उसको निश्चय करके शीघ्र कहिये क्या यह देवी शम्बरासुरकी मायाके समान देवताओंसे विरचित होकर यहां आई है ? ॥ २ ॥

भा. टी. पं. अ. ११

आप लोग सामादि चारों प्रकारके उपाय प्रयोग करनेमें विचक्षण हैं और उपस्थित मंत्रणा कार्यमें भी निपुण हैं अतएव इस समय साम, दान और दण्ड, भेद इन चार उपायोंमें किस उपायका अवलम्बन करना चाहिये ? यह मुझको कहो ॥ ३ ॥ मंत्री बोले हे नृपसत्तम ! सदा सत्य और प्रियवचन कहना चाहिये, उसमें जो हितकारी है पण्डित लोग विचार करके उसीको स्वीकार करैं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इस लोकमें औषधी जिस प्रकार मनुष्योंको अप्रिय होनेपर भी रोग विनाश करती है इसी प्रकार सत्यवचन अप्रिय होनेपर भी हितकर हैं, किन्तु केवल प्रियवचन अहितकर होता है ॥ ५ ॥ हे पृथ्वीपते ! जो सत्य वचनको सुनते हैं और जो अनुमोदन करते हैं इन दोनों प्रकारके पुरुषही दुर्लभ हैं और सत्यवक्ता पुरुष भी अत्यन्त दुर्लभ है क्योंकि लोकमें चाटुवादी ही

कार्येऽस्मिन्निपुणा यूयमुपायेषुविचक्षणाः ॥ सामादिषु च कर्तव्यः कोऽत्र मह्यं ब्रुवंतु च ॥ ३ ॥ मन्त्रिणः ऊचुः ॥ सत्यं सदैव वक्तव्यं प्रियं च नृपसत्तम ॥ कार्यं हितकरं नूनं विचार्य विबुधैः किल ॥ ४ ॥ सत्यं च हितकृद्राजन्प्रियं चाहितकृद्भवेत् ॥ यथौषध नृणां लोके ह्यप्रियं रोगनाशनम् ॥५॥ सत्यस्य श्रोता मंता च दुर्लभः पृथिवीपते ॥ वक्ताऽपि दुर्लभः कामं बहवश्चाटुभाषकाः ॥ ६ ॥ कथ ब्रूमोऽत्र नृपते विचारे गहने त्विह ॥ शुभं वाऽप्यशुभं वाऽपि को वेत्ति भुवनत्रये ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ स्वस्वमत्यनुसारेण ब्रुवंत्वद्य पृथक्पृथक् ॥ येषां हि यादृशो भाव स्तच्छ्रुत्वा चिंतयाम्यहम् ॥ ८ ॥ बहूनां मतमाज्ञाय विचार्य च पुनःपुनः ॥ यच्छ्रेयस्तद्धि कर्तव्यं कार्यं कार्यविच क्षणैः ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यैवं वचनं श्रुत्वा विरूपाक्षो महाबलः ॥ उवाच तरसा वाक्यं रंजयन्पृथिवीपतिम् ॥ १० ॥ विरूपाक्ष उवाच ॥ राजन्नारी वराकीयं सा ब्रूते मदगर्विता ॥ विभीषिकामात्रमिदं ज्ञातव्यं वचनं त्वया ॥ ११ ॥

(मीठी बातोंवाले) अधिक दिखाई देते हैं ॥ ६ ॥ हे नरनाथ ! शुभ वा अशुभ क्या है ? इस त्रैलोक्यमें उसको कौन जानता है ? इस दूरूह [कठिन] विचारके विषयका निर्णय हम किस प्रकारसे कहैं ? ॥ ७ ॥ राजाने कहा--आप लोग अपनी बुद्धिके अनुसार जिसका जो अभिप्राय हो वह पृथक् पृथक् कहो, वह सब सुनकर फिर मैं विचार करूंगा ॥ ८ ॥ क्योंकि सब पुरुषोंका मत भलीभांतिसे जान वारंवार विचार कर जो श्रेष्ठ हो कार्य कुशल पुरुष उसी कार्यको कर्त्तव्य जाने ॥९॥ व्यासजी बोले--उसके इस प्रकार वचन सुनकर महाबली विरूपाक्ष शीघ्र राजासे मनोरंजन वचन कहने लगा ॥ १० ॥ हे राजन् ! आप निश्शङ्क जानिये कि उस सामान्य नारीने मदसे गर्वित होकर जो कहा है वह विभीषिका [डरावनी] मात्र है ॥ ११ ॥

स्त्रियोंकी चेष्टा और साहस निरर्थक होता हैं इस बातको मनुष्यमात्र जानता हैं अतएव कौन पुरुष स्त्रीके रणश्लाघापर कटुवचनोंमे डरता है ? ॥ १२ ॥ हे राजन् ! आपने वीरताके दर्पसे त्रिभुवनको जीता है किन्तु इस समय यदि अबला कामनीके भयसे आप हीनता स्वीकार करेंगे तो संसारमें आपका बहुतही अयश होगा ॥ १३ ॥ अतएव हे महाराज ! मैं अकेलाही चण्डिकासे युद्ध करने जाऊंगा और मैं ही उसको मारूंगा आप अब निर्भय चित्त होकर रहिये ॥ १४ ॥ हे राजन् ! आप मेरा पराक्रम देखिये मैं सेनासहित जाकर अनेक अस्त्र शस्त्रोंसे उस चंडविक्रमा दुर्मदा चण्डिकाका वध करूंगा ॥ १५ ॥ वा सर्पमय पाशसे बांधकर आपके पास ले आऊंगा तो वह निरुपाया स्त्री सदा आपके वशीभूत होकर रहेगी इसमें संदेह नहीं ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले--विरूपाक्षके इस

को बिभेति स्त्रियो वाक्यैर्दुरुक्तैः रणदुर्मदैः ॥ अनृतं साहसं चेति जानन्नारीविचेष्टितम् ॥१२॥ जित्वा त्रिभुवनं राजन्नद्य कांताभयं न वै ॥ दीनत्वेऽप्ययशो नूनं वीरस्य भुवने भवेत् ॥१३॥ तस्माद्याम्यहमेकाकी युद्धाय चंडिकां प्रति ॥ हनिष्ये तां महाराज निर्भयो भवसांप्रतम् ॥१४॥ सेनावृतोऽहं गत्वा तां शस्त्रास्त्रैर्विविधैः किल ॥ निषूदयामि दुर्मर्षां चंडिकां चंडविक्रमाम् ॥१५॥ बद्ध्वा सर्पमयैः पाशैरानयिष्ये तवांतिकम् ॥ वशगा तु सदा ते स्यात्पश्य राजन्बलं मम ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ विरूपाक्षवचः श्रुत्वा दुर्धरो वाक्यमब्रवीत् ॥ सत्यमुक्तं वचो राजन्विरूपाक्षेण धीमता ॥१७॥ ममापि वचनं श्लक्ष्णं श्रोतव्यं धीमता त्वया ॥ कामातुरैषा सुदतीलक्ष्यतेऽप्यनुमानतः ॥ १८ ॥ भवत्येवंविधा कामं नायिका रूपगर्विता ॥ भीषयित्वा वरारोहा त्वां वशे कर्तुमिच्छति ॥ १९ ॥ हावोऽयं मानिनीनां वै तं वेत्ति रसवित्तमः ॥ वक्रोक्तिरेषा कामिन्याः प्रियं प्रति परायणम् ॥ २० ॥ वेत्ति कोऽपि नरः कामं कामशास्त्रविचक्षणः ॥ यदुक्तं नाम बाणैस्त्वां वधिष्ये रणमूर्धनि ॥ २१ ॥

प्रकार वचन सुन कर दुर्द्धरने कहा हे राजन् ! विरूपाक्ष अत्यन्त बुद्धिमान् है अतएव उन्होंने जो कहा है युक्ति संगत और सत्य है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! आप बुद्धिमान् हैं इस कारण मेरा भी यथार्थ वचन सुनिये मैंने अनुमानसे उस सुदती रमणीको कामातुर जाना है ॥ १८ ॥ क्योंकि उस नितम्बिनीने भय दिखलाकर आपको वशीभूत करनेकी इच्छा की है. विशेषकर प्रायः रूपगर्विता नायिका कामातुर होकर इसी प्रकार व्यवहार करती हैं ॥ १९ ॥ माननीके ऐसे व्यवहारको हाव कहते हैं. जो अत्यन्त रसज्ञ हैं, वे ही इसको जान सकते हैं. स्त्रियोंकी यह वक्रोक्ति प्रिय पुरुषोंके आकर्षण विषयमें प्रधान कारण होती है॥ २० ॥ जो पुरुष कामशास्त्रमें चतुर हैं उनमें कोई कोई पुरुष केवल इस विषयको भलीभांति जान सकते हैं. हे राजन् ! उस कामनीने कहा है "तुमको

सन्मुख समरमें बाणोंसे मारूंगी ॥ २१ ॥ इसका तात्पर्य पृथक् है. जो पण्डित लोग हेतु विद्यामें निपुण हैं, वेही उसको हेतुगर्भ जान सकते हैं. देखो, मानिनी गणोंका दूसरा कोई बाण नहीं है. केवल कटाक्ष बाणही प्रसिद्ध है ॥२२॥ और अभिप्रायके प्रगट करनेवाले मर्मार्थ वचनही पुष्पमय दूसरा बाण हैं. हे पार्थिव ! आपके ऊपर बाण चलानेकी ब्रह्मा, विष्णु और महादेवमें भी शक्ति नहीं है. ॥ २३ ॥ अतएव तादृशी शृंङ्गारवती अबला कामिनीमें प्रकृत बाण चलानेकी क्या सामर्थ्य है ? हे राजन् ! उस स्त्रीने कहा है "रे मन्द ! तुम्हारे राजाको नयन बाणसे निहत करूंगी ॥ २४ ॥ किन्तु दूतको रसज्ञान नहीं है, इस कारण उसने विपरीत ज्ञान किया है, इसमें सन्देह नहीं है. उस कामनिपुणा कामिनीने और भी कहा है कि तुम्हारे पतिको रणशय्यापर निपातित करूंगी ॥२५॥ यह निश्चय ही विपरीत गतिक्रीडाके अभिप्रायसे कहा गया है, इसमें सन्देह नहीं. उस सुन्दरीने कहा है कि, उसका प्राणहरण करूंगी ॥ २६ ॥ हे राजन् !

हेतुगर्भमिदं वाक्यं ज्ञातव्यं हेतुवित्तमैः ॥ बाणास्तु मानिनीनां वै कटाक्षा एव विश्रुताः ॥ २२ ॥ पुष्पांजलिमयाश्चान्ये व्यंग्यानि वचनानि च ॥ का शक्तिरन्यबाणानां प्रेरणे त्वयि पार्थिव ॥२३॥ तादृशीनां न सा शक्तिर्ब्रह्मविष्णुहरादिषु ॥ ययोक्तं नेत्रबाणैस्त्वां हनिष्ये मन्द पार्थिवम् ॥२४॥ विपरीतं परिज्ञातं तेनाऽरसविदा किल ॥ पातयिष्यामि शय्यायां रणमय्यां पतिं तव ॥ २५ ॥ विपरीतरतिक्रीडाभाषणं ज्ञेयमेव तत् ॥ करिष्ये विगतप्राणं यदुक्तं वचनं तया ॥ २६ ॥ वीर्यं प्राणा इति प्रोक्तं तद्विहीनं न चान्यथा ॥ व्यंग्या धिनक्त्येवाक्येन वरयत्युत्तमा नृप ॥२७॥ तद्वै विचारतो ज्ञेयं रसग्रन्थविचक्षणैः ॥ इति ज्ञात्वा महाराज कर्तव्यं रससंयुतम् ॥२८॥ सामदानद्वयं तस्या नान्योपायोऽस्ति भूपते ॥ रुष्टा वा गर्विता वाऽपि वशगा मानिनी भवेत् ॥ २९ ॥ तादृशैर्मधुरैर्वाक्यैरानयिष्ये तवांतिकम् ॥ किं बहूक्तेन मे राजन्कर्तव्या वशवर्तिनी ॥ ३० ॥

इस विषयमें भी विचार करके देखो कि वीर्यही प्राण कहा गया है, अतएव वह स्त्री आपको वीर्यहीन करेगी इसी अभिप्रायसे कहा हैं, दूसरा कोई अभिप्राय नहीं है. हे नृप ! उत्तम स्त्रियें व्यङ्ग्य वचनोंसे ही प्रियपुरुषको वरण करती हैं ॥ २७ ॥ मैंने जो कहा रतिशास्त्रमें चतुर पण्डित लोग विचार करके यह जान सकते हैं. हे महाराज ! आप इसको जानकर उस कामनीके प्रति सरस व्यवहार कीजिये ॥ २८ ॥ हे भूपते ! साम और दानके अतिरिक्त उसको वाध्य करनेका दूसरा उपाय नहीं है. वह माननी गर्वित हो वा रुष्ट हो, इससे अवश्य वशीभूत होगी ॥ २९ ॥ हे राजन् ! मुझको अधिक वचन कहनेका प्रयोजन नहीं है. मैं अभी जाकर ऐसे मधुर वचनोंसे उसको आपके समीप लाऊंगा ॥ ३० ॥

अधिक क्या उसको किंकरीके समान सदा आपके वशीभूत कर दूँगा. व्यासजी बोले दुर्द्धरके इस प्रकार वचन सुनकर कार्य कुशल ताम्रने कहा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! मैं हेतु युक्त सरस और धर्म सम्मत नीति वचन कहता हूं. सुनो ॥ ३२ ॥ हे मानद ! वह बुद्धिमती रमणी कामातुर वा आपके प्रति अनुरक्त नहीं है और उस रमणीने आपके प्रति व्यंग वचन भी प्रयोग नहीं किये हैं ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! वह विचित्ररूपा मनोहारिणी वरवर्णिनी रमणी जो निराश्रय होकर अकेली ही इस स्थानमें युद्धकी इच्छासे आई है. यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है ॥३४॥ स्त्रियोंके दो भुजा होती हैं, किन्तु इस स्त्रीके अठारह भुजा हैं और उन अठारह भुजाओंमें उत्तमोत्तम अस्त्र धारण करके पराक्रम प्रकाशमें उद्यत है. हे महाराज ! ऐसी स्त्री त्रैलोक्यमें कभी नहीं देखी और कहीं

गत्वा मयाऽधुनैवेयं किंकरीव सदैव ते ॥ व्यास उवाच ॥ इत्थं निशम्य तद्वाक्यं ताम्रस्तत्त्वविचक्षणः ॥ ३१ ॥ उवाच वचनं राजन्निशामय मयोदितम् ॥ हेतुमद्धर्मसहितं रसयुक्तं नयान्वितम् ॥ ३२ ॥ नैषा कामातुरा बाला नानुरक्ता विचक्षणा व्यंग्यानि नैव वाक्यानि तयोक्तानि तु मानद ॥ ३३ ॥ चित्रमत्र महाबाहो यदेका वरवर्णिनी ॥ निरालम्बा समायाति चित्ररूपा मनोहरा ॥ ३४ ॥ अष्टादशभुजा नारी न श्रुता न च वीक्षिता ॥ केनापि त्रिषु लोकेषु पराक्रमवती शुभा ॥३५॥ आयुधान्यपि तावंति धृतानि बलवंति च ॥ विपरीतमिदं मन्येसर्वं कालकृतं नृप ॥३६॥ स्वप्नानि दुर्निमित्तानिमया दृष्टानि वै निशि ॥ तेन जानाम्यहं नूनं वैशसं समुपागतम् ॥ ३७ ॥ कृष्णांबरधरान री रुदती च गृहांगणे॥ दृष्टा स्वप्नेऽप्युषःकाले चिंतितव्यस्तदत्ययः ॥३८॥ विकृताः पक्षिणो रात्रौ रोरुवंति गृहे गृहे ॥ उत्पाता विविधा राजन्प्रभवं गृहे गृहे ॥ ३९ ॥ तेन जानाम्यहं नूनं कारणं किंचिदेव हि ॥ यत्त्वां प्रार्थयते बाला युद्धाय कृतनिश्चया ॥ ४० ॥

सुनी भी नहीं अतएव यह सब कालका विपरीत कार्य प्रतीत होता है ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! मैं रात्रिमें दुर्निमित्त स्वप्न देखता हूं, इससे मुझको निश्चय बोध होता है कि निकट ही घोर विपद् उपस्थित है ॥ ३७ ॥ मैंने उषःकालमें स्वप्न देखा है कि एक स्त्री काले वस्त्र पहन कर घरमें रोती है. इससे बोध होता है कि, आपका अमंगल उपस्थित होगा ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! रात्रिकालके समय पक्षीगण घरघर विकट शब्दसे चीत्कार करते हैं और सभी गृहोमें अनेक उत्पात प्रादुर्भूत होते हैं ॥ ३९ ॥ विशेष कर इस समय यह बाला युद्धके लिये दृढ प्रतिज्ञ होकर आपको बुलाती है. इससे अनुमान करता हूं कि इसका अव श्यही कोई गूढ़ कारण है ॥ ४० ॥

हे विभो ! यह रमणी मानवी वा गंधर्वकामिनी अथवा असुरपत्नी नहीं है. केवल हमको मोह उत्पन्न करनेके ही लिये देवताओंने इस मायारूपिणीका निर्माण किया है ॥ ४१ ॥ हे राजेन्द्र ! कातरता अवलम्बन करना उचित नहीं है. सब प्रकारसे युद्ध ही करना उचित है, जो होनहार है वह अवश्यही होगा यह मेरा निश्चित अभिप्राय है ॥४२॥ शुभ हो वा अशुभ हो देवताओंका कार्य कोई नहीं जान सकता. इस कारण बुद्धिमान् पुरुषोंको विशेष विचार पूर्वक धैर्य अवलम्बन करके स्थिर रहना उचित है ॥ ४३ ॥ हे नराधिप ! पुरुषका जीवन वा मरण दैवाधीन है. इस कारण त्रिभुवनमें कोई भी उसके अन्यथा करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ४४ ॥ यह बात सुनकर महिषासुरने कहा हे महाभाग ताम्र ! तुम युद्धके लिये कृतनिश्चय होकर उस रमणीके निकट

नैषाऽस्ति मानुषी नो वा गांधर्वी न तथाऽऽसुरी ॥ देवैःकृतेयं ज्ञातव्या माया मोहकरी विभो ॥ ४१ ॥ कातरत्वं न कर्तव्यं ममैतन्मत मित्यलम् ॥ कर्तव्यं सर्वथा युद्धं यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥४२॥ को वेद देवकर्तव्यं शुभं वाऽप्यशुभं तथा ॥ अवलंब्य धिया धैर्यं स्थातव्यं वै विचक्षणैः ॥४३॥ जीवितं मरणं पुंसां दैवाधीनं नराधिप ॥ कोऽपि नैवान्यथा कर्तुं समर्थो भुवनत्रये ॥ ४४ ॥ महिष उवाच ॥ गच्छ ताम्र महाभाग युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ तामानय वरारोहां जित्वा धर्मेण मानिनीम् ॥ ४५ ॥ न भवेद्वशगा नारी संग्रामे यदि सा तव ॥ हंतव्या नान्यथा काम माननीया प्रयत्नतः ॥ ४६ ॥ वीरस्त्वमसि सर्वज्ञ कामशास्त्रविशारदः ॥ येनकेनाप्युपायेन जेतव्या वरवर्णिनी ॥४७॥ त्वरन्वीर महाबाहो सैन्येन महतावृतः ॥ तत्र गत्वा त्वया ज्ञेया विचार्य च पुनःपुनः ॥ ४८ ॥ किमर्थमागता चेयं ज्ञातव्यं तद्धि कारणम् ॥ कामाद्वा वैरभावाच्च माया कस्येयमित्युत ॥ ४९ ॥

जाओ और उस वरारोहा मानिनिको धर्मानुसार जीतकर मेरे समीप लाओ ॥ ४५ ॥ यदि वह नारी संग्राममें तुम्हारे वशीभूत न हो तो उसको संहार करो और यदि वशीभूत हो तो वध न करके यत्न सहित यथेष्ट सन्मान करो ॥ ४६ ॥ हे सर्वज्ञ ! तुम वीर और कामशास्त्रमें सुपंडित हो. अतएव जिस किसी उपायसे हो तुम उस वरवर्णिनीको जीतो ॥ ४७ ॥ हे महाबाहो ! वीरवर ताम्र ! तुम महती सेनाके सहित उस स्थानमें जाकर बारंबार विचार कर उसका मनोगत भाव जानो ॥ ४८ ॥ वह स्त्री कामभावसे वा वैरभावसे या अन्य किसी प्रयोजनसे आई है ? अथवा किसीकी माया है ? तुम इन सबका कारण भलीभांतिसे जानो ॥ ४९ ॥

प्रथम तो इन इन सब विषयोंका निश्चय करके उसका चिकीर्षित [इच्छित] विषय जानना चाहिये. फिर बल और सामर्थ्यके अनुसार उससे संग्राम करना उचित है ॥ ५० ॥ देखो, कातरता दिखाना भी उचित नहीं है और निर्दय व्यवहार करना भी उचित नहीं है. उस रमणीका जैसा अभिप्राय हो उसी प्रकार तुमको व्यवहार करना चाहिये ॥ ५१ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! ताम्र ! कालके नितान्त वशीभूत हो नरपतिके इस प्रकार वचन सुनते ही उनको प्रणाम करके सेनासहित बाहर निकला ॥ ५२ ॥ यह दुरात्मा गमन करते करते मार्गमें यममार्गके प्रदर्शक दारुण दुर्निमित्त (दुःशकुन) देखकर विस्मित और भीत हुआ ॥ ५३ ॥ उसने क्रमानुसार वहां उपस्थित हो उस देवीको देखा कि वह देवी सब आयुधोंसे विभूषित हो सिंहके ऊपर विराजमान है और

आदौ तन्निश्चयं कृत्वा ज्ञातव्यं तच्चिकीर्षितम् ॥ पश्चाद्युद्धं प्रकर्तव्यं यथा योग्यं यथा बलम् ॥ ५० ॥ कातरत्वं न कर्तव्यं निर्दयत्वं तथा न च ॥ यादृशं हि मनस्तस्याः कर्तव्यं तादृशं त्वया ॥ ५१ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा ताम्रः कालवशं गतः ॥ निर्गतः सैन्यसंयुक्तः प्रणम्य महिषं नृपम् ॥५२॥ गच्छन्मार्गे दुरात्माऽसौ शकुनान्वीक्ष्य दारुणान् ॥ विस्मयं च भयं प्राप यममार्गप्रदर्शकान् ॥५३॥ स गत्वा तां समालोक्य देवीं सिंहोपरि स्थिताम् ॥ स्तूयमानां सुरैः सर्वैः सर्वायुधविभूषिताम् ॥५४॥ तामुवाच विनीतः सन्वाक्यं मधुरया गिरा ॥ समाश्रित्य विनायावनतः स्थितः ॥ ५५ ॥ देवि दैत्येश्वरः शृंगी त्वद्रूपगुणमोहितः ॥ स्पृहां करोति महिषस्त्वत्पाणिग्रहणाय च ॥ ५६ ॥ भावं कुरु विशालाक्षि तस्मिन्नमरदुर्जये ॥ पतिं तं प्राप्य मृद्वंगि नंदने विहराद्भुते ॥ ५७ ॥ सर्वांगसुन्दरं देहं प्राप्य सर्वसुखास्पदम् ॥ सुखं सर्वात्मना ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितः ॥५८॥ करभोरु किमर्थं ते गृहीतान्यायुधान्यलम् ॥ पुष्पकंदुकयोग्यास्ते कराः कमलकोमलाः ॥ ५९ ॥

सब देवतालोग उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ५४ ॥ तब ताम्र विनयावत हो प्रथम सामभाव अवलम्बन पूर्वक मधुर वचनोंद्वारा उनसे कहने लगा ॥ ५५ ॥ हे देवि ! दैत्येश्वर महिष आपके रूप और गुणोंसे मोहित होकर पाणिग्रहणके लिये अभिलाषी हुए हैं ॥५६॥ हे सुन्दरि ! तुम इस सुरविजयी महिषासुरके सहित प्रीति स्थापन करो. हे कोमलांगि ! उसको पति बनाकर तुम परमनान्दसे अलौकिक नन्दनवनमें विहार करो ॥ ५७ ॥ देखो, संपूर्ण सुखका आस्पद सर्वांग सुन्दर शरीर धारण करके सब प्रकारसे सुख ग्रहण और दुःखका त्याग करना ही उचित है, यह रीति चिरकालसे प्रसिद्ध है ॥५८॥ हे करभोरु ! तुम्हारे कमलके समान कोमल करकमल पुष्पनिर्मित कन्दुक (गेद) क्रीडाके योग्य हैं, तो आयुध किस कारण ग्रहण किये हैं ॥ ५९ ॥

आपके पास युगल भ्रूचापके विद्यमान रहते सामान्य धनुका क्या प्रयोजन है ? कटाक्षरूप बाणोंके विद्यमान रहते साधारण बाण धारण करनेका फिर क्या प्रयोजन है ? ॥ ६० ॥ संसारमें युद्ध अत्यन्त क्लेशदायक है, जो इस बातको जानते हैं, उनको युद्ध करना उचित नहीं है, लोभासक्त मनुष्यही परस्पर युद्ध करते हैं ॥ ६१ ॥ निश्चित बाणकी बाततो दूर रहे, पुष्पद्वारा भी युद्ध नहीं करना चाहिये क्योंकि हे देवि ! अपने देहके विद्ध होनेसे किस पुरुषको सुख होता है ? ॥ ६२ ॥ इस कारण हे कोमलाङ्गि ! तुम प्रसन्नचित्त होकर देवता और दानवोंसे जित महीपति महिषका भजन करो ॥ ६३ ॥ वो वह तुम्हारा सब अभिलषित मनोरथ पूर्ण करेंगे, अधिक क्या ! तुम्हीं सब प्रकारसे राजाकी पटरानी होगी इसमें संदेह नहीं ॥ ६४ ॥ हे देवि ! अत्यन्त कष्ट

भ्रूचापे विद्यमानेऽपि धनुषा किं प्रयोजनम् ॥ कटाक्षविशिखाः संति किं बाणैर्निष्प्रयोजनैः ॥ ६० ॥ संसारे दुःखदं युद्धं न कर्तव्यं विजानता ॥ लोभासक्ताः प्रकुर्वंति संग्रामं च परस्परम् ॥ ६१ ॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ॥ भेदनं निजगात्राणांकस्य तज्जायते मुदे ॥६२॥ तस्मात्त्वमपि तन्वंगि प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ भर्तारं भज मे नाथं देवदानवपूजितम् ॥ ६३ ॥ सतेऽत्र वांछितं सर्वं करिष्यति मनोरथम् ॥ त्वं पट्टम हिषी राज्ञः सर्वथा नात्र संशयः ॥ ६४ ॥ वचनं कुरु मे देवि प्राप्स्यसे सुखमुत्तमम् ॥ संग्रामे जय संदेहः कष्टं प्राप्य न संशयः ॥ ६५ ॥ जानासि राजनीतिं त्वं यथावद्वरवर्णिनि ॥ भुंक्ष्व राज्यसुखं पूर्णं वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ६६ ॥ पुत्रस्ते भविता कांतः सोऽपि राजा भविष्यति ॥ यौवने क्रीडयित्वांते वार्धक्ये सुखमाप्स्यसि ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे देवीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य ताम्रस्य जगदंबिका ॥ मेघगंभीरया वाचा हसंती तमुवाच ह ॥ १ ॥

करनेपरभी संग्रामके जय विजयमें संदेह रहता है, इसमें संशय नहीं, इस कारण मेरा कहना मानो तो उत्तम सुख पाओगी ॥ ६५ ॥ हे सुन्दरि ! तुम राज नीतिका यथार्थ तात्पर्य जानती हो, अतएव अनेक वर्षतक भली भांति राज्यसुख भोगो ॥ ६६ ॥ और महिषासुरका पाणिग्रहण करनेसे तुम्हारे अति मनोहर पुत्र होगा और वह पुत्र भी राजा होगा, तो यौवनकालमें क्रीड़ा करके तुम वार्द्धक्य कालमें भी सुख लाभ करोगी, इसमें संदेह नहीं है ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! जगदम्बिका दुर्गा ताम्रके इस प्रकार वचन सुनकर कुछेक हँसती हुई मेघके समान गंभीर वचन द्वारा उससे कहने लगी ॥ १ ॥

हे ताम्र ! तेरे प्रभु अतिकामातुर और मूढ़ हैं नहीं तो कार्य अकार्य ज्ञानसे रहित क्यों होते ? चित्तकी विचित्रता देखनेसे बोध होता है कि उनका मरण समय उपस्थित हुआ है. तुम जाकर उस मन्दमति महिषसे कहो कि तेरी प्रौढ़ा माता जिस प्रकार लम्बपुच्छा (लंबी पूँछवाली) सींगयुक्त और महोदरी महिषी है, मैं उसकी जातिकी नहीं हूं. वह जिस प्रकार तृणादि भक्षण करती है. मैं उस भांति नहीं करती ॥ २ ॥ इस कारण मेरी इच्छा करना अत्यन्त अन्याय है ॥ ३ ॥ देवेश, विष्णु, शंकर, ब्रह्मा, कुबेर, वरुण वा पावक ॥ ४ ॥ इनमेंसे मैं किसीकी अभिलाषा नहीं करती. इन सब देवताओंको छोड़कर किस गुणसे पशुको वरण करूंगी ? यदि वरण करूं तो लोकमें मेरी अत्यन्त निन्दा होगी ॥ ५ ॥ विशेष कर मैं फिर पतिकी अभिलाषा नहीं करती क्योंकि मेरा पति

देव्युवाच ॥ गच्छताम्र पतिं ब्रूहि मुमूर्षं मंदचेतसम् ॥ महिषं चातिकामार्तं मूढं ज्ञानविवर्जितम् ॥ २ ॥ यथा ते महिषी माता प्रौढा यवसभक्षिणी ॥ नाहं तथा शृंगवती लंबपुच्छा महोदरी ॥ ३ ॥ न कामयेऽहं देवेशं नैव विष्णुं न शंकरम् ॥ धनदं वरुणं नैव ब्रह्माणं न च पावकम् ॥ ४ ॥ एतान्देवगणान्हित्वा पशुं केन गुणेन वै ॥ वृणोम्यहं वृथा लोके गर्हणा मे भवेदिति ॥५॥ नाहं पतिंवरा नारीं वर्तते मे पतिः प्रभुः ॥ सर्वकर्ता सर्वसाक्षी ह्यकर्ता निःस्पृहः स्थिरः ॥ ६ ॥ निर्गुणो निर्ममोऽनंतो निरालंबो निराश्रयः ॥ सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी पूर्णः पूर्णाशयः शिवः ॥ ७ ॥ सर्वावासक्षमः शांतः सर्वदृक्सर्वभावनः ॥ तं त्यक्त्वा महिषं मंदं कथं सेवितुमुत्सहे ॥ ८ ॥ प्रबुध्य युध्यतां कामं करोमि यमवाहनम् ॥ अथवा मनुजानां वै करिष्ये जलवाहकम् ॥ ९ ॥ जीवितेच्छाऽस्ति चेत्पाप गच्छ पातालमाशु वै ॥ समस्तैर्दानवैर्युक्तस्त्वन्यथा हन्मि संगरे ॥१०॥ कामं सदृशयोर्योगः संसारे सुखदो भवेत् ॥ अन्यथा दुःखदो भूयादज्ञानाद्यदि कल्पितः ॥ ११ ॥

वर्त्तमान है. वह सबके निग्रहानुग्रहमें समर्थ है, वह समस्त कार्योंके कर्त्ता होकर भी अकर्त्ता है और वह सबके साक्षीस्वरूप निश्चल और निस्पृह ॥ ६ ॥ निर्गुण, निर्मम, अनन्त. निराश्रय निरावलम्ब, सर्वज्ञ सर्वगामी, पूर्ण और पूर्णाशय शिव हैं ॥ ७ ॥ वह सबके आवासस्वरूप सब कार्योंमें समर्थ शान्त सर्वभावन और सर्वदृक् हैं, मैं उनको त्यागकर किस प्रकार मन्दमति महिषकी सेवा करनेका यत्न करूं ? ॥ ८ ॥ वह ऐसा समझकर युद्ध करता है कि, मैं उसको युद्धमें जीतकर यमका वाहन करूंगी, वा मनुष्योंका जलवाहक करूँगी ॥ ९ ॥ उस पाखंडीको यदि जीनेकी इच्छा हो तो अभी सब दानओंके सहित पातालमें भाग जाय नहीं तो मैं समरमें उसको मारूंगी ॥ १० ॥ क्योंकि परस्पर समानवस्तुका संयोग ही संसारमें विशेष सुखदायक होता है, किंतु यदि अज्ञानतासे

इसके विपरीत घटना हो तो निःसंदेह क्लेशकर होती है, ॥ ११ ॥ तुमने अभी कहा कि हे भामिनी ! तुम मेरे पतिकी सेवा करो, इस कारण बोध होता है तुम भी अत्यन्त निर्बोध और मूर्ख हो क्योंकि मेरा यह रूप लावण्य और महिष शृंगवान्, अतएव किस प्रकार हम दोनोंका संबन्ध होगा: ॥ १२ ॥ तुम चले जाओ वा इच्छा हो तो युद्ध करो उसमें मैं तुमको बांधवों सहित विनाश करूंगी और यदि तुमलोग यज्ञभाग और देवलोक परित्याग करो तो सुखी हो सकते हो ॥१३॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! उस देवीने यह वचन कहकर ऐसी अद्भुत गर्जना करी कि कल्पान्त कालके समान उस घोर शब्दसे दानवोंको भय उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ तब उस भयंकर गर्जन शब्दसे पर्वतों सहित पृथ्वी कांपने लगी, अधिक क्या उससे दानवोंकी स्त्रियोंके गर्भ

मूर्खस्त्वमसि यद्ब्रूषे पतिं मे भज भामिनि ॥ क्काहं क्व महिषः शृंगी संबंधः कीदृशो द्वयोः ॥ १२ ॥ गच्छ युध्यस्व वा कामं हनिष्येहं सबांधवम् ॥ यज्ञभागं देवलोकं नो चेत्त्यक्त्वा सुखी भव ॥१३॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी जगर्ज भृशमद्भुतम् ॥ कल्पांत सदृशं नादं चक्रे दैत्यभयावहम् ॥ १४ ॥ चकंपे वसुधा चेलुस्तेन शब्देन भूधराः गर्भाश्च दैत्य पत्नीनां सस्रंसुर्गार्जितस्वनात् ॥ १५ ॥ ताम्रः श्रुत्वा च तं शब्दं भयत्रस्तमनास्तदा ॥ पलायनं ततः कृत्वा जगाम महिषांतिकम् ॥ १६ ॥ नगरे तस्य ये दैत्यास्तेऽपि चिंताम वाप्नुवन् ॥ बधिरीकृतकर्णाश्च पलायनपरा नृप ॥ १७ ॥ तदा क्रोधेन सिंहोऽपि ननाद भृशमुत्कटः ॥ तेन नादेन दैतेया भयं जग्मुरपि स्फुटम् ॥ १८ ॥ ताम्रं समागतं दृष्ट्वा हयारिरपि मोहितः ॥ चिंतयामास सचिवैः किं कर्तव्यमतः परम् ॥१९॥ दुर्गग्रहो वा कर्तव्यो युद्धं निर्गत्य वा पुनः ॥ पलायने कृतेश्रेयो भवेद्वा दानवोत्तमाः ॥ २० ॥ बुद्धिमंतो दुराधर्षाः सर्वे शास्त्रविशारदाः ॥ मंत्रः खलु प्रकर्तव्यः सुगुप्तः कार्यसिद्धये ॥ २१ ॥

भी गिरगये ॥ १५ ॥ ताम्र उस शब्दको सुन, भयसे चंचलमन हो महिषके निकट भाग गया ॥ १६ ॥ हे नृप ! उसके नगरमें उसकाल जो दानव उपस्थित थे, वे बधिर (बहरे) होकर भागे और उस विषयकी चिंतामें निमग्न हुए ॥ १७ ॥ फिर सिंहभी क्रोधसे जटा ऊर्ध्वमें उत्क्षिप्त करता हुआ घोरतर उत्कट गर्जना करने लगा. उस शब्दसे दानव बहुत डरे ॥ १८ ॥ महिषासुर ताम्रको लौट आया देखकर विमोहित हुआ और फिर क्या करना चाहिये ? मंत्रियोंके संग इस विषयकी चिंता करने लगा ॥ १९ ॥ महिषने कहा हे दानवोत्तम । अब दुर्गका आश्रय लेना चाहिये अथवा बाहर निकलकर युद्ध करना उचित है ! वा भागनेसे मंगल हो सकता है ॥ २० ॥ तुम लोग सभी बुद्धिमान् और सर्वशास्त्रमें सुपण्डित हो तथा शत्रुओंसे अजीत हो इस कारण कार्यसिद्धिके लिये

अत्यन्त गुप्तभावसे इस विषयकी मंत्रणा करो ॥ २१ ॥ क्योंकि मंत्रही राज्यका मूल है यदि वह मंत्र भलीभांतिसे रक्षित हो तो राज्य भी रक्षित होता है इस कारण सदाचारसंपन्न मंत्री गणद्वारा उस मंत्रणाको सब प्रकारसे रक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ ॥ २२ ॥ मंत्रणाके प्रकाशित होनेसे राज्य और भूपतिका विनाश होता है अतएव अभ्युदयके अभिलाषी मनुष्योंको भेदभयसे अवगत मंत्रणा अत्यन्त गुप्त रखनी चाहिये ॥ २३ ॥ हे मंत्रियों ! इस समय देश और कालके अनुसार नीति विषयका निर्णय करके इस विषयमें जो हित और हेतु युक्त हो वही कहो ॥ २४ ॥ देवताओंसे निर्मित होकर जो प्रबला बाला अकेली निराश्रय इस स्थानमें आई है. पहले उसका कारण खोजना चाहिये ॥ २५॥ वह बाला संग्रामकी प्रार्थना करती है इससे अधिक दूसरा आश्चर्यका विषय क्या है ? इसमें श्रेयोलाभ (कल्याण) होगा वा उसके विपरीत होगा त्रिभुवनमें इसको कौन कह सकता है ? ॥ २६ ॥ अनेक पुरुषोंकी

मंत्रमूलं स्मृतं राज्यं यदि स स्यात्सुरक्षितः ॥ मंत्रिभिश्च सदाचारैर्विधेयः सर्वथा बुधैः ॥ २२ ॥ मंत्रभेदे विनाशः स्याद्राज्यस्य भूपतस्तथा ॥ तस्माद्भेदभयाद्गुप्तः कर्तव्यो भूतिमिच्छता ॥ २३ ॥ तदत्र मंत्रिभिर्वाच्यं वचनं हेतुमद्धितम् ॥ कालदेशानुसारेण विचिंत्य नीतिनिर्णयम् ॥२४॥ या योषाऽत्र समायाता प्रबला देवनिर्मिता ॥ एकाकिनी निरालंबा कारणं तद्विचिंत्यताम् ॥ २५ ॥ युद्धं प्रार्थयते बाला किमाश्चर्यमतः परम् ॥ श्रेयोऽत्र विपरीतं वा को वेत्ति भुवनत्रये ॥ २६ ॥ न बाहूनां जयोऽप्यस्ति नैकस्य च पराजयः ॥ दैवाधीनौ सदा ज्ञेयौ युद्धे जयपराजयौ ॥२७॥ उपायवादिनः प्राहुर्दैवं किं केन वीक्षितम् ॥ अदृष्टमिति यन्नाम प्रवदंति मनीषिणः ॥ २८ ॥ तत्स त्त्वेऽपि प्रमाणं किं कातराशावलंबनम् ॥ न समर्थजनानां हि दैवं कुत्रापि लक्ष्यते ॥ २९ ॥ उद्यमो दैवमेतौ हि शूरकानरयोर्मतम् ॥ विचिंत्याद्य धिया सर्वं कर्तव्यं कार्यमादरात् ॥ ३० ॥

जय नहीं होती और एक पुरुषकी पराजय भी नहीं होती इस कारण जय और पराजयको सर्वथा दैवके अधीन जानना चाहिये ॥ २७ ॥ जो दोनोंके पक्षपाती हैं वे कहते हैं दैव क्या है ? पण्डित लोग जिसका नाम अदृष्ट कहते हैं, उस अदृष्टको क्या किसीने कभी देखा है ? अतएव जयलाभके लिये उचित उपाय अवलम्बन करना अत्यन्त कर्तव्य है ॥२८॥ यदि कहो कि दैव होनेपर भी हो सकता है तो इसमें प्रमाण क्या है ? यह केवल कातरपुरुषकी आशाका अवलम्बन मात्र है और जो अपना कार्य सम्पादन करनेमें समर्थ हैं, ऐसे पुरुषोंने दैवका आश्रय किया हो यह कहीं दिखाई नहीं देता ॥ २९ ॥ अतएव उद्यम शूर पुरुषोंके अभिमत और दैव कातर पुरुषोंके सम्मत हैं यही निश्चय है अतएव आज इन सब विषयोंको बुद्धिसे विचार कर यत्नसहित

कार्य संपादन करना चाहिये ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले नृपति महिषासुरके हेतु पूर्ण वचन सुनकर महाशय विडालाक्ष हाथ जोड़कर कहने लगा ॥ ३१ ॥ हे राजन्! यह विशाल नयना बाला किसकी पत्नी और कहांसे किस लिये आई है? प्रथम यह सब विषय यत्नसहित जानकर फिर इसका विचार करना चाहिये ॥ ३२ ॥ मुझको बोध होता है कि स्त्रीमे ही आपका मरण होगा. देवताओंने यह वृत्तान्त जानकर आन्तरिक यत्नसहित अपने तेजसे इस कमलनयना कामिनीको उत्पन्न करके भेजा है ॥ ३३ ॥ और वह सभी युद्ध करनेकी इच्छासे संग्रामदर्शनके अभिलाषी होकर आकाशमण्डलमें गुप्तभावसे स्थिति करते हैं यथा समयमें सभी उस कामिनीकी सहायता करेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ३४ ॥ संग्राम उपस्थित होनेपर विष्णु इत्यादि देवतालोग उस

व्यास उवाच ॥ इति राज्ञोवचः श्रुत्वा हेतुगर्भं महायशाः ॥ बिडालाख्यौ महाराजमित्युवाच कृतांजलिः ॥ ३१ ॥ राजन्नेषा विशालाक्षी ज्ञातव्या यत्नतः पुनः ॥ किमर्थमिह संप्राप्ता कुतः कस्य परिग्रहः ॥३२॥ मरणं ते परिज्ञाय स्त्रियाः सर्वात्मना सुरैः ॥ प्रेषिता पद्मपत्राक्षी समुत्पाद्य स्वतेजसः ॥३३॥ तेऽपिच्छन्नाः स्थिताः खेऽत्र सर्वे युद्धदिदृक्षवः ॥ समयेऽस्याः सहायास्ते भविष्यंति युयुत्सवः ॥३४॥ पुरतः कामिनीं कृत्वा ते वै विष्णुपुरोगमाः ॥ वधिष्यंति च नः सर्वान्सा त्वां युद्धे हनिष्यति ॥३५॥ एतच्चिकीर्षितं तेषां मया ज्ञातं नराधिप ॥ भवितव्यस्य न ज्ञानं वर्तते मम सर्वथा ॥३६॥ योद्धव्यं न त्वयाऽद्येति नाहं वक्तुं क्षमः प्रभो ॥ प्रमाणं त्वं महाराज कार्येऽत्र देवनिर्मिते ॥ ३७ ॥ त्वदर्थेऽस्माभिरनिशं मर्तव्यं कार्यगौरवात् ॥ विहर्तव्यं त्वया सार्धमेष धर्मोऽनुजीविनाम् ॥ ३८ ॥ विचारोऽत्र महानस्ति यदेका कामिनीं नृप ॥ युद्धं प्रार्थयतेऽस्माभिः ससैन्यैर्बलदर्पितैः ॥ ३९ ॥

कामिनीको आगे करके हम सबका विनाश करेंगे और वह देवी आपका वध करेगी ॥ ३५ ॥ हे नरनाथ! वही उसकी एकान्त वासना है यह मैंने प्रथमही जान लिया है किन्तु भवितव्य क्या होगा? यह मैं नहीं कह सकता ॥ ३६ ॥ हे प्रभो! इस समय हमको युद्ध करना उचित नहीं है. इस बातको कहनेमें मैं समर्थ नहीं हूं अतएव इस दैवकृत कार्यमें आपका जो विचार हो वही कीजिये ॥ ३७ ॥ महाराजके कार्यके गौरवानुसार हमको जीवन त्यागना चाहिये और विहारके समय आपके संग विहार करना उचित है यही अनुजीवियोंका यथार्थ धर्म है ॥ ३८ ॥ किन्तु हे पवर! वह कामिनी अकेली होनेपर भी जब बलदर्पित सेना समेत हमसे संग्रामको प्रार्थना करती है तब इसमें भली भांति विचार करना अवश्य कर्तव्य है ॥ ३९ ॥

दुर्मुखने कहा हे राजन् ! मैं निश्चय जानता हूं कि युद्धमें हमारी जीत नहीं होगी किंतु तो भी भागना उचित नहीं हैं क्योंकि इसमें पुरुषके यशकी हानि होती है ॥ ४० ॥ विशेषकर इन्द्रादि देवताओंके समरमें भी हमने जब ऐसा (निन्दित) कार्य नहीं किया तो असहाय स्त्रीके सन्मुखसे कौन पुरुष भागेगा? ॥४१॥ अतएव समरमें जय हो अथवा मरण हो युद्ध करना अवश्य कर्त्तव्य है. जो होनहार है वह अवश्यही होगा इसको विचारकर आज चिन्ता करनेकी क्या बात है ? ॥ ४२ ॥ समरमें मृत्यु होनेसे यशका लाभ और जीवन रहनेसे सुख होता है इन दोनों विषयोंको मनमें स्थिर करके अब युद्ध ही करना चाहिये ॥ ४३ ॥ आयुका क्षय होनेपर ही मरण होगा और भागनेसे यशकी हानि होगी इस कारण जीवन वा मरण विषयमें वृथा शोक करना उचित

दुर्मुख उवाच ॥ राजन्युद्धे जयो नोऽद्य भविता वेद्म्यहं किल ॥ पलायनं न कर्तव्यं यशोहानिकरं नृणाम् ॥ ४० ॥ इंद्रादीनां संयुगेऽपि न कृतं यज्जुगुप्सितम् ॥ एकाकिनीं स्त्रियं प्राप्य को हि कुर्यात्पलायनम् ॥ ४१ ॥ तस्माद्युद्धं प्रकर्तव्यं मरणं वा रणे जयः ॥ यद्भावि तद्भवत्येव काऽत्र चिंता विपश्यतः ॥ ४२ ॥ मरणेऽत्र यशःप्राप्तिर्जीवने च तथा सुखम् ॥ उभयं मनसा कृत्वा कर्तव्यं युद्धमद्य वै ॥४३॥ पलायने यशोहानिर्मरणं चायुषः क्षये ॥ तस्माच्छोको न कर्तव्यो जीविते मरणे वृथा ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ दुर्मुखस्य वचः श्रुत्वा बाष्कलो वाक्यमब्रवीत् ॥ प्रणत प्रांजलिर्भूत्वा राजानं वाक्यकोविद ॥ ४५ ॥ बाष्कल उवाच ॥ राजंश्चिता न कर्तव्या कार्येऽस्मिन्कातराऽप्रिये ॥ अहमेकोहनिष्यामि चंडीं चंचललोचनाम् ॥ ४६ ॥ उत्साहस्तु प्रकर्तव्यः स्थायीभावो रसस्य च ॥ भयानको भवेद्वैरी वीरस्य नृपसत्तम ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्यक्त्वा भयं भूप करिष्ये युद्धमद्भुतम् ॥ नयिष्यामि नरेंद्राहं चंडिकां यमसादनम् ॥ ४८ ॥ न बिभेमि यमादिंद्रात्कुबेराद्वरुणादपि ॥ वायोर्वह्नेस्तथा विष्णोः शंकराच्छशिनो रवेः ॥ ४९ ॥

नहीं है ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! दुर्मुखकी बात सुनकर वाक्य विशारद बाष्कल प्रणत हो हाथ जोड़ राजासे कहने लगा ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! मैं अकेला उस चंचल लोचना चण्डीको मारूंगा. हे महाराज ! इस अप्रियकार्यमें कातरभावसे चिन्ता करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ४६ ॥ हे नृपसत्तम ! वीररसका स्थायी भाव उत्साह फिर भयानक उसका बैरी है इस कारण उत्साह अवलम्बन करना हमारा अवश्य कर्त्तव्य है ॥४७॥ हे राजन् ! भय छोड़कर हम घोरतर युद्ध करेंगे अधिक क्या हम समरमें उस चण्डिकाको यमसदन प्रेरण करैंगे इसमें संदेह नहीं॥ ४८ ॥ क्या यम क्या इन्द्र क्या कुबेर क्या वायु क्या अग्नि क्या विष्णु क्या शंकर क्या चन्द्रमा क्या हरि मैं किसीका भी भय नहीं करता ॥ ४९ ॥

उस अकेली मदगर्वित स्त्रीकी तो बातही क्या है. मैं शिलाशाणित बाणोंसे उस अबला ललनाको निहत करूंगा ॥ ५० ॥ आज आप मेरा बाहुबल देखकर सुखपूर्वक विहार कीजिये. उसके संग युद्ध करनेमें आपको संग्राममें नहीं जाना होगा ॥ ५१ ॥ व्यासजी बोले हे राजेन्द्र ! बाष्कलके मदगर्वित होकर महीपति महिषके इस प्रकार कहने पर फिर दुर्द्धर उसको प्रणाम करके कहने लगा ॥ ५२ ॥ हे महीन्द्र ! दैवनिर्मित अष्टादश भुजायुक्त रमणीय देवी जिस किसी कार्यसे यहा आई हो. मैं उसका पराजय करूंगा ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! मुझको बोध होता है. आपको भय दिखानेके लिये ही देवताओंने उस माया रमणीको बनाया है. अतएव इसको विभीषिका (भयदात्री) जानकर आप मनका मोह दूर कीजिये ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! राजनीति इस प्रकार

एकाकिनी तथा नारी किं पुनर्मदगर्विता॥अहं तां निहनिष्यामि विशिखैश्च शिलाशितैः ॥५०॥ पश्य बाहुबलं मेऽद्य विहरस्व यथासुखम् ॥ भवताऽत्र न गंतव्यं संग्रामेऽप्यनया समम् ॥ ५१ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं ब्रुवति राजेंद्रं बाष्कले मदगर्विते ॥ प्रणम्य नृपतिं तत्रदुर्धरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५२ ॥ दुर्धरउवाच ॥ महिषाऽहं विजेष्यामिदेवींदेवविनिर्मिताम् ॥ अष्टादशभुजांरम्यांकारणाच्च समागता ॥ ५३ ॥ राजन्भीषयितुं त्वां वै मायैषा निर्मिता सुरैः ॥ विभीषिकेयं विज्ञाय त्यज मोहं मनोगतम् ॥ ५४ ॥ राजनीतिरियं राजन्मंत्रि कृत्यं तथा शृणु ॥ सात्त्विका राजसाः केचित्तामसाश्च तथा परे ॥ ५५ ॥ मंत्रिणस्त्रिविधा लोके भवंति दानवाधिप ॥ सात्त्विकाः प्रभुकार्याणि साधयंति स्वशक्तिभिः ॥ ५६ ॥ आत्मकृत्यं प्रकुर्वंति स्वामिकार्याविरोधतः ॥ एकचित्ता धर्मपरा मंत्र शास्त्रविशारदाः ॥ ५७ ॥ राजसा भिन्नचित्ताश्च स्वकार्यनिरताः सदा ॥ कदाचित्स्वामिकार्यं ते प्रकुर्वंति यदृच्छया ॥ ५८ ॥ तामसा लोभनिरताः स्वकार्यनिरताः सदा॥ प्रभुकार्यं विनाश्यैव स्वकार्यं साधयंति ते ॥ ५९ ॥

है अब मंत्रियोंके कार्यादिका विषय सुनो. हे दानवनाथ ! इस लोकमें मंत्री तीन प्रकारके हैं. कोई सात्विक, कोई राजसिक और कोई तामसिक होते हैं. जो मंत्री सत्त्वगुण प्रधान हैं वे अपनी शक्तिके अनुसार प्रभुका कार्य करते हैं. ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ सात्त्विक मन्त्री लोग मंत्रशास्त्र विशारद और धर्म परायण होकर एकाग्रचित्तसे प्रभुके कार्यकी हानि न करके अपना कार्य करते हैं ॥ ५७ ॥ और जो राजस हैं उनका चित्त अन्य प्रकार है वे सदाही आत्म कार्यमें निरत होते हैं और कभी कभी इच्छानुसार प्रभुका कार्य भी करते हैं ॥ ५८ ॥ तामस मंत्री लोग सदा लोभके वशीभूत होकर अपने कार्यमें निरत होते हैं इस कारण वे प्रभुका कार्य नष्ट करके भी अपना कार्य संपादन करते हैं ॥ ५९ ॥

वही विग्रहादि समयमें शत्रुके दिये द्रव्यसे वंचित होकर वेदको प्राप्त होते हैं,सुतरां गृहमें रहकर अपने छिद्र शत्रुपक्षीय लोगोंको दिखा देते हैं ॥ ६० ॥ उनके कोषमें रुद्ध हुई तलवारके समान निरन्तर कार्यभेद करते हैं अधिक क्या युद्धकाल उपस्थित होनेपर प्रभुको सदा भय दिखाते हैं ॥ ॥ ६१ ॥ अतएव हे महाराज ! उनका कभी विश्वास न करै; उनका विश्वास करनेसे सर्वदा कार्य और मंत्रणाकी हानि होती है ॥ ६२ ॥ जो खल, लोभ तत्पर, बुद्धहीन, शठ औरं सदा पापकार्यमें तत्पर हैं. वे तामस मंत्रीगण विश्वास पात्र होकर क्या अकार्य नहीं करते हैं ॥ ६३ ॥ इसलिये हे नृपसत्तम ! मैं समरमें जाकर आपका कार्य करूंगा. सुतरां आपको कुछ चिन्ता करनेका प्रयोजन नहीं ॥ ६४ ॥ उस दुष्टचारिणी रमणीको लेकर मैं अभी आता हूँ. मैं

समये ते विभिद्यंते परैस्तु परिवंचिताः ॥ स्वच्छिद्रं शत्रुपक्षीयानिर्दिशंति गृह स्थिताः ॥ ६० ॥ कार्यभेदकरा नित्यं कोशगुप्ताऽसि वत्सदा ॥ संग्रामेऽथ समुत्पन्ने भीषयंति प्रभुं सदा ॥६१॥ विश्वासस्तु न कर्तव्य स्तेषांराजन्कदाचन ॥ विश्वासे कार्यहानिः स्यान्मंत्रहानिः सदैव हि ॥ ६२ ॥ खला किं किं न कुर्वंति विश्वस्ता लोभतत्पराः ॥ तामसाः पापनिरता बुद्धिहीनाः शठास्तथा ॥ ६३ ॥ तस्मात्कार्यं करिष्यामि गत्वाऽहं रणमस्तके ॥ चिंता त्वया न कर्तव्या सर्वथा नृपसत्तम ॥ ६४ ॥ गृहीत्वा तां दुराचारामागमिष्यामि सत्वरः ॥ पश्य मेऽद्य बलं धैर्यं प्रभुकार्यं स्वशक्तितः ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंञ्चमस्कं० द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता तौ महाबाहू दैत्यो बाष्कलदुर्मुखौ ॥ जग्मतुर्मददिग्धांगौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ ॥ १ ॥ तौ गत्वा समरे देवीमूचतुर्वचनं तदा ॥ दानवौ च मदोन्मत्तौ मेघगंभीरया गिरा ॥२॥ देवि देवा जिता येन महिषेण महात्मना ॥ वरय त्वं वरारोहे सर्वदैत्याधिपं नृपम् ॥ ३ ॥ स कृत्वा मानुषं रूपं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ भूषितं भूषणैर्दिव्यैस्त्वामेष्यति रहः किल ॥ ४ ॥

अपनी शक्ति और बलके अनुसार आपका कार्य करूंगा. अतएव आप स्थिर चित्त होकर मेरा बल, धैर्य और पराक्रम देखिये ॥ ६५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ अनन्तर अस्त्रशस्त्र विद्यामें पारदर्शी महाबाहु दानवश्रेष्ठ बाष्कल और दुर्मुख वीर मदसे मत्त हो संग्रामके सन्मुख चले ॥ १ ॥ उन मदमत्त दोनों दानवोंसे समराङ्गणमें जाय मेघके समान गंभीर वाणी द्वारा देवीसे कहा ॥ २ ॥ हे वरारोहे देवि ! जिस महात्मा महिषासुरने देवताओंको जीता है. तुम सब दैत्योंके अधिपति उस नरपतिका वरण करो ॥ ३ ॥ वह सर्वलक्षण समन्वित मानुषरूप धारण पूर्वक मनोहर गहनोंसे विभूषित होकर गुप्त भावसे आपके समीप आवेंगे ॥ ४ ॥

हे शुचिस्मिते ! तुम उस मनोहर महिषासुरमें अपना मनोगत परम भाव स्थापन करो, तो इस त्रैलोक्यके संपूर्ण विभव इच्छानुसार लाभ कर सकोगी ॥ ५ ॥ हे चारुभाषिणी ! अधिक और क्या कहैं, उस महावीर महिषासुरको पतित्वमें वरण करनेसे स्त्री जिस अतुल संसार सुखकी अभिलाषा करेगी, वह आपही प्राप्त होगा ॥ ६ ॥ बाष्कल और दुर्मुखके इस प्रकार वचन सुनकर देवीने कहा रे मूढ ! तैंने क्या मुझको मोहित विचारा है ? मुझको क्या और बल नहीं हैं, जो मैं उस शठ महिषका पतिरूपमें भजन करूं ॥ ७ ॥ क्योंकि जो पुरुष कुल, शील, और गुणमें समान हो, वा जो रूप, चतुरता, बुद्धशील और क्षमादि गुणमें अधिक हो, कुलांगना उसीका भजन करती हैं ॥ ८ ॥ अतएव कौन देवरूपिणी नारी कामातुर होकर पशुगणोंमें अधम

त्रैलोक्यविभवं कामं त्वमेष्यसि शुचिस्मिते ॥ महिषे परमं भावं कुरु कांते मनोगतम् ॥ ५ ॥ कृत्वा पतिं महावीरं संसारसुखमद्भुतम् ॥ त्वं प्राप्स्यसि पिकालापे योषितां खलु वांछितम् ॥ ६ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जाल्म त्वं किं विजानासि नारीयं काममोहिता ॥ मदबुद्धि बलाऽत्यर्थं भजेयं महिषं शठम् ॥ ७ ॥ कुलशीलगुणैस्तुल्यं तं भजंति कुलस्त्रियः ॥ अधिकं रूपचातुर्यबुद्धिशीलक्षमादिभिः ॥ ८ ॥ का नु कामातुरा नारी भजेच्च पशुरूपिणम् ॥ पशूनामधमं नूनं महिषं देवरूपिणी ॥ ९ ॥ गच्छतं महिषं तूर्णं भूपं बाष्कलदुर्मदौ ॥ वदतं मद्वचो दैत्यं गजतुल्यं विषाणिनम् ॥ १० ॥ पातालं गच्छ वाभ्येत्य संग्रामं कुरु वा मया ॥ रणे जाते सहस्राक्षो निर्भयः स्यादिति ध्रुवम् ॥ ११ ॥ हत्वाऽहं त्वां गमिष्यामि नान्यथा गमनं मम ॥ इत्थं ज्ञात्वा सुदुर्बुद्ध यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १२ ॥ मामनिर्जित्य भूभागे न स्थानं ते कदाचन ॥ भविष्यति चतुष्पादं दिवि वा गिरिकन्दरे ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तौ तौ तया दैत्यौ कोपाकुलितलोचनौ ॥ धनुर्बाणधरौ वीरौ युद्धकामौ बभूवतुः ॥ १४ ॥

पशुरूपी महिषका भजन करेगी ? ॥ ९ ॥ हे असुरद्वय ! तुम अभी गजतुल्य कलेवर और विषाण [सींग] धारी उस भूपति महिषके निकट जाओ और उससे कहो कि ॥ १० ॥ तू पातालमें प्रवेश कर वा मेरे संग आकर संग्राममें प्रवृत हो, युद्ध उपस्थित होनेपर देवराज अवश्य ही निर्भय होंगे, इसमें संदेह नहीं ॥ ११ ॥ रे दुर्बुद्धे ! मैं तुझको संहार करके तब जाऊंगी; मेरा आना कभी विफल नहीं होगा, अतएव यह जानकर जो इच्छा हो सो कर ॥१२॥ रे पशु ! मुझको विना जीते क्या स्वर्ग, क्या भूभाग, क्या पर्वतकी कन्दरा कहीं तेरा स्थान नहीं होगा; यह निश्चय जानना चाहिये ॥१३॥ व्यासजी बोले, देवीके इस प्रकार वचन सुनकर वे वीरवर दोनों दानव कोपसे रक्तनेत्र हो धनुर्बाण धारण करके युद्धके लिये कृत निश्चय हुए ॥ १४ ॥

हे कुरुकुल धुरन्धर ! तब वह देवी घोर गर्जना करके निर्भय वहां अवस्थित रही तब वे दोनों दानव बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ भगवती भी देवताओंकी कार्य सिद्धिके लिये मधुरशब्द करके दोनों दानवोंपर बाण वर्षाने लगी ॥ १६ ॥ उनमें प्रथम बाष्कल शीघ्र रणस्थलमें उनके सन्मुख हुआ, किन्तु दुर्मुख उस समय देखनेवाला होकर देवीके सन्मुख अवस्थित रहा ॥ १७ ॥ उस समय उस देवी और बाष्कलका घोर संग्राम उपस्थित हुआ बाण, असि और परिघके आघातसे वह युद्ध मंदबुद्धि लोगोंको भयदायक हुआ ॥ १८ ॥ अनन्तर जगन्माताने युद्ध दुर्मद बाष्कलको देख क्रोधके वश हो शिलाशाणित पांच वाण कानों पर्यंत खैंचकर मारे ॥ १९ ॥ दानवने भी निशित बाणोंसे देवीके बाणोंको काटकर सात बणोंसे उस सिंहवाहिनीपर आघात किया ॥ २० ॥

कृत्वा सुविपुलं नादं देवी सा निर्भया स्थिता ॥ उभौ च चक्रतुस्तीव्रां बाणवृष्टिं कुरूद्वह ॥ १५ ॥ भगवत्यपि बाणौघान्मुमोच दानवौ प्रति ॥ कृत्वाऽतिमधुरं नादं देवका र्यार्थसिद्धये ॥ १६ ॥ तयोस्तु बाष्कलस्तूर्णं संमुखोऽऽभूद्रणांगणे ॥ दुर्मुखः प्रेक्षकस्तत्र देवीमभिमुखः स्थितः ॥ १७ ॥ तयोर्युद्धमभूद्घोरं देवीबाष्कलयोस्तदा ॥ बाणासिपरिघाघातैर्भयदं मंदचेतसाम् ॥ १८ ॥ ततः क्रुद्धा जगन्माता दृष्ट्वा तं युद्धदुर्मदम् ॥ जघान पंचभिर्बाणैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥१९॥ दानवोऽपि शरान्देव्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ सप्तभिस्ताडयामास देवीं परिसिंहो स्थिताम् ॥२०॥ साऽपि तं दशभिस्तीक्ष्णैः सुपीतैः सायकैः खलम् ॥ जघान तच्छरांश्छित्त्वा जहास च मुहुर्मुहुः ॥२१॥: अर्धचन्द्रेण बाणेन चिच्छेद च शरासनम् ॥ बाष्कलोऽपि गदां गृह्य देवीं हंतुमुपाययौ ॥२२॥ आगच्छंतं गदापाणिं वंदना मदगर्वितम् ॥ चंडिका स्वगदापातैः पातयामास भूतले॥२३॥ बाष्कलः पतितो भूमौ मुहूर्तादुत्थितः पुनः ॥ चिक्षेप च गदां सोऽपि चंडिकां चंडविक्रमः ॥ २४ ॥ तामागच्छंतमालोक्य देवी शूलेन वक्षसि ॥ जघान बाष्कलं क्रुद्धा पपात च ममार सः ॥ २५ ॥

देवीने भी उसके बाणोंको काटकर दश सुशाणित तीक्ष्ण बाणोंसे उस खलपर प्रहार किया और वारंवार हास्य करने लगी ॥ २१ ॥ फिर अर्द्धचन्द्र बाणसे उसका शरासन काट डाला तब बाष्कल गदा लेकर देवीको मारनेकी इच्छासे दौड़ा ॥ २२ ॥ उस मदगर्वित दानवको गदा हाथमें लिये आता देख चण्डिकाने अपनी गदाके प्रहारसे उसको पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २३ ॥ प्रचंडपराक्रमी बाष्कलने पृथ्वीमें गिरकर मुहूर्त्त मात्रमें ही फिर उठा और देवीके ऊपर गदा चलाई ॥ २४ ॥ देवीने उसको पुनर्वार आता देखकर क्रोधसहित शूलग्रहण कर उसके हृदयको विद्ध किया तब बाष्कलने उस प्रहारसे गिरकर प्राण त्याग किया ॥२५॥

जब बाष्कल समरमें गिर गया तब उस दुरात्माको सब सेना युद्ध छोड़कर भागने लगी और उस काल देवता लोग आनंदित होकर आकाशसे जयशब्द उच्चारण करने लगे ॥ २६ ॥ उस दैत्यके मर जानेपर दुर्मुख क्रोधसे लाल लाल नेत्रकर अधिक सेनाको संग ले संग्राम करनेके लिये देवके समीप आया ॥ २७ ॥ "हे अबले! ठहर ठहर" इस प्रकार बारंबार कहते हुए सर्वाङ्ग कवचसे आच्छादित कर धनुर्बाण धारण पूर्वक श्रीमान् दुर्मुख रथमें चढ़ देवीके समीप आया ॥ २८ ॥ देवीने उसको आता देखकर शंखध्वनिकरी और उस दानवको कोपान्वित करनेके लिये ज्याशब्द करने लगी॥ २९ ॥ तब असुरने (सर्पराज) के समान तीक्ष्ण बाण चलाये. महामाया उनको अपने बाणोंसे काटकर सिंहनाद करने लगी ॥ ३० ॥ हे नरनाथ! तिसकाल बाण, शक्ति,

पतिते बाष्कले सैन्यं भग्नं तस्य दुरात्मनः ॥ जयेति च मुदा देवाश्चुक्रुशुर्गगने स्थिताः ॥ २६ ॥ तस्मिंश्च निहते दैत्ये दुर्मुखोऽतिबलान्वितः ॥ आजगाम रणे देवीं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २७ ॥ तिष्ठ तिष्ठाबले सोऽपि भाषमाणः पुनः पुनः ॥धनुर्बाणधरः श्रीमान्रथस्थः कवचावृतः ॥ २८ ॥ तमागच्छंतमालोक्य देवी शंखमवादयत् ॥ कोपयंती दानवं तं ज्याघोषं च चकार है ॥ २९ ॥ सोऽपि बाणान्मुमोचाऽऽशु तीक्ष्णानाशींविषोपमान् ॥ स्वबाणैस्तान्महामाया चिच्छेद च ननाद च ॥ ३० ॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं नृप ॥ बाणशक्तिगदा घातमुसलैस्तोमरैस्तथा ॥ ३१ ॥ रणभूमौ तदा जातरुधिरौघवहा नदी॥पतितानि तदा तीरे शिरांसि प्रबभुस्तदा ॥ ३२ ॥ यथा संतरणार्थाय यमकिंकरनायकैः ॥ तुंबीफलानि नीतानि नवशिक्षापरैर्मुदा ॥ ३३ ॥ रणभूमिस्तदा घोरा बभूवातीव दुर्गमा ॥ शरीरैः पतितैर्भूमौ खाद्यमानैर्वृकादिभिः ॥ ३४ ॥ गोमायुसारमे याश्च काकाः कंका अयोमुखाः॥गृध्राः श्येनाश्च खादति शरीराणि दुरात्मनाम् ॥३५॥ ववौ वायुश्च दुर्गंधो मृतानां देहसंगतः॥ अभूत्किलकिलाशब्दः खगानां पलभक्षिणाम् ॥ ३६ ॥

गदा, मूशल और तोमरादि वर्षण द्वारा दोनोंका परस्पर तुमुल संग्राम उपस्थित हुआ ॥ ३१ ॥ तब रणभूमिसे रुधिर प्रवाहिनी नदियें बहने लगीं उनके तटोंपर पड़े हुए मस्तक ऐसे दिखाई देने लगे ॥ ३२ ॥ मानों नूतन संतरण शिक्षामें प्रवृत्त यमकिंकरोंके दलपति लोग वैतरणी नदीमें संतरण करनेके लिये आनंदित हृदयसे तुंबीफल लाते हैं ॥ ३३ ॥ तिसकाल घोरतर रणभूमि अतीव दुर्गम हुई कहीं शरीर पृथ्वीमें पड़े हैं. वृक इत्यादि जीव उनका मांस भक्षण करते हैं॥ ३४ ॥ कहीं शृगाल, कुक्कुर, कंक, काक, अयोमुख, गृध्र, श्येन इत्यादि मांस भोजी पशु और पक्षी उन दुरात्माओंके शरीरको भक्षण करते हैं ॥ ३५ ॥ तिस समय वायु मृत पुरुषोंके देहस्पर्शसे दुर्गन्ध होकर बहने लगा और मांस भोजी पक्षियोंका किल किला शब्द होने लगा ॥ ३६ ॥

तब दुष्ट स्वभाव दुर्मुख कालसे विमोहित हो क्रोधसे दक्षिण हाथ उठाय गर्वसहित देवीसे कहने लगा ॥ ३७ ॥ हे चंडिके ! तुमको दुर्बुद्धि उपस्थित हुई है तुम इस समय भाग जाओ नहीं तो तुम्हारा संहार करूंगा और यदि ऐसा न हो तो तुम मदगर्वित दैत्यवर महिषका भजन करो ॥ ३८ ॥देवि बोली रे दुष्ट ! आज तेरी मृत्यु निकट उपस्थित है, इसी कारण तू मोहित होकर प्रलाप वाक्य कहता है अतएव बाष्कलके समान अभी तेरा विनाश करूंगी ॥ ३९ ॥ रे मन्द ! तू पलायन कर वा यदि मरनेकी अभिलाषा हो तो ठहर प्रथम तुझको मारकर फिर महिषीसुत मूढमति महिषका विनाश करूंगी ॥ ४० ॥ देवीके इस प्रकार वचन सुनकर दुर्मुख मरनेमें उद्यत हो चंडिकाके ऊपर दारुण बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४१ ॥ देवीने भी तत्काल उसके बाणोंको काटकर वृत्रासुरके प्रति

तदा चुकोप दुष्टात्मा दुर्मुखः काल मोहितः ॥ देवीमुवाच गर्वेण कृत्वा चोर्ध्वं करं शुभम् ॥ ३७ ॥ गच्छ चंडि हनिष्यामि त्वामद्यैवसुबालिशे ॥ दैत्यं वा भज वामोरु महिषं मदगर्वितम् ॥ ३८ ॥ देव्युवाच ॥ असन्नमरणःकामं प्रलंपस्यद्यमोहितः ॥ अद्यैव त्वां हनिष्यामि यथाऽयं बाष्कलो हतः ॥ ३९ ॥ गच्छ वा तिष्ठ वा मंद मरणं यदि रोचते ॥ हत्वां त्वैवधिष्यामि बालिशं महि षीतसुतम् ॥ ४० ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या दुर्मुखो मर्तुमुद्यतः ॥ मुमोच बाणवृष्टिं तु चंडिकां प्रति दारुणम् ॥ ४१ ॥ साऽपि तां तरसा च्छित्त्वा बाणवृष्टिं शितैः शरैः ॥ जघान दानवं क्रुद्धा वृत्रं वज्रधरो यथा ॥ ४२ ॥ तयोः परस्परं युद्धं संजातं चातिकर्कशम् ॥ भयदं कातराणां च शूराणां बलवर्धनम् ॥ ४३ ॥ देवी चिच्छेद तरसा धनुस्तस्य करे स्थितम् ॥ तथैव पञ्चभिर्बाणैर्बभंज रथमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ रथे भग्ने महाबाहुः पदातिर्दुर्मुखस्तदा ॥ गदां गृहीत्वा दुर्धर्षा जगाम चंडिकां प्रति ॥ ४५ ॥ चकार सा गदाघातं सिंहमौलौ महाबलात् ॥ न चचाल हरिः स्थानात्ताडितोऽपि महाबलः ॥ ४६ ॥

वज्रधरके समान शाणित बाणोंसे क्रोधित हो दानवको विद्ध किया ॥ ४२ ॥ उन दोनोंका परस्पर दारुण संग्राम उपस्थित हुआ, हे राजन् ! इस युद्धको देखनेसे कातर पुरुषको भय और शूरोंको उत्साह होने लगा ॥ ४३ ॥ तब देवीने शीघ्रतासहित उसके हाथमें स्थित धनुषको काट डाला और पांच बाणोंसे उसका उत्तम रथ तोड़ दिया ॥ ४४ ॥ रथ टूटनेपर महाबाहु दुर्मुख दुर्द्धर्ष गदा ले पैदल वेगसे देवीके सन्मुख दौड़ ॥ ४५ ॥ उसने सिंहके मस्तकमें विषम बलसहित गदाप्रहार की किन्तु महाबल सिंह ताडित होकर भी उस स्थानसे कुछ विचलित नहीं हुआ ॥ ४६ ॥

असुरको गदा हाथमें लिये सन्मुख खड़ा देख अम्बिकाने शितधार खड्गसे उसका मस्तक काट डाला ॥ ४७ ॥ मस्तक कटनेसे मृत होकर दुर्मुख पृथ्वीमें गिर गया तब देवता आनंदित होकर घोरतर जयजयशब्द उच्चारण करने लगे ॥ ४८ ॥ दुर्मुखके मारे जानेपर देवता लोग आकाशमें स्थित रहकर देवीका स्तव, पुष्पवृष्टि और जय घोषणा करने लगे ॥ ४९ ॥ ऋषिगण, सिद्धिगण, गंधर्वगण, विद्याधरगण और किन्नरगणोंने समरांगणमें उस दानवको नियत देखकर अत्यन्त सन्तोष प्राप्त किया ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! महिषासुर दुर्मुखकी मरणवार्त्ता सुनकर क्रोधसे अंधा होगया और दानवोंसे "यह क्या हुआ. यह क्या हुआ." इस प्रकार कहने लगा ॥ १ ॥ हाय !

अम्बिका तं समालोक्य गदापाणिं पुरःस्थितम् ॥ खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद मौलिमत् ॥ ४७ ॥ छिन्ने च मस्तके भूमौ पपात दुर्मुखो मृतः ॥ जयशब्दं तदा चक्रुर्मुदिता निर्जरा भृशम् ॥ ४८ ॥ तुष्टुवुस्तां तदा देवीं दुर्मुखे निहतेऽमराः ॥ पुष्पवृष्टिं तथाचक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः ॥ ४९ ॥ ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरकिन्नराः ॥ जहृषुस्तं हतं दृष्ट्वा दानवं रणमस्तके ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेपंचमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ दुर्मुखं निहतं श्रुत्वा महिषः क्रोधमूर्च्छितः ॥ उवाच दानवान्सर्वान्किं जातमिति चासकृत् ॥ १ ॥ निहतौ दानवौ शूरौ रणे दुर्मुखबाष्कलौ ॥ तन्व्या तत्परमाश्चर्यं पश्यंतु दैवचेष्टितम् ॥ २ ॥ कालो हिबलवान्कर्ता सततं सुखदुःखयोः ॥ नराणां परतंत्राणां पुण्यपापानुयोगतः ॥ ३ ॥ निहतौ दानवश्रेष्ठौ किं कर्तव्यमतः परम् ॥ ब्रुवंतु मिलिताः सर्वे यद्युक्तं कार्यसंकटे ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं ब्रुवंति राजेन्द्र महिषेऽतिबलान्विते ॥ चिक्षुराख्यस्तु सेनानीस्तमुवाच महारथः ॥ ५ ॥ राजन्नहं हनिष्यामि का चिन्ता स्त्रीविहिंसने ॥ इत्युक्त्वा स्वबलैर्युक्तः प्रययौ रथसंयुतः ॥ ६ ॥

उस क्षीणाङ्गी रमणीने दानववीर दुर्मुख और बाष्कलको समरमें निहत किया है. हे असुरो ! इस समय इस परम आश्चर्य कर देवकार्यको अवलोकन करो ॥ २ ॥ पुण्य और पापके योगानुसार मनुष्य पराधीन हैं. सुतरां बलवान् काल तदनुसार ही उनके सुख और दुःखका विधान करता है ॥ ३ ॥ दो प्रधान दानव मारे गये हैं: अब हमको क्या करना चाहिये ? इस विषम विपद्कालमें जो युक्तिसंगत हो. तुम सब लोग मिलकर वही कहो ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! जब उस बलशाली महिषने यह बात कही तब सेनापति महारथ चिक्षुराख्यने उससे कहा ॥ ५ ॥ हे राजन ! एक अबलाको मारनेके लिये आपको क्या चिन्ता है ? मैं ही उसको निहत करूंगा. यह कहकर उसने अपनी सेनासहित रथपर चढ समरमें प्रस्थान किया ॥ ६ ॥

महाबली ताम्र उसका पार्श्वरक्षक होकर सहचर हुआ. तब उसकी महासेनाके कोलाहलसे आकाश और सब दिशायें पूर्ण होगई ॥ ७ ॥ मंगलदायिनी देवी भगवतीने उसको आता हुआ देखकर अतिअद्भुत शंखध्वनि, ज्याशब्द और घंटानाद किया ॥ ८ ॥ उस शब्दको सुनकर सब देवताओंके शत्रु भयसे त्रसित हुए और यह क्या ? यह कहते कहते भयसे कंपित कलेवर हो भयसे भागने लगे ॥ ९ ॥ तब चिक्षुराख्यने उनको भागता हुआ देख अत्यन्त क्रोधित होकर कहा हे दानवो ! अब क्या तुमको भय उपस्थित हुआ है ॥ १० ॥ समरमें बाणोंसे इस मदोन्मना कामिनीको अभी मारूंगा इस कारण तुम भय छोड़कर समरमें स्थिर होकर रहो ॥ ११ ॥ यह कहकर दानवश्रेष्ठ चिक्षुर धनुर्बाणधारण करके सेनासहित समरमें आया और निश्शंक होकर देवीसे कहा

द्वितीयं पार्ष्णिरक्षं तु कृत्वा ताम्रं महाबलम् ॥ महता सैन्यघोषेण पूरयन्गगनं दिशः ॥७॥ तमागच्छंतमालोक्य देवी भगवती शिवा ॥ चकार शंखज्याघोषं घंटानादं महाद्भुतम् ॥ ८ ॥ तत्रसुस्तेन शब्देन ते च सर्वे सुरारयः ॥ किमेतदिति भाषंतो दुद्रुवुर्भयकंपिताः ॥ ९ ॥ चिक्षुराख्यस्तु तान्दृष्ट्वा पलायनपरायणान् ॥ उवाचातीव संक्रुद्धः किं भयं वः समागतम् ॥ १० ॥ अद्यैवाहं हनिष्यामि बाणैर्बालां मदोन्नताम् ॥ तिष्ठंत्वत्र भयं त्यक्त्वा दैत्याः समरमूर्धनि ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वा दानव श्रेष्ठश्चापपाणिर्बलान्वितः ॥ आगत्य संगरे देवीमित्युवाच गतव्यथः ॥ १२ ॥ किं गर्जसि विशालाक्षि भीषयन्तीतरान्नरान् ॥ नाहं बिभेमि तन्वंगि श्रुत्वा तेऽद्य विचेष्टितम् ॥ १३ ॥ स्त्रीवधे दूषणं ज्ञात्वा तथैवाकीर्तिसंभवम् ॥ उपेक्षां कुरुते चित्तं मदीयं वामलोचने ॥ १४ ॥ स्त्रीणां युद्धं कटाक्षैश्च तथा हावैश्च सुदरि ॥ न शस्त्रैर्विहितं क्वापि त्वादृशीनां कदाचन ॥ १५ ॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ॥ भवादृशीनां देहेषुदुनोति मालतीदलम् ॥ १६ ॥

॥ १२ ॥ हे विशाललोचने ! दुर्बल मनुष्योंको डरानेके लिये किस लिये गर्जना करती हो ? हे कृशांगी ! तुम्हारा कार्यकलाप सुना है, किन्तु उससे मैं डरा नहीं हूं ॥ १३ ॥ हे वामलोचने ! स्त्रीके मारनेसे दोष और अकीर्ति होती है, यह मैं जानता हूं, इस कारण मेरा चित्त स्त्रीवधमें उपेक्षा करता है ॥ १४ ॥ हे सुन्दरी ! कटाक्षविक्षेप और हावभावद्वारा ही स्त्रियोंका युद्ध होता है, किन्तु तुमसी स्त्रियोंका शस्त्रद्वारा युद्ध किसी समयमें कहीं विहित नहीं है ॥ १५ ॥ तुम्हारी समान सुन्दरी स्त्रियोंके शरीरमें मालतीदल भी पीडा देता है, अतएव निशित बाणोंकी बात दूर रहे पुष्पके द्वारा भी तुमसे संग्राम करना उचित नहीं है ॥ १६ ॥

जो क्षात्रधर्मके अनुसार जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं मनुष्य लोकमें उनके जन्म लेनेको धिक्कार है हाय! यत्नपूर्वक लालित और प्रियदेह जिस धर्मसे शितशर-निकरद्वारा छिन्न हो कौन पुरुष उस धर्मकी प्रशंसा कर सकता है? ॥ १७ ॥ मिष्टान्न भोजन, तैलमर्दन और पुष्पगंधि वायु सेवनद्वारा यह प्रिय देह प्रति पालित हुआ है, इस कारण इसको क्या कभी शत्रुके बाणोंसे नष्ट करना उचित है? ॥ १८ ॥ मनुष्यगण तलवारसे देह छिन्न करके फिर धनवान् होते हैं, अतएव प्रथम तो जो धन दुःखका मूल है, वह क्या फिर कभी सुख देनेमें समर्थ होता है, ? यदि यह भी हो तो भी उस धनको धिक्कार है ॥ १९. ॥ हे वामोरु! तुम ज्ञानहीन बोध होती हो, क्योंकि संभोगजनित सुख छोड़कर युद्धकी अभिलाषा करती हो. हे सुन्दरी! तुम समरमें क्या गुण देखकर ऐसी अभिलाषा करती हो? ॥ २० ॥ जिस युद्धमें खड्गपात, गदाघात और शिलीमुख अस्त्रप्रहारसे शरीर छिन्न भिन्न होता है और जिसमें मृत्यु होने पर गोमायुगण मुखसे

धिग्जन्म मानुषे लोके क्षात्रधर्मानुजीविनाम् ॥ लालितोऽयं प्रियो देहः कृंतनीयः शितैः शरैः ॥ १७ ॥ तैलाभ्यंगैः पुष्पवातैस्तथा मिष्टान्नभोजनैः ॥ पोषितोऽयं प्रियो देहो घातनीयः परेषुभिः ॥ १८ ॥ देहं छित्त्वाऽसिधाराभिर्धन भृज्जायते नरः ॥ धिग्धनं दुःखदं पूर्वं पश्चात्किं सुखदं भवेत् ॥ १९ ॥ त्वमप्यज्ञैव वामोरु युद्धमाकांक्षसे यतः ॥ सुखं संभोगजं त्यक्त्वा कं गुणं वेत्सि संगरे ॥ २० ॥ खड्गपातं गदाघातं भेदनं च शिलीमुखैः ॥ मरणां ते तु संस्कारो गोमायुमुख कर्षणम् ॥२१॥ तस्यैव कविभिर्धूर्तैः कृतं चातीव शंसनम् ॥ रणे मृतानां स्वः प्राप्तिरर्थवादोऽस्ति केवलः ॥२२॥ तस्माद्गच्छ वरारोहे यत्र ते रमते मनः ॥ भज त्वा भूपतिं नाथं हयारिं सुरमर्दनम् ॥२३॥ व्यास उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं तं दैत्यं प्रोवाच जगदंबिका ॥ किं मृषा भाषसे मूढ बुद्धिमानिव पंडितः ॥ २४ ॥ नीतिशास्त्रं न जानासि विद्यां चान्वीक्षिकीं तथा ॥ न सेवितास्त्वया वृद्धा न धर्मे मतिरस्ति ते ॥ २५ ॥

खैंचकर संस्कार करते हैं,. उसमें क्या गुण दिखाई देता है? ॥ २१ ॥ धूर्त कविगणही केवल उसकी अतिशय प्रशंसा करते हैं वे ही कहते हैं. मरे मनुष्योंको स्वर्गलाभ होता है. हे सुन्दरी! यह उक्ति केवल स्तुतिवादमात्र है इसमें संदेह नहीं ॥ २२ ॥ इस कारण हे वरारोहे! तुम्हारी जहां अभिलाषा हो उसी स्थानमें चली जाओ अथवा सुरमर्दन महिषका स्वामीरूपमें भजन करो ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! चिक्षुर दानवके इस प्रकार कहनेपर जगदम्बिकाने उससे कहा रे मूढ! बुद्धिमान् पण्डितोंके समान क्यों वृथा वचन कहता है. तू नीति शास्त्र वा आन्वीक्षिकी विद्या नहीं जानता. तैंने बड़े पुरुषोंकी सेवा भी नहीं की, तेरी धर्ममें भी मति नहीं है ॥ २४ ॥ २५ ॥

तू मूर्खकी सेवा करता है. इस कारण तू भी अत्यन्त मूर्ख है, तू राजधर्म नहीं जानता, तथापि मेरे निकट क्या कहता है ? ॥ २६ ॥ मैं समरमें महिषासुरको निहत करूंगी, उसके रक्तसे पृथ्वीको कर्दम युक्त कर उसके द्वारा यशस्तम्भ सुदृढ़ करती हुई सुखपूर्वक अपने स्थानको चली जाऊंगी ॥२७॥ मैं देवताओंके क्लेशदाता दुराचारी मदगर्वित दानवको निःसंदेह निहत करूंगी, तू स्थिर होकर युद्ध कर ॥ २८ ॥ तुझे और महिषको यदि जीवन धारणकी इच्छा हो तो सब दानवोंके संग मिलकर पातालमें चले जाओ ॥ २९ ॥ और यदि तुम्हारे चित्तमें मृत्युकी वासना हो तो शीघ्र युद्ध करो, मैं इसी समय सबका बध करूंगी यही मेरा स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! देवीके यह वचन सुनकर बलदर्पित दानव तत्काल उनके ऊपर दूसरे घनवृ

मूर्खसेवापरो यस्मात्तस्मात्त्वं मूर्ख एवहि ॥ राजधर्मं न जानासि किं ब्रवीषि ममाग्रतः ॥ २६ ॥ संग्रामे महिषं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ॥ यशःस्तंभं स्थिरं कृत्वा गमिष्यामि यथासुखम् ॥ २७ ॥ देवानांदुःख दातारं दानवं मदगर्वितम् हनिष्येऽहं दुराचारं युद्धं कुरु स्थिरो भव ॥ २८ ॥ जीवितेच्छाऽऽस्ति चेन्मूढ महिषस्य तथा तव ॥ तदा गच्छंतु पातालं दानवाः सर्व एव ते ॥ २९ ॥ मुमूर्षा यदि वश्चित्ते युद्धं कुर्वंतु सत्वराः ॥ सर्वानेव वधिष्यामि निश्चयोऽयं ममाधुना ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दानवा बलदर्पिताः ॥ मुमोच बाणवृष्टिं तां घनवृष्टिमिवापराम् ॥ ३१ ॥ चिच्छेद तस्य सा बाणान्स्वबाणैर्निशितैस्तदा ॥ जघान तं तथा घोरैराशीविषसमैः शरैः ॥ ३२ ॥ युद्धं परस्परं तत्र बभूव विस्मयप्रदम् ॥ गदया पातयामास तं रथाज्जगदंबिका ॥ ३३ ॥ मूर्च्छां प्राप स दुष्टात्मा गदयाऽभिहतो भृशम् ॥ मुहूर्तद्वयमात्रं तु रथोपस्थ इवाचलः ॥३४॥ तं तथा मूर्छितं दृष्ट्वा ताम्रः परबलार्दनः ॥ आजगाम रणे योद्‍धुं चंडिकां प्रति चापलात् ॥३५॥ आगच्छंतं तु तं वीक्ष्य हसंती प्राह चण्डिका ॥ एह्येहि दानव श्रेष्ठ यमलोकं नयाम्यहम् ॥३६॥

ष्टिके समान बाणवृष्टि करने लगे ॥ ३१ ॥ तब देवी निशित बाणोंसे उनके सब बाणोंको खंड खंड करके आशीविषके समान घोर बाणोंसे उसपर प्रहार करने लगी ॥ ३२ ॥ तिस समय परस्पर उनका संग्राम सर्व साधारणको विस्मयकारक हुआ, इसी अवसरमें जगदम्बिकाने गदाप्रहार द्वारा उसको रथसे गिरा दिया ॥ ३३ ॥ तब वह दुष्टस्वभाव गदासे ताडित होकर भी अचलके समान रथके समीप दो मुहूर्त्ततक मूर्छित अवस्थामें पड़ा रहा ॥ ३४ ॥ शत्रुविमर्दन ताम्र उसको ऐसी अवस्थामें देखकर चपलतासे संग्राम करनेके लिये चण्डिकाके समीप आया ॥ ३५ ॥ देवी चण्डिकाने उसको आता देखकर हँसते हँसते कहा--हे दानवश्रेष्ठ ! आओ आओ ! ! तुमको अभी यमलोकमेंप्रेरित करती हूं ॥ ३६ ॥

अथवा तुम्हारे आनेका प्रयोजन क्या है ? तुम लोग ऐसे दुर्बल हो कि तुम्हारा जीवन नहीं कहना चाहिये वह मूढ महिष क्या इस समय गृहमें रहकर जीवनका उपाय करता है ॥ ३७ ॥ तुम अत्यन्त दुर्बल हो इस कारण तुमको विनाश करनेसे मुझे क्या फल होगा? उस दुष्टस्वभाव सुरशत्रु पापमति महिषके नहीं मरनेसे मेरा सब परिश्रम विफल होगा ॥ ३८ ॥ अतएव तुम घर जाकर अपने राजा महिषको इस स्थानमें भेजो वह दुष्टस्वभाव मुझको जिस प्रकार देखनेकी वासना करता है मैं ही उसी प्रकार अवस्थिति करती हूं ॥ ३९ ॥ ताम्र उनके वचनसे कुपित हो कानों पर्यन्त धनुषको खैंचकर चण्डिकाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४० ॥ भगवतीने भी क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर धनुषको खेंचा ओर सुरशत्रुको मारनेकी इच्छासे शीघ्रता सहित बाण चलाने

कि भवद्भिः समायातैरबलैश्च गतायुषः ॥ महिषः किं गृहे मूढः करोति जीवनोद्यमम् ॥ ३७॥ किं भवद्भिर्हतैर्मंदैर्ममापि विफलः श्रमः ॥ अहते महिषे पापे सुर शत्रौ दुरात्मनि ॥ ३८ ॥ तस्माद्यूयं गृहं गत्वा महिषे प्रेषयंत्विह ॥ पश्येन्मां सोऽपि मंदात्मा यादृशीं तादृशीं स्थिताम् ॥ ३९ ॥ ताम्रस्तद्वचनं श्रुत्वा बाणवृष्टिं चकार ह ॥ चण्डिकां प्रति कोपेन कर्णाऽऽकृष्टशरासनः ॥ ४० ॥ भगवत्यपि ताम्राक्षी समाकृष्य शराशनम् ॥ बाणान्मुमोच तरसा हंतुकाम सुराहितम् ॥ ४१ ॥ चिक्षुराख्योऽपि बलवान्मूर्च्छां त्यक्तोत्थितः पुनः ॥ गृहीत्वा सशरं चापं तस्थौ तत्संमुखः क्षणात् ॥ ४२ ॥ चिक्षुराख्यश्च ताम्रश्च द्वावप्यतिबलोत्कटौ ॥ युयुधाते महावीरौ सह देव्या रणांगणे ॥ ४३ ॥ कुपिता च महामाया ववर्ष शरसंततिम् ॥ चकार दानवान्सर्वान्बाणक्षततनुच्छदान् ॥ ४४ ॥ असुराः क्रोधसंमूढा बभूवुः शरताडिताः ॥ चिक्षिपुः शरजालानि देवीं प्रतिरुषाऽन्विताः ॥ ४५ ॥ बभुस्ते राक्षसास्तत्र किंशुका इव पुष्पिणः ॥ शिलीमुखक्षताः सर्वे वसन्ते च वने रणे ॥ ४६ ॥

लगी ॥ ४१ ॥ इसी अवसरमें बलवान् चिक्षुराख्य मूर्च्छा त्यागकर उठा और क्षणमात्रमें ही फिर कार्मुक ग्रहण करके देवीके सन्मुख स्थिति करने लगा ॥ ४२ ॥ महावीर चिक्षुराख्य और ताम्र दोनों अत्यन्त उग्रभावसे देवीके संग रणभूमिमें युद्ध करने लगे ॥ ४३ ॥ तब महामाया कुपित होकर शीघ्रतासहित इस प्रकार शरवर्षण करने लगी कि उन बणोंसे सब दानवोंके बख्तर छिन्न भिन्न होगये ॥ ४४ ॥ वह शरविद्ध असुर कोपसे अत्यन्त विमोहित होकर क्रोध सहित देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४५ ॥ वसन्तकालमें पुष्पित किंशुक जिस प्रकार शोभा पाता है. शिलीमुखद्वारा क्षत विक्षत होकर दानव लोग रणस्थलमें उसी प्रकार शोभा पाने लगे ॥ ४६ ॥

तब ताम्रके सहित भगवतीका इस प्रकार तुमुल संग्राम हुआ कि दर्शकभावसे अवस्थित देवता भी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ४७ ॥ ताम्रलौहमय दृढ दारुण मूशल ले सिंहके मस्तकमें प्रहार करके हास्य और गर्जन करने लगा ॥ ४८ ॥ उसको गर्जता हुआ देखकर देवीने कुपित होकर शितधार खड्गसे शीघ्र उसका मस्तक काट डाला ॥४९॥ मस्तक काटजानेपर वलवान् ताम्र मस्तक हीन होकर भी क्षणकालमें मूशल धारण पूर्वक भ्रमण करके रणस्थलमें गिर गया॥५०॥ महाबल चिक्षुराख्य ताम्रको गिरा देखतेही तत्काल खड्ग लेकर चण्डिकाकी ओर दौडा ॥ ५१ ॥ चिक्षुराख्य खड्ग हाथमें लेकर जब समीप आया तब यह देखकर भगवतीने पांच बाणोंसे इसका प्रहार किया ॥ ५२ ॥ एक बाणसे उसका खड्ग और दूसरेसे उसका हस्त काटकर अवशिष्ट बाणोंके द्वारा उसका

बभूव तुमुलं युद्धं ताम्रेण सह संयुगे ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्देवा ये प्रेक्षकाः स्थिताः ॥ ४७ ॥ ताम्रो मुसलमादाय लोहजं दारुणम् दृढम् ॥ जघान मस्तके सिंहं जहास च ननर्द च ॥ ४८ ॥ नर्दमानं तदा तं तु दृष्ट्वा देवी रुषाऽन्विता ॥ खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद सत्वरा ॥ ४९ ॥ छिन्ने शिरसि ताम्रस्तु विशीर्षो मुसली बली ॥ बभ्राम क्षणमात्रं तु पपात रणमस्तके ॥ ५० ॥ पतितं ताम्रमालोक्य चिक्षुराख्यो महाबलः ॥ खड्गमादाय तरसा दुद्राव चंडिकां प्रति ॥ ५१ ॥ भगवत्यपि तं दृष्ट्वा खड्गपाणि मुपागतम् ॥ दानवं पंचभि र्बाणैर्जघान तरसा रणे ॥ ५२ ॥ एकेन पतितं खड्गं द्वितीयेन तु तत्करः ॥ कंठाच्च मस्तकं तस्य कृतितं चापरैः शरैः ॥ ५३ ॥ एवं तौ निहतौ क्रूरौ राक्षसौ रणदुर्मदौ ॥ भग्नं सैन्यं तयोस्तूर्णं दिक्षु संत्रस्तमानसम् ॥ ५४ ॥ देवाश्च मुदिताः सर्वे दृष्ट्वा तौ निहतौ रणे ॥ पुष्पवृष्टिं मुदा चक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः ॥ ५५ ॥ ऋषयो देवगंधर्वा वेतालाः सिद्धचारणाः ॥ ऊचुस्ते जय देवीति चांबिकेति पुनः पुनः ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

कण्ठसे मस्तक काटडाला ॥ ५३ ॥ रणदुर्मद क्रूर उन दोनों असुरोंके इस प्रकार मरनेपर उनकी सेनाभीत हो तत्कालचारों ओरको भागगई ॥ ५४ ॥ तब देवतालोग समरमें उनको गिरा हुआ देखकर आनन्दित हुए और आकाशसे प्रसन्नतापूर्वक पुष्पवृष्टि करते हुए जयशब्द उच्चारण करने लगे ॥ ५५ ॥ इधर ऋषिगण, गंधर्वगण, वेतालगण, सिद्धगण और चारणगण आनन्दित होकर हे अम्बिके ! तुम्हारी जय हो. हे देवि ! तुम्हारी जय हो. यह वचन वारंवार उच्चारण करने लगे ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

व्यासजी बोले हे महाराज ! देवीके हाथसे दोनों दैत्योंकी मरणवार्त्ता सुन महिषासुरने देवीका विनाश करनेकी इच्छासे महाबली ॥ १ ॥ असिलोमा और बिडालाख्य इत्यादि दानवोंको समरमें भेजा. तब उन युद्धविशारद दानवोंने आयुध और युद्धसाजसे सज्जित होकर महासेनाके सहित संग्रामस्थलमें प्रस्थान किया ॥ २ ॥ उन्होंने वहां उपस्थित होकर देखा कि वह अष्टादशभुजा दिव्यरूपधारिणी देवी खड्ग और खेटकधारण करके सिंहके ऊपर विराजमान हैं ॥ ३ ॥ तब शान्त स्वभाव असिलोमाने कुछेक हँसकर उनके सन्मुखजाय दैत्यवधमें उद्यतादेवीसे विनय पूर्वक कहा ॥ ४ ॥ हे देवि ! तुम किसकारण यहां आई हो ? और किसलिये निरपराध दैत्योंको संहार करती हो ? हे सुन्दरी ! आप यह सब विषय मुझसे सत्य सत्य कहिये. हे नितंबिनी ! हम आपके

व्यास उवाच ॥ तौ तया निहतौ श्रुत्वा महिषो विस्मयान्वितः ॥ प्रेषयामास दैतेयांस्तद्वधार्थं महाबलान् ॥ १ ॥ असिलोमबिडालाख्यप्रमुखान्युद्धदुर्मदान्॥सैन्येन महता युक्तान्सायुधान्सपरिच्छदान् ॥ २ ॥ ते तत्र ददृशुर्देवीं सिंहस्योपरि संस्थिताम् ॥ अष्टादशभुजां दिव्यां खड्गखेटकधारिणीम् ॥ ३ ॥ असिलोमाऽग्रतो गत्वा तामुवाच हसन्निव ॥ विनयावनतः शांतो देवीं दैत्यवधोद्यताम् ॥ ४ ॥ असिलोमोवाच ॥ देवि ब्रूहि वचः सत्यं किमर्थमिह सुन्दरि ॥ आगताऽसि किमर्थं वा हंसि दैत्यानिरागसः ॥ ५ ॥ कारणं कथयाद्य त्वं त्वया संधिं करोम्यहम्॥कांचनं मणिरत्नानि भाजनानि वराणि च ॥६॥ यानीच्छसि वरारोहे गृहीत्वा गच्छ मा चिरम् ॥ किमर्थं युद्धकामाऽसि दुःखसंतापवर्धनम् ॥७॥ कथयंति महात्मानो युद्धं सर्वं सुखापहम् ॥ कोमले ते देहे पुष्पघातासहे भृशम् ॥८॥ किमर्थं शस्त्रसंपातान्सहसीति विसिष्मिये ॥ चातुर्यस्यफलं शांतिः सततं सुखसेवनम् ॥ ९ ॥

संग संधि स्थापन करेंगे अतएव इस समय आपके यहां आनेका क्या कारणहै ? सो कहिये कांचन रत्न मणि और अन्य उत्तम द्रव्य इनमें से जो आपकी इच्छा हो वह लेकर तुम अभी चली जाओ ॥ ५ ॥ ६ ॥ महानुभाव पुरुष कहते हैं कि युद्ध करनेसे सब सुख नष्ट होजाता है केवल दुःख और संतापकी वृद्धि होती है इस कारण तुम किसलिये युद्धकी इच्छा करती हो ? तुम्हारा देह अतयंत कोमल है अधिक क्या वह पुष्पका आघात सहनेमें भी समर्थ नहीं है ॥ ७ ॥ ८ ॥ अतएव आप किसलिये इस देहमें शस्त्राघात सहन करती हैं यह विचार कर मैं अतिशय बिस्मित होता हूं देखो शांतिही चतु रताका फल है, क्योंकि इससे सदाही सुख सेवा होती है ९ ॥

अतएव दुःखका हेतु संग्राम करने की क्यों अभिलाषा करती हो ? इस संसारमें सुख ग्राह्य और दुःख त्याज्य है यही मर्यादा प्रतिष्ठित हुई है, ॥१० ॥ वह सुख नित्य और अनित्यभेदसे दो प्रकारका है. आत्मज्ञानजनित जो सुख है, वही नित्य और भोगजनित जो सुख है वही अनित्य है ॥ ११ ॥ जो वेदशास्त्रका यथार्थतत्व जानते हैं वे इस विनाशशील संभोगसुखको ही त्याग करते हैं हे वरानने ! यदि तुम सुगत बुद्धलोगोंके समान "परलोक नहीं है" यह स्वीकार करो ॥ १२ ॥ तो युद्ध त्यागकर इस लोकमें यौवनलाभ करके उत्तमोत्तम भोग्यवस्तुओंको भोगो. हे कृशोदरी ! यदि आपको परलोकमें सन्देह हो॥ १३ ॥ तो भी युद्ध छोड़कर आप इस पृथ्वीमें सदा वर्गभोगके प्रतिपादक कर्मादिका अनुष्ठान कीजिये क्योंकि यौवन अनित्य है इसको जान

तत्किमर्थं दुःखहेतुं संग्रामं कर्तुमिच्छसि॥ संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुखं हेयमिति स्थितिः॥१०॥ तत्सुखं द्विविधं प्रोक्तं नित्यानित्यप्रभेदतः॥ आत्मज्ञानं सुखं नित्यमनित्यं भोगजं स्मृतम् ॥ ११ ॥ नाशात्मकं तु तत्त्याज्यं वेदशास्त्रार्थचिंतकैः ॥ सौगतानां मतं चेत्त्वं स्वीकरोषि वरानने ॥ १२ ॥ तथाऽपि यौवनं प्राप्य भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ परलोकस्य सन्देहो यदि तेऽस्तिं कृशोदरि ॥ १३ ॥ स्वर्गभोगपरा नित्यं भव भामिनि भूतले ॥ अनित्यं यौवनं देहे ज्ञात्वेति सुकृतं चरेत् ॥ १४ ॥ परोपतापनं कार्यं वर्जनीयं सदा बुधैः ॥ अविरोधेन कर्तव्यं धर्मार्थकामसेवनम् ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वमपि कल्याणि मतिं धर्मे सदा कुरु ॥ अपराधं विना दैत्यान्कस्मान्मारयसेंऽबिके ॥१६॥ दयाधर्मोऽस्य देहोऽस्ति सत्ये प्राणाः प्रकीर्तिताः ॥ तस्माद्दया तथा सत्यं रक्षणीयं सदा बुधैः ॥ १७ ॥ कारणं वद सुश्रोणि दानवानां वधे तव ॥ देव्युवाच ॥ त्वया पुष्टं महाबाहो किमर्थमिह चागता ॥ १८ ॥

कर सदा पुण्यकार्य करना ॥ १४ ॥ और परपीडन त्याग करना पंडित लोगोंका कर्त्तव्य है और इसी प्रकार धर्म अर्थ और कामके परस्पर अविरोध भावसे उन सबकी सेवा करना अतिउचित है ॥ १५ ॥ अतएव हे कल्याणी ! आपभी सदा धर्ममें मति कीजिये. हे अम्बिके ! विना अपराध दैत्यों को किसलिये संहार करती हो ? ॥ १६ ॥ क्योंकि इस पुरुषके देहमें दयारूप धर्म विद्यमान हैं, और सब प्राणीभी सत्यमें प्रतिष्ठित हैं अर्थात् सत्यद्वारा रक्षणीय हैं अतएव दया और धर्मकी बुद्धिमानोंको सदा रक्षा करनी चाहिये ॥ १७ ॥ हे सुश्रोणी ! दानवोंके मारनेमें तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? यह आप प्रकाश करके कहिये. देवीने कहा हे महाबाहो ! तुमने पूँछा कि तुम्हारे यहां आनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ १८ ॥

सो हे वीरवर ! मेरे इस स्थलमें आनेका और दैत्य संहार जो प्रयोजन है वह कहती हूं सुनो हे दैत्यवर ! मैं साक्षिरूपिणी होकर जीवोंको न्याय और अन्याय सदा देखती हुई समस्त लोकमें विचरण करती हूं मुझको कभी भोगकी इच्छा नहीं है वा किसी विषयमें लोभ नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥ और किसीसे शत्रुताभी नहीं हैं केवल धर्मकी रक्षाके लिये ही इस संसारमें विचरण करती हूं साधुओंकी रक्षा करना मेरा व्रत है इसको मैं सदाही पालन करती हूं ॥ २१ ॥ साधुओंकी रक्षा और असाधुओंका विनाशही मेरा कार्य जानना चाहिये. युगयुगमें अनेक अवतार लेकर वेदकी रक्षा करनी होती है॥ २२ ॥ इस कारण मैं ही युगयुगमें अवतीर्ण होती हूं. इस समय दुरात्मा महिष देवताओंका विनाश करनेमें उद्यत है ॥ २३ ॥ यह जानकर उसको मारनेके लिये

तदहं संप्रवक्ष्यामि हनने च प्रयोजनम् ॥ विचरामि सदा दैत्य सर्वलोकेषु सर्वदा ॥ १९ ॥ न्यायान्यायौ च भूतानां पश्यंति साक्षिरूपिणी ॥ न मे कदापि भोगेच्छा न लोभो न च वैरिता ॥ २० ॥ धर्मार्थं विचराम्यत्र संसारे साधुरक्षणम् ॥ व्रतमेतत्तु नियतं पालयामि निजं सदा ॥ २१ ॥ साधूनां रक्षणं कार्यं हंतव्या येऽप्यसाधवः ॥ वेदसंरक्षणं कार्यमवतारैरनेकशः ॥ २२ ॥ युगेयुगे तानेवाऽहमवताराान्बिभर्मि च ॥ महिषस्तु दुराचारो देवान्वै हंतुमुद्यतः ॥ २३ ॥ ज्ञात्वाऽहं तद्वधार्थं भोः प्राप्ताऽस्मि राक्षसाधुना ॥ तं हनिष्ये दुराचारं सुरशत्रुं महाबलम् ॥ २४ ॥ गच्छ वा तिष्ठ कामं त्वं सत्यामेतदुदाहृतम् ॥ ब्रूहि वा तं दुरात्मानं राजानं महिषीसुतम् ॥ २५ ॥ किमन्यान्प्रेषयस्यत्र स्वयं युद्धं कुरुष्व ह ॥ संधिं चेत्कर्तुमिच्छाऽस्ति राज्ञस्तव मया सह ॥ २६ ॥ सर्वे गच्छन्तु पातालं वैरं त्यक्त्वा यथा सुखम् ॥ देवद्रव्यं तु यत्किंचिद्धृतं जित्वा रणे सुरान् ॥ २७ ॥ तद्दत्त्वा यांतु पातालं प्रह्लादोयत्र तिष्ठति ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या असिलोमा पुरःस्थितः ॥ २८ ॥

मैं यहां आई हूं, इस दुराचारी देवताओंके शत्रु महाबली महिषासुरको निहत करूंगी ॥२४॥ यह तुमसे मैंने सत्यही कहा है. इस कारण यदि तुम्हारी इच्छा हो तो ठहरो. नहीं वो चले जाओ वा उस दुष्टस्वभाव राजा महिषासुरसे कहो ॥ २५ ॥ कि दूसरे असुरोंको क्यों भेजता है ? तू स्वयं आकर युद्ध कर. तुम्हारे राजाको यदि मेरे संग संधि करनेकी इच्छा हो ॥ २६ ॥ तो देवताओंसे वैर छोड़ सब मिलकर सुख पूर्वक पातालतलमें चले जाओ रणमें देवताओंको जीतकर जो कुछ देव द्रव्यहरण किया है ॥ २७ ॥ वह सब देवताओंको देकर पातालके जिस स्थानमें प्रह्लाद वास करता है उसी स्थानमें प्रवेश करो. व्यासजी बोले हे महाराज ! असिलोमाने देवीके इसप्रकार वचन सुनकर सन्मुख स्थित ॥ २८ ॥

महावीर बिडालाख्य असुरसे प्रीतिपूर्वक पूछा. असिलोमा बोला हे बिडालाख्य ! इस समय देवीने जो कहा वह तो सुना ॥ २९ ॥ अब इस अवस्थामें संधि करना कर्त्तव्य है अथवा विग्रह ? बिडालाख्य बोला युद्धमें अवश्य ही मृत्यु होगी यह जानकर भी राजा अपने स्वाभाविक अभिमानसे संधि करनेमें सम्मत नहीं हैं ॥ ३० ॥ उन्होंने प्रतिदिन दानवोंकी मृत्यु देखकर भी हमको रणमें भेजा है अतएव दैवका अतिक्रम करनेमें कौन पुरुष समर्थ होता है? सूत्रके तारतम्यानुसार नृत्यकरनेवाली पुतली जिस प्रकार नचानेवालेके वशवर्त्ती होती है इसी प्रकार सेवकलोगभी प्रभुकेवशवर्ती और आज्ञाधीन हैं अतएव सदा मानादि छोड़कर प्रभुका कार्य करना होता है, इससे संसारमें सेवकका कार्य अतिदुःसाध्य है, हम उनके सामने यह कठोर वचन जाकर कैसे कहेंगे कि आप देवताओंको धन

बिडालाख्यं महावीरं पप्रच्छ प्रीति पूर्वकम् ॥ असिलोमोवाच ॥ श्रुतं तेऽद्य बिडालाख्य भवान्या कथितं च यत् ॥ २९ ॥ एवं गते किं कर्तव्यो विग्रहः संधिरेव वा ॥ बिडालाख्य उवाच ॥ न संधिकामोऽस्ति नृपोऽभिमानी युद्धे च मृत्युं नियतं हि जानन् ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा हतान्प्रेरयते तथाऽस्मान्दैवं हि कोऽतिक्रमितुं समर्थः ॥ " दुःसाध्य एवास्त्विह सेवकानां धर्मः सदा मानविवर्जितानाम् ॥ आज्ञापराणां वशवर्तिकानां पांचालिकानामिवसूत्रभेदात् ॥ " गत्वाकथं तस्य पुरस्त्वया च मयाऽपि वक्तव्यमिदं कठोरम् ॥ ३१ ॥ गच्छंतु पातालमितश्च सर्वे दत्त्वाऽथ रत्नानि धनं सुराणाम् ॥ " प्रियं हि वक्तव्यमसत्यमेव न च प्रियं स्याद्धितकृत्तुभाषितम् ॥ सत्यं प्रियं नो भवतीय कामं मौनं ततो बुद्धिमतां प्रतिष्ठितम् ॥ " न फल्गुवाक्यैः प्रतिबोधनीयो राजा तु वीरैरिति नीतिशास्त्रम् ॥ ३२ ॥ न नूनं तत्र गंतव्यं हितं वा वक्तुमादरात् ॥ प्रष्टुं वाऽपि गते राजा कोपयुक्तो भविष्यति ॥ ३३ ॥ इति संचिंत्य कर्तव्यं युद्धंप्राणस्य संशये ॥ स्वामिकार्यं परं मत्वा मरणं तृणवत्तथा ॥ ३४ ॥

रत्न देकर यहांसे सब असुरोंके सहित पातालमें प्रवेश करो. देखो असत्य वचनही प्रिय होता है किंतु जो हितकर है वह कभी प्रिय नहीं होता ! सत्य और प्रिय ऐसे वचन संसारमें अत्यन्त दुर्लभ हैं इस कारण इस प्रकारके स्थलमें बुद्धिमान् पुरुषको मौनावलम्बन करके ही रहना उचित है और विशेष करके अपने वचनोंसे राजाको लुभाकर वशीभूत करना वीर पुरुषोंका कर्त्तव्य नहीं है, यही नीतिशास्त्रका सार मर्म है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इस कारण राजासे सादर हितकी बात कहने वा हितकी बातपूछनेको हमारा वहां जाना कभी उचित नहीं है. क्योंकि ऐसा कहनेसे राजा निस्सन्देह कुपित होंगे ॥ ३३ ॥ अतएव इस प्रकार जीवन संशयके स्थलमें भी प्रभुका कार्य संपादन करना ही कर्त्तव्य है. इस भांति विचार और मरणको तृणके समान जानकर युद्धकरना ही

अति उत्तम है ॥ ३४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! इस प्रकार विचार करनेके पीछे वे दोनों वीर बख्तर पहर धनुष बाण धारणकर रथमें चढ़ संग्राम करनेके लिये वहां स्थिति करने लगे ॥ ३५ ॥ प्रथम बिडालाख्यने सात बाण छोड़े उस समय परमास्त्रवेत्ता असिलोमा दर्शक होकर दूर स्थित रहा ॥ ३६ ॥ उस बाणके आतेही अम्बिकाने अपने बाणोंसे खंड खंड करके शिलाशोणित तीन बाणोंसे बिडालाख्यको प्रहार किया ॥३७॥ दैत्य बिडालाख्य बाणवेदनासे मूर्छित होकर रणस्थलमें गिर गया और क्षणकालोपरान्त ही दैवयोगसे मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ शक्तिके बाणोंसे बिडालाख्यको समरमें निहत हुआ देख असिलोमा धनुष बाण धारण करके युद्धके लिये आया ॥ ३९ ॥ तब यह वीरवर बाईं भुजा उठाय देवीसे कहने लगा कि हे देवि! दुष्टस्व

व्यास उवाच ॥ इति संचिन्त्य तौ वीरौ संस्थितौ युद्धतत्परौ ॥ धनुर्बाणधरौ तत्र सन्नद्धौ रथसंगतौ ॥ ३५ ॥ प्रथमं तु बिडालाख्यः सप्त बाणान्मुमोच ह ॥ असिलोमा स्थितो दूरे प्रेक्षकः परमास्त्रवित् ॥ ३६ ॥ चिच्छेद तांस्तथा प्राप्तानंबिका स्वशरैः शरान् ॥ बिडालाख्यं त्रिभिर्बाणैर्जघान च शिलाशितैः ॥ ३७ ॥ प्राप्य बाणव्यथां दैत्यः पपात समरांगणे ॥ मूर्छितोऽथ ममाराऽऽशु दानवो दैवयोगतः ॥ ३८ ॥ बिडालाख्यं हतं दृष्ट्वा रणे शक्तिशरोत्करैः ॥ असिलोमा धनुष्पाणिः संस्थितो युद्धतत्परः ॥ ३९ ॥ ऊर्ध्वं सव्यं करं कृत्वा तामुवाच मितं वचः ॥ देवि जानामि मरणं दानवानां दुरात्मनाम् ॥ ४० ॥ तथाऽपि युद्धं कर्तव्यं पराधीनेन वै मया ॥ महिषो मंदबुद्धिश्च न जानाति प्रिया प्रिये ॥ ४१ ॥ तदग्रे नैव वक्तव्यं हितं चैवाप्रियं मया ॥ मर्तव्यं वीरधर्मेण शुभं वाप्यशुभं भवेत् ॥४२॥ दैवमेव परं मन्येधिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ पतंति दानवास्तूर्णं तव बाणहत भुवि ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वा शरवृष्टिं स चकार दानवोत्तमः ॥ देवी चिच्छेदतान्बाणैरप्राप्तांस्तु निजांतिके ॥ ४४ ॥

भाव दानवोंकी मृत्यु होगी यह मैं जानता हूं ॥ ४० ॥ किन्तु यह जानकर भी मुझको समरमें प्रवृत होना पड़ा है क्योंकि मैं पराधीन हूं और महिषासुर अत्यन्त मन्दबुद्धि है इस कारण वह प्रिय अप्रियको नहीं जानता ॥४१॥ उसके निकट हितकर अप्रिय वचन कभी न कहे अतएव अच्छा हो वा बुरा हो मैं राजधर्मके अनुसार युद्धमें प्राण परित्याग करूंगा ॥ ४२ ॥ दानव लोग तुम्हारे बाणोंके प्रहारसे आहत होकर तत्क्षण भूतलमें गिरते हैं यह देखकर मैं दैवको ही प्रधान जानता हूं. पुरुषकारसे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, इस कारण पौरुषको धिक्कार है ॥ ४३ ॥ यह कहकर वह दानवश्रेष्ठ असिलोमा बाणोंकी वर्षा करने लगा. तब देवीभी उन बाणोंको निकट आते आतेही अपने बाणोंसे खंड खंड करने लगी ॥ ४४ ॥

और फिर क्रोधमें भरकर अन्य बाणोंसे उसको शीघ्रता सहित बींध डाला. उस समय दवता आकाशमें टिके हुए देवीका यह सब कार्य देखने लगे ॥ ४५ ॥ बाणोंके लगनेसे देह क्षत विक्षत हो गया और उससे रुधिरकी धारा निकलने लगी. इस कारण वह दानव प्रफुल्ल किंशुक वृक्षके समान शोभा पाने लगा ॥ ५६ ॥ तब असिलोमाने लोहमय भारी गदा उठाकर वेग सहित चंडिकाकी ओर दौड़ा और क्रोधयुक्त हो सिंहके मस्तकमें आघात किया ॥ ४७ ॥ प्रबल असुरके उस गदाघातसे न गिरकर सिंहने नखाघातसे उसकी बाहु विदारण की ॥ ४८ ॥ फिर उस दारुण दैत्यने गदा हाथमें ले सिंहके कन्धेपर चढ़ अम्बिकाको महावेगसे प्रहार किया ॥ ४९ ॥ हे महाराज ! तब देवीने असुरके किये प्रहारको व्यर्थ करके शितधार खड्गसे उसका मस्तक काट डाला ॥ ५० ॥

अन्यैर्विव्याध तं तूर्णमसिलोमानमाशुगैः ॥ वीक्षिताऽमरसंघैश्च कोपपूर्णानना तदा ॥ ४५ ॥ शुशुभे दानवः कामं बाणैर्विद्धतनुः किल ॥ स्रवद्रुधिरधारः स प्रफुल्लः किंशुको यथा ॥४६॥ असिलोमा गदां गुर्वीं लौहीमुद्यम्य वेगतः ॥ दुद्राव चण्डिकां कोपात्सिहं मूर्ध्नि जघान ह ॥ ४७ ॥ सिंहोऽपि नखराघतैस्तं ददार भुजां तरे ॥ अगणय्य गदाघातं कृतं तेन बलीयसा ॥ ४८ ॥ उत्पत्य तरसा दैत्यो गदापाणिः सुदारुणः ॥ सिंहमूर्ध्नि समारुह्य जघान गदयांबिकाम् ॥ ४९ ॥ कृतं तेन प्रहारं तु वंचयित्वा विशांपते ॥ खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद कंठतः ॥ ५० ॥ छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रः पपात तरसा क्षितौ ॥ हाहाकारो महानासीत्सैन्ये तस्य दुरात्मनः ॥ ५१ ॥ जय देवीति देवास्तां तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ देवदुंदुभयो नेदुर्जगुश्च नृप किन्नराः ॥५२॥ निहतौ दानवौ वीक्ष्य पतितौ चरणांगणे ॥ निहताः सैनिकाः सर्वे तत्र केसरिणा बलात् ॥ ५३ ॥ भक्षिताश्च तथा केचिन्निःशेषं तद्रणं कृतम् ॥ भग्नाः केचिद्गता मंदा महिषं प्रति दुःखिताः ॥ ५४ ॥ चुक्रुशू रुरुदुश्चैव त्राहि त्राहीति भाषणैः ॥ असिलोमबिडालाख्यौ निहतौ नृपसत्तम ॥ ५५ ॥

मस्तकके कटनेसे दैत्यपति वेगसहित पृथ्वीमें गिर गया. यह देखकर उस दुरात्माकी सेनामें महान् हाहाकार शब्द होने लगा ॥ ५१ ॥ इस ओर "देवीकी जय हो." यह कहकर देवता उन जगदम्बिकाका स्तव करने लगे. देवदुन्दुभि बजने लगीं और गंधर्वलोग महानन्दसे संगीत करने लगे. ॥ ५२ ॥ दोनों दानव निहत होकर समर स्थलमें गिर गये. यह देखकर केसरीने बलपूर्वक बची हुई सेनामें कितनोंको निहत और ॥ ५३ ॥ कितनोंहीको भक्षण करके उसने रणस्थल खाली कर डाला, तिनमें कोई कोई भागकर दुःखित चित्तसे महिषासुरके निकट चले गये ॥ ५४ ॥ भागी हुई सेना "रक्षा करो, रक्षा करो" यह कहकर चीत्कार करने लगी और रोती हुई बोली हे नृपसत्तम ! असिलोमा और बिडालाख्य मारे गये ॥ ५५ ॥

और जो अन्यान्य सैनिक थे, उनको सिंहने भक्षणकर लिया. उन्होंने महिषराजसे यह बात कहकर उसको दुःखसागरमें डाल दिया ॥ ५६ ॥ महिषासुर उनके वचन सुनकर दुःखसे विमन हुआ तब अन्यमनस्क दुश्चित्तसा होकर व्याकुल भावसे चिन्ता करने लगा ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचम स्कन्धेभाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! उनके वचन सुन नृपति महिषासुरने कोप सहित दारुक नामक सारथीसे कहा, मेरा वह अद्भुत रथ शीघ्र लाओ ॥ १ ॥ हे राजन् ध्वजा पताकाओंसे शोभित अनेक अस्त्रशस्त्रोंसे सज्जित,सुन्दर चक्रयुक्त और शोभायमान युगन्धर जुएसे अलंकृत वह रथ उत्तमोत्तम सहस्र अश्वोंसे चलायमान ॥ २ ॥ सारथीने भी शीघ्र वह रथ लाकर उससे कहा हे राजन्! आपके उस शोभायमान रथको लाकर द्वारे खड़ा किया है

अन्ये ये सैनिका राजन्सिंहेन भक्षिताश्च ते ॥ एवं ब्रुवंतो राजानं तदा चक्रुश्च वैशसम् ॥ ५६ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां महिषो दुर्मना स्तदा ॥ बभूव चिंताकुलितो विमना दुःखसंयुतः ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ व्यास उवाच तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधयुक्तो नराधिपः ॥ दारुकं प्राह तरसा रथमानय मेऽद्भुतम् ॥ १ ॥ सहस्रखरसंयुक्तं पताकाध्ज भूषितम् ॥ आयुधैः संयुतं शुभ्रं सुचक्रं चारुकूबरम् ॥ २ ॥ सूतोऽपि रथमानीय तमुवाच त्वरान्वितः ॥ राजन्रथोऽयमानीतो द्वारि तिष्ठति भूषितः ॥ ३ ॥ सर्वायुधसमायुक्तो वरास्तरणसंयुतः ॥ आनीतं तं रथं ज्ञात्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥ ४ ॥ मानुषं देहमास्थाय संग्रामे गन्तुमुद्यतः ॥ विचार्य मनसा चेति देवी मां प्रेक्ष्य दुर्मुखम् ॥ ५ ॥ शृंगिणं महीषं नूनं विमना सा भविष्यति ॥ नारीणां च प्रियं रूपं तथा चातुर्यमित्यपि ॥ ६ ॥ तस्माद्रूपं च चातुर्यं कृत्वा यास्यामि तां प्रति ॥ यथा मां वीक्ष्य सा बाला प्रेमयुक्ता भविष्यति॥ ७ ॥ ममापि च तदैव स्यात्सुखं नान्यस्वरूपतः ॥ इति संचिंत्य मनसा दानवेंद्रो महाबलः ॥ ८ ॥

॥ ३ ॥ वह उत्तम आभरण और अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित है महाबलवान् असुरपति रथको आया जान ॥ ४ ॥ "मुझको सींगयुक्त महिष और मेरा कुत्सित मुखमण्डल देखकर देवी अत्यन्त विमन होगी" मनमें इस प्रकार विचारकर मनुष्य देहधारण पूर्वक समरमें जानेको उद्यत हुआ कारण कि सुन्दरता और चतुरता स्त्रियोंको प्रिय है ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस कारण रूप और चतुरता अवलम्बन करके उसके निकट जाऊं क्यों कि वह बाला मुझको देखकर जिससे मेरे ऊपर प्रीति करे ॥ ७ ॥ उससे ही मुझको सुख होगा, अन्य किसी प्रकार सुख प्राप्त नहीं होगा, महाबलवान् दानवने मनमें इस प्रकार विचार कर ॥ ८ ॥

महिषरूप त्यागपूर्वक सुन्दर मनुष्यरूप धारण किया वह दैत्यपति सब आयुध ले केयूर और अंगदादि मनोहर अलंकार ॥ ९ ॥ तथा दिव्य वस्त्र पहन और गलेमें पुष्पोंकी माला धारण कर दूसरे कामदेवके समान शोभा पाने लगा, तब सब प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके धनुष ले रथमें चढ़े ॥ १० ॥ सेना सहित मदके गर्वसे उत्कण्ठित होकर देवीके समीप गया. दानवोंका अधिपति माहिषासुर मानिनीगणोंका अतिमनोहर सुन्दररूपधारण कर ॥ ११ ॥ और अनेक वीरोंसे परिवृत हो आ रहा है, देवी भगवतीने यह देखकर शंखध्वनि करी ॥ १२ ॥ उस काल वह असुरराज सर्वजन विस्मयकर शंखनादको सुन देवीके सन्मुख उपस्थित हो कुछेक हँसकर उनसे कहने लगा ॥ १३ ॥ हे देवि ! इस संसारचक्रमें जो सब लोग विद्यमान हैं, वे नर (पुरुष) हों वा नारी (स्त्री) हों सब सदा

त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव पुरुषः शुभः ॥ सर्वायुधधरः श्रीमांश्चारुभूषणभूषितः ॥ ९ ॥ दिव्यांबरधरः कांत पुष्पबाण इवापरः ॥
रथोपविष्टः केयूरस्रग्वी बाणधनुर्धरः ॥ १० ॥ सेनापरिवृतो देवीं जगाम मदगर्वितः ॥ मनोज्ञं रूपमास्थाय मानिनीनां मनोहरम् ॥ ११ ॥
तमागतं समालोक्य दैत्यानामधिपं तदा ॥ बहुभिः संवृतं वीरैर्देवी शंखमवादयत् ॥ १२ ॥ स शंखनिनदं श्रुत्वा जनविस्मयकारकम् ॥
समीपमेत्य देव्यास्तु तामुवाच हसन्निव ॥ १३ ॥ देवि संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानो जनः किल ॥ नरो वाऽथ तथा नारी सुखं वांछति
सर्वथा ॥ १४ ॥ सुखं संयोगजं नृणां नासंयोगे भवेदिह ॥ संयोगो बहुधा भिन्नस्तान्ब्रवीमि शृणुष्व ह ॥ १५ ॥ भेदान्सुप्रीतिहेतूत्था
न्स्वभावोत्थाननेकशः ॥ तत्र प्रीतिभवानादौ कथयामियथामति ॥ १६ ॥ माता पित्रोस्तु पुत्रेण संयोगस्तूत्तमः स्मृतः ॥ भ्रातुर्भ्रात्रा तथा
योगः कारणान्मध्यमो मतः ॥ १७ ॥ उत्तमस्य सुखस्यैव दातृत्वादुत्तमः स्मृतः ॥ तस्मादल्पसुखस्यैव प्रदातृत्वाच्च मध्यमः ॥ १८ ॥

सुखकी अभिलाषा करते हैं॥ १४ ॥ वह सुख इस संसारमें मनुष्योंका परस्पर संमिलन होनेसे ही उत्पन्न होता है, संमिलनका अभाव होनेपर वह कभी उत्पन्न नहीं होता हे देवि ! वह संमिलन भी अनेक प्रकारका है अतएव मैं उसको कहता हूं सुनो ॥ ॥ १५ ॥ संमिलन प्रीति हेतुक और स्वभाव हेतुक भेदसे अनेक प्रकारका है तिनमें प्रथम प्रीति सम्भाव संयोगका विषय आपसे बुद्धिके अनुसार कहता हूं ॥ १६ ॥ पिता माताका पुत्रके संग जो संमिलन होता है वह प्रीतिके कारण उत्पन्न है अतएव यही उत्तम कहा गया है और भाईके संग भाईका जो मिलन है वह उपकारसे होता है इस कारण इसको मध्यम कहना चाहिये ॥१७॥ फलतः जो मिलन उत्तम सुखप्रदान करे वही उत्तम कहकर प्रतिपादित होता है और जो उसकी अपेक्षा अल्पसुखप्रदान करे वही मध्यम कहा गया है ॥१८॥

और देखो नाविक लोग नाना देशमें नानाकार्योंके लिये व्याकुल हृदय हो प्रसङ्गाधीन कार्यान्तरमें लगे रहते हैं अतएव इनका जो परस्पर संयोग है पण्डित लोग उसको स्वाभाविक संयोग कहते हैं ॥ १९ ॥ इस संयोगके अति अल्पसुख देनेसे पण्डितोंने उसका निकृष्टत्व प्रतिपादन किया है इससे इस संसारमें जो अति उत्तम मिलन है वही प्रकृति सुखदायक है इसमें संदेह नहीं ॥ ॥ २० ॥ हे कान्ते ! समान अवस्थावाले स्त्री पुरुषोंका जो निरन्तर संयोग होता है उसको ही अति उत्तम जानना चाहिये क्योंकि यह मिलन ही अति उत्तम सुखप्रदान करता है ॥ २१ ॥ इस कारण इसको अति उत्तम संमिलन कहते हैं अत्युत्तम मिलन होनेसे कुल शील, गुण, रूप ॥ २२ ॥ चातुर्य और वेष सब विषयमें ही स्त्री वा पुरुष परस्परके श्रेष्ठताका विषय वर्णन करते हैं अतएव हे प्रिये ! तुम

नाविकानां तु संयोगः स्मृतः स्वाभाविको बुधैः ॥ विविधावृतचित्तानां प्रसंगपरिवार्तिनाम् ॥ १९ ॥ अत्यल्पसुखदातृत्वांत्कनिष्ठोऽयं स्मृतो बुधैः ॥ अत्युत्तमस्तु संयोगः संसारे सुखदः सदा ॥ २० ॥ नारीपुरुषयोः कांते समान वयसोः सदा ॥ संयोगो यः समाख्यात स एवात्युत्तमःस्मृतः ॥ २१ ॥ अत्युत्तमसुखस्यैव दातृत्वात्स तथाविधः ॥ चातुर्यरूप वेषाद्यैः कुलशीलगुणैस्तथा ॥ २२ ॥ परस्परस मुत्कर्षः कथ्यते हि परस्परम् तं चेत्कारोषि संयोगं वीरेण च मया सह ॥ २३ ॥ अत्युत्तमसुखस्यैव प्राप्तिः स्यात्ते न संशयः ॥ नानाविधानि रूपाणि करोमि स्वेच्छया प्रिये ॥ २४ ॥ इन्द्रादयः सुराः सर्वे संग्रामे विजिता मया ॥ रत्नानि यानि दिव्यानि भवनेऽस्मि न्ममाधुना ॥ २५ ॥ भुंक्ष्व त्वं तानि सर्वाणि यथेष्टं देहि वा यथा ॥ पट्टराज्ञी भवाद्य त्वं दासोऽस्मि तव सुंदरि ॥ २६ ॥ वैरं त्यजेऽहं देवैस्तु तव वाक्यान्न संशयः ॥ यथा त्वं सुखमाप्नोषि तथाऽहं करवाणि वै ॥ २७ ॥ आज्ञापय विशालाक्षि तथाऽहं प्रकरोम्यथ ॥ चित्तं मे तव रूपेण मोहितं चारुभाषिणि ॥ २८ ॥

यदि मेरे संग उसी प्रकार संयोग करो ॥ २३ ॥ तो तुमको अति उत्तम सुख प्राप्त होगा इसमें संदेह नहीं है, विशेष कर मैं अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकाके रूप धारण करूंगा इससे तुमको कोई चिन्ता नहीं हैं ॥ २४ ॥ मैंने इन्दादि देवताओंको समरमें जीतकर जो दिव्यरत्न हरण कर लिये हैं वे सम्पूर्ण मेरे घर विद्यमान हैं ॥ ॥ २५ ॥ तुम मेरी पटरानी होकर उन सब रत्नोंका इच्छानुसार दान वा भोग करो हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा दास हूं ॥ २६ ॥ इस कारण मैं तुम्हारे वचनानुसार देवताओंसे शत्रुता परित्याग करूंगा इसमें सन्देह नहीं, अधिक क्या ? तुम्हें जिससे सुख मिले मैं वही करूंगा ॥ २७ ॥ हे चारुभाषिणि ! हे विशाललोचने ! तुम्हारे रूपसे मेरा चित्त मोहित हुआ है. इस कारण जो तुम आज्ञा करोगी. मैं उसके अनुसार कार्य करूंगा ॥ २८ ॥

हे नितम्बिनि ! मैं आतुर होकर तुम्हारी शरणागत हुआ हूं. हे रम्भोरु ! मैं कामबाणसे पीडित होकर दुःखी हुआ हूं, अत एव तुम मेरी रक्षा करो ॥ २९ ॥ क्योंकि शरणागत पुरुषकी रक्षा करना सब धर्मोंसे उत्तम धर्म है, हे असितापाङ्गि ! हे कृशोदरि ! मैं तुम्हारा सेवक होकर काल व्यतीत करूंगा ॥ ॥ ३० ॥ और प्राणान्त होनेपर भी तुम्हारा वचन अन्यथा नहीं करूंगा. उसको सत्य जानो अब मैं सब आयुध त्यागकर तुम्हारे चरणोंमें गिरता हूं ॥ ३१ ॥ हे विशालनयने ! मैं कामबाणसे अत्यन्त कातर हुआ हूं. इस कारण तुम मुझपर दया करो हे सुन्दरि ! मैंने जन्मसे अबतक ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादि देवताओंके निकट कभी दीनता स्वीकार नहीं की, किन्तु आज तुम्हारे निकट स्वीकार की और वह ब्रह्मादि देवता लोग भी संग्राम स्थलमें मेरा चरित जानते हैं ॥ ३३ ॥ मैंने

आतुरोऽस्मि वरारोहे प्राप्तस्ते शरणं किल ॥ प्रपन्नं पाहि रंभोरु कामबाणैः प्रपीडितम् ॥ २९ ॥ धर्माणामुत्तमो धर्मः शरणागतरक्षणम् ॥ त्वदीयोऽस्म्यसितापांगि सेवकोऽहं कृशोदरि ॥ ३० ॥ मरणांतं वचः सत्यं नान्यथा प्रकरोम्यहम् ॥ पादौ नतोऽस्मि तन्वंगि त्यक्त्वा नानायुधानि ते ॥ ३१ ॥ दयां कुरु विशालाक्षि तप्तोऽस्मि काममार्गणैः ॥ जन्मप्रभृति चार्वंगि दैत्यं नाचरितं मया ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादीनीश्वरान्प्राप्य त्वयि तद्विदधाम्यहम् ॥ चरितं मम जानंति रणे ब्रह्मादयः सुराः ॥३३॥ सोऽप्यहं तव दासोऽस्मि मन्मुखं पश्य भामिनि ॥ व्यास उवाच ॥ इति ब्रुवाणं तं दैत्यं देवी भगवती हि सा ॥ ३४ ॥ प्रहस्य सस्मितं वाक्यमुवाच वरवर्णिनी ॥ देव्युवाच ॥ नाहं पुरुषमिच्छामि परमं पुरुषं विना ॥ ३५ ॥ तस्य चेच्छाऽस्म्यहं दैत्य सृजामि सकलं जगत् ॥ स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा ॥ ३६ ॥ तत्सान्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम् ॥ जडाऽहं तस्य संयोगात्प्रभवामि सचेतना ॥ ३७ ॥ अयस्कांतस्य सान्निध्यादयसश्चेतना यथा ॥ न ग्राम्यसुखवांछा मे कदाचिदपि जायते ॥ ३८ ॥

उन सबको ही जीत लिया है. किन्तु हे भामिनी ! मैं ऐसा पराक्रमशाली होकर भी अब तुम्हारा दास हुआ, तुम मेरा मुख देखकर मुझपर कृपा करो. व्यासजी बोले हे महाराज ! दैत्यपतिमहिषासुरके इस प्रकार कहनेपर उन वरवार्णनी भगवती देवीने ॥ ३४ ॥ उच्चहास्य कर सस्मित वचनसे कहा. देवी बोली मैं परमपुरुषके अतिरिक्त अन्य किसी पुरुषकी इच्छा नहीं करती ॥ ३५ ॥ हे दैत्य ! मैं उनकी इच्छा शक्ति हूं, इस कारण मैं ही सब जगत्को उत्पन्न करती हूं, मैं उनकी शिवा प्रकृत हूं वह विश्वात्मा मेरा दर्शन करते हैं ॥ ३६ ॥ उनकी निकटतासे ही शाश्वत चैतन्य विश्वरूपसे मुझमें वर्त्तमान रहता है, अयस्कान्तकी समीपतासे लोहा जिस प्रकार सचेष्ट होता है इसी प्रकार मैं स्वाभाविक जड़ होकर भी उक्त चैतन्यके संयोगसे सचेतन होकर कार्य करती हूं; मुझे कभी

इन्द्रियसुखकी अभिलाषा नहीं होती ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे मन्दात्मन् ! जब कि तू स्त्रीसंगकी इच्छा करता है तो तू निस्सन्देह अत्यन्त मूर्ख है. क्योंकि स्त्रीजाति मनुष्योंको बांधनेके लिये शृंखलास्वरूप कही गई है ॥ ३९ ॥ लोहबद्ध मनुष्य तो कदापि छूट सकता है, किन्तु स्त्रीबद्ध मनुष्य कभी नहीं छूट सकता. रे मूर्ख ! तू मूत्रागारकी सेवा करनेमें अभिलाषी हुआ है ॥ ४० ॥ सुखके लिये शान्तिअवलम्बन कर, शान्तिसेही सुख पावेगा स्त्रीसंगमसे महादुःख उत्पन्न होता है. तू यह जानकर भी क्यों मोहित होता है ? ॥ ४१ ॥ तू देवताओंसे वैर छोड़ इच्छानुसार पृथ्वीमण्डलमें विचरण कर वा तुझे यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो पातालमें चला जा ॥ ४२ ॥ नहीं तो मेरे संग युद्ध कर किन्तु मैं तुझसे अधिक बलवती हूं, इस बातको जान लेना. हे दानव ! तुम लोगोंको मारनेके लिये

मूर्खस्त्वमसि मन्दात्मन्यत्स्त्रीसंगंचिकीर्षसि ॥ नरस्य बंधनार्थाय शृंखलास्त्री प्रकीर्तिता ॥ ३९ ॥ लोहबद्धोऽपि मुच्येत ॥ स्त्रीबद्धो नैव मुच्यते ॥ किमिच्छसि च मन्दात्मन्मूत्रागारस्य सेवनम् ॥ ४० ॥ शमं कुरु सुखाय त्वं शमात्सुख मवाप्स्यसि ॥ नारीसंगे महद्दुःखं जानन्किं त्वं विमुह्यसि ॥ ४१ ॥ त्यज्य वैरं सुरैः सार्धं यथेष्टं विचरावना पातालं गच्छ वा कामं जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ ४२ ॥ अथवा कुरु संग्रामं बलवत्यस्मि सांप्रतम् ॥ प्रेषिताऽहं सुरैः सर्वैस्तव नाशाय दानव ॥४३॥ सत्यं ब्रवीमि येनाद्य त्वया वचनसौहृतम् दर्शितं तेन तुष्टाऽस्मि जीवन्गच्छ यथासुखम् ॥ ४४ ॥ सतां सप्तपदी मैत्री तेन मुंचामि जीवितम् मरणेच्छाऽस्ति चेद्युद्धं कुरु वीर यथा सुखम् ॥ ४५ ॥ हनिष्यामि महाबाहो त्वामहं नात्र संशयः ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा दानवः काममोहितः ॥ ४६ ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा मधुरं वचनं ततः ॥ बिभेम्यहं वरारोहे त्वां प्रहर्तुं बरानने ॥ ४७ ॥ कोमलां चारु सर्वांगीं नारीं नरविमोहिनीम् ॥ जित्वा हरिहरादींश्च लोकपालांश्च सर्वशः ॥ ४८ ॥

देवताओंने मिलकर मुझको भेजा है ॥ ४३ ॥ मैं तुझसे यह सत्यही कहती हूं, क्योंकि सौहृद्य "साम" वचन कहनेसे मैं तुझपर संतुष्ट हुई हूं, इस कारण तू जीवित अवस्थामें सुखपूर्वक चला जा ॥ ४४ ॥ देख केवल सातवार मात्र वाक्य कथन होनेसे ही साधु पुरुषोंकी मैत्री स्थापित होती है, हमारा वह हो गया है, इस कारण तेरे संग मेरी मित्रता उदय हुई है, अतएव मैं अब तेरा जीवन ग्रहण नहीं करूंगी. हे वीरवर ! यदि तेरी मरनेकी इच्छा हो तो सुखसे संग्राम कर ॥ ४५ ॥ हे महाबाहो ! मैं तुझको संहार करूंगी इसमें सन्देह नहीं है. व्यासजी बोले कि, हे राजन् ! दानवने भगवतीके इस प्रकार वचन सुन काममोहितहो ॥ ४६ ॥ मनोहर मधुरवाणीसे कहा हे वरारोहे ! तुम्हारे सब अंग मनोहर और कोमल हैं, ऐसी ललनाके देखनेसे मनुष्य मात्रही मोहित होता है. इस कारण हे चारुवदने !

दे. भा.
॥४९॥

तुम्हारे प्रहार करनेमें मुझे अतिशंका उत्पन्न होती है. हे कमललोचने ! मैंने हरि हर इत्यादि देवता और सब लोकपालोंको जीता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अतएव तुमसे युद्ध करना क्या मुझको उचित है ? हे सुन्दरि ! यदि तुम्हारी अभिलाषा हो तो विवाह करके मेरा भजन करो ॥ ४९ ॥ नहीं तो तुम जिस स्थानसे आई हो उसी स्थानको चली जाओ. तुमने मुझसे मित्रता करी है, इसी कारण तुमको प्रहार करनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ५० ॥ यह मैंने तुमसे हित और मंगलकर वचन कहे अतएव तुम सुखसे प्रस्थान करो. हे वरारने ! तुम सुलोचना ललना हो तुमको मारकर अन्तमें मेरी क्या प्रशंसा होगी ? ॥ ५१ ॥ हे कृशोदरि ! स्त्रीहत्या, बालहत्या और ब्रह्महत्याका फल अवश्यही भोगना पड़ता है. मैं तुमको नहीं मारूंगा वरन् ग्रहण करके घर लेजाऊंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ५२ ॥ किन्तु बलप्रयोग

किं त्वया सह युद्धं मे युक्तं कमललोचने ॥ रोचते यदि चार्वंगि विवाहं कुरु मां भज ॥ ४९ ॥ नो चेद्गच्छ यथेष्टं ते देशं यस्मात्समा गता ॥ नाहं त्वां प्रहरिष्यामि यतो मैत्री कृता त्वया ॥ ५० ॥ हितमुक्तं शुभं वाक्यं तस्माद्गच्छ यथासुखम् ॥ का शोभा मे भवेदंते हत्वा त्वां चारुलोचनाम् ॥ ५१ ॥ स्त्रीहत्या बालहत्या च ब्रह्महत्या दुरत्यया ॥ गृहीत्वा त्वां गृहं नूनं गच्छाम्यद्य वरानने ॥ ५२ ॥ तथाऽपि मे फलं न स्याद्बलाद्भोगसुखं कुतः ॥ प्रब्रवीमि सुकेशि त्वां विनयावनतो यतः ॥ ५३ ॥ पुरुषस्य सुखं न स्यादृते कांतामुखां बुजात् ॥ तत्तथैव हि नारीणां न स्याच्च पुरुषं विना ॥ ५४ ॥ संयोगे सुखसंभूतिर्वियोगे दुःखसम्भवः ॥ कांताऽसि रूपसंपन्ना सर्वाऽऽभर णभूषिता ॥ ५५ ॥ चातुर्यं त्वयि किं नास्ति यतो मां न भजस्यहो ॥ तवोपदिष्टं केनेदं भोगांगा परिवर्जनम् ॥ ५६ ॥ वंचिताऽसि प्रियालापे वैरिणा केनचित्त्विह ॥ मुंचाग्रहमिमं कांते कुरु कार्यं सुशोभनम् ॥ ५७ ॥

करनेसे कहीं सुख नहीं होता इस कारण उससे भी फललाभ नहीं होगा. हे सुकेशी ! मैं विनयपूर्वक तुमसे कहता हूं कि ॥ ५३ ॥ कामिनीके मुखपंकज विना पुरुषको सुख नहीं होता इसी प्रकार पुरुषके मुखकमलविना स्त्रियोंको सुख नहीं होता ॥ ५४ ॥ क्योंकि दोनोंका सुसंयोग होनेसे ही सुखकी पराकाष्ठा होती है, और वियोग होनेसे क्लेश होता है. यद्यपि तुम मनोहर सब आभरणोंसे विभूषित हो ॥ ५५ ॥ किन्तु तुममें चतुरता दिखाई नहीं देती. क्योंकि तुम मेरा भजन नहीं करती,तुमको भोग परित्याग करनेका क्या किसीने उपदेश दिया है ? ५६ ॥ हे मधुरभाषिणी ! यदि ऐसा हो तो किसी शत्रुने तुमको इस विषयमें छला है इसमें संदेह नहीं. हे कान्ते ! तुम यह आग्रह छोड़कर सुशोभन ॥ ५७ ॥

विवाहकार्य संपादन करो तो हम दोनोंको परम सुख लाभ होगा. विशेषकर विष्णु कमलाके संग ब्रह्मा सावित्रीके संग ॥ ५८ ॥ रुद्र पार्वतीके संग और इन्द्र शचीके संग जिस प्रकार शोभा पाते हैं मैं भी तुम्हारे संग इसी प्रकार शोभाको प्राप्त हूंगा, इसमें संदेह नहीं. पति हीन कौन स्त्री निरन्तर सुख लाभ कर सकती है? ॥ ५९ ॥ इसमेंभी फिर तुम अतिउत्तम पति पाकर स्वीकार नहीं करती. हे कान्ते! मन्दबुद्धि काम इस समय कहा गया है? वह उन्मादकर ॥ ६० ॥ सुकोमल पांचबाणोंसे तुमको अत्यन्त पीड़ित क्यों नहीं करता? हे सुन्दरी! बोध होता है मदन मेरे समान तुम्हारे प्रति सदय हो ॥ ६१ ॥ और तुमको अबला जानकर ही बाण प्रयोग नहीं करता. अथवा हे कुटिलनयने! जान पड़ता है मनोभवकी मेरे संग कुछ शत्रुता है ॥ ६२ ॥ इससे ही तुमपर बाण नहीं छोड़ता वा मेरे

सुखं तव ममापि स्याद्विवाहे विहिते किल ॥ विष्णुर्लक्ष्म्या सहाभाति सावित्र्या च सहात्मभूः ॥ ५८ ॥ रुद्रो भाति च पार्वत्या शच्या शतमखस्तथा ॥ का नारी पतिहीना च सुखं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ ५९ ॥ येन त्वमसितापांगि न करोषि पतिं शुभम् ॥ कामः क्वाद्य गतः कान्ते यस्त्वां बाणैः सुकोमलैः ॥६०॥ मादनैः पंचभिः कामं न ताडयति मंदधीः ॥ मन्येऽहमिव कामोऽपि दयावांस्त्वयि सुंदरि ॥ ६१ ॥ अबलेति च मन्वानो न प्रेरयति मार्गणान् ॥ मनोभवस्य वैरं वा किमप्यस्ति मया सह ॥ ६२ ॥ तेन च त्वय्यरालाक्षि न मुंचति शिलीमुखान् ॥ अथवा मेऽहितैर्दैवैर्वारितोऽसौ झषध्वजः ॥ ६३ ॥ सुखविध्वंसिभिस्तेन त्वयि न प्रहरत्यपि ॥ त्यक्त्वा मां मृगशावाक्षि पश्चात्तापं करिष्यसि ॥ ६४ ॥ मंदोदरीव तन्वंगि परित्यज्य शुभं नृपम् ॥ अनुकूलं पतिं पश्चात्सा चकार शठं पतिम् ॥ कामार्ता च यदा जाता मोहेन व्याकुलांतरा ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पं० देवीचरित्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवी पप्रच्छ दानवम् ॥ का सा मंदोदरी नारी कोऽसौ त्यक्तोनृपस्तया ॥ १ ॥

सुखघातक वैरी देवताओंने कामको निवारण किया है ॥ ६३ ॥ कारण कि यह देवता मेरा सुख विध्वंस करनेवाले हैं, इसी कारण कामने तुमपर प्रहार नहीं किया. हे मृगलोचनी! तुम मुझे छोडकर पश्चात्ताप करोगी ॥ ६४ ॥ हे तन्वंगी जैसे मन्दोदरीने अनुकूल और सुन्दर राजाको त्याग एक शठको अपना पति किया ॥ ६५ ॥ और मोहसे व्याकुल हो कामार्त हुई यही दशा तुम्हारी होगी ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! फिर देवीने इस प्रकार महिषासुरके वचन सुनकर उससे पूंछाः--वह मन्दोदरी स्त्री कौन थी ? और उसने जिसको पहिले छोड दिया था, वह राजा कौन था ? ॥१॥

और फिर जिस शठ नृपतिको पति बनाया था वह नरपति कौन था ? और उस वनिताने पीछे किस प्रकार दुःखानुभव किया ? यह सब मुझसे विस्तार सहित वर्णन कर ॥ २ ॥ देवीकी यह बात सुनकर महिषा सुर कहने लगा हे देवि ! इस पृथ्वीमंडलमें सिंहलदेश अति प्रसिद्ध स्थान है. वह स्थान अनेक तरुराजिसे शोभायमान और धनधान्य समृद्धिशाली था ॥ ३ ॥ चन्द्रसेन नामक एक धर्मपरायण राजा उस स्थानमें वास करता. वह शांत सत्यवादी वीरवर दयालु धैर्यशाली क्षमावान् नीतिशास्त्रमें सागरके समान ज्ञान संपन्न शास्त्रवित् सर्वधर्मज्ञ और धनुर्वेदमें अत्यन्त निपुण था, वह प्रजापालनमें तत्पर होकर न्याया नुसार दंडविधान करता ॥ ४ ॥ ५ ॥ मनोहर रूप सौन्दर्यशालिनी गुणवती नाम उसके एक नितम्बिनी भार्या थी, वह पतिकी भक्तिमें परायण होकर नियत

शठः को वा नृपः पश्चात्तन्मे ब्रूहि कथानकम् ॥ विस्तरेण यथा प्राप्तं दुःखं वनितया पुनः ॥ २ ॥ महिष उवाच ॥ सिंहलो नाम देशोऽस्ति विख्यातः पृथिवीतले ॥ घनपादपसंयुक्तो धनधान्यसमृद्धिमान् ॥ ३ ॥ चंद्रसेनाऽभिधस्तत्र राजा धर्मपरायणः ॥ न्यायदंडधरः शांतः प्रजापालनतत्परः ॥ ४ ॥ सत्यवादी मृदुः शूरस्तितिक्षुर्नीतिसागरः ॥ शास्त्रवित्सर्वधर्मज्ञो धनुर्वेदेऽतिनिष्ठितः ॥ ५ ॥ तस्य भार्या वरारोहा सुन्दरी सुभगा शुभा ॥ सदाचाराऽतिसुमुखी पतिभक्तिपरायणा ॥ ६ ॥ नाम्ना गुणवती कांता सर्वलक्षणसंयुता ॥ सुषुवे प्रथमे गर्भे पुत्रीं सा चातिसुन्दरीम् ॥ ७ ॥ पिता चातीव संतुष्टः पुत्रीं प्राप्य मनोरमाम् ॥ मन्दोदरीति नामास्याः पिता चक्रे मुदान्वितः ॥ ८ ॥ इंदोः कलेव चात्यर्थं ववृधे सा दिनेदिने ॥ दशवर्षा यदा जाता कन्या चातिमनोहरा ॥ ९ ॥ वरार्थं नृपतिश्चिन्तामवाप च दिनेदिने ॥ मद्रदेशाधिपः शूरः सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥ १० ॥ तस्य पुत्रोऽतिमेधावी कंबुग्रीवोऽतिविश्रुतः ॥ ब्राह्मणैः कथितो राज्ञे स युक्तोऽस्या वरः शुभः ॥ ११ ॥ सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वविद्यार्थपारगः ॥ राज्ञा पृष्टा तदा राज्ञी नाम्ना गुणवती प्रिया ॥ १२ ॥

सदाचारमें रत रहती ॥ ६ ॥ उसका नाम गुणवती. वह सब लक्षणोंसे संपन्न थी. उस सब सुलक्षण युक्त कान्ताने प्रथम गर्भसेही एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न करी ॥ ७ ॥ पिता चन्द्रसेन भूपति कन्याको पाकर अति सन्तुष्ट हुए और परमानन्दसे उस कन्याका मन्दोदरी नाम रक्खा ॥ ८ ॥ वह कन्या चन्द्रमाकी कलाके समान दिन दिन बढने लगी जब कन्याकी अवस्था दशवर्षकी पूर्ण हुई तब वह कन्या अत्यन्त मनोहारिणी होगई ॥ ९ ॥ नरपति कन्याको देखकर उसके लिये प्रतिदिन चिन्ता करने लगे. इसी समयमें ब्राह्मणोंने राजासे कहा कि मद्रदेशाधिपति महावीर सुधन्वा राजाका ॥ १० ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् कम्बुग्रीव नामक एक पुत्र है, यह कुमार सर्व राजलक्षणोंसे विभूषित और सर्व विद्याओंका पारदर्शी है अतएव वह राजपुत्रही इस कन्याका उपयुक्त और सुशोभन

वर होगा. तब राजाने अपनी प्यारी गुणवतीसे पूंछा ॥ ११ ॥ १२ ॥ कि मैं यह वरवर्णिनी कन्या कम्बुग्रीवको देना चाहता हूं? राजमहिषीने पतिके वे वचन सुनकर अपनी कन्या मन्दोदरीसे पूंछा कि ॥ १३ ॥ तुम्हारे पिता मद्रराज पुत्र कम्बुग्रीवके संग तुम्हारा विवाह करनेकी इच्छा करते हैं। मन्दोदरीने जननीका यह वचन सुनकर उससे कहा ॥ १४ ॥ हे जननि! विवाहकी मेरी इच्छा नहीं है मैं पतिका ग्रहण नहीं करूंगी मैं सम्यक् प्रकारसे कौमारव्रत अवलम्बन करके काल व्यतीत करूंगी ॥ १५ ॥ हे मातः ! इस संसार सागरमें पराधीनताकी अपेक्षा अतिदुःखकर विषय दूसरा नहीं है. इस कारण मैं स्वाधीनभावसे सदा कठोर तपस्या करनेकी इच्छा करती हूं ॥ १६ ॥ शास्त्रका तत्त्व जाननेवाले पंडित कहते हैं कि, स्वतंत्रता अवलंबन करनेसेही मोक्ष होता है अतएव मैं

कंबुग्रीवाय कन्यां त्वां दास्यामि वरवर्णिनीम् सा तु पत्युर्वचः श्रुत्वा पुत्रीं पप्रच्छ सादरम् ॥ १३ ॥ विवाहं ते पिता कर्तुं कंबुग्रीवेण वांछति ॥ तच्छ्रुत्वा मातरं प्राह वाक्यं मन्दोदरी तदा ॥ १४ ॥ नाहं पतिं करिष्यामि नेच्छामेऽस्ति परिग्रहे ॥ कौमारं व्रतमास्थाय कालं नेष्यामि सर्वथा ॥ १५ ॥ स्वातंत्र्येण चरिष्यामि तपस्तीव्रं सदैव हि ॥ पारतंत्र्य परंदुःखं मातः संसारसागरे ॥ १६ ॥ स्वातंत्र्या न्मोक्षमित्याहुः पण्डिताः शास्त्रकोविदा ॥ तस्मान्मुक्ता भविष्यामि पत्यामे न प्रयोजनम् ॥ १७ ॥ विवाहे वर्तमाने तु पावकस्य च सन्निधौ ॥ वक्तव्यं वचनं सम्यक्त्वदधीनाऽस्मि सर्वदा ॥ १८ ॥ श्वश्रूदेव रवर्गाणां दासीत्वं श्वशुरालये ॥ पतिचित्तानुवर्तित्वं दुःखादुः खतरं स्मृतम् ॥ १९ ॥ कदाचित्पतिरन्यां वा कामिनीं च भजेद्यदि ॥ तदा महत्तरं दुःखं सपत्नीसंभवं भवेत् ॥ २० ॥ तदेर्ष्या जायते पत्यौ क्लेशश्चापि भवेदथ ॥ संसारे क्व सुखं मातर्नारीणां च विशेषतः ॥ २१ ॥

उससे मुक्त हूंगी, पतिसे मेरा प्रयोजन नहीं है ॥ १७ ॥ विवाह कालके समय अग्निके समीप कहना होता है कि, मैं सब प्रकारसे सदा तुम्हारे अधीन रहूंगी ॥ १८ ॥ और देखो श्वशुरके घर जाय श्वशुर और देवरकी दासी होकर समय बिताना होता है विशेष कर पतिके सुखमें सुखी और दुःखमें दुखी होकर उसके चित्तके अनुसार कार्य करना पडता है यह दुःखसे भी दुःखतर है ॥ १९ ॥ और यदि किसी समय पति दूसरी किसी स्त्रीसे विवाह करे तो उस समय सपत्नी जनित महादुःख उपस्थित होता है ॥ २० ॥ हे मातः ! तब पतिसे ईर्षा होती है. इस कारण अनेक क्लेश भोगने पडते हैं अतएव स्वप्नके समान इस संसारमें क्या सुख है ? ॥ २१ ॥

विशेषकर इसमें स्वाभाविक पराधीन स्त्रियोंको तो कोई भी सुख नहीं है. हे जननि! मैंने सुना है कि पूर्वकालमें उत्तानपादके पुत्र ॥ २२ ॥ धर्मज्ञ उत्तमध्रुवसे छोटे भी राजा हुए थे और उत्तानपाद राजाने पतिभक्ति परायण धर्मरूपिणी साध्वी ॥ २३ ॥ प्रियतमा कान्ताको विना अपराधही वनमें छोड दिया था स्वामीके विद्यमान रहने परभी स्त्रियोंको अनेक दुःख अनुभव करने पडते हैं ॥ २४ ॥ और यदि कालवश पति परलोकगामी हो तो स्त्रियें अनन्त दुःख पाती हैं क्योंकि वैधव्य दशा स्त्रियोंके एक मात्र दुःख शोक और संतापका कारण है ॥ २५ ॥ और पतिके विदेश चले जानेपर भी स्त्रियोंका देह कामाग्निमें दग्ध होता है इससे उनके घरमें अधिक दुःख होता है फिर पति संगका क्या सुख है? ॥ २६ ॥ इस कारण क्या जीवित अवस्था क्या मृतअवस्था किसी

स्वभावात्परतन्त्राणां संसारे स्वप्नधर्मिणि ॥ श्रुतं मयापुरा मातरुत्तानचरणात्मजः ॥ २२ ॥ उत्तमः सर्वधर्मज्ञो ध्रुवादवरजो नृपः ॥ पत्नीं धर्मपरां साध्वीं पतिभक्तिपरायणाम् ॥ २३ ॥ अपराधं विना कांतां त्यक्तवान्विपिने प्रियाम् ॥ एवंविधानि दुःखानि विद्यमाने तु भर्तरि ॥ २४ ॥ कालयोगान्मृते तस्मिन्नारी स्याद् दुःखभाजनम्॥ वैधव्यं परमं दुःखं शोक संतापकारकम् ॥ २५ ॥ परोषितपतित्वेऽपि दुःखं स्यादधिकं गृहे ॥ मदनाग्निविदग्धायाः किं सुख पति संगजम् ॥ २६ ॥ तस्मात्पतिर्न कर्तव्यः सर्वथेति मतिर्मम ॥ एवं प्रोक्ता तदा माता पतिं प्राह नृपात्मजा ॥ २७ ॥ न च वांछति भर्तारं कौमारव्रतधारिणी ॥ व्रतजाप्यपरा नित्यं संसाराद्विमुखी सदा ॥ २८ ॥ न कांक्षति पतिं कर्तुं बहुदोषविचक्षणा ॥ भार्याया भाषितं श्रुत्वा तथैव संस्थितो नृपः ॥ २९ ॥ विवाहो न कृतः पुत्र्या ज्ञात्वा भावविवर्जिताम् ॥ वर्तमाना गृहेष्वेवं पित्रा मात्रा च रक्षिता ॥ ३० ॥

समय भी पतिलाभमें सुख नहीं है. अतएव मेरे विचारसे पति स्वीकार करना कभी उचित नहीं है. तब माताने कन्याकी यह बात सुनकर पतिसे कहा ॥ २७ ॥ कि मन्दोदरी कौमारव्रत अवलम्बन करेगी उसको विवाह करनेकी इच्छा नहीं है वह पतिग्रहण करनेमें अनेक दोष दिखलाकर संसारसे विमुख हो व्रत और जपका अनुष्ठान करती हुई ॥ २८ ॥ अकेली काल बितावेगी, वह पति ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करती. राजाने भार्याकी यह बात सुन जान लिया कि कन्याका विवाहमें अनुराग नहीं है तब उसका विवाह न करके उसी अवस्थामें काल व्यतीत करने लगे ॥ २९ ॥ इसी कारण राजाने उसका पतिमें भाव न देख विवाह न किया। इस प्रकार कन्या पिता मातासे रक्षित होकर घरमें वास करने लगी ॥ ३० ॥

इसी समयमें उस राजकन्यामें स्त्रियोंका कामोद्दीपक यौवनांकुरका उदय हुआ राजकन्याकी सखियोंने पतिग्रहण करनेके लिये यद्यपि वारंवार प्रार्थना करी ॥ ३१ ॥ किंतु तो भी उस बालाने अनेक प्रकारके ज्ञानयुक्त वचन कहकर पतिग्रहणकी अभिलाषा प्रकाश नहीं की. एक समय वह सुमुखी अनेक पादपोंसे शोभित उद्यानमें ॥ ३२ ॥ विहार करनेको गई वह कृशोदरी वहां वयस्या सैरंध्री सखियोंके सहित अनेक प्रकारके पुष्प मनोहर पुष्पित लताओंको देखती हुई क्रीडा करने लगी ॥ ३३ ॥ इसी अवसरमें जब कि वह सखियोंके सहित फूल तोड़ रही थी. कोशलाधिपति महावीर ॥ ३४ ॥ वीरसेन नामक अति प्रसिद्ध राजा दैवात् उसी मार्गसे आये. एक मात्र वह अकेले कुछेक सेवकोंके सहित रथपर चढ़ उस उद्यानके निकट उपस्थित हुए ॥ ३५ ॥ पीछे धीरे धीरे

यौवनस्यांकुरा जाता नारीणां काम दीपकाः ॥ तथाऽपि सा वयस्याभिः प्रेरिताऽपि पुनः पुनः ॥ ३१ ॥ चकमे न पतिं कर्तुं ज्ञानार्थपद भाषिणी ॥ एकदोद्यानदेशे सा विहर्तुं बहुपादपे ॥ ३२ ॥ जगाम सुमुखी प्रेम्णा सैरंध्रीगणसेविता ॥ रेमे कृशोदरी तत्रापश्यत्कुसुमिता लताः ॥ ३३ ॥ पुष्पाणि चिन्वतीं रम्यावयस्याभिः समावृता ॥ कोसलाधिपतिस्तत्र मार्गे दैव वशात्तदा ॥ ३४ ॥ आजगाम महावीरो वीरसेनोऽतिविश्रुतः ॥ एकाकी रथमारूढः कतिचित्सेवकैर्वृतः ॥ ३५ ॥ सैन्यं च पृष्ठतस्तस्य समायाति शनैः शनैः ॥ दृष्टस्तस्या वयस्या तु दूरतः पार्थिवस्तदा ॥ ३६ ॥ मंदोदर्यै तथा प्रोक्तं समायाति नरःपथि ॥ रथारूढो महाबाहू रूपवान्मदनोऽपरः ॥ ३७ ॥ मन्येऽहं नृपतिः कश्चित्प्राप्तो भाग्यवशादिह ॥ एवं ब्रुवत्यां तत्रासौ कोशलेन्द्रः समागतः ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा तामसितापांगीं विस्मयं प्राप भूपतिः ॥ उत्तीर्य स रथात्तूर्णं पप्रच्छ परिचारिकाम् ॥ ३९ ॥ केयं बालाविशालाक्षी कस्य पुत्री वदाशु मे ॥ एवं पृष्टा तु सैरंध्री तमुवाच शुचिस्मिता ॥ ४० ॥

उनकी सेना आती थी, तब उसकी वयस्या सखियोंने दूरसे उन राजाको देखकर ॥ ३६ ॥ मन्दोदरीसे कहा हे सखी ! दूसरे कामदेवके समान रूपवान् महाबाहु एक पुरुष रथपर चढा हुआ मार्गमें आ रहा है ॥ ३७ ॥ मुझको जान पड़ता है कि, कोई राजा हमारे भाग्यसे इस स्थानमें उपस्थित हुए हैं. इस प्रकार कहते ही कोशलपति वहां आकर उपस्थित हुए ॥ ३८ ॥ वह नरपति असितापांगी राजनन्दिनीको देखकर विस्मत हुए और तत्काल रथसे उतर परिचारिका (दासी) से उन्होंने पूँछा ॥ ३९ ॥ हे भद्रे! यह विशाल नेत्रोंवाली बाला कौन है ? और किसकी कन्या है ? यह तुम मुझसे शीघ्र कहो. शुचिस्मिता सैरन्ध्रीसे इस प्रकार पूँछनेपर उसने कहा ॥ ४० ॥

हे सुलोचनवीर ! प्रथम हम आपसे पूँछती हैं कि, आप कौन हैं? किस लिये आप आये हैं? और आपका प्रयोजन क्या है? सो कहिये ॥ ४१ ॥ सैरन्ध्रीके यह पूँछनेपर महीपतिने उससे कहा पृथ्वीमें कोशल नामक अति सुन्दर परम विस्मय कर एक देश है ॥ ४२ ॥ मैं उस देशका अधिपति हूं, मेरा नाम वीरसेन है. मेरी चतुर्विध सेना इच्छानुसार पीछे आती है॥ ४३ ॥ मैं मार्ग भूलकर यहां आगया हूं, मुझको कोशल देशका अधिपति जानना चाहिये. सैरंध्री बोली--हे राजन्! यह कमलनयना चन्द्रसेन राजाकी कन्या है और इसका नाम मन्दोदरी है ॥ ४४ ॥ यह क्रीडा करनेकी इच्छासे इस उद्यानमें आई है. राजाने सैरन्ध्रीका यह वचन सुनकर उससे कहा ॥ ४५ ॥ हे सैरन्ध्री ! मैं तुमको चतुर जानता हूं अतएव मैं जो कहता हूं वह तुम राजपुत्रीको भलीभांति

प्रथमं ब्रूहि मे वीर पृच्छामि त्वां सुलोचनम् ॥ कोऽसि त्वं किमिहायातः किं कार्यं वद सांप्रतम् ॥ ४१ ॥ इति पृष्टस्तु सैरंध्र्या तामुवाच महीपतिः ॥ कोसलो नाम देशोऽस्ति पृथिव्यां परमाद्भुतः ॥ ४२ ॥ तस्य पालयिता चाहं वीरसेनाभिधः प्रिये ॥ वाहिनी पृष्ठतः कामं समायाति चतुर्विधा ॥ ४३ ॥ मार्गभ्र मादिह प्राप्तं विद्धि मां कोसलाधिपम् ॥ सैरंध्र्युवाच ॥ चन्द्रसेनसुता राजन्नाम्ना मन्दोदरी किल ॥ ४४ ॥ उद्याने रंतुकामेयं प्राप्ता कमल लोचना ॥ श्रुत्वा तद्भाषितं राजा प्रत्युवाच प्रसाधिकाम् ॥ ४५ ॥ सैरंध्रि चतुराऽसि त्वं राजपुत्रीं प्रबोधय ॥ ककुत्स्थवंशजश्चाहं राजाऽस्मि चारुलोचने ॥४६॥ गांधर्वेण विवाहेन पतिं मां कुरु कामिनि ॥ न मे भार्याऽस्ति सुश्रोणि वयसोऽद्भुतयौवनाम् ॥ ४७ ॥ वांछामि रूपसंपन्नां सुकुलां कामिनीं किल ॥ अथवा ते पिता मह्यं विधिना दातुमर्हति ॥ ४८ ॥ अनुकूल पतिश्चाहं भविष्यामि न संशयः ॥ महिष उवाच ॥ इत्याऽऽकर्ण्य वचस्तस्य सैरंध्री प्राह तां तदा ॥ ४९ ॥ प्रहस्य मधुरं वाक्यं कामशास्त्रविशारदा ॥ मन्दोदरि नृपः प्राप्तः सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ ५० ॥

समझा दो. हे चारुलोचने ! मैं ककुत्स्थवंशोत्पन्न राजा हूं ॥ ४६ ॥ कामिनी ! गांधर्व विवाहकी विधिसे मुझको पतित्वमें वरण करो. हे नितम्बिनी ! मेरे दूसरी कोई भार्या नहीं है ॥ ४७ ॥ और तुम रूपवती कामिनी सद्वंशोत्पन्न और वयसानुसार यौवनको प्राप्त हो इस कारण मैं तुमको लाभ करनेकी इच्छा करता हूं, वा तुम्हारे पिता मुझको विधिपूर्वक दे भी सकते हैं ॥ ४८ ॥ तो मैं तुम्हारा अनुकूल पति हूंगा, इसमें सन्देह नहीं. महिषने कहा हे देवी! उनकी यह बात सुनकर कामशास्त्रमें पण्डित वह सैरन्ध्री ॥ ४९ ॥ हँसते हँसते मधुर वचन द्वारा राजकन्यासे कहने लगी. हे मन्दोदरी ! मनोहरकान्तियुक्त सूर्यवंशीय एक नरपति आये हैं ॥ ५० ॥

वे रूपवान्, बलवान् और तुम्हारे समान वयस्क हैं. हे सुन्दरी ! वह नृपति तुम्हारे पति सम्यक् प्रकार प्रीतिपरायण हुए हैं ॥ ५१ ॥ हे विशाललोचने ! तुम्हारा विवाह काल उपस्थित है किन्तु तो भी तुमने विवाह नहीं किया, बरन् इस विषयमें तुमको बहुत वैराग्य है. तुम्हारे पिता यह जानकर निरन्तर दुःख करते हैं ॥ ५२ ॥ देखो तुम्हारे पिताने वारंवार श्वास छोड़कर हममे कहा है हे सैरन्ध्रियो ! तुम इसकी सेवामें तत्पर रहकर इसको समझाओ ॥ ५३ ॥ किन्तु तुम हठधर्ममें निरत होरही हो इस कारण हम तुमसे कुछ नहीं कह सकती, मुनियोंने कहा है कि स्वामीकी शुश्रूषा करनाही स्त्रियोंका परमधर्म है ॥ ५४ ॥ हे विशाल- नयने ! स्वामीकी सेवा करनेसे ही स्त्रियें स्वर्गको प्राप्त करती हैं इससे तुम विधिपूर्वक विवाह करो ॥ ५५ ॥

रूपवान्बलवान्कांतो वयसा त्वत्समः पुनः ॥ प्रीतिमान्नृपतिर्जातस्त्वयि सुन्दरि सर्वथा ॥ ५१ ॥ पिताऽपि ते विशालाक्षि परितप्यति सर्वथा ॥ विवाहकालं ते ज्ञात्वा त्वां च वैराग्यसंयुताम् ॥ ५२ ॥ इत्याहाऽस्मान्स नृपतिर्विनिःश्वस्य पुनः पुनः ॥ पुत्रीं प्रबोधयत्वेतां सैरंध्र्यः सेवने रताः ॥ ५३ ॥ वक्तुं शक्ता वयं न त्वां हठधर्मरतां पुनः ॥ भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परोध र्मोऽब्रवीन्मनुः ॥ ५४ ॥ भर्तारं सेवमाना वै नारी स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ तस्मात्कुरु विशालाक्षि विवाहं विधिपूर्वकम् ॥ ५५ ॥ मन्दोदर्युवाच ॥ नाऽहं पतिं करिष्यामि चरिष्ये तपमद्भुतम् ॥ निवारय नृपं बाले किं मां पश्यति निस्त्रपः ॥ ॥ ५६ ॥ सैरंध्र्युवाच ॥ दुर्जयो देवि कामोऽसौकालोऽसौ दुरति क्रमः ॥ तस्मान्मे वचनं पथ्यं कर्तुमर्हसि सुंदरि ॥ ५७ ॥ अन्यथा व्यसनं नूनमा पतेदिति निश्चयः ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा कन्यो वाचाथ तां सखीम् ॥ ५८ ॥ यद्यद्भवेत्तद्भवतु दैवयोगादसंशयम् ॥ न विवाहं करिष्येऽहं सर्वथा परिचारिके ॥ ५९ ॥ महिष उवाच ॥ इति तस्यास्तु निर्बंधं ज्ञात्वाप्राह नृपं पुनः ॥ गच्छ राजन्यथा कामं नेयमिच्छति सत्पतिम् ॥ ६० ॥.

मन्दोदरी बोली, मैं विवाह न करके अद्भुत तपस्याका अनुष्ठान करूंगी हे बाले ! तुम नरपतिसे निवारण करके कह दो कि, वह निर्लज्ज होकर क्यों मुझको देखते हैं ॥ ५६ ॥ सैरन्ध्री बोली--हे देवि ! काम अत्यन्त दुर्जय है और काल भी दुरतिक्रमणीय हैं अतएव हे सुन्दरि ! मेरे वचनको पथ्यस्व- रूप जानकर प्रतिपालन करो ॥ ५७ ॥ और यदि इसके अन्यथा करोगी तो निःसन्देह तुमको विपत् उपस्थित होगी । मन्दोदरीने सैरन्ध्रीके इस प्रकार वचन सुनकर उससे कहा ॥ ५८ ॥ हे परिचारिके ! दैवयोगसे जो होनहार है वह अवश्य होगा इसमें संशय नहीं. किन्तु इस समय मैं किसी प्रकार विवाह नहीं करूंगी ॥ ५९ ॥ महिषने कहा-सैरन्ध्रीने उसका इस प्रकार निश्चय जानकर राजासे कहा हे राजन् ! यह कामिनी सतपति प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं करती,

आपकी इच्छा जहां हो वहां जाइये ॥ ६० ॥ राजाने उसकी यह बात सुन कामिनीसे मोह छोड़ दिया और विमन हो सेनासहित कोशल देशकी ओर प्रस्थान किया ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते, महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ महिषने कहा हे देवि ! उस मन्दोदरीकी इन्दुमती नामक सुलक्षण संपन्न अविवाहिता एक बहन थी कालक्रमसे वह विवाहके योग्य हुई ॥ १ ॥ तब उसके विवाहार्थ स्वयंवर सभा रची गई. अनन्तर उस सभा मण्डपमें जब अनेक देशोंके राजा आये ॥ २ ॥ तब उस कन्याने उनमें कुल शील सम्पन्न सर्वसुलक्षण संयुक्त बलशाली और रूपवान् एक नरपतिको वरण किया ॥ ३ ॥ उस समय मन्दोदरीने भी दैवके अनिर्वचनीय प्रभावसे धूर्त, चातुर्यमय और शठ मद्रपतिको देख कामातुर हो, उससे ही विवाह करनेकी

नृपस्तु तद्वचः श्रुत्वा निर्गतः सह सेनया ॥ कोशलान्विमना भूत्वा कामिनीं प्रति निःस्पृहः ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे पंचमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ महर्षि उवाच ॥ तस्यास्तु भगिनी कन्या नाम्ना चेंदुमती शुभा ॥ विवाह योग्या संजाता सुरूपाऽवरजा यदा ॥ १ ॥ तस्या विवाहः संवृत्तः संजाताश्च स्वयंवरः ॥ राजानो बहुदेशीयाः संगतास्तत्र मंडपे ॥ २ ॥ तया वृतो नृपः कश्चिद्बलवान्रूपसंयुतः ॥ कुलशीलसमायुक्तः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ ३ ॥ तदा कामातुरा जाता विटं वीक्ष्य नृपं तु सा ॥ चकमे दैवयोगात्तु शठं चातुर्यभूषितम् ॥ ४ ॥ पितरं प्राह तन्वंगी विवाहं कुरु मे पितः ॥ इच्छा मेऽद्य समुद्भूता दृष्ट्वा मद्राधिपं त्विह ॥५॥ चंद्रसेनोऽपि तच्छ्रुत्वा पुत्र्या यद्भाषितं रहः ॥ प्रहसन्नेव मनसा तत्कार्ये तत्परोऽभवत् ॥६॥ तमाहूय नृप गेहे विवाहविधिना ददौ ॥ कन्यां मंदोदरीं तस्मै पारिबर्हं तथा बहु ॥ ७ ॥ चारुदेष्णोऽपि तां प्राप्य सुन्दरीं मुदितोऽभवत् ॥ जगाम स्वगृहं तुष्टो राजाऽपि सहितः स्त्रिया ॥ ८ ॥ रेमे नृपतिशार्दूलः कामिन्या बहुवासरान् ॥ कदाचिद्दासपत्न्या स रममाणो रहः किल ॥ ९ ॥

इच्छा की ॥ ४ ॥ तब उस कृशांगीने अपने पितासे कहा हे पितः ! इस सभामें मद्रराजको देखकर इनसे विवाह करनेकी मेरी इच्छा हुई है. अतएव आप इस समय मेरा विवाहकार्य कीजिये ॥ ५ ॥ अपनी कन्याके एकान्तमें इस प्रकार कहनेपर राजा चन्द्रसेन यह सुन अत्यन्त प्रसन्न चित्त हो कन्याके विवाहमें तत्पर हुए ॥ ६ ॥ उन्होंने उस राजाको घर बुलाय विवाह कार्यके नियमानुसार उसको अनेक धन यौतुकके सहित अपनी मन्दोदरी कन्या प्रदान करी ॥ ७ ॥ मद्रपति चारुदेष्ण उस सुन्दरीको पाय प्रफुल्लचित्तसे स्त्रीके सहित अपने घर गया ॥ ८ ॥ उस नृपवरने कामनीके संग बहुत कालतक क्रीडा की फिर किसी समय वह दास पत्नियोंसे निर्जनमें क्रीडामें आसक्त हुआ ॥ ९ ॥

तब एक परिचारिकाने यह वृत्तान्त जान मन्दोदरीसे कहा. मन्दोदरीने पतिकी यह अवस्था देख कुपित हो कुछेक हास्यवदनसे तिरस्कार किया ॥ १० ॥ अनन्तर एक समय राजा किसी सामान्य रूपवती रमणीके सहित पुनर्वार इच्छानुसार क्रीड़ामें रत होकर आमोद कर रहे थे, इसी समय मंदोदरीने यह देख और अत्यन्त दुःखित होकर मनमें विचारा ॥ ११ ॥ प्रथम जब स्वयंवरमें इसको देखा तब इसको शठ नहीं जान सकी, इस राजाने मुझको छला है हाय ! मोहके वश होकर मैंने क्या अन्याय कार्य किया है ॥ १२ ॥ यह राजा शठ और इसको किसी प्रकारकी घृणा और लज्जा नहीं है. अतएव इसके लिये अब संताप करना वृथा है ऐसे पतिसे किस प्रकार प्रीति हो सकती है ? इस कारण अब मेरे जीवन धारण करनेको धिक्कार है ॥ १३ ॥ अब मैंने पति

सैरंध्र्या कथितं तस्यै तयां दृष्टः पतिस्तथा ॥ उपलंभं ददौ तस्मै स्मितपूर्वं रुषाऽन्विता ॥ १० ॥ कदाचिदपि सामान्यां रहो रूपवतीं नृपः ॥ क्रीडयंह्लालयन्दृष्टः खेदं प्राप तदैव सा ॥ ११ ॥ न ज्ञातोऽयं शठः पूर्वं यदा दृष्टः स्वयंवरे ॥ किं कृतं तु मयां मोहाद्वंचिताऽहं नृपेण ह ॥ १२ ॥ किं करोम्यद्य संताप निर्लज्जे निर्घृणे शठे ॥ का प्रीतिरीदृशे पत्यौ धिगद्य मम जीवितम् ॥ १३ ॥ अद्यप्रभृतिसंसारे सुखं त्यक्तं मया खलु ॥ पतिसंभोगजं सर्वं संतोषोऽद्य मया कृतः ॥ १४ ॥ अकर्तव्यं कृतं कार्यं तज्जातं दुःखदं मम । देहत्यागः क्रियते चेद्धत्याऽतीव दुरत्यया ॥ १५ ॥ पितृगेहं व्रजम्याशु तत्राऽपि न सुखं भवेत् ॥ हास्ययोग्या सखीनां तु भवेयं नात्र संशयः ॥ १६ ॥ तस्मादत्रैव संवासो वैराग्ययुतया मया ॥ कर्तव्यः कालयोगेन त्यक्त्वा कामसुखं पुनः ॥१७॥ महिप उवाच ॥ इति संचिंत्य सा नारी दुःखशोक परायणा ॥ स्थिता पतिगृहं त्यक्त्वा सुखं संसारजं ततः ॥ १८ ॥

संभोग जनित संसारका सबही सुख त्याग करके बलमात्र संतोष अंवलम्बन किया ॥ १४ ॥ मैंने अकर्त्तव्य कार्य किया है इस कारण अब मुझको अति दुःख दायक हुआ है, यदि इस समय मैं देह त्याग करूं तो आत्महत्याका पाप मुझको कभी नहीं छोड़ेगा अवश्यही उसका फल भोगना होगा ॥ १५ ॥ और यदि पिताके घर जाऊं तो वहां भी मुझको सुख नहीं होगा क्योंकि सखियें मेरी ऐसी अवस्था देखकर दिनरात हँसी करेंगी इसमें सन्देह नहीं ॥१६॥ अतएव काम सुख परित्याग कर वैराग्य अवलम्बन पूर्वक कालकी कुटिलतासे इसी स्थानमें वास करना मुझको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ १७ ॥ महिषने कहा हे देवि ! वह स्त्री शोकसंतप्त हृदयसे इस प्रकार विलाप और परिताप करके स्वामीका शयनगृह और सांसारिक सुख एकही वार छोड़ वहां वास करने

लगी ॥ १८ ॥ अतएव हे कल्याणी ! मैं राजा हूं, तो भी तुम मेरा अनादर करती हो किंतु अन्तमें तुम भी उस मन्दोदरीके समान कामार्त होकर अन्य किसी मूर्ख पुरुषका आश्रय करोगी इसमें संदेह नहीं ॥ १९ ॥ इस समय तुम स्त्रियोंके हितकर और यथ्यस्वरूप मेरे वचनोंका पालन करो नहीं तो अन्तमें परमशोकको प्राप्त होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ महिषासुरके यह वचन सुनकर देवीने कहा हे मन्दात्मन् ! तू पातालमें भाग जा. वा इस समय युद्धमें प्रवृत हो, मैं तुझको और सब असुरोंको मारकर सुखपूर्वक चली जाऊंगी ॥ २१ ॥ जब जब साधुपुरुषोंको क्लेश. उपस्थित होता है तब तब मैं उनकी रक्षाके लिये देह धारण करती हूं ॥ २२ ॥ हे दैत्यवर ! मेरा रूप और जन्म नहीं है. केवल देवताओंकी रक्षा करनेके लिये ही समय समयमें रूपधारण

तस्मात्त्वमपि कल्याणि माम नादृत्य भूपतिम् ॥ अन्यं कापुरुषं मंदं कामार्ता संश्रयिष्यसि ॥ १९ ॥ वचनं कुरु मे तथ्यं नारीणां परमं हितम् ॥ अकृत्वा परमं शोकं लप्स्यसे नात्र संशयः ॥ २० ॥ देव्युवाच ॥ मंदात्मन्गच्छ पातालं युद्धं वा कुरु सांप्रतम् ॥ हत्वा त्वामसुरान्सर्वान्गमिष्यामि यथासुखम् ॥ २१ ॥ यदा यदा हि साधूनां दुःखं भवति दानव ॥ तदा तेषां च रक्षार्थं देहं संधारयाम्यहम् ॥ २२ ॥ अरूपायाश्च मे रूपमजन्मायाश्च जन्म च ॥ सुराणां रक्षणार्थाय विद्धि दैत्य विनिश्चितम् ॥ २३ ॥ सत्यं ब्रवीमि जानीहि प्रार्थिताहं सुरैः किल ॥ त्वद्वधार्थं हयारे त्वां हत्वास्थास्यामि निश्चला ॥ २४ ॥ तस्माद्युध्यस्व वा गच्छ पातालमसुरालयम् ॥ सर्वथा त्वां हनिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः स तया देव्या धनुरादाय दानवः ॥ युद्धकामः स्थितस्तत्र संग्रामांगणभूमिषु ॥ २६ ॥ मुमोच तरसा बाणान्कर्णाऽऽकृष्टाञ्छिला शितान् ॥ देवी चिच्छेद तान्बाणैः क्रोधान्मुक्तै रयोमुखैः ॥२७॥ तयोः परस्परं युद्धं संबभूव भयप्रदम् ॥ देवानां दानवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥ २८ ॥

और जन्मग्रहण करती हूं तुम यह बात निश्चय जानो ॥ २३ ॥ रे दुराचार महिष ! तेरे मारनेके लिये देवताओंने मेरे निकट प्रार्थना की है इस कारण मैं तेरा संहार करके स्थिर हूंगी हे महिष ! मैंने जो कहा इन सबको सत्यही जान ॥ २४ अब तू असुरालय पातालमें भाग जा वा युद्धकर मैं तुझको सब प्रकारसे विनाश करूंगी यह मैंने तुझसे सत्यही कहा है ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज देवीके इस प्रकार वचन सुन दानव धनुषग्रहण कर युद्धकी अभिलाषासे उस रणभूमिमें अवस्थित हुआ ॥ २६ ॥ और कानोंपर्यंत खैंचकर शिलाशाणित बाण शीघ्रतासहित छोड़ने लगा. तब देवीभी क्रोधित हो लोहफलके बाण छोड़कर उसके बाणोंको खण्ड खण्डकरने लगी ॥ २७ ॥ तब उनका आपसमें इस प्रकार तुमुल संग्राम होने लगा कि परस्पर जयकी इच्छा

करनेवाले देवता और दानवोंको उससे भय उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ घोर संग्राम हो रहा था उसी समय दुर्द्धर संग्रामस्थलमें आया और देवीको कुपित करके विषलिप्त दारुण शिलीमुख बाणोंको उनके ऊपर छोड़ने लगा ॥ २९ ॥ तब भगवतीने कुपित होकर तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर प्रहार किया दुर्द्धर उस प्रहारसे प्राणहीन होकर पर्वतके शिखरके समान पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ ३० ॥ तब महास्त्रवित् त्रिनेत्र उसको निहत देख समरमें उपस्थित हुआ और सात बाणोंसे परमेश्वरी को प्रहार किया ॥ ३१ ॥ उन बाणोंके आते आतेही देवीने विशिखद्वारा उनको काटडाला और फिर उन जगदम्बिकाने त्रिशूलसे उस त्रिनेत्रका विनाश किया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार त्रिनेत्रके मरनेपर अन्धक यह देख शीघ्रतासहित समरमें आया और लोहमय गदा लेकर सिंहके मस्तकमें वेगसे उसको

मध्ये दुर्धर आगत्य मुमोच शिलीमुखान् ॥ देवीं प्रति विषासक्तान्कोपयन्नतिदारुणान् ॥ २९ ॥ ततो भगवती क्रुद्धा तं जघान शितैः शरैः ॥ दुर्धरस्तु पपातोर्व्यां गतासुगिरिशृंगवत् ॥ ३० ॥ तं तथा निहतं दृष्ट्वा त्रिनेत्रः परमास्त्रवित् ॥ आगत्य सप्तभिर्बाणैर्जघान पर मेश्वरिम् ॥ ३१ ॥ अनागतांस्तु चिच्छेद देवी तान्विशिखैः शरान् ॥ त्रिशूलेन त्रिनेत्रं तु जघान जगदंबिका ॥ ३२ ॥ अन्धकस्त्वाज गामाशु हतं दृष्ट्वा त्रिलोचनम् ॥ गदया लोहमय्याऽऽशु सिंहं विव्याध मस्तके ॥ ३३ ॥ सिंहस्तु नखघातेन तं हत्वा बलवत्तरम् ॥ चखाद तरसा मांसमंधकस्य रुषाऽन्वितः ॥ ३४ ॥ तान्रणे निहतान्विक्ष्य दानवो विस्मयं गतः ॥ चिक्षेप तरसा बाणानतितीक्ष्णाञ्छि लाशितान् ॥ ३५ ॥ द्विधा चक्रे शरान्देवी तानप्राप्ताञ्छिलीमुखैः ॥ गदया ताडयामास दैत्यंवक्षसि चांबिका ॥ ३६ ॥ स गदाभिहतो मूर्छामवापामरबाधकः ॥ विषह्य पीडां पापात्मा पुनरागत्य सत्वरः ॥ ३७ ॥ जघान गदया सिंहं मूर्ध्नि क्रोधसमन्वितः ॥ सिंहोऽपि नखघातेन तं ददार महासुरम् ॥ ३८ ॥

प्रहार किया ॥ ३३ ॥ तब सिंहभी नखाघातसे अत्यन्त बलशाली उस अन्धकको निहत करके अतिक्रोधित हो उसका मांसभक्षण करने लगा ॥ ३४ ॥ जब समरमें यह सब असुर मारे गये तब यह देख महिषासुर अति आश्चर्यमें हो शिलाशाणित बाणोंको वेगसहित छोड़ने लगा ॥ ३५ ॥ देवी अम्बिकाने उन बाणोंके न आतेही शिलीमुखसे द्विखंड करके गदाद्वारा दैत्यके वक्षःस्थलमें प्रहार किया ॥ ३६ ॥ वह देवताओंको पीड़ा देनेवाला दुरात्मा महिषासुर गदाघातसे मूर्छित हुआ किंतु कुछ कालोपरांतही प्रहारकी वेदना सह फिर आय ॥ ३७ ॥ महाक्रोधसे गदाद्वारा सिंहके मस्तकमें प्रहार किया तब सिंहने भी नखाघातसे उस महाअसुरको विदीर्ण किया ॥ ३८ ॥

तब महिषासुरने भी पुरुषरूप छोड सिंहरूप धारण कर नखद्वारा देवीके मदोत्कट सिंहको क्षत विक्षत किया ॥ ३९ ॥ महिषासुरको सिंहरूप धारण किये देख देवीने कुपित होकर कठिन आशीविषके समान तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा की ॥ ४० ॥ तब महिषासुर सिंहरूप छोड मदस्रावी हाथीका रूप धारणकर सूण्डसे पर्वतके शिखर ग्रहणपूर्वक देवीके ऊपर निक्षेप करने लगा ॥४१॥ देवी जगदम्बिका पर्वतके शिखरोंको आता हुआ देख शिलाशाणित बाणोंसे उनको तिलप्रमाण खंड खंड कर हास्य करने लगी ॥ ४२ ॥ इधर सिंहने कूदकर उसके मस्तकमें प्राप्त होकर गजरूपी महिषासुरको नखद्वारा विदीर्ण किया ॥ ४३ ॥ तब उसने सिंहको संहार करनेकी इच्छासे हाथीका रूप छोड सिंहसे भी अधिक बलवान् भयंकर शरभ अष्टापद रूप धारण किया ॥ ४४ ॥

विहाय पौरुषं रूपं सोऽपि सिंहो बभूव ह ॥ नखैर्विदारयामास देवीसिंहं मदोत्कटम् ॥३९॥ तं च केसरिणं वीक्ष्यदेवी क्रुद्धा ह्ययोमुखैः ॥ शरैरवाकिरत्तीक्ष्णैः शरैराशीविषैरिव ॥ ४० ॥ त्यक्त्वा स हरिरूपं तुगजो भूत्वा मदस्रवः ॥ शैल शृंगं करे कृत्वा चिक्षेप चंडिकां प्रति ॥४१॥ आगच्छंतं गिरेः शृंगं देवी बाणैः शिलाशितैः ॥ चकार तिलशः खण्डाञ्जहास जगदंबिका ॥ ४२ ॥ उत्पत्य च तदा सिंहस्तस्य मूर्ध्नि व्यवस्थितः ॥ नखैर्विदारयामास महिषं गजरूपिणम् ॥४३॥ विहाय गजरूपं च बभूवाष्टापदी तथा ॥ हंतुकामो हरिंकोपाद्दारुणो बलवत्तरः ॥ ४४ ॥ तं वीक्ष्य शरभ देवी खड्गेन सा रुषाऽन्विता ॥ उत्तमांगे जघानाशु सोऽपि तां प्राहरत्तदा ॥ ४५ ॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूवाति भयप्रदम् ॥ माहिषं रूपमास्थाय शृंगाभ्यां प्राहरत्तदा ॥ ४६ ॥ पुच्छप्रभ्रमणेनाशु शृंगघातैर्महासुरः ॥ ताडयामास तन्वंगीं घोररूपो भयानकः ॥ ४७ ॥ पुच्छेन पर्वताञ्छृंगे गृहीत्वा भ्रामयन्बलात् ॥ प्रेषयामास पापात्मा प्रहसन्परया मुदा ॥ ४८ ॥ तामुवाच बलोन्मत्तस्तिष्ठ देवि रणांगणे ॥ अद्याहं त्वां हनिष्यामिरूप यौवनभूषिताम् ॥ ४९ ॥

देवीने उस शरभको देखकर क्रोधसे कुपित हो खड्गद्वारा उसके मस्तकमें प्रहार किया तब शरभने भी तत्काल देवीको प्रहार किया ॥ ४५ ॥ उस समय उसका परस्पर अत्यंत भयंकर युद्ध होने लगा तब महिषासुरने महिषरूप धारण करके सींगोंसे भगवतीको प्रहार किया ॥ ४६ ॥ वह घोररूप भयानक असुर पुच्छभ्रमण और दोनों सींगोंके आघातसे उन कृशांगी देवीपर प्रहार करने लगा ॥ ४७ ॥ वह दुर्द्धर्ष असुर लांगूलद्वारा पर्वतके शिखरोंको ग्रहण करके बलपूर्वक घुमाय घुमाय फेंकने लगा तब पापात्मा बलोन्मत्तताके कारण अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक हँसता हुआ ॥ ४८ ॥ देवीसे कहने लगा हे देवि ! रणस्थलमें स्थिर होओ रूप और यौवनके सहित अभी तुमको समरमें निहत करूंगा ॥ ४९ ॥

तुम मदमत्त होकर मुझसे युद्ध करती हो तुमको कुछ ज्ञान नहीं है तुम अत्यन्त मोहके वशीभूत हुई हो, तुम अपनेको अत्यंत बलवती विचारकर जो अभिमान करती हो उसको मिथ्या जानो ॥ ५०॥ जो शठ नारीको सन्मुख करके हमको जीतनेकी इच्छा करते हैं पहिले तुमको मारकर फिर उन कपट पंडित देवताओंका संहार करूंगा ॥ ५१ ॥ देवी बोली हे दुरात्मन्! गर्व मत कर रणांगणमें स्थिर हो अभी मैं तेरा विनाशकरके उन सुरसत्तम गणोंको निर्भय करूंगी ॥ ५२ ॥ हे अधम ! तू पापिष्ठ है तु देवताओंको दुःख देता रहता है और मुनियोंको भय दिखाता है मैं सुमिष्ट माधवी सुराका पान करके तुझको समरांगणमें निहत करूंगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ५३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! देवी इस प्रकार कह क्रोधकर महिषासुरको मारनेकी

मूर्खाऽसि मदमत्ताऽद्य यन्मया सह संगरम् ॥ करोषि मोहिताऽतीव मृषा बलवती खरा ॥ ५० ॥ हत्वा त्वां निहनिष्यामि देवान्कपटपंडितान् ॥ येनारीं पुरतः कृत्वा जेतुमिच्छंति मां शठाः ॥ ५१ ॥ देव्युवाच ॥ मा गर्वं कुरु मंदात्मंस्तिष्ठ तिष्ठ रणांगणे ॥ करिष्यामि निरातंकान्हत्वा त्वां सुरसत्तमान् ॥ ५२ ॥ पीत्वाऽद्य माधवीमिष्टां शातयामि रणेऽधम ॥ देवानां दुःखदं पापं मुनीनां भय कारकम् ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच इत्युक्त्वा चषकं हैमं गृहीत्वा सुरया युतम् ॥ पपौ पुनः पुनः क्रोधाद्धतुकामा महासुरम् ॥ ५४ ॥ पीत्वा द्राक्षासवं मिष्टं शूलमादाय सत्वरा ॥ दुद्राव दानवं देवी हर्षयन्देवतागणान् ॥ ५५ ॥ देवास्तां तुष्टुवुः प्रेम्णा चक्रुः कुसुम वर्षणम् ॥ जयजीवेति ते प्रोचुर्दुंदुभीनां च निःस्वनैः ॥ ५६ ॥ ऋषयः सिद्धगंधर्वाः पिशाचोरगचारणाः किन्नराः प्रेक्ष्य संग्रामं मुदिता गगने स्थिताः ॥ ५७ ॥ सोऽपि नानाविधान्देहान्कृत्वा कृत्वा पुनः पुनः ॥ मायामयाञ्जघानाजौ देवीं कपटपंडितः ॥ ५८ ॥ चंडिकाऽपि च तं पापं त्रिशूलेन बलाद्धृदि ॥ ताडयामास तीक्ष्णेन क्रोधादरुणलोचना ॥ ५९ ॥

इच्छासे सुरापूर्ण सोनेका कटोरा ग्रहणकर बारंबार सुरारस पान करने लगी ॥ ५४ ॥ फिर सुमिष्ट द्राक्षारस पान करके देवी शूलग्रहणपूर्वक दानवकी ओर दौड़ी। यह देखकर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ५५ ॥ प्रीतिसहित उन देवीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करके स्तव करने लगे और" जय जीव" यह कह दुन्दुभिके शब्दसे उनकी जयघोषणा करी॥ ५६ ॥ ऋषिगण, सिद्धगण, गंधर्वगण, पिशाचगण, उरगगण और किन्नरगण आकाशमण्डलसे संग्राम देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ ५७ ॥ इधर वह कपटपण्डित महिषासुर बारंबार मायामय अनेक प्रकारके देह धारण करके देवीपर बारम्वार प्रहार करने लगा ॥ ५८ ॥ तब चण्डिकाने क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर तीक्ष्ण शूलसे उस पापमति महिषासुरके हृदयमें बलपूर्वक प्रहार किया ॥ ५९ ॥

असुर शूलाघातकी वेदनासे मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिर गया किंतुमुहूर्त्तकालमें ही फिर उठकर चण्डिकाके ऊपर वेगसहित दोनों चरणोंका प्रहार किया ॥ ६० ॥ उस महासुरने देवीको पदद्वारा प्रहार करके वारंवार हँसकर ऐसा भयंकर चीत्कार शब्द किया कि, उस शब्दसे देवता बहुत डरे ॥ ६१ ॥ तब देवीने सुनाभवाले सहस्रार उत्तम चक्रको हाथमें ले सन्मुख स्थित असुरसे उच्चस्वरसे कहा ॥ ६२ ॥ रे मूढ! देख यह चक्र आज तेरे कंठका छेदन करेगा. क्षणकाल-मात्र ठहर अभी तुझको यमलोग भेजती हूं ॥ ६३ ॥ जगदम्बिकाने यह कहतेही दारुण चक्र छोड़ा तब तत्काल उस चक्रने दानवका मस्तक काट डाला ॥ ६४ ॥ गेरुका द्वारा अरुणवर्ण विशाल निर्भय प्रवाह जिस प्रकार पर्वतसे निकलता है. इसी प्रकार उसके कंठनालसे उष्ण रुधिरकी धारा निकलने लगी

ताडितोऽसौ पपातोर्व्यां मूर्छामाप मुहूर्तकम् ॥ पुन रुत्थाय चामुंडां पद्भ्यां वेगादताडयत् ॥६०॥ विनिहत्य पदाघातैर्जहास च मुहुर्मुहुः॥ रुराव दारुणं शब्दं देवानां भयकारकम् ॥ ६१ ॥ ततो देवी सहस्रारं सुनाभं चक्रमुत्तमम् ॥ करे कृत्वा जगादोच्चैः संस्थितं महिषासुरम् ॥ ६२ ॥ पश्यचक्रं मदांधाद्य तव कंठनि कृंतनम् ॥ क्षणमात्रं स्थिरो भूत्वा यमलोकं व्रजाधुना ॥ ६३ ॥ इत्युक्त्वा दारुणं चक्रं मुमोच जगदंबिका ॥ शिरश्छिन्नं रथांगेन दानवस्य तदा रणे ॥ ६४ ॥ सुस्राव रुधिरं चोष्णं कंठनालाद्गिरेर्यथा ॥ गैरिकाद्यरुणं प्रौढं प्रवाह मिव नैर्झरम् ॥ ६५ ॥ कबंधस्तस्य दैत्यस्य भ्रमन्वै पतितः क्षितौ ॥ जयशब्दश्च देवानां बभूव सुखवर्धनः ॥६६॥ सिंहस्त्वतिबलास्तत्र पलायनपरानथ ॥ दानवान्भक्षयामास क्षुधार्त इव संगरे ॥६७॥ मृते च महिषे क्रूरे दानवा भयपीडिताः ॥ मृतशेषाश्च ये केचित्पातालं ते ययुर्नृप ॥ ६८ ॥ आनन्दं परमं जग्मुर्देवास्तस्मिन्निपातिते ॥ मुनयो मानवाश्चैव ये चान्ये साधवः क्षितौ ॥ ६९ ॥ चंडिकाऽपि रणं त्यक्त्वा शुभे देशेऽथ संस्थिता ॥ देवास्तत्राऽऽययुः शीघ्रं स्तोतुकामाः सुखप्रदाम् ॥ ७० ॥

॥ ६५ ॥ उस असुरका मस्तक हीन देह क्षणकाल इधर उधर घूमकर पृथ्वीमें गिर गया देवता आनन्दवर्द्धन जयशब्द उच्चारण करने लगे ॥ ६६ ॥ अत्यन्त बलशाली सिंह रणस्थलमें भागते हुए दानवोंको क्षुधार्त्तके समान भक्षण करने लगा ॥ ६७ ॥ हे राजन्! क्रूरप्रकृति महिषासुरके निहत होनेपर मृतावशिष्ट जो दानव थे वे डरकर पातालमें भाग गये ॥ ६८ ॥ उस पापमति असुरके मारनेपर देवता ऋषि और मनुष्य तथा पृथ्वीतलमें अन्यान्य जो जो साधुलोग थे. वे सब अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ६९ ॥ भगवतीचंडिका भीस मरपरित्याग करके पवित्र स्थानमें स्थिति करने लगी. अनन्तर देवतासुखप्रदा देवीका स्तव करनेकी इच्छासे वहां आये ॥ ७० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! अनन्तर इन्द्र इत्यादि देवतागण महिषासुरका मरण देख आनन्दित हो देवीका स्तव करने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले हे भगवति! तुम्हारी ही शक्तिके बलसे ब्रह्मा जगत्की सृष्टि, विष्णु जगत्का पालन और महेश्वर प्रलयकालमें जगत्का संहार करते हैं. किंतु तुम्हारी शक्ति विहीन होनेसे वे कभी इस विश्वकी सृष्टि स्थित और संहार करनेमें समर्थ नहीं होते. अतएव हे देवि! आपही इस अखिल जगत्की स्थिति नाशका एकमात्र कारण हैं इसमें संदेह नहीं है ॥ २ ॥ हे देवि! आपही सब जगत्का कारण स्वरूप हैं. अतएव सभी आपमें अधिष्ठित रहते हैं. इस विश्व संसारमें कीर्ति, मति, स्मृति, गति, करुणा, दया, श्रद्धा, धृति. वसुधा,. कमला, मंत्ररूपा, अजपा, पुष्टि

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे महिषाऽसुरवधो नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ अथ प्रमुदिताः सर्वे देवा इंद्रपुरो गमाः ॥ महिषं निहतं दृष्ट्वा तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥१॥ देवा ऊचुः ॥ ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरिदं महेशः शक्त्या तवैव हरते ननु चांत काले ॥ ईशा न तेऽपि च भवंति तया विहीनास्तस्मात्त्वमेव जगतः स्थितिनाशकर्त्री ॥ २ ॥ कीर्तिर्मतिः स्मृतगती करुणा दया त्वं श्रद्धा धृतिश्च वसुधा कमला जपा च ॥ पुष्टिः कलाऽथ विजया गिरिजा जया त्वं तुष्टिः प्रमा त्वमसि बुद्धिरुमा रमा च ॥ ३ ॥ विद्या क्षमाजगति कांतिरपीह मेधा सर्वं त्वमेव विदिता भुवनत्रयेऽस्मिन् ॥ आभिर्विना तव तु शक्तिभिराशु कर्तुं को वा क्षमः सकल लोकनिवासभूमे ॥ ४ ॥ त्वं धारणा ननु न चेदसि कूर्मनागौ धर्तुं क्षमौ कथमिलामपि तौ भवेताम् ॥ पृथ्वी न चेत्त्वमसि वा गगने कथं स्थास्यत्येतदंब निखिलं बहुभारयुक्तम् ॥ ५ ॥ ये वा स्तुवंति मनुजा अमरान्विमूढा मायागुणैस्तव चतुर्मुखविष्णुरुद्रान् ॥ शुभ्रांशुवह्नि यमवायुगणेशमुख्यान्किंत्वामृते जननि ते प्रभवंति कार्ये ॥ ६ ॥

कला, विजया, जया, तुष्टि, प्रभा, बुद्धि, रमा ॥ ३ ॥ विद्या, क्षमा, कान्ति, मेधा, अधिक क्या रुद्रशक्ति गिरिजा और ईश्वरशक्ति उमा इत्यादि जो सब, शक्तियां विद्यमान हैं वे सब आपही हैं यह बात त्रिभुवनमें किसीसे छिपी नहीं हैं. आपकी इन शक्तियोंके विना कभी कोई कार्य नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ हे भगवति! यदि आप धारण शक्ति न होती तो कूर्म अनन्तदेव किस प्रकार पृथ्वी धारण करनेमें समर्थ होते ? हे जननि! आप यदि पृथ्वी न होतीं तो यह बहु भारपूर्ण सब जगत् क्या कभी अन्तरिक्ष (आकाश) में रह सकता ॥ ५ ॥ हे जननि! जो मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, चन्द्र. अग्नि, यम, वायु और गणेश इत्यादि देवताओंको स्तव करते हैं वे निसंदेह आपकी मायाके बलसे मोहित हैं. हे देवि! ये देवता क्या आपकी शक्तिके विना किसी कार्यके

करनेमें समर्थ हो सकते हैं ॥ ६ ॥ हे मातः ! जो विस्तृत यज्ञमें देवताओंके उद्देशसे विपुल हवि आहुति देता है. वह अन्यन्त अल्पबुद्धि है. क्योंकि आप यदि स्वाहा न होती तो देवतालोग क्या तत्काल उस हुत हविको प्राप्त हो सकते थे ? हे देवि ! वे सब लोग आपकी पूजा न करनेसे निःसंदेह मूढ हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ७ ॥ हे जननि ! आपही प्रकृतिकी सप्त विकृति और षोडशविकार यह त्रयोविंशतित्वरूप स्वीय अंशद्वारा प्राणियोंके प्रारब्धकर्मभोगके लिये जीवदान करती हैं और आप अनुगत देवताओंको इस जगत्में जिस प्रकार पोषण करती हैं, वैसेही असुरोंको भी कर्मानुसार भोग और जीवन दानसे पालन करती हो. अतएव हे भगवति ! आपही इन चराचर मनुष्योंको भोग प्रदान करती हैं इसमें फिर संशय क्या है ॥ ८ ॥ हे मातः ! चित्त विनोदके लिये उद्यानमें मनोहर वृक्ष रोपण करनेपर भी यदि स्वाभाविक गुणसे किसीमें फल वा किसीमें पत्ते न हो. या किसी वृक्षका रस कड़वा हो. तोभी विज्ञ

ये जुह्वति प्रवितते‌ऽल्पधियोऽब यज्ञवह्नौ सुरान्समधिकृत्य हविःसमृद्धम् ॥ स्वाहा न चेत्त्वमसि ते कथमापुरद्धा त्वामेव किं न हि यजंति ततो हि मूढाः ॥ ७ ॥ भोगप्रदाऽसि भवतीह चराचराणां स्वांशैर्ददासि खलु जीवनमेव नित्यम् ॥ स्वीयान्सुराञ्जननि पोषयसीह यद्वत्त द्वत्परानपि च पालयसीति हेतोः ॥ ८ ॥ मातः स्वयं विरचितान्विपिने विनोदाद्वंध्यान्पलाशरहितांश्च कटूंश्च वृक्षान् ॥ नोच्छेदयन्ति पुरुषा निपुणाः कथंचित्तस्मात्त्वमप्यतितरां परिपासि दैत्यान् ॥ ९ ॥ यत्त्वं तु हंसि रणमूर्ध्नि शरैररातीन्देवांगनासुरतिकेलिमतीन्वि दित्वा ॥ देहांतरेऽपि करुणारस माददाना तत्ते चरित्रमिदमीप्सितपूरणाय ॥ १० ॥ चित्रं त्वमी यदसुभी रहिता न संति त्वच्चिंति तेन दनुजाः प्रथितप्रभावाः ॥ येषां कृते जननि देहनिबंधनं ते क्रीडारसस्तव न चान्यतरोऽत्र हेतुः ॥ ११ ॥

पुरुष कभी उसको स्वयं नहीं काटते. हे देवि ! आपभी इसी प्रकार निकृष्ट कर्मानुसार दैत्योंको उत्पन्न करके आपही उनका पालन करती हैं ॥ ९ ॥ हे भगवति ! आपका हृदय करुणा रसमें इतना आकृष्ट है कि, देवाङ्गनाओंको सुरताभिलाषी जानकर तामस प्रकृति दैत्यगण यागादि द्वारा स्वर्ग लाभ नहीं कर सकते, अतएव वह मेरे वाणोंसे प्राणत्याग करनेपर देहावसानके समय स्वर्ग लोकमें जाकर देवाङ्गनाओंके सहित सुरतक्रीडामें रत हो, आपने इस अभिप्रायके कारण ही उन शत्रुओंको बाणोंसे समरमें विनाश किया है, अतएव आपका यह व्यवहार उनका मनोरथ सिद्ध करनेके लिये था; कुछ वधके लिहे नहीं ॥ १० ॥ हे जननि ! आपने जिसका विनाश करनेकी इच्छासे शरीर धारण किया है, सो आपके संकल्प मात्रसे ही जो उन विख्यात प्रभाव असुरोंके प्राण न गये, यह अत्यन्त आश्चर्य जान पड़ता है. आपका देहधारण करनेकी लीलाके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण नहीं है ॥११॥

हे देवि ! इस घोर कलियुगमें जो मनुष्य आपका भजन न करके अन्यान्य देवताओंका भजन करते हैं, पुराण चतुरोंने निस्सन्देह उनको छलकर आपके बनाये हरिहरादिकी सेवा परायण किया है. हाय ! इससे इन मनुष्योंका क्या दुर्भाग्य ही संघटित हुआ है ॥ १२ ॥ हे देवि असुर निपीडित ये देवता लोग आपके अधीन हैं, यह जानकर भी मनुष्य अनुराग परायण हो पृथ्वीमें उन देवताओंकी पूजा करते हैं वह निःसन्देह विमल दीपक हाथमें धारण करके निविड़ अन्धकाराच्छन्न निर्ज्जल कूपमें गिरते हैं ॥ १३ ॥ हे मातः ! आपही चित्स्वरूपिणी विद्या हैं, सुतरा सुख अर्थात् मुक्तिप्रदान करती हैं, आपही अविद्या अर्थात् माया हैं, सुतरां असुख अर्थात् संसार क्लेश प्रदान करतीहैं हे देवि ! जो आपकी पूजा करते हैं आप उन मनुष्योंका जन्म क्लेश हरण करती हैं मोक्षाभिलाषी मुनि लोगही आपकी अराधना करते हैं औरलोभ परायण मन्दमति अज्ञानी पुरुषही आपकी आराधनासे विरत होते हैं ॥ १४ ॥ अधिक क्या

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले न त्वां भजंति मनुजा ननु वंचितास्ते ॥ धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशंकराणां सेवापराश्च विहितास्तव निर्मितानाम् ॥ १२ ॥ ज्ञात्वा सुरांस्तव वशानसुरार्दितांश्च ये वै भजंति भुवि भावयुता विभग्नान् ॥ धृत्वा करे सुविमलं खलु दीपकं ते कूपे पतंति मनुजा विजलेऽतिघोरे ॥ १३ ॥ विद्यात्वमेव सुखदाऽसुखदाप्यविद्या मातस्त्वमेव जननार्तिहरा नराणाम् ॥ मोक्षार्थिभिस्तु कलिता किल मंदधीभिर्नाराधिता जननि भोगपरैस्तथाऽज्ञैः ॥१४॥ ब्रह्माहरश्च हरिरप्यनिशं शरण्यं पादांबुजं तव भजंति सुरास्तथाऽन्ये॥ तद्वै न येल्पमतयो मनसा भजंति भ्रांताः पतंति सततं भवसागरेते ॥ १५ ॥ चंडि त्वदंघ्रिजलजोत्थरजःप्रसादैर्ब्रह्मा करोति सकलं भुवनं भवादौ ॥ शौरिश्चपाति खलु संहरते हरस्तु त्वां सेवते न मनुजस्त्विह दुर्भगोऽसौ ॥ १६ ॥ वाग्देवता त्वमसि देवि सुरासुराणां वक्तुं न तेऽमरवराः प्रभवंति शक्ताः ॥ त्वं चेन्मुखे वससि नैव यदैव तेषां यस्माद्भवंति मनुजा न हि तद्विहीनाः ॥ १७ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और अपरापर देवता लोग सदा आपके आराध्य चरण कमलोंकी अर्चना करते,हैं किन्तु जो अल्प बुद्धि भ्रान्त मनुष्य मनमें आपके चरण कमलोंका ध्यान नहीं करते,वह सदा इस भवसागरमें गिरते हैं॥ १५ ॥ हे चंडिके ! आपके चरण कमलोंसे उठी हुई रजके प्रसादसे ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इस विश्वसंसारकी सृष्टि पालन और संहार करते हैं अतएव हे देवि ! जो मनुष्य आपकी सेवा नहीं करते वे अत्यन्त भाग्यहीन हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ हे जगदम्बिके ! आपही सुर असुरोंकी वाग्देवता हैं अतएव आप यदि उनके मुखमंडलमें विराजमान न होतीं तो वह किसी प्रकारसे कुछ उच्चारण करनेमें समर्थ नहीं होते. अतएव हे देवि ! मनुष्य लोग आपसे रहित होकर भी किस प्रकार बात कहनेमें समर्थ होंगे ? ॥ १७ ॥

हे जननि ! प्रकुपित भृगुमुनिके शापसे ही हरि पृथ्वीमें मीन, कूर्म, शूकर, नृसिंह और वंचना तत्पर वामन इत्यादिकी रूप धारण करके अवतीर्ण हुए थे, इसमें उनकी पराधीनता स्पष्टही प्रतीत होती है, जो उन पराधीन अवतारोंकी सेवा करते हैं उसको किस लिये मृत्युका भय नहीं होगा ? ॥ १८ ॥ हे मातः ! सतीके वियोगसे महादेवके अरण्य मध्यस्थ ऋषियोंके आश्रममें गमन करनेपर भृगुमुनिके शापसे उनका लिंग पृथ्वीमें गिरा, यह तो सर्वत्र ही प्रसिद्ध है. अतएव जो अपने लिंगकी रक्षा करनेमें भी समर्थ नहीं हैं, विशेषकर जो स्पर्श करनेके अयोग्य नरकपाल इत्यादि धारण करते हैं, उन शंभुको जो मनुष्य भजते हैं उनको इसका काल और परकालमें किस प्रकार सुख होगा ? ॥ १९ ॥ हे देवि ! जिन गणाधिपति गजाननने पूर्वोक्त महेशसे जन्म

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु ॥ पश्चान्नृसिंह इति यश्छल कृद्धरायां तान्से वतां जननि मृत्यु भयं न किं स्यात ॥ १८ ॥ शंभोः पपात भुवि लिंगमिदं प्रसिद्धं शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य ॥ तं ये नरा भुवि भजंति कपालिनं तु तेषां सुखं कथमिहापि परत्र मातः॥१९॥योऽभूद्गजाननगणाधिपतिर्महेशात्त ये भजंति मनुजावितथप्रपन्नाः॥जानंति ते न सकलार्थफल प्रदात्रीं त्वां देवि विश्वजननीं सुखसेवनीयाम् ॥२०॥ चित्रं त्वयाऽरिजनताऽपि दयार्द्रभावाद्धत्वा रणे शितजरैर्गमिता द्युलोकम् ॥ नो चेत्स्व कर्मनिचिते निरये नितांतं दुःखातिदुःखगतिमापदमापतेत्सा ॥ २१ ॥ ब्रह्मा हरश्च हरिरप्युत गर्वभावाज्जानंति तेऽपि विबुधा न तव प्रभा वम् ॥ केऽन्ये भवंति मनुजा विदितुं समर्थाः संमोहितास्तव गुणैरमितप्रभावैः ॥ २२ ॥

धारण किया है, जो मनुष्य उन गणपतिकी पूजा करते हैं वे अत्यन्त भ्रान्त हैं, विशेषकर वे निःसन्देह चतुर्वर्ग प्रदानमें समर्थ इस विश्व ब्रह्माण्डकी जननी स्वरूप सुखाराध्य आपको नहीं जानते ॥ २० ॥ हे देवि ! आपने दयार्द्रताके वश होकर ही शत्रुओंको शित बाणोंसे समरमें निहत करके स्वर्गलोकमें भेज दिया है यदि ऐसा न करतीं तो वे निःसन्देह अपने कर्मोंकेफलसे नरककी अधिकतर आपदामें गिरते, इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ ब्रह्मा. हरि और हर तथा अन्यान्य देवता भी आपका प्रभाव जाननेमें समर्थ नहीं हैं तो आपके अमित प्रभाव सत्वादि गुणसे मोहित सामान्य मनुष्यगण किस प्रकार तुम्हारा प्रभाव जाननेमें समर्थ हों ? ॥ २२ ॥

१ यहां उत्कर्षता दिखानेको ऐसा कहा है भजन आदिका निषेध न जानना, यह स्तुति देवि भगवतका उत्कर्ष है कारण कि, इनमें सब देवताओंका सत्व है ।

हे मातः ! जो विचारके अगोचर आपके चरण कमलोंकी पूजा नहीं करते और दृश्यमान सूर्य भी अनलकी सेवामें निरत हैं, वे शतशत श्रुतिद्वारा प्रतिपादित वेदका सार परमतत्व न जानकर ही मोहित चित्तसे केवल क्लेशोंका भोग करते रहते हैं॥ २३ ॥ हे जननि ! मैं विचारता हूं कि आपके सत्व रज और तमोगुणका प्रभाव भूमण्डलमें विस्तृत रहता है. वही सब गुण पुरुष बुद्धिविरचित नाना विध मोहकर तंत्रादि शास्त्रद्वारा सब मनुष्योंको विष्णु महेश्वर सूर्य और गणेश इत्यादि देवताओंकी उपासनामें प्रवृत्त करके आपकी भक्तिभावसे विमुख कर देते हैं ॥ २४ ॥ हे अम्बिके ! जो हरिहरादिके अर्चना विषयक भक्तियोगप्रतिपादित आगम शास्त्रद्वारा ब्राह्मणोंको आपके चरण कमलोंसे विमुख करते हैं आप उनके प्रति कुपित नहीं होतीं बरन् वश्याकर्षणादि मोहमंत्रनिपुण उन मनुष्योंको भलीभांति विख्यात करके उनके प्रति दया प्रकाश करती हो ॥ २५ ॥ सत्ययुगमें विशुद्धसत्वगुणही अधिक बलवान् था इससे

क्लिश्यंति तेऽपिसुनयस्तव दुर्विभाव्यं पादांबुजं न हि भजंति विमूढचित्ताः ॥ सूर्याग्निसेवनपराः परमार्थतत्त्वं ज्ञातं न तैः श्रुतिशतैरपि वेदसारम् ॥२३॥ मन्ये गुणास्तव भुवि प्रथितप्रभावाः कुर्वंति ये हि विमुखान्ननु भक्तिभावत् ॥ लोकान्स्वबुद्धिरचितैर्विविधाऽऽगमैश्च विष्णवीशभास्करगणेशपरान्विधाय ॥ २४ ॥ कुर्वंति ये तव पदाद्विमुखान्नराग्र्यान्स्वोक्तागमैर्हरिहरार्चनभक्तियोगैः ॥ तेषां न कुप्यसि दयांकुरुषेऽबिके त्वं तान्मोहमंत्र निपुणान्प्रथयस्यलं च ॥२५॥ तुर्ये युगे भवति चाऽतिबलं गुणस्यतुर्यस्य तेन मथितान्यसदागमानि ॥ त्वां गोपयंति निपुणाः कवयः कलौ वै त्वत्कल्पितान्सुरगणानपि संस्तुवंति ॥२६॥ ध्यायंति मुक्तिफलदां भुवि योगसिद्धां विद्यां परां च मुनयोऽतिविशुद्धसत्त्वाः ॥ ते नाप्नुवंति जननीजठरे तु दुःखं धन्यास्त एव मनुजास्त्वयि ये विलीनाः ॥ २७ ॥ चिच्छक्तिरस्ति परमात्मनि तेन सोऽपि व्यक्तो जगत्सुविदितोभवकृत्यकर्ता ॥ कोऽन्यस्त्वया विरहितःप्रभवत्यमुष्मिन्कर्तुं विहर्तुमपि संचलितुं स्वशक्त्या ॥ २८ ॥

ही असत्शास्त्रोंका प्रभाव संकुचित था किन्तु कलिकालमें उसके अभावसे अविशुद्धगुणकी प्रधानता हुई है सुतरां पण्डिताभिमानी निपुण मनुष्य आपकी उपासना न करके आपके बनाये हरि हरादि देवताओंकी पूजा करते हैं ॥ २६ ॥ हे मातः ! आपही चित्स्वरूपिणी विद्या हैं आपही योगसिद्धि होनेपर भक्तोंको मुक्तिका फल प्रदान करती हैं इसलिये विशुद्धसत्वगुण प्रधान मुनिलोग आपका ही ध्यान करते हैं किन्तु जो मनुष्य आपमें लीन हुए हैं वे ही धन्य हैं अधिक क्या उनको फिर जननीके जठरमें दुःखभोगना नहीं पड़ता ॥ २७ ॥ हे जननि ! आपही चित्शक्ति रूपसे परमात्मामें वास करती हैं. इस कारण परमात्मा भी इस जगन्मंडलमें विशेष रूपसे व्यक्त होकर जगत् प्रपंचकी सृष्टि स्थिति और संहारकर्ता विदित होते हैं ? हे देवि ! तुम्हारी शक्तिसे

विहीन होकर कौन पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार इस जगत्प्रपंचमें कर्म करने विहार करने अथवा विचरण करनेमें समर्थ होता है ? ॥ ॥२८॥ हे भगवति ! आपसेही यह विश्व संसार रचा गया है अतएव आपही विश्वजननी हैं. महदादि चौवीस तत्त्व जड हैं, सुतरां तुम्हारी चित्शक्तिसे रहित होकर वे जगत्के बनानेमें किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं ? हे देवि ! गुणकर्म युक्त जो सब इन्द्रियें विद्यमान हैं वे भी तुम्हारी शक्तिसे हीन होकर संसारका कार्य विधान वा फल देनेमें कभी समर्थ नहीं होती ॥ २९ ॥ आप यदि स्वाहारूप होकर यज्ञकी निमित्त भूत न होती तो देवता क्या मुनिगण कर्तृक यथाविधि प्रतिपादित यज्ञमें आहुत हविका स्वस्वभाग ग्रहण कर सकते ? अतएव हे देवि ! आपही इस विश्वसंसारका पालन करती हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३० ॥ हे भगवति ! भवसागरके प्रथम आपनेही इस सब जगत्को उत्पन्न किया है. हरि हर इत्यादि देवता और दिक्पालोंकी आपही रक्षा करती हैं. आपही

तत्त्वानि चिद्विरहितानि जगद्विधातुं किंवा क्षमाणि जगदंब यतो जडानि ॥ किंचेंद्रियाणि गुणकर्मयुतानि संति देवि त्वया विरहितानि फलं प्रदातुम् ॥ २९ ॥ देवा मखेष्वपि हुतं मुनिभिः स्वभागं गृह्णीयुरंब विधिवत्प्रतिपादितं किम् ॥ स्वाहा न चेत्त्वमसि तत्र निमित्तभूता तस्मात्त्वमेव ननु पालयसीव विश्वम् ॥ ३० ॥ सर्वं त्वयेदमखिलं विहितं भवादौ त्वं पासि वै हरिहरप्रमुखान्दिगीशान् ॥ कालेऽसि विश्वमपि ते चरितं भवाद्यं जानंति नैवमनुजाः क्व नु मंद भाग्याः ॥ ३१ ॥ हत्वाऽसुरं महिषरूपधरं महोग्रं मातस्त्वया सुरगणः किल रक्षितोऽयम् ॥ कां ते स्तुतिं जननि मंदधियो विदामो वेदा गतिं तव यथार्थतया न जग्मुः ॥३२॥ कार्यं कृतं जगति नो यदसौ दुरात्मा वैरीहतौ भुवनकंटकदुर्विभाव्यः ॥ कीर्तिः कृता ननु जगत्सु कृपा विधेयाऽप्यस्मांश्च पाहि जननि प्रथितप्रभावे ॥ ३३ ॥

अंतकालमें इस विश्वसंसारका संहार करती हैं अतएव हे भवानि ! आपका चरित्र देवता लोग भी नहीं जानते फिर मन्दभाग्य मनुष्य लोग किस प्रकार उसको जान सकते हैं ॥ ३१ ॥ हे मातः ! महिषरूपधारी भयंकर असुरोंको मारकर आपने इन देवताओंकी रक्षा की है. हे जननि ! सम्पूर्ण वेदभी आपकी गति यथार्थरूपसे नहीं जान सकते फिर हम मंद बुद्धि होकर आपकी क्या स्तुति करें ॥ ३२ ॥ हे जननि ! आपने हमारे वैरी अभावनीय भुवनकंटक दुष्टदानवका दलन करके हमारा कार्यसाधन किया है इससे आपकी कीर्ति जगत्में विस्तीर्ण हुई है अतएव हे विदित प्रभावे ! आपही जगत्की माता हैं कृपाकरके हमारी रक्षा कीजिये ॥ ३३ ॥

व्यासजी बोले हे महाराज ! जब देवताओंने इस प्रकार स्तुति करी तब देवीने उनसे मधुर वचन द्वारा कहा हे सुरसत्तमगण ! तुम्हारा अपार दुःसाध्य कार्य क्या है ? सो कहो ॥ ३४ ॥ जब तुम्हारा अत्यंत दुर्घट कोई कार्य उपस्थित हो उसी समय मेरा स्मरण करो मैं तत्काल उस आपदाको विनष्ट करूंगी ॥ ३५ ॥ देवता बोले हे देवि ! आपने इस समय जो हमारे शत्रु महिषासुरको मारा है इससे ही हमारा सब कार्य होगया है ॥ ३६ ॥ अब जिससे आपके चरण कमलोंका सदा स्मरण करसकें और जिससे आपके प्रति अचल भक्ति रहे आप वही कीजिये ॥ ३७ ॥ माताही पुत्रके हजार हजार अपराध सहती है मनुष्य यह जानकर भी किस कारण जगन्माताकी अर्चना नहीं करते सो कह नहीं सकते ॥ ३८ ॥ इस देहमें जीवात्मा और परमात्मारूप दो विहंगम

व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैर्देवी तानुवाच मृदुस्वरा ॥ अन्यत्कार्यं च दुःसाध्यं ब्रुवंतु सुरसत्तमाः ॥ ३४ ॥ यदा यदा हि देवानां कार्यं स्यादतिदुर्घटम् ॥ स्मर्तव्याऽहं तदा शीघ्रं नाशयिष्यामि चाऽऽपदम् ॥ ३५ ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वं कृतं त्वया देवि कार्यं नः खलुः सांप्रतम् ॥ यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुराः ॥ ३६ ॥ स्मरिष्यामो यथातेंऽब सदैव पदपङ्कजम् ॥ तया कुरु जगन्मातर्भक्तिं त्वय्यप्यचञ्चलाम् ॥ ३७ ॥ अपराधसहस्राणि मातेव सहते सदा ॥ इति ज्ञात्वा जगद्योनिं न भजन्ते कुतो जनाः ॥ ३८ ॥ द्वौ सुपर्णौ तु देहेऽस्मिंस्तयोः सख्यं निरंतरम् ॥ नान्यः सखा तृतीयोऽस्ति योऽपराधं सहेत हि ॥ ३९ ॥ तस्माज्जीवः सखायं त्वां हित्वा किं नु करिष्यति ॥ पापात्मा मंदभाग्योऽसौ सुरमानुषयोनिषु ॥ ४० ॥ प्राप्य देहं सुदुष्प्रापं न स्मरेत्त्वां नराधमः ॥ मनसा कर्मणा वाचा ब्रूमः सत्यं पुनः पुनः ॥ ४१ ॥ सुखे वाऽप्यथवा दुःखे त्वं नः शरणमद्भुम् ॥ पाहि नः सततं देवि सर्वैस्तव वरायुधैः ॥ ४२ ॥

(पक्षी) सदा वास करते हैं उन दोनोंका ऐसा सख्य (मित्रभाव) है कि कभी उनका वियोग नहीं होता किंतु उनके अपराधको सहे ऐसा और तीसरा सखा कोई नहीं है ॥ ३९ ॥ अतएव जो जीव सखा स्वरूप आपको परित्याग करता है वह फिर क्या करेगा ? वह कभी कल्याणलाभ नहीं कर सकता वह पापात्मा देवता और मनुष्योंमें मन्दभाग्य है, इसमें संदेह नहीं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य दुर्लभ देह पाकर वचन मन और कर्मसे आपका वारंवार स्मरण नहीं करता वह निःसंदेह नराधम है, यह हम वारंवार सत्य कहते हैं ॥४१॥ हे देवि ! सुखके समय हो, वा दुःखके समय हो, आपही हमारी रक्षा करनेवाली हैं, अतएव आपही उत्तमोत्तम अस्त्रोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ४२ ॥

हे देवि ! तुम्हारी चरण रेणुके विना हमारी रक्षाका दूसरा कोई उपाय नहीं है. श्री व्यासजी बोले हे जनमेजय ! जब देवता इस प्रकार भगवतीका स्तव कर चुके तब देवी भगवती उसी स्थानमें अन्तर्धान होगई ॥ ४३ ॥ देवता देवीका अंतर्धान होना देखकर बहुत अचंभेमें हुए ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ जनमेजय बोले हे ऋषिवर ! भगवतीके इस परम पवित्र जगत्के हितकर अद्भुत चरित्रका विषय मैंने जाना, किंतु आपके मुखकमलसे निकला कथामृत श्रवण कर इस समय भी मैं तृप्त नहीं हुआ ॥ १ ॥ हे मुनिवर ! भवानीके अंतर्धान होनेपर उन प्रधान प्रधान देवताओंने उसकाल क्या किया ? यह आप कहिये. हे भगवन् ! जिन जीवोंके पुण्यका बल अति थोड़ा है वे कभी देवीके इस परम

अन्यथा शरणं नास्ति त्वत्पदांवुजरेणुतः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैर्देवी तत्रैवांतरधीयत ॥ ४३ ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्देवास्तां वीक्ष्य निर्गताम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे एकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥ जनमेजय उवाच ॥ अथाऽद्भुतं वीक्ष्य मुने प्रभावं देव्या जगच्छांतिकरं वरं च ॥ न तृप्तिरस्ति द्विजवर्य शृण्वतः कथाऽमृतं ते मुखपद्मजातम् ॥ १ ॥ अंतर्हितायां च तदा भवान्यां चक्रुश्च किं देवपुरोगमास्ते ॥ देव्याश्चरितं परमं पवित्रं दुरापमेवाल्पपुण्यैर्नराणाम् ॥ २ ॥ कस्तृप्तिमाप्नोति कथाऽमृतेन भिन्नोऽल्पभाग्यात्पटुकर्णरंध्रः ॥ पीतेन येनामरतां प्रयाति धिक्तान्नरान्ये न पिबंति सादरम् ॥ ३ ॥ लीला चरित्रं जगदम्बिकाया रक्षान्वितं देवमहामुनीनाम् ॥ संसारवार्धेस्तरणं नराणां कथं कृतज्ञा हि परित्यजेयुः ॥४॥ मुक्ताश्च ये चैव मुमुक्षवश्च संसारिणे रोगयुताश्च केचित् ॥ तेषां सदा श्रोत्र पुटैश्च पेयं सर्वार्थदं वेदविदो वदंति ॥ ५ ॥

पवित्र चरित्रको नहीं जान सकते ॥ २ ॥ हे मुने ! अल्पभाग्य मनुष्यकी बात तो दूर रहे जिसके कर्णविवर कथामृत सुननेमें निपुण हैं वे महात्माभी क्या देवीके चरितामृत पीनेसे तृप्त हो सकते हैं ? जिस वचनामृतके पान करनेसे मनुष्य अमरत्वको प्राप्त होता है वह सर्वसार वाक्यामृत जो नहीं पीते उनको धिक्कार है ॥ ३ ॥ जगदम्बिकाके लीलाचरित्र देवता और महामुनियोंकी रक्षा करनेवाले व मनुष्यादिको संसार समुद्रको नौकास्वरूप हैं अतएव कृतज्ञ पुरुष उनको किस प्रकार छोड़ सकते हैं ॥ ४ ॥ वेदके जाननेवाले पंडित कहते हैं कि देवीके चरित्र सब अभिलाषित प्रदान करनेमें समर्थ हैं अतएव क्या मुक्त, क्या मुमुक्षु, क्या संसारी, क्या रोगी सबको ही श्रवणपुट द्वारा सदा उनको पान करना चाहिये ॥ ५ ॥

विशेषकर धर्म अर्थमें और काम भोगमें निरत राजाओंको भी इस चरितामृतका पान करना चाहिये. हे मुने! मुक्त पुरुषभी जब देवीके चरितामृतका पान करते हैं तब उनके अतिरिक्त अन्यान्य सामान्य पुरुषोंको जो उसका पान करना कर्त्तव्य है, इसमें फिर संदेह क्या है ? ॥ ६ ॥ हे मुनिवर! भोगी राजा और दुःखी दरिद्रोंको देखकर इस प्रकार अनुमान करना चाहिये कि, जिन्होंने पूर्व जन्ममें सुन्दर कुन्दपुष्प, चम्पकपुष्प और बिल्व दल द्वारा भवानीकी अर्चना की है वही भूलोकमें राजा होकर भोग सुख अनुभव करते हैं ॥ ७ ॥ और जिसने भारतभूमि भागमें दुष्प्राप्य मनुष्य देह धारण करके भक्तिहीनताके कारण उनकी पूजा नहीं की वही रोगी धन, धान्य और सम्पत्ति लाभसे वञ्चित तथा सन्तानहीन होते हैं, इसमें संदेह नहीं ॥ ८ ॥ अधिक क्या ? वे केवल भारवाही आज्ञाकारी दास होकर दिनरात भ्रमण करते हैं किंतु दिनरात स्वार्थको खोजकर भी उदर पूर्तिमात्र द्रव्यलाभमें समर्थ नहीं होते

तथा विशेषेण मुने नृपाणां धर्मार्थकामेषु सदा रतानाम् ॥ मुक्ताश्च यस्मात्खलु तत्पिबंति कथं न पेयं रहितैश्च तेभ्यः ॥ ६ ॥ यैः पूजिता
पूर्वभवे भवानी सत्कुंदपुष्पैरथ चपंकैश्च ॥ बैल्वैर्दलैस्ते भुवि भोगयुक्ता नृपा भवंतीत्यनुमेयमेवम् ॥ ७ ॥ ये भक्ति हीनाः समवाप्य देहं
तं मानुषं भारतभूमिभागे ॥ यैर्नार्चिता ते धनधान्यहीना रोगान्विताः संततिवर्जिताश्च ॥ ८ ॥ भ्रमंति नित्यं किल दासभूता आज्ञाकराः
केवलभारवाहाः ॥दिवानिशं स्वार्थपराः कदाऽपि नैवाप्नुवंत्यौदरपूर्तिमात्रम् ॥९॥ अंधाश्च मूका बधिराश्च खंजाः कुष्ठान्विता ये भुवि
दुःखभाजः ॥ तत्रानुमानं कविभिर्विधेयं नाराधिता तैः सततं भवानी ॥ १० ॥ ये राजभोगान्वितऋद्धिपूर्णाः संसेव्यमाना बहुभिर्मनुष्यैः ॥
दृश्यंति ये वा विभवैः समेतास्तैः पूजिताऽबेत्यनुमेयमेव ॥११॥ तस्मात्सत्यवतीसूनो देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ कथयस्व कृपां कृत्वा दया
वानसि सांप्रतम् ॥ १२ ॥ हत्वा तं महिषं पापं स्तुता संपूजिता सुरैः ॥ क्व गता सा महालक्ष्मीः सर्वतेजः समुद्भवा ॥ १३ ॥

॥ ९ ॥ अन्धे, गूंगे, बहरे, खंज और कुष्ठरोगी इत्यादि जो भूलोकमें दुःख भोगते हैं, उनको देखकर पंडित लोग अनुमान करें कि इन्होंने कभी भवानीकी आराधना नहीं की ॥ १० ॥ जो समृद्धिशाली और अनेक अनुचरोंसे भलीभांति सेवित होकर राजयोग्य भोग भोगते हैं जो धनवान् दिखाई देते हैं उन्होंने निःसंदेह जगदम्बिकाके चरण कमलोंकी पूजा की थी यह अनुमान करना चाहिये ॥ ११ ॥ अतएव हे सत्यवतीतनय ! आप दयालु हैं इस कारण अब कृपा करके मेरे निकट देवीकी अनुत्तम चरित्रगाथा वर्णन कीजिये ॥ १२ ॥ हे मुनिवर ! सब देवताओंके तेजःपुञ्जसे उत्पन्न वह महालक्ष्मी पापिष्ठ महिषासुरको मारकर तथा देवताओंसे पूजित और संस्तुत होकर कहां गई ॥ १३ ॥

हे महाभाग ! आपने कहा है कि, वह अंतर्धान होगई अब मैं जानना चाहता हूं कि वह भुवनेश्वरी अंतर्धान होकर स्वर्गलोगमें वा मृत्युलोकमें अवस्थित करती हैं ॥ १४ ॥ वह उसी स्थानमें लीन होगई या उन्होंने वैकुण्ठका आश्रय किया वा सुमेरुपर्वतमें चली गई ? हे मुनिवर ! आप यह सब विवरण यथार्थरूपसे मेरे निकट वर्णन कीजिये ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! मैंने पहिलेही आपके निकट मनोहर मणिद्वीपका विषय वर्णन किया है. यह द्वीप देवीभगवतीका क्रीडास्थान और परमप्रिय है ॥ १६ ॥ इस स्थानमें ही ब्रह्मा, विष्णु और महादेव स्त्रीभावको प्राप्त होते हैं. पुरुषत्व लाभ करके अपने अपने कार्यमें नियुक्त होते हैं ॥ १७ ॥ यह स्थान परम शोभायमान और सुधासिंधुके मध्य देशमें स्थित है. अम्बिका देवी अनेक प्रकारके रूप धारण करके

कथितं ते महाभाग गतांऽतर्धानमाशु सा ॥ स्वर्गे वा मृत्युलोके वा संस्थिता भुवनेश्वरी ॥१४॥ लयं गता वा तत्रैव वैकुंठे वा समाश्रिता ॥ अथवा हेमशैले सा तत्त्वतो मे वदाधुना ॥ १५ ॥ व्यास उवाच ॥ पूर्वं मया ते कथितं मणिद्वीपं मनोहरम् ॥ क्रीडास्थान सदा देव्या वल्लभं परमं स्मृतम् ॥ १६ ॥ यत्र ब्रह्मा हरिः स्थाणुः स्त्रीभावं ते प्रपेदिरे ॥ पुरुषत्वं पुनः प्राप्य स्वानि कार्याणि चक्रिरे ॥ १७ ॥ यः सुधासिंधुमध्येऽस्ति द्वीपः परमशोभनः ॥ नानारूपैः सदा तत्र विहारं कुरुतेंऽबिका ॥१८॥ स्तुता संपूजिता देवैः सा तत्रैव गता शिवा ॥ यत्र संक्रीडते नित्यं मायाशक्तिः सनातनी ॥ १९ ॥ देवास्तां निर्गतां वीक्ष्य देवीं सर्वेश्वरीं तथा ॥ रविवंशोद्भवं चक्रुर्भूमिपालं महाबलम् ॥ २० ॥ अयोध्याधिपतिं वीरं शत्रुघ्नं नाम पार्थिवम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं महिषस्यासने शुभे ॥२१॥ दत्त्वा राज्यं तदा तस्मै देवा इंद्रपुरोगमाः ॥ स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे जग्मुः स्वान्यालयानि ते ॥ २२ ॥ गतेषु तेषु देवेषु पृथिव्यां पृथिवीपते ॥ धर्मराज्यं बभूवाथ प्रजाश्च सुखितास्तथा ॥ २३ ॥

सदा उस स्थानमें विहार करती हैं ॥ १८ ॥ परब्रह्म स्वरूपिणी सनातनी भगवती भुवनेश्वरी जिस स्थानमें सदा क्रीडा करती हैं, देवताओंके पूजा और स्तव करनेपर तदंशसंभूत यह शिवा देवी भी उसी मणिद्वीपमें जाती हैं ॥ १९ ॥ उन सर्वेश्वरी देवीके अन्तर्धान होनेपर देवता लोगोंने सर्व लक्षण सम्पन्न सूर्य वंशीय बली ॥ २० ॥ अयोध्यापति महाबल वीर प्रवर शत्रुघ्न नामक नरपतिको महिषासुरके सिंहासनपर बैठाकर साम्राज्यका अधीश्वर किया ॥ २१ ॥ इन्द्र इत्यादि देवता उनको राज्य दे अपने अपने वाहनपर चढ स्वस्थानको चले गये ॥ २२ ॥ हे महाराज ! देवताओंके चले जानेपर पृथ्वीमें धर्मानुसार राज्य पालन होने लगा. इस कारण प्रजा सुख व स्वच्छन्दतासे समय व्यतीत करने लगी ॥ २३ ॥

उस समय मेघके यथासमयमें वर्षा करनेपर धरा मंडल धनधान्यसे परिपूर्ण हो गया और वृक्ष सब फलपुष्पसे परिपूर्ण होकर सदा सुखदायक हुए ॥ २४ ॥ घटके समान ऐनवाली गायें ऐसी दुग्धवती हुई कि मनुष्य इच्छानुसार दुहने लगे. नदियें स्वच्छ और शीतल जलसे पूर्ण होकर सुमार्गमें बहने लगीं और उनके चारोंओर खग आदि स्थिति करने लगे ॥ २५ ॥ ब्राह्मणलोग वेदतत्व पराण होकर यज्ञ कार्यमें निरत हुए और क्षत्रिय अपने धर्मसे तत्पर होकर दान और अध्ययनमें प्रवृत हुए ॥ २६ ॥ राजा न्याय दंड धारण करके प्रजाकी रक्षामें तत्पर हुए. हे राजन्! इस समय राजा अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंमें रत होकर भी सभी शान्तिपरायण हुए ॥ २७ ॥ इसी प्रकार फिर जीवोंका परस्पर विरोध न हुआ, आकर (खाने) मनुष्यको बहुत धन देने लगीं. गाय

पर्जन्यः कालवर्षी च धरा धान्यगुणावृता ॥ पादपाः फलपुष्पाढ्या बभूवुः सुखदाः सदा ॥ २४ ॥ गावश्च क्षीरसंपन्नाघटोध्न्यः कामदा नृणाम् ॥ नद्यः सुमार्गगाः स्वच्छाः शीतोदाः खगसंयुताः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणा वेदतत्त्वाश्च यज्ञकर्मरतास्तथा ॥ क्षत्रिया धर्मसंयुक्ता दानाध्ययनतत्पराः ॥ २६ ॥ शस्त्रविद्यारता नित्यं प्रजारक्षणतत्पराः ॥ न्यायदंडधरा सर्वे राजानः शमसंयुता ॥२७॥ अविरोधस्तु भूतानां सर्वेषां संबभूव ह ॥ आकरा धनदा नृणां व्रजा गोयूथसंयुताः ॥ २८ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम ॥ देवीभक्तिपराः सर्वे संबभूवुर्धरातले ॥२९॥ सर्वत्र यज्ञयूपाश्च मंडलाश्च मनोहराः ॥ मखैः पूर्णा धराश्चासन् ब्राह्मणैः क्षत्रियैः कृतैः ॥३०॥ पतिव्रतधरा नार्यः सुशीलाः सत्यसंयुताः ॥ पितृभक्तिपराः पुत्रा आसन्धर्मपरायणाः ॥ ३१ ॥ न पाखंडं न वाऽधर्मः कुत्रापि पृथिवीतले ॥ वेदवादाः शास्त्रवादा नान्ये वादास्तथाऽभवन् ॥३२॥ कलहो नैव केषांचिन्न दैन्यं नाशुभा मतिः ॥ सर्वत्र सुखिनो लोकाः काले च मरणं तथा॥३३॥

चरानेका सब स्थान गायोंके यूथोंसे पूर्ण होगये ॥ २८ ॥ हे नृपसत्तम! इस समप धरातलस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी देवीके प्रति भक्तिपरायण हुए ॥ २९ ॥ ब्राह्मण और क्षत्रिय इतने अधिक यज्ञ करने लगे कि जिनसे पृथ्वीके सब स्थानोंमें ही मनोहर यज्ञयूँप और यज्ञमण्डप विराजमान होने लगे ॥ ३० ॥ सब स्त्रियें सुशील. और सत्यपरायण होकर पतिव्रता धर्मका अनुष्ठान करने लगीं. पुत्र धर्मनिष्ठ होकर पिताके प्रति भक्तिपरायण हुए ॥ ३१ ॥ पृथ्वीके सब स्थानोंसे नास्तिकता व अधर्मका अनुष्ठान एकवारही दूर होगया, शुद्ध तर्क वितर्क रहित होकर केवल वेदानुयायी शास्त्रका वादाविवाद होने लगा ॥ ३२ ॥ किसी पुरुषको किसीके संग कलहमति न रही, दीनता वा अशुभ कार्यमें मति न रहनेसे संपूर्ण लोग सुखपूर्वक वास करने लगे उसकाल अकाल

मृत्यु न होनेसे ॥ ३३ ॥ कभी किसीको सुहृद्गणोंसे वियोग और आपदा उपस्थित न हुई. अनावृष्टि, दुर्भिक्ष वा मनुष्योंको क्लेशदायक मारीभय न रहा ॥ ३४ ॥ अधिक क्या किसी जीवके रोगपर्यन्त भी दिखाई नहीं देता था. परस्पर विरोध वा मात्सर्यभाव दूर हुआ नर नारी परस्पर सुखपूर्वक स्थित थे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! स्वर्गस्थ देवताओंके समान नर, नारी परम सुखपूर्वक क्रीडा करने लगे अधिक क्या उस समय चोर, पाखंड, वंचक, दम्भिक ॥ ३६ ॥ खल, लम्पट , चुगल, जड़, वेदविद्वेषी, पापपरायण मनुष्य कोई न था ॥ ३७ ॥ हे पृथ्वीपते ! उस काल सब मनुष्यही धर्ममें अति अनुरक्त होकर सदा ब्राह्मणोंकी सेवामें तत्पर रहे, सृष्टि धर्मके त्रिविध होनेसे सब ब्राह्मण भी तीन प्रकारके हैं ॥ ३८ ॥ वे सात्विक, राजसिक और तामसिक भेद

सुहृदां वियोगश्च नापदश्च कदाचन ॥ नाऽनावृष्टिर्नदुर्भिक्षं न मारी दुःखदा नृणाम् ॥३४॥ न रोगो च मात्सर्यं न विरोधः परस्परम् सर्वत्र सुखसंपन्ना नरा नार्यः सुखान्विताः ॥३५॥ क्रीडंति मानवाः सर्वे स्वर्गे देवगणा इव ॥ न चोरा नैव पाखंडा वंचका दंभकास्तथा ॥३६॥ पिशुना लंपटाः स्तब्धा न बभूवुस्तदा नृप ॥ न वेदद्वेषिणः पापा मानवाः पृथिवीपते ॥ ३७ ॥ सर्वधर्मरता नित्यं द्विजसेवापरायणाः ॥ त्रिधात्वात्सृष्टिधर्मस्य त्रिविधा ब्राह्मणास्ततः ॥ ३८ ॥ सात्त्विका राजसाश्चैव तामसाश्च तथाऽपरे ॥ सर्वे वेदविदो दक्षाः सात्त्विकाः सत्त्ववृत्तयः ॥ ३९ ॥ प्रतिग्रहविहीनाश्च दयादमपरायणाः ॥ यज्ञांस्ते सात्त्विकैरन्नैः कुर्वाणा धर्मतत्पराः ॥ ४० ॥ पुरोडाशविधानैश्च पशुभिर्न कदाचन ॥ दानमध्ययनं चैव यजनं तु तृतीयकम् ॥ ४१ ॥ त्रिकर्मरसिकास्ते वै सात्त्विका ब्राह्मणा नृप ॥ राजसा वेदविद्वांसः क्षत्रियाणां पुरोहिताः ॥ ४२ ॥ षट्कर्मनिरताः सर्वे विधिवन्मांसभक्षकाः ॥ यजनं याजनं दानं तथैव च प्रतिग्रहः ॥ ४३ ॥ अध्ययनं तु वेदानां तथैवाध्यापनं तु षट् ॥ तामसाः क्रोधसंयुक्ता रागद्वेषपराः पुनः ॥ ४४ ॥

त्रिविध हैं, सात्विक ब्राह्मण वेदवित् दक्ष और सत्य व्यवहारमें निरत हैं ॥ ३९ ॥ वेदवान्, चतुर और किसीके निकटसे कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते वे धर्ममें तत्पर होकर सात्विक अन्नद्वारा ॥ ४० ॥ पुरोडाश विधानसे यज्ञ करते हैं,किन्तु पशु द्वारा कभी यज्ञ नहीं करते, हे नरपाल ! जो सात्विक ब्राह्मण हैं वे दान, अध्ययन और यजन ॥४१॥ इन तीन कार्योंमें निरत हैं राजसी ब्राह्मण वेदविद् और क्षत्रियोंके पुरोहित होकर ॥ ४२ ॥ विधिपूर्वक मांस भक्षण करते हैं. वे यजन, दान, प्रतिग्रह ॥ ४३ ॥ अध्ययन और वेदका अध्यापन इन छैः कार्योंमें निरत हैं. तामस ब्राह्मण क्रोध राग और द्वेषपरायण होते हैं ॥४४॥

वे किंचिन्मात्र वेदाध्ययन करके सदा राजाओंके कार्य करते हैं हे महाराज ! महिषासुरके मरनेपर सब ब्राह्मण ही सुखी वेदशास्त्रानुसारी ॥ ४५ ॥ और व्रतपरायण होकर दान धर्मका अनुष्ठान करने लगे. क्षत्रिय लोग प्रजा पालन, वैश्यगण वणिग्वृत्ति ॥ ४६ ॥ और अपर जातिके लोग खेती, वाणिज्य, गो रक्षा और कुसीद (व्याज) व्यवहार करने लगे. महिषासुरके मारे जानेपर मनुष्य इस प्रकार संतुष्ट चित्त हुए थे ॥ ४७ ॥ तब प्रजालोग निरुद्वेग होकर धन संचय करने लगे सम्पूर्ण गाय सुलक्षण युक्त और बहु दुग्धवती हुई ॥ ४८ ॥ सब नदियें जलपूर्ण वृक्ष अनेक फलोंसे शोभायमान और मनुष्य रोग रहित हुए उस समय किसी मनुष्य मानसिक क्लेश और बहुकष्टदायक अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभ, मूषिक, खग और राजविद्रोह कुछ वर्त्तमान नहीं था

राज्ञा कर्मकरा नित्यं किंचिदध्ययने रताः ॥ महिषे निहते सर्वे सुखिनो वेदतत्पराः ॥ ४५ ॥ बभूवुर्व्रतनिष्णाता दानधर्मपरास्तथा ॥ क्षत्रियाः पालने युक्ता वैश्या वणिजवृत्तयः ॥ ४६ ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षाकुसीदवृत्तयः परे ॥ एवं प्रमुदिता लोको महिषे विनिपातिते ॥ ४७ ॥ अनुद्वेगःप्रजानां वै संबभूव धनाऽऽगमः ॥ बहुक्षीराः शुभा गावो नद्यश्चैव बहूदकाः ॥ ४८ ॥ वृक्षा बहुफलाश्चाऽऽसन्मानवा रोगवर्जिताः ॥ नाऽऽधयो नेतयः क्वाऽपि प्रजानां दुःखदायकाः ॥ ४९ ॥ न निधनमुपयांति प्राणिनस्तेऽप्यकाले सकलविभवयुक्ता रोग हीनाः सदैव ॥ निगमविहितधर्मे तत्पराश्चंडिकायाश्चरणसरसिजानां सेवने दत्तचित्ताः ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ सुखदं सर्वजंतूनां सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यथाशुंभो निशुंभश्च भ्रातरौ बलवत्तरौ ॥ बभूवतुर्महावीराववध्यौ पुरुषैः किल ॥ २ ॥ बहुसेनावृतौ शूरौ देवानां दुःखदौ सदा ॥ दुराचारौ मदोत्सिक्तौ बहुदानवसंयुतौ ॥ ३ ॥

॥ ४९ ॥ हे राजन् ! उस समय प्राणी कालमेंही अकाल कवलित न हुए वरन् सदा निरोगी रहकर सब विभवके अधिकारी होने लगे विशेष करके सब कोई निगमविहित धर्ममें तत्पर होकर चण्डिकाके चरण कमलोंकी सेवामें एकाग्र चित्त होकर समय व्यतीत करने लगे ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! जिनके सुननेसे प्राणियोंके सब पाप नष्ट होकर सुख प्राप्त होता है मैं देवीके वही पवित्र चरित्र वर्णन करता हूं, सुनो ॥ १ ॥ पूर्वकालमें शुंभ और निशुम्भ नामक असुरप्रवर महावीर दो भाई थे, वह अतिशय वीर्यवान् और पुरुषसे अवध्य थे ॥ २ ॥ यह दुराचारी दोनों असुर असंख्य दानवदलसे परिवृत्त होनेसे अत्यन्त मदोन्मत्त हो गये थे. इस कारण असीम सैन्यदल सहित देवता

ओंको सदाही क्लेश देते ॥ ३ ॥ तब अम्बिका देवीने देवताओंके हितकी कामनासे अत्यन्त दारुण संग्राममें सब अनुचरोंके सहित उस शुम्भ और निशु म्भको मारा था ॥ ४ ॥ रणस्थलमें उनके प्रधान सहचर महाबाहु चण्ड मुंड, अत्यन्त भयंकर रक्तबीज और धूम्रलोचनकोभी विनाश किया था ॥ ५ ॥ देवीके द्वारा उन सब दानवोंके मरनेपर देवताओंका भय दूर हुआ था. तब देवताओंने शोभायमान सुमेरुपर्वतमें जाकर उनका स्तव और पूजा की थी ॥ ६ ॥ जनमेजयने शुम्भ और निशुम्भकी कथा सुनकर पूँछा हे मुनिवर ! वे दोनों असुर कौन थे? किस प्रकार अद्वितीय बलवान् हुए थे किस पुरुषने इनको यहां स्थापित किया? किस कारणसे स्त्रीवध्य हुए ॥ ७ ॥ किसकी तपस्या और वरके प्रभावसे वे महाबलशाली हुए ? किस निमित्त देवी भगवतीने इनको मारा ?

हतावंबिकया तौ तु संग्रामेऽतीव दारुणे ॥ देवानां च हितार्थाय सर्वैः परिचरैः सह ॥ ४ ॥ चंडमुंडौ महाबाहू रक्तबीजोऽतिदारुणः ॥ धूम्रलोचननामा च निहतास्ते रणांगणे ॥ ५ ॥ तान्निहत्य सुराणां सा जहार भयमुत्तमम् ॥ स्तुता संपूजिता देवैर्गिरौ हेमाचले शुभे ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ कावेतावसुरावादौ कथं तौ बलिनां वरौ ॥ केन संस्थापितौ चेह स्त्रीवध्यत्वं कुतो गतौ ॥ ७ ॥ तपसा वरदानेन कस्य जातौ महाबलो ॥ कथं च निहतौ सर्वं कथयस्व सविस्तरम् ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ देव्याश्चरितसंयुक्तां सर्वार्थफलदां शुभाम् ॥ ९ ॥ पुरा शुंभनिशुंभौ द्वावसुरौ भूमिमंडले ॥ पातालतश्च संप्राप्तौभ्रातरौ शुभदर्शनौ ॥१०॥ तौ प्राप्तयौवनौचैव चेरतुस्तप उत्तमम् ॥ अन्नोदकं परित्यज्य पुष्करे लोक पावने ॥ ११ ॥ वर्षाणामयुतं यावद्योगविद्यापरायणौ ॥ एकत्रैवाऽऽसनं कृत्वा तेपाते परमं तपः ॥१२॥ तयोस्तुष्टोऽभवद्ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः ॥ तत्राऽगतश्च भगवानारुह्य वरटापतिम् ॥१३॥

आप इन सब वृत्तांतको मुझसे विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! देवीके पवित्र चरित्र युक्त मनोहर उपाख्यान वर्णत करता हूं सुनो इस मंगलमय पवित्र कथाके सुननेसे संपूर्ण पाप नष्ट होते हैं और सब अभिलषित फल प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ पूर्वकालमें शुंभ और निशुंभ नामक दोनों भाई पातालसे भूमण्डलपर आये थे ॥ १० ॥ अनन्तर वे दोनों असुर यौवनकाल प्राप्त होनेपर भुवनमें परम पवित्र पुष्कर तीर्थमें अन्न और जल त्याग कठिन तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ११ ॥ उन्होंने योगविद्यामें ऐसी निपुणता लाभ की थी कि, एक स्थानमें ही एकासनपर अयुतवर्ष पर्यन्त दुश्चर तपस्या की ॥ १२ ॥ तब लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी उनकी तपस्यासे संतुष्ट हो हंसकी पीठपर चढकर उस स्थानमें आये ॥ १३ ॥

विधाताने उनको ध्यानमें मग्न देखकर कहा कि, मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हुआ हूं अतएव तुम उठो ॥ १४ ॥ मैं सब लोकोंकी मनोकामना पूर्ण करता हूं इस समय तुम्हारे तपोबल देखनेसे संतुष्ट होकर यहां आया हूं तुम मुझसे अभिलषितवर मांगो मैं वही तुमको दूंगा ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! शुंभ और निशुंभ पितामहके इस प्रकार वचन सुनकर ध्यानसे निवृत्त हुए और उन्होंने समाहित चित्तसे उनकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया ॥ १६ ॥ तपस्याके क्लेशसे क्षीणकलेवर दीन दोनों असुर दण्डके समान प्रणाम करके गद्गदस्वर मधुरवचनसे कहने लगे ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप भक्तोंको अभयप्रद देवताओंके भी देवता और विशेष कर दयाके सागर हैं आप इच्छानुसार सबही कर सकते हैं. अतएव आप यदि हमारे प्रति संतुष्ट हुए हैं तो हमको अमर

तावुभौ च जगत्स्रष्टा दृष्ट्वा ध्यानपरौ स्थितौ ॥ उत्तिष्ठतं महाभागौ तुष्टोऽहं तपसा किल ॥ १४ ॥ वाञ्छितं वां वरं कामं ददामि ब्रुवतामिह ॥ कामदोऽहं समायातो दृष्ट्वा वां तपसो बलम् ॥ १५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रबुद्धौ तौ समाहितौ ॥ प्रदक्षिणक्रियां कृत्वा प्रणामं चक्रतुस्तदा ॥ १६ ॥ दंडवत्प्रणिपातं च कृत्वा तौ दुर्बलाकृती ॥ ऊचतुर्मधुरां वाचं दीनौ गद्गदया गिरा ॥ १७ ॥ देवदेव दयासिंधो भक्तानामभयप्रद ॥ अमरत्वं च नौ ब्रह्मन्देहि तुष्टोऽसि चेद्विभो ॥ १८ ॥ मरणादपरं किंचिद्भयं नास्ति धरातले ॥ तस्माद्भयाच्च संत्रस्तौ युष्माकं शरणं गतौ ॥ १९ ॥ त्राहि त्वं देवदेवेश जगत्कर्तः क्षमानिधे ॥ परिस्फोटय विश्वात्मन्सद्यो मरणजं भयम् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किमिदं प्रार्थनीयं वो विपरीतं तु सर्वथा ॥ अदेयं सर्वथा सर्वैं सर्वेभ्यो भुवनत्रये ॥ २१ ॥ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ मर्यादा विहिता लोके पूर्वं विश्वकृता किल ॥ २२ ॥ मर्तव्यं सर्वथा सर्वैः प्राणिभिर्नात्र संशयः ॥ अन्यं प्रार्थयतं कामं ददामि यच्च वांछितम् ॥ २३ ॥

होनेका वर दीजिये ॥ १८ ॥ पृथ्वीमें मरनेके अतिरिक्त गुरुतर दूसरा कोई भय नहीं है. अतएव हम उस महाभयसे डरकर आपकी शरणमें आये हैं ॥ १९ ॥ हे विश्वात्मन् ! आप क्षमागुणके आधार, देवताओंके भी ईश्वर और विशेषकर जगतके निर्माता हैं. अतएव मरणजनित भयनिवारण करके हमको भयप्रदान कीजिये ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा क्या तुम्हारा यही प्रार्थनीय है ? यह तो सब प्रकारसे विपरीत बोध होता है. क्योंकि यह त्रिभुवनमें कोई किसीको नहीं दे सकता ॥ २१ ॥ जन्म लेने पर अवश्यही मृत्यु है और मृत्यु होनेपर अवश्यही जन्म होगा. यह नियम विश्वनियन्ताने पूर्वकालके समय इस लोकमें स्थापन किया है ॥ २२ ॥ अतएव सब प्राणी अवश्यही मरेंगे इसमें कुछ संशय नहीं है. इसलिये तुम दूसरा कोई वरमांगो मैं वह दूंगा ॥ २३ ॥

व्यासजी बोले हे महाराज ! दोनों दानव ब्रह्माके इस प्रकार वचन सुन कर विशेष विचारपूर्वक सन्मुख स्थित प्रजापतिको प्रणाम करके कहने लगे ॥ २४ ॥ हे दयामय ! अमरसे मनुष्य और मृग पक्षी पर्यन्त जितने पुरुष हैं हम उन सबसे अवध्य हों यही हमारी अभिलाषा है अतएव आप हमको यही वर दीजिये ॥ ॥ २५ ॥ हमारा विनाश कर सके ऐसी बलवती नारी कौन है ? हम सचराचर त्रैलोक्यमें स्त्रियोंसे कभी भय नहीं करते ॥ २६ ॥ हे कमल योने ! हम दोनों भाई पुरुषसे अवध्य हों स्त्रियें स्वभावसेही अबला हैं अतएव स्त्रियोंसे हमको कोई भयके कारण नहीं है ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! उनके इस प्रकार वचन सुन पितामह ब्रह्मा प्रसन्न हृदयसे उनको अभिलषित वर देकर अपने स्थानको चले गये ॥ २८ ॥ ब्रह्माजीके निजगृह चले जानेपर वे

व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तस्य सुविमृश्य च दानवौ ॥ ऊचतुः पणिपत्याथ ब्रह्माणं पुरतः स्थितम् ॥ २४ ॥ पुरुषैरमराद्यैश्च मानवैर्मृगपक्षिभिः ॥ अवध्यत्वं कृपासिंधो देहि नौ वांछितं वरम् ॥ २५ ॥ नारी बलवती काऽस्ति या नो नाशं करिष्यति ॥ न बिभीवः स्त्रियः कामं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ २६ ॥ अवध्यौ भ्रातरौ स्यातां नरेभ्यः पंकजोद्भव ॥ भयं न स्त्रीजनेभ्यश्च स्वभावादबला हि सा ॥ २७ ॥ व्यास उवाच ॥ इतिश्रुत्वा तयोर्वाक्यं प्रददौ वांछितं वरम् ॥ ब्रह्मा प्रसन्नमनसा जगामाथ स्वमालयम् ॥ २८ ॥ गतेऽथ भवने तस्मिन्दानवौ स्वगृहं गतौ ॥ भृगुं पुरोहितं कृत्वा चक्रतुः पूजनं तदा ॥२९॥ शुभे दिने सुनक्षत्रे जातरूपमयं शुभम् ॥ कृत्वा सिंहासनं दिव्यं राज्यार्थं प्रददौ मुनिः ॥ ३० ॥ शुंभाय ज्येष्ठभूताय ददौ राज्यासनं शुभम् ॥ सेवनार्थं तदेवाशु संप्राप्ता दानवोत्तमः ॥ ३१ ॥ चंडमुण्डौ महावीरौ भ्रातरौ बलदर्पितौ ॥ संप्राप्तौ सैन्यसंयुक्तौ रथवाजिगजान्वितौ ॥ ३२ ॥ धूम्रलोचननामा च तद्रूपश्चंडविक्रमः ॥ शुभं च भूपतिं श्रुत्वा तदाऽगाद्बलसंयुतः ॥ ३३ ॥

दोनों असुरभी घर गये तब वह दैत्य गुरु भृगुमुनिको पुरोहित करके उनकी पूजा करने लगे ॥ २९ ॥ मुनिवर भृगुने शुभदिन और शुभनक्षत्रमें स्वर्णमय सुन्दर मनोहर सिंहासन निर्माण कराकर राज्यके लिये प्रदान किया ॥ ३० ॥ शुंभके ज्येष्ठ होनेसे उसको ही राज्यासन प्रदान किया तब असुरवर शुंभकी सेवा करनेको प्रधान बलशाली असुर शीघ्र उसके निकट उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ बलदर्पित महावीर चण्ड मुण्ड नामक दोनों भाई रथ अश्व और गजस माकुल सैन्यमें परिवृत होकर उसके समीप आये ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार प्रचण्ड पराक्रमशाली धूम्रलोचन नामक असुर शुम्भका राजा होना सुन अपनी सेनासहित उसके समीप आया ॥ ३३ ॥

इसी समय वर प्राप्तिके कारण अत्यन्त बलशाली महावीर रक्तबीज नामक असुरभी दो अक्षौहिणी सेना संग लेकर उसके संग मिलित हुआ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इस रक्त बीजकी दुर्जयताका एक प्रधान कारण था वह सुनो ! इस असुरके शस्त्रद्वारा आहत होनेपर इसके शरीरसे पृथ्वीमें जब रुधिरकी बूंदें गिरती ॥ ३५ ॥ उसी समय उसके समान क्रूर स्वभाव शस्त्रपाणि असंख्य असुर उत्पन्न होते ॥ ३६ ॥ वे रुधिरसे उत्पन्न हुए असुरगण उसीके समान आकृति संपन्न और पराक्रमशाली होते और उत्पन्न होते ही फिर युद्ध करते ॥ ३७ ॥ इस कारण ही वह महावीर्य महासुर रक्तबीज संग्राममें नितान्त अजेय और सब प्राणियोंसे अवध्य हुआ ॥ ३८ ॥ अन्यान्य असुरभी उस समय शुम्भको नृपति जानकर चतुरंग सेनासहित वहां आकर उसके भृत्य हुए ॥ ३९ ॥

रक्तबीजस्तथा शूरो वरदान बलाधिकः ॥ अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तस्तत्रैवागत्य संगतः ॥३४॥ तस्यैकं कारणं राजन्संग्रामे युध्यतः सदा ॥ देहाद्रुधिरसम्पातस्तस्य शास्त्रहतस्य च ॥ ३५ ॥ जायते च यदा भूमावुत्पद्यंते ह्यनेकशः ॥ तादृशाः पुरुषाः क्रूराबहवः शस्त्रपाणयः ॥ ३६ ॥ संभवंति तदाकारास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ युद्धं पुनस्ते कुर्वंति पुरुषा रक्तसंभवाः ॥ ३७ ॥ अतः सोऽपि महावीर्यः संग्रामेऽतीव दुर्जयः ॥ अवध्यः सर्वभूतानां रक्तबीजो महासुरः ॥ ३८ ॥ अन्ये च बहवः शूराश्चतुरंगसमन्विताः ॥ शुंभं च नृपतिं मत्वा बभूवुस्तस्य सेवकाः ॥ ३९ ॥ असंख्याता तदा जाता सेना शुंभनिशुंभयोः ॥ पृथिव्याः सकलं राज्यं गृहीतं बलवत्तया ॥ ४० ॥ सेनायोगं तदा कृत्वा निशुंभः परवीरहा ॥ जगाम तरसा स्वर्गे शचीपतिजयाय च ॥ ४१ ॥ चकाराऽसौ महायुद्धं लोकपालैः समं ततः ॥ वृत्रहा वज्रपातेन ताडयामास वक्षसि ॥ ४२ ॥ स वज्राभिहतो भूमौ पपात दानवानुजः ॥ भग्नं बलं तदा तस्य निशुंभस्य महात्मनः ॥ ४३ ॥ भ्रातरं मूर्छितं श्रुत्वा शुंभः परबलार्दनः ॥ तत्रागत्य सुरान्सर्वांस्ताडयामास सायकैः ॥ ४४ ॥

तब शुभ और निशुम्भकी सेना अगणित होगई अतएव पृथ्वीमें जितने राजा थे उन्होंने बलपूर्वक सबको ग्रहण किया ॥ ४० ॥ इसी समय शत्रुहन्ता निशुम्भ शचीपतिका पराजय करनेकी इच्छासे बहुतसी सेनाको संग ले सहसा स्वर्गमें गया ॥ ४१ ॥ निशुम्भ लोकपालोंके सहित चारों ओर भयंकर युद्ध करने लगा. उस संग्रामके समय शचीपति इन्द्रने उसके वक्ष स्थलमें वज्र प्रहार किया ॥ ४२ ॥ वह दानव राजानुज वज्र प्रहारसे आहत होकर भूमिमें गिर गया, तब उसकी सेना रणमें पराजित होकर भागने लगी ॥ ४३ ॥ शत्रुबल विनाशक शुम्भ भ्राताकी मूर्च्छाका वृत्तांत सुनतेही संग्राम स्थलमें उपस्थित हो बाणोंसे सब देताओंको प्रहार करने लगा ॥ ४४ ॥

अक्लीष्टकर्मा शुम्भने ऐसा महा घोर संग्राम किया कि जिससे इंद्र इत्यादि सब देवता और दिग्पालगण पराजित हुए ॥ ४५ ॥ तब कल्पवृक्ष और कामधेनु इत्यादि इंद्रका जिन सब श्रेष्ठ वस्तुओंके ऊपर अधिकार था शुम्भने बलपूर्वक वह सब वस्तु ग्रहण करी ॥ ४६ ॥ अधिक क्या उस माहात्मा असुरने त्रैलोक्यराज और सब यज्ञभाग हरण किया, असुर प्रवर नन्दनकाननमें पहुँच अत्यन्त ही आनन्द प्राप्त कर ॥ ४७ ॥ सुधापानसे परमसुखका अनुभव करने लगा. कि दानववर कुबेरको रणमें पराजय कर उनका राज्य ग्रहणपूर्वक शासन करने लगा ॥ ४८ ॥ चन्द्र सूर्य और यमको पराजित करके उनके पदमें अधिकार किया ॥ ४९ ॥ निशुम्भ अपने बलसे परिवृत हो वरुण, अनल और वायुका राज्य ग्रहणकर उनका कार्य करने लगा ॥ ५० ॥ तब राज्यभ्रष्ट

कृतं युद्धं महत्तेन शुंभेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ निर्जितास्तु सुराः सर्वे सेंद्राः पालाश्च सर्वशः ॥ ४५ ॥ ऐंद्रं पदं तदा तेन गृहीतं बलवत्तया ॥ कल्पपादपसंयुक्तं कामधेनुसमन्वितम् ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृतास्तेन महात्मना ॥ नंदनं च वनं प्राप्य मुदितोऽभून्महासुरः ॥ ४७ ॥ सुधायाश्चैव पानेन सुखमाप महासुरः ॥ कुबेरं स च निर्जित्य तस्य राज्यं चकार ह ॥ ४८ ॥ अधिकारं तथा भानोः शशिनश्च चकार ह ॥ यमं चैव विनिर्जित्य जग्राह तत्पदं तथा ॥ ४९ ॥ वरुणस्य तथा राज्यं चकार वह्निकर्म च ॥ वायोः कार्यं निशुंभश्च चकार स्वबलान्वितः ॥ ५० ॥ ततो देवा विनिर्धूता हृतराज्या हृतश्रियः ॥ संत्यज्य नंदनं सर्वे निर्ययुर्गिरिगह्वरे ॥ ५१ ॥ हृताधिकारास्ते सर्वे बभ्रमुर्विजने वने ॥ निरालंबा निराधारा निस्तेजस्का निरायुधाः ॥ ५२ ॥ विचेरुरमराः सर्वे पर्वतानां गुहासु च ॥ उद्यानेषु च शून्येषु नदीनां गह्वरेषु च ॥५३॥ न प्रापुस्ते सुखं क्वाऽपि स्थानभ्रष्टा विचेतसः ॥ लोकपाला महाराज दैवाधीनं सुखं किल ॥ ५४ ॥ बलवंतो महाभागा बहुज्ञा धनसंयुताः ॥ काले दुःखं तथा दैन्यमाप्नुवंति नराऽधिप ॥ ५५ ॥

और श्रीभ्रष्ट होनेसे देवता त्रसित हो नन्दन वन छोड़ पर्वतकी गुहामें भाग गये ॥ ५१ ॥ समस्त अधिकारके छीन जानेपर वे सब आयुध विहीन तेज विहीन आलयविहीन और स्थानभ्रष्ट होकर निर्जन वनमें विचरण करने लगे ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! लोकपाल देवता व्याकुल हृदयसे जनशून्य स्थानमें, पर्वत, गुहा और नदी इत्यादि स्थनोंमें विचरण करने लगे ॥ ॥ ५३ ॥ किंतु स्थानभ्रष्ट होनेसे कहीं भी सुख न मिला. क्योंकि सुख तो सदा दैवके अधीन है ॥ ५४ ॥ हे नरनाथ! जो बड़े ज्ञानी हैं. जिनके बल और धन हैं, वे महाभाग पुरुष भी कालके वश होकर दुःख और दारिद्रताको प्राप्त होतेहैं ॥ ५५ ॥

हे महाराज! कालकी क्या विचित्र गति है ? काल राजाको भिक्षुक, दाताको याचक, बलवानको दुर्बल पण्डितको मूर्ख और शूरको अत्यन्त कातर कर देता
है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे महाराज! वासव इंद्रने शत अश्वमेध यज्ञ कर उत्तम सिंहासनके पानेपरभी फिर बहुत दुःख पाया अतएव कालकी गति ऐसीही
जाननी चाहिये ॥ ५८ ॥ कालही पुरुषको ज्ञान रत्न प्रदान करके धर्मिष्ठ करता है और फिर कालही उसको ज्ञान रत्नसे वंचित करके पापिष्ठ कर देता है
॥ ५९ ॥ भगवान् विष्णुने बलवान् कालके वशीभूत होकर शूकर इत्यादि नीच योनिमें जन्म ग्रहण किया और महादेवजीने भी जिसका स्पर्श नहीं करना
चाहिये, ऐसा नरकपाल धारण किया, जब कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इत्यादिको भी ऐसे कष्टकर कार्य करने पड़े तो कालके इन सब कार्योंमें किसी प्रकार

चित्रमेतन्महाराज कालस्यैव विचेष्टितम् ॥ यःकरोति नरं तावद्राजानं भिक्षुकं ततः ॥ ५६ ॥ दातारं याचकं चैव बलवंतं तथा बलम् ॥
पंडितं विकलं कामं शूरं चाऽतीव कातरम् ॥ ५७ ॥ मखानां च शतं कृत्वा प्राप्येंद्रासनमुत्तमम् ॥ पुनर्दुःखं परं प्राप्तं कालस्य गतिरीदृशी
॥ ५८ ॥ कालः करोति धर्मिष्ठं पुरुषं ज्ञान संयुतम् ॥ तमेवाऽतीव पापिष्ठं ज्ञानलेशविवर्जितम् ॥ ५९ ॥ न विस्मयोऽत्र कर्तव्यः सर्वथा
कालचेष्टिते ॥ ब्रह्मविष्णुहरादीनामपीदृक्कष्टचे ष्टितम् ॥ ६० ॥ विष्णुर्जननमाप्नोति सूकरादिषु योनिषु ॥ हरः कपाली संजातः कालेनैव
बलीयसा ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भगवतीमाहात्म्ये एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ व्यास उवाच ॥ पराजिताः
सुराः सर्वे राज्यं शुंभः शशास ह ॥ एवं वर्षसहस्रं तु जगाम नृपसत्तम ॥ १ ॥ भ्रष्टराज्यास्ततो देवाश्चिंतामापुः सुदुस्तराम् ॥ गुरुं
दुखातुरास्ते तु पप्रच्छुरिदमादृताः ॥२॥ किं कर्तव्यं गुरो ब्रूहि सर्वज्ञस्त्वं महामुनिः ॥ उपायोऽस्ति महाभाग दुःखस्य विनिवृत्तये ॥३॥

अचंभा करना उचित नहीं है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले हे नृपसत्तम!
जब सम्पूर्ण देवता पराजित हो गये तब शुंभ उनके सब राज्यका शासन करने लगा इस प्रकार हजार वर्ष बीत गये ॥ १ ॥ तब देवता राज्यभ्रष्ट होनेके कारण
अतीव दुस्तर चिन्ता सागरमें निमग्न हुए अन्तमें दुःखसे अत्यन्त कातर हो आदर सहित अपने गुरु बृहस्पतिजीसे पूँछने लगे ॥ २ ॥ हे गुरो ! आप मुनियोंमें
अग्रणी और विशेषकर सर्वज्ञ हैं. अतएव इस समय हमको क्या करना चाहिये? हे महाराज ! उपस्थित महादुःखनिवारणका यदि कोई उपाय हो तो
आप उसको कहिये ॥ ३ ॥

हजारों वेदमंत्र हैं, किंतु वे सब यथाविधि अनुष्ठान सापेक्ष हैं. यदि वे सूत्र द्वारा भलीभांति लक्षित हों तो वांछित फलप्रदान करते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ४ ॥ हे मुनिवर ! संपूर्ण मनोवांछित प्रदान करें, ऐसे अनेक यज्ञोंका विषय वेदमें कहा है. आप निःसंदेह वह सब कार्य जानते हैं, अतएव उन सब यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये ॥ ५ ॥ वेदमें शत्रुविनाशके लिये जिस प्रकारकी विधि निर्दिष्ट हुई है. आप उसी विधिके अनुसार कार्य कीजिये, हे आंगिरस ! जिससे शीघ्र हमारा क्लेश नष्ट हो ॥ ६ ॥ आप दानवोंको मारनेके लिये ज्ञानानुसार वैसेही अभिचार क्रियाका अनुष्ठान कीजिये जिससे दुःखका नाश हो ॥ ७ ॥ बृहस्पतिजी बोले हे सुराधिप! वेदोक्त समस्त मंत्र दैवके अधीन होकर ही फलप्रदान करते हैं। कुछ वह स्वाभाविक फलप्रद नहीं हैं, केवल नियममें बाध्य होनेके कारण

उपचारपरा नूनं वैदमंत्राः सहस्रशः ॥ वांछितार्थकरा नूनं सूत्रैः संलक्षिताः किल ॥ ४ ॥ इष्टयो विविधा प्रोक्ताः सर्वकामफलप्रदाः ॥ ताः कुरुष्व मुने नूनं त्वं जानासि च तत्क्रियाः ॥ ५ ॥ विधिः शत्रुविनाशाय यथोद्दिष्टः सदागमे ॥ तं कुरुष्वाद्य विधिवद्यथा नो दुःख संक्षयः ॥ ६ ॥ भवेदांगिरसाद्यैव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ दानवानां विनाशाय अभिचारं यथामति ॥ ७॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ सर्वे मंत्राश्च वेदोक्ता दैवाधीनफलाश्च ते ॥ न स्वतंत्राः सुराधीश तथैकांतफलप्रदाः ॥ ८ ॥ मंत्राणां देवता यूयं ते तु दुःखैकभाजनम् ॥ जाताः स्म कालयोगेन किं करोमि प्रसाधनम् ॥ ९ ॥ इंद्राग्निवरुणादीनां यजन यज्ञकर्मसु ॥ ते यूयं विपद प्राप्ताः करिष्यंति किमिष्टयः ॥ १० ॥ अवश्यं भाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते ॥ उपायस्त्वथ कर्तव्य इति शिष्टानुशासनम् ॥११॥ दैवं हि बलवत्केचित्प्रवदंतिमनीषिणः ॥ उपायवादिनो दैवं प्रवदंति निरर्थकम् ॥ १२ ॥

ही फल देते हैं ॥ ८ ॥ तुम्हीं सब मंत्रोंकी अधिष्ठात्री देवता हो, किंतु कालके वशीभूत होकर इस समय तुम्हीं एकमात्र दुःखके भाजन हो. अतएव मैं इसमें क्या उपाय करूं? ॥ ९ ॥ देखो यज्ञ कार्यमें इन्द्र, अग्नि और वरुण इत्यादि देवताओंका यजन होता है, किंतु तुम्हीं सब महाविपदमें पड़े हो सुतरां फिर सब यज्ञ क्या करेंगे ॥ १० ॥ अतएव जिन सब कार्योंमें अवश्य भावित्व विद्यमान हैं, उनका प्रतीकार नहीं है. किंतु शिष्ट पुरुषोंने अनुशासन किया है कि, ऐसे स्थलमें उपायका अवलम्बन करना चाहिये ॥ ११ ॥ कोई कोई पंडित कहते हैं कि, दैवही बलवान् है, किंतु उपायवादी लोग कहते हैं कि, दैव अनर्थक है, उपाय वा पुरुषार्थसे सब कार्य सिद्ध हो सकते हैं ॥ १२ ॥

किंतु हे सुरराज ! जीवोंको दैव और उपाय, इन दोनोंका अवलम्बन करना चाहिये. केवल दैवको आश्रय करके रहना कभी उचित नहीं है ॥ १३ ॥ अतएव अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करके भलीभांति उपाय करना चाहिये, हे देवताओ ! मैं वारंवार विशेष विचार पूर्वक तुमसे कहता हूं सुनो. ॥ १४ ॥ पूर्वकालमें भगवतीने प्रसन्न होकर महिषासुरका वध किया था. उस काल जब तुमने देवीका स्तव किया तब उन्होंने प्रसन्न होकर वर दिया था ॥ १५ ॥ कि तुम्हारे स्मरण करते ही मैं सर्वकाल तुम्हारी आपदा नष्ट करूंगी ! हे देवताओ ! जिस जिस समय तुमको दैवजनित कोई विपद उपस्थित हो ॥ १६ ॥ तब तुम अवश्यही मेरा स्मरण करना तो मैं तुम्हारा परम विपत्सागरसे उद्धार करूंगी ॥ १७ ॥ इस कारण तुम परमपवित्र. अतिमनोहर हिमाल

दैवं चवाप्युपायश्च द्वावेवाभिमतौनृणाम् ॥ केवलं दैवमाश्रित्य न स्थातव्यं कदाचन ॥ १३ ॥ उपायः सर्वथा कार्यो विचार्य स्वधिया पुनः ॥ तस्माद्ब्रवीमि वः सर्वान्संविचार्य पुनःपुनः ॥ १४ ॥ पुरा भगवती तुष्टा जघान महिषासुरम् ॥ युष्माभिस्तु स्तुता देवी वरदानं ददावथ ॥ १५ ॥ आपदं नाशयिष्यामि संस्मृता वा सदैव हि ॥ यदा यदा वो देवेशा आपदो देवसंभवा ॥ १६ ॥ प्रभवंति तदा कामं स्मर्तव्याऽहंसुरैः सदा ॥ स्मृताऽहं नाशयिष्यामि युष्माकं परमापदः ॥ १७ ॥ तस्माद्धिमाचले गत्वा पर्वते सुमनोहरे ॥ आराधनं चंडिकायाःकुरुध्वं प्रेमपूर्वकम् ॥ १८ ॥ मायाबीजविधानज्ञास्तत्पुरश्चरणे रताः ॥ जानाम्यहं योगबलात्प्रसन्ना सा भविष्यति ॥ १९ ॥ दुःखस्यांतोऽद्य युष्माकं दृश्यते नात्र संशय ॥ तस्मिञ्छैले सदा देवी तिष्ठतीति मया श्रुतम् ॥ २० ॥ स्तुता संपूजिता सद्यो वांछितार्थान्प्रदास्यति ॥ निश्चयं परमं कृत्वा गच्छध्वं वै हिमालयम् ॥२१॥ सुराःसर्वाणि कार्याणि सा वः कर्मविधास्यति ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवास्ते प्रययुर्गिरिम् ॥ २२ ॥

यपर्वतमें जाकर प्रीतिसहित परमाराध्य चंडिका देवीकी उपासना करो ॥ १८ ॥ तुम मायाबीजके विधानको जानकर उसके पुरश्चरणमें प्रवृत्त होओ मैं योगबलसे जानता हूं कि, वह तुम्हारे प्रति प्रसन्न होंगी ॥ १९ ॥ मुझको बोध होता है कि, अभी तुम्हारी विपदूका अन्त होगा. इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं है, मैंने सुना है कि, उस हिमाचलमें देवी सदा वास करती है ॥ २० ॥ उनकी पूजा और स्तुति करनेसे वह तुमको अवश्य अभिलषित वर देंगी. अतएव तुम सब स्थिर निश्चय होकर उस हिमालयमें जाओ ॥ २१ ॥ हे देवताओ ! वे तुम्हारे अवश्य सब कार्यका सम्पादन करके उपस्थित विपदूको दूर करेंगी. व्यासजी बोले हे महाराज ! उनके यह वचन सुन सब देवता हिमालय पर्वतमें गये ॥ २२ ॥

और वे सब भगवतीकी आराधनामें निमग्न होकर भक्तिसहित निरन्तर हृदयमें मायाबीजका जप करने लगे ॥ २३ ॥ वह भक्तोंको अभय देनेवाली ब्रह्मरूपिणी महामायाको प्रणाम करके परमभक्तिसहित, स्तोत्रमंत्रद्वारा उनका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २४ ॥ हे देवि ! आप विश्वेश्वरी और विश्वजननी हैं. सुतरां जीवनकी भी ईश्वरी हैं आपही सदानंदस्वरूपिणी हैं, अतएव आप देवताओंका भी आनंद बढाती हैं इस कारण आपको नमस्कार करते हैं आपने ही दानवोंका दलन किया है. आपही मनुष्योंको अभीष्ट प्रदान करती हैं आपका स्वरूप भक्तिद्वारा ही जाना जाता है. अतएव हे देवि ! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २५ ॥ हे सर्वदेवस्वरूपे ! कोई आपके रूपका निश्चय नहीं कर सकता और आपके नामकी भी कोई संख्या नहीं कर सकता. प्राणियोंके सृजन और संहारकालमें अधिक क्या सब कार्यमें ही आप सदा शक्तिस्वरूपसे वास करती हैं ॥ २६ ॥ हे देवि ! आपही स्मृति, धृति, बुद्धि, जरा, पुष्टि, तुष्टि,

हिमालयं महाराज देवी ध्यानपरायणाः ॥ मायाबीजं हृदा नित्यं जपंतः सर्वे एव हि ॥ २३ ॥ नमश्चक्रुर्महामायां भक्तानामभयप्रदाम् ॥ तुष्टुवुःस्तोत्र मंत्रैश्च भक्त्या परमयायुताः ॥ २४ ॥ नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे सदानंदरूपे सुरानंददे ते ॥ नमो दानवांतप्रदे मानवानामनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे ॥ २५ ॥ न ते नामसंख्यां न ते रूपमीदृक्तथा कोऽपि वेदादिदेवस्वरूपे ॥ त्वमेवासि सर्वेषुशक्तिस्वरूपा प्रजा सृष्टिसंहारकाले सदैव ॥ २६ ॥ स्मृतिस्त्वं धृतिस्त्वं त्वमेवाऽसि बुद्धिर्जरा पुष्टितुष्टी धृतिः कांतिशांती ॥ सुविद्यासुलक्ष्मीर्गतिः कीर्तिमेधे त्वयेवासि विश्वस्य बीजंपुराणम् ॥२७॥ यदा यैः स्वरूपैः करोषीह कार्यं सुराणां च तेभ्यो नमामोऽद्य शांत्यै ॥ क्षमा योगनिद्रा दया त्वं विवक्षा स्थिता सर्व भूतेषु शस्तैः स्वरूपैः ॥ २८ ॥ कृतं कार्यमादौ त्वया यत्सुराणां हतोऽसौ महारिर्मदांधो हयारिः ॥ दया ते सदा सर्वदेवेषु देवि प्रसिद्धा पुराणेषु वेदेशु गीता ॥ २९ ॥

आधाररूपा, कांति, शांति सुविद्या, सुलक्ष्मी, गति, कीर्ति और मेधा हैं और आपही विश्वकी अव्यक्तबीजस्वरूप हैं ॥ २७ ॥ आप जिस समय जिन रूपोंसे इस लोकमें देवताओंका कार्य सम्पादन करती हैं. हम इस समय शांतिकी कामनासे उन उन रूपोंको नमस्कार करते हैं. आपही क्षमा आपही योगनिद्रा, आपही दया और आपही अनेक प्रकारके प्रशस्त रूपोंसे सब जीवोंमें वास करती हैं ॥ २८ ॥ हे देवि ! आपने ही मदान्ध महाशत्रु महिषासुरको मारकर पहिलेही देवताओंका कार्य सम्पादन किया है. अतएव हे देवि ! आपकी दया सब देवताओंमें सदा प्रसिद्ध है. अधिक क्या आपकी वह दया पुराण और वेदमें भी वर्णित हुई है ॥ २९ ॥

आपही देवताओंको उत्पन्न करनेवाली हैं. इस कारण यदि माता अपने पुत्रोंका सदा आनन्द सहित पालन और पोषण करे इसमें फिर विचित्रता क्या है ? विशेष करके आप देवताओंकी सहायकारिणी हैं. अतएव आप एकाग्र चित्तसे सम्पूर्ण कार्यका सम्पादन कीजिये ॥ ३० ॥ हे देवि ! आपके गुणकी सीमा वा आपके स्वरूपको हम नहीं जानते. हे देवि ! विश्व संसारके सम्पूर्ण लोक ही आपकी पूजा करते हैं, काम विपद्के समय रक्षा करनेमें भलीभाँति समर्थ हैं. इस कारण हमको कृपापात्र विचारकर इस उपस्थित विपद्से हमारी रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥ आप बाणपात, मुष्टिप्रहार, शूल, खड्ग, शक्ति, दंड, वा अन्यान्य शस्त्रोंका विना प्रहार किये सहजमेंही इच्छानुसार शत्रुका विनाश कर सकती हैं; किन्तु तोभी विनोद और लोकपालोंकाउपकार करनेके

किमत्रास्ति चित्रं यदंबासुते स्वं मुदा पालयेत्पोषयेत्सम्यगेव ॥ यतस्त्वं जनित्री सुराणां सहाया कुरुष्वैकचित्तेन कार्यं समग्रम् ॥३०॥ न वा ते गुणानामियत्तां स्वरूपं वयं देवि जानीमहे विश्ववंद्ये ॥ कृपापात्रमित्येव मत्वा तथाऽस्मान्भयेभ्यः सदा पाहि पातुं समर्थे ॥ ३१ ॥ विना बाणपातैर्विनामुष्टिघातैर्विनाशूलखड्गैर्विना शक्तिदंडैः रिपून्हंतुमेवासि शक्ता विनोदात्तथाऽपीह लोकोपकाराय लीला ॥ ३२ ॥ इदं शाश्वतं नैव जानंति मूढा न कार्यं विना कारणं संभवेद्धा ॥ वयं तर्कयामोऽनुमानं प्रमाणंत्वमेवासि कर्ताऽस्य विश्वस्य चेति ॥ ३३ ॥ अजः सृष्टिकर्ता मुकुंदोऽविताऽयं हरो नाशकृद्वै पुराणे प्रसिद्धः ॥ न किं त्वत्प्रसूतास्त्रयस्ते युगादौ त्वमेवासि सर्वस्य तेनैव माता ॥ ३४ ॥ त्रिभिस्त्वं पुराऽऽराधिता देवि दत्ता त्वया शक्तिरुग्रा च तेभ्यः समग्रा ॥ त्वया संयुतास्ते प्रकुर्वंति कामं जगत्पालनोत्पत्तिसंहारमेव ॥ ३५ ॥

लिये अवतीर्ण होकर युद्धादिद्वारा लीला करती हैं॥ ३२ ॥ जन्ममरणके परिणाम वशसे मूढ लोगभी जानते हैं कि, यह जगत् नित्य नहीं है. कारणके विना कभी कार्य नहीं हो सकता यह भी वे जानते हैं. अतएव आपही इस विश्वसंसारका कारण हैं हमने अनुमान प्रमाण द्वारा यह कल्पना की है ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता, विष्णु पालनकर्त्ता और महादेव संहारकर्त्ता पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं; आपने इन तीनोंको युगादिमें उत्पन्न किया है. अतएव आप सबकी जननी हैं. इसमें सन्देह नहीं ॥ ३४ ॥ हे देवि ! पूर्वमें इन तीन देवताओंनेही आपकी अराधना की तब आपने प्रसन्न होकर संपूर्ण उतकृष्टशक्तियां उनको दी थीं, आपकी शक्तियोंसे संयुक्त होकर ही भलीभांति जगत्की सृष्टिपालन और संहार करते हैं ॥ ३५ ॥

देवता लोग जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं. जिनकी अर्चना करनेसे संपूर्ण अभीष्टफल प्राप्त होता है जो उनमुक्ति देनेवाली विश्वजननी चित्त स्वरूपिणीकी अर्चना नहीं करते वे यति होनेपर भी क्या मन्दमति मूढ नहीं हैं ? ॥ ३६ ॥ जो कमला, लज्जा, कान्ति, स्थित, कीर्ति, पुष्टिस्वरूप आपका ध्यान नहीं करते वे सब सौर (सूर्योपासक) पशुवत (पशुपतिनिष्ठ) और वैष्णव निःसंदेह भेद बुद्धिसे दांभिक जान पड़ते हैं ॥ ३७ ॥ हे जननि ! असुरगण और हरि हर इत्यादि प्रधान देवता भी इस लोकमें आपकी सेवा करते हैं अतएव जो सामान्य बुद्धि मनुष्य पृथ्वीमें आपकी पूजा नहीं करते, विधाताने उनको निस्संदेह वञ्चित किया है ॥ ३८ ॥ हे देवि ! हरि लाक्षारसके द्वारा कमलाके चरणकमलोंको स्वयं रञ्जित करते हैं त्रिलोचन महादेवजी

ते किं न मंदमतयो. यतयो विमूढास्त्वां ये न विश्वजननीं समुपाश्रयंति ॥ विद्यां परां सकलकामफलप्रदां तां मुक्तिप्रदां विबुधवृन्दसुवंदितांघ्रिम् ॥ ३६ ॥ ये वैष्णवाः पाशुपताश्च सौरा दंभास्त एव प्रतिभांति नूनम् ॥ ध्यायंति न त्वां कमलां च लज्जां कांतिं स्थितिं कीर्तिमथाऽपि पुष्टिम् ॥ ३७ ॥ हरिहरादिभिरप्यथ सेविता त्वमिह देववरैरसुरैस्तथा ॥ भुवि भजंति न येऽल्पधियो नरा जननि ते विधिना खलु वंचिताः ॥ ३८ ॥ जलधिजापदपंकजरंजनं जतुरसेन करोति हरिः स्वयम् ॥ त्रिनयनोऽपि धराधरजांघ्रिपंकजपरागनिषेवणतत्परः ॥ ३९ ॥ किम परस्य नरस्य कथानकैस्तव पदाब्जयुगं न भजंति के ॥ विगतरागगृहाश्च दयां क्षमां कृतधियो मुनियोऽपि भजंति ते ॥ ४० ॥ देवि त्वदंघ्रिभजने न जना रता ये संसारकूपपतिताः पतिताः किलामी ॥ ते कुष्ठगुल्मशिरआधियुता भवंति दारिद्र्यदैन्यसहिता रहिताः सुखौघैः ॥ ४१ ॥

भी पार्वतीके चरण कमलोंकी पराग (रज) का सेवन करनेमें अत्यन्त उत्सुक हैं, कमला और पार्वती आपकी अंश मात्र हैं इस कारण उनकी सेवा करनेसे आपकी सेवा होती है ॥ ३९ ॥ अन्यान्य मनुष्योंकी तो बात दूर रहे. जो सदसद्विचार करके कार्य कर सकते हैं और जिन्होंने विषयानुराग तथा घर छोड़ दिया है. ऐसे मुनि लोग भी आपके अंश रूप क्षमा और दयाकी सेवा करते हैं. अतएव आपके चरण कमलोंकी कौन सेवा नहीं करता है ॥ ४० ॥ हे देवि ! जो मनुष्य आपके चरणकमलोंकी सेवामें अनुरक्त नहीं हैं वे सुखसे वञ्चित होकर संसाररूपी घोर कूपमें गिरते हैं. अधिक क्या ? वे पतित मनुष्य कुष्ठ, गुल्म (उदररोग), शिरकी पीड़ासे युक्त हो दीनता और दरिद्रता इत्यादि महाक्लेशको भोगते हैं ॥ ४१ ॥

हे जननि ! जो लोग धन और स्त्री विहीन होकर काष्ठभार वहन, तृणहरण इत्यादि कार्योंमें निपुणता प्रकाशित करते हैं. उन अल्पबुद्धि मनुष्योंने पूर्वजन्ममें कभी आपके पद--पंकजकी सेवा नहीं की यह हम भलीभांति जानते हैं ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! सम्पूर्ण देवताओं के इस प्रकार स्तवन करते ही रूपयौवन संपन्न अम्बिका देवी करुणाके वश हो तत्काल उस स्थानमें प्रगट हुई ॥ ४३ ॥ वह अलौकिक रूप लावण्यवती सर्वसुलक्षण संपन्न भगवती दिव्य वस्त्र भूषण माल्य और चंदनादिसे विभूषित होकर देवताओंकी दृष्टिमें उपस्थित हुई ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ विश्वको मोहित करनेवाला कामदेव भी जिससे मोहित होता है ऐसा मनोहर दिव्यरूप धारण करके देवी गंगा स्नान करनेकी इच्छासे पर्वतके गुहासे निकलीं ॥ ४६ ॥ कोकिलके समान मधुर

ये काष्ठभारवहने यवसावहारे कार्ये भवंति निपुणा धनदारहीनाः ॥ जानीमहेऽल्पमतिभिर्भवदंघ्रिसेवा पूर्वे भवे जननि तैर्न कृता कदापि ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैः सर्वैरंबिका करुणान्विता ॥ प्रादुर्बभूव तरसा रूपयौवनसंयुता ॥ ४३ ॥ दिव्यांबरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता ॥ दिव्यमाल्यसमायुक्ता दिव्यचंदनचर्चिता ॥ ४४ ॥ जगन्मोहनलावण्या सर्वलक्षणलक्षिता ॥ अद्वितीयस्वरूपा सा देवानां दर्शनं गता ॥ ४५ ॥ जाह्नव्या स्नातुकामा सा निर्गता गिरिगह्वरात् ॥ दिव्यरूपधरा देवी विश्वमोहनमोहिनी ॥ ४६ ॥ देवान्स्तुतिपरानाह मेघगंभीरया गिरा ॥ प्रेमपूर्वं स्थितं कृत्वा कोकिला मंजुवादिनी ॥ ४७ ॥ देव्युवाच ॥ भो भोः सुरतराः काऽत्र भवद्भिः स्तूयते भृशम् ॥ किमर्थं ब्रूत वः कार्यं चिंताविष्टाः कुतः पुनः ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मोहिता रूपसंपदा ॥ प्रेमपूर्वं हृदुत्साहास्तामूचुः सुरसत्तमाः ॥४९ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवि स्तुमस्त्वां विश्वेशि प्रणताः स्म कृपार्णवे ॥ पाहि नः सर्वदुःखेभ्यः संविग्नान्दैत्यतापितान् ॥ ५० ॥

भाषिणी वह देवी प्रीति सहित कुछेक हँसकर मेघके समान गंभीर स्वरद्वारा स्तुति परायण देवताओंसे बोली ॥ ४७ ॥ देवी बोली हे सुर सत्तमगण ! तुम निरन्तर यहां किसकी स्तुति करते हो ? तुम्हारा प्रयोजन क्या है ? तुम ऐसे चिन्ताकुल क्यों हो ? यह सब विस्तार सहित मुझसे कहो ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! देवता प्रथम तो उनका रूप लावण्य देख कर मोहित हुए फिर उनके मधुर वचनोंसे उत्साहित हो प्रीति पूर्वक उनसे कहने लगे ॥४९॥ देवता बोले हे देवि ! तुम इस विश्वसंसारकी ईश्वरी और विशेष करके कृपासागर हो, अतएव आपको प्रणाम करके स्तव करते हैं. हे देवि ! हम दैत्योंके उपद्रवसे तापित होकर अत्यन्त भीत हुए हैं. अतएव आप हमारी सब दुःखोंसे रक्षा कीजिये ॥ ५० ॥

हे भगवति ! आपने पूर्वमें सबके कंटक महिषासुरको मारकर हमको वर दिया है कि, आपत्काल उपस्थित होनेपर तुम मेरा स्मरण करना ॥ ५१ ॥ स्मरण करतेही मैं तुम्हारे सब दैत्यकृत क्लेश विनष्ट करूंगी इसमें संदेह नहीं है, हे देवि ! हम इस कारण ही इस समय आपका स्मरण करते हैं ॥ ५२ ॥ इस समय शुंभ और निशुम्भ नामक घोर दर्शन दो असुर उत्पन्न होकर विषम उपद्रव कर रहे हैं, किंतु यह दोनों असुर पुरुषसे नितांत अवध्य हैं ॥५३॥ बलवान् रक्तबीज और चंड मुंड इत्यादि अन्यान्य असुरोंने मिलित होकर देवताओंका संपूर्ण राज्यहरण किया है ॥ ५४ ॥ आपही हमारी एकमात्र गति हैं. आपके अतिरिक्त हमारा अन्य उपाय नहीं है अतएव हे सुमध्यमे ! आप इन एकांत संतापित देवताओंका कार्य संपादन कीजिये ॥५५॥ हे देवि !

पुरा त्वया महादेवि निहत्यासुरकंटकम् ॥ महिषं नो वरो दत्तः स्मर्तव्याऽहं यदाऽऽपदि ॥ ५१ ॥ स्मरणाद्दैत्यजां पीडां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ तेन त्वं संस्मृता देवि नूनमस्माभिरित्यपि ॥ ५२ ॥ अद्य शुंभनिशुंभौ द्वावसुरौ घोरदर्शनौ ॥ उत्पन्नौ विघ्नकर्तारावहन्यौ पुरुषैः किल ॥ ५३ ॥ रक्तबीजश्च बलवांश्चचंडमुंडौ तथाऽसुरौ ॥ एतैरन्यैश्च देवानां हृतं राज्यं महाबलैः ॥५४॥ गतिरन्या न चास्माकं त्वमेवासि महाबले॥कुरु कार्यं सुराणां वै दुःखितानां सुमध्यमे ॥५५॥ देवास्त्वदंघ्रिभजने निरताः सदैव ते दानवैरतिबलैर्विपदस्सुगीताः ॥ तान्देविदुःखरहितान्कुरु भक्तियुक्तान्मातस्त्वमेव शरणं भव दुःखितानाम्॥५६॥सकलभुवनरक्षा देवि कार्या त्वयाऽद्यस्वकृतमिति विदित्वा विश्वमेतद्युगादौ ॥ जननि जगति पीडां दानवा दर्पयुक्ताः स्वबल मदसमेतास्ते प्रकुर्वति मातः ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ व्यास उवाच॥एवं स्तुता तदा देवी दैवतैः शत्रुतापितैः ॥ स्वशरीरात्परं रूपं प्रादुर्भूतं चकार ह ॥१॥

आपके चरण कमलोंकी सेवामें देवता सदा निरत रहते हैं तोभी अतिबलवान् दानव उनको विपदमें डालते हैं. हे मातः ! आप दुःखी पुरुषोंकी रक्षा करनेवाली हैं अतएव भक्तिपरायण देवताओंकी दुःखसे रक्षा कीजिये ॥ ५६ ॥ हे जननि ! दानव अपने बलके मदसे गर्वित होकर पृथ्वीमें अनेक प्रकारके उपद्रव कर रहे हैं अपने युगादिसमयमें इस विश्वसंसारको स्वयं उत्पन्न किया है यह जानकर इस समय सब भुवनोंकी रक्षा करना आपका अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! शत्रु--संतापित देवताओंके इस प्रकार स्तव करनेपर देवीने अपने शरीरसे एक परमरूपको उत्पन्न किया ॥ १ ॥

अम्बिका देवी पार्वतीके शरीरकोषसे निकली इस कारण उनका नाम सब लोकोंमें कौशिकी विख्यात हुआ ॥ २ ॥ पार्वतीके शरीरसे कौशिकीके निकलने पर उन पार्वतीका शरीर परिणामवशसे कृष्णवर्ण होकर कालिका नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ३ ॥ उनकी वह भयंकर मूर्त्ति देखकर दैत्योंको भय बढ़ने लगा। हे राजन् ! यही देवी इस लोकमें सर्व मनोरथ पूर्णकारिणी कालरात्रिके नामसे विख्यात हुई ॥ ४ ॥ तब अम्बिकाका संपूर्ण गहनोंसे सुसज्जित वह मनोहर लावण्यमय रूप सुशोभित होने लगा ॥ ५ ॥ फिर अम्बिका देवीने कुछेक हँसकर देवताओंसे कहा तुम निर्भय होकर अवस्थान करो मैं तुम्हारे शत्रुओंका अभी विनाश करूंगी ॥ ६ ॥ तुम्हारा कार्यसंपादन करना मेरा कर्त्तव्य है. अतएव तुम्हारे सुखसाधनके लिये समराङ्गणमें अवतीर्ण

पार्वत्यास्तु शरीराद्वै निःसृताचांबिकायदा ॥ कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु पठ्यते ॥ २ ॥ निःसृतायां तु तस्यां सा पार्वती तनुव्यत्ययात् ॥ कृष्णरूपाऽथ संजाता कालिका सा प्रकीर्तिता ॥३॥ मषीवर्णा महाघोरा दैत्यानां भयवर्धिनी ॥कालरात्रीति सा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ॥४॥ अंबिकायाः परं रूपं विरराज मनोहरम् ॥ सर्वभूषणसंयुक्तं लावण्यगुणसंयुतम् ॥५॥ ततोऽबिका तदा देवानित्युवाच हसस्मिता॥तिष्ठंतु निर्भया यूयं हरिष्यामि रिपूनिह॥६॥कार्यं वः सर्वथा कार्यं विहरिष्याम्यहं रणे॥निशुंभादीन्वधिष्यामियुष्माकंसुखहेतवे ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहारूढा मदोत्कटा ॥ कालिका पार्श्वतः कृत्वा जगाम नगरेरिपोः ॥ ८ ॥ सागत्वोपवने तस्थावंबिका कालिकान्विता ॥ जगावथ कलं तत्र जगन्मोहनमोहनम् ॥ ९ ॥ श्रुत्वा तन्मधुरं गानं मोहमीयुः खगा मृगाः ॥ मुदं च परमां प्रापुरमरा गगने स्थिताः ॥ १० ॥ तस्मिन्नवसरे तत्र दानवौ शुंभसेवकौ ॥ चंडमुंडाभिधौ घोरौ रममाणौ यदृच्छया ॥११॥ आगतौ ददृशाते तु तां तदा दिव्यरूपिणीम् ॥ अंबिकां गानसंयुक्तां कालिकां पुरतः स्थिताम् ॥ १२ ॥

होकर निशुम्भ इत्यादि असुरोंका वध करूंगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ देवी भगवतीने यह कह मदके गर्वसे उद्धत हो सिंहकी पीठपर चढ कालिकाको संग ले देवशत्रु शुम्भके नगरमें प्रवेश किया ॥ ८ ॥ अंबिकाकालिकाके सहित उस नगरके उपवनमें जाय जगत्कोमोहित करनेवाला कामदेव भी जिसके सुननेसे मोहित हो, ऐसे मनोहर मधुरस्वरसे गान करने लगी ॥ ९ ॥ अधिक क्या उस मनोहर गानके सुननेसे पशुपक्षी भी मोहित होगये तब देवता आकाश मंडलमें अतिआनन्दको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ इसी अवसरमें शुंभके अनुचर चंड मुंड नामक दो असुरोंने क्रीडा करते करते इच्छानुसार वहां आकर देखा कि ॥ ११ ॥ वह मनोहर रूपवती अंबिका देवी गान कर रही हैं और कालिका देवी उनके सन्मुख विराजमान हैं ॥ १२ ॥

हे नृपसत्तम ! चण्डमुड भगवतीका वह अलौकिक रूपलावण्य देख आश्चर्यमें हो तत्काल शुम्भके समीप गये ॥ १३ ॥ वह घरमें बैठे दैत्यपतिके निकट जाय मस्तक झुकाय प्रणामपूर्वक उनसे मधुर वचनद्वारा कहने लगे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! हिमालयसे अपनी इच्छानुसार एक कामिनी सिंहपर चढ़कर यहां आई है, उसके सब अंग प्रत्यङ्ग सुलक्षण विराजमान् हैं, यही क्या ? उसका रूप देखकर रतिपति भी मोहित होते हैं ॥ १५ ॥ हे महाराज ! ऐसी सुन्दरी स्त्री देवलोक गंधर्वलोक और भूलोकमें भी विद्यमान नहीं है, ऐसी स्त्री हमने कभी नहीं देखी और कहीं सुनी भी नहीं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! वह रमणी ऐसा लोकरंजन मनोहर संगीत गान करती है कि, सब मृग भी उसके मधुर स्वरसे मोहित होकर उसके पार्श्वमें खडे रहते हैं ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! यह

दृष्ट्वा तां दिव्यरूपां च दानवौ विस्मयान्वितौ ॥ जग्मतुस्तरसा पार्श्वं शुंभस्य नृपसत्तम ॥ १३ ॥ तौ गत्वा तौ समासीनं दैत्यानामधिपं गृहे ॥ ऊचतुर्मधुरा वाणीं प्रणम्य शिरसा नृपम् ॥ १४ ॥ राजन्हिमालयात्कामं कामिनी काममोहिनी ॥ संप्राप्ता सिंहमारूढा सर्वलक्षणसंयुता ॥ १५ ॥ नेदृशी देवलोकेऽस्ति न गंधर्वपुरे तथा ॥ न दृष्टा न श्रुता क्वाऽपि पृथिव्यां प्रमदोत्तमा ॥१६॥ गानं च तादृशं राजन्करोति जनरंजनम् ॥ मृगास्तिष्ठंति तत्पार्श्वे मधुरस्वर मोहिताः ॥ १७ ॥ ज्ञायतां कस्य पुत्रीयं किमर्थमिह चागता ॥ गृह्यतां राजशार्दूल तव योग्याऽस्ति कामिनी ॥ १८ ॥ ज्ञात्वाऽऽनय गृहे भार्यां कुरुकल्याणलोचनाम् ॥ निश्चितं नास्ति संसारे नारीत्वेवंविधा किल ॥ १९ ॥ देवानां सर्वरत्नानि गृहीतानि त्वया नृप ॥ कस्मान्नेमां वरारोहां प्रगृह्णसि नृपोत्तम ॥ २० ॥ इंद्रस्यैरावतः श्रीमान्पारिजाततरुस्तथा ॥ गृहीतोऽश्वः सप्तमुखस्त्वया नृप बलात्किल ॥ २१ ॥ विमानं वैधसं दिव्यं मरालध्वजसंयुतम् ॥ त्वयाऽऽत्तं रत्नभूतं तद्बलेन नृप चाद्भुतम् ॥ २२ ॥

स्त्री आपके ही योग्य है, अतएव वह कामिनी किसकी कन्या है ? और किसलिये यहां आई है ? प्रथम यह जानकर फिर इसको ग्रहण कीजिये ॥ १८ ॥ आप निश्चय जानिये कि, ऐसी रूपवती नारी संसारमें दूसरी कोई नहीं है. इस कारण आप उस सुलोचनाको घर लाकर उसका पाणिग्रहण कीजिये ॥ १९ ॥ हे महाराज ! हे नरपाल ! आपने देवताओंके सभी रत्न ग्रहण किये हैं तो फिर किसका रण यह स्त्रीरत्न ग्रहण नहीं करते ? ॥२०॥ हे राजन् ! आपने इन्द्रका परम सुन्दर ऐरावत हाथी, पारिजातवृक्ष, सप्तास्य उच्चैःश्रवा अश्व इत्यादि संपूर्ण रत्न बलपूर्वक ग्रहण किये हैं ॥ २१ ॥ हे नृपवर ! मरालध्वज चिह्नित विधाताका रत्नस्वरूप दिव्यविमान भी आप बलपूर्वक ले आये हैं ॥ २२ ॥

कुबेरकी पद्मनिधि और जलपति वरुणका शुभ्रछत्र आपने बलात्कार ग्रहण किया है ॥ २३ ॥ हे नृपोत्तम! वरुणके पराजित होनेपर आपके भ्राता निशुम्भने बलपूर्वक उनका पाशास्त्र ले लिया है ॥ २४ ॥ हे महाराज! समुद्रने डरकर आपको अनेक प्रकारके रत्न और जिसके कमल कभी म्लान नहीं होते, ऐसी कमल माला देकर सम्मानित किया है ॥ २५ ॥ हे नृपवर! अधिक और क्या कहूँ? आपने मृत्युको जीतकर उसकी शक्ति और यमको पराजित करके उनका वह दारुण दण्डग्रहण किया है ॥ २६ ॥ हे राजन्! जो कामधेनु समुद्रसे निकली थी आप उसको ले आये हैं, वह कामधेनु अब भी आपके पास विद्यमान है अधिक क्या मेनका इत्यादि अप्सरायें आपके वशीभूत रहती हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार आपने पराक्रम प्रकाश करके संपूर्ण

कुबेरस्य निधिः पद्मस्त्वया राजन्समाहृतः ॥ छत्रं जलपतेः शुभ्रं गृहीतं तत्त्वया बलात् ॥ २३ ॥ पाशश्चापि निशुंभेन भ्रात्रा तव नृपोत्तम ॥ गृहितोऽस्ति हठात्कामं वरुणस्य जितस्य च ॥ २४ ॥ अम्लानपंकजां तुभ्यं मालां जलनिधिर्ददौ ॥ भयात्तव महाराज रत्नानि विविधानि च ॥ २५ ॥ मृत्योः शक्तिर्यमस्यापि दण्डः परमदारुणः ॥ त्वया जित्वा हृतः कामं किमन्यत्रद्वर्ण्यते नृप ॥ २६ ॥ कामधेनुर्गृहीताऽद्य वर्तते सागरोद्भवा ॥ मेनकाद्या वशे राजंस्तव तिष्ठंति चाप्सराः ॥२७॥ एवं सर्वाणि रत्नानि त्वयाऽऽत्तानि बलादपि ॥ कस्तां न गृह्यते कांतारत्नमेषा वरांगना ॥ २८ ॥ सर्वाणि ते गृहस्थानि रत्नानि विशदा न्यथ ॥ अनया सम्भविष्यंति रत्नभूतानि भूपते ॥ २९ ॥ त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्र नेदृशी वर्तते प्रिया ॥ तस्मात्तामा नयाशु त्वं कुरु भार्यां मनोहराम् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम् ॥ प्रसन्नवदनः प्राह सुग्रीवं सन्निधौ स्थितम् ॥ ३१ ॥ गच्छ सुग्रीव दूतत्वं कुरु कार्यं विचक्षण ॥ वक्तव्यं च तथा तत्र यथाऽभ्येति कृशोदरी ॥ ३२ ॥

रत्नग्रहण किये हैं यह वराङ्गना भी रमणी रत्न हैं वह इसको किस लिये ग्रहण नहीं करते? ॥ २८ ॥ हे भूपते आपके घरमें जो सब रत्न हैं वह इस स्त्री रत्नद्वारा विशद होकर यथार्थरत्न स्वरूपता प्राप्त करेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ २९. ॥ हे दैत्येंद्र! तीनों लोकोंमें ऐसी प्रियतमा ललना दूसरी नहीं है, इस कारण आप शीघ्र उस मनोरमा स्त्रीको लाकर उसका भोग कीजिये ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! दैत्याधिराज शुम्भने चण्ड मुण्डके इस प्रकार कोमलाक्षर मधुर वचन सुनकर समीप स्थित सुग्रीवसे कहा ॥ ३१ ॥ हे सुग्रीव! तुम सब कार्योंमें चतुर हो अतएव इस समय मेरा दूत कार्य संपादन करो जिससे वह कृशोदरी मेरे समीप आवे तुम उससे वैसेही वचन कहो ॥ ३२ ॥

शृङ्गाररसमें चतुर सुधीगण कहते हैं कि, स्त्रियोंके प्रति साम और दान यह दोनों प्रकारके उपाय प्रयुक्त करने चाहिये ॥ ३३ ॥ क्योंकि भेद प्रयोग करनेमें अवश्य कपटताका प्रयोजन होता है. सुतरां कपट व्यवहारसे रसाभास होता है और निग्रह करनेसे रसभंग होता है. इस कारण पण्डितोंने इन दोनों उपायोंको दूषित कहा है ॥ ३४ ॥ हे दूतवर ! साम और दानयुक्त मधुरवचन कहनेपर कौन स्त्री कामबाणसे पीडित होकर वशीभूत नहीं होती ॥ ३५ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! सुग्रीव शुम्भके इस प्रकार चातुर्यतागर्भित वचन सुनकर तत्काल जगन्माता अंबिकाके समीप गया ॥ ३६ ॥ अनन्तर वह सिंहपर चढ़ी सुवदना कांता जगदम्बिकाको देखकर प्रणतिपूर्वक मधुर वचनसे कहने लगा ॥ ३७ ॥ दूत बोला हे सुन्दरि ! महाराज सुरशत्रु शुम्भ सर्वांग

उपायौ द्वौ प्रयोक्तव्यौ कांतासु सुविचक्षणैः सामदाने इति प्राहुः शृंगाररसकोविदाः ॥ ३३ ॥ भेदे प्रयुज्यमानेऽपि रसाभासस्तु जायते ॥ निग्रहे रसभंगाः स्यात्तस्मात्तौ दूषितौ बुधैः ॥ ॥ ३४ ॥ सामदानमुखैर्वाक्यैः श्लक्ष्णैर्नर्मयुतैस्तथा ॥ का न यातिवशे दूत कामिनी काम पीडिता ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ सुग्रीवस्तु वचः श्रुत्वा शुभोक्तं सुप्रियं पटु ॥ जगाम तरसा तत्र यत्रास्ते जगदम्बिका ॥ ३६ ॥ सोऽपश्यत्सुमुखीं कांतां सिंहस्योपरि संस्थिताम् ॥ प्रणम्यं मधुरं वाक्यमुवाच जगदंबिकाम् ॥ ३७ ॥ दूत उवाच ॥ वरोरु त्रिदशारातिः शुंभः सर्वांगसुन्दरः ॥ त्रैलोक्याधिपतिः शूरः सर्वजिद्राजते नृपः ॥ ३८ ॥ तेनाहं प्रेषितः कामं त्वत्सकाशं महात्मना ॥ त्वद्रूपश्रवणा सक्तचित्तेनातिविदूयता ॥ ३९ ॥ वचनं तस्य तन्वंगि शृणु प्रेमपुरःसरम् ॥ प्रणिपत्य यथा प्राह दैत्यानामधिपस्त्वयि ॥ ४० ॥ देवा मया जिताः सर्वे त्रैलोक्याधिपतिस्त्वहम् ॥ यज्ञभागानहं कांते गृह्णामीह स्थितः सदा ॥४१॥ हृतसारा कृता नूनं द्यौर्मया रत्नवर्जिता ॥ यानि रत्नानि देवानां तानि चाऽऽहृतवानहम् ॥ ४२ ॥

सुन्दर और वीरपुरुष हैं वे नरपाल सबको पराजित कर तीनों लोकोंके अधिपती हो परमसुखसे काल व्यतीत करते हैं ॥ ३८ ॥ वे महात्मा आपके रूपलावण्यका वृत्तांत सुन आपके प्रति अतिशय आसक्त हुए हैं इस कारण उन्होंने अत्यन्त सन्तप्त होकर आपके प्रति अपनी अभिलाषा प्रकाशित करनेके लिये मुझको भेजा है ॥ ३९ ॥ हे कृशाङ्गि ! उन दैत्यपतिने प्रणत होकर आपसे जो कहा है आप उनके वे प्रेममयं वचन सुनिये ॥ ४० ॥ हे कान्ते ! मैं सब देवताओंका पराजय करके त्रैलोक्यका अधिपति हुआ हूँ विशेषकर मैं घरमें रहकर ही नित्य संपूर्ण यज्ञभाग ग्रहण करता हूं ॥ ४१ ॥ देवताओंके जो सब धन रत्न थे मैं वह सब हरण करके ले आया हूं अतएव रत्नोंका हरण होजानेसे अमरभवन निःसंदेह सारविहीन होगया है ॥ ४२ ॥

हे सुन्दरि ! तीनों लोकोंमें जो सब धन रत्न हैं उन सबका भोग करता हूं अधिक क्या संपूर्ण सुर असुर और मनुष्यलोग मेरे एकांत अनुगत होकर काल व्यतीत करते हैं ॥ ४३ ॥ किन्तु तुम्हारे गुणग्राम मेरे कर्ण विवरद्वारा हृदयमें प्रवेश करके मुझको बलात्कार तुम्हारे अधीन करते हैं. इस कारण मैं तुम्हारा किंकर स्वरूप हुआ हूं, अतएव अब मैं क्या करूं ॥ ४४ ॥ हे सुंदरि ! तुम जो आज्ञा करोगी, मैं तुम्हरे वशवर्ति होकर वही करूंगा हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा दास हूं, इसलिये मेरी कामबाणसे रक्षा करो ॥ ४५ ॥ हे हंसगमने ! मैं तुम्हारे नितान्त आधीन हूं, विशेषकर कामबाणसे अत्यंत व्याकुल हुआ हूं, अतएव तुम मेरा भजन करो तो तुम तीनों लोकोंकी अधीश्वरी होकर अनुपम भोग्य वस्तुओंका भोग करोगी ॥ ४६ ॥ हे नितंबिनि ! तुम मेरे मरनेकी

भोक्ताहं सर्वरत्नानां त्रिषु लोकेषु भामिनि ॥ वशानुगाः सुराः सर्वे मम दैत्याश्च मानवाः ॥ ४३ ॥ त्वद्गुणैः कर्णमागत्य प्रविश्य हृदयांतरम् ॥ त्वदधीनः कृतः कामं किंकरोऽस्मि करोमि किम् ॥ ४४ ॥ त्वमाज्ञापय रंभोरु तत्करोमि वशानुगः ॥ दासोऽहं तव चार्वंगि रक्ष मां कामबाणतः ॥ ४५ ॥ भज मां त्वं मरालाक्षि तवाधीनं स्मराकुलम् ॥ त्रैलोक्यस्वामिनी भूत्वा भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ ४६ ॥ तव चाज्ञाकरः कान्ते भवामि मरणावधि ॥ अवध्योऽस्मि वरारोहे सदेवासुरमानुषैः ॥ ४७ ॥ सदा सौभाग्यसंयुक्ता भविष्यसि वरानने ॥ यत्र ते रमते चित्त तत्र क्रीडस्व सुन्दरि ॥ ४८ ॥ इति तस्य वचश्चित्ते विमृश्य मदमंथरे ॥ वक्तव्यं यद्भवेत्प्रेम्णा तद् ब्रूहि मधुरं वचः ॥ ४९ ॥ शुंभाय चंचलापांगि तद्ब्रवीम्यहमाशु वै ॥ व्यास उवाच ॥ तद्दूतवचनं श्रुत्वा स्मितं कृत्वा सुपेशलम् ॥५०॥ ते प्राह मधुरां वाच देवी देवार्थसाधिका ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जानाम्यहं निशुंभं च शुंभं चातिबलं नृपम् ॥ ५१ ॥

शंका मत करो, क्योंकि मैं देवता असुर और मनुष्योंसे अवध्य हूं, मैं सदा तुम्हारा आज्ञाकारी दास होकर रहूंगा ॥ ४७ ॥ हे वरानने ! मेरा वचन प्रति पालन करनेसे तुम सौभाग्यवती होगी हे सुंदरि ! तुम जहाँ अभिलाषा करोगी, उसी स्थानमें विहार करता फिरूंगा ॥ ४८ ॥ हे देवि ! उन दैत्यपतिके यह सब वचन मनमें विचार कर जो आपको कहना हो, आप प्रीतिसहित तादृश मधुर वचन कहिये ॥ ४९ ॥ हे चंचलापाङ्गि ! मैं अभी जाकर यह सब वृत्तांत महाराज शुम्भसे कहता हूं. व्यासजी बोले हे राजन् ! दैवकार्यमें तत्पर भगवतीने दूतके यह वचन सुन कुछेक हँसकर ॥ ५० ॥ मधुर वचनद्वारा कहा देवी बोली हे दूत ! शुंभ और निशुंभको मैं भलीभांति जानती हूं ॥ ५१ ॥

वह असुरराज शुंभ अतिबलवान है वह शुंभ देवताओंको पराजित करके अतुल ऐश्वर्य भोग करता है ॥ ५२ ॥ वह सब गुणोंकी खान है अत्यन्त शूर दाता और रतिपतिके समान सुन्दर है वह दैत्यवर बत्तीस सुलक्षण संभूषित है विशेष कर देवता और मनुष्यसे अवध्य है ॥ ५३ ॥ हे दूतवर ! यह जानकर ही मैं उस महासुर शुंभको देखनेके लिये यहां आई हूं. देखो रत्न अपनी अधिक शोभा बढ़ानेके लिये जिस प्रकार सुवर्णके निकट आकर मिलते हैं ॥ ५४ ॥ इसी प्रकार मैं अपने पतिको देखनेके लिये दूरसे यहां आई हूं मैंने संपूर्ण देवता गंधर्व राक्षस भूतलस्थ विख्यात मनुष्य इत्यादि अत्यन्त प्रियदर्शन पुरुषोंको देखकर जान लिया है कि, वह सब शुंभके भयसे भीत और विचेतन होकर कंपित होरहे हैं ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ अतएव शुंभका यह सब गुणग्राम सुनकर

जेतारं सर्वदेवानां हंतारं चैव विद्विषाम् ॥ राशिं सर्वगुणानां च भोक्तारं सर्वसंपदाम् ॥५२॥ दातारं चातिशूरं च सुंदरं मन्मथाकृतिम् ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तमवध्यं सुरमानुषैः ॥ ५३ ॥ ज्ञात्वा समागताऽस्म्यत्र द्रष्टुकामा महासुरम् ॥ रत्नं कनकमायाति स्वशोभाधिकवृद्धये ॥ ५४ ॥ तत्राहं स्वपतिं द्रष्टुं दूरादेवागताऽस्मि वै ॥ दृष्टा मया सुराः सर्वे मानवा भुवि मानदाः ॥ ५५ ॥ गंधर्वा राक्षसाश्चान्ये ये चातिप्रियदर्शनाः ॥ सर्वे शुंभभयाद्भीता वेपमाना विचेतसः ॥ ५६॥ श्रुत्वा शुंभगुणानत्र प्राप्ताऽस्म्यद्य दिदृक्षया ॥ गच्छ दूत महाभाग ब्रूहि शुंभं महाबलम् ॥ ५७ ॥ निर्जने श्लक्ष्णया वाचा वचनं वचनान्मम ॥ त्वां ज्ञात्वा बलिनां श्रेष्ठं सुन्दराणां च सुंदरम् ॥ ५८ ॥ दातारं गुणिनं शूरं सर्वविद्याविशारदम् ॥ जेतारंसर्वदेवानां दक्षं चोग्रं कुलोत्तरम् ॥ ५९ ॥ भोक्तारं सर्वरत्नानां स्वाधीनं स्वबलोन्नतम् ॥ पतिकामाऽस्म्यहं सत्यं तव योग्या नराधिप ॥६०॥ स्वेच्छया नगरे तेऽत्र समायातामहामते ॥ ममास्ति कारणं किंचिद्वराहे राक्षसोत्तम॥६१॥

उनके देखनेके लिये यहां आई हूं हे दूत ! तुम अत्यन्त सौभाग्यवान् हो, अब तुम शुंभके निकट जाकर एकान्तमें ॥ ५७ ॥ उस महाअसुर शुंभसे मेरे वचनानुसार मधुर वचन कहो कि, आप बलवानोंमें अग्रणी हैं, सुंदरसे भी सुंदर हैं ॥ ५८ ॥ सर्वविद्याविशारद, शूर, गुणी, दाता, चतुर, सत्कुलसंभूत, तेजस्वी और देवताओंके जीतनेवाले हैं ॥ ५९ ॥ विशेषकर अपने बाहुबलसे उन्नत और स्वाधीन होकर सब रत्न उपभोग करते हैं अतएव हे नरनाथ ! मैं तुम्हारे इन समस्त गुणोंको जानकर निःसन्देह पतिभावकी अभिलाषासे ॥ ६० ॥ इच्छापूर्वक तुम्हारे नगरमें आई हूं. हे महात्मन् ! मैं ही तुम्हारे योग्य स्त्री हूं. हे दैत्यवर ! परन्तु मेरे विवाहमें किंचिन्मात्र प्रतिबन्धक है ॥ ६१ ॥

पूर्वकालके समय एकान्तमें वयस्या सखियोंके सहित क्रीडा करते करते इच्छानुसार बालस्वभावसे ॥ ६२॥ और अपने शरीरके बलसे दर्पित होकर सखियोंके सामने एक प्रतिज्ञा करी है कि, मेरे समान बलशाली कोई पुरुष यदि मुझको रणमें पराजित कर सके ॥ ६३ ॥ तो मैं उसका बलाबल जानकर अवश्य उसका वरण करूंगी सखियोंने मेरा यह वचन सुनकर हँसी की थी और आश्चर्यमें होकर कहाथा कि ॥ ६४ ॥ इस बालिकाने किसलिये ऐसी अद्भुत कठोर प्रतिज्ञा करी. अतएव हे राजेंद्र ! आपभी मेरा इस प्रकार बल जानकर ॥ ६५ ॥ अपने पराक्रमसे मुझको पराजित कर अपना अभिलषित कीजिये. हे सर्वांग सुन्दर ! आप वा आपके छोटे भाई समर स्थलमें आय॥ ६६ ॥ मुझको पराजित कर विवाहकार्य संपादन करें ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवी

बालभावाद्व्रतं किंचित्कृतं राजन्मया पुरा ॥ क्रीडंत्या च वयस्याभि सहैकांते यदृच्छया ॥ ६२ ॥ स्वदेहबलदर्पेण सखीनां पुरतो रहः ॥ मत्समानबलः शूरो रणे मां जेष्यति स्फुटम् ॥ ६३ ॥ तं वरिष्याम्यहं कामं ज्ञात्वा तस्य बलाबलम् ॥ जहसुर्वचनं श्रुत्वा सख्यो विस्मितमानसाः ॥ ६४ ॥ किमेतया कृतं क्रूरं व्रतमाद्भुतमाशु वै ॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र ज्ञात्वामे हीदृशं बलम् ॥ ६५ ॥ जित्वा मां स्वबलेनात्र वांछितं कुरु चात्मनः ॥ त्वं वा तवाऽनुजो भ्राता समेत्य समरांगणे ॥६६॥ जित्वा मां समरेपात्र विवाहं कुरु सुंदर ॥६७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ व्यास उवाच ॥ देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सः दूतः प्राह विस्मितः ॥ किं ब्रूते रुचिरापांगिस्त्रीस्वभावाद्धि साहसात् ॥ १ ॥ इंद्राद्या निर्जिता येन देवा दैत्यास्तथाऽपरे ॥ तं कथं समरे देवि जेतुमिच्छसि भामिनी ॥ २ ॥ त्रैलोक्ये तादृशो नास्ति यः शुंभं समरे जयेत् ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि तस्याग्रे युधि सांप्रतम् ॥ ३ ॥ अविचार्य न वक्तव्यं वचनं क्वापि सुंदरि ॥ बलं स्वपरयोर्ज्ञात्वा वक्तव्यं समयोचितम् ॥ ४ ॥

भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! देवीके यह वचन सुनकर दूतने आश्चर्ययुक्त चित्तसे कहा सुन्दरी ! तुम स्त्रियोंके स्वभावसे भली भांति विचार न करके यह क्या कहती हो ? ॥ १ ॥ हे देवि ! तुम व्यर्थ अभिमानसे गर्वित हुई हो, जिस शुंभने इन्द्रादिदेवता और अपरापर अनेक दैत्योंको पराजित किया है, तुम उसको किस प्रकार समरमें जीतनेकी इच्छा करती हो ? ॥ २ ॥ हे कमलनयने ! तुम तो दैत्यराज शुंभके संमुख अति तुच्छ पदार्थ दिखाई देगी जो शुंभको युद्धमें पराजय कर सके इस त्रिलोकीमें ऐसा कोई वीर नहीं हैं॥३॥ हे सुन्दरि ! विना विचारे कहीं किसी वचनको नहीं कहना चाहिये. अपना और दूसरेका बल जान कर समयानुसार वचन कहने चाहिये ॥ ४ ॥

तीनों लोकोंका अधिपति राजा शुंभ तुम्हरे रूपलावण्यसे मोहित होकर तुम्हारीं प्रार्थना करता है. इस कारण तुम प्रणयिनी होकर उसकी इच्छानुसार कार्य करो ॥ ५॥ तुम अब मूर्खस्वभावको छोड़ कर शुंभ वा निशुंभका भजन करो. यह मैं तुमसे हितके वचनही कहता हूं अतएव मेरे वचनोंका प्रतिपालन करो ॥ ६ ॥ नवप्रकारके रसोंमें शृंगाररस सर्वोत्तम है. इस कारण परमानन्दसहित उस शृंगाररसका सेवन करना समस्त बुद्धिमान् प्राणियोंका कर्त्तव्य हैं ॥ ७ ॥ और यदि तुम बाल्यस्वभावके कारण शुंभके समीप नहीं चलोगी तो वह पृथ्वीपति कुपित हो आज्ञाकारी दूतोंको भेज अभी तुमको बलपूर्वक ले जायँगे ॥ ८ ॥ हे सुन्दरि ! वे बलदर्पित दानव लोग तुम्हारे केशाकर्षण करके शुंभके समीप लेजायँगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ९ ॥ हे कृशांगि ! तुम सब प्रकारसे

त्रैलोक्याधिपतिः शुंभस्तव रूपेण मोहितः ॥ त्वां च प्रार्थयते राजा कुरु तस्येप्सितं प्रिये ॥ ५ ॥ त्यक्त्वा मूर्खस्वभावं त्वं संमान्य वचनं मम ॥ भज शुंभं निशुंभं वा हितमेतद्ब्रवीमि ते ॥६॥ शृंगारः सर्वथा सर्वैः प्राणिभिः परया मुदा ॥ सेवनीयो बुद्धिमद्भिर्नवानामुत्तमो यतः ॥ ७ ॥ नागमिष्यसि चेद्बाले स क्रुद्धः पृथिवीपतिः ॥ अन्यानाज्ञाकरान्प्रेष्य बलान्नेष्यति सांप्रतम् ॥ ८ ॥ केशेष्वाकृष्य ते नूनं दानवा बलदर्पिताः ॥ त्वां नयिष्यंति वामोरुतरसा शुंभसन्निधौ ॥ ९ ॥ स्वलज्जां रक्ष तन्वंगि साहसं सर्वथा त्यज ॥ मानिता गच्छ तत्पार्श्वे मानपात्रं यतोऽसि वै ॥ १० ॥ क्व युद्धं निशितैर्बाणैः क्व सुखं रतिसंगजम् ॥ सारासारं परिच्छिद्य कुरु मे वचनं पटु ॥११॥ भज शुंभं निशुंभं वा लब्धासि परमं शुभम् ॥ देव्युवाच ॥ सत्यं दूत महाभाग प्रवक्तुं निपुणो ह्यसि ॥ १२ ॥ निशुंभशुंभौ जानामि बलवंताविति ध्रुवम् ॥ प्रतिज्ञा मे कृता बाल्यादन्यथा सा कथं भवेत् ॥ १३ ॥

साहस छोड़कर अपनी मानरक्षा करो तुम सन्मानका पात्र हो, इस कारण सन्मानित होकर ही उसके समीप चलो ॥ १० ॥ देखो ! निशित बाणोंसे देह छेदन कराकर युद्ध और रतिजनित सुख. इन दोनोंमें कितना अन्तर है ? वह दोनों परस्पर भिन्न हैं; इस कारण सारासार विचारकर मेरे इन हितकर वचनोंका प्रतिपालन करो ॥ ११ ॥ शुंभ वा निशुंभका भजन करनेसे तुम अत्यन्त सुख पाओगी इसमें सन्देह नहीं देवीने कहा हे दूत! तुम अत्यन्त भाग्यशाली हो ? सुतरां सत्य कहनेमें बड़े निपुण हो ॥ १२ ॥ शुंभ और निशुम्भको मैं भलीभांति बलवान् जानती हूं किन्तु बाल्यस्वभावके वश होकर मैंने जो पूर्वमें प्रतिज्ञा की है, उसके अन्यथा किस प्रकार करूं ? ॥ १३ ॥

अतएव तुम अत्यन्त बलशाली उन शुम्भ वा निशुंभसे कहो कि, विना युद्ध किये सौन्दर्य वशसे कोई मेरा स्वामी नहीं हो सकेगा ॥ १४ ॥ इसलिये तुम अभी मुझको जीतकर इच्छानुसार मेरा पाणिग्रहण करो मैं अबला होकर भी युद्धकी इच्छासे यहां आई हूं ॥ १५ ॥ यह निश्चय जानो. अतएव यदि समर्थ हो तो युद्धदान करके वीर धर्मका आचरण करो और यदि मेरे शूलके देखनेसे तुमको भय होता हो, अथवा यदि तुमको जीवनकी इच्छा हो तो स्वर्ग और धरातल परित्याग करके अभी पातालमें चले जाओ हे दूत ! तुम अभी अपने प्रभुके समीप जाय आदर सहित मेरे यह सब वचन कहो ॥१६॥१७॥ फिर वह महाबलवान् दानवपति विचार करके जो उचित बोध होगा वही करेगा. हे धर्मज्ञ ! इस संसारमें शत्रु वा स्वामीके निकट सत्य वचन कहनाही

तस्माद् ब्रूहि निशुंभं च शुभं वा बलवत्तरम् ॥ विना युद्धं न मे भर्ता भविता कोऽपि सौष्ठवात् ॥ १४ ॥ जित्वा मां तरसा कामं करं गृह्णातु सांप्रतम् ॥ युद्धेच्छया समायातां विद्धि मामबलां नृप ॥ १५ ॥ युद्धं देहि समर्थोऽसि वीरधर्मं समाचर ॥ बिभेषि मम शूलाच्चेत्पातालं गच्छ मा चिरम् ॥ १६ ॥ त्रिदिवं च धरां त्यक्त्वा जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ इति दूत वदाशु त्वं गत्वा स्वपतिमादरात् ॥ १७ ॥ स विचार्य यथा युक्तं करिष्यति महाबलः ॥ संसारे दूतधर्मोयं यत्सत्यं भाषणं किल ॥ १८ ॥ शत्पत्रौ यौ च धर्मज्ञ तथा त्वं कुरु मा चिरम् ॥ व्यास उवाच ॥ अथ तद्वचनं श्रुत्वा नीतिमद्बलसंयुतम् ॥ १९ ॥ हेतुयुक्तं प्रगल्भं च विस्मितः प्रययौ तदा ॥ गत्वा दैत्यपतिं दूतो विचार्य च पुनःपुनः ॥ २० ॥ प्रणम्य पादयोः प्रह्वः प्रत्युवाच नृपं च तम् ॥ राजनीतिकरं वाक्यं मृदुपूर्वं प्रियं वचः ॥ २१ ॥ दूत उवाच ॥सत्यं प्रियं च वक्तव्यं तेन चिंतापरो ह्यहम् ॥ सत्यं प्रियं च राजेंद्र वचनं दुर्लभं किल ॥ २२ ॥ अप्रियं वदतां कामं राजा कुप्यति सर्वथा ॥ साक्षात् कुतः समायाता कस्य वा किंबलाऽबला ॥ २३ ॥

दूतका धर्म है ॥ १८ ॥ इसमें सन्देह नहीं. इस कारण तुम शीघ्र अपने प्रभुके निकट जाकर सत्य वचन कहो. व्यासजी बोले हे राजन् ! तब वह दूत देवीके इसप्रकार नीतिसम्मत बलयुक्त ॥ १९ ॥ हेतुयुक्त बलमदगर्वित प्रगल्भ (तीक्ष्ण) वचन सुननेसे आश्चर्य युक्त होकर चला गया. फिर दैत्यपतिके निकट जाय उनके चरणकमलोंमें प्रणाम किया और वारवार विचारकर विनीतभावसे नीतिसंयुक्त कोमल प्रिय वचन कहने लगा ॥ २० ॥ २१ ॥ दूत बोले हे राजेन्द्र ! प्रभुके निकट सत्य और प्रिय वचन कहने चाहिये. किंतु सत्य और प्रिय वचन अत्यंत दुर्लभ है ॥ २२ ॥ पक्षांतरमें कर्ण—कठोर अप्रियवचन कहनेसे राजा अत्यन्त कुपित होते हैं. इसी कारण अब मैं अतिचिन्तान्वित हुआ हूं हे राजेन्द्र ! वह अबला नारी क्या बलवती है ? वह कहांसे

इस स्थानमें आई है ॥ २३ ॥ और वह किसकी रमणी है ? यह सब विषय मैं कुछ भी नहीं जान सकता अतएव उसके व्यवहारका विषय किस प्रकार कहूं ? किंतु तो भी उस कटुभाषिणी रमणीको देखकर इतना समझा है कि, वह अत्यन्तगर्वित होकर संग्राम करनेकी इच्छासे यहां आई है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! आप अत्यन्त बुद्धिमान् हैं, अतएव उस स्त्रीने आपसे जो कहा है वह सब सुनकर जो कर्त्तव्य हो सो कीजिये. उस स्त्रीने कहा है कि, मैंने पूर्वकालके समय बाल्यस्वभावसे क्रीडा करते करते सखियोंके सामने विवाहके विषयमें यह प्रतिज्ञा की है कि, जो कोई वीर मुझको भलीभाँति युद्धमें पराजित करके सहसा मेरा गर्व खर्व करेगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं उस समबल पुरुषको अवश्य पति बनाऊंगी. हे नृपवर ! आप तो धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं इस कारण मेरी प्रतिज्ञा मिथ्या करने आपको उचित नहीं है ॥ २७ ॥ संग्राम करके मुझको अपने वशीभूत करो. हे महाराज ! उसके कहे यह वचन सुनकर मैं लौट

न ज्ञानगोचरं किंचित्किंब्रवीमि विचेष्टितम् ॥ युद्धकामा मया दृष्टा गर्विता कटुभाषिणी ॥ २४ ॥ तया यत्कथितं सम्यक्तच्छृणुष्व महामते ॥ मया बाल्यात्प्रतिज्ञेयं कृता पूर्वं विनोदतः ॥ २५ ॥ सखीनां पुरतः कामं विवाहं प्रति सर्वथा ॥ यो मां युद्धे जयेद्वा दर्पं च विधुनोति वै ॥ २६ ॥ तं वरिष्याम्यहं कामं पतिं समबलं किल ॥ न मे प्रतिज्ञा मिथ्या सा कर्तव्या नृपसत्तम ॥२७॥ तस्माद्युद्धयस्व धर्मज्ञ जित्वा मां स्ववशं कुरु ॥ तयेति व्याहृतं वाक्यं श्रुत्वाऽहं समुपागतः ॥ २८ ॥ यथेच्छसि महाराज तथा कुरु तव प्रियम् ॥ सा युद्धार्थं कृतमतिः सायुधा सिंहगामिनी ॥ २९ ॥ निश्चला वर्तते भूप यद्योग्यं तद्विधीयताम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सुग्रीवस्य नराधिपः ॥ ३० ॥ पप्रच्छ भ्रातरं शूरं समीपस्थं महाबलम् ॥ शुंभ उवाच ॥ भ्रातः किमत्र कर्तव्यं ब्रूहि सत्यं महामते ॥३१॥ नार्येका योद्धुकामाऽस्ति समाह्वयति सांप्रतम् ॥ अहं गच्छामि संग्रामे त्वं वा गच्छ बलान्वितः ॥ ३२ ॥

आया हूं ॥ २८ ॥ अब आपको जो प्रिय हो इच्छानुसार वही करो. वह स्त्री युद्धके लिये कृतनिश्चय होकर अनेक प्रकार आयुध धारण किये सिंहके पीठपर बैठी हुई है ॥ २९ ॥ वह बड़ी दृढ है. अब इस विषयमें जो कर्त्तव्य हो वही कीजिये. व्यासजी बोले हे राजन् ! नरपति शुंभने सुग्रीवके इस प्रकार वचन सुनकर ॥ ३० ॥ समीप स्थित वीरवर अपने भ्राता निशुंभसे पूँछा शुंभ बोला हे भाई ! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो, अतएव इस विषयमें क्या करना चाहिये ? यह सत्य कहो ॥ ३१ ॥ अकेली स्त्री युद्धकी अभिलाषासे इस समय हमको बुलाती है इस कारण मैं संग्राममें जाऊं वा तुम सेनाको संग लेकर युद्धमें जाओगे ॥ ३२ ॥

इसमें तुम्हारी जो रुचि हो मैं वही करूंगा. निशुंभने कहा हे महाराज ! संग्रामस्थलमें आपका वा मेरा जाना उचित नहीं है ॥ ३३ ॥ अतएव धूम्रलो
चनको शीघ्र समरमें भेजो यह वीर वहां जाकर उस चारुलोचना ललनाको रणमें जीतकर यहां ले आवे ॥ ३४ ॥ तो फिर आप उससे विवाह कीजिये.
व्यासजी बोले शुम्भने कनिष्ठभ्राताकी यह बात सुन ॥ ३५ ॥ तत्काल क्रोधित होकर पार्श्वस्थित धूम्रलोचनको युद्धके लिये भेजा, शुम्भने कहा हे धूम्रलो
चन ! तुम बहुतसी सेनासहित अभी रणमें जाओ ॥ ३६ ॥ और वीर्यके मदसे गर्विता उस मुग्धा स्त्रीको ले आओ और यदि देव दानव वा मनुष्योंमें ॥ ३७ ॥
कोई भी महाबलवान् पुरुष उसका पृष्ठरक्षक हो तो तुम तत्काल उसका विनाश करो उसके पार्श्ववर्तिनी कालीको मारकर उसको ग्रहण करो ॥ ३८ ॥

यद्रोचते निशुंभाद्य तत्कर्तव्य मया किल ॥ निशुंभ उवाच ॥ न मया न त्वया वीर गंतव्यं रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥ प्रेषयस्व महाराज
त्वरितं धूम्रलोचनम् ॥ सगत्वा तां रणे जित्वागृहीत्वा चारुलोचनाम् ॥ ३४ ॥ आगमिष्यति शुंभात्र विवाहः संविधीयताम् ॥ व्यास
उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य शुंभो भ्रातुः कनीयसः ॥ ३५ ॥ कोपात्संप्रेषयामास पार्श्वस्थधूम्रलोचनम् ॥ शुंभ उवाच॥ धूम्रलोचन
गच्छाऽऽशु सैन्येन महताऽऽवृतः ॥ ३६ ॥ गृहीत्वाऽऽनयतां मुग्धां स्ववीर्यमदमोहिताम् ॥ देवो वा दानवो वाऽपि मनुष्यो वा महाबलः
॥ ३७ ॥ तत्पार्ष्णिग्राहतां प्राप्तो हंतव्यस्तरसा त्वया ॥ तत्पार्श्ववर्तिनीं कालीं हत्वा संगृह्य तां पुनः ॥ ३८ ॥ शीघ्रमत्र समागच्छ कृत्वा
कार्यमनुत्तमम् ॥ रक्षणीया त्वया साध्वी मुंचती मृदुमार्गणान् ॥ ३९ ॥ यत्नेन महता वीर मृदुदेहा कृशोदरी ॥ तत्सहायाश्च हंतव्या ये
रणे शस्त्रपाणयः ॥ ४० ॥ सर्वथा सा न हंतव्या रक्षणीया प्रयत्नतः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्यादिष्टस्तदा राज्ञा तरसाधूम्र लोचनः ॥४१॥
प्रणम्य शुंभं सैन्येन वृतः शीघ्रं ययौ रणे ॥ असाधूनां सहस्राणां षष्ट्या तेषां वृतस्तथा ॥ ४२ ॥

हे वीरवर ! तुम यह सब महत् कार्य सम्पादन करके शीघ्र यहां आओ. उस कृशाङ्गी साध्वीका शरीर अतिशय कोमल है. अतएव जिससे वह रमणी विनष्ट
न हो, तुम अत्यन्त यत्नसहित उसी प्रकारके कोमलबाण परित्याग करो ॥ ३९ ॥ हे वीर ! इसमें यत्न रखना कारण कि, उस कृशोदरीका कोमल शरीर
है किन्तु जो शस्त्र धारण करके उसका सहायक हो उसका संहार करो ॥ ४० ॥ फलतः उस कामिनीको किसी प्रकार निहत न करके उसकी यत्नसहित
रक्षा करो. व्यासजी बोले हे राजन् ! धूम्रलोचन राजाकी इस प्रकार आज्ञा पाते ही ॥ ४१ ॥ दैत्यपति शुम्भको प्रणाम कर छः हजार दानवोंके सहित
शीघ्र संग्राममें गया ॥ ४२ ॥

और उस स्थानमें उपस्थित होकर देखा कि, वह देवी मनोहर उपवनमें बैठी हुई है. तब धूम्रलोचन उस मृगनयनीको देख विनय सहित ॥ ४३ ॥ हेतुपूर्ण मधुर और सरस वचनसे कहने लगा हे देवि! तुम अति सौभाग्यवती हो. क्योंकि दैत्यपति शुंभ तुम्हारे विहरमें कातर हुए हैं॥ ४४ ॥ उन नीति विशारद राजाने रस भंगके भयसे उद्विग्न होकर तुम्हारे निकट प्रीतिवचन कहकर स्वयंही दूत भेजा था ॥ ४५ ॥ किंतु हे वरानने! उस दूतने जाकर राजाके निकट सब विपरीत वचन कहे हैं. इससे महाराज दुःखी हुए॥ ४६ ॥ हे रसज्ञे! इससे कामातुर मेरे प्रभु महाराज शुंभ चिंतामें निमग्न हुए हैं. वह दूत तुम्हारे वचनोंका गूढ़ तात्पर्य नहीं जान सका ॥ ४७ ॥ हे मानिनि! ''जो पुरुष संग्राममें मुझको जीतेगा'' तुम्हारे इस कठोर वचनका तात्पर्य गूढ़ होनेसे तुम्हारे

स ददर्श ततो देवीं रम्योपवनसंस्थिताम् ॥ दृष्ट्वा तां मृगशावाक्षीं विनयेन समन्वितः ॥४३॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुमद्रसभूषितम् ॥ शृणु देवि महाभागे शुंभस्त्वद्विरहाऽऽतुरः ॥ ४४ ॥ दूतं प्रेषितवान्पार्श्वे तव नीतिविशारदः ॥ रसभंगभयोद्विग्नः सामपूर्वं त्वयि स्वयम् ॥ ४५ ॥ तेनागत्य वचः प्रोक्तं विपरीतं वरानने ॥ वचसा तेन मे भर्ता चिंताविष्टमना नृपः ॥ ४६ ॥ बभूव रसमार्गज्ञे शुंभः कामविमोहितः ॥ दूतेन तेन न ज्ञातं हेतुगर्भं वचस्तव ॥ ४७ ॥ यो मां जयति संग्रामे यदुक्तं कठिनं वचः ॥ न ज्ञातस्तेन संग्रामो द्विविधः खलु मानिनि ॥ ४८ ॥ रतिजोऽथोत्साहजश्च पात्रभेदे विवक्षितः ॥ रतिजस्त्वयि वामोरु शत्रोरुत्साहजः स्मृतः ॥ ४९ ॥ सुखदः प्रथमः कान्ते दुःखदश्चारिजः स्मृतः ॥ जानाम्यहं वरारोहे भवत्या मानसं किल ॥ ५० ॥ रतिसंग्रामभावस्ते हृदये परिवर्तते ॥ इति तज्ज्ञं विदित्वा मां त्वत्सकाशं नराधिपः ॥ ५१ ॥ प्रेषयामास शुम्भोऽद्य बलेन महताऽऽवृतम् ॥ चतुराऽसि महाभागे शृणु मे वचनं मृदु ॥ ५२ ॥

अभिलषित संग्रामके अर्थको नहीं जान सका ॥४८॥ हे वामोरु! रतिजनित और उत्साह जनित संग्राम पात्र भेदसे दो प्रकारका है रतिजनित संग्राम तुममें ही शोभा पाता है और उत्साह जनित संग्राम शत्रुके प्रति प्रयुक्त होता है ॥ ४९ ॥ इन दोनों संग्राममें रतिजनित संग्राम सुखदायक है. और शत्रुजनित संग्रामको क्लेशदायक जानना चाहिये. हे नितम्बिनि! तुम्हारे मनका भाव मैं भलीभांति समझ गया हूं ॥ ५० ॥ तुम्हारे हृदयमें रतिजनित संग्रामका भावही देदीप्यमान रहता है. नरपति शुंभने इस समय इस विषयमें मुझको विशेषज्ञ जानकर ॥ ५१ ॥ विपुल सैन्यसहित मुझकोही तुम्हारे पास भेजा है. हे भाग्यवति! तुम चतुर हो, अतएव मेरे वचनोंका तात्पर्य सहजमें ही समझ सकती हो. अब मेरे हितकर वचन सुनो ॥ ५२ ॥

देखो शुंभ देवताओंका दर्पदलन करके तीनों लोकोंके अधीश्वर हुए हैं, तुम उनसे विवाह करो तो तुम उनकी प्रियतमा पटरानी होकर अनेक भोग करोगी ॥ ५३ ॥ और वह महाबाहु शुम्भ कामरणका प्रकृत अर्थ जानते हैं, अतएव वह तुमको अनायास ही जीतेंगे तुम्हारे विचित्र भाव और मनोगत भाव प्रदर्शन करनेपर वह भी भाव प्रकाश करेंगे ॥ ५४ ॥ और यह कालिका तुम्हारी नर्मक्रीडाकी सहचरी होकर उसी स्थानमें वास करेगी. कामशास्त्रवित् दैत्यपति शुम्भके सहित रतियुद्धमें प्रवृत्त होनेसे ॥ ५५ ॥ वह तुमको जीतकर सुख शय्यापर परिश्रांतथकित करेंगे, वह तुम्हारा शरीर नखाघातसे शोणितसिक्त और अधर दन्तद्वारा खण्ड खण्ड कर डालेंगे ॥ ५६ ॥ तब वह स्वेदयुक्त शरीर करके तुमको कामरणमें पराजित कर देंगे तुम्हारी मानसिक रतिजनित संग्राम लालसा इसी प्रकार पूर्ण होगी ॥ ५७ ॥ हे प्रणयिनि ! तुम्हारे दर्शन मात्रसेही शुंभ सर्व अन्तःकरणसे तुम्हारे वशीभूत होंगे. अतएव तुम मेरे हितकर मनोहर

भज शुम्भं त्रिलोकेशं देवदर्पनिबर्हणम् ॥ पट्टराज्ञी प्रिया भूत्वाभुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥५३॥ जेष्यति त्वां महाबाहुः शुम्भः कामबलार्थवित् ॥ विचित्रान्कुरु हावांस्त्वं सोऽपि भावान्करिष्यति ॥ ५४ ॥ भविष्यति कालिकेयं तत्र वै नर्मसाक्षिणी ॥ एवं संगरयोगेन पतिर्मे परमार्थवित् ॥ ५५ ॥ जित्वा त्वां सुख शय्यायां परिश्रांता करिष्यति ॥ रक्तदेहां नखाघातैर्दंतैश्च खंडिताधराम् ॥ ५६ ॥ स्वेदक्लिन्नां प्रभग्नां त्वां संविधास्यति भूपतिः ॥ भविता मानसः कामो रतिसंग्रामजस्तव ॥ ५७ ॥ दर्शनाद्वश एवास्ते शुम्भः सर्वात्मना प्रिये ॥ वचनं कुरु मे पथ्यं हितकृच्चापि पेशलम् ॥ ५८ ॥ भज शुंभं गणाध्यक्षं माननीयाऽतिमानिनी ॥ मंदभाग्याश्च ते नूनं ह्यस्त्रयुद्धप्रियाश्च ये ॥ ५९ ॥ न तदर्हाऽसि कान्ते त्वं सदा सुरतवल्लभे ॥ अशोकं कुरु राजानं पादघातविकासितम् ॥ ६० ॥ बकुलं सीधुसेकेन तथा कुरबकं कुरु ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे देवीमहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

वचनोंका प्रतिपालन करो ॥ ५८ ॥ तुम अतिशय मानिनी हो, इस कारण शुंभसे विवाह करके सबकी माननीय होगी, इसमें सन्देह नहीं. जो शस्त्रयुद्धको प्रिय जानते हैं, वह अत्यन्त मंदभाग्य हैं, इसमें संदेह नहीं ॥ ५९ ॥ हे कान्ते! सुरतही तुमको सदा प्रिय है, अतएव शस्त्रादिसे संग्राम करना तुम्हारे उपयुक्त नहीं है. हे देवि ! अधिक और क्या कहूं ? पदाघातसे राजाको ऐसे अशोक करो ॥ ६० ॥ बकुल और कुरबल तरु मुख मदिराद्वारा उत्सिक्त होनेपर जिस प्रकार विकसित होते हैं और अशोकवृक्ष स्त्रियोंके पदप्रहारसे जिस प्रकार विकसित होते हैं तुमभी उसी प्रकार मुखमदिरासे और पदाघातसे राजाका अन्तःकरण प्रफुल्लित करके उसको शोकरहित करो ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

व्यासजी बोले हे जनमेजय ! धूम्रलोचनके इस प्रकार कहकर चुप होनेपर कालिका देवीने उत्कट हास्यकर ललितवचनसे कहा ॥ १ ॥ रे मूढ ! तू चाटुकारी वचन कहनेमें निपुण होनेसे नटके समान वचन कहता है तूने मनमें जाना है कि, मधुर वचन कहनेसेही मनोरथपूर्ण होगा, किंतु यह अत्यन्त असंभव है ॥ २ ॥ हे मूढमते ! तू बलवान् है और विशेषकर उस दुरात्माकी अनुमतिके अनुसार बहुतसी सेनासंग लेकर यहां आया है, अब व्यर्थ वाक्यव्यय छोडकर युद्ध कर ॥ ३ ॥ यह देवी कुपित होकर तुझे और शुंभ निशुंभको तथा अन्यान्य सेनापतियोंको बाणोंसे संहार करके फिर अपने स्थानको जायगी ॥४॥ देखो, शुंभ मन्द मति और यह देवी विश्वमोहिनी है, सुतरां इन दोनोंमें अधिक अंतर है, अतएव इस संसारमें इन दोनोंकी परस्पर विवाह विधि अत्यन्त अयोग्य है ॥ ५ ॥ रे

व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा विररामासौ वचनं धूम्रलोचनः ॥ प्रत्युवाच तदा काली प्रहस्य ललितं वचः ॥ १ ॥ विदूषकोऽसि जाल्म त्वं शैलूष इव भाषसे ॥ वृथा मनोरथांश्चित्ते करोसि मधुरं वदन् ॥ २ ॥ बलवान्बलसंयुक्तः प्रेषितोऽसि दुरात्मना ॥ कुरु युद्धं वृथा वादं मुंच मूढमतेऽधुना ॥ ३ ॥ हत्वा शुंभं निशुंभं च त्वदन्यान्वा बलाधिकान् ॥ देवी क्रुद्धा शराघातैर्व्रजिष्यति निजालयम् ॥ ४ ॥ क्वासौ मंदमतिः शुंभः क्व वा विश्वविमोहिनी ॥ अयुक्तः खलु संसारे विवाहविधिरेतयोः ॥५॥ सिंही किं त्वतिकामार्ता जंबुकं कुरुते पतिम् ॥ करिणी गर्दभं वाऽपि गवयं सुरभिः किमु ॥ ६ ॥ गच्छ शुंभं निशुंभं च वद सत्यं वचो मम ॥ कुरु युद्धं न चेद्याहि पातालं तरसाऽधुना ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ कालिकाया वचः श्रुत्वा स दैत्यो धूम्रलोचनः ॥ तामुवाच महाभाग क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ८ ॥ दुदर्शे त्वां निहत्याजौ सिंहं च मदगर्वितम् ॥ गृहीत्वैनां गमिष्यामि राजानं प्रत्यहं किल ॥ ९ ॥ रसभंगभयात्कालि बिभेमि त्विह सांप्रतम् ॥ नो चेत्त्वां निशितैर्बाणैर्हन्म्यद्य कलहप्रिये ॥ १० ॥

मूढ ! तू विचार देख, सिंही यदि अत्यन्त कामातुर हो तथापि वह क्या कभी सामान्य शृगालको वा हथिनी क्या गधेको वा गाय क्या गवय गोसदृशको पति कर सकती है ? ॥ ६ ॥ तू इसी समय शीघ्र शुम्भ और निशुम्भके समीप जाकर मेरे यह सत्य वचन कह कि वह अभी युद्धके लिये तैयार हों; नहीं तो अभी पातालमें भागकर अपने प्राणोंकी रक्षा करें ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले हे महाभाग ! वह दानव धूम्रलोचन कालिकाके इस प्रकार वचन सुन अत्यन्त क्रोधित हो लाल लाल नेत्र कर उनसे कहने लगा ॥ ८ ॥ हे कुत्सिताङ्गि ! आज तुझको और इस मदगर्वित सिंहको समरमें निहत करके इस सुन्दरीको राजाके निकट ले जाऊंगा ॥ ९ ॥ हे कालि ! केवल रसभंगके भयसे अबतक यह कार्य नहीं कर सका. हे कलहप्रिये ! यदि ऐसा न होता तो अभी तुमको

निशित बाणोंसे मार डालता, इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥ कालिकाने धूम्रलोचनकी यह बात सुनकर कहा रे मूढ ! तू क्यों मिथ्या आत्मश्लाघा करता है यह, धनुर्धारी वीरोंका धर्म नहीं है, तू अब अपनी शक्तिके अनुसार बाण छोड़ मैं अभी तुझको शमन सदनको प्रेरण करती हूं ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले हे राजेन्द्र ! देवीकेइस प्रकार वचन सुन दानव धूम्रलोचन दृढकार्मुक ग्रहण कर कालिकाके ऊपर शाणित सायकोंकी वर्षा करने लगा ॥ १२ ॥ इन्द्र इत्यादि देवता उत्तम उत्तम विमानोंमें बैठकर युद्धको देखते हुए "जयहो जयहो" इस प्रकार कहकर देवीका स्तव करने लगे ॥ १३ ॥ तब बाण, खड्ग, गदा, शक्ति और मूशल इत्यादि अनेक प्रकारके अस्त्रवर्षणद्वारा उनका परस्पर घोरतर दारुण युद्ध होने लगा ॥ १४ ॥ कालिकाने बाणोंके प्रहारसे प्रथम तो उसके रथवा

कालिकोवाच ॥ किं विकत्थसि मंदात्मन्नायं धर्मो धनुष्मताम् ॥ स्वशक्त्या मुंच विशिखान्गंतासि यमसंसदि ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्यः संगृह्य कार्मुकं दृढम् ॥ कालिकां तां शरासारैर्ववर्षातिशिलाशितैः ॥१२॥ देवास्तु प्रेक्षकास्तत्र विमानवरसंस्थिताः ॥ तां स्तुवंतो जयेत्यूचुर्देवीं शक्रपुरोगमाः ॥ १३ ॥ तयोः परस्परं युद्धं प्रवृत्तं चादितारुणम् ॥ बाणखड्ग गदाशक्तिमुसलादिभिरुत्कटम् ॥ १४ ॥ कालिका बाणपातैस्तु हत्वा पूर्वं खरानथ ॥ बभंज तद्रथं व्यूढं जहास च मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ स चान्यं रथमारूढः कोपेन प्रज्वलन्निव ॥ बाणवृष्टिं चकारोग्रां कालिकोपरि भारत ॥ १६ ॥ साऽपि चिच्छेद तरसा तस्य बाणानसंगतान् ॥ मुमोचान्यानुग्रवेगा न्दानवोपरि कालिका ॥ १७ ॥ तैर्बाणैर्निहतास्तस्य पार्ष्णिग्राहाः सहस्रशः ॥ बभंज च रथं वेगात्सूतंहत्वा खरानपि ॥ १८ ॥ चिच्छेद तद्धनुः सद्यो बाणैरुरगसन्निभैः ॥ मुदं चक्रे सुराणां सा शंखनादं तथाऽकरोत् ॥ १९ ॥ विरथः परिघं गृह्य सर्वलोहमयं दृढम् ॥ आज गाम रथोपस्थं कुपितो धूम्रलोचनः ॥ २० ॥

हक खच्चर नष्ट कर डाले. फिर उसका विशाल रथ तोड़कर वारंवार हास्य करने लगी ॥१५॥ हे भारत ! तब धूम्रलोचन दूसरे रथमें चढ़ क्रोधसे प्रज्वलित हो कालिकाके ऊपर घोर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १६ ॥ कालिका देवीने भी उन सब बाणोंके आते आतेही तत्काल खंड खंड कर डाले और दानवोंके ऊपर सवेग अपने बाणोंको छोड़ने लगी ॥ १७ ॥ उन बाणोंसे उसके हजार हजार पार्श्वरक्षक निहत हुए अधिक क्या ? उन्होंने उन सब बाणोंसे उसके वाहक खर और सारथीको मारकर रथ तोड़ डाला ॥ १८ ॥ सर्पके समान वेगशाली बाणोंसे उसके धनुषको काटकर शंखध्वनि करी यह देखकर देवतागण अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ १९ ॥ धूम्रलोचन विरथ होते ही कुपित हो लोहमय दृढ परिघ ले रथके समीप आया ॥ २० ॥

तब कालके समान भयंकर दानव देवीकी भर्त्सना करके कहने लगा हे कुत्सिताङ्गि ! पिंगल लोचने कालि ! मैं अभी तुमको मारूंगा ॥ २१ ॥ यह कहकर
सहसा उनके निकट जाय परिघनिक्षेप करनेमें उद्यत हुआ तभी अम्बिका देवीने हुंकार शब्दसे उसको भस्म कर डाला ॥ २२ ॥ धूम्रलोचनको भस्म हुआ
देख उसकी सब सेना भयसे विह्वल हो मार्गमें हा तात ! हा तात ! कह रोदन करती करती तत्काल भाग गई ॥ २३ ॥ देवता धूम्रलोचनको निहत देखकर
प्रफुल्ल अन्तःकरण हो आकाशमण्डलसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २४ ॥ हे महाराज ! उस समय किसी स्थानमें निहत दानवलोग, किसी स्थानमें घोड़े,
किसी स्थानमें हाथी और किसी स्थानमें खरों (गधों) के गिरनेसे रणभूमिने भयंकर मूर्ति धारण करी ॥ २५ ॥ गृध्र, काक, श्येन (पक्षी) बटवर

वाचा निर्भर्त्सयन्कालीं करालः कालसन्निभः ॥ अद्यैव त्वां हनिष्यामि कुरूपे पिंगललोचने ॥ २१ ॥ इत्युक्त्वा सहसाऽऽगत्य परिघं क्षिपते
यदा ॥ हुंकारेणैव ते भस्म चकार तरसांऽबिका ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा भस्मीकृतं दैत्यं सैनिका भयविह्वलाः ॥ चक्रुः पलायनं सद्यो हा तातेत्य
ब्रुवन्पथि ॥ २३ ॥ देवास्तं निहतं दृष्ट्वा दानवं धूम्रलोचनम् ॥ मुमुचुः पुष्पवृष्टिं ते मुदिता गगने स्थिताः ॥ २४ ॥ रणभूमिस्तदा राज
न्दारुणा समपद्यत ॥ निहतैर्दानवैरश्वैः खरैश्च वारणैस्तथा ॥ २५ ॥ गृध्राः काका वटाः श्येना वरफा जंबुकास्तथा ॥ ननृतुश्चुक्रुशुः
प्रेतान्पतितान्रणभूमिषु ॥ २६ ॥ अंबिकातद्रणस्थाने त्यक्त्वा क्रूरं स्थलांतरे ॥ गत्वा चकार चाप्युग्रं शंखनादं भयप्रदम् ॥ २७ ॥
तं श्रुत्वा दरशब्दं तु शुंभः सद्मनि संस्थितः ॥ दृष्ट्वाऽथ दानवान्भग्नानागतान्रुधिरोक्षितान् ॥ २८ ॥ छिन्नपादकराक्षांश्च मंचकारोपिता
नपि ॥ भग्नपृष्ठकटिग्रीवान्क्रंदमानाननेकशः ॥ २९ ॥

कादि एक प्रकारके पिशाच और जम्बुक इत्यादि मांसलोभी जीव रणस्थलमें पड़े हुए प्रेतोंको देखकर नृत्य और विकट कोलाहल शब्द करने लगे ॥२६॥
तब अम्बिका देवीने वह रणस्थल छोड़, दूरवर्ती स्थानमें जाय ऐसी भयदायक प्रचण्ड शंखध्वनि करी ॥ २७ ॥ कि शुम्भने अपने स्थानमें बैठे हुए भी उस
भयजनित शंखनादको सुना फिर कुछ कालोपरान्त ही देखा कि, दानव रणमें पीठ दे रोदन करते करते रणस्थलसे आ रहे हैं. उनमें किसीका सर्वाङ्ग शरीर
रुधिरकी धारामें डूबा हुआ ॥ २८ ॥ किसीका पद छिन्न, किसीके बाहु छिन्न, कोई नेत्र विहीन, किसीकी पीठ टूटी हुई, किसीकी कमर टूटी हुई,
किसीकी ग्रीवा टूटी हुई और कोई शय्यापर सोया हुआ है ॥ २९ ॥

शुम्भ और निशुम्भने इनको देखकर पूँछा कि धूम्रलोचन इस समय कहां है? तुम किस लिये रणमें पीठ दिखाकर लौट आये हैं? और किस लिये उस सुवदना स्त्रीको नहीं लाय ॥ ३० ॥ अन्यान्य सब सेना कहां हैं और यह जो भयवर्द्धक शंखका शब्द कर्णविवरमें प्रविष्ट होता है यह शंखध्वनि किसकी है ? रे मूढो ! तुम इन सब बातोंका यथार्थ विवरण शीघ्र कहो ॥ ३१ ॥ सेनाने शुंभके यह वचन सुनकर कहा हे राजन् ! कालिका देवीने धूम्रलोचनको निहत और संपूर्ण सेनाको मारकर रणस्थलमें अलौकिक कार्य किया है ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! जिस शंखका शब्द कर्णविवरमें प्रविष्ट होकर दानवोंके हृदयमें भयसंचार कर देवताओंके हृदयमें आनन्द बढाता हुआ आकाश मण्डलमें प्रतिध्वनित होता है यह अम्बिकाके शंखका नाद है ॥ ३३ ॥ हे प्रभो ! देवीने निरंतर बाणवर्षा कर जिस समय दानव श्रेष्ठ धूम्रलोचनका रथ भग्न और घोड़ोंको मार कर उनको भी मारडाला वह केसरी जब सेनाका विनाश करने लगा ॥ ३४ ॥

वीक्ष्य शुंभो निशुंभश्च क्व गतो धूम्रलोचनः ॥ कथं भग्नाः समायाता नानीता किं वरानना ॥ ३० ॥ सैन्यं कुत्र गतं मंदाः कथयंतु यथोचितम् ॥ कस्यायं शंखनादोऽद्य श्रूयते भयवर्धनः ॥ ३१ ॥ गणा ऊचुः ॥ बलं च पतितं सर्वं निहतो धूम्रलोचनः ॥ कृतं कालिकया कर्म रणभूमावमानुषम् ॥ ३२ ॥ शंखनादोंऽबिकायास्तु गगनं व्याप्य राजते ॥ हर्षदः सुरसंघानां दानवानां च शोककृत् ॥ ३३ ॥ यदा निपातिताः सर्वे तेन केसरिणा विभो ॥ रथा भग्ना हयाश्चैव बाणपातैर्विनाशिताः ॥ ३४ ॥ गगनस्था सुराश्चक्रुः पुष्पवृष्टिं मुदाऽन्विताः ॥ दृष्ट्वा भग्नं बलं सर्वं पातितं धूम्रलोचनम् ॥ ३५ ॥ निश्चयस्तु कृतोऽस्माभिर्जयो नैव भवेदिति ॥ विचारं कुरु राजेंद्र मंत्रिभिर्मंत्रवित्तमैः ॥ ३६ ॥ विस्मयोऽयं महाराज यदेका जगदंबिका ॥ भवद्भिः सह युद्धाय संस्थिता सैन्यवर्जिता ॥ ३७ ॥ निर्भयैकाकिनी बाला सिंहारूढ मदोत्कटा ॥ चित्रमेतन्महाराज भासतेऽद्भुतमंजसा ॥ ३८ ॥

जब धूम्रलोचन रणशय्यामें शयन कर गये जब सब सेना भग्न हो गई तब देवतालोग यह सब देख हर्ष सहित आकाश मंडलसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! हमको जय प्राप्त नहीं होगी हमने इस प्रकार निश्चय कर लिया है इस कारण अब आप मंत्रण कुशल मंत्रियोंके संग विचार करके जो कर्त्तव्य हो वही करो ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! जगदम्बिका सेनाकी सहायता न लेकर भी आपके संग संग्राम करनेकी इच्छासे जो अकेली अपेक्षा करती है यही हमारे आश्चर्यकी बात है ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! मदके गर्वसे गर्विता वह बाला निर्भय हो अकेली सिंहके पीठपर विराजमान है. हे राजेंद्र ! यह सब तुमको अद्भुत बोध होता है ॥ ३८ ॥

हे महाराज ! संधिविग्रह पलायन वा उदासीन भावमें अवस्थित, इनमें जो आपकी अभिलाषा हो मंत्रण करके उसी कार्यका अनुष्ठान कीजिये ॥ ३९ ॥ हे शत्रुसंतापन ! हमको बोध होता है कि, यद्यपि देवीके पास सेना नहीं है किन्तु तो भी आपद्कालके समय सब देवतालोग उसके पार्श्वरक्षक होंगे; इसमें संदेह नहीं ॥ ४० ॥ यथा समय हरि और हर दोनों उसके समीप उपस्थित होंगे; इस समय लोकपालगण गगनमंडलका आश्रय करके उसके समीप ही वर्त्तमान रहते हैं ॥ ४१ ॥ हे सुरतापन ! आप यह जानिये कि गंधर्व किन्नर और मनुष्य लोक सभी यथासमयमें उसके सहायक होंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे महाराज! हम अनुमानसे यही विचारते हैं कि, वस्तुतः वह अम्बिका किसीकी सहायताकी आशा नहीं करती वा कोई उनका कार्य करै, वह यह

संधिर्वा विग्रहो वाऽद्य स्थानं निर्याणमेव च ॥ मंत्रयित्वा महाराज कुरु कार्यं यथारुचि ॥ ३९ ॥ तत्सन्निधौ बलं नाऽस्ति तथाऽपि शत्रुतापन ॥ पार्ष्णिग्राहाः सुराः सर्वे भविष्यंति किलापदि ॥ ४० ॥ समये तत्समीपस्थौ ज्ञातौ च हरिशंकरौ ॥ लोकपालाः समीपेऽद्य वर्तन्ते गगने स्थिताः ॥ ४१ ॥ रक्षोगणाश्च गंधर्वाः किन्नरा मानुषास्तथा ॥ तत्सहायाश्च मंतव्याः समये सुरतापन ॥ ४२ ॥ अस्माकं मतिमानेन ज्ञायते सर्वथेदृशम् ॥ अंबिकायाः सहायाऽऽशा तत्कार्याशा न काचन ॥ ४२ ॥ एका नाशयितुं शक्ता जगत्सर्वं चराचरम् ॥ का कथा दानवानां तु सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ४४ ॥ इति ज्ञात्वा महाभाग यथारुचि तथा कुरु ॥ हितं सत्यं मितं वाक्यं वक्तव्यमनुयायिभिः ॥ ४५ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां शुंभः परबलार्दनः ॥ कनीयांसं समानीय पप्रच्छ रहसि स्थितः ॥ ४६ ॥ भ्रातः कालिकयाऽद्यैव निहतो धूम्रलोचनः ॥ बलं च शातितं सर्वं गणा भग्नाः समागताः ॥ ४७ ॥ अंबिका शंखनादं वै करोति मदगर्विता ॥ ज्ञानिनां चैवदुर्ज्ञेया गतिः कालस्य सर्वथा ॥ ४८ ॥

आशा नहीं करती ॥ ४३ ॥ आप निश्चय जानिये कि, वह अकेलीही चराचरके सहित संपूर्ण जगन्मण्डलका विनाश कर सकती हैं, फिर सब दानवोंकी बात क्या कहैं ? ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! यह सब वृत्तान्त जानकर आपकी जो रुचि हो वही कीजिये; हित और परिमित सत्यवचनही भृत्यको कहना चाहिये, इसी कारण आपसे यह सब बात कही ॥ ४५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! परबल विमर्दक शुंभने उनके इस प्रकार वचन सुन छोटे भाईको निर्जनमें बुलाकर कहा ॥ ४६ ॥ हे भैया अकेली कालिकाने आज धूम्रलोचनको मारकर सब सेनाका नाश किया है, शेषसेना भागकर हमारे पास चली आई है ॥ ४७ ॥ इस समय अम्बिका मदगर्वित होकर शंखध्वनि करती है, कालकी गतिका जानना ज्ञानियोंके पक्षमें सहज नहीं है ॥ ४८ ॥

देखो कालकी गतिसे तृण कहीं वज्रके समान, कहीं वज्र तृणके समान और कहीं बलवान् भी बलहीन होता है, अतएव दैवकी गति इसी प्रकार जाननी चाहिये ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! तुमसे पूँछता हूँ अब हमारा क्या कर्त्तव्य है ? इस पराभवपर आई अंबिकाको भोग करना उचित है ॥ ५० ॥ वा यहांसे भागना चाहिये या युद्ध करना ठीक है ? तुम यह शीघ्र कहो, यद्यपि तुम मेरे छोटे भाई हो, किन्तु संकटस्थलके समय मैं तुमको बड़ा समझता हूं ॥ ५१ ॥ निशुंभने शुंभकी ऐसी बातें सुनकर कहा हे पापहीन ! भागना वा दुर्गका आश्रय ग्रहण करना युक्ति सङ्गत नहीं है, इसके संग युद्ध करनाही सब प्रकारसे श्रेष्ठ होगा ॥ ५२ ॥ मैं प्रधान प्रधान योधा और सेनासहित समरमें जाय उस अबलाका संहार करके शीघ्र आऊंगा ॥ ५३ ॥ वा यदि दैवकी प्रबलतासे इसके

तृणं वज्रायते नूनं वज्रं चैव तृणायते ॥ बलवान्बलहीनः स्याद्दैवस्य गतिरीदृशी ॥४९॥ पृच्छामि त्वां महाभाग किं कर्तव्यमितः परम् ॥ अभोग्या चांबिका नूनं कारणादत्र वा गता ॥ ५० ॥ युक्तं पलायनं वीर युद्धं वा वद सत्वरम् ॥ लघु ज्येष्ठं विजानामि त्वामहं कार्य संकटे ॥ ५१ ॥ निशुंभ उवाच ॥ न वा पलायनं युक्तं न दुर्गग्रहणं तथा ॥ युद्धमेव परं श्रेयः सर्वथैं वानयाऽनघ ॥ ५२ ॥ ससैन्योऽहं गमिष्यामि रणे तु प्रवराश्रितः ॥ हत्वा तामागमिष्यामि तरसा त्वबलामिमाम् ॥ ५३ ॥ अथवा बलवद्दैवादन्यथा चेद्भविष्यति ॥ मृते मयि त्वया कार्यं विमृश्य च पुनः पुनः ॥ ॥ ५४ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा शुंभः प्रोवाच चानुजम् ॥ तिष्ठत्वं चंडमुण्डौ द्वौ गच्छतां बलसयुंतौ ॥ ५५ ॥ शशकग्रहणायात्र न युक्तं गजमोचनम् ॥ चंडमुंडौ महावीरौ तां हंतुं सर्वथा क्षमौ ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वा भ्रातरं शुंभं संभाष्य च महाबलौ ॥ उवाच वचनं राजा चंडमुंडौ पुरः स्थितौ ॥ ५७ ॥ गच्छतं चंडमुंडौ द्वौ स्वसैन्यपरिवारितौ ॥ हंतुं तामबलां शीघ्रं निर्लज्जां मदगर्वितााम् ॥५८॥ गृहीत्वाऽथ निहत्याजौ कालिकां पिंगलोचनाम् ॥ आगम्यतां महाभागौ कृत्वा कार्य महत्तरम् ॥५९॥

अन्यथा हो, मेरे मरनेपर आप वारंवार विचार कर जो उचित हो वह कीजिये ॥ ५४ ॥ शुंभने छोटे भाईके इस प्रकार वचन सुनकर कहा तुम अपेक्षा करो, इस सेना समूहको संग लेकर चंड और मुंड दोनों जायँ ॥ ५५ ॥ क्योंकि खरगोशके पकड़नेको गजेन्द्रका भेजना उचित नहीं है यह अति सामान्य विषय है । महावीर चंड और मुंड उसका विनाश करनेमें सम्यक् प्रकारसे समर्थ होंगे ॥ ५६ ॥ राजा शुम्भने भाईसे यह कहकर सन्मुख स्थित महावीर चण्डमुण्डसे कहा ॥ ५७ ॥ हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम मदगर्विता लज्जाहीन उस अबला ललनाको मारनेके लिये शीघ्र अपनी सेना सहित जाओ ॥ ५८ ॥ हे वीरयुगल ! उस पिंगल नयना कालिकाको संग्रामस्थलमें मारकर और उस अम्बिकाको ग्रहणपूर्वक यह बड़ा काम करके शीघ्र आओ ॥ ५९ ॥

और यदि वह गर्वित अम्बिका गृहीत होनेपरभी न आवे तो पैने बाणोंसे रणभूषणरूप दुर्गाकोभी मार डालो ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! तब महावीर चण्ड और मुण्ड शुम्भकी यह आज्ञा पातेही महती सेनाके सहित उसी समय समरमें गये ॥ १ ॥ वह अत्यन्त बल वान् दोनों दानव समरस्थलमें देवताओंकी हितकारिणी देवीको देख सामसंयुक्त मधुर वचनोंसे कहने लगे ॥ २ ॥ हे बाले ! तुम क्या इस बातको नहीं जानती हो कि, महाबल पराक्रमी असुरराज शुम्भ निशुम्भने देवताओंकी सब सेनाको पीडित किया है और सुरपति इन्द्रको पराजित करके विजयके मदसे उन्मत्त हुए हैं ॥ ३ ॥ हे नितंबिनि ! तुमको दुर्बुद्धि उपस्थित हुई है इसमें सन्देह नहीं. नहीं तो किसलिये तुम अकेली केवलमात्र कालिका और सिंहको सहाय करके सब सेनाके सहित शुम्भको परास्त करनेकी इच्छा करती ॥ ४ ॥ मुझको जान

सा नायाति गृहीताऽपि गर्विता चांबिका यदि ॥ तदा बाणैर्महातीक्ष्णैर्हतव्याऽऽहवमंडिता ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याज्ञप्तौ तदा वीरौ चंडमुंडौ महाबलौ ॥ जग्मतुस्तरसैवाजौ सैन्येन महताऽन्वितौ ॥ १ ॥ दृष्ट्वा तत्र स्थितां देवीं देवानां हितकारिणीम् ॥ ऊचतुस्तौ महावीर्यौ तदा सामान्वितं वचः ॥२॥ बाले त्वं किं न जानासि शुंभं सुर बलार्दनम् ॥ निशुंभं च महावीर्यं तुराषाविड्जयोद्धतम् ॥ ३ ॥ त्वमेकासि वरारोहे कालिका सिंहसंयुता ॥ जेतुमिच्छसि दुर्बुद्धे शुंभं सर्वबलान्वितम् ॥ ४ ॥ मतिदः कोऽपि ते नास्ति नारी वाऽपि नरोऽपि वा ॥ देवास्त्वां प्रेरयंत्येव विनाशाय तवैव ते ॥ ५ ॥ विमृश्य कुरु तन्वंगि कार्यं स्वपरयोर्बलम् ॥ अष्टादश भुजत्वात्त्वं गर्वं च कुरुषे मृषा ॥ ६ ॥ किं भुजैर्बहुभिर्व्यर्थैरायुधैः किं श्रमप्रदैः ॥ शुंभस्याग्रे सुराणां वै जेतुः समरशालिनः ॥ ७ ॥ ऐरावतकरच्छेत्तुर्दंतिदारणकारिणः ॥ जयिनः सुरसंघानां कार्यं कुरु मनोगतम् ॥ ८ ॥

पड़ता है जो तुमको सुबुद्धि प्रदान करैं, ऐसा पुरुष वा स्त्री कोई नहीं है ? देवताओंने तुम्हारे विनाशके लिये ही तुमको रणस्थलमें भेजा है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५ ॥ हे कृशांगि! अपना और दूसरेका बलाबल विचार कर कार्यमें प्रवृत्त होओ और यदि अपने अठारह बाहुद्वारा अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र चलाकर युद्धमें जय प्राप्त करूंगी मनमे इस प्रकार गर्व करती हो. वह अत्यन्त निष्फल है ॥ ६ ॥ क्योंकि वह सुरविजयी शुंभ जब संग्राम करनेमें प्रवृत्त होंगे तब तुम्हारी सब बाहु और आयुध उनका क्या करेंगे ? यह सब केवल वहनजनक परिश्रम मात्र होगा. किंतु उससे किसी फलसे प्राप्त होनेकी आशा नहीं करनी चाहिये ॥ ७ ॥ जिस वीरश्रेष्ठने ऐरावतकी सूण्डैं छेदन की हैं जिन्होंने हाथियोंके दांत उखाडे हैं और जिन्होंने सब देवताओंको पराजित किया है. तुम उन

शुम्भका अभिलषित कार्य करो ॥ ८ ॥ हे कांते ! तुम वृथा गर्विताके समान व्यवहार करती हो. हे विशालनयने ! मेरे प्रिय वचनोंका प्रतिपालन करो मेरे यह हित वचन सुननेसे तुम्हारा क्लेश दूर होकर सुखका उदय होगा, इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ९ ॥ जिन कार्योंके करनेसे क्लेश होता है. शास्त्रतत्त्वविशारद पंडितगण वह कार्य नहीं करते. वरन् वह सदा सुखदायक कार्यही करते हैं ॥ १० ॥ हे मधुर भाषिणी ! तुम चतुर हो. अतएव शुम्भने देवताओंको पीडित करके अपने महत् बलमें कितनी श्रीवृद्धि की है यह तुम प्रत्यक्ष देखो ॥ ११ ॥ और यदि तुम देवताओंकी सेनाको महत्तर अनुमान करती हो सो मिथ्या है. क्योंकि पंडितगण प्रत्यक्ष प्रमाण छोडकर कभी संदेह युक्त अनुमान कार्यमें प्रवृत्त नहीं होते हैं ॥ १२ ॥ समर दुर्जय शुम्भ देवताओंका परमशत्रु है, अतएव दानवपतिसे देवताओंने पीडित होकरही तुमको इस स्थानमें भेजा है ॥ १३ ॥ हे शुचिस्मिते ! तुम इसी कारण देवताओंके मधुर वचनोंसे

वृथा गर्वायसे कान्ते कुरु मे वचनं प्रियम् ॥ हितं तव विशालाक्षि सुखदं दुःखनाशनम् ॥ ९ ॥ दुःखदानि च कार्याणि त्याज्यानि दूरतो बुधः ॥ सुखदानि च सेव्यानि शास्त्रतत्त्वविशारदैः ॥ १० ॥ चतुराऽसि पिकालापे पश्य शुंभबलं महत् ॥ प्रत्यक्षं सुरसंघानां मर्दनेन महोदयम् ॥११॥ प्रत्यक्षं च परित्यज्य वृथैवानुमितिः किल ॥ संदेहसहिते कार्ये न विपश्चित्प्रवर्तते ॥ १२ ॥ शत्रुः सुराणां परमः शुंभः समर दुर्जयः ॥ तस्मात्त्वां प्रेरयत्यत्र देवा दैत्येशपीडिताः ॥ १३ ॥ तस्मात्तद्वचनैः स्निग्धैर्वञ्चिताऽसि शुचिस्मिते ॥ दुखाय तव देवानां शिक्षा स्वार्थस्य साधिका ॥१४॥ कार्यमित्रं परिक्षिप्य धर्ममित्रं समाश्रयेत् ॥ देवाः स्वार्थपराः कामं त्वामहं सत्यमब्रुवम् ॥ १५ ॥ भज शुंभं सुरेशानं जेतारं भुवनेश्वरम् ॥ चतुरं सुंदरं शूरं कामशास्त्रविशारदम् ॥ १६ ॥ ऐश्वर्यं सर्वलोकानां प्राप्स्यसे शुंभशासनात् ॥ निश्चयं परमं कृत्वा भर्तारं भज शोभनम् ॥ १७ ॥

वंचित हुई हो. देवताओंने अपने कार्य साधनकी अभिलाषासे तुमको क्लेश देनेके लियेही ऐसा उपदेश दिया है ॥ १४ ॥ कार्यवशसे जो मित्र हो उसको छोड़कर धर्मके कारण जो मित्र हो उसको ही आश्रय करना चाहिये देखो मैं तुमसे निश्चय कहता हूं कि देवता लोग अत्यन्त स्वार्थपरायण हैं. वह अपना कार्य साधन केरनके लियेही तुम्हारे परम मित्र हुए हैं ॥ १५ ॥ शुम्भ देवताओंको जीतकर त्रिभुवनके अधीश्वर हुए हैं विशेष कर वह शूर, सुन्दर, चतुर और कामशास्त्रमें विशारद हैं. इस कारण अब तुम उनकाही भजन करो ॥ १६ ॥ देखो त्रैलोक्यमें जो सब ऐश्वर्य हैं शुम्भके शासनसे वह तुम सब प्राप्त करोगी. अतएव तुम स्थिर निश्चय करके उसी सुशोभनभर्त्ता शुम्भका भजन करो ॥ १७ ॥

दे. भा. ॥८०॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! जगदम्बिका चण्डके इस प्रकार वचन सुन मेघके समान गंभीर स्वरसे गर्जन कर पुनर्वार कहने लगीं ॥ १८ ॥ रे जाल्म ! तू क्यों मिथ्या छलयुक्त वचन कहता है तू अभी चला जा विष्णु महादेव इत्यादि देवताओंको छोड़कर मैं शुम्भको किस लिये पति करूं ॥ १९ ॥ रे मूर्ख ! मेरा पतिसे कोई कार्य नहीं है अतएव किसीको भी पति बनानेका प्रयोजन नहीं है. मैं ही सब जीवोंकी स्वामिनी होकर इस अखिल ब्रह्माण्ड स्थित प्राणियोंका प्रतिपालन करती हूं, यह निश्चय कर ॥ २० ॥ मैंने पूर्वमें हजार हजार निशुम्भ व शुम्भको देखा और विनाश किया है एवं शतशत दैत्य दानवोंको शमनसदनमें भेजा है॥ २१ ॥ मेरे सामने युग युगमें सैकड़ों देवता विनष्ट हुए हैं. अब फिर यह सब दानवयूथ क्षयको प्राप्त होगा ॥ २२ ॥ अब दैत्योंका

व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा चांधस्य जगदंबिका ॥ मेघगंभीरनिनदं जगर्ज पुनरब्रवीत् ॥ १८ ॥ गच्छ जाल्म मृषा किं त्वं भाषसे वचकं वचः ॥ त्यक्त्वा हरिहरादींश्च शुंभं कस्माद्वजे पतिम् ॥ १९ ॥ न मे कश्चित्पतिः कार्यो न कार्यं पतिनासह ॥ स्वामिनी सर्वभूतानामहमेव निशामय ॥ २० ॥ शुंभा मे बहवो दृष्टा निशुंभाश्च सहस्रशः ॥ घातिताश्च मया पूर्वं शतशो दैत्यदानवाः ॥ २१ ॥ ममाग्रे देववृंदानि विनष्टानि युगेयुगे ॥ नाशं यास्यंति दैत्यानां यूथानि पुनरद्य वै ॥ २२ ॥ काल एवागतोऽस्त्यत्र दैत्य संहारकारकः ॥ वृथा त्वं कुरुषे यत्नं रक्षणायात्मसंसतेः ॥ २३ ॥ कुरु युद्धं वीरधर्मरक्षायै त्वं महामते ॥ मरणं भावि दुस्त्याज्यं यशो रक्ष्यं महात्मभिः ॥ २४ ॥ किं ते कार्यं निशुंभेन शुंभेन च दुरात्मना ॥ वीरधर्मं परं प्राप्य गच्छ स्वर्गं सुरालयम् ॥ २५ ॥ शुंभो निशुंभश्चैवान्ये ये चात्र तव बांधवाः ॥ सर्वे तवानुगाः पश्चादागमिष्यंति सांप्रतम् ॥ २६ ॥ क्रमशः सर्वदैत्यानां करिष्याम्यद्य संक्षयम् ॥ विषादं त्यज मंदात्मन्कुरु युद्धं विशांपते ॥ २७ ॥

संहारक काल आकर उपस्थित हुआ है. इस कारण तू अपने दलबलकी रक्षाके लिये अब क्यों यत्न करता है ॥ २३ ॥ तू निर्बुद्धि विदित नहीं होता अतएव वीर धर्मकी रक्षाके लिये अब युद्धमें प्रवृत्त ही मरना अवश्यही होगा. कोई कभी उससे रक्षा नहीं पावेगा; अतएव महात्माओंके यशकी रक्षा करनाही सब भांतिसे कर्त्तव्य है ॥ २४ ॥ दुरात्मा शुम्भ और निशुम्भसे तेरा क्या प्रयोजन है ! अब श्रेष्ठ वीरधर्मका अवलम्बन करके स्वर्गमें जा ॥२५॥ शुंभ निशुम्भ और तेरे अन्यान्य बांधव सब तेरे अनुगामी होकर अभी इस स्थानमें आवेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ हे मूढ ! आज मैं क्रमशः सब दानवोंका क्षय करूंगी, अतएव तू विषाद छोड़कर युद्धमें प्रवृत्त हो ॥ २७ ॥

मैं अभी तुझे और तेरे भाईको मारूंगी, फिर मदमत्त रक्तबीज निशुम्भ शुम्भ ॥ २८ ॥ और अन्यान्य दानवोंको समरस्थलमें मारकर अभीष्ट स्थानको चली जाऊंगी, अब यदि तेरी इच्छा हो तो रह, नहीं तो भाग जा ॥ २९ ॥ तू वृथा पुष्ट हुआ है क्योंकि युद्ध करनेसे डरता है. अब कातरपुरुषोंके प्रिय निष्फल वचन कहनेसे क्या होगा ? मेरे वचनानुसार यह सब वृथा वचन छोड़. अस्त्रहरण कर मेरे संग युद्धमें प्रवृत्त हो ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! बलदर्पित चण्ड और मुण्डने देवीके इस प्रकार वचनोंसे उत्साहित और कुपित होकर अत्यन्त वेगसे घोर ज्यशब्द किया ॥ ३१ ॥ तब देवीने भी ऐसी शंखध्वनि करी कि उस शब्दसे दशों दिशा परिपूर्ण हो गई. इसी अवसरमें बलवान् सिंहनेभी कुपित होकर घोरतर सिंहनाद किया ॥ ३२ ॥ उस शब्दको सुनकर इन्द्र

त्वामहं निहनिष्यामि भ्रातरं तव सांप्रतम् ॥ ततः शुंभं निशुंभं च रक्तबीजं मदोत्कटम् ॥ २८ ॥ अन्यांश्च दानवान्सर्वान्हत्वाऽहं समरांगणे ॥ गमिष्यामि यथास्थानं तिष्ठ वा गच्छ वा द्रुतम् ॥ २९ ॥ गृहाणास्त्रं वृथा पुष्ट कुरु युद्धं मयाऽधुना ॥ किं जल्पसि मृषा वाक्यं सर्वथा कातरप्रियम् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ तयेत्थं प्रेरितौ दैत्यौ चण्डमुण्डौ क्रुधाऽन्वितौ ॥ ज्याशब्दं तरसा घोरं चक्रतुर्बलदर्पितौ ॥ ३१ ॥ साऽपि शंखस्वनं चक्रे पूरयन्ती दिशोदश ॥ सिंहोऽपि कुपितस्तावन्नादं समकरोद्बली ॥ ३२ ॥ तेन नादेन शक्राद्या जहृषुरमरास्तदा ॥ मुनयो यक्षगन्धर्वाः सिद्धाः साध्याश्च किन्नराः ॥ ३३ ॥ युद्धं परस्परं तत्र जातंकातरभीतिदम् ॥ चंडिका चण्डयोस्तीव्रं बाणखड्गगदादिभिः ॥ ३४ ॥ चंडमुक्तान्छरान्देवी चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ मुमोच पुनरुग्रा सा चंडिका पन्नगानिव ॥ ३५ ॥ गगनं छादितं तत्र संग्रामे विशिखैस्तदा ॥ शलभैरिव मेघान्ते कर्षकाणां भयप्रदैः ॥ ३६ ॥ मुण्डोऽपि सैनिकैः सार्धं पपात तरसा रणे ॥ मुमोच बाणवृष्टिं वै क्रुद्धः परमदारुणः ॥ ३७ ॥

इत्यादि देवतागण, मुनिगण, यक्षगण, सिद्धगण, साध्यगण और किन्नरगण आनन्दित हुए ॥ ३३ ॥ तब बाण, खड्ग और गदासे चण्डिका और चंडका परस्पर कातर पुरुषोंको भयावह घोर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ॥ ३४ ॥ चंडिका देवीने उग्रमूर्ति हो निशित बाणोंसे चण्डके छोडे हुए सब बाणोंको खंड खंडकर तत्काल सर्पके समान अन्यान्य बाण उसपर छोडे ॥ ३५ ॥ तब किसानोंको भयावह शलभ (तीडी) जिस प्रकार मेघमंडलको ढक लेते हैं. इसी प्रकार रणस्थलमें परस्परके छूटे हुए बाणोंसे आकाशमंडल ढक गया ॥ ३६ ॥ इसी अवसरमें अत्यंत भयंकर मुण्डभी सेनासहित समरमें उपस्थित हुआ और क्रोधसे अधीर होकर बाणोंकी वर्षा कहने लगा ॥ ३७ ॥

उस महत् शरजालको देखकर अम्बिका अत्यन्त कुपित हुई. कोपके कारण उनका वदन मंडल कृष्णवर्ण हो गया ॥ ३८ ॥ भ्रुकुटि द्वार कुटिल और कृष्णवर्ण एवं नेत्र कदली पुष्पके समान लालवर्ण हो गये. इसी अवसरमें उनके ललाट फलकमें सहसा काली निकली ॥ ३९ ॥ उन क्रूर प्रकृति घोराकृति देवीके परिधानवस्त्र व्याघ्राजिनरचित, उत्तरीय वस्त्र गजचर्म निर्मित, जंघा विशाल, उदर शुष्क वापीके समान गंभीर ॥ ४० ॥ वदन विस्तीर्ण, जीभ लाल, गलेमें मुंडमाला, हाथमें खड्ग पाश और खट्वांग, अधिक क्या ? उनकी मूर्ति कालरात्रिके समान अत्यन्त रौद्र थी ॥ ४१ ॥ वह देवी वारंवार जीभ चलाती हुई अत्यन्त भीषणमूर्ति धारण कर पुरुषों को भयप्रदान करने लगीं और महावेगसे असुरोंकी सेनामें प्रविष्ट हो उनको वध करनेमें प्रवृत्त हुईं ॥ ४२ ॥ उसकाल वह क्रोधित

बाणजालं महद्दृष्ट्वा क्रुद्ध तत्रांबिकाभृशम् ॥ कोपेन वदनं तस्या बभूव घनसन्निभम् ॥ ३८ ॥ कदलीपुष्पनेत्रं च भ्रुकुटीकुटिलं तदा ॥ निष्क्रांता च तदा काली ललाटफलकाद्द्रुतम् ॥ ३९ ॥ व्याघ्रचर्मांबरा क्रूरा गजचर्मोत्तरीयका ॥ मुंडमालाधरा घोरा शुष्कवापीसमोदरा ॥ ४० ॥ खड्गपाशधराऽतीव भीषणा भयदायिनी ॥ खट्वांगधारिणी रौद्रा कालरात्रिरिवापरा ॥ ४१ ॥ विस्तीर्णवदना जिह्वां चालयंतीं मुहुर्मुहुः ॥ विस्तारजघना वेगाज्जघानासुरसैनिकान् ॥ ४२ ॥ करे कृत्वा महावीरास्तरसा रुषान्विता ॥ मुखे चिक्षेप दैतेयान्पिपेष दशनैः शनैः ॥ ४३ ॥ गजान्घंटान्वितान्हस्ते गृहीत्वा निदधौ मुखे ॥ सारोहान्भक्षयित्वाऽऽजौ साऽट्टहासं चकार ह ॥ ४४ ॥ तथैव तुरगानुष्ट्रांस्तथा सारथिभिः सह ॥ निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयत्यतिभैरवम् ॥ ४५ ॥ हन्यमानं बलं प्रेक्ष्य चंडमुंडौ महासुरौ ॥ छादयामासतुर्देवीं बाणाऽऽसारैरनंतरैः ॥ ४६ ॥ चंडश्चंडकरच्छायं चक्रं चक्रधरायुधम् ॥ चिक्षेप तरसा देवीं ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥

हो वेगसहित महावीर दानवोंको हाथसे पकड़ पकड़ मुखमें डालती हुई दांतोंसे क्रमानुसार चर्वण करने लगीं ॥ ४३ ॥ वह रणस्थलमें बाहुबलसे घंटोंके सहित हाथियोंको पकड़कर मुखमें डालने लगी और फिर आरोही (सवार) के सहित उनको भक्षण करके अट्टहास किया ॥ ४४ ॥ इस प्रकार घोडे ऊंट और सारथियोंके सहित रथोंको मुखमें डालकर दांतोंके द्वारा भयंकर रीतिसे चाबने लगीं ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! तब महाअसुर चण्ड और मुण्डने अपनी सेनाको नष्ट होता हुआ देख निरंतर बाणोंकी वर्षाकर देवीको ढक दिया ॥ ४६ ॥ चण्ड सूर्यके समान प्रभायुक्त सुदर्शनचक्रके सदृश चक्र ले बलपूर्वक देवीपर चलाय वारंवार गर्जन करने लगा ॥ ४७ ॥

कालीने उसको गर्जता और रविके समान दीप्तिशाली चक्रको आता हुआ देखकर केवल एकही बाणसे उस सुदर्शनके समान प्रभावाले चक्रको काट डाला ॥ ४८ ॥ और शिलाशाणित तीक्ष्णबाणोंसे उसपर प्रहार किया तब वीरवर चण्ड देवीके बाणोंसे अत्यन्त पीडित और मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिर गया ॥ ४९ ॥ महाबल मुंड भाईको गिरता हुआ देखकर दुःखसे अत्यन्त कातर हुआ और फिर तत्काल क्रोधित होकर देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ५० ॥ तब चण्डिकाने बलपूर्वक ईषिकास्त्र निक्षेप करके मुंडके छोडे हुए संपूर्ण दारुण बाणोंको क्षणमात्रमें तिल तिल कर डाला ॥ ५१ ॥ और अर्धचन्द्राकार बाणसे उसपर फिर प्रहार किया तब महाबलवान् असुर मदका गर्व परित्याग कर पृथ्वीमें गिरगया ॥ ५२ ॥ मुंडके गिरते ही दानवोंकी सेनामें महा

नदंतं वीक्ष्य तं काली रथांगं च रविप्रभम् ॥ बाणेनैकेन चिच्छेद सुप्रभं तत्सुदर्शनम् ॥ ४८ ॥ तं जघान शरैस्तीक्ष्णैश्चंडं चंडी शिलाशितैः ॥ मूर्छितोऽसौ पपातोर्व्यां देवीबाणार्दितो भृशम् ॥ ४९ ॥ पतितं भ्रातरं वीक्ष्य मुंडो दुःखार्दितस्तदा ॥ चकार शरवृष्टिं च कालिकोपरि कोपतः ॥ ५० ॥ चंडिका मुंडनिर्मुक्तां शरवृष्टिं सुदारुणाम् ॥ ईषिकास्त्रैर्बलान्मुक्तैश्चकार तिलशः क्षणात् ॥ ५१ ॥ अर्धचंद्रेण बाणेन ताडयामास तं पुनः ॥ पतितोऽसौ महावीर्यो मेदिन्यां मदवर्जितः ॥ ५२ ॥ हाहाकारो महानासीद्दानवानां बले तदा ॥ जहर्षुरमराः सर्वे गगनस्था गतव्यथाः ॥ ५३ ॥ विहाय मूर्च्छां चंडस्तु संगृह्य महतीं गदाम् ॥ तरसा ताडयामास कालिकां दक्षिणे भुजे ॥ ५४ ॥ वंचयित्वा गदाघातं तं बबंध महासुरम् ॥ तरसा बाणपाशेन मंत्रमुक्तेन कालिका ॥ ५५ ॥ उत्थितस्तु तदा मुंडो बद्धं दृष्ट्वाऽनुजं बलात् ॥ आजगाम सुसन्नद्धः शक्तिं कृत्वा करे दृढाम् ॥ ५६ ॥ आगच्छंतं तदा काली दानवं वीक्ष्य सत्वरम् ॥ बबंध तरसा तं तु द्वितीयं भ्रातरं भृशम् ॥ ५७ ॥ गृहीत्वा तौ महावीर्यौ चंडमुंडौ शशाविव ॥ कुर्वती विपुलं हासमाजगामांबिकां प्रति ॥ ५८ ॥

हाहाकार शब्द हुआ आकाशमें टिके हुए देवता लोग उस शब्दको सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए ॥ ५३ ॥ इसी अवसरमें चण्डने मूर्छासे जाग गुर्वी गदा ग्रहण कर कालिकाकी दाहिनी भुजामें वेगसहित प्रहार किया ॥ ५४ ॥ कालिकाने गदाघातको विफल करके तत्काल मंत्रपूत पाशास्त्रसे महाअसुरको बांध लिया ॥ ५५ ॥ किंतु मुंड उठतेही अनुज चंडकी बंधनअवस्था देख वर्म्म (बख्तर) द्वारा सुरक्षित हो दृढशक्ति हाथमें लेकर आया ॥ ५६ ॥ उस दानवको आता हुआ देखते ही कालीने तत्काल दूसरे भ्राता मुंडको भी दृढ रूपसे बाँध लिया ॥ ५७ ॥ तब काली उन महाबलवान् चण्ड और मुंडको शशकके समान ग्रहण करके विपुलहास्य करते करते अम्बिकाके निकट आई ॥ ५८ ॥

कालिकाने अम्बिकाके निकट जाकर उनसे कहा मैं रणयज्ञके लिये रणदुर्जय दानवरूप इन प्रशस्त दोनों पशुओंको लाई हूं आप इनको ग्रहण कीजिये ॥ ५९ ॥ वृकयुगलके समान उन दोनों दानवोंको आया देख अम्बिकाने कालिकासे मधुर वचन द्वारा कहा ॥ ६० ॥ हे रणप्रिये तुम अतीव चतुर हो अतएव इनकी हिंसा मत करो और इनको छोड़ना भी उचित नहीं है किंतु मेरे वचनका तात्पर्य विचारकर जिससे देवताओंका कार्य भलीभांति सिद्ध हो वह तुमको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ६१ ॥ श्री व्यासजी बोले हे महाराज ! अम्बिकाके इस प्रकार वचन सुन कालिकाने उससे फिर कहा हे देवि ! अतिविख्यात इस युद्धयज्ञमें खड्गरूपी यूप प्रतिष्ठित रहता है ॥ ६२ ॥ इनको उससे ही इस प्रकार मारूँगी कि उसमें हिंसा नहीं होगी अर्थात् यज्ञस्थलमें वध करनेसे वह हिंसा

आगत्य तामथोवाच गृहाणेमौ पशू प्रिये ॥ रणयज्ञार्थमानीतौ दानवौ रणदुर्जयौ॥ ५९ ॥ तावानीतौ तदा वीक्ष्य चंडिकां तौ वृकाविव ॥ अंबिका कालिकां प्राह माधुरीसंयुतं वचः ॥६०॥ वधं मा कुरु मा मुंच चतुराऽसि रणप्रिये ॥ देवानां कार्यसंसिद्धिः कर्तव्या तरसा त्वया ॥ ६१ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा कालिका प्राह तां पुनः ॥ युद्धयज्ञेऽतिविख्याते खड्गयूपे प्रतिष्ठिते ॥ ६२ ॥ आलंभं च करिष्यामि यथा हिंसा न जायते ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी खड्गेन शिरसी तयोः ॥ ६३ ॥ चकर्त तरसा काली पपौ च रुधिरं मुदा ॥ एवं दैत्यो हतौ दृष्ट्वा मुदितोवाच चांबिका ॥ ६४ ॥ कृतं कार्यं सुराणां ते ददाम्यद्य वरं शुभम् ॥ चण्डमुण्डौ हतौ यस्मात्तस्मात्ते नाम कालिके ॥ ६५ ॥ चामुण्डेति सुविख्यातं भविष्यति धरातले ॥ इति श्रीदे० भ० पञ्चमस्कंधे चंडमुण्डवधे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ हतौ तौ दानवौ दृष्ट्वा हतशेषाश्च सैनिकाः ॥ पलायनं ततः कृत्वा जग्मुः सर्वे नृपं प्रति ॥ १ ॥

हिंसामें नहीं गिनी जाती. इस कारण रणयज्ञमें पशुविवेचना कर देवताओंकी कार्य सिद्धिके लिये इनकी बलि दूंगी. यह कहते ही वह कालिका देवी खड्ग प्रहारसे उनका शिर काटकर ॥ ६३ ॥ तत्काल आनन्द सहित रुधिरपान करने लगी इस प्रकार दोनों दानवोंको निहत देखकर अम्बिका देवी प्रीति सहित कहने लगी॥ ६४ ॥ हे कालिके ! तुमने देवताओंका कार्य संपादन किया है इस कारण मैं तुमको एक उत्तम वर देती हूं हे कालिके ! तुमने चण्डमुण्डको निहत किया है. इसलिये ॥ ६५ ॥ इस पृथ्वीमें तुम्हारा नाम चामुण्डा विख्यात होगा ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! चंडमुंडके निहत होनेपर मृत्युसे बचे हुए सैनिक लोग भागकर शुंभके निकट जाने लगे ॥ १ ॥

उनमें शरप्रहारसे किसीके अंग क्षत विक्षत, किसीके बाहु छिन्न और किसीका देह रुधिरधारामें डूबा हुआ था, वे ऐसी अवस्थामें रुदन करते करते नगरकी ओर जाने लगे ॥ २ ॥ वे दानवपतिके समीप जाय बारंबार बुम्बाशब्द (कर मुख संयोगसे विपद्सूचक शब्द) करते करते उनसे कहने लगे हे महाराज ! अद्य कालिका सबका ही भक्षण करती है अतएव आप हमारी रक्षा कीजिय रक्षा कीजिये ॥ ३ ॥ उस कालीने देवताओंको पीडित करनेवाले महावीर चंडमुंडको मार डाला है और प्रायः सबही सैनिकोंका भक्षण किया है हमलोग यह देख भयसे कातर हो रणसे भागकर चले आये हैं ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! कालिकाने उस रणस्थानको हाथी, घोड़े, ऊंट, वीर और पैदलोंके गिरे हुए शरीरसे भयावह कर दिया है ॥ ५ ॥ उस संग्रामस्थलमें शोणितधारा प्रवाहित होकर एक नदी होगई है. सेनाका मांसही उस नदीका प्रचुर पंक, केशकलाप शैवाल, भग्नरथचक्रही आवर्त्त ॥ ६ ॥ छिन्नबाहु और चरण मत्स्यकुल और मस्तक

भिन्नांगा विशिखैः केचित्केचिच्छिन्नकरास्तथा ॥ रुधिरस्रावदेहाश्च रुदंतोऽभिययुः परे ॥ २ ॥ गत्वा दैत्यपतिं सर्वे चक्रुर्बुंबारवं मुहुः ॥ रक्ष रक्ष महाराज भक्षयत्यद्य कालिका ॥ ३ ॥ तया हतौ महावीरौ चण्डमुण्डौ सुरार्दनौ ॥ भक्षिताः सैनिकाः सर्वे वयं भग्ना भयातुराः ॥ ४ ॥ भीतिदं च रणस्थानं कृतं कालिकया प्रभो ॥ पातितैर्गजवीराश्वैर्दासेरकपदातिभिः ॥ ५ ॥ शौणितौघ वहा कुल्या कृता मांसातिकर्दमा ॥ केशशैवालिनी भग्नरथचक्रविराजिता ॥ ६ ॥ भिन्नबाह्वादिमत्स्याढ्या शीर्षतुंबीफलान्विता ॥ भयदा कातराणां वै शूराणां मोदवर्धिनी ॥ ७ ॥ कुलं रक्ष महाराज पातालं गच्छ सत्वरम् ॥ क्रुद्धा देवी क्षयं सद्यः करिष्यति न संशयः ॥ ८ ॥ सिंहोऽपि भक्षयत्याजौ दानवान्दनुजेश्वर ॥ तथैव कालिका देवी हंति बाणैरनेकधा ॥ ९ ॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र मरणाय मृषा मतिम् ॥ करोषि सहितो भ्रात्रा शुंभेन कुपिताशयः ॥ १० ॥ किं करिष्यति नार्येषा क्रूरा कुलविनाशिनी ॥ यस्याहेतोर्महाराज हंतुमिच्छसि बांधवान् ॥ ११ ॥

सब तुम्बीफल हैं, हे राजन् ! इस समय इस नदीके देखनेसे कातर दैत्योंको भयसंचार और देवताओंको आनन्दवर्द्धन होता है ॥ ७ ॥ हे महाराज अभी ! पातालमें भागकर कुलकी रक्षा कीजिये, देवी कुपित होकर अभी दानवोंका क्षय कर डालेगी इसमें संदेह नहीं है ॥ ८ ॥ हे दनुजेश्वर ! अधिक और क्या कहूं ? वह सिंहभी समरस्थलमें दानवोंका भक्षण करता है और कालिका देवी बाणोंसे असंख्य दानवोंको निहत करती हैं ॥ ९ ॥ अतएव हे राजेंद्र ! आप मनमें क्या आशा करते हैं, हमको बोध होता है आप सहोदर निशुम्भके सहित निरर्थक मरनेके लिये वासना करते हैं ॥ १० ॥ और यदि आपकी जय हो तो आप जिसके लिये बांधवोंका संहार करनेकी वासनाको करते हैं, वह क्रूर प्रकृति कुलविनाशिनी नारी आपका क्या मंगल करेगी ॥ ११ ॥

हे महाराज ! इस लोकमें जय और पराजय दैवके आधीन है, इस कारण बुद्धिमान् पुरुष सामान्य प्रयोजन साधनके लिये महद्दुःखजनक कार्यमें प्रवृत्त नहीं होते ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! यह जगन्मंडल जिसके आधीन है उस विधाताका विचित्र कार्य अवलोकन कीजिये क्या आश्चर्य है ? उस एकमात्र स्त्रीने सब दानवोंको मार डाला ॥ १३ ॥ हे महाराज ! आपने सेनासहित लोकपालोंको भी पराजित किया है, किंतु अब वह बाला अकेली होकर भी आपको युद्धके लिये बुलाती है, यह अति आश्चर्यकी बात है ॥ १४ ॥ हे महाराज ! आपने पूर्वकालके समय देवताओंके वासस्थान परम पवित्र पुष्करतीर्थमें तपस्या की थी सर्वलोक पितामह ब्रह्माजीने वर देनेके लिये उस स्थानमें उपस्थित होकर ॥ १५ ॥ आपसे वर मांगनेके लिये कहा था तब आपने ब्रह्माजीसे अमर होनेका वर मांगा था ॥ १६ ॥ किन्तु जब ब्रह्माजीने अमर होनेका वर देना अस्वीकार किया तब आपने उनसे देव, दानव ,मनुष्य, नाग, किन्नर, यक्ष

दैवाधीनौ महाराज लोके जयपराजयौ ॥ अल्पार्थाय महद्दुःखं बुद्धिमान्न प्रकल्पयेत् ॥१२॥ चित्रं पश्य विधेः कर्म यदधीनं जगत्प्रभो ॥ निहता राक्षसाः सर्वे स्त्रिया पश्यैकयाऽनया ॥ १३ ॥ जेता त्वं लोकपालानां सैन्ययुक्तो हि सांप्रतम् ॥ एका प्रार्थयते बाला युद्धायेति सुसंभ्रमः ॥ १४ ॥ पुरा त्वया तपस्तप्तं पुष्करे देवतायने ॥ वरदानाय संप्राप्तो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ १५ ॥ धात्रोक्तस्त्वं महाराज वरं वरय सुव्रत ॥ तदा त्वया ऽमरत्वं च प्रार्थितं ब्रह्मणः किल ॥ १६ ॥ देवदैत्यमनुष्येभ्यो न भवेन्मरणं मम ॥ सर्पकिन्नरयक्षेभ्यः पुंल्लिंग वाचकादपि ॥१७॥ तस्मात्त्वां हंतुकामैषा प्राप्ता योषिद्वरा प्रभो ॥ युद्धं माकुरु राजेंद्र विचार्यैवं धियाऽधुना ॥१८॥ देवीह्येषा महामाया प्रकृतिः परमा मता ॥ कल्पान्तकाले राजेंद्र सर्वसंहारकारिणी ॥ १९ ॥ उत्पादयित्री लोकानां देवानामीश्वरी शुभा ॥ त्रिगुणा तामसी देवीसर्वशक्तिसमन्विता ॥ २० ॥ अजय्या चाक्षया नित्या सर्वज्ञा च सदोदिता ॥ वेदमाता च गायत्री संध्या सर्वसुरालया ॥ २१ ॥

इत्यादि किसी पुरुषसे मृत्यु न हो, यह वर ग्रहण किया था ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! इसलिये हीबोध होता है कि, आपको मारनेकी इच्छासे यह ललना आई है हे दानवेन्द्र ! आप एकाग्र चित्तसे ऐसा विचार कर अब इस युद्धसे विरत हूजिये ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र ! यह देवीही महामाया परमा प्रकृति हैं अतएव यही कल्पान्तके समयमें सब जगत्का संहार करती हैं ॥ १९ ॥ इन्हीं शुभदायिनी देवीने सब लोक और देवताओंको उत्पन्न किया है यही सबकी अधीश्वरी और रक्षा करनेवाली हैं एवं यही तामसी अर्थात् संहार करनेवाली हैं फलतः यह देवीही त्रिगुणा और सर्वशक्ति समन्विता हैं ॥ २० ॥ यह देवीही अजेया, अक्षरा, नित्या, संध्यास्वरूप और देवताओंका आश्रयस्वरूप हैं. यही वेदमाता गायत्रीस्वरूप और अधिक क्या यही सदा प्रकाशमान हो सब विषयही

जीवोंके ज्ञानगोचर करती हैं ॥ २१ ॥ यही अव्यय निर्गुण होकर कभी सगुण होती हैं, यही स्वयंसिद्धिस्वरूप और आराधित होकर सब लोकोंको सिद्धि प्रदान करती हैं, यही आनन्दमयी होकर भक्तोंको आनंद देती हैं. अधिक क्या कहैं, यह गौरीही देवताओंको अभय देनेवाली हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ हे महाराज ! आप इन सब बातोंको जानकर इनसे वैरभाव छोड़ दीजिये हे राजेन्द्र ! आप इनके शरणागत हूजिये तो देवी आपकी अवश्यही रक्षा करेगी ॥ २३ ॥ आप उनके आज्ञाकारी होकर अपने कुलकी रक्षा कीजिये तो मृत्युसे बचे हुए दानवलोग चिरजीवनलाभ कर सकेंगे ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! सुरबलविमर्दन शुंभ उनके इस प्रकार वचन सुन वीरोचित वचनोंसे यथार्थ वचन कहने लगा ॥ २५ ॥ शुंभने कहा रे मूर्खगण ! तुम मौन हो रहो तुमको जीवनकी आशा बलवती है. इसी कारण रणस्थलसे भाग आये हो; अतएव तुम अभी पातालमें चले जाओ ॥ २६ ॥ यह जगत् दैवके आधीन है. सुतरां

निर्गुणा सगुणा सिद्धा सर्वसिद्धिप्रदाऽव्ययाः ॥ आनंदाऽऽनंददा गौरी देवानामभयप्रदा ॥२२॥ एवं ज्ञात्वा महाराज वैरभावंत्यजानया ॥ शरणं व्रज राजेंद्र देवी त्वां पालयिष्यति ॥ २३ ॥ आज्ञाकरो भवेतस्याः संजीवय निजं कुलम् ॥ हतशेषाश्च ये दैत्यास्ते भवंतु चिरायुषः ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा शुंभः सुरबलार्दनः ॥ उवाच वचनं तथ्यं वीरवर्यगुणान्वितम् ॥ २५ ॥ शुंभ उवाच ॥ मानं कुर्वंतु भो मंदा यूयं भग्ना रणाजिरात् ॥ शीघ्रं गच्छत पातालं जीविताशा बलीयसी ॥ २६ ॥ दैवाधीनं जगत्सर्वं का चिंताऽत्र जये मम ॥ देवास्तथैव ब्रह्माद्या दैवाधीनं वयं यथा ॥ २७ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रोऽयं यमोऽग्निर्वरुणस्तथा ॥ सूर्यश्चंद्रस्तथा शक्रः सर्वे दैववशाः किल ॥ २८ ॥ का चिंता तर्हि मे मंदा यद्भावितद्भविष्यति ॥ उद्यमस्तादृशो भूयाद्यादृशी भवितव्यता ॥ २९ ॥ सर्वथैवं विचार्यैव न शोचंति बुधाः क्वचित् ॥ स्वधर्मं न त्यजंतीह ज्ञानिनो मरणाद्भयात् ॥ ३० ॥ सुखं दुःखं तथैवायुर्जीवितं मरणं नृणाम् ॥ काले भवति संप्राप्ते सर्वथा दैवनिर्मितम् ॥३१॥ ब्रह्मा पतति काले स्वे विष्णुश्च पार्वतीपतिः ॥ नाशं गच्छन्त्यायुषोंऽते सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ३२ ॥

मुझको जयके विषयमें क्या चिन्ता है ? ब्रह्मादि देवता भी जिस प्रकार दैवके आधीन हैं हम भी उसी प्रकार दैवके आधीन हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्र और शक्र सबही दैवके नितान्त वशीभूत हैं ॥ २८ ॥ रे मूर्खगण ! जो होनेवाला है वह अवश्य होगा जिस प्रकार भवितव्यता है इस लोकमें उसी प्रकार उद्यम होता है अतएव मुझको उस विषयमें चिन्ता करनेका क्या प्रयोजन है ॥ २९ ॥ पण्डित लोग इस प्रकार विचार करके ही कभी शोक नहीं करते विशेष कर ज्ञानीलोग मरनेके भयसे इस लोकमें स्वधर्म परित्याग करना स्वीकार नहीं करते ॥ ३० ॥ जीवोंका सुख दुःख आयु जीवन और मरणकाल प्राप्त होनेपर ही दैवकर्तृक विहित होता है ॥ ३१ ॥ क्योंकि स्वीयकालका अवसान होनेपर ब्रह्मा, विष्णु और पार्वतीपति महादेवका भी पतन

होता है आयुके अवसानमें इन्द्र इत्यादि सब देवता भी नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार मैं भी भलीभांति कालके वशीभूत हूं अतएव इस समय स्वधर्म पालन करके जय अथवा विनाशको प्राप्त हूंगा इसमें संशय क्या है? ॥ ३३ ॥ यह अबला इच्छानुसार मुझको युद्धके लिये बुलाती है अतएव मैं भाग कर किस प्रकार शत शत वर्ष जीवन धारण करनेमें समर्थ हूंगा ? ॥ ३४ ॥ मैं आज संग्राम करूंगा जो होनहार है सो हो इसमें जय हो वा मृत्यु ही हो मैं दोनों ही स्वीकार करूंगा ॥ ३५ ॥ उद्यमवादी पण्डितगण दैवको मिथ्या कहते हैं जो उनके वचनका सार मर्म जान सकते हैं वही उनके वचनकी युक्ति संगत जानते हैं ॥ ३६ ॥ उद्यमके विना कभी मनोरथ सिद्ध नहीं होता, कातर मनुष्य जो होनेवाला है वह अवश्य होगा, इस प्रकार कल्पना करते हैं ॥ ३७ ॥ मन्दबुद्धि मनुष्यही अदृष्टको बलवान् कहते हैं किन्तु पण्डित लोग नहीं कहते, अदृष्ट है वा नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि जो अदृष्ट अदृश्य है वह

तथाऽहमपि कालस्य वशगः सर्वथाऽधुना ॥ नाशं जयं वा गंतास्मि स्वधर्मपरिपालनात् ॥ ३३ ॥ आहूतोऽप्यनया कामं युद्धायाबलया किल ॥ कथं पलायनपरो जीवेयं शरदां शतम् ॥ ३४ ॥ करिष्याम्यद्य संग्रामं यद्भावि तद्भवत्विह ॥ जयो वा मरणं वाऽपि स्वीकरोमि यथा तथा ॥ ३५ ॥ दैवं मिथ्येति विद्वांसो वदंत्युद्यमवादिनः ॥युक्तियुक्तं वचस्तेषां ये जानंत्यभिभाषितम् ॥ ३६ ॥ उद्यमेन विना कामं न सिध्यंति मनोरथाः ॥ कातरा एव जल्पंति यद्भव्यं तद्भविष्यति ॥ ३७ ॥ अदृष्टं बलवन्मूढाः प्रवदंति न पंडिताः ॥ प्रमाणं तस्य सत्त्वे किमदृश्यं दृश्यते कथम् ॥ ३८ ॥ अदृष्टं क्वापि दृष्टं स्यादेषा मूर्खविभीषिका ॥ अवलंबं विनैवैषा दुःखे चित्तस्य धारणा ॥३९॥ चक्रीसमीपे संविष्टा संस्थिता पिष्टकारिणी ॥ उद्यमेन विना पिष्टं न भवत्येव सर्वथा ॥ ४० ॥ उद्यमे च कृते कार्यं सिद्धिं यात्येव सर्वथा ॥ कदाचित्तस्य न्यूनत्वे कार्यं नैव भवेदपि ॥ ४१ ॥ देशं कालं चविज्ञाय स्वबलं शत्रुजं बलम् ॥ कृतं कार्यं भवत्येव बृहस्पतिवचो यथा ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ इति निश्चित्य दैत्येंद्रो रक्तबीजं महासुरम् ॥ प्रेषयामास संग्रामे सैन्येन महता वृतम् ॥ ४३ ॥

किस प्रकार दृश्य होगा ? ॥ ३८ ॥ अदृष्ट क्या कभी दिखाई नहीं दिया है ? यह मूर्ख लोगोंकी विभीषिका मात्र है सुतरां यह अज्ञ मनुष्योंकी दुःखावस्थामें अवलम्बनके अतिरिक्त चित्त धारणका उपायमात्र है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३९ ॥ चक्कीके समीप रहनेपर भी कोई वस्तु पुरुषके उद्यम विना किसी प्रकार नहीं पिस सकती ॥ ४० ॥ अतएव कार्यानुरूप उद्यम करनेसे वह कार्य अवश्यही सिद्ध होता है कार्यकी अपेक्षा यदि उद्यम अल्प हो तो वह कार्य कभी सम्पन्न नहीं होता ॥४१॥ देश, काल, शत्रु और अपने बलको भलीभांति जानकर कार्य करनेसे वह सिद्ध होता है यह बात बृहस्पतिने कही है ॥४२॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! शुंभने इस प्रकार निश्चय कर बहुतसी सेना सहित महावीर रक्तबीजको संग्राम स्थलमें भेजनेके लिये उससे कहा ॥ ४३ ॥

शुम्भ बोला हे रक्तबीज ! तुम अति बलवान् हो इस कारण तुम्हीं समर स्थलमें जाओ । हे महाभाग ! वहां जाकर तुम्हारा जैसा बल है उसीके अनुसार युद्ध करो ॥ ४४ ॥ रक्तबीज बोला कि, हे महाराज ! आप इस विषयमें किंचिन्मात्र भी चिन्ता न कीजिये मैं निःसन्देह उसको मारूंगा वा आपके वशमें कर दूंगा ॥ ४५ ॥ मेरी युद्ध चतुरता आप देखिये वह सुप्रिया बाला अति सामान्य है मैं इसको बल सहित अभी जीतकर आपकी दासी कर दूंगा ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले हे कुरुश्रेष्ठ ! महावीर रक्तबीजने यह कहकर अपनी सेना सहित रथमें चढ रणमें प्रस्थान किया ॥ ४७ ॥ हाथी, घोड़े, रथ ओर पैदल इस चतुरङ्गिणी सेनामें परिवेष्टित हो रथमें चढ शैलपर बैठी हुई देवीसे युद्धको नगरसे निकला ॥४८॥ अनन्तर देवीने उसको आया देखकर शंखध्वनि

शुंभ उवाच ॥ रक्तबीज महाबाहो गच्छत्वं समरांगणे ॥ कुरु युद्धं महाभाग यथा ते बलमाहितम् ॥४४॥ रक्तबीज उवाच ॥ महाराज न ते कार्या चिंता स्वल्पतराऽपि वा ॥ अहमेनां हनिष्यामि करिष्यामि वशे तव ॥४५॥ पश्य मे युद्धचातुर्यं क्वेयं बाला सुरप्रिया ॥ दासीं तेऽहं करिष्यामि जित्वेमां समरे बलात् ॥ ४६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याभाष्यकुरुश्रेष्ठ रक्तबीजो महासुरः ॥ जगाम रथमारुह्य स्वसैन्य परिवारितः ॥ ४७ ॥ हस्त्यश्वरथपादातवृंदैश्चपरिवेष्टितः ॥ निर्जगाम रथारूढो देवीं शैलोपरि स्थिताम् ॥ ४८ ॥ तमागतं समालोक्य देवी शंखमवादयत् ॥ भयदं सर्वदैत्यानां देवानां मोदवर्धनम् ॥४९॥ श्रुत्वा शंखस्वनं चोग्रं रक्तबीजोऽतिवेगवान् ॥ गत्वा समीपे चामुंडां बभाषे वचनं मृदु ॥ ५० ॥ रक्तबीज उवाच ॥ बाले किं मां भीषयसि मत्वा त्वं कातरं किल ॥ शंखनादेन तन्वंगि वेत्सि किं धूम्रलोचनम् ॥ ५१ रक्तबीजोऽस्मि नाम्नाऽहं त्वत्सकाशमिहागतः ॥ युद्धेच्छा चेत्पिकालापे सज्जा भव भयं न मे ॥ ५२ ॥ पश्याद्य मे बलं कांते दृष्टा ये कातरास्त्वया ॥ नाहं पंक्तिगतस्तेषां कुरु युद्धं यथेच्छसि ॥ ५३ ॥

करी उस शब्दसे दानवोंको भयसंचार और देवताओंको आनन्द बढने लगा ॥ ४९ ॥ रक्तबीज उस शंखकी ध्वनि सुनतेही अत्यन्त वेगसे चामुण्डाके निकट जाय उनसे कोमल वचन कहने लगा ॥ ५० ॥ रक्तबीज बोला हे बाले ! क्या मुझको कातर जानकर शंखनादसे भय दिखलाती हो ? हे कृशाङ्गि ! क्या मुझको धूम्रलोचन जानती हो ? ॥ ५१ ॥ हे मधुर भाषिणी ! मेरा नाम रक्तबीज है मैं तुम्हारे कारण इस स्थानमें आया हूं यदि तुम्हारी युद्धकी इच्छा हो तो सज्जित होओ मुझको उससे कुछ भय नहीं है ॥ ५२ ॥ हे कान्ते ! जो युद्धसे कातर हैं तुमने उनको देखा है मैं उस श्रेणीके अन्तर्गत नहीं हूं अतएव तुम्हारी जैसी इच्छा हो उसी प्रकार युद्ध करो तो मेरा बल प्रत्यक्ष देखोगी ॥ ५३ ॥

हे सुन्दरि ! तुमने यदि पूर्वमें वृद्धजनोंकी सेवाकी है नीतिशास्त्र सुना है अर्थविज्ञान अध्ययन किया है पण्डितोंकी सभामें मिलित हुई हो ॥ ५४ ॥ अथवा साहित्य और तंत्र विषयमें यदि तुमको विज्ञान हो तो प्रमाणसह सत्य और तथ्य मेरे वचन सुनो ॥ ५५ ॥ नौ प्रकारके रसोंमें विद्वानोंकी सभामें शृंगार और शान्त यह दो प्रकारके रसही प्रधान कहे गये हैं ॥ ५६ ॥ किन्तु इन दोनों रसोंमें शृंगाररस ही प्रथम राजभावमें प्रतिष्ठित रहता है अधिक क्या इस रसमें आसक्त होकर विष्णु कमलाके सहित ब्रह्मा सावित्रीके सहित ॥ ५७ ॥ इन्द्र शचीके सहित और शंकर उमाके संघ वास करते हैं वृक्ष लताके सहित, मृग मृगीके सहित और कबूतर कबूतरीके सहित मिलित होता है ॥ ५८ ॥ इसी प्रकार संपूर्ण प्राणी संयोग रसमें अत्यन्त आसक्त होते हैं जो पीडाके कारण

वृद्धाश्च सेविताः पूर्वं नीतिशास्त्रं श्रुतं त्वया ॥ पठितं चार्थविज्ञानं विद्वद्गोष्ठी कृताऽथवा ॥५४॥ साहित्यतंत्रविज्ञानं चेदस्ति तव सुन्दरि शृणु मे वचनं पथ्यं तथ्यं प्रमितिबृंहितम् ॥५५॥ रसानां च नवानां वै द्वावेव मुख्यतां गतौ ॥ शृङ्गारकः शांतिरसो विद्वज्जनसभासु च ॥५६॥ तयोः शृङ्गार एवादौ नृपभावे प्रतिष्ठितः ॥ विष्णुर्लक्ष्म्या सहास्ते वै सावित्र्या चतुराननः ॥ ५७ ॥ शच्येन्द्रः शैलसुतया शंकरः सह शेरते ॥ वल्ल्या वृक्षो मृगो मृग्या कपोत्या च कपोतकः ॥ ५८ ॥ एवं सर्वे प्राणभृतः संयोगरसिका भृशम् ॥ अप्राप्तभोग विभवा ये चान्ये कातरा नराः ॥५९॥ भवंति यतयस्ते वै मूढा दैवेन वंचिताः ॥ असंसाररसज्ञास्तेवञ्चिता वञ्चनापरैः ॥६० ॥ मधुरालापनिपुणै रताः शांतिरसे हिते ॥ क्व ज्ञानं क्व च वैराग्यं वर्तमाने मनोभवे ॥६१॥ लोभे क्रोधे च दुर्धर्षे मोहे मतिविनाशके ॥ तस्मात्त्वमपि कल्याणि कुरु कांतं मनोहरम् ॥६२॥ शुंभं सुराणां जेतारं निशुंभं वा महाबलम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा रक्तबीजोऽसौ विरराम पुरः स्थितः ॥ ६३ ॥ श्रुत्वा जहास चामुण्डा कालिका चांबिका तथा ॥ इति श्रीदेवीभागवते पञ्चमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

कातर होकर भोग विभव उपभोग नहीं कर सकते ॥ ५९ ॥ वह मूढ मनुष्यही दैवकी विडंबनासे वंचित हो यति होते हैं जो संसाररसको नहीं जानते वही वंचकोंके ॥ ६० ॥ मधुर वचनोंसे वंचित हुए शांतिरसमें निरत होते हैं. कामके उदय होनेमें ज्ञान वैराग्य कहां ? ॥ ६१ ॥ बुद्धिविनाशक मोह क्रोध लोभ बड़ा दुर्धर्ष है. अतएव हे कल्याणि ! तुम मनोहर पति करो अर्थात् सुरविजयी मनोहर शुम्भ वा महाबल निशुम्भको पति बनाओ. व्यासजी बोले हे महाराज ! जब रक्तबीज देवीके सामने यह सब कहकर मौन हुआ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ तब कालिका अम्बिका और चामुण्डा यह सुनकर हँसने लगीं ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

व्यासजी बोले हे नरपते ! देवी रक्तबीजके इस प्रकारके वचन सुन हँसती हुई मेघके समान गंभीर स्वरद्वारा उससे इस प्रकार युक्तिसंगत वचन कहने लगीं ॥ १ ॥ हे मन्दात्मन् ! मैंने प्रथमही दूतसे यथोचित वचन कहे हैं, इस कारण अब क्यों व्यर्थ श्लाघा करता है? ॥ २ ॥ त्रिभुवनमें यदि कोई पुरुष रूप, बल और विभवमें मेरे समान हो तो मैं उसको ही पति बनाऊंगी ॥ ३ ॥ तुम शुम्भ और निशुम्भके समीप जाकर उनसे कहो कि, मैंने पूर्वमें यही प्रतिज्ञा की है, अतएव मुझे युद्धमें जीत कर विधिपूर्वक विवाह करो ॥ ४ ॥ तुम दैत्यपति शुंभकी आज्ञानुसार उनका कार्य करनेके लिये यहां आये हो, अतएव हो सके तो संग्राममें प्रवृत्त हो. नहीं तो अपने प्रभुके सहित पातालमें भाग जाओ ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! देवीके इस प्रकार वचन सुन वह दानव

व्यास उवाच ॥ कृत्वा हास्यं ततो देवी तमुवाच विशांपते ॥ मेघगम्भीरया वाचा युक्तियुक्तमिदं वचः ॥ १ ॥ पूर्वमेव मया प्रोक्तं मंदात्मन्किं विकत्थसे ॥ दूतस्याग्रे यथा योग्यं वचनं हितसंयुतम् ॥ २ ॥ सदृशो मम रूपेण बलेन विभवेन च ॥ त्रिलोक्यां यदि कोऽपि स्यात्तं पतिं प्रवृणोम्यहम् ॥ ३ ॥ ब्रूहि शुंभं निशुंभं च प्रतिज्ञा मे पुरा कृता ॥ तस्माद्युद्ध्यस्व जित्वा मां विवाहं विधिवत्कुरु ॥ ४ ॥ त्वं वै तदाज्ञया प्राप्तस्य कार्यार्थसिद्धये ॥ संग्रामं कुरु पातालं गच्छ वा पतिना सह ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याःस दैत्योऽमर्षपूरितः ॥ मुमोच तरसा बाणान्सिंहस्योपरि दारुणान् ॥ ६ ॥ अंबिका तांश्छरान्वीक्ष्य गगने पन्नगोपमान् ॥ चिच्छेद सायकैस्तीक्ष्णैर्लघुहस्ततया क्षणात् ॥ ७ ॥ अन्यैर्जघान विशिखै रक्तबीजं महा सुरम् ॥ अंबिका चापनिर्मुक्तैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ ८ ॥ देवीबाणहतः पापो मूर्च्छामाप रथोपरि ॥ पतिते रक्तबीजे तु हाहाकारो महानभूत् ॥९॥ सैनिकाश्चुक्रुशुः सर्वे हताः स्म इति चाब्रुवन् ॥ ततो बुंबारवं श्रुत्वा शुंभः परमदारुणम् ॥ १० ॥

क्रोधसे भर गया और तत्काल सिंहके ऊपर दारुण बाण छोडने लगा ॥६॥ तब अम्बिकाने आकाश मार्गमें सर्पके समान उस शरजालको देखकर लघुहस्तता प्रयुक्त तीक्ष्ण बाणोंसे क्षणमात्रमेंही उन सब बाणोंको छिन्न छिन्न कर डाला ॥७॥ और अपना धनुष कानोंपर्यन्त खैंच शिलापर पैनाये अन्यान्य बाणोंको छोड़कर महावीर रक्तबीजको प्रहार किया ॥८॥ तब वह पापिष्ठ देवीके शराघातसे मूर्छित होकर रथपर गिर पडा. रक्तबीजके गिरनेपर उसकी सेनामें महान् हाहाकार शब्द होने लगा ॥ ९ ॥ और हाय ! हाय ! हम मारे गये, यह कहकर सेना रुदन करने लगी. फिर असुरराज शुंभने दारुण बुम्बारव (करमुख संयोगसे विपद्सूचक आर्त्तनाद) सुनकर ॥ १० ॥

संपूर्ण दानव सेनाको रणसाजसे सज्जित होनेकी आज्ञा दी. शुंभने कहा इसी समय सब मानव, कम्बीजगण ॥ ११ ॥ और अन्यान्य सेनापतिगण अपनी अपनी सेनासहित युद्धमें जाय विशेषकर कालिकेय गण शूर और अत्यन्त बलवान् हैं, अतएव वे भी सेनासहित समरमें जायँ. व्यासजी बोले हे महाराज ! शुंभकी आज्ञा पातेही हाथी घोडे पैदल और रथी. यह चतुरंगिणी सेना ॥ १२ ॥ मदमत्त होकर देवीके संग्राम स्थलमें चली. चंडिका देवी दानवोंकी सेनाको समीप आती हुई देख ॥ १३ ॥ तत्काल बारंबार भीषण और भयप्रद घंटाध्वनि करने लगी. फिर जगदम्बिकाने भी ज्याशब्द और शंखनाद किया ॥१४॥ तब कालीभी अपनामुँह फैलाय उस शब्दके संगही संग तदनुरूप घोर शब्द करने लगी. अनन्तर देवीके वाहन बलवान् सिंहने भी ॥१५॥

उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ शुंभ उवाच ॥ निर्यातु दानवाः सर्वे कांबोजाः स्वबलैर्वृताः ॥ ११ ॥ अन्येऽप्यतिबलाः शूराः कालकेया विशेषतः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याज्ञप्तं बलं सर्वं शुंभेन च चतुर्विधम् ॥ १२ ॥ निर्जगाम मदाविष्टं देवी समरमंडले ॥ तमागतं समालोक्य चंडिका दानवं बलम् ॥ १३ ॥ घंटानादं चकाराशु भीषणं भयदं मुहुः ॥ ज्यास्वनं शंखनादं च चकार जगदंबिका ॥ १४ ॥ तेन नादेन सा जाता काली विस्तारितानना ॥ श्रुत्वा तन्निनदं घोरं सिंहो देव्याश्च वाहनम् ॥ १५ ॥ जगर्ज सोऽपि बलवा ञ्जनयन्भयमद्भुतम् ॥ तन्निनादमुपश्रुत्य दानवाः क्रोधमूर्छिताः ॥ १६ ॥ सर्वे चिक्षिपुरस्त्राणि देवीं प्रति महाबलाः ॥ तस्मिन्नेवायतने युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥ १७ ॥ ब्रह्मादीनां च देवानां शक्तयश्चंडिकां ययुः ॥ यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् ॥ १८ ॥ तादृग्रूपा स्तदा देव्यः प्रययुः समरांगणे ॥ ब्रह्माणी वरटारूढा साक्षसूत्रकमंडलुः ॥ १९ ॥ आगता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणीति प्रति श्रुता ॥ वैष्णवी गरुडारूढा शंखचक्रगदाधरा ॥ २० ॥ पद्महस्ता समायाता पीतांबरविभूषिता ॥ शांकरी तु वृषारूढा त्रिशूलवर धारिणी ॥ २१ ॥

उस घोर शब्दको सुन ऐसी गर्जना करी कि, जिससे दानवोंको अद्भुत भय हुआ. तब महाबलवान् दानव उस शब्दको सुनकर क्रोधसे अधीर हो ॥ १६ ॥ देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे .उस रोमहर्षण विस्मयकर दारुण युद्धके आरंभ होनेपर ॥ १७ ॥ ब्रह्मादि देवताओंकी सब शक्तियां चण्डिका देवीके निकट आने लगीं. जिस देवताका जैसा रूप जिस प्रकारके भूषण और जैसे वाहन थे ॥ १८ ॥ उन उन देवताओंकी शक्तियें उसी प्रकार रूप धारण कर तदनुयायी वाहनपर चढ़ और वैसे ही भूषणोंसे विभूषित होकर समरमें आने लगीं. हंसकी पीठपर चढ़ अक्ष सूत्र और कमण्डलु लेकर ॥ १९ ॥ ब्रह्माजीकी विख्यात ब्रह्माणी शक्ति आई. पीतवसना वैष्णवी गरुडपर चढ़ शंख चक्र गदा ॥ २० ॥ और पद्म हाथमें धारण करके आई. शिवरमणी

शांकरी देवी वृषभारूढ हो त्रिशूल लिये॥ २१ ॥ ललाटमें अर्द्धचन्द्र हाथमें सर्पवलय चूड़ी धारण करके आई, चारु वदना कौमारी देवी मोरपर चढ शक्ति ले ॥ २२ ॥ कार्तिकेयके समान रूप धारण पूर्वक युद्ध करनेकी इच्छासे रणस्थलमें आई. सुमुखी इन्द्राणी श्वेत हाथीपर चढी ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण अंग प्रत्यङ्गको विविध भूषणोंसे भूषित कर हाथमें वज्र लिये युद्धकी अभिलाषासे रणस्थलमें आई. शूकर रूपिणी वाराही अति ऊंचे प्रेतासनपर विराज मान हो रणस्थलमें उपस्थित हुई ॥ २४ ॥ नार सिंही नृसिंहके समान देह धारण करके वहां आई. यमकी शक्ति यमके समान भयानक रूप धारण कर भैंसेकी पीठपर चढ़ हाथमें दंड लिये ॥ २५ ॥ कुछेक हँसती हुई समरस्थलमें आई. इसी प्रकार मदोन्मत्ता कौबेरी शक्ति, वारुणी शक्ति ॥ २६ ॥

अर्धचन्द्रधरा देवी तयाऽहिवलया शिवा ॥ कौमारी शिखिसंरूढा शक्तिहस्ता वरानना ॥ २२ ॥ युद्धकामा समायाता कार्त्तिकेयस्वरूपिणी ॥ इन्द्राणी सुष्ठुवदना सुश्वेतगजवाहना ॥ २३ ॥ वज्रहस्ताऽतिरोषाढ्या संग्रामाभिमुखी ययौ ॥ वाराही सूकराकारा प्रौढप्रेतासना मता ॥ २४ ॥ नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ॥ याम्या च महिषारूढा दंड हस्ता भयप्रदा ॥ २५ ॥ समायाताऽथ संग्रामे यमरूपा शुचिस्मिता ॥ तथैव वारुणी शक्तिः कौबेरी च मदोत्कटा ॥ २६ ॥ एवंविधास्तथाऽऽकारा ययुः स्वस्वबलैर्वृताः ॥ आगतास्ताः समालोक्य देवीमुदमवाप च ॥ २७ ॥ स्वस्था मुमुदिरे देवा दैत्याश्च भयमाययुः ॥ ताभिः परिवृतस्तत्र शंकरो लोकशंकरः ॥ २८ ॥ समागम्य च संग्रामे चण्डिका मित्युवाच ह ॥ हन्यंतामसुराः शीघ्रं देवानां कार्यसिद्धये ॥ २९ ॥ निशुंभं चैव शुंभं च ये चान्ये दानवाः स्थिताः ॥ हत्वा दैत्य बलं सर्वं कृत्वा च निर्भयं जगत् ॥ ३० ॥ स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि समागच्छंतु शक्तयः ॥ देवा यज्ञभुजः संतु ब्राह्मणा यजने रताः ॥ ३१ ॥

और अन्यान्य सब शक्तियां तदनुयायी रूप वाहन और भूषणोंसे सज्जित हो अपनी सेनाके सहित समरमें आने लगीं. देवी उनको आई हुई देखकर अत्यानन्दित हुई ॥ २७ ॥ देवता भी स्वस्थचित्त होकर हर्ष प्रकाश करने लगे किन्तु दानव यह देखकर बहुत भयभीत हुए. सब लोकोंके मंगलकारक शंकरने उसकाल उन शक्तियोंको सङ्ग ले ॥ २८ ॥ समरस्थलमें उपस्थित हो चण्डिका देवीसे कहा शुम्भ निशुम्भ तथा और जो सब दानवइस समरमें आयेहैं, देवताओंका कार्यसाधन करनेके लिये उन असुरोंका शीघ्र संहार करो, संपूर्ण दानवकुलका विनाश करके जगत्की भयसे रक्षा कर ॥ २९ ॥ ३० ॥ शक्तियें अपने अपने स्थानको जायं देवता यज्ञभोजी ब्राह्मण लोगयजन कार्यमें निरत ॥ ३१ ॥

और स्थावर जंगम इत्यादि सब प्राणी परम संतुष्ट हो उत्पात और अतिवृष्टि अनावृष्टि इत्यादि सब ईति शलभादिभय दूर हो ॥ ॥ ३२ ॥ मेघ नियमित समयमें जलवृष्टि करें और कृषिकार्यमें बहुत सस्य उत्पन्न हो. व्यासजी बोले हे महाराज ! सर्व लोकोंके मंगलदायक देवेश शंकरने जब इस प्रकार कहा ॥ ३३ ॥ तब चण्डिका देवीके शरीरसे एक अतिअद्भुत शक्ति निकली उसकी आकृति अत्यन्त भीषण और प्रचंड थी उसके चारों ओर शत शत शिवा घोरतर भीषण शब्द करने लगीं ॥ ३४ ॥ तब उस घोररूपा शक्तिने कुछेक हँसते हँसते पञ्चाननसे कहा हे देव देव ! आप दैत्योंके अधिपति शुम्भके निकट अभी जाइये ॥ ३५ ॥ हेकामनाशन ! आप मेरे दूतकार्यमें तत्पर हूजिये. हे शंकर ! वचनानुसार मदगर्वित कामातुर दैत्यपति शुंभ और निशुंभसे कहिये कि ॥ ३६ ॥

प्राणिनः संतु संतुष्टाः सर्वे स्थावरजंगमाः ॥ शमं यांतु तथोत्पाता ईतयश्च तथा पुनः ॥ ३२ ॥ घनाः काले प्रवर्षन्तु कृषिर्बहुफला तथा ॥ व्यास उवाच ॥ एवं ब्रुवति देवेशे शंकरे लोकशंकरे ॥ ३३ ॥ चंडिकायाः शरीरात्तु निर्गता शक्तिरद्भुता ॥ भीषणाऽतिप्रचंडा च शिवाशतनिनादिनी ॥ ३४ ॥ घोररूपाऽथ पंचास्यमित्युवाच स्मितानना ॥ देव देव व्रजाशु त्वं दैत्यानामधिपं प्रति ॥ ३५ ॥ दूतत्वं कुरु कामारे ब्रूहि शुंभं स्मराकुलम् ॥ निशुंभं च मदोत्सिक्तं वचनान्मम शंकर ॥ ३६ ॥ मुक्त्वा त्रिविष्टपं यात यूयं पातालमाशु वै ॥ देवाः स्वर्गे सुखं यांतु तुराषाट् स्वासनं शुभम् ॥ ३७ ॥ प्राप्नोतु त्रिदिवं स्थानं यज्ञ भागांश्च देवताः ॥ जीवितेच्छा च युष्माकं यदि स्यात्तु महत्तरा ॥ ३८ ॥ तर्हि गच्छत पातालं तरसा यत्र दानवाः ॥ अथवा बल मास्थाय युद्धेच्छा मरणाय चेत् ॥ ३९ ॥ तदाऽऽगच्छंतु तृप्यंतु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः शूलपाणिस्त्वरान्वितः ॥ ४० ॥ गत्वाऽऽह दैत्यराजानं शुंभं सदसि संस्थितम् ॥ शिव उवाच ॥ राजन्दूतोऽहमंबाया स्त्रिपुरांतकरो हरः ॥ ४१ ॥

तुम देवताओंकाराज्य छोड़कर अभीपातालमेंप्रवेश करो.देवता स्वर्गमें जाकर सुखपूर्वक वास करें, इन्द्र अपने सुशोभित आसनको प्राप्त हो ॥३७॥ और अधिक क्या कहूँ ? देवता स्वर्गस्थान और अपना यज्ञभागपावें और यदि तुमको जीवनकी नितान्त वासना हो ॥ ३८ ॥ तो जहां दानवलोग वास करते हैं, तुम अभी उस पातालमें प्रवेश करो. नहीं तो यदि मरनेके लिये तुम्हारी सेना सहित संग्राम करनेकी इच्छा है तो शीघ्र रणस्थलमें आओ ॥ ३९ ॥ तुम्हारा मांस भक्षण करके मेरी शिवागण तृप्त हों. व्यासजी बोले हे महाराज ! उनके इसप्रकार वचन सुन शूलपाणिने शीघ्रतासे ॥ ४० ॥ उसी समय सभामें बैठेहुए दानवराज शुंभके निकट जाकर कहा. शिव बोले हे राजन् ! मैं त्रिपुरसुरका अन्तक स्वयं हर हूं. इस समय अम्बिका देवीका दूत होकर ॥ ४१ ॥

तुम्हारे सब विषयोंमें हित साधन करनेके लिये ही तुम्हारे पास आया हूं. वीरवर बलि और प्रह्लाद जिस स्थानमें वास करते हैं, तुम स्वर्गराज्य और मृत्यलोक राज्यको त्यागकर अभी उस पातालपुरमें चले जाओ अथवा यदि मृत्युकी इच्छा हो तो युद्धमें आओ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तो मैं तुम सबको अभी समरमें विनष्ट करूंगी. हे राजन् ! तुम्हारे कल्याणकी कामनासे महाराणी अंबिका देवीने यह सब कहकर मुझको भेजा है ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! वे शूलधारी शंकर देवीके अमृतमय हितकर वे वचन प्रधान प्रधान दानवोंको सुनाकर मौन होगये ॥ ४५॥ जिस शक्तिने शंभुको दूत बनाकर दानवोंके पास भेजा था. संपूर्ण त्रिभुवनमें वह शिव दूतीके नामसे विख्यात हुई ॥ ४६ ॥ तब दैत्यलोग देवीके वे दुष्कर वचन शंकरके मुखसे सुन, कवच बांध

त्वत्सकाशमिहायातो हितं कर्तु तवाखिलम् ॥ त्यक्त्वा स्वर्गं तथा भूमिं यूयं गच्छत सत्वरम् ॥ ४२ ॥ पातालं यत्र प्रह्लादो बलिश्च बलिनां वरः ॥ अथवा मरणेच्छा चेत्तर्ह्यागच्छत सत्वरम् ॥ ४३ ॥ संग्रामे वो हनिष्यामि सर्वानेवाहमाशु वै ॥ इत्युवाच महाराज्ञी युष्मत्कल्याणहेतवे ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति दैत्यवरान्देवी वाक्यं पीयूषसन्निभम् ॥ हितकृच्छ्रावयित्वा स प्रत्यायातश्च शूलभृत ॥ ४५ ॥ ययाऽसौ प्रेरितां शंभुर्दूतत्वे दानवान्प्रति ॥ शिवदूतीति विख्याता जाता त्रिभुवनेऽखिले ॥ ४६ ॥ तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शंकरोक्तं तु दुष्करम् ॥ युद्धाय निर्ययु शीघ्रं दंशिता शस्त्रपाणयः ॥ ४७ ॥ तरसा रणमागत्य चंडिकां प्रति दानवाः ॥ निर्जघ्नुश्च शरैस्तीक्ष्णैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ ४८ ॥ कालिका शूलपातैस्तान् गदाशक्तिविदारितान् ॥ कुर्वती व्यचरत्तत्र भक्षयंती च दानवान् ॥ ४९ ॥ कमंडलुजलाक्षेपगतप्राणान्महाबलान् ॥ ब्रह्माणी चाकरोतत्र दानवान्समरांगणे ॥५०॥ माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलेनातिरंहसा ॥ जघान दानवान्संख्ये पातयामास भूतले ॥५१॥ वैष्णवीचक्रपातेन गदापातेन दानवान् ॥ गतप्राणांश्चकाराशु चोत्तमांगविवर्जितान् ॥५२॥

धनुष बाण धारण करके युद्धकी इच्छासे शीघ्र निकले ॥४७ ॥ दानव लोग वेगसहित रणस्थलमें आय आकर्णआकृष्ट शिलाशाणित तीक्ष्णबाणोंसे चण्डिकापर प्रहार करने लगे ॥४८ ॥ तब कालिका देवी किसीको शूलाघातसे किसीको शक्तिप्रहारसे और किसीको गदाघातसे विदीर्ण करके उनको भक्षण करती हुई रणस्थलमें विचरण करने लगीं ॥ ४९ ॥ ब्रह्माणी समरांगणमें महाबल दानवोंके शरीरमें कमण्डलुके जलका सिंचन करके उनके प्राण विनष्ट करने लगीं ॥ ५० ॥ माहेश्वरी बैलपर चढ़ी अतिवेगसे त्रिशूलद्वारा दानवोंको प्रहार करके पृथ्वीमें गिराने लगीं ॥ ५१ ॥ वैष्णवी गदाघातसे अनेक दैत्योंका प्राणविनाश और चक्रप्रहारसे अनेक दैत्योंके मस्तक काटने लगीं ॥ ५२ ॥

इन्द्राणी ऐरावतके करप्रहारसे पीड़ित प्रधान प्रधान दानवोंपर वज्रप्रहार करके उनको पृथ्वीपर गिराने लगीं ॥ ५३ ॥ वाराही क्रोधके वशीभूत हो दाँतोंके अग्र भाग और तुण्डप्रहारसे शत शत दैत्य दानवोंको शमन—सदनमें प्रेरण करने लगीं ॥ ५४ ॥ नारसिंही तीक्ष्ण नखोंके द्वारा दानवश्रेष्ठोंको विदीर्ण करके भक्षण करती हुई समरस्थलमें विचरण और वारंवार घोर शब्द करने लगीं ॥ ५५ ॥ शिवदूती अट्टहास द्वारा दानवोंको जैसेही पृथ्वीपर गिराती थी वैसेही कालिका और चंडिका तत्काल उनको भक्षण करने लगीं ॥ ५६ ॥ देवताओंकी हितकी कामनासे उस समय कौमारी मयूरपर चढ़ी शिलापर पैनायेबाण कर्णपर्यन्त आकर्षण कर शत्रुसंहार करने लगीं ॥ ५७ ॥ वारुणी शक्ति सन्मुख संग्राममें दैत्योंको पाशद्वारा बांधकर गिराने लगी. इससे वह चेतनारहित

ऐंद्री वज्रप्रहारेण पातयामास भूतले ॥ ऐरावतकराघातपीडितान्दैत्यपुंगवान् ॥ ५३ ॥ वाराही तुंडघातेन दंष्ट्राग्रपातनेन च ॥ जघान क्रोधसंयुक्ता शतशो दैत्यदानवान् ॥ ५४ ॥ नारसिंही नखैस्तीव्रैर्दारितान्दैत्यपुंगवान् ॥ भक्षयंती चचाराजौ ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ ५५ ॥ शिवदूती साऽट्टहासैः पातयामास भूतले ॥ तांश्चखादाथ चामुंडा कालिका च त्वरान्विता ॥ ५६ ॥ शिखिसंस्था च कौमारी कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ निजघान रणे शत्रून्देवानां च हिताय वै ॥ ५७ ॥ वारुणी पाश संबद्धान्दैत्यान्समरमस्तके ॥ पातयामास तत्पृष्ठे मूर्च्छितान्गतचेतनान् ॥ ५८ ॥ एवं मातृगणेनाजावतिवीर्यपराक्रमम् ॥ मर्दितं दानवं सैन्यं पलायनपरं ह्यभूत् ॥ ५९ ॥ बुंबारवस्तु सुमहान भूतत्र बलार्णवे ॥ पुष्पवृष्टिं तदा देवाश्चक्रुर्देव्या गणोपरि ॥ ६० ॥ तच्छ्रुत्वा निनदं घोरं जयशब्दं च दानवाः ॥ रक्तबीजश्चुकोपाशु दृष्ट्वा दैत्यान्पलायितान् ॥ ६१ ॥ गर्जमानांस्तथा देवान्वीक्ष्य दैत्यो महाबलः ॥ रक्तबीजस्तु तेजस्वी रणमभ्याययौ तदा ॥ ६२ ॥ सायुधो रथसंविष्टः कुर्वञ्ज्याशब्दमद्भुतम् ॥ आजगाम तदा देवी क्रोधरक्तेक्षणोद्यतः ॥ ६३ ॥

और मूर्छित हो पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मातृका गणोंने जब दानवोंकी सेनाको विमर्दित किया तब वह अत्यन्त वीर्यवान् पराक्रांत दानवोंकी सेना डरकर भागने लगी ॥ ५९ ॥ तब उस सेनारूपी सागरमें महान् विपद्सूचक बुम्बारव होने लगा. इधर उस समय सब देवता देवियोंके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६० ॥ असुरोंका घोरतर आर्त्तनाद और देवताओंकी जयध्वनि सुनकर दानवश्रेष्ठ रक्तबीज अत्यन्त कुपित हुआ ॥ ६१ ॥ विशेषकर उस समय दानवोंकी सेनाको भागता और देवताओंको गर्जता देख वह महाबलवान् तेजस्वी दानव क्रोधमें भर शीघ्र समरमें आया ॥ ६२ ॥ उसकाल रक्तबीज क्रोधसे लाल लाल नेत्रकर, अनेक अस्त्रशस्त्रोंके सहित रथमें बैठे अद्भुत ज्याशब्द करता हुआ समरकी इच्छासे देवीके समीप आया ॥६३॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! देवदेव महादेवजीने महावीर रक्तबीजको जिस प्रकार अद्भुत वर दिया था उस विषयको कहता हूं आप मन लगाकर सुनिये ॥ १ ॥ जिस समय इस महावीरके शरीरसे रक्तबिंदु गिरेंगे उसी समय उस रक्तसे उसीके समान रूपवान् ॥ २ ॥ और पराक्रमशाली असंख्य दानव उत्पन्न होंगे.पूर्वकालमें रुद्रदेवने उसको यह अद्भुत वर दिया था ॥ ३ ॥ वही दानव इस वरके प्रभावसे दर्पित हो कालिकाके सहित अम्बिका देवीको मारनेके लिये क्रोधित हो महावेगसे संग्रामस्थलमें आया ॥ ४ ॥ उस दैत्यवरने कमलनयना वैष्णवी शक्तिको गरुडपर विराजमान देख उसपर शक्तिसे प्रहार किया ॥ ५ ॥ तब वैष्णवीने शक्तिके सहित गदाद्वारा उस शक्तिको निवारण करके महाअसुर रक्त

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधेऽष्टाविंशोध्यायः ॥ २८ ॥ व्यास उवाच ॥ वरदानमिदं तस्य दानवस्य शिवार्पितम् ॥ अत्यद्भुततरं राजञ्छृणु तत्प्रब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥ तस्या देहाद्रक्तबिंदुर्यदा पतित भूतले ॥ समुत्पतंति दैतेयास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ २ ॥ असंख्याता महावीर्या दानवा रक्तसंभवाः ॥ प्रभवंत्विति रुद्रेण दत्तोऽस्त्यत्यद्भुतो वरः ॥ ३ ॥ स तेन वरदानेन दर्पितः क्रोध संयुतः ॥ अभ्यगात्तरसा संख्ये हंतुं देवीं सकालिकाम् ॥ ४ ॥ स दृष्ट्वा वैष्णवीं शक्तिं गरुडोपरि संस्थिताम् ॥ शक्त्या जघान दैत्येंद्रस्तां वै कमललोचनाम् ॥ ५ ॥ गदया वरयामास शक्तिः साशक्ति संयुता ॥ अताडयच्च चक्रेण रक्तबीजं महासुरम् ॥ ६ ॥ रथांगहतदेहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥ वज्राहतगिरेः शृंगान्निर्झरा इव गैरिकाः ॥ ७ ॥ यत्र यत्र यदा भूमौ पतंति रक्तबिंदवः ॥ समुत्तस्थुस्तदाकाराः पुरुषाश्च सहस्रशः ॥ ८ ॥ ऐंद्री तमसुरं घोरं वज्रेणाभिजघान च ॥ रक्तबीजं क्रुधाऽऽविष्टा निःससार च शोणितम् ॥ ९ ॥ ततस्तत्क्षतजाज्जाता रक्तबीजा ह्यनेकशः ॥ तद्वीर्याश्च तदाकाराः सायुधा युद्धदुर्मदाः ॥ १० ॥

बीजपर सुदर्शन चक्रसे प्रहार किया ॥ ६ ॥ उसका देह चक्रप्रहारसे आहत होनेपर वज्राहत गिरिशृंगसे जिस प्रकार गेरूकी धारा निकलती है इसी प्रकार उसके देहसे शोणितकी धारा निकलने लगी ॥ ७ ॥ उस समय उसके रक्तकी बूँदें पृथ्वीके जिस स्थानमें गिरीं उसी स्थानमें तदाकार हजार हजार पुरुष तत्काल उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ इन्द्राणीने क्रोधित होकर उस भयंकर रक्तबीज असुरको वज्रसे प्रहार किया, तब उसके उस देहसे शोणितकी धारा निकलने लगी ॥ ९ ॥ रक्तके गिरते ही उसके शरीरके समान वीर्यवान् रूपसम्पन्न आयुधधारी युद्धदुर्मद अनेक रक्तबीज रुधिरसे उत्पन्न होने लगे ॥ १० ॥

तब ब्रह्माणीने कुपित होकर ब्रह्मदण्डसे उसको अतिबलसहित प्रहार किया माहेश्वरीने शूलप्रहार करके दानवोंको विदीर्ण किया ॥ ११ ॥ नारसिंहीने नखाघातसे उस महासुरको विद्ध किया. वाराहीने क्रोधित होकर तुण्डाघातसे उस दानवाधमको आहत किया ॥ १२ ॥ इसी प्रकार कौमारीने भी इसके वक्षस्थलमें शक्ति प्रहार किया, तब दानवश्र वर क्रोधित हो निर्शित बाणोंको वर्षा कर उन सबकोही विद्ध करने लगा ॥१३ ॥ इस महाअसुरने गदा शक्ति इत्यादि अस्त्रोंके प्रहारसे सब मातृकाओंको पृथक् पृथक् विद्ध किया, तब शक्तियें भी उससे प्रकोपित होकर बाणोंके प्रहारसे उसको विद्ध करने लगी ॥ १४ ॥ चण्डिका देवीने कुपित होकर शित बाणोंसे उसके बाणोंको खण्ड खण्ड कर अपने बाणोंसे उसपर दारुण प्रहार किया ॥ १५ ॥ हे महाराज ! ऐसे भारी

ब्रह्माणी ब्रह्मदंडेन कुपिता ह्यहनद्भृशम् ॥ माहेश्वरी त्रिशूलेन दारयामास दानवम् ॥११॥ नारसिंही नखाघातैस्तं विव्याध महासुरम् ॥ अहनत्तुंडघातेन क्रुद्धा तं राक्षसाधमम् ॥ १२ ॥ कौमारी च तथा शक्त्या वक्षस्ये नमताडयत् ॥ सोऽपि क्रुद्धः शरासारैर्बिभेद निशितैश्च ताः ॥ १३ ॥ गदाशक्तिप्रहारैस्तु मातृः सर्वाः पृथक्पृथक् ॥ शक्तयस्तं शराघातैर्विविधुस्तत्प्रकोपिताः ॥ १४ ॥ तस्य शस्त्राणि चिच्छेद चंडिकास्वक्षरैः शितैः ॥ जघानान्यैश्च विशिखैस्तं देवी कुपिता भृशम् ॥ १५ ॥ तस्य देहाच्च सुस्राव रुधिरं बहुधा तु यत् ॥ तस्मात्तत्सदृशः शूराः प्रादुरासन्सहस्रशः ॥ १६ ॥ रक्तबीजैर्जगद्व्याप्तं रुधिरौघसमुद्भवैः ॥ सन्नद्धैः सायुधैः कामं कुर्वद्भिर्युद्धमद्भुतम् ॥ १७ ॥ प्रहरंतश्च तान्दृष्ट्वा रक्तबीजाननेकशः ॥ भयभीताः सुरास्त्रेसुर्विषण्णाः शोककर्शिताः ॥ १८ ॥ कथमद्य क्षयं दैत्या गमिष्यंति सहस्रशः ॥ महाकाया महावीर्या दानवा रक्तसंभवाः ॥ १९ ॥ एकैव चंडिकाऽत्रास्ति तथा काली च मातरः ॥ एताभिर्दानवाः सर्वे जेतव्याः कष्टमेव तत् ॥ २० ॥

प्रहारसे उसके शरीरसे जैसे ही अधिक समान सहस्र सहस्र असुर उस रुधिरसे प्रादुर्भूत हुए ॥ १६ ॥ अधिक क्या उस प्रहारसे शोणितके जो रक्तबीज उत्पन्न हुए उनसे सम्पूर्ण जगन्मण्डल आच्छन्न हो गया तब वह भी सब कवचसे अंगोंको ढक आयुध ग्रहण कर अत्यन्त अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ १७ ॥ अब अनेक रक्तबीज उत्पन्न होकर देवीको प्रहार करने लगे तब देवता यह देखकर अति डरते हुए शोकसे अत्यन्त कातर हो गये ॥ १८ ॥ और दुःखितचित्त हो आपसमें कहने लगे कि यह रुधिरोत्पन्न महाकाय हजार हजार दानव दिखाई देते हैं, यह सब महावीर्यशाली हैं. अतएव यह इस समय किस प्रकार मरेंगे ? ॥ १९ ॥ मातृका कालिका और अकेली चंडिका इस समरस्थलमें वर्त्तमान हैं, यह इन सब दानवोंको जीतेंगी सो यह अत्यन्त कष्टकर बात है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥

और यदि इसी समय शुंभ वा निशुभ सेना लेकर सहसा युद्धमें आजाय तो महाअनर्थ उपस्थित होगा इसमें संशय नहीं है ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! देवता जब इस प्रकार भयसे उद्विग्न हो चिंता करने लगे तब अम्बिका देवीने कमलनयना कालीसे कहा ॥ २२ ॥ हे चामुण्डे! तुम शीघ्र मुख फैलाओ मैं जब अस्त्रसे रक्तबीजपर प्रहार करूं तब उससे जैसे ही रक्तकी बूँदें निकलें तुम तत्काल उनको पान करो ॥ २३ ॥ मैं तीक्ष्ण बाण गदा शक्ति और मूशलके प्रहारसे रक्तोत्पन्न दानवोंको अभी हनन करूंगी. तुम उन दानवोंको इच्छानुसार भक्षण करके इस रणस्थलमें विचरण करती रहो ॥ २४ ॥ हे विशाललोचने ! अधिक और क्या कहूं तुम उसके रुधिरकी धारा इस प्रकार पीना कि एक बूंदमात्र भी पृथ्वीमें न गिरे ॥ २५ ॥ ऐसा होनेसे ही इस

निशुंभो वाऽथ शुंभो वा सहसा बलसंवृतः ॥ आगमिष्यति संग्रामे ततोऽनर्थो महान्भवेत् ॥ २१ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं देवा भयोद्विग्ना श्चितामापुर्महत्तराम् ॥ यदा तदांबिकाप्राह कालीं कमललोचनाम् ॥ २२ ॥ चामुण्डे कुरु विस्तीर्णं वदनं त्वरिता भृशम् ॥ मच्छस्त्रपा तसंभूतं रुधिरं पिब सत्वरा ॥ २३ ॥ भक्षयंती चर रणे दानवा नद्य कामतः ॥ हनिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्गदासिमुसलैस्तथा ॥ २४ ॥ तथा कुरु विशालाक्षि पानं तद्रुधिरस्य च ॥ बिंदुमात्रं यथा भूम्यां न पतेदपि सांप्रतम् ॥ २५ ॥ भक्ष्यमाणास्तदा दैत्या न चोत्पत्स्यंति चापरे ॥ एवमेषां क्षयो नूनं भविष्यति न चान्यथा ॥ २६ ॥ घातयिष्याम्यहं दैत्यं त्वं भक्षय च सत्वरा ॥ पिबती क्षतजं सर्वं यतमाना ऽरिसंक्षये ॥ २७ ॥ इत्थं दैत्यक्षयं कृत्वा दत्त्वा राज्यं सुरालयम् ॥ इंद्राय सुस्थिरं सर्वं गमिष्यामो यथासुखम् ॥२८॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तांऽबिकाया देवी चामुंडा चंडविक्रमा ॥ पपौ च क्षतजं सर्वं रक्तबीजशरीरजम् ॥ २९ ॥ अंबिका तं जघानाशु खड्गेन मुसलेन च ॥ चखाद देहशकलांश्चामुंडा तान्कृशोदरी ॥ ३० ॥

दानवको भक्षित होनेपर फिर अपर दानव उत्पन्न नहीं हो सकेंगे. अतएव इस प्रकार ही यह अवश्य नाशको प्राप्त होगा इसके अन्यथा होनेसे यह कभी नहीं मरेगा ॥ २६ ॥ मैं रक्तबीजको प्रहार करती हूं और तुम शत्रुके मारनेमें यत्नवान् होकर तत्काल सब रुधिर पान करो ॥ २७ ॥ हे चामुण्डे ! इस प्रकार दैत्यदल निर्मूल कर इन्द्रको निष्कण्टक स्वर्गका राज्य दे फिर स्थिर हो हम सब सुखपूर्वक प्रस्थान करें ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! चण्डविक्रमा चामुण्डा देवी अम्बिकाके इस प्रकार वचन सुनतेही रक्तबीजके देहसे निकली रुधिरधारा पान करने लगी ॥ २९ ॥ अम्बिका देवी मूशल और खड्गसे उसके शरीरको खंड खंड करने लगी और वह कृशोदरी चामुण्डा भी उस खंडित देहको तत्काल भक्षण करने लगी ॥ ३० ॥

तब रक्तबीज भी कुपित हो गदाघातसे चामुण्डाको प्रहार करने लगा चामुण्डा इस प्रकार गुरुतर आहत होकर भी रुधिरकी धारा पान करके उसके अंग प्रत्यंगको भक्षण करने लगी ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! जो सब क्रूर प्रकृति महाबलवान् दानव रक्तबीजके रुधिरसे उत्पन्न हुए थे कालिका देवीने उनका रुधिर पान किया और अम्बिकाने उनको निपतित किया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शोणित सम्भूत दानवोंके भक्षित होनेपर जो प्रकृत रक्तबीज था अम्बिका देवीने उसको भी खड्गसे खण्ड खण्ड करके गिरा दिया ॥ ३३ ॥ तब उस महासुर रक्तबीजको समरमें देवीके हाथसे निहत हुआ देख अन्यान्य दानवलोग भयसे कंपित कलेवर हो भागने लगे ॥ ३४ ॥ अस्त्र शस्त्रहीन विचेतन प्रायःरुधिराक्त कलेवर उस सम्पूर्ण सेनाने अत्यन्त विह्वल हो" हाय क्या हुआ ???"

सोऽपि क्रुद्धो गदाघातैश्चामुंडां समाघतयत् ॥ तथाऽपि सा पपावाशु क्षतजं तमभ क्षयत् ॥ ३१ ॥ येऽन्ये रुधिरजाः क्रूरा रक्तबीजा महाबलाः ॥ तेऽपि निष्पातिताः सर्वे भक्षिता गणशोणिताः ॥ ३२ ॥ कृत्रिमा भक्षिताः सर्वे यस्तु स्वाभाविकोऽसुरः ॥ सोऽपि प्रपातितो हत्वा खड्गेनातिविखंडितः ॥ ३३ ॥ रक्तबीजे हते रौद्रे ये चान्ये दानवा रणे ॥ पला यनं ततः कृत्वा गतास्ते भयकंपिताः ॥ ३४ ॥ हाहेति विब्रुवंतास्ते शुंभं प्रोचुः सुविह्वलाः ॥ रुधिरारक्तदेहाश्च विगतास्त्रा विचेतसः ॥ ३५ ॥ राजन्नंबिकया रक्तबीजोऽसौ विनिपातितः ॥ चामुंडा तस्य देहात्तु पपौ सर्वं च शोणितम् ॥३६॥ ये चान्ये दानवाः शूरा वाहनेनातिरंहसा ॥ सिंहेन निहताः सर्वे काल्या च भक्षिताः परे ॥ ३७ ॥ वयं त्वां कथितुं राजन्नागता युद्धचेष्टितम् ॥ चरितं च तथा देव्याः संग्रामे परमाद्भुतम् ॥ ३८ ॥ अजेयेयं महाराज सर्वथा दैत्यदानवैः ॥ गन्धर्वासुरयक्षैश्च पन्नगोरगराक्षसैः ॥ ३९ ॥ अन्यास्तत्रा गता देव्य इंद्राणीप्रमुखा भृशम् ॥ युध्यमाना महाराज वाहनैरायुधैर्युताः ॥ ४० ॥

इस प्रकार आर्त्तनाद करते करते दैत्यपति शुम्भसे जाकर कहा ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! अंबिका देवीने रक्तबीजको मार डाला है और चामुण्डाने उसका सभी रक्त पान किया है ॥ ३६ ॥ प्रचण्ड वेगशाली देवीके वाहन सिंहने अन्यान्य वीर्यशाली दानवोंको निहत किया है और कालीने बची हुई सेनाको जीत लिया है ॥ ३७ ॥ हे दानवेन्द्र ! युद्धका यह सब वृत्तान्त और चण्डिका देवीके समरांगणके वे अद्भुत चरित्र कहनेके लिये ही हम भागकर आपके पास आये हैं ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! हमारे विचारसे क्या दैत्य, क्या दानव, क्या गंधर्व क्या असुर, क्या यक्ष, क्या पन्नग, क्या चारण, क्या राक्षस क्या उरग कोई इस रमणीके जीतनेमें समर्थ नहीं हो सकेगा ॥ ३९ ॥ हे राजेन्द्र ! इन्द्राणी इत्यादि अपर सब शक्तियें उस समरस्थलमें आई हैं वह

अपने अपने वाहनपर चढ़ कर अनेक प्रकारके आयुधोंसे युद्ध करती हैं ॥ ४० ॥ हे दानवेन्द्र ! अधिक और क्या कहें उन सबने एकत्र मिलकर उत्तमोत्तम आयुधोंसे सब दानवोंकी सेना और उस रक्तबीजको भी विना विलम्ब मार डाला है ॥ ४१ ॥ उस अमित प्रभाव सिंहने भी समरमें अनेक दानवोंको निहत किया है हे राजन् ! एकमात्र उस देवीका ही भार सहना कठिन था इसपर भी अब वह देवताओंकी शक्तियोंसे मिलित होकर युद्ध करती है ॥ ४२ ॥ अतएव मंत्रियोंके संग परामर्श करके जो युक्ति संगत हो वही करो. हमारे विचारमें उससे शत्रुता छोड़कर संधि करना ही तुम्हारे पक्षमें अति उत्तम है ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! विचार कर देखिये कि उस रमणीने सब दानवोंको मार फिर रक्तबीजका सब शोणित पानकर उसको भी मार डाला इसकी अपेक्षा आश्चर्यका विषय और क्या है ? ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! अंबिका देवीने अपरापर सब दैत्योंको ही रणस्थलमें विनष्ट किया है व चामुण्डाने उनका

ताभिः सर्वं हतं सैन्यं दानवानां वरायुधैः ॥ रक्तबीजोऽपि राजेंद्र तरसा विनिपातितः ॥ ४१ ॥ एकाऽपि दुःसहा देवि किं पुनस्ताभिरन्विता ॥ सिंहोऽपि हन्ति संग्रामे राक्षसानमितप्रभः ॥ ४२ ॥ अतो विचार्य सचिवैर्यद्युक्तं तद्विधीयताम् ॥ न वैरमनया युक्तं संधिरेव सुखप्रदः ॥ ४३ ॥ आश्चर्यमेतदखिलं यन्नारी हंति राक्षसान् ॥ रक्तबीजोऽपि निहतःपीतं तस्यापि शोणितम् ॥ ४४ ॥ अन्ये निपातिता दैत्याः संग्रामेंऽबिकया नृप ॥ चामुंडया च मांसं वै भक्षितं सकलं रणे ॥ ४५ ॥ वरं पातालगमनं तस्याः सेवाऽथवा वरा ॥ न तु युद्धं महाराज कार्यमंबिकया सह ॥ ४६ ॥ न नारी प्राकृता ह्येषा देवकार्यार्थसाधिनी ॥ मायेयं प्रबला देवी क्षपयंतीयमुत्थिता ॥ ४७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचस्तथ्यं श्रुत्वा कालविमोहितः ॥ मुमूर्षुः प्रत्युवाचेदं शुंभः प्रस्फुरिताधरः ॥ ४८ ॥ शुंभ उवाच ॥ यूयं गच्छत पातालं शरणं वा भयातुराः ॥ हनिष्याम्यहमद्यैव तां च ताश्च समुद्यतः ॥ ४९ ॥

रुधिर और मांस सभी भक्षण किया है ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! यह सब देखकर विचार होता है कि अंबिका देवीकी सेवा या पातालपुरमें भागना यह दोनों कार्य हमारे पक्षमें श्रेष्ठ हैं. किंतु उससे युद्ध करना कभी बोध नहीं होता ॥ ४६ ॥ यह सामान्य स्त्री नहीं है, बरन् निःसंदेह महामाया है. केवल देवताओंका प्रयोजन सिद्ध करनेको ही प्रगट होकर असुरकुलक्षय करती हैं ॥ ४७ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! दैत्यपति शुम्भ कालकी मायासे मोहित होनेके कारण मुमूर्षु हुआ था, इसलिये उनके इस प्रकार प्रकृत वचन सुनकर भी क्रोधसे कंपिताधर हो उसने इस प्रकार उत्तर दिया ॥ ४८ ॥ तुम भयातुर होकर चंडिकाकी शरणमें जाओ. अथवा पातालमें भागो, किन्तु मैं उद्योगी होकर उसका अभी विनाश करूंगा ॥ ४९ ॥

मैंने सब देवताओंको जीतकर विपुल साम्राज्य भोग किया है. अब क्या एक सामान्य नारीके भयसे उद्विग्न होकर पातालमें प्रवेश करूं ? ॥ ५० ॥ मैंने अपने सेवक रक्तबीजादि प्रधान प्रधान वीरोंको समरमें संहार कराया. विशेष कर अपने उस विपुल यशको छोड इस समय अपने बाणोंकी रक्षाके लिये किस प्रकार भागूं ? ॥ ५१ ॥ क्योंकि कालसे कल्पित प्राणियोंकी मृत्यु अनिवार्य है. जन्मग्रहण करते ही जीवको मरण भय उपस्थित होता है, तो कौन पुरुष मृत्युके भयसे दुर्लभ यशके त्यागनेमें समर्थ होता है ? ॥ ५२ ॥ हे निशुंभ ! मैं रथमें चढ़कर अभी समरमें जाता हूं और युद्धमें उसको मारकर लौटूंगा और यदि उसको संग्राममें नहीं मारसका तो फिर लौटकर नहीं आऊंगा ॥ ५३ ॥ हे वीरवर ! तुम सेना सहित समरमें मेरे पार्ष्णिरक्षक होओ और अति वेगसे

जित्वा सर्वान्सुरानाजौ कृत्वा राज्यं सुपुष्कलम् ॥ कथं नारीभयोद्विग्नः पातालं प्रविशाम्यहम् ॥ ५० ॥ निहत्य पार्षदान्सर्वान्रक्तबीज मुखान्रणे ॥ प्राणत्राणाय गच्छामि हित्वा किं विपुलं यशः ॥ ५१ ॥ मरणं त्वनिवार्यं वै प्राणिनां कालकल्पितम् ॥ तद्भयं जन्म नोपात्तं त्यजेत्को दुर्लभं यशः ॥ ५२ ॥ निशुंभाहं गमिष्यामि रथारूढो रणाजिरे ॥ हत्वा तामागमिष्यामि नागमिष्यामि चान्यथा ॥ ५३ ॥ त्वं तु सेनायुतो वीर पार्ष्णिग्राहो भवस्व मे ॥ तरसा तां शरैस्तीक्ष्णैर्नारीं नय यमालये ॥ ५४ ॥ निशुंभ उवाच ॥ अहमद्यहनिष्यामि गत्वा दुष्टां च कालिकाम् ॥ आगमिष्याम्यहं शीघ्रं गृहीत्वा तामथांबिकाम् ॥ ५५ ॥ मा चिंतां कुरु राजेंद्र वराकायास्तु कारणे ॥ क्वैषा बाला क्व मे बाहुवीर्यं विश्ववशंकरम् ॥ ५६ ॥ त्यक्त्वाऽऽर्तिं विपुलां भ्रातर्भुक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ आनयिष्याम्यहं कामं मानिनीं मानसंयुताम् ॥ ५७ ॥ मयि तिष्ठति ते राजन्न युक्तं गमनं रणे ॥ गत्वाऽहमानयिष्यामि तवार्थे वै जयश्रियम् ॥ ५८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा भ्रातरं ज्येष्ठं कनीयान्बलगर्वितः ॥ रथमास्थाय विपुलं सन्नद्धः स्वबलावृतः ॥ ५९ ॥

तीक्ष्ण बाण प्रहार कर उस स्त्रीको यम सदनमें प्रेरण करो ॥ ५४ ॥ निशुम्भने कहा मैं अभी समरमें जाकर प्रथम उस दुष्टा कालिकाको मारता हूं और फिर उस अम्बिकाको लेकर अभी आऊंगा ॥ ५५ ॥ हे राजेन्द्र ! मेरे बाहुबलसे विश्व (संसार) वशीभूत हुआ है. सुतरां मेरे सन्मुख वह बाला अतिसामान्य है, अतएव आप इस तुच्छ रमणीके लिये वृथा चिन्ता न कीजिये ॥ ५६ ॥ हे भ्राता ! उस मानिनी स्त्रीको मैं यथेष्ट सम्मान सहित ले आऊंगा आप कठिन मानसिक व्यथा त्यागकर अनुत्तम भोग, भोग कीजिये ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! मेरे रहते आपको समरमें जाना उचित नहीं है मैं युद्धमें जाकर अभी आपके लिये जयलक्ष्मी लाऊंगा ॥ ५८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! छोटे भाई निशुंभने अपने बाहुबलसे गर्वित हो, बडे भ्राता शुंभसे इस प्रकार कहकर कवचद्वारा शरीर आच्छादन

किया और अनेक प्रकारके आयुध इत्यादि युद्धकी सब सामग्रीसे सुसज्जित हो विशाल रथमें बैठकर ॥ ५९ ॥ शीघ्र युद्धमें गया, तब बंदी और सूतगण उसकी स्तुति करने लगे और अनेक प्रकारके माङ्गल्यकार्य होने लगे ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! तब वह पराक्रमशाली निशुंभ युद्धमें जीत हो वा न हो, मृत्यु होगी यह स्थिरकर अति उत्साह सहित सब सेनाको संग ले देवीसे संग्राम करनेके लिये गया ॥ १ ॥ इधर दैत्यपति शुम्भ भी अपनी सेना सहित निशुंभके पीछे आया। शुम्भ धर्मयुद्धमें अति पण्डित था, इस कारण उस काल स्वयं युद्ध न करके केवल उनका युद्ध देखने लगा ॥ २ ॥ इन्द्र इत्यादि देवता और यक्षगण उस घोरतर समर देखनेकी इच्छा कर मेघमालामें आच्छन्न हो

जगाम तरसा तूर्णं संगरे कृतमंगलः ॥ संस्तुतो बन्दिसूतैश्च सायुधः सपरिष्करः ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ निशुम्भो निश्चयं कृत्वा मरणाय जयाय वा ॥ सोद्यमः सबलः शूरो रणे देवीमुपाययौ ॥ १ ॥ तमाजगाम शुम्भोऽपि स्वबलेन समावृतः ॥ प्रेक्षकोऽभूद्रणेराजा संग्रामरसपण्डितः ॥ २ ॥ गगने संस्थिता देवास्तदाऽभ्रपटलावृताः ॥ दिदृक्षवस्तु संग्रामे सेंद्रा यक्षगणातथा ॥ ३ ॥ निशुम्भोऽथ रणे गत्वा धनुरादाय शार्ङ्गकम् ॥ चकार शरवृष्टिं स भीषयञ्जगदंबिकाम् ॥ ४ ॥ मुञ्चंतं शरजालानि निशुंभं चंडिका रणे ॥ वीक्ष्यादाय धनुः श्रेष्ठं जहास सुस्वरं मुहुः ॥ ५ ॥ उवाच कालिकां देवी पश्य मूर्खत्वमेतयोः ॥ मरणायागतौ कालि मत्समीपमिहाधुना ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा दैत्यवधं घोरं रक्तबीजात्ययं तथा ॥ जयाशा कुरुतस्त्वेतौ मोहितौ मम मायया ॥ ७ ॥ आशा बलवती ह्येषा न जहाति नरं क्वचित् ॥ भग्नं हतबलं नष्टं गतपक्षं विचेतनम् ॥ ८ ॥

आकाश मंडलमें अवस्थिति करने लगे ॥ ३ ॥ अनन्तर निशुम्भ रणस्थलमें उपस्थित हो शृंग निर्मित दृढ़ धनुष ग्रहणकर जगदंबिकाको भय दिखाय बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४ ॥ चण्डिका निशुम्भको श्रेष्ठ धनुष ले बाणोंकी वर्षा करता हुआ देखकर मृदु मन्दस्वरसे वारंवार हास्य करने लगी ॥ ५ ॥ और फिर कालिकासे कहा हे कालि ! इसकी मूर्खता देखो. यह मृत्युकी इच्छा करके ही इस समय मेरे निकट आया है ॥ ६ ॥ यह मेरी मायासे ऐसा मोहित है कि, दानवोंका यह घोरतर क्षय और रक्तबीजका निर्धन देख अब भी जयकी आशा करता है ॥ ७ ॥ आशा ऐसी ही बलवती है कि वह कभी प्राणियोंको नहीं छोडती। क्या आश्चर्य है ? स्वपक्षीय बलमेंसे कितनेही भग्न, कितनेही नष्ट, कितनेही चेतना रहित और कितनेही बलहीन हुए हैं ॥ ८ ॥

यह प्रत्यक्ष देखकर भी यह जयाशारूपी पाशसे बँधकर मरनेके लिये आये हैं. हे कालि ! अब मैं समरमें निःसन्देह इस शुंभ और निशुम्भको वध करूंगा ॥ ९ ॥ इनका मृत्यु निकटवर्ती है, अतएव यह दैवमायासे मोहित होकरही मेरे निकट उपस्थित हुए हैं, इस कारण अब सब देवताओंके सामनेही मैं इनको निहत करूंगी ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! चण्डीने कालिकासे यह बात कहतेही सहसा कानोंपर्यन्त धनुषको खैंच मारे बाणोंके पुरोवर्ती शुम्भको ढक दिया ॥११॥ निशुम्भने भी तत्काल शणित बाणोंसे उनके वह सब बाण काटे दिये, तब इस प्रकार उनका परस्पर अत्यन्त भयानक युद्ध होने लगा ॥ १२ ॥ इसी समयमे भगवतीके सिंहने केशर कंपायमान करते हुए बलवान् हाथी जिस प्रकार सरोवरमें प्रवेश करता है इसी प्रकार उस सेनारूपी समुद्रमें

आशापाश निबद्धौ द्वौ युद्धायसमुपागतो ॥ निहन्तव्यो मया कालि रणे शुम्भनिशुंभको ॥ ९ ॥ आसन्नमरणावेतौ संप्राप्तौ दैवमोहितौ ॥ पश्यतां सर्वदेवानां हनिष्याम्यहमद्य तौ ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा कालिकां चण्डी कर्णाकृष्ट शरोत्करैः ॥ छादयामास तरसा निशुंभं पुरतः स्थितम् ॥ ११ ॥ दानवोऽपि शरांस्तस्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ तयो परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम् ॥ १२ ॥ केसरीकेशजालानि धुन्वानः सैन्यसागरम् ॥ गाहयामास बलवान्सरसीं वारणो यथा ॥१३॥ नखैर्दंतप्रहारैस्तु दानवान्पुरतः स्थितान् ॥ चखाद च विशीर्णांगान्गजांनिव मदोत्कटान् ॥ १४ ॥ एवं विमथ्यमाने तु सैन्ये केसरिणा तदा ॥ अभ्यधावन्निशुंभोऽथ विकृष्टवरकार्मुकः ॥ १५ ॥ अन्येऽपि क्रुद्धा दैत्येंद्रा देवीं हंतुमुपाययुः ॥ संदष्टदंतरसना रक्तनेत्रा ह्यनेकशः ॥ १६ ॥ तत्राजगाम तरसा शुंभः सैन्य समावृतः ॥ निहत्य कालिकां कोपाद् ग्रहितुं जगदंबिकाम् ॥ १७ ॥ तत्रागत्य ददर्शाजावंबिकां च पुरः स्थिताम् ॥ रौद्ररससंयुतांकांतां शृङ्गाररससंयुताम् ॥ १८ ॥

अवगाहन किया ॥ १३ ॥ उसकाल जो जो दावन उसके सामने पड़ने लगे, वैसेही वह नख और दाँतोंके प्रहारसे उनके सब अंगोंको विदीर्ण कर मदमत्त हाथीके समान उनका भक्षण करने लगा ॥ १४ ॥ उसके शरीरके इस प्रकार सैन्यविमर्दन करनेपर फिर निशुम्भ उत्कृष्ट धनुषको ग्रहण करके दौड़ा ॥१५॥ तब अन्यान्य शत शत दानव पतिभी क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर दाँतोंसे होठोंको काटते देवीको मारनेके लिये वहां आये ॥ १६ ॥ इधर शुम्भ कालिकाको निहत कर जगदम्बिकाको ग्रहण करनेकी इच्छासे सेनाको संग ले अत्यन्त वेगसहित वहां आया ॥ १७ ॥ शुम्भने रणस्थलमें आकर देखा कि जगदम्बिका सन्मुख हो विराजमान है, वह शृंगाररसोचित कमनीय कान्ति धारण करनेपर भी रौद्ररसमें परिपूर्ण हो रही हैं ॥ १८ ॥

उन त्रिभुवन सुन्दरी विपुल अपांगवाली भगवतीके दोनों नेत्र स्वाभाविक रक्तवर्ण होनेपर भी उस काल कोपके कारण अत्यन्त लोहित होगये थे ॥ १९ ॥ शुम्भने उनका ऐसा रूपलावण्य देखकर भी विवाहकी इच्छा और जयेच्छाको त्याग किया और मरनेमें स्थिरनिश्चय हो धनुष धारण कर स्थिति करने लगा ॥ २० ॥ तब देवी समरस्थलमें दानवको इस प्रकार स्थित देखकर कुछेक हास्यसहित सम्पूर्ण दानवोंके सन्मुख कहने लगी ॥२१॥ रे पामरगण ! यदि तुमको जीवित रहनेकी इच्छा हो तो इसी स्थानमें सब अस्त्र शस्त्र छोड़कर पाताल अथवा समुद्रमें भाग जाओ ॥ २२ ॥ वा मेरे बाणोंके प्रहारसे रणस्थलमें विनष्ट हो, स्वर्गसुख प्राप्त कर निर्भय क्रीडारसका अनुभव करो ॥ २३ ॥ एक समय वा एकाधारमें किसी प्रकारसे कातरता और वीरता प्रकाशित नहीं होती इस

तां वीक्ष्य विपुलापांगीं त्रैलोक्यवरसुंदरीम् ॥ सुरक्तनयनां रम्यां क्रोधरक्तेक्षणां तथा ॥१९॥ विवाहेच्छां परित्यज्य जयाशां दूरतस्तथा ॥ मरणे निश्चयं कृत्वा तस्थावाहितकार्मुकः ॥ २० ॥ तं तथा दानवं देवीस्मितपूर्वमिदं वचः ॥ बभाषे शृण्वतां तेषां दैत्यानां रणमस्तके ॥ २१ ॥ गच्छध्वं पामरा यूयं पातालं वा जलार्णवम् ॥ जीविताशां स्थिरां कृत्वा त्यक्त्वाऽत्रैवायुधानि च ॥ २२ ॥ अथवा मच्छराघातहतप्राणा रणाजिरा ॥ प्राप्य स्वर्गसुखं सर्वे क्रीडंतु विगतज्वराः ॥ २३ ॥ कातरत्वं च शूरत्वं न भवत्येव सर्वथा ॥ ददान्यभयदानं वै यांतु सर्वे यथासुखम् ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्या निशुंभो मदगर्वितः ॥ निशितं खड्गमादाय चर्म चैवाष्टचंद्रकम् ॥ २५ ॥ धावमानस्तु तरसाऽसिना सिंहं मदोत्कटम् ॥ जघानातिबलान्मूर्ध्नि भ्रामयञ्जगदंबिकाम् ॥ २६ ॥ ततो देवी स्वगदया वंचयित्वाऽसिपातनम् ॥ ताड़यामास तं बाहोर्मूले परशुना तदा ॥ २७ ॥ खड्गेन निहतः सोऽपि बाहुमूले महामदः ॥ संस्तभ्य वेदनां भूयो जघान चंडिकां तदा ॥ २८ ॥ साऽपि घंटास्वनं घोरं चकार भयदं नृणाम् ॥ पपौ पुनः पुनः पान निशुंभं हंतुमिच्छति ॥ २९ ॥

कारण मैं सबको ही अभय देती हूं, अब जिस स्थानमें सुख हो उसी स्थानमें चले जाओ ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! वह मद गर्वित निशुम्भ देवीके इस प्रकार वचन सुन निशित खड्ग और अष्टचन्द्रक शोभायमान चर्म ढाल लेकर दौड़ा ॥ २५ ॥ और प्रथम तो असिद्वारा मदमत्त सिंहके मस्तकमें वेगसहित प्रहार किया और फिर वह असि अत्यन्त बलपूर्वक घुमाय जगदंबिकाके ऊपर चलाई ॥ २६ ॥ तब देवी अपनी गदासे असिका आघात निवारण करके परशुद्वारा उसके बाहुमूलमें प्रहार किया ॥ २७ ॥ वीरवर निशुम्भ बाहुमूलमें आहत होकर भी उस वेदनाको सहकर फिर चंडिकाको खड्गद्वारा प्रहार किया ॥ २८ ॥ तब देवीने ऐसी घोर घण्टाध्वनि करी कि उससे संपूर्ण दैत्य डर गये, फिर उन्होंने निशुंभको मारनेकी इच्छासे वारंवार

मधुपान किया ॥ २९ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार परस्पर जयाभिलाषी देवता और दानवोंका अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ॥ ३० ॥ उसकाल मांसभक्षक क्रूरप्रकृति शारमेय (श्वान समूह) जम्बुक, गृध्र, कंक (पक्षिविशेष) और वायस इत्यादि पक्षीगण अत्यन्त सन्तुष्ट होकर रणस्थलमें नाचने लगे ॥ ३१ ॥ असंख्य दानव हाथी और घोड़ोंके देह रुधिर धारणमें भीजकर समरमें गिरनेसे रणभूमिने अत्यंत भयंकर आकार धारण किया ॥ ३२ ॥ तब निशुंभ दानवोंको गिरता हुआ देखकर अत्यन्त क्रोधके वशीभूत हुआ और दारुण गदा लेकर तत्काल चंडिकाके निकट दौड़ा ॥ ३३ ॥ उस मदगर्वित असुरने प्रथम तो सिंहके मस्तकमें गदाप्रहार करके हास्य किया और उसी गदासे देवीपर प्रहार किया ॥ ३४ ॥ देवीनेभी पुरोवर्ती निशुम्भको प्रहार करते

एवं परस्परं युद्धं बभूवाऽतिभयप्रदम् ॥ देवानां दानवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥३०॥ पलादाः पक्षिणः क्रूरा सारमेयाश्चजंबुकाः ॥ ननृतुश्चाऽतिसंतुष्टा गृध्राः कंकाश्च वायसाः ॥३१॥ रणभूर्भाति भूयिष्ठपतिताऽसुरवर्ष्मकैः ॥ रुधिरस्रावसंयुक्तैर्गजाश्वदेहसंकुला ॥३२॥ पतितान्दानवान्दृष्ट्वा निशुंभोऽतिरुपान्वितः ॥ प्रययौ चंडिकां तूर्णं गदामादाय दारुणम् ॥ ३३ ॥ सिंहं जघान गदया मस्तके मदगर्वितः ॥ प्रहृत्य च स्मितं कृत्वा पुनर्देवीमताडयत् ॥ ३४ ॥ साऽपि तं कुपिताऽतीव निशुंभं पुरतः स्थितम् ॥ प्रहरंतं समीक्ष्याऽथ देवी वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ देव्युवाच ॥ तिष्ठ मंदमते तावद्यावत्खड्गमिदं तव ॥ ग्रीवायां प्रेरयाम्यस्माद्गंतासि यमसादनम् ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच॥ इत्युक्त्वा तरसा देवीं कृपाणेन समाहिता ॥ चिच्छेद मस्तकं तस्य निशुंभस्याऽथ चंडिका ॥ ३७॥ स च्छिन्नमस्तको देव्या कबंधोऽतीव दारुणः ॥ बभ्राम च गदापाणिस्त्रासयन्देवतागणान् ॥ ३८ ॥ देवी तस्य शितैर्बाणैश्चिच्छेद चरणो करौ ॥ पपातोर्व्यां ततः पापी गतासुः पर्वतोपमः ॥ ३९ ॥ तस्मिन्निपतिते दैत्ये निशुंभे भीमविक्रमे ॥ हाहाकारो महानासीत्तत्सैन्ये भयकंपिते ॥ ४० ॥

देख अत्यन्त कुपित होकर कहा ॥ ३५ ॥ रे मन्दमते ! जबतक मैं इस खड्गसे तेरा गला नहीं काटती हूं तबतक अपेक्षा कर, अब तू शीघ्र ही छिन्नस्कन्ध होकर शमनभवनमें जायगा ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! चंडिका देवीने यह बात कहते ही अत्यंत सावधानीसे कृपाण द्वारा तत्काल उस निशुम्भका मस्तक काटडाला ॥ ३७ ॥ देवीके प्रहारसे मस्तक कट जानेपर वह अतिदारुण कबन्ध गदा हाथमें लेकर प्रचंड वेगसे भ्रमण करने लगा ! तब देवता उसकी ऐसी अवस्था देखकर अत्यन्त भीत हुए ॥ ३८ ॥ फिर देवीने शाणित बाणोंसे उस कबन्धके हाथ और पांव काट डाले, तब वह पापिष्ठ जीवनविहीन होकर पर्वतके समान पृथ्वीमें गिर गया ॥ ३९ ॥ उस भीमपराक्रम दानव निशुंभके मरनेपर उसकी भय कम्पित सेनामें महान हाहाकार शब्द हुआ ॥४०॥

तब सब सैनिक रुधिरकी धारामें प्लावित होकर समस्त आयुध परित्यागपूर्वक आर्त्तनाद करते करते असुरराज शुम्भके समीप भागकर गये ॥ ४१ ॥ उस शत्रुनिषूदन शुम्भने उनको आया हुआ देखकर पूंछा हे दैत्यगण ! इस समय निशुम्भ कहां है ? तुम किसलिये रणसे भागकर चले आये हो ? ॥ ४२ ॥ उन सैनिकोंने शुम्भके इस प्रकार वचन सुनकर प्रणामपूर्वक कहा हे राजन् ! आपके भाई निशुम्भने निहत होकर रणभूमिमें शयन किया है ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! जो सब वीर दानव तुम्हारे भ्राताके अनुगामी हुए थे, देवीने उनकोभी मारडाला है, केवल हमलोग ही आपसे यह वृत्तान्त कहनेके लिये यहां आये हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! सम्प्रति देवीके शस्त्रप्रहारसे निशुम्भ मृत्युको प्राप्त हुए हैं, इस कारण अब आपके उस संग्रामस्थलमें जानेका उपयुक्त समय नहीं है, यही हमको बोध होता है ॥ ४५ ॥ देव कार्यके मिषसे सबकी कारणरूपिणी कोई उत्कृष्ट रमणी दानवकुलका संहार करनेको आई है, यह

त्यक्त्वाऽऽयुधानि सर्वाणि सैनिकाः क्षतजाऽऽप्लुताः ॥ जग्मुर्बुबारवं सर्वे कुर्वाणा राजमंदिरम् ॥ ४१ ॥ तानागतान्सुसंप्रेक्ष्य शुम्भः शत्रुनिषूदनः ॥ पप्रच्छ क्व निशुंभोऽसौ कथं भग्नाः पलायिता ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञस्ते प्रोचुः प्रणता भृशम् ॥ राजंस्ते निहतो भ्राता शेते समरमूर्धनि ॥ ४३ ॥ तया निपातिताः शूरा ये च तेऽप्यनुजानुगाः ॥ वयं त्वां कथितुं सर्वं वृत्तांतं समुपागताः ॥ ४४ ॥ निशुम्भो निहतस्तत्र तया चण्डिकयाधुना ॥ नहि युद्धस्य कालोऽद्य तव राजन्रणांगणे ॥४५॥ देवकार्यं समुद्दिश्य काऽपीयं परमांगना ॥ हंतुं दैत्यकुलं नूनं प्राप्तेति परिचिंतय ॥ ४६ ॥ नैषा प्राकृतयोषैव देवी शक्तिरनुत्तमा ॥ अचिंत्यचरिता क्वाऽपि दुर्ज्ञेया दैवतैरपि ॥४७॥ नानारूपधरातीव मायामूलविशारदा ॥ विचित्रभूषणा देवी सर्वायुधधरा शुभा ॥ ४८ ॥ गहना गूढचरिता कालरात्रिरिवापरा ॥ आपार पारगा पूर्णासर्वलक्षणसंयुता ॥४९॥ अन्तरिक्षस्थिता देवास्तांस्तांस्तुवंत्यकुतोभयाः ॥ देवकार्यं च कुर्वाणां श्रीदेवीं परमाद्भुताम् ॥५०॥

आप निश्चय जानिये ॥ ४६ ॥ यह देवी कभी सामान्य रमणी नहीं है. यह निस्सन्देह परमाशक्ति हैं, इनके चरित्रचिन्ताके अगोचर हैं अधिक क्या इन अनुत्तमा शक्तिको देवतालोग भी कभी जाननेमें समर्थ नहीं होते ॥ ४७ ॥ जितनी माया हैं, यह देवी भलीभांति उनका मूल जानती हैं. अतएव उसी मायाके बलसे इस समय नानाप्रकारके रूपधारण किये हैं,उन मङ्गलमयीने विचित्र भूषणोंसे भूषित होकर समस्त आयुध धारण किये हैं ॥ ४८ ॥ यह देखनेसे दूसरी कालरात्रिके समान भयंकर बोध होती है इनके चरित्रोंका जानना अतिकठिन है, सर्वसुलक्षणोंसे विभूषित यह पूर्णा प्रकृति कठिन कार्यके करनेमें भी समर्थ हैं ॥ ४९ ॥ अधिक क्या कहें? अद्भुत स्वभावा वह देवी देवताओंका कार्य साधन करती है और देवतालोग आकाशमें टिके हुए निडर होकर

उनका स्तव करते हैं ॥ ५० ॥ हे महाराज! अब देहकी रक्षा करना ही प्रधान धर्म है. क्योंकि इस देहकी रक्षा होनेसेही फिर जब समय हमारे अनुकूल होगा ॥ ५१ ॥ तब आपकी भी समरमें जय होगी. इसमें संदेह नहीं. देखो, काल किसी समय बलवान्को दुर्बल करता है ॥ ५२ ॥ और समयान्तरमें उसको ही सबल करके विजयके निमित्त उद्यत करता है, काल किसी समय दाताको भिक्षुक ॥ ५३ ॥ और समयान्तरमें उस भिक्षुकको धनदाता करता है अधिक क्या ? ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर ॥ ५४ ॥ और इन्द्रादि देवता सभी कालके वशीभूत हैं. अतएव कालही स्वयं सब विषयोंका प्रभु है. इस कारण हे महाराज ! आप कालकी प्रतीक्षा कीजिये, इस समय काल देवताओंके अनुकूल और आपके प्रतिकूल है ॥ ५५ ॥ इसलिये ही देवताओंके सन्मुख ही

पलायनं परो धर्म सर्वथा देहरक्षणम् ॥ रक्षिते किल देहेऽस्मिन्कालेऽस्मत्सुखतां गते ॥५१॥ संग्रामे विजयो राजन्भविता ते न संशयः ॥ कालः करोति बलिनं समये निर्बलं क्वचित् ॥ ५२ ॥ तं पुनः सबलं कृत्वा जयायोपदधाति हि ॥ दातारं याचकं कालः करोति समये क्वचित् ॥ ५३ ॥ भिक्षुकं धनदातारं करोति समयांतरे ॥ विष्णुः कालवशे नूनं ब्रह्मा वा पार्वतीपतिः ॥ ५४ ॥ इंद्राद्या निर्जराः सर्वे काल एव प्रभुः स्वयम् ॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षस्व विपरीतं तवाधुना ॥ ५५ ॥ संमुखो देवतानां च दैत्यानां नाशहेतुकः ॥ एकैव च गतिर्नास्ति कालस्य किल भूपते ॥ ५६ ॥ नानारूपधराऽप्यस्ति ज्ञातव्यं तस्य चेष्टितम् ॥ कदाचित्संभवो नृणां कदाचित्प्रलयस्तथा ॥ ५७ ॥ उत्पत्तिहेतुः कालोऽन्यः क्षयहेतुस्तथाऽपरः ॥ प्रत्यक्षं ते महाराज देव्याः सर्वे सवासवाः ॥ ५८ ॥ करदास्ते कृताः पूर्वं कालेन संमुखेन च ॥ तेनैव विमुखेनाद्य बलिनोबलयाऽसुराः ॥ ५९ ॥ निहता नितरां कालः करोति च शुभाशुभम् ॥ नैवात्र कारणं काली नैव देवाः सनातनाः ॥ ६० ॥

वह काल अब दैत्योंका नाश करता है किंतु हे भूपते! कालकी गति कभी एक प्रकारकी नहीं है ॥ ५६ ॥ बरन् उसके कार्य नानाप्रकारके होते हैं, यह आप निश्चय जानिये काल कभी मनुष्योंको उत्पन्न करता है और कभी उनका संहार करता है ॥ ५७ ॥ हे महाराज! उत्पत्तिका काल एक और नाशका एक दूसरा है यह तो आपने प्रत्यक्ष ही देवी और इन्द्रादि विषयमें देखा है ॥ ५८ ॥ क्योंकि जब काल आपके अनुकूल था तब आपने इन्द्रादि सब देवताओंको करद किया था अब वह काल ही आपके प्रतिकूल हुआ है इस कारण एक सामान्य अबला नारी भी बलवान् असुरोंको निहत करती है ॥ ५९ ॥ अतएव काल सदा ही शुभ वा अशुभ करता है. सनातन देवता अथवा वह काली इसका कारण नहीं है ॥ ६० ॥

हे राजन् ! वर्तमान काल आपके और दानवोंके अनुकूल नहीं है अतएव आप इसको जानकर जो इच्छा हो सो कीजिये ॥ ६१ ॥ देखो पूर्वकालके समय इन्द्र, विष्णु, रुद्र, वरुण यम इत्यादि प्रधान प्रधान देवता भी आयुधत्यागपूर्वक रणमें पीठ दिखाय आपके सन्मुखसे भागे थे ॥ ६२ ॥ उसी प्रकार आप भी अब जगतको कालके वशीभूत जान रणसे भागकर शीघ्र पातालमें प्रवेश कीजिये; क्योंकि जीवित रहनेपर पुनर्वार सब सुख प्राप्त होंगे ॥ ६३ ॥ और यदि आप मृत्युके कराल गालमें गिर गये तो वह आपके शत्रु आनन्दित हो मंगलसूचक गान करते हुए निर्भय सर्वत्र विचरण करेंगे ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! दानवपति शुंभ उन सैन्यगणोंके इस प्रकार वचन सुन

यथा ते रोचते राजंस्तथा कुरु विमृश्य च ॥ कालोऽयं नात्र हेतुस्ते दानवानां तथा पुनः ॥ ६१ ॥ त्वदग्रतो गतः शक्रो भग्नः संख्ये निरायुधः ॥ तथाविष्णुस्तथा रुद्रो वरुणो धनदो यमः ॥ ६२ ॥ तथा त्वमपि राजेंद्र वीक्ष्य कालवशं जगत् ॥ पातालं गच्छ तरसा जीवन्भद्रमवाप्स्यसि ॥ ६३ ॥ मृते त्वयि महाराज शत्रवस्ते मुदान्विताः ॥ मंगलानि प्रगायंते विचरिष्यंति सर्वतः ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा शुंभो दैत्यपतिस्तथा ॥ उवाच सैनिकानाशु कोपाकुलितलोचनः ॥१॥ शुंभ उवाच ॥ जाल्माः किं ब्रूत दुर्वाच्यं कृत्वा जीवितुमुत्सहे ॥ निहत्य सचिवान्भ्रातॄन्निर्लज्जो विचरामि किम् ॥ २ ॥ कालः कर्ता शुभानां वा ऽशुभानां बलवत्तरः ॥ का चिंता मम दुर्वारे तस्मिन्नीशेऽप्यरूपके ॥ ३ ॥ यद्भवति तद्भवतु यत्करोति करोतु तत् ॥ न मे चिंताऽस्ति कुत्रापि मरणाज्जीवनात्तथा ॥४॥ स कालोऽप्यन्यथा कर्तुं भावितो नेशते क्वचित् ॥ न वर्षति च पर्जन्यः श्रावणे मासि सर्वथा ॥ ५ ॥

क्रोधसे इधर उधर नेत्र चलाय तत्काल उनसे कहने लगा ॥ १ ॥ रे मूढगण ! तुम क्या कहते हो ? मैं क्या यह अकथनीय घृणित कार्य करके जीवन धारण करनेकी इच्छा कर सकता हूं ? कहो, मैं मंत्री और भ्राताओंको निहत करके अब निर्लज्ज हो किस प्रकार विचरण करनेमें समर्थ हूंगा ? ॥ २ ॥ कालही अच्छे वा बुरे कार्यका प्रधान कर्त्ता है, अतएव वह रूपविहीन कालही यदि अच्छा वा बुरा करने का अलंघनीय प्रभु है तो फिर मेरे चिंता करनेसे क्या फल होगा ? ॥ ३ ॥ जो होनहार है वह हो, जो करनेवाला है वह करे, मुझको मरण वा जीवन किसी बातकी चिंता नहीं है ॥ ४ ॥ विशे कर वह काल आराधित होनेपर भी मरण अथवा जीवनके अन्यथा करनेमें कभी समर्थ नहीं होता, देखो मेघ वर्षाकालमें वर्षा करके भी कभी कभी श्रावण

मासमें वर्षा नहीं करते ॥ ५ ॥ और कभी कभी अगहन पौष माघ अथवा फाल्गुन इत्यादि अकालमें भी अत्यन्त वर्षा करते हैं अतएव स्पष्ट जाना जाता है कि मुख्यता नहीं है ॥ ६ ॥ बरन् काल कवल निमित्तमात्र है और दैव ही कालकी अपेक्षा बलवान है अतएव दैवने ही सब विश्व संसारको बनाया है यह किसी प्रकारसे अन्यथा नहीं है ॥ ७ ॥ मैं देवको ही श्रेष्ठ विचारता हूं निरर्थक पुरुषकारको धिक्कार है क्योंकि जिस निशुम्भने सब देवताओंको जीत लिया था अब उसको ही एक सामान्य रमणीने मार डाला ॥ ८ ॥ हाय ! यह महावीर रक्तबीज भी जब मृत्युको प्राप्त हुआ है तब मैं कीर्ति विसर्जन करके किस प्रकारकी जीवनकी आशा करूं? ॥ ९ ॥ जिन्होंने स्वयं विश्व (संसार) बनाया है वे ब्रह्मा भी अपनी आयुका अंतिम काल उपस्थित

कदाचिन्मार्गशीर्षे वा पौषे माघेऽथ फाल्गुने ॥ अकाले वर्षतीवाशु तस्मान्मुख्यो न चास्त्ययम् ॥ ६ ॥ कालो निमित्तमात्रं तु दैवं हि बलवत्तरम् ॥ दैवेन निर्मितं सर्वं नान्यथा भवतीत्यदः ॥ ७ ॥ दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ जेता यः सर्वदेवानांनिशुंभोऽप्य नया हतः ॥ ८ ॥ रक्तबीजो महाशूरः सोऽपि नाशं गतो यदा ॥ तदाऽहं कीर्तिमुत्सृज्य जीविताशां करोमि किम् ॥ ९ ॥ प्राप्ते काले स्वयं ब्रह्मा परार्धद्वयसंमिते ॥ निधनं याति तरसा जगत्कर्ता स्वयप्रभुः ॥ १० ॥ चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो दिवसे किल ॥ पतंति भवनात्पंच नव चेंद्रास्तथा पुनः ॥ ११ ॥ तथैव द्विगुणे विष्णुर्मरणायोप्रकल्पते ॥ तथैव द्विगुणे काले शंकरः शांतिमेति च ॥ १२ ॥ का चिंता मरणे मूढा निश्चले दैवनिर्मिते ॥ महीमहीधराणां च नाशः सूर्यशशांकयोः ॥ १३ ॥ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ अध्रुवेऽस्मिञ्छरीरे तु रक्षणीयं यशः स्थिरम् ॥ १४ ॥

होनेपर तत्काल मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ देखो ब्रह्माके एक दिनमें चार हजार युग होते हैं और उस एक दिनमें ही चौदह इन्द्रोंका पतन होता है ॥ ११ ॥ इसी प्रकार इनका द्विगुण समय बीतनेपर विष्णुकी परमायु शेष होती है, और उनका द्विगुण काल बीतनेपर महादेवभी शान्तिलाभ करते हैं ॥ १२ ॥ इस दृश्यमान पृथ्वी, पर्वत, चन्द्र और सूर्य सबका ही विनाश होगा विशेषकर दैवने सबकाही मरण स्थिर कर रक्खा है अतएव रे मूढगण! उस विषयमें मुझको कुछ भी चिंता नहीं है ॥ १३ ॥ जीवके जन्म लेनेपर अवश्यही उसकी मृत्यु होगी और जीवका मरण होनेपर भी उसका फिर जन्म होगा इसमें सन्देह नहीं. अतएव इस नाशवान् शरीरसे स्थिर यशकी रक्षा करना ही मनुष्यका कर्त्तव्य है ॥ १४ ॥

मेरा रथ सज्जित करो, अब दैववशतः युद्धमें जय हो अथवा मरण हो, मैं शीघ्रही रणस्थलमें जाता हूं ॥ १५ ॥ अनन्तर शुम्भ सैनिकोंसे इस प्रकार कह, रथमें चढ़ हिमालय पर्वतके जिस स्थानमें अम्बिका देवी विराजमान थी उसी स्थानमें गया ॥ १६ ॥ तब हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों सहित चार प्रकारकी असंख्य सेना आयुध धारण करके उसके संग चली ॥ १७ ॥ शुम्भने हिमाचलमें जाकर उस जगदम्बिकाको देखा कि, वह हिमाचलके एक प्रदेशमें सिंहके ऊपर चढ़ी त्रिभुवनमोहिनी कान्ति धारण करके विराजमान हैं ॥ १८ ॥ उनके अंग प्रत्यंग अनेक प्रकारके अलंकारोंसे सुसज्जित और संपूर्ण शरीरमें सुलक्षण देदीप्यमान हैं; आकाशमें स्थित देवता, गंधर्व, यक्ष और किन्नरगण ॥ १९ ॥ पारिजातके पुष्पोंसे उनकी पूजा करके स्तव करते

रथो मे कल्प्यतां शीघ्रं गमिष्यामि रणाजिरे ॥ जयो वा मरणं वाऽपि भवत्वद्यैव दैवतः ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वा सैनिकान्शुंभोरथमास्थाय सत्वरः ॥ प्रययावंबिका यत्र संस्थिता तु हिमाचले ॥ १६ ॥ सैन्यं प्रचलितं तस्य संगे तत्र चतुर्विधम् ॥ हस्त्यश्वरथपादातिसंयुतंसायुधंबहु ॥ १७ ॥ तत्र गत्वाऽचले शुंभः संस्थितां जगदंबिकाम् ॥ त्रैलोक्यमोहिनीं कांतामपश्यत्सिंहवाहिनीम् ॥ १८ ॥सर्वाभरणभूषाढ्यां सर्व लक्षणसंवृताम् ॥ स्तूयमानां सुरैः खस्थैर्गंधर्वयक्षकिन्नरैः ॥ १९ ॥ पुष्पैश्च पूज्यमानां च मंदारपादपोद्भवैः ॥ कुर्वाणां शंखनिनद घंटानादं मनोहरम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा तां मोहमगमच्छुंभः कामविमोहितः ॥ पंचबाणाहतः कामं मनसा समचिंतयत् ॥ २१ ॥ अहो रूपमिदं सम्यगहो चातुर्यमद्भुतम् ॥ सौकुमार्यं च धैर्यं च परस्परविरोधि यत् ॥ २२ ॥ सुकुमाराऽतितन्वंगी सद्यःप्रकटयौवना चित्रमेतदसौ बाला कामभावविवर्जिता ॥ २३ ॥ कामकांतासमा रूपे सर्वलक्षण लक्षिता ॥ अंबिकेयं किमेतत्तु हंति सर्वान्महाबलान् ॥ २४ ॥

हैं और वह देवी जयसूचक मनोहर घण्टानाद और शंखध्वनि करती हैं ॥ २० ॥ शुम्भ उनको देखतेही काममे मोहित होगया और मन्मथशरसे विद्ध होकर मनमें चिन्ता करने लगा ॥ २१ ॥ अहो ! यह अत्याश्चर्यका रूप लावण्य है ! ! इसका चातुर्य भी अद्भुत और विस्मयकर है ! ! क्या आश्चर्य है ! सुकुमारता और समरसहिष्णुताका परस्पर विरोध होनेपर भी इसमें दोनोंही विद्यमान हैं ॥ २२ ॥ इसका शरीर अत्यन्त कोमल और अंग प्रत्यंग सब कृश हैं, उसपर भी सम्प्रति नवीन यौवनका उदय हुआ है, तथापि इस बालाको किंचिन्मात्र काम भाव नहीं है, यह अत्याश्चर्यका विषय है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥ कामकामिनीके समान अत्यन्त सुन्दरी और समस्त सुलक्षणोंसे विभूषित होकर भी प्रमोदादि त्यागकर यह अम्बिका इन बलवान्

असुरोंका संहार करती हैं, यह अति आश्चर्यका विषय है इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ जो हो; अब जिससे यह स्त्री मेरे वशीभूत हो, मुझको वही उपाय अवलम्बन करना चाहिये. इस मरालनयनाको वशमें करनेके लिये वशीकरण मन्त्र भी मेरे निकट नहीं है ॥ २५ ॥ अथवा मेरे पास मन्त्र रहनेसे ही क्या होगा ? यह मदगर्विता बाला समस्त मन्त्र स्वरूप है, अतएव उसी बलसे सब लोकोंको मोहित करती है, सुतरां यह वरवर्णिनी सुन्दरी किस प्रकार मेरे वशीभूत होगी ? ॥ २६ ॥ साम, दान और भेदसे यह वीराङ्गना वशमें होनेवाली नहीं है और अब समर स्थलसे भागकर पातालमें जाना भी युक्त संगत नहीं है ॥ २७ ॥ अतएव इस समय मेरा विषम समय उपस्थित है, अब क्या कर्त्तव्य है ? कहां जाऊं ? और यदि समर करनेपर इस स्त्रीके हाथसे मृत्यु हुई तो वह मृत्यु भी उत्तम नहीं है, बरन् उसमें यशकी हानि ही होगी ॥ २८ ॥ क्योंकि वीरगण सम्मुख समबलके सहित परस्पर युद्ध करके जो

उपायः कोऽत्र कर्तव्यो येन मे वशगा भवेत् ॥ न मंत्रा वा मरालाक्षी साधने सन्निधौ मम ॥२५॥ सर्वमंत्रमयी ह्येषा मोहिनी मदगर्विता ॥
सुंदरीयं कथं मे स्याद्वशगावरवर्णिनी ॥२६॥ पातालगमनं मेऽद्य न युक्तं समरांगणात् ॥ सामदानविभेदैश्चनेयं साध्या महाबला ॥२७॥
किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं विषमे समुपस्थिते ॥ मरणं नोत्तमं चाऽत्र स्त्रीकृतं तु यशोऽपहृत् ॥२८॥ मरणमृषिभिः प्रोक्तं संगरे मंगलास्पदम् ॥
यत्तत्समानबलयोर्योधयोर्युध्यतोः किल ॥२९॥ प्राप्तेयं देवरचिता नारी नरशतोत्तमा ॥ नाशायास्मत्कुलस्येह सर्वथाऽतिबलाऽबला ॥३०॥
वृथा किं सामवाक्यानि मया योज्यानि सांप्रतम् ॥ हननायागता ह्येषा किंतु साम्ना प्रसीदति ॥ ३१ ॥ न दानैश्चालितुं योग्या नानाशस्त्र
विभूषिता ॥ भेदस्तु विकलः कामं सर्वदेववशानुगा ॥ ३२ ॥ तस्मात्तु मरणं श्रेयो न संग्रामे पलायनम् ॥ जयो वा मरणं वाऽद्य भव
त्येव यथाविधि ॥ ३३ ॥

मृत्युको प्राप्त होते हैं, ऋषियोंने उसी मरणको मंगला स्पद कहते हैं ॥ २९ ॥ देवताओंने इस स्त्रीको सतपुरुषोंकी अपेक्षा भी बलवती करके निर्माण किया है सुतरां यह नाम मात्रकी अबला है कार्यमें इसके बलकी सीमा नहीं है. अतएव यह नारी हमारे कुलका क्षय करनेके लिये यहां आई है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३० ॥ अब साम वचन कहनेसे क्या फल होगा ? क्योंकि यह नारी हमारा विनाश करनेको आई है अतएव यह क्या साम वाक्यों से प्रसन्न होगी ? ॥ ३१ ॥ यह रमणी अब अनेक प्रकारके अस्त्र और शस्त्रोंसे सुसज्जित रहती है तो दान द्वारा इसको वशीभूत करना कभी संभव नहीं है और सब देवता जब इसके वशीभूत हैं तो भेद अवश्यही विफल होगा ॥ ३२ ॥ इस कारण पलायन न करके समरमें मरनाही श्रेष्ठ है. अब दैववश जय हो वा

मरण हो इसमें चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! शुम्भमनमें इस प्रकार विचार कर बल प्रकाश करनेमें उद्यत हुआ और युद्धके लिये स्थिर निश्चय हो सामने खड़ी देवीसे कहने लगा ॥ ३४ ॥ हे देवि ! तुम्हारे युद्ध करनेसे हानि नहीं है किन्तु हे कोमलांगि ! तुम्हारा यह श्रम करना विफल होता है तुमको कुछ ज्ञान नहीं है क्योंकि जो नारीका धर्म नहीं है तुम उसका ही आचरण करती हो ॥ ३५ ॥ क्योंकि स्त्रियोंके दोनों नेत्रही बाण, भ्रूयुगल शरासन, हाव भाव शस्त्र और शृंगाररस विचक्षण पुरुषही लक्ष्य स्थानीय है ॥ ३६ ॥ उनका अंगरागही युद्धका कवच, मनोरथ ही रथ और मृदु मधुर वाक्यालापही भेरी शब्द है. इनके अतिरिक्त स्त्रियोंके युद्धका दूसरा साज नहीं है ॥ ३७ ॥ अतएव हे कान्ते ! स्त्रीका अन्य अस्त्र धारण करना केवल विडम्बना मात्र है, इसमें सन्देह नहीं स्त्रीका लज्जाही भूषण है किन्तु धृष्टता उसका भूषण कभी नहीं हो सकता ॥ ३८ ॥ परम

व्यास उवाच ॥ इति संचिंत्य मनसा शुंभः सत्त्वाश्रितोऽभवत् ॥ युद्धाय सुस्थिरो भूत्वा तामुवाच पुरः स्थिताम् ॥३४॥ देवि युध्यस्य कान्तेऽद्य वृथाऽयं ते परिश्रमः ॥ मूर्खाऽसि किल नारीणां नाऽयं धर्मः कदाचन ॥ ३५ ॥ नारीणां लोचने बाणा भ्रुवावेव शरासनम् ॥ हावभावस्तु शस्त्राणि पुमांल्लक्ष्यं विचक्षणः ॥३६॥ सन्नाहश्चांगरागोऽत्र रथश्चापि मनोरथः ॥ मंदप्रजल्पितं भेरीशब्दो नान्यः कदाचनः ॥ ३७ ॥ अन्यास्त्रधारणं स्त्रीणां विडम्बनमसंशयम् ॥ लज्जैव भूषणं कान्ते न च धार्ष्ट्यं कदाचन ॥३८॥ युध्यमाना वरा नारी कर्कशेवाभिदृश्यते ॥ स्तनौ संगोपनीयौ वा धनुषः कर्षणे कथम् ॥ ३९ ॥ क्व मंदगमनं कुत्र गदामादाय धावनम् ॥ बुद्धिदा कालिकातेऽत्र चामुंडा परनायिका ॥ ४० ॥ चंडिका मंत्रमध्यस्था लालनेऽसुस्वरा शिवा ॥ वाहनं मृगराडास्ते सर्वसत्त्वभयंकरः ॥ ४१ ॥ वीणानादं परित्यज्य घंटानादं करोषि यत् ॥ रूपयौवनयोः सर्वं विरोधि वरवर्णिनि ॥ ४२ ॥

सुन्दरी स्त्रीभी यदि समरमें निहत हो तो वहभी कर्कशके समान दिखाई देती है विशेषकर तुम जब धनुष खैंचोगी तब तुम्हारे दोनों स्तन किस प्रकारसे गुप्त रहेंगे ॥ ३९ ॥ जब गदा लेकर दौड़ोगी तो तुम्हारी मन्थरगति कहाँ रहेगी ? हे सुन्दरि ! तुमको परामर्श देनेवाली कालिका और चामुंडा चतुर नहीं हैं ॥ ४० ॥ चण्डिका तुमको मंत्रणा देती है उसका स्वर अत्यन्त कर्कश है. अतएव वह किस प्रकार तुम्हारा लालन पालन करेगी ? इसके अतिरिक्त सब प्राणियोंको भयप्रद मृगराज तुम्हारा वाहन है. अतएव हे कान्ते ! तुम इन सबको छोड़कर मेरे निकट आओ ॥ ४१ ॥ हे वरवर्णिनि ! वीणाध्वनि त्यागकर तुम जो घंटाध्वनि करती हो यह तुम्हारे रूप और यौवनके अतिशय विरुद्ध है ॥ ४२ ॥

हे अभिमानिनि ! यदि तुमको समरकी इच्छा हो तो तुम कुत्सितरूप धारण करो. तुम्हारी आकृति क्रूर, वर्ण काकके समान काला हो विलोचती हो ॥ ४३ ॥ लम्बे दोनों पाँव, दीर्घ नख, कुत्सित दांत, विकट दोनों नेत्र बिडालके समान पिंगलवर्ण होवे. हे देवि ! तुम ऐसा कुत्सितरूपधारण करके स्थिर भावसे समरमें रहो ॥ ४४ ॥ हे मृगलोचने ! तुम प्रथम मुझसे कर्कश वचन कहो फिर मैं युद्ध करूंगा. तुझको रतिके समान सुन्दरी देखकर मेरा हाथ रणाङ्गण में तुम्हारे ऊपर प्रहार करनेको अग्रसर नहीं होता ॥ ४५ ॥ हे मृगलोचने ! रतिके समान तुमको कैसे मारूं ? व्यासजी बोले हे भारतोत्तम ! जब शुंभने इस प्रकार वचन कहे तब जगदम्बिकाने उसको कामार्त्त देख ॥ ४६ ॥ कुछेक हँसकर यह बात कही देवी बोले रे मन्दात्मन् ! कामबाणोंसे मोहित होकर क्यों विषाद करता है ॥ ४७॥ मूढ यदि मुझको प्रहार करनेमें तेरा हाथ अग्रसर नहीं होता तो इस कुरूपा कालिकाके संग अथवा चामुण्डाके संग युद्ध कर ॥ ४८ ॥

यदि ते संगरे च्छाऽस्ति कुरूपाभव भामिनि ॥ लंबोष्ठी कुनखी क्रूरा ध्वांक्षवर्णा विलोचनाः ॥ ४३ ॥ लंबपादा कुदंती च मार्जारनय नाकृतिः ॥ ईदृशंरूपमास्थाय तिष्ठ युद्धे स्थिरा भव ॥४४॥ कर्कशं वचनं ब्रूहि ततो युद्धं करोम्यहम् ॥ ईदृशीं सुदतीं दृष्ट्वा न मे पाणिः प्रसीदति ॥ ४५ ॥ हंतुं त्वां मृगशावक्षि कामकांतोपमे मृधे ॥ व्यास उवाच ॥ इति ब्रुवाणं कामार्तं वीक्ष्य त जगदंबिका ॥ ४६ ॥ स्मितपूर्वमिदं वाक्यमुवाच भरतोत्तम ॥ देव्युवाच ॥ किं विषीदसि मंदात्मन्कामबाणविमोहित ॥ ४७ ॥ प्रेक्षि काऽहं स्थिता मूढ कुरु कालि कया मृधम् ॥ चामुंडया वा कुर्वते तव योग्ये रणांगणे ॥ ४८ ॥ प्रहरस्व यथाकामं नाहं त्वां योद्धुमुत्सहे॥ इत्युक्त्वा कालिकां प्राह देवो मधुरया गिरा ॥ ४९ ॥ जह्येनं कालिके क्रूरे कुरूपप्रियमाहवे ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता कालिका कालप्रेरिता काल रूपिणी ॥ ५० ॥ गदां प्रगृह्य तरसा तस्था वाजौकृतोद्यमा ॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम् ॥ ५१ ॥

यही समरांगणमें तेरे उपयुक्त है. सुतरां यही तुझसे युद्ध करेगी मैं केवल देखती रहूँगी तेरी जैसी इच्छा हो वैसाही प्रहार कर किन्तु मैं तेरे संग युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करती, देवी भगवतीने उससे इस प्रकार कह फिर कालिकासे मधुरवचन द्वारा कहा ॥ ४९ ॥ हे कालिके ! तुम्हारे अवयव (अंग) कठिन हैं और यह शुंभ भी समरमें कुरूपको बहुत अच्छा समझता है. इस कारण तुमही इसका संहार करो। व्यासजी बोले हे महाराज ! वह कालरूपिणी कालिका देवीकी वह आज्ञा पाते ही ॥ ५० ॥ तत्काल गदा ले कालप्रेरितके समान समरमें उद्यत होकर स्थिति करने लगी. उनका परस्पर अत्यन्त भयानक युद्ध होने लगा ॥ ५१ ॥

देवता और मुनि देखने लगे, प्रथम तो शुंभने गदा उद्यत करके समरस्थलमें उस कालिकाको प्रहार किया ॥ ५२ ॥ और फिर कालिकाने भी दैत्यराजको गदासे अत्यन्त पीडित किया फिर अत्यन्त क्रोधित हो, घोर चीत्कार कर उस गदाघातसे उसका सुवर्णमण्डित उज्वल रथ तत्काल तोड़ डाला ॥ ५३ ॥ और फिर उसके रथवाहक सब खर खिच्चर मारकर सारथीको भी यमसदनमें प्रेरण किया. तब शुंभ गुरुभारयुक्त महती गदा ग्रहण कर पादचारीहो क्रोध सहित ॥ ५४ ॥ कालिकाके हृदयमें प्रहार करके हँसने लगा. इसी अवसरमें कालिकाने उसका गदाघात विफल कर तत्काल खड्ग ग्रहण किया ॥ ५५ ॥ और अस्त्र शस्त्रसे विभूषित चन्दन चर्चित उसकी वाम भुजा काट डाला. तब वाम भुजाके कट जानेसे उसका सब शरीर रुधिरधारामें डूब गया

पश्यतां सर्व देवानां मुनीनां च महात्मनाम् ॥ गदामुद्यम्य शुंभोऽथ जघान कालिकां रणे ॥ ५२ ॥ कालिका दैत्यराजानं गदया न्यहनद्भृशम् ॥ बभंजास्य रथं चंडी गदया कनकोज्ज्वलम् ॥५३॥ खरान्हत्वा जघानाशु दारुकं दारुणस्वना ॥ स पदातिर्गदां गुर्वीं समादाय क्रुधाऽन्वितः ॥ ५४ ॥ कालिकामुभयोर्मध्ये प्रहसन्नहनत्तदा ॥ वंचयित्वा गदापातं खड्गमादाय सत्वरा ॥५५॥ चिच्छेदास्य भुजं सव्यं सायुधं चंदनार्चितम् ॥ स च्छिन्नबाहुर्विरथो गदापाणिः परिप्लुतः ॥ ५६ ॥ रुधिरेण समागम्य कालिकामहनत्तदा ॥ काली च करवालेन भुजं तस्याथ दक्षिणम् ॥ ५७ ॥ चिच्छेद प्रहसंति सा सगदं किल सांगदम् ॥ कर्तुं पादप्रहारं स कुपितः प्रययौ जवात् ॥ ५८ ॥ काली चिच्छेद चरणौ खड्गेनास्य त्वरान्विता ॥ स च्छिन्नकरपादोऽपि तिष्ठ तिष्ठेवि चाब्रुवन् ॥ ५९ ॥ धावमानो ययावाशु कालिकां भीषयन्निव ॥ तमागच्छंतमालोक्य कालिका कमलोपमम् ॥ ६० ॥ चकर्त मस्तकं कंठाद्रुधिरौघवहं भृशम् ॥ छिन्नेऽसौ मस्तके भूमौ पपात गिरिसन्निभः ॥ ६१ ॥

॥ ५६ ॥ तो भी उसने गदा हाथमें लिये सहसा आकर कालिकाको प्रहार किया. कालिकाने भी हँसते हँसते खड्गसे उनकी दक्षिण भुजा काट डाली ॥ ॥५७॥ जब हँसते २ उसकी अंगद सहित भुजाकाट डाली तब शुम्भ कुपित होकर पादप्रहार करनेके लिये वेगसे दौड़ा ॥ ५८ ॥ फिर कालीने भी शीघ्रता सहित खड्गसे उसके दोनों चरण काट डाले. हाथ और पैर कट जानेपर भी वह दैत्य " ठहर ठहर" कहकर ॥ ५९ ॥ कालिकाको डराता हुआ तत्काल दौड़ता हुआ उनके समीप आया. कालिकाने उसको आता हुआ देखकर उसका मस्तक कंठसे कमलके समान ॥ ६० ॥ काट डाला तब उससे अनर्गल रुधिरकी धारा बहने लगी. हे महाराज ! शुम्भका मस्तक कट जानेपर वह पर्वतके समान पृथ्वीमें गिर गया ॥ ६१ ॥

और तत्काल उसका प्राणवायु देहसे बहिर्गत होकर चलागया. इन्द्रादि देवता उस दानवको गतासु हो गिरता हुआ देख ॥ ६२ ॥ उन देवी भगवती चामुण्डा और कालिकाका स्तव करने लगे. उस काल वायु सुख स्पर्श होकर बहने लगा. सब दिशायें अतीव निर्मल होगई ॥ ६३ ॥ और हुताशन होम कालमें प्रदक्षिण शिखावाला होकर शुभ कथन करनेवाला चलने लगा. इधर उस समय जो दैत्य मरनेसे बचे थे वह अस्त्र शस्त्र त्यागकर जगदम्बिकाको प्रणाम कर ॥ ६४ ॥ शस्त्रत्याग पातालमें जले गये, यह सब तुमसे देवीका चरित्र कहा ॥ ६५ ॥ हे महाराज! शुम्भ इत्यादि असुरोंको मारकर देवीने जिस प्रकार देवताओंकी रक्षा की थी मैंने वह सब पवित्र चरित्र तुमसे वर्णन किया. पृथ्वीमें जो मनुष्य भक्तिपूर्वक यह उपाख्यान आद्योपान्त पाठ॥ ६६ ॥ वा नित्य श्रवण

प्राणा विनिर्ययुस्तस्य देहादुत्क्रम्य सत्वरम् ॥ गतासुं पतितं दैत्यं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥६२॥ तुष्टुवुस्तां तदा देवीं चामुंडां कालिकां तथा ॥ ववुर्वाताः शिवास्तत्र दिशश्च विमला भृशम् ॥ ६३ ॥ बभूवुश्चाग्नयो होमे प्रदक्षिणशिखाः शुभाः ॥ हतशेषाश्च ये दैत्याः प्रणम्य जगदंबिकाम् ॥ ६४ ॥ त्यक्त्वाऽऽयुधानि ते सर्वे पातालं प्रययुर्नृप ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ शुंभादीनां वधं चैव सुराणां रक्षणं तथा ॥ एतदाख्यानकं सर्वं पठंति भुवि मानवाः ॥ ६६ ॥ शृण्वंति च सदा भक्त्या ते कृतार्था भवंति हि ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनश्च धनं बहु ॥ ६७ ॥ रोगी च मुच्यते रोगात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ शत्रुतो न भयं तस्य य इदं चरितं शुभम् ॥ शृणोति पठते नित्यं मुक्तिभाग्जायते नरः ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे शुंभ वधो नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ जनमेजय उवाच ॥ महिमा वर्णितः सम्यक्चंडिकायास्त्वया मुने ॥ केन चाराधिता पूर्वं चरित्रत्रययोगतः ॥ १ ॥

करते हैं, उनकी सब अभिलाषा पूर्ण होती हैं, इसमें सन्देह नहीं है हे राजन् ! जिसके पुत्र नहीं है वह पुत्र प्राप्त करता है, जिसके धन नहीं है उसको बहुत धन मिलता है ॥ ६७ ॥ रोगी रोगसे छूट जाता है. अधिक क्या ? जो पुरुष देवीका यह सब माहात्म सुनता है वह सब कामना प्राप्त कर सकता है. हे महाराज ! जो मनुष्य इस पवित्र चरित्रको नित्य पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह शत्रुसे कभी नहीं डरता, विशेषकर मृत्युके पीछे मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां शुम्भवधो नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ जनमेजय बोले हे मुनिवर ! आपने सम्यक् प्रकारसे चण्डिकाकी महिमा वर्णन की है. किंतु मधुकैटभ नाशादि तीनों चरित्र पाठ और श्रवण करके किस पुरुषनेपूर्वमें उनकी आराधना

की थी ? ॥ १ ॥ किसी पुरुषने उस अभीष्ट प्रदायनी देवीकी उपासना करके महत्फल प्राप्त किया है ? किस समयमें उन्होंने किसके प्रति प्रसन्न होकर वरदान किया था? हे कृपानिधे ! आप कृपा करके वह समस्त वृत्तांत विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप उस महादेवीकी उपासना विधि पूजा प्रणाली और होमविधि विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले हे ऋषिगण ! सत्यवतीके पुत्र कृष्णद्वैपायन राजा जनमेजयके इस प्रकार वचन सुनकर परम प्रसन्न हो उनसे महामाया भगवतीकी पूजाविधि कहने लगे ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! पूर्वकालके समय स्वारोचिष मन्वन्तरमें अतीव उदार प्रकृति और प्रजापालन परायण सुरथ नामक एक राजा थे ॥ ५ ॥ वह सत्यवादी कार्यदक्ष और गुरुके प्रति भक्तिमान् थे वह सदा ब्राह्मणोंकी सेवा करते और अपनी धर्मपत्नीके अतिरिक्त कभी किसी स्त्रीके संग सहवास नहीं करते ॥ ६ ॥ वह दाता अग्रगण्य और धनुर्विद्यामें अतिनिपुण

प्रसन्ना कस्यवरदा केन प्राप्तं फलं महत् ॥ आराध्य कामदां देवीं कथयस्व कृपानिधे ॥ २ ॥ उपासनाविधिं ब्रह्मंस्तथा पूजाविधिंवद ॥ विस्तरेण महाभाग होमस्य च विधिं पुनः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इति भूपवचः श्रुत्वा प्रीतः सत्यवतीसुतः ॥ प्रत्युवाच नृपं कृष्णो महामायाप्रपूजनम् ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं सुरथो नाम पार्थिवः ॥ बभूव परमोदारः प्रजापालनतत्परः ॥ ५ ॥ सत्यवादी कर्मपरो ब्राह्मणानां च पूजकः ॥ गुरुभक्तिरतोनित्यं स्वदारगमने रतः ॥ ६ ॥ दानशीलोऽविरोधी च धनुर्वेदैकपा रगः ॥ एवं पालयतो राज्यं म्लेच्छाः पर्वतवासिनः ॥ ७ ॥ बलाच्छत्रुत्वमापन्नाः सैन्यं कृत्वा चतुर्विधम् ॥ हस्त्यश्वरथपादातिसहितास्ते मदोत्कटाः ॥८॥ कोलाविध्वंसिनः प्राप्ताः पृथ्वीग्रहणतत्पराः ॥ सुरथः सैन्यमादाय संमुखः समपद्यत ॥९॥ युद्धं समभवद्घोरं तस्य तैरतिदारुणैः ॥ म्लेच्छानां तु बलं स्वल्पं राज्ञस्तद्बलमद्भुतम् ॥ १० ॥

थे वह किसीके सङ्ग विरोध नहीं करते. हे राजन् ! वह राजा सुरथ इस प्रकार निर्विघ्न राज्य पालन करते थे, इसी अवसरमें पर्वतवासी म्लेच्छगण ॥ ७ ॥ उनके शत्रु हो गये ! यह मदमत्त कोला नगर विध्वंसी म्लेच्छगण युद्धनीतिका अनुसरण न करके केवल बलपूर्वक समस्त (पृथ्वी) ग्रहण करनेकी अभिलाषासे हाथी घोड़े रथ और पैदल इस चार प्रकारकी सेनाके सहित ॥ ८ ॥ सुरथ राजाका राज्य ग्रहण करनेके लिये आये. सुरथराजा भी अपनी सेनाको संग लेकर उनके सन्मुख हुए ॥ ९ ॥ तब उन परम दारुण म्लेच्छोंके संग उनका घोर युद्ध हुआ. हे महाराज ! तिसकाल म्लेच्छोंका सैन्यबल सामान्यमात्र और राजा सुरथका सैन्यबल अधिक था ॥ १० ॥

किंतु तोभी म्लेच्छोंने दैववश युद्धमें जयलाभ की. तब राजा रणमें पराजित हो पलायनपूर्वक दुर्गद्वारा सुरक्षित अपने नगरमें चले आये ॥ ११ ॥ वह नीति विशारद राजा मंत्रियोंको शत्रुओंके पक्षमें मिला देख अत्यन्त विमन होकर चिंता करने लगे कि, अब प्रधान मन्त्री विमन होकर शत्रुके पक्षमें हो गये हैं ॥ १२ ॥ अब परिखा वेष्टित आकारसे सम्पन्न खाईसे व्याप्त विपुल स्थानका आश्रय लेकर समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये अथवा युद्ध करना उत्तम है? ॥ १३ ॥ राजा मनही मनमें और भी चिंता करने लगे कि, इस समय मन्त्री लोग शत्रुके वशीभूत हैं, इस कारण उनसे मंत्रणा करना कभी उचित नहीं है. अतएव अब मुझको क्या कर्त्तव्य है ? ॥ १४ ॥ उन्होंने जब विपक्षका आश्रय ग्रहण किया हैं तब वह विपरीत कार्य करनेमें कभी कुण्ठित नहीं होंगे.

तथाऽपि तैर्जितो युद्धे दैवाद्राजा पराजितः ॥ भग्नश्च स्वपुरं प्राप्तः सुरक्षं दुर्गमंडितम् ॥ ११ ॥ चिंतयामास मेधावी राजा नीतिविचक्षणः ॥ प्रधानान्विमना दृष्ट्वा शत्रुपक्षसमाश्रितान् ॥ १२ ॥ स्थानं गृहीत्वा विपुलं परिखा दुर्गमंडितम् ॥ कालप्रतीक्षा कर्तव्या किं वा युद्धं वरं मतम् ॥ १३ ॥ मंत्रिण शत्रुवशगा मंत्रयोग्या न ते किल ॥ किं करोमीति मनसा भूपतिः समचिंतयत् ॥ १४ ॥ कदाचित्ते गृहीत्वा मां पापाचाराः पराश्रिताः ॥ शत्रुभ्योऽथ प्रदास्यंति तदा किं वा भविष्यति ॥ १५ ॥ पापबुद्धिषु विश्वासो न कर्तव्यः कदाचन ॥ किं न ते वै प्रकुर्वंति ये लोभवशगा नराः ॥ १६ ॥ भ्रातरं पितरं मित्रं सुहृदं बांधवं तथा ॥ गुरुं पूज्यं द्विजं द्वेष्टि लोभाविष्टः सदा नरः ॥ १७ ॥ तस्मान्मया न कर्तव्यो विश्वासः सर्वथाधुना ॥ मन्त्रिवर्गेऽतिपापिष्ठे शत्रुपक्षसमाश्रिते ॥ १८ ॥ इति संचिंत्य मनसा राजा परमदुर्मनाः ॥ एकाकी हयमारुह्य निर्जगाम पुरात्ततः ॥ १९ ॥ असहायोऽथ निर्गत्य गहनं वनमाश्रितः ॥ चिंतयामास मेधावी क्व गंतव्यं मया पुनः ॥ २० ॥

यह पापिष्ठ मंत्रीगण यदि किसी समय मुझको ग्रहण करके शत्रुओंके हाथमें दे दें तो फिर मैं क्या उपाय करूंगा ? ॥ १५ ॥ जो मनुष्य लोभके वशीभूत हैं उनको अकार्य कुछ नहीं है अतएव उन पापबुद्धियोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥ लोकमें लोभके वशीभूत होकर पिता, माता, भ्राता, मित्र, सुहृद, बांधव, गुरु पूज्य ब्राह्मणोंसे भी सदा द्वेष करते हैं ॥ १७ ॥ मन्त्री लोग जब शत्रुसे मिल गये हैं तब वह निस्संदेह पापिष्ठ हैं, अब इनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥ राजा मन ही मनमें इस प्रकारसे अनेक चिंता करके अत्यन्त विमन हुए किंतु उपाय न देख घोड़ेपर चढ़कर अकेले उस पुरीसे निकले ॥ १९ ॥ वह सहाय विहीन बुद्धिमान् राजा नगरसे निकल गहन वनमें जाकर चिंता करने लगे कि, अब मैं कहां जाऊं ॥ २० ॥

अनन्तर उस स्थानसे तीन योजन अन्तरपर तापस प्रवर सुमेधा ऋषिका पवित्र आश्रम विद्यमान है, यह जानकर उस आश्रममें गये ॥ २१ ॥ हे महाराज! उस आश्रमके शोभाकी सीमा नहीं थी. वह नदीके तटपर स्थापित है, इसके स्थान स्थानमें अनेक प्रकारके वृक्ष विराजमान थे और उनके ऊपर कोकिला मधुर रव करती थीं स्थान स्थानमें हिंसक जन्तु विचरण करते थे, किंतु उनका परस्पर वैरभाव नहीं था ॥ २२ ॥ कहीं सैकड़ों मृगोंके दल विचरण करते थे. कहीं पादपोंने कुसुमित होकर अपूर्व श्री धारण की थी, कहीं वृक्ष फलोंके भारसे झुक रहे थे; कहीं पका हुआ निवार मुनिअन्न स्थापित है कहीं शिष्योंकी अध्ययन ध्वनि ॥ २३ ॥ और कहीं अत्यन्त मनोहर वेदध्वनि होरही थी, कहीं होमके धुएंकी सुगंध सदा प्राणियोंकी प्रीतिवर्धन करती थी. अधिक क्या? उस तपोवनको देखनेपर वह स्वर्गसे भी अति मनोहर जान पड़ता था ॥ २४ ॥ राजा सुरथ ऐसा आश्रम देखकर आनन्दसागरमें निमग्न हुए और भय त्यागकर

योजनत्रयमात्रे तु मुनेराश्रमुत्तमम् ॥ ज्ञात्वा जगाम भूपालस्तापसस्य सुमेधसः ॥ २१ ॥ बहुवृक्षसमायुक्तं नदीपुलिनसंश्रितम् ॥
निर्वैरश्वापदाकीर्णं कोकिलारावमण्डितम् ॥ २२ ॥ शिष्याध्ययनशब्दाढ्यं मृगयूथशतावृतम् ॥ नीवारान्नसुपक्वाढ्यं सुपुष्पफलपादपम्
॥ २३ ॥ होमधूमसुगन्धेन प्रीतिदं प्राणिनां सदा ॥ वेदध्वनिसमाक्रांतं स्वर्गादपि मनोहरम् ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा तमाश्रमं राजा बभूवासौ
मुदान्वितः ॥ भयं त्यक्त्वा मतिं चक्रे विश्रामाय द्विजाश्रमे ॥ २५ ॥ आसज्य पादपेऽश्वं तु जगाम विनयान्वितः ॥ दृष्ट्वा तं मुनिमा
सीनं सालच्छायासु संश्रितम् ॥ २६ ॥ मृगाजिनासनं शांतं तपसाऽतिकृशमृजुम् ॥ अध्यापयंतं शिष्यांश्च वेदशास्त्रार्थदर्शिनम् ॥२७॥
रहितं क्रोधलोभाद्यैर्द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् ॥ आत्मज्ञानरतं सत्यवादिनं शम संयुतम् ॥ २८ ॥ तं वीक्ष्य भूपतिर्भूमौ पपात दण्डवत्तदा ॥
तदग्रेऽश्रुजलापूर्णनयनः प्रेमसंयुतः ॥ २९ ॥

द्विजवरके इस आश्रममें विश्राम करनेकी इच्छा की ॥ २५ ॥ तदनन्तर राजाने वृक्षकी जड़में घोड़ेको बांध, विनीत भावसे उन ऋषिके निकट जाकर देखा कि मुनिवर शालवृक्षकी घनी छायामें मृगचर्मपर विराजमान हो रहे हैं॥ २६ ॥ तपस्याके क्लेशसे उनका शरीर कृश और सरल है, वह शीत वा उष्णसे तिरस्कृत नहीं हैं. उनका क्रोध, लोभ और मोह इत्यादि कोई शत्रु नहीं है, अतएव शान्त, सत्यवादी और मत्सर विहीन हैं. विशेषतः आत्मज्ञानमें निरत होकर अतीन्द्रियको निग्रह किया है. वह वेदशास्त्रार्थ पारदर्शी मुनिवर उस समय शिष्योंको वेद पढ़ा रहे थे ॥ २७ ॥ २८ ॥ राजाके दोनों नेत्र उनको देखते ही जलसे परिपूर्ण होगये और भक्ति सहित उनके सन्मुख दण्डके समान पृथ्वीमें गिर गये ॥ २९ ॥

तब मुनिवरने उनकी ऐसी अवस्था देखकर कहा हे वत्स ! उठो !! तुम्हारा मंगल तो है ? फिर गुरुकी आज्ञानुसार एक शिष्यने उनको कुशासन दिया ॥ ३० ॥ राजा उठकर उनकी आज्ञानुसार उस आसनपर विराजमान हुए तब मुनिवर सुमेधाने विधिपूर्वक पाद्य और अर्घ्यद्वारा उनकी पूजा करके ॥ ३१ ॥ पूँछा कि तुम कौन हो ? किस लिये यहां आये हो ? किस कारण चिन्तामें निमग्न हो ? इन सबका कारण गुप्त हो रहा है, अतएव यह समस्त मुझसे कहो ॥ ३२ ॥ तुम्हारे आनेका उद्देश क्या है ? तुम अपने मनका अभिप्राय प्रकाश करके कहो यदि वह मेरे असाध्य भी होगा तो भी मैं तुम्हारा कार्य संपादन करूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ३३ ॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! मैं सुरथनामक राजा हूं. शत्रुसे पराजित होकर राज्य गृह और भार्या

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तमुवाच तदा मुनिः ॥ शिष्यो ददौ बृसीं तस्मै गुरुणा नोदितस्तदा ॥ ३० ॥ उत्थाय नृपतिस्तस्यां समासीनस्त दाज्ञया ॥ अर्घ्यपाद्यार्हणं चक्रे सुमेधा विधिपूर्वकम् ॥ ३१ ॥ पप्रच्छात्र कुतः प्राप्तः कस्त्वं चिंतापरः कथम् ॥ कथयस्व यथाकामं संवृतं कारणं त्विह ॥ ३२ ॥ किमागमनंकृत्यं ते ब्रूहि कार्यं मनोगतम् ॥ करिष्ये वांछितं काममसाध्यमपि यत्तव ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ सुरथो नाम राजाऽहं शत्रुभिश्च पराजितः ॥ त्यक्त्वा राज्यं गृहं भार्यामहं ते शरणं गतः ॥ ३४ ॥ यदाज्ञापयसे ब्रह्मंस्तदहं भक्तितत्परः ॥ करिष्यामि न मे त्राता त्वदन्यः पृथ्वीतले ॥ ३५ ॥ शत्रुभ्यो मे भयं घोरं प्राप्तोऽस्म्यद्य तवांतिकम् ॥ त्रायस्व मुनिशार्दूल शरणागत वत्सल ॥ ३६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ निर्भयं वस राजेंद्र नात्र ते शत्रवः किल ॥ आगमिष्यंति बलिनो निश्चयं तपसो बलात् ॥ ३७ ॥ नात्र हिंसा प्रकर्तव्या वनवृत्त्या नृपोत्तम ॥ कर्तव्यं जीवनं शस्तैर्नीवारफलमूलकैः ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा निर्भयः स नृपस्तदा ॥ उवासाश्रम एवाऽसौ फलमूलाशनः शुचिः ॥३९॥

परित्याग करके आपकी शरणागत हुआ हूं ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप जो आज्ञा करेंगे मैं भक्ति सहित वही करूंगा. आपके अतिरिक्त पृथ्वीतलमें मेरी रक्षा करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ३५ ॥ इस समय शत्रुसे मुझको घोर भय उपस्थित है मैं इसी लिये आपके निकट आया हूं. हे मुनिवर ! आप शरणागत वत्सल हैं इस कारण मैं आपकी शरणागत हूं आप मेरी विपदसे रक्षा कीजिये ॥ ३६ ॥ महर्षिने कहा हे राजेन्द्र ! तुम इस स्थान में निर्भय होकर वास करो तुम्हारे शत्रु बलवान् होनेपर भी तपोबलके प्रभावसे वह यहां नहीं आ सकेंगे ॥ ३७ ॥ हे नृपोत्तम ! इस स्थानमें हिंसा नहीं कर सकोगे केवल वनवृत्तिके अनुसार नीवार फल और मूल इत्यादि प्रशस्त खाद्य द्रव्यद्वारा जीवन यात्रा निर्वाह करनी होगी ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! राजा

सुरथ उनके इस प्रकार वचन सुन फल मूल भक्षण करते हुए पवित्र भावसे निर्भय उस आश्रममें वास करने लगे ॥३९॥ किसी समय आश्रमके वृक्षोंकी छायामें बैठकर अनेक प्रकारकी चिन्ता करते करते अपने घरकी बात मनमें उदय होते ही विचार करने लगे ॥ ४० ॥ कि मेरा राज्य शत्रुओंने ले लिया है किन्तु वह दुराचारी म्लेच्छ और लज्जा विहीन हैं विशेष कर सदा पाप कार्यमें रत हैं. अतएव वह प्रजाको सदा ही पीड़ित करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥ मेरे हाथी घोड़े अब नियमित प्रकारसे आहार नहीं पाते. अतएव वह दुर्लभ होकर शत्रुके निकट अत्यन्त कष्ट पाते हैं ॥ ४२ ॥ मैंने जिन सेवकोंको पूर्वमें पालन किया है अब वह शत्रुके वशीभूत होकर दुःखभोग करते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ४३ ॥ वह दुराचारी शत्रुगण असत् कार्यमें धन व्यय करते हैं सुतरां मेरा संचित धन उन्होंने द्यूतक्रीडा मद्य और वेश्याके निमित्त व्यय करके अवश्य ही क्षय कर डाला होगा ॥ ४४ ॥ उन म्लेछोंकी

कदाचित्स नृपस्तत्र वृक्षच्छायां समाश्रितः ॥ चिंतयामास चिंतार्तो गृह एव गताशयः ॥ ४० ॥ राज्यं शत्रुभिः प्राप्तं म्लेच्छैः पापरतैः सदा ॥ संपीडिताः स्युर्लोकास्तैर्दुराचारैर्गतत्रपैः ॥ ४१ ॥ गजाश्च तुरगाः सर्वे दुर्बला भक्ष्यवर्जिताः ॥ जाताः स्युर्नात्र संदेहः शत्रुणा परिपीडिताः ॥ ४२ ॥ सेवका मम सर्वे ते शत्रूणां वशवर्तिनः ॥ दुःखिता एव जाताः स्युः पालिता ये मया पुरा ॥४३॥ धनं मे सुदुराचारैरसद्व्ययपरैः परैः ॥ द्यूतासवभुजिष्यादिस्थाने स्यात्प्रापितं किल ॥ ४४ ॥ कोशक्षयं करिष्यंति व्यसनैः पापबुद्धयः ॥ न पात्रदाननिपुणा म्लेच्छास्ते मंत्रिणोऽपि मे ॥ ४५ ॥ इति चिंतापरो राजा वृक्षमूलस्थितो यदा ॥ तदाऽऽजगाम वैश्यस्तु कश्चिदार्तिपरस्तथा ॥ ४६ ॥ नृपेण पुरतो दृष्टः पार्श्वे तत्रोपवेशितः ॥ पप्रच्छ तं नृपः कोऽसि कुत एवागतो वनम् ॥ ४७ ॥ कोऽसि कस्माच्च दीनोऽसि हरिणः शोक पीडितः ॥ ब्रूहि सत्यं महाभाग मैत्री साप्तपदी मता ॥ ४८ ॥

और मेरे मंत्रियोंकी मति सदा ही पाप कार्यमें रत है. वह दानवीके पात्र अपात्रको विचारकर दान करना नहीं जानते अतएव सम्पूर्ण कोष व्यसन द्वारा ही क्षय कर डाला होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५ ॥ वृक्षकी जड़में बैठे राजा जब इस प्रकार चिंता कर रहे थे तब कोई एक वैश्य कातर होकर उसी स्थानमें उपस्थित हुआ ॥ ४६ ॥ राजाने उसको सम्मुख देखते ही अपने पार्श्वमें बैठाया और फिर उस वैश्यके बैठने पर राजाने उससे पूँछा हे महाभाग! तुम कौन जातीय हो ? किस देशसे इस वनमें आये हो ॥ ४७ ॥ तुम्हारा नाम क्या है ? किसलिये तुम शोकसे कातर होकर मलीन और पांडुवर्ण हुए हो ? हे महाभाग ! परस्पर सातबात कहते ही मित्रता होती है उसीके अनुसार मैं तुम्हारा मित्र हूं इस कारण यह सब वृत्तान्त मुझसे

सत्य कहो ॥४८॥ व्यासजी बोले वैश्यवर राजाके इस प्रकार वचन सुन श्रम अपनयन पूर्वक स्थिर भावसे बैठ "साधुके संग समागम हुआ" यह विचारकर उनसे कहने लगा ॥ ४९ ॥ हे मित्र मैं वैश्यजातीय हूं मेरा नाम समाधि है. मैं धनवान् था कभी किसीसे असूया नहीं करता सदा सत्य वचन कहकर धर्म कार्यमें निरत रहता था ॥ ५० ॥ मेरी स्त्री और पुत्रगण धनलोलुप हैं और असाधु हैं अतएव उन्होंने अतीव दुस्त्यज्य मायाका त्याग कर "यह कृपण हैं" इस प्रकार छल अवलम्बनकर मुझको घरसे निकाल दिया है आत्मीय स्वजनोंसे त्यागा जाकर मैं अब वनमें आया हूं ॥ ५१ ॥ आप भाग्यवान्के समान दिखाई देते हैं. अतएव हे प्रियवर! इस समय अनुग्रह करके मुझको अपना परिचय दीजिये. यह वचन सुनकर राजाने उससे कहा मैं सुरथ

व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञस्तमुवाच विशोत्तमः ॥ उपविश्य स्थिरो भूत्वा मत्वा साधुसमागमम् ॥४९॥ वैश्य उवाच मित्राहं वैश्यजातीयः समाधिर्नाम विश्रुतः ॥ धनवान्धर्मनिपुणः सत्यवागनसूयकः ॥ ५० ॥ पुत्रदारैर्निरस्तोऽहं धनलुब्धैरसाधुभिः ॥ "कृपणेति मिषं कृत्वा त्यक्त्वा मायां सुदुस्त्यजाम् ॥" स्वजनेन च संत्यक्तः प्राप्तोऽस्मि वन माशु वै ॥ ५१ ॥ कोऽसि त्वं भाग्यवान्भासि कथयस्व प्रियाधुना ॥ राजोवाच ॥ सुरथो नाम राजाऽहं दस्युभिः पीडितोभवम् ॥५२॥ प्राप्तोऽस्मि गतरायोऽत्र मंत्रिभिः परिवंचितः ॥ दिष्ट्या त्वमत्र मित्रं मे मिलितोऽसि विशोत्तम ॥ ५३ ॥ सुखेन विहरिष्यावो वनेऽत्र शुभपादपे ॥ शोकं त्यज महाबुद्धे स्वस्थो भव विशोत्तम ॥५४॥ "अत्रैव च यथाकामं सुखं तिष्ठ मया सह ॥ वैश्य उवाच ॥ कुटुंबं मे निरालंबं मया हीनं सुदुःखितम् ॥ भविष्यति च चिंतार्तं व्याधिशोकोपतापितम् ॥ ५५ ॥ भार्यादेहे सुखं नो वासुखम् ॥ इति चिंतातुरं चेतो न मे शाम्यति भूमिप ॥ ५६ ॥

नामक राजा हूं सम्प्रति दस्युगणोंसे पीड़ित हुआ हूं ॥ ५२ ॥ इसपर भी फिर मुझे मंत्रियोंने छला है अतएव राज्यभ्रष्ट होकर इस तपोवनमें उपस्थित हुआ हूं. हे विशोत्तम ! सौभाग्यसे ही आज तुम मेरे परम मित्ररूपसे उपस्थित हुए हो ॥ ५३ ॥ हम दोनों मनोहर वृक्षोंसे मंडित इस वचनमें परम सुखसे विहार करें. हे महाबुद्धे ! अब शोक त्यागकर सावधान होजाओ ॥ ५४ ॥ और इच्छानुसार मेरे संग इस स्थानमें परमसुखसेवास करो वैश्यने कहाहे राजन् ! मेरे बांधवलोग मेरे न होनेसे निराश्रय होकर अतिदुःखित होंगे. विशेषकर व्याधि और शोकसे संतापित होकर उनके चिन्ताकी सीमा न रहेगी ॥५५॥ ह राजन् ! इस समय मेरी भार्या और पुत्र सुखसे वा दुःखसे काल व्यतीत करते हैं, इस चिन्तासे कातर होकर मेरा हृदय शान्तिलाभ नहीं कर सकता ॥५६॥

हे राजेंद्र ! मैं पुत्र, कलत्र, स्वजन, बंधु, बांधव और घर इन सबको फिर देखूं मेरा मन सदा इस चिन्तामें व्याकुल रहता है. किसीसे सावधान नहीं होता ॥ ५७ ॥ राजाने कहा हे महमाते ! तुम्हारे असदाचारी मूर्ख पुत्र और कपटाचारी आत्मीय स्वजनोंने तुमको घरसे बाहर निकाल दिया है, अतएव ऐसे पुत्र इत्यादि आत्मीय पुरुषोंको देखकर तुम्हें क्या सुख होगा ? ॥ ५८ ॥ शत्रुगण यदि हितका अनुष्ठान करैं तो वह शत्रु भी श्रेष्ठ हैं. किन्तु जो क्लेश दे वह फिर किस प्रकार सुहृद् हो सकता है अतएव तुम मन स्थिर करके मेरे संग परम सुखसे विहार करते रहो ॥ ५९ ॥ वैश्यने कहा हे राजन् ! दुरात्मा लोग भी जिस कुटुम्बके छोड़नेमें समर्थ नहीं होते आज मेरा मन उसी कुटुम्बके देखनेको अत्यन्त दुःखित होता है किसी प्रकार स्थिर नहीं होता ॥ ६० ॥ राजा बोले मुझको भी राज्यके लिये इसी प्रकार दुःख उपस्थित होकर निरन्तर चित्तको संतापित करता है अतएव आओ हम दोनों ही आज

कदा द्रक्ष्ये सुतं भार्यां गृहं स्वजनमेव च ॥ स्वस्थं न मन्मनो राजन्गृहचिंताकुलं भृशम् ॥ ५७ ॥ राजोवाच ॥ यैर्निरस्तोऽसि पुत्राद्यैरस द्वृत्तैः सुबालिशैः ॥ तान्दृष्ट्वा किं सुखं तेऽद्य भविष्यति महामते ॥५८॥ हितकारी वरः शत्रुर्दुःखदाः सुहृदः कुतः ॥ तस्मात्स्थिरं मनः कृत्वा विहरस्व मया सह ॥ ५९ ॥ वैश्य उवाच ॥ मनो मे न स्थिरं राजन्भवत्यद्य सुदुःखितम् ॥ चिंतयाऽत्र कुटुंबस्य दुस्त्यजस्य दुरा त्मभिः ॥ ६० ॥ राजोवाच ॥ ममापि राज्यजं दुःखं दुनोति किल मानसम् ॥ पृच्छावोऽद्य मुनिं शांतं शोकनाशनमौषधम् ॥ ६१ ॥ व्यासउवाच ॥ इति कृत्वा मतिं तौ तु राजा वैश्यश्च जग्मतुः ॥ मुनिं तौ विनयोपेतौ प्रष्टुं शोकस्य कारणम् ॥ ६२ ॥ गत्वा तं प्रणि पत्याह राजा ऋषिमनुत्तमम् ॥ आसीनं सम्यगासीनः शांतं शांतिमुपागतः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे द्वात्रिं शोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ राजोवाच ॥ मुने वैश्योऽयमधुना वने मे मित्रतां गतः ॥ पुत्रदारैर्निरस्तोऽयं प्राप्तोऽत्र मम संगमम् ॥ १ ॥

मुनिवरसे इस शोक विनाशकी औषधीके विषयमें पूँछें ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! राजा सुरथ और वैश्यवर इस प्रकार स्थिर करके शोकका कारण पूँछनेकी इच्छासे अति दीनभावयुक्त हो मुनिके निकट गये ॥ ६२ ॥ फिर राजा उनके समीप जाय प्रणाम पूर्वक आसनपर बैठ सुखासीन प्रशान्तचित्त मुनिवरसे शान्तिसहित पूँछने लगे ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ सुरथने कहा हे मुनिवर ! इस वैश्यके पुत्र कलत्रने एकत्र मिलित होकर इसको घरसे बाहर कर दिया है. इसी कारण यह अपना घर त्यगकर अब इस तपोवनमें उपस्थित हुआ है यह इस समय मेरे सहित मिलित होनेसे मेरा परम मित्र हुआ है ॥ १ ॥

हे ऋषिवर ! यह आत्मीय स्वजनोंके विरहसे अत्यन्तविमन होकर अतिशय क्लेश अनुभव करता है. किसीसे भी शान्तिलाभ नहीं कर सकता. हे महामते ! इसीके समान मैं भी इस समय अपहृत् राज्यके लिये दुःख और शोकसे अत्यन्त कातर हुआ हूं. यह अकारणचिन्ता किसी प्रकार मेरे हृदयसे दूर नहीं होती. मेरे हाथी और घोड़े शत्रुके अधीन होकर क्या अब दुर्बल होगये हैं ? ॥ २ ॥ मुझको न देखनेसे क्यों भृत्यलोग अतिशय क्लेशभोग करते हैं. शत्रुगण क्षणकालमें बलसहित सबधन व्यय करके कोषका क्षय करेंगे ॥ ३ ॥ हे ऋषिवर ! इस प्रकारकी चिन्ता करनेसे मेरे हृदयमें कुछ सुख नहीं है, अधिक क्या ? इसी विचारमें मुझको नींदतक भी नहीं आती. हे प्रभो ! यद्यपि मैं जानता हूं कि, यह संपूर्ण जगत् संसार स्वप्नके समान मिथ्या है, किन्तु तो भी मेरा मन

"कुटुंब विरहेणासौ दुःखितोऽतीव दुर्मनाः ॥ न शांतिमुपयात्येष तथाऽपि मम सांप्रतम् ॥ गतराज्यस्य दुःखेन शोकार्तोऽस्मि महामते ॥" निष्कारणं च मे चिंता हृदयान्न निवर्तते ॥ हया मे दुर्बलाः स्युः किं गजाः शत्रुवशंगताः ॥ २ ॥ भृत्य वर्गस्तथा दुःखी जातः स्यात्तु मया विना ॥ ॥ कोशक्षयं करिष्यंति रिपवोऽतिबलात्क्षणात् ॥ ३ ॥ इत्येवं चिंतयानस्य न मे निद्रा तनौ सुखम् ॥ जानामीदं जगन्मि थ्या स्वप्नवत्सर्वमेव हि ॥ ४ ॥ जानतोऽपि मनो भ्रांतं न स्थिरं भवति प्रभो ॥ कोऽहं केऽश्वा गजाः केऽमी न ते मे च सहोदराः ॥ ५ ॥ न पुत्रा न च मित्राणि येषां दुःखं दुनोति माम् ॥ भ्रमोऽयमिति जानामि तथाऽपि मम मानसः ॥ ६ ॥ मोहो नैवापसरति किं तत्कार णमद्भुतम् ॥ स्वामिस्त्वमसि सर्वज्ञः सर्वसंशयनाशकृत् ॥ ७ ॥ कारणं ब्रूहि मोहस्य ममास्य च दयानिधे ॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्ट स्तदा राजा सुमेधा मुनिसत्तमः ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ ऐसा भ्रान्त है कि किसी प्रकार स्थिर नहीं होता मैं कौन हूं ? हाथी और घोड़ेसे मेरा क्या संबंध है ? वस्तुतः वह मेरे सहोदर ॥ ५ ॥ पुरुष वा मित्र नहीं हैं, किन्तु तो भी उनके दुःखसे मेरा अन्तःकरण व्यथित होता है, मोद नहीं त्यागता इसमें क्या अद्भुत कारण है ? हे ऋषिवर ! यह बस भ्रमकार्य है ऐसा मैं जानता हूं, तथापि मेरे मनसे ॥६॥ मोह दूर नहीं होता, यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय हैं. अतएव इसका क्या कारण है ? हे स्वामिन् ! आपसे कोई बात नहीं छिपी है, आप सब विषयका संशय छेदन करनेमें समर्थ हैं ॥ ७ ॥ इस कारण हे दयासागर ! कृपा करके आप मेरे और वैश्यके मोहका कारण कहिये व्यासजी बोले हे महाराज ! जब राजा सुरथने मुनिसत्तम सुमेधासे इस प्रकार पूछा ॥ ८ ॥

तब वह जिससे शोक और मोह दूर हो ऐसे परम ज्ञानजनक वचन उनसे कहने लगे ऋषि बोले, हे राजन् ! बंधन और मोक्षके कारणका विषय आपसे कहता हूं आप मन लगाकर वह सब सुनिये ॥ ९ ॥ देखो सत रज और तम इन तीन गुणोंकी साम्य अवस्थाही मूल प्रकृति है वही महामाया नामसे विख्यात है वह महामायाही इस लोकमें सब प्रणियोंके बंधन और मुक्तिका कारण है अधिक क्या, ब्रह्मा, विष्णु. महादेव. इन्द्र, वरुण, वायु ॥ १० ॥ और अन्यान्य सब देवतागण, गन्धर्वगण, नागगण, राक्षसगण, मनुष्य गण, मृगगण, पशु, पक्षी, वृक्ष और अनेक जाति लता ॥ ११ ॥ इत्यादि सभी इस मायाके आधीन होकर बन्धन और मुक्तिलाभ करते हैं यह स्थावर जंगात्मक सब जगत् उसकाही सृष्ट उत्पन्न किया पदार्थ है ॥ १२ ॥ सब जीव मोहरूपी

तमुवाच परं ज्ञानं शोकमोहविनाशनम् ॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कारणं बंधमोक्षयोः ॥ ९ ॥ महामायेति विख्याता सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानस्तुराषाड् वरुणोऽनिलः ॥ १० ॥ सर्वे देवा मनुष्याश्च गंधर्वोरगराक्षसाः ॥ वृक्षाश्च विविधा बल्ल्यः पशवोमृगपक्षिणः ॥ ११ ॥ मायाधीनाश्च ते सर्वे भाजनं बंधमोक्षयोः ॥ तया सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ १२ ॥ तद्वशे वर्तते नूनं मोहजालेन यंत्रितम् ॥ त्वं कियान्मानुषेष्वेकः क्षत्रियो रजसाऽऽविलः ॥ १३ ॥ ज्ञानिनामपि चेतांसि मोहयत्यनिशं हि सा ॥ ब्रह्मेशवासुदेवाद्या ज्ञाने सत्यपि शेषतः ॥ १४ ॥ तेऽपि रागवशाल्लोके भ्रमंति परिमोहिताः ॥ पुरासत्ययुगे राजन्विष्णुर्नारायणः स्वयम् ॥ १५ ॥ श्वेतद्वीपं समासाद्य चकार विपुलं तपः ॥ वर्षाणामयुतं यावद्ब्रह्मविद्याप्रसक्तये ॥ १६ ॥ अनश्वरसुखायासौ चिंतयानस्ततः परम् ॥ एकस्मिन्निर्जने देशे ब्रह्माऽपि परमाद्भुते ॥ १७ ॥

जालमें बँधकर उसीके वशीभूत रहते हैं हे महाराज ! आप क्षत्रिय हैं इस कारण आपका चित रजोगुणसे कलुषित हो रहा है ॥ १३ ॥ देखो जो मायाके बलसे ज्ञानियोंके मनको भी सदा मोहित करती है उसके निकट आप तो अतिसामान्य मनुष्य हैं, अधिक क्या ब्रह्मा, विष्णु और महादेव असीम ज्ञानी होनेपरभी ॥ १४ ॥ वह भी मायाबलसे विषयानुरागके कारण सम्यक् प्रकार मोहित होकर त्रिभुवनमें भ्रमण करते हैं हे राजन् ! पूर्वकालके समय सत्युगमें नारायण विष्णु ॥ १५ ॥ श्वेतद्वीपमें जाकर स्वयं विपुल तपस्या करनेमें प्रवृत हुए थे, उन्होंने अखंड आनंदलाभ करनेकी इच्छासे ब्रह्मविद्याकी स्थिरताके लिये दश हजार वर्षध्यानमें विताये थे ॥ १६ ॥ जिससे अखंड सुख मिले हे राजेन्द्र ! ब्रह्माजी भी एक निर्जन परप अद्भुत स्थानमें ॥ १७ ॥

मोह क्षय करनेकी इच्छासे उस आद्या शक्तिकी तपस्यामें निरत हुए थे किसी समयमें उन्हीं वासुदेव हरिने दूसरे स्थानमें जानकीकी इच्छा की ॥ १८ ॥
तब वह उस स्थानसे उठ कर अन्य स्थान देखनेकी अभिलाषासे गये इधर ब्रह्मा भी विष्णुके समान अपने पूर्वस्थानसे बहिर्गत हुए ॥ १९ ॥ अनन्तर मार्गमें
उनका परस्पर साक्षात् होनेपर वह आपसमें "तुम कौन हो २" इस प्रकार कहकर पूँछने लगे ॥ २० ॥ तब प्रजापतिने कहा मैं जगत् कर्ता ब्रह्मा हूं, विष्णुने
ब्रह्मांजीकी यह बात सुनकर कहा रे मूर्ख ! मैं अच्युत विष्णु हूं ॥ २१ ॥ इस कारण मैं ही जगत् कर्ता हूं तुममें रजोगुणकी अधिकता होनेसे तुम मेरी अपेक्षा
बलहीन हो तुम मुझको सत्त्वगुण प्रधान सनातन वासुदेव जानो ॥ २२ ॥ तुमको क्या स्मरण नहीं है कि मैंने दारुण युद्ध करके तुम्हारी रक्षा की है तुम

स्थितस्तपसि राजेंद्र मोहस्य विनिवृत्तये ॥ कदाचिद्वासुदेवोऽसौ स्थलांतरमतिर्हरिः ॥१८॥ तस्माद्देशात्समुत्थाय जगामान्यदिदृक्षया ॥
चतुर्मुखोऽपि राजेंद्र तथैव निःसृतः स्थलात् ॥ १९ ॥ मिलितौ मार्गमध्ये तु चतुर्मुखचतुर्भुजौ ॥ अन्योन्यं पृष्टवन्तौ तौ कस्त्वं कस्त्व
मिति स्मह ॥ २० ॥ ब्रह्मा प्रोवाच तं देवं कर्ताऽहं जगतः किल ॥ विष्णुस्तमाह भो मूर्ख जगत्कर्ताऽहमच्युतः ॥ २१ ॥ त्वं क्रियान्बल
हीनोऽसि रजोगुणसमाश्रितः ॥ सत्त्वाश्रितंहि मां विद्धि वासुदेवंसना तनम् ॥ २२ ॥ मया त्वं रक्षितोऽद्यैव कृत्वा युद्धं सुदारुणम् ॥
शरणं मे समायातो दानवाभ्यां प्रपीडितः ॥ २३ ॥ मया तौ निहतौ कामं दानवौ मधुकैटभौ ॥ कथं गर्वायसे मन्द मोहोऽयं त्यज
सांप्रतम् ॥ २४ ॥ न मत्तोऽप्यधिकः कश्चित्संसारेऽस्मिन्प्रसारिते ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं प्रवदमानौ तौ ब्रह्मविष्णू परस्परम् ॥ २५ ॥
स्फुरदोष्ठौ वेपमानौ लोहिताक्षौ बभूवतुः ॥ प्रादुर्बभूव सहसा तयोर्विवदमानयोः ॥ २६ ॥ मन्ये लिंगं सुधाश्वेतं विपुलं दीर्घमद्भुतम् ॥
आकाशे तरसा तत्र वागुवाचाऽशरीरिणी ॥ २७ ॥

जब मधु और कैटभ नामक दो दानवोंसे पीडित होकर मेरी शरणागत हुए ॥ २३ ॥ तब मैंने उसी समय उनको मारा तुम अब किस प्रकार गर्व प्रकाश
करते हो, हे महात्मन् ! तुम अभी इस मोहको छोड़ दो ॥ २४ ॥ मैं अधिक क्या हूं ? इस विस्तीर्ण विश्व संसारमें मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है,
ऋषिने कहा, हे राजन् ! जब ब्रह्मा और विष्णु परस्पर इस प्रकार विवादमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥ तब उन दोनोंका शरीर कांपने लगा और नेत्र लोहितवर्ण
होगये व ओष्ठाधर प्रस्फुरित होने लगे तब उन विवाद करते हुए दोनों देवताओंके मध्यमें सहसा ॥ २६ ॥ सुधासदृश श्वेतवर्ण विशाल और दीर्घाकार
एक अद्भुत लिंग प्रादुर्भूत हुआ उसी समय अशरीरिणी वाणी आकाशसे उद्भूत होकर ॥ २७ ॥

उन परस्पर विवाद करते हुए महाभाग ब्रह्मा और विष्णुको संबोधन देकर कहने लगी, हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! आप दोनों विवाद क्यों करते हैं ॥ २८ ॥ इस लिंगके ऊपर हो अधोभागमें हो जो इसके पारंपार जासके वही आपमें श्रेष्ठ है. इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ इस कारण एक जन पातालमें जाय और एक जन आकाशमें जाय आपको इस विवादके समयमें एक जनको मध्यस्थ करना अवश्य है. अतएव आप अनर्थक विवाद त्यागकर मेरा वचन प्रमाणस्वरूप ग्रहण करो ऋषि बोले हे महाराज ! यह दिव्य वचन सुनकर वे दोनों सुसज्जित और उत्साहित हो ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ उस सन्मुख स्थित अद्भुत लिंग परिणाम करनेको गये. अपने अपने महत्त्वबुद्धिकी इच्छासे लिंगका परिणाम करनेके लिये विष्णु पाताल और ब्रह्मा आकाशमें गये विष्णु कुछेक देशोंमें

तौ संबोध्यं महाभागौ विवदंतौ परस्परम् ॥ ब्रह्मन्विष्णो विवादं मा कुरुतां वांपरस्परम् ॥ २८ ॥ लिंगस्यास्य परं पारमधस्तादुपरि ध्रुवम् ॥ यो याति युवयोर्मध्ये सश्रेष्ठो वां सदैव हि ॥ २९ ॥ एकः प्रयातु पातालमाकाशमपरोऽधुना ॥ प्रमाणं मे वचः कार्यं त्यक्त्वा वादं निरर्थकम् ॥ ३० ॥ मध्यस्थः सर्वदा कार्यो विवादेऽस्मिन्द्वयोरिह ॥ ऋषिरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं दिव्यं सज्जीभूतौ कृतोद्यमौ ॥ ३१ ॥ जग्मतुर्मातुमग्रस्थ लिंगमद्भुतदर्शनम् ॥ पातालमगमद्विष्णुर्ब्रह्माऽप्याकाशमेव च ॥३२॥ परिमातु महल्लिंगं स्वमहत्त्वविवृद्धये ॥ विष्णुर्गत्वा कियद्देशं श्रांतः सर्वात्मना यतः ॥ ३३ ॥ न प्रापांतं स लिंगस्य परिवृत्य ययौ स्थलम् ॥ ब्रह्माऽगच्छत्ततश्चोर्ध्वं पतितं केतकीदलम् ॥ ३४ ॥ शिवस्य मस्तकात्प्राप्य परावृत्तो मुदाऽऽवृतः ॥ आगत्य तरसा ब्रह्मा विष्णवे केतकीदलम् ॥ ३५ ॥ दर्शयित्वा च वितथमुवाच मदमोहितः ॥ लिंगस्य मस्तकादेतद् गृहीतं केतकीदलम् ॥३६॥ अभिज्ञानाय चानीतं तव चित्तप्रशांतये ॥ श्रुत्वा तद्ब्रह्मणो वाक्यं दृष्ट्वा च केतकीदलम् ॥ ३७ ॥

जाकर थक गये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ और जब सम्यक् प्रकारसे यत्न करके भी लिंगका अन्त न पाया तब लौटकर अपने स्थानमें उपस्थित हुए इस और ब्रह्मा आकाश मार्गमें जाते थे. इसी अवसरमें शिव मस्तकसे गिरा हुआ एक केतकी दल ॥ ३४ ॥ शिवके ऊपरसे गिरता पाया तब वह अत्यन्त आनन्दित हो, उसको ग्रहण करके लौट आये ब्रह्माने मदमोहित होकर तत्काल लौट वह दल विष्णुको ॥ ३५ ॥ दिखाय कर मिथ्या वचन कहा हे विष्णो ! लिंगके मस्तकसे यह केतकी दल गृहीत हुआ है ॥ ३६ ॥ यह केवल अभिज्ञान और तुम्हारे चित्तकी शान्तिके लिये लाया हूं ब्रह्माजीने उनका इस प्रकार वचन सुन और केतकी देखकर ॥ ३७ ॥

उनसे कहा हे ब्रह्मन् ! इस बातमें तुम्हारा साक्षी कौन है ? जो सत्य वचन कहता है, जिसका सबके प्रति समभाव है, जो बुद्धिमान् शुचि और सदाचारी है ॥ ३८ ॥ विवाद उपस्थित होनेपर वही पुरुष साक्षी होसकता है ब्रह्माजीने कहा इस समय उस दूरदेशसे कौन साक्षी यहां आवे ॥ ३९ ॥ अतएव जो सत्य है, वह यह केतकीही कहेगी यह बात कहकर ब्रह्माजीने केतकीको वह कहनेके लिये सविशेष अनुरोध किया ॥ ४० ॥ केतकी भी उनकी आज्ञानुसार शीघ्र विष्णुके प्रबोधार्थ बोली हे विष्णो ! मैं महादेवके मस्तकमें थी, ब्रह्माजी मुझको वहांसे लेकर इस स्थानमें चले आये हैं ॥ ४१ ॥ अतएव इस विषयमें कभी आपको सन्देह नहीं करना चाहिये, शिवभक्तिपरायण किसी पुरुषने मुझको उनके मस्तकमें समर्पण किया था, ब्रह्माजी भी

हरिस्तं प्रत्युवाचेदं साक्षी कः कथयाधुना ॥ यथार्थवादी मेधावी सदा चारः शुचिः समः ॥३८॥ साक्षी भवति सर्वत्र विवादे समुपस्थिते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दूरदेशात्समायाति साक्षी कः समयेधुना ॥ ३९ ॥ यत्सत्यं तद्वचः सेयं केतकी कथयिष्यति ॥ इत्युक्त्वा प्रेरिता तत्र ब्रह्मणा केतकी स्फुटम् ॥ ४० ॥ वचनं प्राह तरसा शार्ङ्गिणंप्रत्यबोधयत् ॥ शिवमूर्ध्नि स्थितां ब्रह्मा गृहीत्वा मां समागतः ॥ ४१ ॥ संदेहोऽत्र न कर्तव्यस्त्वया विष्णो कदाचन ॥ मम वाक्यं प्रमाणं हि ब्रह्मा पारं गतोऽस्य ह ॥४२॥ गृहीत्वा मां समायातः शिवभक्तैः समर्पिताम् ॥ केतक्या वचनं श्रुत्वा हरिराह स्मयन्निव ॥ ४३ ॥ महादेवः प्रमाणं मे यद्यसौ वचनं वदेत् ॥ ऋषिरुवाच ॥ तदाकर्ण्य हरेर्वाक्यं महादेवः सनातनः ॥४४॥ कुपितःकेतकीं प्राह मिथ्यावादिनि मा वद ॥ गच्छतो मध्यतः प्राप्ता पतिता मस्तकान्मम ॥४५॥ मिथ्याभिभाषिणी त्यक्त्वा मया त्वं सर्वदैव हि ॥ ब्रह्मा लज्जापरो भूत्वा ननाम मधुसूदनम् ॥ ४६ ॥

मुझको पाकर ले आये हैं, अतएव ब्रह्मा जो इसकी शेषसीमातक गये थे, इसमें सन्देह नहीं है, इस विषयमें मेरे वचनको ही प्रमाण जानना चाहिये, विष्णुने केतकीका यह वचन सुन आश्चर्य युक्त होकर कहा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ मैं तुम्हारी बातका विश्वास नहीं कर सकता, यह महादेव स्वयं यह बात कहैं, तो इसका प्रमाण हो सकता है. ऋषि बोले हे राजन् ! सनातन महादेवने हरिके यह वचन सुन ॥ ४४ ॥ कुपित होकर केतकीसे कहा रे मिथ्यावादिनी? तू ऐसे मिथ्या वचन मत कहे मेरे मस्तकसे तू गिरी थी ब्रह्माने जाते जाते मार्गमें तुझको पाया है ॥ ४५ ॥ अतएव जब तू मिथ्या वचन कहती है तब मैं तुझे कभी ग्रहण न करूंगा आजसे मैंने तुझको त्याग दिया तब ब्रह्माजीने अत्यन्त लज्जित होकर मधुसुदनको प्रमाण किया ॥ ४६ ॥

और श्रीमहादेवजीने उसदिनसे कुसुममें केतकीको त्याग दिया. हे महाराज ! माया बलको इसी प्रकार प्रबल जानना चाहिये क्योंकि जब वह ब्रह्मा विष्णु इत्यादि ज्ञानियोंको भी मोहित करती है ॥ ४७ ॥ तब अन्यान्य साधारण प्राणियोंके मोहकी वो बातही क्या कहूं ? देखो रमापति विष्णु देवकार्यसिद्धिके निमित्त ॥ ४८ ॥ मोहके वश हो पाप भय छोड़ सदा दैत्योंको छलते हैं अधिक क्या वह सब विषयके प्रभु होकर भी आनन्दसुख त्याग अनेक योनिमें अवतीर्ण होकर ॥ ४९ ॥ दैत्योंसे संग्राम करते हैं हे भूपते ! विष्णु सर्वज्ञ और जगत्के गुरु एवं विशेषकर देवताओंकी सृष्टिकार्यके एकमात्र अधीश्वर हैं अतएव जब उनके ऊपरही मायाका इतना बल है तब अपर प्राणी जो मायासे मोहित हो इसमें फिर आश्चर्य क्या है ? हे महाराज ! वह परमा

शिवेन केतकी त्यक्ता तद्दिनात्कुसुमेषु वै ॥ एवं माया बलं विद्धि ज्ञानिनामपि मोहदम् ॥४७॥ अन्येषां प्राणिनां राजन्का वार्ता विभ्रमं प्रति ॥ देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं सर्वदैव रमापतिः ॥ ४८ ॥ दैत्यान्वंचयते चाशु त्यक्त्वापापभयं हरिः ॥ अवतारकरो देवो नाना योनिषु माधवः ॥ ४९ ॥ त्यक्त्वाऽऽनन्दसुखं दैत्यैर्युद्धं चैवाकरोद्विभुः ॥ नूनं मायाबलं चैतन्माधवेऽपि जगद्गुरौ ॥ ५० ॥ सर्वज्ञेदेवकार्यांशे का वार्ताऽन्यस्य भूपते ॥ ज्ञानिनामपि चेतांसि परमा प्रकृतिः किल ॥ ५१ ॥ बलादाकृष्य मोहाय प्रयच्छति महीपते ॥ यया व्याप्तमिदं सर्वं भगवत्या चराचरम् ॥ ५२ ॥ मोहदा ज्ञानदा सैव बंधमोक्षप्रदा सदा ॥ राजोवाच ॥ भगन्ब्रूहि मे तस्याः स्वरूपं बलमुत्तमम् ॥५३॥ उत्पत्तिकारणं वाऽपि स्थानं परमकं च यत् ॥ ऋषिरुवाच ॥ न चोत्पत्तिरनादित्वान्नृप तस्याः कदाचन ॥ ५४ ॥ नित्यैव सा परा देवी कारणानां च कारणम् ॥ वर्तते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप ॥ ५५ ॥

प्रकृति ज्ञानियोंके चित्तको ॥ ५० ॥ ५१ ॥ बलपूर्वक आकर्षण करके मोह–सागरमें निमग्न करती हैं वह भगवती इस चराचर विश्व संसारमें व्याप्त रहकर ॥ ५२ ॥ मोह प्रदानपूर्वक बन्धन करती हैं और फिर वही ज्ञान देकर मुक्ति देती हैं; राजा बोले हे ब्रह्मन् ! उनका स्वरूप किस प्रकार है ? तथा उत्तम बल कैसा है ? ॥ ५३ ॥ उत्पत्तिका कारण क्या है ? और उनका परम स्थान कहां है ? आप यह सब विषय मुझसे विस्तार सहित वर्णन कीजिये ऋषिने कहा हे नरपाल ! वह अनादि हैं इस कारण उनकी उत्पत्ति कभी नहीं है ॥ ५४ ॥ वह परमा प्रकृति नित्या और वही सदा सबके कारणका भी कारण होती हैं अतएव उनके समान बलवान् और कौन हो सकता है. हे राजन् ! वह शक्तिरूपसे सब पदार्थमें ही सम्यक् प्रकारसे विराजमान् रहती हैं ॥ ५५ ॥

सुतरां जीवशक्तिविहीन होनेसे शवके समान निश्चल होता है इस चराचर विश्वमण्डमें जो सब पदार्थ विद्यमान हैं वह सब चित् स्वरूप ब्रह्म हैं अतएव उनकी शक्ति भी सब प्राणियोंमें स्थिर रहती है सुतरां इस शक्तिका रूपभी ब्रह्म है इसमें सन्देह नहीं क्योंकि अग्निकी शक्तिका अग्निके अतिरिक्त दूसरा रूप दिखाई नहीं देता ॥ ५६ ॥ तब केवल देवताओंका कार्य करने के लियेही समय समयमें उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता है हे राजन् ! देवता और मनुष्य लोग जब उनका स्तव करते हैं ॥ ५७ ॥ तभी अम्बिका प्राणियोंका क्लेश निवारण करनेके लिये प्रादुर्भूत होती हैं वह परमेश्वरी देवी अनेक रूप धारणकर नानाप्रकार शक्तियोंके सहित ॥ ५८ ॥ अपनी इच्छानुसार ही देवकार्यके लिये आविर्भूत होती हैं, हे नृपवर ! काल और दैव उनसे ही उत्पन्न हैं इस कारण वह देवताओंके समान ॥ ५९ ॥ दैव वा कालके आधीन नहीं हैं. वरन् वह पुरुषार्थके अनुसार जीवोंको सदा कार्यमें प्रवृत्त

शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वथा ॥ चिच्छक्तिः सर्वभूतेषु रूपं तस्यास्तदेव हि ॥ ५६ ॥ आविर्भावतिरोभावौ देवानां कार्यसिद्धये ॥ यदा स्तुवंति तां देवा मनुजाश्च विशांपते ॥ ५७ ॥ प्रादुर्भवति भूतानां दुःखनाशाय चांबिका ॥ नानारूपधरा देवी नानाशक्तिसमन्विता ॥ ५८ ॥ आविर्भवति कार्यार्थं स्वेच्छया परमेश्वरी ॥ दैवाधीना सा देवी यथा सर्वे सुरा नृप ॥ ५९ ॥ न कालवशगा नित्यं पुरुषार्थप्रवर्तिनी ॥ अकर्ता पुरुषो द्रष्टा दृश्यं सर्वमिदं जगत् ॥ ६० ॥ दृश्यस्यजननी सैव देवी सदसदात्मिका ॥ पुरुषं रंजयत्येका कृत्वा ब्रह्मांडनाटकम् ॥ ६१ ॥ रंजिते पुरुषे सर्वं संहरत्यतिरंहसा ॥ तया निमित्तभूतास्ते ब्रह्म विष्णुमहेश्वराः ॥ ६२ ॥ कल्पिताः स्वस्वकार्येषु प्रेरिता लीलया त्वमी ॥ स्वांशं तेषु समारोप्य कृतास्ते बलवत्तराः ॥ ६३ ॥ दत्ताश्च शक्तयस्तेभ्यो गीर्लक्ष्मीर्गिरिजा तथा ॥ ते तां ध्यायंति देवेशाः पूजयंति परां मुदा ॥ ६४ ॥

करती हैं पुरुष कार्य नहीं करता केवल सबके साक्षीरूपमें विद्यमान रहता है ॥ ६० ॥ यह सब जगत् दृश्य है, वह देवी इन सबका कार्य और कारण स्वरूप है, अतएव उन्होंने ही सब दृश्यमान विश्वको उत्पन्न किया है वह अकेली ही यह ब्रह्मांडनाटक प्रगट करके ॥ ६१ ॥ पुरुषको रंजित करती हैं और पुरुषके रंजित होनेपर फिर अतिशीघ्र उसका संहार करती हैं ब्रह्मा, विष्णु और महादेव सृष्टि, स्थिति और संहारकर्त्ता हैं ॥ ६२ ॥ यह लोकप्रवाद मात्र है, वास्तवमें वह सृष्टि स्थिति और संहारके निमित्तमात्र हैं, प्रकृत प्रस्तावमें भगवतीने लीलाके लिये इनको कल्पना करके स्वस्वकार्यमें नियुक्त कर रक्खा है भगवतीने अपना अंश समर्पण करके ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महदेवको अपनी शक्ति सरस्वती लक्ष्मी और गिरिनन्दिनी देकर उनको

बलशाली किया है वह देवता महाशक्तिको जानकर उनका ध्यान पूजन करते हैं ॥ ६४ ॥ सृष्टि, स्थिति और संहारकारिणि देवीको जानकर आनन्दसहित उनका ध्यान धरते हैं हे भूपते ! मैंने ज्ञान और बुद्धिके अनुसार देवीका पवित्र माहात्म्य आनुपूर्विक तुमसे वर्णन किया किन्तु इसका अन्त मैं भी नही जान सकता ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ राजाने कहा हे भगवन् ! आप भगवतीकी आराधनाविधि, पूजाविधि, होमविधि और मंत्र इत्यादि सब विषयका विवरण मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ ऋषिने कहा हे राजन् ! मैं उन देवीकी पूजाविधि कहता हूं सुनो विधिपूर्वक भगवतीकी पूजा करनेसे मनुष्योंको अभीष्ट सिद्धि, दुःखविनाश, ज्ञानलाभ और मोक्षप्राप्ति इत्यादि समस्त मंगल लाभ होता है ॥ २ ॥ मनुष्य प्रथम तो स्नान करै और फिर सफेद वस्त्र पहर वैदिक संध्या और तान्त्रिक संध्या करै इसके उपरांत प्रयत चित्तसे आचमन

ज्ञात्वा सर्वेश्वरीं शक्तिं सृष्टिस्थितिविनाशिनीम् ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ मम बुद्ध्यनुसारेण नांतं जानामि भूपते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्ब्रूहि मे सम्यक्तस्या आराधने विधिम् ॥ पूजाविधिं च मन्त्रांश्च तथा होमविधिं वद ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तस्याः पूजाविधिं शुभम् ॥ कामदं मोक्षदं नृणां ज्ञानदं दुःखनाशनम् ॥ २ ॥ आदौ स्नानविधिं कृत्वा शुचिः शुक्लांबरो नरः ॥ आचम्य प्रयतः कृत्वा शुभमायतनं निजम् ॥ ३ ॥ ततोऽवलिप्तभूम्यां तु संस्थाप्याऽऽसनमुत्तमम् ॥ तत्रोपविश्य विधिवत्त्रिराचम्य मुदाऽन्वितः ॥ ४ ॥ पूजाद्रव्यं सुसंस्थाप्य यथा शक्त्यनुसारतः ॥ प्राणायामं ततः कृत्वा भूतशुद्धिं विधाय च॥ ५ ॥ कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां तु संभारं प्रोक्ष्य मंत्रतः ॥ कालज्ञानं ततः कृत्वा न्यासं कुर्याद्यथाविधि ॥६॥ शुभे ताम्रमये पात्रे चंदनेन सितेन च ॥ षट्कोणं विलिखेद्यंत्रं चाऽष्टकोणं ततो बहिः ॥ ७ ॥

करके अपना शुभ स्थान निर्वाचन करले ॥ ३ ॥ फिर वह स्थान गोवर आदिसे लीपकर उसमें पवित्र आसन विछावै तदुपरान्त प्रसन्न चित्तसे उस आसन पर बैठे विधिपूर्वक तीन बार आचमन कर ॥ ४ ॥ इसके पीछे अपनी शक्तिके अनुसार पूजाकी सामग्री संग्रह पूर्वक यथायोग्य स्थानमें स्थापन कर प्राणायाम करता हुआ भूत शुद्धिसे मातृकान्यासपर्यंत सब कार्य करै ॥ ५ ॥ अनन्तर मास तिथि इत्यादिका उल्लेखपूर्वक संकल्प करके यथाविधि मातृकान्यासादि मंत्रन्यास पर्यन्त करै फिर अपने देहमें पीठकल्पना कर अन्तर्याग करके बाह्य पूजा करै इसके उपरांत प्राणप्रतिष्ठा पूर्वक पूजाकी सब सामग्री अस्त्रमंत्रद्वारा अथवा फटकारद्वारा पोषण करके यथाविधि उत्सर्ग करै ॥ ६ ॥ फिर ताम्रमय शुभ्र पात्रमें श्वेत चन्दन अथवा अष्टविध गंधद्वारा षट्कोण यंत्र अंकित करके

उसके बाहर अष्टपत्र और मयूर यंत्र भी लिखे ॥ ७ ॥ फिर प्रत्येक दलमें नवाक्षर मंत्रका एक एक बीज अक्षर लिखकर नवम अक्षरको कर्णिकामें लिखै तदुपरान्त प्राणप्रतिष्ठाके मंत्रसे अथवा वेदमंत्रसे यन्त्रकी प्रतिष्ठा करके कर्णिकामें आधारशक्तिसे पीठमंत्र पर्यंत पूजा करै इसके पीछे देवीको आवाहन कर मूलमंत्रद्वारा आसनादि यथायोग्य उपचारसे अर्चना पूर्वक षट्कोणमें षडङ्ग पूजा और भूपुरमें इन्द्रादि एवं वज्रादिकी पूजा करता हुआ यंत्रपूजा करै ॥ ८ ॥ हे महाराज! पूर्वोक्त यंत्रके अभावमें भगवतीकी धातुमयी मूर्ति बनाकर शिवोक्त तंत्रविहित मंत्रद्वारा यत्न सहित उनकी पूजा करै ॥ ९ ॥ अथवा वैदिक मंत्रद्वारा समाहित चित्तसे उनकी यथाविधि पूजा कर, फिर ध्यानमें निमग्न रह नवाक्षर मंत्रका जप करे ॥ १० ॥ जप दो प्रकारके हैं नित्य और पौरश्च रणिक, नित्य जपका नित्य होम होता है और नैमित्तिकका पुरश्चरणके जपका दशांश होम, होमका दशांश अभिषेक, अभिषेकका दशांश तर्पण और तर्पणका

नवाक्षरस्य मंत्रस्य बीजानि विलिखेत्ततः ॥ कृत्वायंत्रप्रतिष्ठां च वेदोक्तां संविधाय च ॥ ८ ॥ अर्चां वा धातवीं कुर्यात्पूजामंत्रैः शिवोदितैः ॥ पूजनं पृथिवीपाल भगवत्या प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ कृत्वा वा विधिवत्पूजामागमोक्तां समाहितः ॥ जपेन्नवाक्षरं मंत्रं सततं ध्यानपूर्वकम् ॥ १० ॥ होमं दशांशतः कुर्यादशांशेन च तर्पणम् ॥ भोजनं ब्राह्मणानां च तद्दशांशेन कारयेत् ॥ ११ ॥ चरित्रत्रयपाठं च नित्यं कुर्याद्विसर्जयेत् ॥ नवरात्रव्रतं चैव विधेयं विधिपूर्वकम् ॥ १२ ॥ आश्विने च तथा चैत्रे शुक्ले पक्षे नराधिप ॥ नवरात्रोपवासो वै कर्त्तव्यः शुभमिच्छता ॥ १३ ॥ होमः सुविपुलः कार्यो जप्यमंत्रैः सुपायसैः ॥ शर्कराघृतमिश्रैश्च मधुयुक्तः सुसंस्कृतैः ॥ १४ ॥ छागमांसेन वा कार्यो बिल्वपत्रैस्तथा शुभैः ॥ हयारिकुसुमैः रक्तैस्तिलैर्वा शर्करायुतैः ॥ १५ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां च विशेषतः ॥ कर्तव्यं पूजनं देव्या ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ १६ ॥

दशांश ब्राह्मण भोजन करना चाहिये ॥ ११ ॥ हे महाराज! इस प्रकार जप समापन पूर्वक नित्य देवीके चरित्रत्रयमूलक चण्डी पाठ करके फिर देवीको विसर्जन करै. हे नरनाथ! मनुष्योंको शास्त्रकी विधिके अनुसार अवश्य नवरात्रि व्रत करना चाहिये ॥१२॥ जो मंगलकी इच्छा करैं उनको आश्विन और चैत्रमासके शुक्लपक्षमें नवरात्रिव्रतका उपवास करना अवश्य कर्त्तव्य है ॥ १३ ॥ जिस मंत्रका जप करै उसी मंत्रसे सुसंस्कृत पायसमें घृत मधु और शर्करा मिलाकर बहुसंख्यक होम करै ॥ १४ ॥ अथवा छागमांस या पवित्र बिल्वपत्र, लाल करवीरका पुष्प अथवा शर्करामिश्रित तिलद्वारा होम करै ॥ १५ ॥ प्रति तिथिमें ही पूजाके विधिकी व्यवस्था होनेपर भी अष्टमी नवमी और चतुर्दशीमें देवीकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ १६ ॥

हे नरनाथ! इस प्रकार महादेवीकी पूजा करनेसे निर्धन मनुष्य धन पाता है रोगी रोगसे छूट जाता है और अपुत्र मनुष्य वशवर्ती और गुणवान् पुत्र प्राप्त करता है ॥ १७ ॥ राजा राज्यभ्रष्ट हो तो देवीकी पूजा करनेसे सार्वभौमराज्यको प्राप्त होते हैं और पहिले जिन शत्रुओंसे परास्त होगये हो महामायाके प्रसादसे उनको भी संहार कर सकते हैं ॥ १८ ॥ विद्याभिलाषी पुरुष यदि जितेन्द्रिय होकर उनकी पूजा करें तो वह अनवद्या मंगलप्रदा विद्या लाभ कर सकता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १९ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वा शूद्र जो कोई हो भक्तिपरायण होकर जगद्धात्रीकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण सुखका अधिकारी हो सकता है ॥ २० ॥ सदा भक्तिमें तत्पर होकर मनुष्य वा स्त्रियोंमें जो कोई नवरात्रव्रत करता है वह अपना अभिलाषित फल पाता है ॥२१॥ जो अश्विन

निर्धनो धनमाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्छुभांश्च वशवर्तिनः ॥ १७ ॥ राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं प्राप्नोति सार्वभौमिकम् ॥ शत्रुभिः पीडितो हंति रिपुं मायाप्रसादतः ॥ १८ ॥ विद्यार्थी पूजनं यस्तु करोति नियतेंद्रियः ॥ अनवद्यां शुभां विद्यां विंदते नाऽत्र संशयः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा भक्तिसंयुतः ॥ पूजयेज्जगतां धात्रीं सर्वसुखभाग्भवेत् ॥२०॥ नवरात्रव्रतं कुर्यान्नरनारीगणश्च ॥यः वांछितं फलमाप्नोति सर्वदा भक्तितत्परः ॥२१॥ आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्र व्रतं शुभम् ॥ करोति भागसंयुक्तः स र्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ विधिवन्मंडलं कृत्वा पूजास्थानं प्रकल्पयेत् ॥ कलशं स्थापयेत्तत्र वेदमंत्रविधानतः ॥ २३ ॥ यंत्रं सुरुचिरं कृत्वा स्थापयेत्कलशोपरि ॥ वापयित्वा यवांश्चारून्पार्श्वतः परिवर्तितान् ॥२४॥ कृत्वोपरि वितानं च पुष्पमालासमावृतम् ॥ धूपदीपसुसंयुक्तं कर्तव्यं चंडिकागृहम् ॥२५॥ त्रिकालं तत्र कर्तव्या पूजा शक्त्यनुसारतः ॥ वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं चंडिकायाश्च पूजने ॥२६॥

मासके शुक्ल पक्षमें मनलगा पवित्र नवरात्र व्रत करता है वह संपूर्ण काम्यवस्तुको प्राप्त होता है ॥ ॥ २२ ॥ हे महाराज ! अब नवरात्रव्रतकी विधि कहता हूं सुनो, विधिके अनुसार चारों ओर मण्डल बनाकर पूजा स्थानकी रचना करे फिर वेदके मंत्र और विधानानुसार उसके ऊपर कलश स्थापन करे ॥ २३ ॥ पूर्वोक्त नियमानुसार सुन्दर यंत्र निर्माण करके उसके ऊपर कलश रक्खे और कलशके चारों ओर वेष्टन करके सुन्दर यव बिखेरै ॥२४॥ पूजा स्थानका ऊपरी भाग चन्द्रातप और पुष्पमालासे सुशोभित करके चण्डिकाके गृहमें धूप और दीप प्रदान करै ॥ २५ ॥ हे महाराज ! अपनी शक्तिके अनुसार उस पूजा गृहमें भगवती देवीकी प्रातःकाल, मध्याह्न कालमें पूजा करनी चाहिये किंतु किसी प्रकार वित्तकी शठता वा कृपणता करना उचित

नहीं है ? ॥ २६ ॥ वहां धूप, दीप, मनोहर नैवेद्य; पुष्प और नानाप्रकारके फल उपहारमें देकर उनकी पूजा करै विशेष कर स्तोत्रपाठ वेद पारायण गीत वाद्य और अनेक प्रकारके बाजों द्वारा उत्सव करना चाहिये ॥ २७ ॥ अधिकतर चंदन भूषण वस्त्र अनेक भांतिके खाद्य सुगंधित तेल और मनोहर मालासे यथाविधि कुमारीकी पूजा करनी ॥ २८ ॥ २९ ॥ इस प्रकार उनकी पूजा करके अष्टमी वा नवमी तिथिमें पूर्वोक्त होमद्रव्यसे विधानानुसार होम करावे ॥ ३० ॥ अन्तमें विधिपूर्वक ब्राह्मण भोजन कराकर दशमीके दिन स्वयं पारण करै फिर भक्तिमें तत्पर होकर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको अनेक वस्त्रदान करै ॥ ३१ ॥ महाराज ! इस प्रकार भक्ति सहित जो कोई पुरुष वा जो कोई पतिव्रता साध्वी या विधवा नारी उक्त विधिके अनुसार नवरात्र

धूपैर्दीपैः सुनैवेद्यैः फलपुष्पैरनेकशः ॥ गीतवाद्यैः स्तोत्रपाठैर्वेदपारायणैस्तथा ॥ २७ ॥ उत्सवस्तत्र कर्तव्यो नानावादित्रसं युतैः ॥ कन्यकानां पूजनं च विधेयं विधिपूर्वकम् ॥ २८ ॥ चंदनैर्भूषणैर्वस्त्रैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा ॥ सुगंधतैलमाल्यैश्च मनसो रुचिकारकैः ॥ २९ ॥ एवं संपूजनं कृत्वा होमं मंत्रविधानतः ॥ अष्टम्या वा नवम्यां वा कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥३०॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्पा रणं दशमीदिने ॥ कर्तव्यं शक्तितो दानं देयं भक्तिपरैर्नृपैः ॥ ३१ ॥ एवं यः कुरुते भक्त्या नवरात्रव्रतं नरः ॥ नारी वा सधवा भक्त्या विधवा वा पतिव्रता ॥ ३२ ॥ इह लोके सुखं भोगान्प्राप्नोति मनसेप्सितान् ॥ देहांते परमं स्थानं प्राप्नोति व्रततत्परः ॥ ३३ ॥ जन्मांतरेऽबिकाभक्तिर्भवत्यव्यभिचारिणी ॥ जन्मोत्तमकुले प्राप्य सदाचारो भवेद्धि सः ॥ ३४ ॥ नवरात्रव्रतं प्रोक्तं व्रतानामुत्तमंव्रतम् ॥ आराधनं शिवायास्तु सर्वं सौख्यकरं परम् ॥ ३५ ॥ अनेन विधिना राजन्समाराधय चंडिकाम् ॥ जित्वा रिपूनस्खलितं राज्यं प्राप्स्यस्य नुत्तमम् ॥ ३६ ॥ सुखं च परमं भूप देहेऽस्मिन्स्वगृहे पुनः पुत्रदारान्समासाद्य लप्स्यसे नात्र संशयः ॥ ३७ ॥

व्रतका अनुष्ठान करते हैं ॥ ३२ ॥ वह इस लोकमें मनकी सब अभिलषित वस्तु भोग कर असीम सुख पाते हैं और देहके अन्तमें परम स्थानको प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ और यदि किसी कारणसे जन्म ग्रहण करना पड़े तो जन्मान्तरमें वह मनुष्य उत्तम कुलमें जन्म पाकर सदाचार सम्पन्न होता है और अम्बिकाके प्रति उसकी अचला भक्ति होती है ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! मैंने आपसे इस नवरात्र व्रतकी विधि कही, यह सब व्रतोंसे उत्तम है इससे महामाया शिवाकी आराधनाके कारण परम सुख प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! आप इसी विधिके अनुसार चण्डिकाकी भलीभांति आराधना कीजिये तो उनके प्रसादसे सब शत्रुओंको पराजित करके अकंटक अति उत्तम राज्यको प्राप्त होगे और अपने घर पुत्र व स्त्रीके सहित मिलकर इस देहमें ही पुनर्वार परम

सुख लाभ कर सकेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे वैश्यवर ! जो इच्छा मात्रसे ही सृष्टि और संहार करती हैं जिनकी पूजा करनेसे सब अभिलाषा पूर्ण होती हैं तुम भी उन्हीं विश्वेश्वरी महामायाकी आराधना करो ॥ ३८ ॥ तो तुम घर जाकर अभिलषित सांसारिक सुखको प्राप्त हो स्वजनोंके मान्य होंगे ॥ ३९ ॥ और फिर अन्तमें पवित्र देवी लोकमें वास पाओगे इसमें संशय नहीं. क्योंकि जो भगवतीकी आराधना नहीं करते वही नरकमें जाते हैं ॥ ४० ॥ और अधिकतर इस लोकमें अनेक प्रकारके रोगोंसे बारंबार पीड़ित होकर सदा क्लेश भोगते हैं, जो मनुष्य देवीकी पूजासे विमुख हैं वही मनुष्य शत्रुसे पराभूत ॥ ४१ ॥ स्त्रीपुत्रविहीन, जड़बुद्धि और तृष्णासे कातर होकर क्लेश भोग करते हैं और जो बिल्वदल, करवीर, कनेर; शतपत्र (कमल) और चम्पककुसुम

वैश्योत्तम त्वामेवाद्य समाराधय कामदाम् ॥ देवीं विश्वेश्वरीं मायां सृष्टिसंहार कारणीम् ॥ ३८ ॥ स्वजनानां च मान्यस्त्वं भविष्यसि गृहे गतः ॥ सुखं सांसारिकं प्राप्य यथाभिलषितं पुनः ॥ ३९ ॥ देवीलोके शुभे वासो भविता ते न संशयः ॥ नाराधिता भगवती यैस्ते नरकभागिनः ॥४०॥ इहलोकेऽतिदुःखार्ता नानारोगैः प्रपीडिताः ॥ भवंति मानवा राजञ्छत्रुभिश्च पराजिताः ॥४१॥ निष्कलत्रा ह्यपुत्राश्च तृष्णार्ताः स्तब्धबुद्धयः ॥ बिल्वीदलैः करवीरैः शतपत्रैश्च चम्पकैः ॥ ४२ ॥ अर्चिता जगतां धात्री यस्तऽतीव विलासिनः ॥ भवंति कृतपुण्यास्ते शक्तिभक्तिपरायणाः ॥ ४३ ॥ धनविभवसुखाढ्या मानवा मानवन्तः सकलगुणगणानां भाजनं भारतीशाः ॥ निगमपठित मन्त्रैः पूजिता यैर्भवानी नृप तिलकमुख्यास्ते भवन्तीह लोके ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कंधे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा दुःखितौ वैश्यपार्थिवौ ॥ प्रणिपत्य मुनिं प्रीत्या प्रश्रयावनतौ भृशम् ॥ १ ॥

द्वारा ॥ ४२ ॥ जगद्धात्रीकी पूजा करते हैं वह पुण्यवान् देवीभक्तिपरायण मनुष्यही अतिशय विलासी होते हैं ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! अधिक और क्या कहूं ? जिन्होंने निगम शास्त्र अनुमोदित मंत्रसे भगवतीकी पूजा करी है वे मनुष्य ही इस लोकमें धन और विभवसुखसे पूर्ण होकर संसारमें सन्मानके भाजन होते हैं फलतः वह पूर्ण गुणग्रामके एकमात्र आश्रय, होकर इस लोकके मध्य राजाओंमें अग्रणी होते हैं ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! राजा सुरथ और वैश्यवर समाधि अत्यन्त दुःखित मनसे समय व्यतीत करते थे किंतु इस समय मुनिके इस प्रकार वचन सुन अत्यन्त प्रसन्न हुए और अत्यन्त विनयसहित मस्तक झुकाय कर प्रणाम किया ॥ १ ॥

तब उनका अन्तःकरण भक्तिरससे अभिषिक्त और दोनों नेत्र प्रफुल्लित होगये तब वचन कहनेमें चतुर शांत स्वभाव वैश्य तथा राजा दोनों ही हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे ॥ २ ॥ हे महाभाग ! हम दीन और शोकयुक्त हो शान्त भावसे आपके आश्रममें थे, किंतु भगीरथने जिस प्रकार गंगाद्वारा जगत्को पवित्र किया था. इसी प्रकार आज आपने भी हमको परमपावन वचनोंसे पवित्र किया ॥ ३ ॥ स्वाभाविक गुणग्रामसे विभूषित साधुजन पराये उपकारमें निरत हो सब देहधारियोंको जिससे सुख हो वही कार्य करते हैं ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! हमको निस्सन्देह पूर्व जन्मके किये हुए पुण्यसे आपका यह पवित्र आश्रम प्राप्त हुआ था और इसी कारण आज हमारे अत्यन्त क्लेश दूर हुए ॥ ५ ॥ इस पृथ्वीके ऊपर स्वार्थ साधनमें तत्पर अनेक मनुष्य दिखाई देते हैं, किंतु जो पराये हितका साधन करनेमें समर्थ हों ऐसे आपके समान पुरुष कादचित् ही दिखाई देते हैं ॥ ६ ॥ हे मुनिवर ! मैं तो दुःखी हूं ही, परन्तु

हर्षोत्फुल्लनयनावूचतुर्वाक्यकोविदौ ॥ कृतांजलि पुटौ शांतौ भक्तिप्रवणचेतसौ ॥ २ ॥ भगवन्पावितावद्य शांतौ दीनौ शुचान्वितौ ॥ तव सूक्तसरस्वत्या गंगयेव भगीरथः ॥ ३ ॥ साधवः सम्भवन्तीह परोपकृतितत्पराः ॥ अकृत्रिमगुणारामाः सुखदाः सर्वदेहिनाम् ॥४॥ पूर्वपुण्यप्रसंगेन प्राप्तोऽयमाश्रमः शुभः ॥ तवावाभ्यां महाभाग महादुःखविनाशकः ॥ ५ ॥ भवन्ति मानवा भूमौ बहवःस्वार्थ तत्परा ॥ परार्थसाधने दक्षाः केचित्क्वापि भवादृशाः ॥ ६ ॥ दुःखितोऽहं मूनिश्रेष्ठ वैश्योऽयं चातिदुःखितः ॥ उभौ संसारसंतप्तो तवाश्रमपदे मूदा ॥ ७ ॥ दर्शनादेव हे विद्वन्गतं दुःखमिहावयोः ॥ देहजं मानसं वाक्यश्रवणादेव सांप्रतम् ॥ ८ ॥ धन्या वावां कृतकृत्यौ जातौ सूक्तिसुधारसात् ॥ पावितौ भवता ब्रह्मन्कृपया करुणार्णव ॥ ९ ॥ गृहाणास्मत्करौ साधो नय पारं भवार्णवे ॥ मग्नौ श्रांतावितिे ज्ञात्वा मन्त्रदानेन सांप्रतम् ॥ १० ॥ तपः कृत्वाऽतिविपुलं समाराध्य सुखप्रदम् ॥ संप्राप्य दर्शनं भूयो यास्यावो निजमन्दिरम् ॥ ११ ॥

मुझसे भी अधिक यह वैश्य दुःखी है, हम दोनों ही संसार तापसे तापित हो शांति लाभके लिये प्रसन्न मनसे आपके आश्रममें आये थे ॥ ७ ॥ और इस स्थानमें आय केवल आपके दर्शन करनेसे ही हमारे दैहिक दुःख दूर हो गये. किंतु अब आपके मनोहर वचन सुननेसे हमारा सब मानसिक क्लेश भी दूर हो गया ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके अमृतके समान वचनोंसे अभिषिक्त हो हम धन्य और कृतकृत्य हुए. हे करुणासागर ! अधिक और क्या कहैं, आपनेही कृपा करके आज हमको पवित्र किया है ॥ ९ ॥ हे साधो ! हम भवसागर में निमग्न होकर थक गये हैं, आप यह जान मन्त्रदान पूर्वक हमारा हाथ पकड़कर संसार सागर से पार ले चलिये ॥ १० ॥ पहिले हम अत्यन्त विपुल तपस्या करके सुख देनेवाली भगवतीकी आराधना करेंगे फिर उनका

दर्शन लाभ कर तब अपने घर जायँगे ॥ ११ ॥ इस समय आपके मुख मण्डलसे देवीका नवाक्षर मन्त्रलाभ कर नवरात्रिव्रत अवलम्बन पूर्वक निराहार रहकर उनका स्मरण करेंगे ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले वैश्य और राजाके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर मुनिसत्तम सुमेधाने उनको ध्यान और बीज सहित वह मंगलदायक मन्त्र दिया ॥१३॥ अनन्तर वह वैश्य और राजा मुनिसे मन्त्रके ऋषि बीज छन्द शक्ति और देवता प्राप्त कर गुरुको आमंत्रण पूर्वक उसकी आज्ञासे पवित्र नदीके तटपर गये ॥ १४ ॥ अत्यन्त कृशोदर स्थिर बुद्धि वैश्य और राजा वह एकांत निर्जन स्थानमें आसन ग्रहण कर उसके ऊपर विराजमान हुए ॥ १५ ॥ उस शांतचित्त वैश्य और राजाने देवीके ध्यानमें निमग्न हो उनका मन्त्र जप और तीनों चरित्रोंका पाठ करते२उसी स्थानमें एक महीना

वदनात्तव संप्राप्य देवीमन्त्रं नवाक्षरम् ॥ स्मरणं च करिष्यावो निराहारौ धृतव्रतौ ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचोदितस्ताभ्यां सुमेधा मुनिस त्तमः ॥ ददौ मन्त्रं शुभं ताभ्यां ध्यानबीजपुरः सरम् ॥ १३ ॥ तौ च प्राप्य मुने मंत्रं संमंत्र्य गुरुदैवतौ ॥ जग्मतुर्वैश्यरा जानौ नदीतीरम नुत्तमम् ॥ १४ ॥ एकांते विजने स्थाने कृत्वाऽऽसनपरिग्रहम् ॥ उपविष्टौ स्थिरप्रज्ञौ तावतीव कृशोदरौ ॥ १५ ॥ मंत्र जाप्यरतौ शांतौ चरित्रत्रयपाठकौ ॥ निन्यतुर्मासमेकं तु तत्र ध्यानपरायणौ ॥ १६ ॥ तयोर्मासव्रतेनैव जाता प्रीतिरनुत्तमा ॥ पादांबुजे भवान्यास्तु स्थिरा बुद्धिस्तथाऽप्यलम् ॥ १७ ॥ कदाचित्पादयोर्गत्वा मुनेस्तस्य महात्मनः ॥ कृतप्रणामावागत्य तस्थतुश्च कुशासने ॥१८॥ नान्यकार्यं परौ क्वापि बभूवतुः कदाचन ॥ देवीध्यानपरौ नित्यं जप मंत्ररतौ सदा ॥१९॥ एवं जाते तदा पूर्णे तत्र संवत्सरे नृप ॥ बभूवतुः फला हारं त्यक्त्वा पणाशनौ नृप ॥२०॥ वर्षमेकं तप स्तत्र चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥ शुष्कपर्णाशनौ दांतौ जपध्यानपरायणौ.॥२१॥

बिताया ॥ १६ ॥ केवल इस महीनेही व्रतका अनुष्ठान करनेसे उनको भगवतीके चरणकमलोंमें अत्यन्त अनुराग उत्पन्न हुआ विशेषकर उनकी मति अति स्थिर हो गयी ॥ १७ ॥ वह इस समय अन्य कार्यमें रत नहीं होते केवल प्रति दिन एक बार महात्मा मुनिवरके चरण कमलोंके सन्मुख जाय और उनको प्रणाम प्रत्यागमन पूर्वक अपने अपने कुशासन पर बैठते और देवीके ध्यानमें विनम्र हो सदा मंत्र जप कार्यमें निरत रहते ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ हे राजन्! इस प्रकार संवत्सरके पूर्ण होनेपर फिर उन्होंने फलाहार त्याग कर पत्ते भक्षण करना प्रारंभ किया ॥२०॥ इसप्रकार उन दोनोंने तप और ध्यानमें निरत हो सूखे पत्ते भक्षण कर वहां एक वर्ष तपस्या करी ' ॥ २१ ॥

हे महाराज ! इन दो वर्षोंके पूर्ण होनेपर उन्होंने किसी समय स्वप्नमें भगवतीका मनोहर दर्शन पाया वह राजा और वैश्य किसी समय स्वप्नमें भगवतीका मनोहर दर्शन प्राप्त करते हुए ॥ २२ ॥ वह राजा और वैश्य किसी समय भूषणोंसे भूषित लाल वस्त्र धारे अम्बिका देवीको ॥२३॥ स्वप्नमें देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए. स्वप्न देखकर दोनों ही प्रसन्न हुए और फिर जलाहारसे तीसरे वर्ष तप किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार तीन वर्ष तपस्या करके भी जब प्रत्यक्ष दर्शन नहीं पाया, तब वैश्य और राजादेवीके दर्शनकी इच्छासे मनही मनमें चिंता करने लगे ॥ २५ ॥ कि जिससे मनुष्योंको परम श्रेय प्राप्त होता है, हमको उनका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त नहीं हुआ अतएव अब हम अत्यन्त दुःखसे कातर होकर प्राणत्याग करेंगे ॥ २६ ॥ राजाने मनमें इस प्रकार चिंता करके एक

पूर्णे वर्षद्वये जाते कदाचिद्दर्शनं च तौ ॥ प्रापतुः स्वप्नमध्ये तु भगवत्या मनोहरम् ॥ २२ ॥ रक्तांबरधरां देवीं चारुभूषणभूषिताम् ॥ कदाचिन्नृपतिः स्वप्नेऽप्यपश्यज्जगदंबिकाम् ॥ २३ ॥ वीक्ष्य स्वप्ने च तौ देवीं प्रीतियुक्तौ बभूवतुः ॥ जलाहारैस्तृतीये तु स्थितौ संवत्सरे तु तौ ॥ २४ ॥ एवं वर्षत्रयं कृत्वा ततस्तौ वैश्यपार्थिवौ ॥ चक्रतुस्तौ तदा चिंतां चित्ते दर्शनलालसौ ॥ २५ ॥ प्रत्यक्षदर्शनं देव्या न प्राप्तं शांतिदं नृणाम् ॥ देहत्यागं करिष्यावो दुःखितौ भृशमातुरौ ॥ २६ ॥ इति संचिंत्य मनसा राजा कुंडं चकार ह ॥ त्रिकोणं सुस्थिरं सौम्यं हस्तमात्रप्रमाणतः ॥ २७ ॥ संस्थाप्य पावकं राजा तथा वैश्योऽति भक्तिमान् ॥ जुहावासौ निजं मांसं छित्त्वा छित्त्वा पुनः पुनः ॥ २८ ॥ तथा वैश्योऽपि दीप्तेऽग्नौ स्वमांसं प्राक्षिपत्तदा ॥ रुधिरेण बलिं चास्यै ददतुस्तौ कृतोद्यमौ ॥ २९ ॥ तदा भगवती दत्त्वा प्रत्यक्षं दर्शनं तयोः ॥ प्राह प्रीतिभरोद्भ्रांतौ दृष्ट्वा तौ दुःखितौ भृशम् ॥ ३० ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वरं वरय भो राजन्यत्ते मनसि वांछितम् ॥ तुष्टाऽहं तपसा तेऽद्य भक्तोऽसि त्वं मतो मम ॥ ३१ ॥

हाथके बराबर सुन्दर दृढ एक त्रिकोण कुण्ड बनाया ॥ २७ ॥ और उसमें अग्नि स्थापन करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने गोत्रसे बारंबार मांस काटके होम करने लगा ॥ २८ ॥ तब वैश्य भी इसी प्रकार अग्नि स्थापन कर जलती हुई अग्निमें अपने मांसको डालने लगा हे महाराज ! इस प्रकार वे दोनों ही उत्साहित हो देवीको रुधिरकी बलि देने लगे ॥ २९ ॥ तब भगवती उनको अत्यन्त दुःखित और भक्ति रसमें व्याकुल चित्त देख प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहने लगी ॥ ३० ॥ देवी बोली हे राजन् ! तुम मेरे परम प्रिय भक्त हो मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हुई हूं अतएव तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो वह प्रार्थना करो मैं तुमको वही वर दूंगी ॥ ३१ ॥

फिर उन्होंने वैश्यसे भी कहा हे महामते ! मैं प्रसन्न हुई हूं अतएव तुम्हारी क्या इच्छा है ? शीघ्र कहो मैं अब तुमको अभीष्ट वर दूंगी ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! राजा सुरथ देवीके इस प्रकार वचन सुन, आनन्दित होकर उनसे कहने लगे हे देवि ! बलपूर्वक शत्रुओंको मारकर अभी अपने राज्यको प्राप्त करूं मुझको यही वर दीजिये ॥ ३३ ॥ तब देवीने उनसे कहा हे राजन् ! तुम अपने घर जाओ तुम्हारे शत्रु क्षीणबल होकर अवश्य पराजित होंगे ॥ ३४ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे मंत्रीगण आय चरणोंमें गिरकर तुम्हारे वशीभूत होंगे अतएव तुम अपने नगरमें जाकर सुखसहित राज्य पालन करो ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तुम अयुतवर्ष १०००० विशाल राज्य शासनपूर्वक फिर देह त्याग सूर्यसे जन्म ग्रहण कर सावर्णिनामक मनु होगे ॥ ३६ ॥ व्यासजी

वैश्यं प्राह तदा देवी प्रसन्नाऽहं महामते ॥ किं तेऽभीष्टं ददाम्यद्य प्रार्थयाशु मनोगतम् ॥ ३२ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा तामुवाच मुदाऽन्वितः ॥ देहि मेऽद्य निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ ३३ ॥ तमुवाच तदा देवी गच्छ राजन्निजं गृहम् ॥ शत्रवः क्षीणसत्त्वास्ते गमिष्यंति पराजिताः ॥ ३४ ॥ मंत्रिणस्ते समागम्य ते पतिष्यंति पादयोः ॥ कुरु राज्यं महाभाग नगरे स्वं यथासुखम् ॥३५॥ कृत्वा राज्यं सुविपुलं वर्षाणामयुतं नृप ॥ देहांते जन्म संप्राप्य सूर्याच्च भविता मनुः ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच ॥ वैश्यस्तामप्युवाचेदं कृतांजलिपुटः शुचिः ॥ न मे गृहेण कार्यं वै न पुत्रेण धनेन वा ॥ ३७ ॥ सर्वं बंधकरं मातः स्वप्नवन्नश्वरं स्फुटम् ॥ ज्ञानंमे देहि विशदं मोक्षदं बंधनाशनम् ॥३८॥ असारेऽस्मिंश्च संसारे मूढा मज्जंति पामराः ॥पंडिताः संतरंतीह तस्मान्नेच्छंति संसृतिम्॥३९॥ व्यास उवाच॥ तदाकर्ण्य महामाया वैश्यं प्राह पुरः स्थितम् ॥ वैश्यवर्य तव ज्ञानं भविष्यति न संशयः ॥४०॥ इतिं दत्त्वा वरं ताभ्यां तत्रैवांतरधीयत ॥ अदर्शनं गतायां तु राजा तं मुनिसत्तमम् ॥ ४१ ॥

बोले हे महाराज ! उस पवित्र स्वभाव वैश्यने भी हाथ जोड़कर उनसे कहा हे देवि ! गृह,पुत्र अथवा धनसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३७ ॥ हे जननी ! गृह, पुत्र और धन यह सब संसारके बंधन स्वरूप और स्वप्नके समान नाशवान् हैं अतएव जिससे संसारबंधन टूटकर मुक्ति प्राप्त होती है ऐसा विषद ज्ञान मुझको दीजिये ॥ ३८ ॥ ज्ञानविहीन मूढ पामर गणही असार संसारसागरमें निमग्न होते हैं पण्डितलोग कभी संसारकी इच्छा नहीं करते, अतएव वही इससे पार होते हैं ॥ ३९ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! यह वचन सुनकर महामाया सन्मुख स्थित वैश्यसे कहने लगीं हे वैश्यवर ! तुमको ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ देवी उनको इस प्रकार वर देकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगई, देवीके अंतर्धान होनेपर राजाने उन मुनिको ॥ ४१ ॥

प्रणाम कर, घोड़ेपर चढ़ घर जानेकी इच्छाको उस समय उनके मंत्री गण और प्रजागणोंके सामने जाकर ॥ ४२ ॥ विनय भावसे उनको प्रणाम किया और हाथ जोड़ खड़े होगये फिर बोले हे राजन् ! शत्रुओंने अत्यन्त पापाचरण किया था इस कारण वह सबही समरमें मृत्युको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ अब पाप नगरमें वास करके निष्कण्टक राज्यशासन कीजिये, राजाने मंत्रियोंका इस प्रकार वचन सुननेके पीछे उन मुनिवरको प्रणाम कर ॥ ४४ ॥ अनुमति ग्रहण पूर्वक मंत्रियोंसे परिवेष्टित हो अपने नगरकी ओर प्रस्थान किया इसके उपरान्त अपना राज्य स्त्री आत्मीय और बांधवगणोंको प्राप्त हो ॥ ४५ ॥ समुद्रसे घिरे हुए सब पृथ्वीमण्डलको भोग करने लगे इस ओर वैश्य भी ज्ञानलाभ करते ही भलीभांति संगरहित हो संसारसे छूटगया ॥ ४६ ॥ अनन्तर

प्रणम्य हयमारुह्य गमनाय मनो दधे ॥ तदैव तस्य सचिवास्तत्राऽऽगत्य नृपप्रजाः ॥४२॥ प्रणेमुर्विनयो पेतास्तमूचुः प्रांजलिस्थिताः ॥ राजंस्ते शत्रवः सर्वे पापाच्च निहता रणे ॥ ४३ ॥ राज्यं निष्कंटकं भूप कुरुष्व पुरमास्थितः ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा नत्वा तं मुनिसत्तमम् ॥ ४४ ॥ आपृच्छ्य निर्ययौ तत्र मंत्रिभिः परिवारितः ॥ संप्राप्य च निजं राज्यं दारान्स्वजनबांधवान् ॥ ४९ ॥ बुभुजे पृथवीं सर्वां ततः सागरमेखलाम् ॥ वैश्योऽपि ज्ञानमासाद्य मुक्तसंगः समन्ततः ॥ ४६ ॥ कालातिवाहनं तत्र मुक्तबन्धश्चकार ह ॥ तीर्थेषु विचरन्गायन्भगवत्या गुणानथ ॥ ४७ ॥ एतत्ते कथितं देव्याश्चरितं परमाद्भुतम् ॥ आराधनफलप्राप्तिर्यथावद्भूपवैश्ययोः ॥४८॥ दैत्यानां हननं प्रोक्तं प्रादुर्भाव स्तथा शुभः ॥ एवंप्रभावा सा देवी भक्तानामभयप्रदा ॥ ४९ ॥ यः श्रृणोति नरो नित्यमेतदाख्यानमुत्तमम् ॥ स प्राप्नोति नरः सत्यं संसारसुखमद्भुतम् ॥ ५० ॥

जीवन्मुक्त वैश्यवर अनेकानेक तीर्थोंमें विचरण और वेदिका गुणगान करते करते समय विताने लगा ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! मैंने आपसे देवकीका परम अद्भुत चरित्र राजा और वैश्यको देवीकी आराधनासे फलप्राप्ति ॥ ४८ ॥ दानवोंका संहार और उनके कल्याणजनक आविर्भावका सब विषय भलीभांति वर्णन किया । हे राजन् ! आप उन भक्तोंको अभय देनेवाली देवीका प्रभाव इसी प्रकार जानिये ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य देवीभगवतीका चरित्र उपाख्यान सदा सुनते हैं उन श्रेष्ठ मनुष्योंको संसारका अद्भुत पवित्र सुख प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

इस अद्भुत उपाख्यानके सुननेसे मनुष्य ज्ञान मुक्ति कीर्ति सुख और पवित्रता लाभ करनेमें समर्थ होते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ५१ ॥ इस उपाख्यानमें सब धर्मोंका तत्व स्थिर हुआ है यही धर्म अर्थ काम और मोक्षका परम कारण है विशेष कर यह मनुष्योंको सब अभीष्ट प्रदान करता है ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले हे ऋषियो ! राजा जन्मेजयने जब सत्यवतीत नय व्यासदेवजीसे पूछा तब सर्वतत्वके जाननेवाले उन महर्षिने दिव्य संहिता उनके निकट कीर्त्तन की

ज्ञानदं मोक्षदं चैव कीर्तिदं सुखदं तथा ॥ पावनं श्रवणान्नूनमेतदाख्यानमद्भुतम् ॥ ५१ ॥ अखिलार्थप्रदं नृणां सर्वधर्मसमावृतम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं परमं मतम् ॥ ५२ ॥ सूत उवाच ॥ जनमेजयेन राज्ञाऽसौ पृष्टः सत्यवतीसुतः ॥ उवाच संहितां दिव्यां व्यासः सर्वार्थतत्त्ववित् ॥ ५३ ॥ चरितं चंडिकायास्तु शुंभदैत्यवधाश्रितम् ॥ कथयामास भगवान्कृष्णः कारुणिको मुनिः ॥ ५४ ॥ इति वः कथितः सारः पुराणानां मुनीश्वराः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पंचमस्कंधे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

व्योमांकाभ्रद्विसंख्यातैः २०९० श्लोकैर्व्यासेन धीमता ॥ देवीभागवतस्यास्य पंचम स्कंध ईरितः ॥

थी ॥ ५३ ॥ परमकारुणिक भगवान् श्रीवेदव्यासजीने शुंभादि दानओंके वध संघटित चण्डिकाके चरित्र इस प्रकार वर्णन किये थे। हे मुनिवरगण ! मैंने भी आपसे इस पुराणका सारसंग्रह वर्णन किया ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसास्र्यां संहितायां पण्डितज्वाला प्रसादमिश्रकृत भषायां पंचमस्कन्धे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ २०९० श्लोकोंमें पाचवां स्कंध पूर्ण हुआ । शुभमस्तु ।

इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते पंचमस्कन्धः समाप्तः

अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते षष्ठस्कन्धः प्रारभ्यते

दोहा—दीर्घनैन शृंगाररस, सागर छबि गुणऐन ॥ भजहुँ नित्य जगदम्बिका, गुणागार सुखदैन ॥ १ ॥

नैमिषारण्यमें वास करनेवाले ऋषिगण सूतजीसे कहने लगे हे महाभाग ! तुम्हारे मुखचन्द्रसे निकला हुआ महर्षि द्वैपायन कथित कल्याणकर वचनामृत हमको अत्यन्त मीठा बोध होता है इसलिये हम उसे पान करके भी भलीभांति तृप्तिलाभ नहीं कर सकते ॥ १ ॥ हे सूतजी ! जो प्रसिद्ध पापनाशन और मनोहर तथा वेदमें भी जो कथित है हम उसी शुभकर पुराणकी कथा पुनर्वार तुमसे पूछनेकी इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ वृत्रासुर नामक विख्यात अत्यन्त वीर्यवान् विश्वकर्माका एक पुत्र था इंद्रने महात्मा होकर भी युद्धमें उसको किस प्रकार मारा ॥ ३ ॥ विश्वकर्मा देवताओंका पक्षपाती था उसका पुत्र वीर्य्यवान् और महाबली तथा ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न था अतएव इंद्रने देवताओंका राजा होकर भी उसका किस कारण विनाश किया ॥ ४ ॥ पुराणके जाननेवाले और

ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभाग मिष्टं ते वचनामृतम् ॥ न तृप्ताः स्मो वयं पीत्वा द्वैपायनकृतं शुभम् ॥ १ ॥ पुनस्त्वां प्रष्टुमिच्छामः कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ वेदेऽपि कथितां रम्यां प्रसिद्धां पापनाशिनीम् ॥ २ ॥ वृत्रासुर इति ख्यातो वीर्यवांस्त्वष्टुरात्मजः ॥ स कथं निहतः संख्ये वासवेन महात्मना ॥ ३ ॥ त्वष्टा वै सुरपक्षीयस्तत्पुत्रो बलवत्तरः ॥ शक्रेण घातितः कस्माद्ब्रह्मयोनिर्महाबलः ॥ ४ ॥ देवाः सत्त्वगुणोत्पन्ना मानुषा राजसाः स्मृताः ॥ तिर्यञ्चस्तमसाः प्रोक्तापुराणागमवादिभिः ॥ ५ ॥ विरोधोऽत्र महान्भाति नूनं शतमखेन ह ॥ छलेन बलवान्वृत्रः शक्रेण विनिपातितः ॥६॥ विष्णुः प्रेरयिता तत्र स तु सत्त्वधरः परः ॥ प्रविष्टः पविमध्ये स च्छद्मना भगवान् प्रभुः ॥७॥ संधिं विधाय स ह्येवं मंत्रितोऽसौ महाबलः ॥ हरिभ्यां सत्यमुत्सृत्य जलफेनेन शातितः ॥८॥ कृतमिंद्रेण हरिणा किमेतत्सूत साहसम् ॥ महांतोऽपि च मोहेन वंचिताःपापबुद्धयः ॥ ९ ॥

आगमवादी पंडितगण कहते हैं कि देवता सत्वगुणसे, मनुष्य रजोगुणसे और सब तिर्य्यग्जाति तमोगुणसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ५ ॥ किन्तु वृत्रासुरके विनाशसे उसका मलावरोध दिखाई देता है क्योंकि, इन्द्रने शत यज्ञकारी सत्वगुण संपन्न होकर भी छलसे बलवान् वृत्रासुरका विनाश किया था ॥ ६ ॥ और सत्वगुणधारी विष्णुने उसको इस कार्य्यमें प्रवर्तित किया, और उन भगवान् प्रभु विष्णुने वृत्रासुरके वधार्थ छलपूर्वक वज्रमें प्रवेश किया था ॥ ७ ॥ महाबलवान् वृत्रासुर मिलाप करके निश्चिन्त था किन्तु इन्द्र और विष्णुने सत्य त्यागकर जलफेनसे मारा ॥ ८ ॥ इस प्रकार साहस किया यह अत्यन्त आश्चर्य्यका विषय है जो हो मैं समझ गया बडे २ जनभी मोहद्वारा वंचित होकर पापबुद्धि होते हैं ॥ ९ ॥

प्रधान प्रधान देवतागण अत्यन्त अन्यायकारी हैं केवल शास्त्रानुमत समाचार द्वारा उनको शिष्ट कहा जाता है ॥ १० ॥ उस प्रकार केवल सदाचारसे कैसे शिष्टता होती है ? यह मैं नहीं समझ सकता वास्तवमें इस प्रकार शिष्टता नहीं है सो जो हो, इंद्रने छलसे वृत्रासुरको मारकर ॥ ११ ॥ ब्रह्महत्या जनित कोई फलपाया था वा नहीं. हे सूतजी ! तुमने पहले कहा है कि देवी भगवतीने वृत्रासुरको मारा था ॥ १२ ॥ किन्तु इन्द्र वृत्रासुरको मारनेवाला है यह सर्वत्र प्रसिद्ध है अतएव कौन विषय यथार्थ हैं उसको स्थिर न कर सकनेसे इस समय हमारा मन मोहित हुआ जाता है, सूतजीने कहा हे मुनिगण ! वृत्रासुरके वधका वृत्तांत सुनो ॥ १३ ॥ और देवराज इन्द्रने जिस प्रकार ब्रह्महत्या जानित दुःख भोग किया था वह कहता हूं, परीक्षितके पुत्र महाराज जन्मेजयने पहले यह

अन्यायवर्तिनोऽत्यर्थं भवंतिं सूरसत्तमाः ॥ सदाचारेण युक्तेन देवा शिष्टत्वमागताः ॥ १० ॥ एवं विशिष्टा धर्मेण शिष्टत्वं कीदृशं पुनः ॥ हत्वा वृत्रं तु विश्वस्तं शक्रेण च्छद्मना पुनः ॥ ११ ॥ प्राप्तं पापफलं नो वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम् ॥ किं च त्वया पुरा प्रोक्तं वृत्रासुरवधः कृतः ॥ १२ ॥ श्रीदेव्या इति तच्चापि चित्तं मोहयतीह नः ॥ सूत उवाच ॥ शृण्वंतु मुनयो वृत्तं वृत्रासुरवधाश्रयम् ॥ १३ ॥ यथेन्द्रेण च संप्राप्त दुःखं हत्यासमुद्भवम् ॥ एव मेव पुरापृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १४ ॥ पारीक्षितेन राज्ञाऽपि स यदाह च तद् ब्रुवे ॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं वृत्रासुरः पूर्वं हतोमघवता मुने ॥ १५ ॥ सहायं विष्णुमासाद्य च्छद्मना सात्त्विकेन ह ॥ कथं च देव्या निहतो दैत्योऽसौ केन हेतुना ॥ १६ ॥ कथमेकवधो द्वाभ्यां कृतः स्यान्मुनिपुंगव ॥ तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं ही मे ॥ १७ ॥ महतां चरितं शृण्वन्को विरज्येत मानवः ॥ कथयांबावैभवं त्वं वृत्रासुरवधाश्रितम् ॥ १८ ॥

कथा पूँछी थी तब ॥ १४ ॥ सत्यवतीके पुत्र व्यासदेवजीने जो कहा था मैं वही आपके निकट वर्णन करता हूं सुनो जन्मेजयने कहा हे मुनिवर ! पहले सत्वगुण संपन्न सुरपति इन्द्रने विष्णुकी सहायतासे वृत्रासुरको किस प्रकार मारा ? अथवा श्रीदेवीजीने किस निमित्त इस दैत्यश्रेष्ठको मारा था ॥१५॥१६॥ हे मुनिंद्र ! दो व्यक्ति एक जनको मारें यह किस प्रकार संभव है ? इसको सुननेके लिये मेरे मनमें अत्यन्त कुतूहल उत्पन्न हुआ है ॥ १७ ॥ कौन मनुष्य महत् पुरुषोंके चरित्रकी कथा सुननेसे विरत होगा, आप शक्तिरूपिणी जगज्जननीके वृत्रासुरवध संघटित वैभवकी कथा वर्णन कर मेरे श्रवण और मनको चरितार्थ कीजिये ॥ १८ ॥

व्यासजीने कहा हे राजन् ! सुरश्रेष्ठ अमृतपान कर तिसके पीनेसे भी तृष्णारहित होते हैं किन्तु आप अबतक पुराणोंकी कथासे तृष्णारहित नहीं हुए बरन् पुराणोंके सुननेमें आपका आदर दिन दिन बढ़ता है आपकी बुद्धि पुराण पीयुष रसमें निमग्न हुई है अतएव हे राजेन्द्र ! आप धन्य हैं ॥१९॥ हे नृपवर ! पृथ्वीमें आपकी कीर्ति प्रशंसनीय है पुराणकी कथामें आपका भक्तिभाव दिन दिन बढ़ता है अतएव मैं भी आपके निकट पुराणकी कथा कीर्त्तन कर परमप्रीति लाभ करता हूं क्यों कि श्रोता यदि एक मनसे तद्गत चित्त कथा सुने तो वक्ता भी आनंदित हो यत्नपूर्वक कथा कहता है इसमें संदेह नहीं ॥ २० ॥ हे पृथ्वीन्द्र ! पूर्वकालमें वृत्रासुर और इन्द्रका जो युद्ध हुआ था और इन्द्रने विश्वकर्म्माके पुत्रको मारकर जो दुःख पाया था वह

व्यास उवाच ॥ धन्योऽसि राजंस्तव बुद्धिरीदृशी जाता पुराणश्रवणेऽति सादरा ॥ पीत्वाऽमृतं देववरास्तु सर्वथा पाने वितृष्णाः प्रभवंति वै पुनः ॥ १९ ॥ दिनेदिने तेऽधिकभक्तिभावः कथासु राजन्महनीयकीर्तेः ॥ श्रोतायदैकप्रवणः शृणोति वक्ता तदा प्रीतिमना ब्रवीति ॥ ॥ २० ॥ युद्धं पुरा वासववृत्रयोर्यद्वेदे प्रसिद्धं च तथा पुराणे ॥ दुःखं सुरेन्द्रेण तथैव लब्धं हत्वा रिपुं त्वाष्ट्रमपापमेव ॥ २१ ॥ चित्रं किमत्र नृपते हरिवज्रभृद्भ्यां यच्छद्मना विनिहतस्त्रिशिरोऽथ वृत्रः ॥ मायाबलेन मुनयोऽपि विमोहितास्ते चक्रुश्च निंद्यमनिशं किल पाप भीताः ॥ २२ ॥ विष्णुः सदैव कपटेन जघान दैत्यान्सत्त्वात्ममूर्तिरपि मोहमवाप्य कामम् ॥ कोऽन्योऽस्ति तां भगवतीं मनसाऽपि जेतुं शक्तः समस्तजनमोहकरीं भवानीम् ॥ २३ ॥ मत्स्यादियोनिषु सहस्रयुगेषु सद्यः साक्षाद्भवत्यपि ययाविनियोजितोऽत्र ॥ नारायणो नर सखो भगवाननंतः कार्यं करोति विहिताविहितं कदाचित् ॥ २४ ॥ देहं धनं गृहमिदं स्वजना मदीयं पुत्राः कलत्रमिति मोहमुपेत्य सर्वः ॥ पुण्यं करोत्यथ च पापचयं करोति मायागुणैरतिबलैर्विकलीकृतो यत् ॥ २५ ॥

वेद और पुराणमें भलीभांति वर्णित है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जब मायाके बलसे मोहित हो मुनिगण पापका भय करके भी निन्दित कर्म्म करते हैं तो विष्णु और इन्द्रने जो छलसे त्रिशिरा और वृत्रासुरको मारा फिर विचित्रता ही क्या है ॥ २२ ॥ विष्णु सत्त्वमूर्ति होकर भी जब मायासे मोहित हो सर्वदा ही कपटचतुरता दिखाय दैत्यगणोंको मारते है तब कौन उस सर्वजनमोहकारिणी मायारूपिणी भगवती भवानीको मनसे भी जीतनेमें समर्थ है ॥ २३ ॥ हे नृप ! इस मायाके संयोगसे भगवान् अनन्त स्वरूप नरसखा नारायण सहस्र युगमें मत्स्यादि योनिमें इस संसारके बीच उत्पन्न होकर कभी विहित और कभी अविहित कर्म करते हैं ॥ ॥ २४ ॥ देवता और मनुष्य सब जीवगण मायाद्वारा विकल और विह्वल होनेसे देह, धन, गृह, पुत्र, कलत्र और स्वजन

"यह सब मेरे हैं" इस प्रकार मोहको प्राप्त हो कभी पुण्य और कभी पापकर्म करते हैं ॥ २५ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार पृथ्वीवासमें कोई कार्य और कारणवित् पुरुष मोहसे छुटकारा पानेमें समर्थ नहीं हो तो वह पहले ही मायाके तीनों गुणोंसे मोहित हो उसीके वशीभूत होता है ॥ २६ ॥ अतएव उन विष्णु और इन्द्र दोनोंने ही मायासे मोहित और स्वार्थसाधनमें तत्पर हो छलपूर्वक वृत्रासुरको मारा था ॥२७॥ हे राजन् ! मैं यह वृत्तान्त और वृत्रासुर तथा इन्द्रकी परस्पर शत्रुताका कारण आपसे कहता हूं सुनो ॥ २८ ॥ देवप्रवर विश्वकर्मा प्रजापति महातपस्वी ब्राह्मणोंके अत्यन्तप्रिय और देवतागणोंके चतुर शिल्पकार थे ॥२९॥ उन्होंने इन्द्रके प्रति विद्वेषके कारण परमरूपवान् त्रिशिरा विश्वरूपनामक एक पुत्र उत्पन्न किया था ॥३०॥ उस पुत्रके परमसुन्दर

न जातु मोहं क्षपितुं नरः क्षमः कश्चिद्भवेद्भूप परावरार्थवित् ॥ विमोहितस्तैस्त्रिभिरेव मूलतो वशीकृतात्मा जगतीतले भृशम् ॥ २६ ॥
अथ तौ मायया विष्णुवासवौ मोहितौ भृशम् ॥ जघ्नतुश्छद्मना वृत्रं स्वार्थसाधनतधत्परौ ॥ २७ ॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि वृत्तांतमवनीपते ॥
कारणं पूर्ववैरस्य वृत्रवासवयोर्मिथः ॥२८॥ त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीद्देवश्रेष्ठो महातपाः ॥ देवानां कार्यकर्ता च निपुणो ब्राह्मणप्रियः ॥२९॥
सपुत्रं वै त्रिशिरसमिंद्रद्वेषात्किलाऽसृजत् ॥ विश्वरूपेतिविख्यातं नाम्ना रूपेण मोहनम् ॥ ३० ॥ त्रिभिः सवदनैः श्रेष्ठैर्व्यरोचत मनोहरैः ॥
त्रिभिर्भिन्नानि कार्याणि मुखैः समकरोन्मुनिः ॥ ३१ ॥ वेदानेके न सोऽधीते सुरां चैकेन सोऽपि बत् ॥ तृतीयेन दिशः सर्वा युगपच्च
निरीक्षते ॥ ३२ ॥ त्रिशिरा भोगमुत्सृज्य तपश्चक्रे सुदुष्करम् ॥ तपस्वी स मृदुर्दांतो धर्ममेव समाश्रितः ॥ ३३ ॥ पंचाग्निसाधनं काले
पादपाग्रे निवेशनम् ॥ जलमध्ये निवासं च हेमंते शिशिरे तथा ॥ ३४ ॥ निराहारो जितात्माऽसौ त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ तपश्चचार मेधावी
दुष्करं मंदबुद्धिभिः ॥ ३५ ॥ तं च दृष्ट्वा तपस्यंतं खेदमाप शचीपतिः ॥ विषादमगमत्तत्र शक्रोऽयं मास्मभूदिति ॥ ३६ ॥

तथा मनोहर तीन मुख थे विश्वरूप इन तीनोंसे पृथक् पृथक् मुखसे भिन्न २ कार्य निर्वाह करते ॥ ॥३१ ॥ उनमें एकसे वेद पढ़ते एकसे सुरापान और अन्यसे सब दिशाओंको देखते ॥ ३२ ॥ मुनिवर त्रिशिरा मृदु चतुर और धर्मशील हो विषयवासना त्यागकर कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ३३ ॥ वे ग्रीष्मकालमें पञ्चाग्नि तापते और वृक्षके ऊपर पैर बांध अधोमुख होकर स्थित और हेमन्त शिशिर तथा शीतके समय जलमें वास करते ॥ ३४ ॥ इस प्रकार आहार त्याग और आत्माको जीतकर सब विषयसंगपरित्यागपूर्वक मन्दबुद्धियोंको दुष्कर ऐसी कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ३५ ॥ शचीपति उनको इस प्रकार तपस्या करते देखकर अत्यन्त खेद और विषादको प्राप्त हुए और जिससे वे इन्द्रपदलाभ करसके इस प्रकारकी

इच्छा करने लगे ॥ ३६ ॥ पाकशासन इन्द्र उस अमिततेजा तपस्वीका तपोवीर्य और स्थिर अनुराग देखकर अत्यन्त चिन्ता करने लगे ॥ ३७ ॥ कि त्रिशिरा तपोबलसे दिन दिन बलवान् होता है अतएव यह मुझको मार सकेगा क्योंकि जिस शत्रुका बल दिन दिन बढ़ता है पंडितगण कभी उसकी उपेक्षा नहीं करते ॥ ३८ ॥ अतएव इस समय इसकी तपस्याके विनाशका उपाय करना मुझको अवश्य कर्तव्य है, इस प्रकार चिन्ता कर निश्चित किया कि काम ही तपस्याका शत्रु है कामसे ही तप स्याका नाश होता है॥ ३९ ॥ अतएव वे जिसमें भोगासक्त हो मुझको वही करनाउचित है, बुद्धिमान इन्द्रने इस प्रकार चिन्ता कर ॥ ४० ॥ विश्वकर्माके पुत्र त्रिशिराको लुभानेकेलिये उर्वशी, मेनका, रंभा, घृताची और तिलोत्तमा इत्यादि रूपगर्वित

दृष्ट्वा तस्य तपो वीर्यं सत्यं चामिततेजसः ॥ चिंतां च महतीं प्राप ह्यनिशं पाकशासनः ॥ ३७ ॥ विवर्धमानस्त्रिशिरा मामयं शात यिष्यति ॥ नोपेक्ष्यः सर्वथा शत्रुर्वर्धमानबलो बुधैः ॥ ३८ ॥ तस्मादुपायः कर्तव्यस्तपोनाशाय सांप्रतम् ॥ कामस्तु तपसां शत्रुः कामान्नश्यति वै तपः ॥ ३९ ॥ तथैवाऽद्य प्रकर्तव्यं भोगासक्तो भवेद्यथा ॥ इति संचिंत्य मनसा बुद्धिमान्बलमर्दनः ॥ ४० ॥ आज्ञापय त्सोऽप्सरस्त्वाष्ट्रपुत्रप्रलोभने ॥ उर्वशीं मेनकां रंभां घृताचीं च तिलोत्तमाम् ॥ ४१ ॥ समाहूयाऽब्रवीच्छक्रस्तास्तदा रूपगर्विताः ॥ प्रियं कुरुध्वं मे सर्वाः कार्येऽद्य समुपस्थिते ॥ ४२ ॥ यत्तो मेऽद्य महाञ्छत्रुस्तपस्तपति दुर्जयः ॥ कार्यं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत मा चिरम् ॥ ४३ ॥ शृङ्गारवेषैर्विविधैर्हावैर्देहसमुद्भवैः ॥ प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं ज्वरं मम ॥४४ ॥ अस्वस्थोऽहं महाभागास्तस्य ज्ञात्वा तपोब लम् ॥ बलवानासनं मेऽद्य ग्रहीष्यत्यविलंबितः ॥ ४५ ॥ भयं मे समुपायातं क्षिप्रं नाशयताऽबलाः ॥ उपकुर्वंतु सहिताः कार्येऽद्य समुपस्थिते ॥ ४६ ॥

अप्सरागणोंको बुलाकर कहा॥ ४२ ॥ हे अपसरागणो! इस समय मेरा एक भारी कार्य्य उपस्थित हुआ है तुम इस विषयमें मेरा प्रिय कार्य साधन करो ॥ ४२ ॥ इस समय मेरा एक दुर्जय महान् शत्रु प्रगट हो तपस्या करता है तुम विलंब न करके शीघ्र जाय कार्य्य साधनका यत्न करो ॥४३॥ तुम शृंगारवेश धारण कर देहसे हावभावादि अनेक चेष्टासे उसको लुभाओ तुम्हारा मंगल हो तुम उसका लुभाकर मेरे हृदयका ज्वर दूर करो ॥ ४४ ॥ हे अप्सरागणो ! अधिक क्या कहूं मैं उसका तपोबल जानकर किसी प्रकारसे ही स्वास्थ्यलाभ नहीं कर सकता. हे अबलागणो ! वह बलवान् तपस्वी शीघ्र ही मेरा आसन ग्रहण करेगा ॥ ४५ ॥ मुझको यही भय उपस्थित हुआ है अतएव तुम शीघ्र ही वह भय दूर करो इस समय यह कार्य उपस्थित हैं तुम सब मिलकर

हमारा उपकार करो ॥ ४६ ॥ अप्सरागण उनका यह वचन सुन प्रणाम पूर्वक कहने लगी. हे देवेश्वर ! आप भय न कीजिये हम उस तपस्वीके लुभानेको भलीभांति यत्न करेंगी ॥ ४७ ॥ हे महाद्युते ! उस मुनिको लुभानेके निमित्त नृत्य गीत और विहारादि कर जिससे आपका भय दूर हो हम वही करेंगी ॥ ४८ ॥ हे देवराज ! उस मुनिको कटाक्ष अंगभंग द्वारा मोहित चलायमान चित्त तथा नियन्त्रित कर अपने वशीभूत करेंगी ॥ ४९ ॥ व्यासजीने कहा, हे राजन् अप्सरागण देवराज इन्द्रसे यह कह त्रिशिराके पास गई और कामशास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार हावभाव प्रकाश करने लगीं ॥५०॥ वे मुनिके सामने कभीं गान तथा कभी भिन्न भिन्न तालसहित नृत्य करने लगीं बहुत क्या वे देवताओंकी स्त्रियें उनमुनिको लुभानेके निमित्त अनेक प्रकारके हावभाव

तच्छ्रुत्वा वचनं नार्य ऊचुस्तं प्रणताः पुरः ॥ मा भयं कुरु देवेश यतिष्यामः प्रलोभने ॥ ४७ ॥ यथा न स्याद्भयंतस्मात्तथा कार्यं महा द्युते ॥ नृत्य गीतविहारैश्च मुनेस्तस्य प्रलोभने ॥ ४८ ॥ कटाक्षैरंगभेदैश्च मोहयित्वा मुनिं विभो ॥ लोलुपं वशमस्माकं करिष्यामो नियंत्रितम् ॥ ४९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याभाष्य हरिं नार्यो ययुस्त्रिशिरसोऽतिकम् ॥ कुर्वंत्यो विविधान्भावान्कामशास्त्रो चितानपि ॥५०॥ गायंत्यस्तालभेदैस्ता नृत्यंत्यः पुरुतो मुनेः ॥ तं प्रलोभयितुं चक्रुर्नानाभावान्वरांगनाः ॥ ५१ ॥ नाऽपश्यत्सतपोराशिरंगनानां विडंबनम् ॥ इंद्रियाणि वशे कृत्वा मूकांधबधिरः स्थितः ॥ ५२ ॥ दिनानि कतिचित्तस्थुर्नार्यस्तस्याश्रमे वरे ॥ कुर्वंयो गाननृत्यादिप्रपंचानति मोहदान् ॥ ५३ ॥ न चचाल यदा कामं ध्यानाश्च त्रिशिरा मुनिः ॥ परावृत्य तदा देव्यः पुनः शक्रमुपस्थिताः ॥ ५४ ॥ कृतांजलिपुटाः सर्वा देवराजमथाऽब्रुवन ॥ श्रांता दीना भयत्रस्ता विवर्णवदना भृशम् ॥ ५५ ॥ देवदेवमहाराज यत्नश्च परमः कृतः ॥ न स शक्यो दुराधर्षो धैर्याच्चलयितुं विभो ॥ ५६ ॥

प्रकाश करने लगीं ॥ ५१ ॥ किन्तु तपःप्रभावयुक्त उन महर्षि त्रिशिराने अङ्गनागणोंकी अङ्गभङ्गरूप विडम्बनाको देखा भी नहीं बरन् वह इंद्रियगणोंको वशीभूत कर गूंगे अन्धे और बहरेके समान स्थिति करने लगे ॥ ५२ ॥ अङ्गनागणोंने मुनिके उस मनोहर आश्रममें अत्यन्त मनको मोहित करनेवाले संगीत और नृत्यादि अनेक प्रकारकी कामकला फैलाकर कुछ दिनतक वहां वास किया ॥ ५३ ॥ किंतु जब वह त्रिशिरामुनि कुछ भी ध्यानसे विचलित न हुए तब अप्सरागण ॥ ५४ ॥ विश्रान्त (थककर) दीनभावयुक्त हो लौटकर इन्द्रके सामने उपस्थित हुई और सब ही भयसे त्रसित हो हाथ जोड़कर कहने लगीं ॥ ५५ ॥ महाराज ! हमने अत्यन्त यत्न किया किंतु किसीसे भी उन दुर्धर्ष मुनिवरको ध्यानसे न छुटा सकीं ॥ ५६ ॥

हे पाकशासन ! इस समय आप दूसरा उपाय कीजिये उस जितेन्द्रिय तपस्वीके ध्यानच्युत करनेमें हम समर्थ न हुईं ॥ ५७ ॥ हमारे भाग्यसे ही अग्निके समान तपःप्रभावयुक्त उन मुनिवरने हमको शाप न दिया ॥ ५८ ॥ अनन्तर अप्सरागणोंको बिदा कर मंदबुद्धि पापमति इन्द्र अत्यन्त अन्याय होनेपर भी उस मुनिके मारनेकी इच्छा करने लगे ॥ ५९ ॥ हे महाराज ! उन अमरराज इन्द्रने लोकलज्जा और पापभय विसर्ज्जनकर उनको मारनेके निमित्त अतिनिंदित पापबुद्धि स्थिर की ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! अनन्तर सुरपति इन्द्रने त्रिशिराके मारनेका संकल्प कर ऐरावतके ऊपर चढ उन अमितपराक्रम मुनिवरके सामने जाय देखा कि ॥ १ ॥ वह मुनिवर वाक्यसंयतकर

उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यः सर्वथा पाकशासन ॥ नाऽस्माकं बलमेतस्मिंस्तापसे विजितेंद्रिये ॥ ५७ ॥ दिष्ट्या वयं न शप्ताः स्म यदनेन महात्मना ॥ मुनिना वह्नितुल्येन तपसा द्योतितेन हि ॥ ५८ ॥ विसृज्याऽप्सरसः शक्रश्चिंतयामास मंदधीः ॥ तस्यैव च वधोपायं पाप बुद्धिरसांप्रतम् ॥ ५९ ॥ विसृज्य लोकलज्जां स तथा पापभयं भृशम् ॥ चकार पापबुद्धिं तु तद्वधाय महीपते ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभा गवते महापुराणे षष्ठस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ अथ स लोभमुपेत्य सुराधिपः समधिगम्य गजासन संस्थितः ॥ त्रिशिरसं प्रति दुष्टमतिस्तदा मुनिमपश्यदमेयपराक्रमम् ॥ १ ॥ तमभिवीक्ष्य दृढासनसंस्थितं जितगिरं सुसमाधिवशं गतम् ॥ रविविभा वसुसन्निभमोजसा सुरपतिः परमापदमभ्यगात् ॥ २ ॥ कथमसौ विनिहंतुमहो मया मुनिरपापमतिः किल संमतः ॥ रिपुरयं सुसमिद्धत पोबलः कथमुपेक्ष्य इहाऽऽसनकामुकः ॥ ३ ॥ इति विचिंत्य पविं परमायुधं प्रतिमुमोच मुनिं तपसि स्थितम् ॥ शशिदिवाकरसन्निभमा शुगं त्रिशिरसं सुरसंघपतिः स्वयम् ॥ ४ ॥

दृढ़ आसनपर विराजमान रहकर एकाग्रचित्तसे समाधि कर रहे हैं उसकाल उनके शरीरसे इस प्रकार तेज निकल रहा था कि वह सूर्य्य और अग्निके समान बोध होते थे इन्द्र त्रिशिराको इस प्रकार देखकर अत्यन्त खेद और विषादको प्राप्त हुए ॥ २ ॥ तब उन्होंने विचारा कि यह निर्म्मल चित्त मुनिवर प्रदीप्त तपोबलयुक्त हैं मैंने इनको मारनेकी इच्छा की यह अत्यन्त धर्म्मविरुद्ध है, किंतु यह मेरा सिंहासन ग्रहण करनेके अभिलाषी हुए हैं अतएव किस प्रकार ऐसे शत्रुकी उपेक्षा करूं ॥ ३ ॥ देवराज इन्द्रने इस प्रकार विचार कर स्वयं उस तपस्यामें बैठे चन्द्र और सूर्यके समान दीप्यमान मुनिवर त्रिशिराके प्रति शीघ्रगामी अपना अमोघ अस्त्र वज्र निक्षेप किया ॥ ४ ॥

तब पर्वतका विशालशिखर वज्रसे आहत होकर जिस प्रकार पृथ्वीमें गिरता है इसी प्रकार तपस्वीप्रवर त्रिशिरा भी वज्रसे आहत हो पृथ्वीमें गिरपड़े और तत्काल प्राणत्याग किया ॥ ५ ॥ इन्द्र उनको मारकर अत्यन्त प्रसन्न हुए किंतु वहां बैठे मुनिगण "हा हतोऽस्मि" हाय क्या हुआ ? यह कह आर्तस्वरसे शब्द कर उठे और ऊंचे स्वरसे कहने लगे हाय पापमति! इन्द्रने आज क्या दुष्कर्म किया ॥ ६ ॥ हाय! दुरात्मा पापमति शचीपतिने विना अपराध इन तपोनिधि मुनिवरको मारा ? अतएव यह पापात्मा मुनिके हत्याजनित पाप फलको शीघ्र ही प्राप्त हो ॥ ७ ॥ अनन्तर देवराज इन्द्र उनको मारकर शीघ्र अपने स्थानको चले गये इधर वह महात्मा तपोनिधि हत होकर भी अपनी शरीर की प्रभास जीवितके समान स्थिति करने लगे ॥ ८ ॥ तब वृत्रासुरके

तदभिघातहतः स धरातले किल पपात ममार च तापसः ॥ शिखरिणः शिखरं कुलिशार्दितं निपतितं भुवि वाऽद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ तं निहत्य मुदमाप सुरेशश्चुक्रुशुश्च मुनयस्तु संस्थिताः ॥ हाहतेति भृशमार्तनिस्वनाः किं कृतं शतमखेन पापिना ॥ ६ ॥ विनापराधं तपसां निधिर्हतः शचीपतिः पापमतिर्दुरात्मा ॥ फलं किलाऽयं तरसा कृतस्य प्राप्नोतु पापी हननोद्भवस्य ॥ ७ ॥ तं निहत्य तरसा सुरराजो निर्जगाम निजमंदिरमाशु ॥ स हतोऽपि विरराज महात्मा जीवमान इव तेजसां निधिः ॥ ८ ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ जीवन्तमिव वृत्रहा ॥ चिंतामापाऽतिखिन्नांगः किंवा जीवेदयं पुनः ॥ ९ ॥ विमृश्य मनसाऽतीव तत्क्षणं पुरतः स्थितम् ॥ मघवा वीक्ष्य तं प्राह स्वकार्यसदृशं वचः ॥ १० ॥ तक्षंश्छिधि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम ॥ मा जीवतु महातेजा भाति जीवन्निव स्वयम् ॥ ११ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षोवाच विगर्हयन् ॥ तक्षोवाच ॥ महास्कन्धो भृशं भाति परशुर्नतरिष्यति ॥ १२ ॥ ततो नाहं करिष्यामि कार्यमेतद्विगर्हितम् ॥ त्वया वै निंदितं कर्म कृतं सद्भिर्विगर्हितम् ॥ १३ ॥

नाश करनेवाले इन्द्र उनको जीवितके समान पडा हुआ देखकर "यह मुनिवर जीवित हो सकते हैं" इस प्रकार चिंताकर अत्यन्त दुःखसे सन्तापित होने लगे ॥ ९ ॥ फिर मनमें अनेक प्रकारकी चिंता कर सामने खड़े काष्ठच्छेदक तक्षासे स्वार्थसाधनेके अनुरूप वचन कहने लगे ॥ १० ॥ हे शिल्पवर ! तुम इनका मस्तक काटकर मेरा वचन पालन करो यह महातेजा महर्षि जीवितके समान बोध होते हैं अतएव जब तुम उनका मस्तक काट डालोगे तब यह जीवित नहीं हो सकेंगे ॥ ११ ॥ तब तक्षाने इन्द्रका यह वचन सुन उस कार्यकी निंदा कर उनसे कहा तक्षा बोले हे देवराज! इन मुनिवरका कण्ठ अत्यन्त स्थल है अतएव अच्छेद्य है मेरा यह कुठार उनका मस्तक छेदन करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥ १२ ॥ विशेष कर यह नीचकार्य नहीं करूंगा आपने गणोंके

पक्षमें जो अत्यन्त नीच है वह अधर्म कार्य किया है ॥ १३ ॥ किंतु मैं पापका भय करता हूं अतएव इन मरे हुए मुनिवरके अंगमें फिर आघात नहीं करूंगा यह मुनिमरे हुए पड़े हैं इनके मस्तक काटनेका क्या प्रयोजन है ?॥ १४ ॥ हे पाकशासन ! इस विषयमें आपके भयका क्या कारण है सो कहो इन्द्रने कहा हे शिल्पवर ! यह मुनि हमारे परम शत्रु हैं इनका देह इस समय जीवितके समान प्रभावयुक्त बोध होता है ॥ १५ ॥ अतएव यह फिर जीवित हो जायँगे मैं इसी कारण डरता हूं तक्षाने कहा आप सब विषयको जान कर भी इस नृशंस कर्म्म करनेमें क्या लज्जा बोध नहीं करते ? ॥ १६ ॥ इन ऋषिपुत्रको मारकर ब्रह्महत्याका भय नहीं करते इन्द्रने कहा मैं दूर करनेके निमित्त फिर प्रायश्चित्त करूंगा ॥ १७ ॥ किंतु इस समय इस शत्रुका मारना मुझको अवश्य है. हे महामते ! नीतिके जाननेवाले पंडित गण कहते हैं कि छलकरके भी सर्वप्रकार शत्रुको मारना, तब तक्षाने इन्द्रका यह वचन

अहं बिभेमि पापाद्वै मृतस्यैव च मारणे ॥ मृतोऽयं मुनिरस्त्येव शिरसः कृन्तनेन किम् ॥ १४ ॥ भयं किं तेऽत्र संजातं पाकाशासन कथ्यताम् ॥ इन्द्र उवाच ॥ सजीव इव देहोऽयमाभाति विशदाकृतिः ॥ १५ ॥ तस्माद्बिभेमि मा जीवेन्मुनिः शत्रुरयं मम ॥ तक्षो वाच ॥ नाऽत्र किं त्रपसे विद्वन्क्रूरेणानेन कर्मणा ॥१६॥ ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न किम् ॥ इन्द्र उवाच ॥ प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चात्पापक्षयाय वै ॥ १७ ॥ शत्रुस्तु सर्वथा वध्यश्छलेनापि महामते ॥ तक्षोवाच ॥ त्वं लोभाभिहतः पापं करोषि मघवन्निह ॥ १८ ॥ तं विनाऽहं कथं पापं करोमि वद मे विभो ॥ इन्द्र उवाच ॥ मखेषु खलु भागं ते करिष्यामि सदैव हि ॥ १९ ॥ शिरः पशोस्तु ते भागं यज्ञे दास्यंति मानवाः ॥ शुक्रेनानेन च्छिधि त्वं शिरांस्यस्य कुरु प्रियम् ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा महेंद्रस्य वचस्तक्षा मुदाऽन्वितः ॥ कुठारेण शिरांस्यस्य चकर्त सुदृढेन हि ॥ २१ ॥ छिन्नानि त्रीणि शीर्षाणि पतितानि यदा भुवि ॥ तेभ्यस्तु पक्षिणः क्षिप्रं विनिष्पेतुः सहस्रशः ॥ २२ ॥

सुनकर कहा हे मघवन् ! आपने लोभके वशीभूत होकर यह पापकार्य किया है ॥ १८ ॥ किंतु हे विभो ! मुझको लोभका कारण कुछ नहीं है अतएव उसके विना मैं किस प्रकार इस पापकार्य्यके करनेमें प्रवृत्त हूं. इन्द्रने कहा हे तक्षन् ! मैं यज्ञस्थलमें तुम्हारा भाग दूंगा ॥ १९ ॥ मनुष्योंके यज्ञमें दिया हुआ पशुका मस्तक सदा तुमको दूँगा अब तुम इस नियमानुसार इनका मस्तक काटकर मेरा प्रिय कार्य करो ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह तक्षा इंद्रका यह वचन सुनकर प्रसन्न हुआ और दृढ कुठारसे इन मुनिके सब मस्तक काट डाले ॥ २१ ॥ हे महाराज ! उनके तीनों मस्तक काटकर पृथ्वीमें गिरपड़े उनसे हजारों पक्षी वेग सहित निकलने लगे ॥ २२ ॥

दे. भा.
॥ ६ ॥

कलविंक, तित्तिर और कपिञ्जल यह तीन प्रकारके पक्षी पृथक् पृथक् मुखसे पृथक् पृथक् रूपमें शीघ्रही निकलने लगे ॥२३॥ हे नृपवर ! वह तीव्रतेजा मुनिवर जिस मुखसे वेदाध्ययन और सोमपान करते उससे सब कपिञ्जल पक्षी ॥ २४ ॥ और जिस मुखसे दिशाओंको पान करनेके समान देखते उससे सब पक्षी ॥ २५ ॥ तथा जिससे सुरापान करते उससे सब कलविंकपक्षी निकलने लगे ॥ २६ ॥ देवराज इंद्र पक्षिगणोंको उनके मुखविवरसे निकलता हुआ देखकर मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए और तत्काल स्वर्गमें गमन किया ॥ २७ ॥ हे महाराज ! इन्द्रके अपने नगरमें जानेपर तक्षाभी शीघ्र अपने घरको चलागया और यज्ञका भाग प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ २८ ॥ देवराज इंद्र शत्रुको मारकर अपने घर जायकर अपनेको कृतार्थ जानने लगे किंतु

कलविंकास्तित्तिरय स्तथैव च कपिंजलाः ॥ पृथक्पृथग्विनिष्पेतुर्मुखतस्तरसा तदा ॥२३॥ येन वेदानधीते स्म सोमं च पिबते तथा ॥ तस्माद्वक्त्रात्किलोत्पेतुः सद्य एव कपिंजलाः ॥ २४ ॥ येन सर्वा दिशः कामं पिबन्निव निरीक्षते ॥ तस्मात्तु तित्तिरास्तत्र निःसृतास्तिग्मतेजसः ॥ २५ ॥ यत्सुरापं तु तद्वक्त्रं तस्मात्तु चटकाः किल ॥ विनिष्पेतुस्त्रिशिरस एवं ते विहगा नृप ॥ २६ ॥ एवं विनिःसृतान्दृष्ट्वा तेभ्यः शक्रस्ततांऽडजान् ॥ मुमोद मनसा राजञ्जगाम त्रिदिवं पुनः ॥ २७ ॥ गते शक्रे तु तक्षाऽपि स्वगृहं तरसा ययौ ॥ यज्ञभागं परं लब्ध्वा मुदमाप महीपते ॥ २८ ॥ इन्द्रोऽथ स्वगृहं गत्वा हत्वा शत्रुं महाबलम् ॥ मेने कृतार्थ मात्मानं ब्रह्महत्याप्रचिंतयन् ॥ २९ ॥ तं श्रुत्वा निहतं त्वष्टा पुत्रं परमधार्मिकम् ॥ चुकोपातीव मनसा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३० ॥ अनागसं मुनिं यस्मात्पुत्रं निहतवान्मम ॥ तस्मादुत्पादयिष्यामि तद्वधार्थं सुतं पुनः ॥ ३१ ॥ सुराः पश्यंतु मे वीर्यं तपसश्च बलं तथा ॥ जानातु सर्वं पापात्मा स्वकृतस्य फलं महत् ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वाऽग्निं जुहावाऽथ मंत्रैराथर्वणोदितैः ॥ पुत्रस्योत्पादनार्थाय त्वष्टा क्रोध समाकुलः ॥ ३३ ॥

ब्रह्महत्याके विषयमें कुछ चिन्ता न की ॥ २९ ॥ अनन्तर विश्वकर्माने सुना कि मेरा परम धार्मिक पुत्र मरा है तब वह मनमें अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगे कि ॥ ३० ॥ जब इन्द्रने मेरे गुणवान् और तपस्यामें निरत पुत्रको निरपराध मारा है, तब मैं उसके मारनेको फिर दूसरा पुत्र उत्पन्न करूंगा ॥ ३१ ॥ देवतागण मेरा वीर्य और तपका बल देखें और वह दुरात्मा इन्द्रभी अपने किये हुए कार्यका महत् फल अनुभव करे ॥ ३२ ॥ विश्वकर्मा यह कह क्रोधसे अत्यन्त आकुल हुए और अथर्ववेदमें कहे हुए विधानानुसार पुत्र उत्पन्न करनेके निमित्त अग्निमें होम करने लगे ॥ ३३ ॥

आठ रात्रि होम करनेपर उस जलती हुई अग्निसे दूसरे अग्निके समान दीप्तिमान् एक पुरुष शीघ्र प्रगट हुआ ॥ ३४ ॥ विश्वकर्माने अनलसे निकले हुए तेज और बलसे युक्त दीप्यमान अग्निके समान ॥ ३५ ॥ उस पुत्रको सामने देखकर कहा हे इन्द्रशत्रो ! तुम मेरे तपोबलसे वर्धित होओ ॥ ३६ ॥ विश्वकर्माके क्रोधसे प्रज्वलित हो यह वचन कहनेपर अग्निके समान दीप्तिशाली वय पुत्र आकाशमंडल स्तब्ध करता हुआ बढ़ने लगा ॥ ३७ ॥ क्षण कालमें ही वह पुरुष कालान्तक शमनके समान पर्वताकार हो अपने तेजसे स्थिति करने लगा और अत्यन्त कातर हुए अपने पिता विश्वकर्मासे कहा ॥३८॥ हे प्रभो! आप मेरा नामकरण कीजिये हे तात! मैं आपका क्या कार्य साधन करूँ ? आप किस निमित्त चिन्तातुर और शोकातुर हुए हैं इसका सब कारण कहिये

कृते होमेऽष्टरात्रं तु संदीप्ताच्च विभावसोः ॥ प्रादुर्बभूव तरसा पुरुषः पावकोपमः ॥ ३४ ॥ तं दृष्ट्वाऽग्रे सुतं त्वष्टा तेजो बलसमन्वितम् ॥ वेगात्प्रकटितं वह्नेर्दीप्यमानमिवानलम् ॥ ३५ ॥ उवाच वचनं त्वष्टा सुतं वीक्ष्य पुरः स्थितम् ॥ इंद्रशत्रो विवर्धस्व प्रतापात्तपसो मम ॥ ३६ ॥ इत्युक्ते वचने त्वष्ट्रा क्रोधप्रज्वलितेन च ॥ सोऽवर्धत दिवं स्तब्ध्वा वैश्वानरसमद्युतिः ॥ ३७ ॥ जातः स पर्वताकारः कालमृत्यु समः स्वराट् ॥ किं करोमीति तं प्राह पितरं परमातुरम् ॥३८॥ कुरु मे नामकं नाथ कार्यं कथय सुव्रत ॥ चिंतातुरोऽसि कस्मात्त्वं ब्रूहि मे शोककारणम् ॥ ३९ ॥ नाशयाम्यद्य ते शोकमिति मे व्रतमाहितम् ॥ तेन जातेन किं भूयः पिता भवति दुःखितः ॥ ४० ॥ पिबामि सागरं सद्यश्चूर्णयामि धराधरान् ॥ उद्यंतं वारयाम्यद्य तरणिं तिग्मतेजसम् ॥ ४१ ॥ हन्मींद्रं ससुरं सद्यो यमं वा देवतांतरम् ॥ क्षिपामि सागरे सर्वान्समुत्पाट्य च मेदिनीम् ॥ ४२ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य त्वष्टा पुत्रस्य पेशलम् ॥ प्रत्युवाचातिमुदितस्तं सुतं पर्वतोपमम् ॥ ४३ ॥ वृजिनात्त्रातुमधुना यस्माच्छक्तोऽसि पुत्रक ॥ तस्माद् वृत्र इति ख्यातं तव नाम भविष्यति ॥ ४४ ॥

॥ ३९ ॥ आपका शोक दूर करूंगा यह मेरा इस समय निश्चित विषय है. हे पितः ! जो पुत्र पिताका दुःख दूर करनेमें समर्थ नहीं होता उस पुत्रके उत्पन्न होनेका क्या फल है? ॥ ४० ॥ हे पितः ! मैं इस समय सब सागर पान करूंगा समस्त पर्वत चूर्ण कर डालूंगा, उदयशील तेजस्वी सूर्यको निवारण करूंगा ॥ ४१ ॥ अथवा सब देवतागणोंके सहित इंद्रको यमको वा अन्य जो कोई देवता हो उसका विनाश करूंगा और पृथ्वीको उखाड़कर सब जीवगणोंको समुद्रके जलमें डुबा दूंगा ॥ ४२ ॥ हे महाराज! विश्वकर्माने उस पुत्रके इसप्रकार मनोहर वचन सुनकर प्रसन्न हो उस पर्वतोपम पुत्रसे कहा ॥४३॥ हे पुत्र! तुम इस समय वृजिन अर्थात् दुःखसे रक्षा करनेमें समर्थ हो उसी कारण तुम वृत्रनामसे विख्यात होगे ॥ ४४ ॥

हे महाभाग ! तुम्हारे भ्राता त्रिशिरानामक तपस्वी थे उनके तीनों मस्तक वीर्यवान् अर्थात् उत्तम कर्म करनेमें समर्थ थे ॥४५॥ वह वेद और वेदांगशास्त्रका
तत्व जानने वाले और सर्वविद्याविशारद हो सदाही त्रिलोककी आश्चर्ययुक्त तपस्यामें निरत रहते थे ॥ ४६ ॥ इन्द्रने हमारे उसी गुणवान् पुत्रको वज्रसे
मारा है उस पापात्मा इन्द्रने विना अपराधही उसके तीनों मस्तक काट डाले ॥ ४७ ॥ अतएव हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम उस अपराध करने वाले ब्रह्महत्याके पापसे
युक्त पापस्वरूप निर्लज्ज शठ और दुष्टमति इंद्रका संहार करो ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! पुत्र शोकसे व्याकुल विश्वकर्माने इस प्रकार कह अनेक प्रकारके सब
दिव्य आयुध उत्पन्न किये ॥ ४९ ॥ उन्होंने इंद्रके मारनेको विशेष कार्यमें समर्थ उत्तम उत्तम खड्ग, शूल, गदा, शक्ति, तोमरादि ॥५०॥ और शार्ङ्गधनुष,

भ्राता तव महाभाग त्रिशिरा नाम तापसः ॥ त्रीणि तस्य च शीर्षाणि ह्यभवन्वीर्यवंति च ॥ ४५ ॥ वेदवेदांगतत्त्वज्ञः सर्वविद्याविशा
रदः । संस्थितस्तपसि प्रायस्त्रिलोकीविस्मयप्रदे ॥ ४६ ॥ शक्रेण तु हतः सोऽद्य वज्रघातेन सांप्रतम् ॥ विनाऽपराधं सहसा छिन्नानि
मस्तकानि च ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र जहि शक्रं कृतागसम् ॥ ब्रह्महत्यायुतं पापं निस्त्रपं दुर्मतिं शठम् ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वा च तदा
त्वष्टा पुत्रशोकसमाकुलः ॥ आयुधानि च दिव्यानि चकार विविधानि च ॥ ४९ ॥ ददावस्मै सहस्राक्षवधाय प्रबलानि च ॥ खड्गशूल
गदाशक्तितोमरप्रमुखानि वै ॥ ५० ॥ शार्ङ्गं धनुस्तथा बाणं परिघं पट्टिशं तथा ॥ चक्रंदिव्यं सहस्रारं सुदर्शनसमप्रभम् ॥ ५१ ॥
तूणीरौ चाक्षयौ दिव्यौ कवचं चातिसुन्दरम् ॥ रथं मेघप्रीतीकाशं दृढं भारसहं जवम् ॥ ५२ ॥ युद्धोपकरणं सर्वं कृत्वा पुत्राय पार्थिव
॥ दत्त्वाऽसौ प्रेरयामास त्वष्टा क्रोधसमन्वितः ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व्यास
उवाच ॥ कृतस्वस्त्ययनो वृत्रो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ निर्जगाम रथारूढो हंतुं शक्रं महाबलः ॥ १ ॥ तदैव राक्षसाः क्रूराः पुरा देवपरा
जिताः ॥ समाजग्मुश्च सेवार्थं वृत्रं ज्ञात्वा महाबलम् ॥ २ ॥

बाण, परिघ, पट्टिश सुदर्शनके समान प्रभायुक्त सहस्र आरेवाला दिव्यचक्र ॥ ५१ ॥ दिव्य अक्षय दो तरकस, सुन्दर, कवच, मेघके समान प्रभायुक्त दृढवायुके
समान वेगवान् रथ यह संपूर्ण निर्माण करके पुत्रको दिये ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! क्रोधयुक्त शिल्पवर विश्वकर्माने इस प्रकार युद्धकी सब सामग्री बनाय
वह सब अपने पुत्र वृत्रासुरको प्रदानपूर्वक इन्द्रके मारनेको भेजा ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
व्यासजीने कहा हे राजन् ! महाबलवान् ! वृत्रासुर वेदके जाननेवाले ब्राह्मणगणोंसे स्वस्त्ययन कराय रथपर चढकर देवराज इन्द्रको मारनेके निमित्त निकला
॥ १ ॥ पहले देवतागणोंने जिन सब दानवगणोंको पराजित किया था इस समय वह वृत्रासुरको बल वान् जानकर उनकी सेवा और सहायताको

उसके निकट आय उपस्थित हुए ॥ २ ॥ इन्द्रके दूतने उन सबको युद्धके निमित्त उपस्थित देख शीघ्रतासहित आय देवराज इन्द्रसे उनका कार्य और सब वृत्तांत निवेदन कर कहा ॥ ३ ॥ दूत बोला हे प्रभो ! विश्वकर्माने पुत्रके मारे जानेसे सन्तप्त और क्रोधयुक्त हो आपको मारनेके निमित्त अभी चारकर्मसे जो पुत्र उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥ वह दुःसह वृत्रासुर नामक असुर आपका दारुण शत्रु है वह इस समय रथपर चढकर असुरगणोंसे परिवृत हो युद्धके कारण इस स्थानमें आरहा है ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! यह शत्रु सुमेरु और मंदराचलके समान अत्यन्त दारुण है वह इस समय घोरतर शब्द करता हुआ शीघ्र आरहा है आप भलीभांति यत्न कीजिये ॥ ६ ॥ हे महाराज ! देवराज इन्द्र दूतका वचन सुनही रहे थे इसी समयमें देवतागण भयभीत और त्रस्त

इन्द्रदूतास्तु तं दृष्ट्वा युद्धाय तु समागतम् ॥ वेगादागत्य वृतांतं शशंसुस्तस्य चेष्टितम् ॥ ३ ॥ दूता ऊचुः ॥ स्वामिञ्छीघ्रमिहायाति वृत्रो नाम रिपुस्तव ॥ बलवान्स्यंदने रूढस्त्वष्ट्रा चोत्पादितः किल ॥ ४ ॥ अभिचारेण नाशार्थं तव क्रोधान्वितेन वै ॥ पुत्रघाताभितप्तेन दुःसहो राक्षसैर्युतः ॥ ५ ॥ यत्नं कुरु महाभाग शीघ्रमायाति सांप्रतम् ॥ मेरुमंदरसंकाशो घोरशब्दोऽतिदारुणः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र भीता देवगणा भृशम् ॥ आगत्योचुः सुरपतिं शृण्वंतं दूतभाषितम् ॥ ७ ॥ गणा ऊचुः ॥ मघवन्दुर्निमित्तानि भवंति त्रिदशालये ॥ बहूनि भयशंसीनि दक्षिणां विरुतानि च ॥ ८ ॥ काका गृध्रास्तथा श्येनाः कंकाद्या दारुणाः खगाः ॥ रुदंति विकृतैः शब्दैरुत्कारैर्भवनोपरि ॥ ९ ॥ चीचीकूचीति निनदान्कुर्वंति विहगा भृशम् ॥ वाहनानां च नेत्रेभ्यो जलधाराः पतंत्यधः ॥ १० ॥ श्रूयतेऽतिमहाञ्छब्दो रुदतीनां निशासु च ॥ राक्षसीनां महाभाग भवनोपरि दारुणः ॥ ११ ॥ प्रपतंति ध्वजास्तूर्णं विना वातेन मानद ॥ प्रभवंति महोत्पाता दिवि भूम्यंतरिक्षजाः ॥ १२ ॥

हो आकर कहने लगे ॥ ७ ॥ देवतागण बोले हे सुरपते ! इस समय देवतागणोंके भवनमें अनेक अमंगल शब्द दिखाई देते हैं. पक्षीगण जिस प्रकार ध्वनि करते हैं उससे जाना जाता है कि, शीघ्रही अनिष्टपात होगा ॥ ८ ॥ काक, गृध्र, श्वेत और कंक इत्यादि सब दारुण पक्षीगण भवनके ऊपर विरुत और ऊंचे शब्दसे रोते हें ॥ ९ ॥ अन्यान्य पक्षीगण सदाही चींचीं कूचीं इत्यादि शब्द करते हैं वाहनोंकी आखोंसे आंसू गिरते हैं ॥ १० ॥ हे महाभाग ! अधिक और क्या कहैं ? रात्रिके समय भवनके ऊपर रोते हुए राक्षसीगणोंका भयंकर तथा दारुण शब्द सुनाई आता है ॥ ११ ॥ हे मानद ! विना पवनकेही रथस्थित समस्त ध्वजा टूटकर गिरती हैं इस प्रकार स्वर्गमें भूमिजात और अन्तरिक्षजात सम्पूर्ण उत्पात प्रादुर्भूत होते हैं ॥ १२ ॥

हे देवराज ! इस समय देवतागणोंके स्थानमें विकृतमुखवाली स्त्रियें काले वस्त्र पहनकर घरघरमेंभ्रमणपूर्वक "घरसे शीघ्र जाओ शीघ्र जाओ" यह वचन सदाही कहती हैं ॥ १३ ॥ देवतागणोंकी स्त्रियें अपने अपने घरमें निद्रित रहकर भी स्वप्नमें देखती हैं कि भयंकर राक्षसी आकर उनके केशकलाप छिन्नकर उनको भय दिखाती हैं ॥ १४ ॥ हे देवेन्द्र ! इस समय सब अशुभ लक्षण और भूमिकम्प तथा उल्कापातादि उत्पात संघटित होते हैं अधिक क्या रात्रि कालके समय गीदड़ घरके आङ्गनमें आकर घोर हृदयको क्षोभित करनेवाले दारुण शब्दसे रोते हैं ॥ १५ ॥ अनेक कृकलास (गिरगिट) घरघरमें भ्रमण करते फिरते हैं और अनेकानेक अङ्ग फड़कना इत्यादि सब अमंगल लक्षण सदाही प्रकाशित होते हैं ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उनके यह वचन

कृष्णांबरधरा नार्यो भ्रमंति च गृहेगृहे ॥ यांतु यांतु गृहात्तूर्णं कुर्वंत्यो विकृताननाः ॥१३॥ रात्रौ स्वप्नेषु कांतानां सुप्तानां निजमंदिरे ॥ केशाँल्लुनंति राक्षस्यो भीषयत्यो भृशातुराः ॥ १४ ॥ एवं विधानि देवेश भूकंपोल्कादयस्तथा ॥ गोमायवो रुदंति स्म निशायां भवनां गणे ॥ १५ ॥ सरटानां च जालानि प्रभवंति गृहेगृहे ॥ अंगप्रस्फुरणादीनि दुर्निमित्तानि सर्वशः ॥१६॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा चिंतामाप सुरेश्वरः ॥ बृहस्पतिं समाहूय पप्रच्छ च मनोगतम् ॥ १७ ॥ इंद्र उवाच ॥ ब्रह्मन्किमुत घोराणि निमित्तानि भवंति वै ॥ वाताश्च दारुणा वांति प्रपतंत्यलकाः खतः ॥ १८ ॥ सर्वज्ञोसि महाभाग समर्थो विघ्ननाशने ॥ बुद्धिमाञ्छास्त्रतत्त्वज्ञो देवतानां गुरुस्तथा ॥ १९ ॥ कुरु शांतिं विधानज्ञ शत्रु क्षय विधायिनीम् ॥ यथा मे भवेद्दुःखं तथा कार्यं विधीयताम् ॥२०॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ किं करोमि सहस्राक्ष त्वयाऽद्य दुष्कृतं कृतम् ॥ अनागसं मुनिं हत्वा किं फलं समुपार्जितम् ॥ २१ ॥ अत्युग्रपुण्यपापानां फलं भवति सत्वरम् ॥ विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं तद्भूतिमिच्छता ॥ २२ ॥

सुनकर देवराज इंद्र अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए और सुरगुरु बृहस्पतिजीको बुलाकर पूंछने लगे ॥ १७ ॥ इंद्र बोले हे ब्रह्मन् ! घोरतर सब अनिष्ट प्रकाशित होते हैं दारुण पवन चलता है और आकाशसे उल्कासमूह गिरते हैं यह सब क्या हो ॥ १८ ॥ हे महाभाग ! आप बुद्धिमान् शास्त्रके जाननेवाले देवतागणोंके गुरु विशेषकर सर्वज्ञ और विघ्ननाश करनेके सब उपाय जानते हैं ॥ १९ ॥ अतएव आप शत्रुके विनाश करनेवाली शान्तिका अनुष्ठान कीजिये जिससे मुझे दुःख न हो सो करो ॥ २० ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे सहस्रलोचन ! मैं क्या करूं तुमने पहले अत्यन्त पापकर्म किया है उन निरपराध मुनिको मारकर तुमने अतिकुत्सित फल उपार्जन किया है ॥ २१ ॥ अत्यन्त उग्र पाप और पुण्यका फल शीघ्रही फलता है अतएव कल्याणकी कामना करनेवालोंको विचारकर

कर्म करना चाहिये ॥ २२ ॥ जिससे दूसरेको अति संताप हो इस प्रकारका कर्म कभी करना उचित नहीं है. जो प्राणी दूसरेको दुःख देनेमें रत हैं वे कभी सुख लाभ नहीं कर सकते॥ २३ ॥ हे शक्र ! तुमने उस समय लोभ और मोहके वशीभूत होकर ब्रह्महत्या की है उसी पापका यह फल सहसा आकर उपस्थित हुआ है ॥ २४ ॥ हे सुरराज ! इस वृत्रासुरनामक असुरने सब देवतागणोंसे अवध्य हो जन्म ग्रहण किया है वह दुर्द्धर्ष असुरवर अनेक दानवगणोंसे परिवृत हो और विश्वकर्माके दिये हुए वज्रके समान जब दिव्य अस्त्र ग्रहणकर ॥ २५ ॥ २६ ॥ रथपर चढ़ तुम्हारे मारनेको मानो प्रलयकाल उपस्थित करता हुआ आरहा है इन तीनों लोकोंमें उसको मार सके ऐसा कोई नहीं है अतएव इसकी मृत्यु भी नहीं होगी ॥ २७ ॥ बृहस्पतिजी इस प्रकार कहही रहे थे कि इसी

परोपतापनं कर्म न कर्तव्यं कदाचन ॥ न सुखं विंदते प्राणी परपीडापरायणः ॥ २३ ॥ मोहाल्लोभाद्ब्रह्महत्या कृता शक्र त्वयाऽधुना ॥ तस्य पापस्य सहसा फलमेतदुपागतम् ॥ २४ ॥ अवध्यः सर्वदेवानां जातोऽसौ वृत्रसंज्ञकः ॥ हंतुं त्वां स समायाति दानवैर्बहुभिर्वृतः ॥ २५ ॥ आयुधानि च सर्वाणि वज्रतुल्यानि वासव ॥ त्वाष्ट्रदत्तानि दिव्यानि गृहीत्वा समुपस्थितः ॥ २६ ॥ समागच्छति दुर्धर्षो रथारूढः प्रतापवान् ॥ देवेंद्र प्रलयं कुर्वन्नास्य मृत्युर्भविष्यति ॥ २७ ॥ कोलाहलस्तदा जातस्तथा ब्रुवति वाक्पतौ ॥ गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मुनयश्च तपोधनाः ॥ २८ ॥ सदनानि विहायैवामराः सर्वे पलायिताः ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं शक्रश्चितापरायणः ॥ २९ ॥ आज्ञापयामास तदा सेनोद्योगाय सेवकान् ॥ आनयध्वं वसूनुद्रानश्विनौ च दिवाकरान् ॥३०॥ पूषणं च भगं वायुं कुबेरं वरुणं यमम् ॥ विमानेषु समारुह्य सायुधाः सुरसत्तमाः ॥३१॥ समागच्छतुं तरसा शत्रुरायाति सांप्रतम् ॥ इत्याज्ञाप्य सुरपतिः समारुह्य गजोत्तमम् ॥३२॥

समयमें एक महाकोलाहल शब्द उठा इस समय गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, तपोधन, मुनिगण ॥२८॥ और अन्यान्य सब अमरगण अपने२ घरको छोड़ भागने लगे देवराज इन्द्र सुर गणोंको भागता हुआ देखकर अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए॥ २९ ॥ और तत्काल सब सेनाका उद्योग करनेके निमित्त सब सेवकगणोंको आज्ञा देकर कहा कि तुम वसुगण, रुद्रगण दोनों अश्विनीकुमार आदित्यगण ॥ ३० ॥ पूषा, भग, वायु, कुबेर, वरुण और यम इत्यादि सुरगणोंको बुला लाओ, शत्रु प्रायःउपस्थित हुआ है अतएव वे देवतागण अपने अपने आयुध ले विमानोंपर चढ़कर शीघ्र इस स्थानमें आवें ॥ ३१ ॥ शीघ्र आवें शत्रु आचुका है अमरराज इन्द्र इस प्रकार आज्ञा दे गजराजपर चढ़ ॥ ३२ ॥

दे. भा. सुरगुरुको आगे कर अपने घरसे निकले इसी प्रकार सम्पूर्ण देवतागण भी अपने अपने वाहनोंपर चढ़ ॥ ३३ ॥ युद्धके निमित्त कृतसंकल्प हो अपने अपने
॥ ९ ॥ अस्त्रशस्त्र लेकर चले, इधर वृत्रासुरभी दानवोंसे परिवृत हो मानसरोवरके उत्तर स्थित ॥ ३४ ॥ वृक्षोंकी कतारसे शोभायमान मनोहर पर्व्वतमें आकर उपस्थित हुआ. हे राजन् ! यह मनोहर स्थानही देवतागणोंका निवासस्थान था इन्द्र भी बृहस्पतिजीको आगे कर देवतागणोंके सहित मानसरोवरके उत्तर स्थित उसी पर्व्वतमें उपस्थित हुए वहां इन्द्र और वृत्रसंग्राम करने लगे॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उस स्थानमें वृत्रासुर और इन्द्रका गदा, असि, परिघ, पाश, बाण, शक्ति और परशु इत्यादिसे दारुण युद्ध होने लगा, नियतात्मा ऋषिगणों और मनुष्योंको भय देनेवाला घोरतर वह संग्राम मनुष्योंके परिणामसे सौवर्षतक हुआ था

बृहस्पतिं पुरोधाय निर्गतो निजमंदिरात् ॥ तथैव त्रिदशाः सर्वे स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥ ३३ ॥ युद्धाय कृतसंकल्पा निर्ययुः शस्त्रपाणयः ॥ वृत्रोऽथ दानवैर्युक्तः संप्राप्तो मानसोत्तरम् ॥ ३४ ॥ पर्वते देवतावासं रम्यं पादपशोभितम् ॥ इंद्रोऽप्यागत्य संग्रामं चकार मानसोत्तरे ॥ ३५ ॥ पर्वते देवतायुक्तो वाचस्पतिपुरः सरः ॥ तत्राभूद्दारुणं युद्धं वृत्रवासवयोस्तदा ॥ ३६ ॥ गदासिपरिघैः पाशैर्बाणैः शक्तिपरश्वधैः ॥ मानुषेण प्रमाणेन संग्रामः शरदां शतम् ॥ ३७ ॥ बभूव भयदो नृणामृषीणां भावितात्मनाम् ॥ वरुणः प्रथमं भग्नस्ततो वायु गणः किल ॥ ३८ ॥ यमो विभावसुः शक्रः सर्वे ते निर्गता रणात् ॥ पलायनपरान्दृष्ट्वा देवानिंद्रपुरोगमान् ॥३९॥ वृत्रोऽपि पितरं प्रागादाश्रमस्थं मुदाऽन्वितम् ॥ प्रणम्य प्राह त्वष्टारं पितुः कार्यं मया कृतम् ॥ ४० ॥ देवा विनिर्जिताः सर्वे सेंद्राः समरसंस्थिताः ॥ विद्रुतास्ते गताः स्थानं यथा सिंहान्मृगा गजाः ॥ ४१ ॥ इन्द्रः पदातिरगमन्मयाऽऽनीतो गजोत्तमः ॥ ऐरावतोऽयं भगवन्गृहाण द्विरदोत्तमम् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर प्रथम वरुण फिर वायुगण ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ इसके उपरांत यम, विभावसु और इन्द्र इस प्रकार क्रमानुसार सबही रणमें पीठ दे भाग गये. तब वृत्रासुर इन्द्र इत्यादि देवतागणोंको भागता हुआ देख ॥३९॥ आश्रम स्थित प्रसन्नचित्त पिताके निकट जाय प्रणामपूर्व्वक कहने लगा हे पितः ! मैंने आपकी
भा. टी. ष. आज्ञानुसार कार्य्यसाधन किया ॥ ४० ॥ इन्द्र इत्यादि सब देवतागणोंको संग्राममें पराजित किया है सिंहके निकटसे मृग और हाथीगण जिस प्रकार भागते
अ० ३ हैं इसी प्रकार वह सब अपने अपने स्थानोंको भाग गये ॥ ४१ ॥ मैंने देवराज इन्द्रका हाथी छीन लिया है वह पैरोंही भाग गये. हे भगवन् ! मैं इस गजवर ऐरावतको ले आया हूं आप लीजिये ॥ ४२ ॥

हे पितः ! डरे हुएको मारना अनुचित है, इस कारण मैंने उनको नहीं मारा इस समय आप आज्ञा कीजिये कि पुनर्व्वार आपका क्या अभीष्ट साधन करूं ? ॥ ४३ ॥ सब देवतागण भयसे भीत और श्रमातुर हो संग्रामस्थलसे भाग गये अधिक क्या इन्द्रभी भीत और संत्रस्तहो ऐरावतको छोड़ भाग गये ॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! विश्वकर्म्मा उस पुत्रका यह वचन सुन प्रसन्न चित्त हुए और कहने लगे कि, आज मैं यथार्थ पुत्रवान् हुआ और मेरा जीवन भी सफल हुआ ॥ ४५ ॥ हे पुत्र! तुमने आज मुझको पवित्र किया. इस समय अब मेरा चित्तरूपी ज्वर दूर हुआ. तुम्हारा अद्भुतवीर्य्य देखकर मेरा मन भी स्थिर हुआ ॥ ४६ ॥ हे वत्स ! मैं इस समय जो कहता हूं वह मन लगाकर सुनो. हे महाभाग ! तुम सावधान हो स्थिर आसनपर बैठकर तपस्या करो

न हतास्ते मया तस्मादयुक्तं भीतमारणम् ॥ आज्ञापय पुनस्तात किं करोमि तवेप्सितम् ॥ ४३ ॥ निर्जरा निर्गताः सर्वे भयभीताः श्रमातुराः ॥ इंद्रोऽप्यैरावतं त्यक्त्वा भयभीतः पलायितः ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पुत्रवचः श्रुत्वा त्वष्टा प्राह मुदाऽन्वितः ॥ पुत्रवानद्य जातोऽस्मि सफलं मम जीवितम् ॥ ४५ ॥ त्वयाऽहं पावितः पुत्र गतो मे मानसो ज्वरः ॥ निश्चलं मे मनो जातं दृष्ट्वा वीर्यं तवाद्भुतम् ॥ ४६ ॥ शृणु वक्ष्याम्यहं पुत्र हितं तेऽद्य निशामय ॥ तपः कुरु महाभाग सावधानः स्थिरासनः ॥ ४७ ॥ विश्वासो नैव कर्तव्यः केषांचित्पाकशासनः ॥ शत्रुते छल कर्ताऽस्ति नानाभेदविशारदः ॥ ४८ ॥ तपसा प्राप्यते लक्ष्मीस्तपसा राज्यमुत्तमम् ॥ तपसा बलबुद्धिः स्यात्संग्रामे विजयस्तथा ॥४९॥ आराध्य द्रुहिणं देवं लब्ध्वा वरमनुत्तमम् ॥ जहि शक्रं दुराचारं ब्रह्महत्यासमायुतम् ॥५०॥ सावधानः स्थिरो भूत्वा दातारं भजशंकरम् ॥ वांछितं स वरं दद्यात्संतुष्टश्चतुराननः ॥ ५१ ॥ तोषयित्वा विश्वयोनिं ब्रह्माणममितौजसम् ॥ अविनाशित्वमासाद्य जहि शक्रं कृतागसम् ॥ ५२ ॥

॥ ४७ ॥ तुम कभी किसीका विश्वास नहीं करना क्योंकि छलका ढूंढनेवाला वेदविशारद इन्द्र तुम्हारा प्रधान शत्रु विद्यमान है ॥ ४८ ॥ हे पुत्र । तपस्या साधारणवस्तु नहीं है तपस्यासे लक्ष्मी, उत्तमराज्य, बलकी वृद्धि और संग्राममें विजय प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ अतएव तुम हिरण्यगर्भकी आराधना कर उत्तम वरलाभ करनेपर ब्रह्महत्यापापयुक्त दुराचारी इन्द्रका संहार करो ॥ ५० ॥ सावधान और स्थिरही कल्याणके देनेवाले विधाताका भजन करो तो चतुरानन संतुष्ट हो तुमको इच्छानुसार वर देंगे ॥ ५१ ॥ तुम पहले अप्रमितप्रभावयुक्त विश्वयोनि विधाताको संतुष्ट कर । अमरत्वलाभ करनेपर उस अपराध करनेवाले शत्रुका संहार करो ॥ ५२ ॥

हे पुत्र ! पुत्रहत्याजनित वैरभाव मेरे मनमें सदाही विद्यमान रहता है इस कारण मैं सुखसे नहीं सो सकता, और किसी प्रकार मुझको शांतिलाभ नहीं हो सकती ॥ ५३ ॥ षापिष्ठ इन्द्रने मेरे तपस्वी पुत्रको निरपराध मारा है हे वृत्र! मैं तुमको और क्या विदित करूं. मैं दुःखसागरमें निमग्न हुआ हूं इस समय तुम मुझको उद्धार करो ॥ ५४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वृत्रासुर पिताके वह वचन सुनकर क्रोधयुक्त हुआ और उनकी आज्ञा ग्रहण कर तपस्याका अनुष्ठान करनेके निमित्त प्रसन्न चित्तसे चला गया ॥ ५५ ॥ अनन्तर उस गन्धमादन पर्व्वतपर जाय कल्याणदायिनी पुण्यप्रद मंदाकिनीमें स्नानकर तपस्या करनेके निमित्त स्थिर आसन बनाय कुशासनपर बैठा ॥ ५६ ॥ क्रमानुसार अन्न भोजन और जलपान छोड़कर योगाभ्यासमें निरतहो स्थिर आसनपर

वैरं मनसि मे पुत्र वर्तते सुतघातजम् ॥ न शांतिमनुगच्छामि न स्वपामि सुखेन ह ॥ ५३ ॥ तापसो मे हतः पुत्रो निरागाः पाप्मना यतः ॥ न विंदामि सुखं वृत्र त्वं मामुद्धर दुःखितम् ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं वृत्रः क्रोधयुतस्तदा ॥ आज्ञामादाय च पितुर्जगाम तपसे मुदा ॥ ५५ ॥ गंधमादनमासाद्य पुण्यां देवधुनीं शुभाम् ॥ स्नात्वा कुशासनं कृत्वा संस्थितश्च स्थिरासनः ॥ ५६ ॥ त्यक्त्वान्नं वारिपानं च योगाभ्यासपरायणः ॥ ध्यायन्विश्वसृजं चित्ते सोपविष्टःस्थिरासने ॥ ५७ ॥ मघवा तं तपस्यंतं ज्ञात्वा चिंतातुरो ह्यभूत् ॥ गंधर्वान्प्रेषयामास विघ्नार्थं पाकशासनः ॥ ५८ ॥ यक्षांश्च पन्नगान्सर्पान्किन्नरानमितौजसः ॥ विद्याधरानप्सरसो देवदूताननेकशः ॥ ५९ ॥ उपायास्तैः कृताः सम्यक्तपोविघ्नाय मायिभिः ॥ न चचाल ततो ध्यानात्त्वाष्ट्रः परमतापसः ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ निर्गतास्ते परावृत्तास्तपोविघ्नकराः सुराः ॥ निराशाः कार्यसंसिद्ध्यै तं दृष्ट्वा दृढचेतसम् ॥ १ ॥

बैठ निरंतर विश्वस्रष्टा प्रजापतिका ध्यान करने लगा ॥ ५७ ॥ इधर देवराज इन्द्र वृत्रासुरको तपस्यामें निरत जानकर अत्यन्त चिंतायुक्त हुए और उसकी तपस्यामें विघ्नकरनेके निमित्त अमित प्रभावयुक्त गन्धर्व्व ॥ ५८ ॥ यक्ष, पन्नग, किन्नर, अप्सरा और अन्यान्य देवतागणोंके दूतोंको भेज दिया ॥५९॥ वह मायावी गन्धर्व इत्यादि देवयोनि तपस्यामें विघ्न करनेके निमित्त अनेक उपायसे अनेक प्रकारकी चेष्टा और यतन करने लगे किंतु परम तपस्वी त्वष्टाका पुत्र अपने ध्यान योगसे किसी प्रकार विचलित न हुआ ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वृत्रसुरको दृढचित्त देखकर तपस्यामें विघ्न करनेवाले देवतागण कार्य्यसिद्धिके विषयमें निराश होगये और वहांसे निकलकर पुनर्वार अपने

अपने स्थानको चले आये ॥ १ ॥ अनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर लोकपितामह चतुरानन ब्रह्माजीने हंसपर चढ़ उस स्थानमें ॥२॥ आकर कहा हे वृत्रासुर ! तुम सुखी होओ इस समय ध्यान त्यागकर वरकी प्रार्थना करो मैं तुमको इच्छानुसार वर दूंगा ॥३॥ हे वत्स ! तपस्यासे तुम्हारा देह अत्यन्त क्षीण हो गया है तुम्हारी इस उत्कट तपस्याको देखकर मैं इस समय अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूं तुम्हारा कल्याण हो इस समय अभिलषित वरकी प्रार्थना करो ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वृत्रासुर जगत्कर्त्ता ब्रह्माके अत्यन्त स्पष्टाक्षरयुक्त अमृतके समान भरे हुए वचन सुनकर योगपरित्याग आनन्दके आँसू गिराता हुआ सहसा खड़ा हो गया ॥ ५ ॥ तब ब्रह्माजीके सामने जाय विनय सहित मस्तक झुकाय उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम किया. और विनय नम्र हो तथा हाथ जोड़

जाते वर्षशते पूर्णे ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ तत्राऽऽजगाम तरसा हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ २ ॥ आगत्य तमुवाचेदं त्वष्टृपुत्र सुखी भव ॥ त्यक्त्वा ध्यानं वरं ब्रूहि ददामि तव वांछितम् ॥ ३ ॥ तपसा तेऽद्य तुष्टोऽस्मि त्वां दृष्ट्वा चाऽतिकर्शितम् ॥ वरं वरय भद्रं ते मनोऽभिलषितं तव ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ वृत्रस्तदाऽतिविशदां पुरतो निशम्य वाचं सुधासमरसां जगदेककर्तुः ॥ संत्यज्य योगकलनां सह सोदतिष्ठत्संजातहर्षन यना श्रुकलाकलापः ॥ ५ ॥ पादौ प्रणम्य शिरसा प्रणयाद्द्विधातुर्बद्धांजलिः पुरत एव समाससाद ॥ प्रोवाच तं सुवरदं तपसा प्रपन्नं प्रेम्णाऽतिगद्गदगिरा विनियेन नम्रः ॥ ६ ॥ प्राप्तं मया सकलदेवपदं प्रभोऽद्य यद्दर्शनं तव सुदुर्लभमाशु जातम् ॥ वाञ्छाऽस्ति नाथ मनसि प्रवणे दुरापा तां प्रब्रवीमि कमलासन वेत्सि भावम् ॥ ७ ॥ मृत्युश्च मा भवतु मे किल लोहकाष्ठशुष्कार्द्रवंनिचयैरपरैश्च शस्त्रैः ॥ वृद्धिं प्रयातु मम वीर्यमतीव युद्धे यस्माद्भवामि सबलैरमरैरजेयः ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्थं संप्रार्थितो ब्रह्मा तमाह प्रहसन्निव ॥ उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते वांछितं सफलं सदा ॥ ९ ॥

उन तपस्यासे प्रसन्न वरप्रद ब्रह्माजीसे गद्गद वचन कहने लगा ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! आपका दुर्लभ दर्शन प्राप्त करते ही अब मुझको सब देवताओंका पद प्राप्त हुआ हे कमलासन ! मेरे मनमें एक दुष्पूरणीय वासना उपस्थित रहती है आप सर्वज्ञ हैं सब ही जान सकते हैं तथापि मैं उसको कहता हूं सुनिये ॥ ७ ॥ हे नाथ ! लोहा, काष्ठ, सूखी वा गीली वस्तु और बांस तथा अन्यान्य शस्त्रसमूह द्वारा मेरी मृत्यु नहीं हो और युद्धमें मेरी वीरता अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो और मैं सैन्यसहित सब देवतागणोंसे अजय हूं ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! जब वृत्रसुरने ब्रह्माके निकट इस प्रकार प्रार्थना करी तब कमलासन कुछेक हँसते हुए कहने लगे हे वत्स ! उठकर इच्छानुसार स्थानमें जाओ तुम्हारा मंगल हो ॥ ९ ॥

तुमने जो प्रार्थना की वह तुम्हारा मनोरथ सर्वदा ही सफल होगा सूखी व गीली वस्तुसे अथवा पत्थर तथा अन्यान्य काष्ठादिद्वारा तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी यह मैंने तुम्हारे निकट सत्यही कहा है ॥ १० ॥ प्रजापति वृत्रासुरको इस प्रकार वर देकर ब्रह्मलोकको चले गये वृत्रासुर भी वर प्राप्तकर प्रसन्न हो घरको चलागया ॥ ११ ॥ अनन्तर वृत्रासुरने पिताके निकट इस वर प्राप्त करनेकी वार्त्ता निवेदन की, विश्वकर्म्मा पुत्रके वरप्राप्त करनेकी वार्त्ता सुन प्रसन्न सन्तुष्ट होकर कहने लगे ॥ १२ ॥ हे महाभाग! तुम्हारा मंगल हो तुम मेरे परम शत्रु शतक्रतुको मारो उस त्रिशिराके मारनेवाले पापात्मा इन्द्रको मारकर फिर इस स्थानमें आओ ॥ १३ ॥ तुम संग्रामजीत देवताओंके अधीश्वर होकर मेरी पुत्रजनित अत्यन्त मनोव्यथा दूर करो ॥ १४ ॥ पिता जब जीवित

न शुष्केण नचाऽऽर्द्रेण न पाषाणेन दारुणा॥ भविष्यति च ते मृत्युरिति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ १० ॥ इति दत्त्वा वरं ब्रह्मा जगाम भुवनं परम् ॥ वृत्रस्तु तं वरं लब्ध्वा मुदिताः स्वगृहं ययौ ॥ ११ ॥ शशंस पितुरग्रे तद्वरदानं महामतिः ॥ त्वष्टा तु मुदितः प्राप्तं पुत्रं प्राप्तवरं तदा ॥ १२ ॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग जहि शक्रं रिपुं मम ॥ हत्वा गच्छ त्रिशिरसो हंतारं पाप संयुतम् ॥१३॥ भव त्वं त्रिदशाधीशः संप्राप्य विजयं रणे ॥ ममाधिं छिंधि विपुलं पुत्रनाशसमुद्भवम् ॥ १४ ॥ जीवतो वाक्यकरणात्क्षयाहे भूरि भोजनात् ॥ गयायां पिंडदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥ १५ ॥ तस्मात्पुत्र ममाऽत्यर्थं दुखं नाशितुमर्हसि ॥ त्रिशिरा मम चित्तात्तु नाऽपसर्पति कर्हिचित् ॥१६॥ सुशीलः सत्यवादी च तापसो वेदवित्तमः ॥ अपराधं विना तेन निहतः पापबुद्धिना ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा पुत्रः परमदुर्जयः ॥ रथमारुह्य तरसा निर्जगाम पितुर्गृहात् ॥ १८ ॥ रणदुंदुभिनिर्घोषं शंखनादं महाबलम् ॥ कारयित्वा प्रायाणं स चकार मदगर्वितः ॥ १९ ॥

हो तब उनकी आज्ञा पालन, मृत्यु दिवस श्राद्ध दिनमें भोजनदान और गयामें पिण्डदान इन तीन कार्य्योंसेही पुत्रका पुत्रत्व होता है ॥ १५ ॥ अतएव हे पुत्र! तुम मेरे वचनकी रक्षा करके मेरा दुःख दूर करनेमें यत्नवान् होओ तुम निश्चय ही जानो कि त्रिशिरा मेरे मनसे कभी दूर नहीं होता ॥ १६ ॥ वह त्रिशिरा सुशील सत्यवादी तपस्वी और वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्य था हाय! मेरे उसी गुणवान् प्रिय पुत्रको पापबुद्धि इन्द्रने बिना अपराध ही मारा है ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! वह अत्यन्त दुर्ज्जय वृत्रासुर उनका यह बचन सुन रथपर चढ़कर शीघ्र पिताके घरसे निकला ॥ १८ ॥ उस मदसे गर्वित असुरने जब अपनी महती सेना के सहित रणके उद्देशसे गमन किया तब रणदुन्दुभिका शब्द और शंखनाद होनेलगा ॥ १९ ॥

वह नीतिसम्पन्न वृत्रासुर चलनेके समय अपनी सेनासे कहने लगा आज देवताओंके राजा इंद्रको मारकर अकण्टक देवताओंका राज्य ग्रहण करूंगा ॥ २० ॥ हे राजन् ! असुरराज यह कह सैन्य समूहसे परिवृत हो महान् सेनाके शब्दसे अमरावतीको भय उत्पन्न कराता हुआ शीघ्र निकला ॥ २१ ॥ हे भारत ! देवराज इंद्र उसको आता हुआ जान भयसे संत्रस्त हो शीघ्र सेनागणोंका उद्योग करके कहने लगे ॥२२॥ और शीघ्र ही सब लोक लोकपालगणोंको बुलाय युद्धके निमित्त प्रेरण कर स्थिति करने लगे ॥ २३ ॥ वह महाद्युति शत्रुतापन पाकशासन (इंद्र) गृध्रव्यूह (गृध्रपक्षीके समान सेना विशेष) बनाय अवस्थिति करने लगे इधर शत्रुओंको मारनेवाला वृत्रसुर वेगसहित आये उसी स्थानमें उपस्थित हुआ ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त देवता और दानवगणोंका

निर्ययौ नयसंयुक्तः सेवकानिति संवदन् ॥ हत्वा शक्रं ग्रहीष्यामि सुरराज्यमकंटकम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा निर्जगामाऽऽशु स्वसैन्य परिवारितः ॥ महता सैन्यनादेन भीषयन्नमरावतीम् ॥ २१ ॥ तमागच्छंतमाज्ञाय तुराषाडपि सत्वरः ॥ सेनोद्योगं भयत्रस्तः कारयामास भारत ॥ २२ ॥ सर्वानाहूय तरसा लोकपालानरिंदमः ॥ युद्धार्थं प्रेरयन्सर्वान्व्यरोचत महाद्युतिः ॥ २३ ॥ गृध्रव्यूहं ततः कृत्वा संस्थितः पाकशासनः ॥ तत्राऽजगाम वेगात्तु वृत्रः परबलार्दनः ॥ २४ ॥ देवदानवयोस्तावत्संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ॥ वृत्रवासवयोः संख्ये मनसा विजयैषिणोः ॥ २५ ॥ एवं परस्परं युद्धे संदीप्ते भयदे भृशम् ॥ आकूतं देवताः प्रापुर्दैत्याश्च परमां मुदम् ॥ २६ ॥ तोमरैर्भिंदिपालैश्च खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ जघ्नु परस्परं देवदैत्याः स्वस्वमरायुधैः ॥ २७ ॥ एवं युद्धे वर्तमाने दारुणे लोमहर्षणे ॥ शक्रं जग्राह सहसा वृत्रः क्रोधसमन्वितः ॥ २८ ॥ अपावृत्य मुखे क्षिप्त्वा स्थितौ पुत्रः शतक्रतुम् ॥ मुदितोऽभून्महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २९ ॥ शक्रे ग्रस्तेऽथ वृत्रेण संभ्राता निर्जरास्तदा ॥ चुक्रुशुः परमार्तास्ते हा शक्रेति मुहुर्मुहुः ॥ ३० ॥

तुमुल संग्राम आरंभ हुआ विजयकी इच्छा करनेवाले वृत्रासुर और इन्द्र घोर युद्ध करने लगे ॥ २५ ॥ इस प्रकार उस भयंकर युद्धकी अग्निको प्रदीप्त हुआ देख देवतागण विमर्ष और दैत्यगण हर्षको प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ देवता और दैत्यगण तोमर, भिन्दिपाल, खड्ग, परशु, पट्टिश इत्यादि अपने अपने शस्त्रोंसे परस्पर प्रहार करने लगे ॥ २७ ॥ इसी प्रकार दारुण लोमहर्षण युद्ध उपस्थित हुआ. क्रोधयुक्त वृत्रासुरने इन्द्रको सहसा ग्रहण कर लिया ॥ २८ ॥ और कवच तथा वस्त्रादि आवरणरहित कर मुखमें डाल ग्रासपूर्वक पहलेकी शत्रुता स्मरणकर अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे स्थिति करने लगा ॥ २९ ॥ वृत्रासुरके इन्द्रका ग्रास करनेपर देवतागण अत्यन्त संत्रस्त कातर हो हा इन्द्र ! हा इन्द्र ! कह बारबार चीत्कार करने लगे ॥ ३० ॥

देवतागण इन्द्रको कवचादिरहित और वृत्रासुरके मुखमें स्थित जानकर दिन और व्यथितमन हो बृहस्पतिजीको प्रणामकर कहने लगे ॥ ३१ ॥ हे द्विजेन्द्र ! आप हमारे परमगुरु हैं इस समय क्या कर्त्तव्य है ? देवतागणोंकी रक्षा करनेपरभी वृत्रासुरने इन्द्रको ग्रास किया है ॥ ३२ ॥ हम सभी हीन पराक्रम हैं अतएव हम इन्द्रके विना क्या करेंगे ? हे विभो ! आप इन्द्रको छुड़ानेका शीघ्र विचार कीजिये ॥ ३३ ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे देवतागणो ! देवराज इन्द्र वृत्रासुरके मुखमें पड़े हैं वृत्रासुर उनको अवसन्न किया है किन्तु वह जीवित रहकरभी शत्रुके कोष्ठमें स्थित हैं अतएवजीवितअवस्थामें निकालनेकी चेष्टा करनीही उचित है ॥ ३४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! देवराज इन्द्रको उस अवस्थामें देखकर देवतागण अत्यन्त चिन्तातुर हुए और शीघ्र इन्द्रको छुड़ानेके निमित्त

अपावृतं मुखे शक्रं ज्ञात्वा सर्वे दिवौकसः ॥ बृहस्पतिं प्रणम्योचुर्दीना व्यथितचेतसः ॥ ३१ ॥ किं कर्तव्यं द्विजश्रेष्ठ त्वमस्माकं गुरुः परः ॥ शक्रो ग्रस्तस्तु वृत्रेण रक्षितो देवतांतरैः ॥ ३२ ॥ विना शक्रेण किं कुर्मः सर्वे हीनपराक्रमाः ॥ अभिचारं कुरु विभो सत्वरः शुक्रमुक्तये ॥ ३३ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ किं कर्तव्यं सुरा क्षिप्तो मुखमध्येऽस्ति वासवः ॥ वृत्रेणोत्सादितो जीवन्नस्ति कोष्ठांतरे रिपोः ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥ देवाश्चिंतातुराः सर्वेः तुरासाहं तथा कृतम् ॥ दृष्ट्वा विमृश्य तरसा चक्रुर्यत्नं विमुक्तये ॥ ३५ ॥ असृजंत महासत्त्वां जंभिकां रिपुनाशिनीम् ॥ ततो विजृंभमाणः स व्यावृतास्यो बभूव ह ॥ ३६ ॥ विजृंभमाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादवाप तत् ॥ स्वान्यंगा न्यपि संक्षिप्य निष्क्रांतो बलसूदनः ॥ ३७॥ ततःप्रभृति लोकेषु जंभिका प्राणिसंस्थिता ॥ जहृषुश्च सुराः सर्वे शक्रं दृष्ट्वा विनिर्गतम् ॥ ३८ ॥ ततः प्रववृते युद्धं तयोर्लोकभयप्रदम् ॥ वर्षाणामयुतं यावाद्दारुणं लोमहर्षणम् ॥ ३९ ॥ एकतश्च सुराः सर्वे युद्धाय समुपस्थिताः ॥ एकतो बलवांस्त्वाष्ट्रः संग्रामे समवर्तत ॥ ४० ॥

भलीभांति विचारपूर्वक यत्न करने लगे ॥ ३५ ॥ अनन्तर उन्होंने महासत्व सम्पन्न वैरिविनाशिनी जँभाईको उत्पन्न किया तब वृत्रासुरको जँभाई लेनेपर उसका मुख खुल गया ॥ ३६ ॥ और बलविनाशन इन्द्र उसी अवकाशमें अपने सम्पूर्ण अंग सकोड़ कर जँभाई लेते हुए वृत्रासुरके मुखसे निकल पड़े ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! जबहीसे जँभाई लोकके बीच प्राणिगणोंके देहमें स्थित रहती है तदनन्तर देवतागण इन्द्रको निकला हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥ इस प्रकार इन्द्रके निकलनेपर फिर वृत्रासुर और इन्द्रका १०००० वर्ष पर्यन्त दारुण लोमहर्षण भयंकर संग्राम हुआ ॥ ३९ ॥ इधर सम्पूर्ण देवतागण युद्धको उपस्थित हुए, उधर विपुलविक्रम त्वष्टनन्दन वृत्रासुर संग्राम करने लगा ॥ ४० ॥

वृत्रासुर जब वरके मदसे मत्त हो रणमें वर्द्धित हुआ तब इन्द्र उसके तेजसे धर्षित हो पराजित हुए ॥ ४१ ॥ अनन्तर देवराज इन्द्र युद्धमें हारकर अतिव्यथित हुए, देवता लोगभी उनको हारा हुआ देखकर अत्यन्तविषादको प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ जब इन्द्र इत्यादि सब देवता रणको त्याग कर भाग गये तब वृत्रासुरने शीघ्र जाकर त्रिदशालयपर अधिकार कर लिया ॥ ४३ ॥ वह दानव प्रवर बलपूर्वक सब देवोद्यान भोग करने लगा और गजराज ऐरावतकोभी ले लिया ॥ ४४ ॥ उस त्वष्ट्राके पुत्र वृत्रासुरने सब विमान और घोड़ोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा ॥ ४५ ॥ कामधेनु पारिजात अप्सरागण इत्यादि सब स्वर्गके रत्न ग्रहण कर लिये ॥ ४६ ॥ इधर सम्पूर्ण देवता स्थानभ्रष्ट पर्वतके दुर्गमें वास करने लगे, वह यज्ञके भोगसे वंचित और सुरालयसे भ्रष्ट हो अत्यन्त क्लेश भोगने लगे

यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो वरमदावृतः ॥ पराजितस्तदा शक्रस्तेजसा तस्य धार्षितः ॥ ४१ ॥ विव्यथे मघवा युद्धे ततः प्राप्य पराजयम् ॥ विषादमगमन्देवा दृष्ट्वा शक्रं पराजितम् ॥ ४२ ॥ जग्मुस्त्यक्त्वा रणं सर्वे देवा इंद्रपुरोगमाः ॥ गृहीतं देवसदनं वृत्रेणागत्य रंहसा ॥४३॥ देवोद्यानानि सर्वाणि भुंक्तेऽसौ दानवो बलात् ॥ ऐरावतोऽपि दैत्येन गृहीतोऽसौ गजोत्तमः ॥ ४४ ॥ विमानानि च सर्वाणि गृहीतानि विशांपते ॥ उच्चैःश्रवा हयवरो जातस्तस्य वशे तदा ॥ ४५ ॥ कामधेनुः पारिजातो गणश्चाप्सरसां तथा ॥ गृहीतं रत्नमात्रं तु तेन त्वष्टृसुतेन ह ॥ ४६ ॥ स्थानभ्रष्टाः सुराः सर्वे गिरिदुर्गेषु संस्थिताः ॥ दुःखमापुः परिभ्रष्टा यज्ञभागात्सुरालयात् ॥ ४७ ॥ वृत्रः सुरपदं प्राप्य बभूव मदगर्वितः ॥ त्वष्टाऽतीव सुखं प्राप्य मुमोद सुतसंयुतः ॥ ४८ ॥ अमंत्रयन्हि तं देवा मुनिभिः सह भारत ॥ किं कर्तव्य मिति प्राप्ते चिंत्य भयमोहिताः ॥ ४९ ॥ जग्मुः कैलासमचलं सुराः शक्रसमन्विताः ॥ महादेवं प्रणम्योचुः प्रह्वाः प्रांजलयो भृशम् ॥ ५० ॥ देवदेव महादेव कृपासिंधो महेश्वर ॥ रक्षाऽस्मान्भयभीतांस्तु वृत्रेणाऽतिपराजितान् ॥ ५१ ॥

॥ ४७ ॥ वृत्रासुर देवताओंके राज्यको प्राप्त हो मदके गर्वसे गर्वित हुआ, विश्वकर्माभी उस समय अत्यन्त सुखी हो पुत्रके सहित आमोद करने लगे ॥ ४८ ॥ हे भारत ! तदनन्तर देवता मुनिगणोंके सहित मिलित हो अपने हितकर विषयकी परामर्श करने लगे और क्या करना चाहिये इस विषयकी चिन्ता कर भयसे मोहित होगये ॥ ४९ ॥ अनन्तर देवता इन्द्रको संग ले कैलासाचलमें महादेवके सामने गये और अत्यन्त विनीत तथा हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें प्रणाम करते हुए कहने लगे ॥ ५० ॥ हेदेवदेव महादेव आप महेश्वर और करुणारसके अपाररुद्रस्वरूप हैं हम वृत्रासुरसे हारकर अत्यन्त डरे हैं आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५१ ॥

हे शम्भो ! आप सबका मंगल करते हैं अतएव उस बलवान् दानवने स्वर्गका राज्य छीन लिया है इस समय हमको क्या करना चाहिये ? वह आप सत्य कहिये ॥ ५२ ॥ हे महेश ! हम स्थानमें भ्रष्ट होकर क्या करें कहां जायँ ? हमको तो दुःख दूर होनेका कोई उपाय नहीं दीखता ॥ ५३ ॥ हे भूतभावन ! हम अत्यन्त व्यथित हुए हैं, आप हमारी सहायता कीजिये हे दयामय ! वरदानके बलसे वह वृत्रासुर मदमत्त हुआ है. आप उसको मारिये ॥ ५४ ॥ शंकरने कहा हे देवतागणो ! हम ब्रह्माको आगे कर हरिके घर जाय उनके सहित उस दुर्वृत्त वृत्रासुरके वधकी चिन्ता करेंगे ॥ ५५ ॥ जनार्द्दन वासुदेव सब कार्य्योंमें समर्थ हैं. बलवान् छलज्ञ अत्यन्त बुद्धिमान् दयानिधि और सब जनोंके शरण देनेवाले हैं ॥ ५६ ॥ उन देवदेवके विना कार्य्य सिद्धिकी सम्भावना नहीं है,

गृहीतं देवसदनं तेन देवबलीयसा ॥ किं कर्तव्यमतः शंभो ब्रूहि सत्यं शिवाऽद्य नः ॥ ५२ ॥ किं कुर्मः क्व च गच्छामः स्थानभ्रष्टा महेश्वर ॥ दुःखस्य नाऽधिगच्छामो विनाशोपायमीश्वर ॥ ५३ ॥ साहाय्यं कुरु भूतेश व्यथिताः स्म कृपानिधे ॥ वृत्रं जहि मदोत्सिक्तं वरदानबलाद्विभो ॥ ५४ ॥ शिव उवाच ॥ ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा वयं सर्वे हरेः क्षयम् ॥ गत्वा समेत्य तं विष्णुं चिन्तयामो वधोद्यमम् ॥ ५५ ॥ सशक्तश्च च्छलज्ञश्च बलवान्बुद्धिमत्तरः ॥ शरण्यश्च दयाब्धिश्चवासुदेवो जनार्दनः ॥ ५६ ॥ विना तं देवदेवेशं नार्थसिद्धिर्भविष्यति ॥ तस्मात्तत्र च गंतव्यं सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥५७॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिन्त्य ते सर्वे ब्रह्मा शक्रः सशंकरः ॥ जग्मुर्विष्णोः क्षयं देवाः शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥ ५८ ॥ गत्वा विष्णुपदं देवास्तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ हरिं पुरुषसूक्तेन वेदोक्तेन जगद्गुरुम् ॥ ५९ ॥ प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्नाथस्तेषां स कमलापतिः ॥ संमान्य च सुरान्सर्वानित्युवाच पुरः स्थितः ॥ ६० ॥ किमागताः स्म लोकेशा हरब्रह्मसमन्विताः ॥ कारणं कथयध्वं वः सर्वेषां सुरसत्तमाः ॥ ६१ ॥

अतएव सर्वकार्य सिद्धिके निमित्त हम सबको उसी स्थानमें जाना चाहिये ॥ ५७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इन्द्रादि देवतागण शंकर और ब्रह्माके सहित इस प्रकार स्थिरकर सबही भगवान्के निवासमें जाय सर्वजन शरण्य भक्तवत्सल ॥ ५८ ॥ जगद्गुरु हरिका वेदोक्त पुरुषसूक्तसे स्तव करने लगे ॥ ५९ ॥ तब वह कमलापति जगत्प्रभुजनार्दन उनके प्रत्यक्ष हुए और देवतागणोंका सन्मानकर उनके संमुख स्थित हो कहने लगे ॥ ६० ॥ हे लोकेश गण ! तुम शंकर और ब्रह्माके सहित किसकारण आये हो हे सुरसत्तमगण ! तुम्हारे आनेका क्या कारण है वह मुझसे कहो ? ॥ ६१ ॥

व्यासजीने कहा हे महाराज! देवता हरिके यह वचन सुनकर रमापतिसे कुछ न कहसके और प्रायः सबही चिन्तायुक्तहो हाथ जोड़े खड़े रहे ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! सर्वार्थतत्वके जाननेवाले लक्ष्मीपति नारायण देवताओंको चिंतातुर और अत्यन्तअनुगत देखकर उसने कहने लगे ॥१॥ हे सुरगण तुम मौनभाव अवलम्बन क्यों कर रहे हो? तुम मेरे पास किस कारण आयेहो? अब अच्छा हो अथवा बुरा हो शीघ्र कहो क्योंकि मैं उसको सुनकर फिर तुम्हारे क्लेश दूर करनेका यत्न करूंगा ॥ २ ॥ देवताओंने कहा हे प्रभो! त्रिभुवनमें आपसे क्या छिपा है? आप सब कार्य जानते हैं तो किस कारण हमसे वारंवार पूछते हैं ॥३ ॥ पूर्वकालके समय आपने वामनरूप धारण कर तीन चरणोंसे

व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वाहरेर्वाक्यं नोचुर्देवा रमापतिम् ॥ चिन्ताविष्टाः स्थिताः प्रायो सर्वे प्रांजलयस्तथा ॥६२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ तथा चिन्तातुरा न्वीक्ष्यसर्वान् सर्वार्थतत्त्ववित् ॥ प्राह प्रेमभरोद्भ्रांता न्माधवो मेदिनीपते ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच ॥ किं मौनमाश्रिता यूयं ब्रुवंतु कारणं सुराः ॥ सदसद्वाऽपि यच्छ्रुत्वा यतिष्ये तन्निवारणे ॥२॥ देवा ऊचुः ॥ किमिज्ञातं तव विभो त्रिषु लोकेषु वर्तते ॥ सर्वं वेद भवान्कार्यं किं पृच्छसि पुनः पुनः ॥ ३ ॥ त्वया पूर्वं बलिर्बद्धः शक्रो देवाधिपः कृतः ॥ वामनं वपुरास्थाय क्रांतं त्रिभुवनं पदैः ॥ ४ ॥ अमृतं त्वद्धृतं विष्णो दैत्याश्च विनिपातिताः ॥ त्वं प्रभुः सर्ववदोनां सर्वापद्विनिवारणे ॥ ५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ न भेतव्यं सुरवरा वेद्म्युपायं सुसंमतम् ॥ तद्वधाय प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं भविष्यति ॥ ६ ॥ अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमात्मना ॥ बुद्ध्या बलेन चार्थेन येन केन च्छलेन वा ॥ ७ ॥

त्रिभुवन आक्रमण किया था और बलीराजाको बांधकर इंद्रको देवाधिकार दिया था ॥ ४ ॥ हे विभो ! आपनेही दैत्यगणोंको मोहित कर अमृत हरण किया था और आपनेही उनको शमनभवनमें प्रेरण किया था अतएव हे देव! आपही देवताओंके सर्वप्रकार विपद्नू निवारणके एकभाव प्रभु रहे हैं ॥ ५ ॥ विष्णु--देवताओंके यह वचन सुनकर कहने लगे हे सुरगण! भय नहीं है जिससे वह दैत्यवर विनष्ट होगा मुझको वही एक सर्वसम्मत उपाय विदित है. इस समय वही तुम्हारे निकट कहता हूं सुनो, हे देवताओ! इससेही तुमको सुख प्राप्त होगा इसमें सन्देह नहीं ॥६॥ देखो बुद्धि बल अर्थ वा छलसे अथवा अन्य जिस किसी प्रकारसे हो तुम्हारा हित करना मुझको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ७ ॥

तत्त्वके जाननेवाले पंडितगणोंने मित्रोंके विशेष कर शत्रुगणोंके प्रति प्रयोग करनेके लिये साम, दान, भेद और दण्ड यह चार प्रकारके उपाय निर्द्धारित किये हैं ॥ ८ ॥ तपस्यासे आराधित होकर ब्रह्माजीने उसको वर दिया है और उसी वरके प्रभावसे वह दुर्ज्जय हुआ है ॥ ९ ॥ विशेष कर विश्वकर्म्माने अग्निसे उसको उत्पन्न किया है अत एव इन सब कारणोंसेही वह परपुरञ्जय वृत्रासुर अत्यन्त बलवान् हो सब जीवगणोंको अजय हुआ हो ॥ १० ॥ हे सुरगण ! पहले सामप्रयोग इसके उपरांत प्रतारणके विना इस शत्रुको जीतना कठिनहै, अतएव पहले लोभ दिखाय अपने वशीभूत कर तदनन्तर उसका विनाश करना उचित है ॥ ११ ॥ इस समय जिस स्थानमें वह बलवान् वृत्रासुर वास करताहै पहले उसी स्थानमें गन्धर्व और ऋषिगणोंके सहित जाय उसके संग सन्धिस्थापन

उपायाः खलुः चत्वारः कथितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ सामादयः सुहृत्स्वेव दुर्हृदेषु विशेषतः ॥ ८ ॥ ब्रह्मणाऽस्य वरो दत्तस्तपसाऽऽराधितेन च ॥ दुर्जयत्वं च संप्राप्तं वरदानप्रभावतः ॥ ९ ॥ अजेयः सर्वभूतानां त्वष्ट्रा समुपपादितः ॥ ततो बलेन वृद्धिं स प्राप्तः परपुरंजयः ॥ १० ॥ दुःसाध्योऽसौ सुराः शत्रुर्विना साम प्रतारणम् ॥ प्रलोभ्य वशमानेयो हंतव्यस्तु ततः परम् ॥ ११ ॥ गच्छध्वं सर्वगन्धर्वा यत्राऽसौ बलवत्तरः ॥ साम तस्य प्रयुंजध्वं तत एनं विजेष्यथ ॥ १२ ॥ संगम्य शपथान्कृत्वा विश्वास्य समयेन हि ॥ मित्रत्वं च समाधाय हंतव्यः प्रबलो रिपुः ॥ १३ ॥ अदृश्य संप्रवेक्ष्यामि वज्रस्य वरायुधम् ॥ साहाय्यं च करिष्यामि शक्रस्याहं सुरोत्तमाः ॥१४॥ समयं च प्रतीक्षध्वं सर्वथैवायुषः क्षये ॥ मरणं विबुधास्तस्य नान्यथा सम्भविष्यति च ॥ १५ ॥ गच्छध्वमृषिभिः सार्धं गन्धर्वाः कपटावृताः ॥ इंद्रेण सह मित्रत्वं कुरुध्वं वाक्यदानतः ॥ १६ ॥ यथा स याति विश्वासं यथा कार्यं प्रतारणम् ॥ गुप्तोऽहं संप्रवेक्ष्यामि पविं संछादितं दृढम् ॥ १७ ॥

करो, तदनन्तर उसका पराजय करो ॥ १२ ॥ वहां जानेपर वह जो कहे उसी नियमानुसार शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करो पहले विश्वास उत्पन्न करो तदनन्तर बन्धुत्व स्थापन करो फिर यथासमयमें उस प्रबल शत्रुको मारो ॥ १३ ॥ हे सुरगण ! मैं भी इंद्रके उत्कृष्ट आयुध वज्रमें अदृश्यभावसे प्रवेश कर यथासमयमें उनकी सहायता करूंगा ॥ १४ ॥ देखो ! तुम समयकी प्रतीक्षा करो सम्यक् प्रकार उसकी आयुका कालशेष होगा; नहीं तो किसी प्रकार उसकी मृत्यु नहीं होगी ॥ १५ ॥ इस समय गन्धर्व और ऋषिगणोंके सहित उस असुरके निकट जायकर कपटतापूर्वक केवल वचनसे उसके संग मित्रत्व स्थापन करो ॥१६॥ जब उसको विश्वास उत्पन्न होजाय तबहीं प्रतारण करनी चाहिये, मैं दृढ आच्छादित वज्रमें गुप्तभावसे प्रविष्ट हूंगा ॥ १७ ॥

इंद्र जब उसको विश्वस्त जान सके तबहीं उस वज्रके प्रहारसे उसका विनाश करें अन्यथा किसी प्रकार उसको नहीं मार सकेंगे देवराज विश्वासघातजनित पापको इस समय पीछेकर ॥ १८ ॥ मेरी सहायतासे उस पापात्मा असुरको वज्रसे मारें. देखो शठ शत्रुके प्रति शठताचरण दोषका कारण नहीं होता ॥ १९ ॥ विशेषकर शठताके विना केवल वीरधर्म्मसे बलवान् शत्रु कभी नहीं मारा जाता पूर्वमें मैंने भी वामनरूप धारण करके बलिको ॥ २० ॥ और मोहिनी वेशसे सब दैत्यगणोंको वंचित किया है अतएव बलवान् शठ शत्रुके प्रति शठताचरण कदापि दोषका विषय नहीं जानना. हे देवगण! इस समय तुम सब एकत्र मिलित होकर स्तोत्र मंत्रादिसे देवी भगवतीकी ॥ २१ ॥ आराधना कर उनकी शरणागत होओ तो वह योगमाया तुम्हारी सहायता करेंगी ॥ २२ ॥

विश्वस्तं मघवाशत्रुं हनिष्यति न चान्यथा ॥ विश्वसस्य कृते पापं कृत्वा शक्रस्तु पृष्ठतः ॥ १८ ॥ मत्सहायोऽथ वज्रेण शातयिष्यति पापिनम् ॥ न दोषोऽत्र शठे शत्रौ शाठ्यमेव प्रकुर्वतः ॥ १९ ॥ नान्यथा बलवान्वध्यः शूरधर्मेण जायते ॥ वामनं रूपमाधाय मयाऽयं वंचितो बलिः ॥ २० ॥ कृत्वा च मोहिनी वेषं दैत्याः सर्वेऽपि वंचिताः ॥ भवंतः सहिताः सर्वे देवीं भगवतीं शिवाम् ॥ २१ ॥ गच्छध्वं शरणं भावैः स्त्रोत्रमंत्रैः सुरोत्तमाः ॥ साहाय्यं सा योगमाया भवतां संविधास्यति ॥२२॥ वंदामहे सदा देवीं सात्त्विकीं प्रकृतिं पराम् ॥ सिद्धिदां कामदां कामां दुरापामकृतात्मभिः ॥२३॥ इन्द्रोऽपि तां समाराध्य हनिष्यति रिपुं रणे ॥ मोहिनी सा महामाया मोहयिष्यति दानवम् ॥ २४ ॥ मोहितो मायया वृत्रः सुखसाध्यो भविष्यति ॥ प्रसन्नायां परांबायां सर्वं साध्यं भविष्यति ॥ २५ ॥ नो चेन्मनोरथा वाप्तिर्न कस्याऽपि भविष्यति ॥ अंतर्यामिस्वरूपा सा सर्वकारणकारणा ॥ २६ ॥

हे देवगण ! जो स्वयं कामनारूपिणी होकर भक्तगणोंकी सब कामना पूर्ण करती है जिनकी आराधनासे सब कार्योंकी सिद्धि होती है पूतात्मा योगीगणोंके अतिरिक्त उनको कोई प्राप्त नहीं कर सकता मैं भी उन्हीं सत्वगुणस्वरूपिणी प्रकृति रूपिणी परात्परा देवीकी वंदना करता हूं ॥ २३ ॥ अतएव इंद्र भी उनकी आराधना करके निश्चय रणमें शत्रुका संहार करनेमें समर्थ होंगे. कारण कि, वह मोहजननी महामाया पूजित होकर उस दानवको मोहित करेंगी ॥ २४ ॥ वृत्रासुरकी मायासे मोहित होनेपर इंद्र उसको अनायास ही मारनेमें समर्थ होंगे इसमें संदेह नहीं. अधिक क्या उन परात्परा अम्बिकाके प्रसन्न होनेपर सर्व कार्य्यकी सिद्धि होगी ॥ २५ ॥ वह अन्तर्य्यामिस्वरूपिणी और सब कार्योंका कारण है उनकी आराधनाके विना किसीको भी ऋद्धिकी

दे. भा.
॥१५॥

संभावना नहीं है ॥ २६ ॥ अतएव हे सुरसत्तमगण ! शत्रुविनाशके निमित्त परम आदर सहित सात्विक भावसे उन्हीं विश्वजननी प्रकृति देवीकी आराधना करो ॥ २७ ॥ देखो पूर्वमें मैंने पांच हजार वर्ष अत्यन्त दारुण युद्धकर मधु कैटभ नामक दोनों असुरोंको संहार किया था ॥ २८ ॥ तब मैंने उन्हीं महामाया पराप्रकृतिकी स्तुति करी थी, इससे ही उन्होंने प्रसन्न होकर इन दोनों असुरोंको मोहित किया था इससे ही यह मदगर्वित महाबाहु दोनों असुर प्रतारित हुए. कारण कि, मैं छलपूर्वक उन भयंकर दोनों दैत्योंका संहार करनेमें समर्थ हुआ था अतएव हे सुरगण ! तुम लोग भी भक्ति भावसे उसी प्रकार पराप्रकृतिकी आराधना करो ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ तो वह-भलीभाँतिसे तुम्हारा कार्य्य सिद्ध करेंगी. हे महाराज ! प्रभावशाली विष्णुके देवतागणोंको इस

तस्मात्तां विश्वजननीं प्रकृतिं परमादृताः ॥ भजध्वं सात्त्विकैर्भावैः शत्रुनाशाय सत्तमाः ॥ २७ ॥ पुरा मयाऽपि संग्रामं कृत्वा परमदारुणम् ॥ पंचवर्षसहस्राणि निहतौ मधुकैटभौ ॥ २८ ॥ स्तुता मया तदाऽऽस्त्यर्थं प्रसन्ना प्रकृतिः परा ॥ मोहितौ तौ तदा दैत्यौ छलेन च मया हतौ ॥ २९ ॥ विप्रलब्धौ महाबाहू दानवौ मदगर्वितौ ॥ तथा कुरुध्वं प्रकृतेर्भजनं भावसंयुताः ॥ ३० ॥ सर्वथा कार्यसिधिं सा करिष्यति सुरोत्तमाः ॥ एवं ते दत्तमतयो विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ३१ ॥ जग्मुस्ते मेरुशिखरं मंदारद्रुममंडितम् ॥ एकांते संस्थिता देवाः कृत्वा ध्यानं जपं तपः ॥ ३२ ॥ तुष्टुवुर्जगतां धात्रीं सृष्टिसंहारकारणीम् ॥ भक्तकामदुघामंबां संसारक्लेशनाशिनीम् ॥३३॥ देवा ऊचुः ॥ देवि प्रसीद परि पाहि सुरान्प्रतप्तान्वृत्रासुरेण समरे परिपीडितांश्च ॥ दीनार्तिनाशनपरे परमार्थतत्त्वे प्राप्तांस्त्वदंघ्रिकमलं शरणं सदैव ॥३४॥ त्वं सर्वविश्वजननी परिपालयास्मान्पुत्रानिवातिपतितान्रिपुसंकटेऽस्मिन् ॥ मातर्न तेऽस्त्यविदितं भुवनत्रयेऽपि कस्मादुपेक्षसि सुरानरसुप्रतप्तान् ॥ ३५ ॥

प्रकार बुद्धिप्रदान करनेपर ॥ ३१ ॥ उन्होंने मन्दारतरुसे शोभायमान सुमेरुके शिखरमें गमन किया और एकान्तमें उपस्थित रहकर जप और तपस्यामें निरत तथा ध्यानपरायण होकर ॥ ३२ ॥ उन सृष्टिस्थिति संहार कारिणी भक्तगणोंको अभीष्ट प्रदान करनेवाली संसारका क्लेश नाश करनेवाली जगज्जननी जगद्धात्रीका स्तव करने लगे ॥ ३३ ॥ देवता बोले हे परब्रह्म स्वरूपिणी देवि ! आप दीनदुःखी प्राणीगणोंकी आधिव्याधि विनाश करती हैं इस कारण हमने आपके चरण कमलोंकी शरण ग्रहण की। हे भगवति ! हम वृत्रासुरसे समरमें पराजित होकर अत्यन्त सन्तप्त और पीड़ित हुए हैं, आप इस समय हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये और हमारी रक्षा कीजिये ॥ ३४ ॥ आप ही सम्पूर्ण विश्वकी जननी हैं हम भी इस शत्रुसंकटमें पतित हुए हैं अतएव इस समय हमारी पुत्रके

भा. टी. ष.
अ० ५

समान रक्षा कीजिये. हे मातः! त्रिभुवनमें आपसे कुछ नहीं छिपा है हम असुरगणोंकी प्रतापरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तप्त हुए हैं अतएव आप हमारी किस कारण उपेक्षा करती हैं ॥ ३५ ॥ हे जननि! आपही इस त्रिभुवन मण्डलकी सृष्टिस्थिति और संहार करती हैं ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर आपकी ही इच्छा मात्रसे उत्पन्न होकर सम्पूर्ण कार्य्य सम्पादन करते हैं. हे जननि! वह स्वाधीन नहीं हैं आपके ही भ्रूभङ्गसे परिचालित होकर इच्छानुसार विहार करते हैं ॥ ३६ ॥ अनेक प्रकारके अपराधसे अपराधी होनेपर भी माता दीन पुत्रगणकी क्लेशसे रक्षा करती है. हे जननि! आपने ही इस रीतिकी रचना करी है तो हे दयामयि! किस कारणसे निरपराध और अपने चरणकमलोंकी शरणागत जानकर भी हमारी रक्षा नहीं करती? ॥३७॥ हे देवि! यदि आप समझती हैं कि, यह जब मेरे अनुग्रहसे प्राप्त हुआ ऐश्वर्य भोग करेंगे तो उसमें ही अत्यन्त आसक्त रहकर मेरे प्रति भक्ति करना एकबार ही भूल जाँयगे. अतएव उस

त्रैलोक्यमेतदखिलं विहितं त्वयैव ब्रह्मा हरिः पशुपतिस्तव वासनोत्थाः ॥ कुर्वंति कार्यमखिलं स्ववशा न ते ते भ्रूभंगचालनवशाद्विहरंति कामम् ॥ ३६ ॥ माता सुतान्परिभवात्परि पाति दीनान्नीतिस्त्वयैव रचिता प्रकटापराधान् ॥ कस्मान्न पालयसि देवि विनापराधानस्मांस्त्वदंघ्रिशरणान्करुणारसाब्धे ॥ ३७ ॥ नूनं मदंघ्रिभजनाप्तपदाः किलैते भक्तिं विहाय विभवे सुखभोगलुब्धाः ॥ नेमे कटाक्षविषया इति चेन्न चैषा रीतिः सुते जननकर्तरि चापि दृष्टा ॥ ३८ ॥ दोषो न नोऽत्र जननि प्रतिभाति चित्ते यत्ते विहाय भजनं विभवे निमग्नाः ॥ मोहस्त्वया विरचितः प्रभवत्य सौनस्तस्मात्स्वभावकरुणे दयसे कथं न ॥ ३९ ॥ पूर्वं त्वया जननि दैत्यपतिर्बलिष्ठो व्यापादितो महिषरूपधरः किलाऽऽजौ ॥ अस्मत्कृते सकल लोकभयावहोऽसौ वृत्रं कथं न भयदं विधुनोषि मातः ॥ ४० ॥

समय यह मेरे करुणाकटाक्षके वशीभूत नहीं हो सकेंगे यद्यपि यह सत्य है किंतु हे मातः! पुत्रके प्रति जननीका इस प्रकार भाव कहीं भी दिखाई नहीं देता अतएव हम सदाही आपकी करुणाकटाक्षके पात्र हैं इसमें अब संदेह नहीं है ॥ ३८ ॥ और एक बात है कि, आपकी आराधना त्यागकर जिस ऐश्वर्य भोगमें निमग्न होंगे इस विषयमें हमारा कोई भी दोष बोध नहीं होता क्योंकि आपने जो मोहकी रचना कर रक्खी है वह मोह अपना प्रभाव प्रकाश करके हमको मोहित कर रखता है. हे जननि! आप स्वभावसे ही करुणामयी हैं अतएव जानकर भी किस कारण हमारे प्रति दया प्रकाश नहीं करतीं ॥ ३९ ॥ हे देवि! आपने पूर्वमें हमारे निमित्त ही सब लोकोंको भयावह बलवान् दैत्यपति महिषासुरका संग्राममें विनाश किया है अतएव इस समय किस कारण इस भयावह

वृत्रासुरको नहीं मारतीं ? ॥ ४० ॥ आपने ही अत्यन्त बलशाली शुम्भ और तदनुज निशुम्भ नामक दोनों भ्राताओंका संहार किया है और अनुगामी अन्यान्य दैत्यगणोंको भी मारा है हे करुणामयि ! इस समय उसी प्रकार खल और प्रबल वृत्रासुरका विनाश कीजिये. हे मातः ! जिससे वह फिर कुछ भी प्रभाव प्रकाश न करसके आप उसीप्रकार इस मदमत्त वृत्रासुरको मोहित कीजिये ॥ ४१ ॥ हम असुरगणोंके प्रभावसे अत्यन्त सन्तापित और उनके भयसे अतिशयविह्वल हुए हैं आप हमारी रक्षा कीजिये क्योंकि आपके विना तीनों लोकोंमें अपनी शक्तिसे देवतागणोंका क्लेश दूर करसके इस प्रकारका दूसरा मार्ग नहीं है ॥ ४२ ॥ हे मातः यद्यपि आपने वृत्रासुरके प्रति दया प्रकाशकी है तथापि जनगणोंको दुःखदायक और क्रूरस्वभाव उस असुर का शीघ्र विनाश कीजिये. हे भवानि ! अपने बाणोंसे पवित्र करके उसको पापसे उद्धार कीजिये, नहीं तो वह दुष्टबुद्धि निःसंदेहही घोरनरकमें प्रवेश करेगा. अतएव

शुंभस्तथाऽति बलवाननुजो निशुंभस्तौ भ्रातरौ तदनुगानिहता हतौ च ॥ वृत्रं तथा जहि खलं प्रबलं दयार्द्रे मत्तं विमोहय तथा न भवेद्य
थाऽसौ ॥ ४१ ॥ त्वं पालयाद्य विबुधानसुरेण मातः संतापितानतितरां भय विह्वलांश्च ॥ नाऽन्योऽस्ति कोऽपि भुवनेषु सुरार्तिहंता यः
क्लेशजालमखिलं निदहेत्स्वशक्त्या ॥ ४२ ॥ वृत्रे दया तव यदि प्रथिता तथाऽपि जह्येनमाशु जनदुःखकरं खलं च ॥ पापात्समुद्धर
भवानि शरैः पुनाना नो चेत्प्रयास्यति तमो ननु दुष्टबुद्धिः ॥ ४३ ॥ ते प्रापिता सुरवनं विबुधारयो ये हत्वा रणेऽपि विशिखैः किल पावि
तास्ते ॥ त्राता न किं निरयपातभयाद्दयार्द्रे यच्छत्रवोपि न हि किं विनिहंसिवृत्रम् ॥ ४४ ॥ जानीमहे रिपुरसौ तव सेवको न प्रायेण
पीडयति नः किल पापबुद्धिः ॥ यस्ता वकस्त्विह भवेद्मरानसौ किं त्वत्पादपंक जरतान्ननु पीडयेद्वा ॥ ४५ ॥ कुर्मः कथं जननि पूजन
मद्य तेंऽब पुष्पादिकं तव विनिर्मितमेव यस्मात् ॥ मंत्रा वयं च सकलं परशक्तिरूपं तस्माद्भवानि चरणे प्रणताः स्म नूनम् ॥ ४६ ॥

उसकेही कल्याणार्थ उसको मारना अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ४३ ॥ पूर्वमें जो देवतागणोंका शत्रु था आपने उसकोही संग्रामस्थलमें अस्त्रद्वारा पवित्र कर स्वर्गस्थ नन्दनवनमें प्रेरणकिया है. हे करुणामयि ! उसके शत्रु होनेपरभी आपने क्या उसकी नरकके भयसे रक्षा नहीं करी है ? तो किस कारण इस समयभी वृत्रासुरको नहीं मारती ? ॥ ४४ ॥ हम निश्चयही कहते हैं कि, यह असुर आपका शत्रु है, सेवक नहीं है क्योंकि यह पापबुद्धि हमको सदाही पीडित करता है. हे जननि ! जो आपके चरणकमलोंकी सेवामें विरत हैं जो पुरुष उन देवताओंको पीडित करता है वह किस प्रकार आपका भक्त हो सकता है ? ॥ ४५ ॥ हे मातः ! हम आपकी पूजा किस प्रकार करें ? पुष्पादि जो कुछ पूजाके द्रव्य दिखाई देते हैं आपहीने तो वह सब बनाये हैं विशेषकर हम और मन्त्र

इत्यादि पूजाके जो कुछ योगपदार्थ हैं वह सबही आपकी शक्तिस्वरूप हैं. अतएव हे भवानि ! हम केवलमात्र प्रणामसेही आपकी पूजा करते हैं आप प्रसन्न हूजिये ॥ ४६ ॥ जो संसारके नौकास्वरूप आपके चरणारविंदोंका भक्तिभावसे भजन करते हैं वे ही मनुष्यगण धन्य हैं. हे देवि! जो योगीगण विषयानुराग विकार मोह त्यागकर मोक्षकी कामना करते हैं वे भी आपके उन्हीं चरणकमलोंका सदा स्मरण करके सिद्धिलाभ करते हैं ॥ ४७ ॥ जो सब वेदोंका तत्त्व जाननेवाले और याज्ञिक हैं वह भी यज्ञके आहुतिकालके समय देवतागणोंकी तृप्तिजननी स्वाहास्वरूपिणी और पितृगणोंकी परम तृप्त करनेवाली स्वधास्वरूपिणी आपकी सदाही चिन्ता करते हैं ॥ ४८ ॥ हे मातः! आपही बुद्धि आपही कांति आपही शांति आपही पुरुषगणोंकी विशदार्थकारिणी प्रसिद्ध बुद्धि

धन्यास्त एव मनुजा हि भजंति भक्त्या पादांबुजं तव भवाब्धिजलेषु पोतम् ॥ यं योगिनोऽपि मनसा सततं स्मरंति मोक्षार्थिनो विगत रागविकारमोहाः ॥ ४७ ॥ ये याज्ञिकाः सकलवेदविदोऽपि नूनं त्वां संस्मरंति सततं किल होमकाले ॥ स्वाहां तु तृप्तिजननीममरेश्वराणां भूयः स्वधां पितृगणस्य च तृप्तिहेतुम् ॥ ४८ ॥ मेधाऽसि कांतिरसि शांतिरपि प्रसिद्धा बुद्धिस्त्वमेव विशदार्थकरी नराणाम् ॥ सर्वं त्वमेव विभवं भुवनत्रयेऽस्मिन्कृत्वा ददासि भजतां कृपया सदैव ॥४९॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैर्देवी प्रत्यक्षा साऽभवत्तदा ॥ चारुरूपधर तन्वी सर्वाभरणभूषिता ॥ ५० ॥ पाशांकुशवरा भीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥ रणत्किंकिणिकाजालरसनाबद्ध सत्कटिः ॥ ५१ ॥ कलकंठीरवा कांता क्वणत्कंकणनूपुरा ॥ चंद्रखंडसमाबद्धरत्नमौलिविराजिता ॥ ५२ ॥ मन्दस्मितारविंदास्या नेत्रत्रयविभूषिता ॥ पारि जातप्रसूनाच्छनालवर्णसमप्रभा ॥ ५३ ॥

और आपही त्रिभुवनके सम्पूर्ण ऐश्वर्यस्वरूप हैं. हे देवि ! जो आपका भजन करता है आप दयापूर्वक किसी प्रकार उसको यह विभवप्रदान करती हैं ॥ ४९ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवताओंके इस प्रकार स्तव करनेपर देवी भगवती सम्पूर्ण आभरणोंसे विभूषित हो मनोहररूप धाण करके देरवताओंके सन्मुख प्रगट हुई ॥ ५० ॥ उनके चारों बाहु पाश अंकुश और वरदानभङ्गिमा और अभयमुद्रासे शोभायमान थे. शोभायमान कटितटमें रशना कौंधनी (बँधीहुई) किंकिणीकी कलध्वनिसे शोभित ॥ ५१ ॥ और चरणयुगल कंकण-स्थित नूपुरके शब्दसे रंजित थे उनका मधुर सुर अत्यन्त कमनीय ललाट चन्द्रखण्डसे शोभित और मस्तक उज्ज्वल रत्नोंके मुकुटसे विराजित था ॥ ५२ ॥ उनका मुखारविन्द स्मित शोभासे और कमलके समान तीनों नेत्रोंसे भूषित था, उनके

अंगकी कांति पारिजात कुसुमके समान मनोहर ॥ ५३ ॥ रक्तवर्ण अंगप्रत्यंग सब रक्तचन्दनमें रंजित और पहरनेके वस्त्रभी रक्तवर्ण थे, इस प्रकार प्रसन्नमुखी करुणाकी सागर देवी ॥ ५४ ॥ उसी समय समस्तशृङ्गारवेशधारिणी बोध होती थीं हे महाराज ! अखिलब्रह्माण्डकी जननी सर्वज्ञ सर्वकर्त्री और सम्पूर्णकी अधिष्ठानस्वरूपिणी ॥५५॥ वेदान्तसिद्ध सच्चिदानन्दस्वरूपिणी सुप्रसन्न दयामयी, भगवती भुवनेश्वरी इस प्रकार देवतागणोंके सन्मुख उपस्थित हुई देवताओंने उनको सन्मुख स्थित देखकर प्रणाम किया ॥ ५६ ॥ तब उन जगदम्बिकानेभी प्रणत हुए देवताओंसे कहा हे देवगण ! तुम किस कारण मेरा स्तव करतेहो वह मुझसे कहो ? देवताओंने कहा हे भगवति ! वृत्रासुर देवतागणोंको अत्यंन्त दुःख देता है आप उस देवताओंके शत्रुको मोहित कीजिये ॥ ५७ ॥ हे देवि !

रक्तांबरपरीधाना रक्तचंदनचर्चिता ॥ प्रसादसुमुखी देवी करुणारससागरी ॥ ५४ ॥ सर्वशृंगारवेषाढ्या सर्वद्वैतारणिः परा ॥ सर्वज्ञा सर्व कर्त्री च सर्वाधिष्ठानरूपिणी ॥ ५५ ॥ सर्ववेदांतसंसिद्धा सच्चिदानंदरूपिणी ॥ प्रणेमुस्तां समालोक्य सुरा देवीं पुरःस्थिताम् ॥ ५६ ॥ तानाह प्रणतानंबाः किं वः कार्यं ब्रुवंतु माम् ॥ देवा ऊचुः ॥ मोहयैनं रिपुं वृत्रं देवानामतिदुःखदम् ॥ ५७ ॥ यया विश्वसते देवांस्तथा कुरु विमोहितम् ॥ आयुधे च बलं देहि हतः स्याद्येन वा रिपुः ॥ ५८ ॥ व्यास उवाच ॥ तथे त्युक्त्वा भगवती तत्रैवांतरधीयत ॥ स्वानि स्वानि निकेतानि जग्मुर्देवा मुदाऽन्विताः ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधेदेवीमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायः ॥५॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्राप्तवरा देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ "जग्मुः सर्वे च संमंत्र्य वृत्रस्याश्रममुत्तमम् ॥" ददृशुस्तत्र तं वृत्रं ज्वलंतमिव तेजसा ॥ १ ॥ धक्ष्यंतमिव लोकां स्त्रीन्ग्रसंतमिवचामरान् ऋषयोऽथ ततोऽभ्येत्य वृत्रमूचुः प्रियं वचः ॥ २ ॥

जिससे वह देवताओंका विश्वास करे आप उसको उसीप्रकार मोहित कीजिये और जिससे वह परमशत्रु विनष्ट हो हमारे अस्त्रमें उसीप्रकार बलप्रदान कीजिये ॥ ५८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! अनन्तर देवीभगवती तथास्तु कहकर उसी स्थानमें अंतर्धान होगई, देवतागण भी आनन्दित हो घरको चलेगये ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! तप प्रभावयुक्त सम्पूर्ण ऋषि और देवतागण देवी भगवतीके निकट इस प्रकार वर प्राप्तकर सब एकत्र मिलित हो परामर्श करने लगे, और इसके उपरांत वृत्रासुरके उत्तम आश्रममें जाकर देखा कि वृत्रासुर अपने तेजसे प्रज्वलित ॥ १ ॥ त्रिभुवन भस्म करने और अमरगणोंको ग्रास करनेके निमित्त ही मानो विराजमान है तब ऋषिगण उसके निकट

जाकर ॥ २ ॥ देवतागणोंके कार्य्यसिद्धिके निमित्त सामयुक्त रसात्मक प्रियवचन उससे कहने लगे ऋषि बोले हे महाभाग वृत्र! सम्पूर्ण लोकही तुमसे भय करते हैं ॥ ३ ॥ तुमने विश्व ब्रह्माण्ड सम्पूर्ण स्थलोंमें ही अपना अधिपत्य फैलाया है, किन्तु इन्द्रके साथ तुम्हारी जो शत्रुता है उससे तुम्हारे सुखमें विघ्न होता है ॥४॥ इसमें सन्देह नहीं इस समय यह वैर तुम दोनोंको ही अत्यन्त चिंताकी वृद्धि करता है इस कारण यह अत्यंत दुःखदायक है तुम भी सन्तुष्ट हो सोनेमें समर्थ नहीं होते और इन्द्रभी सुखसे नहीं सो सकते॥ ५ ॥ क्योंकि तुम दोनोंकेही मनमें वैरका भय सदा जागरित रहता है और देखो तुम्हारे युद्धको समाप्त हुए बहुत काल व्यतीत हुआ ॥ ६ ॥ किन्तु देवता असुर और मनुष्य इत्यादि प्रजावर्ग सबही पीड़ा पाते हैं,इस संसारमें सुखही जीवगणोंको ग्रहण

देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं सामयुक्तं रसात्मकम् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वृत्र वृत्र महाभाग सर्व लोकभयंकर ॥ ३ ॥ व्याप्तं त्वयैतत्सकलं ब्रह्मांड मखिलं किल ॥ शक्रेण तव वैरं यत्तत्तु सौख्यविघातकम् ॥ ४ युवयोर्दुःखदं कामं चिंतवृद्धिकरं परम् ॥ न त्वं स्वपिषि संतुष्टो न चापि मघवा तथा ॥ ५ ॥ सुखंस्वपिति चिंतार्तोद्वयोर्वैरिजभयम् ॥ युवयोर्युध्यतोः कालोऽप्यतीतस्तुमहा निह ॥ ६ ॥ पीडचंते च प्रजाः सर्वाः सदेवासु रमानवाः ॥ संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः ॥७॥ न सुखं कृतवैरस्य भवतीत विनिर्णयः ॥ संग्रामरसिकाः शूराःप्रशंसंति न पंडिताः ॥ ८ ॥ युद्धं शृङ्गारचतुरा इंद्रियार्थविघातकम् ॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैःशरैः ॥ ९ ॥ युद्धे विजयसंदेहो निश्चयं बाणताडनम् ॥ दैवाधीनमिदं विश्वं तथा जयपराजयौ ॥ १० ॥ दैवाधीनाविति ज्ञात्वा न योद्धव्यं कदाचन ॥ कालेऽथ भोजनं स्नानं शय्यायां शयनं तथा ॥ ११ ॥

करने योग्य और दुःख त्यागने योग्य है ॥ ७ ॥ यही सनातन मर्य्यादा जाननी चाहिये परंतु जो शत्रुता करता है उसको कभी सुख नहीं होता यह पंडित गणोंने भलीभांति निश्चय किया है संग्राम रसिक शूरगणही युद्धकी प्रशंसा करते हैं किंतु शांति परायण ॥ ८ ॥ शृङ्गारचतुर पंडितगण कभी इंद्रियसुखके विनाशक युद्धकी प्रशंसा नहीं करते बरन् वह कहते हैं कि शाणित (तीक्ष्ण पैने) शरादिकी बात दूर रहे सामान्य पुष्पादिसे भी युद्ध न करें ॥ ९ ॥ और देखो युद्धमें विजय प्राप्त करनेके विषयमें संदेह होता है किंतु बाणकी ताडना निश्चयही होती है हे दैत्यराज ! यह संपूर्ण विश्व दैवकेही आधीन है अतएव जयपराजयभी ॥ १० ॥ दैवके आधीन जानकर युद्ध करना कभी उचित नहीं है, उपयुक्तकालमें स्नान भोजन उत्तम शय्यापरशयन ॥ ११ ॥

दे. भा.
॥१८॥

और सेवानिरत पतिव्रता भार्या इन कई एकको संसार सुखका साधन जानना चाहिये और युद्धमें केवल बाण वृष्टि ॥ १२ ॥ तथा उग्रतर खड्गपात होता है अतएव इनमें क्या सुख है वरन् इससे शत्रु सुखही होता है यदि कहो मुनिगण कहते हैं कि, संग्राममें मरण होनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ वह केवल प्रलोभका प्रवर्तक वचन मात्र है वस्तुतः उससे कुछभी फल नहीं और यदि देह छेदन कर वेदनाको प्राप्त हो और शृगाल काकादिको अपने शरीरका मांस भोजन कराय ॥ १४ ॥ अन्तमें सुख प्राप्तही हो तो बुद्धिमानकी बात दूर रहे कौन मन्दबुद्धि उसकी इच्छा करता है. अतएव हे वृत्र ! इन्द्रके साथ तुम्हारी सदाकाल मित्रता हो ॥ १५ ॥ इससे तुम और इंद्र सदा सुख प्राप्त कर सकोगे. विशेषकर यदि तुम्हारी शत्रुता शांत होजागी तो हम सब तापसगण और

परिचर्यापरा भार्या संसारे सुखसाधनम् ॥ किं सुखं युध्यतः संख्ये बाण वृष्टिभयंकरे ॥१२॥ खड्गपातातिरौद्रे च तथाऽरातिसुखप्रदे ॥ संग्रामे मरणात्स्वर्गसुखप्राप्तिरिति स्फुटम् ॥ १३ ॥ प्रलोभनपरं वाक्यं नोद नार्थं निरर्थकम् ॥ छित्त्वा देहं व्यथां प्राप्य शृगालकरटा दिभिः ॥ १४ ॥ पश्चात्स्वर्गसुखावाप्तिं को वा वांछित मंदधीः ॥ सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा ॥ १५ ॥ अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रश्चापि निरंतरम् ॥ वयं च तापसाः सर्वे गंधर्वाश्च निजाश्रमे ॥ १६ ॥ सुखवासं गमिष्यामः शांते वैरेऽधुनैव वाम् ॥ संग्रामे युवयोर्धीर वर्तमाने दिवानिशम् ॥ १७ ॥ पीडचन्ते मुनयः सर्वे गंधर्वाः किन्नरा नराः ॥ सर्वेषां शांतिकामानां सख्यमिच्छामहे वयम् ॥ १८ ॥ मुनयस्त्वं च शक्रश्च प्राप्नुवंतुसुखं किल ॥ मध्यस्थाश्च वयं वृत्र युवयोः सख्यकारणे ॥१९॥ शपथं कारयित्वाऽत्र योजयामो मिथः प्रियम् ॥ शक्रस्तु शपथान्कृत्वा यथोक्तांश्च तवाग्रतः ॥ २० ॥ चित्तं ते प्रीतिसंयुक्तं करिष्यति तु सांप्रतम् ॥ सत्याधारा धरा नूनं सत्येन च दिवाकरः ॥ २१ ॥

गंधर्वगण अपने अपने आश्रममें ॥ १६ ॥ सुखपूर्वक वास करेंगे इसमें संदेह नहीं. हे वीर ! तुम्हारे संग्रामके सदाही विद्यमान रहनेसे ॥ १७ ॥ मुनिगण, गंधर्वगण, किन्नरगण और समस्त नरगण दिनरात पीड़ाको प्राप्त होते हैं. हम वनवासी मुनिगण संपूर्ण शांतकाम पुरुषोंके सुख निमित्तही तुम्हारे बंधुत्वकी इच्छा करते हैं ॥ १८ ॥ तुमको और इंद्रको तथा समस्त जीवगणोंको सुख प्राप्त हो यही हमारी एकांत वासना है. हे वृत्र ! तुम्हारे संमिलनमें हम मध्यस्थ हैं ॥ १९ ॥ हम इस विषयमें शपथ कराकर परस्परके प्रिय कार्यमें दोनोंको नियोजित करेंगे तुम जिस प्रकार कहोगे इस समय इंद्र तुम्हारे सामने इसी प्रकार शपथ कर ॥ २० ॥ तुम्हारे चित्तमें प्रीति उत्पन्न करेंगे तुम निश्चयही जानना कि सत्यके ऊपरही पृथ्वी प्रतिष्ठित है सत्यहीके कारण सूर्य उदय

भा. टी. ष.
अ० ६

होते हैं ॥ २१ ॥ सत्यहीके बलसे वायु सदा चलता है और सत्यहीके कारण अपार समुद्र अपनी वेलारूप मर्य्यादाको कभी अतिक्रम नहीं करता ॥ २२ ॥ अतएव सत्यहीसे इस समय तुम्हारा बंधुत्व यथा सुखसे मित्रतापाशसे बद्धही एकत्र शयन एकत्र क्रीडा एकत्र जलकेलि और एकत्र सुखसे बैठो ॥ २३ ॥ यह तुमको मित्रतापूर्वक करना चाहिये व्यासजीने कहा हे महाराज ! महामति वृत्रासुर महर्षिगणोंका वचन सुनकर कहने लगा ॥ २४ ॥ हे ऋषिगण ! आप ज्ञानादि सम्पन्न और तपस्वी हैं अतएव हमारे माननीय हैं आप मुनि हैं सुतरां कहीं भी मिथ्या नहीं कहते ॥ २५ ॥ आप सदाचार और शांत हैं अतएव छलका कारण नहीं जानते. वैरी, शठ,लम्पट, बुद्धिरहित कीर्तिशून्य निर्लज्ज इन सब ॥ २६ ॥ पुरुषोंके सहित विशेषकर शत्रुके सहित मित्रता स्थापन

तपत्ययं यथाकालं वायुः सत्येन वात्यथ ॥ उदन्वानपि मर्यादां सत्येनैव न मुंचति ॥ २२ ॥ तस्मात्सत्येन सख्यं वां भवत्वद्य यथासुखम् ॥ एकत्र शयनं क्रीडा जलकेलिः सुखासनम् ॥ २३ ॥ युवाभ्यां सर्वथा कार्यं कर्तव्यं सख्यमेत्य च ॥ व्यास उवाच ॥ महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महामतिः ॥ २४ ॥ अवश्यं भगवंतो मे माननीयास्तपस्विनः ॥ भवंतो मुनयः क्वापि न मिथ्यावादिनो भृशम् ॥२५॥ सदाचाराः सुशांताश्च न विदुश्छलकारणम् ॥ कृतवैरे शठे स्तब्धे कामुके च गतत्त्विषि ॥ २६ ॥ निर्लज्जे नैव कर्त्तव्यं सख्यं मतिमता सदा ॥ निर्लज्जोऽयं दुराचारो ब्रह्महा लंपटः शठः ॥ २७ ॥ न विश्वासस्तु कर्तव्यः सर्वथैवेदृशे जने ॥ भवंतोनिपुणाःसर्वे न द्रोहमतयः सदा ॥ २८ ॥ अनभिज्ञास्तु शांतत्वाच्चित्तानामतिवादिनाम् ॥ मुनय ऊचुः ॥ जंतुः कृतस्य भोक्ता वै शुभस्य त्वशुभस्य च ॥ २९ ॥ द्रोहं कृत्वा कुतः शांतिमाप्नुयान्नष्टचेतनः ॥ विश्वासघातकर्तारो नरकं यांति निश्चयम् ॥३०॥ दुःखं च समवाप्नोति नूनं विश्वासघातकः ॥ निष्कृतिर्ब्रह्महंतॄणां सुरापानां च निष्कृतिः ॥ ३१ ॥

करना बुद्धिमानगणोंका कर्त्तव्य नहीं है यह दुराचार इन्द्र निर्लज्ज शठ और लम्पट तथा ब्रह्मघातक है ॥ २७ ॥ अतएव इसके समान पुरुषोंके प्रति विश्वास करना उचित नहीं है, आप साधु और सर्व्व सद्गुण सम्पन्न हैं अतएव आपकी मति पराये अनिष्टकी चिंतामें नहीं दौड़ती ॥ २८ ॥ आपका चित्त शान्त होनेसे आप कपटाचारियोंका मन नहीं समझ सकते अतएव दुष्टजनोंका मध्यस्थ होना आपको उचित नहीं है. मुनिगणोंने कहा हे राजन् ! जन्तुगण निश्चयही अपने किये पाप पुण्यका फल भोग करते हैं ॥ २९ ॥ तब नष्ट बुद्धि द्रोहाचरण करके किस प्रकार शान्तिलाभ करनेमें समर्थ होंगे ? विश्वासघातकोंको निःसंदेह नरक प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ और सदाही दुःख भोगते हैं इसमें संदेह नहीं बरन् ब्रह्मघातक और सुरापान करनेवालोंकी निष्कृति है ॥ ३१ ॥

किन्तु विश्वासघातक और मित्रद्रोही गणोंकी कुछ भी निष्कृति नहीं है इनको अवश्य नरक भोगना होगा. अतएव हे सर्व्वज्ञ ! तुम्हारे मनमें जो निश्चित है वह नियम प्रकाश करके कहो ॥ ३२ ॥ उसीके द्वारा तुम दोनोंकी संधिस्थापन होगी. वृत्रासुरने कहा हे महाभाग मुनिगणो ! इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंके सहित सूखी वा गीली वस्तुसे अथवा दारुण काष्ठ पत्थर ॥ ३३ ॥ तथा वज्रद्वारा रात्रि अथवा दिनमें मुझको न मारे हे महाभागो ! यह मेरा नियम है ॥ ३४ ॥ मैं इसी नियमानुसार उनके सहित संधिस्थापन कर सकता हूं नहीं वो अन्य किसी प्रकार भी नहीं कर सकता. व्यासजीने कहा हे राजन् ! ऋषिगणोंने उसका यह वचन आदरपूर्व्वक स्वीकार किया ॥ ३५ ॥ और सुरराजको उसी स्थानमें बुलाकर संधिके नियम सुनाये इन्द्रने भी वहां मुनिगणोंके

विश्वासघातिनां नैव मित्रद्रोहकृतामपि॥ समयं ब्रूहि सर्वज्ञ यथा ते चेतसि ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ तेनैव समयेनाद्य संधिः स्यादुभयोः किल ॥ वृत्र उवाच ॥ न शुष्केण न चार्द्रेणनाश्मना न च दारुणा ॥ ३३ ॥ न वज्रेण महाभाग न दिवा निशि नैव च ॥ वध्यो भवेयं विप्रेंद्राः शक्रस्य सह दैवतैः ॥ ३४ ॥ एवं मे रोचते संधिः शक्रेण सह नान्यथा ॥ व्यास उवाच ॥ ऋषयस्तं तदा प्राहुर्बाढमित्येव चादृताः ॥ ३५ ॥ समयं श्रावयामासुस्तत्रानीयु सुरेश्वरम् ॥ इंद्रोऽपि शपथांस्तत्र चकार विगतज्वरः ॥ ३६ ॥ साक्षिणं पावकं कृत्वा मुनीनां सन्निधौ किल ॥ वृत्रस्तु वचनैस्तस्य विश्वासमगमत्तदा ॥ ३७ ॥ बभूव मित्रवच्छक्रे सहचर्यापरायणः ॥ कदाचिन्नंदने चोभौ कदाचिद्गंधमादने ॥ ३८ ॥ कदाचिदुदधेस्तीरे मोदमानौ विचेरतुः ॥ एवं कृते च संधाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत् ॥ ३९ ॥ शक्रोऽपि वधकामस्तु तदुपायानचिंतयत् ॥ रन्ध्रान्वेषी समुद्विग्नस्तदाऽऽसीन्मघवा भृशम् ॥ ४० ॥ एवं चिंतयतस्तस्य कालः समभिवर्तत ॥ विश्वासं परमं प्राप वृत्रः शक्रोऽतिदारुणे ॥ ४१ ॥ एवं कतिचिदब्दानि गतानि समये कृते ॥ वृत्रस्य मरणोपायान्मनसींद्रोऽप्यचिंतयत् ॥ ४२ ॥

सामने अग्निको साक्षीकर शपथ की और चिंतारूपी विषम ज्वरसे युक्त हुए वृत्रासुर तब इन्द्रके वचनमें विश्वास कर ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उनके सहित मित्रता स्थापन पूर्व्वक एकत्र विहार करने लगा वह दोनों मिलित हो कभीगन्धमादनमें ॥ ३८ ॥ कभी समुद्रके तटपर आमोद अनुभवकर विचरण करने लगे. दोनों इस प्रकार संधिबन्धन पूर्वक मिलन होनेपर असुरराज वृत्रासुर अत्यन्त आनंदित हुआ ॥ ३९ ॥ किंतु देवराज इन्द्र उनको मारनेकी इच्छासे उस विषयके सम्पूर्ण उपायकी चिंता करने लगे. इन्द्रने अत्यन्त उद्विग्न चित्तसे उनका छिद्र ढूंढते ढूंढते ॥४०॥ कुछ काल व्यतीत किया इस प्रकार संधि स्थापन करनेपर कई एक वर्ष व्यतीत हुए तब सरलचित्त वृत्रासुर अतिदारुण इन्द्रके प्रति अत्यन्त विश्वास करने लगा किंतु इन्द्र उसके मारनेका उपाय

विचारने लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ एक दिन विश्वकर्म्माने अपनी संतान वृत्रासुरको पाकशासन इन्द्रके प्रति विश्वस्त चित्त जानकर कहा हे वत्स ! वृत्र ! तुम मेरा हितकर वचन सुनो ॥ ४३ ॥ देखो जिसके साथ एकवार शत्रुता होगई उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये इन्द्र तुम्हारा परम शत्रु है वह सदा तुम्हारे अनिष्टकी चिंता करता है अतएव उसका अब विश्वास न करना ॥ ४४ ॥ वह इन्द्र सर्वदाही लोभनिरत द्वेषरत परपीडा देनेमें उत्साहयुक्त परदार लम्पट पापबुद्धि प्रतारक ॥ ४५ ॥ छिद्रका ढूंढनेवाला हिंसक मायावी और मदगर्वित है. हे वत्स ! अधिक और क्या कहूं उस पापिष्ठने लीलाक्रमसेही पापभय त्याग पूर्वक माताके उदरमें प्रवेशकर गर्भछेदन किया ॥ ४६ ॥ उसके गर्भस्थित रोते हुए बालकके प्रथम सातभाग इसके उपरांत उन सातभागोंके प्रत्येकको फिर सात भाग इस प्रकार (उनचास) भागमें छेदन किया अतएव हे पुत्र ! उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ ४७ ॥ जो सर्वदाही पापकार्यमें

त्वष्टैकदा सुतं प्राह विश्वस्तं पाकशासने ॥ पुत्र वृत्र महाभाग शृणु मे वचनं हितम् ॥ ४३ ॥ न विश्वास्तु कर्तव्यः कृतवैरे कथंचन ॥ मघवा कृतवैरस्ते सदाऽसूयापरः परैः ॥४४॥ लोभान्मत्तो द्वेषरतः परदुःखोत्सवान्वितः ॥ परदारलंपटः स पापबुद्धि प्रतारकः ॥४५॥ रन्ध्रान्वेषी द्रोहपरो मायावी मदगर्वित ॥ यः प्रविश्योदरे मातुर्गर्भच्छेदं चकार ह ॥ ४६ ॥ सप्तकृत्वः सप्तकृत्वः क्रंदमानमनातुरः ॥ तस्मात्पुत्र न कर्तव्यो विश्वासस्तु कथंचनः ॥ ४७ ॥ कृतपापस्य का लज्जा पुनः पुत्र प्रकुर्वतः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्रबोधितः पित्रा वचनैर्हेतुसंयुतैः ॥ ४८ ॥ न बुबोध तदा वृत्र आसन्नमरणः किल ॥ स कदाचित्समुद्रान्ते तमपश्यन्महासुरम् ॥ ४९ ॥ संध्याकाल उपावृते मुहूर्त्तेऽतीव दारुणे ॥ ततः संचिंत्य मघवा वरदानंः महात्मनाम् ॥ ५० ॥ संध्येयं वर्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसो न च ॥ हंतव्योऽयं मया चाद्य बलेनैव न संशयः ॥ ५१ ॥ एकाकी विजने चात्र संप्राप्तः समयोचितः ॥ एवं विचार्य मनसा सस्मार हरिमव्ययम् ॥ ५२ ॥

प्रवृत्त है उसको पुनर्वार पापकार्य्य करनेमें क्या लज्जा है. व्यासजीने कहा हे राजन् ! वृत्रासुरका मरणकाल उपस्थित हुआ था इससे वह पिताके हेतुयुक्त वचनसे प्रबोधित होनेपर भी उसको शुभकर नहीं समझसका अनन्तर एकदिन समुद्रके तटपर असुरको देखा ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ संध्याके समय अति दारुण मुहूर्त उपस्थित होनेपर इन्द्रने उस महासुर वृत्रासुरको देख ब्रह्माके वरदान विषयकी चिंता करी ॥ ५० ॥ कि, इस समय यह भयंकर संध्या उपस्थित हुई है इस समय दिन भी नहीं रात्रि भी नहीं और यह दैत्य भी अकेला निर्ज्जनस्थानमें यथा समय उपस्थित हुआ है अतएव इस समय बलपूर्व्वक ही इसको मारना चाहिये इसमें अब संशय नहीं. इन्द्रने इस प्रकार मनमें विचारकर अव्ययात्मा हरिको स्मरण किया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

भगवान् पुरुषोत्तम हरि भी उस स्थानमें अदृश्यभावसे आय वज्रमें प्रविष्ट हुए ॥ ५३ ॥ तब इंद्र शीघ्र ही वृत्रासुरको मारनेके निमित्त स्थिर चित्त हुआ किंतु चिंता करने लगा कि ॥ ५४ ॥ देव दानवगणोंको सर्व्वथा अजेय इस शत्रुको रणमें किस प्रकार मारूं और यदि इस महाबलवान् शत्रुको छलकर इस समय न मारूं ॥ ५५ ॥ तो इस दुरन्त शत्रुके वर्त्तमान रहनेपर हमारा कुछ भी मंगल नहीं. इंद्रने चिंता करते करते समुद्रके जलमें पर्व्वतके समान फेन देखा ॥ ५६ ॥ उस समय उसको सूखा भी नहीं गीला भी नहीं और शस्त्र भी नहीं यह विचारकर उसको लीलापूर्वक ही ग्रहण किया ॥ ५७ ॥ और तत्काल परम भक्ति सहित पराशक्ति भुवनेश्वरीको स्मरण किया भगवतीने स्मरण मात्रसे ही अपना अंश फेनमें स्थापन किया ॥ ५८ ॥ इधर

तत्राऽजगामभगवानदृश्यः पुरुषोत्तमः ॥ वज्रमध्ये प्रविश्यासौ संस्थितो भगवान्हरिः ॥ ५३ ॥ इन्द्रो बुद्धिं चकाराऽऽशु तदा वृत्रवधं प्रति ॥ इति संचिन्त्य मनसा कथं हन्यां रिपुं रणे ॥ ५४ ॥ अजेयं सर्वथा सर्वदेवैश्च दानवैस्तथा ॥ यदि वृत्रं न हन्म्यद्य वंचयित्वा महाबलम् ॥ ५५ ॥ न श्रेयो मम नूनं स्यात्सर्वथा रिपुरक्षणात् ॥ अपां फेनं तदाऽपश्यत्समुद्रे सर्वतोपमम् ॥ ५६ ॥ नायं शुष्को न चार्दोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा ॥ अपा फेनं तदा शक्रो जग्राह किल लीलया ॥ ५७ ॥ परां शक्तिं च सस्मार भक्त्या परमया युतः ॥ स्मृतमात्रा तदा देवी स्वांशं फेनं न्यधापयत् ॥ ५८ ॥ वज्रं तदावृतं तत्र चकार हरिसंयुतम् ॥ फेनावृतंपविं तत्र शक्रश्चिक्षेप तं प्रति ॥ ५९ ॥ सहसा निपपाताशु वज्राहत इवाचलः ॥ वासवस्तु प्रहृष्टात्मा बभूव निहते तदा ॥ ६० ॥ ऋषयश्च महेंद्रं तमस्तुवन्विविधैः स्तवैः ॥ हतशत्रुः प्रहृष्टात्मा वासवः सह दैवतैः ॥ ६१ ॥ देवीं संपूजयामास यत्प्रसादाद्धतो रिपुः ॥ प्रसादयामासतदा स्तोत्रैर्नानाविधैरपि ॥ ६२ ॥ देवोद्याने पराशक्तेः प्रासादमकरोद्धरिः ॥ पद्मरागमयीं मूर्तिं स्थापयामास वासवः ॥ ६३ ॥

नारायणाधिष्ठित वज्र भी उस फेन पिण्डसे ढक गया तब इंद्रने वह फेनसे ढका हुआ वज्र वृत्रासुरको मारा ॥ ५९ ॥ तब तत्काल वृत्रासुर उस वज्रसे आहत होकर अचलके समान गिर पड़ा वृत्रासुरके निहत होनेपर इंद्र अत्यन्त प्रसन्न चित्त हुए ॥ ६० ॥ ऋषिगण भी अनेक स्तवद्वारा उनकी स्तुति करने लगे, देवतोंसहित इंद्र प्रसन्न हुए ॥ ६१ ॥ अनन्तर जिनके अनुग्रहसे शत्रु मारा गया देवराज इंद्रने देवतागणोंके सहित उन्हीं देवीकी पूजा करी और अनेक प्रकारके स्तवसे उनको प्रसन्न किया ॥ ६२ ॥ फिर नंदनवनमें परम शक्तिकी पद्मरागमयी मूर्ति इन्द्रने स्थापन करी ॥ ६३ ॥

हे महाराज ! तबसे ही सब देवतालोग तीनों संध्याओंमें देवीकी पूजा करने लगे और तबसे ही श्रीदेवी देवतागणोंकी कुलदेवता हुई ॥ ६४ ॥ उसी समय इंद्रने तीनों भुवनोंमें श्रेष्ठ विष्णुकी पूजा करी अनंतर महावीर्य्य भयंकर वृत्रासुरके मारे जानेपर ॥ ६५ ॥ मंद मंद शुभकर पवन चलने लगा. देवगण, गंधर्व, राक्षस और किन्नरगण महानंदमें विचरण करने लगे ॥ ६६ ॥ हे महाराज ! वृत्रासुर भगवतीकी मायासे मोहित हुआ था और उसी पराशक्तिके फेनमें प्रवेशकरनसे इन्द्र उस असुरको सहसा मारनेमें समर्थ हुए थे ॥ ६७ ॥ और इसी कारणसे देवी भुवनेश्वरी "वृत्रनिहन्त्री" नामसे त्रिलोकमें विख्यात हुई किंतु इंद्रने उसको बाह्यदृष्ट फेनद्वारा विनाश किया था इस कारण इन्द्रसे मारागया है यही लोक कहते हैं ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे

त्रिकालं महतीं पूजां चक्रुः सर्वेऽपि निर्जराः ॥ तदाप्रभृति देवानां श्रीदेवी कुलदैवतम् ॥६४॥ विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास वासवः ॥ ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयंकरे ॥ ६५ ॥ प्रववौ च शिवो वायुर्जह्षुर्दैवतास्तथा ॥ हते तस्मिन्सगंधर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ ६६ ॥ इत्थं वृत्रः पराशक्ति प्रवेशयुतफेनतः ॥ तया कृतविमोहाच्च शक्रेण सहसा हतः ॥६७॥ ततो वृत्रनिहं त्रीति देवी लोकेषु गीयते ॥ शक्रेण निहतत्वाच्च शक्रेण हत उच्यते ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभाग वते महापुराणे षष्ठस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ अथ तं पतितं दृष्ट्वा विष्णुर्विष्णुपुरीं ययौ ॥ मनसा शंकमा नस्तु तस्य हत्याकृतं भयम् ॥ १ ॥ इंद्रोऽपि भयसंत्रस्तो ययाविंद्रपुरीं ततः ॥ मुनयो भयसंविग्ना ह्यभवन्निहते रिपौ ॥२॥ किमस्माभिः कृतं पापं यदसौ वंचितः किलः ॥ मुनिशब्दो वृथा जातः सुरेशस्य च संगतम् ॥३॥ अस्माकं वचनाद् वृत्रो विश्वासमगमत्किल ॥ विश्वासघातिनः संगाद्वयं विश्वासघातकाः ॥४॥ धिगियं ममता पापमूलमेवमनर्थकृत् ॥ यदस्माभिश्छलं कृत्वा शपथैर्वंचितोऽसुरः ॥ ५ ॥

भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! अनन्तर देवदेव विष्णुने वृत्रासुरको पडा हुआ देख मनहीमनमें उसके हत्याजनित भयकी शंका करते करते वैकुण्ठपुरमें गमन किया ॥ १ ॥ इधर इन्द्रभी परमशत्रु वृत्रासुरके मारेजानेपर पापके भयसे डरकर अमरपुरको चलगये उससमय मुनिगणभी अत्यन्त उद्विग्न हो चिन्ता करनेलगे कि ॥ २ ॥ हमनेही वृत्रासुरको छलकर क्या पाप कर्म किया है हाय ! देवराज इन्द्रके संग दोषसे आज हमारा "मुनि" यह नाम वृथा हुआ ॥ ३ ॥ वृत्रासुरने हमारे बचनसेही इन्द्रका विश्वास किया था अतएव विश्वासघातकके संग दोषसे आज हमभी विश्वासघातक हुए ॥ ४ ॥ ममताही सम्पूर्ण अनर्थोंका मूल है अतएव उस ममताको धिक्कार है. क्योंकि ममताकी पाशमें बद्ध होकरही हमने छलपूर्वक शपथसे वृत्रासुरको

छला है ॥ ५ ॥ स्वयं पापकार्य्य न करकेभी जो पाप कार्य्य करनेकी दूसरेके संग परामर्श करें वा उस विषयमें बुद्धिप्रदान करें अथवा उस कार्य्यके करनेमें प्रेरणकरें वा जिस किसीभी प्रकारसे उनके पक्षका आश्रय करें वहभी निःसन्देह पापके भागी होते हैं ॥ ६ ॥ विष्णु सत्त्वप्रधान होनेपरभी उन्होंने वज्रमें प्रवेशपूर्व्वक इंन्द्रकी सहायताकर वृत्रासुरका विनाशकिया है तो वहभी पापके भागी हुए हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ जब भगवान् विष्णुनेभी इन्द्रके सहित सम्मिलित होकर इस प्रकार पापाचरण किया तब निःसन्देह बोध होता है कि, मनुष्यके स्वार्थमें रत होनेपर पापसे फिर भय प्राप्त नहीं होता ॥ ८ ॥ बोध होता है कि, इससमय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारपदार्थोंमें त्रिभुवनदुर्लभ प्रथम और चतुर्थ धर्म तथा मोक्ष एकवारही विनष्ट हुए हैं ॥ ९ ॥ और अर्थ तथा कामही श्रेष्ठ कहकर प्रिय हुआहै तो ''धर्म्मधर्म्म'' यह वचन केवल वचनमात्र है तो इस समय महत् पंडित गणोंकोभी दम्भका कारण हुआ है वास्तवमें

मंत्रकृद्बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम् ॥ पापभाक्स भवेन्नूनं पक्षकर्ता तथैव च ॥ ६ ॥ विष्णुनाऽपि कृतं पापं यत्साहाय्यमवाप्त
वान् ॥ वज्रं प्रविश्य येनासौ पातितः सत्त्वमूर्तिना ॥ ७ ॥ नूनं स्वार्थपरः प्राणी न पापात्त्रासमश्नुते ॥ हरिणा हरिसंगेन सर्वथा दुष्कृतं
कृतम् ॥ ८ ॥ द्वावेव स्त पदार्थानां द्वावेव निधनं गतौ ॥ प्रथमश्च तुरीयश्च यो त्रिलोक्यां तु दुर्लभो ॥ ९ ॥ अर्थकामौ प्रशस्तौ द्वौ
सर्वेषां संमतौ प्रियौ ॥ धर्मधर्मेति वाग्वादो दंभोऽयं महतामपि ॥१०॥ मुनयोऽपि मनस्तापमेवं कृत्वा पुनः पुनः ॥ जग्मु स्वानाश्रमानेव
विमनस्का हतोद्यमाः ॥ ११ ॥ त्वष्टा तु निहतं श्रुत्वा पुत्रमिंद्रेण भारत ॥ रुरोद दुःखसंतप्तो निर्वेदमगमत्पुनः ॥ १२ ॥ यत्रासौ पतित
स्तत्र गत्वा वीक्ष्य तथागतम् ॥ संस्कारं कारयामास विधिवत्पारलौकिकम् ॥१३॥ स्नात्वाऽस्य सलिलं दत्त्वा कृत्वा चैवौर्ध्वदेहिकम् ॥
शशापेंद्रं स शोकार्तः पापिष्ठं मित्रघातकम् ॥ १४ ॥

निष्ठापरायण होकर भक्तिभावसे कोई धर्म्मका अनुष्ठान नहीं करता ॥ १० ॥ हे राजन् ! मुनिगण वारंवार इस प्रकार मनस्तापकर विमन हुए और हतउद्योग हो अपने अपने आश्रममें चलेगये ॥ ११ ॥ इधर विश्वकर्म्मा इन्द्रसे अपना पुत्र मरा हुआ सुनकर शोकसन्तप्त हृदयसे रोदन करने लगे और मनमें अत्यन्त दुःखको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ अनन्तर वृत्रासुर जिस स्थानमें पड़ा था उन्होंने वहां जाय उसको इस अवस्था में देख अत्यन्त दुःखित हृदयसे उसका दाहादिसंस्कार और पारलौकिक क्रिया यथाविधिसे करी ॥ १३ ॥ और स्नानके अनन्तर इसका तर्पण तथा और्ध्वदेहिक क्रिया कर अत्यन्त शोकार्त्त हृदयसे मित्रघाती पापिष्ठ इन्द्रको शाप दिया कि ॥ १४ ॥

इंद्रने जिसप्रकार मेरे पुत्रको शपथ द्वारा लुभायकर निहत किया है इस प्रकार वहभी विधाताके दिये हुए अत्यन्तभारी दुःखको प्राप्तहो ॥ १५ ॥ हे राजन् पुत्रशोकसे सन्तप्त विश्व कर्म्मा सुरेश्वरको इसप्रकार शाप दे मेरुपर्वतके शिखरका आश्रयकर अत्यन्त कठिन तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ १६ ॥ जनमेजयने कहा हे पितामह! सुरराज इन्द्रने त्वष्ट्राके पुत्र वृत्रासुरको मारकर सुखपाया था वा दुःख? पहले वह आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥१७॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! आप क्या पूँछते हैं ? आपका संदेह किस प्रकार है आप निःसंदेह जानिये कि, जीवगणोंको अपने किये हुए शुभाशुभकर्म्मोंका फल अवश्यही भोगना होगा ॥ १८ ॥ बलवान् हो अथवा दुर्बल हो और देवता असुर अथवा मनुष्यादि जो कोई हो सबकोही अपने कियेहुए पापपुण्यका अल्प

यथा मे निहतः पुत्रः प्रलोभ्य शपथैर्भृशम् ॥ तथेंद्रोऽपि महद्दुःखं प्राप्नोतु विधिनिर्मितम् ॥ १५ ॥ इति शप्त्वा सुरेशानं त्वष्टा तापसमन्वितः ॥ मेरोः शिखरमास्थाय तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ १६ ॥ जनमेजय उवाच ॥ हत्वा त्वाष्ट्रं सुरेशोऽथ कामवस्थामवाप्तवान् ॥ सुखं वा दुःखमेवाग्रे तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ किं पृच्छसि महाभाग संदेहः कीदृशस्तव ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ १८ ॥ बलिष्ठैर्दुर्बलैर्वाऽपि स्वल्पं वा बहु वा कृतम् ॥ सर्वथैव हि भोक्तव्यं सदेवासुरमानुषैः ॥ १९ ॥ शक्रायेत्थं मतिर्दत्ता हरिणा वृत्रघातिने ॥ प्रविष्टोऽथ पविं विष्णुः सहायः प्रत्यपद्यत ॥ २० ॥ न चापदि सहायोऽभूद्वासुदेवः कथंचन ॥ समये स्वजनः सर्वः संसारेऽस्मिन्नराधिप ॥ २१ ॥ दैवे विमुखतां प्राप्ते न कोऽप्यस्ति सहायवान् ॥ पिता माता तथा भार्या भ्राता वाऽथ सहोदरः ॥ २२ ॥ सेवको वाऽपि मित्रं वा पुत्रश्चैव तथौरसः ॥ प्रतिकूले गते दैवे न कोऽप्येति सहायताम् ॥ २३ ॥ भोक्ता पापस्य पुण्यस्य कर्ता भवति सर्वथा ॥ वृत्रं हत्वा गताः सर्वे निस्तेजस्कःशचीपतिः ॥ २४ ॥

वा अधिक होनेपर भी भलीभाँति उसका फलभोगना होगा ॥ १९ ॥ इंद्रने जब वृत्रासुरको मारनेकी चेष्टा की थी विष्णुने तभी उनको बुद्धिदानकर और वज्रमें प्रविष्ट हो उनकी सहायता की थी ॥ २० ॥ किंतु विपदके समयमें विष्णुने किसीप्रकार भी इंद्रकी सहायता नहीं की अतएव हे नरेंद्र! इस संसारमें सम्पूर्ण समयपरही स्वजन होते हैं ॥ २१ ॥ किंतु दैवके प्रतिकूल होनेपर कोई भी फिर सहायता करनेवाला दिखाई नहीं देता अधिक क्या दैवके प्रतिकूल होनेपर पिता माता भार्य्या वा सहोदर ॥ २२ ॥ सेवक मित्र अथवा और सजातपुत्र कोई भी दैवके प्रतिकूल होनेपर सहायता लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ २३ ॥ वास्तववमें जो पाप वा पुण्य करता है वही उसका फल भोग करता है ॥ वृत्रासुरके मारेजानेपर फिर सब अपने अपने स्थानको चलेगये किन्तु

ब्रह्महत्याके पापप्रभावसे शचीपति इंद्र अत्यंत तेजहीन होगये ॥ २४ ॥ तब सब देवता ब्रह्मघातक कहकर उनकी निंदा करने लगे. वह और भी कहने लगे कि, कौन पुरुष शपथ पूर्व्वक सत्य कहकर ॥ २५ ॥ विश्वस्त मित्रभावको प्राप्त हुए मुनिवरको मारनेकी इच्छा करता है ? हे महाराज ! उस समय देवता गणोंकी गोष्ठीमें सुरोद्यानमें, गंधर्वगणोंके सम्मिलनमें ॥ २६ ॥ अधिक क्या सब स्थानोंमें ही इस बातकी चर्चा होने लगी कि, इन्द्रने विश्वास किये हुए वृत्रासुरको मुनिगणोंसे धोखा दिलाय छलपूर्वक स्वयं निहतकर क्या दुष्कर कार्य किया है उन्होंने वेदका सनातन प्रमाण छोड़कर लीलापूर्वक ही वृत्रासुरको निहतकर सौगत अर्थात् बौद्धमतका आश्रय किया है ॥ २७ ॥ २८ ॥ जिस प्रकार वृत्रासुरको निहत किया है इसी प्रकार वचन देकर कौन पुरुष अन्यथा

जिघांसति सविश्वस्तं मुनिं
शेपुस्तं त्रिदशाः सर्वे ब्रह्महेत्यब्रुवञ्छनैः ॥ को नाम शपथान् कृत्वा सत्यं दत्त्वा वचः पुनः ॥ २५ ॥
मित्रत्वमागतम् ॥ देवगोष्ठ्यां सुरोद्याने गंधर्वाणां समागमे ॥ २६ ॥ सर्वत्रैव कथा तस्य विस्तारमगमत्किल ॥ किं कृतं दुष्कृतं कर्म
शक्रेणाद्य जिघांसता ॥ २७ ॥ वृत्रं छलेन विश्वस्तं मुनिभिश्च प्रतारितम् ॥ वेदप्रमाणमुत्सृज्य स्वीकृतं सौगतं गतम् ॥ २८ ॥ यदयं
निहतः शत्रुर्वंचयित्वाऽतिसाहसात् ॥ को नाम वचनं दत्त्वा विपरीतमथाचरेत् ॥२९॥ विना शक्रं हरिं वाऽपि यथाऽयं विनिपातितः ॥
एवंविधाः कथाश्चान्याः समाजेष्वभवन्भृशम् ॥ ३० ॥ शुश्रावेंद्रोऽपि विविधाः स्वकीर्तेर्हानिकारकाः ॥ यस्य कीर्तिर्हता लोके धिक्तस्यैव
कुजीवितम् ॥ ३१ ॥ यं दृष्ट्वा पथि गच्छंतं शत्रु स्मेरमुखो भवेत् ॥ इंद्रद्युम्नोऽपि राजर्षिः पतितः कीर्तिसंक्षयात् ॥ ३२ ॥ स्वर्गाद
कृतपपोऽसौ पापकृत्किं न पात्यते ॥ स्वल्पेऽपराधेऽपि नृपो ययातिः पतितःकिल ॥ ३३ ॥ नृपः कर्कटतां प्राप्तो युगानष्टादशैव तु ॥
भृगुपत्नीशिरश्छेदाद्भगवान् हरिरच्युतः ॥ ३४ ॥

करेगा ॥ २९ ॥ विष्णु और इंद्रके सिवाय और कौन उसका विपरीताचरण कर सकता है ? उस काल इस प्रकार अनेक बातें अनेक समाजोंमें अधिकतासे होने लगीं ॥ ३० ॥ इधर इंद्रने भी अपनी कीर्तिमें हानिकर यह सब बातें सुनी. हे महाराज ! लोकमें जिसकी कीर्ति नष्ट हो गई उसके निंदित जीवनको धिक्कार है ॥ ३१ ॥ हाय ! विनष्टकीर्ति मनुष्यको मार्गमें जाता हुआ देखकर शत्रु हँसते हैं जब राजर्षि इन्द्रद्युम्न निष्पाप होनेपर भी कीर्त्तिक्षय होनेके कारण स्वर्गसे गिरे थे ॥ ३२ ॥ तब पापाचारी गण किस प्रकर न गिरेंगे ? नरपति ययाति अत्यन्त अल्प अपराधमें भी स्वर्गसे गिरकर ॥ ३३ ॥ अठारह युग पर्य्यन्त कर्कटयोनिको प्राप्त हुए थे अधिक क्या भगवान् स्वयं हरिने भी भृगुकी स्त्रीका शिरश्छेदन करनेपर ॥ ३४ ॥

ब्रह्मशापसे वराहमकरादि योनिमें जन्म ग्रहण किया था उन्होंने सर्वव्यापी होनेपर भी क्षुद्र वामनरूप धारण कर याचना करनेके लिये बलिके गृहमें गमन किया था ॥ ३५ ॥ अतएव पापकारी पुरुषगण इनकी अपेक्षा अब क्या अत्यंत दुःखको प्राप्त न होंगे? हे भरतभूषण ! रामचन्द्र भी भृगुके शापसे वनवासमें सीताके विरहसे ॥ ३६ ॥ अत्यंत भारी दुःखको प्राप्त हुए थे इसी प्रकार इन्द्रभी ब्रह्महत्या जनित पापसे ऐसे भीत हुए थे ॥ ॥ ३७ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त होकर भी घरमें उनको संतोष न हुआ तब इन्द्राणी उनको हीनतेज युक्त देखकर बोली ॥ ३८ ॥ जो कि वारंवार श्वास लेते भयसे व्याकुल नष्टसंज्ञा और चेतनाहीन थे उनसे कहा हे स्वामी! अब क्यों भयभीत हो? तुम्हारा दारुण शत्रु मरगया है ॥ ३९ ॥ हे शत्रुनाशी स्वामिन्! कहिये अब आप को क्या

ब्रह्मशापात्पशोर्योनौ संजातो मकरादिषु ॥ विष्णुश्च वामनो भूत्वा याचनार्थं बलेर्गृहे ॥ ३५ ॥ गतः किमपरं दुःखं प्राप्नोति दुष्कृतीनरः ॥ रामोऽपि वनवासेषु सीताविरहजं बहु ॥ ३६ ॥ दुःखं च प्राप्तवान्घोरं भृगुशापेन भारत ॥ तथेन्द्रोऽपि ब्रह्महत्याकृतं प्राप्य महद्भयम् ॥ ३७ ॥ न स्वास्थ्यं प्राप गेहेऽसौ सर्व सिद्धिसमन्विते ॥ पौलोमी तं सभाहीनं दृष्ट्वा प्रोवाच वासवम् ॥ ३८ ॥ निश्वसंतं भयत्रस्तं नष्टसंज्ञं विचेतनम् ॥ किं प्रभोऽद्य भयार्तोऽसि मृतस्ते दारुणो रिपुः ॥ ३९ ॥ का चिंता वर्तते कांत तव शत्रुनिषूदन ॥ कस्माच्छोचसि लोकेश निः श्वसन्प्राकृतो यथा ॥ ४० ॥ नान्योऽस्ति वलवाञ्छत्रुर्यें चिंतापरो भवान् ॥ इन्द्र उवाच ॥ नारातिर्बलवान्मेऽस्ति न शांतिर्न सुखं तथा ॥ ४१ ॥ ब्रह्महत्याभयाद्राज्ञि बिभेमि सततं गृहे ॥ नन्दनं न सुखाकारं नामृतं न गृहं वनम् ॥ ४२ ॥ गंधर्वाणां तथा गेयं नृत्यमप्सरसां पुनः ॥ न त्वं सुखकरा नारी नाना च सुरयोषितः ॥ ४३ ॥ न तथा कामधेनुश्च देववृक्षः सुखप्रदः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि क्व शर्म मम जायते ॥ ४४ ॥

चिंता है? हे लोकेश! आप साधारण पुरुषोंके समान वारंवार श्वास लेते क्या शोच रहे हैं? ॥ ४० ॥ अब तो कोई आपका ऐसा बलवान् शत्रु नहीं है जिसकी आपको चिंता हो, तब इन्द्रने कहा हे प्रिये! न तो मेरा कोई बलवान्शत्रु है पर तो भी मुझे शांति और सुख नहीं है ॥ ४१ ॥ हे महारानी! मैं घरमें स्थित हुआ भी ब्रह्महत्याके भयसे निरंतर भयभीत हूं. हे देवि! नंदनवन अलकाभवन अमृतवन ॥ ४२ ॥ गंधर्वगणोंका मनोरम सङ्गीत, और अप्सरागणोंका मनोहर नृत्य यह सम्पूर्ण ही मुझको सुखदायक बोध नहीं होते अधिक क्या तुम्हारी समान त्रिभुवन सुन्दरी नारी और अन्यान्य सुरसुन्दरीगण ॥ ४३ ॥ तथा कामधेनु, मंदार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिनन्दन इत्यादि देवतागणोंके वृक्षभी मुझको सुखदायक बोध नहीं होते, इस

समय मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? कहां जानेसे सुख हो ? ॥ ४४ ॥ हे प्रिये ! इस प्रकार चिंतातुर होकर ही मैं अपने चित्तमें सुखलाभ नहीं कर सकता व्यासजीने कहा हे राजन् ! मूढ़ इन्द्र परमकातर हुई प्रिया शचीसे इस प्रकार वचन कह कर ॥ ४५ ॥ गृहसे निकले और परम मनोहर मान सरोवरमें गये देवराज इन्द्र वहां भय और शोकसे क्षीणदेह हो पद्मनालमें प्रविष्ट होकर रहे ॥ ४६ ॥ किंतु वह घोरतर पापमें अभिभूत हुए थे इसी कारण उस समय उनको कोई नहीं पहँचान सका वह निश्चल सर्पके समान ॥ ४७ ॥ आहार विहारशील चिंतार्त असहाय और विकलेंद्रिय होकर उसी जलमें गुप्त रूपसे वास करने लगे, अनंतर देवराज इन्द्रके ब्रह्महत्या भयसे पीड़ित हो प्रस्थान करनेपर ॥ ४८ ॥ देवतागण अत्यंत चिंतायुक्त हुए क्योंकि उस समय सर्वत्र ही

इति चिंतापरः कान्ते न लभे सुखमात्मनि ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं शक्रः प्रियां परमकातराम् ॥ ४५ ॥ निर्जगाम गृहान्मंदो मानसं सर उत्तमम् ॥ पद्मनाले प्रविष्टोऽसौ भयार्तः शोककर्शितः ॥४६॥ प्राज्ञायत देवेंद्रस्त्वभिभूतश्च कल्मषैः ॥ प्रतिच्छन्नो वसत्यप्सु चेष्टामान इवोरगः ॥ ४७ ॥ असहायस्तु राषाडैश्चिन्तार्तो विकलेन्द्रियः ॥ ततः प्रनष्टे देवेंद्रे ब्रह्महत्याभयार्दिते ॥ ४८ ॥ सुराश्चितातुरा श्चासन्नुत्पाताश्चा भवन्नथ ॥ ऋषयः सिद्धगं धर्वा भयार्ताश्चाभवन्भृशम् ॥ ४९ ॥ आराजकं जगत्सर्वमधिभूतमुपद्रवैः ॥ अवर्षणं तदा जातं पृथिवी क्षीणवैभवा ॥ ५० ॥ विच्छिन्नस्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि वै ॥ एवं त्वराजके जाते देवता मुनयस्तथा ॥५१॥ विचार्य नहुषं चक्रुः शक्रं सर्वे दिवौकसः ॥ संप्राप्य नहुषो राजा धर्मिष्ठोऽपि रजोबलात् ॥ ५२ ॥ बभूव विषयासक्तः पंचबाण शराहतः ॥ अप्सरोभिर्वृतः क्रीडन्देवोद्यानेषु भारत ॥ ५३ ॥

अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे ऋषिगण सिद्ध और गंधर्वगण अत्यंत भयार्त हुए ॥ ४९ ॥ क्योंकि उसकाल सम्पूर्ण जगत् अराजक होनेपर अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे अभिभूत होने लगा तब अनावृष्टिके कारण पृथ्वीमें अल्पधान्य ॥ ५० ॥ नदियोंमें अत्यंत अल्पजल और सम्पूर्ण सरोवर जलहीन हुए इस प्रकार अराजकता उपस्थित होनेपर स्वर्गवासी समस्त देवतागण और ऋषिगणोंने ॥ ५१ ॥ विचार करके नहुषराजाको इंद्रके पदमें अभिषिक्त किया हे महाराज ! नहुष धार्मिक होनेपरभी रजोगुणके प्रभावसे ॥ ५२ ॥ कामबाणसे हत होकर अत्यंत विषयासक्त हुए उस समय वह नरपति अप्सरागणोंके सहित हो देवोद्यानमें क्रीड़ा करने लगे ॥ ५३ ॥

एक दिन उन्होंने इन्द्रपत्नि शचीकी गुण माधुरी श्रवण करके उसको प्राप्त करनेकी अभिलाषा की अनन्तर उन्होंने ऋषिगणोंसे कहा कि इन्द्राणी क्यों नही आती ? ॥ ५४ ॥ आपने और संपूर्ण देवताओंने मिलित होकर मुझको इन्द्रत्वपदमें वरण किया है, किन्तु अबतक इंद्राणी मेरे निकट क्यों नहीं आई ? हे देवताओ ! बहुत शीघ्रशचीको सेवाके निमित्त मेरे समीप लाओ ॥ ५५ ॥ यदि आपको मेरा प्रिय करना है वो यह कार्य करो. मैं इस समय इंद्र हूं इससे देवतागण और संपूर्ण लोकोंका ईश्वर हुआ हूँ ॥ ५६ ॥ अतएव अब शीघ्रही इंद्राणी मेरे भवनमें आवें देवतागण और देवर्षिगण नहुषका यह वचन सुनकर ॥ ५७ ॥ चिंतातुर हुए और शचीके निकट जाय मस्तक झुकाकर कहनेलगे हे इंद्रपत्नी ! दुराचारी नहुष आपकी इच्छा करता है ॥ ५८ ॥ उसने

शक्र पत्नीगुणाञ्छ्रुत्वा चकमे तां स पार्थिवः ॥ ऋषीनाह किमिंद्राणी नोपगच्छति मां किल ॥ ५४ ॥ भवद्भिश्चामरैः सर्वैः कृतोऽहं वासवस्त्विह ॥ प्रेषयध्वं सुराः कामं सेवार्थं मम वै शचीम् ॥ ५५ ॥ प्रियं चेन्मम कर्तव्यं सर्वथा मुनयोऽमराः ॥ अहमिंद्रोऽद्य देवानां लोकानांच तथेश्वरः ॥ ५६ ॥ आगच्छतुशची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम् ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वादेवादेवर्षयस्तथा ॥ ५७ ॥ गत्वा चिंतातुराः प्रोचुः पौलोमीं प्रणतास्ततः ॥ इन्द्रपत्नि दुराचारो नहुषस्त्वामिहेच्छति ॥ ५८ ॥ कुपितोऽस्मानुवाचेदं प्रेषयध्वंशचीमिह ॥ किंकुर्मस्तदधीनाः स्म येनेंद्रोऽयं कृतः किल ॥ ५९ ॥ तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह ॥ रक्ष मां नहुषाद्ब्रह्मंस्तवास्मि शरणं गता ॥ ६० ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ न भेतव्यं त्वया देवि नहुषात्पापमोहिताम् ॥ न त्वां दास्याम्यहं वत्से त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥ ६१ ॥ शरणागतमार्तं च यो ददाति नराधमः ॥ स एव नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ६२ ॥

कुपित होकर हमसे कहा कि शचिको शीघ्र इस स्थानमें लाओ, हे देवि ! हमने उसकोही इन्द्र किया है और हम उसकेही आधीन हुए हैं अतएव हम इस समय क्या करें ? ॥ ५९ ॥ इंद्रपत्नी शची उनका यह वचन सुन अत्यन्त दुर्मन हुई और ब्रूहस्पतिजीसे कहने लगीं हे ब्रह्मन् ! मैं आपके शरणागत हूं मेरी दुराचारी नहुषके हाथसे रक्षा कीजिये ॥ ६० ॥ तब ब्रूहस्पतिजीने कहा हे देवि ! पापमोहित नहुषसे तुम डर मत करो, हे वत्से ! सनातन धर्म परित्याग कर मैं तुमको नहुषके हाथमें नहीं दुंगा ॥ ६१ ॥ जो नराधम शरणागत कातर पुरुषको पराये हाथमें देता है वह प्रलय कालपर्यंत दुर्विपाक नरक भोगता है इसमें सन्देह नहीं हे नितम्बिनि ! तुम सावधान होओ मैं तुमको कभी त्याग नहीं करूंगा ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इन्द्रपत्नी देवगुरुकी शरणापन्न हुई है यह सुनकर कामसे व्याकुल नहुषराज बृहस्पतिजीके प्रति अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ १ ॥ और देवतागणोंसे कहने लगे हे देवताओ ! मैंने सुना है कि उस मूढ अङ्गिराके पुत्रने इंद्राणीकी अपने घरमें रक्षा की है अतएव मैं उसको शीघ्रही मारूंगा ॥ २ ॥ देवता गण और ऋषिगण उस समय उसको इस प्रकार कुपित देख उस भीषणमूर्ति नहुषसे शांतिपूर्वक कहने लगे ॥ ३ ॥ हे राजेन्द्र ! आप क्रोध दूर कीजिये हे प्रभो ! इस समय इस पापमतिको त्याग कीजिये. देखो संपूर्ण ऋषिगण धर्मशास्त्रमें परस्त्रीगमन महापाप कहकर निंदा करते हैं ॥ ४ ॥ आप विचार कीजिये कि पुलोम नंदिनी सदाही साध्वी सुशील और पतिव्रता है

स्वस्था भव पृथुश्रोणि न त्यक्ष्ये त्वां कदाचन ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ नहुषस्त्वथ तां श्रुत्वा गुरोस्तु शरणं गताम् ॥ चुक्रोध स्मरबाणार्तस्तमांगिर समाशु वै ॥ १ ॥ देवानाहांगिरासूनुर्हंतव्योऽयं मया किल ॥ इतींद्राणीं गृहे मूढो रक्षतीति मया श्रुतम् ॥ २ ॥ इति तं कुपितं दृष्ट्वा देवाः सर्षिपुरोगमाः ॥ अब्रुवन्नहुषं घोरं सामपूर्वं वचस्तदा ॥३॥ क्रोधं संहर राजेंद्र त्यज पापमतिं प्रभो ॥ निंदंति धर्मशास्त्रेषु परदाराभिमर्शनम् ॥ ४ ॥ शुक्रपत्नी सदा साध्वी जीवमाने पतौ पुनः ॥ कथमन्यं पतिं कुर्यात्सुभगाऽतिपतिव्रता ॥ ५ ॥ त्रिलोकीशस्त्वमधुना शास्ता धर्मस्य वै विभो ॥ त्वादृशोऽधर्ममातिष्ठेत्तदा नश्येत्प्रजा ध्रुवम् ॥ ६ ॥ सर्वथा प्रभुणा कार्यं शिष्टाचारस्य रक्षणम् ॥ वारमुख्याश्च शतशो वर्त्ततेऽत्र शचीसमाः ॥ ७ ॥ रतिस्तु कारणं प्रोक्तंशृंगारस्य महात्मभिः ॥ रसहानिर्बलात्कारे कृते सति तु जायते ॥ ८ ॥ उभयोः सदृशं प्रेम यदि पार्विथवसत्तम ॥ तदा वै सुखसंपत्तिरुभयोरुपजायते ॥ ९ ॥

पतिके विद्यमान रहनेपन किस प्रकार फिर दूसरा पति ग्रहण करें? ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! आप इस समय तीनों भुवनोंके अधि पति हैं इस कारणही धर्मके रक्षक हुए हैं अतएव आपके समान पुरुष यदि अधर्म्माचरण करें तो संपूर्णही प्रजा नष्ट होजाय ॥६॥ सर्वदा शिष्टाचारकी रक्षा करनाही प्रभुगणोंका अवश्य कर्त्तव्य है और देखो इस स्वर्गमें शचीके समान अनेक सुंदरी विद्यमान हैं आप उनकेही द्वारा इंद्रिय चरितार्थ कीजिये ॥ ७ ॥ महात्मागण परस्परके प्रति परस्परके अनुरागकोही शृंगारका कारण कहते हैं, अतएव बलात्कारद्वारा रसकी हानि होती है ॥ ८ ॥ हे पार्थिवोत्तम ! यदि दोनोंका समान प्रेम हो तो उससे दोनोंको ही सुख संपत्ति उत्पन्न हो सकती है ॥ ९ ॥

हे राजन् ! इस समय आपको इंद्रपद प्राप्त हुआ है अतएव इस परदाराभिमर्षण कलुषित भावको दूरकर साधुभावका उदय कीजिये ॥ १० ॥ पापद्वारा समृद्धिका विनाश होता है तथा पुण्यद्वारा समृद्धिकी अत्यंत वृद्धि होतीहै अतएव हे पार्थिव ! आप कलुषित भावको त्यागकर चित्तको सन्मार्गमें लाइये ॥ ११ ॥ नहुषने कहा हे देवगण ! इंद्रने जब गौतमकी स्त्री हरण की, चंद्रमाने जब बृहस्पतिकी स्त्री हरण की तब तुम कहां थे ? ॥१२॥ देखो अन्यको उपदेश देनेमें अनेक कुशल और समर्थ हैं किंतु स्वयं कार्य्यानुष्ठानकर पराये प्रति इसप्रकार उपदेश प्रदान करसके ऐसे पुरुष अत्यंत दुर्लभ हैं ॥ १३ ॥ हे देवगण ! उस गुणवती देवीको मेरे निकट लाओ, इससे तुम्हारा परमहित होगा और उस देवीको परमसुख प्राप्त होगा इसमें संदेह नहीं ॥ १४॥ मैं तुमसे

तस्माद्भावमिमं मुंच परदाराभिमर्शने ॥ सद्भावं कुरु देवेन्द्रपदं प्राप्तोऽस्यनुत्तमम् ॥ १० ॥ ऋद्धिक्षयस्तु पापेन पुण्येनातिविवर्धनम् ॥ तस्मात्पापं परित्यज्य सन्मतिं कुरु पार्थिव ॥ ११ ॥ नहुष उवाच ॥ गौतमस्य यदा भुक्ता दाराः शक्रेण देवताः ॥ वाचस्पतेस्तु सोमेन क्व यूयं संस्थितास्तदा ॥ १२ ॥ परोपदेशे कुशलाः प्रभवंति नराः किल ॥ कर्ता चैवोपदेष्टा च दुर्लभः पुरुषो भवेत् ॥ १३ ॥ मामा गच्छतु सा देवी हितं स्यादद्भुतं हि वः ॥ एतस्याः परमं देवाः सुखमेवं भविष्यति ॥ १४ ॥ अन्यथा न हि तुष्येऽहं सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ विनयाद्वा बलाद्वाऽपि तामाशु प्रापयंत्विह ॥ १५ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाश्च मुनयस्तथा ॥ तमूचुश्चातिसंत्रस्ता नहुषं मदनातुरम् ॥ १६ ॥ इन्द्राणीमानयिष्यामः सामपूर्वं तवांतिकम् ॥ इत्युक्त्वा ते तदा जग्मुर्बृहस्पतिनिकेतनम् ॥ १७॥ व्यास उवाच ॥ ते गत्वांऽगिरसः पुत्रं प्रोचुः प्रांजलयः सुराः ॥ जानीमः शरणं प्राप्तामिन्द्राणीं तव वेश्मनि ॥ १८॥ सा देया नहुषायाद्य वासवोऽसौ कृतोयतः ॥ वृणोत्वियं वरारोहा पतित्वे वरवर्णिनी ॥ १९ ॥

सत्यही कहताहूं अन्य किसी प्रकार मैं संतुष्ट नहीं हूंगा विनयसे हो अथवा बलसे ही तुम शीघ्र इंद्राणीको इस स्थानमें लाओ ॥ १५ ॥ देवतागण और मुनिगण मदनबाणसे पीड़ित नहुषराजका इस प्रकार वचन सुन अत्यंत भीत हुए और उनसे कहनेलगे ॥१६॥ हम कोमलभावसे सम्मत करके इंद्राणीको आपके निकट लावेंगे वह नहुषसे यह कहकर बृहस्पतिजीके घर चले गये ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवताजन बृहस्पतिजीके घरजाय हाथ जोड़कर कहने लगे हे गुरु ! इंद्राणीने आपके गृहका आश्रय ग्रहण किया है यह हम जानते हैं ॥१८॥ किंतु अब उसे नहुषराजाको देना होगा क्योंकि हम सबने मिलकरही उनको इंद्रके पदमें वरण किया. है. हे गुरु ! यह सर्वांग सुंदरी वरवर्णिनी इस समय उनको वरण करे ॥ १९ ॥

बृहस्पतिजीने देवताओंका यह दारुण वचन सुनकर उनसे कहा हे देवताओ ! यह पतिव्रता शची इस समय मेरी शरणागत हुई है अतएव मैं कभी इसको त्याग नहीं कर सकता ॥ २० ॥ देवताओंने कहा हे गुरु ! आप यदि शचीको त्याग न करें तो इस समय जिससे नहुषराज प्रसन्न हो इस प्रकार कोई उपाय कीजिये नहीं तो उनके कुपित होनेसे किसीसे भी उनको प्रसन्न नहीं किया जायगा ॥ २१ ॥ बृहस्पतिजीने कहा देवताओ ! शची इस समय वहां जाय राजा नहुषको वचनसे प्रलोभित करके इस प्रकार नियम करे कि "पतिके विनाशका निश्चय होनेपर फिर आपकी भजना करूंगी" ॥२२॥ अपने पति इन्द्रके जीवित रहने पर किस प्रकार दूसरे पतिको ग्रहण करूं ? अतएव इस समय मैं उन महात्माको ढूंढने जाती हूं ॥२३॥ शची मेरे वाक्यानुसार इस प्रकार

बृहस्पतिः सुरानाह तच्छ्रुत्वा दारुणं वचः ॥ नाहं त्यक्षे तु पौलोमीं सतीं च शरणागताम् ॥२०॥ देवा ऊचुः ॥ उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यो येन सोऽद्य प्रसीदति ॥ अन्यथा कोपसंयुक्तो दुराराध्यो भविष्यति ॥२१॥ गुरुरुवाच ॥ तत्र गत्वा शचीं भूपं प्रलोभ्य वचसा भृशम् ॥ करोतु समयं बाला पतिं ज्ञात्वा मृतं भजे ॥ २२ ॥ इन्द्रे जीवति मे कांते कथमन्य करोम्यहम् ॥ अन्वेषणार्थं गंतव्यं मया तस्य महात्मनः ॥ २३ ॥ इति सा समयं कृत्वा वंचयित्वा च भूपतिम् ॥ भर्तुरानयने यत्नं करोतु मम वाक्यतः ॥ २४ ॥ इति संचिन्त्य ते सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ नहुषं सहिता जग्मुरिंद्रपत्न्या दिवौकसः ॥ २५ ॥ तानागतान्समीक्ष्याह तदा कृत्रिमवासवः ॥ जहर्ष च मुदा युक्तस्तां वीक्ष्य मुदितोऽब्रवीत् ॥ २६ ॥ अद्यास्मि वासवः कांते भज मां चारुलोचने ॥ पतित्वे सर्वलोकस्य पूज्योऽहं विहितः सुरैः ॥ २७ ॥ इत्युक्ता सा नृपं प्राह वेपमाना त्रपायुता ॥ वरमिच्छाम्यहं राजंस्त्वत्तः प्राप्तं सुरेश्वर ॥ २८ ॥

नियम बन्धन पूर्वक उस भूपातिको छलकर पतिको लानेके लिये यत्न करे ॥ २४ ॥ हे महाराज ! अनन्तर बृहस्पति इत्यादि सम्पूर्ण देवतागण ही इस प्रकार परामर्श कर इन्द्राणीको लेकर नहुषके निकट गये ॥ २५ ॥ तब कृत्रिम इंद्र नहुषने उनको आता हुआ देख हृष्ट और सन्तुष्ट हो आनन्दसे इंद्राणीको अवलोकन कर कहा ॥ २६ ॥ हे कांते ! अब मैं यथार्थ ही इंद्र हुआ हे चारुलोचने ! तुम मेरी पतिके समान भजना करो देखो इस समय देवताओंने मुझको सर्वलोकोंका आराध्य किया है ॥ २७ ॥ नहुषके इस प्रकार कहनेपर शची देवीने अत्यंत लज्जित हो कांपते कांपते राजासे कहा हे सुरेश्वर ! मैं आपसे एकवर प्राप्त करनेकी इच्छा करती हूँ ॥ २८ ॥

इंद्र जीवित है या नहीं, मैं जबतक यह निर्णय न कर सकूं आप उसी थोड़े कालतक प्रतीक्षा कीजिये वह हैं या नहीं. इस प्रकार संदेह मेरे हृदयमें रहता है ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र ! जबतक इस विषयमें मैं स्थित न कर सकूं आप तबतक मुझको क्षमा कीजिये मैं अपने मनमें यह निश्चयकर तदनंतर आपकी भजना करूंगी यह सत्य जानना चाहिये ॥ ३० ॥ इंद्र इस समय नष्ट हुआ है या स्थानांतरमें चला गया है यह कुछ नहीं जाना जाता शची देवीके इस प्रकार कहनेपर नहुष अत्यंत प्रसन्न हुए ॥ ३१ ॥ और यही हो इस प्रकार कहकर आनंदित चित्तसे उसको बिदा किया पतिव्रता शची उनसे बिदा हो शीघ्र जाय देवताओंसे कहने लगी कि ॥ ३२ ॥ आप इंद्रको लानेका उद्योग और भलीभांति यत्न कीजिये. हे राजेन्द्र ! देवतागण इंद्राणीका वह श्रवण मनोहर पवित्र वचन सुनकर

किंचित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्कुर्वे विनिर्णयम् ॥ इन्द्रोऽस्तीति न वाऽस्तीति संदेहो मे हृदि स्थितः ॥ २९ ॥ ततस्त्वां समुपस्थास्ये कृत्वा निश्चयमात्मनि ॥ तावत्क्षमस्व राजेंद्र सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ ३० ॥ न हि विज्ञायते शक्रो नष्टः किं वा क्व वा गतः ॥ एवमुक्तः स चेन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत् ॥ ३१ ॥ व्यसर्जयत्स तां देवीं तथेत्युक्त्वा मुदाऽन्वितः ॥ सा विसृष्टा नृपेणाशु गत्वा प्राह सुरान्सती ॥ ३२ ॥ इंद्रस्याऽऽगमने यत्नं कुरु ताद्य कृतोद्यमाः ॥ श्रुत्वा तद्वचनं देवा इंद्राण्या रसवच्छुचि ॥ ३३ ॥ मंत्रयामासुरेकाग्राः शक्रार्थं नृपसत्तम ॥ ते गत्वा वैष्णवं धाम तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ ३४ ॥ आदिदेवं जगन्नाथं शरणागतवत्सलम् ॥ ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥ ३५ ॥ देवदेवः सुरपतिर्ब्रह्महत्याप्रपीडितः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां क्वापि तिष्ठति वासवः ॥ ३६ ॥ त्वद्धिया निहते विप्रे ब्रह्महत्या कुतः प्रभो ॥ त्वं गतिस्तस्य भगवन्नस्माकं च तथैव हि ॥ ३७ ॥ त्राहि नः परमापन्नान्मोक्षं तस्य विनिर्दिश ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा कातरं विष्णुरब्रवीत् ॥ ३८ ॥

॥ ३३ ॥ एकाग्र चित्तसे इंद्रके लानेकी परामर्श करने लगे अनंतर उन्होंने वैकुण्ठमें जाय ॥ ३४ ॥ शरणागत वत्सल आदि देव जगन्नाथ परमेश्वर विष्णुका स्तव किया. वाक्य विशारद देवताओंने समुद्विग्न चित्त हो विष्णुसे कहा ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! देवदेव सुरपति इंद्र ब्रह्महत्याके पापसे पीडित हैं इस समय वह सम्पूर्ण भूतोंसे अदृश्य हो किस स्थानमें वास करते हैं ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! वह आपकी बुद्धिसे ही विप्रवर वृत्रासुरको मारकर ब्रह्महत्याके पापमें अभिभूत हुए हैं. हे विभो ! आपही उनकी और हमारी एकमात्र गति हैं ॥ ३७ ॥ हम इस समय परम आपदामें पतित हुए हैं आप इस विपदसे छुडाने और इंद्रकी मुक्तिका उपाय निर्देश कीजिये. देवताओंके यह कातर वाक्य सुन कर विष्णुने कहा ॥ ३८ ॥

इंद्र पापसे रक्षापाने निमित्त अश्वमेध यज्ञ करें तो इंद्र इस पाप विनाशक यज्ञसे पवित्र हो ॥ ३९ ॥ सब प्रकार भयसे रहित हो फिर इन्द्रत्वको प्राप्त होंगे इसमें सन्देह नहीं. विशेषकर अश्वमेध यज्ञ करनेसे अम्बिका देवी सन्तुष्ट हो ॥ ४० ॥ वह सम्पूर्ण ब्रह्महत्याका पाप नष्ट करेंगी यह निश्चय जानना चाहिये. देखो जिनके स्मरण मात्रसे ही पाप समूह नष्ट होते हैं ॥ ४१ ॥ अश्वमेध यज्ञसे यदि उनको प्रसन्न किया जाय तो उनके द्वारा घोरतरपापभी नष्ट होगा फिर क्या आश्चर्य्य है और इन्द्राणी नित्य भगवतीकी पूजा करे ॥ ४२ ॥ तो उन मंगलमयीकी आराधनासे अवश्य सुख प्राप्त होगा. विशेषकर नहुषभी उस जगन्माताकी मायाद्वारा मोहित होकर ॥ ४३ ॥ अपने किये हुए पापसे अत्यन्त शीघ्र विनष्ट होगा और शतक्रतु इन्द्रभी अश्वमेध यज्ञसे पवित्र

यजतामश्वमेधेन शक्रपापनिवृत्तये ॥ पुण्येन हयमेधेन पावितः पाकशासनः ॥ ३९ ॥ पुनरेष्यति देवानामिंद्रत्वमकुतोभयः ॥ हयमेधेन संतुष्टा देवी श्रीजगदंबिका ॥ ४० ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम् ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण पापजालं विनश्यति ॥ ४१ ॥ किंपुनर्वाजिमेधेन तत्प्रीत्यर्थं कृतेन च ॥ इन्द्राणी कुरुतान्नित्यं भगवत्याः प्रपूजनम् ॥४२॥ आराधनं शिवायास्तु सुखकारि भविष्यति ॥ नहुषोऽपि जगन्मातुर्मायया मोहितः किल ॥ ४३ ॥ विनाशं स्वकृतेनाशु गमिष्यत्येनसा सुराः ॥ पावितश्चाश्वमेधेन तुराषाडपि वैभवम् ॥ ४४ ॥ प्राप्स्यत्यचिरकालेन स्वमासनमनुत्तमम् ॥ ते तु श्रुत्वा शुभां वाणीं विष्णोरमिततेजसः ॥ ४५ ॥ जग्मुस्तं देशमनिशं यत्रास्ते पाक शासनः ॥ तमाश्वास्य सुराः शक्रं बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ४६ ॥ कारयामासुरखिलं हयमेधं महाक्रतुम् ॥ विभज्य ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च ॥४७॥ पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषुचैवाक्षिपद्विभुः ॥ तां विसृज्य च भूतेषु विपापः पाकशासनः ॥४८॥ विज्वरः समभूद्भूयः कालाकांक्षी स्थितोजले ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां पद्मनाले व्यतिष्ठत ॥ ४९ ॥

होकर शीघ्रही ॥ ४४ ॥ अपने आसन स्वरूप परम वैभवको प्राप्त होंगे. हे राजन् ! देवता अमिततेजा विष्णुकी कल्याणदायनी मनोहारणी यह वाणी सुनकर ॥ ४५ ॥ जिस स्थानमें पाकशासन वास करते थे उसी स्थानमें गये बृहस्पति इत्यादि सुरगणने दुर्द्दशा युक्त देवताओंके इन्द्रको आश्वासित कर ॥ ४६ ॥ भलीभांति महायज्ञ अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कराया तब देवताओंके प्रभु इंद्रने ब्रह्महत्याके पापको त्यागकर वृक्ष नदी ॥ ४७ ॥ और पर्वत समूहमें स्त्रियोंमें तथा पृथ्वीमें निक्षेप किया इस कारण भूत समूहमें ब्रह्महत्याका पाप विसर्ज्जनकर पाकशासन इन्द्र फिर पापहीन ॥ ४८ ॥ और ज्वरहीन हो कालके आनेकी प्रतीक्षामें उसी जलमें सर्वभूतोंसेअदृश्य हो पद्मनालमें वास करने लगे ॥ ४९ ॥

देवता उस अद्भुत कार्यको कर उस स्थानसे निकल अपने २ स्थानको चले गये तब विरहसे आकुल हुई पुलोमनन्दिनी अत्यंत दुःखित हो देवगुरु बृहस्पति जीसे कहने लगी ॥ ५० ॥ हे प्रभो ! हमारे स्वामी इन्द्र अश्वमेध यज्ञ करके भी किस कारण अदृश्य रहते हैं मैं उनको किस प्रकार देखूंगी आप मुझसे इसका उपाय कहिये ॥ ५१ ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे देवि ! तुम कल्याणमयी भगवतीकी आराधना करो तो वही तुम्हारे पतिको निष्पाप कर तुमको दिखावेंगी ॥ ५२ ॥ उन्हीं जगद्धात्री अम्बिकाकी आराधना करनेपर वह नहुष राजाको अन्यान्य कार्यसे हरावेंगी और वही उसको मायासे मोहितकर स्वर्गके पदसे निपतित करेंगी ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! बृहस्पतिजीके इस प्रकार कहनेपर पुलोमतनयाने उनके निकटसे देवीका सिद्धि साधन--युक्त मंत्र ग्रहण किया ॥ ५४ ॥

देवास्तु निर्गताः स्थाने कृत्वा कार्यं तदद्भुतम् ॥ पौलोमी तु गुरुं प्राह दुःखिता विरहाकुला ॥ ५० ॥ कृतयज्ञोऽपि मे भर्ता किमदृश्यः पुरंदरः ॥ कथं द्रक्ष्ये प्रियं स्वामिंस्तमुपायं वदस्व मे ॥ ५१ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ त्वमाराधाय पौलोमि देवीं भगवतीं शिवाम् ॥ दर्शयिष्यति ते नाथं देवी विगतकल्मषम् ॥ ५२ ॥ आराधिता जगद्धात्री नहुषं वारयिष्यति ॥ मोहयित्वा नृपं स्थानात्पातयिष्यति चांबिका ॥ ५३ ॥ इत्युक्ता सा तदा तेन पुलोमतनया नृप ॥ जग्राह मंत्रं विधिवद्गुरोर्देव्याः समाधनम् ॥ ५४ ॥ विद्यां प्राप्य गुरोर्देवी देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ सम्यगाराधयामास बलिपुष्पार्चनैः शुभैः ॥ ५५ ॥ त्यक्तान्यभोगसंभारा तापसी वेषधारिणी ॥ चकार पूजनं देव्याः प्रियदर्शनलालसा ॥ ५६ ॥ कालेन कियता तुष्टा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ सौम्यरूपधरा देवी वरदा हंसवाहिनी ॥ ५७ ॥ कोटि सूर्यप्रतीकाशा चंद्रकोटिसुशीतला ॥ विद्युत्कोटिसमानाभा चतुर्वेदसमन्विता ॥ ५८ ॥

शचीदेवी गुरुके निकटसे मंत्र प्राप्त कर बली और पुष्प इत्यादि उपहारकी सामग्री द्वारा श्रीदेवीभुवनेश्वरीकी सम्यक् प्रकार आराधना करने लगी ॥ ५५ ॥ इन्द्राणी पतिके दर्शनकी इच्छासे सम्भोग्यवस्तु त्याग और तापसीका वेष धारणकर देवीकी पूजा करने लगी ॥ ५६ ॥ कुछ काल व्यतीत होनेपर वह देवी परितुष्ट हो शांतमूर्तिसे हंसकी पीठपर चढकर वर देनेके निमित्त उसके सामने प्रगट हुई ॥ ५७ ॥ उस समय उनके अङ्गकी कांति करोड करोड़ सूर्यके समान प्रदीप्त होनेपरभी करोड करोड़ चन्द्रमाके समान शीतल थी उनकी लावण्य छटा करोड२स्थिर बिजलीके समान प्रकाशित होने लगी और मूर्तिमान चरों वेद चारों ओर उनका स्तव करने लगे ॥ ५८ ॥

उनके चारों हाथ पाश अंकुशवर और अभयदान सौंदर्यसे शोभायमान थे. तथा कण्ठसे चरणों पर्य्यंत लम्बायमान निर्मलमोतियोंकी माला धारण कर रही थीं ॥ ५९ ॥ उनका मुखमण्डल कुछेक हास्य और प्रसन्नतासे शोभायमान था. वही करुणा मयी त्रिनयनी कीटसे ब्रह्मपर्यंत जीवगणोंकी जननी हैं ॥ ६० ॥ उनके दोनों स्थूल स्तन शांति इत्यादि अनंत पीयूषरससे परिपूर्ण थे वही अनंत कोटि ब्रह्माण्डकी ईश्वरी ॥ ६१ ॥ सर्वेश्वरी तथा परमेश्वरी सर्वज्ञात संपन्न कूटस्थित अक्षरकी साक्षी चैतन्यरूपिणी है वही भुवनेश्वरी देवी आराधनामें तत्पर हुई अमरेश्वरी शचीसे ॥ ६२ ॥ मेघके समान गम्भीर स्वरसे उसके आनंद देनेवाले वचन कहने लगी. हे शक्रवल्लभे ! तुम वांछित वर ग्रहण करो ॥ ६३ ॥ मैं तुम्हारी पूजासे अत्यंत प्रसन्न हुई हूं हे सुश्रोणि ! मैं बर देनेकोही

पाशांकुशाभयवरान्दधती निजबाहुभिः ॥ आपादलंबिनीं स्वच्छां मुक्तमालां च बिभ्रती ॥ ५९ ॥ प्रसन्नस्मेरवदना लोचनत्रयभूषिता ॥ आब्रह्मकीटजननी करुणामृतसागरा ॥ ६० ॥ अनंतकोटिब्रह्मांडनायिका परमेश्वरी ॥ सौम्यानंतरसैर्युक्तस्तनद्वयविराजिता ॥ ६१ ॥ सर्वेश्वरी च सर्वज्ञा कूटस्थाऽक्षररूपिणी ॥ तामुवाच प्रसन्ना सा शक्रपत्नीं कृतोद्यमाम् ॥ ६२ ॥ मेघगंभीरशब्देन मुदमाददती भृशम् ॥ देव्युवाच ॥ वरं वरय सुश्रोणि वांछितं शक्र वल्लभे ॥ ६३ ॥ ददाम्यद्य प्रसन्नाऽस्मि पूजिता सुभृशं त्वया ॥ वरदाहं समायाता दर्शनं सहजं न मे ॥ ६४ ॥ अनेककोटिजन्मोत्थ पुण्यपुंजं हि लभ्यते ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी तामाह प्रणता पुरः ॥ ६५ ॥ शक्रपत्नी भगवतीं प्रसन्नां परमेश्वरीम् ॥ वांछामि दर्शनं मातः पत्युः परमदुर्लभम् ॥ ६६ ॥ नहुषाद्भयनाशं च स्वपदप्रापणं तथा ॥ देव्युवाच ॥ गच्छ त्वमनया दूत्या सार्द्धं श्रीमानसं सरः ॥ ६७ ॥ यत्र मे मूर्तिरचला विश्वकामाभिधा मता ॥ तत्र पश्यसि शक्रं त्वं दुःखितं भयविह्वलम् ॥ ६८ ॥

तुम्हारे निकट आई हूं मेरा दर्शन सहजमेंही प्राप्त नहीं होता ॥ ६४ ॥ करोड करोड जन्मार्जित पुण्यसे मेरा दर्शन प्राप्त होता है तब देवीके इस प्रकार वचन सुनकर ॥ ६५ ॥ शक्रपत्नी शचीदेवी साष्टांग प्रणाम करनेके अनंतर उन प्रसन्न हुई परमेश्वरी भगवतीसे कहने लगीं हे मातः ! मैं आपके निकटसे परमदुर्लभ पतिका दर्शन ॥ ६६ ॥ और नहुष राजासे भय विनाश तथा इंद्रको फिर पद प्राप्त होनेकी इच्छा करती हूं. देवीने कहा हे सुरेश्वरि तुम मेरी इस दूतके संग मानससरोवरमें जाओ ॥ ६७ ॥ उसी स्थानमें मेरी विश्वकामा नामक अचलामूर्ति प्रतिष्ठित है शतक्रतु इंद्र उसी स्थानमें महादुःखित और भयसे विह्वल हो वास करते हैं तुम उनको देखोगी ॥ ६८ ॥

और कुछ कालमें ही मैं नहुष राजाको मायासे मोहित करूंगी हे विशालाक्षि ! तुम सावधान हो मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूंगी ॥ ६९ ॥ मैं शीघ्रही उस भूपतिको मोहितकर देवताओंके सिंहासनसे भ्रष्ट करूंगी व्यासजीने कहा भगवतीकी दूती सुरेश्वरीने शक्रपत्नी को संग ले जाकर शीघ्र ॥७०॥ उसके पति इन्द्रके सामने उपस्थित किया उसकाल बाला पुलोमजा गुप्तभावसे स्थित ॥ ७१ ॥ चिर वांछित अपने पति इन्द्रको देखकर अत्यन्त आनंदित हुई ॥७२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! देवराज इन्द्रने प्रियभार्या विशाल नयना शोकान्वित शचीको निर्ज्जनमें देखकर आश्चर्य युक्त चित्तसे कहा ॥ १ ॥ हे कांते ! मैं संपूर्ण जीवगणोंसे अदृश्य होकर इस निर्ज्जन स्थानमें अकेला वास करता हूं हे

मोहयिष्यामि राजानं कालेन कियता पुनः ॥ स्वस्था भव विशालाक्षि करोमि तव चेप्सितम् ॥ ६९ ॥ भ्रंशयिष्यामि भूपालं मोहितं त्रिदशासनात् ॥ व्यास उवाच ॥ देवीदूती तां गृहीत्वा शक्रपत्नीं त्वरान्विता ॥ ७० ॥ प्रापयामास सान्निध्यं स्वपत्युः परमेश्वरीम् ॥ सा दृष्ट्वा तं पतिं बाला सुरेशं गुप्तसंस्थितम् ॥ ७१ ॥ मुदिताऽभूद्वरं वीक्ष्य बहुकालाभिवांछितम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे शक्रदर्शनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यास उवाच तां वीक्ष्य विपुलापांगीं रहः शोकसमन्विताम् ॥ आखंडलः प्रियां भार्यां विस्मितश्चाब्रवीत्तदा ॥१॥ कथमत्रागता कान्ते कथं ज्ञातस्त्वया ह्यहम् ॥ दुर्ज्ञेयः सर्वभूतानां संस्थितोऽस्मि शुभानने ॥२॥ शच्युवाच ॥ देवदेव्याः प्रसादेन ज्ञातोऽस्यद्य भवानिह ॥ पुनस्तस्याः प्रसादेन प्राप्तास्मि त्वां दिवस्पते ॥३॥ नहुषो नाम राजर्षिः स्थापितो भवदासने ॥ त्रिदशर्मुनिभिश्चैव स मां बाधति नित्यशः ॥ ४ ॥ पतिं मां कुरु चार्वंगि तुरासाहं सुराधिपम् ॥ एवं वदति मां पाप्मा किं करोमि बलार्दन ॥ ५ ॥

शुभानने ! तुमने इस स्थानको किस प्रकार जाना और किस प्रकार इस स्थानमें आई ॥ २ ॥ शचीने कहा हे सुरेश्वर ! मैंने देवी भगवतीके चरण प्रसादसे आपका निवासस्थान जाना, और उन्हींके प्रसादसे मैं आपको प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ देवताओं और मुनिगणोंने मिलकर नहुष नामक नृपतिको आपके सिंहासनमें स्थापित किया है वह कहते हैं हे सुशोभने ! मैं इंद्रके सिंहासनमें अधिष्ठित हुआ हूं अतएव तुम मेरी पतिके रूपमें भजन करो इस प्रकार वह निरंतर मुझको पीडित करता है ॥ ४ ॥ हे बलविनाशन ! वह पापात्मा मुझसे इस प्रकार कहता है अतएव मैं अबला हूं उसका क्या कर सकती हूं ॥ ५ ॥

इंद्रने कहा हे वरवर्णिनि ! मैं कालकी प्रतीक्षा करके इस स्थानमें वास करता हूँ हे कल्याणि ! तुमभी अपने मनको स्थिरकर कालकी प्रतीक्षासे वहां वास करती रहो ॥६॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! बुद्धिमान् इन्द्रके यह वचन कहनेपर फिर शचीदेवी अत्यंत दुःखित होकर दीर्घश्वास त्याग पूर्वक कांपते कांपते कहने लगी ॥७॥ हे महाभाग ! मैं किस प्रकार उस स्थानमें वास कर सकूंगी वह पापात्मा मदोन्मत्त और वरदानसे गर्वित होकर मुझको वशीभूत करेगा॥८॥ देवताऔर मुनिगण उसके भयसे व्याकुल होकर मुझसे कहते हैं हे शोभने ! सुरपति इन्द्र इस समय तुम्हारे निमित्त कामबाणसे अत्यन्त कातर हुए हैं अतएव तुम उनका भजन करो ॥९॥ हे परन्तप ! विप्रवर बृहस्पति बलहीन और देवतागणोंके वशीभूत होकर मेरी किस प्रकार रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ॥ १० ॥

इंद्र उवाच ॥ कालाकांक्षी वरारोहे संस्थितोऽस्मि यदृच्छया ॥ तथा त्वमपि कल्याणि सुस्थिरं स्वमनः कुरु ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता तेन सा देवी पतिनाऽतिप्रशंसिना ॥ निःश्वसंत्याह तं शक्रं वेपमानाऽतिदुःखिता ॥ ७ ॥ कथं तिष्ठे महाभाग पापात्मा मां वशानुगाम् ॥ करिष्यति मदोन्मत्तो वरदानेन गर्वितः ॥ ८ ॥ देवाश्च मुनयः सर्वे मामूचुस्त द्भयाकुलाः ॥ तं भजस्व वरारोहे देवराजं स्मरातुरम् ॥ ९ ॥ बृहस्पतिस्तु शत्रुघ्न वाडवो बलवर्जितः ॥ कथं मां रक्षितुं शक्तो भवेद्देवानुगः सदा ॥ १० ॥ तस्माच्चिंताऽस्ति महती नार्यहं वशवर्तिनी ॥ अनाथा किं करिष्यामि विपरीते विधौ विभो ॥ ११ ॥ नार्यस्म्यहं न कुलटा त्वच्चित्तोऽतिपतिव्रता ॥ नास्ति मे शरणं तत्र यो मां रक्षति दुःखिताम् ॥ १२ ॥ इंद्र उवाच ॥ उपायं प्रब्रवीम्यद्य तं कुरुस्व वरानने ॥ शीलं ते दुःखिते काले परित्रातं भविष्यति ॥ १३ ॥ परेण रक्षिता नारी न भवेच्च पतिव्रता ॥ उपायैः कोटिभिः कामभिन्नचित्ताऽतिचञ्चला ॥ १४ ॥

हे प्रभो ! इससे अत्यन्त चिंता रहती है देखो मैं अनाथ अबला नारी हूं अतएव सर्वदाही पुरुषके वशीभूत हूं विधाता इस समय प्रतिकूल हुआ है इससे मैं किस प्रकार धर्म्मकी रक्षा करनेमें समर्थ हूंगी ? ॥ ११ ॥ मैं पतिव्रता हूं कुलटा नहीं हूं मेरा चित्त तुममेंही अत्यन्त आसक्त है वहां मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है मुझको वहां दुःख होनेसे कौन मेरी रक्षा करेगा ? ॥ १२ ॥ इन्द्रने कहा हे वरानने ! मैं तुमको इस समय एक उपाय बताये देता हूं उसका अवलम्बन करनेसे दुःखके समयमें तुम्हारा सुचरित्रही रक्षित होगा इसमें संदेह नहीं ॥ १३ ॥ नारीजाति करोड करोड़ उपायसे रक्षित होनेपरभी वह पतिव्रता नहीं हो सकती क्योंकि काम उसका चञ्चल मन भेदकरके असत् मार्गमें चलाता है ॥ १४ ॥

स्त्रीगणोंकी सच्चरित्राही उनकी पापसे रक्षा करती है अतएव हे शुचिस्मिते ! तुम सत्‌शीलता अवलम्बन पूर्वक स्थिर होकर वास करो ॥ १५ ॥ यदि वह दुर्म्मति खल नृपति नहुष तुमको बलपूर्वक पकड़े तो तुम समयकी अवधिकर गुप्त भावसे उसको छलना ॥ १६ ॥ हे मदालसे ! तुम अकेलेमें उसके पास जाकर कहना "हे जगतपते ! आप ऋषियोंसे वाहित दिव्य विमानपर चढकर मेरे पास आओ ॥ १७॥ तो मैं संतुष्ट हो प्रसन्न मनसे तुम्हारे वशीभूत हूंगी यह मेरा निश्चित व्रत जानिये" हे सुश्रोणि ! तुम्हारे इस प्रकार कहनेपर फिर वह नृपति कामसे अन्धे और मोहित हो ॥ १८ ॥ मुनिगणोंको यानवहनमें नियोजित करेगा तब तपस्वीलोग क्रोधित हो शापाग्निद्वारा अवश्यही उसको भस्म करेंगे ॥ १९ ॥ और भगवती जगदम्बिका तुम्हारी सहायता करेगी

शीलमेव हि नारीणां सदा रक्षति पापतः ॥ तस्मात्त्वं शीलमास्थाय स्थिरा भव शुचिस्मिते ॥ १५ ॥ यदा त्वां नहुषो राजा बलादाकर्षयेत्खलः ॥ तदा त्वं समयं कृत्वा गुप्त वंचय भूपतिम् ॥ १६ ॥ एकान्ते तत्समीपे त्वं गत्वा वद मदालसे ॥ ऋषियानेन दिव्येन मामुपेहि जगत्पते ॥ १७ ॥ एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति मे व्रतम् ॥ इति तं वद सुश्रोणि तदा तु परिमोहितः ॥ १८ ॥ कामांध स मुनीन्याने योजयिष्यति पार्थिवः ॥ अवश्यं तापसो भूपं शापदग्धं करिष्यति ॥ १९ ॥ साहाय्यं जगदंबा ते करिष्यति न संशयः ॥ जगदंबापदस्मर्तुः संकटं न कदाचन ॥ २० ॥ यदि जायेत तच्चापि ज्ञेयं तत्स्वस्तये किल ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मणिद्वीपाधिवासिनीम् ॥ २१ ॥ भज त्वं भुवनेशानीं गुरुवाक्यानुसारतः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याख्याता शची तेन जगाम नहुषं प्रति ॥ २२ ॥ तथेत्युक्त्वाऽति विश्वस्ता भाविकार्ये कृतोद्यमा ॥ नहुषस्तां समालोक्य मुदितो वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥ स्वागतं सत्यवचनैस्त्वदधीनोऽस्मि कामिनि ॥ दासोऽहं तव सत्येन पालितं वचनं त्वया ॥ २४ ॥

इसमें संदेह नहीं जो कोई जगदम्बिकाके चरणकमलोंको स्मरण करता है उसको कभी संकट उपस्थित नहीं होता ॥ २० ॥ यदि उपस्थित हो तो उसको उसके मंगलार्थही जानना चाहिये अतएव तुम गुरुके वाक्यकी अनुवर्तिनी रहकर सम्यक् प्रकार यत्नसे उन मणिद्वीपनिवासिनी ॥ २१ ॥ जगज्जननी भुवनेश्वरीका भजन करो व्यासजीने कहा हे महाराज ! शचीदेवी इंद्रका यह वचन सुन यही हो इस प्रकार कहकर विश्वस्तचित्तसे भावी कार्यमें उद्योगिनी हो नहुषके निकट गईं नहुष शची देवीको देखकर अत्यंत आनंदित हो कहने लगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे सत्यभाषिणि ! तुम्हारी कुशल तो है ? हे कामिनि ! मैं तुम्हारे आधीन हूं तुमने मेरा वाक्य पालन किया है ॥ २४ ॥

अतएव सत्यही कहता हूं मैं तुम्हारा दास हुआ हे मितभाषिणि ! जब तुम मेरे सामने आई हो तो मैं तुमसे अत्यंत संतुष्ट हुआ हूं, हे शुचिस्मिते ! तुम लज्जा मत करो मैं तुम्हारा भक्त हूँ तुम मेरा भजन करो ॥ २५ ॥ हे विशालाक्षि! तुम्हारा क्या प्रिय कार्य्य करना होगा कहो मैं इस समय वह पूर्ण करूंगा शचीने कहा हे प्रभो वासव ! आप सम्पूर्ण कार्य्यही सम्पादन करते हैं ॥ २६ ॥ इस समय मेरे हृदयमें एक मनोरथ विद्यमान है आप मेरा वह अभीष्ट मनोरथ पूर्ण कीजिये इसके उपरांत मैं आपकी वशवर्तिनी हूंगी ॥ २७ ॥ हे कल्याणमय ! इस समय मैं अपने मनकी अभिलाषा प्रकाशित करती हूं आप उसका सम्पादन कीजिये नहुषने कहा हे चन्द्रानने ! तुम्हारा क्या कार्य्य है कहो मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूंगा ॥ २८ ॥ हे सुभ्रु ! तुम कहो वह

यदागता समीपे मे तुष्टोऽस्मि मितभाषिणि ॥ न च व्रीडा त्वया कार्या भक्तं मां भज सुस्मिते ॥ २५ ॥ कार्यं वद विशालाक्षि करिष्यामि तव प्रियम् ॥ शच्युवाच ॥ सर्वं कृतं त्वया कार्यं मम कृत्रिमवासव ॥ २६ ॥ मनोरथोऽस्ति मे देव शृणु चित्तेऽधुना विभो ॥ वांछितं कुरु कल्याण त्वद्वशाऽहमतः परम् ॥ २७ ॥ ब्रवीमि मानसोत्साहं त्वं तं कर्तुमिहाऽर्हसि ॥ कार्यं त्वं ब्रूहि चन्द्रास्ये करोमि तव वांछितम् ॥ २८ ॥ अलभ्यमपि दास्यामि तुभ्यं सुभ्रु वदस्व माम् ॥ शच्युवाच ॥ कथं ब्रवीमि राजेन्द्र प्रत्ययो नास्ति मे तव ॥ २९ ॥ शपथं कुरु राजेन्द्र यत्करोमि प्रियं तव ॥ राजानः सत्यवचसो दुर्लभा एव भूतले ॥३०॥ पश्चाद्ब्रवीम्यहं राजञ्ज्ञात्वा सत्येन यंत्रितम् ॥ कृते चेद्वांछिते भूपं सदा ते वशवर्तिनी ॥ ३१ ॥ भविष्यामि तुराषाड्वै सत्यमेतद्वचो मम ॥ नहुष उवाच ॥ अवश्यमेव कर्तव्यं वचनं तव सुंदरि ॥ ३२ ॥ शपामि सुकृतेनाऽहं यज्ञदानकृतेन वै ॥ शच्युवाच ॥ इंद्रस्य हरयो वाहा गजश्चैव रथस्तथा ॥३३॥

यदि दुर्लभ भी हो तो तथापि मैं वह तुमको दूंगा शचीने कहा हे राजेन्द्र ! कैसे करूं आपकी मुझको प्रतीति नहीं होती ॥ २९ ॥ आप मेरा प्रिय कार्य्य करें तो शपथ कीजिये हे राजन् ! पृथ्वीतलमें सत्यवादी राजा दुर्लभ हैं ॥ ३० ॥ मैं सत्यपाशमें आपको बंधा हुआ जानकर फिर अपना मनोरथ कहूंगी हे भूपते ! यदि आप मेरा वांछित सम्पादन करेंगे तो मैं सदा आपकी वशवर्तिनी हूंगी ॥ ३१ ॥ यह मैं सत्यही आपके निकट कहती हूं नहुषने कहा हे सुन्दरी ! मैं सब करूंगा ॥ ३२ ॥ अपने यज्ञ और दानादिसे अर्जित संपूर्ण पुण्यकी शपथ करके कहता हूं कि, तुम्हारा वाक्य अवश्य ही पूर्ण करूंगा; शचीने कहा इंद्रका उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी ॥ ३३ ॥

और वासुदेवका गरुड़, यमका भैंसा, शंकरका बैल, ब्रह्माका राजहंस ॥ ३४ ॥ षडाननका मोर और गणेशजीका मूँसा वाहन देखा जाता है किंतु हे सुराधिप ! मैं तुम्हारा अपूर्व वाहन देखना चाहती हूं ॥ ३५ ॥ जो विष्णुकाभी नहीं देवताओंका भी नहीं राक्षसोंकाभी नहीं है. हे महाराज ! वह व्रतके धारण करनेवाले मुनिगण तुम्हारे वाहन हों ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! मुनिगण आपको पालकी द्वारा कंधेपर चढ़ावें यही मेरा मनोवांछित जानिये हे वसुधाधिप ! मैं आपको सब देवताओंसे श्रेष्ठ जानती हूं ॥ ३७ ॥ उसके द्वारा आपके तेजकी वृद्धि हो इसकी मेरे मनमें अत्यंत कामना है व्यासजीने कहा हे महाराज ! ज्ञान दुर्बल नहुष शचीका यह वचन सुनकर हंसने लगा ॥ ३८ ॥ और तत्काल देवीकृत मोहसे मोहित होकर वासव--प्रियाकी प्रशंसाकर कहने लगा ॥ ३९ ॥ नहुषने कहा

गरुडो वासुदेवस्य यमस्य महिषस्तथा ॥ ऋषभः शंकरस्याऽपि ब्रह्मणो वरटापतिः ॥३४॥ मयूरः कार्तिकेयस्य गजास्यस्य तु मूषकः ॥ इच्छाम्यहमपूर्वं वै वाहनं ते सुराधिप ॥ ३५ ॥ यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नाऽसुराणां न रक्षसाम् ॥ वहंतु त्वां महाराज मुनयः संशितव्रताः ॥ ३६ ॥ सर्वे शिबिकया राजन्नेतद्धि मम वांछितम् ॥ सर्वदेवाधिकं त्वां वै जानामि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥ तेन ते तेजसो वृद्धिं वांछाम्यहमतंद्रिता ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्यज्ञानदुर्बलः ॥ ३८ ॥ मोहितस्तु महादेव्या कृतमोहेन तत्क्षणम् ॥ उवाच वचनं भूपः संस्तुवन्वासवप्रियाम् ॥ ३९ ॥ नहुष उवाच ॥ सत्यमुक्तं त्वया तन्वि वाहनं रुचिरं मम ॥ करिष्यामि सुकेशांते वचनं तव सर्वथा ॥ ४० ॥ नह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान्कुरुते मुनीन् ॥ अहमारुह्य यानेनत्वामेष्यामि शुचिस्मिते ॥ ४१ ॥ सप्तर्षयो मां वक्ष्यंति सर्वे देवर्षयस्तथा ॥ समर्थं त्रिषु लोकेषु ज्ञात्वा मां तपसाऽधिकम् ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तां सुसंतुष्टो विससर्ज हरिप्रियाम् ॥ मुनीनाहूय सर्वांस्तानित्युवाच स्मरान्वितः ॥ ४३ ॥

हे तन्वङ्गि ! तुमने सत्यही मेरे उत्तम वाहनका विषय कहा हे सुकेशि ! शीघ्र ही मैं तुम्हारे वचनानुसार कार्य सम्पादन करूंगा ॥ ४० ॥ हे चारुहासिनि ! जो पुरुष अल्पवीर्य है वह मुनिगणोंको कभी वाहन करनेमें समर्थ नहीं होता मैं मुनिगणोंको वाहन कर विमानपर चढ़ तुम्हारे निकट आऊंगा इससे मेरा अतुलवीर्य प्रकाशित होगा इसमें संदेह नहीं ॥ ४१ ॥ सप्तर्षिगण और संपूर्ण देवर्षिगण मुझको त्रिलोकमें सबकी अपेक्षा समर्थ और तपस्याद्वारा श्रेष्ठ जानकर वहन करेंगे इसमें संशय क्या है ॥ ४२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! तब नरपति नहुषने अत्यंत संतुष्ट होकर यह कह इंद्राणीको विदा किया और कामाकुलित चित्तसे संपूर्ण मुनिगणोंको बुलाकर कहा ॥ ४३ ॥

नहुष बोले भो विप्रवर ! मैं इस समय सर्वशक्तियुक्त देवराज इंद्र हुआ हूं आप आश्चर्य न करके मेरा कार्यसाधन कीजिये ॥ ४४ ॥ मैं इंद्रासनको प्राप्त हुआ हूं किंतु इंद्राणी मेरे समीप नहीं आती जब मैंने उसको बुलाया तब उसने मेरा अभिलाष जानकर प्रणामपूर्वक ॥ ४५ ॥ यह वचन कहा कि, हे देवेंद्र ! हे मानद ! आप मुनिवाह्य विमानपर चढ़ मेरे निकट आय मेरा प्रियकार्य करो ॥ ४६ ॥ हे महर्षिगण ! यह कार्य सम्पादन करना मेरे पक्षमें अत्यंत दुष्कर है, तथापि आप दया करके मेरा कार्य कीजिये ॥ ४७ ॥ मेरा मन इंद्रपत्नीमें अत्यंत आसक्त होकर कामबाणसे निरंतर भस्म होता है आप मेरे आश्रय स्थान होकर अद्भुत कार्य सम्पादन कीजिये ॥ ४८ ॥ अगस्त्य इत्यादि महर्षिगणोंने उसका यह असत् और अपमान करनेवाला वचन सुनकर और अवश्य

नहुष उवाच ॥ अहमिंद्रोऽद्य भो विप्राः सर्वशक्तिसमन्वितः ॥ कार्यमत्र प्रकुर्वंतु भवंतो विगतस्मयाः ॥ ४४ ॥ इंद्रासनं मया प्राप्तं नेंद्राणी मामुपैति च ॥ आकारिता च मां ब्रूते प्रेमपूर्वमिदं वचः ॥ ४५ ॥ मुनियानेन देवेंद्र मामुपेहि सुराधिप ॥ देवदेव महाराज मत्प्रियं कुरु मानद ॥ ४६ ॥ एतत्कार्यं मुनिश्रेष्ठा ममाऽत्यंतं दुरासदम् ॥ भवद्भिस्तु प्रकर्तव्यं सर्वथैव दयालुभिः ॥ ४७ ॥ मनो दहति मे कामः शक्रपत्न्यां प्रवर्तितम् ॥ भवंतः शरणं मेऽद्य कुरुध्वं कार्यमद्भुतम् ॥ ४८ ॥ अगस्तिप्रमुखास्तस्य श्रुत्वा वाक्यमसत्करम् ॥ अंगीचक्रुश्च भावित्वात्कृपया परमर्षयः ॥ ४९ ॥ अंगीकृतेऽथ तद्वाक्ये मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ मुदं प्राप नृपः कामंपौलो मीकृतमानसः ॥ ५० ॥ आरुह्य शिबिकां रम्यां संस्थितस्त्वरयाऽन्वितः ॥ वाहान्कृत्वा मुनीन्दिव्यान्सर्पसर्पेति चाब्रवीत् ॥ ५१ ॥ कामार्तः सोऽस्पृशन्मूढः पादेन मुनिमस्तकम् ॥ अगस्तिं तापसश्रेष्ठं लोपामुद्रापतिं तदा ॥५२॥ वातापिभक्षकर्तारं समुद्रस्यामपि शोषकम् ॥ कशया ताडयामास पंचबाणसराहतः ॥ ५३ ॥ इंद्राणीहृतचित्तोऽसौ सर्पेति प्रब्रुवन्मुनिम् ॥ तं शशाप मुनिः क्रुद्धः कशाघातमनुस्मरन् ॥ ५४ ॥

म्भावि दैववशसे करुणार्द्रचित्तसे उसमें सम्मति दी ॥ ४९ ॥ नहुषका मन इन्द्राणीमें अत्यंत आसक्त हुआ था, तत्त्वदर्शी ऋषिगणोंके यह वचन स्वीकार करनेपर वह अत्यन्त आनंदित हुआ ॥ ५० ॥ और शीघ्र मनोहर पालकीपर चढ़ मुनिगणोंको वाहन कर चलते चलते कहने लगा सर्प सर्प (चलो चलो) ॥ ५१ ॥ तब उस नहुष राजाने अत्यंत कामार्त्त होकर चरणोंसे मुनिका मस्तक स्पर्श किया और जो मुनि अगस्त्य तपस्वियोंमें श्रेष्ठ लोपामुद्राके पति ॥ ५२ ॥ वातापी राक्षसके भक्षणकर्ता सागरके शोषनेवाले थे कामसे मोहित हो राजाने उनको कोड़ा मारा ॥ ५३ ॥ और इन्द्राणीमें चित्त लगा होनेसे सर्प सर्प (चलो चलो) ऐसा मुनिसे कहा तब मुनिने कशाघातसे क्रोधित हो उसे शाप दिया ॥ ५४ ॥

हे दुराचारी ! तू सर्प २ कहकर हमको ताडन करता है इस कारण तू घोर बनमें बड़ा शरीरवाला सर्प होकर वहीं निवास करता रह अपने वीर्यवशसे विचरण कर अनेक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर जब अत्यंत क्लेश भोगेगा ॥ ५५ ॥ तब फिर स्वर्गको प्राप्त होगा तू जब युधिष्ठिर नामक नरपतिका दर्शन करेगा ॥ ५६ ॥ उसी समय उस धर्मपुत्रके मुखसे सम्पूर्ण प्रश्नोंका उत्तर सुनकर बंधनसे छूट जायगा. व्यासजीने कहा हे महाराज ! इस प्रकार शापको प्राप्त हो राजर्षि नहुष उन मुनिसत्तमका स्तव करते करते ॥५७॥ सहसा स्वर्गसे पतित हुआ और तत्काल सर्पका आकार धारण किया अनंतर देवगुरु बृहस्पतिजीने शीघ्र मानसरोवरमें जाय ॥ ५८ ॥ देवराज इन्द्रसे यह सब वृत्तांत विस्तार पूर्वक कहा सुरपति नहुष नृपतिकी स्वर्गच्युत इत्यादि समस्त वृत्तांत श्रवण कर

सर्पो भव दुराचार वने घोरवपुर्महान् ॥ बहुवर्षसहस्राणि यत्र क्लेशो महान्भवेत् ॥ ५५ ॥ विचरिष्यसि वीर्येण पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ दृष्ट्वा युधिष्ठिरं नाम तव मोक्षो भविष्यसि ॥५६॥ प्रश्नानामुत्तरं श्रुत्वा धर्मपुत्रमुखात्ततः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं शप्तः स राजर्षिः स्तुत्वा तं मुनिसत्तमम् ॥ ५७ ॥ स्वर्गात्पपात सहसा सर्परूपधरोऽभवत् ॥ बृहस्पतिस्ततो गत्वा तरसा मानसं प्रति ॥ ५८ ॥ इंद्राय सर्ववृतांतं कथयामास विस्तरम् ॥ तच्छ्रुत्वा मघवा राज्ञः स्वर्गात्प्रच्यवनादिकम् ॥ ५९ ॥ मुदितोऽभून्महाराजः स्थितस्तत्रैव वासवः ॥ देवाश्च मुनयो दृष्ट्वा नहुषं पतितं भुवि ॥६०॥ जग्मुः सर्वेऽपि तत्रैव यत्रेंद्रः सरसि स्थितः ॥ तमाश्वास्य सुराः सर्वे मुनिभिः सहितास्तथा ॥६१॥ स्वर्गे समानयामासुर्मानपूर्वं शचीपतिम् ॥ समागतं ततः शक्रं सर्वे ते मुनयः सुराः ॥ ६२ ॥ स्थाप यित्वाऽऽसने पश्चादभिषेकं दधुः शिवम् ॥ इंद्रोऽपि स्वासनं प्राप्य शच्या सह सुरालये ॥६३॥ चिक्रीड नंदने रम्ये कानने प्रेमयुक्तया ॥ व्यास उवाच ॥ एवमिंद्रेण संप्राप्तं दुःखं परमदारुणम् ॥ ६४ ॥ हत्वाऽसुरं कामरूपं विश्वरूपं मुदा मुनिम् ॥ पुनर्देव्याः प्रसादेन स्वस्थानं प्राप्तवान्नृप ॥ ६५ ॥

॥ ५९ ॥ अत्यंत आनंदित हुए और प्रसन्नचित्तसे उसी स्थानमें वास करने लगे देवता और मुनिगण नहुषको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर ॥ ६० ॥ जिस स्थानमें इन्द्र वास करते थे उसी मानसरोवरमें गये तब मुनिगण देवता सब मिलित होकर इंद्रको समझाय ॥ ६१ ॥ और सन्मानित कर फिर स्वर्गमें ले आये फिर सम्पूर्ण देवता और ऋषिगणने आये हुए इन्द्रको ॥ ६२ ॥ स्वर्गके सिंहासनपर स्थापित कर उस केउपरांत अभिषेक क्रिया सम्पादन की इन्द्र भी अपने सिंहासनको प्राप्त हो प्रणयिनी शचीके सहित सुरालयके ॥ ६३ ॥ मनोहर वनमें क्रीडा करने लगे. व्यासजीने कहा हे राजन् ! कामरूप महर्षि असुरेश्वर विश्वरूपको मारकर इन्द्र इस प्रकार अत्यंत दारुण दुःख भोगकर तदनंतर देवीके प्रसादसे अपने आसनको प्राप्त हुए थे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

हे राजेन्द्र ! तुमने जो पूँछा था मैंने वही वृत्रासुरका वध वृत्तांत रूप अत्युत्तम उपाख्यान आपके निकट कीर्त्तन किया ॥ ६६ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! आप निश्चय जानिये कि जीवगण जिस प्रकार कर्म करते हैं उसी प्रकार फलको प्राप्त होते हैं, किया हुआ कर्म शुभ हो अथवा अशुभ हो अवश्य ही उसका फल भोगना होगा, इसमें संदेह नहीं इसी प्रकार इन्द्रने भी ब्रह्महत्यारूप अपने किये हुए कर्मका फल भोगा था ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् ! आपने अद्भुतकर्मा इंद्रका अद्भुत चरित्र और उनका स्थानभ्रंश तथा दुःखकी प्राप्ति भलीभांति वर्णन की ॥ १ ॥ और उनके प्रसङ्गमें देवाधिदेवी भुवनेश्वरीकी महिमा भी विशेषरूपसे वर्णन की किंतु इस बातका मेरे मनमें एक संदेह उपस्थित हुआ है

एतत्ते सर्वमाख्यातं वृत्रासुरवधाश्रयम् ॥ यत्पृष्टोऽहं त्वया राजन्कथानकमनुत्तमम् ॥ ६६ ॥ यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमाप्नुयात् ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागते महापुराणे षष्ठस्कंधे वृत्रवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ जनमेजय उवाच ॥ कथितं चरितं ब्रह्मञ्छक्रस्याऽद्भुतकर्मणः ॥ स्थानभ्रंशस्तथा दुःखप्राप्तिरुक्ता विशेषतः ॥१॥ यत्र देवाधिदेव्याश्च महिमाऽतीव वर्णितः ॥ संदेहोऽत्र ममाप्यस्ति यच्छक्रोऽपि महातपाः ॥ २ ॥ देवाधिपत्यमासाद्य दुःखहं दुःखमन्वभूत् ॥ मखानां तु शतं कृत्वा प्राप्तुं स्थानमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ देवेशत्वं च संप्राप्य भ्रष्टः स्थानादसौ कथम् ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व कारणं करुणानिधे ॥ ४ ॥ सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ पुराणानां प्रवर्तकः ॥ नावाच्यं महतां किंचिच्छिष्ये च श्रद्धयाऽन्विते ॥ ५ ॥ तस्मात्कुरु महाभाग मत्संदेहापनोदनम् ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टः स राज्ञा वै तदा सत्यवतीसुतः ॥ ६ ॥ तमाहातिप्रसन्नात्मा यथानुक्रममुत्तरम् ॥ व्यास उवाच ॥ निबोध नृपतिश्रेष्ठ कारणं परमाद्भुतम् ॥ ७ ॥

कि इंद्र महातपस्वी थे ॥२॥ उन्होंने दुःख नाशक देवाधिपत्यको प्राप्त होकर भी दुःख अनुभव क्यों किया था वह सौ अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करके देवाधिपत्य और उत्तम स्थानको प्राप्त होकर भी ॥ ३ ॥ किस कारण उस स्थानसे भ्रष्ट हुए ? हे करुणानिधे ! आप दया करके यह सम्पूर्ण कारण मेरे प्रति वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ आप सर्वज्ञ मुनिश्रेष्ठ और पुराणसमूहके प्रवर्तक हैं मैं आपका श्रद्धान्वित शिष्य हूँ ऐसे प्रिय शिष्यके निकट महत् पुरुषोंका न कहने योग्य कुछ भी नहीं है ॥५॥ अतएव हे महाभाग ! आप कृपाकरके मेरा यह सब संशय दूर कीजिये सूतजीने कहा जनमेजयके सत्यवतीपुत्र व्यासदेवजीसे इस प्रकार पूँछनेपर ॥६॥ उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न मनसे यथाक्रमसहित उसका उत्तर दिया व्यासजीने कहा हे नृपवर ! आप उसका सम्पूर्ण अद्भुत कारण सुनिये ॥ ७ ॥

तत्वके जाननेवाले पुरुष कहते हैं कि कर्मकी गति संचित, वर्तमान और प्रारब्धभेदसे तीन प्रकारकी है ॥ ८ ॥ इसके प्रत्येककी फिर सात्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन तीन प्रकार जाननी चाहिये अनेक जन्ममें उत्पन्न किये हुए प्राक्तनकर्मको संचित कहते हैं ॥९॥ हे भूपते ! संचित कर्म शुभहो वा अशुभ हो अथवा बहुत कालका हो प्राणिगणोंको अवश्यही उस अच्छे बुरे कर्मका फल भोगना पड़ेगा ॥ १० ॥ जीवगण जन्म जन्म में किये संचित कर्मोंका फल भोगे बिना वह सौ करोड़ कल्पमें भी नष्ट नहीं होता ॥ ११ ॥ जो कर्म करना आरम्भ किया है इस समय भी वह नष्ट नहीं होता इसको ही वर्त्तमान कर्म कहते हैं जीव देहधारण करके शुभ हो अथवा अशुभ हो यह वर्त्तमानकर्म सम्पादन करते हैं ॥ १२ ॥ देहारम्भके समय कल्पपूर्वमें किये हुए संचितकर्मोंमें कुछेक अंश

कर्मणस्तु त्रिधा प्रोक्ता गतिस्तत्त्वविदां वरैः ॥ संचितं वर्तमानं च प्रारब्धमिति भेदतः ॥८॥ अनेकजन्मसंजातं प्राक्तनं संचितं स्मृतम् ॥ सात्विकं राजसं कर्म तामसं त्रिविधं पुनः ॥९॥ शुभं वाऽप्यशुभं भूप संचितं बहुकालिकम् ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं सुकृतं दुष्कृतं तथा ॥ १० ॥ जन्मजन्मनि देवानां संचितानां च कर्मणाम् ॥ निःशेषस्तु क्षयो नाभूत्कल्पकोटिशतैरपि ॥ ११ ॥ क्रियमाणं च यत्कर्म वर्तमानं तदुच्यते ॥ देहं प्राप्य शुभं वाऽपि ह्यशुभं वा समाचरेत् ॥ १२ ॥ संचितानां पुनर्मध्यात्समाहृत्य कियान्किल ॥ देहारंभे च समये कालः प्रेरयतीव तत् ॥ १३ ॥ प्रारब्धं कर्म विज्ञेयं भोगात्तस्य क्षयः स्मृतः ॥ प्राणिभिः खलु भोक्तव्यं प्रारब्धं नात्र संशयः ॥ १४ ॥ पुरा कृतानि राजेंद्र ह्यशुभानि शुभानि च ॥ अवश्यमेव कर्माणि भोक्तव्यानीति निश्चयः ॥ १५ ॥ देवैर्मनुष्यैरसुरैर्यक्षगंधर्व किन्नरैः ॥ कर्मैव हि महाराज देहारंभस्य कारणम् ॥ १६ ॥ कर्मक्षये जन्मनाशः प्राणिनां नात्र संशयः ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र इन्द्राद्याश्च सुरास्तथा ॥ १७ ॥

हरण करके भोगके निमित्त प्रेरण करता है ॥ १३ ॥ इसको ही प्रारब्ध कर्म कहते हैं फलके भोगसे वह नष्ट होता है प्राणियोंको अवश्यही यह प्रारब्ध कर्म्म भोगना पड़ेगा ॥१४॥ हे महाराज ! देवता हो वा मनुष्य हो असुर हो वा यक्ष हो गन्धर्व हो अथवा किन्नर हो पूर्वसें किये हुए धर्म्म अधर्म्मका फल अवश्यही भोगना पड़ेगा, यही स्थि रनिश्चय जानना चाहिये ॥ १५ ॥ पूर्वमें किया हुआ कर्मही देव मनुष्य यक्ष गन्धर्व किन्नर कोई हो सबके देहारम्भका कारण होता है ॥ १६ ॥ कर्मका क्षय होनेसे प्राणियोंका जन्म नष्ट होता है इसमें संशय नहीं है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र और सुरगण ॥ १७ ॥

तथा दानव यक्ष गन्धर्वादि सबही कर्मके वशीभूत हैं हे नृप ! कर्मके विना देहिगणोंके सुख दुःख भोगनेका कारणस्वरूप देहसम्बन्ध किस प्रकार उपस्थित हो सकता है अतएव हे राजेन्द्र ! कालके परिपाकसे अनेक जन्मजनित संचित कर्मोंमें ॥ १८ ॥ १९ ॥ किसी कर्मका वेग उपस्थित होता है जिसका वेग उपस्थित हो वही प्रारब्ध है, इसी प्रारब्धवशसे मनुष्य तथा देवादि सबही जिसप्रकार पुण्य करते हैं ॥ २० ॥ इसी प्रकार पापकार्य्य भी करते हैं, इससे आप जानिये कि इंद्रने पुण्यसे जिसप्रकार देवाधिपत्य प्राप्त किया था उसी प्रकार पाप प्रारब्धसे ब्रह्महत्या कर अपने पदसे भ्रष्ट हुए थे इसमें फिर संदेहका क्या विषय है ? हे राजेन्द्र ! केवल इंद्रही कर्मके वशीभूत नहीं हैं धर्मपुत्र नर और नारायणभी कर्मके वशीभूत हो ॥ २१ ॥ जन्मग्रहण किया था इसमें नर और

दानवा यक्षगंधर्वाः सर्वे कर्मवशाः किल ॥ अन्यथा देहसंबंधः कथं भवति भूपते ॥१८॥ कारणं यस्तु भोगस्य देहिनः सुख दुःखयोः ॥ तस्मादनेकजन्मोत्थसंचितानां च कर्मणाम् ॥ १९ ॥ मध्ये वेगः समायाति कस्य चित्कालपाकतः ॥ तत्प्रारब्धवशात्पुण्यं करोति च यथा तथा ॥ २० ॥ पापं करोति मनुजस्तथा देवादयोऽपि च ॥ तथा नारायणो राजन्नरश्च धर्मजावुभौ ॥ २१ ॥ जातौ कृष्णार्जुनौ काममंशौ नारायणस्य तौ ॥ पुराणपीठिकेयं वै मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ २२ ॥ देवांशः स तु विज्ञेयो यो भवेद्विभवाधिकः ॥ नानृषिः कुरुते काव्यं नारुद्रो रुद्रमर्चते ॥ २३ ॥ नादेवांशो ददात्यन्नं नाविष्णुः पृथिवीपतिः ॥ इंद्रादग्नेर्यमाद्विष्णोर्धनदादिति भूपते ॥ २४ ॥ प्रभुत्वं च प्रभावं च कोपं चैव पराक्रमम् ॥ आदाय क्रियते नूनं शरीरमिति निश्चयः ॥ ॥ २५ ॥ यः कश्चिद्बलवाँल्लोके भाग्य वानथ भोगवान् ॥ विद्यावान्दानवान्वाऽपि स देवांशः प्रपठ्यते ॥ २६ ॥

नारायणके अंशसे अर्ज्जुन और कृष्ण दोनोंही कर्मवशसे नारायणके अंशसे अवतीर्ण हुए थे मुनिगण इनको ही पुराणोंकी पीठिका अर्थात् क्रमरूपसे वर्णन किया है यही प्रमाण है सो वर्णन करते हैं ॥२२॥ जो अतुल ऐश्वर्यवान् हैं उनको देवांश जानना चाहिये, जो मुनि नहीं हैं वे ज्ञानप्रतिपादक शास्त्र प्रणयन नहीं करते जो रुद्र नहीं हैं वे रुद्रकी अर्चना नहीं करते ॥ २३ ॥ जो देवताओंके अंशसे नहीं हैं वे अन्नदान नहीं करते जो विष्णुका अंश नहीं हैं वे पृथिवीपति नहीं होते, हे पृथिवींद्र ! इन्द्र, अग्नि, यम, विष्णु और धनदसे ॥२४॥ प्रभुत्व प्रभाव कोप और पराक्रम ग्रहण कर जीवोंका शरीर बनता है यही स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥२५॥ लोकमें जो कोई पुरुष बलवान् भाग्यवान् भोगवान् विद्यावान् अथवा दानशील है वही पुरुष देवांश कहा जाता है ॥२६॥

हे वसुधाधिप ! इसीप्रकार पाण्डवोंको देवांश और नारायणके समान प्रभावशाली वासुदेवको तो देवरूपही जानना चाहिये ॥ २७ ॥ हे राजन् ! आप निश्चय जानिये कि प्राणिगणोंका शरीर सुखदुःखभोगनेका स्थानहै यह शरीरधारी जीवगणसदाही सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुखभोगकरते आते हैं ॥२८॥ कोईभी देही (जीवात्मा) स्वाधीन नहीं है सदाही दैवके आधीन हैं वे अपने वशमें न रहकर दैवके वशीभूतहो जन्म, मृत्यु सुख और दुःख पाते हैं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! दैव जो सबकी अपेक्षा बलवान् है इस विषयका निदर्शन देखिये, पाण्डवोंने प्रथम वनमें जन्म ग्रहण कर उसके उपरांत अपने घर गये थे अनन्तर अपने बाहुबलसे राजसूयमहायज्ञका अनुष्ठान किया ॥ ३० ॥ फिर कठोर दुःखदायक वनवासको प्राप्त हुए तदनन्तर अर्ज्जुनने कठिन तपस्या की जो अजिते

तथैवैते समाख्याताः पांडवाः पृथिवीपते ॥ देवांशो वासुदेवोऽपि नारायणसमद्युतिः ॥२७॥ शरीरं प्राणिनां नूनं भाजनं सुख दुःखयोः ॥ शरीरी प्राप्नुयात्कामं सुखदुःखमनंतरम् ॥ २८ ॥ देहिनास्ति वशः कोऽपि दैवाधीनः सदैव हि ॥ जननं मरणं दुःखं सुखं प्राप्नोति चावशः ॥ २९ ॥ पांडवास्ते वने जाताः प्राप्तस्तु स्वगृहं पुनः ॥ स्वबाहुबलतः पश्चाद्राजसूयक्रतूत्तमम् ॥ ३० ॥ वनवासं पुनः प्राप्ता बहुदुःखकरं परम् ॥ अर्जुनेन तपस्तप्तं दुष्करं ह्यजितेंद्रियैः ॥ ३१ ॥ संतुष्टस्तु सुरैर्दत्तं वरदानं पुनः शुभम् ॥ नरदेह कृतं पुण्यं क्व गतं वनवासजम् ॥ ३२ ॥ नरदेहे तपस्तप्तं चोग्रे बदरिकाश्रमे ॥ नार्जुनस्य शरीरे तत्फलदं संबभूव ह ॥ ३३ ॥ प्राणिनां देहासंबंधे गहना कर्मणो गतिः ॥ दुर्ज्ञेया सर्वथा देवैर्मानवानां तु का कथा ॥ ३४ ॥ वासुदेवोऽपि संजातः कारागारेऽतिसंकटे ॥ नीतोऽसौ वासुदेवेन नंदगोपस्य गोकुलम् ॥ ३५ ॥ एकादशैव वर्षाणि संस्थितस्तत्र भारत ॥ पुनः स मथुरां गत्वा जघानोग्रसुतं बलात् ॥ ३६ ॥

न्द्रियोंको दुर्लभ है ॥ ३१ ॥ देवताओंने संतुष्ट हो उसको कल्याणदायक वर प्रदान किया तथापि उसने दुःखके कठोर हाथसे रक्षा नहीं पाई. नरदेहमें किया हुआ वनवास जनित पुण्य कहां चला गया ॥ ३२ ॥ उसने पूर्व जन्ममें नर नामक धर्म पुत्र हो बदरिकाश्रममें जो भारी तपस्या कि थी इस समय अर्ज्जुन देहमें वह फलदाहक नहीं हुई ? ॥ ३३ ॥ प्राणिगणोंके देहसम्बधमें कर्मकी गति अत्यंत दुर्जय है देवता भी जब उसको नहीं जान सकते तब मनुष्योंके सम्बंधमें फिर क्या बात है ॥ ३४ ॥ भगवान् वासुदेवने भी अत्यंत संकटके स्थल कारागारमें जन्म ग्रहण कर अंतमें वसुदेवसे नंदगोपके गोकुलमें आये ॥ ३५ ॥ वहां ग्यारह वर्ष वास कर तथा फिर मथुरामें आये बलपूर्वक उग्रसेनके पुत्र कंसको मारा था ॥ ३६ ॥

अनन्तर उन्होंने अत्यंत दुःखित पिता माताको बंधनसे छुड़ाकर और उग्रसेनको मथुरापुरीका राजा किया था ॥ ३७ ॥ तदनंतर उन्होंने म्लेच्छराज कालय वनके भयसे द्वारकापुरीको गमन किया इस प्रकार जनार्दन कृष्णने देहके वशीभूत हो द्वारावती नगरीमें अनेक कार्य साधन करके महत् पुरुषार्थ साधनके अनंतर कुडुम्बगणोंके सहित प्रभास तीर्थमें देहपरित्याग कर वैकुण्ठको गमन किया था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ प्रभास तीर्थमें विप्रके शापसे सम्पूर्ण यादवगण, पुत्र, पौत्र, सुहृद्, भाई बहन तथा कुलकामिनी गणोंके सहित मृत्युको प्राप्त हुए थे ॥ ४० ॥ हे राजन्! यह मैंने आपके निकट कर्म्मकी गहन गतिविषय वर्णन किया अधिक और क्या कहूं इस कर्मके वशीभूत हो स्वयं वासुदेव भी व्याधके बाणसे मृत्युको प्राप्त हुए थे ॥ ४१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे

मोचयामास पितरौ बंधनाद्भृशदुःखितौ ॥ उग्रसेनं च राजानं चकार मथुरापुरे ॥ ३७ ॥ जगाम द्वारवत्यां स म्लेच्छराजभयात्पुनः ॥ सर्वं भाविवशात्कृष्णः कृतवान्पौरुषं महत् ॥ ३८ ॥ कृत्वा कार्याण्यनेकानि द्वारवत्यां जनार्दनः ॥ देहं त्यक्त्वा प्रभासे तु सकुटुंबो दिवं गतः ॥ ३९ ॥ पुत्राः पौत्राश्च सुहृदो भ्रातरो जामयस्तथा ॥ प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः ॥ ४० ॥ एवं ते कथिता राजन्कर्मणो गहना गतिः ॥ वासुदेवोऽपि व्याधस्य बाणेन निधनं गतः ॥ ४१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ जनमेजय उवाच ॥ भारावतरणार्थाय कथितं जन्म कृष्णयोः ॥ संशयोऽयं द्विजश्रेष्ठ हृदये मम तिष्ठति ॥ १ ॥ पृथिवी गोस्वरूपेण ब्रह्माणं शरणं गता ॥ द्वापरांते ऽतिदीनाऽऽर्ता गुरुभारप्रपीडिता ॥ २ ॥ वेधसा प्रार्थितो विष्णुः कमलापतिरीश्वरः ॥ भूभारोत्तरणार्थाय साधूनां रक्षणाय च ॥ ३ ॥ भगवन्भारते खंडे देवैः सह जनार्दन ॥ अवतारं गृहाणाशु वसुदेवगृहे विभो ॥ ४ ॥ एवं संप्रार्थितो धात्रा भगवान्देवकीसुतः ॥ बभूव सह रामेण भूभारोत्तराणाय वै ॥ ५ ॥

षष्ठस्कन्धे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥ जनमेजयने कहा हे द्विजेंद्र! आपने कहा है कि, पृथ्वीका भार हरण करनेके निमित्त राम और कृष्णने जन्मग्रहण किया था उस विषयका मेरे हृदयमें बड़ा संशय उपस्थित हुआ है ॥ १ ॥ वह आप सुनिये, द्वापरयुगके अवसानमें पृथिवी भारी पापसे आक्रांत और कातर हो गोरूपधारण कर ब्रह्माजीकी शरणागत हुई थी ॥ २ ॥ तब ब्रह्माजी पृथिवीके सहित भूभार हरण और साधुओंकी रक्षाके निमित्त ॥३॥ कमलापति प्रभु विष्णुके निकट जाय प्रार्थना कर कहने लगे हे विभो ! आप पृथ्वीमें वसुदेवके घर अवताररूपसे शीघ्र जन्मग्रहण कीजिये ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीकी इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान्ने पृथिवीका भार हरण करनेके निमित्त बलरामके सहित देवकीके पुत्ररूपसे जन्मग्रहण किया था ॥ ५ ॥

उन्होंने इस पृथ्वीमें अनेक दुष्टस्वभाव पुरुषोंको और अनेकानेक राजाओंको पापबुद्धि और दुराचारी जानकर उनको मार कुछेक पृथिविका भार दूर किया था ॥६॥ इसमें भीष्म, द्रोण, विराट, द्रुपद, बाह्लीक, सोमदत्त और सूर्यका पुत्र कर्ण मारे गये थे ॥७॥ किंतु जिन्होंने धन लूटा तथा हरिकी रमणीगणोंको हरण किया था वह सम्पूर्ण करोड़ करोड़ आभीर शक म्लेछ और निषादगण पृथ्वीमें शेष रहे बुद्धिमान् कृष्णने यदि उनको न मारा तो उनका पृथ्वीका भार दूर करना किस प्रकार हुआ ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे महाभाग! कलिकालमें संपूर्ण प्रजाको पापनिरत देखकर यह महा संशय मेरे चित्तसे किसी प्रकार दूर नहीं होता ॥१०॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! कालके वशीभूत हो जिस युगमें जिस प्रकार स्वभावादि युक्त प्रजा उत्पन्न होती है अन्यथा भाव कभी नहीं होता

कियाउत्तारितो भारो हत्वा दुष्टाननेकशः ॥ ज्ञात्वा सर्वान्दुराचारान्पापबुद्धिनृपानिह ॥६॥ हतो भीष्मो हतो द्रोणो विराटो द्रुपदस्तथा ॥ बाह्लीकः सोमदत्तश्च कर्णो वैकर्तनस्तथा ॥ ७ ॥ यैर्लुंठितं धनं सर्वं हृताश्च हरियोषितः ॥ कथं न नाशिता दुष्टा ये स्थिताः पृथिवीतले ॥ ८ ॥ आभीराश्च शका म्लेच्छा निषादाः कोटिशस्तथा ॥ भारावतरणं किं तत्कृतं कृष्णेन धीमता ॥ ९ ॥ संदेहोऽयं महाभाग न निवर्तति चित्ततः ॥ कलावस्मिन्प्रजाः सर्वाः पश्यतः पापनिश्चयाः ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ राजन्यस्मिन्युगे यादृक्प्रजा भवति कालतः ॥ नान्यथा तद्भवेन्नूनं युगधर्मोऽत्र कारणम् ॥ ११ ॥ ये धर्मरसिका जीवास्ते वै सत्ययुगेऽभवन् ॥ धर्मार्थरसिका ये तु ते नै त्रेतायुगेऽभवन् ॥ १२ ॥ धर्मार्थकामरसिका द्वापरे चाभवन्युगे ॥ अर्थकामपराः सर्वे कलावस्मिन्भवंति हि ॥१३॥ युगधर्मस्तु राजेंद्र न याति व्यत्ययं पुनः ॥ कालः कर्त्ताऽस्ति धर्मस्य ह्यधर्मस्य च वै पुनः ॥ १४ ॥

युगधर्मको इस विषय का उसका विशेष कारण जानना चाहिये ॥ ११ ॥ तब युगधर्मके अनुसार जो दुष्ट अथवा दुराचारी हैं उन सबको मारनेपर संपूर्ण प्रजा एकबार उच्छेद (नाश) हो जाती है इससे सृष्टि स्थिति प्रलयरूप सनातन जगत् प्रवाह विनष्ट होता है इसी कारण भगवान् कृष्णने पृथिवीके भार स्वरूप दानव और दुराचारी क्षत्रियवर्गोंका विनाश किया था, अन्योंका नहीं हे राजन्! जो धर्मपरायण है वह सत्ययुगमें और जो धर्म तथा अर्थपरायण हैं वह त्रेतायुगमें ॥१२॥ जो धर्म और अर्थ तथा कामपरायण हैं वह द्वापर युगमें और अर्थ तथा कामपरायण हैं वह इस कलिकालमें जन्म ग्रहण करते हैं ॥१३॥ हे महाराज! आप निश्चय जानिये कि युगधर्मका व्यत्यय (विपरीत) कभी नहीं होता और काल धर्म तथा अधर्म करने वाले सदाही विद्यमान हैं ॥१४॥

राजाने कहा हे महाभाग सत्ययुगमें जिन सब धर्म परायण महात्माओंने जन्म ग्रहण किया था वह पुण्यशाली मनुष्य इस समय कहां हैं? ॥ १५ ॥ हे पितामह ! जो त्रेता अथवा द्वापर युगमें दानव्रतपरायण थे वह मुनिगणभी इससमय कहां हैं ॥ १६ ॥ और इस वर्तमान कलि युगमें जो सम्पूर्ण दयारहित तथा निर्लज्ज मनुष्य विद्यमान हैं वह पापिष्ठदेव और गुरुनिंदक गण सत्ययुगके समय कहां जायँगे ॥ १७ ॥ हे महामते ! मैं यह संपूर्णधर्मनिर्णयको सुननेके निमित्त अत्यंत उत्सुक हुआ हूं आप कृपाकरके इन सबका गूढतत्वविस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥१८॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! जो मनुष्य सत्ययुगमें इस पृथ्वीके ऊपर जन्मग्रहण करता है वह पुण्यजनित कर्मोंके अनुष्ठानसे देवलोकको जाता है ॥१९॥ ये नृपसत्तम ! विप्रवर्ग क्षत्रिय वैश्य और शूद्रगण अपने अपने धर्मकार्यमें

ये तु सत्ययुगे जीवा भवंति धर्मतत्पराः ॥ कुत्र तेऽद्य महाभाग तिष्ठंति पुण्यभागिनः ॥ १५ ॥ त्रेतायुगे द्वापरे वा ये दानव्रतकारकाः ॥ वर्तंते मुनयः श्रेष्ठ कुत्र ब्रूहि पितामह ॥ १६ ॥ कलावद्य दुराचारा येऽत्र संति गतत्रपाः ॥ आद्ये युगे क्व यास्यंति पापिष्ठा देवनिंदकाः ॥ १७ ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥ सर्वथा श्रोतुकामोऽस्मि यदेतद्धर्मनिर्णयम् ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ ये वै कृतयुगे राजन्संभवंतीह मानवाः ॥ कृता ते पुण्यकर्माणिदेवलोकान्व्रजंति वै ॥१९॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम ॥ स्वधर्मनिरता यांति लोकान्कर्मजितान्किल ॥ २० ॥ सत्यं दया तथा दानं स्वदारगमनं तथा ॥ अद्रोहः सर्वभूतेषु समता सर्वजंतुषु ॥ २१ ॥ एतत्साधारणं धर्मं कृत्वा सत्ययुगे पुनः ॥ स्वर्गं यांतीतरे वर्णा धर्मतो रजकादयः॥२२॥तथा त्रेतायुगे राजन्द्वापरेऽथ युगे तथा ॥ कलावस्मिन्युगे पापा नरकं यांति मानवाः ॥ २३ ॥ तावत्तिष्ठंति ते तत्र यावत्स्याद्युगपर्ययः ॥ पुनश्च मानुषे लोके भवंति भुवि मानवाः ॥ २४ ॥ यदा सत्ययुगस्यादिः कलेरंतश्च पार्थिव ॥ तदा स्वर्गात्पुण्यकृतो जायंते किल मानवाः ॥२५॥

निरत रहकर अपने अपने धर्मार्जित लोकमें जाते हैं ॥ २० ॥ सत्य दया, दान, स्वदारगमन, अहिंसा और सब जीवोंके प्रति समान भावसे दया, ॥२१॥ यह सब साधारण धर्मका आचरण करके वह धर्मके बलसे संपूर्ण रजकादि नीचवर्ण भी स्वर्गको जाते हैं ॥ २२ ॥ इसीप्रकार त्रेता और द्वापर युगमेंभी अपने अपने धर्मार्जित पुण्यके बलसे मनुष्यगण स्वर्गमें जाते हैं ॥ २३ ॥ किंतु इस कलियुगमें पापासक्त मनुष्यगण नरकमें जाकर युगके विपर्यय (समाप्ति) पर्यंत उस घोर नरकमें वासकर तदनन्तर फिर इस पृथ्वीमें जन्म ग्रहण करते हैं ॥ २४ ॥ हे महाराज ! जब सतयुगका आदि और कलियुगका अंत होता है उसी समय पुण्यवान् महात्मा मनुष्य स्वर्गसे पृथ्वीमें जन्मग्रहण करते हैं ॥ २५ ॥

और जब कलियुगका आदि और द्वापर युगका अंत उपस्थित होता है उसी समय पापीगण नरकसे पृथ्वीमें फिर मनुष्यजन्म ग्रहण करते हैं ॥ २६ ॥ हे महाराज ! कालका आचार इसी प्रकार जानना चाहिये, कभी उसके अन्यथा नहीं होता देखो कलियुग असत्यकार्य करनेवाला है इसी कारणसे कलियुगकी सब प्रजाभी उसीके अनुरूप पापाचारी होती है ॥ २७ ॥ कभी कभी दैवयोगसे इन प्राणियोंके जन्म ग्रहणकी विपरीतता होती है इसीकारण कलिकालमें जो सदाचरण करता है वह द्वापरयुगका मनुष्य होता है ॥ २८ ॥ इसीप्रकार सत्कार्य करके द्वापरके युगका मनुष्य त्रेतायुगमें और त्रेताका मनुष्य सत्युगमें जन्म ग्रहण करता है और जो सत्ययुगमें दुष्ट है वह क्रमानुसार कलियुगकाही मनुष्य होता है ॥ २९ ॥ जीवगणअपने किये कर्मफलके प्रभावसे

यदा कलियुगस्यादिर्द्वापरस्य क्षयस्तथा ॥ नरकात्पापिनः सर्वे भवंति भुवि मानवाः ॥२६॥ एवं कालसमाचारो नान्यथाऽभूत्कदाचन॥ तस्मात्कलिरसत्कर्ता तस्मिंस्तु तादृशी प्रजा॥२७॥ कदाचिद्दैवयोगात्तु प्राणिनां व्यत्ययो भवेत् ॥ कलौ ये साधवः केचिद्द्वापरे संभवंतिते ॥२८॥ अथ त्रेतायुगे केचित्केचित्सत्ययुगे तथा ॥ दुष्टाः सत्ययुगे ये तु ते भवंति कलावपि ॥२९॥ कृतकर्मप्रभावेण प्राप्नुवंत्यसुखानि च ॥ पुनश्च तादृशं कर्म कुर्वंति युगभावतः ॥ ३० ॥ जनमेजय उवाच ॥ युगधर्मान्महाभाग ब्रूहि सर्वानशेषतः ॥ यस्मिन्वै यादृशो धर्मो ज्ञातुमिच्छामि तं तथा ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच॥ निबोध नृपशार्दूल दृष्टांतं ते ब्रवीम्यहम् ॥ साधूनामपि चेतांसि युगभावाद्भ्रमंति हि ॥ ३२ ॥ पितुर्यथा ते राजेन्द्र बुद्धिर्विप्रावहेलने ॥ कृता वै कलिना राजन्धर्मज्ञस्य महात्मनः ॥ ३३ ॥ अन्यथा क्षत्रियो राजा ययातिकुलसंभवः ॥ तापसस्य गले सर्पं मृतं कस्मादयोजयत् ॥ ३४ ॥

असुख भोगकरभी युग धर्मके कारण फिर इसी प्रकार कर्म करके उस फलका अत्यंत कष्ट भोगते हैं ॥ ३० ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आप भलीभाँति युगधर्मका विषय कहिये कि,सत्ययुगमें किसप्रकार धर्म था उसके सुननेकी मैं अत्यंत अभिलाषा करता हूं ॥३१॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! मैं आपके निकट युगधर्मका विषय विस्तारपूर्वक कहता हूं आप मनलगाकर सुनिये. हे नृपवर ! युगधर्मके अनुसार साधुगणोंका मन विचलित होता है ॥ ३२ ॥ देखो! आपके पिता महात्मा और धर्मात्मा थे तथापि दुष्टमति कलिने उनके चित्तकी वृत्तिको कलुषित करके उनको ब्राह्मणोंके अपमानार्थ प्रवर्तित किया था ॥ ३३ ॥ उन्होंने क्षत्रियवर और ययाति कुलमें उत्पन्न राजा होकर भी तपस्वीके गलेमें मरा हुआ सर्प क्यों डाला था ? ॥ ३४ ॥

दे. भा. ॥३५॥ अतएव हे महाराज ! संपूर्ण कार्य युगधर्मके बलसे होते हैं, यह पंडितगणभी स्वीकार करते हैं आप विशेष यत्नसे धर्मकार्यका अनुष्ठना करें इससे युगकी प्रबलता होनेपरभी चेष्टासे कुछेक धर्म कर्म अनुष्ठित हो सकता है ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! पुण्यमय सत्ययुगके समय वेदपारग ब्राह्मण देवीके दर्शनकी इच्छासे सदाही परमशक्तिकी अर्चनमें निरत ॥ ३६ ॥ गायत्री और प्रणव मंत्रमें तथा गायत्री ध्यानमें आसक्त रहकर एक मात्र मायाबीज मंत्रका जप करते ॥ ३७ ॥ समस्तही विप्रगण अपनेअपने ग्राममें महामाया अंबिकाका मंदिर बनानेमें उत्सुक हो सत्य शौच और दयायुक्त मनसे अपने कर्मोंमें निरत रहते ॥ ३८ ॥ तत्त्व ज्ञानमें निपुणक्षत्रियगण सदाही त्रयीविहित (तीनों वेदोंमें कहे) कर्मका अनुष्ठान करके प्रजाके प्रति पालन करनेमें

सर्वं युगबलं राजन्वेदितव्यं विजानता॥ प्रयत्नेन हि कर्तव्यं धर्मकर्म विशेषतः ॥ ३५ ॥ नूनं सत्ययुगे राजन्ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ परा
शक्त्यर्चनरता देवीदर्शनलालसाः ॥ ३६ ॥ गायत्रीप्रणवासक्ता गायत्रीध्यानकारिणः ॥ गायत्रीजपसंसक्ता मायाबीजैकजापिनः ॥ ३७ ॥
ग्रामेग्रामे परांबायाः प्रासादकरणोत्सुकाः ॥ स्वकर्मनिरताः सर्वे सत्यशौचदयान्विताः ॥ ३८ ॥ त्रय्युक्तकर्मनिरतास्तत्त्वज्ञान विशारदाः ॥
अभवन्क्षत्रियास्तत्र प्रजाभरणतत्पराः ॥३९॥ वैश्यास्तु कृषिवाणिज्यगोसेवानिरतास्तथा ॥ शूद्राः सेवापरास्तत्र पुण्ये सत्ययुगे नृप॥४०॥
परांबा पूजनासक्ताः सर्वे वर्णाः परे युगे ॥ तथा त्रेतायुगे किंचिन्न्यूना धर्मस्य संस्थितिः ॥४१॥ द्वापरे च विशेषेण न्यूना सत्युगस्थितिः ॥
पूर्वं ये राक्षसा राजंस्ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ४२ ॥ पाखंडनिरताः प्रायो भवंति जनवंचकाः॥ असत्यवादिनः सर्वे वेदधर्मविवर्जिताः
॥ ४३ ॥ दांभिकालोकचतुरा मानिनो वेदवर्जिताः ॥ शूद्रसेवापराः केचिन्नानाधर्म प्रवर्तकाः ॥ ४४ ॥

तत्पर रहते ॥ ३९ ॥ वैश्यगण कृषि वाणिज्य और गोसेवामें अनुरक्त तथा शूद्रगण भी सदाही ब्राह्मणादि तीनों वर्गोंकी सेवामें निरत रहते ॥ ४० ॥ इस प्रकार सत्ययुगमें संपूर्ण वर्णही परमशक्ति अम्बिका देवीके पूजामें अनुरक्त रहते किंतु त्रेतायुगमें उक्तधर्मकी मर्यादा कुछेक कम हुई थी, ॥ ४१ ॥
भा.टी.ष. इसी प्रकार द्वापरयुगमें सत्ययुगकी धर्ममर्यादा भलीभांति न्यूनताको प्राप्त हो गई जो पूर्वके युगमें राक्षस थे वही कलियुगमें ऐसे ब्राह्मण हुए ॥ ४२ ॥ जो
अ० ११ पाखण्डमें निरत बहुधा जनोंके छलनेवाले असत्यवादी गूढ़ वेदके धर्मसे रहित ॥ ४३ ॥ दांभिक लोकवार्त्तामें बड़े चतुर मानी वेदवादवर्ज्जित शूद्रोंकी सेवामें तत्पर नानाप्रकारके धर्मके चलानेवाले ॥४४॥

वेदकी निंदा करनेवाले क्रूर धर्मभ्रष्ठ मुँहदेखी कहनेवाले हुए हे राजन् ! जैसे जैसे कलियुग वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ तैसे तैसे सत्यही मूल जिस धर्मका उसका क्षय होजाता है उसी प्रकार क्षत्रियवैश्य शूद्रभी धर्म वर्जित होगये ॥ ४६ ॥ और शेष अंत्यज महाझूंठे पापी हुए कलियुगमें ब्राह्मण शूद्रोंके धर्ममें परायण, दान लेनेमें निपुण होंगे ॥ ४७ ॥ हे नृपसत्तम ! कलियुगकी वृद्धिमें यह सब होगा स्त्री काम लोभ और मोहयुक्त होकर अत्यंत प्रबल अपनी इच्छानुसार चलनेवाली ॥ ४८ ॥ पापका आचरण करनेवाली और मिथ्या बोलनेवाली होकर लोक समाजको महा क्लेश करनेवाली होती है और अपनेको धर्म भाषणमें परम पंडित जानकर उपदेश देनेमें तत्पर और पतिके छलनेमें प्रवृत्त ॥४९॥और अत्यंत पापिष्ठ होती हैं हे नृप सत्तम ! आहारकी और चित्तकी शुद्धि

वेदनिंदाकराः क्रूरा धर्मभ्रष्टातिवादुकाः ॥ यथायथा कलिर्वृद्धिं याति राजंस्तथातथा ॥ ४५ ॥ धर्मस्य सत्य मूलस्य क्षयः सर्वात्मना भवेत्॥तथैव क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च धर्मवर्जिताः ॥ ४६ ॥ असत्यवादिनः पापास्तथा वर्णेतराः कलौ ॥ शूद्रधर्मरता विप्राः प्रतिग्रह परायणाः ॥४७॥ भविष्यंति कलौ राजन्युगे वृद्धिं गताः किल ॥ कामचाराः स्त्रियः कामलोभमोहसमन्विताः ॥ ४८ ॥ पापा मिथ्या भिवादिन्यः सदा क्लेशरता नृप ॥ स्वभर्तृवंचका नित्यं धर्मभाषणपंडिताः ॥ ४९ ॥ भवंत्येवंविधा नार्यः पापिष्ठाश्च कलौ युगे ॥ आहा रशुद्ध्या नृपते चित्तशुद्धिस्तु जायते ॥ ५० ॥ शुद्धे चित्ते प्रकाशः स्याद्धर्मस्य नृपसत्तम ॥ वृत्तसंकरदोषेण जायते धर्मसंकरः ॥५१॥ धर्मस्य संकरे जाते नूनं स्याद्वर्णसंकरः॥ एवं कलियुगे भूप सर्वधर्मविवर्जिते ॥ ५२ ॥ स्ववर्णधर्मवार्तैषा न कुत्राप्युपलभ्यते ॥ महांतोऽपि च धर्मज्ञा अधर्मं कुर्वते नृप ॥ ५३ ॥ कलिस्वभाव एवैष परिहार्यो न केनचित् ॥ तस्मादत्र मनुष्याणां स्वभावापापकारिणाम् ॥ ५४ ॥ निष्कृतिर्न हि राजेंद्र सामान्योपायतो भवेत् ॥ जनमेजय उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ ५५ ॥

होती है ॥५०॥ इससे धर्म भलीभांति प्रकाशित होता है. वर्णाश्रमधर्मके आचारके संकर दोषसेही ॥ ५१ ॥ धर्म संकर दोषकी उत्पत्ति होती है. धर्मसंकरके उपस्थित होनेपर वर्णसंकर दोषकी उत्पत्ति होती है. हे राजन् ! इस प्रकार कलियुगमें क्रमानुसार सब धर्मोंका लोप होनेसे ॥ ५२ ॥ अपने वर्णके धर्मकी बात फिर कहीं भी नहीं सुनी जाती. हे नृपवर ! इस युगमें धर्मके जाननेवाले महान् पुरुष भी अधर्ममें प्रवृत्त होते हैं ॥ ५३ ॥ कलिका स्वभाव ही इस प्रकार है उसको त्याग करनेमें कोई समर्थ नहीं होते. अतएव हे राजेंद्र ! इस समय मनुष्य स्वभावके नियमानुसारही पाप कार्यमें नियुक्त होते हैं ॥ ५४ ॥ इसी कारण सामान्य उपायसे उनकी निष्कृति नहीं हो सकती. जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आप संपूर्ण धर्मोंके जाननेवाले और सर्व शास्त्र विशारद हैं ॥ ५५ ॥

इस अधर्मवाले कलियुगमें नरगणोंकी गति किस प्रकार होगी? यदि कोई उपाय हो तो आप कृपा करके वह मुझसे कहिये ॥ ५६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! लिये कलियुगके पापोंसे निस्तार पानेके एकमात्र उपाय विद्यमान है और दूसरा कोई नहीं है जीवगण संपूर्ण पाप और दोषके दूर करनेके लिये महादेवीके चरण कमलोंका ध्यान करें ॥ ५७ ॥ हे नरेंद्र ! महादेवजीके पापदाहक नाममें जितनी शक्ति है इस सम्पूर्ण संसारमें उतना पाप नहीं है. अतएव इसमें फिर भयका कारण कहां है? ॥ ५८ ॥ वह नाम अज्ञान द्वारा लीलापूर्वक उच्चारण होनेपर भी वह क्या क्या अनिर्वचनीय फल प्रदान करती हैं उसको विष्णु तथा रुद्र इत्यादि भी जाननेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ५९ ॥ हे राजन् !श्रीदेवीके नामको स्मरण करनेसेही पापोंका प्रायश्चित होता है, अतएव कलिसे

कलावधर्मबहुले नराणां का गतिर्भवेत् ॥ यद्यस्ति तदुपायश्चेद्दयया तं वदस्व मे ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ एक एव महा राज तत्रोपायोस्ति नाऽपरः ॥ सर्वदोषनिरासार्थं ध्यायेद्देवीपदांबुजम् ॥ ५७ ॥ न संत्यघानि तावंति यावती शक्तिरस्ति हि ॥ नाम्नि देव्याः पापदाहे तस्माद्भीतिः कुतो नृप ॥ ५८ ॥ अवशेनाऽपि यन्नाम लीलयोच्चारितं यदि ॥ किं किं ददाति तज्ज्ञातुं समर्था न हरादयः ॥ ५९ ॥ प्रायश्चित्तं तु पापानां श्रीदेवीनामसंस्मृतिः ॥ तस्मात्कलिभयाद्राजन्पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः ॥ ६० ॥ निरंतरं परांबाया नामस्मरणं चरेत् ॥ छित्त्वा भित्त्वा च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ ६१ ॥ देवीं नमति भक्त्या यो न स पापैर्विलिप्यते ॥ रहस्यं सर्वशास्त्राणां मया राजन्नुदीरितम् ॥ ६२ ॥ विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदांबुजम् ॥ अजपां नाम गायत्रीं जपंति निखिला जनाः ॥ ६३ ॥ महिमानं न जानंति मायाया वैभवं महत् ॥ गायत्रीं ब्राह्मणाः सर्वे जपंति हृदयांतरे ॥ ६४ ॥

डरे हुए मनुष्यगण पुण्यक्षेत्रमें वास करके ॥ ६० ॥ सदाही परमादेवीका नाम स्मरण करें. इस सम्पूर्ण जगत्में वास करनेवाले जीवगणोंका छेदभेद और विनाश करके भी ॥६१॥ जो देवीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह मनुष्य पापमें लिप्त नहीं होता, हे राजन् ! मैंने सम्पूर्ण शास्त्रोंका गूढ़ तत्व कीर्तन किया ॥ ६२ ॥ यह सब विषय भलीभांति विचारकर आप सदाही देवीके चरण कमलोंका ध्यान कीजिये सम्पूर्ण जीव गण अजपा नामक गायत्रीका सदाही जप करते हैं ॥ ६३ ॥ किंतु उसकी महिमा नहीं जानते. हे राजन् ! इससे मायाका महत् वैभवही प्रतिपादित होता है. ब्राह्मण हृदयके भीतर गायत्री मन्त्रका जप करते हैं ॥६४॥

किंतु उसकी महिमाको नहीं जानते हैं हे नृपवर! इससे भी मायाका महत्प्रभाव मात्रही प्रकाशित होता है. हे राजन्! आपने युग धर्मकी व्यवस्थाके विषयमें जो पूँछा था वह सम्पूर्ण कहा ॥६५॥ इस समय आप और क्या सुननेकी अभिलाषा करते हैं? ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर! पृथिवीमें देवता और मनुष्यगणोंके गमन योग्य पवित्र क्षेत्र और नदी इत्यादि जो सम्पूर्ण पुण्यतीर्थ विद्यमान हैं आप उन सबके नाम ॥ १ ॥ उन सब तीर्थोंमें स्नानादि करनेसे जो फल होता है और उन संम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्राके विधि नियम किस प्रकार हैं वह सब भलीभांति कहिये ॥२॥ व्यास जीने कहा हे राजन्! अनेक प्रकारके तीर्थोंका विषय और जिन सब तीर्थोंमें देवीके श्रेष्ठ मंदिर

महिमानं न जानंति मायाया वैभवं महत् ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं तत्त्वया नृप ॥ ६५ ॥ युगधर्मव्यवस्थायां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंध एकादशोऽध्यायः ॥११॥ राजोवाच ॥ तीर्थानि भुवि पुण्यानि ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥ गम्यानि मानवैर्देवैः क्षेत्राणि सरितस्तथा ॥१॥ फलं च यादृशं यत्र तीर्थेषु स्नानदानतः विधिं तु तीर्थयात्रायां नियमांश्च विशेषतः ॥२॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तीर्थानि विविधानि च ॥ येषु तीर्थेषु देवीनां प्रशस्तान्यायनानि च ॥ ३ ॥ नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा यमुना च सरस्वती ॥ नर्मदा गंडकी सिंधुर्गोमती तमसा तथा ॥ ४ ॥ कावेरी चंद्रभागा च पुण्या वेत्रवती शुभा ॥ चर्मण्वती च सरयूस्तापी साभ्रमती तथा ॥ ५ ॥ एताश्च कथिता राजन्नन्याश्च शतशः पुनः ॥ तासां समुद्रगाः पुण्या स्वल्पपुण्याः ह्यनब्धिगाः ॥ ६ ॥ समुद्रगानां ताः पुण्याः सर्वदौघव हास्तु याः ॥ मासद्वयं श्रावणादौ ताश्च सर्वा रजस्वलाः ॥ ७ ॥ भवंति वृष्टियोगेन ग्राम्यवारिवहास्तथा ॥ पुष्करं च कुरुक्षेत्रं धर्मारण्यं सुपावनम् ॥ ८ ॥

विद्यमान हैं वह सब कहता हूं सुनो ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण नदियोंमें गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गण्डकी, सिंधु, गोमती तमसा ॥ ४ ॥ कावेरी, चन्द्रभागा, वेत्रवती चर्म्मण्वती, सरयू, तापी और साबरमती यह सब नदियां प्रधान और पवित्र हैं ॥५॥ इनके अतिरिक्त शत शत नदी पृथ्वीमें विद्यमान हैं उनमें जो सम्पूर्ण नदी समुद्रमें गिरती हैं वह सबही अत्यन्त पवित्र हैं और जो नदियें समुद्रमें नहीं जाती वह उनकी अपेक्षा अल्प पवित्र हैं ॥ ६ ॥ और समुद्रगामिनी नदियोंमें जो सर्वदाही प्रबल प्रवाहसे प्रवाहित हैं उनको अत्यन्त पवित्र जानना चहिये, किंतु श्रावण और भाद्र इन दो महीनोंमें वह संपूर्ण नदी रजस्वला होती हैं ॥७॥ और कितनी एक नदियें वृष्टिसे प्रवाहित होकर ग्रामोपयोगी जल मात्र बहन करती हैं. हे राजन्! पुष्कर, कुरुक्षेत्र, पवित्र, धर्मारण्य ॥ ८ ॥

प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य और अर्बुदा रण्य यह संपूर्ण क्षेत्रही पुण्यदाता विख्यात हैं ॥ ९ ॥ हे महाराज! पर्वतोंमें श्रीशैल सुमेरु और गंधमादन यह समस्त ही पवित्र हैं पुण्यदायक सरोवरमें परम पवित्र सर्वत्र विख्यात मानस ॥ १० ॥ बिंदु सरोवर और अक्षोद भलीभाँति कहे हैं उदारात्म मुनिगणोंके सम्पूर्ण आश्रमही पुण्यजनक हैं ॥ ११ ॥ उनमें सदा पुण्यदायक बदरिकाश्रम सबकी अपेक्षा विख्यात है इस स्थानमें नरनारायण नामकपुरातन दोनों मुनियोंने तपस्या की थी ॥ १२ ॥ और वामनाश्रम तथा शतयूपाश्रमभी भलीभाँति विख्यात है इसप्रकार जिसने जिस स्थानमें तपस्या करी थी उसके ही नामानुसार वह आश्रम विख्यात हुआ ॥ १३ ॥ हे महाराज ! मुनिगणोंके पृथ्वीमें इसप्रकार असंख्य असंख्य परमपावन सम्पूर्ण स्थान कहे ॥ १४ ॥ इन सम्पूर्ण

प्रभासं च प्रयागं च नैमिषारण्यमेव च ॥ विश्रुतं चार्बुदारण्यं शैलाश्च पावनास्तथा ॥ ९ ॥ श्रीशैलश्च सुमेरुश्च पर्वतो गंधमादनः ॥ सरांसि चैव पुण्यानि मानसं सर्वविश्रुतम् ॥ १० ॥ तथा विंदुसरः श्रेष्ठमच्छोदं नाम पावनम् ॥ आश्रमास्तु तथा पुण्या मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ११ ॥ विश्रुतस्तु सदा पुण्यः ख्यातो बदरिकाश्रमः ॥ नारायणौ यत्र तेपाते तौ मुनी तपः ॥१२॥ वामनाश्रम आख्यातः शतयूपाश्रमस्तथा ॥ येन यत्र तपस्तप्तं तस्य नाम्नाऽतिविश्रुतः ॥ १३ ॥ एवं पुण्यानि स्थानानि ह्यसंख्यातानि भूतले ॥ मुनिभिः परिगीतानि पावनानि महीपते ॥ १४ ॥ एषु स्थानेषु सर्वत्र देवीस्थानानि भूपते ॥ दर्शनात्पापहारीणि वसंति नियमेन च ॥ १५ ॥ कथयिष्यामि तान्यग्रे प्रसंगेन च कानिचित् ॥ तीर्थानि नृप दानानि व्रतानि च मखास्तथा ॥१६॥ तपांसि पुण्यकर्माणि सापेक्षाणि महीमते द्रव्यशुद्धिं क्रिया शुद्धिं मनः शुद्धिमपेक्ष्य च ॥ १७ पावनानि हि तीर्थानि तपांसि च व्रतानि च कदाचिद्द्रव्यशुद्धिः स्यात्क्रियाशुद्धिः कदाचन ॥ १८ ॥ दुर्लभा मनसः शुद्धिः सर्वेषां सर्वदा नृप ॥ मनस्तु चञ्चलं राजन्ननेकविषयाश्रितम् ॥ १९ ॥

पुण्यस्थानोंमें सर्वत्र देवीके स्थान विद्यमान हैं उन सब स्थानोंका दर्शन करनेसे पापसमूह नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ उन्हीं स्थानोंमें देवीके भक्तगण नियम अवलम्बन करके वास करते हैं इन सब स्थानोंमें कितने एक विषय प्रसङ्ग क्रमानुसार फिर वर्णन करूंगा हे नृपवर ! तीर्थ, दान, व्रत, यज्ञ ॥ १६ ॥ तपस्या और सम्पूर्ण पुण्यकर्म परस्पर सापेक्ष हैं द्रव्य शुद्धि क्रियाशुद्धि और चित्तशुद्धिकी अपेक्षा करके ॥ १७ ॥ तीर्थ तपस्या और व्रत सम्पूर्ण पुण्यदायक होते हैं द्रव्यशुद्धि और क्रियाशुद्धि किसीको भी कदाचित हो सकती है ॥१८॥ किंतु सबके पक्षमें चित्तशुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है हे नृपवर ! मन सर्वदाही अनेक प्रकार भिन्न भिन्न विषयका आश्रय करता है अतएव सर्वदाही चंचल है ॥ १९ ॥

इस कारण अनेक प्रकार भावयुक्त मनकी विशुद्धता सहजमेंही किस प्रकार हो सकती है? काम, क्रोध, लोभ, अंहकार और मद ॥ २० ॥ यह तप तीर्थ और व्रतादिमें सब प्रकार विघ्न करते हैं. हे महाराज! अहिंसा सत्य (चोरी न करना) पवित्रता इंद्रियनिग्रह ॥२१॥ और अपना धर्मपालन यह सम्पूर्ण समस्त तीर्थोंका फल प्रदान करते हैं तीर्थयात्राके समय मार्गमें नित्यकर्म्म त्याग और संसर्ग दोषके कारण ॥ २२ ॥ तीर्थगमन वृथा होकर वह केवल पापमात्रही होता है और तीर्थका जल केवल देहका मलही धोसकता है ॥ २३ ॥ किंतु कभी मानसिक मल धोनेमें समर्थ नहीं होता. यदि तीर्थके जलसे मानसिक मल धुल सकता तो क्यों गंगाके तटपर वास करनेवाले मुनिगण ॥ २४ ॥ ईश्वरपरायण होकर भी परस्पर द्रोहमें निरत होते. वसिष्ठके समान

कथं शुद्धं भवेद्राजन्नाना भावसमाश्रितम् ॥ कामक्रोधौ तथा लोभो ह्यहंकारो मदस्तथा ॥ २० ॥ सर्वं विघ्नकराह्येते तपस्तीर्थव्रतेषु च
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः ॥२१॥ स्वधर्मपालनं राजन्सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ नित्यकर्मपरित्यागान्मार्गे संसर्गदोषतः ॥२२॥
व्यर्थं तीर्थाधिगमनं पापमेवावशिष्यते ॥ क्षालयंति हि तीर्थानि सर्वथा देहजं मलम् ॥२३॥ मानसं क्षालितुं तानि न समर्थानि वै नृप ॥
शक्तानि यदि चेत्तानि गंगातीरनिवासिनः ॥ २४ ॥ मुनयो द्रोहसंयुक्ताः कथं स्युर्भावितेश्वराः ॥ वसिष्ठसदृशाः प्रह्वा विश्वामित्रादयः
किल ॥ २५ ॥ रागद्वेषरताः सर्वे कामक्रोधाकुलाः सदा ॥ चित्तशुद्धिमयं तीर्थं गंगादिभ्योऽतिपावनम् ॥ २६ ॥ यदि स्याद्दैवयोगेन
क्षालयत्यांतरं मलम् ॥ विशेषेण तु सत्संगो ज्ञाननिष्ठस्य भूपते ॥ २७ ॥ न वेदा नच शास्त्राणि न व्रतानि तपांसि न ॥ न मखा न च
दानानि चित्तशुद्धेस्तु कारणम् ॥ २८ ॥ वसिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रो वेदविद्याविशारदः ॥ राग द्वेषान्वितः कामं गंगा तीरसमाश्रितः ॥ २९ ॥
आडीबकं महायुद्धं विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ जातं निरर्थकं द्वेषाद्देवानां विस्मयप्रदम् ॥ ३० ॥

नम्रशील मुनिगण और विश्वामित्रादि ऋषिगण भी ॥ २५ ॥ सर्वदा राग द्वेषमें निरत और कामक्रोधसे अधीर होते हैं अतएव चित्तशुद्धिरूप तीर्थ गंगादितीर्थसे भी अधिक पवित्रता सम्पादन करता है इसमें संदेह नहीं ॥ २६ ॥ हे राजन्! यह अवश्य स्वीकार्य है कि, यदि दैवयोगसे ज्ञाननिष्ठाका भलीभांति सत्संग उपस्थित हो तो निश्चयही उसके मनकी मलीनता धुलसकती है ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र! वेद व शास्त्र व्रत किंवा तपस्या यज्ञ अथवा दान इनमें कोई भी चित्तशुद्धिका कारण नहीं हो सकता ॥ २८ ॥ देखो ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठ वेदविशारद और गंगावासी होकर भी रागद्वेषके वशीभूत हुए थे ॥ २९ ॥ विश्वामित्र और वसिष्ठके निरर्थक विद्वेषसे देवतागणोंको आश्चर्य देनेवाला आडीबक नामक घोर महायुद्ध उपस्थित हुआ था ॥३०॥

इससे परमतपस्वी विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रके कारण वसिष्ठसे शापित होकर बगलेके रूपमें जन्म ग्रहण किया था ॥ ३१ ॥ वसिष्ठऋषिने भी विश्वामित्रसे शापित होकर शरारी नामक विहंग देह धारण करी थी इस प्रकार प्रभावशाली दोनों ऋषिगण आडीबकरूपसे जन्म ग्रहणकर ॥ ३२ ॥ मानसरोवरके तटपर वास करते थे और अत्यंत क्रोधयुक्त मदोन्मत्त सिंहके समान नख चोंच और चरणोंके प्रहारसे ॥ ३३ ॥ अयुतवर्ष १०००० पर्यन्तघोर युद्ध किया था जैसे परस्पर दो सिंह युद्ध करते हों ॥३४॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! किसकारण वह दोनों महर्षि धर्मतत्पर और तपस्वी होकर भी परस्पर शत्रुके आचरणमें प्रवृत्त हुए थे ? ॥ ३५ ॥ वे दोनोंही बुद्धिमान् अतएव शापको मनुष्यका दुःखदायक जानकर भी किस कारणसे परस्परको क्लेशकर शाप दिया था ॥३६॥

विश्वामित्रो बकस्तत्र जातः परमतापसः ॥ शप्तः स तु वसिष्ठेन हरिश्चंद्रस्य कारणात् ॥ ३१ ॥ कौशिकेन वसिष्ठोऽपि शप्त्वाऽऽडीदेहभाक्कृतः ॥ शापादाडीबकौ जातौ तौ मुनी विशदप्रभौ ॥ ३२ ॥ निवासं प्रापतुस्तीरे सरसो मानसस्य च ॥ चक्रतुर्दारुणं युद्धं नखचंचुप्रताडनैः ॥ ३३ ॥ वर्षाणामयुतं यावत्तावृषी रोषसंयुतौ ॥ युयुधाते मदोन्मत्तौ सिंहाविव परस्परम् ॥ ३४ ॥ राजोवाच ॥ कथं तौ मुनिशार्दूलौ तापसौ धर्मतत्परौ ॥ परस्परं वैरपरो संजातौ केन हेतुना ॥ ३५ ॥शापं परस्परं केन कारणेन महामती ॥ दत्तवतौ मिथः क्लेशकारकौ दुःखदौ नृणाम् ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच ॥ हरिश्चंद्रो नृपश्रेष्ठस्त्रिशंकुतनयः पुरा ॥ बभूव रविवंशीयो रामचन्द्रस्य पूर्वजः ॥ ३७ ॥ अनपत्यः स राजर्षिर्वरुणाय महाक्रतुम् ॥ प्रतिजज्ञे पुत्रकामो नरमेधं दुरासदम् ॥ ३८ ॥ वरुणस्तस्य संतुष्टो यज्ञस्य नियमे कृते ॥ दधार गर्भं राज्ञस्तु भार्या परमसुंदरी ॥ ३९ ॥ राजा बभूव संतुष्टो दृष्ट्वा भार्यां सदोहदाम् ॥ चकार विधिवत्कर्म गर्भसंस्कारकारकम् ॥ ४० ॥ सुषुवे तनयं नारी सर्वलक्षण संयुतम् ॥ मुदं प्राप नृपस्तत्र पुत्रे जाते विशांपते ॥ ४१ ॥

व्यासजीने कहा हे नृपवर ! पूर्वकालके समय त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्रने सूर्यवंशमें जन्म ग्रहण किया वह राजाओंमें श्रेष्ठ और रामचन्द्रसे पहले हुए थे ॥३७॥ उन राजर्षिने अपुत्र होनेके कारण वरुणके निकट प्रार्थना की. हे जलाधिपते ! यदि मेरे पुत्र हो तो मैं आपको प्रसन्न करनेके निमित्त उसी पुत्रसे नरमेधयज्ञका अनुमान करूंगा ॥ ३८ ॥ इस प्रकार यज्ञके निमित्त प्रतिज्ञा करनेपर वरुण उनपर सन्तुष्ट हुए अनन्तर राजाकी परमसुन्दरी भार्याने शीघ्रही गर्भधारण किया ॥ ३९ ॥ राजा भार्याको गर्भवती देखकर अत्यन्त संतुष्ट हुए और उसके गर्भसंस्कारके निमित्त सम्पूर्ण कर्म सम्पादन किये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! फिर राजपत्नीके सर्वलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न करनेपर राजा हरिश्चन्द्रने अत्यंत आनंदित होकर ॥ ४१ ॥

विधिपूर्वक जातकर्मादि संस्कार कराया और ब्राह्मणोंको बहुतसा स्वर्ण और दूध देनेवाली गायें दान करीं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार राजगृहमें यथासमय अधिकतर पुत्र जन्म उत्सव हुआ फिर जलाधिपति वरुण विप्रवेष धारणपूर्वक राजभवनमें आये ॥ ४३ ॥ राजाभी उनकी विधिपूर्वक पूजा कर और आसन दे कार्य पूँछने लगा. उन्होंने उनसे कहा हे राजन् ! मैं जलाधिपति वरुण हूं ॥४४॥ आपने पूर्वमें प्रतिज्ञा की थी कि, मैं अपने पुत्रको पशुरूपमें बलिदान कर परम पवित्र नरमेध यज्ञका अनुष्ठान करूंगा उसीके अनुसार वह सम्पूर्ण कार्य पूरा करके सत्यवादी हूंजिये ॥४५ ॥ राजा उनके यह वचन सुनकर विह्वल और मर्माहित हुए और कुछ कालोपरांत मानसिक दुःख दूरकर और हाथ जोड़ वरुण देवीजीसे कहने लगे ॥ ४६ ॥ हे प्रभो! मैंने आपके निकट

कृतवाञ्जातकर्मादि संस्कारविधिमुत्तमम् ॥ ददौ हिरण्यं गा दोग्ध्रीब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥४२॥ जन्मोत्सवेऽतिसंवृत्ते गेहे वै यादसांपतिः आजगाम महाराज विप्रवेषधरस्तथा ॥ ४३ ॥ पूजितः पार्थिवेनाथ दत्त्वा विधिवदासनम् ॥ कार्ये पृष्टेऽब्रवीद्वाक्यं वरुणोऽस्मीति भूप तिम् ॥ ४४ ॥ कुरु यज्ञं सुतं कृत्वा पशुं परमपावनम् ॥ सत्यवाग्भव राजेंन्द्र संकल्पस्तु त्वया कृतः ॥ ४५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विह्वलोऽतिव्यथाकुलः ॥ सस्तंभ्या धि नृपः प्राह वरुणं सत्कृतांजलिः ॥ ४६ ॥ स्वामिन्करोमि तं यज्ञं सर्वथा विधिपूर्वकम् ॥ मया ते यत्प्रतिज्ञातं भवामि सत्य वागहम् ॥ ४७ ॥ पूर्णे मासे विशुद्धचेत धर्मपत्नी सुरोत्तम ॥ विशुद्धायां तु भार्यायां कर्तव्यः सपशुर्मखः ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ते वचने राज्ञा वरुणः स्वगृहं गतः राजा बभूव संतुष्टः किंचिच्चिंतातुरस्तथा ॥ ४९ ॥ पूर्णे मासि पुनः पाशी परीक्षार्थं नृपालये ॥ आजगाम द्विजो भूत्वा सुवेषः सुष्ठुभाषकः ॥ ५० ॥

पूर्वमें जो प्रतिज्ञा की है उसी अनुसार वह यज्ञ विधिपूर्वक करके आपके निकट सत्यवादी हूंगा ॥ ४७ ॥ किंतु हे सुरसत्तम ! एक महीना पूर्ण होनेपर मेरी धर्मपत्नी सूतीकाशौचसे शुद्ध होगी. तदनन्तर अपनी भायाके शुद्ध होनेपर मैं वह नरमेध यज्ञ करूंगा ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वरुण राजा हरिश्चन्द्रका यह वचन सुनकर अपने गृहको चले गये राजा भी उनके जानेसे सन्तुष्ट हुए परंतु पुत्रके विनाशकी शंकासे किञ्चित् चिंतातुर हुए ॥४९॥ फिर एक महीनेपर पाशधर प्रियवादी, वरुण परमपवित्र ब्राह्मण वेश धर राजाकी परीक्षा लेनेके निमित्त फिर राजगृहमें आये ॥ ५० ॥

१ वरुण देवता केवल राजाकी परीक्षा देखनेको आये हैं कि, इसकी दृढता कैसी है ?

तब राजाने उनकी पूजा कर आसन दिया और विनय सहित हेतुपूर्ण वचन कहने लगे ॥ ५१ ॥ हे प्रभो ! मेरा पुत्र इस समय संस्कार रहित है उसको किस प्रकार यूपकाष्ठमें बांधू ? इस कारण उसको संस्कारसे क्षत्रिय करके फिर उस उत्तम यज्ञका अनुष्ठान करूंगा ॥ ५२ ॥ हे देव ! आप मुझको दीन और अपना सेवक जानकर मेरे प्रति करुणा प्रकाश करें तो मैं कृतार्थ हूं. देखो असंस्कृत बालकका किसी विषयमें अधिकार नहीं है, इस कारण आप कुछ काल प्रतीक्षा कीजिये ॥ ५३ ॥ वरुणजीने कहा हे राजन् ! तुम मुझको धोका देकर फिर फिर समय निर्द्धारित करते हो. मैं समझ गया कि, अपुत्र होनेसे इस समय तुमसे पुत्रका स्नेह नहीं छूट सकता ॥५४॥ जो हो हे भूपाल ! तुम्हारे कातर वचनसे इस समय मैं घरको जाता हूं किंतु कुछ काल प्रतीक्षा करके फिर तुम्हारे घर आऊंगा

कृतार्हणं सुखासीनं भूपतिस्तं सुरोत्तमम् ॥ उवाच विनयोपेतो हेतुगर्भं वचस्तदा ॥५१॥ असंस्कृतं सुतं स्वामिन्यूपे बध्नामि तं कथम् ॥ संस्कृत्य क्षत्रियं कृत्वा यजेऽहं यज्ञमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ दयसे यदि देव त्वं ज्ञात्वा दीनं स्वसेवकम् ॥ असंस्कृतस्य बालस्य नाधिकारोऽस्ति कुत्रचित् ॥ ५३ ॥ वरुण उवाच ॥ प्रतारयसि राजेंद्र कृत्वा समयमग्रतः ॥ दुस्त्यजस्तव जानामि सुतस्नेहो ह्यपुत्रिणः ॥५४॥ गृहं व्रजामि भूपाल वचनात्तव कोमलात् ॥ कियत्कालं प्रतीक्ष्याहमागमिष्यामि ते गृहम् ॥ ५५ ॥ भवितव्यं त्वया तात तदा सत्यवचोऽन्वितम् ॥ अन्यथा त्वयि मुंचामि कोपं शापसमन्वितम् ॥ ५६ ॥ राजोवाच समावर्तनकर्मांते सर्वथा यादसांपते ॥ कृत्वा वृत्रं पशुं यज्ञे यजिष्ये विधिपूर्वकम् ॥ ५७ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो वरुणः प्रीति मानसः ॥ तथेत्युक्त्वा ययौ तूर्णं नृपस्तु सुस्थितोऽभवत् ॥ ५८ ॥ रोहिताख्य इति ख्यातः सुतस्तस्य विवृद्धिमान् ॥ संजातश्चतुरः सर्वविद्यानां च विशारदः ॥ ५९ ॥ यज्ञस्य कारणं तेन ज्ञातं सर्वं सविस्तरम् ॥ भयभीतस्ततः सोऽपि मत्वा मरणमात्मनः ॥ ६० ॥

॥५५॥ हे वत्स ! उस समय तुम्हारा वाक्य सत्य हो और यदि इसके अन्यथा होगा तो मैं निःसन्देह तुम्हारे ऊपर शापयुक्त कोपाग्नि निक्षेप करूंगा ॥ ५६ ॥ राजाने कहा हे जलाधिपते ! समावर्त्तन कर्म समापन करनेके पीछे मैं अपने पुत्रको पशुकर विधिपूर्वक महायज्ञका अनुष्ठान करूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ५७ ॥ व्यासजीने कहा वरुण राजाके वचन सुनकर प्रीतिपूर्ण मनसे तथास्तु कह शीघ्र चले गये, तब राजा भी स्थिर हुए ॥ ५८ ॥ इधर राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र रोहित नामसे विख्यात हुआ और आयु बुद्धिके सहित क्रमानुसार चतुर और सर्व विद्या विशारद हुआ ॥ ५९ ॥ वह बालक क्रमक्रमसे यज्ञका सब कारण विस्तार सहित जानकर अपना मरण निश्चय कर भयसे भीत हुआ ॥ ६० ॥

और शीघ्र राजाके निकटसे भागकर अगम्य पर्वतकी गुहामें भी भनसे वास करने लगा ॥ ६१ ॥ अनन्तर यथा समय उपस्थित होनेपर वरुण यज्ञार्थी हो राजाके घर जाय भूपतिसे कहने लगे हे राजन् ! इस समय नियमित समय उपस्थित है अतएव अपने संकल्पित यज्ञका अनुष्ठान कीजिये ॥ ६२ ॥ तब राजा यह बचन सुनकर अत्यन्त व्यथित हुए और अतिमलीन वदनसे कहने लगे हे सुरसत्तम ! इस समय मैं क्या करूं मेरा पुत्र प्राणोंके भयसे कहीं भाग गया है ॥ ६३ ॥ वरुणजी राजाके वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए और शाप दिया कि, हे असत्य वादिन् ॥ ६४ ॥ तू कपट पंडित है इस कारण मुझको वारंवार धोखा देता है अतएव तेरे देहमें जलोदर नामक व्याधि उत्पन्न हो ॥ ६५ ॥ पाशधारी वरुणजी इस प्रकार शाप देकर अपने घरको गये राजाभी व्याधि पीडित और

कृत्वा पलायनं वीरो गतोऽसौ गिरिगह्वरे ॥ अगम्ये नृपतिस्थाने स्थितस्तत्र भयातुरः ॥ ६१ ॥ प्राप्ते कालेऽथ वरुणो यज्ञार्थी नृपतेर्गृहम् ॥ गत्वा तमाह भूपालं कुरु यज्ञं विशांपते ॥ ६२ ॥ प्रम्लानवदनो राजा तमाह व्यथितेंद्रियः ॥ किं करोमि गतः क्वाऽपि सुतो मे सुरसत्तम ॥ ६३ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं राज्ञः कुपितो यादसां पतिः ॥ शशाप तं नृपं कोपादसत्यवादिनं भृशम् ॥ ६४ ॥ जलोदराभिधो व्याधिर्देहे भवतु ते नृप ॥ यतः प्रतारितश्चाहं कृत्वा कपटपंडित ॥ ६५ ॥ इति शप्त्वा ययौ धाम स्वकं पाशधरस्तदा ॥ राजा चिंतातुरतस्थौ भवने व्याधि पीडितः ॥ ६६ ॥ यदाऽतिव्याधितो राजा रोगेण शापजेन ह ॥ यदा शुश्राव पुत्रोऽपि पितरं व्याधिपीडितम् ॥ ६७ ॥ पांथिकः प्राह पुत्रं हि पिता ते भृशदुःखितः ॥ जलोदरविकारेण शापजेन नृपात्मज ॥ ६८ ॥ विनष्टं जीवितं तेऽद्य वृथा जातस्य दुर्मते ॥ यत्त्यक्त्वा पितरं दुःस्थं प्राप्तोऽसि गिरिगह्वरम् ॥६९॥ किमनेन शरीरेण प्राप्तं ते जन्मनः फलम् ॥ देहदं दुःखितं कृत्वा स्थितोऽस्यत्र सुताधम ॥ ७० ॥

चिंतातुर होकर अपने गृहमें वास करने लगे ॥६६॥ जब राजा हरिश्चंन्द्र शापजनित रोगमें अत्यन्त पीड़ित होने लगे तब उनके पुत्र रोहितने सुना कि, मेरे पिता जलोदर रोगसे अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं ॥ ६७ ॥ किसी दिन एक पथिकने उससे कहा हे नृपनंदन ! तुम्हारे पिता शापके कारण जलोदर रोगसे पीड़ित और दुःखित हुए हैं ॥ ६८ ॥ तुम्हारी निश्चय ही दुर्मति हुई है तुमने वृथा ही जन्म ग्रहण किया तुम्हारा जीवन वृथा ही नष्ट हुआ क्योंकि तुम अत्यन्त दुःखित पिताको त्यागकर इस समय पर्वतकी गुहामें स्थिति करते हो ॥ ६९ ॥ तुम निश्चय ही कुपुत्र हो तुम्हारे इस शरीरका प्रयोजन क्या है तुम्हारे जन्म प्राप्त करनेका क्या फल हुआ ? जिनसे यह शरीर उत्पन्न हुआ है तुम उन्हीं पिताको त्यागकर इस निर्जन पर्वतकी गुहामें स्थित रहते हो ॥ ७० ॥

तुम निश्चय जानना कि, पिताके कार्यमें प्राण त्याग करना ही सत्पुत्रका कार्य है अतएव इस समय अधिक और क्या कहूं तुम्हारे पिता राजा हरिश्चंद्र व्याधि पीड़ित होकर तुम्हारे निमित्त दुःखसे अत्यंत रोदन करते हैं॥ ७१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! नृपनंदन रोहितने पथिकके मुखसे धर्म संगत यह वचन सुनकर जब व्याधि पीड़ित और दुःखित पिताको देखनेके लिये उनके समीप जानेकी इच्छा करी ॥ ७२ ॥ तब इन्द्र ब्राह्मणका वेष धारण कर उसके निकट उपस्थित हुए और निर्ज्जनमें दयावान्‌के समान हितकर वचन कहने लगे। ॥ ७३ ॥ हे राजपुत्र ! तुम मूर्ख हो तुम इस समय इस स्थानमें रहकर तुम्हारे पिता व्यथित हुए हैं कि नहीं ? उसको भलीभांति नहीं जानते तो वृथा क्यों उस स्थानमें जानेकी इच्छा करते हो ? ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ इन्द्रने कहा हे नृपनन्दन ! पूर्वकालके समय राजा हरिश्चन्द्रने वरुणके प्रति प्रतिज्ञा की है कि मैं

प्राणास्त्याज्याः पितुः कार्यें सत्पुत्रेणेति निश्चयः ॥ त्वदर्थे दुःखितो राजा क्रंदति व्याधिपीडितः ॥ ७१ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं पांथिकाद्धर्मसंयुतम् ॥ यदा चक्रे मनो गंतु द्रष्टुं तातं व्यथातुरम् ॥ ७२ ॥ तदा विप्रवपुर्भूत्वा वासवस्तमुपागमत् ॥ रहः प्राह हितं वाक्यं दयावानिव भारत ॥ ७३ ॥ मूर्खोऽसि राजपुत्र त्वं गमनाय मतिं वृथा ॥ करोषि पितरं त्वद्य न जानासि व्यथायुतम् ॥ ७४ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ इंद्र उवाच ॥ साहसं कृतवान्राजा पूर्वं यत्कथितो मखः ॥ वरुणाय प्रतिज्ञातः पुत्रं कृत्वा पशुं प्रियम् ॥ १ ॥ गते त्वयि पिता पुत्रं बद्धा यूपेऽघृणः पुनः ॥ पशुं कृत्वा महाबुद्धे वधिष्यति वृथातुरः ॥ २ ॥ इत्थं निषिद्धस्तत्पुत्रः शक्रेणामिततेजसा ॥ स्थितस्तत्रैव मायेशीमायया मोहितो भृशम् ॥ ३ ॥ यदा पुनः पुनः श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम् ॥ गमनाय मतिं चक्रे तदेंद्रः प्रत्यषेधयत् ॥ ४ ॥

आपको प्रसन्न करनेके निमित्त अपने प्रिय पुत्रको पशु बनाकर नरमेध महायज्ञका अनुष्ठान करूंगा उनकी इस प्रकार प्रतिज्ञा करना अत्यन्त साहसका कार्य है ॥ १ ॥ हे नृपनन्दन ! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो तुम क्या नहीं समझते हो कि तुम्हारे वहां जानेपर तुम्हारे व्याधिपीड़ित कातर पिता उस समय दयारहित हो तुमको पशुकर यूपमें बांधकर वध करेंगे ॥ २ ॥ अमित तेजा इन्द्रके उसको इस प्रकार निषेध करनेपर वह राजपुत्र महामायाकी मायासे मोहित होकर उसी स्थानमें वास करने लगे ॥ ३ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार जबहीं वह बारंवार अपने पिताको अत्यन्त पीड़ित सुनकर उनके समीप जानेकी इच्छा करता तभी इन्द्र वहां आकर उसको निषेध करते ॥ ४ ॥

इधर हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखार्त्त हो सर्वज्ञ और हितसाधक कुलगुरु वसिष्ठदेवको पास बैठे हुए देखकर पूँछने लगे ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! इस समय मैं क्या करूं मैं व्याधिकी यातनासे आकुल तथा कातर और इस महाव्याधिके भयसे अत्यन्त आतुर और दुःखित हुआ हूं इस समय सदुपदेश देकर प्राण रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥ वसिष्ठजीने कहा हे राजन् ! आपका रोग विनाश करनेके निमित्त उत्तम उपाय विद्यमान है. देखो धर्म शास्त्रमें कहा है कि औरस, क्षेत्रस, दत्रिम, कृत्रिम और क्रीतादि भेदसे पुत्र तेरह प्रकारके हैं ॥ ७ ॥ अतएव आप यथोचित मूल्य देकर एक उत्तम ब्राह्मणका बालक क्रय कीजिये और उसके द्वारा उसी उत्तम यज्ञका अनुष्ठान कीजिये ॥ ८ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार करनेसे फिर वरुणदेव प्रसन्न हो सुखी होंगे और उनके

हरिश्चंद्रोऽतिदुःखार्तः पप्रच्छ गुरुमंत्रिके ॥ स्थितं वसिष्ठमेकान्ते सर्वज्ञं हिततत्परम् ॥५॥ राजोवाच ॥ भगवन्किं करोम्यद्य कातरोऽस्मि व्यथाकुलः ॥ त्राहि मां दुःखमनसं महाव्याधिभयातुरम् ॥ ६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृणु राजन्नुपायोऽस्ति रोगनाशं प्रति स्तुतः ॥ त्रयो दशविधाः पुत्राः कथिता धर्मसंग्रहे ॥ ७ ॥ तस्मात्क्रीतं सुतं कृत्वा यजस्व मखमुत्तमम् ॥ द्रव्यं दत्त्वा यथोद्दिष्टमानयस्व द्विजोत्तमम् ॥ ८ ॥ एवं कृते मखे भूप रोगनाशो भविष्यति ॥ वरुणोऽपि प्रसन्नात्मा भविष्यति यथासुखम् ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा प्रोवाच मंत्रिणम् ॥ अन्वेषय महाबुद्धे विषयेष्वतियत्नतः ॥ १० ॥ कदाचित्कोऽपि लोभार्थी ददाति स्वसुतं पिता ॥ समानय धनं दत्त्वा यावत्प्रार्थयतेऽप्यसौ ॥११॥ सर्वथैव समानेयो यज्ञार्थे द्विज बालकः ॥ न कार्या कृपणा बुद्धिस्त्वया मत्कार्यहेतवे ॥१२॥ प्रार्थनीयस्त्वया पुत्रः कस्यचिद्द्विजवादिनः ॥ द्रव्येण देहि यज्ञार्थं कर्तव्योऽसौ पशुः किल ॥ १३ ॥

प्रसन्न होनेपर आपका रोग भी अवश्य नष्ट हो जायगा ॥ ९ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चन्द्र वसिष्ठजीके यह वचन सुन मंत्रीसे कहने लगे हे मंत्रिवर ! तुम्हारी बुद्धि अत्यंत तीक्ष्ण है अतएव तुमही परमयत्न सहित हमारे राज्यमें एक ब्राह्मणके बालकको ढूँढो ॥ १० ॥ यदि कदाचित् कोई भी दरिद्र ब्राह्मण अर्थके लोभसे अपने पुत्रको दे और वह जितने धनकी प्रार्थना करे तो उतना ही देकर उसके पुत्रको ले आओ ॥ ११ ॥ हे मंत्रिवर ! तुम जिस प्रकारसे हो यज्ञके निमित्त ब्राह्मणके बालकको अवश्य ही ले आओ विशेषकर मेरे कार्य साधनके निमित्त कभी कृपणता और आलस्य न करना ॥ १२ ॥ तुम किसी ब्राह्मणसे इस प्रकार प्रार्थना करो कि, धन लेकर यज्ञके निमित्त अपने पुत्रको दो, हम इस बालकको यज्ञमें पशुरूपसे बलि देकर आहुती प्रदान

करेंगे ॥ १३ ॥ मंत्री राजाकी इस प्रकार यज्ञकी आज्ञा पाकर नगर नगर ग्राम ग्राम और घरघरमें ब्राह्मणके बालकको ढूँढने लगा ॥ १४ ॥ इस प्रकार ढूँढते ढूँढते जाना कि उसके अधिकारमें अजीगर्त नामक एक आतुर दरिद्र ब्राह्मणके तीन पुत्र हैं ॥ १५ ॥ अनंतर मंत्री उस ब्राह्मणको मुंहमांगा धन देकर उसके शुनःशेप नामक मध्यम पुत्रको क्रय कर ले आया ॥ १६ ॥ कार्य कुशल सचिवने शुनःशेपको राजाके निकट लाय यह ब्राह्मणका पुत्र पशुयोग्य है यह कहकर समर्पण किया ॥ १७ ॥ तब राजा अत्यंत प्रसन्न हो यज्ञ करनेके निमित्त उत्तम उत्तम वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाय सम्पूर्ण यज्ञ सामग्री मँगाई ॥१८॥ जब यज्ञ आरंभ हुआ उसी समय महामुनि विश्वामित्रने शुनःशेपको बँधा हुआ देखकर राजाको निषेध कर कहा हे महाराज! इसको बलिदान करनेका

इति संचोदितस्तेन सचिवः कार्य हेतवे ॥ अन्वेषयामास पुरे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे ॥ १४ ॥ एवमन्वेषतस्तस्य विषये कश्चिदातुरः ॥ निर्धनस्त्रिसुतश्चासीदजीगर्तेति नामतः ॥ १५ ॥ तस्य पुत्रं शुनःशेपं मध्यमं मंत्रिसत्तमः ॥ आनयामास दत्त्वाऽर्थं प्रार्थितं यद्धनं तदा ॥ १६ ॥ समानीय शुनःशेपं सचिवः कार्यतत्परः ॥ राज्ञे निवेदयामास पशुयोग्यं द्विजात्मजम् ॥ १७ ॥ राजाऽतिमुदितस्तेन विप्रानानीय सर्वतः ॥ कारयामास संभारान्यज्ञार्थं वेदवित्तमान् ॥ १८ ॥ प्रारब्धे तु मखे तत्र विश्वामित्रो महामुनिः ॥ बद्धं दृष्ट्वा शुनःशेपं निषिषेध नृपं तदा ॥ १९ ॥ राजन्मा साहसं कार्षीर्मुंचैनं द्विज बालकम् ॥ प्रार्थयाम्यहमायुष्मन्सुखं तेऽद्य भविष्यति ॥२०॥ क्रंदत्ययं शुनःशेपः करुणा मां दुनोत्यपि ॥ दयावान्भव राजेंद्र कुरुमे वचनं नृप ॥२१॥ परदेहस्य रक्षायै स्वदेहं ये दयापराः ॥ ददति क्षत्रियाः पूर्वं स्वर्गकामाः शुचिव्रताः ॥ २२ ॥ तं स्वदेहस्य रक्षार्थं हंसि द्विजसुतं बलात् ॥ पापं मा कुरु राजेंद्र दयावान्भव बालके ॥ २३ ॥

साहस न करना ॥ १९ ॥ इस ब्राह्मणके बालकको छोड़ दो हे आयुष्मन् ! मैं अब आपके निकट इस विषयकी प्रार्थना करता हूं आपके ऐसा करनेपर फिर आपका अवश्य ही मंगल होगा इसमें संदेह नहीं ॥ २० ॥ हे राजेन्द्र! यह शुनःशेप रोता है इससे मेरे मनमें अत्यंत करुणा उत्पन्न होकर मुझको अत्यंत व्यथित करती है हे राजेन्द्र! आप मेरा वचन सुन दया करके इस ब्राह्मणके बालकको छोड़ दीजिये ॥२१॥ देखो पूर्वकालके समय शुद्धशील क्षत्रिय राजागण स्वर्गकी इच्छा करके पराये देहकी रक्षाके निमित्त अपना देह देते थे ॥ २२ ॥ और आप इस समय अपने देहकी रक्षाके लिये ब्राह्मणके बालकको मारते हो यह कितना पापकार्य होता है सो आप ही स्वयं विचार देखिये विशेषकर इस प्रकार पापाचरण न करके आप इस बालकपर दया कीजिये ॥ २३ ॥

हे महाराज ! संपूर्ण मनुष्यों को अपने२ देहमें समान प्रीति विद्यमान है यह आप स्वयंही अनुभव करते हैं, अतएव इस समय यदि मेरा वचन प्रमाण जानो तो इस ब्राह्मणके पुत्रका त्याग कीजिये ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चन्द्रने व्याधिद्वारा अत्यंत पीडित होनेसे उस काल उनके वचनमें अनादर पूर्वक उस ब्राह्मणके बालकका त्याग न किया इससे परमतपस्वी विश्वामित्र भी राजासे अत्यंत क्रोधित हुए ॥ २५ ॥ तब वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्य कुशिकनंदन विश्वमित्रने शुनःशेपपर दया प्रकाश कर उसको वरुणमंत्रका उपदेश दिया ॥ २६ ॥ शुनःशेप भी प्राणोंके भयसे अत्यंत कातर हो वरुणका स्मरणकर ऊंचे स्वरसे उस मंत्रको वारंवार उच्चारण करने लगा ॥ २७ ॥ करुणा समुद्र वरुणने ब्राह्मणके पुत्रको स्तव करता हुआ जानकर उसी स्थानमें आय

सर्वेषां सदृशी प्रीतिर्देहे वेत्सि स्वयं नृप ॥ मुंचैनं बालकं तस्मात्प्रमाणं यदि मे वचः ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ अनादृत्य च तद्वाक्यं राजा दुःखातुरो भृशम् ॥ न मुमोच मुनिस्तस्मै चुकोपातीव तापसः ॥ २५ ॥ उपदेशं ददौ तस्मै शुनःशेपाय कौशिकः ॥ मंत्रं पाशधरस्याथ दयावान्वेदवित्तमः ॥ २६ ॥ शुनःशेपोऽपि तं मंत्रमसकृद्बधकर्शितः ॥ प्लुतस्वरेण चुक्रोश संस्मरन्वरुणं भृशम् ॥ २७ ॥ स्तुवंतं मुनिपुत्रं तं ज्ञात्वा वै यादसां पतिः ॥ तत्रागत्य शुनःशेपं मुमोच करुणार्णवः ॥ २८ ॥ रोगहीनं नृपं कृत्वा वरुणः स्वगृहं ययौ ॥ विश्वामित्रस्तु तं पुत्रं कृतवान्मोचितं मृतेः ॥ २९ ॥ न कृतं वचनं राज्ञा कौशिकस्य महात्मनः ॥ रोषं दधार मनसा राजोपरि स गाधिजः ॥ ३० ॥ एकस्मिन्समये राजा हयारूढो वनं गतः ॥ सूकरं हंतुकामस्तु मध्याह्ने कौशिकीतटे ॥ ३१ ॥ वृद्धब्राह्मणवेषेण विश्वामित्रेण वंचितः ॥ सर्वस्वं प्रार्थितं तस्य गृहीतं राज्यमद्भुतम् ॥ ३२ ॥ पीडितोऽसौ हरिश्चन्द्रो यजमानो यतो भृशम् ॥ वशिष्ठः कौशिकं प्राह वने प्राप्तं यदृच्छया ॥ ३३ ॥

शुनःशेपको बंधनसे छुड़ा दिया ॥२८॥ और राजाको रोग रहित कर अपने स्थानको चले गये,इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र उस मुनिकुमारको मृत्युके मुखसे रक्षा करके परम आनंदित हुए ॥ २९ ॥ जब राजाने हरिश्चन्द्र महात्मा विश्वामित्रका वचन पालन नहीं किया तबसे ही गाधिपुत्र मनमें उस राजासे रुष्ट रहे ॥३०॥ एक दिन राजा हरिश्चन्द्रने घोडेपर चढ़ वनमें जाय मध्याह्नकालके समय कौशिकी नदीके तटपर एक शूकरको मारनेकी इच्छा की ॥ ३१ ॥ तब ही विश्वामित्रने वृद्ध ब्राह्मणके वेषसे राजाको छलकर प्रार्थनापूर्वक उनका सर्वस्व और संपूर्ण राज्य ले लिया ॥ ३२ ॥ अपने यजमान राजा हरिश्चन्द्रको अत्यंत कष्ट पाते हुए देखकर महर्षि वसिष्ठ मनमें दुःखित और व्यथित हुए और एक दिन वनमें विश्वामित्रसे भेंट होनेपर उनसे कहा ॥ ३३ ॥

रे दुर्बुद्धि! क्षत्रिय कुलाधम ! तुमने वृथाही ब्राह्मणका वेष धारण किया है तेरा धर्म बगुलेके समान है तू दाम्भिक है तथा वृथा ही गर्व करता है ॥ ३४ ॥ हमारे यजमान राजा श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र हैं उनका कोई अपराध नहीं. रे मूढ ! तथापि तुमने उनको क्यों इतना कष्ट दिया ॥ ३५ ॥ तू बगुलेके समान ध्यान परायण है अतएव बगुला होकर जन्म ग्रहणकर विश्वामित्रने वशिष्ठसे इस प्रकार शापित उनसे भी कहा ॥ ३६ ॥ हे वसिष्ठ! मैं जबतक बगुला होकर रहूं तू ही तबतक आडि अर्थात शरालिनामक पक्षी होकर अवस्थिति करता रहे, व्यासजीने कहा हे महाराज ! वह क्रोधित दोनों मुनि परस्पर इस प्रकार शाप दे ॥ ३७ ॥ दोनोंनेही सरोवरमें आदि और बकपक्षी हो जन्म ग्रहण किया बकरूप धारी विश्वामित्र मानसरोवरमें एक वृक्षके ऊपर नीड़(घोसला) निर्माण

क्षत्रियाधम दुर्बुद्धे वृथा ब्राह्मणवेषभृत् ॥ बकधर्मं वृथा किं त्वं गर्वं वहसि दांभिक ॥ ३४ ॥ कस्मात्त्वया नृपश्रेष्ठो यजमानो ममाप्यसौ ॥ अपराधं विना जाल्म गमितो दुःखमद्भुतम् ॥ ३५ ॥ बकध्यानपरो यस्मात्तस्मात्त्वं वै बको भव ॥ इति शप्तो वसिष्ठेन कौशिकः प्राह तं पुनः ॥ ३६ ॥ त्वमप्याडिर्भवायुष्मन्बकोऽहं यावदेव हि ॥ व्यास उवाच ॥ एवं परस्परं दत्त्वा शापं तौ क्रोधपीडितौ ॥ ३७ ॥ अण्डजौ तरसा जातौ सरस्याडीबकौ मुनी ॥ एकस्मिन्पादपे नीडं कृत्वाऽसौ बकरूपभाक् ॥ ३८ ॥ विश्वामित्रः स्थितस्तत्र दिव्ये सरसि मानसे ॥ अन्यस्मिन्पादपे कृत्वा वसिष्ठो नीडमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ आडीरूपधरस्तस्थावन्योन्यं द्वेषतत्परौ ॥ दिनेदिने तौ संग्रामं चक्रतुः क्रोधसंयुतौ ॥ ४० ॥ दुःखदं सर्वलोकानां क्रंदमानावुभौ भृशम् ॥ चंचुपक्षप्रहारैस्तु नखाघातैः परस्परम् ॥ ४१ ॥ जघ्नतू रुधिर क्लिन्नौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ एवं बहूनि वर्षाणि पक्षिरूपधरौ मुनी ॥ ४२ ॥ स्थितौ तत्र महाराज शापपाशेन यंत्रितौ ॥ राजोवाच ॥ कथं मुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ शापाद्वसिष्ठकौशिकौ ॥ ४३ ॥

पूर्वक वास करने लगे.वसिष्ठ भी आडिरूप धारण कर दूसरे वृक्षमें कुलाय (घोसला) रचनाकर वास करने लगे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वे दोनों पक्षी द्वेषके कारण क्रोधित हो उच्चस्वरसे घोरतर सर्वलोकोंको पीडाप्रद कठोर चीत्कार कर प्रतिदिन संग्राम करने लगे॥४०॥ वह आपसमें चोंच और पक्षप्रहार तथा नखाघातसे ॥४१॥ क्षत विक्षत और रुधिरमें डूबकर पुष्पित किंशुक वृक्षके समान प्रकाशमान हुए पक्षिरूपधारी दोनों ऋषि शापसे दुःखित हो इस प्रकार बहुत दिन रहे ॥४२॥ परस्पर युद्ध करते करते उसी स्थानमें बहुत वर्ष बीत गये जनमेजयने कहा हे विप्रवर ! वे वसिष्ठ और कौशिक नामक दोनों ऋषि किस प्रकार शापसे मुक्त हुए॥ ४३ ॥

वह मुझसे कहो हे ऋषिवर ! यह वृत्तांत श्रवण करनेके लिये मेरे मनमें अत्यंत कौतूहल उत्पन्न हुआ है व्यासजीने कहा लोक पितामह ब्रह्मा उन दोनोंको युद्धमें निरत देख ॥ ४४ ॥ दयार्द्रचित्त हो देवतागणोंके सहित उसी स्थानमें गये पद्मासनने दोनोंको युद्धसे निवारित और आश्वासित कर ॥ ४५ ॥ परस्परके दिये हुए शापसे दोनोंको छुड़ा दिया अनंतर देवता अपने अपने स्थान और प्रभावशाली पद्मासन ॥ ४६ ॥ हंसपर चढ़ सत्यलोकको चले गये इसके उपरांत महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्र ॥४७॥ प्रजापतिके उपदेशानुसार परस्पर प्रणय और मित्रता कर अपने अपने आश्रमको चले गये. हे राजन् ! आप देखिये कि, इस समय मित्रावरुण तनय महर्षि वसिष्ठने भी ॥४८॥ विश्वामित्रसे अकारण ही दुःखप्रद युद्ध किया था अतएव इस अखिल संसारमें कौन मनुष्य दानव वा

तन्ममाचक्ष्व विप्रर्षे परं कौतूहलं हि मे ॥ व्यास उवाच ॥ युध्यमानावुभौ दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४४ ॥ तत्राजगामानिमिषैर्वृतः सर्वैर्दयापरैः ॥ तावाश्वास्य जगत्कर्ता युद्धतो विनिवार्य च ॥ ४५ ॥ शाप संमोचयामास तयोः क्षिप्तं परस्परम् ॥ ततो जग्मुः सुराः सर्वे स्वानि धिष्ण्यानि पद्मभूः ॥४६॥ सत्यलोकं जगामाशु हंसारूढः प्रतापवान् ॥ विश्वामित्रोऽप्यगात्तूर्णं वसिष्ठः स्वाश्रमं गतः ॥४७॥ मिथः स्नेहं ततः कृत्वा प्रजापत्युपदेशतः ॥ मैत्रावरुणिनाऽप्येवं कृतं युद्धमकारणम् ॥४८॥ कौशिकेन समं भूप दुःखदं च परस्परम् ॥ को नाम मानवो लोके देवो वा दानवोऽपि वा ॥ ४९ ॥ अहंकारजयं कृत्वा सर्वदा सुखभाग्भवेत् ॥ तस्माद्रा जंश्चित्तशुद्धिर्महतामपि दुर्लभा ॥ ५० ॥ यत्नेन साधनीया सा तद्विहीनं निरर्थकम् ॥ तीर्थदानतपः सत्यं यत्किंचिद्धर्मसाधनम् ॥ ५१ ॥ " श्रद्धाऽत्र त्रिविधा प्रोक्ता सात्त्विकी राजसी तथा ॥ तामसी सर्वदेहेषु देहिनां धर्मकर्मसु ॥ १ ॥ सात्त्विकी दुर्लभा लोके यथोक्तफलदा सदा ॥ तदर्धफलदा प्रोक्ता राजसी विधिसंयुता ॥२॥ तामसी त्वफला राजन्न तु कीर्तिकरी पुनः ॥कामक्रोधाभिभूतानां जनानां नृपसत्तम ॥ ३ ॥ "

देवता ॥४९॥ अहंकार जय करके सर्वदा सुखभागी हो सकता है ? हे पार्थिव ! चित्तकी शुद्धि महत् पुरुषोंको भी दुर्लभ है ॥ ५० ॥ परम यत्नके सहित उसका साधन करना होता है चित्तशुद्धि विहीन मनुष्य गणोंका तीर्थ, दान, तपस्या, सत्य, और जो कुछ धर्मसाधन है वह संपूर्ण ही निरर्थक जानना चाहिये ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! देहिगणोंके धर्मकर्म विषयमें सात्त्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन प्रकारकी श्रद्धा कही गई हैं ? जिनमें सात्त्विकी श्रद्धा संपूर्ण फल तथा लोकमें प्रायः दुर्लभ है विहित राजसी श्रद्धा उससे अर्द्धफलदायक है. और तामसी श्रद्धा निष्फल तथा अकीर्ति करनेवाली है, काम क्रोधसे युक्त पुरुषोंको ही तामसी श्रद्धा उत्पन्न होती है॥ ३ ॥

अतएव हे राजन् ! सत्संग अवलम्बन पूर्वक वेदान्त श्रवणादिसे चित्तकी वासना दूरकर देवीकी पूजामें अत्यंत निरत हो तीर्थादि स्थलमें वास करे ॥ ५२ ॥ कलि दोषके कारण, भयातुर मनुष्यगण देवीका नाम ग्रहण और उनके गुणकी स्तुति तथा उनके चरण कमलोंका ध्यान कर काल व्यतीत करें ॥ ५३ ॥ इस प्रकार करनेसे फिर जीवगणोंको कलिका भय नहीं रह सकता और पातकी मनुष्य भी संसार बन्धसे सहजमें ही मुक्तिलाभ कर सकते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! महर्षि वशिष्ठ ब्रह्माके मानसपुत्र थे तो आपने किस कारणसे उनका मैत्रावरुणि नाम कीर्त्तन किया ॥ १ ॥ वे कर्मद्वारा अथवा अन्य किसी गुणसे इस नामको प्राप्त हुए हैं. हे वक्तृप्रवर !

वासनारहितं कृत्वा तच्चित्तं श्रवणादिना ॥ तीर्थादिषु वसेन्नित्यं देवीपूजनतत्परः ॥ ५२ ॥ देवीनामानि वचसा गृह्णंस्तस्या गुणान्स्तुवन् ॥ ध्यायंस्तस्याः पदांभोजं कलिदोषभयार्दितः ॥ ५३ ॥ एवं तु कुर्वतस्तस्य न कदाचित्कलेर्भयम् ॥ अनायासेन संसारान्मुच्यते पातकी जनः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ जनमेजय उवाच ॥ मैत्रावरुणिरित्युक्तं नाम तस्य मुनेः कथम् ॥ वसिष्ठस्य महाभाग ब्रह्मणस्तनुजस्य ह ॥ १ ॥ किमसौ कर्मतो नाम प्राप्तवान्गुणतस्तथा ॥ ब्रूहि मे वदतां श्रेष्ठ कारणं तस्य नामजम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ निबोध नृपतिश्रेष्ठ वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ॥ निमिशापात्तनुं त्यक्त्वा पुनर्जातो महाद्युतिः ॥ ३ ॥ मित्रावरुणयोर्यस्मात्तस्मान्नाम विश्रुतम् ॥ मैत्रावरुणिरित्यस्मिँल्लोके सर्वत्र पार्थिव ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ कस्माच्छप्तः स धर्मात्मा राज्ञा ब्रह्मात्मजो मुनिः चित्रमेतन्मुनिं लग्नो राज्ञा शापोऽतिदारुणः ॥ ५ ॥ अनागसं मुनिं राजा किमसौ शप्तवान्मुने ॥ कारणं वद धर्मज्ञ तस्य शापस्य मूलतः ॥ ६ ॥

आप मुझको उनके इस नामका कारण भलीभांति वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! यद्यपि प्रभावशाली वशिष्ठ ब्रह्माके पुत्र थे, किंतु उन्होंने नरपति निमिके शापसे तनु त्यागकर मित्रा वरुणसे जन्म लाभ किया ॥ ३ ॥ इस कारण लोकमें सर्वत्रही मैत्रावरुणि नामसे विख्यात हुए थे ॥ ४ ॥ राजाने कहा हे भगवन् ! ब्रह्माके पुत्र धर्मात्मा वह मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठ किस कारणसे निमिके शापको प्राप्त हुए ! उन क्षत्रिय नृपतिका दारुण शाप मुनिको भी भोगना पडा इस विषयमें मुझको आश्चर्य बोध होता है ॥ ५ ॥ हे धर्मज्ञ ! उस राजाने निरपराध मुनिको किस कारण शाप दिया ? उसे सुननेके निमित्त मुझको अत्यंत कौतूहल हुआ है. अतएव आप उस शापका कारण वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥

व्यासजीने कहा हे राजन् ! पहले मैंने आपसे इन सबका कारण भलीभांति कहा है. यह संसार सत्व, रज, तम तीन मायाके गुणसे व्याप्त है ॥ ७ ॥ राजा लोग धर्माचरण ही करें और संपूर्ण तपस्वी तपाचरणही करें उनका वे समस्त धर्मादि मायागुणसे विद्ध होकर उज्ज्वलता लाभ नहीं कर सकता ॥ ८ ॥ राजा लोग और मुनिगण काम क्रोधमें अभिभूत और लोभ तथा अहंकारयुक्त होकर दुष्कर तपस्याका आचरण करते हैं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! क्षत्रियगण अथवा ब्राह्मण सबही रजोगुण युक्त हो योगादि करते हैं. वास्तविक उनमें कोई सत्वगुणयुक्त होकर, कार्यका अनुष्ठान नहीं करता ॥१०॥ निमि राजऋषिद्वारा और ऋषिराज निमिसे शापित हो दोनोंही प्रारब्ध प्रेरित तमोगुणसे दुःखको प्राप्त हुए थे ॥ ११ ॥हे महाराज ! इस त्रिगुणात्मक संसारमें प्राणिगणोंके पक्षमें द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और

व्यास उवाच कारणं तु मया प्रोक्तं तव पूर्वं विनिश्चितम् ॥ संसारोऽयं त्रिभिर्व्याप्तो राजन्मायागुणैः किल ॥ ७ ॥ धर्मं करोतु भूपालश्चरंतु तापसास्तपः ॥ सर्वेषां तु गुणैर्विद्धं नोज्ज्लं तद्भवेदिह॥ ८ ॥ कामक्रोधाभिभूताश्च राजानो मुनयस्तथा ॥ लोभाहंकारसंयुक्ताश्चरंति दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥ यजंति क्षत्रिया राजन्रजोगुणसमावृताः ॥ ब्राह्मणास्तु तथा राजन्न कोऽपि सत्त्वसंयुतः ॥ १० ॥ ऋषिणाऽसौ निमिः शप्तस्तेन शप्तो मुनिः पुनः ॥ दुःखाद् दुःखतरं प्राप्तावुभावपि विधेर्बलात् ॥ ११ ॥ द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मनसः शुद्धिरुज्ज्वला दुर्लभा प्राणिनां भूप संसारे त्रिगुणात्मके ॥ १२ ॥ पराशक्तिप्रभा वोऽयं नोल्लंघ्यः केनचित्क्वचित् ॥ यस्यानुग्रहमिच्छेत्सा मोचयत्येव तं क्षणात् ॥ १३ ॥ महांतोऽपि न मुच्यंते हरिब्रह्महरादयः ॥ पामरा अपि मुच्यंते यथा सत्यव्रतादयः ॥ १४ ॥ तस्यास्तु हृदयं कोऽपि न वेत्ति भुवनत्रये ॥ तथापि भक्तवश्येयं भवत्येव सुनिश्चितम् ॥ १५ ॥

निर्मल प्रकारसे चित्तशुद्धि अत्यंत दुर्लभ है ॥१२॥ हे राजन् ! इसकोही परमाशक्ति जगदम्बिकाका प्रभाव जानना चाहिये. कोई पुरुष इसके उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं होता परंतु वह जिसके प्रति अनुग्रह करनेकी अभिलाषा करती हैं उसको क्षणमें उन गुणोंके बन्धनसे छुड़ा देती हैं ॥ १३ ॥ अधिक क्या विष्णु रुद्र और ब्रह्मा इत्यादि महान् देवतागण भी उनके अनुग्रहके बिना नहीं छूट सकते, किंतु उनका अनुग्रह होनेसे सत्य व्रत इत्यादिके समान पामरगणभी मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं ॥ १४ ॥ उनके हृदयमें जो है उसको त्रिभुवनमें कोई नहीं जान सकता, परंतु वह जो भक्तके वशिभूत होती हैं इसमें कोई संदेह नहीं ॥ १५ ॥

अतएव दोषके नष्ट करनेके निमित्त सात्विकी भक्ति अवलम्बन करनी उचित है किंतु रागदम्भादि युक्त भक्ति मनुष्यगणोंको अनिष्ट करनेवाली होती है इस कारण उसका त्याग करना अत्यन्त श्रेष्ठ है इसमें संदेह नहीं है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! इक्ष्वाकुके बारहवें पुत्र निमिनामक नृपति रूपवान्, गुणसंपन्न, धर्मज्ञ, लोकरञ्जन ॥ १७ ॥ सत्यवादि, दानशील, याजक, शुद्धाचार, प्रजाके पालनमें तत्पर बुद्धिमान् और ज्ञानयुक्त थे ॥१८॥ उन महात्माने ब्राह्मणोंके हितार्थ गौतमके आश्रमके निकट जयन्तपुर नामक एक नगर बसाया ॥१९॥ कुछ काल व्यतीत होनेपर उनको उस प्रकार राजसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि मैं "विपुल दक्षिणायुक्त बहुतकाल पर्यन्त एक यज्ञका अनुष्ठान करूं" ॥२०॥ अनंतर अपने पिता इक्ष्वाकुकी आज्ञा ग्रहणकर यज्ञ कार्यके निमित्त महात्मा पुरुषोंसे

तस्मात्तद्भक्तिरास्थेया दोषनिर्मूलनाय च ॥ रागदंभादियुक्ता चेत्सा भक्तिर्नाशिनी भवेत् ॥ १६ ॥ इक्ष्वाकुकुलसंभूतो निमिर्नाम नराधिपः ॥ रूपवान्गुणसंपन्नो धर्मज्ञो लोकरंजकः ॥ १७ ॥ सत्यवादी दानपरो याजको ज्ञानवाञ्छुचिः ॥ द्वादशस्तनयो धीमान्प्रजापालनतत्परः ॥ १८ ॥ पुरं निवेशयामास गौतमाश्रमसन्निधौ ॥ जयं तु पुरसंज्ञं तु ब्राह्मणानां हिताय सः ॥ १९ ॥ बुद्धिस्तस्यसमुत्पन्ना यजेयमिति राजसी ॥ यज्ञेन बहुकालेन दक्षिणासंयुतेन च ॥ २० ॥ इक्ष्वाकुं पितरं दृष्ट्वा यज्ञकार्याय पार्थिव ॥ कारयामास संभारं यथोद्दिष्टं महात्मभिः ॥ २१ ॥ भृगुमंगिरसं चैव वामदेवं च गौतमम् ॥ वसिष्ठं च पुलस्त्यं च ऋचीकं पुलहं क्रतुम् ॥ २२ ॥ मुनीनां मंत्रयामास सर्वज्ञान्वेदपारगान् ॥ यज्ञविद्याप्रवीणांश्च तापसान्वेदवित्तमान् ॥ २३ ॥ राजा संभृत संभारः संपूज्य गुरुमात्मनः ॥ वसिष्ठं प्राह धर्मज्ञो विनयेन समन्वितः ॥२४॥ यजेयं मुनिशार्दूल याजयस्व कृपानिधे ॥ गुरुस्त्वं सर्ववेत्ताऽसि कार्यं मे कुरु सांप्रतम् ॥२५॥ यज्ञोपकरणं सर्वं समानीतं सुसंस्कृतम् ॥ पंचवर्षसहस्रं तु दीक्षां कर्तुं मतिश्च मे ॥ २६ ॥

संपूर्ण कही हुई सामग्री मँगाई ॥ २१ ॥ भृगु, अङ्गिरा, वामदेव, गौतम, वसिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचीक, पुलह, क्रतु ॥ २२॥ इत्यादि वेदके जाननेवाले यज्ञविद्याविशारद सर्वज्ञ तपस्वी मुनिगणोंको निमंत्रण देकर बुलाया ॥ २३ ॥ उस धार्मिक नरपतिनिर्मित यज्ञकी संपूर्ण सामग्री संग्रह कर अपने गुरु वशिष्ठ देवकी पूजापूर्वक उनसे विनयसे नम्र हो वचन कहा ॥ २४ ॥ हे मुनिवर ! यज्ञ करूंगा आप कृपा करके मेरी यज्ञक्रिया संपादन कीजिये, आप गुरु हैं अतएव मेरा सब जानते हैं इस कारण इस समय मेरा यज्ञ कार्य निर्वाह कीजिये ॥ २५ ॥ यज्ञकी सब सामग्री मँगाकर सजाई गई है. हे गुरो ! मैं पांच हजार वर्ष पर्यन्त यज्ञमें दीक्षित हूंगा यही मेरा संकल्प जानिये ॥ २६ ॥

इस यज्ञमें जगदम्बिका देवीकी आराधना करूंगा, उनको प्रसन्न करनेको मैं विधिपूर्वक इस यज्ञका अनुष्ठान करता हूं ॥ २७ ॥ वशिष्ठजीने राजा निमिका यह वचन सुनकर कहा हे नृपोत्तम ! देवराजइन्द्रने मुझको पहलेही यज्ञके निमित्त वरण किया है ॥ २८ ॥ इस समय पाकशासन इन्द्र पराशक्तिकी प्रीतिके निमित्त यज्ञ करनेमें उद्यत हुए हैं मैंने भी पंद्र वर्षके लिये उनको दीक्षित किया है ॥ २९ ॥ अएतव हे पार्थिव ! जबतक इन्द्रका यज्ञ संपूर्ण न हो आपको तबतक प्रतीक्षा करनी होगी. इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेपर इनका समस्त कार्य कर ॥ ३० ॥ उसके उपरान्त इस स्थानमें आऊंगा. अतएव हे महाराज ! आप तबतक प्रतीक्षा कीजिये राजाने कहा हे मुनिवर मने यज्ञके निमित्त अन्यान्य मुनिगणोंको निमंत्रण दिया है ॥ ३१ ॥ और सम्पूर्ण सामग्री मँगाली है. तब

यस्मिन्यज्ञे समाराध्या देवी श्रीजगदंबिका ॥ तत्प्रीत्यर्थमहं यज्ञं करोमि विधि पूर्वकम् ॥२७॥ तच्छ्रुत्वाऽसौ निमेर्वाक्यं वसिष्ठः प्राह भूपतिम् ॥ इन्द्रेणाहं वृतः पूर्वं यज्ञार्थं नृपसत्तम् ॥ २८ ॥ पराशक्तिमखं कर्तुमुद्युक्तः पाकशासनः ॥ स दीक्षां गमि तो देवः पंच वर्ष शतात्मिकाम् ॥ २९ ॥ तस्मात्त्वमंतरं तावत्प्रतिपालय पार्थिव ॥ इंद्रयज्ञे समाप्तेऽत्र कृत्वा कार्यं दिवस्पतेः ॥ ३० ॥ आगमिष्याम्यहं राजंस्तावत्त्वं प्रतिपालय ॥ राजो उवाच ॥ मया निमंत्रिताश्चान्ये मुनयो यज्ञकारणात् ॥ ३१ ॥ संभाराः संभृताः सर्वेंपालयामि कथंगुरो ॥ इक्ष्वाकूणां कुले ब्रह्मन्गुरुस्त्वं वेदवित्तमः ॥ ३२ ॥ कथं त्यक्त्वाऽद्य मे कार्यमुद्यतो गंतुमाशु वै ॥ न ते युक्तं द्विजश्रेष्ठ यदुत्सृज्य मखं मम ॥३३॥ गंतासि धन लोभेन लोभाकुलितचेतनः ॥ निवारितोऽपि राज्ञा स जगामेंद्रमखं गुरुः ॥ ३४ ॥ राजाऽपि विमना भूत्वा गौतमं प्रत्यपूजयत् ॥ इयाज हिमवत्पार्श्वे सागरस्य समीपतः ॥ ३५ ॥ दक्षिणा बहुला दत्ता विप्रेभ्यो मखकर्मणि ॥ निमिना पंचसाहस्री दीक्षा तत्र कृता नृप ॥ ३६ ॥

किस प्रकार इस समय प्रतीक्षा कर सकता हूं ? हे ब्रह्मन् ! आप वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्य और इक्ष्वाकुवंशियोंके कुलगुरु होकर ॥ ३२ ॥ इस समय किस प्रकार मेरा कार्य त्यागकर अन्यत्र जानेमें उद्यत हैं ? हे द्विजोत्तम ! आह धनके कठिन लोभसे. ज्ञानरहित होकर मेरा यज्ञ त्यागकर जाते हैं ॥ ३३ ॥ यह आपकी उचित नहीं. हे राजन् ! निमिराजके इस प्रकार निवारण करनेपर भी वशिष्ठ ऋषि इनके यज्ञमें गये ॥ ३४ ॥ तव राजानेभी विमन होकर गौतमऋषिको यज्ञकार्यमें वरण किया तब उन्होंने हिमाचलके पार्श्वमें सागरके समीप यज्ञ आरंभ करके ॥ ३५ ॥ ब्राणह्मगणोंको बहुत दक्षिणा दी. इस यज्ञमें निमिराज पांच सहस्र वर्षपर्यन्त दीक्षित हुए थे ॥ ३६ ॥

और इसमें ऋत्विग्गण पूर्ण धन और गोदानसे परिपूजित होकर अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए थे अनंतर देवराजका पांच हजार वर्षव्यापी यज्ञ समाप्त होनेपर ॥ ३७ ॥ वशिष्ठऋषि निमिराजका यज्ञ देखनेको राजासे भेट करनेके निमित्त उसी स्थानमें उपस्थित हुए ॥३८॥ राजा उस समय निद्रामें अत्यन्त व्याप्त थे इस कारण सेवकगण उनको न जगा सके अतएव राजा भी ऋषिके निकट न आये ॥३९॥ इस कारण अपमान बोध होनेसे महर्षि वशिष्ठके अन्तःकरणमें क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई, वह राजाको न देखकर क्रोधित हुए ॥ ४० ॥ और अत्यन्त क्रोधसे वशीभूत हो निमिराजको यह कह शाप दिया कि, तू अत्यन्त मन्दमति राजा है, मेरे चिरगुरु रहते और विशेष कर मेरे तुमको निवारण करनेपर भी तुमने जब मुझको त्याग दूसरेको वरण कर ॥४१॥

ऋत्विजः पूजिताः कामं धनैर्गोभिर्मुदा युताः ॥ शक्र यज्ञे समाप्ते तु पंचवर्षशतात्मके ॥३७॥ आजगाम वसिष्ठस्तु राज्ञः सत्रदिदृक्षया ॥ आगत्य संस्थितस्तत्र दर्शनार्थं नृपस्य च ॥ ३८ ॥ तदा राजा प्रसुप्तस्तु निद्रयाऽपह्वतो भृशम् ॥ नासौ प्रबोधितो भृत्यैर्नागतस्तु मुनिं नृपः ॥ ३९ ॥ वसिष्ठस्य ततो मन्युः प्रादुर्भूतोऽवमानतः ॥ अदर्शनान्निमेस्तत्र चुकोप मुनिसत्तमः ॥ ४० ॥ शापं च दत्तवां स्तस्मै राज्ञे मन्युवशं गतः ॥ यस्मात्त्वं मां गुरुं त्यक्त्वा कृत्वाऽन्यं गुरुमात्मनः ॥ ४१ ॥ दीक्षितोऽपि बलान्मंद मामवज्ञाय पार्थिव ॥ वारितोऽपि मया तस्माद्विदेहस्त्वं भविष्यसि ॥ ४२ ॥ पतत्विदं शरीरं ते विदेहो भव भूपते ॥ व्यास उवाच ॥ इति उद्व्याहृतं श्रुत्वा राज्ञस्तु परिचारकाः ॥ ४३ ॥ सद्यः प्रबोधयामासुर्मुनिमाहुः प्रकोपितम् ॥ कुपितं तं समागत्य राजा विगतकल्मषः ॥ ४४ ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुगर्भं च युक्तिमत् ॥ मम दोषो न धर्मज्ञ गतस्त्वं तृष्णयाऽऽकुलः ॥ ४५ ॥ हित्वामां यजमानं वै प्रार्थितोऽपि मया भृशम् ॥ न लज्जसे द्विजश्रेष्ठ कृत्वा कर्म जुगुप्सितम् ॥ ४६ ॥

बलपूर्वक दीक्षित हो मेरा कहा न माना इससे तो तुम विदेह देहरहित होओ ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा यह शरीर अभी निपतित हो अर्थात् तुम विदेह होओ, व्यासजीने कहा हे राजन् ! सेवकगणोंने वशिष्ठजीके यह शापयुक्त वाक्य सुनकर ॥४३॥ राजाको तत्काल जगाया कि वशिष्ठ ऋषि आपकी भेट न होनेसे अत्यन्त प्रकुपित हुए हैं, यह विषय निवेदन किया, पापरहित निमिराजने प्रकुपित वशिष्ठके सामने जाय ॥ ४४ ॥ विनय नम्रभावसे हेतुपूर्ण और युक्तिसंगत वचन कहा हे धर्मज्ञ ! मैं आपका यजमान हूं मेरे बारंबार प्रार्थना करनेपर भी आपने लोभकी तृष्णामें व्याकुल होकर ॥ ४५ ॥ मुझको त्याग अन्यत्र गमन किया अतएव इसमें मेरा कुछ दोष नहीं आप ब्राह्मणोंमें अग्रगण्य होकर और सन्तोषी ब्राह्मणोंका सारधर्म जानकर भी इसप्रकार नीचकार्य

करनेमें लज्जित नहीं होते ? ॥४६॥ ब्राह्मणका सन्तोषही धर्म है आप ब्रह्माके पुत्र और वेदवेदाङ्गपारग होकरभी ॥४७॥ श्रेष्ठतर ब्राह्मणधर्मकी सूक्ष्मगति नहीं जानते आप अपना निजदोष मेरे ऊपर अरोपित करके मुझको शाप देनेकी वृथा अभिलाषा करते हैं ॥ ४८ ॥ क्रोध चण्डालसे भी अधिकतर दूषणीय अतएव स्वजनगणोंको इसका परित्याग करनाही उचित है आप जब अकारण ही क्रोधानलमें प्रज्वलित हो मुझको शाप देते हैं ॥ ४९ ॥ तब मैं भी आपको इस समय शाप देता हूं कि, आपकी यह क्रोधयुक्त देह निपतित हो. हे महाराज ! इस प्रकार राजा मुनिवर ॥ ५० ॥ और मुनिवर राजाको शाप दे दोनोंही अत्यन्त दुःखित हुए तब वशिष्ठ अत्यन्त चिन्ताकुल हो ब्रह्माकी शरणागत हुए ॥ ५१ ॥ और निमिके दिये हुए महत् शापके विषय

संतोषे ब्राह्मणश्रेष्ठ जानन्धर्मस्य निश्चयम् ॥ पुत्रोऽसि ब्रह्मणः साक्षाद्वेदवेदांगवित्तमः ॥ ४७ ॥ न वेत्सि विप्रधर्मस्य गतिं सूक्ष्मांदुरत्य याम् ॥ आत्मदोषं मयि ज्ञात्वा मृषा मां शप्तुमिच्छसि ॥ ४८ ॥ त्याज्यस्तु सुजनैः क्रोधश्चंडालादधिको यतः ॥ वृथा क्रोधपरीतेन मयि शापः प्रपातितः ॥ ४९ ॥ तवापि च पतत्वद्य देहोऽयं क्रोधसंयुतः ॥ एवं शप्तो मुनी राज्ञा राजा च मुनिना तथा ॥५०॥ परःपरं प्राप्य शापं दुःखितौ तौ बभूवतुः ॥ वसिष्ठस्त्वति चिंतार्तो ब्रह्माणं शरणं गतः ॥ ५१ ॥ निवेदयामास तथा शापं भूपकृतं महत् ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ राज्ञा शप्तोऽस्मि देहोऽयं पतत्वद्य तवेति वै ॥५२॥ किं करोमि पितः प्राप्तं कष्टं कायप्रपातजम् ॥ अन्यदेहसमुत्पत्तौ जनकं वद सांप्रतम् ॥ ५३ ॥ तथा मे देहसंयोगः पूर्ववत्समपद्यताम् ॥ यादृशं ज्ञानमेतस्मिन्देहे तत्रास्तु तत्पितः ॥ ५४ ॥ समर्थोऽसि महाराज प्रसादं कुर्तुमर्हसि ॥ वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा प्रोवाच तं सुतम् ॥ ५५ ॥ मित्रावरुणयोस्तेजस्त्वं प्रविश्य स्थिरो भव ॥ तस्मादयोनिजः काले भविता त्वं न संशयः ॥ ५६ ॥

निवेदन कर कहा हे पितः! " अभी तुम्हारा यह देह पतित हो " यह कहकर निमिराजाने मुझको शाप दिया है ॥ ५२ ॥ इस समय देहपातजनित महत्कष्ट उपस्थित हुआ है अतएव मैं क्या करूं ? हे पितः ! कौन पुरुष मुझे जन्म देगा यह आप मुझसे कहिये ॥५३॥ और जिससे मुझको पूर्वके समान देह प्राप्त हो उसका भी उपाय कीजियेऔर मेरे इस देहमें जिसप्रकार ज्ञान रहता है उस देहमें भी जिससे इसीप्रकार ज्ञान रहे ॥५४॥ आप प्रसन्न होकर अपनी असीम प्रभावसे उसीप्रकार कीजिये क्यों कि आप उसके करनेमें भलीभाँति समर्थ हैं. हे राजन् ! वशिष्ठके वाक्य श्रवण कर ब्रह्माने अपने उस प्रियपुत्रसे कहा ॥ ५५ ॥ तुम मित्रावरुणके तेजमें प्रवेश कर स्थिर चित्तसे वास करो इससे तम यथाकालमें अयोनिज देह प्राप्त कर फिर ॥ ५६ ॥

धर्मयुक्त, सत्यनिष्ठ, देदज्ञ, सर्वज्ञ और सबके पूजित होगे इसमें कोई भी संशय नहीं ॥ ५७ ॥ ब्रह्माके इसप्रकार कहनेपर फिर महर्षि वशिष्ठ पितामहको प्रणाम और प्रदक्षिणा कर वरुणालयमें गये ॥ ५८ ॥ अनंतर उन्होंने अपना अत्युत्तम देह परित्याग कर सूक्ष्मदेहरूप अपने जीवांशद्वारा मित्रावरुणके देहमें प्रवेश किया ॥ ५९ ॥ तदनंतर किसी समयमें परमरूपलावण्यवती उर्वशी अपनी सखियोंके संग इच्छानुसार वरुणालयमें आकर उपस्थित हुई ॥ ६० ॥ मित्रावरुण दोनों देवतारूप यौवनसंपन्न उस अप्सराको देखकर अत्यंत कामातुर हुए ॥ ६१ ॥ और कामबाणसे मोहित और विवश हो उस सर्वाङ्गसुन्दरी मनोरमा देवकन्या उर्वशीसे कहने लगे हे वरवर्णिनि ! हम तुमको देखकर कामबाणसे अत्यंत व्याकुल हुए हैं ॥ ६२ ॥ हे सुंदरि ! तुम हमको

पुनर्देहं समासाद्य धर्मयुक्तो भविष्यसि ॥ भूतात्मा वेदवित्कामं सर्वज्ञः सर्वपूजितः ॥ ५७ ॥ एकमुक्तस्तदा पित्रा प्रययौ वरुणालयम् ॥
कृत्वा प्रदक्षिणं प्रीत्या प्रणम्य च पितामहम् ॥ ५८ ॥ विवेश स तयो र्देहे मित्रावरुणयोः किल ॥ जीवांशेन वसिष्ठोऽथ त्यक्त्वा
देहमनुत्तमम् ॥ ५९ ॥ कदाचित्तूर्वशी राजन्नागता वरुणालयम् ॥ यदृच्छया वरारोहा सखीगणसमावृता ॥ ६० ॥ दृष्ट्वा तामप्सरां
दिव्यां रूपयौवनसंयुताम् ॥ जातौ कामातुरौ देवौतदा तामूचतुर्नृप ॥ ६१ ॥ विवशौ चारुसर्वांगीं देवकन्यां मनोरमाम् ॥ आवां
त्वमनवद्यांगि वरयस्व समाकुलौ ॥ ६२ ॥ विहरस्व यथाकामं स्थानेऽस्मिन्वर वर्णिनि ॥ तथोक्ता सा ततो देवी ताभ्यां तत्र स्थिता
वशा ॥ ६३ ॥ कृत्वा भावं स्थिरं देवी मित्रावरुणयोर्गृहे ॥ सा गृहीत्वा तयोर्भावं संस्थिता चारुदर्शना ॥ ६४ ॥ तयोस्तु पतितं वीर्यं
कुंभे दैवादनावृते ॥ तस्माज्जातौ मुनी राजन्द्वावेवातिमनोहरौ ॥ ६५ ॥ अगस्तिः प्रथमस्तत्र वसिष्ठाश्चापरस्तथा ॥ मित्रावरुणयोर्वीर्या
त्तापसावृषिसत्तमौ ॥ ६६ ॥ प्रथमस्तु वनं प्राप्तो बाल एव महातपाः ॥ इक्ष्वाकुस्तु वसिष्ठं तं बालं वव्रे पुरोहितम् ॥ ६७ ॥

वरण कर इस स्थानमें इच्छानुसार विहार करती रहो उनके इस प्रकार कहनेपर फिर उर्वशी देवी उसकाल उनके प्रति अनुरागिनी और उनकी वशवर्तिनी होकर ॥६३॥ उन मित्रावरुणके गृहमें वास करने लगी उर्वशीके उनके प्रति परमअनुरागके सहित वहां स्थिति करनेपर ॥ ६४ ॥ उनका वीर्य एक उघडे कुम्भमें पतित हुआ उससे अत्यन्त मनोहर दो ऋषिकुमारोंने जन्म ग्रहण किया ॥ ६५ ॥ उनमें अगस्त्य प्रथम और वशिष्ठ दूसरे हुए इसप्रकार मित्रावरुणके वीर्यसे तपस्वी दो ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ६६ ॥ प्रथम अगस्त्य बाल्यकालमें ही तपस्वी होकर वनको चले गये और राजश्रेष्ठ इक्ष्वाकुने बालक वसिष्ठको पुरोहितमें वरण किया ॥ ६७ ॥

हे राजन् ! इक्ष्वाकुने उनके वंशके कल्याणार्थ उनको पालन किया विशेषकर वह उनको वसिष्ठ मुनि जानकर उनके प्रति प्रसन्न हुए थे ॥ ६८ ॥ हे जनमेजय ! यह मैंने तुमसे निमिके शापसे वशिष्ठकी देहान्तर प्राप्तिका और मित्रावरुणके कुलमें उनकी उत्पत्तिका विवरण सम्पूर्णही वर्णन किया ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने महर्षि वशिष्ठदेवकी देहान्तरप्राप्तिका विषय वर्णन किया किंतु निमिराज किसप्रकार फिर देहको प्राप्त हुए थे ? यह वर्णन नहीं किया उस समय यह विषय कीर्तन करके मेरा कौतुहल चरितार्थ कीजिये ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वशिष्ठ ऋषि फिर देहको प्राप्त हुए थे किंतु निमिराजको वशिष्ठके शाप देनेपर फिर देह प्राप्त नहीं हुई

वंशस्यास्य सुखार्थं ते पालयामास पार्थिव ॥ विशेषेण मुनिं ज्ञात्वा प्रीत्या युक्तो बभूव ह ॥ ६८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वसिष्ठस्य च कारणम् ॥ शापाद्देहांतरप्राप्तिर्मित्रावरुणयोः कुले ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ जनमेजय उवाच ॥ देहप्राप्तिर्वसिष्ठस्य कथिता भवता किल ॥ निमिः कथं पुनर्देहं प्राप्तवानिति मे वद ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ वसिष्ठेन च संप्राप्तः पुनर्देहो नराधिप ॥ निमिना न तथा प्राप्तो देहः शापादनंतरम् ॥ २ ॥ यदा शप्तो वसिष्ठेन तदा ते ब्राह्मणाः क्रतौ ॥ ऋत्विजो ये वृता राज्ञा ते सर्वे समचिंतयन् ॥ ३ ॥ किं कर्तव्यमहोऽस्माभिः शापदग्धो महीपतिः ॥ अस्मिन्यज्ञे त्वसंपूर्णे दीक्षायुक्तश्च धार्मिकः ॥ ४ ॥ किं कर्तव्यं कार्यमेतद्विपरीतमभूत्किल ॥ अवश्यंभावि भावत्वादशक्ताः स्म निवारणे ॥ ५ ॥ मंत्रैर्बहुविधैर्देहं तदा तस्य महात्मनः ॥ रक्षितं धारयामासुः किंचिच्छ्वसनसंयुतम् ॥ ६ ॥ गंधैर्माल्यैश्च विविधैः पूज्य मानं मुहुर्मुहुः ॥ मंत्रशक्त्या प्रतिष्टभ्य निर्विकारं सुपूजितम् ॥ ७ ॥ समाप्ते च क्रतौ तत्र देवाः सर्वे समागताः ॥ ऋत्विग्भिस्तु स्तुताः सर्वे सुप्रीताश्चाभवन्नृप ॥ ८ ॥

॥ २ ॥ जब वशिष्ठ ऋषिने उनको शाप दिया, उस समय यज्ञकार्यमें नियुक्त ऋत्विक् ब्राह्मणगण चिंता करने लगे कि ॥ ३ ॥ क्या आश्चर्य है इस यज्ञके संपूर्ण न होते होतेही दीक्षित धार्मिक महीपति निमि शापसे ग्रस्त हुए ॥ ४ ॥ यह कार्य विपरीत हो गया हम क्या करें जो होनहार है वह अवश्यही होगा अतएव हम क्या करके इसको निवारण करें ॥ ५ ॥ तब उन्होंने उस महात्माकी किंचित् स्वांशयुक्त देहकी अनेक मंत्रोंसे रक्षा की ॥ ६ ॥ और माल्य गन्धादिसे वारंवार पूजाकर अनेक यत्नसे मंत्रशक्तिद्वारा स्तम्भित और विकार रहितकर राजाको उक्त देहधारण कराई ॥ ७ ॥ अनंतर उस यज्ञके समाप्त होनेपर ऋषिगण देवताओंका स्तव करने लगे इससे देवता प्रसन्न और संतुष्ट होकर उस स्थानमें आये ॥ ८ ॥

उस समय मुनिगण राजाकी समस्त अवस्था जानकर दुःखित राजासे कहने लगे हे सुव्रत! हम आपके यज्ञानुष्ठानसे प्रसन्न हुए हैं इस समय आप हमसे वांच्छित वर माँगिये ॥ ९ ॥ हे नृपवर ! इस यज्ञके अनुष्ठान फलसे आपका श्रेष्ठ जन्म होना उचित है, अतएव आप देवदेह अथवा नरदेह जिसकी अभिलाषा करें वही कहिये ॥ १० ॥ अतएव आपका पुरोहित जिस प्रकार पूर्व देह परित्यागकर इसीके समान दूसरा देहधारण पूर्वक गर्वित हो मृत्युलोकमें अवस्थिति करता है आप इच्छा होनेसे भी इस प्रकार प्रार्थना कर सकते हैं हे महाराज! देवताओंके इस प्रकार कहनेपर फिर निमिराजकी आत्मा अत्यंत संतुष्ट हो उनसे कहने लगे ॥ ११ ॥ हे सुरसत्तमगण ! जो देह सर्वदाही विनष्ट होता है इसमें मेरी अभिलाषा नहीं है अतएव जीवगणोंके दोनों नेत्रोंके उपरि भागमें

विज्ञप्ता मुनिभिः स्तोत्रैर्निर्विण्णात्मानमब्रुवन् ॥ प्रसन्नाः स्म महीपाल वरं वरय सुव्रतः ॥ ९ ॥ यज्ञेनानेन राजर्षे वरं जन्म विधीयते ॥ देवदेहं नृदेहं वा यत्ते मनसि वांछितम् ॥ १० ॥ दृप्तः कामं पुरोधास्ते मृत्युलोके यथासुखम् ॥ एवमुक्तो निमेरात्मा सन्तुष्टस्तानुवाच ह ॥ ११ ॥ न देहे मम वांछाऽस्ति सर्वदैव विनश्वरे ॥ वासो मे सर्वसत्त्वानां दृष्टा वस्तु सुरोत्तमाः ॥ १२ ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चराम्यहम् ॥ एवमुक्ताः सुरास्तत्र निमेरात्मानमब्रुवन् ॥ १३ ॥ प्रार्थय त्वं महाराज देवीं सर्वेश्वरीं शिवाम् ॥ मखेनानेन सन्तुष्टा साऽतेभीष्टं विधास्यति ॥ १४ ॥ स देवैरेवमुक्तस्तु प्रार्थयामास देवताम् ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्भक्त्या गद्गदया गिरा ॥ १५ ॥ प्रसन्ना सा तदा देवी प्रत्यक्ष दर्शनं ददौ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं रूपं लावण्यदीपितम् ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे कृतकृत्याश्च चेतसि ॥ प्रसन्नायां देवताया राजा वव्रे वरं नृप ॥ १७ ॥

मेरा वास हो ॥ १२ ॥ मैं समस्त प्राणियोंके नेत्रोपरि वायुरूपसे विचरण करूं यही मेरी प्रार्थना है निमिराजके इसप्रकार कहनेपर फिर देवताओंने निमिकी आत्मासे कहा ॥ १३ ॥ हे महाराज ! आप विश्वरूपिणी सर्वेश्वरी देवीके निकट प्रार्थना कीजिये वह यज्ञसे संतुष्ट हुई हैं अतएव अवश्यही आपका अभीष्ट सिद्ध करेंगी ॥ १४ ॥ निमिराज देवताओंके यह वचन सुनकर भक्तिभावयुक्त गद्गद वाक्यसे अनेक प्रकारके स्तोत्रद्वारा देवीके निकट प्रार्थना करने लगे ॥ १५ ॥ तब देवी प्रसन्न हो सन्मुख आये उपस्थित हुई उनकी करोड़ सूर्यके समान ज्योति और रूपलावण्य देखकर ॥ १६ ॥ सम्पूर्णही आनंदित और प्रफुल्लित होकर मनहीमनमें अपनेको कृतकृत्य बोध करने लगे तब राजाने भगवती देवीको प्रसन्न जानकर उनके निकट इस वरकी प्रार्थना की ॥१७॥

हे देवि ! जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है मुझको वही विमल तत्वज्ञान प्रदान कीजिये और जिससे सम्पूर्ण जीवोंके नेत्रोपरि मेरा वास हो आप वह भी कीजिये ॥ १८ ॥ अनन्तर प्रसन्न हुई सुरेश्वरी जगदंबिका देवीने कहा हे नृपवर ! प्रारब्धकार्यके शेष होनेपर तुमको विमल ज्ञान प्राप्त ॥१९॥ और समस्त जीवगणोंके नेत्रोपरि वायुरूपसे तुम्हारा वास होगा तुम्हारे अधिष्ठानसेही देहीगणोंके दोनों नेत्र निमेषयुक्त होंगे ॥ २० ॥ तुम्हारे वासके कारणही मनुष्यगण पशुगण और पतंगगणोंके नेत्रोपरि निमेष होगा किन्तु रगण अनिमेष रहेंगे ॥ २१ ॥परमेश्वरी भगवती उनको इस प्रकार वरप्रदानपूर्वक संपूर्ण मुनिगणोंसे संभाषण कर उसी स्थानमें अंतर्धान हुई ॥ २२ ॥ देवीके अंतर्धान होनेपर तत्रस्थित मुनिगणोंने अनेक प्रकारसे चिंता करके विधिपूर्वकमथन करनेकेलिये निमिकी

ज्ञानं तद्विमलं देहि येन मोक्षो भवेदपि ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासो मे भवेदिति ॥ १८ ॥ ततः प्रसन्ना देवेशी प्रोवाच जगदंबिका ॥ ज्ञानं ते विमलं भूयात्प्रारब्धस्यावशेषतः ॥ १९ ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासोऽपि भविष्यति ॥ निमिषं यांति चक्षूंषि त्वत्कृतेनैव देहि नाम् ॥ २० ॥ तव वासात्सनिमिषा मानवाः पशवस्तथा ॥ पतंगाश्च भविष्यंति पुनश्चानिमिषाः सुराः ॥ २१ ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मै तदा श्रीवरदेवता ॥ आमंत्र्य च मुनीन्सर्वांस्तत्रैवांतर्हिताऽभवत् ॥ २२ ॥ अंतर्हितायां देव्यां तु मुनयस्तत्र संस्थिताः ॥ विचिंत्य विधि वत्सर्वे निमेर्देहं समाहरन् ॥ २३ ॥ अरणिं तत्र संस्थाप्य ममंथुमंत्रवत्तदा ॥ मंत्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेरथ ॥ २४ ॥ अरण्यां मथ्यमानायां पुत्रः प्रादुरभूत्तदा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नः साक्षान्निमिरिवापरः ॥ २५ ॥ अरण्या मथनाज्जा तस्तस्मान्मिथिरिति स्मृतः ॥ येनायं जनकाज्जातस्तेनासौ जनकोऽभवत् ॥ २६ ॥ विदेहस्तु निमिर्जातो यस्मात्तस्मात्तदन्वये ॥ समुद्भूतास्तु राजानो विदेहा इति कीर्तिताः ॥ २७ ॥ एवं निमिसुतो राजा प्रथितो जनकोऽभवत् ॥ नगरी निर्मिता तेन गंगातीरे मनोहरा ॥ २८ ॥

देहको ग्रहण किया ॥ २३ ॥ महात्मा मुनिगण निमिपुत्रके निमित्त होम करके तदुपरांत उनकी देहमें अरणि (मन्थन काष्ठ) स्थापन पूर्वक मंत्र उच्चारण कर मंथन करने लगे ॥ २४ ॥ इस प्रकार अरणिद्वारा मथित होनेपर सर्वसुलक्षणयुक्त साक्षात् दूसरे निमिके समान एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ इस पुत्रने अरणिके मथनेसे जन्म ग्रहण किया इस कारण मिथिनामसे और जनकके अंगसे जन्म लेनेपर जनक नामसे विख्यात हुआ ॥ २६ ॥ हे राजन् ! निमिराज वशिष्ठके शापसे विदेह अर्थात् देहरहित हुए थे इसी कारण उनके वंशमें उत्पन्न सबही विदेह कहकर कीर्तित होते हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार निमिके पुत्र जनकनामसे विख्यात हुए थे उन्होंने गंगाके तटपर मनोरमा एक नारी निर्माण की ॥ २८ ॥

उन्हींके नामानुसार यह नगरी मिथिलानामसे विख्यात हुई. जनकराजाने इस नगरीको दुर्ग तोरण हट्टशाल बडे स्थान और अनेक अटारियोंसे शोभा यमान कर धनधान्यादिसे परिपूर्ण किया था ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इस वंशजके संपूर्ण राजागणही जनक कहकर विख्यात और समस्तही ज्ञानयुक्त तथा विदेह कहकर कीर्तित होते हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! शापके वशीभूत हो जिनको विदेहत्व प्राप्त हुआ था मैंने इस निमिराजका अतिउत्तम उपाख्यान आपके निकट विस्तारपूर्वक कीर्त्तनकिया ॥ ३१ ॥ राजाने कहा हे भगवन् ! आपने निमिशापका कारण कीर्त्तन किया, उसको सुनकर मेरा मन अत्यन्त संशययुक्त और अतिचंचल हो गया ॥ ३२ ॥ वशिष्ठ ऋषि ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और ब्रह्माके पुत्र हैं विशेषकर राजाके पुरोहित थे अतएव वह किस लिये राजासे

मिथिलेति सुविख्याता गोपुराट्टालसंयुता ॥ धनधान्यसमायुक्ता हट्टशालाविराजिता ॥ २९ ॥ वंशेऽस्मिन्येऽपि राजानस्ते सर्वे जनकास्तथा ॥ विख्याता ज्ञानिनः सर्वे विदेहाः परिकीर्तिताः ॥ ३० ॥ एतत्ते कथितं राजन्निमेराख्यानमुत्तमम् ॥ शापाद्यस्य विदेहत्वं विस्तरादुदितं मया ॥ ३१ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्भवता प्रोक्तं निमिशापस्य कारणम् ॥ श्रुत्वा संदेहमापन्नं मनो मेऽतीव चंचलम् ॥ ३२ ॥ वसिष्ठो ब्राह्मणः श्रेष्ठो राज्ञश्चैव पुरोहितः ॥ पुत्र पंकजयोनेस्तु राज्ञा शप्तः कथं मुनिः ॥ ३३ ॥ गुरुं च ब्राह्मणं ज्ञात्वा निमिना न कृता क्षमा ॥ यज्ञकर्म शुभं कृत्वा कथं क्रोधमुपागतः ॥ ३४ ॥ ज्ञात्वा धर्मस्य विज्ञानं कथमिक्ष्वाकुसंभवः ॥ क्रोधस्य वशमापन्नः शप्तवान्ब्राह्मणंगुरुम् ॥३५॥ व्यास उवाच ॥ क्षमाऽतिदुर्लभा राजन्प्राणिभिरजितात्मभिः ॥ क्षमावान्दुर्लभो लोके सुसमर्थो विशेषतः ॥३६॥ सर्वसंगपरित्यागी मुनिर्भवतु तापसः ॥ निद्राक्षुधोर्विजेता च योगाभ्यासे सुनिष्ठितः ॥३७॥ कामः क्रोधस्तथा लोभो ह्यहंकारश्चतुर्थकः ॥ दुर्ज्ञेया देहमध्यस्था रिपवस्तेन सर्वथा ॥ ३८ ॥

शापित हुए ॥ ३३ ॥ निमिराजने उनको गुरु और ब्राह्मण जानकर भी क्षमा क्यों नहीं की ? वह इसप्रकार मंगलजनक यज्ञकार्य करकेभी क्यों क्रोधके वशीभूत हुए ? ॥ ३४ ॥ उन्होंने इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न और धर्मका तत्व जानकर भी किस कारणसे क्रोधके वशीभूत होकर आपने गुरु ब्राह्मणको शाप दिया ? ॥ ३५ ॥ व्यासजीने कहा, हे राजेन्द्र ! अजितेन्द्रिय प्राणीगणोंके पक्षमें क्षमा अत्यंत दुर्लभ है, विशेषकर सामर्थ्यवान् होनेपर भी क्षमावान् हो इस प्रकारके मनुष्य त्रिलोकीमें अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥ ३६ ॥ जो समस्त संग परित्याग क्षमा और निद्राको जीतकर सर्वदा योगाभ्यासमें निरत हैं ॥ ३७ ॥ वे तपोधन मुनि काम, क्रोध, लोभ और अहंकार इत्यादि देहमध्यस्थित शत्रुगणोंको भलीभांति नहीं जीत सकते ॥ ३८ ॥

जो इन शत्रुओंको जीत सकता है उस संपूर्ण संसारमें ऐसा पुरुष पूर्वमें कोई नहीं था इस समय भी विद्यमामान नहीं और फिर भी उत्पन्न न होगा ॥ ३९ ॥ इन शत्रुओंको पराजित कर सकता है ऐसा कोई पुरुष पृथ्वी स्वर्ग वा ब्रह्मलोक अथवा वैकुण्ठमें अधिक क्या कैलासमें भी विद्यमान नहीं ॥ ४० ॥ जब ब्रह्माके पुत्र महर्षिगण और अन्यान्य तापसोत्तम ऋषिगण समस्तही सत्व रज और तमोगुणसे बँधे हैं तब पृथ्वीमें वास करनेवाले सामान्य मनुष्यकी फिर क्या बात है ॥ ४१ ॥ देखो कपिल सांख्यवेत्ता योगाभ्यासनिरत और पवित्र आत्मा थे. उन्होंने भी दैववशात क्रोधित होकर राजा सगरके पुत्रोंको दग्ध किया था ॥ ४२ ॥ हे राजन्! अहंकारसे वह त्रिभुवन उत्पन्न हुआ है अतएव संपूर्ण संसार और अहंकार परस्पर कार्य कारण भावसे बँधे हैं तो इस

न भूतपूर्वः संसारे न चैव वर्ततेऽधुना ॥ भविता न पुमान्कश्चिद्योजयेत रिपूनिमान् ॥ ३९ ॥ न स्वर्गे न च भूलोके ब्रह्मलोके हरेः पदे ॥ कैलासे नेदृशः कश्चिद्योजयेत रिपूनिमान् ॥ ४० ॥ मुनयो ब्रह्मपुत्राश्च तथाऽन्ये तापसोत्तमाः ॥ तेऽपिगुणत्रयाविद्धाः किं पुन र्मानवा भुवि ॥ ४१ ॥ कपिलः सांख्यवेत्ता च योगाभ्यासरतः शुचिः ॥ तेनापि दैवयोगाद्धि प्रदग्धाः सगरात्मजाः ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन्नहंकारात्संजातं भुवनत्रयम् ॥ कार्यकारणभावात्तु तद्वियुक्तं कथं भवेत् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा गुणत्रया विष्टोविष्णुश्चैवाथ शंकरः ॥ प्रभवंति शरीरेषु तेषां भावाः पृथक्पृथक् ॥ ४४ ॥ मानवानां च का वार्तासत्त्वैकान्तव्यवस्थितौ ॥ गुणानां संपरो राजन्सर्वत्र समव स्थितः ॥ ४५ ॥ कदाचित्सत्त्ववृद्धिः स्यात्क दाचिद्रजसः किल ॥ कदाचित्तमसो वृद्धिः समभावः कदाचन ॥ ४६ ॥ निर्गुणः परमा त्माऽसौ निर्लेपः परमोऽव्ययः ॥ अलक्ष्यः सर्वतत्त्वानामप्रमेयः सनातनः ॥ ४७ ॥ तथैव परमा शक्तिर्निर्गुणा ब्रह्मसंस्थिता ॥ दुर्ज्ञेया चाल्पमतिभिः सर्वभूतव्यवस्थितिः ॥ ४८ ॥

संसारमें उत्पन्न हुए जीवगण किस प्रकार उस अहंकारसे छूट सकते हैं ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर यह भी तीनों गुणद्वारा युक्त हैं उनके शरीरमें भी पृथक् पृथक् भावका आविर्भाव होता है ॥ ४४ ॥ तब मनुष्यगणोंको देहमें जो सत्वगुणका वास नहीं होता इस विषयमें कहनाही क्या है क्योंकि मिले हुए तीनों गुणोंका सर्वत्रही वास होता है ॥ ४५ ॥ अतएव कभी सत्वगुणकी कभी रजोगुणकी और कभी तमोगुणकी वृद्धि होती है और कभी इनकी समभावसे अवस्थिति होती है ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र! केवल वही सनातन परम पुरुष अव्यय और निर्लेप एवं समस्त भूतोंके अप्रमेय और अलक्ष्य है ॥ ४७ ॥ वही परात्पर परमात्मा निर्गुण हैं और जो सब जीवोंमें वास करते हैं जो अल्पबुद्धि मनुष्योंको दुर्लभ हैं उन्हीं ब्रह्मरूपिणी परमाशक्तिको भी निर्गुण जानना

चाहिये ॥ ४८ ॥ परमात्मा और परमात्माशक्तिकी कथा सर्वदाही विद्यमान है उनकी मूर्ति अभिन्न है जब इस प्रकार ज्ञानका उदय होता है तब ही जीवगण संपूर्ण प्रकारके दोषसे छूट जाते हैं ॥ ४९ ॥ "इसी ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त होता है" वेदांत शास्त्रमें यह (नगाडेके शब्द) के समान घोषणा है जो उसको जानता है वह इस त्रिगुणात्मक संसारसे छूट जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ५० ॥ हे महाराज! ज्ञान दो प्रकारका है उनमें शाब्दिक ज्ञान प्रथम है वेदशास्त्रार्थ विज्ञानसे बुद्धि योग द्वारा उस ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ ५१ ॥ इसमें मनुष्यगणोंके बुद्धि कल्पित अनेक वितर्क दिखाई देते हैं उनमें कितने ही एक कुतर्क द्वारा कल्पित और कितने ही सुतर्क कल्पित हैं इस वितर्कसे प्राणीगणोंके भ्रमकी उत्पत्ति होती है भ्रमसे बुद्धि नष्ट और बुद्धि नष्टसे ज्ञान नष्ट होता है. हे

परात्मनस्तथा शक्तेस्तयोरैक्यं सदैव हि ॥ अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते सर्वदोषतः ॥४९॥ तज्ज्ञानादेव मोक्षः स्यादिति वेदांतडिंडिमः ॥ यो वेद स विमुक्तोऽस्मिन्संसारे त्रिगुणात्मके ॥ ५० ॥ ज्ञानं तु द्विविधं प्रोक्तं शाब्दिकं प्रथमं स्मृतम् ॥ वेदशास्त्रार्थविज्ञानात्तद्भवेद् बुद्धियोगतः ॥ ५१ ॥ विकल्पास्तत्र बहवो भवंति मति कल्पिताः ॥ "कुतर्ककल्पिताः केचित्सुतर्ककल्पिताः परे ॥ वितर्कैर्विमोत्पत्तिविभ्रमाद् बुद्धिभ्रंशता ॥ बुद्धिभ्रंशाज्ज्ञाननाशः प्राणिनां परिकीर्तितः॥" अनुभवाख्यं द्वितीयं तु ज्ञानं तद् दुर्लभं नृप ॥ ५२ ॥ तत्तदा प्राप्यते तस्य वेत्तुः संगो यदा भवेत् ॥ शब्दज्ञानान्न कार्यस्य सिद्धिर्भवति भारत ॥ ५३ ॥ तस्मान्नानुभवज्ञानं संभवत्यतिमानुषम्॥ अंतर्गतं तमश्छेत्तुं शाब्दबोधो हि न क्षमः ॥ ५४ ॥ तथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया ॥ तत्कर्म यन्न बंधाय स विद्या या विमुक्तये ॥ ५५ ॥

राजन् ! दूसरे ज्ञानका नाम अनुभव वा अपरोक्ष ज्ञान है यह ज्ञान प्राणीगणोंके पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ जानना चाहिये ॥ ५२ ॥ जब अनुभवकर्त्ता सद्गुरुके सहित संग होता है तबही वह ज्ञान प्राप्त हो सकता है क्योंकि शब्द ज्ञानसे कार्य सिद्धि नहीं होती है ॥ ५३ ॥ अतएव इससे अलौकिक अनुभव ज्ञान (अपरोक्ष) की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती है. इसी कारण इस ज्ञानके निमित्त महत परिश्रमका प्रयोजन है हे राजन् ! जिस प्रकार दीपक न जलाकर उसकी बातसे ही अन्धकार नष्ट नहीं होता इसीप्रकार शब्दका बोधमात्र अन्तरका अन्धकार नाश करनेमें समर्थ नहीं होता. जो बन्धनका कारण है उसको ही यथार्थ कर्म और जिससे युक्ति प्राप्त होती उसको ही यथार्थ विद्या कहा जा सकता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अपर सम्पूर्ण कर्म परिश्रम निमित्त और अपर विद्याके बल शिल्पनैपुण्य मात्र होती हैं. शीलता, परोपकार, अक्रोध, क्षमा, धैर्य ॥ ५६ ॥ और संतोष यह सब विद्या वल्लीके उज्ज्वल और सुन्दर फल हैं हे राजन् ! विद्या, तपस्या और योगाभ्यासके विना ॥ ५७ ॥ कभी कामादि सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश नहीं होता जीवगणोंका मन स्वभावसे हो चञ्चल और दुर्गन्ध है. प्राणीगण सब प्रकारसे मनके वशीभूत हैं अतएव वह उत्तम, मध्यम और अधम होकर इस संसारमें विचरण करते हैं. काम क्रोधादि समस्त भाव मनसे ही उत्पन्न होते हैं ॥ ५८ ॥ जब मनको जीत लिया जाता है तब सम्पूर्ण भाव उत्पन्न नहीं होते इस कारण राजासे क्षमा न हुई ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! पूर्वमें शुक्राचार्यके अपराध करनेपर ययातिने जिस प्रकार उनको क्षमा किया था निमिराज वसिष्ठ

आयासायापरं कर्म विद्याऽन्या शील्पनैपुणम् ॥ शीलं परहितत्वं च कोपाभावः क्षमाधृतिः ॥ ५६ ॥ संतोषश्चेति विद्या याः परिपाकोज्ज्वलं फलम् ॥ विद्यया तपसा वाऽपि योगाभ्यासे न भूपते ॥ ५७ ॥ विना कामादिशत्रूणां नैव नाशः कदाचन ॥ "मनस्तु चंचलं राजन्स्वभावदतिदुर्ग्रहम् ॥ तद्वशः सर्वथा प्राणी त्रिविधो भुवनत्रये ॥ " कामक्रोधादयो भावाश्चित्तजा परिकीर्तिताः ॥ ५८ ॥ ते तदा न भवंत्येव यदा वै निर्जितं मनः ॥ तस्मात्तु निमिना राजन्न क्षमा विहिता मुनौ ॥ ५९ ॥ यथा ययातिना पूर्वं कृता शुक्रे कृता गसि ॥ भृगुपुत्रेण शप्तोऽपि ययातिर्नृपसत्तमः ॥ ६० ॥ न शशाप मुनिं क्रोधाज्जरां राजा गृहोतवान् ॥ कश्चित्सौम्यो भवेत्कश्चित्क्रूरो भवति पार्थिवः ॥ ६१ ॥ स्वभावभेदान्नृपते कस्य दोषोऽत्र कल्प्यते ॥ हैहया भार्गवान्पूर्वं धनलोभात्पुरोहितान् ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणान्मूलतः सर्वांश्चिच्छिदुः क्रोधमूर्छितः ॥ पातकं पृष्ठतः कृत्वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम् ॥ ६३ ॥

ऋषिके प्रति उस प्रकार क्षमा करनेमें समर्थ नहीं हुए, नृपसत्तम ययातिने भृगुनन्दन शुक्राचार्यसे शापित होकर क्रोधके वशीभूत उन मुनिको शाप न देकर ॥ ६० ॥ आपही जरा (बुढापा) ग्रहण किया था. हे नराधिप ! स्वभावके वशीभूत कोई राजा शान्तभाव युक्त और कोई राजा क्रूर स्वभाव युक्त होता है ॥ ६१ ॥ अतएव इस विषयमें किसका दोष कहा जा सकता है ? देखो पूर्वकालके समय हैहयगणोंने धनलोभके वशीभूत और क्रोधसे मूर्छित होकर भृगुवंशीय पुरोहित ब्राह्मणगणोंको जड़ सहित नष्ट किया था ॥ ६२ ॥ अधिक क्या उन क्षत्रियगणोंने ब्रह्महत्याके पापको न देखकर अत्यन्त क्रोधके वशीभूत हो उन ब्राह्मणोंके गर्भमें स्थित बालकोंको भी छेदन किया था ॥ ६३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! हैहयनाम जिन क्षत्रियगणोंने ब्रह्महत्याके पापको न देखकर भार्गवगणोंको निहत किया था उन्होंने किसके वंशमें जन्मग्रहणकिया था ॥१॥ हे पितामह ! सज्जनगण भारी कारणके विना क्रोध नहीं करते, अतएव आप उनके क्रोधका कारण क्या है यह कहिये ? ॥ २ ॥ पुरोहित गणोंके सहित उनकी शत्रुता क्यों हुई ? मुझको बोध होताहै कि, सामान्य कारणसे क्षत्रियगणोंकी यह शत्रुता नहीं होती ॥ ३ ॥ तो वह निरपराध पूजनीय ब्राह्मणोंको किस कारण निहत करते हैं ? क्षत्रियगण बलवान् होनेपर भी उनके पापसे क्यों नहीं डरते ? ॥ ४ ॥ हे मुनिवर ! कौन क्षत्रिय श्रेष्ठ सामान्य अपराधके कारण परम पूज्य विप्रवर्गका विनाश करते हैं ? अतएव हे

इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ जनमेजय उवाच ॥ कुले कस्य समुत्पन्नाः क्षत्रिया हैहयाश्च ये ॥ ब्रह्महत्यामनादृत्य निज घ्नुर्भार्गवांश्चये ॥ १ ॥ वैरस्य कारणं तेषां किं मे ब्रूहि पितामह ॥ निमित्तेन विना क्रोधं कथं कुर्वंति मत्तमाः ॥ २ ॥ वैरं पुरोहितैः सार्धं कस्मात्तेषामजायत ॥ नाल्पहेतोर्हि तद्वैरं क्षत्रियाणां भविष्यति ॥ ३ ॥ अन्यथा ब्राह्मणान्पूज्यान्कथं जघ्नु रनागसः ॥ बाहुजा बलवंतोऽपि पापभीताः कथं न ते ॥ ४ ॥ स्वल्पेऽपराधे को हन्याद्वाडवान्क्षत्त्रियर्षभः ॥ संदेहो मे मुनिश्रेष्ठ कारणं वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा तेन राज्ञा सत्यवतीसुतः ॥ उवाच परमप्रीतः कथां संस्मृत्य चेतसा ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु पारिक्षिते वार्ता क्षत्रियाणां पुरातनीम् ॥ आश्चर्यकारिणीं सम्यग्विदितां च पुरा मया ॥ ७ ॥ कार्तवीर्येति नाम्नाऽभूद्धैहयः पृथिवीपतिः ॥ सहस्रबाहुर्बलवानर्जुनो धर्मतत्परः ॥ ८ ॥ दत्तात्रेयस्य शिष्योऽभूदवतारो हरेरिव ॥ सिद्धः सर्वार्थदः शाक्तो भृगूणां याज्य एव सः ॥ ९ ॥

मुनीन्द्र ! मुझको इस विषयमें संशय उपस्थित हुआ है आप इसका कारण वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! जनमेजयके सत्यवती पुत्र व्यासदेवजीसे इस प्रकार पूछनेपर वह अत्यन्त प्रसन्न हुए और मनमें हैहयका वृत्तान्त स्मरण कर वह उपाख्यान वर्णन करने लगे ॥ ६ ॥ उन्होंने कहा हे परीक्षित तनय ! जो मैंने पूर्वमें भलीभांति जाना है क्षत्रियोंका वह अत्यन्त आश्चर्य युक्त पुरातन उपाख्यान वर्णन करता हूं सुनो ॥ ७ ॥ पूर्वकालके समय हैहय वंशमें उत्पन्न सहस्रबाहु, बलवान्, धर्मतत्पर कार्तवीर्यार्जुन नामक एक राजा थे ॥ ८ ॥ वह हरिके अवतार महर्षि दत्तात्रेयके शिष्य और परमाशक्तिके उपासक थे वह योगसिद्ध कहकर सर्वत्र विख्यात और अत्यन्त दान करनेवाले थे किन्तु यह नृपश्रेष्ठ भृगुवंशीय ब्राह्मणगणोंके यजमान थे ॥९॥

वह यज्ञ करनेवाले परम धर्मनिष्ठ और सर्वदा ही दानपरायण थे उसीके अनुसार अनेकबार यज्ञ करके भार्गवगणोंको बहुत धन दिया था ॥ १० ॥ कार्तवीर्यके दान प्रभावसे वह विप्रगण बहुत अश्व और रत्नादि अनेक ऐश्वर्यसे पृथ्वीमें धनशाली कहकर विख्यात हुए थे ॥ ११ ॥ हे क्षितीन्द्र ! नृपतिश्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनके स्वर्ग जानेपर फिर कालके दुरतिक्रमणीय प्रभावसे हैहयगण एक बारही निर्धन हो गये ॥ १२ ॥ अनंतर किसी समय हैहयगणोंको बहुत धनवाला कोई कार्य उपस्थित हुआ उन्होंने भार्गवगणोंके निकट आय विनयसहित बहुत धन की प्रार्थनाकी ॥ १३ ॥ किंतु विप्रगणोंने अत्यंत लोभार्त हो "नहीं नहीं" यह कहकर कुछ भी उनको धन दान नहीं किया ॥ १४ ॥ परंतु क्षत्रिय बलपूर्वक धन लेंगे इस शंकासे किसी किसीने उत्तम उत्तम बहुमूल्य

यज्वा परमधर्मिष्ठः सदा दानपरायणः ॥ ददौ वित्तं भृगुभ्योऽसौ कृत्वा यज्ञाननेकशः ॥१०॥ धनिनस्ते द्विजा जाता भृगवो नृपदानतः ॥ हयरत्नसमृद्ध्याऽऽढ्या संजाताः प्रथिता भुवि ॥ ११ ॥ स्वर्याते नृपशार्दूले कार्तवीर्यार्जुने पुनः ॥ हैहया निर्धना जाताः कालेन महता नृप ॥ १२ ॥ धनकार्यं समुत्पन्नं हैहयानां कदाचन ॥ याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तान्भृगूंस्ते हैहया नृप ॥ १३ ॥ विनयं क्षत्त्रियाः कृत्वाऽप्ययाचंत धनं बहु ॥ न ददुस्तेऽतिलोभार्ता नास्ति नास्तीति वादिनः ॥ १४ ॥ भूमौ च निदधुः केचिद् भृगवो धनमुत्तमम् ॥ ददुः केचिद् द्विजातिभ्यो ज्ञात्वा क्षत्त्रियतो भयम् ॥१५॥ कृत्वा स्थानांतरे द्रव्यं ब्राह्मणा भयविह्वलाः ॥ त्यक्त्वाऽऽश्रमान्ययुः सर्वे भृगवस्तृष्णयाऽन्विताः ॥ १६ ॥ याज्यांश्च दुःखितान्दृष्ट्वा न ददुर्लोभमोहिताः ॥ पलायित्वा गताः सर्वे गिरिदुर्गानुपाश्रिताः ॥ १७ ॥ ततस्ते हैहयास्तात दुःखिताः कार्यगौरवात् ॥ भृगूणामाश्रमाञ्जग्मुर्द्रव्यार्थं क्षत्रियर्षभाः ॥१८॥ भृगूंस्तु निर्गतान्वीक्ष्य शून्यांस्त्यक्त्वागृहानथ ॥ चखनुर्भूतलं तत्र द्रव्यार्थं हैहया भृशम् ॥ १९ ॥

धन पृथ्वीमें दबा दिया और किसी किसीने ब्राह्मणोंको देदिया ॥ १५ ॥ धनलोभी भार्गवगण भयसे विह्वल होकर अपने अपने सम्पूर्ण द्रव्य इस प्रकार स्थानांतर कलितकर अपना अपना घर छोड़ पर्वतादिमें चले गये ॥ १६ ॥ लोभसे मोहित ब्राह्मणोंने यजमानोंको दुःखित देखकर भी धन न दिया किंतु भयसे सभी गिरिदुर्गका आश्रय कर वास करने लगे ॥ १७ ॥ इसके उपरांत क्षत्त्रिय श्रेष्ठ हैहयगणोंने दुःखित हो महत् कार्यके अनुरोधसे धन लेनेके निमित्त भार्गवगणोंके गृहमें जाकर ॥ १८ ॥ देखा कि, भार्गवगण घर छोड़ भाग गये हैं और उनके सम्पूर्ण घर शून्य हुए पड़े हैं तब वे धनप्राप्त होनेके लिये उनके संपूर्ण घर खोदने लगे ॥ १९ ॥

और किसी किसीको भार्गवगणोंके घरसे धन प्राप्त हुआ अनन्तर समस्त क्षत्रियोंको धन प्राप्तिकी आशासे इस प्रकार परिश्रम करनेपर ॥ २० ॥ जब पृथ्वीसे अनेकानेक धन प्राप्त होने लगा तब पड़ोसी अन्य अन्य ब्राह्मणोंके घरोंको भी ॥ २१ ॥ खोद और विदारण कर धन ढूँढ़ने लगे, तब संपूर्ण ब्राह्मणगण निरुपाय हो रोते रोते उनकी शरणागत हुए ॥ २२ ॥ क्षत्रियगणोंके भली भांति ढूँढनेपर ब्राह्मणोंके घरसे बहुत धन प्राप्त हुआ तब उन्होंने मिथ्या कहनेके अपराधसे क्रोधित होकर उन शरणागत ब्राह्मणोंको शरोंसे निहत किया ॥ २३ ॥ हे महाराज! उसकाल हैहयगण इस प्रकार क्रोधित हुए थे और जिस स्थानमें संपूर्ण भार्गव वास करते थे क्षत्रियगण भी उसी स्थानमें गये और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके गर्भमें स्थित बालकोंको विदारण कर पृथ्वीमें

खनताऽधिगतं वित्तं केनचिद् भृगुवेश्मनि ॥ ददृशुः क्षत्त्रियाः सर्वे तद्वित्तं श्रमकर्शिताः ॥ २० ॥ यत्र तत्र समुत्पन्नं भूरि द्रव्यं महीतलात् ॥ तदा ते पार्श्वभोगस्थब्राह्मणानां गृहाण्यपि ॥ २१ ॥ निर्भिद्य हैहया द्रव्यं ददृशुर्धन लिप्सया ब्राह्मणाश्चुक्रुशुः सर्वे भीताश्च शरणं गताः ॥ २२ ॥ अतिचिन्वत्सु विप्राणां भवनान्निःसृतं बहु ॥ निजघ्नुस्ताञ्छरैः कोपाद्वडावञ्छरणागतान् ॥ २३ ॥ ययुस्ते गिरिदुर्गांश्च यत्र वै भृगवः स्थिताः ॥ आगर्भादनुकृंतंतश्चेरुश्चैव मही मिमाम् ॥ २४ ॥ प्राप्तान्प्राप्तान्भृगून्सर्वान्निजघ्नुर्निशितैः शरैः ॥ आबालवृद्धानपरानवमन्य च पातकम् ॥ ॥ २५ ॥ एवमुत्पाट्यमानेषु भार्गवेषु यतस्ततः ॥ हन्युर्गर्भांश्च नारीणां गृहीत्वा हैहया भृशम् ॥ २६ ॥ रुरुदुस्ताः स्त्रियः कामं कुरर्यइव दुःखिताः ॥ गर्भांश्च कृंतिता यासां क्षत्रियैः पापनिश्चयैः ॥२७॥ अन्येऽप्याहुश्च तान्दृष्ट्वा न्मुनयस्तीर्थवासिनः ॥ मुंचन्तु क्षत्रियाः क्रोधं ब्राह्मणेषु भयावहम् ॥ २८ ॥ अयुक्तमेतदारब्धं भवद्भिः कर्म गर्हितम् ॥ यद्गर्भान्भृगुपत्नीनां निहन्युः क्षत्रियर्षभाः ॥ २९ ॥

विचरण करने लगे ॥ २४ ॥ हैहयगण ब्राह्मणोंमें क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध जिस किसीको देखते ब्रह्महत्याके पापको परित्यागकर तत्काल तीक्ष्ण बाणोंसे उसको मार डालते ॥ २५ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणोंके मूल सहित नष्ट होनेपर हैहयगण उनकी गर्भिणी स्त्रियोंको पकड़ उनका गर्भ विनाश करने लगे ॥ २६ ॥ पापबुद्धि क्षत्रियोंके गर्भघात करनेपर स्त्रियें दुःखसे कुररीके समान रोने लगीं ॥ २७ ॥ तब तीर्थवासी अन्यान्य मुनिगण उन हैहयगणोंको क्रोधसे उद्दीप्त देखकर कहने लगे हे क्षत्रियो ! तुम ब्राह्मणोंके प्रति जो भयानक क्रोध करते हो वह त्याग करो ॥ २८ ॥ तुम क्षत्रियश्रेष्ठ होकर भी भार्गवगणोंकी स्त्रियोंका गर्भपात करते हो इससे तुम अत्यंत अयुक्त और अतिनीच कार्यमें प्रवृत्त हुए हो इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥

तुम जानते हो कि, जीवगणोंको अत्यन्त भारी पाप और पुण्यकर्मका फल इस लोकमेंही प्राप्त होता है. अतएव कल्याणकी कामना करनेवाले मनुष्योंको अत्यन्त घृणित कर्म त्याग करना ही उचित है ॥ ३० ॥ अनंतर परम क्रोधित हैहयगण करुणायुक्त तपोधनोंसे कहने लगे आप सभी साधु हैं अतएव पाप कर्मका यथार्थ अर्थ नहीं जानते ॥ ३१ ॥ इन छलके जाननेवाले भार्गवगणोंने हमारे उदारात्मा पूर्व पुरुषगणोंसे छल करके मार्गमें चोरके समान संपूर्ण धनहरण किया है ॥ ३२ ॥ यह प्रतारक छली और दाम्भिक तथा बगुलेके समान धर्मशील हैं देखो हमारा महत् कार्य उपस्थित होनेसे ॥ ३३ ॥ हमने पाद परिमाण वृद्धिदान सवाया देना अंगीकार करके भी विनयपूर्वक धनकी प्रार्थना की थी तथापि इन्होंने वह न दिया बरन् यजमानको अत्यंत दुःखित देखकर भी

अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमाप्नुयात् ॥ तस्माज्जुगुप्सितं कर्म त्यक्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ ३० ॥ तानाहुर्हैहयाः क्रुद्धा मुनीनथ दया परान् ॥ भवंतः साधवः सर्वे नार्थज्ञाः पापकर्मणाम् ॥ ३१ ॥ एभिर्हृतं धनं सर्वं पूर्वजानां महात्मनाम् ॥ वंचयित्वा छलाभिज्ञैर्मार्गे पाटच्चरैरिव ॥ ३२ ॥ एते प्रतारका दंभास्तादृशा बकवृत्तयः ॥ उत्पन्ने च महाकार्ये प्रार्थिता विनयेन ते ॥ ३३ ॥ न ददुः प्रार्थितं विप्राः पादवृद्ध्याऽपि या चिता ॥ नास्तीति वादिनः स्तब्धाः दुःखितान्वीक्ष्य याज्यकान् ॥ ३४ ॥ धनं प्राप्तं कार्तवीर्याद्रक्षितं केन हेतुना ॥ न कृताः क्रतवः किं तैर्दानं चार्थिषु भूरिशः ॥ ३५ ॥ न संचितव्यं विप्रैस्तु धनं क्वापि कदाचन ॥ यष्टव्यं विधिवद्देयं भोक्तव्यं च यथासुखम् ॥ ३६ ॥ द्रव्ये चौरभयं प्रोक्तं तथा राजभयं द्विजाः ॥ वह्नेर्भयं महाघोरं तथा धूर्तभयं महत् ॥ ३७ ॥ येन केनाप्युपायेन धनं त्यजति रक्षकम् ॥ अथवाऽसौ मृतो याति द्रव्यं त्यक्त्वा ह्यसद्गतिम् ॥ ३८ ॥

"नहीं नहीं" यह कहकर चुप हो गये ॥ ३४ ॥ यद्यपि इन्होंने कार्तवीर्यसे धन प्राप्त किया है किंतु किस कारण उस धनकी रक्षा की है ? उससे यज्ञ क्यों नहीं किया ? किस निमित्त याचकगणोंको बहुतसा दान न किया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणोंको किसी समय कहीं भी धन इकट्ठा करना उचित नहीं है विधिपूर्वक दान और सुखसे भोगना ही उचित है ॥ ३६ ॥ हे द्विजगण ! धनसे चोरभय राजभय और अत्यंत अग्निभय विशेषकर भयानक धूर्त्तभय विद्यमान रहता है ॥ ३७ ॥ धनका ऐसा ही धर्म जानना चाहिये. धन जिस किसी उपायसेही अपने रक्षकको परित्याग करता है और भी देखो धनकी रक्षा करनेवाला व्यक्ति जब मर जाता है तब उनको अवश्यही वह त्याग करना पड़ता है ॥ ३८ ॥

यदि धनवान् प्राणत्याग करनके पहले उपार्जित धनसे सद्गतिसाधक योगादिका अनुष्ठान करे तो अवश्यही ! सद्गति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है किन्तु ऐसा न करनेसे वह विफल धन त्यागपूर्वक असद्गति लाभ करता है इसमें संदेह नहीं ॥ ३९ ॥ हमने पादपरिमाण कुसीद सवाया ब्याज दान करना स्वीकार करके विनय सहित महत् कार्यके निमित्त प्रार्थना की, तथापि लोभसे वशीभूत हो हमारे पुरोहितोंने हमको वह न दिया ॥४०॥ हे महर्षिगण ! दान भोग और विनाश धनकी यह तीन गति हैं उनमें पुण्यवान् मनुष्य दान और भोगसे धनकी सफलता प्राप्त करते हैं और पापात्माओंका धन वृथा ही नष्ट हो जाता है ॥ ४१ ॥ जो दाता भी नहीं और भोगता भी नहीं केवल धनकी रक्षा करनेमें तत्पर और कृपण है राजा लोग उन दुःखभोगनेवाले आत्मबंचक मनुष्योंको

पादवृद्ध्या तथाऽस्माभिः प्रार्थितं विनयान्वितैः ॥ तथाऽपि लोभसंदिग्धैर्न दत्तं नः पुरोहितैः ॥ ३९ ॥ दानं भोगस्तथा नाशो धनस्य गतिरीदृशी ॥ दानभोगौ कृतीनां च नाशः पापात्मनां किल ॥ ४० ॥ न दाता न च यो भोक्ता कृपणो गुप्तितत्परः ॥ राज्ञाऽसौ सर्वथा दंड्यो वंचको दुःखभाङ्नरः ॥ ४१ ॥ तस्माद्वयं गुरूनेतान्वंचकान्ब्राह्मणाधमान् ॥ हंतुं समुद्यताः सर्वे न क्रोधव्यं महात्मभिः ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा हेतुमद्वाक्यं तानाश्वास्य मुनीनथ ॥ विचेरुश्च विचिन्वाना भृगुदारननेकशः ॥ ४३ ॥ भयार्ता भृगुपत्न्यस्तु हिमवंतं धराधरम् ॥ प्रपेदिरे रुदत्यश्च वेपमानाः कृशा भृशम् ॥ ४४ ॥ एवं ते हैहयैर्विप्राः पीडिता धन कामुकैः ॥ निहताश्च यथाकामं संरब्धैः पापकर्मभिः ॥ ४५ ॥ लोभ एव मनुष्याणां देहसंस्थो महारिपुः ॥ सर्वदुःखकरः प्रोक्तो दुःखदः प्राणनाशकः ॥ ४६ ॥ सर्वपापस्य मूलं हि सर्वदातृष्णयाऽन्वितः ॥ विरोधकृत्त्रिवर्णानां सर्वार्तेः कारणं तथा ॥ ४७ ॥

भलीभांति दण्डदें ॥ ४२ ॥ हम इसी कारण गुरु होनेपर इन वंचक ब्राह्मणाधमगणोंको विनाश करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, हे महर्षिगण ! आप महात्मा हैं अतएव यह सम्पूर्ण जानकर उससे क्रोध न कीजिये ॥ ४३ ॥ व्यासजीने कहा, हैहयगण मुनियोंको इस प्रकार हेतु युक्त वाक्यसे समझाकर भार्गवोंकी स्त्रियोंको ढूँढ़ते विचरण करने लगे ॥ ४४ ॥ भार्गवोंकी स्त्रियें भयसे कातर और अत्यन्त कृशाङ्गी हो काँपते काँपते और रोते रोते हिमाचलमें जाय वास करने लगीं ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार वह विप्रगण अर्थलोलुप क्रोधसे उद्दीप्त पापबुद्धि हैहयगणोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर मरने लगे ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! पूर्वमुनि कहते हैं कि, लोभ ही मनुष्योंका देहमें स्थित महान् शत्रु है. लोभ ही समस्त दुःखोंकी खान है. लोभ ही सम्पूर्ण पापोंकी जड़

है. लोभ ही सम्पूर्ण दुःखोंका कारण और लोभसे ही प्राण नष्ट होनेकी सम्भावना है ॥ ४७ ॥ लोभके ही कारण ब्राह्मणादि वर्णोंमें सद्विरोध उपस्थित होता है और लोभके ही द्वारा मनुष्यगण विषयकी तृष्णासे, व्याकुल होते हैं ॥ ४८ ॥ मनुष्यगण लोभहीके कारण धर्म कर्म और कुल क्रमागत आचार व्यवहार परित्याग करते हैं और लोभहीके कारण पिता, माता, भ्राता, बन्धु, गुरु ॥ ४९ ॥ मित्र, पुत्र, भगिनी और भगिनीपति इत्यादिको विनाश करते हैं बहुत क्या लोभयुक्तको पापसे मोहित होनेपर उनको अकार्य नहीं रहता ॥ ५० ॥ क्रोध काम और अहंकार इनसे भी लोभ प्रबल महान् शत्रु है. हे राजन्! लोभी जीवगण प्राणपर्यन्त त्याग करते हैं. इस लोभकी अनिष्टकारित्व विषयमें कहनेका फिर क्या शेष रहा? ॥ ५१ ॥ "हे महाराज! आपके

लोभात्त्यजंति धर्मं वै कुलधर्मं तथैव हि ॥ मातरं भ्रातरं हंति पितरं बांधवं तथा ॥ ४८ ॥ गुरु मित्रतथाभामं पुत्रंभगिनीं तथा ॥ लोभाविष्टो न किं कुर्यादकृत्यं पापमोहितः ॥ ४९॥ क्रोधात्कामादहंकाराल्लोभ एव महारिपुः ॥ प्राणांस्त्यजति लोभेन किं पुनः स्याद नावृतम् ॥ ५० ॥ पूर्वजास्ते महाराज धर्मज्ञाः सत्पथे स्थिताः ॥ पांडवाः कौरवाश्चैव लोभेन निधनं गताः ॥ ५१ ॥ यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णश्च वाह्लिकः ॥ भीमसेनो धर्मपुत्रस्तथैवार्जुनकेशवौ ॥ ५२ ॥ तथापि युद्धमत्युग्रं कृतं तैश्च परस्परम् ॥ कुटुंबकदनं भूरि कृतं लोभातुरैरिह ॥ ५३ ॥ हतो द्रोणो हतो भीष्मस्तथैव पांडवात्मजाः ॥ भ्रातरः पितरः पुत्राः सर्वे वै निहता रणे ॥ ५४ ॥ तस्माल्लोभाभिभूतस्तु किं न कुर्यान्नरः किल ॥ हैहयैर्निहताः सर्वे भृगवः पापबुद्धिभिः ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पूर्वपुरुष पांडव और कौरवगण धार्मिक और सत्पथावलम्बी थे किंतु लोभके वशीभूत होकर वह मृत्युको प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥ देखो जिस स्थानमें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, बाह्लिक भीमसेन, युधिष्ठिर, अर्जुन और केशव यह सब महात्मा थे ॥ ५२ ॥ उस स्थानमें भी लोभके कारण परस्पर अत्यंन्त घोर युद्ध और कुटुम्बका नाश हुआ था ॥ ५३ ॥ इससे भीष्म द्रोण और पांडवगणोंके पुत्रगण भ्रातृगण और पितृगण सब ही युद्धमें निहत हुए थे ॥ ५४ ॥" अतएव लोभके वशीभूत हो मनुष्यगण क्या कार्य नहीं करते हैं! हे राजन्! इसी लोभके कारण पापबुद्धि हैहयगणोंने भृगुवंशीयगणोंको मारा था ॥५५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! उन ब्राह्मणकी स्त्रियोंने किस प्रकार इस अपारदुःख सागरसे निस्तार पाया और किस प्रकार उन ब्राह्मणोंका वंश पुनर्वार पृथ्वीमें प्रतिष्ठित हुआ ॥ १ ॥ उन पापाचारी क्षत्रियाधम लोभके वशीभूत हुए हैहयगणोंने ब्राह्मणोंका विनाश करके फिर क्या किया आप यह सम्पूर्ण विषय वर्णन करके मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ २ ॥ हे तपोनिधे ! मनुष्यगणोंको इस लोकमें सुखप्रद और परलोकमें पुण्यफलका देनेवाला अतिपवित्र आपका वचनामृत श्रवणाञ्जलि पुटसे पान करके मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! भृगुपत्नी गणोंने जिस प्रकार उस कठोर दुस्तर दुःख सागरसे छुटकारा पाया था मैं आपके निकट उसी पापनाशक पवित्र उपाख्यानको वर्णन करता हूं श्रवण करो ॥ ४ ॥ हैहयगणों ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको

जनमेजय उवाच ॥ कथं ताश्च स्त्रियः सर्वा भृगूणां दुःखसागरात् ॥ मुक्ता वंशः पुनस्तेषां ब्राह्मणानां स्थिरोऽभवत् ॥ १ ॥ हैहयैः किं कृतं कार्यं हत्वा तान्ब्राह्मणानपि ॥ क्षत्रियैर्लोभसंयुक्तैः पापाचारैर्वदस्व तत् ॥ २ ॥ न तृप्तिरस्ति मे ब्रह्मन्पिबतस्ते तथामृतम् ॥ पावनं सुखदं नृणां परलोकफलप्रदम् ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ यथा स्त्रियस्तु ता मुक्ता दुःखात्तस्माद्दुरत्ययात् ॥ ४ ॥ भृगुपत्न्यो यदा जग्मुर्हिमवंतं गिरिं गताः ॥ भयत्रस्ता निमग्नाशा हैहयैः पीडिता भृशम् ॥ ५ ॥ गौरीं तत्र तु संस्थाप्य मृन्मयीं सरितस्तटे ॥ उपोषणपराश्चक्रुर्निश्चयं मरणं प्रति ॥ ६ ॥ स्वप्ने गत्वा तदा देवी प्राह ता प्रमदोत्तमाः ॥ युष्मासु मध्ये कस्याश्चिद्भविता चोरुजः पुमान् ॥ ७ ॥ मदंशशक्तिसंभिन्नः स वः कार्यं विधास्यति ॥ इत्यादिश्य परांबा सा पश्चादंतर्हिताऽभवत् ॥ ८ ॥ जागृतास्तु ततः सर्वा मुदमापुर्वरांगनाः ॥ काचित्तासां भयोद्विग्ना कामिनी चतुरा भृशम् ॥ ९ ॥ दधार चोरुणैकेन गर्भं सा कुलवृद्धये ॥ पलायनपरा दृष्ट्वा क्षत्रियैर्ब्राह्मणी यदा ॥ १० ॥

अत्यंत पीड़ित करनेपर फिर वह भयसे विह्वल और हताशहोकर हिमाचलमें चली गईं ॥५॥ तब उन सबोंने उस पर्वतमें गंगाके तटपर मृन्मयी गौरीकी मूर्ति बनाये उनकी पूजा की और मनमें मरना निश्चयकर उपवास करने लगीं ॥६॥ अनन्तर जगदम्बिका देवीने उन धर्मपरायण स्त्रियोंके सामने स्वप्नमें प्रगट होकर कहा कि, तुममें किसीके ऊरुसे मेरे अंश सम्भूत एक सन्तान उत्पन्न होगी ॥ ७ ॥ वह पुरुष तुम्हारा संपूर्ण कार्य करेगा देवी भगवती यह कहकर अन्तर्धान होगईं ॥ ८ ॥ अनन्तर वह स्त्रियें जागरित हो अतिहर्षको प्राप्त हुईं उनमेंसे एक अतिचतुर कामिनीने क्षत्रियोंके भयसे उद्विग्न हो कुलकी वृद्धिके निमित्त एक ऊरुभेदसे गर्भ धारण किया ॥ ९ ॥ अनन्तर उसकी देह तेजसे प्रदीप्त होगई तब उसने भयसे विह्वल हो भागनेकी इच्छा की ॥१०॥

क्षत्रियगण उस ब्राह्मणीको देखकर अतिवेगसे उसके पीछे दौडे और कहने लगे कि, देखो यह गर्भवती ब्राह्मणकी स्त्री शीघ्र भागी जाती है इसको पकड़ और इसका प्राण नष्ट करो ॥ ११ ॥ वह सभी यह कह खड्ग धारण पूर्वक उसके निकट उपस्थित हुए तब वह कामिनी उनको आता हुआ देख भयसे रोने लगी ॥ १२ ॥ वह भयातुर हो गर्भकी रक्षाके निमित्त जब चीत्कार करने लगी तब गर्भस्थित बालक निराश्रय दीन कातर ॥ १३ ॥ अश्रुनयना और भयसे कम्पायमान जननीको रक्षकविहीन और अत्यंत क्षत्रियोंसे पीडित देखकर और सिंहसे आक्रांतगर्भवती हरिणीके समान ॥ १४ ॥ रोते हुए सुनकर क्रोधपूर्ण जननीका ऊरुदेश विदीर्ण कर दूसरे सूर्यके समान सहसा निकला ॥ १५ ॥ उस शोभायमान बालकने अपने तेजसे क्षत्रियोंकी दर्शन

विह्वला तेजसा युक्तां तदा ते दुद्रुवुर्भृशम् ॥ गृह्यतां वध्यतां नारी सगर्भा याति सत्वरा ॥ ११ ॥ इति ब्रुवतः संप्राप्ताः कामिनीं खड्गपाणयः ॥ सा भयार्ता तु तान्दृष्ट्वा रुरोद समुपागतान् ॥ १२ ॥ गर्भस्य रक्षणार्थं सा चुक्रोशातिभयातुरा ॥ रुदतीं मातरं श्रुत्वा दीनां त्राणविवर्जिताम् ॥ १३ ॥ निराधारां क्रंदमानां क्षत्त्रियैर्भृशतापिताम् ॥ गृहीतामिव सिंहेन सगर्भां हरिणीं तथा ॥ १४ ॥ साश्रुनेत्रां वेपमानां संक्रुध्य बालकस्तदा ॥ भित्त्वोरुं निर्जगामाशु गर्भः सूर्य इवापरः ॥ १५ ॥ मुष्णन्दृष्टीः क्षत्त्रियाणां तेजसा बालकः शुभः ॥ दर्शनाद्बालकस्याशु सर्वे जाता विलोचनाः ॥ १६ ॥ बभ्रमुर्गिरिदुर्गेषु जन्मांधा इव क्षत्त्रियाः ॥ चिंतितं मनसा सर्वैः किमेतदिति सांप्रतम् ॥ १७ ॥ सर्वे चक्षुर्विहीना यज्जाताः स्म बालदर्शनात् ॥ ब्राह्मण्यास्तु प्रभावोऽयं सतीव्रतबलं महत् ॥ १८ ॥ क्षणाद्वाऽमोघसंकल्पाः किं करिष्यंति दुःखिता ॥ इति संचिंत्य मनसा नेत्रहीना निराश्रयाः ॥ १९ ॥ ब्रह्माणीं शरणं जग्मुर्हैहया गतचेतसः ॥ प्रणेमुस्तां भयत्रस्तां कृतांजलिपुटाश्च ते ॥ २० ॥

शक्ति लोप कर दी. तब हैहयगण उस बालकको देखकर तत्काल सभी अन्धे होगये ॥ १६ ॥ अनंतर वह जन्मान्धके समान पर्वतकी खोहमें विचरण करने लगे और मनमें चिंता करके कहने लगे कि तुमको एक दैवदुर्विपाक प्रारब्धका फल उपस्थित हुआ ॥ १७ ॥ बालकको देखतेही हम सब अंधे होगये अहो! इन स्त्रियोंका प्रभाव और इनके पातिव्रत धर्मका महत् फल है इसमें संदेह नहीं ॥ १८ ॥ हमने ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको पीडित किया है इससे वे अत्यंत दुःखित हुई हैं अब नहीं जानते कि यह सत्य संकल्प स्त्रियें हमारा और क्या अनिष्ट करेंगी? वह भ्रांतचित्त नेत्रहीन और निराश्रय क्षत्रियगण मनमें इस प्रकार चिंताकर ॥ १९ ॥ उन्हीं स्त्रियोंकी शरणागत हुए वह स्त्रियें फिर उनको आता हुआ देख अत्यंत भीत हुई किंतु वह उन पतिव्रता स्त्रियोंको

हाथ जोड प्रणाम कर ॥ २० ॥ अपनी दृष्टिकी प्राप्तिके निमित्त कहने लगे हे मातः ! हम आपके सेवक हैं आप प्रसन्न हूजिये ॥ २१ ॥ हे कल्याणि ! हम पापिष्ठ क्षत्रिय हैं हमने आपके बहुत अपराध किये हैं. हे सुंदरि ! हम आपके केवल दर्शन मात्रसेही अंधे हुए हैं. ॥ २२ ॥ हे कोपने ! हम जन्मांधके समान आपका मुखकमल नहीं देख सकते हे जननि ! आपका तपोवीर्य अद्भुत है हम पापकारी हैं अतएव किसी प्रकार इस विषयका प्रतिकार करनेमें समर्थ नहीं होंगे ॥ २३ ॥ इस कारण अब केवल आपकीही शरणागत हुए हैं आप हमको नेत्र प्रदान कर हमारे मानकी रक्षा कीजिये हे मातः ! अन्धत्व मरनेकी अपेक्षा भी भारी है अतएव आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये ॥ २४ ॥ आप फिर देखनेकी शक्ति दानकर क्षत्रियोंको अनुग्रहपूर्वक दास कीजिये हम

ऊचुश्चैनां भयोद्विग्नां दृष्ट्यर्थं क्षत्रियर्षभाः ॥ प्रसीद सुभगे मातः सेवकास्ते वयं किल ॥२१॥ कृतापराधा रंभोरु क्षत्रियाः पापबुद्धयः ॥ दर्शनात्तव तन्वंगि जाता सर्वे विलोचना ॥ २२ ॥ मुखं ते नैव पश्यामो जन्मांधा इव भामिनि ॥ अद्भुतं ते तपो वीर्यं किं कुर्मः पापकारिणः ॥ २३ ॥ शरणं ते प्रपन्नाः स्मो देहि चक्षूंषि मानदे ॥ अंधत्वं मरणादुग्रं कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥ २४ ॥ पुनर्दृष्टिं प्रदानेन सेवकान्क्षत्रियान्कुरु ॥ उपरम्य च गच्छेम सहिताः पापकर्मणः ॥ २५ ॥ अतः परं न कर्तव्यमीदृशं कर्म कर्हिचित् ॥ भार्गवाणां तु सर्वेषां सेवकः स्मो वयं किल ॥२६॥ अज्ञानाद्यत्कृतं पापं क्षंतव्य तत्त्वयाऽधुना ॥ वैरं नातः परं क्वापि भृगुभिः क्षत्त्रियैः सच ॥२७॥ कर्तव्यं शपथैः सम्यग्वर्तितव्यं तुहैहयैः ॥ सुपुत्रा भव सुश्रोणि प्रणताः स्मो वयं च ते ॥ २८ ॥ प्रसादं कुरु कल्याणि न द्विष्यामः कदाचन ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्राह्मणी विस्मयान्विता ॥ २९ ॥

दृष्टिशक्तिके प्राप्त होनेपर सभी इस पापकर्मसे विरत हो घरको चले जायंगे ॥ २५ ॥ अभीसे फिर हम ऐसा नीचकर्म कभी नहीं करेंगे अबसे हम सभी ब्राह्मणोंके सेवक होकर रहेंगे ॥ २६ ॥ हमने अज्ञानवश जो संपूर्ण पाप किये हैं आप वह समस्त क्षमा कीजिये हम प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि, आजसे ब्राह्मणोंके संग फिर क्षत्रियोंकी कुछ भी शत्रुता नहीं रहेगी ॥ २७ ॥ हे नितम्बिनि ! आप पुत्रके सहित सुखपूर्वक काल व्यतीत कीजिये हम आपके निकट सदा ही प्रणत हैं ॥ २८ ॥ हे कल्याणि! आप प्रसन्न हूजिये हम अब कभी विद्वेषभाव नहीं करेंगे व्यासजीने कहा हे महाराज! ब्राह्मणोंकी स्त्रियें उनके यह वचन सुन आश्चर्य युक्तचित्तसे ॥ २९ ॥

उन दुर्दशायुक्त प्रणत अंधे क्षत्रियगणोंको समझाकर कहने लगीं क्षत्रियगण ! हमने तुम्हारी दृष्टि हरण नहीं की ॥ ३० ॥ अथवा हम तुम्हारे प्रति संतुष्ट भी नहीं हुई तुम इस समय इसका यथार्थ कारण सुनो यह ऊरुजात भृगुकुलोत्पन्न सन्तान तुम्हारे प्रति अत्यंत प्रकुपित हुई है ॥ ३१ ॥ इसी कारण इस क्रोधपूर्वक बालकने तुम्हारे संपूर्ण नेत्र स्तम्भित किये हैं तुमने धनकी इच्छासे इस बालकके परम आत्मीय निरपराध धर्म तत्पर तापसगणोंको और गर्भमें स्थित भार्गवगणोंको भी निहत किया है वह यह बालक जान गया है ॥ ३२ ॥ हे वत्सगण ! जब तुमने भृगुवंशीय गर्भस्थित बालकगणोंको भी विनाश करना आरम्भ किया था ॥ ३३ ॥ तब मैंने ऊरुदेशमें इस बालकको सौ वर्षपर्यन्त धारण किया था इस बालकने गर्भमें स्थित होकर भृगुवंशकी वृद्धिके निमित्त थोडेही

तानाह प्रणतान्दुःस्थानाश्वास्य गतलोचनान् ॥ गृहीता न मया दृष्टिर्युष्माकं क्षत्रियाः किल ॥ ३० ॥ नाहं रुषाऽन्विता सत्यं कारणं शृणु ताद्य यत् ॥ अयं च भार्गवो नूनमूरुजः कुपितोऽद्य वः ॥ ३१ ॥ चक्षूंषि तेन युष्माकं स्तंभितानि रुषावता ॥ स्वबन्धून्निहताञ्ज्ञात्वा गर्भस्थानपि क्षत्रियैः ॥ ३२ ॥ अनागसो धर्मपरांस्तापसान्धन काम्यया ॥ गर्भानपि यदा यूयं भृगूनघ्नंस्तु पुत्रकाः ॥ ३३ ॥ तदाऽयमूरुणा गर्भो मथा वर्षशतं धृतः ॥ षडंगश्चाखिलो वेदो गृहीतोऽनेन चांजसा॥ ३४ ॥ गर्भस्थेनापि बालेन भृगुवंशविवृद्धये ॥ सोऽपि पितृवधान्नूनं क्रोधेद्धो हंतुमिच्छति ॥ ३५ ॥ भगवत्याः प्रसादेन जातोऽयं मम बालकः ॥ तेजसः यस्य दिव्येन चक्षूंषि मुषितानि च ॥ ३६ ॥ तस्मादौर्वं सुतं मेऽद्य याचध्वं विनयान्विताः ॥ प्राणिपातेन तुष्टोऽसौ दृष्टिं वः प्रतिमोक्ष्यति ॥ ३७ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या हैहयास्तुष्टुवुश्च तम् ॥ प्रणेमुर्विनयोपेता ऊरजं मुनिसत्तमम् ॥ ३८ ॥

समयमें षडंग समस्त वेदाध्ययन किये हैं ॥ ३४ ॥ यह वंशवृद्धिको गर्भमें रहा है इस समय यह भृगुसंतान पितृवधके क्रोधसे प्रदीप्त हो तुम्हारे विनाशके लिये उद्यत हुई है ॥ ३५ ॥ जिसके दिव्य तेजसे तुम्हारी दृष्टिशक्ति नष्ट हुई है वही यह हमारा पुत्र भगवती भुवनेश्वरीके प्रसादसे उत्पन्न हुआ है, अतएव इस बालकको सामान्य नहीं जानना चाहिये ॥ ३६ ॥ इस समय तुम विनय युक्त होकर मेरे इस और्व (ऊरुजात) पुत्रके निकट याचना करो यह संतान प्रणिपात द्वारा संतुष्ट होकर तुमको दृष्टि प्रदान करेगी ॥ ३७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! हैहयगण ब्राह्मणीका यह वचन सुननेके पश्चात् भार्गव संतानका स्तव करने लगे उन्होंने विनयान्वित हो ऊरुजात उस मुनि सत्तमको प्रणाम किया ॥ ३८ ॥

तब और्वऋषिने सन्तुष्ट हो उन नेत्रहीन हैहयगणोंसे कहा तुम अपने अपने घर जाओ हे भूपालगण ! तुम मेरे इस उपाख्यानसे प्राप्त वक्ष्यमाण वचनका पाठ करना ॥ ३९ ॥ जो दैवनिर्मित और अवश्यम्भावी है वह अवश्य ही होगा यह जानकर किसीको भी इस विषयमें शोक करना उचित नहीं है ॥ ४० ॥ तुम पूर्वके समान दृष्टि प्राप्त कर क्रोध त्यागपूर्वक यथासुखसे अपने २ घर जाओ और अबसे ऋषिगण भी पूर्वके समान सुखको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ महर्षि और्वके इस प्रकार आज्ञा करनेपर हैहयगण नेत्र प्राप्तकर इच्छानुसार अपने अपने घरको चले गये ॥ ४२ ॥ इधर ब्राह्मणी भी उस तेजस्वी दिव्य पुत्रको लेकर अपने आश्रममें जाय सावधानतासे उसको पालने लगी ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! यह मैंने आपके निकट भार्गवगणोंके विनाशका वृत्तांत और लोभयुक्त

स संतुष्टो बभूवाथ तानु वाच विचक्षुषः ॥ गच्छध्वं स्वगृहान्भूपा ममाख्यानकृतं वचः ॥ ३९ ॥ अवश्यंभाविभावास्ते भवंति देवनिर्मिताः ॥ नात्र शोकास्तु कर्तव्यः पुरुषेण विजानता ॥ ४० ॥ पूर्ववदृषयः सर्वे प्राप्नुवंतु यथासुखम् ॥ व्रजंतु विगतक्रोधा भवनानि यथा सुखम् ॥ ४१ ॥ इति तेन समादिष्टा हैहया प्राप्तलोचनाः ॥ और्वमामंत्र्य जग्मुस्ते सदनानि यथारुचि ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणी तं सुतं दिव्यं गृहीत्वा स्वाश्रमं गताः ॥ पालयामास भूपालं तेजस्विनमतंद्रिता ॥ ४३ ॥ एवं ते कथितं राजन्भृगूणां तु विनाशनम् ॥ लोभाविष्टैः क्षत्त्रियैश्च यत्कृतं पातकं किल ॥ ४४ ॥ जनमेजय उवाच ॥ श्रुतं मया महत्कर्म क्षत्त्रियाणां च दारुणम् ॥ कारणं लोभ एवात्र दुःखदश्चोभयोस्तु सः ॥ ४५ ॥ किंचित्प्रष्टुमिहेच्छामि संशयं वासवीसुत ॥ हैहयस्ते कथं नाम्ना ख्याता भुवि नृपात्मजाः ॥ ४६ ॥ यदोस्तु यादवाः कामं भरताद्भारतास्तथा ॥ हैहयः कोऽपि राजाऽभूत्तेषां वंशे प्रतिष्ठितः ॥ ४७ ॥ तदहं श्रोतुमिच्छामि कारणं करुणानिधे ॥ हैहयास्ते कथं जाताः क्षत्त्रियाः केन कर्मणा ॥ ४८ ॥

क्षत्रियगणोंने जिसप्रकार पापकर्म किया था वह सम्पूर्ण वर्णन किया ॥ ४४ ॥ जनमेजयने कहा हे तपोधन ! मैंने क्षत्रियोंका अत्यन्त दारुण कर्मका विषय श्रवणकर जाना कि, इस विषयमें एक मात्र लोभही कारण है और लोभसेही दोनोंको इसी प्रकार दुःख हुआ है ॥४५॥ हे मुनीन्द्र ! मैं आपसे इस विषयमें कुछ पूँछनेकी इच्छा करता हूं यह राजपुत्र पृथ्वीमें हैहय नामसे क्यों विख्यात हुए ? ॥ ४६ ॥ क्षत्रियगणोंमें कितने ही एक यदुकुलोत्पन्न कहकर यादव और कितनेही एक भरतोत्पन्न कहकर भरतनामसे विख्यात हुए हैं किंतु इसके वंशमें हैहय नामक किस राजाने जन्म लिया था ॥ ४७ ॥ अथवा यह क्षत्रियगण अन्य किसी कर्मद्वारा हैहय नामसे विख्यात हुए ? मैं उनका कारण सुननेकी अत्यन्त इच्छा करता हूं आप कृपा करके वह वर्णन कीजिये ॥ ४८ ॥

व्यासजीने कहा हे भूपते ! मैं आपके निकट हैहयगणोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं श्रवण करो इस पुरातन कथाके सुननेसे पापसमूह नष्ट होकर पुण्यका उदय होता है ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! किसीसमय अपरिमितप्रभावयुक्त रूपवान् और सुशोभन रेवन्त नामक ॥ ५० ॥ सूर्यके पुत्र मनोहर घोडोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवापर चढ़कर विष्णुके घर वैकुण्ठधाममें गये थे ॥ ५१ ॥ वह जब भगवान्के दर्शनाभिलाषी होकर गये तब लक्ष्मीदेवीने वस सूर्यके पुत्रको देखा ॥ ५२ ॥ क्षीराब्धितनया रमादेवी सागरोत्पन्न सहोदर अश्वश्रेष्ठके मनोहररूपको अवलोकनपूर्वक आश्चर्ययुक्त हो इकटक देखती रहीं ॥ ५३ ॥ निग्रहानुग्रहमें समर्थ भगवान् विष्णु मनोहररूपयुक्त रेवन्तको घोडेपर चढे हुए आता देखकर विनय सहित लक्ष्मीसे पूँछने लगे ॥ ५४ ॥ हे सुन्दरि ! दूसरे

व्यास उवाच ॥ हैहयानां समुत्पत्तिं शृणु भूप सविस्तराम् ॥ पुरातनां सुपुण्यां च कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ ४९ ॥ कस्मिंश्चित्समये भूप सूर्यपुत्रः सुशोभनः ॥ रेवंतेति च विख्यातो रूपवानमितप्रभः ॥ ५० ॥ उच्चैः श्रवसमारुह्य हयरत्नं मनोहरम् ॥ जगाम विष्णुसदनं वैकुंठं भास्करात्मजः ॥ ५१ ॥ भगवद्दर्शनाकांक्षी हयारूढो यदागतः ॥ हयस्थस्तु तदा दृष्टो लक्ष्म्याऽसौ रविनंदनः ॥ ५२ ॥ रमा वीक्ष्य हयं दिव्यं भ्रातरं सागरोद्भवम् ॥ रूपेण विस्मिता तस्यतस्थौ स्तंभितलोचना ॥५३॥ भगवानपि तं दृष्ट्वा हया रूढं मनोहरम् ॥ आगच्छंतं रमां विष्णुः पप्रच्छ प्रणयात्प्रभुः ॥ ५४ ॥ कोऽयमायाति चार्वंगि हयारूढ इवापरः ॥ स्मरतेजस्तनुःकान्ते मोहयन्भुवनत्रयम् ॥ ५५ ॥ प्रेक्षमाणा तदा लक्ष्मीस्तच्चित्ता दैवयोगतः ॥ नोवाच वचनं किंचित्पृष्टाऽपि च पुनः पुनः ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ अश्वासक्तमतिं वीक्ष्य कामिनीमतिमोहिताम् ॥ पश्यंतीं परमप्रेम्णा चंचलाक्षीं ज चंचलाम् ॥५७॥ तामाह भगवान्क्रुद्धः किंपश्यसि सुलोचने ॥ मोहिता च हरीं दृष्ट्वा पृष्टा नैवाभिभाषसे ॥ ५८ ॥

कामदेवके समान कौन पुरुषश्रेष्ठ त्रिभुवनको मोहित करता घोड़ेपर चढ़ा हुआ आरहा है ॥ ५५ ॥ उस समय लक्ष्मीदेवी दैवयोगसे एकाग्रमनसे देख रहीं थीं इसप्रकार भगवान्के बारम्बार पूँछनेपर भी उन्होंने कोई उत्तर न दिया ॥ ५६ ॥ चंचलादेवी लक्ष्मी अश्वको अति आसक्त चित्त और अत्यन्त मोहित हो परमप्रेमके वशीभूत स्थिरनेत्रसे देख रहीं है ॥ ५७ ॥ भगवान् यह देखकर कुपित हुए और उनसे कहा कि हे सुलोचने ! क्या देखती हो ? तुम अश्वको देखकर इस प्रकार मोहित हुई हो कि मेरे पूँछनेपरभी बात नहीं कहती ॥ ५८ ॥

तुम सर्वत्र रमण करती हो इस कारण रमानामसे और तुम्हारा मन अत्यन्त चंचल है इसकारण चंचला नामसे विख्यात होगी ॥ ५९ ॥ हे कल्याणि ! प्राकृत स्त्रियें जिसप्रकार चंचल हैं तुमभी उसी प्रकार चंचल होगी, कहीं कभी स्थिर न रह सकोगी ॥ ६० ॥ तुम मेरे समीप अवस्थित होकरभी जिसप्रकार घोडेको देखकर मोहित हुई हो तब तुम दारुण क्लेशयुक्त मर्त्यलोकमें घोडी हो जन्म ग्रहण करो ॥ ६१ ॥ रमादेवी दैवयोगसे हारिसे इस प्रकार शाप पाय भय और दुःखसे कम्पायमान हो रोने लगी ॥ ६२ ॥ तब चारुहासिनी रमादेवी शंकित और विनययुक्त हो प्रणामपूर्वक अपने पति नारायणसे कहने लगी ॥ ६३ ॥ हे देव देव ! गोविन्द ! आप जगत्के नाथ और दयाके समुद्र हैं अल्प अपराधकेही कारण मुझको क्यों यह शाप दिया ? ॥ ६४ ॥ हे प्रभो ! मैंने आपको

सर्वत्र रमसे यस्माद्रमा तस्माद्भविष्यसि ॥ चंचलत्वाच्चलेत्येवं सर्वथैव न संशयः ॥ ५९ ॥ प्राकृतो च यथा नारी नूनं भवति चंचला ॥ तथा त्वमपि कल्याणि स्थिरा नैव कदाचन ॥ ६० ॥ त्वं हयं मत्समीपस्था समीक्ष्य यदि मोहिता ॥ वडवा भव वामोरु मर्त्यलोकेऽतिदारुणे ॥ ६१ ॥ इति शप्ता रमा देवि हरिणा दैवयोगतः ॥ रुरोद वेपमाना सा भयभीताऽतिदुःखिता ॥ ६२ ॥ तमुवाच रमानाथं शंकिता चारुहासिनी ॥ प्रणम्य शिरसा देवं स्वपतिं विनयान्विता ॥ ६३ ॥ देवदेव जगन्नाथ करुणाकर केशव ॥ स्वल्पेऽपराधे गोविन्द कस्माच्छापं ददासि मे ॥ ६४ ॥ न कदाचिन्मयाः दृष्टः क्रोधस्ते हीदृशः प्रभो ॥ क्व गतस्ते मयि स्नेहः सहजो न तु नश्वरः ॥ ६५ ॥ वज्रपातस्तु शत्रौ वै कर्तव्यो न सुहृज्जने ॥ सदाऽहं वरयोग्या ते शापयोग्या कथं कृता ॥६६॥ प्राणांस्त्यक्ष्यामि गोविंद पश्यतोऽद्य तवाग्रतः ॥ कथं जीवे त्वया हीना विरहानलतापिता ॥ ६७ ॥ प्रसादं कुरु देवेश शापादस्मात्सुदारुणात् ॥ कदा मुक्ता समीपं ते प्राप्नोमि सुखदं विभो ॥६८॥ हरिरुवाच ॥ यदा ते भविता पुत्र पृथिव्यां मत्समः प्रिये ॥ तदा मां प्राप्य तन्वंगि सुखिता त्वं भविष्यसि ॥६९॥

ऐसा क्रोध पहले कभी नहीं देखा हाय ! मेरे प्रति आपका जो नाश रहित सहज स्नेह था वह इस समय कहां गया ? ॥ ६५ ॥ हे नाथ ! वज्रपात स्वजनोंके प्रति न करके शत्रुओंके प्रति करनाही उचित है मैं सदा आपके वरदनेके योग्यपात्र हूं इस समय आपने मुझको शापके योग्य क्यों किया ? ॥ ६६ ॥ हे गोविन्द ! मैं आपके सामनेही प्राणत्याग करूंगी, मैं आपके विरहानलसे सन्तापित होकर कभी जीवन धारण नहीं कर सकती ॥ ६७ ॥ हे विभो ! प्रसन्न होकर कहिये मैं इस दारुण शापसे मुक्त होकर फिर कब अत्यन्त सुखकर आपके सम्मिलनको प्राप्त हूंगी ॥ ६८ ॥ भगवान्ने कहा हे प्रिये ! जब मर्त्यलोकमें मेरे समान तुम्हारे पुत्र होगा तब तुम फिर मुझको प्राप्त होकर सुखी होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! भगवान् विष्णुके कोपके वशीभूत हो इस प्रकार शापदेनेपर फिर उन्होंने किस प्रकार घोडी हो जन्म ग्रहण किया था और रेवन्तने उस समय क्या किया था ॥ १ ॥ क्षीरोदनन्दिनी लक्ष्मी देवीने किस देशमें घोड़ीका रूप धारण कर परदेशमें स्थित पतिवाली बालाके समान अकेले किस प्रकार वास किय था ? ॥ २ ॥ हे मुनिवर ! उस कमलादेवीने पतिरहित होकर कितने समय पर्यन्त किस निर्जन स्थानमें वास किया और उसकाल उन्होंने क्या किया था ॥ ३ ॥ और किस समय फिर वासुदेवसे मिली थीं जब उन्होंने नारायणसे वियोगको प्राप्तहो वास किया था तब किस प्रकार पुत्र प्राप्त हुआ था ॥ ४ ॥ हे आर्यप्रवर ! आप यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये इस

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ इति शप्ता भगवता सिंधुजा कोपयोगतः ॥ कथं सा वडवा जाता रेवंतेन च किं कृतम् ॥१॥ कस्मिन्देशेऽब्धिजा देवी वडवारूपधारिणी ॥ संस्थितैकाकिनी बाला परोषितपतिका यथा ॥२॥ कालं कियंतमायुष्मन्वियुक्ता पतिना रमा ॥ संस्थिता विजनेऽरण्ये किं कृतंच तया पुनः ॥३॥ समागमं कदा प्राप्ता वासुदेवस्य ॥ सिंधुजा पुत्रः कथं तया प्राप्तो नारायणवियुक्तया ॥ ४ ॥ एतद् वृत्तांतमार्येश कथयस्व सविस्तरम् ॥ श्रोतुकामोऽस्मि विप्रेंद्र कथाख्यानमनुत्तमम् ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा व्यासः परीक्षित्तनयेन वै ॥ कथयामास भो विप्राः कथामेतां सुविस्तराम् ॥६॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ पावनीं सुखदां कर्णे विशदाक्षरसंयुताम् ॥ ७ ॥ रेवतस्तु रमां दृष्ट्वा शप्तां देवेन कामिनीम् ॥ भयार्तः प्रययौ दूरात्प्रणम्य जगतां पतिम् ॥८॥ पितुः सकाशं त्वरितो वीक्ष्य कोपं जगत्पतेः ॥ निवेदयामास कथां भास्कराय स शापजाम् ॥ ९ ॥

अत्युत्तम उपाख्यानके सुननेकी मुझको अत्यन्त अभिलाषा उत्पन्न हुई है ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! जनमजयके वेदव्यासजीसे इसप्रकार पूँछनेपर फिर द्वैपायनमुनि इस उपाख्यानको विस्तारपूर्वक वर्णन करने लगे ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! जिसके द्वारा मनुष्यगण पवित्र हो कल्याण लाभ करते हैं मैं आपके निकट वह शिवदाक्षरयुक्त श्रुति मधुर पौराणिक पुरातन कथा वर्णन करता हूं श्रवण करो ॥ ७ ॥ देवदेव वासुदेवने कमलादेवीको शाप प्रदान किया, भास्करतनय रेवन्त यह देखकर भयार्त्त हुए और जगत्पति जनार्दनको प्रणामकर दूर चले गये ॥ ८ ॥ उन्होंने जगत्पति विष्णुका कोप देखकरशीघ्र पिताके निकट जाय उनसे कमलाके प्रति नारायणके शाप देनेका वृत्तांत निवेदन किया ॥ ९ ॥

इधर कमललोचना कमलादेवी शापके अनन्तर नारायणसे आज्ञा लेकर दुःखित चित्त हो उनके चरणोंमें प्रणामपूर्वक मनुष्यलोकमें चली गई ॥ १० ॥ पहले सूर्यपत्नीने जिस स्थानमें तपस्या की थी कमलादेवी घोडीका रूप धारण कर उसी स्थानमें चली गई ॥ ११ ॥ यह स्थान मनोहर वनसे विभूषित और सर्वकामप्रद सुवर्णाक्ष पर्वतके उत्तरदेशमें कालिन्दी और तमसाके संगम स्थानमें वासकर शोभाको प्राप्त हुआ था ॥ १२ ॥ रमादेवी उसी स्थानमें वासकर एकाग्र चित्तसे वांछितप्रद और कल्याणके देनेवाले महादेवका इस प्रकार ध्यान करने लगीं कि महादेव हाथमें त्रिशूल धारणकर रहे हैं उनके ललाटदेशमें मनोरम शीतल चन्द्रमाकी कला शोभायमान हो रही है ॥ १३ ॥ उनके पांचमुखोंमें तीन तीन नेत्र विद्यमान हो रहे हैं कण्ठदेश नीलवर्ण रंजित, उनकी

दुःखिता सा रमा देवी प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥ आज्ञप्ता मानुषं लोकं प्राप्ता कमललोचना ॥ १० ॥ सूर्यपत्न्या तपस्तप्तं यत्र पूर्वं सुदारुणम् ॥ तत्रैव सा ययावाशु वडवारूपधारिणी ॥ ११ ॥ कालिंदीतमसासंगे सुपर्णाक्षस्य चोत्तरे ॥ सर्वं कामप्रदे स्थाने सुरम्यवनमंडिते ॥ १२ ॥ तत्र स्थित महादेवं शंकरं वांछितप्रदम् ॥ दध्यौ चैकेन मनसाशूलिनं चंद्रशेखरम् ॥ १३ ॥ पंचाननं दशभुजं गौरीदेहार्धधारिणम् ॥ कर्पूरगौरदेहाभं नीलकंठं त्रिलोचनम् ॥ १४ ॥ व्याघ्राजिनधरं देवं गजचर्मोत्तरीयकम् ॥ कपाल मालाकलितं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ १५ ॥ सागरस्य सुता कृत्वा हयीरूपं मनोहरम् ॥ तस्मिंस्तीर्थे रमा देवी चकार दुश्चरं तपः ॥ १६ ॥ ध्यायमाना परं देवं वैराग्यं समुपाश्रिता ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं तत्र महीपते ॥१७॥ ततस्तुष्टो महादेवो वृषारूढस्त्रिलोचनः ॥ प्रत्यक्षोऽभून्महेशानः पार्वतीसहितः प्रभुः ॥ १८ ॥ तत्रेत्य सगणः शंभुस्तामाह हरिवल्लभाम् ॥ तपस्यंतीं महाभागामश्विनीरूपधारिणीम् ॥ १९ ॥

दशभुजा कलेवर कर्पूरके समान गौर ॥ १४ ॥ परिधान व्याघ्रचर्म गजचर्म उत्तरीय और नारायण उनसे उपवीत (जनेऊ) है उन्होंने गौरीके देहका अर्ध भाग धारण किया है उनके गलदेशमें कपालमाला शोभा पारही है ॥ १५ ॥ सिंधुसुता लक्ष्मी देवी मनोहर ! घोड़ीका रूप धारणकर उस तीर्थमें कठोर तपस्या करने लगीं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उन्होंने वैराग्य आश्रयकर परमदेव महादेवका ध्यान करते करते उसी स्थानमें दिव्य हजार वर्ष बिताये ॥ १७ ॥ तदनन्तर परमप्रभु देवदेव त्रिलोचन महेश्वरने बैलपर चढ़ पार्वतीके सहित उसी स्थानमें आय कमला देवीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ १८ ॥ महादेवने उसी स्थानमें गणोंके सहित आकर अश्वरूपिणी तपस्विनी उस हरिवल्लभा कमलासे कहा ॥ १९ ॥

हे कल्याणि ! तुम सम्पूर्ण जगत्‌की जननी और तुम्हारे पति समस्त लोकके विधाता तथा सर्वार्थप्रदान करनेमें समर्थ हैं उनके विद्यमान रहते तुम तपस्या करती हो इसका क्या कारण है ? ॥ २० ॥ हे देवि ! तुम जगत् पालक जगन्नाथ भोग मोक्षके देनेवाले वासुदेव श्रीहरिको त्यागकर किस कारण मेरी स्तुति करती हो ? ॥ २१ ॥ हे देवि ! वेदमें कहे हुए वचनके अनुसारही कार्य करना उचित है वेदमें कहा है कि, पतिही स्त्रियोंका देवता है अतएव कभी किसी प्रकार अन्यके प्रति भलीभांति मनका भाव बन्धन करना उचित नहीं है ॥ २२ ॥ पतिकी सेवा करनाही स्त्रियोंका सनातन धर्म है पति साधु हो अथवा असाधु हो मंगलकी इच्छा करनेवाली स्त्रियें भलीभांति उनकी सेवा करें ॥ २३ ॥ हे सिंधुतनये ! तुम्हारे पति नारायण सबके सेवनीय और सम्पूर्ण अर्थ दान करनेमें समर्थ हैं तुम उन्हीं देवदेव गोलोकपतिको त्यागकर किस प्रकार मेरी आराधना करती हो ? ॥ २४ ॥ लक्ष्मीने कहा हे देवदेव ! हे

किं तपस्यसि कल्याणि जगन्मातर्वदस्व मे ॥ सर्वार्थदः पतिस्तेऽस्ति सर्वलोकविधायकः ॥ २० ॥ हरिं त्यक्त्वाऽद्य मां कस्मात्स्तौषि देवि जगत्पतिम् ॥ वासुदेवं जगन्नाथं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥२१॥ वेदोक्तं वचनं कार्यं नारीणां देवता पतिः ॥ नान्यस्मिन्त्सर्वथाभावः कर्तव्यः कर्हिचित्क्वचित् ॥ २२ ॥ पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां धर्म एव सनातनः ॥ यादृशस्तादृशः सेव्यः सर्वथा शुभकाम्यया ॥ २३ ॥ नारायणस्तु सर्वेषां सेव्यो योग्यः सदैव हि ॥ तं त्यक्त्वा देवदेवेशं किं मां ध्यायसि सिंधुजे ॥ २४ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ आशु तोष महेशान शप्ताऽहं पतिना शिव ॥ मां समुद्धर देवेश शापादस्माद्दयानिधे ॥ २५ ॥ तदोक्तं हरिणा शंभो शापानुग्रहकारणम् ॥ विज्ञप्तेन मया कामं दयायुक्तेन विष्णुना ॥ २६ ॥ यदा ते भविता पुत्रस्तदा शापस्य मोक्षणम् भविष्यति च वैकुंठवासस्ते कमलालये ॥ २७ ॥ इत्युक्ताऽहं तपस्तप्तुमागतास्मि तपोवने ॥ आराधितो मया देव त्वं सर्वार्थप्रदायकः ॥ २८ ॥

कल्याणालय ! आप सेवकके प्रति शीघ्र ही सन्तुष्ट होंते हैं यह मैं जानती हूं मेरे पतिने मुझको शाप दिया है हे दयानिधे ! आप मुझको दया करके इस शापसे उद्धार कीजिये ॥ २५ ॥ हे शम्भो ! मैंने जब उनसे विनय सहित वचनसे मनका दुःख कहा तब उन्होंने अनुग्रह करके करुणान्वित चित्तसे शापके छूटनेका उपाय कहा ॥ २६ ॥ हे कमले ! जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा तबही शाप छूटकर फिर तुम्हारा वैकुण्ठमें वास होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २७ ॥ उनके मुझको इस प्रकार कहने पर फिर मैं तपस्या करनेके लिये इस तपोवनमें आकर भगवान् भवानीपतिआपको सर्वेश्वर और सर्वार्थ देनेवाले जानकर आपकी आराधनामें प्रवृत्त हुई हूं ॥ २८ ॥

हे देवेंद्र ! पतिके संगविना किस प्रकार पुत्र प्राप्त करूंगी मेरे निरपराधिनी होने पर भी वह मुझको त्यागकर वैकुण्ठमें वास करते हैं ॥ २९ ॥ हे महेश्वर ! आप संपूर्ण लोकोंका मंगल करते हैं यदि आप मुझसे संतुष्ट हुए हैं तो मुझको वर दीजिये हे प्रभो ! मैं निश्चय जानती हूं कि आपमें और उनमें कुछ भिन्न भाव नहीं है ॥ ३० ॥ हे गिरिजाकांत ! मैंने अपने पतिसे जाना. है हे हर ! जो आप हैं सोई वह हैं और वह जो हैं सोई आप हैं इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ३१ ॥ हे मंगलमय ! मैं आप दोनोंका अभेदभाव जानकरही आपका ध्यान करती हूं, ऐसा न होनेसे आपका आश्रय करना मुझको दोष होता इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ शंकरने कहा हे देवि सिन्धुतनये ! मेरा और उन हरिका तुमने एक भाव किस प्रकार जाना वह मुझसे सत्य कहो ॥ ३३ ॥ देवगण

पतिसंगं विना पुत्रं देवदेव लभे कथम् ॥ स तु तिष्ठति वैकुंठे त्यक्त्वा वामामनागसम् ॥२९॥ वरं मे देहि देवेश यदि तुष्टोऽसि शंकर ॥ तव तस्य द्विधा भावो नास्ति नूनं कदाचन ॥३०॥ मयैतद्गिरिजाकांत ज्ञातं पत्युः पुरो हर ॥ यस्त्वं सोऽसौ पुनर्योऽसौ स त्वं नास्त्यत्र संशयः ॥ ३१ ॥ एकत्वं च मया ज्ञात्वा मया ते स्मरणं कृतम् ॥ अन्यथा मम दोष स्त्वामाश्रयंत्या भवेच्छिव ॥३२॥ शिव उवाच ॥ कथं ज्ञातस्त्वया देवि मम तस्य च सुंदरि ॥ ऐक्यभावो हरे नूनं सत्यं मे वद सिंधुजे ॥३३॥ एकत्वं च न जानंति देवाश्च मुनयस्तथा ॥ ज्ञानिनो वेदतत्त्वज्ञाः कुतर्कोपहताः किल ॥ ३४ ॥ मद्भक्ता वासुदेवस्य निंदका बहवस्तथा ॥ विष्णुभक्तास्तु वहवो मम निंदापरायणाः ॥ ३५ ॥ भवंति कालभेदेन कलौ देवि विशेषतः ॥ कथं ज्ञातस्त्वया भद्रे दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः ॥३६॥ सर्वथा त्वैक्यभावस्तु हरेर्मम च दुर्लभाः ॥ व्यास उवाच ॥ इति सा शंभुना पृष्टा तुष्टेन हरिवल्लभा ॥ ३७ ॥ वृत्तांतं तस्य विज्ञातं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ शिवं प्रतिरमा तत्र प्रसन्नवदना भृशम् ॥ ३८ ॥

मुनिगण और वेदके जाननेवाले महर्षिगण कुतर्कसे हतबुद्धि हो हम दोनोंमें अभेद नहीं जान सकते ॥ ३४ ॥ तुम प्रायः देखतीहो कि हमारे भक्तोंमें बहुतसे मनुष्य वासुदेवके और विष्णुकेभक्तोंमेंसे अनेक मेरी निंदा करते हैं ॥ ३५ ॥ विशेषकर कलिकालमें कलिमाहात्म्यके वशीभूत हो अतिद्वेषी होंगे सो जो हो हे कल्याणि ! उदारात्मा पुरुषोंको भी जो कठिन है ॥ ३६ ॥ वह विषय तुमने किस प्रकार जाना मेरी और हरिकी एकताका जानना अत्यंत दुर्लभ है. व्यासजीने कहा हे महाराज ! आशुतोषके संतुष्ट हो इस प्रकार पूछनेपर फिर हरिवल्लभा ॥ ३७ ॥ कमला प्रसन्नवदनसे पूँछे हुए विषयका सार महादेवके सामने कहने लगी ॥ ३८ ॥

लक्ष्मीने कहा हे देवदेव ! एक दिन भगवान् विष्णुको निर्जनमें पद्मआसन ग्रहणकर तपस्या करते करते ध्यान परायण देखकर मैं ॥ ३९ ॥ अत्यंत आश्चर्य युक्त हुई अनंतर ध्यान त्यागकर प्रसन्न चित्तसे बैठे हुए देख मैंने उनसे पूँछा ॥ ४० ॥ हे देवदेव ! आपही तो जगत्के अधिनाथ और संपूर्ण ब्रह्मांडके प्रभु हैं इस समय मैं आपसे पूँछती हूं कि, ब्रह्मादि देवगण और असुरादिगणोंके मिलित हो समुद्र मथने पर जब मैं उससे निकली ॥ ४१ ॥ तब मैंने पतिकी इच्छासे सबहीको देखा किंतु हे नाथ ! आप संपूर्ण देवताओंसे श्रेष्ठ हैं यह निश्चय करके आपको वरण किया था ॥ ४२ ॥ हे सर्वेश ! इस समय आप फिर किसका ध्यान करते हैं इससे मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है. हे भगवन् ! आप मेरे अत्यंत हैं प्रिय इस समय आप मुझसे अपने मनका भाव

लक्ष्मीरुवाच ॥ एकदा देवदेवेश विष्णुर्ध्यानपरो रहः ॥ दृष्टो मया तपः कुर्वन्पद्मासनगतो यदा ॥ ३९ ॥ तदाऽहं विस्मिता देवं तम पृच्छं पतिं किल ॥ प्रबुद्धं सुप्रसन्नं च ज्ञात्वा विनयपूर्वकम् ॥ ४० ॥ देवदेव जगन्नाथ यदाऽहं निर्गताऽर्णवात् ॥ मथ्यमानात्सुरैर्दैत्यैः सर्वैर्ब्रह्मादिभिः प्रभो ॥ ४१ ॥ वीक्षिताश्च मया सर्वे पतिकामनया तदा ॥ वृतस्त्वं सर्व देवेभ्यः श्रेष्ठोऽसीति विनिश्चयात् ॥ ४२ ॥ त्वं कं ध्यायसि सर्वेश संशयोऽयं महान्मम ॥ प्रियोसि कैकटभारे मे कथयस्व मनोगतम् ॥४३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ शृणु कांते प्रवक्ष्यामि यं ध्यायामि सुरोत्तमम् ॥ आशुतोषं महेशानं गिरिजावल्लभं हृदि ॥ ४४ ॥ कदाचिद्देवदेवो मां ध्यायत्यमितविक्रमः ॥ ध्यायाम्यहं च देवेशं शंकरं त्रिपुरांतकम् ॥ ४५ ॥ शिवस्याहं प्रियः प्राणः शंकरस्तु तथा मम ॥ उभयोरंतरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसोः ॥ ४६ ॥ नरकं यांति ते नूनं ये द्विषंति महेश्वरम् ॥ भक्ता मम विशालाक्षि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४७ ॥

प्रकाश करके कहिये ॥ ४३ ॥ विष्णुने कहा हे कांते ! मैं जिसका ध्यान करता हूं वह तुमसे कहता हूँ श्रवण करो मैं उन्हीं आशुतोष महेश्वर सुरसत्तमं गिरिजावल्लभका हृदयकमलमें ध्यान करता हूँ ॥ ४४ ॥ वह अमितप्रभावदेवदेव महादेव कभी मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैं भी उन सुरेश्वर त्रिपुरांतक शंकरका ध्यान करता हूं ॥ ४५ ॥ मैं शंकरको प्राणोंके समान प्रिय हूं और शंकर मुझको भी इसी प्रकार प्रिय हैं, हम दोनोंका चित्त गूढभावसे परस्पर आशक्त है अतएव उनमें हममें कुछ भी भेद नहीं है ॥ ४६ ॥ हे विशालाक्षि ! जो मनुष्य. मेरा भक्त होकर शिवसे विद्वेष करते हैं, वह निश्चयही नरकभागी होते हैं, यह मैंने तुमसे सत्यही कहा ॥ ४७ ॥

हे महेश्वर ! मेरे एकांतमें पूँछनेपर उन देवदेव परमप्रभु विष्णुने मुझसे इस प्रकार कहा था ॥ ४८ ॥ इसी कारण आपको उनका प्रिय जानकर मैंने आपका ध्यान किया. हे महेश ! जिससे मेरे प्रियका मिलन हो आप वही उपाय कीजिये ॥ ४९ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वाक्यविशारद महादेव लक्ष्मीका यह वचन सुनकर प्रियवचनसे उनको समझाकर कहने लगे॥ ५० ॥ हे नितम्बिनि ! तुम सावधान होओ मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हुआ हूं पतिसे तुम्हारा शीघ्रही मिलन होगा इसमें संशय नहीं ॥ ५१ ॥ मेरे भगवान् जगत्पतिको प्रेरणा करने पर फिर तुम्हारी कामना पूर्ण करनेके निमित्त अश्वरूप धारणकर इसस्थानमें आवेंगे ॥ ५२ ॥ मैं उन देवदेव मधुसूदनको इस प्रकार भेजूंगा कि वह अश्वरूप धारणकर मदातुर होकर तुम्हारे पास आवेंगे ॥ ५३ ॥

इत्युक्तं देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ एकांते किल पृष्टेन मया शैलसुताप्रिय ॥ ४८ ॥ तस्मात्त्वां वल्लभं विष्णोर्ज्ञात्वा ध्यातवती ह्यहम् ॥ तथा कुरु महेशान यथा मे प्रियसंगमः ॥ ४९ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रियो वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः ॥ तामाश्वास्य प्रियैर्वाक्यैर्यथार्थं वाक्यकोविदः ॥५०॥ स्वस्था भव पृथुश्रोणि तुष्टोऽहं तपसा तव ॥ समागमस्ते पतिना भविष्यति न संशयः ॥५१॥ अत्रैव हयरूपेण भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ आगमिष्यति ते कामं पूर्णं कर्तुं मयेरितः ॥ ५२ ॥ तथाऽहं प्रेरयिष्यामि तं देवं मधुसूदनम् ॥ यथाऽसौ हयरूपेण त्वामेष्यति मदातुरः ॥ ५३ ॥ पुत्रस्ते भविता सुभ्रु नारायणसमः क्षितौ ॥ भविष्यति स भूपालः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ५४ ॥ सुतं प्राप्य महाभागे त्वं तेन पतिना सह ॥ गंतासि दिवि वैकुंठं प्रिया तस्य भविष्यसि ॥ ५५ ॥ एकवीरेति नाम्नाऽसौ ख्यातिं यास्यति ते सुतः ॥ तस्मात्तुहैहयो वंशोभुवि विस्तारमेष्यति ॥ ५६ ॥ परंतु विस्मृताऽसि त्वं हृदिस्थां परमेश्वरीम् ॥ मदांधा मत्तचित्ता च तेन ते फलमीदृशम् ॥ ५७ ॥

हे सुभ्रु ! उनसे नारायणके समान एकपुत्र उत्पन्न होगा और वह पृथ्वीमें राजा होकर सर्वलोकोंका पूजनीय होगा इसमें संदेह नहीं ॥५४॥ हे महाभागे ! तुम पुत्रके प्राप्त होनेपर फिर नारायणसहित वैकुण्ठमें जाय और उनकी प्रिया होकर उसी स्थानमें वास करोगी ॥५५॥ तुम्हारा वह पुत्र एकवीर नामसे विख्यात और उससे पृथ्वीतलमें हैहयवंश विस्तारित होगा ॥ ५६ ॥ हे कमले ! तुम ऐश्वर्य मदसे अन्ध और मत्तचित्त होकर हृदयस्थित परमेश्वरीको भूलगई हो इसीकारण तुम इसप्रकारके फलको प्राप्त हुई ॥ ५७ ॥

अतएव उसी दोषको दूर करनेके निमित्त हृदयस्थित पर देवताकी शरण ग्रहण करो ॥ ५८ ॥ हे देवि ! यदि तुम्हारा चित्त आनन्दरूपिणी भगवतीके प्रति आसक्त रहता तो कभी तुम्हारा चित्त उच्चैःश्रवाके प्रति न दौड़ता व्यासजीने कहा हे महाराज ! पार्वतीपति भगवान् महादेव कमलादेवीको इसप्रकार वर दे ॥५९॥ उमाके सहित लक्ष्मीके सामने ही अन्तर्धान होगये. शोभायमान अङ्गवाली कमला देवी भी उसी स्थानमें रहकर ॥६०॥ जिनका नखमण्डल सुरासुर गणोंके शिरोरत्नसे सर्वदाही संघर्षित होता है अम्बिकाके उन्हीं चरण कमलोंको स्मरण करने लगी ॥ ६१ ॥ और हयरूपधारी अपने प्रिय हरिकी प्रतीक्षामें प्रेमगद्गदवचनसे बारंवार महादेवीका स्तव करने लगी ॥ ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अतस्तद्दोषशांत्यर्थं हृदिस्थां परदेवताम् ॥ शरणं याहि सर्वात्मभावेन जलधेः सुते ॥ ५८ ॥ अन्यथा तव चित्तं तु कथं गच्छेद्धयोत्तमे ॥ व्यास उवाच ॥ इति दत्त्वा वरं देव्यै भगवाञ्छैलजापतिः ॥ ५९ ॥ अंतर्धानं गतः साक्षादुमया सहितः शिवः ॥ साऽपि तत्रैव चार्वंगी संस्थिता कमलासना ॥ ६० ॥ ध्यायंती चरणांभोजं देव्याः परमशोभनम् ॥ देवासुर शिरोरत्न निघृष्टनखमंडलम् ॥ ६१ ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तुष्टाव च मुहुर्मुहुः ॥ प्रतीक्षमाणा भर्तारं हयरूपधरं हरिम् ॥ ६२ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यै दत्त्वा वरं शंभुः कैलासं त्वरितो ययौ ॥ रम्यं देवगणैर्जुष्टमप्सरोभिश्च मंडितम् ॥ १ ॥ तत्र गत्वा चित्ररूपंगणं कार्यविशार दम् ॥ प्रेषयामास वैकुंठे लक्ष्मीकार्यार्थसिद्धये ॥ २ ॥ शिव उवाच ॥ चित्ररूप हरिंगत्वा ब्रूहि त्वं वचनान्मम ॥ यथासौ दु खितां पत्नी विशोकां च करिष्यति ॥ ३ ॥ इत्युक्तश्चित्ररूपोऽथ निर्जगाम त्वरान्वितः ॥ वैकुंठं परमं स्थानं वैष्णवैश्च गणैर्वृतम् ॥ ४ ॥ नानाद्रुमगणाकीर्णं वापीशतविराजितम् ॥ संजुष्टं हंसकारंडमयूरशुक कोकिलैः ॥ ५ ॥

व्यासजीने कहा हे राजन् ! देवदेव शंकरने कमलाको वरदान दे अप्सरागणोंसे विभूषित और देवताओं द्वारा परिषेवित मनोहर कैलासाचलमें जाय ॥ १ ॥ चित्ररूप नामक कार्य विशारद एक गण श्रेष्ठको लक्ष्मीके कार्य सिद्धिके निमित्त वैकुण्ठ धाममें भेजा ॥ २ ॥ जानेके समय शिवजीने उसे कह दिया कि हे चित्ररूप ! तुम हरिके निकट जाय जिससे वह दुःखित अपनी कांता समुद्र दुहिताको विरहरूपी शोकबाणसे उद्धार करें तुम मेरे वचनानुसार उनसे इसी प्रकार कहना ॥ ३ ॥ महादेवकी इस प्रकार आज्ञा पाय चित्ररूप शीघ्रके लाभसे निकल वैष्णवोंसे व्याप्त परमधाम वैकुण्ठ लोकमें गया ॥ ४ ॥ वह स्थान अनेक दिव्य वृक्षोंसे घिरा हुआ शतशत मनोहारिणी दीर्घिकाओंसे सुशोभित हंस, कारण्डव, मोर, शुक और कोकिल इत्यादिसे युक्त ॥ ५ ॥

अनेक प्रकार विहंगमगणोंके श्रवण सुखकर कण्ठरवसे शब्दायमान और पताकावलिसे अलंकृत, तथा अटारियोंसे विमण्डित नृत्य गीतादि अनेक प्रकार मनोहर कला समूहसे परिपूर्ण उनमें नयनाञ्जन, बकुल, अशोक, तिलक, चम्पक इत्यादि वृक्षोंसे विराजित और मनोहर मन्दारतरुने दिगन्तव्यापी अपनी पुष्पगन्ध विस्तारित कर परम शोभा धारण की है ॥ ६ ॥ ७ ॥ चित्ररूपने विष्णुका नयन मनोहर सुन्दर भवन देखकर द्वारे स्थित जय विजय नामक वेत्रपाणि दोनों पुरुषोंको प्रणाम कर कहा ॥ ८ ॥ चित्ररूप बोला अहो ! तुम शीघ्र जाय परमात्मा हरिसे निवेदन करो कि, भगवान् शूलपाणिका भेजा हुआ एक जन दूत इस स्थानमें आय द्वारमें प्रतीक्षा कर रहा है ॥ ९ ॥ उसका वचन सुनकर परम बुद्धिमान् जय हरिके सम्मुख आया प्रणामपूर्वक हाथ जोड़ कहने

उच्चप्रासादसंयुक्तंपताकाभिरलंकृतम् ॥ नृत्यगीतकलापूर्णं मंदारद्रुमसंयुतम् ॥ ६ ॥ बकुलोशोकतिलकचंपकालिविमंडितम् ॥ कूजितैर्विह गानां तु कर्णाह्लादकरैर्युतम् ॥ ७ ॥ संवीक्ष्य भवनं विष्णोर्द्वास्थौ प्राह प्रणम्य च ॥ जयविजयनामानौ वेत्रपाणी स्थिताबुभौ ॥ ८ ॥ चित्ररूप उवाच ॥ भो निवेदयत शीघ्रं हरये परमात्मने ॥ दूतं प्राप्तं हरस्यात्र प्रेरितं शूलपाणिना ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य जयः परमबुद्धिमान् ॥ गत्वा हरि प्रणम्याह कृतांजलिपुटः पुरः ॥ १० ॥ देवदेव रमाकांत करुणाकर केशव ॥ द्वारि तिष्ठति दूतोऽत्र शंकरस्य समागतः ॥ ११ ॥ आज्ञपाय प्रवेष्टव्यो न वेति गरुडध्वज ॥ चित्ररूपधरोऽप्यस्ति न जाने कार्यगौरवम् ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्य हरिः प्राह जयं प्रज्ञातकारणः ॥ प्रवेशयात्र रुद्रस्य भृत्यं समयसंस्थितम् ॥ १३ ॥ इत्याकर्ण्य जयस्तूर्णं गत्वा तं परमाद्भुतम् ॥ एहीत्याकारया मास जयः शंकरसेवकम् ॥ १४ ॥ प्रवेशितो जयेनाथ चित्ररूपस्तथा कृतिः ॥ प्रणम्य दंडवद्विष्णुंकृतांजलिपुटः स्थितः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वा तं विस्मयंप्राप भगवान्गरुडध्वजः ॥ चित्ररूपधरं शंभोः सेवकं विनयान्वितम् ॥ १६ ॥

लगा ॥ १० ॥ हे करुणाकर ! हे केशव ! हे देवदेव ! रमाकांत ! भवानीपतिका चित्ररूप नाम दूत श्रेष्ठ इस स्थानमें आकर द्वार स्थित है कार्यगौरव नहीं जानता उसको आपके निकट लाऊं कि नहीं आज्ञा कीजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ जयकी बात सुनतेही अन्तर्यामी हरिने अन्तरका कारण जानकर कहा हे जय ! तुम आये हुए रुद्रके दूतको भवनमें लाओ ॥ १३ ॥ यह सुनकर जयने उस रमणीयमूर्ति शिवके सेवकको बुलाय ॥ १४ ॥ जनार्द्दनके सामने उपस्थित किया विचित्राकार चित्ररूप नारायणको दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड खड़ा रहा ॥ १५ ॥ भगवान् विहगेन्द्र वाहन नारायण उस चित्ररूपधारी विनयान्वित शिव सेवकको देखकर आश्चर्य युक्त हुए ॥ १६ ॥

अनंतर कमलापतिने कुछेक हँसकर चित्ररूपसे पूछा हे विमलपते! परिजनोंके सहित देवदेव महादेवके सर्वाङ्गीन कुशलता है? ॥ १७ ॥ तुमको किस कारण यहां भेजा है? महेश्वरका क्या कार्य है सो कहो अथवा यदि देवतागणोंका कोई कार्य उपस्थित हुआ है वह भी मुझसे ॥१८॥ कहो दूतने कहा हे अन्तर्यामिन्! जब कि इस संसारमें आपसे कोई विषय नहीं छिपा है तो उपस्थित विषय जो मैं कहूंगा वह क्या आपसे छिपा है? ॥ १९ ॥ हे त्रिकालज्ञ! तथापि भगवान् भवानीपतिने आपसे तो विषय कहनेके लिये मुझको आपके पास भेजा है उनके वचनानुसार मैं वह आपसे निवेदन करता हूं ॥ २० ॥ उन्होंने कहा है हे विभो! देवी कमलालया आपकी प्रेयसी भार्या है वह सर्वसिद्धि प्रदायिनी सिंधु नंदिनी यक्ष, किन्नर, नर और देवताओंके ध्यान योग्य होकर

पप्रच्छ तं स्मितं कृत्वा चित्ररूपं रमापतिः ॥ कुशलं देवदेवस्य सकुटुंबस्य चानघ ॥ १७ ॥ कस्मात्त्वं प्रेषितोऽस्यत्र ब्रूहिकार्यं हरस्य किम् ॥ अथवा देवतानां च किंचित्कार्यं समुत्थितम् ॥१८॥ दूत उवाच ॥ किम ज्ञातं तवास्तीह संसारे गरुडध्वज ॥ वर्त मानं त्रिकालज्ञ यदहं प्रब्रवीमि वै ॥ १९ ॥ प्रेषितोऽस्मि भवेनात्र विज्ञप्तुं त्वां जनार्दन ॥ हरस्य वचनाद्वाक्यं प्रब्रवीमि त्वयि प्रभो ॥ २० ॥ तेनोक्तमेतद्देवेश भार्या ते कमलालया ॥ तपस्तपति कालिंदीतमसा संगमे विभो ॥ २१ ॥ हयीरूपधरा देवी सर्वार्थसिद्धिदायिनी ॥ ध्यातुं योग्याऽमरगणैर्मानवैर्यक्षकिन्नरैः ॥ २२ ॥ विना तया नरः कोऽपि सुखभागी भवेद्भुवि ॥ तां त्यक्त्वा पुंडरीकाक्ष पाप्नोषि किं सुखं हरे ॥ २३ ॥ दुर्बलोऽपि स्त्रियं पाति निर्धनोऽपि जगत्पते ॥ विनाऽपराधं च विभो किं त्यक्ता जगदीश्वरी ॥ २४ ॥ दुःखं प्राप्नोति संसारे यस्य भार्या जगद्गुरो । धिक्तस्य जीवितं लोके निंदितं त्वरिमंडले ॥ २५ ॥

भी वडवारूप धारणकर कलिन्दकन्या यमुना और तमसाके संगम स्थलमें कठोर तपस्या करती हैं॥ २१ ॥ २२ ॥ उन सर्वार्थदायिनी लोक जननीके विना इस त्रिलोकमें कौन पुरुष सुखभागी हो सकता है? हे पुण्डरीकाक्ष! उनको त्याग करके आपको क्या सुख प्राप्त होता है? ॥ २३ ॥ हे विभो! निर्धन अथवा दुर्बल भी अपनी भार्याका प्रतिपालन करता है आप जगत्पति होकर भी विना अपराध उन जगत्की आराधना करने योग्य भार्याका क्यों त्याग करते हैं ॥ २४ ॥ हे जगद्गुरो! आपको मैं क्या उपदेश दूं? इस संसारमें जिसकी भार्याको दुःख है उसकी शत्रुओंमें अत्यंत निंदा होती है हे विभो! उसके ऐसे जीवनको धिक्कार है ॥ २५ ॥

हे लोकनाथ! उनको अत्यंत दुःखित देखकर इस समय आपके शत्रुओंकी कामना पूर्ण हुई हे देवि! केशवने तुमको परित्याग किया है अतएव इस समय हमारे संग तुम सुखसे काल व्यतीत करो यह कहकर शत्रु दिन रात आपकी हँसी करते हैं ॥ २६ ॥ अतएव हे सुरेश्वर! आप रमा देवीका चित्त प्रसन्न कीजिये इस सर्व लक्षणयुक्त उपमारहित रूपवती सुशील कमलाको फिर अपनी गोदीमें बैठाइये ॥ २७ ॥ हे देव! आप उस चारुहासिनी प्राणवल्लभाको ग्रहणकर सुखी हूजिये भगवान् शंकरने औरभी कहा है कि, मैं इस समय यदि विरहातुर नहीं हूं तथापि जगदम्बिकाके उस विरह दुःखका स्मरण कर अत्यंत कष्ट अनुभव करता हूं ॥ २८ ॥ हे कमललोचन! मेरी प्रियतमा भार्या सती देवीने जब दक्षके गृहमें जीवन विसर्जन किया तब मैंने दुःसह दुःख अनुभव किया ॥ २९ ॥ हे केशव इस संसारमें अन्य किसीको ऐसा दुःख न हो ? उसके विरहमें मुझको जो शोक और मनसे पीडा हुई थी वह मैं इस

सकामा रिपवस्तेऽद्य दृष्ट्वा तां दुःस्थितां भृशम् ॥ त्वां वियुक्तं च रमया हसिष्यंति दिवानिशम् ॥ २६ ॥ रमां रमय देवेश त्वत्संगगतां कुरु ॥ सर्वलक्षणसंपन्नां सुशीलां च सुरूपिणीम् ॥ २७ ॥ सुखितो भव तां प्राप्य वल्लभां चारुहासिनीम् ॥ कांताविरहजं दुःखंस्मराम्यहमनातुरः ॥ २८ ॥ मम भार्या मृता विष्णो दक्षयज्ञे सती यदा ॥ तदाऽहं दुःसहं दुःखं भुक्तवानंबुजेक्षण ॥ २९ ॥ संसारेऽस्मिन्नरः कोऽपि मा भून्मत्सदृशोऽपरः॥ मनसाऽकरवं शोकं तस्या विरहपीडितः॥३०॥ कालेन महता प्राप्ता मया गिरिसुता पुनः ॥ तपस्तप्त्वाऽति दुःसाध्यं या दुग्धा तु रुषाऽध्वरे ॥ ३१ ॥ हरे किं सुखमापन्नं त्वया संत्यज्यकामिनीम् ॥ एकाकी तिष्ठता कालं सहस्रवत्सरात्मकम् ॥ ३२ ॥ गत्वाऽऽश्वास्य महाभागां समानय निजालयम् ॥ मा भूत्कोऽपीह संसारे वियुक्तो रमया तया ॥ ३३ ॥

समय केवल मनही मनमें स्मरण करता हूं किसीके निकट प्रकाश नहीं करता ॥ ३० ॥ जिसने दक्षके यज्ञमें मेरी निंदाजनित दीप्त रोषानलमें दग्ध होकर जीवन विसर्जन किया था मैंने अत्यंत कठिन तपस्या कर बहुत कालोपरांत फिर उस देवीको गिरजारूपसे प्राप्त किया ॥ ३१ ॥ हे मुरारे! प्रणयिनी भार्याको परित्याग कर सहस्र संवत्सर अकेले रहकर आपको क्या सुख प्राप्त हुआ है ॥ ३२ ॥ आप उस सौभाग्यवती सुदती युवतीको समझाकर अपने घर लाइये हे भगवन्! उन भवभावन भवानीपतिने अन्तमें आपसे यह बात कहदी है कि हे कंसारे! संसारमें कोई भी उस परमा देवी रमाके विना मुहूर्त्तमात्र भी नहीं ठहर सकता ॥ ३३ ॥

हे आयुष्मन्! आप घोड़ेका रूप धारण कर उस कमलाका भजन करो अनंतर उस शुचिस्मिता जायाके गर्भसे पुत्र उत्पन्न कर उसको अपने घर लाओ ॥ ३४ ॥ व्यासजीने कहा हे भरतकुलभूषण! भगवान् हरि उस चित्ररूपका यह वचन सुन " भगवान् भूतपतिने जो कहा है मैं वही करूंगा " यह कहकर उस दूतको शंकरके पास भेज दिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ दूतके चले जानेपर फिर भगवान् मनोहर घोडेका रूप बनाय सकाम होकर तत्काल वैकुंठसे जिस स्थानमें कमला देवी घोडीका रूप धारणकर तपश्चरण करती थी उसी स्थानमें गये वहां आकर देखा कि विमला देवी घोड़ीका रूप धारण कर बैठी है ॥ ३७ ॥ वह साध्वी भी अश्वरूप धारी अपने पति गोविन्दको देखतेही जान गई और फिर अन्यत्र न गई बरन उनको देखकर अत्यन्त आश्चर्ययुक्त चित्तमें उसी स्थानमें

कृत्वा तुरगरूपं त्वं भजतात्कमलालयाम् ॥ उत्पाद्य पुत्रमायुष्मंस्तामानय शुचिस्मिताम् ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥ हरिराकर्ण्य तद्वाक्यं चित्ररूपस्य भारत ॥ तथेत्युक्त्वा तु दूतं तं प्रेषयामास शंकरम् ॥ ३५ ॥ गते दूतेऽथ भगवान्वैकुंठात्काम संयुतः ॥ जगाम धृत्वा तत्राऽऽशु वाजिरूपं मनोहरम् ॥ ३६ ॥ यत्र सा वडवारूपं कृत्वा तपति सिंधुजा ॥ विष्णुस्तं देशमासाद्य ताम पश्यद्धयीं स्थिताम् ॥ ३७ ॥ साऽपि तं वीक्ष्यं गोविंद हयरूपधरं पतिम् ॥ ज्ञात्वा वीक्ष्य स्थिता साध्वी विस्मिता साश्रुलोचना ॥ ३८ ॥ तयोस्तु संग मस्तत्र प्रवृत्तो मन्मथार्तयोः ॥ कालिंदीतमसासंगे पावने लोकविश्रुते ॥ ३९ ॥ सगर्भा सा तदा जाता वडवा हरि वल्लभा ॥ सुषुवे सुंदरं बालं तत्रैव सुगुणोत्तरम् ॥ ४० ॥ तमाह भगवान्वाक्यं प्रहस्य समयाश्रितम् ॥ त्यजाद्य वाडवं देहं पूर्वदेहा भवाधुना ॥ ४१ ॥ गमिष्यावः स्ववैकुंठमावां कृत्वा निजं वपुः ॥ तिष्ठत्वत्र कुमारोऽयं त्वया जातः सुलोचने ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीरुवाच स्वदेहसंभवं पुत्रं कथं हित्वा व्रजाम्यहम् ॥ स्नेहः सुदुस्त्यजः कामं स्वात्मजस्य सुरर्षभ ॥ ४३ ॥

बैठी रही किंतु मनोदुःखसे उनके दोनों विशालनेत्रों द्वारा बराबर अश्रुधारा गिरने लगी ॥ ३८ ॥ अनंतर इस कालिन्दी और तमसाके लोक विख्यात संगम स्थानमें उन दोनोंका परस्पर संगम हुआ ॥ ३९ ॥ तब वडवारूप धारिणी हरिवल्लभाने गर्भवती हो यथा समय उस स्थानमें रूप सम्पन्न गुणवान् एक पुत्र उत्पन्न किया था ॥ ४० ॥ तब भगवान्ने हँसकर उससे समयोचित वचन कहा हे प्रिये! इस समय घोडीका देह त्याग कर पहला देह ग्रहण कीजिये ॥ ४१ ॥ हे सुलोचने! हम दोनों अपना अपना देह धारण कर अपने घर वैकुण्ठ धामको चलें और तुम्हारी उत्पन्न हुई यह संतान वह उसी स्थानमें वास करे ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीने कहा हे नाथ! अपनी जठरजात संतानको त्यागकर कैसे चलूं? हे सुरेश्वर! आत्मजात संतानका स्नेह अत्यन्त कठिनतासे छोडने

योग्य है ॥ ४३ ॥ हे महात्मन् ! यह बालक अतिशिशु और अत्यन्त क्षुद्रतनु है अभी अपनी आत्माकी रक्षा करनेमें सदा असमर्थ है इसको नदीके तटपर त्याग करनेपर जब यह अनाथ होगा तब इसकी क्या गति होगी ? ॥ ४४ ॥ हे कमललोचन ! हे स्वामिन् स्नेह रससे मेरा मन व्याप्त है निराश्रय शिशु संतानको त्याग कर चलनेमें किस प्रकार समर्थ होगा ? ॥ ४५ ॥ अनंतर लक्ष्मी और नारायणके पूर्वके समान दिव्य देह धारण पूर्वक उत्तम विमानमें चढ़ने पर फिर देवता उनका स्तव करने लगे ॥ ४६ ॥ नारायणके जानेकी इच्छा करनेपर कमलाने कहा हे नाथ ! आप इस पुत्रको ग्रहण कीजिये मैं इसको त्याग कर जानेमें समर्थ नहीं होती ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! हे मधुसूदन ! यह पुत्र मुझको प्राणोंकी अपेक्षा भी प्रिय है देखो यह देह कांतिसे सब प्रकार आपके

का गति स्यादमेयात्मन्बालस्यास्य नदीतटे ॥ अनाथस्यासमर्थस्य विजनेऽल्पतनोरिह ॥ ४४ ॥ अनाश्रयं सुतं त्यक्त्वा कथं गंतुं मनो मम ॥ समर्थं सदयं स्वामिन्भवेदंबुजलोचन ॥ ४५ ॥ दिव्यदेहौ ततो जातौ लक्ष्मीनाराणावुभौ ॥ विमानवरसंविष्टौ स्तूयमानौ सुरैर्दिवि ॥ ४६ ॥ गंतुकामं पतिं प्राह कमला कमलापतिम् ॥ गृहाणेमं सुतं नाथ नाहं शक्ताऽस्मि हापितुम् ॥ ४७ ॥ प्राणप्रियोऽस्ति मे पुत्रः कांत्या त्वत्सदृशः प्रभो ॥ गृहीत्वैनं गमिष्यावो वैकुंठं मधुसूदन ॥ ४८ ॥ हरिरुवाच ॥ मा विषादं प्रिये कर्तुं त्वमर्हसि वरानने ॥ तिष्ठत्वयं सुखेनात्र रक्षा मे विहिता त्विह ॥ ४९ ॥ कार्यं किमपि वामोरु वर्तते महदद्भुतम् ॥ निबोध कथयाम्यद्य सुतस्यात्र विमोचने ॥ ५० ॥ तुर्वसुर्नाम विख्यातो ययातितनुजो भुवि ॥ हरि वर्मेति पित्राऽस्य कृतं नाम सुविश्रुतम् ॥ ५१ ॥ स राजा पुत्र कामोऽद्य तपस्तपति पावने ॥ तीर्थे वर्षशतं जातं तस्य वै कुर्वतस्तपः ॥ ५२ ॥

समान है अतएव मैं उस पुत्रको लेकर वैकुण्ठमें जाऊंगी ॥ ४८ ॥ हरिने कहा हे प्रिये ! तुम विषाद मत करो यह बालक इस स्थानमें सुखपूर्वक वास करे मैंने इसकी रक्षाके निमित्त उपाय किया है ॥ ४९ ॥ हे वामोरु ! इस पृथ्वीमें कोई एक महत् अद्भुत कार्य है वह तुम्हारे इस पुत्रसे ही होगा इस कारण मैं इसको इसी स्थानमें छोड़ता हूं इस समय तुम्हारे निकट यह विषय वर्णन करता हूं सुनो ॥ ५० ॥ तुर्वसु नामक विख्यात ययाति राजाके एक पुत्र है उसके पिताने फिर उसका नाम हरिवर्मा रक्खा वह उसी नामसे विख्यात हुआ है ॥ ५१ ॥ वह राजा इस समय पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छासे पवित्र तीर्थमें शतवर्ष हुए तपस्या करता है ॥ ५२ ॥

हे कमले! उनके निमित्त ही मैंने यह पुत्र उत्पन्न किया है हे सुभ्रु! मैं उस समय वहां जाकर उस राजाको भेजूंगा ॥ ५३ ॥ हे वरानने ! उस पुत्रकी इच्छा करनेवाले राजाको मैं यह पुत्र दूंगा वह इस बालकको लेकर फिर घर जायगा ॥ ५४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! भगवान् इस प्रकार पद्मालया प्रियाको समझाकर और बालकको उसी स्थानमें रख उत्तम विमानपर चढ कमलाके सहित स्वर्गको चले गये ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! इस विषयमें मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है, लक्ष्मी और नारायणके उस सद्योजात असहाय बालक सन्तानको निर्ज्जनवनमें त्याग करने पर फिर उसको किसने ग्रहण किया ॥ १ ॥ अहो ! उस तत्कालके उत्पन्न हुए बालककी क्या गति

तस्यार्थे निर्मितः पुत्रो मयाऽयं कमलालये ॥ तत्र गत्वा नृपं सुभ्रु प्रेरयिष्यामि सांप्रतम् ॥ ५३ ॥ तस्मै दास्याम्यहं पुत्रं पुत्र कामाय कामिनि ॥ गृहीत्वा स्वगृहं राजा प्रापयिष्यति बालकम् ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याश्वास्य प्रियां पद्मां कृत्वा रक्षां च बालके ॥ विमानवरमारुह्य प्रयसो प्रयया सह ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ जनमेजय उवाच ॥ संशयोऽयं महानत्र जातमात्रःशिशुस्तथा॥ मुक्तः केन गृहीतोऽसावेकाकी विजने वने ॥१॥ कागतिस्तस्य बालस्य जाता सत्यवती सुत ॥ व्याघ्रसिंहादिभिर्हिंस्रैरगृहीतो नातिबालकः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ लक्ष्मीनारायणौ तस्मात्स्थानाच्च चलितौ यदा ॥ तदैव तत्र चंपाख्यः प्राप्तो विद्याधरः किल ॥ ३ ॥ विमानवरमारूढः कामिन्या सहितो नृप ॥ मदनालसया कामं क्रीडमानो यदृच्छया ॥ ४ ॥ विलोक्य तं शिशुम्भूमावेकाकिनमनुत्तमम् ॥ देवपुत्रप्रतीकाशं रममाणं यथासुखम् ॥ ५ ॥ विमानात्तरसोत्तीर्य चंपकस्तं शिशुं जवात् ॥ जग्राह च मुदं प्राप निधिं प्राप्य यथाऽधनः ॥ ६ ॥

हुई? सिंह व्याघ्रादि हिंसक जन्तुगणोंने क्यों उसको भक्षण न किया? ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज लक्ष्मी और नारायणके उम स्थानमे चले जानेपर चम्पक नामक विद्याधर ॥ ३ ॥ मनोहर विमानपर चढ मदनालसा नामक स्त्रीके संग क्रीडा करते करते इच्छानुसार वहां आकर उपस्थित हुआ ॥ ४ ॥ देव पुत्रके समान मनोहर कान्ति परम सुन्दर उस बालकको पृथ्वीमें अकेला सुखपूर्वक क्रीडा करते देखकर ॥ ५ ॥ चम्पकने शीघ्र विमानसे उतर उसको ग्रहण किया निर्धन पुरुष जिस प्रकार निधि पानेसे प्रसन्न होता है मनोहर पुत्रको प्राप्त कर विद्याधर भी उसी प्रकार आनन्दित हुआ ॥ ६ ॥

दे. भा. ॥६३॥

चम्पकने उस सद्योजात मनोहर कामदेवके समान बालकको ग्रहण कर ॥ ७ ॥ मदनालसा देवीको दिया मदनालसा बालकको ग्रहण कर आश्चर्य युक्त और पुलकित हुई और हृदयसे लगाय मुखचुम्बन करने लगी ॥ ८ ॥ हे भारत! मदनालसा बालकको पुत्र भावसे गोदीमें ले आलिङ्गन और चुम्बन कर परम प्रसन्न हुई ॥ ९. ॥ इसके उपरांत दोनों बालकको ले परमानन्दसे विमानपर चढ़े अनन्तर तन्वंगी मदनालसा हँसकर पतिसे पूँछने लगी ॥१०॥ हे नाथ! यह बालक किसका है इसको वनमें कौन छोड़ गया है? बोध होता है कि देवदेव पिनाकपाणिने मुझको यह पुत्र दान किया है ॥ ११ ॥ चम्पकने कहा यह बालक देव, दानव, अथवा गंधर्वकी संतान है, यह मैं उन सर्वज्ञ शचीपति इन्द्रसे अभी जाकर पूछूंगा ॥ १२ ॥ उनकी आज्ञा करनेपर फिर इस

गृहीत्वा चंपकः प्रादाद्देव्यै तं मदनोपमम् ॥ मदनालसायै तं बालं जातमात्रं मनोहरम् ॥ ७ ॥ सा गृहीत्वा शिशुं प्रेम्णा सरोमांचा सविस्मया ॥ मुखं चुचुंब बालस्य कृत्वा तु हृदये भृशम् ॥ ८ ॥ आलिंगितश्चुंबितश्च तयाऽसौ प्रीतिपूर्वकम् ॥ उत्संगे च कृतस्तन्व्या पुत्रभावेन भारत ॥ ९ ॥ कृत्वांऽके तौ समारूढौ विमानं दंपती मुदा ॥ पतिं पप्रच्छ चार्वंगी प्रहस्य मदनालसा ॥ १० ॥ कस्यायं बालकः कांत त्यक्तः केन च कानने ॥ पुत्रोऽयं मम दैवेन दत्तस्त्र्यंबकपाणिना ॥ ११ ॥ चंपक उवाच ॥ प्रिये गत्वाऽद्य पृच्छेयं शक्रं सर्वज्ञमाशु वै ॥ देवो वा दानवो वाऽपि गंधर्वो वा शिशुः किलः ॥ १२ ॥ तेनाज्ञप्तः करिष्यामि पुत्रं प्राप्तं वनादमुम् ॥ अपृष्ट्वा नैव कर्तव्यं कार्यं किंचिन्मया ध्रुवम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा तं विमानेनाथ चंपकः ॥ ययौ शक्रपुरं तूर्णं हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ॥ १४ ॥ प्रणम्य पादयोः प्रीत्या चंपकस्तु शचीपतिम् ॥ निवेद्य बालकं प्राह कृतांजलिपुटः स्थितः ॥ १५ ॥ देवदेव मया लब्धस्तीर्थे परमपावने ॥ कालिंदीतमसासंगे बालकोऽयं स्मरप्रभः ॥ १६ ॥

वनमें प्राप्त हुए की वेदमंत्रद्वारा संस्कृत कराय पुत्रत्वमें ग्रहण करूंगा विशेषकर विना जाने हठात् कोई कार्य करना मुझको उचित नहीं है ॥ १३ ॥ चम्पक अपनी स्त्री मदनालसासे यह कहकर बालकको ग्रहपूर्वक हर्षोत्फुल्ल लोचनसे शीघ्र इंद्रपुरमें गया ॥ १४ ॥ चम्पकने प्रीतिपूर्वक शचीपति इंद्रके चरणोंमें प्रणामकर बालक विवरण सुनाय हाथ जोड़कर कहा ॥ १५ ॥ हे देवेन्द्र! मैंने कालिन्दी और तमसाके संगरूप परम पवित्र तीर्थस्थलमें उस कामदेवके समान बालकको प्राप्त किया है ॥ १६ ॥

हे प्रभो ! हे शचीकांत ! वह पुत्र किसका है ? और इसको कौन छोड़ गया ? यदि आपका विचार हो तो मैं इस बालकको पुत्ररूपमें ग्रहण करूं ॥ १७ ॥ यह बालक अत्यन्त सुन्दर और मेरी स्त्रीको अति प्रिय है, धर्मशास्त्रमें भी कृत्रिमपुत्रकी विधि कही गई है अतएव मेरी अत्यन्त इच्छा है कि इस बालकको वेदमंत्र द्वारा संस्कार कराय पुत्ररूपसे ग्रहण करूं ॥ १८ ॥ इंद्रने कहा हे महाभाग ! भगवान् वासुदेवने अश्वरूप धारणपूर्वक कमलाके गर्भसे उत्पन्न किया है यह हैहय नामक है ॥ १९ ॥ वह ययातितनय तुर्वसुको यह शत्रुसंहारक्षम बालक प्रदान कर भलीभांति कार्यसाधन करेंगे ॥ २० ॥ वह धार्मिक राजा हरिसे प्रेरित अभी पुत्रके निमित्त उस मनोहर पवित्र तीर्थमें आवेंगे ॥ २१ ॥ जबतक वह देवदेव विष्णुसे प्रेरित हो उस स्थानमें न आवे उससे पहले ही तुम शीघ्र

कस्यायं बालकः कांत कथं त्यक्तः शचीपते ॥ आज्ञा चेत्तव देवश कुर्वेऽहं बालकं सुतम् ॥ १७ ॥ अतीव सुन्दरो बालः प्रियया वल्लभः सुतः ॥ कृत्रिमस्तु सुतः प्रोक्तो धर्मशास्त्रेषु सर्वथा ॥ १८ ॥ इंद्र उवाच ॥ पुत्रोऽयं वासुदेवस्य वाजिरूपधरस्य ह ॥ हैहयोऽयं महाभाग लक्ष्म्यां जातः परं तपः ॥ १९ ॥ उत्पादितो भगवता कार्यार्थे किल बालकः ॥ दातुं नृपतये नूनं ययातितनयाय च ॥ २० ॥ हरिणा प्रेरितः सोऽद्य राजा परमधार्मिकः ॥ आगमिष्यति पुत्रार्थं तीर्थे तस्मिन्मनोरमे ॥ २१ ॥ तावत्त्वं गच्छ तत्रैव गृहीत्वा बालकंशुभम् ॥ यावन्न याति नृपतिर्ग्रहीतुं हरिणेरितः ॥ २२ ॥ गत्वा तत्र विमुंचैनं विलंबं मा कृथा वर ॥ अदृष्ट्वा बालकं राजा दुःखितश्च भविष्यति ॥ २३ ॥ तस्माच्चंपक मुंचैनं राजा प्राप्नोतु पुत्रकम् ॥ एकवीरेति नाम्नाऽयं ख्यातः स्यात्पृथिवीतले ॥२४॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा चंपकस्त्वरयाऽन्वितः ॥ जगाम पुत्रमादाय स्थले तस्मिन्महीपते ॥ २५ ॥ मुमोच बालकं तत्र यत्र पूर्वं स्थितो ह्यभूत् ॥ आरुह्य स्वविमानं तु ययौ स्वाश्रममंडलम् ॥ २६ ॥

वहां जाय इस रमणीय मूर्ति बालकको उसी स्थानमें रख दो ॥ २२ ॥ हे विद्याधर प्रवर ! तुम अब मुहूर्त मात्र भी विलंब मत करो राजा बालकको न देखकर अत्यन्त दुःखित होंगे ॥ २३ ॥ अतएव हे चम्पक तुम इस बालककी ममता त्याग करो राजा इस पुत्रको ग्रहण करे यह बालक पृथ्वीमें एकवीरनामसे विख्यात होगा ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इन्द्रके यह वचन सुनकर चम्पक पुत्रको ले तत्काल वहां जाय ॥ २५ ॥ उसको उसी स्थानमें रख विमानपर चढ़ अपने घरको चलागया ॥ २६ ॥

उसी समय त्रैलोक्यनाथ कमलाकान्त प्रभासे कान्तिमान् विमानपर चढ़ राजाके निकट गये ॥ २७ ॥ भगवान् विमानसे उतरते ही थे उसी समय राजा तुर्वसु उनको देखते ही प्रसन्न हुए और पृथ्वीमें गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ २८ ॥ हे वत्स ! उठो मनकी मलीनता दूर करो यह कहकर नारायणने उस पृथ्वीमें पड़े हुए अपने भक्त राजाको समझाया राजा उत्सुक और भक्ति युक्त चित्तसे सामने स्थित वासुदेवकी स्तुति करनेके लिये वचन कहने लगा ॥ २९ ॥ हे रमेश ! आप देवताओंके अधिदेवता; सम्पूर्ण लोकमण्डलके नाथ करुणाके समुद्र और सब मनुष्योंको उपदेश देनेवाले हैं हे प्रभो ! आपका दर्शन योगिगणोंको भी अत्यन्त दुर्लभ है मैंने अत्यन्त मंदमति होकर भी आपका वह दर्शन प्राप्त किया हे प्रभो ! इसके द्वारा आपकी अपार करुणा प्रकाश होती है

तदैव कमलाकांतो लक्ष्म्या सह जगद्गुरुः ॥ विमानवरमारूढो जगाम नृपतिं प्रति ॥ २७ ॥ दृष्टस्तदा तेन नृपेण विष्णुः समुत्तरंस्तत्र विमान मुख्यात् ॥ जहर्ष राजा हरिदर्शनेन पपात भूमौ खलु दंडवच्च ॥२८॥ उत्तिष्ठ वत्सेति हरिः पतंतमाश्वासयद्भूमिगतं स्वभक्तम् ॥ सोऽप्युत्सुको वासुदेवं पुरःस्थं तुष्टाव भक्त्या मुखरीकृतोऽथ ॥ २९ ॥ देवाधिदेवाखिललोकनाथ कृपानिधे लोकगुरो रमेश ॥ मंदस्य मे ते किल दर्शनं यत्सुदुर्लभं योगिजनैरलभ्यम् ॥ ३० ॥ ये निःस्पृहास्ते विषयैरपेतास्तेषां त्वदीयं खलु दर्शनं स्यात् ॥ आशापरोऽहं भगवन्ननंत योग्यो न ते दर्शन देवदेव ॥ ३१ इति स्तुतस्तेन नृपेण विष्णुस्तमाह वाक्येन सुधामयेन ॥ वृणीष्व राजन्मनसेप्सितं ते ददामि तुष्टस्तपसा तवेति ॥ ३२ ॥ ततो नृपस्तं प्रणिपत्य पादयोः प्रोवाच विष्णुं पुरतः स्थितं च ॥ तपस्तु तप्तं हि मया सुतार्थे पुत्रं ददस्वात्मसमं मुरारे ॥ ३३ ॥

॥ ३० ॥ हे भगवन् ! हे अनंत जो मोहरहित और विषयसे विरत हैं वही आपका दर्शन प्राप्त करनेके अधिकारी हैं हे देवादिदेव ! मैंने आशारूपी जालमें बंधा हूँ मैं आपका दर्शन प्राप्त करनेमें सब प्रकार-अयोग्य हूं इसमें संदेह नहीं ॥ ३१ ॥ नृपतिश्रेष्ठ तुर्वसुके इस प्रकार स्तव करने पर फिर भगवान् विष्णु अमृतमय वचनसे कहने लगे हे राजन् ! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हुआ हूं तुम मनके अभिलाषित वरकी प्रार्थना करो मैं इस समय वही दूंगा ॥ ३२ ॥ तदनंतर राजाने सामने खडे परातपर विष्णुके चरणोंमें फिर प्रणाम कर कहा हे मुरारे ! मैंने पुत्र प्राप्त होनेके निमित्त तपस्या की है मुझको आत्मतुल्य पुत्र दीजिये ॥ ३३ ॥

आदिदेव राजाकी प्रार्थना सुन उनसे अमोघ वचन कहने लगे हे ययातिनन्दन ! तुम यमुना और तमसाके संगम तीर्थमें जाओ ॥ ३४ ॥ अभी मैं उस स्थानमें तुम्हारे निमित्त जैसी तुम इच्छा करते थे वैसा ही अमित प्रभाव एक पुत्र रख आया हूं तुम शीघ्र ग्रहण करो हे राजन् ! उस पुत्रने मेरे उरसे और कमलाके जठरसे जन्म ग्रहण किया है ॥ ३५ ॥ राजा हरिके मधुर विमल वचन सुन कर अत्यन्त संतुष्ट हुए तब भगवान् विष्णु भी उनको वर दे रमाके सहित वैकुण्ठको चले गये ॥ ३६ ॥ ययातिपुत्र राजा तुर्वसु जनार्दनके यह वचन सुननेके पीछे प्रेम पूरित चित्तसे एक अप्रतिहत गति रथपर चढ जिस स्थानमें वह पुत्र था उसी स्थानमें गया ॥ ३७ ॥ वहां जातेही असाधारण प्रभायुक्त देखा कि वह परम सुंदर मनोहर बालक एक कोमल हाथसे चरणका अंगूठा पकड़े

श्रुत्वा नृपप्रार्थितमादिदेवस्तामाह राजानममोघवाक्यम् ॥ ययातिसूनो व्रज तत्र तीर्थे कलिंदकन्यातमसाप्रसंगे ॥३४॥ मयाऽद्य पुत्रस्तु यथेप्सितस्ते तत्रैव मुक्तोऽस्त्यमितप्रभावः ॥ लक्ष्म्याः प्रसूतो मम वीर्यजश्च कृतस्तवार्थे ऽथ गृहाण राजन् ॥ ३५ ॥ श्रुत्वा हरेर्वाक्यमतीव मृष्टं संतुष्टचित्तः प्रबभूव राजा ॥ हरिस्तु दत्त्वेति वरं जगाम वैकुंठलोकं रमया युतश्च ॥ ३६ ॥ गते हरौ सोऽथ ययातिसूनुर्यावनुद्धातरथेन राजा ॥ प्रेमान्वितस्तत्र सुतोऽस्ति यत्र वचो निशम्येति जनार्दनस्य ॥ ३७ ॥ स तत्र गत्वाऽति मनोहरं तं ददर्श बालं भुवि खेलमानम् ॥ मुखे निवेश्यैककरेण कृत्वा श्लक्ष्णं पदांगुष्ठमनन्यसत्त्वः ॥ ३८ ॥ तं वीक्ष्य पुत्रं मदनस्वरूपं नारायणांशं कमलाप्रसूतम् ॥ हरिप्रभावं हरिवर्मनामा हर्षप्रफुल्लाननपंकजोऽभूत् ॥३९॥ गृह्णन्सुवेगात्करपंकजाभ्यां बभूव प्रेमार्णवमग्नदेहः ॥ मूर्धन्युपाघ्राय मुदाऽन्वितोऽसौ ननंद राजा सुतमालिलिंग ॥ ४० ॥ मुखं समीक्ष्यातिमनोहरं तमुवाच नेत्रांबुनिरुद्धकंठः ॥ दत्तोऽसि देवेन जनार्दनेन मात्रा हि पुत्रावमदुःखभीतेः ॥ ४१ ॥

मुखमें दिये प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीमें खेल रहा है ॥ ३८ ॥ यह पुत्र नारायणके अंश और कमलाके उदरसे उत्पन्न है सुतरां नारायणके समान प्रभाव युक्त है उस कामदेवके समान मनोहर बालकको देखकर लोक विख्यात नरेश्वर हरिवर्माका मुखकमल हर्षसे प्रफुल्लित हो गया ॥ ३९ ॥ राजा दोनों हस्तकमलोंमें पुत्रको ग्रहणकर प्रेमसागरमें निमग्न हुए और हर्षसे भर मस्तक सूंघ अत्यन्त आनंदित मनसे आलिङ्गन करने लगा ॥ ४० ॥ बालकका मनोहर मुखकमल देखकर आनंदके आंसुवोंसे भर राजाका कण्ठ रुक गया तब उन्होंने बालकसे गद्गद वाणीसे कहा हे पुत्र ! नारायणने संतुष्ट होकर मुझको तुम सरीखा पुत्ररत्न दान किया है तुम मेरी पुन्नाम नरक पातके भयसे रक्षा करो ॥ ४१ ॥

हे वत्स ! मैंने तुम्हारे निमित्त पूर्ण सौ वर्ष कठिन तपस्या की है उससे कमला पतिने परितुष्ट होकर मुझे संसार सुखके निमित्त तुमको दान किया ॥ ४२ ॥ तुम्हारी जननी रमा देवी मेरे निमित्त अपनी अङ्गजात संतानको त्यागकर हरिके संग चली गई हे वत्स ! तुमको गोदीमें लेकर तुम्हारा हास्यविकसित मुखकमल देखनेसे जिसका मुख प्रफुल्लित होता है वही जननी धन्य है ॥ ४३ ॥ हे हृदय नन्दन ! देवादिदेव रमापतिने तुम्हें मेरी संसार सागरकी नौका स्वरूप किया है यह कह राजा उस बालकको ग्रहण कर प्रसन्न मनमे घरकी ओर चले ॥ ४४ ॥ नगरीमें राजा फिर आते हैं यह सुनकर राजाके मंत्री पुरवासी और समस्त प्रजा पुरोहितादि उपहारकी सामग्री संग ले उनके निकट आए ॥ ४५ ॥ तब बन्दीगण गायक और सूतगण राजाके संमुख उपस्थित

तप्तं मया पुत्र तप स्तवार्थे सुदुष्करं वर्षशतं च पूर्णम् ॥ तेनैव तुष्टेन रमाप्रियेण दत्तोऽसि संसारसुखोदयाय ॥ ४२ ॥ माता रमा त्वां तनुजं मदर्थे त्यक्त्वा गता सा हरिणा समेता ॥ धन्या तु सा या प्रहसंतमंके कृत्वा सुतं त्वां मुदितानना स्यात् ॥ ४३ ॥ त्वमेव संसारसमुद्रनौकारूपः कृतः पुत्रः लक्ष्मीधरेण ॥ इत्येवमुक्त्वा नृपतिः सुतं तं मुदा समादाय ययौ गृहाय ॥ ४४ ॥ पुरीसमीपे नृप मागतं तमाकर्ण्य सर्वे सचिवास्तु राज्ञः ॥ ययुः समीपं नृपतेश्च लोकाः सोपायनास्ते सपुरोहिताश्च ॥ ४५ ॥ बंदीजना गायनकाश्च सूताः समाययुः संमुखमाशु राज्ञः ॥ नृपः पुरं प्राप्य पुरः समागतं जनं समाश्वास्य वाक्यैश्च दृष्ट्या ॥ ४६ ॥ संपूजितः पौरजनेन राजा विवेश पुत्रेण युतो नगर्याम् ॥ मार्गेषु लाजैः कुसुमैः समंताद्विकीर्यमाणो नृपतिर्जगाम ॥ ४७ ॥ गृह समृद्धं सचिवैः समेतः सुतं समादाय मुदा कराभ्याम् ॥ राज्ञ्यै ददौ चाथ सुतं मनोज्ञं सद्यःप्रसूतं च मनोभवाभम् ॥ ४८ ॥ राज्ञी गृहीत्वाऽभिनवं तनूजं पप्रच्छ राजानमनिंदिता सा ॥ राजन्कुतश्चैष सुतः सुजन्मा प्राप्तस्त्वया मन्मथतुल्यरूपः ॥ ४९ ॥

हुए राजाने पुरीमें प्राप्त हो आये हुए सम्पूर्ण मनुष्योंको स्नेह दृष्टिसे देख और मधुर सम्भाषण द्वारा समझाय ॥ ४६ ॥ तदनंतर पौरगणोंसे पूजित हो पुत्रके सहित नगरीमें प्रवेश किया राजा जब राजमार्गमें जाने लगे तब पौरगणोंने उनके ऊपर पुष्प और लाज (खीलैं)बरसाये ॥ ४७ ॥ अनंतर राजाने दोनों हाथोंसे पुत्रको ग्रहणकर मंत्रीगणों सहित अपनी समृद्धि सम्पन्न गृहमें प्रवेश किया तदनंतर तुर्वसुने उस सद्यःप्रसूत कामदेवके समान मनोहर पुत्रको अपनी महिषीके हाथोंमें समर्पण किया ॥ ४८ ॥ मनोरमा राजपत्नी अभिनव संतानको ग्रहण कर राजासे पूंछने लगी हे राजन् ! यह मन्मथ मूर्ति सुजात पुत्र कहां पाया ॥ ४९ ॥

किसने आपको यह प्रदान किया ? हे नाथ ! आप शीघ्र कहिये यह बालक मेरा मन हरण करता है तब राजाने आनंदित होकर कहा हे प्रिये ! कृपानिधि कमलापतिने मुझको यह पुत्र प्रदान किया है ॥ ५० ॥ हे चपल नयने ! यह संतान नारायणके अंश और कमलाके गर्भसे उत्पन्न है हे देवि ! इस संतानमें बल वीर्य धैर्य गंभीरता इत्यादि समस्त गुण विद्यमान हैं इसमें संदेह नहीं तब महिषने उस बालक संतानको ग्रहण कर अपरिमेय आनंद प्राप्त किया अनंतर राजा तुर्वसुने राजभवनमें अद्भुत उत्सव आरंभ किया ॥ ५१ ॥ और याचकगणोंको दान किया राजभवनमें अनेक प्रकारके गीत और बाजोंकी ध्वनि होने लगी भूपति तुर्वसुने पुत्र होनेमें उत्सव कर उसका नाम एकवीर रख दिया ॥ ५२ ॥ इन्द्रके समान वीर्यवान् वह नरपति भगवान् हरिके समानरूप

केनैष दत्तः कथयाशु कांत चेतो मदीयं प्रहृतं सुतेन ॥ नृपस्तदोवाच मुदाऽन्वितोऽसौ प्रिये रमेशेन सुतोऽति मह्यम् ॥ ५० ॥ लोलाक्षि दत्तः कमलासमुत्थो जनार्दनांशोऽयमहीनसत्त्वः ॥ सा तं गृहीत्वा मुदमाप राज्ञी राजा चकारोत्सवमद्भुतं च ॥५१॥ ददौ च दानं किल याचकेभ्यो गीतानि वाद्यानि बहूनि नेदुः ॥ कृत्वोत्सवं भूपतिरात्मजस्य नामैकवीरेति चकार विश्रुतम् ॥ ५२ ॥ सुखं च संप्राप्य मुदाऽन्वितोऽसौ ननंद देवाधिपतुल्यवीर्यः ॥ पुत्रं हरे रूपगुणानुरूपं संप्राप्य वंशस्य ऋणाच्च मुक्तः ॥५३॥ इति सकलसुराणामीश्वरेणार्पितं तं सकलगुणगणाढ्यं पुत्रमासाद्य राजा ॥ विविधसुखविनोदैर्भार्यया सेव्यमानो व्यहरत निजगेहे शक्रतुल्यप्रतापः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ जातकर्मादिसंस्कारांश्चकार नृपतिस्तदा ॥ दिनेदिने जगामाशु वृद्धिं बालः सुलालितः ॥ १ ॥ नृपः संसारजं प्राप्य सुखं पुत्रसमुद्भवम् ॥ ऋणत्रयविमोक्षं च मेने तेन महात्मना ॥ २ ॥

और गुणयुक्त पुत्रको प्राप्त हो सुखी हुए और वंशके ऋणदायसे छूटकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! इन्द्रके समान पराक्रमशाली वह राजा इस प्रकार समस्त देवताओंके अधिपति नारायणके दिये सर्वगुणालंकृत उस पुत्रको पाय प्रियतमासे सुखसेवित और उसके सहित अनेक विनोद और राज भोगमें निरन्तर निरत रह अपने घर विहार करने लगे ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उसी अवसरमें नगरपति तुर्वसुने पुत्रका जातकर्मादि संस्कार कराया क्रमानुसार बालक लालित पालित हो दिन दिन बढने लगा ॥ १ ॥ राजा उस पुत्रजनित संसारके सुखको प्राप्त हो "इस उदारात्मा पुत्रद्वारा मैं पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋणसे छूटा" मनमें इस प्रकार विचारने

लगा ॥ २ ॥ अनन्तर छठे मासमें विधिपूर्वक उसका अन्नप्राशन और तीसरे वर्षमें सम्यक् प्रकार चूडाकरणादि क्रिया सम्पादन की ॥ ३ ॥ उन समस्त क्रियाओंमें राजाने ब्राह्मण गणोंको अनेक द्रव्य, धन और गोदान तथा अन्य याचक गणोंको भी अनेक प्रकारके द्रव्य देकर सन्तुष्ट किया ॥ ४ ॥ ग्यारहवें वर्षमें उसका मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत) इत्यादि उपनयनकर्म साधन कर धनुर्वेद अध्ययनमें उसको नियुक्त किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर पुत्रको वेदाध्ययनमें पारदर्शी और राजधर्ममें विशारद हुआ देख राजाने उसका अभिषेक करनेकी इच्छा की ॥ ६ ॥ नृपतिसत्तम तुर्वसुने आदरपूर्वक पुष्य और अर्कयोगयुक्त दिनमें अभिषेक निमित्त सम्पूर्ण सामग्री मंगाई ॥ ७ ॥ वह सर्वशास्त्रोंमें निपुण वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाया यथाविधि पुत्रकी अभिषेक क्रियामें

षष्ठेऽन्नप्राशनं तस्य कृत्वा मासि यथाविधि ॥ तृतीयेऽथ तथा वर्षे चूडाकरणमुत्तमम् ॥३॥ चकार ब्राह्मणान्द्रव्यैः संपूज्य विविधैर्धनैः ॥ गोभिश्च विविधैर्दानैर्याचकानितरानपि ॥ ४ ॥ वर्षे चैकादशे तस्य मौंजीबंधनकर्म वै ॥ कारयित्वा धनुर्वेदमध्यापयत पार्थिवः ॥ ५ ॥ अधीतवेदं पुत्रं तं राजधर्मविशारदम् ॥ दृष्ट्वा तस्याभिषेकाय मतिं चक्रे जनाधिपः ॥ ६ ॥ पुष्यार्कयोगसंयुक्तदिवसे नृपसत्तमः ॥ कारयामास संभारानभिषेकार्थमादरात् ॥ ७ ॥ द्विजानाहूय वेदज्ञान्सर्वशास्त्रविचक्षणान् ॥ अभिषेकं चकारासौ विधिवत्स्वात्मजस्य ह ॥ ८ ॥ जलमानीय तीर्थेभ्यः सागरेभ्यश्च पार्थिवः ॥ स्वयं चकार विधिवदभिषेकं शुभे दिने ॥ ९ ॥ धनं दत्त्वाऽथ विप्रेभ्यो राज्यं पुत्रे निवेश्य सः ॥ जगाम वनमेवाशु स्वर्गकामः स भूपतिः ॥ १० ॥ एकवीरं नृपं कृत्वा संमान्य सचिवानथ ॥ भार्यया सह भूपालः प्रविवेश वनं वशी ॥ ११ ॥ मैनाकशिखरे राजा कृत्वा तार्तीयमाश्रमम् ॥ नित्यं पत्रफलाहारश्चिंतयामास पार्वतीम् ॥ १२ ॥ एवं स नृपतिः कृत्वाः दिष्टांते सह भार्यया ॥ मृतोऽसौ वासवं लोकं गतः पुण्येन कर्मणा ॥ १३ ॥

प्रवृत्त हुए ॥ ८ ॥ तीर्थ और सागरसे जल मँगाय शुभ दिनमें राजाने स्वयंही पुत्रकी अभिषेकक्रिया संपादन की ॥ ९ ॥ अभिषेकके समाप्त होनेपर शीघ्रही वह राजा ब्राह्मणगणोंको भूरि भूरि धनदानपूर्वक पुत्रको राज्यभार दे स्वर्गप्राप्ति की इच्छासे वनको चले गये ॥ १० ॥ नृपति तुर्वसुने एक वीरको राजासनपर बैठाय मंत्रीगणों का सन्मान कर संयतेन्द्रिय हो भार्याके सहित वनमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥ अनन्तर वह मैनाक पर्वतके शिखरमें तृतीयाश्रम (वानप्रस्थ धर्म) अवलम्बनपूर्वक प्रतिदिन पत्ते और फलादिक आहार कर पार्वतीका ध्यानकरने लगे ॥ १२ ॥ इसप्रकार उनके प्रारब्धकर्मका अवसान होनेपर वह भार्याके सहित मृत्युको प्राप्त हो पुण्यकर्मद्वारा इन्द्रलोकको गये ॥ १३ ॥

राजाको स्वर्ग गया सुनकर एकवीर हैयहने उनकी वेदनिर्दिष्ट और्ध्वदेहकी क्रिया सम्पादनकी ॥ १४ ॥ राजपुत्र बुद्धिमान् हैहय पिताकी संपूर्ण उत्तर क्रियाओंका अनुष्ठान कर पिताका दिया निष्कण्टक राज्य पालन करने लगा ॥ १५ ॥ धर्मात्मा राजा एकवीर राज्य प्राप्त होनेके अनन्तर मंत्रीगणोंके विचारसे अनेक उत्तम २ भोग द्रव्योंके संभोग करने लगा ॥ १६ ॥ वह प्रतापवान् नरपति एकदिन घोडेपर चढ मन्त्रीके पुत्रोंके सहित गंगाके तटपर गया ॥ १७ ॥ वहां विचरण करते करते उसने देखा कि कोकिलाओंकी मधुरध्वनिसे युक्त भौरोंकी मनोहर गुंजारसे झांकारित फलपुष्पोंसे शोभित वृक्षमाला मनोहर शोभा धारण कर रही है ॥ १८ ॥ समीपही मुनियोंके दिव्य आश्रमोंमें वेदकी ध्वनि हो रही है आकाशमें होमका धुआं छा रहा है मृगोंके बच्चे

इंद्रलोकं पिता प्राप्त इति श्रुत्वाऽथ हैहयः ॥ चकार वेदनिर्दिष्टं कर्म चैवौर्ध्वदेहिकम् ॥ १४ ॥ कृत्वोत्तराः क्रियाः सर्वाः पितुः पार्थिव नंदनः ॥ राज्यं चकार मेधावी पित्रा दत्तं सुसंमतम् ॥ १५ ॥ एकवीरोऽथ धर्मज्ञः प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ॥ बुभुजे विविधान्भोगान्स चिवैश्च सुमानितः ॥ १६ ॥ एकस्मिन्दिवसे राजा मंत्रिपुत्रैः समन्वितः ॥ जगाम जाह्नवीतीरे हयारूढः प्रतापवान् ॥ १७ ॥ संपश्य न्पादपान्रम्यान्कोकिलालापसंश्रुतान् ॥ पुष्पितान्फलसंयुक्तान्षट्ट पदालिविराजितान् ॥ १८ ॥ मुनीनामाश्रमान्दिव्यान्वेदध्वनिनिना दितान् ॥ होमधूमावृताकाशान्मृगशावसमावृतान् ॥ १९ ॥ केदाराच्छालिसंपक्वान्गोपिकाभिः सुरक्षितान् ॥ प्रफुल्लपंकजारामान्निकुंजांश्च मनोरमान् ॥ २० ॥ प्रेक्षप्राणः प्रियालांस्तु चंपकान्पनसद्रुमान् ॥ बकुलांस्तिलकान्नीपान्मंदारांश्च प्रफुल्लि तान् ॥ २१ ॥ शालांस्ता लांस्तमालांश्च जंबूचूतकदंबकान् ॥ स गच्छञ्जाह्नवी तोये प्रफुल्लं शतपत्रकम् ॥ २२ ॥ पंकजंचातिगंधाढ्यमपश्य दवनीपतिः ॥ दक्षिणे जलजस्याथ पार्श्वे कमललोचनाम् ॥२३॥ कनकाभां सुकेशीं च कंबुग्रीवां कृशोदरीम् ॥ बिंबोष्ठीं सुंदरीं किंचित्समुद्य सुपयोधराम् ॥२४॥

फिर रहे हैं ॥ १९ ॥ क्षेत्र क्यारियोंमें पके धान खडे हैं गोपी उनकी रक्षा करती हैं खिले कमलवाले सरोवरों युक्त बगीचे मनोहर निकुंजोंमें ॥ २० ॥ देखनेवालोंका मन हर जाता है प्रियाल, चम्पक, पनस, बकुल, तिलक, नीप, फूलेमंदार ॥ २१ ॥ शाल, ताल, जामन आम, कदम्ब देखता हुआ गंगा जलमें सौ पखुरीवाले फूले कमलको ॥ २२ ॥ जिसमें बडी गंध आती थी राजाने देखा और इस कमलके दक्षिणपार्श्वमें एक परम मनोहर कमललोचना ॥ २३ ॥ कन्याको देखा उसके अङ्गकी प्रभा सुवर्णके समान सुशोभित केशकलाप आकुंचित और दीर्घ ग्रीवा कम्बुके समान, उदर कृश ओष्ठ बिम्बके फलके समान मनोहर, संपूर्ण अङ्ग सौंदर्य संपन्न सुगठित स्तन कुछेक उठे हुए ॥ २४ ॥

नासिका मनोहर और सर्वाङ्ग अत्यन्त सुन्दर उस मुकुलित यौवना कामिनीको अपनी सखियोंके विरहजनित दुःखसे कातर ॥ २५ ॥ और विह्वल हुई निर्जनमें कुररीके समान रोदन करते देखकर राजाने उससे शोकका कारण पूंछकर कहा ॥ २६ ॥ हे सुनासिके ! तुम कौन हो, हे सुमुखी ! तुप किसकी पुत्री हो गंधर्वी वा देवकन्या कौन हो जो अकेली रोती है ॥ २७ ॥ हे कोकिलकण्ठि ! तुम बाला हो तुमको अकेला किसने छोड़ दिया है, हे प्रियदर्शने ! इस समय तुम्हारे पति अथवा पिता कहां चलेगये तुम मुझसे कहो ॥ २८ ॥ हे कुटिलनयने ! तुमको क्या दुःख है इस समय वह मुझसे कहो हे कृशोदरि ! मैं भली प्रकार तुम्हारा दुःखनष्ट करूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ हे चारुसर्वाङ्गि ! मेरे राज्यमें कोई किसीको पीड़ा नहीं देता हे सुदर्शने ! मेरे

सुनासः चारुसर्वांगीमपश्यत्कन्यकां नृपः ॥रुदतीं तां सखीं त्यक्त्वा विह्वलां दुःखपीडिताम् ॥ २५ ॥ सा श्रुनेत्रां क्रंदमानां विजने कुररीमिव ॥ संवीक्ष्य राजा पप्रच्छ कन्यकां शोककारणम् ॥ २६ ॥ सुनसे ब्रूहि काऽसि त्वं कस्य पुत्री शुभानने ॥ गंधर्वी देवकन्याथ कथं रोदिषि सुंदरि ॥ २७ ॥ कथमेकानिनी बाले त्यक्ता केन पिकस्वरे ॥ पतिस्ते क्व गतः कांते पिता वा ब्रूहि सांप्रतम् ॥ २८ ॥ किं ते दुःखमरालभ्रु कथयाद्य ममांतिके ॥ करोमि दुःखनाशं ते सर्वथैव कृशोदरि ॥ २९ ॥ न राज्ये मम तन्वंगि पीडां कोऽपिकरोत्यलम् ॥ न भयं चौरजम् कांते न राक्षसभयं तथा ॥ ३० ॥ मयि शासति भूपाले नोत्पाता दारुणाभुवि ॥ भयं व्याघ्रसिंहेभ्यो न भयं कस्यचिद्भवेत् ॥ ३१ ॥वद वामोरु यस्मात्त्वं विलापं जाह्नवीतटे ॥ करोषि त्राणहीनाऽत्रकिं ते दुःख वदस्व मे ॥ ३२ ॥ हन्म्यहं दुःखमत्युग्रं प्राणिनां पृथिवीतले ॥ दैवं च मानुषं कांते व्रतमेतन्ममाद्भुतम् ॥ ३३ ॥ विशाललोचने ब्रूहि करोमि तव चिंतितम् ॥ इत्युक्ते वचने राज्ञा श्रुत्वोवाच मृदुस्वना ॥ ३४ ॥

राज्यमें चोरभय वा राक्षसभय कुछभी नहीं है ॥ ३० ॥ मेरे शासन समयमें पृथ्वीपर उत्पात और सिंहभय अथवा व्याघ्रभय इत्यादि किसी प्रकार के भयकी सम्भावना नहीं ॥ ३१ ॥ हे वामोरु ! तुम गंगाके निर्जन तटपर रक्षक विहीन अकेली विलाप करती हो तुमको क्या दुख है वह मुझसे कहो ॥ ३२ ॥ हे विमले ! मैं पृथ्वीमें प्राणीगणोंके देव अथवा मनुष्यजात दोनों प्रकारके दुःख अत्यन्त उग्रतर होनेपर भी दूर कर सकताहूं यही मेरा प्रधान व्रत है ॥ ३३ ॥ हे आयतनेत्रे ! तुम्हारे मनमें क्या इच्छा है कहो इस समय वही करूंगा राजाके इस प्रकार कहने पर फिर वह मनोरमा कामिनी मृदुस्वरसे कहने लगी ॥ ३४ ॥

हे राजन् मैं शोकका कारण कहती हूं सुनो हे भूपते ! प्राणीगणोंको विपत्ति उपस्थित न होनेसे वह व्यर्थ क्यों रोवेंगे ॥ ३५ ॥ हे महाबाहो ! मैं जिस कारण रोदन करती हूं वह इस समय कहती हूं हे महाराज ! आपके देशसे अन्यतर देशमें ॥ ३६ ॥ रम्यनामक परमधार्मिक एक राजा प्रथम निःसन्तान थे रुक्मरेखा नामक उनकी परम सुन्दरी भार्या थी ॥ ३७ ॥ वह चतुर साध्वी और सर्व्वसुलक्षण युक्त थी किंतु पुत्रहीन होनेसे दुःखसे दुःखित हो अपने पति रम्यराजाके प्रति कातरस्वरसे कहने लगी ॥ ३८ ॥ हे नाथ ! मैं पुत्रहीन हूं इस कारण मेरे मनमें कुछ भी सुख नहीं है पृथ्वीमें मेरा जीवन वृथा है इस जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ३९ ॥ राजमहिषीके दुःखित चित्तसे इस प्रकार कहने पर राजाने वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाय विधिपूर्वक

शृणु राजेंद्र वक्ष्यामि मम शोकस्य कारणम् ॥ विपत्तिरहितः प्राणी कथं रुदति भूपते ॥३५॥ प्रब्रवीमि महाबाहो यदर्थं रुदती त्वहम् ॥ तव राज्यादन्यदेशे राजा परमधार्मिकः ॥ ३६ ॥ रैभ्यो नाम महाराजः संतानरहितो भृशम् ॥ तस्य भार्या सुविख्याता रुक्मरेखेति नामतः ॥ ३७ ॥ सुरूपा चतुरा साध्वी सर्वलक्षण संयुता ॥ अपुत्रा दुःखिता कांतमित्युवाच पुनः पुनः ॥३८॥ किं जीवितेन मे नाथ धिग्वृथा जीवितं मम ॥ वंध्यायाः सुखहीनाया ह्यपुत्राया धरातले ॥ ३९ ॥ इत्येवं भार्यया भूपः प्रेरितो मखमुत्तमम् ॥ चकार ब्राह्मणां स्तज्ज्ञानाहूय विधिवत्तदा ॥ ४० ॥ पुत्र कामो धनं भूरि ददावथ यथोदितम् ॥ हूयमाने घृतेऽत्यर्थं पावकादतिसुप्रभात् ॥ ४१ ॥ आविर्बभूव चार्वंगी कन्यका शुभलक्षणा ॥ बिंबोष्ठी सुदती सुभ्रूः पूर्ण चंद्रनिभानना ॥४२॥ कनकाभा सुकेशांता रक्तपाणितला मृदुः ॥ सुरक्तनयना तन्वी रक्तपादतला भृशम् ॥ ४३ ॥ हुताशनात्समुद्भूता होत्रा सा स्वीकृता तदा ॥ होता प्रोवाच राजानं गृहीत्वा तां सुमध्यमाम् ॥ ४४ ॥

उत्तमयज्ञ आरम्भ किया ॥ ४० ॥ उन्होंने पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे शास्त्रमें कहे हुए अनेकानेक द्रव्य दिये जब अनेकानेक घृतराशिकी आहुति दी जाने लगी तब उस प्रदीप्त अग्निसे सर्वाङ्गसुन्दरी सर्वसुलक्षण युक्त एक कन्या प्रगट हुई ॥ ४१ ॥ उस कन्याके दाँतोंकी पंक्ति अत्यंत मनोहर दोनों भौंये अति शोभायमान मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान बिम्बासे होठ ॥ ४२ ॥ अंग प्रभा कनकके समान मनोहर, केश सूक्ष्म और घुंघराले, कर और चरण लाल वर्ण, दोनों नेत्र लालकमलके समान और सम्पूर्ण अंगप्रत्यंग अत्यन्त कोमल थे ॥ ४३ ॥ अग्निसे उत्पन्न होनेपर होताने उस सुमध्यमा क्षीणांगी कन्याको दोनों हाथोंमें लेकर राजासे कहा " ४४ ॥

हे राजन् ! इस सर्वसुलक्षण कन्याको ग्रहण करो होमके समय अग्निने एकावली मालाके समान उत्पन्न हुई है ॥ ४५ ॥ अतएव यह कन्या पृथ्वीमें एकावली नामसे विख्यात होगी । हे पृथ्वीपालक ! इस पुत्रके समान सुलक्षण कन्याको ग्रहणकर आप सुखी हूजिये ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र ! देव देव विष्णुने आपको यह कन्यारत्न दिया है इससे आप संतोष प्राप्त कीजिये राजाने होताका वचन सुन इस शोभायमान कन्याको देखकर ॥ ४७ ॥ प्रसन्नचित्त हो उसके हाथसे उस मनोहर कन्याको ले लिया अनंतर उस वरानना कन्याको लेकर अपनी स्त्री देवी रुक्मरेखाके निकट जाकर कहा ॥ ४८ ॥ हे सुभगे ! इस कन्याको ग्रहणकर राज्ञी रुक्मरेखाके उस कमलके समान नेत्रोंवाली मनोरमा कन्याको ले ॥ ४९ ॥ पुत्रप्राप्तिके समान सुख अनुभव करने लगी अनंतर

राजन्पुत्रीं गृहाणेमां सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ एकावलीव संभूता हूयमानाद्धुताशनात् ॥ ४५ ॥ नाम्ना चैकावली लोके ख्याता पुत्री भविष्यति ॥ सुखितो भव भूपाल पुत्र्या पुत्रसमानया ॥ ४६ ॥ संतोषं कुरु राजेंद्र दत्ता देवेन विष्णुना ॥ होतुर्वाक्यं नृपः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कन्यकां शुभाम् ॥ ४७ ॥ जग्राह परमप्रीतो होत्रा दत्तां सुसंमताम् ॥ गृहीत्वा नृपतिस्तां तु ददौ पत्न्यै वराननाम् ॥ ४८ ॥ आभाष्य रुक्मरेखायै गृहाण सुभगे सुतम् ॥ सा तां कमल पत्राक्षीं प्राप्य कन्यां मनोरमाम् ॥४९॥ जहर्ष मुदिता राज्ञी पुत्रं प्राप्य यथासुखम् ॥ चकार मङ्गलं कर्म जातकर्मादिकं शुभम् ॥ ५० ॥ पुत्रजन्म समुत्थं यत्तत्सर्वं विधिवत्ततः ॥ समाप्य च मखं राजा द्विजेभ्यो दक्षिणां शुभाम् ॥ ५१ ॥ दत्त्वा विसृज्य विप्रेंद्रान्मुदं प्राप महीपतिः ॥ दिनेदिनेऽसि तापांगी पुत्रवृद्ध्या भृशं बभौ ॥ ५२ ॥ मुदं च परमां प्राप नृपभार्या सुतान्विता ॥ उत्सवस्तद्दिने तस्य प्रवृत्तः सुतजन्मजः ॥ ५३ ॥ पुत्री पुत्रसमाऽत्यर्थं बभूव वल्लभा किल ॥ राज्ञो मंत्रिसुता चाहं सुबुद्धे मन्मथाकृते ॥ ५४ ॥

राजाने कन्याके जातकर्मादि मंगलकारी सम्पूर्ण कर्म्म ॥ ५० ॥ औरस पुत्र जन्मके समान किये राजा अपना यज्ञ समाप्त कर ब्राह्मणोंको अनेक दक्षिणा ॥ ५१ ॥ प्रदानपूर्वक बिदाकर अत्यंत आनंदित हुए वह असितापांगी कन्या पुत्रवत् वृद्धिको प्राप्त हो लालित और पालित हुई दिनदिन बढने लगी ॥ ५२ ॥ राजाकी स्त्री रुक्मरेखा उस कन्याको प्राप्तकर अत्यंत प्रसन्न हुई, उस दिनही पुत्रजन्मोत्सवके समान उत्सव आरम्भ हुआ ॥ ५३ ॥ वह कन्या पुत्रके समान अत्यंत प्रिय हो बढ़ने लगी और सबकी प्रिय हुई हेमन्मथ मूर्ते ! आप राजा और अत्यंत बुद्धिमान् हैं मैं आपके समीप सम्पूर्ण वृत्तांत निवेदन करूंगी श्रवण कीजिये मैं उसी राजाके मंत्रीकी कन्या हूं ॥ ५४ ॥

और मेरा नाम यशोवती है वह एकावली और मैं समानरूप और समान वयसवाली थी. अतएव राजाने क्रीडाके निमित्त मुझको उसकी वयस्या सखी बना दिया था ॥ ५५ ॥ मैं दिनरात उसकी प्रियसखी हो समय व्यतीत करती थी एकावली जिस स्थानमें गन्धयुक्त, कमलको देखती ॥ ५६ ॥ उसी स्थानमें रहना और क्रीडा करना अच्छा समझती अन्य कहीं उसको सुख प्राप्त नहीं होता दूरस्थित गंगाके तटपर अनेक कमल उत्पन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ एकावली मेरे और अन्यान्य सखियोंके सहित प्रसन्नतापूर्वक वहां जाती मैंने एक दिन राजासे कहा हे राजन् ! आपकी एकावली प्रतिदिन ॥ ५८ ॥ दूर निर्ज्जन वनमें कमल सरोवर देखनेको जाती है अनंतर राजाने उसको निषेध किया और अपने घरमें जलाशय बनाय उसमें अनेक कमलिनी आरोपित की

यशोवती च ये नाम समानं वय आवयोः ॥ वयस्याऽहं कृता राज्ञ क्रीडनाय तया सह ॥ ५५ ॥ सदा सहचरी जाता प्रेमयुक्ता दिवा निशम् ॥ एकावली गंधवंति यत्र पद्मानि पश्यति ॥ ५६ ॥ तत्र सा रमते बाला नान्यत्र सुखमाप्नुयात् ॥ सुदूरे जाह्नवीतीरे भवंति कम लान्यपि ॥ ५७ ॥ रममाणा तत्र याता मत्समेता सखी युता ॥ मया निवेदितं राजन्पुत्री ते कमलाकरान् ॥ ५८ ॥ प्रेक्षमाणाऽतिदूरे सा प्रयाति निर्जने वने ॥ निषेधिताऽथ पित्राऽसौ गृहे कृत्वा जला शयान् ॥ ५९ ॥ कमलान्वापयित्वाऽथ पुष्पितान्भ्रमरावृतान् ॥ तथाऽपि निर्ययौ बाला कमलासक्तचेतना ॥ ६० ॥ तदा राज्ञा रक्ष पालाः प्रेरिताः शस्त्रपाणयः ॥ एवं रक्षायुता तन्वी मत्समेता सखी युता ॥ ६१ ॥ क्रीडार्थं जाह्नवीतोये नित्यमायाति याति च ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ यशोवत्युवाच ॥ प्रातरुत्थाय तन्वंगी चलिता च सखीयुता ॥ चामरैर्वीज्यमाना सा रक्षिता बहुरक्षिभिः ॥ १ ॥ सायुधैश्चातिसन्नद्धैः सहिता वरवर्णिनी ॥ क्रीडार्थमत्र राजेंद्र संप्राप्ता नलिनीं शुभाम् ॥ २ ॥

॥ ५९ ॥ क्रमानुसार जब उसमें सम्पूर्ण कमल खिले तब सब भ्रमरगण आय उसमें मधुपान करने लगे तथापि वह कमलप्राप्त होनेकी इच्छासे बाहर जाने लगी ॥ ६० ॥ तब राजा उसके संग संपूर्ण शस्त्रधारी रक्षकगण भेजने लगे वह कृशांगी नृपनंदिनी रक्षकगणसे रहित हो और अन्यान्य सखियोंके सहित ॥ ६१ ॥ क्रीड़ाके निमित्त गंगाके जलमें प्रतिदिन आती फिर क्रीडा समाप्त होनेपर घरको जाती ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ यशोवतीने कहा हे राजेन्द्र ! एकदिन एकावली प्रातःकालके समय उठकर सखियोंके सहित गंगातटको चली सखियें उसका चंवर व्यजन करने लगीं ॥ १ ॥ रक्षकगण वस्त्रपहन भांतिभांति अस्त्रशस्त्र ग्रहणकर उसके संग संग गये क्रमानुसार वह क्रीडा करनेके लिये इस स्थानमें

शोभायमान कमलोंके निकट उपस्थित हुई ॥२॥ मैं भी उसके संग कमल लेकर खेलते खेलते गंगातटपर आई और दोनों जनी अप्सराओंके सहित कमल लेकर क्रीडा करनेलगी ॥ ३ ॥ जब हम दोनों क्रीड़ामें अत्यन्त आसक्त हुई तब कालकेतुनामक विख्यात एक बलवान् दानव परिघ असि गदा चाप बाण और तोमर ॥ ४ ॥ इत्यादि अस्त्रधारी अनेकराक्षसोंके सहित सहसा उस स्थानमें आकर उपस्थित हुआ ॥ ५ ॥ एकावली उत्तम उत्तम कमल लेकर क्रीड़ा कर रही थी इसी समयमें कालकेतुने उसको इस प्रकार रूपयौवन सम्पन्न कामदेवकी रतिके समान देखा ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मैंने तब एकावलीसे कहा देखो यह एक कौन दैत्य आकर उपस्थित हुआ हे अम्बुजेक्षणे ! इस समय चलो हम रक्षकगणोंके मध्यस्थलमें प्रवेश करें ॥ ७ ॥ हे नृपनन्दन ! तब सखी

अहमप्यनया सार्धं गंगातीरे समागता ॥ अप्सरोभिः समेता च कमलैः क्रीडमानया ॥ ३ ॥ एकावली तथा चाहं जाते क्रीडापरे यदा ॥ सहसैव तदाऽयातो दानवो बलसंयुतः ॥ ४ ॥ कालकेतुरिति ख्यातो राक्षसैर्बहुभिर्युतः ॥ परिघासि गदाचापबाणतोमरपाणिभिः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा चैकावली तेन रूपयौवनशालिनी ॥ द्वितीया कामपत्नीव क्रीडमाना सुपंकजैः ॥६॥ मयोक्तैकावली राजन्कोऽयं दैत्यः समागतः ॥ गच्छावो रक्षपालानांमध्ये पंकजलोचने ॥७॥ विमृश्यैवं सखी चाहं त्वरयैव गते भयात् ॥ मध्ये वै सैनिकानां तु सायुधानां नृपात्मज ॥ ८ ॥ काल केतुस्तु तां दृष्ट्वा मोहिनीं मदनातुरः ॥ गदां गुर्वीं गृहीत्वा तु धावमानः समागतः ॥ ९ ॥ रक्षकान्दूरतः कृत्वा जग्राहांबुजलोचनाम् ॥ त्रस्तां वेपथुसंयुक्तां क्रंदमानां कृशोदरीम् ॥ १० ॥ त्यजैनां मां गृहाणेति मया चोक्तोऽपि दानवः ॥ न मां जग्राह कामार्तस्तां गृहीत्वा विनिःसृतः ॥ ११ ॥ तिष्ठ तिष्ठेति भाषंतो रक्षकास्तं महाबलम् ॥ प्रतिषिध्य तु संग्रामं चक्रुर्विस्मयकारकम् ॥ १२ ॥

और मैं दोनों इस प्रकार परामर्श कर भयसे तत्काल अस्त्रधारी रक्षकगणोंके मध्यभागमें गई ॥ ८ ॥ कालकेतु उस मनोमोहिनी तरुणी कामिनीको देखतेही कामबाणसे पीडित हो गुर्वी गदा ग्रहण पूर्वक शीघ्रतासहित हमारे सामने आकर उपस्थित हुआ ॥ ९ ॥ और रक्षकगणोंको अलग करके उस कमलके समान नेत्रोंवाली कृशोदरी सखीको पकड़ लिया तब वह बाला भयसे कांपते कांपते रोने लगी ॥ १० ॥ उसको देखकर मैंने उस दानवसे कहा इसे छोड़ मुझको पकड़ वह कामार्त्त दानव मुझको छोड़ सखीको लेजाने लगा ॥ ११ ॥ रक्षकगण "ठहर ठहर कन्याको लेकर मत भाग तुझको विलक्षण शिक्षा देते हैं" यह कह उस महाबली दानवको लौटाकर उसके संघ घोरतर आश्चर्ययुक्त संग्राममें प्रवृत्त हुए ॥ १२ ॥

उसके समान बलयुक्त क्रूरतर संपूर्ण राक्षससेना स्वामीका कार्य साधनकरनेको उत्साहित हो रक्षकगणोंके सहित युद्ध करनेलगी ॥ १३ ॥ महाबल कालकेतु फिर स्वयंभी उस भीषण संग्राममें प्रवृत्त हो रक्षकगणोंको रणस्थलमें मार सखीको ले राक्षस सैन्यगणोंके सहित अपने नगरको जानेलगा ॥ १४ ॥ उस बालाको दानवसे पकड़ा हुआ भयसे रोतेहुए देख मैं भी सखीके पीछेपीछे जाने लगी ॥ १५ ॥ जिससे वह मुझको देखसके ऐसे मार्गसे चीत्कार करती हुई कांपतेकांपते चलने लगी ॥ १६ ॥ सखीभी मुझको देखकर कुछेक स्वस्थ हुई मैं फिर उसके समीप पुकारते पुकारते गई ॥ १७ ॥ सखी अत्यंत दुःखसे कातर हुई थी मुझको निकट देख स्तम्भित और स्वेदजलमें प्लुवित हो मेरा कण्ठ पकड अधिकतर दुःखित हो रोनेलगी ॥ १८ ॥ तब कालकेतु मेरे प्रति

तस्यापि राक्षसाः क्रूराः सर्वत शस्त्र पाणयः ॥ युयुधू रक्षकैः सार्धं स्वामिकार्यै कृतोद्यमाः ॥ १३ ॥ संग्रामस्तु तदा जातः कालकेतो स्तथा रणे ॥ निहत्य रक्षकान्सर्वान्गृहीत्वैनां महाबलः ॥ १४ ॥ युक्तो राक्षससैन्येन निर्जगाम पुरं प्रति ॥ वीक्ष्य तां रुदतीं बालां गृहीतां दानवेन तु ॥ १५ ॥ पृष्ठतोऽहं गता तत्र यत्र नीता सखी मम ॥ विक्रोशंती यथा सा मां पश्येदिति पदानुगा ॥ १६ ॥ साऽपि मामागतां वीक्ष्य किंचित्स्वस्थाऽभवत्तदा ॥ गताऽहं तत्समीपे तु तामाभाष्य पुनः पुनः ॥ १७ ॥ सा मां प्राप्यातिदुःखार्ता स्तंभस्वेद समाकुला ॥ कंठे गृहीत्वा मां भूप रुरोद भृशदुःखिता ॥ १८ ॥ स मामाह कालकेतुः प्रीतिपूर्वमिदं वचः ॥ समाश्वासय भीतां त्वं सखीं चंचललोचनाम् ॥ १९ ॥ प्राप्तं मामाद्य नगरं देवलोकसमं प्रिये ॥ दासोऽस्मि तव रत्या हि कस्मात्क्रंदसि कातरा ॥ २० ॥ कथयैतां सखीं तेऽद्य स्वस्था भव सुलोचने ॥ इत्यु क्त्वा मां सखीपार्श्वे समारोप्य रथोत्तमे ॥ २१ ॥ जगाम तरसा दुष्टः पुरे स्वस्य मनोहरे ॥ सैन्येन महता युक्तः प्रफुल्लवदनांबुजः ॥ २२ ॥

प्रीति प्रकाशकर कहने लगा कि तुम्हारी यह चञ्चलनेत्रोंवाली सखी अत्यन्त डरी है तुम इसको समझाओ ॥ १९ ॥ हे प्रिये ! मेरी नगरी देवलोकके समान है उसमें तुम अभी चलोगी और मैं भी अभीसे तुम्हारी प्रणयमें बंधकर तुम्हारा दास हुआ तुम कातर होकर रोओ मत सावधान हो ॥ २० ॥ हे सुलोचने ! मेरे इस वचनसे समझा कर तुम प्रियसखीसे कहो यह कहकर उस दुष्टने मुझको उस मनोहर रथमें चढ़ाय ॥ २१ ॥ अपने पार्श्वमें बैठाय महासेनाके सहित प्रफुल्लमुखसे अपने मनोहर पुरमें शीघ्र गमन किया ॥ २२ ॥

अनंतर दोनों सखियोंको सुधाधवलित मनोहर घरमें रखकर हमारे रक्षाके निमित्त करोड़ करोड़ राक्षस नियुक्त कर दिये ॥ २३ ॥ दूसरे दिन उस दैत्यने मुझसे निर्ज्जनमें पुकारकर कहा तुम्हारी सखी पिता माताके विरहसे अत्यंत कातर होकर शोक करती है तुम इसको समझाकर सावधान करो ॥ २४ ॥ हे सुश्रोणि ! तुम पत्नी होकर यथाभिलाष सुख भोग करो, हे चन्द्रानने ! यह राज्य तुम्हाराही है और मैं तुम्हारा निरन्तर दास हूं मेरे इन सब वचनोंसे अपनी सखीको समझा दो ॥ २५ ॥ मैंने उसके यह सुननेके अयोग्य कर्कश वचन सुनकर कहा हे प्रभो ! मैं इससे अप्रिय वचन नहीं कह सकती, तुम स्वयंही उससे समझाकर कहो ॥ २६ ॥ मेरे इस प्रकार कहने पर फिर दुष्ट दानवने कामबाणसे व्याकुलचित्त हो उस कृशोदरी प्रियसखीसे विनयवचनद्वारा कहा

एकावलीं तथा मां च संस्थाप्य धवले गृहे ॥ राक्षसान्गृहरक्षार्थं कल्पयामास कोटिशः ॥ २३ ॥ द्वितीये दिवसे सोऽथ मामुवाच रहो नृपः ॥ प्रबोधय सखीं बालां शोचंतीं विरहातुराम् ॥ २४ ॥ पत्नी मे भव सुश्रोणि सुखं भुंक्ष्व यथेप्सितम् ॥ राज्यं त्वदीयं चंद्रास्ये सेवकोऽहं सदा तव ॥ २५ ॥ पुनरुक्तं मया वाक्यं श्रुत्वा तद्भाषितं खरम् ॥ नाऽहं क्षमाऽप्रियं वक्तुं त्वमेनां कथय प्रभो ॥ २६ ॥ इत्युक्ते वचने दुष्टो मदनक्षतमानसः ॥ उवाच विनयादेनां सखीं क्षामोदरीं प्रियाम् ॥ २७ ॥ कृशोदरि त्वया मंत्रो निक्षिप्तोऽस्ति ममोपरि ॥ तेन मे हृदयं कांते हृतं ते वशतां गतम् ॥ २८ ॥ तेनाहं तव दासोऽद्य कृतोऽस्मीति विनिश्चयः ॥ भज मां कामबाणेन पीडितं विवशं भृशम् ॥ २९ ॥ यौवनं याति रंभोरु चंचलं दुर्लभं तथा ॥ सफलं कुरु कल्याणि पतिं मां परिरभ्य च ॥३०॥ एकावल्युवाच ॥ पित्राऽहं कल्पिता पूर्वं दातुं राजसुताय वै ॥ हैहयस्तु महाभाग स मया मनसा वृतः ॥ ३१ ॥ कथमन्यं भजे कांतं त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥ कन्याधर्मं विहायाद्य वेत्सि शास्त्रविनिश्चयम् ॥ ३२ ॥

॥ २७ ॥ हे प्रिये ! तुमने इस समय मुझपर वशीकरण मंत्रका प्रयोग किया है, हे कान्ते ! इसी कारण मेरा हृदय तुम्हारे एकांतवशीभूत हुआ है ॥ २८ ॥ इससेही मुझको तुम्हारे दासत्वमें बद्ध किया है । मैं भी तुम्हारा दास हुआ यह मेरा स्थिर निश्चय जानो हे प्रेयसि ! अब मैं मन्मथशरसे अत्यन्त पीडित और विवश हो गया हूँ अतएव हे कृशोदरि ! तुम इस समय मुझको भजो ॥ २९ ॥ हे रम्भोरु ! यौवन अत्यन्त दुर्लभ और चञ्चल वस्तु है हे कल्याणि ! तुम अब मुझको पतिभावसे आलिङ्गन करके उसको सफल करो ॥ ३० ॥ एकावलीने कहा हे महाभाग ! पहले राजाने मुझे एक राजाके पुत्रको देनेकी कल्पना की थी मैंने भी उस हैहय राजाको पतिरूपमें वरण किया है ॥ ३१ ॥ आप भी तो शास्त्रके निश्चयको जानते हैं इस समय मैं सनातन धर्म और

कन्या धर्मत्यागकर किस प्रकार दूसरे पतिको आलिङ्गन करूं ॥ ३२ ॥ पिता जिसको दान करते हैं कन्या उसीको पतिरूप में ग्रहण करती है कन्या सर्व दाही पराधीन है वह कभी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सकती ॥ ३३ ॥ एकावलीके इस प्रकार कहनेपर भी वह पापिष्ठ दैत्य कामबाणसे मोहित हो शान्त नहीं हुआ और उस विशालाक्षी सखीको तथा उसके पास बैठनेवाली मुझको भी न छोडा ॥ ३४ ॥ उसका पुरपाताल विवरके मध्यमें अत्यन्त संकटस्थानमें अधिष्ठित है, सदा राक्षसगण उनकी रक्षा करते हैं परिखा (खाई) से युक्त मनोहर मार्ग बना है ॥ ३५ ॥ मेरी प्राणवल्लभा प्रियसखी उसी स्थानमें दुःखित चित्तसे वास करती है मैं इस स्थानमें उसके विरहदुःखसे अत्यन्त कातर और स्थिर होकर फिरती हूं ॥ ३६ ॥ एकवीरने कहा हे वरानने ! तुम उस

यस्मै दद्यात्पिता कामं कन्या तं पतिमाप्नुयात् ॥ परतंत्रा सदा कन्या न स्वातंत्र्यं कदाचन ॥ ३३ ॥ इत्युक्तोऽपि तया पापी विरराम न मोहितः ॥ न मुमोच विशालाक्षीं मां च पार्श्वस्थितां तथा ॥ ३४ ॥ पातालविवरे तस्य पुरं परमसंकटे ॥ राक्षसै रक्षितं दुर्गं मंडितं परिखावृतम् ॥ ३५ ॥ तत्र तिष्ठति दुःखार्ता सखी मे प्राणवल्लभा ॥ तेनाहं विरहेणात्र रारटीमि सुदुःखिता ॥ ३६ ॥ एकवीर उवाच ॥ कथं त्वमत्र संप्राप्ता पुरात्तस्य दुरात्मनः ॥ विस्मयो मे महानत्र तत्त्वं ब्रूहि वरानने ॥ ३७ ॥ त्वया च कथितं वाक्यं संदिग्धं भाति भामिनि ॥ हैहयार्थे कल्पिता सा पित्रेति मम सांप्रतम् ॥ ३८ ॥ हैहयो नाम राजाऽहं नान्योऽस्ति पृथिवीपतिः ॥ मदर्थे कथिता सा किं सखी तव सुलोचना ॥ ३९ ॥ एतन्मे संशयं सुभ्रु च्छेत्तुमर्हसि भामिनि ॥ अहं तामानयिष्यामि तं हत्वा राक्षसाधमम् ॥ ४० ॥ स्थानं दर्शय मे तस्य यदि जानासि सुव्रते ॥ राज्ञे निवेदितं किं वा तत्पित्रे चातिदुःखिता ॥ ४१ ॥

दुरात्माके पुरसे इस स्थानमें किस प्रकार आई इस विषयमें मुझको महान् आश्चर्य उत्पन्न होता है तुम मुझसे शीघ्र इसका कारण कहो ॥ ३७ ॥ हे भामिनि ! तुम जो कुछ कहती हो उससे मुझको संसय उत्पन्न होता है तुम्हरी प्रियसखी इसके पिताने हैहयके हाथमें समर्पण करनेके निमित्त स्थिर कर रखा है ॥ ३८ ॥ मेरा ही नाम हैहय और मैं ही हैहय नामक राजा हूँ इस समय पृथ्वीमें हैहय नामक दूसरा कोई राजा विद्यमान नहीं है तुम्हारी वह सुलोचना प्रियसखी क्यों मेरे निमित्त ही कल्पित हुई है ॥ ३९ ॥ हे भामिनी ! तुम मेरा यह संशयजाल छुडाओ मैं उस राक्षसाधमको मारकर इसी स्थानमें तुम्हारी प्रियसखीको लाऊंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ४० ॥ हे सुव्रते ! यदि तुम जानती हो तो शीघ्र मुझको वह स्थान दिखाओ वह जो इतना दुःख पाती है । वह क्या

उसके पितासे किसीने न कहा ॥ ४१ ॥ यह जिसकी प्रिय कन्या है उनकी वह प्रिय कन्या हरण हुई है सो क्या वह नहीं जानते ? और इस राक्षसा धमके हाथसे उसको छुडानेके निमित्त क्या किसी प्रकारका उद्योग किया है ? ॥ ४२ ॥ अपनी कन्याको बंदी हुआ जानकर भी वह राजा किस प्रकार स्थिर हो रहे हैं ? अथवा वह राजा क्या उसके छुडानेमें असमर्थ हैं ? तुम शीघ्र इन सब विषयोंका कारण कहो ॥ ४३ ॥ हे सरोजाक्षि ! तुमने अपनी प्रिय सखीके अलौकिक गुणकीर्त्तन करके मेरा मन हरन किया है और मुझको कामदेवके अत्यंत वशीभूत किया है ॥ ४४ ॥ हाय ! मैं कब उस मनोरमा कान्ताको अत्यंत संकटसे छुडाकर प्रीतिप्रफुल्लित नेत्रोंसे देखूंगा ! हे प्रियसखि ! मेरा हृदय इस प्रकार उच्च मनोरथमें आरोपित किया ॥ ४५ ॥ हे सुभाषिणि !

यस्यैषा वल्लभा पुत्री न किं जानाति तां हृताम् ॥ नोद्यमः किं कृतस्तेन ततो मोचनहेतवे ॥ ४२ ॥ बन्दीकृतां सुतां ज्ञात्वा कथं तिष्ठति सुस्थिरः ॥ असमर्थो नृपः किं वा कारणं ब्रूहि सत्वरम् ॥ ४३ ॥ त्वया मेऽपहृतं चेतो गुणानुक्त्वा ह्यमानुषान् ॥ सख्याः पंकजपत्राक्षि कृतः कामवशो भृशम् ॥ ४४ ॥ कदा पश्यामि तां कांतां मोचयित्वाऽतिसंकटात् ॥ इति मे हृदयं चाद्य करोत्यतिमनोरथम् ॥ ४५ ॥ ब्रूहि मे गमनोपायं पुरे तस्यातिदुर्गमे ॥ कथं त्वमागता तस्मात्संकटादत्र तद्वद ॥ ४६ ॥ यशोवत्युवाच ॥ बालभावान्मया मन्त्रो भगवत्या विशांपते ॥ प्राप्तोऽस्ति ब्राह्मणात्सिद्धात्सबीजध्यानपूर्वकः ॥ ४७ ॥ तत्रावस्थितया राजन्मया चित्ते विचारितम् ॥ आराधयामि सततं चंडिकां चंडविक्रमाम् ॥ ४८ ॥ सा देवी सेविता कामं बंधमोक्षं करिष्यति ॥ भक्तानुकंपिनी शक्तिः समर्था सर्व साधने ॥ ४९ ॥ या विश्वं सृजते शक्त्या पालयत्येव सा पुनः ॥ कल्पांते संहरत्येव निराकारा निराश्रया ॥ ५० ॥

मैं किस उपायसे उस अत्यंत दुर्गमपुरीमें जासकूंगा ! अथवा तुम किस प्रकार उस संकट स्थानसे इस स्थानमें आई वह मुझसे कहो ॥ ४६ ॥ यशोवतीने कहा हे राजन् ! मैंने बाल्यावस्थाके समय एक सिद्ध ब्राह्मणके बीज और ध्यानके सहित भगवतीका मंत्र प्राप्त किया है ॥ ४७ ॥ उस स्थानमें अवस्थित होकर मनमें विचार किया कि; इस समय मैं सर्व्वदा उन्हीं चण्डविक्रमा शीघ्र मनोरथकी देनेवाली चंडिकाकी आराधना करूं ॥ ४८ ॥ भक्तपर कृपा करने वाली उन्हीं सर्व्वार्थ साधिनी शक्तिकी आराधना करनेसे अवश्य ही वह मेरी प्रियसखीको बंधनसे छुडावेगी ॥ ४९ ॥ वही देवी भगवती स्वरूपसे निराकार होकर भी और किसीका आश्रय ग्रहण न करके केवल अपनी शक्तिसे ही इस विश्व ब्रह्माण्डकी सृष्टि और पालन तथा कल्पांतकालमें संहार करती है ॥ ५० ॥

मनमें इस प्रकार चिंताकर उन्हीं कल्याण स्वरूपिणी रक्तवसना और लोहितलोचना विश्वेश्वरी देवीका ध्यान और मनही मनमें उनके रूपको स्मरणकर मंत्र जपने लगी ॥ ५१ ॥ मेरे केवल एकमास समाधि अवलम्बन पूर्वक देवीकी उपासना करनेपर चण्डिका देवी मेरे भक्ति भावसे ॥ ५२ ॥ स्वप्नमें प्रगट हो अमृत वचन द्वारा मुझसे कहने लगी तू सो रही है ॥ ५३ ॥ उठ शीघ्र उस मनोहर गंगाके तटपर जा वह शत्रुओंका नाश करनेवाले महाबाहु एकवीर राजा श्रेष्ठ है हय उस स्थानमें आवेंगे महामुनीश्वर दत्तात्रेयने उनको महाविद्या नामक मेरा मंत्र दिया है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ राजा भी उस मंत्र द्वारा सदा भक्ति भावसे मेरी पूजा करते हैं उनका मन मुझमें ही अत्यंत आसक्त और सदा मेरी ही पूजामें निरत रहता है अधिक ॥ ५६ ॥ क्या वह राजा मत्परायण होकर

इति संचिंत्य मनसा देवींविश्वेश्वरीं शिवाम् ॥ ध्यात्वा रक्तांबरां सौम्यां सुरक्तनयनां हृदि ॥ ५१ ॥ संस्मृत्य मनसा रूपं मंत्रजाप्य पराऽभवम् ॥ उपासिता मया देवी मासमेकं समाधिना ॥ ५२ ॥ स्वप्ने मम समायाता भक्तिभावेन तोषिता ॥ मामाहामृतया वाचा किं सुप्ताऽसीति चंडिका ॥ ५३ ॥ त्तिष्ठ याहि उरसा गंगातीरं मनो हरम् ॥ आगमिष्यति तत्रासौ हैहयो नृपपुंगवः ॥ ५४ ॥ एकवीरो महाबाहुः सर्वशत्रुविमर्दनः ॥ दत्तात्रेयेण मन्मंत्रो महाविद्या भिधः परः ॥ ५५ दत्तोस्मै सोऽपि सततं मामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ मय्या सक्तमनानित्यं मम पूजापरायणः ॥५६॥ मामेव सर्व भूतेषु ध्यायन्नास्ते च मत्परः ॥ स ते दुःखविनाशं वै करिष्यति महामतिः ॥५७॥ मासुतो विरहंस्तत्र तव त्रता भविष्यति ॥ हत्वा तं राक्षसं घोरं मोचयिष्यति मानिनीम् ॥५८॥ एकावलीमेकवीरः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ पश्चात्सैव पतिः कार्यस्त्वया राजसुतः शुभः ॥ ५९ ॥ इत्युक्त्वां ऽतर्दधे देवी प्रबुद्धाऽहं तदैव हि ॥ कथितं स्वप्नवृत्तांत्तं देव्याश्चाराधनं तथा ॥ ६० ॥ प्रसन्नवदना जाता श्रुत्वा सा कमलेक्षणा ॥ विशेषेण च संतुष्टा मामुवाच शुचिस्मिता ॥ ६१ ॥

सर्व जीवोंके अंतर्यामिरूपसे मेरा ही ध्यान करते हैं वही महाबुद्धि रमापुत्र गंगाके तटपर विहारार्थ आकर तुम्हारा दुःख दूर करेंगे ॥ ५७ ॥ सर्व शास्त्रके जाननेवाले राजा एकवीर घोर समरमें राक्षसोंको मार एकावलीको छुडावेंगे वह तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ ५८ ॥ अन्तमें उन्होंने मुझसे कह दिया है कि तद नंतर उस सर्व सुलक्षण युक्त विद्वान सुशोभन राजपुत्रको तुम्हें पतित्वमें वरण करना उचित है ॥ ५९ ॥ यह कह उनके अंतर्धान होने पर मैं तत्काल जाग रित हुई तदनन्तर कमलनयना प्रियसखीसे उस स्वप्नका वृत्तान्त और देवीकी आराधनाका विषय कहा ॥ ६० ॥ यह सुनकर उसका वदन प्रफुल्लित हुआ वह शुचिस्मिता एकावली अत्यंत संतुष्ट हो मुझसे भलीभांति कहने लगी ॥ ६१ ॥

हे प्रियसखि ! कार्यसिद्धिके निमित्त तुम शीघ्र जाओ सत्य भाषिणी भगवती अम्बिका देवी मुझको बंधनसे छुडावेंगी ॥ ६२ ॥ मेरी उस प्रणयिनी सखीने जब मुझको इस प्रकार आज्ञा दी तब मैं उसी स्वप्नके कारण उस स्थानसे निकलना उचित समझ शीघ्र निकली ॥ ६३ ॥ हे नृपनंदन ! महादेवीके प्रसादसे मुझको मार्ग ज्ञान और द्रुतगति प्राप्त हुई ॥ ६४ ॥ यह मैंने आपसे अपने दुःखका कारण वर्णन किया हे वीर ! आप कौन हैं किसके पुत्र हैं वह आप मुझसे सत्य कहिये ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह प्रतापयुक्त कमला पुत्र हैहय यशोवतीका यह वचनसुन प्रसन्न हो उससे कहने लगे ॥ १ ॥ हे रम्भोरु ! तुमने जो ललित वृत्तान्त पूंछा वह मैं कहता हूं सुनो मैं सिंधुसुता लक्ष्मीका

गच्छ तत्र त्वरायुक्ता कुरु कार्यं मम प्रिये ॥ सत्यवाक्या भगवती साऽऽवां मोक्षं विधास्यति ॥ ६२ इत्याज्ञप्ता तया चाहं सख्या वै प्रेमयुक्तया ॥ मत्वोपसरणं युक्तं तस्मात्स्थानात्तदा नृप ॥ ६३ ॥ चालिताऽहं ततः शीघ्रं महादेवीप्रसादतः ॥ मार्गं ज्ञानं शीघ्रगतिर्मया प्राप्ता नृपात्मज ॥ ६४ ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं मम दुःखजम् ॥ कस्त्वं कस्य सुत श्चेति वद वीर यथा तथा ॥६५॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यास्तुवचनं श्रुत्वा रमापुत्रः प्रतापवान् ॥ प्रफुल्लवदनांभो जस्तामुवाच विशांपते ॥१॥ राजो उवाच ॥ रंभोरु यस्त्वया पृष्टो वृत्तांतो विशदाक्षरः ॥ हैहयोऽहं चैकवीरनाम्ना सिंधुसुतासुतः ॥२॥ मनो मे यत्त्वया नूनं परतंत्रं कृतं किल ॥ किं करोमि क्व गच्छामि विरहेणातिपीडितः ॥३॥ प्रथमं रूपमाख्यातं सर्वलोकातिगं त्वया ॥ तेन मे विह्वलं जातं कामबाणहतं मनः ॥ ४ ॥ ततस्तस्या गुणाः प्रोक्तास्तैस्तु चित्तंहृतं पुनः ॥ यत्त्वयोक्तं पुनर्वाक्यं तेन मे विस्मयो ऽभवत् ॥ ५ ॥ एकावल्या वचः प्रोक्तं दानवाग्रे मया वृतः ॥ हैहयस्तं विनानान्यं वृणो मीति विनिश्चयः ॥ ६ ॥

पुत्र हैहय हूं मैं पृथ्वीमें एकवीर नामसे विख्यात हुआ हूं ॥ २ ॥ इस समय तुमने मेरा मन पराधीन कर दिया मैं तुम्हारी प्रियसखीके विरहमें अत्यन्त पीड़ित हो इस समय क्या करूं ? कहां जाऊं ॥ ३ ॥ तुमने पहले उसका अलौकिक रूप वर्णन किया उससे मन कामबाण द्वारा आहत हो विह्वल हुआ है ॥ ४ ॥ इसके उपरांत फिर तुमने उसका गुण वर्णन किया इससे मेरा मन एकवारही मोहित हुआ है अनन्तर जब तुमने फिर राक्षसका कहा हुआ वचन मुझसे कहा तब मेरे मनमें अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ तुम्हारी प्रियसखी एकावलीने उस दुष्ट दानवके सम्मुख कहा था कि "मैंने पहले हैहय नामक राजाको वरण किया है उनके अतिरिक्त अन्य किसीको भी वरण नहीं करूंगी यही मेरा स्थिर निश्चय है" ॥ ६ ॥

हे सुन्दरि ! तुमने मुझसे यह वचन कहकर इस समय मुझको उसका भृत्य कर दिया हे सुकेशि ! इस समयमें तुम्हारा क्या कार्य साधन करूं सो मुझसे कहो ॥ ७ ॥ मैं उस दुरात्मा राक्षसका वासस्थान नहीं जानता मैं कभी उसकी पुरीमें नहीं गया हे सुलोचने ! तुम मुझको उस स्थानमें जानेका उपाय बतादो ॥ ८ ॥ क्योंकि तुम्हीं मुझको उस स्थानमें ले चलनेको समर्थ होगी, अतएव जिस स्थानमें तुम्हारी वह सर्वाङ्गसुन्दरी सखी वास करती है तुम शीघ्र उसी स्थानमें मुझको ले चलो ॥ ९ ॥ तुम्हारी प्रिय सखी राजनन्दिनी अत्यन्त शोकसे संतप्त हुई है मैं उस दुराचारी राक्षसको मार शीघ्रही उसको छुडाऊँगा इसमें संदेह नहीं ॥ १० ॥ हे कल्याणि ! मैं तुम्हारी प्रियसखीको छुड़ाकर तुम्हारी नगरीमें लेजाऊंगा और उसको उसके पिताके हाथमें समर्पण

तेन वाक्येन तन्वंगि भृत्योऽहमधुनाकृतः ॥ त्वया तस्याः सुकेशांते ब्रूहि किं करवाणिवाम् ॥ ७ ॥ स्थानं तस्य न जानामि राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ गतिर्मे नास्ति गमने पुरे तस्मिन्सुलोचने ॥ ८ ॥ वद मां त्वं विशालाक्षि तत्र प्रापयितुं क्षमा ॥ प्रापयाशु सखी ते सा यत्र तिष्ठति सुंन्दरी ॥ ९ ॥ हत्वा तं राक्षसं क्रूरं मोचयिष्यामि सांप्रतम् ॥ विवशां शोकसंतप्तां राजपुत्रीं तव प्रियाम् ॥१०॥ विमुक्तदुःखां कृत्वाऽऽशु प्रापयिष्यामि ते पुरम् ॥ पित्रेचास्याः प्रदास्यमि कन्यामेकावलीमहम् ॥११॥ पश्चाद्विवाहं कर्ताऽसौ राजा पुत्र्याः परंतप ॥ एवं ते मनसः कामो मम चापि प्रियंवदे ॥ १२ ॥ भविष्यति स संपूर्णः साधनेन तवाधुना ॥ दर्श याऽऽशु पुरं यस्य पश्य मे त्वं पराक्रमम् ॥ १३ ॥ यथा हन्मि दुराचारं परदारापहाकरम् ॥ तथाकरु प्रियंकर्तुं शक्ताऽसि वरवर्णिनि ॥ १४ ॥ मार्गं दर्शय तस्याद्य पुरस्य दुर्गमस्य च ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य प्रियं वाक्यं मुदिता च यशोवती ॥ १५ ॥

करूंगा ॥ ११ ॥ तदनन्तर यह शत्रुनाशक राजा अपनी कन्याका विवाह कार्य सम्पादन करेंगे बोध होता है कि यही तुम्हारी इच्छा है हे प्रियंवदे मेरी भी इसी प्रकार वासना जानो ? ॥ १२ ॥ हे वरवर्णिनि ! इस समय तुम्हारे उद्यमसे यह मनोरथ पूर्ण होगा तुम शीघ्र मुझको उसकी पुरी दिखाय मेरा पराक्रम देखो ॥ १३ ॥ हे चन्द्रानने ! तुम्हीं मेरा प्रिय कार्य साधन करनेमें समर्थ होगी कारण कि बोध होता है जिससे मैं उस दुराचारी पराई स्त्रीके हरनेवाले राक्षसको मारनेमें समर्थ हूं तुम इसी प्रकारके कार्य का विधान करो ॥ १४ ॥ इस समय तुम उस राक्षसकी दुर्गम पुरीका मार्ग दिखा दो व्यास जीने कहा हे महाराज ! यशोवती राजपुत्रका वह प्रिय वचन सुनकर आनंदित हुई ॥ १५ ॥

और आदर पूर्वक उस कमलपुत्र हैहय राजासे राक्षसकी पुरीमें जाननेका उपाय कहने लगी हे राजेन्द्र आप भगवतीका सिद्धिप्रद मंत्र ग्रहण कीजिये ॥ १६ ॥ तो मैं अभी आपको उसकी वह राक्षसरक्षित पुरी दिखा दूं हे राजन् ! मेरे संग चलनेके निमित्त आप अपनी महती सेनाके सहित सुसज्जित हूजिये ॥ १७ ॥ कारण कि उस स्थानमें जाते ही आपको उसके सहित युद्ध करना होगा। कालकेतु स्वयं महावीर और बल विक्रमशाली राक्षसगणोंसे परिवृत हैं ॥ १८ ॥ अतएव आप भगवतीका मंत्र ग्रहणकर मेरे संग चलिये मैं आपको उस दुरात्माके पुरका मार्ग दिखाये देती हूं ॥ १९ ॥ आप उस पापाचारी राक्षसाधमको मारकर मेरी प्रिय सखीको छुडाइये हैहय एकवीरने यशोवतीका वह वचन सुन प्राणीगणोंके हितकर ज्ञानिश्वर दैवयोगसे आये हुए महर्षि

तमुवाच रमापुत्रं गमनोपायमादरात् ॥ मंत्रं गृहाण राजेंद्र भगवत्यास्तु सिद्धिदम् ॥१६॥ दर्शयिष्यामि तस्यात्र पुरं राक्षसपालितम् ॥ सज्जो भव महाभाग गमनाय मया सह ॥ १७ ॥ सैन्येन महता युक्तस्तत्र युद्धं भविष्यति ॥ कलाकेतुर्महावीरो राक्षसैर्वलिभिर्वृतः ॥ १८ ॥ तस्मान्मंत्रं गृहीत्वा त्वं व्रज तत्र मया सह ॥ दर्शयिष्यामि ते मार्गं पुरस्यास्य दुरात्मनः ॥ १९ ॥ हत्वा तं पाप कर्माणं मोचयाऽशु सखीं मम ॥ श्रुत्वा तद्वचनं वीरो मंत्रं जग्राह सत्वरः ॥ २० ॥ दत्तात्रेयाद्दैवयोगात्प्राप्ताज्ज्ञानि वराच्छुभात् ॥ योगेश्वरी महामंत्रं त्रिलोकीतिलकाभिधम् ॥ २१ ॥ तेन सर्वज्ञता जाता सर्वांतश्चारिता तथा ॥ तया सह जगामाऽशु पुरं तस्य सुदुर्गमम् ॥२२॥ रक्षितं राक्षसैर्घोरैः पातालमिव पन्नगैः ॥ यशोवत्या च सैन्येन महता संयुतो नृपः ॥२३॥ तमायांतं समालोक्य दूतास्तस्य भयातुराः ॥ क्रोशंतोऽभिययुः पार्श्वं कालकेतोस्तरस्विनः ॥ २४ ॥ तमूचुः सहसा मत्वा राक्षसं काममोहितम् ॥ एकावलीसमीपस्थं कुर्वंतं विनयान्बहून् ॥ २५ ॥ दूता ऊचुः ॥ राजन्यशोवती नारी कामिन्याः सहचारिणी ॥ आयाति सह सैन्येन राजपुत्रेण संयुता ॥ २६ ॥

दत्तात्रेयके निकटसे त्रिलोकी तिलक नामक योगेश्वरीका महामंत्र ग्रहण किया ॥ २० ॥ २१ ॥ तब नृपवरको उस मंत्रके प्रभावसे संपूर्ण विषय जाननेकी और अप्रतिहत प्रभावसे सर्वत्र जानेकी शक्ति प्राप्त हुई तब उसके सहित उस दुर्गम पुरको चले ॥ २२ ॥ अनन्तर हैहय राजा यशोवतीके सहित बडी सेनासे युक्त हो पन्नगगणोंसे युक्त पातालपुरीके समान घोरतर राक्षस सैन्यसे रक्षित उस राक्षसकी दुर्गम पुरीमें शीघ्रतासे गये ॥ २३ ॥ तब राक्षस राजके दूतगण राजाको आते हुए देख भयातुर हुए और चीत्कार करते करते शीघ्रतासे कालकेतुके निकट गये ॥ २४ ॥ कालकेतु काम बाणसे मोहित हो एकावलीके समीप बैठा हुआ अनेक प्रकारके विनययुक्त वचन कर रहा था ॥ २५ ॥ दूतगणोंने इसी समय सहसा आकर उससे कहा हे राजन् ! इस

कामिनीकी सखी यशोवती एक ससैन्य राजकुमारके सहित इस स्थानमें आती हैं ॥ २६ ॥ हे महाराज ! वह राजकुमार जयन्त है अथवा कार्तिकेय है यह मैं निश्चय नहीं कह सकता जो हो वह अपने वाहनके सहित बलोन्मत्त हो आते हैं ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र ! संग्राम उपस्थित हुआ है, इस समय आप भली भांति बलवान् हो देवपुत्रके सहित युद्ध कीजिये अथवा इस कमलेक्षणा कामिनीका त्याग कीजिये ॥ २८ ॥ हे राजन् ! इस स्थानसे तीन योजन पर्य्यन्त वह सैन्य स्थित है इस सयय आप सज्जित हूजिये शीघ्र दुन्दुभिके घोषसे युद्धकी घोषणा कीजिये ॥ २९ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! दूतोंका यह वचन सुन कालकेतुने क्रोधसे मूर्छित हो अनेक बलवान् शस्त्रधारी राक्षसोंको भेजा ॥ ३० ॥ और उसने कहा कि हे राक्षसगण ! तुम शस्त्रपाणि हो शीघ्र उनके

जयंतो वा महाराज कार्त्तिकेयोऽथ वा नु किम् ॥ आगच्छति बलोन्मत्तो वाहिनीसहितः किल ॥२७॥ संयतो भव राजेंद्र संग्रामः समुपस्थितः ॥ देवपुत्रेण युध्यस्व त्यज्य वा कमलेक्षणाम् ॥२८॥ इतो दूरेऽस्ति सैन्यं तद्योजनत्रयमात्रतः ॥ सज्जो भव महीपाल दुंदुभिघोषयाऽशु वै ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसः क्रोधमूर्च्छितः ॥ राक्षसान्प्रेरयामास सायुधान्सबलान्बहून् ॥ ३० ॥ गच्छध्वं राक्षसाः सर्वे सम्मुखाः शस्त्रपाणयः ॥ तानाज्ञाप्य कालकेतुः पप्रच्छ प्रणयान्वितः ॥३१॥ एककावलीं समीपस्थां विवशः भृशदुःखिताम् ॥ कोऽयमायाति तन्वंगि पिता ते वा परः पुमान् ॥ ३२ ॥ त्वदर्थे सैन्यसंयुक्तो ब्रूहि सत्यं कृशोदरि ॥ पिता ते यदि संप्राप्तो नेतुं त्वां विरहातुरः ॥ ३३ ॥ ज्ञात्वा ते पितरं सम्यक्संग्रामं न करोम्यहम् ॥ आनयित्वा गृहे पूजां रत्नैर्वस्त्रैर्हयैः शुभैः ॥ ३४ ॥ करोमि तस्य चाऽऽतिथ्यं गृहे प्राप्तस्य सर्वथा ॥ अन्यश्चेद्यदि संप्राप्तस्तं हन्मि निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥

सन्मुख होओ, कालकेतुने उनको इस प्रकार आज्ञा देकर विनयपूर्वक ॥ ३१ ॥ पास बैठी हुई अत्यन्त दुःखित एकावलीसे पूंछा हे कृशोदरी ! यह कौन आता है ? तुम्हारा पिता अथवा अन्य कोई पुरुष तुमको छुड़ानेके निमित्त सैन्यगणोंके सहित आता है ॥ ३२ ॥ यह तुम मुझसे सत्य कहो यदि तुम्हारे विरहसे कातर हो तुमको लेनेको तुम्हारे पिता आते हैं ॥ ॥ ३३ ॥ यह यदि मैं भलीभांति जानलूं तो मैं उनके संग संग्राममें प्रवृत्त न हूंगा बरन् उनको घरमेंलाय उत्तम उत्तम अश्वरत्न और वस्त्रादिसे उनकी पूजा करूंगा ॥ ३४ ॥ और गृहमें आनेपर यथाविधि उनका आतिथ्य सत्कार करूंगा और यदि अन्य कोई पुरुष आता है तो शाणित शरसे उसका प्राणसंहार करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥

तुम निश्चय जानो कि अन्य कोई जो तुमको छुडानेको आता है तो मरनेके निमित्त सर्व्व संहारक कालने उसको मेरे निकट लाकर उपस्थित किया है अतएव हे विशालाक्षि ! मुझको महाबलवान् और दुर्द्धर्ष कालरूप न जानकर कौन मंदबुद्धि पुरुष आता है सो तुम मुझसे कहो ॥ ३६ ॥ एकावलीने कहा हे महाभाग ! यह कौन पुरुष शीघ्र वेगसे इस स्थानमें आता है वह मैं नहीं जानती हे महाराज ! मैं आपके बंधनमें रहकर उसको किस प्रकार जान सकती हूं ? ॥ ३७ ॥ किंतु तो भी यह पुरुष मेरा पिता अथवा भ्राता नहीं है अन्य कोई महाबल पुरुष होगा ॥ ३८ ॥ वह किस कारण इस स्थानमें आता है वह मैं निश्चय नहीं जानती दैत्यने कहा हमारे दूतगण इस प्रकार कहते हैं कि तुम्हारी वयस्या सखी यशोवती ॥ ३९ ॥ उस वीरको संग लिये अत्यंत उद्यमके

आनीतः किल कालेन मरणाय महात्मना ॥ तस्माद्वद विशालाक्षि कोऽयमायाति मंदधीः ॥ ३६ ॥ अज्ञात्वा मां दुराधर्षं कालरूपं महाबलम् ॥ एकावल्युवाच ॥ जानेऽहं महाभाग कोऽयमायाति सत्वरः ॥ ३७ ॥ न मेऽस्ति विदितः कोऽपि स्थितायास्तव बंधने ॥ नाऽयं पिता मे न भ्राता कोऽप्यन्योऽस्ति महाबलः ॥३८॥ किमर्थमिह चायाति नाऽहं वेद विनिश्चयम् ॥ दैत्य उवाच ॥ एवं वदंत्यमी दूता वयस्याते यशोवती ॥ ३९ ॥ समानीय च तं वीरमागतेति कृतोद्यमा ॥ क्व गता स सखी कांते विदग्धा कार्यनिश्चये ॥ ४० ॥ नान्यः कोऽपि ममारातिर्यो मे प्रतिबलो भवेत् ॥ व्यास उवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे दूतास्तत्राऽन्ये वै समागतः ॥ ४१ ॥ ते होचुस्त्वरिता भीताः कालकेतुं गृहे स्थितम् ॥ किं स्वस्थोऽसि महाराज समीपे सैन्य मागतम् ॥ ४२ ॥ निर्गच्छ नगरात्तूर्णं सैन्येन महतावृतः ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा कालकेतुर्महाबलः ॥ ४३ ॥ रथमारुह्य त्वरितो निर्ययौ स्वपुराद्बहिः ॥ एक वीरोऽपि सहसा हयारूढः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥ आगतस्तत्र कामिन्या विरहेण समाकुलः ॥ युद्धं तयोरभूत्तत्र वृत्रवासवयोरिव ॥ ४५ ॥

सहित इस स्थानमें आती है चतुर कार्य्यमें निपुण तुम्हारी वह प्रियसखी इस समय कहां गई है ॥ ४० ॥ हे कमलनयने ! मेरे विरुद्धसे युद्ध करनेमें समर्थ हो इस त्रिभुवनमें मेरा इस प्रकार कोई शत्रु नहीं है व्यासजीने कहा हे राजन् ! इसी समयमें अन्य अन्य दूत भीत और त्वरान्वित हो उसी स्थानमें उपस्थित हुए ॥ ४१ ॥ और घरमें बैठे कालकेतुसे कहने लगे हे महाराज ! नगरके समीप सेना आगई है आप इस समय भी किस कारण निश्चिंत और स्थित घरमें बैठे हैं ॥ ४२ ॥ शीघ्र महती सेनाको संग लेकर नगरीसे निकलिये तब महाबल कालकेतु उनका यह वचन सुन ॥ ४३ ॥ रथपर चढ़ शीघ्र अपनी नगरीसे निकला इधर मनोरमा कामिनीके विरहसे व्याकुल हैहयराजा भी घोडेपर चढ़ सहसा उस स्थानमें आकर उपस्थित हुए तब उस स्थानमें दोनोंका

घोर वृत्र इंद्रके समान संग्राम आरम्भ हुआ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ दोनोंही परस्परके ऊपर तीक्ष्ण संपूर्ण अस्त्र शस्त्र निक्षेप करने लगे उससे दिङ्मण्डल प्रदीप्त हो उठा तब भीरुगणोंको भयंकर घोर युद्ध होनेमें ॥ ४६ ॥ सिंधुजाके पुत्र हैहयने भयंकर गदा द्वारा दैत्य राजपर आघात किया अनंतर उस दैत्य पतिने वज्रसे आहत पर्वतके समान पृथ्वीमें गिरकर प्राण त्याग किया ॥ ४७ ॥ तब संपूर्ण राक्षस भीत हो चारों ओरको भागने लगे तदनंतर यशोवती अत्यंत प्रसन्न चित्त हो अतिवेगसे एकावलीके निकट जाय ॥ ४८ ॥ आश्चर्य युक्त प्रियसखीसे मधुर वचन कहने लगी हे सखि ! हे सखि ! आओ आओ वह दानव मर गया ॥ ४९ ॥ नृपतिपुत्र वीरवर एकवीरने दारुण युद्धकर दैत्यपतिको मारा है वह राजा श्रमातुर इस समय सैन्यमें स्थिति करते हैं

शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तै रादीपितदिगंतरम् ॥ वर्तमाने तदा युद्धे कातराणां भयावहे ॥ ४६ ॥ गदया ताडयामास दैत्यं सिंधुसुतासुतः ॥ स गतासुः पपातोर्व्यां वज्राहत इवाऽचलः ॥ ४७ ॥ पलायित्वा गतः सर्वे राक्षसा भयपीडिताः ॥ यशोवती ततो गत्वा वेगादेकावलीं तदा ॥ ४८ ॥ उवाच मधुरां वाणीं विस्मितां मुदिता भृशम् ॥ एह्यालि नृपपुत्रेण दानवोऽसौ निपातितः ॥ ४९ ॥ एकवीरेण धीरेण युद्धं कृत्वा सुदारुणम् ॥ स्कंधावारेऽप्यसौ राजा तिष्ठत्यद्य श्रमातुरः ॥ ५० ॥ दर्शनं कांक्षमाणस्ते श्रुतरूपगुणस्तव ॥ पश्य तं कुटिलापांगि मनोभव समं नृपम् ॥५१॥ कथिता त्वं मया पूर्वं तस्याऽग्रे जाह्नवीतटे ॥ पूर्णानुरागः संजातस्तेनाऽसौ विरहातुरः ॥५२॥ वांछति त्वां चारुरूपां द्रष्टुं नृपतिनंदनः ॥ सा तस्या वचनं श्रुत्वा गमनाय मनो दधे ॥ ५३ ॥ लज्जमाना भृशं भीत्या कौमारप्राप्तया तया ॥ कथं तस्य मुखं द्रक्ष्ये कुमारी ह्यवशा भृशम् ॥ ५४ ॥

॥ ५० ॥ उन्होंने पहले मुझसे तुम्हारा समस्त रूप और गुण श्रवण किया है इससे अब वह तुम्हारा दर्शन प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं हे कुटिलनयने ! इस समय तुम उस कामदेवके समान महीपालको देखकर नेत्र और मन चरितार्थ करो ॥ ५१ ॥ मैंने पहिले गंगाके तटपर उनसे तुम्हारारूप गुणादि वर्णन किया है, इस कारण तुम्हारे प्रति उनको अनुराग उत्पन्न हुआ है इस कारण वह विरहातुर हो ॥ ५२ ॥ तुम्हारा मनोहर रूप देखनेकी इच्छा करते हैं एकावलीने प्रियसखीका यह वचन सुन उनके निकट जानेके निमित्त मनमें निश्चय किया ॥ ५३ ॥ किंतु कुमारी सुलभ भयसे भीत और लज्जित होनेलगी उसने जानाकी मैं कुमारी हूँ किस प्रकार उस नृपनंदनका मुख देखूं ॥ ५४ ॥

वह कामार्त्त हो मुझको पकड़ेंगे इस प्रकार चिंतामें आकुल हो वह मलिनमूर्ति और मलिनाम्बर धारिणी नृपनन्दिनी एकावली यशोवतीकेसहित नरयान्पर चढकर स्कन्धावार (छावनी) में गई उस विशालाक्षी राजकन्याको आती हुई देख राजपुत्रने कहा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे सुन्दरी मेरे दोनों नेत्र तुमको देखनेके लिये तृषित हो रहे हैं तुम दर्शन देकर मेरे नेत्र और मनको चरितार्थ करो नृपतिपुत्रको कामातुर और राजकुमारीको अत्यन्त लज्जित देखकर ॥ ५७ ॥ शिष्टाचारवेदिनी नीति ज्ञान सम्पन्न यशोवतीने राजपुत्रसे कहा हे नृपनंदन ! प्रियसखीके पिताने इसको आपके हाथमें प्रदान करनेकी इच्छा की है ॥ ५८ ॥ और यह भी आपके वशीभूत है अतएव इसके सहित आपका मिलन अवश्यही होगा, हे राजेन्द्र ! आप कालकी प्रतीक्षा कीजिये

स मां गृह्णाति कामार्त इति चिंताकुला सती ॥ यशोवत्या युता तत्र नरयानस्थिता ययौ ॥ ५५ ॥ स्कंधावारेऽति मलिना मलिनांबर धारिणी ॥ तमागतां विशालाक्षीं दृष्ट्वा राजसुतोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥ दर्शनं देहि तन्वंगि तृसिते नयने मम ॥ कामातुरं च तं वीक्ष्य तां च लज्जाभरावृताम् ॥ ५७ ॥ नीतिज्ञा शिष्टमार्गज्ञा तमुवाच यशोवती ॥ राजपुत्रपिताऽप्यस्यास्त्वामेनां दातुमिच्छति ॥ ५८ ॥ एषाऽपि त्वद्वशा नूनं भविता संगमस्तव ॥ कालं प्रतीक्ष्य राजेंद्र नयैनां पितुरंतिकम् ॥ ५९ ॥ स विवाह विधिं कृत्वा दास्यतीति विनिश्चयः ॥ स तस्या वचनं तथ्यं मत्वा सैन्यसमन्वितः ॥ ६० ॥ समेतः कामिनीभ्यां तु ययौ तत्पितुराश्रमम् ॥ राजपुत्रीं तथायातां श्रुत्वा प्रेमस मन्वितः ॥ ६१ ॥ प्रययौ सम्मुखतूर्णं सचिवैः परिवेष्टितः ॥ बहुभिर्दिवसैर्दृष्टा पुत्री स मलिनांबरा ॥ ६२ ॥ यशोवत्यास्तु वृत्तांतः कथितो विस्तरात्पुनः ॥ एकवीरं मिलित्वाऽसौ गृहमानीय चादरात् ॥ ६३ ॥

इसको पिताके निकट ले चलिये ॥ ५९ ॥ वह इसकी विवाहविधि सम्पन्न कर इसे आपको प्रदान करेंगे यह स्थिर निश्चय जानिये राजा उसका वचन यथार्थ और निश्चय जानकर सैन्यके सहित ॥ ६० ॥ उन दोनों कामिनियोंको एकावलीके पिताके घर लेगये एकावलीके पिता अपनी पुत्रीको आती हुई सुन प्रथम पुलकित हुए ॥ ६१ ॥ और मंत्रीगणोंके सहित परिवेष्टित हो शीघ्र उसके सम्मुख गये, राजा बहुत दिनोंके उपरांत मलिनवसना कन्याको देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ६२ ॥ अनंतर यशोवतीने राजासे वह संपूर्ण वृत्तांत विस्तारपूर्वक वर्णन किया तब राजा मंत्रीगणोंके सहित मिलित हो राज पुत्रको आदरपूर्वक घर ले आये ॥ ६३ ॥

और शुभदिनमें विधिपूर्वक उनके सहित एकावलीका विवाहकार्य संपादन किया तदनंतर वसनभूषण रत्न अलंकार और गृहोपकरण इत्यादि अनेकसामग्री संभारदान और विधिपूर्वक पूजाकर ॥ ६४ ॥ पुत्रीको हैहयके संग भेज दिया राजाके मंत्रीने भी नृपनंदनके सहित अपनी नंदिनीकी प्रणयक्रिया संपादन कर उनके संग भेजदिया इस प्रकार विवाहकार्य संपन्न होनेपर फिर सिंधुजापुत्र अत्यंत आनंदित हो ॥ ६५ ॥ घर जाय प्रियाके सहित अनेकप्रकार सुख संभोगमें निरत हुए अनंतर एकावलीके गर्भसे हैहयराजाके कृतवीर्यनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६६ ॥ इस कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य नामसे विख्यात है. हे महाराज ! यह मैंने आपसे हैहयवंशकी उत्पत्तिका वर्णन किया ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायां त्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥

पुंण्येऽह्नि कारयामास विवाहं विधिपूर्वकम् ॥ पारिबर्हं ततो दत्वा संपूज्य विधिवत्तदा ॥ ६४ ॥ पुत्रीं विसर्जयामास यशोवत्या सम न्विताम् ॥ एवं विवाहे संवृत्ते रमापुत्रो मुदान्वितः ॥ ६५ ॥ गृहं प्राप्य बहून्भोगान्बुभुजे प्रियया समम् ॥ बभूव तस्या पुत्रस्तु कृतवी र्याभिधः किल ॥६६॥ तत्सुतः कार्तवीर्यास्तु वंशोऽयं कथितो मया ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

राजोवाच ॥ भगंस्त्वमुखांभोजाच्च्युतं दिव्यकथारसम् ॥ न तृप्तिमधिगच्छामि पिबंस्तु सुधया समम् ॥ १ ॥ विचित्रमिदमाख्यानं कथितं भवता मम ॥ हैहयानां समुत्पत्तिर्विस्तराद्विस्मयप्रदा ॥ २ ॥ परं कौतूहलं मेऽत्रयद्विष्णुः कमलापतिः ॥ देवदेवो जगन्नाथः सृष्टिस्थित्यंतकारकः ॥ ३ ॥ सोऽप्यश्वभावमापन्नो भगवान्हरिरच्युतः ॥ परतंत्रः कथं जातः स्वतंत्रः पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ एतन्मे संशयं ब्रह्मञ्छेतुमर्हसि सांप्रतम् ॥ सर्वज्ञस्त्वं मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि वृत्तांतमद्भुतम् ॥ ५ ॥

जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आपके मुखकमलसे निकला हुआ अमृतके समान दिव्यकथारूप मधुररस पान करके मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ १ ॥ आपने मुझसेहैहयवंशकी उत्पत्तिका विचित्र और विस्मयप्रद उपाख्यान विस्तार पूर्वक वर्णन किया ॥ २ ॥ किंतु हे मुनिवर ! इस विषयमें मेरे हृदयमें एक परम कौतूहल उत्पन्न हुआ है देखो कमलापति भगवान् विष्णुने देवतागणोंकेभी देवता और संपूर्ण जगत्के अधि नाथ तथा सृष्टिस्थिति प्रलयकालके कर्त्ता थे ॥ ३ ॥ तो उन पुरुषोत्तम भगवान् हरिनेभी अश्वरूप धारणकिया वह अच्युत और स्वतंत्र होकरभी किस कारण परतंत्र हुए ॥ ४ ॥ आप इस समय मेरे हृदयका यह संशय छेदन कीजिये हे मुनिवर ! आप सर्वज्ञ हैं अतएव यह अद्भुत वृत्तांत कहकर मेरा कौतुहल चरितार्थ कीजिये ॥ ५ ॥

व्यासजीने कहा हे राजन् ! पहले मैंने मुनिसत्तम नारदसे इस सन्देहके निराकरण विषयमें जिसप्रकार सुना था इस समय मैं आपसे उसी प्रकार कहता हूं सुनो ॥ ६ ॥ ब्रह्माके मानसपुत्र महर्षि नारद तपोबलसे सर्वत्रगामी सर्वज्ञ शांत प्रकृति सर्वलोकोंके प्रिय और कवि हैं ॥ ७ ॥ एक समय वह श्रेष्ठ ऋषि स्वरतानयुक्त वीणा बजाते बजाते पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा ॥ ८ ॥ एकदिन बृहद्रथंतरादि [सामगानकेमंत्र] सामवेदके अनेकानेक विशेष विषय और मोक्षप्रद अमृतस्यन्दिनी गायत्री गान करते करते मेरे आश्रममें आकर उपस्थित हुए ॥ ९ ॥ हे राजन् ! सरस्वती नदीके तटपर शम्याप्रास ज्ञानप्रद सुखद अतिपवित्र एक महातीर्थ है वहां अनेक महर्षि वास करते हैं उसी स्थानमें मेरा आश्रम था ॥ १० ॥ तब मैं उन तेज पुञ्ज कलेवर पितामहके पुत्र ऋषिवर

व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि संदेहऽस्यास्य निर्णयम् ॥ यथा श्रुतं मयापूर्वं नारदान्मुनिसत्तमात् ॥ ६ ॥ ब्रह्मणो मानसः पुत्रो नारदो नाम तापसः ॥ सर्वज्ञः सर्वगः शांत सर्वलोकप्रियः कविः ॥ ७ ॥ स चैकदा मुनिश्रेष्ठो विचरन्पृथिवीमिमाम् ॥ वादयन्महतीं वीणां स्वरतानसमन्विताम् ॥ ८ ॥ बृहद्रथंतरादीनां साम्ना भेदाननेकशाः ॥ गायन्गायत्रममृतं संप्राप्तोऽथ ममाऽऽश्रमम् ॥ ९ ॥ शम्याप्रासं महातीर्थं सरस्वत्याः सुपावनम् ॥ निवासं मुनि मुख्यानां शर्मदं ज्ञानदं तथा ॥ १० ॥ तमागतमहं प्रेक्ष्य ब्रह्मपुत्रं महाद्युतिम् ॥ अभ्युत्थानादिकं सर्वं कृतवानर्चनादिकम् ॥ ११ ॥ अर्घ्यपाद्यविधिं कृत्वा तस्याऽऽसनस्थितस्य च ॥ उपविष्टः समीपेऽहं मुनेरमित तेजसः ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा विश्रमिणं शांतं नारदं ज्ञानपारदम् ॥ तमपृच्छमहं राजन्यत्पृष्टोऽहंत्वयाऽधुना ॥ १३ ॥ असारेऽस्मिंस्तु संसारे प्राणिनं किं सुखं मुने ॥ पश्यामि विनिश्चित्य कदाचित्कु त्रचित् क्वचित् ॥ १४ ॥ द्वीपे जातो जनन्याहं संत्यक्तस्तत्क्षणादपि ॥ अनाश्रयो वने वृद्धिं प्राप्तः कर्मानुसारतः ॥ १५ ॥

नारदको आता हुआ देखकर उठा और विधिपूर्वक पाद्य तथा अर्घ्यादिसे पूजा की ॥ ११ ॥ अर्घ्यपाद्य विधिके अनंतर उन अमिततेजा मुनिवरके आसनमें बैठनेपर फिर मैं भी उनके निकट बैठ गया ॥ १२ ॥ तदनंतर उन ज्ञानप्रद नारदको विश्रांत और शांत देखकर तुमने इस समय मुझसे जो पूछा मैंने भी उनसे इसी प्रकार पूंछा ॥ १३ ॥ हे मुनिवर ! इस असारसंसारमें प्राणीगणोंको जन्मग्रहण करके क्या सुख है ? मैं निश्चयकर कभी किसी स्थल तथा किसी विषयमें वह सुख नहीं देखता तथापि बडे बडे पुरुष भी किस कारण संसारमें मोहित हो कर्म करते हैं ? ॥ १४ ॥ देखो द्वीपमें मेरा जन्म हुआ और जन्मते ही जननीने मुझको परित्याग किया मैं वनमें निराश्रय होकर कर्मानुसार बढने लगा ॥ १५ ॥

अनंतर पुत्रप्राप्तिकी कामनासे पर्वतमें स्थित हो बहुत वर्ष पर्य्यंत देवदेव महादेवकी उग्रतर तपस्या की ॥ १६ ॥ इससे ज्ञानीगणोंके अग्रगण्य शुकको पुत्ररूप से प्राप्त हो उसके आदिसे सम्पूर्ण वेदोंका सार भाग भलीभांति पाठ कराया ॥ १७ ॥ हे देवर्षे ! मेरा वह पुत्र आपकेही वचनसे ज्ञानको प्राप्त हुआ मेरे उसके विरहमें अत्यंत कातर हो रोनेपर भी मुझको छोड़ इस लोकसे लोकांतरको चला गया ॥ १८ ॥ तदनंतर पुत्रशोकसे अत्यंत संतप्त हो महागिरि सुमे रुको परित्याग किया तब मैं पुत्रशोकसे अत्यंत कातर और पुत्रके स्नेहसे अति कृशाङ्ग हो इस संसारको मिथ्या जानकर भी मायापाशमें बँध माताको स्मरण करते हुए कुरुजंगलमें उपस्थित हुआ ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनंतर राजा शांतनुने कल्याणिनी जननीका विवाह किया है यह सुनकर इस सरस्वतीके

तपस्तप्तं मया चोग्रं पर्वते बहुवार्षिकम् ॥ पुत्रकामेन देवर्षे शंकरः समुपासितः ॥ १६ ॥ ततो मया शुकः प्राप्तः पुत्रोज्ञानवतां वरः ॥ पाठितस्तु मया सम्यग्वेदानां सार आदितः ॥ १७ ॥ स त्यक्त्वां गतः क्काऽपि रुदंतं विहारतुरम् ॥ लोकाल्लोकांतरं साधो वचनात्तव बोधितः ॥ १८ ॥ ततोऽहं पुत्रसंतप्तस्त्यक्त्वा मेरुं महागिरिम् ॥ मातरं मनसा कृत्वा संप्राप्तः कुरु जांगलम् ॥ १९ ॥ पुत्रस्नेहाददतितरां कृशांगः शोकसंयुतः ॥ जानन्मिथ्येति संसारं मायापाश नियंत्रितः ॥ २० ॥ ततो राज्ञावृतां ज्ञात्वा मातरं वासवीं शुभाम् ॥ स्थितोऽत्रैवाऽऽश्रमं कृत्वा सरस्वत्यास्तटेशुभे ॥२१॥ शंतनुः स्वर्गतिं प्राप्तो विधुरा जननी स्थिता ॥ पुत्रद्वययुता साध्वी भीष्मेण प्रतिपालिता ॥ २२ ॥ चित्रांगदः कृतो राजा गंगापुत्रेण धीमता ॥ काले सोऽपि मे भ्राता मृतः कामस मुद्युतिः ॥ २३ ॥ ततः सत्यवतीमाता निमग्ना शोकसागरे ॥ चित्रांगदं मृतं पुत्रं रुरोद भृशमातुरा ॥ २४ ॥ संप्राप्तोऽहं महाभाग ज्ञात्वा तां दुःखितां सतीम् ॥ आश्वासिता मयात्यर्थं भीष्मेण च महात्मना ॥ २५ ॥

पवित्र तटपर आश्रम बनाय वास करने लगा ॥ २१ ॥ शान्तनु राजाके परलोक जानेपर साध्वी जननी दो पुत्रोंके सहित वास करने लगी तब भीष्म उनका प्रतिपालन करने लगे ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् गंगापुत्रने चित्राङ्गदको राज्यपदमें स्थापित किया कुछ कालोपरांत वह कामदेवके समान मनोहर कांति भ्राता कालके ग्रासमें पतित हुए ॥ २३ ॥ माता सत्यवती इस प्रकार पुत्रके शोकसागरमें निमग्न हो पुत्र चित्राङ्गदके निमित्त अत्यंत कातर हो रोदन करने लगी ॥ २४ ॥ हे महाराज ! उस कालमें जननीको दुःखित जानकर उसके निकट उपस्थित हुआ अनंतर मैंने और भीष्मने उसको सान्त्वना प्रदान कर समझाया ॥ २५ ॥

भीष्मदेवने दारपरिग्रह और राजपालनसे विमुख हो कनिष्ठ भ्राता वीर्यवान् विचित्रवीर्यको राज्य प्रदान किया ॥ २६ ॥ हे राजन् ! भीष्मने अपने वीर्यसे राजाओंको पराजित कर काशिराजकी दो कन्या लाय विचित्रवीर्यको प्रदान करनेके निमित्त सत्यवतीको समर्पण कीं ॥ २७ ॥ अनंतर शुभ दिन और शुभलग्नमें भ्राता विचित्रवीर्यका विवाह होनेपर तब मैं सुखी हुआ ॥ २८ ॥ तदनंतर यक्ष्मारोगसे पीडित हो उस अपुत्रक युवा धनुर्द्धर भ्राता विचित्रवीर्यने भी प्राण परित्याग किया इससे माता अत्यंत दुःखित हो गई ॥ २९ ॥ पतिको मरा हुआ देख काशिराजकी कन्या उन दोनों बहिनोंने पतिव्रत धर्मकी रक्षामें तत्पर होकर अत्यंत दुःखित ॥ ३० ॥ और रोदन शील प्राप्त सती देवीसे कहा हम दोनोंजनी अग्निमें पतिकी सहगामिनी होंगी ॥ ३१ ॥

विचित्रवीर्यस्त्वपरो वीर्यवान्पृथिवीपतिः ॥ कृतो भीष्मेण भ्राता वै स्त्री राज्यविमुखेन ह ॥ २६ ॥ काशिराजसुते रम्ये विजित्य पृथिवीमतीन् ॥ भीष्मेणाऽऽनीय स्वबलात्कन्यके द्वे समर्पिते ॥२७॥ सत्यवत्यै शुभे काले विवाहः परिकल्पितः ॥ भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य तदाऽहं सुखितोऽभवम् ॥ २८ ॥ पुनः सोऽपि मृतो भ्राता यक्ष्मणा पीडितो भृशम् ॥ अनपत्यो युवा धन्वी माता मे दुःखिताऽभवत् ॥ २९ ॥ काशिराज सुते द्वे मृतं दृष्ट्वा पतिं तदा ॥ पतिव्रताधर्मपरे भगिन्यौ संबभूवतुः ॥ ३० ॥ ते ऊचतुः सतीं श्वश्रू रुदतीं भृशदुःखिताम् ॥ पतिना सह गामिन्यौ भविष्यावो हुताशने ॥ ३१ ॥ पुत्रेण सह ते श्वश्रु स्वर्गे गत्वाऽथ नंदने ॥ सुखेन विहरिष्यावः पतिना सह संयुते ॥ ३२ ॥ निवारिते तदा मात्रा वध्वौ तस्मान्महोद्यमात् ॥ स्नेहभावं समाश्रित्य भीष्मस्य वचनात्तदा ॥ ३३ ॥ गांगेयेन च मात्रा मे संमंत्र्य च परस्परम् ॥ कृत्वौर्ध्वदेहिकं सर्वं संस्मृतोहं गजाह्वये ॥ ३४ ॥ स्मृतमात्रस्तु मात्रा वै ज्ञात्वा भावं मनोगतम् ॥ तरसैवाऽऽगतश्चाहं नगरं नागसाह्वयम् ॥ ३५ ॥ प्रणम्य मातरं मूर्ध्ना संस्थितोऽथ कृतांजलिः ॥ तामब्रुवं सुतप्तांगीं पुत्रशोकेन कर्शिताम् ॥ ३६ ॥

हे देवि ! हम तुम्हारे पुत्रके संग स्वर्गमें जाय दोनों बहिने मिल उनके सहित नन्दनवनमें विहार करेंगी ॥ ३२ ॥ जननीने स्नेह भावका आश्रय कर भीष्मकी अनुमति ग्रहणपूर्वक दोनों बहुओंको इस महाउद्यमसे निवारित किया ॥ ३३ ॥ विचित्रवीर्यकी सम्पूर्ण ऊर्ध्वदेहिक क्रिया सम्पादित होनेपर फिर भीष्मसे परामर्शकर जननीने हस्तिनानगरमें मुझको स्मरण किया ॥ ३४ ॥ स्मरण करते ही जननीने मनका भाव जान मैं शीघ्र हस्तिनानगरमें आया ॥ ३५ ॥ और मस्तक झुकाय उसके चरणोंमें प्रणाम कर हाथ जोड उस पुत्ररूपी शोकानलसे सन्तप्त हुई मातासे कहा ॥ ३६ ॥

हे जननि ! मुझको मनही मनमें स्मरण करके क्यों बुलाया है ? तुमको इस समय अत्यन्त दुःखित हुआ देखता हूं मैं आपका दास हूं आज्ञा कीजिये तुम्हारा क्या कर्म सम्पादन करूं ॥ ३७ ॥ हे मातः ! आप ही मेरा परम तीर्थ और आपही मेरी परम देवता हैं मैं इस स्थानमें उपस्थित होकर अत्यंत उत्कण्ठित हो रहा हूं क्या आपका प्रिय कार्य है वह मुझसे कहो ॥ ३८ ॥ व्यासजीने कहा हे मुनीश्वर ! मैं यह कहकर जब माताके सामने खड़ा रहा तब उन्होंने समीप बैठे भीष्मकी ओर देखकर मुझसे कहा ॥ ३९ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारे भ्राता विचित्रवीर्य राजयक्ष्मारोगसे पीड़ित हो कराल कालके ग्रासमें पतित हुए हैं इसी कारण वंश नष्ट होनेके भयसे मैं अत्यन्त दुःखित हो रही हूं ॥ ४० ॥ हे मेधाविन् ! इसी प्रयोजनकी सिद्धिके निमित्त गंगापुत्रकी

मातस्त्वया किमाहूतो मनसाहं तपस्विनी ॥ आज्ञापय महत्कार्यं दासोऽस्मि करवाणि किम् ॥ ३७ ॥ त्वं मे तीर्थं परं मातर्दैवश्च प्रथितः पर ॥ आगतश्चिंतितश्चाऽत्र ब्रूहि कृत्यं तव प्रियम् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽहं स्थितस्तत्र मातुरग्रे यदा मुने ॥ तदा सा मामुवाचेदं पश्यंती भीष्ममंतिके ॥ ३९ ॥ पुत्र तेऽद्य मृतो भ्राता पीडितो राजयक्ष्मणा ॥ तेनाऽहं दुःखितः जाता वंशच्छेदभयादिह ॥ ४० ॥ तस्मात्त्वमद्य मेधाविन्मयाऽहूतः समाधिना ॥ गांगेयस्य मतेनात्र पाराशर्यार्थसिद्धये ॥ ४१ ॥ कुलं स्थापय नष्टं त्वं शंतनो र्नामकारणात् ॥ रक्ष मां दुःखत कृष्णवंशच्छेदोद्भवादद्भुतम् ॥ ४२ ॥ काशिराजसुते भार्ये भ्रातुस्तव यवीयसः ॥ साधोर्विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनभूषितम् ॥ ४३ ॥ ताभ्या संगम्य मेधाविन्पुत्रोत्पादनकं कुरु ॥ रक्षस्व भारतं वंशं नात्र दोषोऽस्ति कर्हिचित ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति मातुर्वचः श्रुत्वा जातश्चिंतातुरो ह्यहम् ॥ लज्जयाऽकुलचित्तस्तामब्रुवं विनयानतः ॥ ४५ ॥ मातः पापाधिकं कर्म परदार भिमर्शनम् ॥ ज्ञात्वा धर्मपथं सम्यक्करोमि कथमादरात् ॥ ४६ ॥

अनुमति लेकर अब मैंने तुमको बुलाया है ॥ ४१ ॥ हे पराशरनन्दन ! शान्तनुके नामार्थ तुम प्रायः नष्ट हुआ वंश पुनर्वार स्थापन करो. हे व्यासदेव ! तुम शीघ्र मेरी वंशोच्छेदजनित दुःखसे रक्षा करो ॥ ४२ ॥ रूपयौवन सम्पन्न साधुशील काशिराजकी दोनों कन्या तुम्हारे कनिष्ठ भ्राता विचित्रवीर्यकी भार्या हैं ॥ ४३ ॥ हे महामते तुम उनके सहित संगम करके पुत्रोत्पादन पूर्वक भारत वंशकी रक्षा करो इससे तुमको कोई दोष स्पर्श नहीं करेगा ॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे देवर्षे ! माताके यह वचन सुनकर मैं अत्यन्त चिन्तित हुआ और लज्जाकुलित चित्तसे विनयपूर्वक उनसे कहा ॥ ४५ ॥ हे मातः ! पराईस्त्री को स्पर्श करना अत्यन्त पापकर कर्म है, मैं धर्मका मार्ग भली भाँति जानकर किस प्रकार यह कार्य आदरपूर्वक करूं ? ॥ ४६ ॥

और भी देखो महर्षिगण कहते हैं कि कनिष्ठ भ्राताकी भार्या कन्याके समान है, मैं सम्पूर्ण वेदशास्त्र अध्ययन करके किस प्रकार ऐसा व्यभिचार कर्म करनेमें समर्थ हूं ? ॥ ४७ ॥ अन्याय कर्मसे कुलकी रक्षा करना किसीके मतसे कर्त्तव्य नहीं हैं क्योंकि पाप करनेवालेके पितृगण संसार सागरसे पार होनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ४८ ॥ जो पुरुष संपूर्ण लोकोंका उपदेष्टा और पुराणोंका प्रवर्त्तक है वह समस्त जान सुनकर इस अत्यन्त अद्भुत कुत्सित कर्ममें प्रवृत्त हो सकता है ? ॥ ४९ ॥ माता पुत्रशोकसे अत्यन्त सन्तप्त हुई थी इस कारण उन्होंने कुलके रक्षा करनेकी इच्छासे रोदन करते करते मेरे निकट आकर पुनर्वार कहा ॥ ५० ॥ हे पराशर पुत्र ! यदि तुम मेरे वचनके अनुवर्ती होकर कार्य करोगे तो तुमको कुछ भी दोष नहीं होगा हे पुत्र! गुरुजनोंके

तथा यवीयसोभ्रातुर्वधूः कन्या प्रकीर्तिता ॥ व्यभिचारं कथं कुर्यामधीत्य निगमानहम् ॥ ४७ ॥ अन्यायेन न कर्तव्यं सर्वथा कुलरक्षणम् ॥ न तरंति हि संसारात्पितरः पापकारिणः ॥ ४८ ॥ लोकानामुपदेष्टा यः पुराणानां प्रवर्तकः ॥ स कथं कुत्सितं कर्म ज्ञात्वा कुर्यान्महाद्भुतम् ॥ ४९ ॥ पुनरुक्तो ह्यहं मात्रा रुदत्या भृशमंतिके ॥ पुत्रशोकातितप्ता या वंशरक्षणकाम्यया ॥ ५० ॥ पाराशर्य न ते दोषो वचनान्मम पुत्रक ॥ गुरूणां वचनं तथ्यं सदोषमपि मानवैः ॥ ५१ ॥ कर्तव्यम विचार्यैव शिष्टाचारप्रमाणतः ॥ वचनं कुरु मे पुत्र न ते दोषोऽस्ति मानद ॥ ५२ ॥ पुत्रस्य जननं कृत्वा सुखिनीं कुरु मातरम् ॥ विशेषेण तु संतप्तां मग्नां शोकार्णवे सुत ॥ ५३ ॥ इति तां ब्रुवतीं श्रुत्वा तदा सुरनदीसुतः ॥ मामुवाच विशेषज्ञः सूक्ष्मधर्मस्य निर्णये ॥ ५४ ॥ द्वैपायन विचारोऽत्र न कर्तव्यस्त्वयाऽनघ ॥ मातुर्वचनमादाय विहरस्व यथासुखम् ॥ ५५ ॥

युक्तियुक्त वचन सदोष होनेपर भी न विचार कर ॥ ५१ ॥ शिष्टाचारप्रमाणसे काय सम्पादन करना मनुष्य गणोंको अत्यंत उचित है. अतएव हे पुत्र ! तुम मेरा वचन प्रतिपालन करके मेरे मानकी रक्षा करो इससे तुमको कुछ दोष नहीं होगा ॥ ५२ ॥ हे पुत्र ! तुम भलीभाँति विचार करके देखो कि तुम्हारी जननी अत्यंत सन्तप्त और शोकसागरमें निमग्न हुई है अतएव कुलपुत्र उत्पादन करके उसको सुखी करना तुमको अवश्य उचित है ॥ ५३ ॥ मैं जननीका इस प्रकार कहना सुनकर सूक्ष्म धर्मके निर्णय विषयमें विशेषज्ञ गंगानन्दन भीष्म मुझसे कहने लगे ॥ ५४ ॥ हे द्वैपायन ! तुम सर्वप्रकार निष्पाप हो अतएव इस विषयमें तुमको विचार करना उचित नहीं है तुम माताका वचन प्रतिपालन कर सुखपूर्वक विहार करो ॥ ५५ ॥

व्यासजीने कहा हे राजन् ! उनके यह वचन और माताकी प्रार्थना सुन मैं निशंकचित्तसे उस अत्यन्त घृणित कार्यमें प्रवृत्त हुआ ॥ ५६ ॥ अम्बिकाके ऋतु स्नान करनेपर मैं रात्रिकालके समय उसके सहवासमें प्रवृत्त हुआ, किंतु उस युवतीने मेरा कुत्सित तापसरूप देखकर मुझसे अनुराग न किया ॥ ५७ ॥ तब मैंने नितम्बिनीको शाप दिया जब कि तुमने मेरे सहित प्रथम सहवासमें ही नेत्र बंदकरलिये अतएव तुम्हारा पुत्र अन्धा होकर जन्मग्रहण करेगा ॥ ५८ ॥ हे मुनिवर ! दूसरे दिन माता मुझसे निर्ज्जनमें पूछने लगी हे द्वैपायन ! काशिराजकी कन्याके उदरसे पुत्र उत्पन्न होगा ? ॥ ॥ ५९ ॥ तब मैंने लज्जासे झुके हुए मुखद्वारा कहा हे मातः ! मेरेही शापसे वह पुत्र जन्मांध होगा ॥ ६० ॥ तब जननीने मुझसे कठोर वचन द्वारा भर्त्सनाकर कहा

व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा मातुश्च प्रार्थनं तथा ॥ निःशंकोऽहं तदा जातः कार्येतस्मिञ्जुगुप्सिते ॥ ५६ ॥ अंबिकायां प्रवृत्तोऽहमृतुमत्यां मुदानिशि ॥ मयि विमनसायां तु तापसे कुत्सिते भृशम् ॥ ५७ ॥ शप्ता मया सुश्रोणी प्रसंगे प्रथमे तदा ॥ अंधस्ते भविता पुत्रो यतो नेत्रे निमीलते ॥५८॥ द्वितीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पृष्टो मात्रा रहः पुनः ॥ भविष्यति सुतः पुत्र काशिराजसुतोदरे ॥५९॥ मयोक्ता जननी तत्र व्रीडानम्रमुखेन ह ॥ विनेत्रो भविता पुत्रो मातः शापान्ममैव हि ॥६०॥ तया निर्भर्त्सितस्तत्र कठोरवचसा मुने ॥ कथं पुत्र त्वया शप्तः पुत्रस्तेंऽधो भविष्यति ॥६१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ व्यासउवाच ॥ वासवी चकिता जाता श्रुत्वा मे वाक्यमीदृशम् ॥ दाशेयी मामुवाचेदं पुत्रार्थे भृशमातुरा ॥ १ ॥ अंबालिका वधूर्धन्या काशिराजसुतासुत ॥ भार्या विचित्रवीर्यस्य विधवा शोकसंयुता ॥ २ ॥ सर्वलक्षणसंपन्ना रूपयौवनशालिनी ॥ तस्यां जनय संगं त्वं कृत्वा पुत्रं सुसंमतम् ॥ ३ ॥

हे पुत्र ! अम्बिकाके पुत्र अन्धहोगा यह कहकर तुमने उसको किस कारण शाप दिया ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! मेरे यह वचन सुन माता चकित होगई और पुत्रके अत्यन्त आतुर हो मुझसे कहने लगी ॥ १ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारे भ्राताकी भार्या विधवा शोकसंयुक्त काशिराजकी कन्या अम्बालिका ॥ २ ॥ सर्व सुलक्षण सम्पन्न रूपयौवनशालिनी और सम्पूर्ण गुणोंसे विभूषित है तुम उसके सहित सहवास करके श्रेष्ठपुरुषोंके सम्मत उत्तम पुत्र उत्पन्न करो ॥ ३ ॥

जन्मान्ध पुरुष राज्यका अधिकारी नहीं होता अतएव तुम मेरे वचनसे राजकन्यामें एक मनोहर पुत्र उत्पन्न करके मेरे मानकी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे मुनिवर ! उसकालमें माताके यह वचन सुन जबतक काशिराजकीकन्या अम्बालिका ऋतुमती न हो तब तक मैं हस्तिनापुरमें वास करने लगा ॥ ५ ॥ अनन्तर यथा समय उपस्थित होनेपर कुटिलकेश राजकन्या सासकी आज्ञासे निर्जन शयनागारमें मेरे समीप आय अत्यन्त लज्जान्वित हुई ॥ ६ ॥ मुझको जटिलतापस और रसवर्जित देखकर उसके मुखपर पसीना आगया देह उसकी पाण्डुवर्ण और मन विरस होगया ॥ ७ ॥ मैंने रात्रिके समय पार्श्वमें बैठी हुई उस कामिनीको काँपता और पाण्डुवर्ण देखकर क्रोधयुक्त हो कहा ॥ ८ ॥ हे सुमध्यमें ! तुम जब मुझको देखकर अपने सौन्दर्यके

नांधो राजाऽधिकारी स्यात्तस्मात्पुत्रं मनोहरम् ॥ उत्पादय राजपुत्र्या वचनान्मम मानद ॥ ४ ॥ इत्युक्तोऽहं तदा मात्रा स्थितस्तत्र गजाह्वये ॥ यावदृतुमती जाता काशिराजसुता मुने ॥ ५ ॥ एकांते शयनागारे प्राप्तस मम सन्निधौ ॥ लज्जमाना सुकेशांता स्वश्वश्रूवचनात्तदा ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा मां जटिलं दातं तापसं रसवर्जितम् ॥ सा स्वेदवदना जाता पाण्डुरा विमना भृशम् ॥ ७ ॥ कुपितोऽहं तदा दृष्ट्वा कामिनीं निशि संगताम् ॥ वेपमानां स्थितः पार्श्वे ह्यब्रुवं तामहं रुषा ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा मां यदि गर्वेण पांडुवर्णा समावृता ॥ अतस्ते तनयः पांडुर्भविष्यति सुमध्यमे ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा निशि तत्रैव स्थितोंऽबालिकया युतः ॥ भुक्त्वा तां निशि निर्यातः स्थानमापृच्छ्य मातरम् ॥ १० ॥ ततस्ताभ्यां सुतौ काले प्रसूतावंधपांडुरौ ॥ धृतराष्ट्रश्च पांडुश्च प्रथितौ संबभूवतुः ॥ ११ ॥ माता मे विमना जाता तादृशौ वीक्ष्य तौ सुतौ ॥ ततः संवत्सरस्यांते मामाहूय तदाब्रवीत् ॥ १२ ॥ द्वैपायनसुतौ जातौ राज्ययोग्यौ न तादृशौ ॥ अन्यं मनोहरं पुत्रं समुत्पादय मे प्रियम् ॥ १३ ॥

गर्वसे पाण्डुवर्ण हुई तब तुम्हारा पुत्र पाण्डुवर्ण होगा ॥ ९ ॥ यह कह उसी स्थानमें अम्बालिकाके संग रात्रि विताई. इस प्रकार मैं उस कामिनीके संग रतिसम्भोग कर मातासे आज्ञा ले अपने स्थानको गया ॥ १० ॥ तदनन्तर उन दोनों राजकन्याओंने यथा समयमें अन्ध और पाण्डुवर्ण दो पुत्र उत्पन्न किये अम्बिकाका पुत्र धृतराष्ट्र नामसे और अम्बालिकाका पुत्र पाण्डुवर्ण होनेपर पाण्डु नामसे विख्यात हुआ ॥ ११ ॥ माता उन दोनों पुत्रोंको ऐसा देखकर विमन हुई तदनंतर संवत्सरके उपरान्त मुझको बुलाकर कहा ॥ १२ ॥ हे द्वैपायन ! यह दोनों पुत्र ऐसे राज्यके योग्य नहीं हैं अतएव मेरा प्रिय और मनोहर अन्य अब एक पुत्र उत्पन्न करो ॥ १३ ॥

मेरे उनकी बातमें सम्मत होनेपर फिर उन्होंने आनंदित हो यथा समय अम्बिकाकी प्रार्थना करके कहा ॥ १४ ॥ हे पुत्रि! व्यासको आलिङ्गन करके अद्भुत गुणयुक्त कुरुराज वंशके योग्य कुलरक्षक एक पुत्र उत्पन्न करो ॥ १५ ॥ वधूने लज्जासे उस समय कुछ न कहा मैंने माताकी आज्ञानुसार रात्रिकालके समय जब शयनागारमें गमन किया ॥ १६ ॥ उस समय अम्बिकाने रूप यौवन सम्पन्न विचित्रवीर्यकी एक दासीको अनेक प्रकारके वसन आभूषणोंसे भूषित करके मेरे समीप भेज दिया ॥ १७ ॥ वह हंसगामिनी सुकेशी दाशी रक्तचन्दन और पुष्पमालासे विभूषित हो हावभाव सहित आकर ॥ १८ ॥ मुझको पलँगपर बैठाय स्वयं प्रेम रसमें डूबकर बैठ गई. हे मुनिवर !मैंने उसके भाव और विलाससे प्रसन्न होकर ॥ १९ ॥ रात्रिकालके समय प्रेमान्वित चित्रसे

तथेति सा मया प्रोक्ता मुदिता जननी तदा ॥ अंबिकां प्रार्थयामास सुतार्थं काल आगते ॥ १४ ॥ पुत्रि व्यासं समालिंग्य पुत्रमुत्पादयाऽद्भुतम् ॥ कुरु वंशस्यकर्तारं राज्यंयोग्यं वरानने ॥ १५ ॥ वधूर्लज्जान्विता किंचि न्नोवाच वचनं तदा ॥ गतोऽहं शयनागारे मातुस्तद्वचनान्निशि ॥ १६ ॥ दासी विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनसंयुता ॥ प्रेषितांऽबिकया त्वत्र विचित्राभरणांबरा ॥ १७ ॥ चंदनारक्तदेहा सा पुष्पमालाविभूषिता ॥ आयता हावसंयुक्ता सुकेशी हंसगामिनी ॥ १८ ॥ पर्यंके मां समा वेश्य संस्थिता प्रेमसंयुता ॥ प्रसन्नोऽहं तदा तस्याविलासेनाभवं मुने ॥ १९ ॥ रात्रौ सक्रीडितं प्रेम्णा तया सह मयाभृशम् ॥ वरो दत्तः पुनस्तस्य प्रसन्नेन तु नारद ॥ २० ॥ सुभगे भविता पुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ सुरूपः सर्वधर्मज्ञः सत्यवादी शमे रतः ॥ २१ ॥ स तदा विदुरो जातस्त्रयः पुत्रा मयाऽभवन् ॥ माया वृद्धिं गतासाधो परक्षेत्रोद्भवे मम ॥ २२ ॥ विस्मृतः शुकसंबधी विरहः शोककारणम् ॥ दृष्ट्वा त्रीन्स्वसुतान्कामं वीर्यवान् वीर्यसंमतान् ॥ २३ ॥ मायाबलवती ब्रह्मन्दुस्त्यजा ह्यकृतात्मभिः ॥ अरूपा च निरालंबा ज्ञानिनामपि मोहिनी ॥ २४ ॥

उनके संग अनेक क्रीडा की इसके उपरान्त प्रसन्न मनसे उसको वर देकर कहा ॥ २० ॥ हे सुभागे ! मेरे औरससे तुम्हारे सर्व सुलक्षण युक्तसुरूप सम्पूर्ण धर्मोंका जाननेवाला शान्त और सत्यवादी एक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २१ ॥ अनंतर यथासमयमें उसके विदुर नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ परक्षेत्रमें इस प्रकार मुझसे तीन पुत्रकी उत्पत्ति होनेपर यह मेरे पुत्र हैं इस प्रकार जानकर मेरे मनमें मायाकी वृद्धि होने लगी ॥ २२ ॥ तब मैं उन तीनों पुत्रोंको वीर्यवान् और वीर संमत देखकर अपने शोकका एक मात्र कारण शुकविरह भूलगया ॥ २३ ॥ द्विजेन्द्र ! माया अत्यंत बलवती और अजितेंद्रिय पुरुषोंको अत्यंत कठिनतामे छोड़ने योग्य है यह माया आकार और अवलम्बन शून्य होनेपर भी ज्ञानीगणोंको मोहित करती है ॥ २४ ॥

माताके स्नेहमें बंध और पुत्रके प्रति आसक्त होकर मेरा मन वनमें भी शांतिलाभ न कर सका ॥ २५ ॥ हे मुनिवर ! तब मेरा चित्त तराजूपर आरूढ़के समान अंदोलित होने लगा इससे मैं कभी हस्तिनामें और कभी सरस्वतीके तटमेंवास करने लगा एक स्थानमें स्थिर होकर न रह सका ॥ २६ ॥ कभी कभी विचार द्वारा इस प्रकार ज्ञान मेरे मनमें प्रतिभाव होने लगा कि, यह पुत्र किसके हैं ! यह स्नेहके बल मोहमात्र है अन्य कुछ नहीं है मेरे मरनेपर यह मेरे श्राद्धाधिकारी नहीं होंगे ॥ २७ ॥ यह पुत्र व्यभिचार द्वारा उत्पन्न हुए हैं यह मुझको क्या सुख देंगे ? हे मुनिवर ! इस प्रकार बलवती माया ही मेरे मनमें मोह विस्तार करती है ॥ २८ ॥ इस संसारको मिथ्या जानकर भी मैं मोहान्धकूपमें पतित हुआ हूं मैंने कभी कभी निर्ज्जनमें समाहित चित्तसे इस

मातरि स्नेहसंबद्धं तथा पुत्रेषु संवृतम् ॥ न मे चित्तंवने शांतिमगान्मुनिवरोत्तम ॥२५॥ दोलारूढं मनो जातं कदाचिद्धस्तिनापुरे ॥ पुनः सरस्वतीतीरे न चैकत्र व्यवस्थितिः ॥ २६ ॥ कदाचिच्चिंतयञ्ज्ञानं मानसे प्रतिभाति वै ॥ केऽमी पुत्राः क्व मोहोऽयं न श्राद्धार्हा मृत स्य मे ॥ २७ ॥ व्यभिचारोद्भवाः किं मे सुखदाः स्युः सुताः किल ॥ माया बलवती मोहं वितनोति हि मानसे ॥ २८ ॥ जानन्मोहांधकूपेऽस्मिन्पतितोऽहं मृषां मुने ॥ इत्यकुर्वं रहस्तापं कदाचित्सुसमाहितः ॥ २९ ॥ राज्यं प्राप ततः पांडुर्बलवान्भीष्मसंमतः ॥ तदा मम मनो जातं प्रसन्नं सुतकारणात् ॥ ३० ॥ कुंती माद्री सुरूपे द्वे भार्ये तस्य बभूवतुः ॥ शूरसेनसुता कुंती मद्रराजसुताऽपरा ॥ ३१ ॥ स शापं द्विजतः प्राप्य कामिनीद्वयसंयुतः ॥ पांडुर्निर्वेदमापन्नत्यक्त्वा राज्यं वनं गतः ॥ ३२ ॥ तदा मामाविशच्छोकः श्रुत्वा पुत्रं वने स्थितम्॥गतोऽहं तत्र यत्रायौ भार्याभ्यां सह संस्थितः ॥ ३३ ॥ तमाश्वास्यवने पांडुम्पुनः प्राप्तो गजाह्वये ॥ धृतराष्ट्रं समाभाष्य हागमं ब्रह्मजातटे ॥ ३४ ॥

विषयकी चिन्ता करके परिताप किया था ॥ २९ ॥ तदनन्तर भीष्मकी परामर्शसे बलवीर्य युक्त पाण्डु राज्यको प्राप्त हुआ तब भी पुत्रकी समृद्धि देखकर मेरा मन प्रसन्न हुआ हे मुनिवर ! यह भी उसी मायाका कार्य है ॥ ३० ॥ शूरसेन राजाकी कन्या कुन्ती और भद्रराजाकी कन्या माद्री यह दोनों स्वरूपा कामनी पाण्डुकी भार्या हुई ॥ ३१ ॥ स्त्रीसंग करनेसे तुम्हारी मृत्यु होगी इस प्रकार विप्र शापसे दुःखको प्राप्त हो पाण्डु राज्य परित्यागकर दोनों भार्याओंके संग वनको चलेगये ॥ ३२ ॥ उस पुत्र पाण्डुको वनमें वास करता हुआ सुन मेरे हृदयमें शोक उदय हुआ तब मैं दोनों भार्याओंके साहित अवस्थित उस पाण्डुके निकटजाय ॥ ३३ ॥ और उसको समझाकर फिर हस्तिनापुरमें आया और धृतराष्टके संग कथोपकथनकर सरस्वतीके तटपर आय

उपस्थित ॥ ३४ ॥ पाण्डुने वनाश्रममें उपस्थित होकर वहां धर्म ,वायु, इन्द्र और दोनों अश्विनी कुमारोंसे पांच क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराये ॥ ३५ ॥ कुन्तीसे युधिष्ठिर भीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र क्रमानुसार धर्म वायु और इन्द्रके औरससे ॥ ३६ ॥ और माद्रीसे नकुल और सहदेव दोनों अश्विनी कुमारके औरससे उत्पन्न हुए अनन्तर किसी समय पाण्डु निर्ज्जनमें स्थितरूप लावण्यवती माद्रीको आलिङ्गनकर ॥ ३७ ॥ शापके कारण मृत्युको प्राप्त हुए तब वहांके वास करनेवाले मुनिगणोंने अग्निमें उनके देहक संस्कार किया चिताकी अग्नि प्रज्वालित होनेपर पतिव्रता माद्री पतिके संग उसमें प्रविष्ट हो मृत्युको प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ कुंतीने पुत्रोंका प्रतिपालन करनेके लिये निवारित हो चिताकी अग्निमें प्रवेश न किया तब मुनिगणने शूरसेनकी कन्यासे ॥ ३९ ॥

क्षेत्रजान्पंच पुत्रान्स समुत्पाद्य वनाश्रमे ॥ धर्मतो वायुतः शक्रादश्विभ्यां पंच पांडवान् ॥ ३५ ॥ युधिष्ठिरो भीमसेनस्तथैवार्जुन इत्यपि ॥ कुंतीपुत्राः समाख्याता धर्मानिलसुरेशजाः ॥ ३६ ॥ नकुलः सहदेवश्च मद्रराजसुतासुतौ ॥ कदाचित्तु रहो माद्रीं समालिंग्य महीपतिः ॥ ३७ ॥ मृतः शापात्तु मुनिभिः संस्कृतो हुतभुङ्मुखे॥ माद्री तत्र सती भूत्वा प्रविष्टा पतिना सह ॥ ३८ ॥ स्थिता पुत्रयुता कुंती ज्वलिते जातवेदसि ॥ मुनयः सुतसंयुक्तां शूरसेनसुतां तदा ॥३९ ॥ दुःखितां पतिहीनां तामानिन्युर्गजसाह्वये ॥ समर्पिताऽथ भीष्माय विदुराय महात्मने ॥ ४० ॥ श्रुत्वाऽहं सुखदुःखाभ्यां पीडितस्तु परात्मभिः ॥ भीष्मेण पालिताः पुत्राः पांडोरिति विचिंत्यते ॥ ४१ ॥ विदुरेण तथा प्रीत्या धृतराष्ट्रेण धीमता ॥ दुर्योधनादयस्तस्य पुत्रा ये क्रूरमानसाः ॥ ४२ ॥ एकत्र स्थितिमापन्ना विरोधं चक्रुरद्भुतम् द्रोणाचार्यस्तु संप्राप्तस्तत्र भीष्मेण मानितः ॥ ४३ ॥ अध्यापनाय पुत्राणां पुरे तस्मिन्निवासितः ॥ कर्णः कुंत्या परित्यक्तो जातमात्रः शिशुर्यदा ॥ ४४ ॥ सूतेन पालितो नद्यां प्राप्तश्चाधिरथेन ह ॥ दुर्योधनप्रियश्चाभूत्कर्णः शूरतमस्तथा ॥ ४५ ॥

पुत्रोपत्ति हीन दुःखित कुंतीको संग ले हस्तिनामें जाय महात्मा भीष्म और विदुरको समर्पण किया ॥ ४० ॥ यह सुनकर मेरा मन पराये देहके निमित्त सुख दुःख सहित पीडित होने लगा बुद्धिमान् भीष्म और विदुर धृतराष्ट्र युधिष्ठिरादिको परम प्रियतम पाण्डुके पुत्र जानकर परम प्रीतिसहित उनका प्रतिपालन करने लगे दुर्योधनादि धृतराष्ट्रके क्रूरमन निष्ठुरपुत्रगण ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ एकत्र हो पांचों पाण्डवोंके संग अद्भुतरूप विरोध करने लगे द्रोणाचार्यके दैवात् वहां आनेपर भीष्मने उनका सन्मान करके ॥ ४३ ॥ कुरुपुत्रगणोंको पढानेके निमित्त हस्तिनापुरमे उनको वास कराया जिस समय कुन्तीने उत्पन्न होतेही बालक कर्णको त्याग दिया था ॥ ४४ ॥ उस नदीमें बहे जातेको लेकर सूतने पाललिया था कर्ण शूरगणोंमें अग्रगण्य होनेसे दुर्योधनको

अत्यंत प्रिय था ॥ ४५ ॥ क्रमानुसार भीम और दुर्योधनादिमें परस्पर विरोध होगया धृतराष्ट्रने उन सम्पूर्ण पुत्रोंके क्लेशकी चिन्ता करके ॥ ४६ ॥
विरोधकी शांतिके निमित्त वारणवत् नगरमें पांडवोंका विनाशस्थान बना दिया ॥ ४७ ॥ दुर्योधनने विद्वेश बुद्धिके वशीभूत हो अपने सुहृद पुरोचनको
भेजकर मनोहर जतुगृह बनवाया ॥ ४८ ॥ हे मुनिवर ! पृथाके सहित पांचों पांडवोंको जतुगृहमे दग्ध हुआ सुन पुत्रभावसे मैं दुःखसागरमें निमग्न हुआ
॥ ४९ ॥ अत्यन्त शोकातुर हो निर्ज्जन बनमें दिनरात ढूंढकर एकचक्रानगरीमें दुःखसे दुःखित अत्यंत कृश और परिपीड़ित पाण्डवगणोंको देखा ॥५०॥
मैंने उनके दर्शन लाभसे परितुष्ट हो उनको द्रुपदराजाकी नगरीमें शीघ्र भेजा ॥ ५१ ॥ उनके दुःखसे कातर होकर मृगचर्म पहनकर विप्रवेषसे जाय

परस्परं विरोधोऽभूद्भीम दुर्योधनादिषु ॥ धृतराष्ट्रस्तु संचिंत्य क्लेशं पुत्रेषु तेषु च ॥४६॥ निवासं कल्पयामास पांडवानां महात्मनाम् ॥
विरोधशमनायैव नगरे वारणावते ॥ ४७ ॥ दुर्योधनेन तत्रैव द्रोहाज्जतु गृहाणि वै ॥ कारितानि च दिव्यानि प्रेष्य मित्रं पुरोचनम् ॥
॥ ४८ ॥ श्रुत्वा जतुगृहे दग्धान्पांडवान्पृथया युतान् ॥ पौत्रभावान्मुनिश्रेष्ठ मग्नोऽहं व्यसनार्णवे ॥ ४९ ॥ शोकातुरो भृशं शून्ये वने
पश्यन्नहर्निशम् ॥ दृष्ट्वा मयैक चक्रायां पांडवा दुःखकर्शिताः ॥ ५० ॥ ततस्तुष्टमनाश्चाहं जातःपार्थान्विलोक्य च ॥ प्रेरितास्ते मयातूर्णं
द्रुपदस्य पुरं प्रति ॥ ५१ ॥ ते गतास्तत्र दुःखार्ता विप्रवेषधराः कृशाः ॥ मृगचर्मपरीधानाः सभायां संस्थितास्तदा ॥ ५२ ॥ कृत्वा
पराक्रमं जिष्णुः स जित्वा द्रुपदात्मजाम् ॥ चक्रुर्वि वाहं मानिन्या पंचैव मातृवाक्यतः ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वा विवाहं तेषां तु मुदितोऽहं भृशं
तदा ॥ ततो नागाह्वये प्राप्ताः पांचालीसहिता मुने ॥ ५४ ॥ निवासं खांडवप्रस्थं धृतराष्ट्रेण कल्पितम् ॥ पांडवानां द्विजश्रेष्ठ वसुदे
वसुतेन वै ॥ ५५ ॥ तर्पितः पावकस्तत्र विष्णुना सह जिष्णुना ॥ राजसूयः कृतो यज्ञस्तदाऽहं मुदितोऽभवम् ॥ ५६ ॥

राजसभासे विनीतभावसे वास करने लगा ॥ ५२ ॥ अर्जुनने पराक्रमप्रकाशपूर्वक लक्ष्यभेदकर द्रुपदराजाकी कन्या द्रौपदीको प्राप्त करनेपर माताकी आज्ञासे
पांचों पांडवोंने उस मानिनी राजकन्यासे पाणिग्रहण किया ॥ ५३ ॥ हे मुनिवर ! मैं उस समय उनका विवाह हुआ देख अत्यंत आनंदित हुआ अनंतर
पांडवगण पाञ्चालीके सहित फिर हस्तिनापुरमें उपस्थित हुए ॥ ५४ ॥ तब धृतराष्ट्रने खांडवप्रस्थमें पांडवोंका वासस्थान नियत किया तदनंतर वसुदेवके
पुत्र ॥ ५५ ॥ विष्णु जिष्णुके संग मिलित हो अग्निको तृप्त किया उसके उपरांत पांडवगणोंको राजसूययज्ञका अनुष्ठान करता हुआ देखकर मैं अत्यंत
आनंदित हुआ ॥ ५६ ॥

पांडवोंका विभव और शिल्पराज मयकी बनाई सभा देखकर दुर्योधनादि अत्यंत संतप्त हुए और अनर्थकर द्यूतक्रीडाका आरम्भ किया ॥ ५७ ॥ शकुनि छलद्यूतमें अत्यंत चतुर था, धर्मपुत्र अक्षक्रीडामें निपुण नहीं थे अतएव दुर्योधनने शकुनिद्वारा द्यूतक्रीडा कराय धर्मराजका सर्वस्व हर लिया और राजा द्रुपदकी कन्या याज्ञसेनीको राजसभामें अत्यंत अपमानित कर अति क्लेश दिया था ॥ ५८ ॥ अनंतर पांचालीके सहित पांडवगण बारहवर्ष वनमें वास करनेके निमित्त चले गये इससे मैं अत्यंत दुःखित हुआ ॥ ५९ ॥ हे मुनिवर ! मैं सनातनधर्म जानकर भी भ्रमवश इस प्रकार सुखदुःखात्मक संसारसागरमें निमग्न हुआ हूं ॥ ६० ॥ मैं कौन हूं ? यह सब पुत्र किसके हैं और कौन माता है अथवा सुख किस प्रकार है ? यह सब विचार कर मेरा मन दिनरात

दृष्ट्वाऽथ विभवं तेषां तथा मयकृतां सभाम् ॥ दुर्योधनोऽतिसंतप्तो दुरोदरम थाकरोत् ॥ ५७ ॥ दुर्द्यूतवेदी शकुनिरनक्षज्ञश्च धर्मजः ॥ हृतं राज्यं धनं सर्वं यज्ञसेनी च क्लेसिता ॥ ५८ ॥ वने द्वादश वर्षाणि पांडवास्ते विवासिताः ॥ पांचालीसहितास्तेन दुखं मे जनितं भृशम् ॥ ५९ ॥ एवं नारद संसारे सुखदुःखात्मके भृशम् ॥ निमग्नोऽहं भ्रमेणैव जानन्धर्मं सनातनम् ॥ ६० ॥ कोऽहं कस्य सुतास्तेऽमी का माता किं सुखं पुनः ॥ येन मे हृदयं मोहाद्भ्रमतीति दिवानिशम् ॥ ६१ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि संतोषो नाधिगच्छति ॥ दोलारूढं मनो मेऽत्र चंचलं न स्थिरं भवेत् ॥ ६२ ॥ सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ संदेहं मे निवर्तय ॥ तथा कुरु यथाऽहंस्यां सुखितो विगतज्वरः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति मे वचनं श्रुत्वा नारदः परमार्थवित् ॥ मामाह च स्मितं कृत्वा पृच्छंतं मोहकारणम् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ पाराशर्य पुराणज्ञ किं पृच्छसि सुनिश्चयम् ॥ संसारेऽस्मिन्विना मोहं कोऽपि नास्ति शरीरवान् ॥ २ ॥

भ्रमण करता है ॥ ६१ ॥ हे मुनिवर ! मैं क्या करूं ? कहां जाऊं किसीसे मुझको संतोष प्राप्त नहीं होता मेरा मन मानो दोला [तराजू] में आरुढ़ होकर आंदोलित होता है कभी स्थिर नहीं होता ॥ ६२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप सर्वज्ञ हैं अतएव आप मेरा सन्देह निवारण कीजिये जिससे मेरे मनका ज्वर दूर हो और जिससे मैं सुखी हो सकूं आप वही कीजिये ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! मेरे इस प्रकार मोहका कारण पूँछनेपर मेरे इस प्रकार वचन सुन परमार्थतत्त्वके जाननेवाले महर्षि नारद कुछेक हास्यकर कहने लगे ॥ १ ॥ नारदजी बोले हे पराशरतनय ! तुम सब पुराणोंको जानतेहो तब तुम मुझसे मोहका निश्चित कारण क्यों पूछते हो ? इस संसारमें मोहके अतिरिक्त

कोई भी शरीरधारी जीव नहीं ॥ २ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रादि देवगण जनक तथा कपिलादिऋषिगण यह सभी मायासे परिवेष्टित हो संसारमार्गमें भ्रमण करते हैं ॥ ३ ॥ मनुष्य मुझको ज्ञानी कहते हैं किंतु मैं भी साधारण प्राकृतमनुष्यके समान भ्रांत हूं अपने माया मोहका पहला वृत्तांत निश्चित प्रकारसे कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ ४ ॥ हे वासवीनंदन ! मैंने पहले भार्याके निमित्त अपने किये हुए मोहसे महादुःख अनुभव किया है ॥ ५॥ एक दिन मैं और पर्वत नामक देवर्षि दोनों मिलकर भारतनामक विख्यात अत्युत्तम भूमिखण्ड देखनेके निमित्त देवलोकसे मृत्युलोकमें आये ॥ ॥ ६ ॥ हम दोनों मिलकर पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करते करते तीर्थ और परम पवित्र स्थान तथा मुनिगणोंके संपूर्ण मनोहर आश्रम देखते हुए विचरण करने लगे ॥ ७॥ भ्रमण करनेको

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः सनकः कपिलस्तथा ॥ मायया वेष्टिताः सर्वे भ्रमंति भववर्त्मने ॥ ३ ॥ ज्ञानिनं मां जनो वेत्ति भ्रांतोऽहं सर्वलोकवत् ॥ शृणु मे पूर्ववृत्तान्तं प्रब्रवीमि सुनिश्चितम् ॥ ४ ॥ दुःखं मया यथा पूर्वमनुभूतं महत्तरम् ॥ स्वकृतेन च मोहेन भार्यार्थे वासवीसुत ॥ ५ ॥ एकदा पर्वतश्चाऽहं देवलोकान्महीतलम् ॥ प्राप्तो विलोकनार्थाय भारतं खंडमुत्तमम् ॥ ६ ॥ भ्रमंतौ सहिताबुर्व्यां पश्यंतौ तीर्थमंडलम् ॥ पावनानि च स्थानानि मुनीनामाश्रमाञ्छुभान् ॥ ७ ॥ शपथं देवलोकात्तु कृत्वा पूर्वं परस्परम् ॥ चलितौ समये चेमं संमंत्र्य निश्चयेन वै ॥ ८ ॥ चित्तवृत्तिस्तु वक्तव्या यादृशी यस्य जायते ॥ शुभा वाऽप्यशुभा वाऽपिन गोप्तव्य कदाचन ॥ ९ ॥ भोजनेच्छा धनेच्छाऽपि रतीच्छा वा भवेदपि ॥ यादृशी यस्य चित्ते तु कथनीया परस्परम् ॥ १० ॥ इत्यावां समयं कृत्वा स्वर्गाद्भूलोकमागतौ ॥ एकचित्तौ मुनी भूतौ विचरंतौ यथेच्छया ॥ ११ ॥ एवं भ्रमंतौ लोकेऽस्मिन्ग्रीष्मांते समुपागते ॥ संजयस्य पुरं रम्यं सप्राप्तौ नृपतेः पुनः ॥ १२ ॥

चलनेके पहलेही देवलोकमें हमने परामर्श करके निश्चयपूर्वक परस्पर नियम बंधन किया था कि ॥ ८ ॥ पृथ्वीमंडलमें भ्रमण करनेके समय जिसकी जिस प्रकार चित्तकी वृत्तिका उदय हो अच्छा हो अथवा बुरा हो वह उनको कभी न छिपावे ॥ ९ ॥ भोजनकी इच्छा धन प्राप्त करनेकी इच्छा अथवा रमणकी इच्छा हो जिसके मनमें जिसप्रकारके भावका उदय हो वह उसको प्रकाश करके कहें ॥ १० ॥ हम दोनों उस प्रकार नियम कर एकांत चित्तसे मुनिवरोंके आचरणमें स्थित हो इच्छानुसार भूलोक भ्रमणमें प्रवृत हुए ॥ ११ ॥ इस प्रकार पृथ्वीमें भ्रमण करते करते ग्रीष्मका अन्त होनेपर वर्षाकाल आगया हम सञ्जय नामक राजाके मनोहर पुरमें उपस्थित हुए ॥ १२ ॥

राजाने भक्तिसहित हमारा अत्यंत सन्मान करके हमारी पूजा की तब हमने चार मास पर्यंत उन महात्माके गृहमें वास किया ॥ १३ ॥ वर्षाके चार महीनेमें समस्त मार्ग सदाहीं अत्यंत दुर्गम रहते हैं अतएव इस समयमें एक स्थानपरही वास करना बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य है ॥ १४ ॥ ब्राह्मणगण आठ महीने कार्यवश सदाही प्रवास करें सुखकी इच्छा करनेवाले पुरुष वर्षाकालके समय परदेशको न जायँ ॥ १५ ॥ यह सब विचारकर हम दोनों जनोंने वहां संजय राजाके गृहमें वास किया ॥ १६ ॥ उन महीपतिके दमयन्ती नामक सुदती और परमरूपवती एक कन्या थी राजाने उसको हमारी सेवा करनेके निमित्त नियुक्त कर दिया ॥ १७ ॥ वह विशालनयना विवेकवती राजपुत्री भलीभांति उद्यमशील थी वह दिनरात हम दोनोंकी सेवा करने लगी ॥ १८ ॥

तेन संपूजितौ भक्त्या राज्ञा संमानितौ भृशम् ॥ स्थितौ तत्र गृहे तस्य चातुर्मास्यं महात्मनः ॥ १३ ॥ वार्षिकाश्चतुरो मासा दुर्गमाः पथि सर्वदा ॥ तस्मादेकत्र विबुधैः स्थातव्यमिति निश्चयः ॥ १४ ॥ अष्टौ मासांस्तु प्रवसेत्सदा कार्यवशाद् द्विजः ॥ वर्षाकाले न गंतव्यं प्रवासे सुखमिच्छता ॥ १५ ॥ इति संचिंत्य मनसा संजयस्य गृहे तदा ॥ संस्थितौ मानितौ राज्ञ कृतातिथ्यौ महात्मना ॥१६॥ दमयंतीति विख्याता तस्य पुत्री महीपतेः ॥ आज्ञप्ता परिचर्यार्थं सुदती सुन्दरी भृशम् ॥१७॥ विवेकज्ञा विशालक्षी राजपुत्रीकृतोद्यमा ॥ सेवनं सर्वकाले च व्यदधादुभयोरपि ॥१८॥ स्नानार्थमुदकं काले भोजनं मुष्टमायतम् ॥ मुखवासं तथा चान्यं यदिष्टं तद्ददाति सा ॥१९॥ मनोऽभिलषितान्कामानुभयोरपि कन्यका ॥ व्यजनासनशय्यादीन्वांछितानप्यकलपयत् ॥ २० ॥ एवं संसेव्यमानौ तु स्थितौ राज्ञो गृहे किल ॥ वेदाध्ययनसंशीलावावां वेदव्रते रतौ ॥ २१ ॥ अहं वीणां करे कृत्वा साधयित्वा स्वरोत्तमम् ॥ गायत्रं साम सुस्वादमगां कर्णरसायनम् ॥ २२ ॥ राजपुत्री तु तच्छ्रुत्वा साम गानं मनोहरम् ॥ बभूव मयि रागाढ्या प्रीतियुक्ता विशारदा ॥ २३ ॥

यथा समयमें स्नानके लिये जल स्वच्छ अत्युत्तम भोजन ताम्बूलादि जो कुछ इष्ट वस्तु है उन सबको देने लगी ॥ १९ ॥ वह राजकन्या व्यजन आसन और शय्या इत्यादि जो कुछ वांछित द्रव्य है वह सब हमको प्रस्तुत कर रखती ॥२०॥ इस प्रकार राजकन्या हमारी सेवा करने लगी मैं भी वेद अध्ययन और वेदोक्त व्रत कार्य में निरत रहता ॥ २१ ॥ हे द्वैपायन ! मैं उससमय करमें वीणा धारण कर उत्तम उत्तम स्वर निकालकर कर्णरसायन मनोहर सामगायन करने लगा ॥२२॥ गीतिरसज्ञा राजकन्या यह मनका मोहित करनेवाला सामगान सुनकर मुझमें अनुरागिणी और प्रीतिमती होने लगी ॥२३॥

मेरे प्रति राजकन्याका अनुराग दिन दिन बढने लगा उसको अपने प्रति प्रीतियुक्त हुआ देखकर उस राजकन्यामें मुझको भी मोह उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ इस प्रकार राजकन्या मुझमें रतिरस युक्त होकर मेरे और पर्वतके भोजनादि विषयमें कुछ कुछ भेद करके सेवाका बैलक्षण्य करने लगी ॥ २५ ॥ मुझको स्नान करनेके लिये उष्णजल और पर्वतको शीतल जल भोजनके लिये मुझको उत्तम दधि और पर्वतको तक्र अर्थात् मट्ठा ॥ २६ ॥ शयन करनेके लिये मुझको सुविमल शुभ्र शय्या, पर्वतको मलिन बिछौना प्रदान करने लगी, इस प्रकार राजकन्या परम प्रीति सहित मेरी सेवा करने लगी किंतु पर्वतकी इस प्रकार सेवा नहीं की ॥ २७ ॥ वह सुन्दरी मुझको प्रेमपूर्वक नेत्रोंसे देखने लगी किंतु पर्वतको इस प्रकार नहीं देखती पर्वत राजकन्याका इस प्रकार प्रेम

दिनेदिनेऽनुरागोऽस्या मयि वृद्धिं गतः परः ॥ ममापि प्रीतियुक्तायां मनो जातं स्पृहापरम् ॥२४॥ मम तस्य च सा कन्याभोजनादिषु कर्हिचित् ॥ अकरोदंतरं किंचित्सेवाभेदं रसा न्विता ॥ २५ ॥ स्नानायोष्णजलं मह्यं पर्वताय च शीतलम् ॥ दधि मह्यं तथा तक्रं पर्वतायाप्यकल्पयत् ॥ २६ ॥ शयनास्तरणं शुभ्रं पदर्थे पर्यकल्पयत् ॥ प्रीत्या परमया यद्वत्पर्वताय न तादृशम् ॥ २७ ॥ विलोकयति मां प्रेम्णा सुन्दरी न च पर्वतम् ॥ ततोऽस्यास्तादृशं दृष्ट्वा पर्वतः प्रेमकारणम् ॥२८॥ मनसा चिंतयामास किमेतदिति विस्मितः ॥ पप्रच्छ मां रहः सम्यग्ब्रूहि नारद सर्वथा ॥ २९ ॥ राजपुत्री त्वयि प्रेम करोति मुदिता भृशम् ॥ ददाति भक्ष्यभोज्यानि स्नेहयुक्ता समंततः ॥ ३० ॥ न तथा मयि भेदोऽत्र संदेहं जनयत्यसौ ॥ मन्यते त्वां पतिं कर्तुसर्वथा संजयात्मजा ॥३१॥ तवाऽपि तादृशं भावं जानामि लक्षणैरहम् ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्च ज्ञायते प्रीतिकारणम् ॥ ३२ ॥ सत्यं वद न ते मिथ्या वक्तव्यं वचनं मुने ॥ स्वर्गतः समयं कृत्वा चलितौ संस्मरधुना ॥ ३३ ॥

कारण देखकर ॥ २८ ॥ आश्चर्य युक्त हो यह क्या हुआ इस प्रकार मनमें चिंता करने लगा अनंतर निर्जनमें मुझसे पूँछा हे नारद ! तुम भलीभांति संपूर्ण विवरण मुझसे कहो ॥ २९ ॥ राजकन्या प्रीतिमती होकर तुममें अत्यंत प्रेमप्रकाश करती है और स्नेह युक्त भक्ष्य भोज्य देती है ॥ ३० ॥ किंतु मुझसे इस प्रकार नहीं करती इस प्रकार सेवाका प्रभेद देखकर मेरे मनमें संदेह होता है. बोध होता है कि, सञ्जय राजाकी कन्या तुमको पति करनेके निमित्त भली भांति इच्छा करती है ॥ ३१ ॥ तुम्हारे भी मनका भाव इसी प्रकार है मैंने लक्षण द्वारा जान लिया. नेत्र और मुखके विकारसे प्रीतिका लक्षण जाना जाता है ॥ ३२ ॥ जो हो हे मुनिवर ! तुम मुझसे सत्य कहो कभी झूंठ नहीं कहना हमने स्वर्गसे निकलनेके पहिलेही जो नीयम किया है उसको स्मरण

कर सत्य कहो ॥ ३३ ॥ नारदजीने कहा पर्वत जब मुझसे हठात् इस प्रकार पूंछने लगा तब मैंने अत्यंत लज्जित होकर कहा ॥ ३४ ॥ हे पर्वत ! यह विशालाक्षी राजकन्या मुझको पति करनेके निमित्त उद्यत हुई है मेरे भी मनका भाव राजकन्यामें भलीभांति बद्ध हुआ है ॥ ३५ ॥ पर्वत मेरा यह वचन सुनकर अत्यंत कुपित हुआ और धिक् नारद धिक् नारद यह वचन बारंबार कहने लगा ॥ ३६ ॥ तुमने पहले अनेक शपथ करके मुझको छला है अतएव हे मित्रद्रोहिन् ! मेरे शापसे तुम्हारा वानरके समान मुख हो ॥ ३७ ॥ महात्मा पर्वतने कुपित होकर इस प्रकार शाप दिया तो मेरा मुख वानरके समान कुटिल और विकृताकार हो गया ॥ ३८ ॥ मैंने भगिनीका पुत्र जानकर भी उसको क्षमा न किया कोपान्वित होकर शाप दिया कि तेरी भी स्वर्गलोकमें

नारद उवाच ॥ पृष्टोऽहं पर्वतेनेदं कारणं तु हठाद्यदा ॥ तदाऽहं ह्रीसमाक्रांतः संजातश्चाब्रुवं पुनः ॥ ३४ ॥ पर्वतैषा विशालाक्षी पतिं मां कर्तुमुद्यता ॥ ममापि मानसो भावो वर्ततेऽस्यां विशेषतः ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं पर्वतः कोपसंयुतः ॥ मामुवाच मुनिर्वाक्यं धिग्धिगिति पुनः पुनः ॥ ३६ ॥ प्रथमं शपथान्कृत्वा वंचितोऽहं त्वया यतः ॥ भव वानरवक्त्रस्त्वं शापाच्च मम मित्रध्रुक ॥ ३७ ॥ इति शप्तस्तु तेनाहं कुपितेन महात्मना ॥ सहसा ह्यभवं क्रूरः शाखामृगमुखस्तदा ॥ ३८ ॥ मयाऽपि न कृता तस्मिन्क्षमा तु भगिनी सुते ॥ सोऽपि शप्तोऽति कोपाद्वै मास्वर्गे ते गतिः किल ॥ ३९ ॥ स्वल्पेऽपराधे यस्मान्मां शप्तवानसि पर्वत ॥ तस्मात्तवापि मंदात्मन्मृत्युलोके स्थितिः किल ॥ ४० ॥ पर्व तस्तु गतस्तस्मान्नगराद्विमना भृशम् ॥ अहं वानरवक्त्रस्तु संजातस्तत्क्षणादपि ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा मा वानरं क्रूरं राजपुत्री विलक्षणा ॥ विमनाऽतीव संजाता वीणाश्रवणलालसा ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ ततः किमभवद्ब्रह्मन्कथं शापान्निवर्तितः ॥ मानुषास्यः पुनर्जातो भवान्ब्रूहि यथाविधि ॥ ४३ ॥

गति नहीं होगी ॥ ३९ ॥ हे पर्वत ? अल्प अपराधसे ही तैंने मुझको शाप दिया है इससे तेरी बुद्धि अत्यंत हीन दिखाई देती है जो हो उस समय मर्त्यलोकमें तेरा वास होगा ॥ ४० ॥ अनंतर पर्वत अत्यंत विमन होकर उस नगरसे निकला मेरा भी तत्काल मर्कटके समान मुख हो गया ॥ ४१ ॥ मेरा वानरके समान कुटिल मुख देखकर राजकन्या विमन हो गयी उसको फिर पहलेके समान प्रफुल्लित नहीं देखा किंतु वीणा सुननेकी इच्छा पहलेके समान नहीं दीखने लगी ॥ ४२ ॥ व्यासजीने कहा हे मुनिवर ! इसके उपरांत फिर क्या हुआ आपने किस प्रकार शापसे छूटकर फिर मनुष्यके समान मुख प्राप्त किया ॥ ४३ ॥

पर्वतऋषि कहां गये ? और किस प्रकार कब किस स्थानमें आपका पुनर्वार मिलन हुआ यह सम्पूर्ण विवरण मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ४४ ॥ नारदजीने कहा हे महाभाग ! मैं मायाका महत चरित्र अब क्या कहूं ? पर्वतके कुपित होकर चले जानेपर फिरमैं अत्यन्त दुःखित हुआ ॥ ४५ ॥ राजकन्या फिर मेरी अधिक सेवा करने लगी, पर्वत के चले जानेपर भी मैं उसी स्थानमें वास करने लगा ॥ ४६ ॥ वानरके समान मुख होनेसे मैं अत्यन्त दीन और दुःखित हुआ और इसके उपरान्त मेरा क्या होगा यह जानकर मैं भलीभाँति चिन्तासे अत्यन्त कातर होगया ॥ ४७ ॥ अनंतर राजासञ्जयने अपनी कन्या दमयन्तीको यौवनकुसुम कुछेक विकसित हुई देखकर उसके विवाहके निमित्त प्रधान मन्त्रीसे पूँछा ॥ ४८ ॥ कन्याका विवाह

पर्वतः क्व गतो भूयः संगमो युवयोरभूत ॥ कदा कुत्र कथं सर्वं विस्तरेण वदस्वह ॥ ४४ ॥ नारद उवाच ॥ किं ब्रवीमि महाभाग मायायाश्चरितं महत् ॥ दुःखितोऽहं भृशं तत्र पर्वत रुषिते गते ॥ ४५ ॥ पुनः सेवापराऽत्यर्थ राज पुत्री ममाभवत ॥ गतेऽथ पर्वते कामं स्थितस्तत्रैव सद्मनि ॥ ४६ ॥ अहं दुःखान्वितो दीनस्तथा वानरवन्मुखः ॥ विशेषेण तु चिन्तार्तः किं मे स्यादिति चिंतयन् ॥ ४७ ॥ संजयोऽथ सुतां दृष्ट्वा किंचित्प्रकटयौवनाम् ॥ विवाहार्थे राजसुतामपृच्छत्सचिवं तदा ॥ ४८ ॥ विवाहकालः संप्राप्तः सुतायाः मम सांप्रतम् ॥ योग्यं वरं मम ब्रूहि राजपुत्रं सुसंमतम् ॥ ४९ ॥ रूपौदार्यगुणैर्युक्तं शूरं सुकुल संभवम् ॥ विवाहं विधिवत्पुत्र्याः करोमि किल सांप्रतम् ॥ ५० ॥ प्रधानस्त्वब्रवीद्राजन् राजपुत्रा ह्यनेकशः ॥ वर्तते भुवि पुत्र्यास्ते योग्याः सर्वगुणान्विता ॥ ५१ ॥ यस्मिन्रुचिस्ते राजेंद्र तमाहूय नृपात्मजम् ॥ देहि कन्यां धनं भूरि हस्त्यश्वरथसंयुतम् ॥ ५२ ॥ नारद उवाच ॥ पितुश्चिकीर्षितं ज्ञात्वा दमयंती तदा नृपम् ॥ धात्र्या मुखेन वाक्यज्ञा तमुवाच रहः स्थितम् ॥ ५३ ॥

करनेका समय उपस्थित हुआ है इस समय विधिपूर्व्वक उसका विवाह करो मनोमत वरके योग्यरूप, गुण और औदार्ययुक्त धीर तथा वीर एवं सत्कुलोत्पन्न राजपुत्र कौन है वह तुम मुझसे भलीभांति कहो ॥ ४९ ॥ ५० ॥ मन्त्रीने कहा हे राजन् ! सर्व्व विधि गुणयुक्त आपकी कन्याके योग्य अनेक राजपुत्र पृथ्वीमंडलमें विद्यमान हैं ॥ ५१ ॥ जिस राजपुत्रको आपकी इच्छा हो उसकोही बुलाकर हाथी, घोडा रथ और धन रत्नादिके सहित कन्याप्रदान कीजिये ॥ ५२ ॥ नारदजी बोले तदनन्तर दमयंतीने पिताका अभिप्राय जानकर अपनी अभिलाषा धात्रीके मुखद्वारा राजासे निवेदन की ॥ ५३ ॥

धात्रीने जाकर कहा हे महाराज ! आपकी कन्या दमयंतीने मुझसे कहा है कि हे धात्रि ! जब मेरा पिता सुस्थचित्तसे स्थित हों तब तुम उनसे एकान्तमें मेरा वचन निवेदन करके कहना कि ॥५४॥ मैंने वीणाके नादरूप मोहनसे मोहित होकर महती नाम्नी वीणाके बजानेमें विशारद बुद्धिमान् नारदमहर्षिको वरण किया है अन्य कोई मुझको प्रिय नहीं होगा ॥ ५५ ॥ हे तात ! नारदके संग मेरा विवाह कर मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण कीजिये, हे धर्म्मज्ञ ! मैं नारदके अतिरिक्त अन्य किसीको भी पतित्वमें भर्त्ता वरण नहीं करूँगी ॥ ५६ ॥ हे पितः ! मैं नक्र तिमिङ्गिलादि (नाके घडियालादिक) मुक्त सुखविघातक पदार्थ विवर्जित लवण विहीन सुमधुर आनंदरसात्मक सुखपरिपूर्ण नादसिंधुमें निमग्न हुई हूँ अन्य किसीसे भी मेरा मन संतुष्ट नहीं होगा ॥ ५७ ॥

धात्र्युवाच ॥ दमयंती महाराज पुत्री ते समथाब्रवीत् ॥ पितरं ब्रूहि धात्रेयि वचनान्मे सुखान्वितम् ॥ ५४ ॥ मया वृतोऽयं मेधावी नारदो महतीयुतः ॥ नादमोहितया कामं नाऽन्यः कोऽपि प्रियो मम ॥ ५५ ॥ कुरु मे वांछितं तात विवाहं मुनिना सह ॥ नान्यं वरिष्ये धर्मज्ञा नारदं तुपतिं विना ॥ ५६ ॥ मग्नाऽहं नादसिंधौ वैनक्रहीने रसात्मके ॥ अक्षारे सुखसंपूर्णे तिमिंगिलविवर्जिते ॥ ५७॥ इतिदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ तत्पुत्र्या वचनं श्रुत्वा राजा धात्रीमुखात्ततः ॥ भार्यां प्रोवाच कैकेयीं समीपस्थां सुलोचनाम् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ यदुक्तं वचनं कांते धात्र्या तत्तु त्वयाश्रुतम् ॥ वृतोऽयं नारदः कामं मुनिर्वा नरवक्त्रभाक् ॥ २ ॥ किमिदं चिंतितं पुत्र्या बुद्धिहीनं विचेष्टितम् ॥ कथमस्मै मया देया कन्या हरिमुखाय सा ॥ ३ ॥ क्वासौ भिक्षुः कुरूपः क्व दमयंती ममात्मजा ॥ विपरीतमिदं कार्यं न विधेयं कदाचन ॥ ४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ नारदजीने कहा राजाने धात्रीके मुखसे कन्याका इस प्रकार वचन सुनकर समीप बैठीहुई सुलोचना कैकेयी नामक महिषीसे कहा ॥ १ ॥ हे कांते ! धात्रीने जो कहा वह तुमने सुना ? दमयंतीने उस वानरवदन नारद मुनिको मनमें पति किया है ॥ २ ॥ दमयंतीने क्या विचारकर यह निश्चय किया है जो हो वह अत्यन्त बुद्धिहीनका कार्य हुआ है इसमें सन्देह नहीं उसका वदन बंदरके समान है मैं उसको किस प्रकार वह भुवनधन्यकन्यारत्न प्रदान करूँ ? ॥ ३ ॥ कुरूप और भिक्षुक नारद मुनि कहां और नेत्रोंको आनंद देनेवाली मेरी कन्या दमयंती कहां यह कार्य समस्तही शास्त्रीय और वृद्धजनसम्मत युक्तिद्वारा उसको इस हठकारिताके कार्यसे निवारित करो ॥ ४ ॥

पतिके यह वचन सुनकर दमयंतीकी माताने उसको निर्ज्जनमें बुलाकर कहा हे वत्से ! तुम्हारा यह भुवनमोहनरूप कहां ? र धनहीन बन्दरमुख नारद मुनि कहां ॥ ६ ॥ तुम चतुर हो तो उस भिक्षुकके प्रति तुम्हारा इस प्रकार मोहभाव किस कारण हुआ हे वत्से ! देखो तुम राजकन्या हो तुम्हारा देह अत्यंत कोमल लताके समान है और वह सदा भस्म मलते रहते हैं इससे उन मुनिका देह अत्यंत रुक्ष होगया है ॥ ७ ॥ हे विमले ! तुम उस बन्दरमुख मुनिसे किस प्रकार बातचीत करोगी ? तुम किसप्रकार कुत्सित पुरुषके प्रति अनुरागिणी होती है इससे तुमको क्या प्रीति प्राप्त होगी ॥ ८ ॥ उत्तम पुरुष राजवंशके संग तुम्हारा विवाह होगा तुम इस प्रकार हठकारिताका कार्य कभी विपरीत है यह कभी कर्त्तव्य नहीं ॥ ५ ॥ हे सुकेशि ! तुम निर्ज्जनमें बुलाकर

तामेकान्ते सुकेशांते निवारय हठात्सुताम् ॥ युक्त्या मुनिरतां मुग्धां शास्त्रवृद्धानुसारया ॥ ५ ॥ इति भर्तृवचः श्रुत्वा जननी तामथा ब्रवीत् ॥क्व ते रूपं मुनिः क्वासौ वानरास्योऽधनः पुनः ॥ ६ ॥ कथं मोहमवाप्ताऽसि भिक्षुके चतुरा पुनः ॥ लताकोमलदेहा त्वं भस्मरूक्षतनुस्त्वयम् ॥ ७ ॥ वार्ता वानरवक्रेण कथं युक्ता तवानघे ॥ का प्रीतिः कुत्सिते पुंसि भविष्यति शुचिस्मिते ॥ ८ ॥ वरस्ते राजपुत्रोऽस्तु मा कुरु त्वं वृथा शठम् ॥ पिता ते दुःखमाप्नोति श्रुत्वा धात्रीमुखा द्वचः ॥ ९ ॥ लग्नां बुबूलवृक्षेण कोमलां मालतीं लताम् ॥ दृष्ट्वा कस्य मनः खेदं चतुरस्य न गच्छति ॥ १० ॥ दासेरकाय तांबूलीद लानि कोमलानि कः ॥ ददाति भक्षणार्थाय मूर्खोऽपि धरणीतले ॥ ११ ॥ वीक्ष्य त्वां करसंलग्नां नारदस्य समीपतः ॥ विवाहे वर्तमाने तु कस्य चेतो न दह्यति ॥ १२ ॥ कुमुखेन समं वार्ता न रुचिं जनयत्यतः ॥ आमृतेस्तु कथं कालः क्षपितव्य स्त्वयाऽमुना ॥ १३ ॥

मत करो तुम्हारे पिता धात्रीके मुखसे यह बात सुनकर अत्यन्त दुःखित हुए हैं ॥ ९ ॥ हे कोमलाङ्गि ! तुम मनमें विचार कर देखो कि, कण्टकी वृक्षमें कोमल मालती लता लगी हुई देखकरकौन बुद्धिमान् पुरुषके अंतःकरणमें दुःख उदय न होगा ? ॥ १० ॥ इस पृथ्वीमें मूर्ख पुरुष भी कंटकलम्पट ऊँटको कोमल ताम्बूलीदल भक्षण करनेके लिए नहीं देगा ॥ ११ ॥ जब तुम्हारा विवाहकाल उपस्थित होगा तब तुम नारदके निकट जाओगी तब तुमको उनके कर लग्न देख कर किसका मन दुःखानलसे दग्ध न होगा ? ॥ १२ ॥ कुमुख पुरुषके संग बातचीत करनेमें किसीकी भी रुचि नहीं होती, तुम उनके संग मरणकाल पर्यन्त किस प्रकार समय व्यतीत करोगी ॥ १३ ॥

नारदजीने कहा माताके इस प्रकार वचन सुनकर मुझमें अत्यन्त कृतनिश्चय वह सुकुमारी दमयंती अत्यन्त कातर हो मातासे कहने लगी ॥१४॥ हे जननि! जो पुरुष रस मार्गका पथिक और जो रसका जाननेवाला नहीं है उसके मुख और रूपसे क्या हो सकता है! उस नैपुण्य विहीन मूर्ख पुरुषके धन और राज्यसे क्या होगा ॥ १५ ॥ वनमें विचरण करनेवाली हारिणियें नादरससे मोहित होकर गायकगणोंको प्राण तक भी दे देती हैं अतएव वहभी धन्य हैं किन्तु अरसज्ञ मूर्ख मनुष्योंको धिक्कार है ॥ १६ ॥ हे मातः! नारदऋषि जो सप्तस्वरात्मिक संगीत विद्या जानते हैं स्वयं आशुतोषशिवके अतिरिक्त अन्य कोई तीसरापुरुष उसको नहीं जानता ॥ १७ ॥ मूर्ख पुरुषके सहित सहवास करनेसे क्षणक्षणमें मरण आकर उपस्थित होता है गुणहीन पुरुषके धनवान् अथवा परम रूपवान् होनेपर भी उसको सर्वदा त्याग करना श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ १८ ॥ वृथा मदगर्वसे भरे मूर्ख राजाओंकी मित्रतामें धिक्कार है

नारद उवाच ॥ इतिमातुर्वचः श्रुत्वा दमयंती भृशातुरा ॥ मातरं प्राह तन्वंगी मयिसा कृतनिश्चया ॥ १४ ॥ किं मुखेन च रूपेण मूर्खस्य च धनेन किम् ॥ किं राज्येनाविदग्धस्य रसमार्गाविदोऽस्य च ॥ १५ ॥ हरिण्योऽपि वने धन्या या नादेनविमोहिताः ॥ मातः प्राणान्प्रयच्छंति धिङ्‌ मूर्खान्मानुषान्भुवि ॥ १६ ॥ नारदो वेत्ति यां विद्यां मातः सप्तस्वरात्मिकाम् ॥ तृतीयः कोऽपि नो वेद शिवादन्यः पुमान्किल ॥ १७ ॥ मूर्खेण सह संवासो मरणं तत्क्षणे क्षणे ॥ रूपवान्धनवांस्त्याज्यो गुणहीनो नरः सदा ॥ १८ ॥ धिङ्‌ मैत्रीं मूर्खभूपाले वृथा गर्व समन्विते ॥ गुणज्ञे भिक्षुके श्रेष्ठा वचनात्सुखदायिनी ॥ १९ ॥ स्वरज्ञो ग्रामवित्कामं मूर्छनाज्ञानभेदभाक् ॥ दुर्लभः पुरुषश्चाष्टरसज्ञो दुर्बलोऽपि वै ॥ २० ॥ यथा नयति कैलासं गंगा चैव सरस्वती ॥ तथा नयति कैलासं स्वरज्ञान विशारदः ॥ २१ ॥ स्वरमानं तु यो वेद स देवो मानुषोऽपि सन् ॥ तप्तभेदं न यो वेद स पशुः सुरराडपि ॥ २२ ॥

गुणज्ञ पुरुषके भिक्षुक होनेपर उसके संग बातचीत करनेमें ही सब प्रकारसे श्रेष्ठ है, क्यों कि उसमें अन्य बात दूर रहे इसके संग बातचीत करनेमें ही परम सुख प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम पञ्चम, धैवत और निषाद इन सातोंस्वरोंका जाननेवाला ग्रामोंका जाननेवाला अर्थात् स्वरोंका आरोह (चढाव) अवरोह रूप (उतार) क्रमज्ञ और जिससे स्वर समूह मूर्छित होकर रागत्वको प्राप्त होते हैं वह ग्रामसम्भव मूर्छनावित् और अष्टविध रसज्ञ पुरुष दुर्बल होनेपर भी इस पृथ्वीतलमें वह अत्यन्त दुर्लभ है इसमें और संदेह क्या है? ॥ २० ॥ जिस प्रकार गंगा और सरस्वती अपने महात्म्यसे कैलास धाम देती हैं इसी प्रकार स्वरज्ञान विशारद पुरुष कैलासलोकमें ले जाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ जो पुरुष स्वरमान् जानता है वह

मनुष्य होकरभी देवतारूप है जो पुरुष स्वरके षड्जादि सप्त भेद नहीं जानता वह सुरराज होकरभी पशुके समान है ॥ २२ ॥ जो पुरुष मूर्च्छना और सप्तविधस्वरसे समुत्थित और मूर्च्छनादि मिश्रितता सुनकर प्रमोदित नहीं होता उसको पशु जानना चाहिये हरिणगणोंको पशु नहीं जानना चाहिये क्योंकि वह सुनकर मुग्ध होते हैं ॥ २३ ॥ विषधर सर्पगण कर्णरहित होकर भी चक्षुद्वारा मनोहर स्वर नाद सुनकर प्रसन्न होते हैं उनकी भी प्रशंसा की जाती है किंतु जो नादस्वर सुन कर प्रसन्न नहीं होते उन कर्णवान् मनुष्योंको धिक्कार है ॥ २४ ॥ सुस्वर संगीत सुनकर बालगण भी प्रफुल्लित होते हैं किंतु जो वृद्धगण उस संगीतको नहीं जानते उनको शतवार धिक्कार है ॥ २५ ॥ पिता क्या नारद महर्षिके अनेक गुणोंको नहीं जानते इस त्रिलोकमें उनके समान सामगायक और कौन है ? ॥ २६ ॥ इसीलिये मैंने उनको पहलेही पतित्वमें वरण किया है इसके उपरान्त शापके कारण उन गुणाकरमुनिवरका

मूर्छनातानमार्गं तु श्रुत्वा मोदं न याति यः ॥ स पशुः सर्वथा ज्ञेयो हरिणाः पशवो न हि ॥ २३ ॥ वरं विषधरः सर्पः श्रुत्वा नादं मनोहरम् ॥ अश्रोत्रोऽपि मुदं याति धिक्सकर्णांश्च मानवान् ॥ २४ ॥ बालोऽपि सुस्वरं गेयं श्रुत्वा मुदितमानसः ॥ जायते किंतु ये वृद्धा न जानंति धिगस्तु तान् ॥ २५ ॥ पिता मे किं न जानाति नारदस्य गुणान्बहून् ॥ द्वितीयः सामगो नास्ति त्रिषु लोकेषु तत्समः ॥ २६ ॥ तस्मादसौ मया नूनं वृतः पूर्वं समागमात् ॥ पश्चाच्छापवशाज्जातो वानरास्यो गुणाकरः ॥ २७ ॥ किन्नरा न प्रियाः कस्य भवंति तुरगाननाः ॥ गानविद्यासमायुक्ताः किं मुखेन वरेण ह ॥२८॥ पितरं ब्रूहि मे मातर्वृतोऽयं मुनिसत्तमः ॥ तस्मात्त्वमाग्रहं त्यक्त्वा देहि तस्मै च मां मुदा ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा राज्ञी राज्ञे न्यवेदयत् ॥ आग्रहं सुंदरी ज्ञात्वा सुताया नारदे मुने ॥ ३० ॥ विवाहं कुरु राजेंद्र दमयंत्याः शुभे दिने ॥ मुनिना स च सर्वज्ञो वृतोऽसौ मनसाऽनया ॥ ३१ ॥

वानरके समान मुख हुआ है ॥ २७ ॥ संगीत विद्या विशारद किन्नरगणोंका मुख घोड़ेके समान होनेपर भी वह किसको प्रिय नहीं हुए थे उनके उत्तम मुखका प्रयोजन क्या ? वह मनोहर मधुर संगीत स्वरसे देवता गणोंको भी मोहित करते हैं ॥ २८ ॥ हे जननि ! तुम अनुग्रह करके पितासे कहना कि मैंने पहलेही उन मुनि सत्तम नारद महर्षिको पतित्वमें वरण किया है अतएव अन्य आग्रह न करके संतुष्ट चित्तसे मुझको उनके हाथमें समर्पण कीजिये ॥२९॥ नारदजीने कहा अपनी कन्या दमयन्तीके यह वचन सुनकर वह अनिन्दिता सञ्जयराज महिषी मेरे प्रति अपनी कन्याका अत्यन्त अनुराग जान कर राजासे कहने लगी ॥ ३० ॥ हे नृपसत्तम ! शुभदिन और शुभलग्नमें मुनि वरके संग दमयंतीका शुभविवाहकार्य सम्पादन कीजिये कन्याने कहा है कि मैंने उन

सर्व ज्ञान सम्पन्न मुनिवरको पहले पतित्वमें वरण किया है इसके अब अन्यथा नहीं होगा ॥ ३१ ॥ महिषीसे इस प्रकार सुनकर पृथ्वीपति सञ्जयने कन्याका विवाह कार्य भलीभांति विधिपूर्वक सम्पादन किया ॥ ३२ ॥ हे ऋषिवर ! मैं इसे विवाहकर वानरवदन धारणपूर्वक मनमें दग्ध होकर उसी स्थानमें वास करने लगा ॥ ३३ ॥ राजनन्दिनी जब मेरी सेवाके निमित्त जब निकट आती तब वानर मुख स्मरण करके मैं अत्यन्त दुःखित और संतप्त होता ॥ ३४ ॥ किंतु मुझको देखकर दमयन्तीका वदन कमल प्रफुल्लित हो जाता मेरामुख वानरके समान होनेसे वह कभी शोक संतप्त और दुःखित नहीं होती ॥ ३५ ॥ इस प्रकार काल व्यतीत होने लगा एक दिन पर्वत मुनि अनेकानेक तीर्थोंमें पर्यटन कर मेरे निकट आकर उपस्थित हुए ॥ ३६ ॥

नारद उवाच ॥ इति संचोदितो राज्ञ्या संजयः पृथिवीपतिः ॥ चकार विधिवत्सर्वं विधिं वैवाहिकं ततः ॥ ३२ ॥ एवं दारग्रहं कृत्वा वानरस्य परंतप ॥ स्थितस्तत्रैव मनसा दह्यमानेन चान्वहम् ॥ ३३ ॥ यदाऽऽगच्छद्राजसुता सेवार्थं मम सन्निधौ ॥ अभवं दुःखसंतप्त स्तदाऽहं वानराननः ॥ ३४ ॥ दमयंती तु मां वीक्ष्य प्रफुल्लवदनांबुजा ॥ शोकं वानरवक्त्रत्वान्न चकार कदाचन ॥ ३५ ॥ एवं गच्छति काले तु सहसा पर्वतो मुनिः ॥ कुर्वंस्तीर्थान्यनेकानि द्रष्टुं मां समुपागतः ॥ ३६ ॥ मयाऽतिमानितः प्रेम्णा पूजितश्च यथाविधि ॥ आसीन आसने दिव्ये वीक्ष्य मां दुःखितो ह्यभूत ॥ ३७ ॥ कृतदारं वानरास्यं दीनं चिंतातुरं भृशम् ॥ ३८ ॥ दयावान्मामुवाचेदं पर्वतो मातुलं कृशम् ॥ मया नारद कोपात्त्वं शप्तोऽसि मुनिसत्तम ॥ निष्कृतिं तस्य शापस्य करोम्यद्य निशामय ॥ ३९ ॥ भव त्वं चारुवदनो मम पुण्येन नारद ॥ दृष्ट्वा राजसुतां चित्ते कृपा जाता ममाऽधुना ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ मयाऽपि प्रवणं चित्तं कृत्वा श्रुत्वाऽस्य भाषितम् ॥ अनुग्रहः कृतः सद्यस्तस्य शापस्य तत्क्षणात् ॥ ४१ ॥

मैंने प्रेमसे उनका बड़ा सत्कार किया वह मुझको उत्तम आसनपर बैठा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए ॥ ३७ ॥ मैं उसका मामा हूं मेरा स्त्री ग्रहण करना देख तथा मेरा बंदरके समान मुख होनेसे मुझे दीन अत्यंत चिंतातुर और कृश देखकर उनके हृदयमें करुणाका संचार हुआ तब उसने मुझसे कहा ॥ ३८ ॥ हे मुनिवर ! मैंने कुपित होकर जो तुमको शाप दिया है उस शापका प्रतिमोचन करता हूं सुनो ॥ ३९ ॥ हे महर्षे ! मेरे पुण्यसे आपका मुख पूर्वके समान उत्तम हो, राजकन्याको देखकर इस समय मेरे अन्तःकरणमें करुणाका सञ्चार हुआ है ॥ ४० ॥ उसके यह वचन सुनकर मेरा चित्तभी कोमल हो गया मैंनेभी तत्काल उसका शापमोचन करनेके निमित्त इच्छुक होकर कहा ॥ ४१ ॥

नारद बोले हे भागिनेय ! तुम भी सुरपुरमें जाओ हे पर्वत ! मैंने इस समय तेरे प्रति शापके विषयमें भलीभांति अनुग्रह प्रकाश किया ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले हे द्वैपायन ! उसके वाक्यानुसार देखते देखते मेरा वदन सुचारु और पहलेके समान शोभायमान होगया तब राजपुत्री दमयंतीने अत्यंत संतुष्ट हो अपनी माताके निकट जाकर कहा ॥ ४३ ॥ हे जननी ! महामुनि पर्वतके वचनानुसार तुम्हारे जामाताका शापमोचन होकर उनका मुख पहलेके समान सुन्दर और शोभायमान होगया इससेही उनके देहकी कांति वर्धित हुई हैं ॥ ४४ ॥ राजमहिषी दमयंतीके वचन सुनकर परम आह्लादसे पुलकित हुई और तत्काल जाकर राजासे निवेदन किया नरपति सञ्जय तब अत्यंत प्रीतिसहितं मुनिवरको देखनेके निमित्त वहां गये ॥ ४५ ॥ तब महामति महीपतिने

भागिनेय तवाप्यस्तु गमनं सुरसद्मनि ॥ शापस्यानुग्रहः कामं कृतोऽयं पर्वताधुना ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ जातोऽहं चारुवदनो वचना त्तस्य पस्यतः ॥ राजा पुत्री तु संतुष्टा मातरं प्राह सत्वरम् ॥ ४३ ॥ मातस्ते सुमुखो जातो जामाता च महाद्युतिः ॥ वचनात्पर्व तस्याद्य मुक्तशापो मुनेरभूत् ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञ्या कथितं तत्र राजनि ॥ ययौ द्रष्टुं मुनिं तत्र संजयः प्रीतिमांस्तदा ॥४५॥ धनं समर्पितं राज्ञ्या संतुष्टेन तदा महत् ॥ मह्यं च भागिनेयाय पारि बर्हं महात्मना ॥ ४६ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वर्तनं यत्पुरातनम् ॥ मायाया बलमाहात्म्यं ह्यनुभूतं यथा मया ॥ ४७ ॥ संसारेऽस्मिन्महाभाग कायागुणकृतेऽनृते ॥ तनुभृत्तुसुखी नास्ति न भूतो न भवि ष्यति ॥ ४८ ॥ कामक्रोधौ तथा लोभो मत्सरो ममता तथा ॥ अहंकारो मदः केन जिताः सर्वे महाबलाः ॥४९॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्त्रय इमे किल ॥ कारणं प्राणिनां देहसंभवे सर्वथा मुने ॥ ५० ॥

परम संतुष्ट हो मुझको और भागिनेय पर्वतको विवाहके कौतुकमें अनेक धन और रत्नादि प्रदान किये ॥ ४६ ॥ हे द्वैपायन ! मैंने पहले मायाका बल माहात्म्य जिस प्रकार अनुभव किया था इस समय तुमसे वह पुरातन समस्त वृत्तांत वर्णन किया ॥ ४७ ॥ हे महाभाग ! इंद्रजालके समान मायाके मिथ्या गुणोंके कारण देहधारी मात्रही इस संसारमें पहले कोई कभी सुखी नहीं हुआ वर्त्तमानमें भी कोई सुखी नहीं और भविष्यत्‌में भी कोई कभी सुखी नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मात्सर्य, ममता, अहंकार और मद, यह सभी प्रत्येकको महाबलवान् हैं इनको जीतनेमें कोई समर्थ नहीं होता ॥ ४९ ॥ हे मुनिवर ! सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण ही प्राणीगणोंके देहकी उत्पत्तिके विषयमें भलीभांति कारण होतें हैं ॥ ५० ॥

हे द्वैपायन! मैं किसी समय भगवान् विष्णुके हास्य परिहासादि विनोद सेवनमें जा रहा था, दैवात् क्षणमें मैं स्त्री हो गया॥५१॥ तदनंतर मायाके बलसे मोहित होकर राजपत्नी हुआ और उन नृपतिके गृहमें अवस्थित होकर अनेक पुत्र उत्पन्न किये थे॥५२। व्यासजीने कहा हे देवर्षे ! आपके वचन सुनकर मुझको महान् संशय उत्पन्न हुआ है हे मुनिवर ! आप अत्यंत ज्ञानवान् होकर भी किस प्रकार नारीभावको प्राप्त हुए थे ? ॥ ५३ ॥ और किस प्रकार फिर पुरुषत्वलाभ किया था ? किस राजाके गृहमें स्थिति कर किस प्रकार पुत्र उत्पन्न किये थे यह सब विस्तारपूर्वक वर्णन करके मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ ५४ ॥ जिसके द्वारा यह स्थावरजङ्गमात्मक संपूर्ण जगत् मोहित हो रहा है आप उसी मायाका अति अद्भुत चरित्र कीर्त्तन कीजिये ॥ ५५ ॥ हे मुनिवर ! समस्त

कस्मिंश्चित्समये व्यास वनेऽहं विष्णुना सह ॥ गच्छन्न्ह ास्यविनोदेन स्त्रीभावं गमितः क्षणात् ॥ ५१ ॥ राजपत्नीत्व मापन्नो माया बलविमोहितः ॥ पुत्राः प्रसूता बहवो गेहे तस्य नृपस्य ह ॥ ५२ ॥ व्यास उवाच ॥ संशयोऽयं महान्साधो श्रुत्वा ते वचनं किल ॥ कथं नारीत्वमापन्नस्त्वं मुने ज्ञानवान्भृशम् ॥ ५३ ॥ कथं च पुरुषो जातो ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ कथं पुत्रास्त्वया जाताः कस्यराज्ञो गृहेऽञ्जसा ॥ ५४ ॥ एतदाख्याहि चरितं मायाया महदद्भुतम् ॥ मोहितं च यया सर्वमिदं स्थावरजंगमम् ॥ ५५ ॥ न तृप्तिमधि गच्छामि शृण्वंस्तव कथामृतम् ॥ सर्वग्रंथार्थतत्त्वं च सर्वसंशयनाशनम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागते महापुराणे षष्ठस्कंधे सप्तविंशो ऽध्यायः ॥२७॥ नारद उवाच॥ निशामय मुनिश्रेष्ठ गदतो मम सत्कथाम् ॥ मायाबलं सुदुर्ज्ञेयं मुनिभिर्योगवित्तमैः ॥१॥ मायया मोहितं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतमजया दुर्विभाव्यया ॥ २ ॥ कदाचित्सत्यलोकाद्वै श्वेतद्वीपे मनोहरे ॥ गतोऽहंदर्शना कांक्षी हरेरद्भुतकर्मणः ॥ ३ ॥ वादयन्महतीं वीणां स्वरतानविभूषिताम् ॥ गायत्रं गायमानस्तु साम सप्तस्वरान्वितम् ॥ ४ ॥

ग्रंथार्थ तत्त्व संयुक्त सब प्रकारके संशयका नाश करनेवाला आपका वचनामृत श्रवणाञ्जलिपुटसे पान करके मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ नारदजीने कहा हे तपोधन ! मैं वह सम्पूर्ण सत्कथा कहता हूं सावधान होकर सुनो हे मुनिवर ! योगके जाननेवालोंमें जो श्रेष्ठतम हैं यह मायाबल उनको भी दुर्ज्ञेय जानना चाहिये ॥ १ ॥ स्थावर जङ्गमात्मक ब्रह्मादिस्तम्बपर्यंत यह संपूर्ण जगत् उसी अजय और अचिंतनीय मायासे मोहित होता है अतएव उस मायाके हाथसे कोई छूटने नहीं पाता ॥२॥ मैं एक दिन अद्भुतकर्मा हरिके दर्शनकी इच्छा करके स्वरतान मनोरम वीणा बजाता हुआ और सप्तस्वरयुक्त सामगायन गान करते करते सत्यलोकसे मनोरम श्वेतद्वीपमें गया था ॥ ३ ॥ ४ ॥

मैंने वहां जाकर देवदेव चतुर्भुज चक्रपाणि गदाधरका दर्शन किया उनकी नवीन मेघके समान श्याम मूर्ति हृदयमें स्थित कौस्तुभ प्रभासे प्रकाशित हो रही है ॥ ५ ॥ वह पीतांबर पहर रहे हैं मस्तकमें परमप्रभासे उज्ज्वल मुकुटशोभा पा रहा है, वह भगवान् नारायण विलास शालिनी पयोदनंदिनी अर्थात् लक्ष्मीके सहित परम प्रसन्नता पूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥ ६ ॥ संपूर्ण स्त्रियोंमें श्रेष्ठतम प्रियदर्शन कनकप्रभा सर्व सुलक्षणयुक्त सर्व भूषणोंसे विभूषित रूप यौवन गर्वित वासुदेव प्रिया कमलादेवी मुझको देखते ही जनार्दनके समीपसे अन्तर्धान हो गई ॥ ७ ॥ ८ ॥ सिंधुजा देवीके स्तनादि वस्त्रोंमें सभी दीखते थे अतएव उन्होंने शीघ्रही अंतर्गृहमें गमन किया, यह देखकर मैंने वनमालाधारी जगत् प्रभु देवदेव जनार्दनसे पूँछा॥९॥ हे मुरघातन ! हे भगवन् ! हे पद्मनाथ !

दृष्टो मया देवदेवश्चक्रपाणिर्गदाधरः ॥ कौस्तुभोद्भासितोरस्को मेघश्यामश्चतुर्भुजः ॥ ५ ॥ पीतांबरपरीधानो मुकुटांगदराजितः ॥ लक्ष्म्या सह विलासिन्या क्रीडमानो मुदा युतः ॥६॥ वीक्ष्य मां कमला देवी गतांऽतर्धानमंतिकात् ॥ सर्वलक्षणसंपन्ना सर्वभूषणभूषिता ॥ ७ ॥ नारीणां प्रवरा कांता रूपयौवन गर्विता ॥ सुप्रिया वासुदेवस्य वरचामीकरप्रभा ॥ ८ ॥ अंतर्गृहं गतां दृष्ट्वा सिंधुजां व्यंजनान्विताम् ॥ मया पृष्टो देवदेवो वनमाली जगत्प्रभुः ॥ ९ ॥ भगवन्देवदेवेश पद्मनाभ सुरारिहन् ॥ कथं च मा गता दृष्ट्वा मामागच्छंतमंतिकात् ॥ १० ॥ नाहं विटो न वा धूर्तस्तापसोहं जगद्गुरो ॥ जितेंद्रियो जितक्रोधो जितमायो जनार्दन ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ निशम्य वचनं किंचिद्गर्वयुक्तं जनार्दनः ॥ उवाच मां स्मितं कृत्वा वीणावन्मधुरां गिरम् ॥ १२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नारदैवंविधा नीतिर्न स्थातव्यं कदाचन ॥ पतिं विनाऽन्यसान्निध्ये कस्य चिद्योषया क्वचित् ॥ १३ ॥

लोकमाता कमलादेवी मुझको आता हुआ देखकर आपके समीपसे किसलिये उठ गई ? ॥१०॥ हे जगद्गुरो ! मैं विट (जार) और धूर्त्त नहीं हूं मैं इंद्रिय और क्रोध जीतकर तपस्वी हुआ हूं मैंने मायाको भी जीत लिया है. अतएव हे देव ! कमलादेवीके चले जानेका क्या कारण है ? आप कृपा करके वह मुझसे कहिये ॥११॥ नारदजीने कहा हे द्वैपायन ! जनार्दन मेरे यह गर्वयुक्त वचन सुनकर कुछेक हास्यसहित वीणाध्वनिके समान मधुरस्वरसे कहने लगे. भगवान् बोले हे नारद इस विषयकी विधि इसी प्रकार है कि, किसी पुरुषकी स्त्री क्यों न हो पतिके अतिरिक्त अन्य किसीके भी सामने बैठना उचित नहीं है ॥ १२ ॥ १३ ॥

हे नारद ! मायाको जीतना अत्यन्त कठिन कार्य है जिन्होंने प्राणायामसे प्राण, पवन, आहार और इंद्रियजय की हैं वह सांख्ययोगि लोग ॥ १४ ॥ और देवता भी मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते. तुम कहते हो कि मैंने मायाको जीत लिया है यह तुम्हारे योग्य वचन नहीं है क्योंकि गीतज्ञानसे अनुमान होता है कि, तुम अवश्यही सङ्गीत शब्दसे मोहित होते हो ॥ १५ ॥ मैं, शिव, ब्रह्मा और मुनिलोग कोईभी उस अजय मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते. तुम अथवा अन्य कोई भी पुरुष उसको पराजय करै यह कभी सम्भव भी नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ देवदेह नरदेह अथवा तिर्यग्देह ही हो जो जीव शरीर धारण करता है उनमेंसे कोई इस अजयमायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होता ॥ १७ ॥ वेदके जाननेवाले, योगके जाननेवाले, सर्वज्ञ अथवा

माया सुदुर्जया विद्वन्योगिभिर्जितमारुतैः ॥ सांख्यविद्भि निराहारैस्तापसैश्च जितेंद्रियैः॥१४॥ देवैश्च मुनिशार्दूल यत्त्वयोक्तं वचोऽधुना ॥ जितमायोऽस्मि गीतज्ञ नैवं वाच्यं कदाचन ॥ १५ ॥ नाहं शिवो न वा ब्रह्मा जेतुं तां प्रभवोऽप्य जाम् ॥ मुनयः सनकाद्याश्च कस्त्वं केऽन्ये क्षमा जये ॥ १६ ॥ देवदेहं नृदेहं वा तिर्यग्देहमथापि वा ॥ बिभृयाद्यः शरीरं च स कथं तां जयेदजाम् ॥ १७ ॥ त्रिगुतस्तां कथं मायां जेतुं शक्तः पुमान्भवेत ॥ वेदविद्योगविद्वाऽपि सर्वज्ञो विजितेंद्रियः ॥ १८ ॥ कालोऽपि तस्या रूपं हि रूपहीनः स्वरूपकृत् ॥ तद्वशे वर्तते देही विद्वान्मूर्खोऽथ मध्यमः ॥ १९ ॥ कालः करोति धर्मज्ञ कदाचिद्विकलं पुनः ॥ स्वभावात्कर्मतो वाऽपि दुर्ज्ञेयं तस्य चेष्टितम् ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा विरतो विष्णुरहं विस्मयमानसः ॥ तमब्रुवं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम् ॥ २१ ॥ रमापते कथंरूपा माया सा कीदृशी पुनः ॥ कियद्बला क्वसंस्थाना कस्याधारा वदस्व मे ॥ २२ ॥

जितेन्द्रिय हों तीनों गुणयुक्त कोई भी पुरुष मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १८ ॥ कोई कोई कहते हैं कि, यह संपूर्ण जगत् स्वयं निराकार होनेपर भी साकारकारी कालके आधीन है. किंतु हे नारद ! वह काल भी मायाका एक रूप है. क्या उत्तम विद्वान् क्या मध्यम और अधम मूर्ख संपूर्ण जीवही उस कालके वशीभूत हुए हैं ॥ १९ ॥ स्वभावसे अथवा कर्मसेही हो काल धर्मज्ञ पुरुषको भी कभी विकल कर डालता है. अतएव उसका कार्य अत्यंत दुर्ज्ञेय जानना चाहिये ॥२०॥ नारदजी बोले हे द्वैपायन ! यह कह विष्णुके मौन होनेपर मैं अत्यंत आश्चर्ययुक्त हो उन सनातन वासुदेव देवदेव जगन्नाथसे पूंछने लगा ॥२१॥ हे रमापते ! मायाका रूप किस प्रकार है माया कैसी है ? उसके बलका परिमाण कितना है? उसका स्थान कहां है ? वह किसका आधार

दे. भा. ॥८९॥

है? सो आप मुझसे कहिये ॥ २२ ॥ हे जगतीपालक ! मैं मायाको देखनेका अत्यंत अभिलाषी हूं आप शीघ्र वह मुझको दिखाइये. हे रमापते ! मेरी मायाको
जाननेकी अत्यंत इच्छा हुई है आप प्रसन्न होकर मायाके वैभवका वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥ विष्णुने कहा त्रिगुणात्मिक संपूर्णके आधार स्वरूप, सर्वज्ञा सर्व
सम्मता अजेया अनेकरूपा माया सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त होकर स्थित रहती है ॥ २४ ॥ हे नारद ! यदि तुम देखनेकी इच्छा करते हो तो शीघ्र मेरे संग गरुड
पर चढो हम दोनों यहांसे दूसरे स्थानको गमन करेंगे ॥२५॥ और अजितात्मा मनुष्यगणोंको कठिनतासे जानने योग्य उस मायाको दिखाऊंगा. हे ब्रह्मपुत्र !
तुम मायाको देखकर व्याकुल मत होना ॥ २६ ॥ जनार्दनने मुझसे यह कह विनतानंदन गरुडको स्मरण किया स्मरण करतेही वह हरिके समीप उपस्थित

द्रष्टुकामोऽस्मि तां मायां दर्शयाशु महीधर ॥ ज्ञातुमिच्छामि तां सम्यक्प्रसादं कुरु मापते ॥ २३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ त्रिगुणा साऽखि
लाधारा सर्वज्ञा सर्वसंमता ॥ अजेयाऽनेकरूपा च सर्वं व्याप्य स्थिता जगत् ॥ २४ ॥ दिदृक्षा यदि ते चित्ते नारदारोहणं कुरु ॥ गरु
डे मत्समेतोऽद्य गच्छावोऽन्यत्र सांप्रतम् ॥ २५ ॥ दर्शयिष्यामि ते मायां दुर्जयामजितात्मभिः ॥ दृष्ट्वा तां ब्रह्मपुत्र त्वं विषादे मा मनः
कृथाः ॥ २६ ॥ इत्युक्त्वा देवदेवो मां सस्मार विनतासुतम् ॥ स्मृतमात्रस्तु गरुडस्तदागाद्धरिसंनिधौ ॥ २७ ॥ आगतं गरुडं वीक्ष्य आ
रुरोह जनार्दनः ॥ समारोप्य च मां प्रष्ठे गमनाय कृतादरः ॥ २८ ॥ चलितो विनतापुत्रो वैकुण्ठाद्वायुवेगवान् ॥ प्रेरितो यत्र कृष्णेन गं
तुकामेन काननम् ॥ २९ ॥ महावनानि दिव्यानि सरांसि सरितस्तथा ॥ पुरग्रामाकरादींश्च खेटखर्वगोव्रजान् ॥ ३० ॥ मुनीनामाश्रमान्र
म्यान्वापीश्च सुमनोहराः॥पल्वलानि विशालानि ह्रदान्पंकजभूषितान् ॥ ३१ ॥ मृगाणां च वराहाणां वृंदान्यप्यवलोक्य च ॥ गतावावां
कान्यकुब्जसमीपं गरुडासनौ ॥ ३२ ॥ यत्र रम्यं सरो दिव्यं दृष्टं पंकजमंडितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ३३ ॥

हुआ ॥ २७ ॥ जनार्दन गरुडको आया देखकर उसके ऊपर चढ मुझको ले जानेके निमित्त आदरपूर्वक उसीकी पीठपर चढाया ॥ २८ ॥ भगवान्‌ने
जिस वनमें जानेकी इच्छाकी थी गरुड उनसे प्रेरित होकर वैकुण्ठसे वायुवेगके समान वहांको चला ॥ २९ ॥ हम गरुड़पर चढकर मनोहर वन,दिव्य सरो
वर,सरित,पुर,ग्राम,खेट (किसानोंके गांव) खर्वट (पर्वतसमीपस्थ गांव) गोव्रज गोठ ॥ ३० ॥ मुनियोंके मनोहर आश्रम शोभायमान दीर्घिका (बावली)
पल्वल छोटे सरोवर और विशालपंकज भूषित ह्रद ॥३१॥ मृगयूथ,वराहवृन्द यह सम्पूर्ण देखते देखते कान्यकुब्जदेशके समीप जायकर उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥
उस स्थानमें एक मनोहर दिव्य सरोवर देखा उसमें परम मनोहर सम्पूर्ण कमल खिले हुए, हंस और कारंडवोंसे युक्त, चकओंसे शोभित ॥ ३३ ॥

जहाँ खिलेकमल शोभा और सुगन्ध विस्तार करते हैं और संपूर्ण भौंरे कलगुंजनसे श्रवण और अंतःकरण हरण करते हैं, अनेक प्रकारके फलपुष्प शोभा पाते हैं, उसका जल दूधके समान मीठा ॥ ३४ ॥ और वह सरोवर मानो समुद्रकी भी अस्पर्द्धा करता है, अत्यन्त अद्भुत उस तडागको देखकर भगवानने मुझसे कहा ॥ ३५ ॥ भगवान् बोले हे नारद ! देखो देखो विमल जलपूरित सर्वत्र कमलोंसे ढका हुआ गम्भीर सरोवर किस प्रकार शोभा पाता है इसमें कलकण्ठ सारसगण मधुर शब्द करते फिरतें हैं ॥ ३६ ॥ इसमें स्नान करके हम कान्यकुब्ज नामक पुरमें जायँगे यह कहकर शीघ्र मुझको गरुड़से उतार स्वयं उतरे ॥ ३७ ॥ अनंतर भगवानने हँसकर मेरी तर्ज्जनी अंगुली पकडी और उस सरोवरकी वारंवार प्रशंसा करके मुझको उसके तटपर ले गये ॥ ३८ ॥

नानावर्णैः प्रफुल्लैश्च पंकजैरुपरंजितम् ॥ शुचिमिष्टजलं भृंगयूथनादविराजितम्॥३४॥ मामाह भगवान्वीक्ष्य तडागं परमाद्भुतम् ॥ स्पर्धकं चोदधेः क्षीरं मिष्टं वारि विशेषतः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ पश्य नारद गंभीरं सरः सारसनादितम् ॥ सर्वत्र पंकजैश्छन्नं स्वच्छ नीर प्रपूरितम् ॥ ३६ ॥ अत्र स्नात्वा गमिष्यावः कान्यकुब्ज पुरोत्तमम् ॥ इत्युक्त्वा गरुडादाशु मामुत्तार्य व्यतारयत ॥ ३७ ॥ विहस्य भगवांस्तत्र जग्राह मम तर्जनीम् ॥ स्तुवन्सरोवरं भूयस्तीरे मामनयत्प्रभुः ॥ ३८ ॥ विश्रम्य तटभागे तु स्निग्धच्छाये मनोहरे ॥ मामुवाच मुने स्नानं कुरु त्वं विमले जले ॥ ३९ ॥ पश्चादहं करिष्यामि तडागेऽस्मिन्सुपावने ॥ साधूनामिव चेतांसि जलानि निर्मलानि च ॥ ४० ॥ सुरभीणि परागैस्तु पंकजानां विशेषतः ॥ इत्युक्तोऽहं भगवता मुक्त्वा वीणां मृगाजिनम् ॥ ४१ ॥ स्नानाय कृतधीस्तीरे गतः प्रेमसमन्वितः ॥ पादौ प्रक्षाल्यहस्तौ च शिखां बद्धा कुशग्रहम् ॥ ४२ ॥ कृत्वाऽऽचम्य शुचिस्तोये स्नातवानस्मि तज्जले ॥ यदा तस्मिञ्जलेरम्ये स्नातोऽहं पश्यतो हरेः ॥ ४३ ॥

शीतल छायायुक्त मनोहर तटपर बैठकर कुछ काल विश्राम करनेके उपरांत भगवान्ने मुझसे कहा हे मुनिवर ! इसके विमलजलमें तुम पहले स्नान करो ॥ ३९ ॥ तदनंतर मैं इस परमपवित्र तडागमें स्नान करूंगा. हे नारद ! देखो देखो ! यह जल साधुओंके चित्तके समान किस प्रकार निर्म्मल है ? ॥ ४० ॥ इसने कमलोंके परागसे सुवासित होकर किस प्रकार सुगन्ध धारण की है ? जब भगवान् वासुदेवने मुझसे यह वचन कहा तब मैं वीणा और मृगाजिन त्यागकर ॥ ४१ ॥ प्रसन्न हो स्नानकी इच्छासे धोकर शिखाबंधन और कुश ग्रहण कर ॥ ४२ ॥ आचमन पूर्वक शुचि हो उस जलमें अवगाहन किया. मैं स्नान कर रहा था, हरि मुझको देख रहे थे ॥ ४३ ॥ इसी समय जलमें निमग्न हो निकलकर देखा कि मैं पुरुषरूप त्यागकर मनोहर स्त्रीरूप हो गया हूं तब हरि मेरा

मृगचर्म और वीणा ग्रहण कर ॥ ४४ ॥ गरुडपर चढ आकाशमार्गसे तत्काल अपने गृहको चले गये. मैं शोभायमान भूषणोंसे भूषित नारी देहको प्राप्त हो ॥ ४५ ॥ तत्काल पहले देहको भूल गया वीणा और भगवानको भी भूलगया ॥ ४६ ॥ अनंतर वह मनमोहन रमणीरूप धारण करके तडागसे निकल कमलोंसे युक्त निर्मल जलपूरित दिव्य सरोवरको देखने लगा ॥ ४७ ॥ उसको देखकर यह क्या है ? मनही मनमें इसी प्रकार आश्चर्य उत्पन्न होने लगा. मैं स्त्रीरूप धारण कर मन हीं मनमें इसी प्रकार चिंता कर रहा था ॥ ४८ ॥ इसी समयमें अनेक हाथी और घोडोंसे युक्त तालध्वज नामक एक राजा रथपर चढ सहसा आकर उसी स्थानमें उपस्थित हुआ ॥ ४९ ॥ वह राजा मूर्तिमान् कामदेवके समान थे.उनके सम्पूर्ण अङ्ग अनेक प्रकारके आभरणोंसे

विहाय पौरुषं रूपं प्राप्तः स्त्रीत्वमनुत्तमम् ॥ हरिर्गृहीत्वा वीणां मे तथा कृष्णाजिनं शुभम् ॥ ४४ ॥ आरुह्य गगनं तूर्णं जगाम स्वगृहं क्षणात् ॥ ततोऽहं स्त्रीत्वमापन्नश्चरुभूषणभूषितः ॥ ४५ ॥ तत्क्षणान्मनसो जता पूर्वदेहस्य विस्मृतिः ॥ विस्मृतोऽसौ जगन्नाथो महती विस्मृता पुनः ॥ ४६ ॥ संप्राप्य मोहिनीरूपं तडागान्निर्गतो बहिः ॥ अपश्यं नलिनीजुष्टं सरस्तद्विमलोद कम् ॥ ४७ ॥ किमेतदिति मनसाऽकरवं विस्मयं मुहुः ॥ एवं चिंतयमानस्य नारीरूपधरस्यमे ॥४८॥ सहसा दृक्पथं प्राप्तस्तत्र तालध्वजो नृपः ॥ गजाश्वरथवृन्दैश्च संवृतो रथसंस्थितः ॥ ४९ ॥ युवा भूषणसंवीतो देहवानिव मन्मथः ॥ वीक्ष्य मां भूपतिस्तत्र दिव्यभूषणभूषिताम् ॥ ५० ॥ राका चंद्रमुखीं योषां विस्मयं परमंगतः ॥ पप्रच्छ काऽसि कल्याणि कस्य पुत्रीसुरस्य वा ॥ ५१ ॥ मानुषस्य च वा कांते गंधर्वस्योरगस्य च ॥ एकाकिनि कथं बाला रूपयौवनभूषिता ॥५२॥ विवाहिताऽथ कन्या वा सत्यं वद सुलोचने॥ किंपश्यसि सुकेशांते तडागेऽस्मिन्सु मध्यमे ॥ ५३ ॥

विभूषित थे. युवा राजाने उसी स्थानमें आकर मुझको देखा. दिव्य आभरणोंसे विभूषित मेरा देह ॥ ५० ॥ और पूर्णचन्द्रमाके समान मुख देखकर राजा अत्यंत आश्चर्य युक्त हो पूँछने लगे हे कल्याणि ! तुम कौन हो किसकी कन्या हो ॥ ५१ ॥ तुम मनुष्य कन्या ? नागकन्या ? गंधर्व नंदिनी अथवा किसी देवताकी कन्या हो ? तुमको रूप यौवन सम्पन्न बाला देखता हूं तुम इस स्थानमें अकेली क्यों बैठी हो ? ॥ ५२ ॥ हे सुलोचने ! किसी सौभाग्यवान् पुरुषने क्या तुम्हारा पाणि ग्रहण किया है अथवा इस समय भी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है यह तुम मुझसे सत्य कहो हे सुकेशि ! इस सरोवरमें तुम क्या देखती हो ॥ ५३ ॥

हे मन्ममोहिनि ! तुम्हारे मनमें क्या इच्छा है सो कहो ? हे कुटिलनयने ! तुम्हारे कोकिलके समान कण्ठस्वरसे मेरा मन मोहित हुआ है हे कृशोदरि ! तुम मुझको पतिरूपमें वरण करके मेरे संग अनेक प्रकारके अभिलषित मनोरम भोग्य वस्तु भोग करो ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ नारदजीने कहा हे द्वैपायन ! राजा तालध्वजने जब मुझसे इस प्रकार कहा तब फिर मैंने मनमें अनेक विचारकर कहा ॥ १ ॥ हे राजन् ! मैं किसकी कन्या हूं यह मैं नहीं जानती और मेरे पिता माता कहां हैं यह भी मैं निश्चय नहीं कह सकती. एक पुरुष मुझको यह सरोवर दिखाकर कहीं चला गया है ॥२॥ हे राजेंद्र ! मैं अनाथ और निराश्रय हुई हूं इस समय क्या करूं कहां जाऊं कौन कार्य करनेसे मेरा कल्याण होगा इस

चिकीर्षितं पिकालापे ब्रूहि मन्मथमोहिनि ॥ भुंक्ष्व भोगान्मरालाक्षि मया सह कृशोदरि ॥ वांछितान्मनसा नूनं कृत्वा मां पतिमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तोऽहं तदा तेन राज्ञा तालध्वजेन च ॥ विमृश्य मनसाऽत्यर्थं तमुवाच विशांपते ॥ १ ॥ राजन्नाहं विजानामि पुत्री कस्येति निश्चयम् ॥ पितरौ क्व च मे केन स्थापिता च सरोवरे ॥ २ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे सुकृतं भवेत् ॥ निराधाराऽस्मि राजेंद्र चिंतयामि चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥ दैवमेव परं राजन्नास्त्यत्र पौरुषं मम ॥ धर्मज्ञोऽसि महीपाल यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ४ ॥ तवाधीनाऽस्म्यहं भूप न मे कोऽप्यस्ति पालकः ॥ न पिता न च माता च न स्थानं न च बांधवा ॥ ५ ॥ इत्युक्तोऽसौ मया राजा बभूव मदनातुरः ॥ मां निरीक्ष्य विशालाक्षीं सेवकानित्युवाच ह ॥ ६ ॥ नर यानमानयध्वं चतुर्वाह्यं मनोहरम् ॥ आरोहणार्थमस्यास्तु कौशेयांबरवेष्टितम् ॥ ७ ॥ मृद्वास्तरणसंयुक्तं मुक्ताजालविभूषितम् ॥ चतुरस्रं विशालं च सुवर्णरचितं शुभम् ॥ ८ ॥

विषयमें निरंतर चिंता करती हूं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! दैव ही बलवान् है इस विषयमें मेरी कुछ प्रभुता नहीं आप धर्मज्ञ और राजा हैं इस समय आपका जो अभिप्राय हो आप वही कीजिये ॥ ४ ॥ हे नृपवर ! मेरा पालन करनेके निमित्त बंधु माता पिता बांधव कोई नहीं है और दूसरा कोई आश्रयस्थान भी नहीं है, अतएव मैं इस समय आपके अधीन हूँ ॥ ५ ॥ मेरे इस प्रकार वचन कहनेपर फिर मेरा मुखकमल बडे नेत्र देखकर राजाका मन कामबाणसे व्याकुल होगया तब उन्होंने अनुचरोंसे कहा ॥ ६ ॥ तुम इसके चढनेको रेशमके वस्त्रोंके बिछौनेसे युक्त चतुर पुरुषोंसे वाहित नरयान पालकी लाओ ॥ ७ ॥ जो मोतियोंके जालसे सुशोभित सुवर्णसे जड़ित चौकोन और विस्तृत हो ॥ ८ ॥

राजाके वचन सुनते ही सेवक लोग शीघ्र जाय मेरे निमित्त वस्त्रयुक्त अत्यंत मनोहर नरयान ले आये ॥ ९ ॥ मैं राजाके प्रिय साधनकी इच्छासे उसपर चढ़ा, राजाने भी प्रसन्न हो मुझको गृहमें लेजाकर ॥१०॥ विवाहकी विधि अनुसार शुभदिन और शुभलग्नमें अग्निके समीप मेरा पाणिग्रहण किया ॥ ११ ॥ मैं उनको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हुआ राजाने आदरपूर्वक मेरा सौभाग्यसुंदरी नाम रख दिया ॥ १२ ॥ वह राजा कामशास्त्रोक्त अनेक प्रकारके भोग विलास सहित मेरे संग अनेक प्रकार विहार और क्रीड़ाकर प्रमोद और अनेक प्रकार सुख अनुभव करने लगे ॥ १३ ॥ तब वह राजकार्य त्यागकर दिनरात मेरे संग काम क्रीड़ासे आसक्त रहे वह महीपाल कामकलामें इस प्रकार निरत हुए थे कि, बहुत काल व्यतीत होनेपर भी वह उसको नहीं जान सके ॥ १४ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भृत्याः सत्वरगामिनः ॥ आनिन्युः शिबिकः दिव्यां मदर्थे वस्त्रवेष्टिताम् ॥ ९ ॥ आरूढाऽहं तदा तस्यां तस्य प्रियचिकीर्षया ॥ मुदितोऽसौ गृहे नीत्वा मां तदा पृथिवीपतिः ॥१०॥ विवाहविधिना राजा शुभेलग्ने शुभेदिन ॥ उपयेमे च मां तत्र हुतभुक्सन्निधौ ततः ॥ ११ ॥ तस्याहं वल्लभा जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ सौभाग्यसुन्दरीत्येवं नाम तत्र कृतं मम ॥१२॥ रममाणो मया सार्धं सुखमाप महीपतिः ॥ नानाभोगविलासैश्च कामशास्त्रोदितैस्तथा ॥ १३ ॥ राजकार्याणि संत्यज्य क्रीडासक्तो दिवानिशम् ॥ नासौ विवेद गच्छंतं कालं कामकलारतः ॥ १४ ॥ उद्यानेषु च रम्येषु वापीषु च गृहेषु च ॥ हर्म्येषु वरशैलेषु दीर्घिकासु वरासु च ॥ १५ ॥ वारुणीमदमत्तोऽसौ विहरन्कानने शुभे ॥ विसृज्य सर्वकार्याणि मदधीनो बभूव ह ॥ १६ ॥ व्यासाहं तेन संसक्ता क्रीडारसवशीकृता ॥ स्मृतवान्पूर्वदेहं न पुंभावं मुनिजन्म च ॥ १७ ॥ ममैवायं पतिर्योषाऽहं पत्नीषु प्रिया सती ॥ पट्टराज्ञी विलासज्ञा सफलं जीवितं मम ॥ १८ ॥

वह वारुणी मदिरा पान करके राजकार्य त्याग मनोहर उद्यान सुरम्य दीर्घिका मनोहर हर्म्य (महल) शोभायमान गृह रमणीय शैल श्रेष्ठ वन उन सब स्थलोंमें विहार करते करते भलीभांति मेरे अधीन हो गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे द्वैपायन ! उस राजाके संग क्रीडारसमें निरंतर आसक्त और उसके ही वशीभूत रहकर मुझको पूर्व देह पुरुषभाव अथवा मुनिजन्म कुछ भी स्मरण न हुआ ॥ १७ ॥ यह राजा मेरे ही प्रति अनुरक्त थे सम्पूर्ण स्त्रियोंमें मैं ही उनकी प्रिय स्त्री था वह सदा ही मुझमें निरत रहते थे मैं ही उनकी विलासिनी पटरानी हूं मेरा जीवन सफल है ॥ १८ ॥

इस प्रकार चिंताकर दिनरात उनके प्रेममें आबद्ध और सुखप्राप्त करनेके निमित्त उनके ही वशीभूत होकर निरंतर क्रीडामें आसक्त रहता ॥ १९ ॥ उन्हींमें मेरा मन अत्यंत आसक्त हुआ था शाश्वत ब्रह्मज्ञान और धर्मशास्त्रका ज्ञान सम्पूर्णही भूल गया था ॥ २० ॥ हे मुनिवर! इस प्रकार कामक्रीडामें आसक्त रहकर अनेक प्रकार विहार करते करते बारह वर्ष क्षणकालके समान बीत गये ॥ ३१ ॥ किंतु मैं उनको कुछभी नहीं जान सका, तदनंतर मैं गर्भवती हुआ. यह देखकर राजाने अत्यंत प्रसन्न हो मेरी संपूर्ण गर्भसंस्कारक्रिया संपादन की ॥ २२ ॥ राजा मेरा मन संतुष्ट करके सर्वदाही गर्भदोहद " मेरे मनोरथकी बात " वारंवार पूछते, मैं उससे अत्यंत लज्जित होता इससे राजा और भी प्रीतिमान् हो जाते ॥ २३ ॥ इस प्रकार दश मास पूर्ण होनेपर

इति चिंतयती तस्मिन्प्रेमबद्धा दिवानिशम् ॥ क्रीडासक्ता सुखे लुब्धा तं स्थिता वशवर्तिनी ॥ १९ ॥ विस्मृतं ब्रह्मविज्ञानं ब्रह्म ज्ञानं च शाश्वतम् ॥ धर्मशास्त्रपरिज्ञानं तदासक्तमनाः स्थिता ॥ २० ॥ एवं विहरतस्तत्र वर्षाणि द्वादशैव तु ॥ गतानि क्षणवत्कामक्रीडासक्तस्य मे मुने ॥ २१ ॥ जाता गर्भवती चाहं मुदं प्राप नृपस्तदा ॥ कारयामास विधिवद्गर्भसंस्कारकर्म च ॥ २२ ॥ अपृच्छद्दोहदं राजा प्रीण यन्मां पुनः पुनः ॥ नाब्रुवं लज्जमानाहं नृपं प्रीतमना भृशम् ॥ २३ ॥ सम्पूर्णे दशमे मासि पुत्रो जातस्ततो मम ॥ शुभेऽह्नि ग्रहनक्षत्र लग्नताराबलान्विते ॥ २४ ॥ बभूव नृपतेर्गेहे पुत्रजन्म महोत्सवः ॥ राजा परम सन्तुष्टो बभूव सुतजन्मतः ॥ २५ ॥ सूतकांते सुत वीक्ष्य राजा मुदमवाप ह ॥ अहं भूमिपतेश्चासं प्रिया भार्या परंतप ॥ २६ ॥ ततो वर्षद्वयांते वै पुनर्गर्भो मया धृतः ॥ द्वितीयस्तु सुतो जातः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ २७ ॥ सुधन्वेति सुतास्याथ नाम चक्रे नृपस्तदा ॥ वीरवर्मेति ज्येष्ठस्य ब्राह्मणैः प्रेरितस्त्वयम् ॥ २८ ॥ एवं द्वादश पुत्राश्च प्रसूता भूप संमताः ॥ मोहितोऽहं तदा तेषां प्रीत्या पालनलालने ॥ २९ ॥

शुभ ग्रह शुभ नक्षत्र शुभ लग्न और शुभ तारावलयुक्त शुभ दिनमें मैंने एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २४ ॥ राजा पुत्रजन्म होनेसे अत्यंत आनंदित हुए और पुत्रजन्मका महामहोत्सवआरंभ किया ॥ २५ ॥ हे द्वैपायन! जातशौच होनेपर राजा पुत्रका मुख देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तदनंतर मैं उन्हीं महिपालकी प्रियतम भार्या होकर रहा ॥ २६ ॥ तदनंतर दो वर्ष पीछे फिर मेरे गर्भ रहा उससेभी सर्वप्रकारके लक्षणोंसे युक्त दूसरा पुत्र उत्पन्न किया ॥ २७ ॥ राजाने दूसरे पुत्रका नाम सुधन्वा रक्खा और ब्राह्मणोंके आदेशसे जेष्ठ पुत्रका नाम वीरवर्मा रख दिया ॥ २८ ॥ इसप्रकार क्रमानुसार राजाके सम्मत द्वादश पुत्र उत्पन्न करकें तब उनके लालन पालनमें ही मोहित होकर रहा ॥ २९ ॥

इसके उपरांत फिर क्रमानुसार आठ पुत्र मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए इस प्रकार मेरी सुखसंपन्न गृहस्थली समृद्धिसे पूर्ण होगई ॥ ३० ॥ राजाने उन संपूर्ण पुत्रोंको यथोचित रूपसे विवाहकार्य संपादन किया उससे पुत्र वधू और पुत्रोंसे मेरा परिवार अत्यन्त बृहत् होगया ॥ ३१ ॥ तदनंतर मेरे कितनेही पौत्र हुये उनके अनेक प्रकारके क्रीड़ारसमें मेरा मनमोह और भी वर्धित होने लगा ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कभी सुख और ऐश्वर्य एवं कभी पुत्रोंके रोगजनित आश्चर्यजनक दुःख अनुभव करने लगा. इससे मेरा देह अत्यन्त संतप्त होने लगा ॥ ३३ ॥ कभी पुत्रोंका परस्पर घोरतर विरोध, कभी पुत्रोंका परस्पर दारुण कलह, इस दुर्घटनासे मेरे मनमें दारुण सन्ताप उत्पन्न होने लगा ॥ ३४ ॥ हे मुनिसत्तम ! मैं सुख दुःखात्ममिथ्याचारमय संकल्पजनित ऐसे मायाके संकटसागरमें निमग्न

पुनरष्ट सुता काले काले जाताः स्वरूपिणः ॥ गार्हस्थ्यं मे ततः पूर्णं संपन्नं सुखसाधनम् ॥ ३० ॥ तेषां दारक्रियाः काले कृता राज्ञा यथोचिताः ॥ स्नुषाभिश्च तथा पुत्रैः परिवारो महानभूत् ॥ ३१ ॥ ततः पौत्रादिसंभूतास्तेऽपि क्रीडारसान्विताः ॥ आसन्नानारसोपेता मोहवृद्धिकरा भृशम् ॥ ३२ ॥ कदाचित्सुखमैश्वर्यं कदाचिद्दुःखमद्भुतम् ॥ पुत्रेषु रोगजनितं देहसंतापकारकम् ॥ ३३ ॥ परस्परं कदाचित्तु विरोधोऽभूत्सुदारुणः ॥ पुत्राणां वा वधूनां च तेन संतापसंभवः ॥ ३४ ॥ सुखदुःखात्मके घोरे मिथ्याचारकरे भृशम् ॥ संकल्पजनिते क्षुद्रे मग्नोऽहं मुनिसत्तमम् ॥ ३५ ॥ विस्मृतं पूर्वविज्ञानं शास्त्रज्ञानं तथा गतम् ॥ योषाभावे विलीनोऽहं गृहकार्येषु सर्वथा ॥३६॥ अहंकारस्तु संजातो भृशं मोह विवर्धकः ॥ एते मे बलिनः पुत्राः स्नुषाः स्वकुलसंभवाः ॥ ३७ ॥ एते पुत्राः सुसन्नद्धा क्रीडंति मम वेश्मसु ॥ धन्याऽहं खलु नारीणां संसारेऽस्मिन्नहो भृशम् ॥ ३८ ॥ नारदोऽहं भगवता वंचितो मायया किल ॥ न कदाचिन्मयाऽप्येवं चिंतितं मनसा किल ॥ ३९ ॥ राजपत्नी शुभाचारा बहुपुत्रा पतिव्रता ॥ धन्याऽहं किल संसारे कृष्णैवं मोहितस्त्वहम् ॥ ४० ॥

था ॥ ३५ ॥ अतएव पूर्वविज्ञान और वह शास्त्रज्ञान भूलकर स्त्रीभावसे गृहकार्यमें निरत होकर रहा ॥ ३६ ॥ मेरे इतनी पुत्र वधू हुई हैं यह संपूर्ण बलवान् पुत्र एकत्र मिलित होकर मेरे गृहमें क्रीड़ा करते हैं अहो ! इस संसारमें मैं सम्पूर्ण स्त्रियोंमें धन्य और पुण्यवती हुई हूं तब मुझको इस प्रकार मोहवर्द्धक अहंकार भी उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ मैं नारद हूं भगवानने मुझको मायासे छला है ऐसा भाव मेरे मनमें कभी उदय नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण द्वैपायन ! मैं सदाचारनिरतराजपत्नी और पतिव्रता हूं मेरे इतने पुत्र उत्पन्न हुए हैं मैं इस संसारमें धन्य हूं इस प्रकार ऐश्वर्य आदिकी चिंता करके मैं मायासे मोहित होकर काल व्यतीत करने लगा ॥ ४० ॥

अनंतर दूरदेशके अधिपति कोई एक महान् राजा मेरे पतिके संग बद्ध वैर हो ॥ ४१ ॥ युद्धके निमित्त रथ और बाणादि चतुरंगिणी सेनाके सहित कान्यकुब्ज नगरमें आया ॥ ४२ ॥ जब उस राजाने सेनासे नगरको घेरलिया तब मेरे पुत्र और पौत्र नगरसे बाहर हो ॥ ४३ ॥ रणस्थलमें जाय उसके संग तुमुल संग्राम करनेलगे किंतु कालके प्रभावसे वैरीने मेरे संपूर्ण पुत्रोंको मारडाला ॥ ४४ ॥ राजा रणसे भाग अपने गृहमें आगये फिर मैंने सुना कि मेरे संपूर्ण पुत्र उस भयंकर संग्राममें मारे गये ॥ ४५ ॥ वह बलवान् राजा मेरे पौत्रोंको मारकर अपनी सेनाके सहित अपने नगरको चला गया तब मैं विलाप करती हुई उस संग्राम स्थलमें शीघ्र जाकर उपस्थित हुई ॥ ४६ ॥ हे आयुष्मन् ! मैं उन दारुण दुःखपीडित पुत्र और पौत्रोंको भूमिमें पडा हुआ देखकर शोक

अथ कश्चिन्नृप कामं दूरदेशाधिपो महान् ॥ अरातिभावमापन्नः पतिना सह मानद ॥४१॥ कृत्वा सैन्यसमायोगं रथैश्च वारणैर्युतम् ॥ आजगाम कान्यकुब्जे पुरे युद्धमचिंतयत् ॥ ४२ ॥ वेष्टितं नगरं तेन राज्ञा सैन्ययुतेन च ॥ मम पुत्राश्च पौत्राश्च निर्गता नगरात्तदा ॥ ४३ ॥ संग्रामस्तुमुलस्तत्र कृतस्तैस्तेन पुत्रकैः ॥ हता रणे सुताः सर्वे वैरिणा कालयोगतः ॥ ४४ ॥ राजा भग्नस्तु संग्रामादागतः स्वगृहं पुनः ॥ श्रुतं मया मृताः पुत्राः संग्रामे भृश दारुणे ॥ ४५ ॥ स हत्वा मे सुतान्पौत्रान्गतो राजा बलान्वितः ॥ क्रंदमाना ह्यहं तत्र गता समरमंडले ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा तान्पतितान्पौत्रांश्च दुःखपीडिता ॥ विललापाहमायुष्मञ्छोकसागरसंप्लवे ॥ ४७ ॥ हा पुत्राः क्व गता मेऽद्य हा हतास्मि दुरात्मना ॥ दैवेनातिबलिष्ठे न दुर्वारेणातिपापिना ॥ ४८ ॥ एतस्मिन्नतरे तत्र भगवानन्मधुसूदनः ॥ कृत्वा रूपं द्विजस्यागाद्वृद्धः परदशोभनः ॥ ४९ ॥ सुवासा वे दवित्कामं मत्समीपं समागताः ॥ मामुवानातिदीनां स क्रंदमानां रणाजिरे ॥५०॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किं विषीदसि तन्वंगि भ्रमोऽयं प्रकटीकृतः ॥ मोहेन कोकिलालापे पतिपुत्रगृहात्मके ॥ ५१ ॥

सागरमें निमग्न हुआ और उच्चस्वरसे विलाप करने लगा ॥ ४७ ॥ हे पुत्रगण ! तुम मुझको त्यागकर कहां चले गये, हाय ! अत्यन्त बलवान् अतिसंतापदायक और दुर्निवार दुरात्मा दैवने आज मुझको निहत किया ॥ ४८ ॥ इसी समयमें भगवान् मधुसूदन शोभायमान वृद्ध ब्राह्मणका वेश धारण कर उसी स्थानमें मेरे निकट आये ॥ ४९ ॥ उनके वसन पवित्र और मनोहर थे वह वेदज्ञ बोध होतेथे मुझको रणस्थलमें दीन भावसे रोता हुआ देखकर कहने लगे ॥५०॥ ब्राह्मण बोले हे देवि ! तुम्हारा शब्द कोकिलके समान है तुम पति पुत्रवती और समृद्धशालिनी गृह स्वामिनी बोध होती हो ॥ ५१ ॥

किंतु तुम विचारो कि यह सम्पूर्ण मोहजनित भ्रममात्र है तुम किसलिये रोती हो ? किस कारण दुःखित होती है ? हे सुलोचने ! विचार कर देखो तुम कौन हो ? अथवा यह पुत्र किसके हैं ? आपकी उत्तम गति कैसे होगी इसकीही तुम चिंता करो इस समय रोदन त्याग उठकर सावधान होओ ॥ ५२ ॥ हे देवि ! परलोकमें गये पुरुषोंकी मर्यादाके रक्षार्थ उनको जल और तिल दान करो ॥ ५३ ॥ मरे हुए पुरुषोंके बन्धुगणोंको तीर्थमें स्नान करना चाहिये घरमें स्नान करना कभी उचित नहीं यह धर्मका स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ ५४ ॥ नारदजीने कहा हे द्वैपायन उन वृद्धविप्रवरके इस प्रकार समझाने पर फिर मैं और राजा बंधुगणोंसे परिवृत हो उठे ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणरूपधारी भूतभावन भगवान् मधुसूदन आगे आगे चलने लगे मैं शीघ्र उनके पीछे पीछे उस

का त्वं कस्याः सुताः केऽमी चिंतयाऽऽत्मगतिं पराम् ॥ उतिष्ठ रोदनं त्यक्त्वा स्वस्था भव सुलोचने ॥ ५२ ॥ स्नानं च तिलदानं च पुत्राणां कुरु कामिनी ॥ परलोकगतानां च मर्यादारक्षणाय वै ॥ ५३ ॥ कर्तव्यं सर्वथा तीर्थे स्नानं तु न गृहे क्वचित् ॥ मृतानां किल बंधूनां धर्मशास्त्रस्य निर्णयः ॥५४॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तेन विप्रेण वृद्धेन प्रतिबोधिता ॥ उत्थिताऽहं नृपेणाथ युक्ता बंधुभिरावृता ॥ ५५ ॥ अग्रतो द्विजरूपेण भगवान्भूतभावनः ॥ चलिताऽहं ततस्तूर्णं तीर्थं परमपावनम् ॥ ५६ ॥ हरिर्मां कृपया तत्र पुंतीर्थे सरसि प्रभुः ॥ नीत्वाऽहं भगवान्विष्णुर्द्विजरूपी जनार्दनः ॥ ५७ ॥ स्नानं कुरु तडागेऽस्मिन्पावने गजगामिनि ॥ त्यज शोकं क्रियाकालः पुत्राणां च निरर्थकम् ॥ ५८ ॥ कोटिशस्ते मृताः पुत्रा जन्मजन्मसमुद्भवाः ॥ पितरः पतयश्चैव भ्रातरो जामयस्तथा ॥ ५९ ॥ केषां दुःखं त्वया कार्यं भ्रमेऽस्मिन्मानसोद्भवे ॥ वितथे स्वप्नसदृशे तापदे देहिनामिह ॥ ६० ॥

परम पवित्र तीर्थमें चलने लगा ॥ ५६ ॥ द्विजरूपधारी जनार्दन भगवान् हरि मुझको उस पुंतीर्थ नामक सरोवरमें ले जाकर कृपा प्रकाश पूर्वक कहने लगे ॥ ५७ ॥ हे गजेन्द्रगामिनि तुम इस परम पवित्र तड़ागके जलमें स्नान करो व्यर्थ शोक त्याग करो, इस समय तुम्हारे पुत्रोंकी क्रियाका समय उपस्थित हुआ है ॥ ५८ ॥ तुम विचार कर देखो कि जन्म जन्मान्तरमें तुम्हारे करोड, करोड, पुत्र कन्या हुई हैं और करोड करोड पुत्र कन्याओंने प्राण त्याग किया है और करोड करोड पिता पति भ्राता जामाता प्राप्त हुए हैं ॥ ५९ ॥ फिर उनको छोडा है हे देवि ! मैं कहता हूं देखो इनमें किसके निमित्त तुम इस समय दुःख करोगी ? यह केवल मनका भ्रम मात्र है यह संसार मोहमय इन्द्रजालके समान मिथ्या और स्वप्नके समान है इससे देही पुरुषोंको संताप

मात्र ही उत्पन्न होता है ॥ ६० ॥ नारदजीने कहा मैं उन विष्णुका वचन सुनकर उनसे प्रेरित हो स्नान करनेकी इच्छासे उस पुंतीर्थके जलमें प्रविष्ट हुआ ॥ ६१ ॥ तब निमग्न हो निकलकर देखा कि क्षणमात्रमें ही मैं पुरुष हुआ निजदेह धारी भगवान् हरि करमें वीणा धारण कर तटपर खड़े हैं ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! मैंने उछलकर जब तीरमें स्थित कमललोचन कृष्णको देखा तब मेरे चित्तमें पूर्ण ज्ञानका उदय हुआ ॥ ६३ ॥ तब विचार किया मैं नारद इस स्थानमें आया हूं और हरिकी मायासे मोहित होकर स्त्री भावको प्राप्त हुआ था ॥ ६४ ॥ मैं इस प्रकार चिंता करता था तब भगवान् हरिने मुझसे कहा हे नारद ! उठकर आओ जलमें खडे क्या करते हो ॥ ६५ ॥ मैं आश्चर्य युक्त हो अपने दारुण स्त्री भावका स्मरणकर पुनर्वार किस कारण पुरुषभावको

नारद उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तीर्थे पुरुषसंज्ञके ॥ प्रविष्टा स्नातुकामाऽह प्रेरिता तत्र विष्णुना ॥ ६१ ॥ मज्जनादेव तीर्थेषु पुमाञ्जातः क्षणादपि ॥ हरिर्वीणां करे कृत्वा स्थितस्तीरे स्वदेहवान् ॥६२॥ उन्मज्ज्य च मया तीरे दृष्टः कमल लोचनः ॥ प्रत्यभिज्ञा तदा जाता मम चित्ते द्विजोत्तम ॥ ६३ ॥ संचिंतितं मया तत्र नारदोऽहमिहागतः ॥ हरिणा सह स्त्रीभावं प्राप्तो माया विमोहितः ॥ ६४ ॥ इति चिंतापरश्चाहं यदा जातस्तदा हरिः ॥ ममाह नारदागच्छ किं करोषि जले स्थितः ॥ ६५ ॥ विस्मितोहं तदा स्मृत्वा स्त्रीभावं दारुणं भृशम् ॥ पुनः पुरुषभावश्च संपन्नः केन हेतुना ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ मां दृष्ट्वा नारदं विप्रं विस्मितोऽसौ महीपतिः ॥ क्व गता मम भार्या सा कुतोऽयं मुनि सत्तमः ॥ १ ॥ विललाप नृपस्तत्र हा प्रियेति मुहुर्मुहुः ॥ क्व गता मां परित्यज्य विलपंतं वियोगिनम् ॥२॥ विना त्वां विपुलश्रोणि वृथा मे जीवितं गृहम् ॥ राज्यं कमलपत्राक्षि किं करोमि शुचिस्मिते ॥ ३ ॥

प्राप्त हुआ यही विचारने लगा ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ नारदजीने कहा हे मुनिवर ! उस जलमें स्त्री रूपसे निमग्न हो विप्रवर नारदरूपसे निकला हुआ देखकर वह महीपति अत्यंत आश्चर्य युक्त हो मनमें इस प्रकार चिंता करने लगे कि, मेरी वह प्रियतमा भर्या कहां गई और मुनि सत्तम नारद ही सहसा कहांसे उपस्थित हुए ॥ १ ॥ राजा प्रियतमा भार्याको न देखकर हा प्रिये ! मुझको छोडकर तुम कहां चली गई ? मैं तुम्हारे विरहमें अत्यंत व्याकुल होता हूं शीघ्र आकर मुझको दर्शन दो, यह कहकर बारंवार विलाप करने लगे ॥ २ ॥ वह कांताके विरहमें अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगे हे कमलनयने ! तुम्हारे विना मेरा जीवन और राज्यादि विफल है. हे शुचिस्मिते ! तुम्हारे अभावसे मेरा

समस्त गृह शून्यमय है ॥ ३ ॥ हे पृथुश्रोणि ! तुम्हारे विरहमें इस समय भी मेरे प्राण क्यों नहीं निकलते ? हे जीवितेश्वरि ! तुम्हारे निमित्त यावज्जीवन मेरा प्रीतिरूप धर्म भ्रष्ट हुआ है ! मेरी प्रीति इस समय कहां गई जो मैं जीता हूं ॥ ४ ॥ हे मृगशावाक्षि ! मैं तुम्हारे वियोगसे कातर होकर विलाप करता हूं तुम उसका उत्तर देकर मेरे मन और प्राणको शीतल करो. हे प्रिये ! प्रथम मिलनके समय तुमने मेरे प्रति जिस प्रकार प्रीति प्रकाशकी थी इस समय वह कहां चली गई ॥ ५ ॥ हे शुभ्र ! मेरे दुर्भाग्य वशसे ही क्या तुमने जलमें निमग्न होकर प्राणत्याग किया क्या तुमको मत्स्य कच्छपादि जलचर जन्तुओंने भक्षण कर लिया अथवा जलाधिपति वरुण देवने तुमको आग्रह सहित ग्रहण कर लिया ॥ ६ ॥ हे अमृत भाषिणी ! तुमने पुत्रोंके संग गमन किया अतएव तुम धन्य हो आहा ! पुत्रोंके प्रति जो तुम्हारा अकृत्रिम स्नेह था वह तुमने इस समय प्रकाश किया ॥ ७ ॥ हे चारु सर्वाङ्गि ! मैं तुम्हारे विरहमें

न प्राणा ते बहिर्यांति विरहेण तवाधुना ॥ गतो वै प्रीतिधर्मस्तु त्वामृते प्राणधारणात् ॥ ४ ॥ विलपामि विशालाक्षि देहि प्रत्युत्तरं प्रियम् ॥ क्व गता सा मयि प्रीतिर्याऽभूत्प्रथमसंगमे ॥ ५ ॥ विमग्ना किं जले सुभ्रूर्भक्षिता मत्स्यकच्छपैः ॥ गृहीता वरुणेनाशु मम दौर्भाग्ययोगतः ॥ ६ ॥धन्या सुचारुसर्वांगि या त्वं पुत्रैः समागता ॥ अकृत्रिमस्तु पुत्रेषु स्नेहस्तेऽमृतभाषिणि ॥ ७ ॥ न युक्तमधुना यन्मां विहाय त्रिदिवं गता ॥ विलपंतं पतिं दीनं पुत्रस्नेहेन यंत्रिता ॥ ८ ॥ उभयं मे गतं कांते पुत्रास्त्वं प्राणवल्लभा ॥ तथाऽपि मरणं नास्ति दुःखितस्य भृशं प्रिये ॥ ९ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि रामो नास्ति महीतले ॥ रामाविरहजं दुःखं जानाति रघुनंदनः ॥१०॥ विधिना निष्ठुरेणात्र विपरीतं कृतं भुवि ॥ दंपत्योर्मरणं भिन्नं सर्वथा समचित्तयोः ॥११॥ उपकारस्तु नारीणां मुनिभिर्विहितः किल ॥ यदुक्तं धर्मशास्त्रेषु ज्वलनं पतिना सह ॥ १२ ॥

विलाप करता हूं तुम पुत्र स्नेहमें आकृष्ट हो मुझको परित्याग कर स्वर्गमें चली गयी क्या तुम्हारा यही कर्त्तव्य है ? ॥ ८ ॥ हे प्रिये ! देखो मैंने पुत्र और प्राणवल्लभा प्रिया इन दोनोंको छोड़ दिया तो भी मेरे प्राण नहीं निकले अत एव मेरे प्राण निःसंदेह कुटिल हैं ॥ ९ ॥ जो मनोरमा पतिव्रता प्रियाकी विरहवेदना जानते हैं वह रघुकुल तिलक रामचन्द्रजी इस समय पृथ्वीमें स्थिति नहीं करते तो इस समय मैं यह वेदना प्रकाश करनेको कहां जाऊं क्या करूं वह मैं स्थिर नहीं कर सकता ॥ १० ॥ सुख और दुःखमें जिसके मनका भाव समान है इस प्रकार दम्पतिका मरण भिन्न भिन्न रूपसे निर्दिष्ट करके निष्ठुर विधाताने अत्यन्त विपरीत कार्य किया ॥ ११ ॥ मुनियोंने धर्मशास्त्रमें पतिके संग पतिव्रता स्त्रियोंकी सह मरण विधि निर्द्धारित कर उनका विशेष उपकार

साधन किया है किंतु उन्होंने पुरुषोंका स्त्रियोंके संग अग्नि प्रवेशका विधान क्यों नहीं किया ? वह भी उत्तम होता इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥ राजाको इस प्रकार विलाप करता हुआ देखकर भगवान् हरिने उसको युक्ति युक्त वचनोंसे निवारित करके कहा ॥ १३ ॥ भगवान् बोले हे राजन् ! तुम इतना विषाद क्यों करते हो ? तुम्हारी प्रियस्त्री कहां गई है ? तुमने क्या कभी शास्त्र श्रवण अथवा बुद्धिमानोंका आश्रय ग्रहण नहीं किया ॥ १४ ॥ तुम्हारी वह प्रिया कौन है ? और तुम कौन हो ? तुम्हारा संयोग किस प्रकार है ? और वह कहां हुआ था. हे राजन् ! नौकामें नदीपार जानेको जिसप्रकार मनुष्योंका क्षण कालमिलन होता है इस प्रवाहरूप संसारमें स्त्रीपुरुषोंका मिलन भी इसी प्रकार जानना चाहिये ॥ १५ ॥ अतएव हे नृपवर ! इस समय तुम घरको जाओ

एवं विलपमानं तं राजानं भगवान्हरिः ॥ निवारयामास तदा वचनैर्युक्तियोजितैः ॥ १३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किं विषीदसि राजेंद्र क्व गता ते प्रियांगना ॥ न श्रुतं किं त्वया शास्त्रं न कृतोऽसौ बुधाश्रयः ॥ १४ ॥ का सा कस्त्वं क्व संयोगो वियोगः कीदृशस्तव ॥ प्रवाहरूपसंसारेनृणांनौतरतामिव ॥ १५ ॥ गृहे गच्छ नृपश्रेष्ठ वृथा ते रुदितेन किम् ॥ संयोगश्च वियोगश्च दैवाधीनः सदा नृणाम् ॥१६॥ अनया सह ते राजन्संयोगस्त्विह संवृतः ॥ भुक्ता त्वया विशालाक्षी सुन्दरी तनु मध्यमा ॥ १७ ॥ न दृष्टौ पितरावस्यास्त्वया प्राप्ता सरोवरे ॥ काकतालीप्रसंगेन यद्भूतं तत्तथा गतम् ॥ १८ ॥ मा शोकं कुरु राजेंद्र कालो हि दुरतिक्रमः ॥ कालयोगं समासाद्य भुंक्ष्व भोगान्गृहे यथा ॥ १९ ॥

वृथा रोनेसे क्या फल है मनुष्योंका संयोग और वियोग सर्वदाही दैवके आधीन है. अतएव उसके लिये विलाप करना बुद्धिमान् मनुष्योंका कर्त्तव्य नहीं है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इस स्त्रीके संग तुम्हारा मिलन इसी स्थानमें हुआ था और तुमने उस विशालाक्षी कृशोदरी सुन्दरीको इसी स्थानमें छोड़ा है ॥ १७ ॥ तुमने उसके पिता माताको नहीं देखा काकतालीके समान इस सरोवरमें ही प्राप्त हुई है. वह जिस प्रकार तुम्हारी हुई थी इसी प्रकार फिर तुमको छोड़ गई उसके लिये विलाप करना तुमको उचित नहीं है ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम अब वृथा शोक मत करो कालको अतिक्रम करनेमें कोई समर्थ नहीं होता तुम घर जाकर कालयोगमें पहलेके समान सम्पूर्ण भोग्यवस्तु भोग करो ॥ १९ ॥

(१) काकतालीयन्याय वह है कि कोई कौवा दैवात् तालवृक्षपर आकर बैठा और वह तालका फल उसके बैठनेसे नीचे गिरा और वहां बैठे पुरुषको फल अकस्मात् प्राप्त हो गया.

वह वरवर्णिनी रमणी जिस प्रकार आई थी उसी प्रकार चली गई, तुमभी इसी प्रकार सबके प्रभु रहकर अपने राज्यमें पहले जिस प्रकार राजकार्य करते थे इस समय भी उसी प्रकार कार्य करो. क्योंकि यही तुम्हारा एकांत कर्तव्य है ॥ २० ॥ हे राजन्! तुम विचार कर देखो कि, तुम्हारे दिनरात रोदन करनेपर भी वह रमणी फिर नहीं आवेगी, हे पृथ्वीन्द्र! तब तुम क्यों वृथा शोक करते हो जाओ मेरे वचनसे योग मार्गमें मन समर्पणकर काल व्यतीत करते रहो ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण भोग्य वस्तु कालवशसे ही उपस्थित होती हैं और कालवशसेही चली जाती हैं. अतएव इस निष्फल संसार मार्गमें शोक करना कभी ज्ञानियोंको उचित नहीं है ॥ २२ ॥ एकत्र सुखसंयोग और एकत्र दुखसंयोगं सर्वदा नहीं होता अतएव इस संसारमें सुख और दुःख स्थिर न रहकर

यथाऽऽगता गता सा तु तथैव वरवर्णिनी ॥ यथा पूर्वं तथा तत्र गच्छ कार्यं कुरु प्रभो ॥ २० ॥ रुदितेन तवाद्यैव नागमिष्यति कामिनी ॥ वृथा शोचसि पृथ्वीश योगयुक्तो भवाधुना ॥ २१ ॥ भोगः कालवशादेति तत्रैव प्रतियाति च ॥ नात्र शोकस्तु कर्तव्यो निष्फले भववर्त्मनि ॥ २२ ॥ नैकत्र सुखसयोगो दुःखयोगस्तु नैकतः ॥ घटिकायंत्रव त्कामं भ्रमणं सुखदुःखयोः ॥ २३ ॥ मनः कृत्वा स्थिरं भूप कुरु राज्यं यथासुखम् ॥ अथवा न्यस्य दायादे वनं सेवय साम्प्रतम् ॥ २४ ॥ दुर्लभो मानुषो देहः प्राणिनां क्षण भंगुरः ॥ तस्मिन् प्राप्ते तु कर्त्तव्यं सर्वथैवात्मसाधनम् ॥ २५ ॥ जिह्वोपस्थरसो राजन्पशुयोनिषु वर्तते ॥ ज्ञानंमानुषदेहे वै नान्यासु च कुयोनिषु ॥ २६ ॥ तस्माद्गच्छ गृहं त्यक्त्वा शोकं कान्तासमुद्भवम् ॥ पायेयं भगवत्यास्तु यया संमोहितं जगत् ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तो हरिणा राजा प्रणम्य कमलापतिम् ॥ कृत्वा स्नानविधिं सम्यग्जगाम निजमंदिरम् ॥ २८ ॥

घटिकायन्त्रके समान सदाही भ्रमण करता है ॥ २३ ॥ अतएव हे नृपवर ! मन स्थिर करके तुम यथा सुखसे राज्य करते रहो अथवा अपनी सन्तानको राज्यका भार समर्पण कर वनको चले जाओ ॥ २४ ॥ यह प्राणियोंको क्षणभंगुर मनुष्य देह दुर्लभ है इसके प्राप्त होनेमें सदा आत्मसाधन करना चाहिये ॥ २५ ॥ हे राजन्! लिङ्ग और रसनादि इन्द्रियोंसे पशुभी विषयरस आस्वादन करते हैं किंतु एक मात्र ज्ञान मनुष्यदेहमें अधिक दिखाई देता है अन्य कुत्सित योनिमें वह दिखाई नहीं देता ॥ २६ ॥ इसी ज्ञानके अनुसार कांताका शोक त्यागन कर घरको जाओ यह भगवतीकी माया है जिसने सब जगत् मोहित कर रक्खा है ॥ २७ ॥ नारदजी बोले भगवान् हरिके यह वचन सुनकर राजा देवदेव कमलापतिको प्रणाम कर स्नानादि विधि पूर्ण कर अपने

मंदिरको गये ॥ २८ ॥ अपने पौत्रको राज्य देकर वैराग्यको प्राप्त हो राजाने वनको जाकर तत्वज्ञानकी प्राप्ति की ॥ २९ ॥ राजाके गमन करनेपर भगवान् अच्युत मेरी ओर वारंवार देखकर हँसते थे यह देखकर मैंने उन देव देव जगन्नाथसे कहा ॥ ३० ॥ हे देव ! आपने मुझको छला है मायाका बल अत्यन्त महत् है वह मैंने इस समय जान लिया. हे जनार्दन ! मैंने स्त्रीरूप होकर जो सब कार्य किये इस समय वह सब स्मरण करता हूं ॥ ३१ ॥ हे हरे। मेरे सरोवरके जलमें प्रविष्ट हो स्नान करते ही मेरा पूर्वज्ञान क्यो दूर हुआ? ॥ ३२ ॥ और जब मैंने नारी देहको प्राप्त हो शचीदेवीको इन्द्र प्राप्तिके समान राजाको पतिरूपसे प्राप्त किया तब मैं मोहित क्यों हुआ ॥ ३३ ॥ मेरी वही पूर्वकामना वही पुरातन जीवात्मा और वही पुरातन सूक्ष्म

दत्त्वा राज्यं स्वपौत्राय प्राप्य निर्वेदमद्भुतम् ॥ वनं जगाम भूपालस्तत्त्वज्ञानमवाप च ॥ २९ ॥ गते राजन्यहं वीक्ष्य भगवंतमधोक्षजम् ॥ तमब्रुवं जगन्नाथं हसंतं मां पुनः पुनः ॥३०॥ वंचितोऽहं त्वया देवज्ञातं मायाबलं महत् ॥ स्मरामि चरितं सर्वं स्त्रीदेहे यत्कृतं मया ॥ ३१ ॥ ब्रूहि मे देवदेवेश प्रविष्टोऽहं सरोवरे ॥ विगतं पूर्वविज्ञानं स्नानादेव कथं हरे ॥ ३२ ॥ योषिद्देहं समासाद्य मोहितोऽहं जगद्गुरो ॥ पतिं प्राप्य नृपश्रेष्ठ पुलोमी वासवं यथा ॥ ३३ ॥ मनस्तदेव तच्चित्तं देहः स च पुरातनः ॥ लिंगं तदेव देवेश स्मृतेर्नाशः कथं हरेः ॥ ३४ ॥ विस्मयोऽयं महान्मेऽत्र ज्ञाननाशं प्रति प्रभो ॥ कथयाद्य रमाकान्त कारणं परमं च यत् ॥ ३५ ॥ नारी देहं मया प्राप्य भुक्ता भोगा ह्यनेकशः ॥ सुरापानं कृतं नित्यं विधिहीनं च भोजनम् ॥ ३६ ॥ मया तदेव न ज्ञातं नारदोऽहमिति स्फुटम् ॥ जानाम्यद्य यथा सर्वं विविक्तं न तथा तदा ॥ ३७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ पश्य नारद मायावी विलासोऽयं महामते ॥ देहेषु सर्वजन्तूनां दशा भेद ह्यनेकशः ॥ ३८ ॥

देह यह सभी विद्यमान थे तब क्यों मेरी स्मृतिका नाश हुआ! ॥ ३४ ॥ हे प्रभो! इस ज्ञाननाशके विषयमें मुझको महान् संशय उत्पन्न होता है हे रमानाथ! आप आज इसका यथार्थ कारण वर्णन करके मेरा सन्देह दूर कीजिये ॥ ३५ ॥ मैंने स्त्री भावको प्राप्त हो अनेक भोग वस्तु भोग की हैं और सुरापान तथा अहित द्रव्य भी भोजन किया है हे मधुसूदन! इन सबका क्या कारण है? ॥ ३६ ॥ तब मैं अपने को नारद नहीं जान सका मैं इस समय जिस प्रकार भलीभाँति समस्त जान सका हूं उस समय वह कुछ भी क्योंनहीं जान सका? ॥ ३७ ॥ केशवने कहा हे बुद्धिमान् नारद ! यह सब मायावी ईश्वरकी मायाका विलास मात्र है तुमको जानना चाहिये कि, सम्पूर्ण जन्तुओंके देहकी अनेक प्रकार अवस्था होती है ॥ ३८ ॥

यदि देहीगणोंके केवल देहकीही जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय यह चार प्रकारकी दशा होती है तो देहान्तर प्राप्त होनेसे जो दशा विपर्यय होता है इसमें तुम सन्देह क्यों करते हो ? ॥ ३९ ॥ मनुष्य जब सोता है तब कोई विषय नहीं जान सकता सुन भी नहीं सकता और कह भी नहीं सकता किंतु फिर जानकर सब विषय भलीभाँति जान सकता है ॥ ४० ॥ निद्रासे चित्त चलायमान होता है तब स्वप्नसे मनकी अनेक प्रकार अवस्थाका भेद और मनोभावका अनेक भाँति प्रकारभेद होता है ॥ ४१ ॥ मत्त हाथी मुझको मारता हुआ आता है मैं भागनेमें समर्थ नहीं होता क्या करूं कहां जाऊं मुझको शीघ्र भागनेका स्थान नहीं है स्वप्नावस्थामें ऐसा अनेक प्रकार मनका भाव होता है ॥ ४२ ॥ और कभी स्वप्नमें दिखाई देता है कि, हमारे

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीया देहिनां दशा ॥ तथा देहांतरे प्राप्ते संदेहः कीदृशः पुनः ॥३९॥ सुप्तो नरो न जानाति न शृणोति वदत्यपि ॥ पुनः प्रबुद्धो जानाति सर्वं ज्ञानमशेषतः ॥४०॥ निद्रया चाल्यते चित्तं भवंति स्वप्नसम्भवाः ॥ नानाविधा मनोभेदा मनोभावा ह्यनेकशः ॥ ४१ ॥ गजो मां हंतुमायाति न शक्तोऽस्मि पलायने ॥ किं करोमि न मे स्थानं यत्र गच्छामि सत्वरः ॥ ४२ ॥ मृतं पिता महं स्वप्ने पश्यति स्वगृहागतम् ॥ संयोगस्तेन वार्ता च भोजनं सहमन्यथे ॥ ४३ ॥ प्रबुद्धः खलु जानाति स्वप्ने दृष्टं सुखासुखम् ॥ स्मृत्वा सर्वं जनेभ्यस्तु विस्तरात्प्रवदत्यपि ॥ ४४ ॥ स्वप्ने कोऽपि न जानाति भ्रमोऽयमिति निश्चयः ॥ तथा तथैव विभवो मयाया दुर्गमः किल ॥ ४५ ॥ नाहं नारद जानामि पारं परमदुर्घटम् ॥ गुणानां किल मायाया नैव शम्भुर्न पद्मजः ॥ ४६ ॥ कोऽन्यो ज्ञातुं समर्थोऽभून्मानतो मंदधीः पुनः ॥ माया गुणपरिज्ञानं न कस्यापि भवेदिह ॥ ४७ ॥

मृत पितामह हमारे घर आये हैं उनको मैं देखता हूं और उनके संग अनेक बातचीत करता हूं बरन् उनके संग एकत्र भोजन भी करता हूं ॥ ४३ ॥ स्वप्नमें सुखदुःख जो कुछ अनुभव होता है मनुष्य जागकर वह सब जान सकता है और स्वप्नका वृत्तांत स्मरण कर विस्तारपूर्वक कह सकता है ॥ ४४ ॥ हे नारद ! स्वप्न देखनेके समय स्वप्नमें दीखे सब विषय भ्रमयुक्त होनेसे कोई इस प्रकार निश्चितरूपसे नहीं जान सकता मायाका प्रभाव भी इसी प्रकार दुर्ज्ञेय जानना चाहिये ॥ ४५ ॥ हे मुनिवर ! मायाके तीनों गुण परम दुर्गम प्रभावका परिणाम है जब मैं शम्भु और ब्रह्मा कोई नहीं जान सकते ॥ ४६ ॥ तब दूसरा कौन मन्दबुद्धि मनुष्य उनकी सीमा जान सकता है अतएव हे नारद ! इस संसारके बीच मायाका गुण जाननेमें कोई

समर्थ नहीं है ॥ ४७ ॥ यह स्थावर जंगमात्मके जगत् मायाके गुणसे निर्मित है अर्थात् बना है माया गुणके विना यह संसार किंचिन्मात्र भी वर्त्तमान नहीं रह सकता ॥ ४८ ॥ मैं सत्वगुण प्रधान हूँ और तमोगुण मुझमें विद्यमान रहता है मैं भुवनेश्वर होकर भी इन तीनों गुणोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे पिता प्रजापति रजःप्रधान हैं किंतु सत्व और तमोगुण कभी त्याग करनेमे समर्थ नहीं होते ॥ ५० ॥ और महादेव तमप्रधान हैं किंतु उनमें भी सत्व और रजोगुण सदाही विद्यमान रहता है. अतएव कोई पुरुष भी इन तीनों गुणोंसे अलग होकर नहीं रह सकते यह मैंने श्रुतिमें निर्दिष्ट कर रक्खा है ॥ ५१ ॥ अतएव हे मुनिवर ! मायानिर्मित परम दुर्घट इस अपार संसारमें मोह त्यागकर ब्रह्मरूपिणी भगवतीकी

गुणत्रयकृतं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ विना गुणैर्न संसारोवर्तते किंचिदप्यदः ॥ ४८ ॥ अहं सत्त्वप्रधानोऽस्मि रजस्तमसमन्वितः ॥ न कदाचित्रिभिर्हीनो भवामि भुवनेश्वरः ॥ ४९ ॥ तथा ब्रह्मा पिता तेऽत्र रजोमुख्यः प्रकीर्तितः ॥ तमःसत्त्वसमा युक्तो न ताभ्यामुज्झितः किल ॥ ५० ॥ शिवस्तथा तमोमुख्यो रजःसत्त्वसमावृतः ॥ गुणत्रयविहीनस्तु नैव कोऽपि मया श्रुतः ॥ ५१ ॥ तस्यान्मोहो न कर्तव्यः संसारेऽस्मिन्मुनीश्वर ॥ माया विनिर्मितेऽसारेऽपारे परमदुर्घटे ॥ ५२ ॥ दृष्टामया त्वयाऽद्यैवभुक्ता भोगा ह्यनेकशः ॥ किं पृच्छसि महा भाग तस्या श्चरितमद्भुतम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महा राज ब्रवीमि विशदाक्षरम् ॥ माहात्म्यं खलु मायाया नारदात्तु मया श्रुतम् ॥ १ ॥ मया पुनर्मुनिः पृष्टो नारदः सर्ववित्तमः ॥ श्रुत्वा कथां मुनेस्तस्य नारीदेहसमुद्भवाम् ॥ २ ॥ ब्रूहि नारदपश्चात्किं कथितं हरिणा तदा ॥ क्व गतश्च जगन्नाथो भवता सह माधवः ॥ ३ ॥

उपासना करनी ही उचित है ॥ ५२ ॥ हे महाभाग ! तुमने इस समय तो मायाका प्रभाव देखा है, मायाजनित अनेक प्रकारके भोग्य द्रव्य भी भोग किये हैं और मायाका चरित्र जो कि अद्भुत है वह भी जान गये हो तो फिर इस विषयमें मुझसे क्यों पूँछते हो ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ व्यासजीने कहा हे महाभाग ! मैंने पहले महर्षि नारदसे मायाका महात्म्य जिस प्रकार सुना है वह संपूर्ण आपसे भलीभांति प्रकाश करके कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ मैंने नारदका नारीदेह प्राप्तिविषयक उपाख्यान सुनकर उन सर्वविद्गुणोंके अग्रगण्य महर्षिसे पूँछा था ॥ २ ॥ हे मुनिवर ! तदनन्तर हरिने आपसे क्या कहा और आपके संग वह देवदेव लक्ष्मीपति कहां चले गये ॥ ३ ॥

नारजीने कहा उस मनोहर सरोवरमें भगवान्‌ने मुझसे यह सब कह गरुड़पर चढ़ वैकुण्ठधाममें जाने की इच्छा की ॥ ४ ॥ तब इन कमलापतिने मुझसे कहा कि तुम भी अपने अभिलषित स्थानमें जाओ अथवा यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे संग गोलोकधाममें भी चल सकते हो ॥ ५ ॥ तब मैं प्रणाम और सम्भाषण कर ब्रह्मलोकको चला गया और भगवान् भी तत्काल गरुड़पर चढ ॥ ६ ॥ सुखपूर्वक वैकुण्ठमें चले गये जनार्दनके चले जानेपर फिर मैं भी मनमें सब प्रकार ॥ ७ ॥ अद्भुत सुख और दुःखकी चिंता करते करते ब्रह्मलोकमें पिताके समीप गया अनन्तर प्रणाम कर जैसे ही उनके सामने खडा हुआ ॥ ८ ॥ वैसेही पिताने मुझको चिंतातुर देखकर पूँछा ब्रह्मा बोले हे महाभाग ! तुम कहां गये थे ? और तुमको चिंतातुर क्यों देखता हूं ॥ ९ ॥

नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवांस्तस्मिंस्तडागेऽतिमनोहरे ॥ आरुह्य गरुडं गंतुं वैकुंठे च मनो दधे ॥ ४ ॥ मामुवाच रमाकांतो.यथेष्टं गच्छ नारद ॥ एहि वा मम लोकं स्वं यथारुचि तथा कुरु ॥ ५ ॥ ब्रह्मलोकं गतश्चाहं मापृच्छ्य मधुसूदनम् ॥ भगवानपि देवेशस्तत्क्षणाद्गरुडासनः ॥ ६ ॥ वैकुण्ठमगमत्तूर्णं मामादिश्य यथासुखम् ॥ ततोऽहं पितृसदनं गतो याते जनार्दने ॥ ७ ॥ चिंतयन्सकलं दुःखं सुखं च परमाद्भुतम् ॥ गत्वा प्रणम्य पितरं स्थितो यावत्पुरः पितुः ॥८॥ तावत्पृष्टो मुने पित्रा वीक्ष्य चिंतातुरं तु माम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ क्व गतोऽसि महाभाग कस्माच्चिंतातुरः सुत ॥ ९ ॥ स्वस्थं नैवाद्य पश्यामि मनस्ते मुनिसत्तम ॥ केनापि वंचितोऽसि त्वं दृष्टं वा किंचिदद्भुतम् ॥ १० ॥ विषण्णं गतविज्ञानं पशमि त्वः कथं सुत ॥ नारद उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा पित्रा बृस्यां समुपवेश्य च ॥११॥ तमब्रुवं स्ववृतांतं माया बलसमुद्भवम् ॥ वंचितोऽहं पितः कामं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १२ ॥ स्त्रीभावं गमितः कामं वर्षाणि सुबहून्यपि ॥ अनुभूतं महादुःखं पुत्रशोकसमुद्भवम् ॥ १३ ॥

हे मुनिसत्तम ! आज मैं तुम्हारा मन सावधान नहीं देखता मुझको बोध होता है कि, किसीने तुमको छला है अथवा तुमने कोई अद्भुत वस्तु देखी है ॥ १० ॥ हे पुत्र ! आज मैं तुमको व्याकुल और ज्ञानहीनके समान क्यों देखता हूं नारदजी बोले हे द्वैपायन ! पिताके मुझसे इस प्रकार पूँछनेपर फिर मैंने कुशासनपर बैठ ॥ ११ ॥ माया माहात्म्य जनित अपना समस्त वृत्तान्त उनसे कहा हे पितः ! मैं महाप्रभावशाली विष्णुसे छला गया हूं ॥ १२ ॥ उन्होंने मुझको स्त्रीभाव देकर अनेक वर्ष उसी भावमें रक्खा था उसमें भी मैंने पुत्रशोकका महा दुःख अनुभव किया है ॥ १३ ॥

अनन्तर उन्होंने मुझको माधुर्यमय वचनामृतसे फिर ज्ञान प्रदान किया है फिर सरोवरमें स्नान करके यह पुरुषरूपी नारद हुआ हूं ॥ १४ ॥ हे पितः ! मैं जो ऐसे मोहको प्रप्त हुआ था उसका क्या कारण है और मैं पूर्वज्ञान भूल एवं बलप्रेरि हो तत्काल मोहमयभावको प्राप्त क्यों हुआ ॥ १५ ॥ हे तात ! मायाका बल जो इस प्रकार कठिनासे छूटने योग्य है वह मैं पहले नहीं जानता था मायाके बलसेही ज्ञानकी हानि होती है मायाबलही मोहका मूल है यह मैंने भलीभाँति अनुभव किय है ॥ १६ ॥ और उसमें मङ्गल अथवा अमङ्गल जो कुछ है वह भी जान गया हूं हे पितः ! आपने दुर्घट अचिन्त्य मायाको किस प्रकार जीता है वह आप मुझसे भी कहिये ॥ १७ ॥ नारदजी बोले हे तपोधन ! मेरे इस प्रकार कहनेपर फिर पिताने मेरी चिन्ताका

प्रबोधितोऽहं तेनैव मृदुवाक्यामृतेन च ॥ पुनः सरोवरे स्नात्वा जातोऽहं नारदः पुमान् ॥१४॥ किमेतत्कारणं ब्रह्मन्यन्मोहमगमं तदा ॥ विस्मृतं पूर्वविज्ञानं तन्मयस्तरसा कृतः ॥ १५ ॥ एतन्मायाबलं ब्रह्मन्न जानेऽहं दुरत्ययम् ॥ ज्ञानहानिकरं जातं मूलं मोहस्य विस्फुटम् ॥ १६ ॥ अनुभूतं मया सम्यग्ज्ञातं सर्वं शुभाशुभम् ॥ कथं त्वं जितवांस्तात तमुपायं वदस्वमे ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ विज्ञप्तोऽसौ मया धाता प्रीतिपूर्वमतः परम् ॥ मामुवाच स्मितं कृत्वा पिता मे वासवीसुत ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दुर्जयैसा सुरैः सर्वैर्मुनिभिश्च महात्मभिः ॥ तापसैर्ज्ञानयुक्तैश्च योगिभिःपवनाशनैः ॥१९॥ नाहं तां सर्वथा ज्ञातुं शक्तो मायां महाबलाम् ॥ विष्णुर्ज्ञा तुं न शक्तश्च तथा शंभुरुमापतिः ॥ २० ॥ दुर्ज्ञेया सा महामाया सृष्टिस्थित्यंतकारिणी ॥ काल कर्मस्वभावाद्यैर्निमित्तकारणैर्वृता ॥ २१ शोकं मा कुरु मेधाविंस्तत्र मायामहाबले ॥ न चैव विस्मयः कार्यो वयं सर्वं विमोहिताः ॥ २२ ॥

कारण जानकर तदनन्तर मुझसे प्रीतिपूर्ण वचनोंद्वारा कुछ हँसकर कहा ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी बोले हे वत्स ! देवता लोग, महात्मा, मुनि, ज्ञानी, तापस और वायुभोजी योगी भी इस मायाके जय करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १९ ॥ हे नारद ! मायाका बल ऐसा महत् है कि मैं विष्णु और उमापति शंभु इत्यादि ॥ २० ॥ कोई उस मायाके जाननेमें समर्थ नहीं होते कालकर्म और स्वभावादिके कारण वह महामाया ही इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करती है ॥ २१ ॥ हे वत्स ! तुम उसको अत्यन्त दुर्ज्ञेय जानो. हे मेधाविन् ! तुम शोक मत करो और उस मायाके महत बलविषयमें भी आश्चर्य करना तुमको उचित नहीं है क्योंकि उसमें हम सम्पूर्ण ही मोहित हो रहे हैं ॥ २२ ॥

नारदजी बोले हे द्वैपायन ! पिताके मुझसे इस प्रकार कहनेपर फिर मेरा आश्चर्य दूर हो गया. तदनंतर मैं पिता पद्मयोनिकी आज्ञा लेकर तीर्थोंमें विचरण करनेको निकला क्रमानुसार सम्पूर्ण प्रधान २ तीर्थ देखते देखते अब इस स्थानमें आकर उपस्थित हुआ हूं ॥ २३ ॥ अतएव हे मुनिसत्तम ! तुम भी कुरुकुलनाशजनित शोक त्याग कर इस स्थानमें परम आनन्द सहित वास कर समय बिताते रहो ॥ २४ ॥ अपने किये शुभाशुभ कर्म अवश्य ही भोगने होते हैं हृदयमें यह स्थिर निश्चय करके सुखपूर्वक विचरण करो ॥ २५ ॥ व्यासजीने कहा हेराजन् ! महर्षि नारद यह कहकर मुझे तत्त्वबोध उदय कराय यथेच्छ स्थानमें चले गये मैं तब नारदजीके कहे उन सब वचनोंकी मनमें चिन्ता करने लगा ॥ २६ ॥ मैंने सरस्वतीके तटपर वास कर अत्युत्तम सार

नारद उवाच ॥ पित्रेत्युक्तस्तदा व्यास तमापृच्छ्य गतस्मयः ॥ आगतोऽस्म्यत्र पश्यन्वै तीर्थानि च वराणि च ॥ २३ ॥ तस्मात्त्वमपि संत्यज्य मोहं कौरवनाशजम् ॥ काल क्षयं सुखासीनः स्थानेऽस्मिन्कुरुसत्तम ॥ २४ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ निश्चयं हृदये कृत्वा विचरस्व यथासुखम् ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा नारदो राजन्गतो मां प्रतिबोध्य च ॥ अहं तच्चिं तयन्वाक्यं यदुक्तं मुनिना तदा ॥ २६ ॥ स्थितः सरस्वतीतीरे कल्पे सारस्वते वरे ॥ कालातिवाहनायैतत्कृतं भागवतं मयाः ॥२७॥ पुराणमुत्तमं भूप सर्वसंशयनाशनम् ॥ नाना ख्यानसमायुक्तं वेदप्रामाण्यसंश्रितम् ॥ २८ ॥ सन्देहोऽत्र न कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम ॥ यथेन्द्रजालिकः कश्चित्पांचालीं दारवीं करे ॥ २९ ॥ कृत्वा नर्तयते कामं स्वेच्छया वशवर्तिनीम् ॥ तथा नर्तयते माया जगत्स्था वरजंगमम् ॥ ३० ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं सदेवासुर मानुषम् ॥ पंचेंद्रियसमायुक्तं मनश्चित्तानुवर्तनम् ॥ ३१ ॥ गुणास्तु कारणं राजन्सर्वेषां सर्वथा त्रयः ॥ कार्यं कारणासंयुक्तं भवतीति विनि श्चयः ॥ ३२ ॥

स्वतकल्पमें काल व्यतीत करनेके निमित्त यह देवीभागवत बनाई थी ॥ २७ ॥ यह महापुराण अत्युत्तम है इससे सम्पूर्ण संसय नष्ट होते हैं, क्योंकि यह देवके प्रमाणसे रचित है इसमें अनेक प्रकार के उपाख्यानवर्णित हैं ॥ २८ ॥ अतएव हे नृपवर ! इसमें कभी संदेह करना उचित नहीं है जिस प्रकार इन्द्र जालिक मनुष्य काठकी पुतलीको हाथमें लेकर ॥ २९ ॥ अपने इच्छानुसार नचाता है यहगजमोहिनी मायाभी ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यन्त देव और मनुष्यके सहित इस स्थावरजंगमात्मक जगत्को इसी प्रकार नचाती है. हेराजन् ! पञ्चेन्द्रिययुक्त जो मन चित्तके अनुसार वर्वता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इसमें मायाके तीनों गुण हैं उनको सर्वथा कारण जानन चाहिये क्योंकि इनसेही कार्यकी उत्पत्ति है यह भलीभाँति निश्चय हुआ है ॥ ३२ ॥

तब अनेक प्रकार मायाके गुणोंसे जो भिन्न भिन्न स्वभावयुक्त जीवोंकी उत्पत्ति होगी इसमें फिर क्या सन्देह है ? उस मायाके गुणसे अनेक प्रकार इसी कारण संसारमें कोई शान्त कोई घोरतर मूर्ख होता है ॥ ३३ ॥ वह जब कि मायाके गुणसे उत्पन्न है तब किस प्रकार उनको छोड़ सकता है ? जिस प्रकार तन्तुके विना वस्त्रकी उत्पत्ति असंभव है ॥ ३४ ॥ इसी प्रकार इस संसारमें मायाके तीनों गुण विना मनुष्योंकी उत्पत्ति भी असंभव है यह स्थिर निश्चय जानना चाहिये. इसी प्रकार देवदेह नरदेह अथवा तिर्यग्देह हो ॥ ३५ ॥ गुणरहित होकर कोई भी उत्पन्न नहीं हो सकता जैसे मृतिकाके विना घट नहीं होता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र यह तीनोंभी तीनों गुणोंका आश्रय करते हैं ॥ ३६ ॥ इसी कारण वह कभी प्रसन्न कभी अप्रसन्न और कभी विषादयुक्त होते हैं

भिन्नभिन्नस्वभावास्ते गुणा मायासमुद्भवाः ॥ शांतो घोरस्तथा मूढस्त्रयस्तु विविधा यतः ॥ ३३ ॥ तत्समेतः पुमान्नित्यं तद्विहीनः कथं भवेत् ॥ न भवत्येव संसारे रहितस्तंतुभिः पटः ॥ ३४ ॥ तथा गुणैस्त्रिभिर्हीनो न देहीति विनिश्चयः ॥ देवदेहो मनुष्यो वा तिरश्चो वा नराधिप ॥ ३५ ॥ गुणैर्विरहितो न स्यान्मृद्विहीनो घटो यथा ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयश्चामीः गुणाश्रयाः ॥ ३६ ॥ कदाचित्प्रीतियुक्तास्ते तथा प्रीतियुताः पुनः॥ तथाविषादयुक्तास्ते भवंति गुणयोगतः ॥३७॥ ब्रह्मा कदाचित्सत्त्वस्थस्तदा शांतः समाधिमान् ॥ प्रीतियुक्तो भवेत्सर्वभूतेषु ज्ञानसंयुतः ॥ ३८ ॥ पुनः सत्त्वविहीनस्तु रजोगुणसमावृतः ॥ तदा भवेद्घोररूपः सर्वत्राऽप्रीतिसंयुतः ॥ ३९ ॥ यदा तमोगुणाविष्टो बाहुल्येन भवेद्विधिः ॥ तदा विषादसंपन्नो मूढो भवति नान्यथा ॥ ४० ॥ माधवोऽपि सदा सत्त्वसंश्रितःसर्वथा भवेत् ॥ यदाशांतःप्रीतियुक्तो भवेज्ज्ञानसमन्वितः ॥४१॥ स एव रजआधिक्यादप्रीतिसंयुतो भवेत् ॥ घोरश्च सर्वभूतेषु गुणाधीनो रमापतिः ॥४२॥ रुद्रोऽपि सत्त्वसंयुक्तः प्रीतिमाञ्छांतिमान्भवेत् ॥ रजोनिर्मीलितः सोऽपि घोरः प्रीतिविवर्जितः ॥ ४३ ॥

॥ ३७ ॥ ब्रह्मा जब सत्वगुणमें स्थित होते हैं तब वह ज्ञानयुक्त और प्रीतियुक्त एव शांत तथा समाधिमान् होते हैं ॥ ३८ ॥ और जब सत्वगुण रहित तथा रजोगुण युक्त होते हैं तब सर्वत्र अप्रीति युक्त घोररूप धारण करते हैं ॥ ३९ ॥ और जब वह भलीभाँति तमोगुण युक्त होते हैं, तब विषादयुक्त हो मूढताको प्राप्त होते हैं. इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ माधव भी जब सत्वगुणका आश्रय करते हैं, तब वह शान्त प्रसन्न और ज्ञान युक्त होते हैं ॥ ४१ ॥ और रजोगुणकी अधिकता होनेसे वह प्रीति रहित होकर सब भूतोंके प्रति घोररूप धारण करते हैं ॥ ४२ ॥ रुद्रदेव भी जब सत्वगुण युक्त होते हैं. तब प्रसन्न और शान्त होते हैं और रजोगुण होनेसे वह भी फिर प्रीति छोड कर घोररूप धारण करते हैं ॥ ४३ ॥

और जब तमोगुणका आश्रय ग्रहण करते हैं, तब मूढ और विषादसंपन्न होते हैं. हे राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु, महादेव यह भी जब गुणोंके अधीन हैं ॥ ४४ ॥ तथा सूर्यवंशीय और चन्द्रवंशीय राजा लोग युगयुगमें मनुआदि चौदह मन्वन्तरोंके अधिपति हैं ॥ ४५ ॥ जब यह भी सब मायाके आधीन हुए तो अन्यान्य साधारण मनुष्यादि जीवोंके पक्षमें उस विषयका क्या कहना है ? नृपवर ! सुरनरादि समन्वित यह सब जगत् मायाके आधीन है ॥४६॥ इस विषयमें कभी सन्देह नहीं करना चाहिये संपूर्ण देहधारी मायाके अधीन हैं और मायाके वशमें होकरही सब कार्य करते हैं कभी स्वाधीन होकर कार्य करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ४७ ॥ वही माया फिर संवित् रूपसे परतत्वमें सदाही स्थित है. माया उन संवित् रूपिणी परमेश्वरीके आधीन और उनसे प्रेरित

तमोगुणयुतः सोऽपि मूढो विषादयुग्भवेत् ॥ एते यदि गुणाधीना ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ ४४ ॥ सूर्यवंशोद्भवास्तद्वत्सोमवंशभवा अपि ॥ मन्वादयश्च ये प्रोक्ताश्चतुर्दश युगेयुगे ॥ ४५ ॥ अन्येषां चैव का वार्ता संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम ॥ मायाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४६ ॥ तस्माद्राजन्न कर्तव्य संदेहोऽत्र कदाचन ॥ देही माया पराधीनश्चेष्टते तद्वशानुगः ॥ ४७ ॥ सा च माया परे तत्त्वे संविद्रूपेऽस्ति सर्वदा ॥ तदधीना प्रेरिता च तेन जीवेषु सर्वदा ॥४८॥ ततो मायाविशिष्टांतां संविदं परमेश्वरीम् ॥ मायेश्वरीं भगवतीं सच्चिदानंद रूपिणीम् ॥ ४९ ॥ ध्यायेत्तथाऽऽराधयेच्च प्रणमेच्च जपेदपि ॥ तेन सा सदया भूत्वा मोचयत्येव देहिनम् ॥ ५० ॥ स्वमायं संतरत्येव स्वानुभूतिप्रदानतः ॥ भुवनं खलु माया स्यादीश्वरी तस्य नायिका ॥५१॥ भुवनेशी ततः प्रोक्ता देवी त्रैलोक्यसुंदरी ॥ तद्रूपे यदि सक्तं स्याच्चिंत भूमिपते सदा ॥ ५२ ॥

होकरही जीवोंके अन्तरमें निरन्तर समवाय सम्बन्धसे अनुसम्बद्ध होकर रहती है ॥ ४८ ॥ अतएव कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषगण उस मायाविशिष्ट मायाकी ईश्वरी सच्चिदानन्द स्वरूपिणी परब्रह्मरूपिणी संवित् रूप भगवतीका ॥ ४९ ॥ ध्यान आराधना और सदा उनका मन्त्र जप करनेसे वह उसके प्रति दयायुक्त हो अपनी माया संहार ॥ ५० ॥ और अपनी अनुभूषित प्रदान पूर्वक उस देही पुरुषको संसारके बन्धनसे छुड़ा देती हैं यह सम्पूर्ण भुवन मायामय हैं इसी कारण वह ब्रह्मरूपिणी संवित् इनकी ईश्वरी हैं ॥ ५१ ॥ इस कारण वह त्रैलोक्यसुन्दरी भगवती भुवनेश्वरी नामसे विख्यात हुई हैं ॥ हे भूमिपते ! यदि जीवोंका चित्त इस संवित् रूपमें आसक्त हो ॥ ५२ ॥

तो सद् असत् रूप माया कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं होती, अतएव सच्चिदानंद रूपिणी भुवनेश्वरीके सिवाय दूसरे कोई देवता मायाके दूर करनेमें समर्थ नहीं होते. हे राजन् ! तुम कभी तमोराशि नाश करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ सूर्यप्रभा, चन्द्रप्रभा, विद्युतप्रभा इत्यादिही उसके नाशमें समर्थ होती हैं अतएव मायाका गुण निवृत्त होनेक निमित्त प्रीतिपूर्वक उन मायाकी ईश्वरी स्वयंप्रभा सम्मित रूपिणी अम्बिकाकी ॥ ५५ ॥ आरधना करनी चाहिये. हे राजेन्द्र ! तुमने जो पूंछा था वह वृत्रासुर वधादिके वृत्तांतकी सब कथा वर्णन की ॥ ५६ ॥ अब और किस विषयकें सुननेकी इच्छा करते हो ! यह पुराणका पूर्वभाग तुम्हारे निकट वर्णन किया ॥ ५७ ॥ जिसमें देवीकी महिमा विस्तारपूर्वक वर्णन की गई है. यह भवानी माताका रहस्य जिस किसीको न देना चाहिये ॥ ५८ ॥ परन्तु भक्त शांत देवीकी भक्तिमें तत्पर शिष्य ज्येष्ठपुत्र गुरु भक्तिमें तत्परको देना चाहिये ॥ ५९ ॥ यह पुराण सब

मायया किं भवेतत्र सदसद्भूतया नृप ॥ तस्मान्मायानिरासार्थं नान्यद्वै देवतांतरम् ॥ ५३ ॥ समर्थं तु विना देवींसच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ तमोराशिं नाशयितुं शक्तं नैव तमो भवेत् ॥ ५४ ॥ किंतु भानुप्रभाचंद्रविद्युद्वह्निप्रभादयः ॥ तस्मा न्मायेश्वरीमंबां स्वप्रकाशां तु संविदम् ॥ ५५ आराधयेदतिप्रीत्या मायागुणनिवृत्तये ॥ इति सम्यङ्‌ मयाऽऽख्यातं वृत्रासुरवधादिकम् ॥ ५६ ॥ यत्पृष्टं राजशार्दूल किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ पूर्वार्धोऽयं पुराणस्य कथितस्तव सुव्रत ॥ ५७ ॥ यत्र देव्यास्तु महिमा विस्तरे णोपपादितः ॥ एत द्रहस्यं श्रीमातुर्न देयं यस्य कस्यचित् ॥ ५८ ॥ देयं भक्ताय शान्ताय देवीभक्तिरताय च ॥ शिष्याय ज्येष्ठ पुत्राय गुरुभक्तियुताय च ॥ ५९ ॥ इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणं निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणानुविद्धम् ॥ पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भगवतीमाहात्म्ये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ वेदाष्टवसुभूसंख्यैः (१८८४) पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्य षष्ठस्कंधः समाप्तवान् ॥ १ ॥

कथाओंका सारभूत है यह सब शास्त्रोंके समान सत्प्रमाणसे युक्त है जो इसको परम भावसे पढते हैं सुनते हैं वे पुरुष धनवान् और ज्ञानवान् होते हैं ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भगवतीमाहात्म्ये पं. ज्वालाप्रसाद मिश्रकृतभाषायां एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥ १८८४ श्लोकोंमें यह षष्ठस्कंध पूर्ण हुआ.

दोहा--श्रीमाताके पदकमल, युगल भलीविधिध्याय । भाषा षष्ठ स्कन्धकी, सुंदर लिखी बनाय ॥ १ ॥
वसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद । भजन करत हरिको सदा, जनज्वालाप्रसाद ॥ २ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते षष्ठस्कन्धः समाप्तः

खेमराज श्रीकृष्णदास

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन - बम्बई ४.